1.6

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

कल्याण

आरोग्य-अङ्क

[जनवरी एवं फरवरी २००१ ई०]



वर्ष-७५ संख्या १ एवं २

'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर-२७३००५

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

कल्याण



'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'



आरोग्याङ्क

वर्ष ७५

संख्या १-२

(जनवरी एवं फरवरी अङ्क)

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय-जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(संस्करण २,३५,०००)

भवरोग-रसायन—भगवान् सदाशिव

भक्ताग्र्याणां कथमपि परैर्योऽचिकित्स्याममर्त्यैः
संसाराख्यां शमयति रुजं स्वात्मबोधौषधेन।
तं सर्वाधीश्वर भवमहादीर्घतीव्रामयेन
क्लिष्टोऽहं त्वां वरद शरणं यामि संसारवैद्यम्॥

'हे सर्वेश्वर! वरदायक शम्भो! आप आत्मबोधरूपी औषधके द्वारा अपने भक्तवरोंके भवरोगको हर लेते हैं। अन्य देवताओंकी सामर्थ्य नहीं कि वे इस दुःसाध्य रोगकी चिकित्सा कर सकें। इस भवरूपी महाभयंकर एवं जन्म-जन्मान्तरसे पीछे लगे हुए रोगसे पीडित होकर मैं आप संसार-वैद्यकी शरण आया हूँ। कृपया ऐसा कीजिये कि जिससे फिर इस संसार-रोगका मुँह न देखना पड़े।'

आवश्यक सूचना

फरवरी मासका अङ्क (परिशिष्टाङ्क) विशेषाङ्कके साथ संलग्न है।

इस अङ्कका मूल्य १२० रु० (सजिल्द १३५ रु०)

वार्षिक शुल्क*
भारतमें १२० रु०
सजिल्द १३५ रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$25 (Air Mail)
US$13 (Sea Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

* कृपया नियम देखें।

दसवर्षीय शुल्क*
भारतमें १००० रु०
सजिल्द ११५० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$200 (Air Mail)
US$110 (Sea Mail)

संस्थापक— ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका, आदिसम्पादक— नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक— राधेश्याम खेमका, गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये केशोराम अग्रवालद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित
visit us at: www.gitapress.org | e-mail: gitapres@ndf.vsnl.net.in

'कल्याण' के सम्मान्य सदस्यों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण' के ७५ वें वर्ष—सन् २००१ का यह विशेषाङ्क 'आरोग्याङ्क' आप लोगोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४७२ पृष्ठोंमें पाठ्य-सामग्री और ८ पृष्ठोंमें विषय-सूची आदि है। कई बहुरंगे एवं रेखाचित्र भी दिये गये हैं। इस विशेषाङ्कमें फरवरी माहका अङ्क भी संलग्न किया गया है। डाकसे सभी ग्राहकोंको विशेषाङ्क-प्रेषणमें लगभग दो माहका समय लग जाता है। मार्चका अङ्क अप्रैल माहमें भेजे जानेकी सम्भावना है।

२-वार्षिक मूल्य प्रेषित करनेपर भी किसी कारणवश यदि विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा आपके पास पहुँच गया हो तो उसे डाकघरसे प्राप्त कर लेना चाहिये एवं प्रेषित की गयी रकमका पूरा विवरण (मनीआर्डर पावतीसहित) यहाँ भेज देना चाहिये। जिससे जाँचकर आपकी सुविधानुसार रकमकी उचित व्यवस्था की जा सके। सम्भव हो तो वी०पी०पी० से किसी अन्य सज्जनको ग्राहक बनाकर उसकी सूचना यहाँ नये सदस्यके पूरे पतेसहित देनी चाहिये। ऐसा करके आप 'कल्याण' को आर्थिक हानिसे बचानेके साथ-साथ 'कल्याण' के पावन प्रचारमें सहयोगी भी हो सकेंगे।

३-इस अङ्कके लिफाफे (कवर)-पर आपकी सदस्य-संख्या एवं पता छपा है, उसे कृपया जाँच लें तथा अपनी सदस्य-संख्या सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री अथवा वी०पी०पी० का नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये। पत्र-व्यवहारमें सदस्य-संख्याका उल्लेख नितान्त आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना आपके पत्रपर हम समयसे कार्यवाही नहीं कर पाते हैं। डाकद्वारा अङ्कोंके सुरक्षित वितरणमें सही पिन-कोड-नम्बर आवश्यक है। अतः अपने लिफाफेपर छपा अपना पता जाँच लेना चाहिये।

४-*'कल्याण'* एवं *'गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग'* की व्यवस्था अलग-अलग है। अतः पत्र तथा मनीआर्डर आदि सम्बन्धित विभागको अलग-अलग भेजना चाहिये।

'कल्याण' के उपलब्ध पुराने विशेषाङ्क

वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)
७	ईश्वराङ्क	९०	३४	*सं० देवीभागवत (मोटा टाइप)	१२०
८	शिवाङ्क	८०	३५	सं० योगवासिष्ठाङ्क	९०
९	शक्ति-अङ्क	१००	३६	*सं० शिवपुराण (बड़ा टाइप)	१००
१२	संत-अङ्क	१००	३७	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क	७५
१६	*भागवताङ्क	१३०	३९	भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क	८५
१८	सं० वाल्मीकीय रामायणाङ्क	६५	४३	परलोक-पुनर्जन्माङ्क	७०
१९	*संक्षिप्त पद्मपुराण	१००	४४-४५	*गर्गसंहिता [भगवान् श्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन]	७०
२२	नारी-अङ्क	७०			
२३	उपनिषद्-अङ्क	१००	४५	*नृसिंह-पुराण	५०
२४	हिन्दू-संस्कृति-अङ्क	१००	४८	श्रीगणेश-अङ्क	६५
२५	सं० स्कन्दपुराण	१००	४९	हनुमान-अङ्क	७०
२६	भक्तचरिताङ्क	८०	५३	सूर्याङ्क	६०
२७	बालक-अङ्क	८०	६६	भविष्य-पुराणाङ्क	६०
२८	*सं० नारदपुराण	१००	६७	शिवोपासनाङ्क	६०
३०	सत्कथा-अङ्क	७५	६८	रामभक्ति-अङ्क	६५
३१	तीर्थाङ्क	८५	६९	गो-सेवा-अङ्क	७०
३२	भक्ति-अङ्क	८०	७२	भगवल्लीला-अङ्क	६५

सभी अङ्कोंपर डाक-व्यय अतिरिक्त देय होगा। *गीताप्रेस-पुस्तक-विक्री-विभागसे प्राप्य।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, जनपद—गोरखपुर, (उ०प्र०)



॥ श्रीहरिः ॥

'आरोग्याङ्क'की विषय-सूची

चित्र-सूची

(रंगीन-चित्र)

(सादे-चित्र)

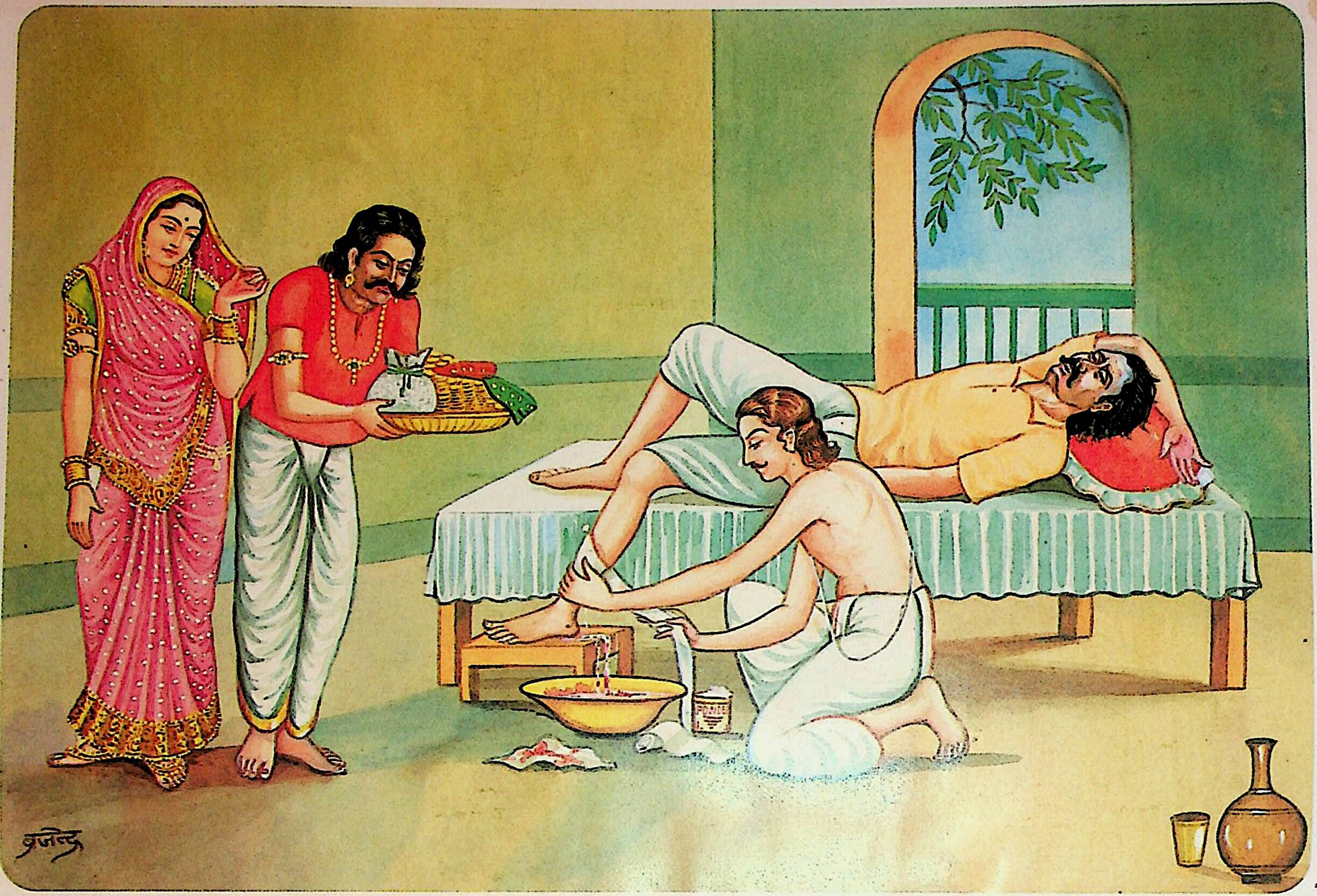
(फरवरीके अङ्ककी विषय-सूची)

चित्र-सूची

(रंगीन)



पितामह ब्रह्माद्वारा आयुर्वेदका उपदेश



आरोग्यदानसे अपार ऐश्वर्यकी प्राप्ति



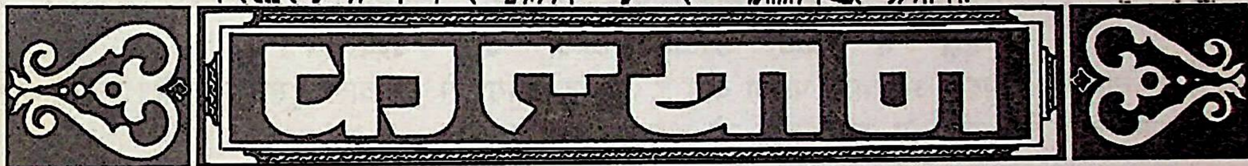
आयुर्वेदके प्रवर्तक भगवान् धन्वन्तरि



आयुर्वेदमूर्ति भगवान् सदाशिव

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥





सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

वर्ष ७५ | गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०५७, श्रीकृष्ण-सं० ५२२६, जनवरी २००१ ई० | संख्या १

पूर्ण संख्या ८९०

भगवान् शिवकी शरणागतिसे परम कल्याणकी प्राप्ति

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखदाता।
संसारहेतुरपि यः पुनरन्तकालस्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥
यं योगिनो विगतमोहतमोरजस्का भक्त्यैकतानमनसो विनिवृत्तकामाः।
ध्यायन्ति चाखिलधियोऽमितदिव्यमूर्तिं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

'जो इस सम्पूर्ण चराचर-जगत्के कर्ता और इसे अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार सुख-दुःख देनेवाले हैं, जो संसारकी उत्पत्तिके हेतु तथा उसका अन्तकाल भी स्वयं ही हैं, सबको शरण देनेवाले उन्हीं भगवान् शङ्करकी मैं शरण लेता हूँ। जिनके मोह, तमोगुण और रजोगुण दूर हो गये हैं, वे योगीजन, भक्तिसे मनको एकाग्र रखनेवाले निष्काम भक्त तथा अपरिच्छिन्न बुद्धिवाले ज्ञानी भी जिनका निरन्तर ध्यान करते हैं, उन अनन्त दिव्यस्वरूप शरणदाता भगवान् शङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।'



मङ्गलाचरण

वैदिक शुभाशंसा

[रोगनिवारण-सूक्त]

[अथर्ववेदके चतुर्थ काण्डका १३वाँ सूक्त तथा ऋग्वेदके दशम मण्डलका १३७वाँ सूक्त 'रोगनिवारण-सूक्त' के नामसे प्रसिद्ध हैं। अथर्ववेदमें अनुष्टुप् छन्दके इस सूक्तके ऋषि शंताति तथा देवता चन्द्रमा एवं विश्वेदेवा हैं। जब कि ऋग्वेदमें प्रथम मन्त्रके ऋषि भरद्वाज, द्वितीयके कश्यप, तृतीयके गौतम, चतुर्थके अत्रि, पञ्चमके विश्वामित्र, षष्ठके जमदग्नि तथा सप्तम मन्त्रके ऋषि वसिष्ठजी हैं और देवता विश्वेदेवा हैं। इस सूक्तके जप-पाठसे रोगोंसे मुक्ति अर्थात् आरोग्यता प्राप्त होती है। ऋषिने रोगमुक्तिके लिये ही देवोंसे प्रार्थना की है—]

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः॥ १॥

हे देवो! हे देवो! आप नीचे गिरे हुएको फिर निश्चयपूर्वक ऊपर उठाएँ। हे देवो! हे देवो! और पाप करनेवालेको भी फिर जीवित करें, जीवित करें।

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आवातु व्यन्यो वातु यद्रपः॥ २॥

ये दो वायु हैं। समुद्रसे आनेवाला पहला वायु है और दूर भूमिपरसे आनेवाला दूसरा वायु है। इनमेंसे एक वायु तेरे पास बल ले आये और दूसरा वायु जो दोष है, उसे दूर करे।

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे॥ ३॥

हे वायु! ओषधि यहाँ ले आ! हे वायु! जो दोष है, वह दूर कर। हे सम्पूर्ण ओषधियोंको साथ रखनेवाले वायु! निःसंदेह तू देवोंका दूत-जैसा होकर चलता है, जाता है, प्रवाहित है।

त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत्॥ ४॥

हे देवो! इस रोगीकी रक्षा करें। हे मरुतोंके समूहो! रक्षा करें। सब प्राणी रक्षा करें। जिससे यह रोगी रोग-दोषरहित हो जाये।

आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते॥ ५॥

आपके पास शान्ति फैलानेवाले तथा अविनाशी साधनोंके साथ आया हूँ। तेरे लिये प्रचण्ड बल भर देता हूँ। तेरे रोगको दूर कर भगा देता हूँ।

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः*॥ ६॥

मेरा यह हाथ भाग्यवान् है। मेरा यह हाथ अधिक भाग्यशाली है। मेरा यह हाथ सब ओषधियोंसे युक्त है और मेरा यह हाथ शुभ-स्पर्श देनेवाला है।

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि॥ ७॥

दस शाखावाले दोनों हाथोंके साथ वाणीको आगे प्रेरणा करनेवाली मेरी जीभ है। उन नीरोग करनेवाले दोनों हाथोंसे तुझे हम स्पर्श करते हैं।

* ऋग्वेदमें 'अयं मे हस्तो०' के स्थानपर यह दूसरा मन्त्र उल्लिखित है—

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः। आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम्॥

जल ही निःसंदेह ओषधि है। जल रोग दूर करनेवाला है। जल सब रोगोंकी ओषधि है। वह जल तेरे लिये ओषधि बनावे।

ओषधि-सूक्त

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च॥ १॥

जो देवोंके पूर्व (अर्थात् उनकी) तीन पीढ़ियोंके पहले ही उत्पन्न हुईं, उन (पुरातन) पीतवर्णा ओषधियोंके एक सौ सात सामर्थ्योंका मैं मनन करता हूँ।

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत॥ २॥

हे माताओ! तुम्हारी शक्तियाँ सैकड़ों हैं एवं तुम्हारी वृद्धि भी सहस्र (प्रकारोंकी) है। हे शत-सामर्थ्य धारण करनेवाली ओषधियो! तुम मेरे इस (रुग्ण) पुरुषको निश्चय ही रोगमुक्त करो।

ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः।
अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः॥ ३॥

हे ओषधियो! (मेरी संगतिमें) आनन्द मानो। तुम खिलनेवाली और फलप्रसवा हो। जोड़ीसे (स्पर्धा या युद्ध) जीतनेवाली घोड़ियोंकी तरह ये लताएँ (आपत्तिके) पार पहुँचानेवाली हैं।

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे।
सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष॥ ४॥

हे ओषधियो, माताओ, देवियो! मैं तुम्हारे पास इस प्रकार याचना करता हूँ कि अश्व, गाय तथा वस्त्र—ये (मेरी दक्षिणाके रूपमें) मुझे मिलें और हे (व्याधिग्रस्त) पुरुष! तुम्हारा आत्मा भी (रोगोंके पंजेसे छूटकर) मेरे वशमें हो जाय।

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाज इत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम्॥ ५॥

हे ओषधियो! तुम्हारा विश्रामस्थान अश्वत्थवृक्षपर है और तुम्हारे निवासकी योजना पर्णवृक्षपर की गयी है। अगर तुम इस व्याधिपीडित पुरुषको (व्याधियोंके पाशसे मुक्त कर मेरे पास फिर) लाकर दोगी तो (पुरस्काररूपमें) तुम्हें अनेक गायोंकी प्राप्ति होगी।

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव।
विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहामीवचातनः॥ ६॥

राजा लोग जिस प्रकार राजसभामें सम्मिलित होते हैं, उसी तरह जिस विप्र (-की सङ्गति)-में सभी ओषधियाँ एक साथ निवास करती हैं, उसे लोग 'भिषक्' कहते हैं। वह राक्षसोंका विनाश करके व्याधियोंको भगा देता है।

अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम्।
आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये॥ ७॥

इस (व्याधिग्रस्त) पुरुषके सभी दुःख नष्ट करनेके उद्देश्यसे अश्व प्राप्त करा देनेवाली, सोम-सम्बद्ध, ऊर्जा बढ़ानेवाली तथा ओजस्विनी ऐसी सभी ओषधियाँ मैंने प्राप्त कर ली हैं।

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते।
धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष॥ ८॥

धनलाभकी इच्छा करनेवाली और तुम्हारे (व्याधिग्रस्त) आत्माको अपने वशमें लानेवाली इन ओषधियोंकी ये सभी शक्तियाँ हे रुग्णपुरुष! उसी प्रकार मेरे पाससे बाहर निकल रही हैं जिस प्रकार गोष्ठमेंसे गायें।

इष्कृतिर्नाम वो माता ऽथो यूयं स्थ निष्कृतीः।
सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ॥ ९॥

(स्वस्थ अवयवोंको अच्छी प्रकार समृद्ध करनेवाली हे ओषधियो!) इष्कृति नामक तुम्हारी माता है और तुम स्वयं निष्कृति (दूषित अवयवोंका निःसारण करनेवाली) हो। तुम बहनेवाली होकर भी तुम्हारे पंख हैं। (रोगीके शरीरमें) रोग-निर्माण करनेवाली जो-जो बातें हैं, उन्हें तुम बाहर निकाल देती हो।

अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव व्रजमक्रमुः।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत् किं च तन्वो३ रपः॥ १०॥

सभी प्रतिबन्धकोंको तुच्छ मानकर जिस प्रकार (कुशल) चोर गायोंके गोष्ठमें प्रवेश करके (गायोंको भगा देता है), उसी प्रकार हमारी इन ओषधियोंने (रोगीके शरीरमें) प्रवेश किया है और उसके शरीरमें जो कुछ पीडा थी उसे (पूर्णतया) बाहर निकाल दिया है।

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा॥ ११॥

जिस समय ओषधियोंको शक्तिसम्पन्न बनाता हुआ मैं उन्हें अपने हाथमें धारण करता हूँ, उसी समय (व्याघ्र-द्वारा) जीवन्त पकड़े जानेके पूर्व ही जिस प्रकार मृगादिक (प्राण बचाकर) भाग जाते हैं, उस प्रकार व्याधियोंका

आत्मा ही विनष्ट हो जाता है।

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः।
ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव॥ १२॥

हे ओषधियो! जिस व्याधिपीडित पुरुषके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें और सभी सन्धियोंमें तुम प्रसृत हो जाती हो, उसके उन अङ्ग और सन्धियोंसे अपने शिकारोंके मध्यमें पड़े रहनेवाले उग्र हिंस्र श्वापदकी तरह तुम उस व्याधिको दूर कर देती हो।

साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना।
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया॥ १३॥

हे यक्ष्मा! चाष अथवा किकिदीविन् इन पक्षियोंके साथ तुम दूर उड़ जाओ अथवा वातके अंधड़ एवं कुहरेके साथ विनष्ट हो जाओ।

अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत।
ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः॥ १४॥

तुम परस्पर एक-दूसरेकी सहायता करो। तुम आपसमें वार्तालाप करो (और फिर), सभी एकमत होकर मेरी उस प्रतिज्ञाकी रक्षा करो।

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ १५॥

जिनमें फल लगते हैं और जिनमें नहीं लगते; जिनमें फूल प्रकट होते हैं और जिनमें नहीं प्रकट होते, वे सभी ओषधियाँ बृहस्पतिकी आज्ञा होनेपर हमें इस आपत्तिसे मुक्त करें।

मुञ्चन्तु मा शपथ्या३दथो वरुण्यादुत।
अथो यमस्य पड्वीशात् सर्वस्माद्देवकिल्बिषात्॥ १६॥

(शत्रुओंकी) शपथोंसे निर्मित या वरुणद्वारा पीछे लगायी गयी आपत्तिसे वे मुझे मुक्त करें। उसी प्रकार यमके पाशबन्धनसे और देवोंके विरुद्ध किये गये अपराधोंसे भी (वे मुझे) मुक्त करें।

अवपतन्तीरवदन् दिव ओषधयस्परि।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः॥ १७॥

स्वर्गलोकसे इधर-उधर नीचे पृथ्वीपर अवतरण करती हुई ओषधियोंने प्रतिज्ञा की कि जिस पुरुषको उसके जीवनकी अवधिमें हम स्वीकार करेंगी, वह कभी विनष्ट नहीं होगा।

या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः।
तासां त्वमस्युत्तमारं कामाय शं हृदे॥ १८॥

यह सोम जिनका राजा है तथा जो बहुसंख्यक होकर शत प्रकारोंकी निपुणताओंसे परिपूर्ण हैं, उन सभी ओषधियोंमें तुम्हीं श्रेष्ठ हो और हमारी अभिलाषा सफल करने तथा हमारे हृदयको आनन्द देनेमें भी समर्थ हो।

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु।
बृहस्पतिप्रसूता अस्यै सं दत्त वीर्यम्॥ १९॥

यह सोम जिनका राजा है तथा जो ओषधियाँ पृथिवीके पृष्ठभागपर इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं तथा तुम सभी बृहस्पतिकी आज्ञा हो जानेपर इस (मेरे हाथमें ली गयी) ओषधिको अपना-अपना वीर्य समर्पित करो।

मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः।
द्विपच्चतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम्॥ २०॥

(भूमिके उदरमेंसे) तुम्हें खोदकर निकालनेवाला मैं और जिसके लिये तुम्हें खोदकर निकालता हूँ वह रुग्ण पुरुष—इन दोनोंको किसी प्रकारका उपद्रव न होने दो। उसी प्रकार हमारे द्विपाद तथा चतुष्पाद प्राणी और अन्य जीव—ये सभी तुम्हारी कृपासे नीरोग रहें।

याश्चेदमुपशृण्वान्ति याश्च दूरं परागताः।
सर्वाः संगत्य वीरुधो ऽस्यै सं दत्त वीर्यम्॥ २१॥

हे ओषधिलताओ! तुममेंसे जो मेरा यह वचन सुन रही हैं और जो यहाँसे दूर अन्तरपर (अपने-अपने कार्यके निमित्त) गयीं हैं, वे सभी और तुम एकत्र सम्मिलित होकर (मेरे हाथमें ली हुई) ओषधिको अपना-अपना वीर्य समर्पित करो।

ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि॥ २२॥

अपना राजा जो सोम, उसके पास सभी ओषधियाँ सहमत होकर प्रतिज्ञा करती हैं कि हे राजन्! जिसके लिये यह ब्राह्मण (कविराज) हमें अभिमन्त्रित करता है, उसे हम (व्याधियोंसे) पार करा देती हैं।

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः।
उपस्तिरस्तु सो३ऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति॥ २३॥

हे ओषधि! तुम सर्वश्रेष्ठ हो। सभी वृक्ष तुम्हारे आज्ञाकारी सेवक हैं। (वैसे ही) जो हमें कष्ट देना चाहता है, वह हमारी आज्ञाका वशवर्ती (दास) बनकर रहे।



आरोग्य-सुभाषित-मुक्तावली

आत्मानमेव मन्येत कर्तारं सुखदुःखयोः।
तस्माच्छ्रेयस्करं मार्गं प्रतिपद्येत नो त्रसेत्॥

सुख-दुःखका कर्ता व्यक्ति स्वयं ही होता है, ऐसा समझकर कल्याणकारी मार्गका ही अवलम्बन लेना चाहिये, फिर भयभीत होनेकी कोई बात नहीं।

हितमेवानुरुध्यन्ते प्रपरीक्ष्य परीक्षकाः।
रजोमोहावृतात्मानः प्रियमेव तु लौकिकाः॥

परीक्षक—विवेकीजन (सारासारविचारद्वारा) ठीक-ठीक परीक्षा करके हितकर मार्गका सेवन करते हैं, परंतु रजोगुण और तमोगुणसे आवृत बुद्धिवाले लौकिक मनुष्य (हिताहितका विचार न करके तत्काल) प्रिय (मालूम होनेवाले आचार आदि)-का सेवन करते हैं (इसीलिये दुःखी होते हैं)।

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः।
सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत्॥

सम्पूर्ण प्राणियोंकी सभी चेष्टाएँ सुख-प्राप्त करनेके लिये ही होती हैं और वह सुख बिना धर्माचरणके प्राप्त हो नहीं सकता, अतः धर्ममें परायण रहना चाहिये।

अवृत्तिव्याधिशोकार्तानुवर्तेत शक्तितः।
आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकम्॥

जो आजीविकारहित हैं, रोगोंसे ग्रस्त हैं और शोकसे पीडित हैं—ऐसे मनुष्योंकी यथाशक्ति सेवा-सहायता करनी चाहिये। कीड़े-मकोड़े और चींटी आदि सभी प्राणियोंको सदा अपने ही समान देखे अर्थात् सबमें आत्मबुद्धि रखे।

अर्चयेद्देवगोविप्रवृद्धवैद्यनृपातिथीन् ।
विमुखान्नार्थिनः कुर्यान्नावमन्येत नाक्षिपेत्॥
उपकारप्रधानः स्यादपकारपरेऽप्यरौ।

देवता, गौ, ब्राह्मण, वृद्ध (वयोवृद्ध, शीलवृद्ध, ज्ञानवृद्ध), वैद्य, राजा और अतिथि—इनका यथायोग्य सम्मान करे। याचकोंको विमुख न जाने दे। कठोर वचन कहकर उनका तिरस्कार न करे। अपकारपरायण शत्रुके साथ भी उपकार ही करे।

काले हितं मितं ब्रूयादविसंवादि पेशलम्।
पूर्वाभिभाषी सुमुखः सुशीलः करुणामृदुः॥

प्रसंग आनेपर हितकारी, थोड़े, कानोंको प्रिय और मीठे लगनेवाले तथा वाद-विवादरहित वचनोंको बोलना चाहिये। अपने पास आनेवालोंके साथ प्रथम स्वयं ही बोलना चाहिये, उनके बोलनेकी अपेक्षा न करे। सदा हँसमुख रहे। शील-विनयसे सम्पन्न, दयावान् और कोमल चित्तवाला रहे।

मृत्योर्बिभेषि किं मूढ भीतं मुञ्चति किं यमः।
अजातं नैव गृह्णाति कुरु यत्नमजन्मनि॥

अरे मूर्ख (मनुष्य)! क्या तुम मृत्युसे डर रहे हो? डरे हुएको क्या मृत्यु छोड़ देती है? ऐसा समझ रहे हो तो यह तुम्हारी मूर्खता है। मृत्यु तो सबको कालका ग्रास बना देती है। वह तो जो जन्म ही नहीं लेता, उसीको नहीं पकड़ती है। इसलिये ऐसा प्रयत्न करो, जिससे पुनः जन्म ही न लेना पड़े।

नगरी नगरस्येव रथस्येव रथी यथा।
स्वशरीरस्य मेधावी कृत्येष्ववहितो भवेत्॥
वृत्त्युपायान्निषेवेत ये स्युर्धर्माविरोधिनः।
शममध्ययनं चैव सुखमेवं समश्नुते॥

जैसे नगरका स्वामी नगरकी रक्षामें और सारथी रथकी रक्षामें तत्पर रहता है, वैसे ही बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह शरीरकी रक्षाके कार्योंमें तत्पर रहे। अपनी जीविकाको चलानेके लिये उन्हीं कर्मोंको करे, जो धर्मके विरुद्ध न हों। जो मनुष्य शान्त रहते हुए सद्ग्रन्थोंका अध्ययन और उनमें बताये गये सत्कर्मोंको करता है, वह सुख प्राप्त करता है।

इमांस्तु धारयेद्वेगान् हितार्थी प्रेत्य चेह च।
साहसानामशस्तानां मनोवाक्कायकर्मणाम्॥
लोभशोकभयक्रोधमानवेगान् विधारयेत्।
नैर्लज्ज्येर्ष्यातिरागाणामभिध्यायाश्च बुद्धिमान्॥
परुषस्यातिमात्रस्य सूचकस्यानृतस्य च।
वाक्यस्याकालयुक्तस्य धारयेद्वेगमुत्थितम्॥
देहप्रवृत्तिर्या काचिद्विद्यते परपीडया।
स्त्रीभोगस्तेयहिंसाद्या तस्या वेगान् विधारयेत्॥

पुण्यशब्दो विपापत्वान्मनोवाक्कायकर्मणाम्।
धर्मार्थकामान् पुरुषः सुखी भुङ्क्ते चिनोति च॥

इस लोक और परलोकमें हित चाहनेवाले लोगोंको अप्रशस्त अर्थात् निन्दित तथा जल्दबाजीके कार्योंको मन, वचन तथा कर्मसे भी नहीं करना चाहिये। प्रत्येक कार्य धर्मानुकूल तथा सोच-विचारकर करना चाहिये। लोभ, शोक, भय, क्रोध, अहङ्कार, निर्लज्जता, ईर्ष्या, वासनामय प्रेम, दूसरेके धनको हड़पनेकी इच्छा आदि मानसिक वेगोंको रोकना चाहिये। अत्यन्त कठोर वचन, चुगली, झूठ और असमयपर बोलना—इन वचनके वेगोंको रोकना चाहिये। किसीको पीडा पहुँचानेवाले कर्म, परस्त्रीमें रति, चोरी तथा हिंसा—इन शारीरिक वेगोंको रोकना चाहिये।

इस प्रकार (शारीरिक, मानसिक तथा वाचिक—) इन तीनों वेगोंके रोकनेसे मनुष्य मन, वचन और कर्मसे होनेवाले पापोंसे बचता है, पुण्य प्राप्त करता है और धर्म, अर्थ तथा कामके फलोंका सुखसे उपभोग करता है।

त्यागः प्रज्ञापराधानामिन्द्रियोपशमः स्मृतिः।
देशकालात्मविज्ञानं सद्वृत्तस्यानुवर्तनम्॥
आगन्तूनामनुत्पत्तावेष मार्गो निर्दिशितः।
प्राज्ञः प्रागेव तत् कुर्याद्धितं विद्याद्यदात्मनः॥

प्रज्ञापराध (जानबूझकर की जानेवाली गलतियों)-को त्यागना, इन्द्रियोंका संयम रखना, ठीक-ठीक ध्यान रखना, देश, काल और अपने-आपको समझना तथा सदाचारसे चलना आदि—ये सब आगन्तुक रोगोंसे बचनेके मार्ग हैं। बुद्धिमान् मनुष्यको रोगोत्पत्तिके पूर्व ही ऐसे कार्य करने चाहिये, जिनसे कि रोगोंकी उत्पत्ति ही न हो और अपना स्वास्थ्य बना रहे।

बुद्धिविद्यावयःशीलधैर्यस्मृतिसमाधिभिः ।
वृद्धोपसेविनो वृद्धाः स्वभावज्ञा गतव्यथाः॥
सुमुखाः सर्वभूतानां प्रशान्ताः संशितव्रताः।
सेव्याः सन्मार्गवक्तारः पुण्यश्रवणदर्शनाः॥

जो पुरुष बुद्धि, विद्या, अवस्था, शील, धैर्य, स्मरणशक्ति और ठीक-ठीक ध्यान रखनेवाले, वृद्धोंकी सेवामें तत्पर रहनेवाले, लोगोंके स्वभावको शीघ्र समझनेवाले, मानसिक और शारीरिक कष्टोंसे मुक्त रहनेवाले, सुन्दर, सब जीवोंपर दयादृष्टि रखनेवाले, सत्परामर्श देनेवाले हों तथा जिनकी गाथा सुननेसे और जिनका दर्शन करनेसे पुण्य होता हो, ऐसे महापुरुषोंका साथ करना चाहिये।

उपधा हि परो हेतुर्दुःखदुःखाश्रयप्रदः।
त्यागः सर्वोपधानां च सर्वदुःखव्यपोहकः॥
कोषकारो यथा ह्यंशूनुपादत्ते वधप्रदान्।
उपादत्ते तथार्थेभ्यस्तृष्णामज्ञः सदाऽऽतुरः॥

उपधा (तृष्णा) ही समस्त रोगों या दुःखोंका कारण है। अतः सब प्रकारकी उपधाओं (तृष्णाओं)-का त्याग करना ही सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करना है। जिस प्रकारसे रेशमका कीड़ा अपनी मृत्युके कारणस्वरूप रेशमके जालका स्वयं निर्माण करता है और अन्तमें दुःखको प्राप्त करता है, उसी तरह मूर्ख लोग स्वयं तृष्णा करते हैं और दुःख भोगते हैं।

नरो हिताहारविहारसेवी
समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावा-
नाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥
मतिर्वचः कर्म सुखानुबन्धं
सत्त्वं विधेयं विशदा च बुद्धिः।
ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे
यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः॥

हितकारी आहार और विहारका सेवन करनेवाला, विचारपूर्वक काम करनेवाला, काम-क्रोधादि विषयोंमें आसक्त न रहनेवाला, सभी प्राणियोंपर समदृष्टि रखनेवाला, सत्य बोलनेमें तत्पर रहनेवाला, सहनशील और आप्तपुरुषोंकी सेवा करनेवाला मनुष्य अरोग (रोगरहित) रहता है। सुख देनेवाली मति, सुखकारक वचन और सुखकारक कर्म, अपने अधीन मन तथा शुद्ध पापरहित बुद्धि जिसके पास है और जो ज्ञान प्राप्त करने, तपस्या करने और योगसिद्ध करनेमें तत्पर रहता है, उसे शारीरिक और मानसिक कोई भी रोग नहीं होते (वह सदा स्वस्थ और दीर्घायु बना रहता है)।

स्वस्थ रहनेकी रामबाण दवा

चौरासी लाख योनियोंसे भटकता हुआ प्राणी भगवत्कृपासे मनुष्ययोनि प्राप्त करता है। मानव-जीवनका एकमात्र उद्देश्य है—अपना कल्याण करना अर्थात् जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होना। मनुष्य-योनिके अतिरिक्त सभी योनियोंमें जीव अपने कर्मानुसार केवल भोग भोगता है। मात्र मनुष्यको ही विवेक और कर्म करनेकी सामर्थ्य ईश्वरकृपासे प्राप्त है। पर यह सामर्थ्य भी पूरी तरह सफल तभी होता है, जब शरीर और मन—दोनों पूर्ण स्वस्थ होते हैं। इसके लिये व्यक्तिको सावधान रहनेकी आवश्यकता है। शरीरकी प्रकृति तो स्वस्थ रहनेकी ही है, हम अपनी असावधानीके कारण अस्वस्थ हो जाते हैं। कभी-कभी प्रारब्धवशात् अपने पूर्वकृत पापोंके कारण भी व्यक्ति आकस्मिक रूपमें किसी-न-किसी रोगसे ग्रस्त हो जाता है।

अपने शास्त्रोंमें ऋषि-महर्षियोंद्वारा सदाचार और शौचाचारके अन्तर्गत मानवमात्रके लिये जीवनचर्या और दिनचर्या प्रस्तुत की गयी है, जिसका पालन कर्तव्यबुद्धिसे करनेपर लोक-परलोक दोनों सुधर सकते हैं अर्थात् लोकमें तो व्यक्ति स्वस्थ रहकर सुखी हो सकता है और परलोकमें पुण्यकी प्राप्ति कर अपने कल्याणपथका पथिक बन सकता है। वास्तवमें अपने शास्त्रोंमें कर्तव्याकर्तव्यके जो विधान हैं, वे भगवदाज्ञा होनेके कारण विश्वासपूर्वक आस्थाके साथ पालन करनेपर लोकमें स्वास्थ्य आदिके लिये परम उपयोगी होते हुए मनुष्यको भगवत्प्राप्तिकी सामर्थ्य प्रदान करते हैं।

'आचारः परमो धर्मः'—आचार-विचार परम धर्म है। सदाचारमें लगे मनुष्यका शरीर स्वस्थ, मन शान्त और बुद्धि निर्मल होती है एवं उसका अन्तःकरण शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है। शुद्ध अन्तःकरण ही वस्तुतः भगवान्के चिन्तन और ध्यानके योग्य होता है, उसीमें भगवान्का स्थिर आसन लगता है। इसलिये मनुष्यको शास्त्रोक्त आचार जानना चाहिये और उसका पालन करना चाहिये। मनु महाराज कहते हैं—

'श्रुति और स्मृतिमें कथित अपने नित्यकर्मोंके अङ्गभूत धर्मका मूल—सदाचारका सावधानीपूर्वक सेवन करना चाहिये। आचार-धर्मका पालन करनेसे मनुष्य आयु, इच्छानुरूप संतति और अक्षय धनको प्राप्त करता है। इतना ही नहीं, सदाचारसे अल्पमृत्यु आदिका भी नाश होता है। जो पुरुष दुराचारी है, उसकी लोकमें निन्दा होती है, वह सदा दुःख भोगता रहता है तथा रोगी और अल्पायु (कम उम्रवाला) होता है। विद्या आदि सब गुणोंसे हीन पुरुष भी यदि सदाचारी और श्रद्धावान् तथा ईर्ष्यारहित होता है तो वह भी सौ वर्षोंतक जीता है।[१]'

यहाँ श्रुति-स्मृति, पुराण, इतिहास आदि ग्रन्थों और वैद्यक-सिद्धान्तोंके आधारपर तथा वर्तमान आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर शास्त्रोक्त जीवनचर्या तथा दिनचर्या प्रस्तुत है। जिसका पालन करनेपर स्वास्थ्य आदि भौतिक लाभके साथ-साथ आध्यात्मिक और पारमार्थिक लाभकी प्राप्ति भी हो सकेगी।

प्रातः-जागरण—पूर्ण स्वस्थ रहनेके लिये कल्याणकामी व्यक्तिको प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें अर्थात् सूर्योदयसे (तीन घंटेसे डेढ़ घंटेतक) पूर्व शय्यात्याग करना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्तकी बड़ी महिमा है। इस समय उठनेवालेका स्वास्थ्य, धन, विद्या, बल और तेज बढ़ता है। जो सूर्य उगनेके समय सोता है, उसकी उम्र और शक्ति

---

१. श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ्‌निबद्धं स्वेषु कर्मसु। धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः। आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः। दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः। श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति॥
(मनु० ४। १५५—१५८)

घटती है तथा वह नाना प्रकारकी बीमारियोंका शिकार होता है।

प्रातःकाल उठते ही शयनशय्यापर सर्वप्रथम करतल (दोनों हाथकी हथेलियों)-के दर्शनका विधान है। करतलका दर्शन करते हुए निम्नलिखित श्लोक पढ़ना चाहिये—

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम्॥

इस श्लोकमें धनकी अधिष्ठात्री लक्ष्मी तथा विद्याकी अधिष्ठात्री सरस्वती और कर्मक्षेत्रके अधिष्ठाता ब्रह्माकी स्तुति की गयी है। इस मन्त्रका आशय है कि 'मेरे कर (हाथ)-के अग्रभागमें भगवती लक्ष्मीका निवास है, कर (हाथ)-के मध्यभागमें सरस्वती तथा कर (हाथ)-के मूलभागमें ब्रह्मा निवास करते हैं।' प्रभातकालमें मैं अपनी हथेलियोंमें इनका दर्शन करता हूँ। इससे धन तथा विद्याकी प्राप्तिके साथ-साथ कर्तव्यकर्म करनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है। भगवान् वेदव्यासने करोपलब्धिको मानवका परम लाभ माना है। इस विधानका आशय यह भी है कि प्रातःकाल उठते ही सर्वप्रथम दृष्टि और कहीं न जाकर अपने करतलमें ही देव-दर्शन करे, जिससे वृत्तियाँ भगवच्चिन्तनकी ओर प्रवृत्त हों। यथासाध्य उस समय भगवान्‌का स्मरण और ध्यान भी करना चाहिये तथा भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये कि दिनभर मेरेमें सुबुद्धि बनी रहे। शरीर तथा मनसे शुद्ध सात्त्विक कार्य हों, भगवान्‌का चिन्तन कभी न छूटे। इसके लिये भगवान्‌से बल माँगे और आत्माद्वारा यह निश्चय करे कि आज दिनभर मैं कोई भी बुरा कार्य नहीं करूँगा। भगवान्‌को याद रखते हुए भले कार्योंको ही करूँगा।

शय्यासे भूमिपर पाँव रखनेके पूर्व निम्नलिखित श्लोकके द्वारा पृथ्वीमाताकी प्रार्थना करनी चाहिये—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

इस श्लोकमें धरा (धरती माता)-को भगवान् विष्णुकी पत्नीके रूपमें सम्बोधित किया गया है तथा पादस्पर्शके लिये उनसे क्षमाप्रार्थना की गयी है।

उषःपान—प्रातःकाल सूर्योदयके पूर्व मल-मूत्रके त्याग करनेसे पहले जल पीनेकी भी विधि है। रात्रिमें ताम्रपात्रमें ढककर रखा हुआ जल, प्रातःकाल कम-से-कम आधा लीटर तथा सम्भव हो तो सवा लीटरतक पीना चाहिये, इसे 'उषःपान' कहा जाता है। इससे कफ, वायु एवं पित्त—त्रिदोषका नाश होता है तथा व्यक्ति बलशाली एवं दीर्घायु हो जाता है। दस्त साफ होता है, पेटके विकार दूर होते हैं। बवासीर, प्रमेह, मस्तकवेदना, शोथ और पागलपन आदि रोग मिट जाते हैं, बल, बुद्धि और ओज बढ़ता है।

मल-मूत्र-त्याग—इसके बाद मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। मल-मूत्रका त्याग करते समय सिरको कपड़ेसे ढक लेना चाहिये तथा ऊपर-नीचेके दाँतोंको जोरसे सटाकर रखना चाहिये। इससे दाँत बहुत मजबूत होते हैं और बहुत दिनोंतक चलते हैं। दाँतोंकी कोई बीमारी नहीं होने पाती। मल-मूत्रका त्याग करते समय मौन रहना चाहिये। चोटी (शिखा) खुली रखनी चाहिये एवं ज्यादा जोर नहीं लगाना चाहिये। यदि क़ब्ज़ अधिक हो तो क़ब्ज़ दूर करनेके उपचार, आहार आदिके द्वारा अथवा सामान्य ओषधिके द्वारा कर लेना चाहिये। सामान्यतः पेशाब करके पानीसे मूत्रेन्द्रियको जरूर धोना चाहिये। मल-त्यागके बाद मिट्टीसे गुदा-लिङ्ग आदि जरूर धो ले, इससे बवासीरकी बीमारी नहीं होती। लिङ्गको एक बार, गुदाको कम-से-कम तीन बार मिट्टी लगाकर धो लेना चाहिये। बायें हाथको दस बार और दोनों हाथोंको मिलाकर सात बार मिट्टी लगाकर अच्छी तरह धोये तथा पैर भी धोने चाहिये। शौचके बाद बारह कुल्ले तथा लघुशंकाके बाद चार कुल्ले करनेका विधान है। यह क्रिया शौचाचारके अन्तर्गत आती है।

मनुष्यको किन वेगोंको रोकना चाहिये तथा किन वेगोंको नहीं रोकना चाहिये—इस सम्बन्धमें आयुर्वेदमें कहा गया है कि लोभ, शोक, भय, क्रोध, अहंकार, निर्लज्जता, अतिराग, दूसरेका धन लेनेकी इच्छा आदि मानसवेगोंको रोकना चाहिये, किंतु मल-मूत्रादिके वेगको

रोकना स्वास्थ्यके लिये हानिकर है।[1]

दन्तधावन—शौचनिवृत्तिके पश्चात् व्यक्तिको दातौन तथा मंजनसे दाँतोंको साफ करना चाहिये। आजकल दाँतोंको साफ करनेके लिये ब्रशका प्रयोग लोग अधिक करते हैं। परंतु नीम तथा बबूल आदिकी दातौन दाँतोंकी सुरक्षाके लिये अधिक लाभप्रद है। रविवार, एकादशी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, व्रत और श्राद्धादि दिनोंमें दातौन करनेका निषेध है। अतः इन दिनोंमें केवल शुद्ध मंजनसे ही दाँत साफ करना श्रेयस्कर है। दाँत साफ करनेके बाद जीभीसे जीभ भी साफ करनी चाहिये।

व्यायाम तथा वायुसेवन—शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये, कार्य करनेकी सामर्थ्य बनाये रखनेके लिये, पाचनक्रिया तथा जठराग्निको ठीक रखनेके लिये शरीरको सुगठित, सुदृढ़ और सुडौल बनानेकी दृष्टिसे, अपने आयु, बल, देश और कालके अनुरूप नियमितरूपसे योगासन अथवा व्यायाम अवश्य करना चाहिये। ऐसा करनेसे व्यक्ति सामान्यतः बीमार नहीं होते और उन्हें औषधिसेवनकी आवश्यकता ही नहीं पड़ती।[2]

सुबह और शामको नित्य खुली, ताजी और शुद्ध हवामें अपनी शक्तिके अनुसार थकान न मालूम होनेतक साधारण चालसे घूमना चाहिये। नियमपूर्वक कम-से-कम दो-तीन किलोमीटरतक घूमना चाहिये। प्रौढ़ावस्थामें टहलना भी एक प्रकारका व्यायाम है। नियमपूर्वक घूमनेके व्यायामसे और शुद्ध वायुसेवनसे शरीरको बहुत लाभ पहुँचता है।

अभ्यङ्ग (तेल-मालिश)—जरा, श्रम तथा वातके विनाशार्थ और शरीरकी दृढ़ता, पुष्टि, दृष्टिवृद्धिके लिये नित्य तेलकी मालिश करनी चाहिये। सिर, कान तथा पाँवके तलवोंमें तेलकी मालिशका विशेष लाभ है।[3] कानमें तेल डालनेसे कानके रोग, ऊँचा सुनना, बहरापन आदि विकार नहीं होते। सिरकी मालिशसे कानोंको और कानोंकी मालिशसे पाँवोंको लाभ पहुँचता है तथा पाँवोंकी मालिशसे नेत्ररोगोंका तथा नेत्रोंके अभ्यङ्गसे दन्तरोगोंका शमन होता है।[4]

रोज सारे बदनमें तेल लगानेपर बड़ा लाभ होता है। गलेके नीचेतक सरसोंका तथा मस्तकपर तिल आदिका तेल लगावे। सिरका ठंडा रहना और पैरका गरम रहना अच्छा है। एकादशी, पूर्णिमा, अमावास्या, सूर्यकी संक्रान्ति, व्रत तथा श्राद्धादिके दिन तेल न लगावे।

क्षौर-क्रिया—एकादशी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, सूर्यसंक्रान्ति, शनिवार, मंगलवार, बृहस्पतिवार, व्रत तथा श्राद्धादि दिनोंको छोड़कर किसी भी दिन क्षौर, दाढ़ी, नखच्छेदन आदि कराया जा सकता है। सामान्यतः सोमवार, बुधवार और शुक्रवार क्षौरकर्मके लिये विशेषरूपसे प्रशस्त हैं। परंतु एक संतानवाले व्यक्तिको सोमवारको क्षौर नहीं कराना चाहिये।

स्नान—व्यक्तिको प्रतिदिन मन्त्रपूत स्वच्छ जलसे स्नान करना चाहिये। तभी वह मन्त्रजप, संध्यावन्दन, स्तोत्र आदि पाठ तथा भगवद्दर्शन, चरणामृत ग्रहण करनेका

---

१. लोभशोकभयक्रोधमानवेगान् विधारयेत् । नैर्लज्ज्येर्ष्यातिरागाणामभिध्यायाश्च बुद्धिमान्॥
न वेगान् धारयेद्धीमाञ्जातान् मूत्रपुरीषयोः । न रेतसो न वातस्य न छर्द्याः क्षवथोर्न च॥
नोद्गारस्य न जृम्भाया न वेगान् क्षुत्पिपासयोः । न वाष्पस्य न निद्राया निःश्वासस्य श्रमेण च॥
(चरक० सू० ७। २७, ३-४)

२.(क) लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः। विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते॥ (अ०हृ०सू०२। १०)
(ख) वयोबलशरीराणि देशकालाशनानि च॥ समीक्ष्य कुर्याद् व्यायाममन्यथा रोगमाप्नुयात्। (सु०चि० २४। ४८-४९)

३. अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं स जराश्रमवातहा। दृष्टिप्रसादपुष्ट्यायुःस्वप्नसुत्वक्त्वदार्ढ्यकृत्॥
शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत्। (अ०हृ०सू० २। ८-९)

४. न कर्णरोगा वातोत्था न मन्याहनुसंग्रहः। नोच्चैः श्रुतिर्न बाधिर्यं स्यान्नित्यं कर्णतर्पणात्॥ (च०सू० ५। ८४)
मूर्ध्नोऽभ्यंगात् कर्णयोः शीतमायुः कर्णाभ्यंगात् पादयोरेवमेव।
पादाभ्यंगान्नेत्ररोगान् हरेच्च नेत्राभ्यंगाद् दन्तरोगाश्च नश्येत्॥

अधिकारी बनता है।[१] गङ्गा आदि पवित्र नदियोंमें, बहते हुए नद अथवा निर्मल तालाबमें स्नान करना उत्तम पक्ष है।

शरीरको अँगोछे और हाथसे मल-मलकर खूब नहाना चाहिये। नहाते समय ऐसा निश्चय करे कि मेरे शरीरके मैलके साथ ही मनका मैल भी धुल रहा है और इस समय भगवान्‌का नामोच्चारण अवश्य करते रहना चाहिये। स्नान करते समय पहले मस्तकपर जल डालना चाहिये। ज्वर, अतिसार आदि रोगोंमें, पसीनेमें, दौड़कर आनेपर तथा भोजनके तुरंत बाद नहीं नहाना चाहिये। प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व स्नान करनेसे पाप नष्ट हो जाते हैं। स्नानसे जठराग्नि बढ़ती है। आयु, बल और पुष्टिकी वृद्धि होती है। खुजली, मल, पसीना तथा प्यास, दाह, दुःस्वप्न आदि नष्ट हो जाते हैं। रूप, कान्ति, तेज आदिकी वृद्धि होती है।[२]

स्नान करके अङ्ग पोंछनेके बाद धोया हुआ शुद्ध सफेद कपड़ा पहने। पूजाके समय ऊनी तथा जिसमें हिंसा न होती हो, ऐसा वस्त्र पहनना उत्तम है। दूसरेका पहना हुआ कपड़ा नहीं पहनना चाहिये। लुंगी (बिना लाँगका वस्त्र) नहीं पहनना चाहिये। '**मुक्तकक्षो महाधमः**', बल्कि धोती धारणकर संध्या-पूजन आदि कर्म करने चाहिये।

नहानेके बाद सिरके केशोंको कंघीसे ठीक कर ले, जिसमें कोई जीव-जन्तु या कूड़ेका कण सिरपर न रहने पाये। सिरपर कंघी करनेसे बुद्धिका विकास होता है।

नित्य अभिवादन—घरमें माता-पिता, गुरु, बड़े भाई आदि जो भी अपनेसे बड़े हों, उनको नित्य नियमपूर्वक प्रणाम करे। नित्य बड़ोंको प्रणाम करनेसे आयु, विद्या, यश और बलकी वृद्धि होती है—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥
(मनुस्मृति २। १२१)

शिखा (चोटी) और सूत्र (जनेऊ)-के बिना जो देव-कार्य किये जाते हैं, वे सदा निष्फल होते हैं—'**विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्**'।

तिलकधारण—संध्या-वन्दन तथा पूजन आदिके पूर्व मस्तकपर भस्म, चन्दन या कुंकुमसे अपने-अपने सम्प्रदायके अनुसार त्रिपुण्ड्र अथवा ऊर्ध्वपुण्ड्र आदि तिलक करना चाहिये। तिलक धारण करनेकी बड़ी महिमा है। तिलकके न करनेपर स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय और पितृतर्पण—ये सभी कर्म निष्फल होते हैं—'**भस्मी भवति तत्सर्वम्**'।

संध्या, तर्पण एवं इष्टदेवका पूजन—द्विजको यथासाध्य त्रिकाल (प्रातः, मध्याह्न तथा सायं)-संध्या करनी चाहिये। कम-से-कम दो कालकी संध्या तो अवश्य करनी ही चाहिये। जो द्विज प्रतिदिन प्रमादवश संध्या नहीं करता, वह महान् पापी माना जाता है और उसे भयानक नरकयातना भोगनी पड़ती है। संध्याके बाद कम-से-कम एक माला 'गायत्रीमन्त्र'का जप करना चाहिये। देवता, ऋषि और पितरोंकी तृप्तिके लिये प्रतिदिन तर्पण करे। नित्य अपने इष्टदेवकी (मानस एवं बाह्य) पूजा तथा स्तोत्रपाठ आदि करने चाहिये। जिनको संध्या, गायत्री करनेका अधिकार नहीं है, ऐसे लोग नित्य नियमपूर्वक अपने-अपने इष्टदेवकी पूजा-प्रार्थना अवश्य करें। पूजाकी पूर्णता चित्तकी एकाग्रतापर निर्भर होती है। अतः मनको सब तरफसे हटाकर एकाग्रचित्त हो प्रभुमें लगाना चाहिये।

पञ्चमहायज्ञ[३]—शास्त्रोंमें प्रत्येक व्यक्तिके लिये प्रतिदिन पञ्चमहायज्ञ करनेका विधान है। इसके अन्तर्गत स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ), तर्पण (पितृयज्ञ), हवन (देवयज्ञ), पञ्चबलि (भौमयज्ञ) तथा अतिथिपूजन (नृयज्ञ)—ये पञ्चयज्ञ आते हैं। बलिवैश्वदेव तथा पञ्चबलिमें ही ये समाहित हैं। अतः इसे प्रतिदिन करना चाहिये।[४]

---

१. स्नानं प्रतिदिनं कुर्यान्मन्त्रपूतेनवारिणा । प्रातःस्नानेन योग्यः स्यान्मन्त्रस्तोत्रजपादिषु॥

२. प्रातःस्नानमलं च पापहरणं दुःस्वप्नविध्वंसनं
शौचस्यायतनं मलापहरणं संवर्धनं तेजसाम्।
रूपद्योतकरं शरीरसुखदं कामाग्निसन्दीपनं
स्त्रीणां मन्मथगाहनं श्रमहरं स्नानं दशैते गुणाः॥

३. संध्या-वन्दन-तर्पण एवं बलिवैश्वदेव आदिकी सम्पूर्ण विधि गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित 'नित्यकर्म-पूजाप्रकाश' में देखी जा सकती है।

४. अध्यापनं बह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् । होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥
यज्ञश्रेष्ठं वैश्वदेवं प्रत्यहं तु समाचरेत्॥

चरणामृत-ग्रहण—पूजन आदिसे निवृत्त होकर तुलसीदलसे युक्त प्रभुका चरणामृत ग्रहण करना चाहिये। तुलसीदल-चरणामृतकी बड़ी महिमा है। भगवान्‌का चरणामृत भक्तोंके सभी प्रकारके आर्तों (दु:ख और रोग)-का नाश करता है और सम्पूर्ण पापोंका शमन करता है।[1] निम्न श्लोक पढ़ते हुए चरणोदक पान करनेका विधान है—

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।
विष्णुपादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥

पूजन, भोजन तथा आचमन आदि कृत्योंमें तुलसीदलका विशेष महत्त्व माना गया है।

भोजन—भोजन तैयार हो जानेपर सर्वप्रथम बलिवैश्वदेव तथा भगवान्‌का भोग लगाना चाहिये। भगवान्‌के भोगमें तुलसीदल छोड़नेका विधान है। तुलसीदलका विशेष महत्त्व बताया गया है। इसका वैज्ञानिक रहस्य यह है कि भोजनमें तुलसीदल डालनेसे न्यूनातिन्यून परिमाणमें विद्यमान अन्नकी विषाक्तता तुलसीके प्रभावसे शमित हो जाती है—'**तुलसीदलसम्पर्कादन्नं भवति निर्विषम्**'। अत: जब भी भोजन करे तो पहले भगवान्‌को निवेदन करके प्रसादरूपसे ही ग्रहण करे। पैरोंको धोकर, भलीभाँति कुल्ला करके, हाथ-मुँह धोकर भोजन करना चाहिये। भोजन करनेसे पूर्व घरपर आये अतिथिका सत्कार करे। फिर अपने घरमें आयी विवाहिता कन्या, गर्भिणी स्त्री, दु:खिया, वृद्ध और बालकोंको भोजन कराकर अन्तमें स्वयं भोजन करना चाहिये। इन सबको भोजन कराये बिना जो स्वयं भोजन करता है, वह पापमय भोजन करता है।

जिस प्रकार संध्यावन्दन तथा अग्निहोत्रादि प्रात:-सायं दो बार करनेकी विधि है, उसी प्रकार भोजन भी गृहस्थको प्रात:-सायं दो बार ही करना चाहिये। भोजनसे पूर्व भोजनपात्रका परिषेचन (चारों ओर जलका मण्डल) करना चाहिये, जिससे कीट आदि भोजनकी थालीसे दूर रहें।[2] भोजन प्रारम्भ करनेके पूर्व लवणरहित तीन ग्रास '**ॐ भूपतये स्वाहा, ॐ भुवनपतये स्वाहा, ॐ भूतानां पतये स्वाहा**'—इन तीन मन्त्रोंसे थालीसे बाहर दायीं ओर निकालकर रखना चाहिये तथा इन्हीं मन्त्रोंसे जल भी छोड़ना चाहिये। इन तीन ग्रासोंमें पृथ्वी, भुवनमण्डल तथा सम्पूर्ण प्राणियोंको तृप्त करनेकी भावना है। तदनन्तर भोजन प्रारम्भ करनेके पूर्व लवणरहित पाँच छोटे-छोटे ग्रासोंको— '**ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा**'—इन पाँच मन्त्रोंसे मुँहमें लेना चाहिये। इन पाँच ग्रासोंके द्वारा आत्मस्वरूप ब्रह्मके प्रीत्यर्थ जठराग्निमें आहुति प्रदान करनेका भाव है। भोजनके पूर्व '**ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा**' इस मन्त्रसे आचमन करे। इसका तात्पर्य है कि मैं अपने भोजनको अमृतरूपी बिछावन (आधार) प्रदान करता हूँ। इसके बाद मौन होकर प्रसन्नमनसे खूब चबा-चबाकर भोजन करे। आयुर्वेदके अनुसार एक ग्रासको लगभग बत्तीस बार चबाना चाहिये। जो अन्नको चबाकर नहीं खाता, उसके दाँत कमजोर हो जाते हैं तथा दाँतोंके बदले उसकी अँतड़ियोंको काम करना पड़ता है, जिससे अग्नि मंद हो जाती है। कहा गया है कि अन्नके दो भाग, जल और वायुके एक-एक भागद्वारा उदरकी पूर्ति करनी चाहिये। भोजन करते समय जल न पीना स्वास्थ्यके लिये लाभदायक है। आवश्यकतानुसार जल पीना हो तो भोजनके मध्यमें थोड़ा-थोड़ा पीना चाहिये। भोजनके अन्तमें जल पीना उचित नहीं है। भोजनके कम-से-कम एक घंटे बाद इच्छानुसार जल पीना चाहिये। भोजनके अन्तमें '**ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहा**' मन्त्र बोलकर आचमन करे। इसका तात्पर्य है कि मैं अपने भोजनप्रसादको अमृतसे आच्छादित करता हूँ।

अप्रसन्न मनसे, बिना रुचिके, भूखसे अधिक और अधिक मसालोंवाला चटपटा भोजन शरीरके लिये हानिकारक होता है। भोजन न तो इतना कम होना चाहिये, जिससे शरीरकी शक्ति घट जाय और न इतना अधिक होना चाहिये कि जिसे पेट पचा ही न सके।

बहुत प्यास लगी हो, पेटमें दर्द हो, शौचकी हाजत

---

१. कृष्ण कृष्ण महाबाहो भक्तानामार्तिनाशनम्। सर्वपापप्रशमनं पादोदकं प्रयच्छ मे॥

२. सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिचोदितम्। नान्तराभोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधि:॥
भोजनादौ सदा विप्रैर्विधेयं परिषेचनम्। तेन कीटादय: सर्वे दूरं यान्ति न संशय:॥

हो अथवा बीमार हो—ऐसे समय भोजन न करे, अपवित्र स्थानमें, संध्याकालमें, गंदी जगह, फूटी थाली आदिमें भोजन न करे। भोजन बनाने और परोसनेवाला मनुष्य दुराचारी, व्यभिचारी, चुगलखोर, छूतका रोगी, कोढ़ और खाज-खुजलीका रोगी, क्रोधी, वैरी और शोकसे ग्रस्त नहीं होना चाहिये। जिस आसनपर भोजन करने बैठे, उसे पहले झाड़ लेना चाहिये और सुखासनसे बैठकर भोजन करना चाहिये। भोजन करते समय गुस्सा न हो, कटु वचन न कहे। भोजनमें दोष न बतलावे, रोवे नहीं। शोक न करे, जोरसे न बोले। किसी दूसरेको न छुवे, वाणीका संयम करके अनिषिद्ध अन्नका भोजन करे। अन्नकी निन्दा न करे। बहुत गरम तथा बहुत ठंडी चीज दाँतोंसे चबाकर न खाये। अधिक तीखा, अधिक कड़वा, अधिक नमकीन, अधिक गरम, अधिक रूखा, अधिक तेज भोजन राजसी है और अधकच्चा, रसहीन, दुर्गन्धयुक्त, बासी और जूठा अन्न तामसी है। राजसी, तामसी अन्नका, मांस-मद्यका तथा शास्त्रनिषिद्ध अन्नका त्याग करना चाहिये। भोजनके आदिमें अदरकको कतरकर उसके साथ थोड़ा नमक मिलाकर खाना अच्छा है। जीभके स्वादवश अधिक खा लेना उचित नहीं है।

एक थालीमें दो आदमी न खायँ। इसी प्रकार एक कटोरे या गिलासमें दूध या पानी न पियें। सोये हुए न खायें। दूसरेके हाथसे न खायँ। दूसरेके आसन अथवा गोदमें लेकर अन्न न खायें।

ताँबेके बरतनमें दूध न रखें। जिस दूधमें नमक गिर गया हो उसे कभी न पियें। पीतलके बरतनमें खट्टी चीज रखकर न खायँ। एकादशी, पूर्णिमा, अमावास्या आदि दिनोंको व्रत रखना चाहिये। व्रतके दिन निराहार रहे या परिमित आहार करे, केवल जल पीना अच्छा है।

रजस्वला स्त्रीका स्पर्श किया हुआ, पक्षीका खाया हुआ, कुत्तेका छुआ हुआ, गायका सूँघा हुआ, कीड़ा, लार, थूक आदि पड़ा हुआ, अपमानसे मिला हुआ तथा वेश्या, कलाल, कृतघ्नी, कसाई और राजाका अन्न नहीं खाना चाहिये।

भोजनमें चौकेकी व्यवस्था—धूल और दुर्गन्धरहित, प्रकाशयुक्त, शुद्ध हवादार स्थानमें भोजन बनाना चाहिये। चारों ओरसे घिरी हुई जगहमें बैठकर भोजन करना चाहिये। प्राचीन कालसे ही अपने यहाँ चौकेकी व्यवस्थापर बहुत ध्यान दिया जाता रहा है। चौकेके भीतर जो वैज्ञानिकता है, उसे आजकल लोग भूलते जा रहे हैं। चौका चार प्रकारकी शुद्धियोंका समुच्चय है और भोजनमें इन चारों प्रकारकी शुद्धियोंकी आवश्यकता है। इससे किया गया भोजन हमारे शरीरको स्वस्थ तथा मनको पवित्र बनाता है। ये चार शुद्धियाँ हैं—(१) क्षेत्रशुद्धि, (२) द्रव्यशुद्धि, (३) कालशुद्धि और (४) भावशुद्धि।

(१) क्षेत्रशुद्धि—भोजन करते समय हमें क्षेत्र या स्थानकी शुद्धिपर विशेष ध्यान रखनेकी आवश्यकता है; क्योंकि प्रत्येक स्थानका वायुमण्डल, वातावरण, पर्यावरण हमारे मन तथा तनको जब प्रभावित करता है तो हमारे भोजनको भी प्रभावित करेगा ही। यदि किसी व्यक्तिको मरघट या श्मशानभूमि अर्थात् किसी अपवित्र स्थानमें भोजन कराया जाय और उसी व्यक्तिको उपवन आदि किसी पवित्र स्थानपर भोजन कराया जाय तो इन दोनों स्थानोंके भोजन, पाचनमें पर्याप्त अन्तरका अनुभव होगा। इसी प्रकार बाजारोंमें, गलियों आदिके आस-पास, कूड़ा-कचरा और उनपर भिनभिनाती मक्खियाँ, मच्छर तथा खाद्यपदार्थोंपर जहाँ धूल जमी हो, ऐसे दूषित स्थानोंपर जब व्यक्ति चाट, पकौड़ी, मिष्टान्न आदि खाता-पीता है तो कदाचित् वह भूल जाता है कि ऐसे स्थानोंका पर्यावरण पर्याप्त दूषित है। ऐसे वातावरणमें बैक्टीरिया, कीटाणु, भोजनके साथ शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं, जो शरीरमें रुग्णता पैदा करते हैं। चौकेकी व्यवस्थाके अन्तर्गत यह क्षेत्रशुद्धि स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त वैज्ञानिक और लाभदायक है। प्राचीन परम्पराके अनुसार चौकेमें अनधिकृत व्यक्तिका प्रवेश निषिद्ध रहता था। केवल अधिकृत व्यक्ति ही भोजन छूनेके अधिकारी होते थे।

(२) द्रव्यशुद्धि—द्रव्य भी हमारे भोजनपर बड़ा असर डालता है। अनीति, अनाचार और बेईमानी आदि अधर्मके साधनोंके धनसे बनाया गया भोजन हमारे तन तथा मनको प्रभावित करता है। ऐसा भोजन हमारे परिणामोंको

सात्त्विक कभी भी नहीं बना सकता।

(३) कालशुद्धि—काल या समयका भी भोजनपर प्रभाव पड़ता है। जो लोग समयपर भोजन नहीं करते, वे अक्सर उदरसम्बन्धी व्याधियोंसे सदा पीडित रहते हैं। भूख लगनेपर भोजन करना भोजनका सर्वोत्तम समय है तथा नियमित समयसे भोजन करना स्वास्थ्यके लिये उत्तम है। गृहस्थके लिये सूर्य रहते दिनमें भोजन करना चाहिये तथा दूसरे समयका भोजन सूर्यास्तके बाद करनेकी विधि है। मानवको हितकर भोजन उचित मात्रामें उचित समयपर करना चाहिये—**'हिताशी स्यान्मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः'**। (चरक)

(४) भावशुद्धि—भोजनपर भावनाओंका भी गहरा प्रभाव पड़ता है, इसलिये प्रत्येक व्यक्तिको नीरोग रहनेके लिये भोजन शुद्धभावसे करना चाहिये। क्रोध, ईर्ष्या, उत्तेजना, चिन्ता, मानसिक तनाव, भय आदिकी स्थितिमें किया गया भोजन शरीरके अंदर दूषित रसायन पैदा करता है। जिसके फलस्वरूप शरीर विभिन्न रोगोंसे घिर जाता है। शुद्ध चित्तसे प्रसन्नतापूर्वक किया गया आहार शरीरको पुष्ट करता है, कुत्सित विचारों एवं भावोंके साथ किये गये भोजनसे व्यक्ति कभी भी स्वस्थ नहीं रह सकता। इसके साथ ही भोजन बनानेवाले व्यक्तिके भी भाव शुद्ध होने चाहिये। उसे भी ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदिसे ग्रस्त नहीं होना चाहिये।

इस प्रकार इन चारों शुद्धियोंके साथ यदि भोजन करेंगे तो निश्चितरूपसे हमारा मन भी निर्मल रहेगा और शरीर भी नीरोगी रहेगा।

भोजनसामग्रीकी शुद्धता—भोजनसामग्रीकी शुद्धता और पवित्रतापर विशेष ध्यान रखनेकी आवश्यकता है। भोजनके कच्चे सामान आटा, दाल, घी, मसाला आदि स्वच्छ और साफ बरतनोंमें ढककर रखे जायँ। बिना ढके बरतनोंमें चूहे घुस जाते हैं और वे वहाँ मल-मूत्रका त्याग कर देते हैं। चूहोंके मल-मूत्रमें भयानक विष होता है। खुले बरतनोंमें दूसरे जानवर भी घुसकर सामानको गंदा कर देते हैं। चौकेमें भोजन बनाकर जिन बरतनोंमें रखा हो, उन्हें ढककर रखना चाहिये। दूध, दही, मिठाई आदि पदार्थ ऐसे स्थानोंपर रखने चाहिये, जिनसे उनपर मक्खी-मच्छर न बैठ पायें। पंगतमें भोजन करने बैठे तो सबके साथ उठना चाहिये।

भोजनके बादके कृत्य—भोजन करनेके अनन्तर दाँतोंको खूब अच्छी तरह साफ करना चाहिये, ताकि उनमें अन्नका एक भी कण न रह जाय। अन्नकण दाँतोंमें रह जानेपर दाँत कमजोर हो जाते हैं तथा उससे पायरियाका रोग भी हो जाता है। दाँतोंके बीचमें यदि फाँक हो गयी हो तो उन्हें नीम आदिके तिनकेसे निकालकर अच्छी तरह धो लेना चाहिये। अपने शास्त्रोंमें भोजनके अनन्तर सोलह कुल्ले करनेका विधान है। कुल्ला करते समय मुँहमें पानी रखकर दस-पंद्रह बार आँखोंको जलके छींटे देकर धोना चाहिये। दिनमें जितनी बार मुँहमें पानी ले उतनी बार यदि यह क्रिया की जाय तो आँखोंमें बड़ा लाभ होता है। भोजनके उपरान्त लघुशंका भी तुरंत करनी चाहिये। यह स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त आवश्यक है, इससे मूत्रसम्बन्धी बीमारीका बचाव होता है।

भोजनके बाद दौड़ना, कसरत करना, तैरना, नहाना, घुड़सवारी करना, मैथुन करना और तुरंत ही बैठकर काम करने लगना स्वास्थ्यके लिये बहुत हानिकर है।

भोजनके बाद लगभग सौ कदम चलना चाहिये तथा चलनेके बाद लगभग १० मिनट दोनों घुटने पीछे मोड़कर वज्रासनमें बैठना चाहिये, तदनन्तर विश्रामकी मुद्रामें सीधे लेटकर ८ श्वास तथा दाहिनी करवटमें १६ श्वास और बायीं करवट लेटकर ३२ श्वास लेनेकी विधि है। इससे पाचनक्रिया ठीक रहती है तथा यह स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त लाभप्रद है।

शयन—रातमें भोजन करनेके तुरंत बाद सोना नहीं चाहिये। सोनेसे पूर्व सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय और भगवान्का स्मरण अवश्य करना चाहिये। सोनेके पूर्व लघुशंका आदिसे निवृत्त होकर हाथ-पैर धोकर उन्हें भलीभाँति पोंछकर स्वच्छ बिछावनपर पूर्व या दक्षिणकी ओर सिर करके सोना चाहिये। हवादार घर जिसमें भगवान्के चित्र टँगे हों, शयनके लिये उत्तम स्थान माना गया है। भगवान्का ध्यान करके बायीं करवट सोना स्वास्थ्यके लिये उत्तम है।

सामान्यत: ६-७ घंटे सोनेपर नींद पूरी हो जाती है। अभ्यास कर लेनेपर छ: घंटेसे कम भी सोया जा सकता है।

सोनेके समय मुँह ढककर या मोजा पहनकर नहीं सोना चाहिये। रातमें जल्दी सोना तथा प्रात:काल जल्दी उठना स्वास्थ्यके लिये विशेष लाभप्रद है। शयनका स्थान हवादार, स्वच्छ तथा साफ होना चाहिये।

स्वास्थ्यरक्षाके मूल आधार

स्वास्थ्यरक्षाकी दृष्टिसे शास्त्रोक्त दिनचर्या ऊपर प्रस्तुत की गयी है, वस्तुत: स्वास्थ्यरक्षाके पाँच मूल आधार हैं— (१) आहार, (२) श्रम, (३) विश्राम, (४) मानसिक सन्तुलन और (५) पञ्चमहाभूतोंका सेवन।

(१) आहार—आहारके सम्बन्धमें ऊपर विस्तारसे वर्णन किया जा चुका है। आयुर्वेदमें तीन प्रकारके भोजनोंका उल्लेख मिलता है—(१) शमन करनेवाला भोजन, (२) कुपित करनेवाला भोजन तथा (३) सन्तुलन रखनेवाला भोजन। वात-पित्त और कफ—इन तीनोंके असन्तुलनसे रोगका जन्म होता है। ये तीनों रोगके प्रमुख कारण हैं। जो भोज्यपदार्थ इन तीनोंका शमन करते हैं वे शमनकारी और जो इन तीनोंको कुपित करते हैं वे कुपितकारी तथा जो तीनोंको सन्तुलित किये रहते हैं उन्हें सन्तुलनकारी भोजन कहा जाता है। इन तीनोंका स्वभावसे गहरा सम्बन्ध रहता है। इसलिये स्वभाव और परिस्थितिके अनुसार भोजन करनेकी अनुमति दी जाती है। शारीरिक श्रम करनेवाले व्यक्तिके भोजनकी मात्रा और उसका प्रकार जो होगा वह मानसिक श्रमशील व्यक्तिके भोजनकी मात्रा और प्रकारसे भिन्न होगा।

आहारका सर्वोपरि सिद्धान्त तो यह है कि भूख लगनेपर आवश्यकतानुसार भूखसे कम मात्रामें भोजन करना चाहिये।

(२) श्रम—जीवनमें भोजनके साथ श्रमका कम महत्त्व नहीं है। आजकल श्रमके अभावमें आलस्य और प्रमादके कारण विभिन्न प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति हो रही है। ऐसे बहुत लोग हैं, जिन्हें जीवनमें कभी भी सच्ची भूखकी अनुभूति नहीं होती।

स्वस्थ रहनेके लिये दैनिक जीवनक्रममें कुछ घंटे ऐसे बिताने चाहिये जिससे सहज श्रम हो जाय। जो लोग स्वाभाविक रूपसे शारीरिक श्रम नहीं कर सकते, उन्हें व्यायाम, योगासन और भ्रमणके द्वारा श्रमशील होना चाहिये।

आजकल सिनेमा, होटल तथा क्लबोंमें जानेके लिये और टी.वी. आदि देखनेके लिये तो सरलतासे समय मिलता है, किंतु व्यायामके लिये समयके अभावकी शिकायत बनी रहती है। जो व्यक्ति श्रम या व्यायाम नियमित रूपसे करते हैं, उन्हें सामान्यत: दवा लेनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, वे स्वाभाविक रूपसे स्वस्थ रहते हैं।

(३) विश्राम—आहार तथा श्रमकी तरह विश्राम भी शरीरकी अनिवार्य आवश्यकता है। अत्यधिक परिश्रमसे थके व्यक्तिमें विश्रामके पश्चात् नवजीवनका संचार होता है। रातकी गहरी नींदसे शरीरमें पुन: नयी शक्ति तथा मनमें नयी उमंगका प्रादुर्भाव होता है। विश्रामके बाद श्रम और श्रमके बाद विश्राम—दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं।

प्राय: लोग शरीरको तो विश्राम देते हैं, किंतु मनको विश्राम नहीं देते। शरीर एक स्थानपर पड़ा रहता है, किंतु मन इधर-उधर भटकता रहता है। नींदके समय शरीर शान्त रहता है किंतु मन स्वप्नमें फँसा रहता है। ध्यान तथा भगवन्नाम-स्मरणसे मनको विश्राम मिल सकता है। इसी प्रकार जीवनमें संयम-नियमका पालन करनेसे मनको शान्त रखनेमें सहायता मिलती है। निद्रा भी विश्रामका सर्वोत्तम साधन है। शरीर तथा मन—दोनोंको विश्राम मिलनेपर ही पूर्ण विश्रामकी स्थिति बनती है।

(४) मानसिक संतुलन—मानसिक विश्रामके बाद शारीरिक क्रिया होती है। शरीर सदा मनका अनुगामी होता है। मनमें संकल्प उठता है इसके बाद ही शरीरद्वारा क्रिया आरम्भ होती है। शुद्ध चित्तमें पवित्र संकल्प या विचार आते हैं और अशुद्ध चित्तमें बुरे संकल्प या विचार आते हैं। मन शरीररूपी यन्त्रका संचालक है। मन या चित्तको शुद्ध रखनेपर वही सही मार्गपर चलेगा। इसलिये शरीर शुद्धिकी अपेक्षा चित्तशुद्धिका महत्त्व अधिक है। चित्तशुद्धिके

बाद शारीरिक स्वास्थ्यका सुधार स्वतः स्वाभाविक रूपसे हो जायगा।

मनके शान्त तथा प्रसन्न रहनेपर सामान्यतः शरीर स्वस्थ रहेगा ही। मनमें अशान्ति, क्रोध, ईर्ष्या, राग-द्वेष बढ़नेपर शरीरको रोगी बननेसे रोका नहीं जा सकता। आजकल अनेक लोगोंको क्रोध, चिन्ता, भय, दुःख तथा मानसिक तनाव आदिके कारण रक्तचाप, मधुमेह तथा हृदय एवं मस्तिष्कसम्बन्धी बीमारियाँ होती रहती हैं।

चित्तको शान्त और प्रसन्न रखनेकी दृष्टिसे मानसिक आहारके रूपमें हमें अपने पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंकी शुद्धि करनी होगी। कानसे अच्छी बातें सुनें, भजन सुनें, आँखके द्वारा भी महापुरुषोंकी जीवनी पढ़ें, सत्-दृश्यका अवलोकन करें, मनमें अच्छे विचारोंको स्थान दें तथा बुरे विचारोंको त्यागें। तभी चित्तशुद्धिकी प्रक्रिया प्रारम्भ होगी।

वास्तवमें मानसिक स्वस्थता ही आरोग्यताकी मुख्य पूँजी है। मन तथा शरीर दोनों शुद्ध एवं स्वस्थ रहनेपर ही पूर्णरूपसे आरोग्य सुरक्षित रह सकता है। मानसिक सन्तुलन बनाये रखनेके लिये भगवान्‌का भजन, प्रार्थना, अपने इष्टका ध्यान, सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय आदि मुख्य साधन हैं। स्वस्थ रहनेका अर्थ है अपने-आपमें स्थित होकर शान्त एवं प्रसन्न रहना। वास्तवमें शान्ति, प्रसन्नता अथवा जीवनका सम्पूर्ण रहस्य स्वमें स्थित आत्मतत्त्वमें विद्यमान रहना है जो उस परम तत्त्वका ही अंश है।

(५) पञ्चमहाभूतोंका सेवन—यह शरीर पञ्चमहाभूत अर्थात् आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वीसे निर्मित है। जीवनकी रक्षाके लिये इन पाँचों तत्त्वोंकी अनिवार्य आवश्यकता है।

[१] आकाश—जैसे हमारे बाहर सर्वत्र आकाश है वैसे ही हमारे शरीरके भीतर भी आकाश है। इसीलिये शरीरके भीतर असंख्य जीवनकोष हैं, जो गतिमान् हैं। रक्तसंचार या वायुसंचारके लिये शरीरमें खाली जगह अर्थात् आकाशकी आवश्यकता अनिवार्य है।

[२] वायु—प्रायः जहाँ आकाश है वहाँ वायु भी है। चूँकि आकाश सर्वत्र है अतः वायु भी सर्वत्र है। वायुके बिना एक पल भी व्यक्ति रह नहीं सकता। जल और अन्नके बिना तो कुछ घंटों या दिनोंतक प्राण बच सकते हैं, किंतु वायुके बिना प्राणी कुछ ही क्षणोंमें प्राण त्याग देता है। वायुका सेवन मनुष्य चौबीस घंटे सतत करता है, इसलिये आकाश तथा वायुका समान महत्त्व है।

जटिल रोगमें जब औषधि असर नहीं करती तब रोगीको वायु-परिवर्तन कराकर स्वास्थ्यलाभ कराया जाता है। जहाँ दवा काम नहीं करती, वहाँ हवा काम कर जाती है—ऐसी कहावत प्रचलित है। प्रकृतिने जीवनकी रक्षाके लिये प्रचुर मात्रामें हवा प्रदान कर रखी है।

[३] तेज—तेजका पर्यायवाची शब्द अग्नि या उष्मा है। जबतक प्राणी जीवित है तबतक शरीरमें गरमी रहती है। मृत्यु होनेपर शरीर ठंडा हो जाता है। जीवनके साथ तेज या उष्माका तथा सूर्यका घनिष्ठ सम्बन्ध है। सूर्यकी गरमीसे प्रकृति प्राणिमात्रके लिये फल-फूल, कन्द-मूल आदि पकाती है। सूर्यकिरणोंमें जन्तुनाशक गुण भी है। विभिन्न रोगोंमें सूर्यकिरण-चिकित्सा भी की जाती है। स्वास्थ्यलाभकी दृष्टिसे प्रातःकाल तथा सायंकालमें जब किरणोंमें गरमी कम होती है तब सूर्यका सेवन खुले बदन करना हितकर है। अतः तेज भी जीवनके लिये अत्यन्त उपयोगी है।

[४] जल—मानवको जलकी प्रचुर आवश्यकता है। मनुष्यके आहारमें ठोस पदार्थ कम और तरल पदार्थ अधिक मात्रामें रहता है। स्नान, भोजन, स्वच्छता और सफाई—सभी कार्य जलके बिना सम्भव नहीं हैं। पशुपालन, खेती-बारी आदि सभी कार्य जलपर ही निर्भर करते हैं। अतः जल भी जीवन है।

[५] पृथ्वी—पृथ्वीमाताकी गोदमें हम जन्मसे लेकर मृत्युतक निरन्तर रहते हैं। पृथ्वी अर्थात् मिट्टीमें आकाश, वायु, जल तथा सूर्यके सहयोगसे अन्न, फल, मूल, वनस्पति और ओषधियों आदिकी उत्पत्ति होती है और इसीसे सभी प्राणियोंका भरण-पोषण तथा रोगोंकी चिकित्सा होती है। मिट्टीके विभिन्न प्रयोगोंसे अनेक रोगोंकी चिकित्सा होती है। मिट्टीकी पट्टी प्रायः सभी

रोगोंमें उपयोगी है।

यह शरीर पञ्चमहाभूतोंसे बना है इसलिये प्रकृतिमें आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी-तत्त्वकी प्रचुरता है। जिससे प्राणी मुक्तभावसे उनका उपयोग करके नीरोग और स्वस्थ रह सके।

कल्याणकामी मनुष्यके लिये आयुर्वेदशास्त्रके अन्तमें कुछ उपदेश प्रदान किये गये हैं—

मानवको सभी प्रकारके पापोंसे बचना चाहिये। हितैषी मित्रोंको समझना तथा वञ्चक मित्रोंसे दूर रहना चाहिये। अभावग्रस्त, रुग्ण एवं दीनजनोंकी सहायता करनी चाहिये। क्षुद्रातिक्षुद्र (चींटी) आदि प्राणियोंको अपने समान समझना चाहिये। देवता, गौ, ब्राह्मण, वृद्ध, वैद्य, राजा तथा अतिथिका सतत सत्कार करना चाहिये। याचकोंको विमुख नहीं जाने देना चाहिये और कठोर वचन कहकर उनका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। अपकार करनेवालेका भी निरन्तर उपकार करनेकी ही भावना रखनी चाहिये। फलकी कामनासे निरपेक्ष रहकर सम्पत्ति और विपत्तिमें सदा समबुद्धि रखनी चाहिये।[1] उचित समयपर अति संक्षेपमें किसीसे भी हितकर बात कहनी चाहिये—**'काले हितं मितं ब्रूयात्'**। मनुष्यको करुणार्द्र, कोमल, सुशील तथा संशयरहित होना चाहिये तथा किसीपर अत्यन्त विश्वास भी नहीं करना चाहिये। किसीको अपना शत्रु मानना तथा किसीसे शत्रुता करना दोनों अच्छे नहीं हैं।[2] सदैव सबसे विनम्र व्यवहार करना चाहिये। व्यर्थमें हाथ-पैर हिलाना, लगातार सूर्यकी ओर देखना तथा सिरपर भार ढोना आदि कार्य न करे, अत्यन्त चमकीली वस्तुओंकी ओर देरतक नहीं देखना चाहिये, इससे अन्धत्व आनेका भय होता है। सूर्योदय तथा सूर्यास्तके समय सोना, भोजन तथा स्त्रीगमन आदि कार्य करना निषिद्ध है। हानिप्रद पेय नहीं पीना चाहिये। किसी भी कार्यमें अति नहीं करनी चाहिये—**'अति सर्वत्र वर्जयेत्'**।

बुद्धिमान् व्यक्तिको दूसरोंसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। समस्त प्राणियोंके प्रति दयाभाव तथा सत्पात्रको दान देनेकी भावना रखनी चाहिये। हिंसा, चोरी, पिशुनता, कठोरता, झूठ, दुर्भावना, ईर्ष्या, द्वेष आदि पापोंसे तथा शरीर, मन और प्राणीके द्वारा किसी भी प्रकारके पापोंसे बचना चाहिये। अन्यथा व्याधिरूपमें उनका दण्ड भोगना पड़ता है।

संक्षेपमें निष्कर्ष यह है कि जीवनके उत्कर्षके लिये तथा अपने कल्याणके लिये आचारधर्म अर्थात् सदाचारका पालन ही मनुष्यका मुख्य धर्म है—**'आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः'** (विष्णुसहस्रनाम श्लोक १३७)। जिसका अनुशीलनकर व्यक्ति अनेकानेक आपदाओं, रोगों, अभिचारोंसे सुरक्षित रहकर पूर्ण आरोग्य तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभीको प्राप्त करनेमें सक्षम हो जाता है।

जो व्यक्ति सदैव हितकर आहार-विहारका सेवन करता है, सोच-समझकर कार्य करता है, विषयोंमें आसक्त नहीं होता, जो दानशील, समत्व बुद्धिसे युक्त, सत्यपरायण, क्षमावान्, वृद्धजनोंकी सेवा करनेवाला है, वह नीरोग होता है—

नरो हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥

(चरक)

मन, बुद्धि और चित्त जिसका स्थिर है, ऐसा प्रसन्नात्मा व्यक्ति ही स्वस्थ है—

'प्रसन्नात्मेन्द्रियग्रामो स्थिरधीः स्वस्थमुच्यते'।

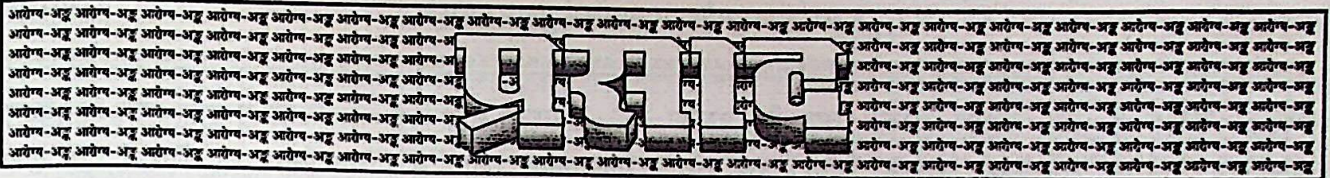
ये सभी बातें अथवा विशेषताएँ आचारधर्मके पालनसे ही सम्भव है और यही स्वस्थ रहनेकी रामबाण दवा है।

—राधेश्याम खेमका



१- आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकम्॥
अर्चयेद्देवगोविप्रवृद्धवैद्यनृपातिथीन्। विमुखान्नार्थिनः कुर्यान्नावमन्येत नाक्षिपेत्॥
उपकारप्रधानः स्यादपकारपरेऽप्यरौ। संपद्विपत्स्वेकमना हेतावीर्ष्येत्फले न तु॥ (अ०हृ०सू० २। २३—२५)

२- न कञ्चिदात्मनः शत्रुं नात्मानं कस्यचिद्रिपुम्॥ (अ०हृ०सू० २। २७)



आयुर्वेदके आविर्भावक पितामह ब्रह्मा

पितामहका वात्सल्य—ब्रह्माजी पिताओंके पिता हैं। इसलिये हम लोग इन्हें पितामह कहा करते हैं। कहा जाता है कि संततिपर पितासे भी बढ़कर पितामहका स्नेह होता है। यह कहावत अपने पितामह ब्रह्माजीपर ठीक-ठीक चरितार्थ होती है। ये अपना स्नेह हमपर अनवरत बरसाते ही रहते हैं। यदि कभी हम अपने पथसे विचलित होने लगते हैं तो इनके हृदयको ठेस पहुँचती है और ये किसी-न-किसी रूपमें हमें सावधान कर देते हैं।

एक बार पिप्पल नामके एक तपस्वीने दशारण्यमें कठिन तपस्या की। उन्होंने तीन हजार वर्ष केवल वायु पीकर व्यतीत किये। वह तपस्या बहुत ही कठोर थी। उससे देवता प्रसन्न हो गये। देवताओंने उनसे वर माँगनेको कहा। पिप्पलने पहला वर यह माँगा कि सम्पूर्ण संसार मेरे वशमें हो जाय। देवताओंने उन्हें वह वर दे दिया। इस वरकी उन्होंने परीक्षा की। परीक्षा सफल हुई। तपस्वी पिप्पल जिसे-जिसे चाहते, वह-वह उनके वशमें हो जाता। इस सिद्धिसे तपस्वी पिप्पलमें अहंकारका अङ्कुर फूटने लगा। वे सोचने लगे—'विश्वमें मेरे समान कोई नहीं है।' पितामह ब्रह्मा उनके तपोमय जीवनसे बहुत प्रसन्न थे। किंतु जब उन्होंने देखा कि उनकी यह संतति विनाशकी ओर बढ़ रही है तो उनके हृदयमें वात्सल्यभरी घबड़ाहट उत्पन्न हो गयी। वे झट सारसका रूप धारण कर तपस्वी पिप्पलके पास आ पहुँचे और बोले—'अबतक तो तुम ठीक रास्तेसे जा रहे थे, किंतु अब तुम अहंकारके वशमें क्यों हो रहे हो? इससे तुम्हारी बहुत बड़ी क्षति होगी। सच पूछा जाय तो तुम्हारा यह अहंकार भी झूठा है; क्योंकि तुमसे भी बड़ी सिद्धि पानेवाले लोग पृथ्वीपर विद्यमान हैं। तुम तो ब्रह्मके केवल अर्वाचीन रूपको ही जान पाये हो। उनके प्राचीन तत्त्वके सम्बन्धमें तुम कुछ नहीं जानते। अतः तुम्हारा अहंकार व्यर्थ है। इन दोनों तत्त्वोंका सच्चा ज्ञाता तो केवल पितृभक्त सुकर्मा है। अवस्थाकी दृष्टिसे वह निरा बालक है और तुम उससे हजारों वर्ष बड़े हो, किंतु पितृभक्तिसे सम्पूर्ण विश्व जितना उसके वशमें है, उतना तुम्हारे वशमें नहीं। तुम सुकर्मासे मिलो।'

ब्रह्माजीकी ऐसी चेतावनीसे पिप्पलका अगला जीवन प्रकाशपूर्ण हो गया।

इसी तरह जब हमपर कोई ऐसी विपत्ति आती है, जो हमारे कर्मके परिणामरूपमें प्रकट होती है और जिसे हमारे पितामह ब्रह्मा भी नहीं टाल पाते, तब हमारी सफलताके लिये वे भगवान्से प्रार्थना करते हैं। ऐसी घटनाओंसे इतिहास भरा हुआ है। ये सब उदाहरण पितामह ब्रह्माके हमारे प्रति वात्सल्यके नमूने हैं।

यदि हम पितामहकी जीवनीके पिछले पन्ने पलटते हैं तो देखते हैं कि हमारे स्नेहमें आकर हमारे लिये उन्होंने कठोर-से-कठोर तप किये हैं—बड़े-बड़े कष्ट झेले हैं। पहले पृष्ठपर हम देखते हैं कि ये कमल (ब्रह्माण्ड)-की कर्णिकापर बैठे हैं और चिन्तामें निमग्न हैं। वह चिन्ता, जो इन्हें सता रही थी, अपने लिये नहीं थी, अपितु हम लोगोंके लिये ही थी। वे हमें उत्पन्न करना तथा हमारे खान-पानकी व्यवस्था करना चाहते थे और चाह रहे थे कि हम कैसे स्वस्थ रहें। यही उनकी चिन्ता थी—'**सिसृक्षयैक्षत**' (श्रीमद्भा० २।९।५)। फिर वे चारों तरफ देखने लगे कि सृष्टि-रचनाके लिये कौन-से साधन विद्यमान हैं। तब उन्हें केवल पाँच वस्तुएँ ही दीख पड़ीं—कमल (ब्रह्माण्ड), जल, आकाश, वायु और अपना शरीर (श्रीमद्भा० ३।८।३२)। इनके अतिरिक्त उन्हें और कुछ न दीखा। अब उनके सामने यह समस्या थी कि सृष्टि किससे करें और कैसे करें? उन्हें कोई उपाय सूझ नहीं रहा था। तब भगवान्‌ने उनको तपस्या करनेकी आज्ञा दी। आदेश पाकर ब्रह्माजी तप करने बैठ गये। इस तपस्याका फल यह हुआ कि भगवान्‌ने उन्हें दर्शन दिया और फिर तप करनेके लिये आदेश दिया। तपस्या जब पूर्णतापर पहुँचनेको हुई तो वेदके अर्थ, जो पुराण हैं, उन्हें याद आ गये। जैसे पुनर्जन्मकी स्मृति होनेपर पहले जन्मके माता-पिता, गाँव, घर, भाई आदि याद आने लगते हैं, वैसे ही पितामह ब्रह्माको पुराकल्पके इतिहासके साथ-साथ ऐतिहासिक पदार्थोंके स्वरूप, नाम और सम्बन्ध आदि याद आ गये। उन्होंने किस-किस

वस्तुको बनाना है और उसका स्वरूप क्या है, उसका नाम क्या है—इस समस्याको सुलझा लिया। इस तरह हमारे खाने-पीने, पहनने और स्वास्थ्यमें उपयोग आनेवाले पदार्थ उनको याद आ गये, किंतु इनको बनानेकी क्षमता अभी उनमें नहीं आयी थी; क्योंकि किसी पदार्थको बनानेकी क्षमता वेदके शब्दोंमें होती है[1] न कि उनके अर्थोंमें और ब्रह्माजीको अभीतक केवल वेदके अर्थ याद आये थे शब्द नहीं सुनायी पड़े थे—'पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्' (मत्स्यपुराण ३। ४)।

इस तरह हम ब्रह्माके मनमें तो उपस्थित हो चुके थे, किंतु जगत्‌में उत्पन्न नहीं हुए थे; क्योंकि किसी वस्तुको केवल वेदके शब्द ही उत्पन्न कर सकते हैं, अर्थ नहीं।

हमारी उत्पत्तिके लिये ब्रह्माजीको फिर तप बढ़ाना पड़ा। इस प्रकार ब्रह्माजी हमारे लिये कष्ट-पर-कष्ट झेलते रहे। जब तप पूर्णतापर पहुँचा, तब भगवान्‌के द्वारा प्रसारित वेद नित्य स्वर, नित्य शब्द और नित्य अर्थोंके साथ ब्रह्माको सुनायी पड़ा। ब्रह्मा श्रुतधर थे, इसलिये आनुपूर्वी और उदात्त आदि स्वरोंके उच्चारणके साथ वेद उन्हें सुनते ही याद हो गया। अब हमारे पितामह ब्रह्माके पास वह शक्ति आ गयी थी कि वेदके शब्दोंके द्वारा किसी पदार्थका निर्माण कर सकें।

सृष्टिकी उत्पत्तिके पहले उन्होंने वेदके अर्थोंको, जो कि उनको स्मृत हुए थे, अपने शब्दोंमें बाँध लिया। इस ग्रन्थका नाम पुराण पड़ा। उसमें एक लाख श्लोक थे। इसके बाद जब उदात्त आदि स्वरोंके साथ उनके चारों मुखोंसे चारों वेद निकले, तब उन श्रुत शब्दों और स्मृत अर्थोंकी सहायतासे उन्होंने आयुर्वेदका ग्रन्थ बनाया। उसमें भी उन्होंने एक लाख ही श्लोक बनाये थे। आचार्य सुश्रुतने इस तथ्यको स्पष्ट किया है—

'इह खल्वायुर्वेदं नामोपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रं च कृतवान् स्वयम्भूः'

(सु०सं०सू० १। ६)

अर्थात् ब्रह्माजीने अथर्ववेदके उपाङ्गस्वरूप आयुर्वेदको एक लाख श्लोकोंमें ग्रथित किया था, जिसमें एक हजार अध्याय थे।

इस तरह सृष्टिकी उत्पत्तिके पहले ही ब्रह्माजीने हमें नीरोग रखनेके लिये शाश्वत आयुर्वेदको अपने शब्दोंमें ग्रथित कर लिया था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पितामह ब्रह्मा आयुर्वेदके आदि आविर्भावक थे।

परम्पराका निर्माण

जीवनके साथ आयुर्वेदका गहरा सम्बन्ध होनेके कारण पितामह ब्रह्माने आयुर्वेदके पठन-पाठनकी परम्परा स्थापित की। ब्रह्माजीने इस चिकित्सा-शास्त्रको अपने मानसपुत्र दक्षको और दक्षने अश्विनीकुमारोंको तथा अश्विनीकुमारोंने देवराज इन्द्रको पढ़ाया। इस तरह यह परम्परा आजतक चलती चली आ रही है।

ब्रह्माद्वारा औषधका प्रयोग

यद्यपि आयुर्वेदके मूल आविर्भावक और प्रथम ग्रन्थकार पितामह ब्रह्मा हैं, फिर भी इन्होंने इसको अपने जीवनमें प्रयोगरूपमें नहीं आने दिया। इसके प्रयोगका पूरा भार अश्विनीकुमारोंपर डाल दिया तथापि इनके अन्तरङ्ग जीवनमें एक ऐसी घटना घटी कि इनको भी औषधका प्रयोग करना पड़ा—

ब्रह्माजीकी एक पुत्रीका नाम सीतासावित्री था। पितामहकी यह लाडली कन्या थी। वे चाहते थे कि इसका विवाह सोमसे हो, किंतु सोमका आकर्षण सीतासावित्रीपर न था। इधर पिताकी तरह पुत्री भी सोमको ही चाहती थी। परंतु अपने ऊपर सोमका आकर्षण न देखकर बेचारी चिन्तित रहने लगी। अन्तमें उसने पितासे इसके लिये सहायता माँगी। तब ब्रह्माने अपने औषध-ज्ञानका उपयोग किया। 'स्थागर' नामक वनस्पतिका उपयोग उन्होंने इस कार्यमें किया। यह ओषधि बहुत ही सुगन्धित और आकर्षक भी होती है। इसमें वशीकरणकी छिपी हुई बहुत बड़ी शक्ति है। पिताने इस 'स्थागर' वनस्पतिको घिसकर और अभिमन्त्रितकर[2] पुत्रीको टीकाकी तरह लगा दिया।

१. (क) तत्र तत्र शब्दपूर्विका सृष्टिः श्राव्यते। (ब्रह्मसूत्र १। ३। २८ शाङ्करभाष्य)
(ख) ते हि शब्दपूर्वां सृष्टिं दर्शयतः। (ब्रह्मसूत्र १। ३। २८ शाङ्करभाष्य)

२. वेदने ओषधियोंमें अधिदेवत्व स्वीकार किया है। उसने ओषधियोंसे प्रार्थना की है कि 'हे ओषधियो! तुम मेरे रोगको दूर करो' (यजु० १६। ५)। अभिमन्त्रित करके ही औषधका प्रयोग करना चाहिये।

इसके बाद पुत्रीको सोमके पास भेज दिया।

वनस्पतिने अपना अद्भुत चमत्कार दिखाया। सोम, जो सीतासावित्रीसे खिंचा-खिंचा रहता था, इसपर न्योछावर हो गया। इसे जीवनसंगिनी बनानेके लिये उसने आकाश-पाताल एक कर दिया।

ब्रह्माजी यही चाहते थे। 'स्थागर' वनस्पतिने उनकी और उनकी पुत्रीकी सारी चिन्ता मिटा दी।

(तैत्तिरीय आरण्यक)

अग्निका अजीर्ण

यह तो पितामह ब्रह्माजीके द्वारा वनस्पतिके प्रयोगकी बात हुई, पितामह कभी-कभी किसी दवाका प्रयोग न कर रोगके नाशका उपाय भी बता दिया करते थे।

एक बार अग्निदेवको अजीर्ण-रोग हो गया, किसीका हविष्य ग्रहण करनेकी उनकी इच्छा ही नहीं होती थी। शरीरमें विवर्णता आ गयी, कान्ति फीकी पड़ गयी। पहलेकी तरह वे प्रकाशित भी नहीं हो रहे थे। धीरे-धीरे उनके मनपर ग्लानिने अधिकार जमा लिया। अग्निदेव समझ गये कि हमें रोग लग गया है, इसकी चिकित्सा होनी चाहिये। चिकित्साके लिये वे ब्रह्माजीके पास पहुँचे। अग्निदेवने पितामह ब्रह्मासे अपनी अरुचि-रोग होनेकी बात बतायी। पितामह ब्रह्माने सबसे पहले निदान करते हुए बताया—'महाभाग! तुमने बारह वर्षोंतक वसुधाराकी आहुतिके रूपमें प्राप्त हुए घृतका निरन्तर उपयोग किया है, इसीसे तुम्हें यह अरुचि-रोग हो गया है। तुम चिन्ता न करो, स्वस्थ हो जाओगे। मैं तुम्हारी अरुचि नष्ट कर दूँगा—'अरुचिं नाशयिष्येऽहम्' (महा० आदि० २२२।७४)। तुम खाण्डववनको जलाओ, वहाँ कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं, जो तुम्हारे लिये ओषधि बन जायँगी और तुम स्वस्थ हो जाओगे।'

पितामह ब्रह्माका बताया हुआ औषध पूर्णतया सफल रहा और अग्निदेव पूर्ण स्वस्थ हो गये।

आयुर्वेद सभी प्राणियोंके लिये

ब्रह्माजीने जिन प्राणियोंकी सृष्टि की, उन्हें चार श्रेणियोंमें बाँटा गया है—(१) उद्भिज्ज, (२) स्वेदज, (३) अण्डज और (४) जरायुज। इन चार श्रेणियोंके प्राणियोंके उपयोगमें आनेवाले औषधोंका ब्रह्माजीने अपने आयुर्वेद-ग्रन्थमें वर्णन किया। वनस्पतियोंके लिये वृक्षायुर्वेद, जन्तुओंके लिये तिर्यगायुर्वेद, पशुओंके लिये गवायुर्वेद, अश्वायुर्वेद, हस्त्यायुर्वेद आदि तथा मनुष्यों और देवता आदिके लिये आयुर्वेद बनाया।

इस तरह प्राणियोंके खाने-पीने और स्वस्थ रहनेके लिये उनकी उत्पत्तिके पहले ही लोकपितामह ब्रह्माने व्यवस्था कर दी थी।

तीनों देव वैद्य

एक ही तत्त्व उत्पत्ति, स्थिति और संहारके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन रूपोंमें आया है। इस दृष्टिसे ब्रह्माको जब आयुर्वेदका आविर्भावक माना जाता है, तो रुद्र और विष्णुको भी आयुर्वेदका आविर्भावक मानना ही पड़ता है। सृष्टिके आदिमें एक ऐसी घटना घटी, जिससे इस सिद्धान्तका पूरा समर्थन होता है।

इस घटनाका श्रीमद्भागवत (४।१)-में उल्लेख है। ब्रह्माजीने अपने मानसपुत्र अत्रिको सृष्टि बढ़ानेके लिये आज्ञा दी। श्रेष्ठ महर्षि अत्रि अच्छी संतति हो, इस उद्देश्यसे अपनी पत्नीके साथ तप करनेके लिये ऋक्ष नामक पर्वतपर गये। वहाँ सौ वर्षोंतक केवल वायु पीकर एक ही पैरपर खड़े होकर भगवान्की उपासना करने लगे। वे मन-ही-मन भगवान्से प्रार्थना कर रहे थे कि 'जो सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर—जगदीश्वर हैं, मैं उनकी शरणमें हूँ, वे अपने समान ही मुझे पुत्र प्रदान करें।'

तपस्या जब सीमापर पहुँच गयी, तब ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों देव अत्रिके आश्रमपर पधारे। अत्रिने पृथ्वीपर लेटकर उन्हें प्रणाम किया, फिर अर्घ्य-पुष्पादिसे उनकी पूजा की। इस पूजासे वे तीनों देव बहुत प्रसन्न हुए, उनकी आँखोंसे कृपाकी वर्षा होने लगी। वे मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे, उनके तेजसे महर्षि अत्रिकी आँखें मुँद गयीं और हृदयमें हर्षका सागर लहरा गया। उन्होंने तीनों देवताओंकी स्तुति की। अन्तमें पूछा—'मैं जिन जगदीश्वरको बुला रहा था, आप तीनोंमेंसे वे कौन हैं? क्योंकि मैंने एक ही जगदीश्वरका चिन्तन किया था, फिर आप तीनोंने

यहाँ पधारनेकी कृपा कैसे की? इस रहस्यको मैं जानना चाहता हूँ।'

इस प्रश्नको सुनकर तीनों देव हँस पड़े और बोले—'मुनिराज! तुम सत्यसंकल्प हो, अतः तुम्हारे संकल्पके विपरीत कैसे हो सकता है? तुम जिन जगदीश्वरका ध्यान कर रहे थे, उन्हीं जगदीश्वरकी हम तीन विभूतियाँ हैं। हम तीनों ही जगदीश्वर हैं।

इस घटनासे स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेशमें कोई अन्तर नहीं है। इस तरह ये तीनों देवता चिकित्साशास्त्रके प्रवर्तक माने जाते हैं। फिर भी वेद और पुराणने भगवान् शंकरको वैद्योंका वैद्य कहा है।

(ला०बि०मि०)



चिकित्सकोंके चिकित्सक भगवान् शिव

[प्रथमो दैव्यो भिषक्]

भगवान् रुद्रने ओषधियोंका निर्माण करके जगत्का इतना कल्याण किया है कि वेदने भी भगवान् शङ्करके सम्पूर्ण शरीरको ही भेषज मान लिया है। कहा है कि—

या ते रुद्र शिवा तनू शिवा विश्वस्य भेषजी।
शिवा रुद्रस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे॥

(तै०सं०रु० २)

सचमुच आयुर्वेद भगवान् शिवके रूपमें ही अभिव्यक्त हुआ था, इसलिये भगवान् शङ्करके पास मृतसंजीवनी नामकी ऐसी विद्या थी, जो और किसीके पास नहीं थी। इस विद्यासे मरे हुए प्राणियोंको जीवित किया जा सकता है। इस विद्याको भगवान् शङ्करने शुक्राचार्यको दिया था।

सर्वविदित है कि अंगिरा और भृगु—ये दोनों प्रख्यात ऋषि हैं। इनके विषयमें प्रसिद्धि है कि इन दोनोंके एक-एक पुत्र हुए। अंगिराके पुत्रका नाम था जीव और भृगुके पुत्रका नाम था कवि। जब दोनोंका यज्ञोपवीत-संस्कार हो गया, तब दोनों ऋषियोंने आगेका कर्तव्य निश्चित किया। उसमें यह निर्णय हुआ कि हम दोनोंमेंसे कोई एक इन दोनोंको पढ़ायेगा और दूसरा अन्य कार्य करेगा। अंगिराने कहा—'कविको भी मैं अपने पुत्रके साथ पढ़ाऊँगा।'

भृगुने यह सुनकर कवि (शुक्र)-को अंगिराकी सेवाके लिये सौंप दिया। किंतु अंगिरा गुरुके पथसे डिग गये। वे अपने पुत्र जीव (बृहस्पति)-को शुक्रसे अधिक विद्वान् बनानेके लिये एकान्तमें पढ़ाने लगे। शुक्रको यह भेद-भाव अच्छा न लगा। शुक्रने गुरुके चरणोंको पकड़कर क्षमा-याचना करते हुए कहा—'गुरुजी! आप अपने कर्तव्यसे डिग गये हैं। किसी भी गुरुको पुत्र और शिष्यमें भेदभाव नहीं रखना चाहिये, किंतु उस भेदभावको आप कर रहे हैं, इसलिये मैं चाहता हूँ कि आप मुझे अपनी सेवासे मुक्त कर दें। मैं किसी और गुरुके यहाँ जाऊँगा।'

शुक्र मेधावी बालक थे। उन्होंने सोचा कि विद्या-ग्रहण करनेके पहले पिताजीके पास चलना ठीक नहीं है। पिताजीको प्रसन्नता तब होगी, जब योग्य बनकर ही उनके पास पहुँचूँ। वे अच्छी-से-अच्छी विद्या प्राप्त करना चाहते थे, इसलिये उन्होंने भगवान्से प्रार्थना की कि हे भगवन्! ऐसे किसी महापुरुषका दर्शन कराइये, जो मुझे सत्-पथका निर्देश कर सके। संयोगसे महर्षि गौतम मिल गये। शुक्रने उनसे पूछा—'श्रीमन्! आप मुझे ऐसा गुरु बताइये, जिसके पास ऐसी विद्या हो जो और किसीके पास न हो। मैं उसी विद्याको पढ़ना चाहता हूँ।' महर्षि गौतमने शुक्रको भगवान् शङ्करके पास भेजा। गौतमी गङ्गा (गोदावरी)-में स्नान करके शुक्रने भगवान् शङ्करकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक तन्मय होकर प्रार्थना की। भगवान् शंकर उनके प्रेमसे आर्द्र हो गये और वर माँगनेको कहा। शुक्रने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! जो विद्या ब्रह्मा आदि देवताओंको भी न प्राप्त हो, उस विद्याको आप हमें दें।'*

शुक्रकी उत्कट तपस्यासे भगवान् आशुतोष बहुत ही

* बालोऽहं बालबुद्धिश्च बालचंद्रधर प्रभो। नाहं जानामि ते किंचित्स्तुतिकर्तुं नमोऽस्तु ते॥
परित्यक्तस्य गुरुणा न ममास्ति सुहृत्सखा। त्वं प्रभुः सर्वभावेन जगन्नाथ नमोऽस्तु ते॥

प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'वत्स! मैं तुम्हें ऐसी विद्या दे रहा हूँ, जिसका ज्ञान मेरे अतिरिक्त और किसीको नहीं है। मैंने इस निर्मल विद्याका निर्माण महान् तपस्याके बलपर किया है। इसका नाम 'मृतसंजीवनी' है—

मृतसंजीवनी नाम विद्या या मम निर्मला।
तपोबलेन महता मयैव परिनिर्मिता॥

(शि०रु०सं० युद्ध० ५०।४१)

इसे मैंने ब्रह्मा तथा विष्णुसे भी छिपा रखा है—

'हरेर्हिरण्यगर्भाच्च प्रायशोऽहं जुगोप यम्'

(शि०रु०सं० युद्ध० ५०।४०)

इस अवसरपर एक प्रश्नका उठना स्वाभाविक है कि सम्पूर्ण वेदके आविर्भावक जब ब्रह्मा हैं तो उनको इस मृतसंजीवनी-विद्याका ज्ञान कैसे नहीं रहा? बात यह है कि वेद अनन्त हैं—'अनन्ता वै वेदाः' (तैत्ति० ब्रा०)। जिस ब्रह्माको तपस्याके बलसे वेदकी जितनी शाखाएँ सुन पड़ती हैं, उतनी ही शाखाओंके वे जानकार हो पाते हैं। जैसे वर्तमान ब्रह्माका दूसरा परार्ध चल रहा है, इससे पचास वर्ष पहले जब इन्होंने कमलपर तपस्या की थी तो इनको उन अनन्त वेदोंमेंसे केवल ११२१ शाखाएँ सुनायी पड़ी थीं (महाभाष्य)। इसके पहले किसी ब्रह्माको ११८१ शाखाएँ सुनायी पड़ी थीं। भगवान् शङ्करने स्वयं कहा है कि मैंने मृतसंजीवनी-विद्याका निर्माण बहुत बड़ी कठिन तपस्याके बलपर किया है, इससे अनुमान होता है कि भगवान् शङ्करकी तपस्या ब्रह्माजीकी तपस्यासे बढ़कर थी। इसलिये वेदका मृतसंजीवनीवाला अंश भी उन्हें सुनायी पड़ा।

इस तरह ब्रह्मा भिषक्तर और भगवान् शङ्कर भिषक्तम हैं।

भगवान् शङ्कर दयालुओंमें दयालु और चिकित्सकोंमें सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक हैं—**'भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि'** (ऋक्० २।३३।४)। उन्होंने ऐसी विद्या निर्मित की, जिससे हजारों मरे हुए लोग एक क्षणमें जी जायँ (ब्रह्मपुराण अ० ९५)।

इस तरह भगवान् शिव चिकित्सकोंमें सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक हैं। इसलिये इनके भेषज अतिशय सुखकर होते हैं। यजमान वेद-मन्त्रोंके द्वारा उन भिषजोंकी याचना करते हैं—

'त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः।'

(ऋक्० २।३३।२)

'हे रुद्र! आप मुझे जो औषधि देंगे, उससे हम सैकड़ों वर्ष सुखमय जीवन व्यतीत करेंगे। यजमान अपने लिये ही नहीं, अपितु अपने पुत्रोंके लिये भी उन औषधियोंकी माँग करते हैं—**'उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि।'** (ऋक्० २।३३।४) वाजसनेयि-संहिताने भी **'प्रथमो दैव्यो भिषक्'** कहकर इन्हें देवचिकित्सकोंमें सबसे बड़ा चिकित्सक माना है।

बकरेका सिर जोड़ना

ब्रह्माके दाहिने चरणके अँगूठेसे दक्षकी उत्पत्ति और बायें चरणके अँगूठेसे उनकी पत्नीकी उत्पत्ति हुई थी। इस धर्मभार्यासे दक्षकी अनेक संततियाँ हुईं, उन्हीं संततियोंमें सती भी थीं। सतीका विवाह भगवान् शङ्करसे हुआ था। इस तरह भगवान् शङ्कर दक्षके जामाता हैं। जब प्रजापतियोंमें दक्ष सबसे ऊँचे पदपर चुन लिये गये, तब उनमें गर्वका अङ्कुर फूट आया और वे शङ्करको भगवान् न समझकर अपनेसे छोटे केवल जामाताके रूपमें देखने लगे। धीरे-धीरे उनके संहारकृत्यसे ये अप्रसन्न भी रहने लगे। फल यह हुआ कि जब उन्होंने एक महान् यज्ञ किया तो उसमें भगवान् शङ्करको निमन्त्रित नहीं किया। सती भगवान् शङ्करके ब्रह्मरूपको अच्छी तरह जानती थीं। उनसे अपने पिताके द्वारा अपने पतिका अपमान सहा नहीं गया और अपने शरीरको योगाग्निमें यह कहकर उन्होंने भस्म कर दिया कि जो पिता भगवान्का अपमान करता है, उसीका दिया हुआ मेरा यह शरीर है, अतः इस शरीरका रहना अच्छा नहीं है।

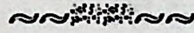
भगवान् शङ्कर भी सतीका अपमान सह नहीं सके और उन्होंने वीरभद्रको भेजकर दक्षयज्ञका विध्वंस करा दिया। वीरभद्रने बहुतसे देवताओंका अङ्ग-भङ्ग कर दिया और दक्षके सिरको काटकर दक्षिणाग्निमें डाल दिया। इस तरह वे यज्ञका विध्वंस कर लौट गये। यज्ञ अधूरा रह गया।

गुरुर्गुरुमतां देव महतां च महानसि। अहमल्पतरो बालो जगन्मय नमोऽस्तु ते॥
विद्यार्थं हि सुरेशान नाहं वेद्मि भवद्गतिम्। मां त्वं च कृपया पश्य लोकसाक्षिन्नमोऽस्तु ते॥ (ब्रह्मपुराण ९५। १८—२१)

विश्वके कल्याण-हेतु देवताओंने यज्ञकी पूर्तिको आवश्यक समझा और ब्रह्माको आगे करके भगवान् शङ्करके पास पहुँचे। उन लोगोंने भगवान् शङ्करसे प्रार्थना की—'भगवन्! यज्ञकी पूर्ति तो होनी ही चाहिये और वह आपके आशीर्वादसे ही सम्भव है।' भगवान् शङ्करने कहा कि दक्ष-जैसे नासमझोंके अपराधकी न तो मैं चर्चा करता हूँ और न ही स्मरण। मैंने तो केवल सावधान करनेके लिये ही दक्षको दण्ड दिया था। इसके बाद भगवान् शङ्करने देवताओंकी प्रार्थनापर कृपा करके बकरेके सिरको दक्षके शरीरमें जोड़ दिया और दक्ष फिर जीवित हो गये। यदि दक्षका पहला सिर जल न गया होता तो उसीके सिरको वे धड़में जोड़ देते, इसलिये बकरेके सिरका प्रयोग हुआ।

इस घटनासे सूचित होता है कि भगवान् शङ्करने केवल अपनी आध्यात्मिक शक्तिका ही नहीं, अपितु कुछ ओषधियोंका उपयोग भी अवश्य किया होगा। आध्यात्मिक शक्तिसे तो वे दक्षका पहला सिर भी ज्यों-का-त्यों बना सकते थे, जो शल्यक्रियासे सम्बन्ध रखता है।

परम्परा—भगवान् शङ्करने शुक्राचार्यको पढ़ाकर इस मृतसंजीवनी-विद्याकी परम्पराको चालू रखा। (ला०बि०मि०)



आयुर्वेदस्वरूप भगवान् श्रीविष्णु

प्रत्येक ईश्वरवादी ईश्वरको सत् मानता है अर्थात् ईश्वरका अस्तित्व उसके लिये सदा बना रहता है। प्राणियोंकी तरह ईश्वर मरा नहीं करता। इसी तरह ईश्वरको वह 'प्रेमानन्द'-रूप मानता है, अर्थात् प्राणियोंकी तरह ईश्वरमें सुख-दु:ख नहीं होता। इसी तरह ईश्वरको चित्स्वरूप भी माना जाता है। चित्का अर्थ होता है ज्ञान अर्थात् ईश्वर पूर्ण ज्ञानमय होता है। ईश्वर नित्य ज्ञानरूप होता है। इसमें कभी अज्ञता नहीं होती। इसी ज्ञानको वेद कहा जाता है। ज्ञानमें सदा शब्दका अनुवेध रहता है। अत: वेदके शब्द, अर्थ और सम्बन्ध—ये तीनों ही नित्य होते हैं। शंकराचार्यजीने लिखा है—**'नियतरचनावतो विद्यमानस्यैव वेद'** (बृहदा० उप० शा०भा० २।४।१०)। इस तरह वेद ईश्वरके स्वरूपभूत हो गया। अत: भगवान् विष्णुको हम वेद-स्वरूप कहते हैं। यहाँ विष्णुको आयुर्वेद-स्वरूप कहा गया है, वह इसलिये कि आयुर्वेद वेदका ही उपाङ्ग है। इसीसे आयुर्वेदकी महत्ता प्रकट हो जाती है, अर्थात् आयुर्वेद भगवान् श्रीविष्णुका रूप ही है।

ऊपर भगवान् विष्णुको हम सत्, चित् और आनन्द कह आये हैं, अर्थात् सत्-चित्-आनन्द ही भगवान् होता है। आनन्दका ही उल्लसित रूप होता है प्रेम। इसलिये वेदने भगवान् विष्णुको प्रेमानन्द-रूप कहा है। प्रेमका स्वभाव होता है कि वह अपने प्रेमास्पदके साथ कोई-न-कोई खेल खेलता ही रहता है। अत: भगवान् यह खेल हम प्रेमास्पदोंके साथ खेलते ही रहते हैं। जाग्रत्-अवस्था और स्वप्नावस्थामें हम भगवान्के साथ प्रेमका खेल खेलते हुए थक जाते हैं, तब वह महान् चिकित्सक हमें संज्ञा-हरणका इंजेक्शन दे देता है और सुषुप्ति-अवस्थामें पहुँचा देता है। इस अवस्थामें न तो हमें प्राकृतिक सुखकी प्रतीति होती है और न प्राकृतिक दु:खका थपेड़ा ही सहना पड़ता है। भगवान् अपने आनन्दरूपमें हमको लीन कर देते हैं। इनके आनन्दांशको पाकर हम चिर प्रफुल्लित हो उठते हैं और अच्छी तरह संज्ञाके लौट आनेपर अनुभव करते हैं कि मैं सुखपूर्वक सोया—**'सुखमहमस्वाप्सम्।'**

लीलाओंमें प्रेमलीला सबसे उत्तम होती है। सच पूछिये तो हमारे साथ प्रेमकी लीला करनेके लिये ही भगवान् लीलास्थली बनाते हैं। हमें नाम और रूप देकर हमारे साथ प्रेमकी ही लीला करते हैं। किंतु हममेंसे कुछ लोग भटककर भगवान्के साथ प्रेम न करके उनकी बहिरङ्गासक्तिके फेरमें पड़कर भगवान्को ठुकराकर किसी औरसे प्रेम करने लगते हैं। जैसे शिशुपाल और कंस भी हमारी तरह भगवान्के अंश थे। परंतु वे भगवान्से प्रेम न कर प्रकृतिसे प्रेम और भगवान्से ईर्ष्या-द्वेष करने लगे। यह भगवान्के हम प्रेमास्पदोंकी गलती है; किंतु भगवान् इतने दयालु और प्रेमातुर हैं कि वे कंस और शिशुपालके भी

स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म शरीरके साथ भी अपनी ओरसे प्रेमलीला करते ही रहते हैं और फिर ऐसे प्रतिकूल लोगोंको भी संज्ञा-हरणकी सुई लगाकर उन्हें दुःख आदिके थपेड़ोंसे हुई थकानको मिटानेके लिये सुषुप्ति-अवस्थामें—अपनेमें लीन कर लेते हैं।

यह स्मरण रखना चाहिये कि प्रत्येक दिन चिकित्सककी तरह प्रत्येक प्राणीको संज्ञा-हरणकी सुई उसके अङ्गमें चुभोते नहीं हैं; क्योंकि वे चिकित्सकोंके भी चिकित्सक हैं—आयुर्वेदके स्वरूप हैं, इसलिये संज्ञा-हरणकी स्वयंचालित (Automatic) व्यवस्था करते हैं।

हम जीवोंमें सब लोग आण्डाल, मीरा और चैतन्य महाप्रभुकी तरह न तो भगवान्‌से मधुर लीला कर पाते हैं और न दशरथ-कौसल्या एवं यशोदाकी तरह वात्सल्य-प्रेम ही। अपितु मायाके चक्करमें पड़कर उनके विरुद्ध ही लीला करने लग जाते हैं। इस तरह जब हम प्रकृतिके थपेड़ोंसे अच्छी तरह प्रताड़ित हो जाते हैं और मारे थकानके निढाल हो जाते हैं, तब वे आयुर्वेद-स्वरूप भगवान् संज्ञा-हरणकी वह प्रभावक सुई लगा देते हैं, जिससे हम अरबों वर्षोंतक उनमें लीन होकर आनन्दभोगी बने रहते हैं। इसी संज्ञा-हरणकी सुई लगनेसे उत्पन्न होनेवाली अवस्थाको महाप्रलय कहा जाता है। अर्थात् इस अवस्थामें हम बहुत दिनोंतक भगवान्‌में अच्छी तरहसे लीन रहते हैं और लीन रहकर उनके आनन्दांशसे भरपूर हो जाते हैं। किंतु यह महा संज्ञा-हरणकी क्रिया उनकी स्वयंचालित (Automatic) ही होती है। यही तो भगवान्‌के चिकित्सक-रूपकी विशेषता है।

जब भगवान् देखते हैं कि हमारे प्रेमास्पदोंमें प्रकृतिके थपेड़ोंका असर समाप्त हो गया है और मेरा आनन्दांश इनमें भर गया है तो उनका मन फिर प्रेमका खेल खेलनेके लिये मचल उठता है; क्योंकि प्रेमका स्वभाव ही होता है कि वह अपने प्रेमास्पदके साथ कोई-न-कोई खेल खेला करे। अकेले उनका मन लग नहीं रहा था, इसलिये **'नारमतैकः'** (मैत्रा०उप० २।६)। प्रेमका स्वभाव ही होता है कि वह प्रेमास्पदोंको अपनी आँखोंसे देखे, उसका स्पर्श पाये। इसलिये भगवान् अपने प्रेमास्पदोंको चाहने लगे—**'स आत्मानमभिध्यायत्'** (मैत्रा०उप० २।६)।

इस खेलके लिये प्रेमास्पदोंको लिङ्गशरीर और कारणशरीर भी देना था और लीलाके लिये लीलास्थली भी बनानी थी।

भगवान्‌ने पाद-विभूतिमें लीलाकी आयोजिका प्रकृतिपर एक दृष्टि डाली। दृष्टि पड़ते ही प्रकृतिमें गति आ गयी और वह महत्-तत्त्वसे प्रारम्भकर पञ्चमहाभूततक तेईस तत्त्वोंके रूपमें परिणत होती चली गयी। इस तरह चौबीस तत्त्व बन तो गये, किंतु ये चौबीस तत्त्व लीलास्थली (ब्रह्माण्ड)-को न बना सके; क्योंकि ये सब-के-सब जड़ हैं और जड़ गणित नहीं कर सकता। तब महान् गणितज्ञने पञ्चीकरणकी पद्धतिसे सब तत्त्वोंको परस्पर मिला दिया और एक अण्डके रूपमें गोल लीलास्थली बन गयी। एक हजार दिव्य वर्षतक यह लीलास्थली (ब्रह्माण्ड) गतिहीन ही पड़ी रही, तब भगवान्‌ने इसमें प्रवेशकर इसे सजीव कर दिया। फिर स्वयं इसे फोड़कर विराट् पुरुषके रूपमें ब्रह्माण्डके बाहर आये। पुरुषसूक्तमें इन्हीं पुरुषका वर्णन है। इनके अनन्त चरण, मुख, नेत्र तथा नाभि आदि हैं (श्रीमद्भा० २।६।४१)। इस स्फोटके कारण वे इन्हीं अनन्त नाभियोंसे अनन्त क्षुद्र ब्रह्माण्ड (लीलास्थली) बने। यही क्षुद्र ब्रह्माण्ड उनकी नाभियोंसे निकले कमल हैं (श्रीमद्भा० २।८)।

उस कमलरूपी क्षुद्र ब्रह्माण्डकी कर्णिकापर पितामह ब्रह्माजी अपनेको अकेले बैठे हुए पाते हैं। इन ब्रह्माको भगवान् इसलिये उत्पन्न करते हैं कि ये देवता, असुर, उद्भिज्ज, अण्डज और पिण्डज प्राणियोंका निर्माण करके ब्रह्माण्डको सजा सकें। उत्पन्न होनेके साथ ही पितामह ब्रह्मामें सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न हो जाती है। तब भगवान् उनसे तपस्या कराते हैं फिर दर्शन देकर समझाते हैं कि इन सबका निर्माण वेदके शब्दोंसे होगा और उस वेदको तुम तपस्या करके ही प्राप्त कर सकते हो। इसलिये फिर तपस्या करो। पितामह ब्रह्माने घोर तप प्रारम्भ कर दिया। जब तपस्या पूर्णतापर पहुँचने लगी, तब उनको पहले पुराण याद आ गये। पुराण नित्य-वेदके नित्य-अंश हैं। अतः आयुर्वेद भी याद आ गया। इस पुराणको पितामह ब्रह्माने एक लाख श्लोकोंमें ग्रथित किया, उसी तरह

आयुर्वेदको भी एक लाख श्लोकोंमें ग्रथित कर लिया।

आयुर्वेद और पुराण—ये दोनों शाश्वत वेदके अर्थ हैं, अतः दोनों ही शाश्वत हैं। इसी अभिप्रायसे चरकने कहा है—'ब्रह्मणा हि यथाप्रोक्तमायुर्वेदं प्रजापतिः' इस तरह ब्रह्माद्वारा स्मरण (उच्चारण) करनेके बाद उनके शब्दोंमें ग्रथित ग्रन्थ जो पुराण और आयुर्वेद हैं—सब-के-सब ब्रह्माद्वारा श्रुत हैं, स्मृत नहीं। ब्रह्मासे ही हमें दोनों एक-एक लाख श्लोकवाले ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं और ब्रह्माके द्वारा ही हमें वेद प्राप्त हुआ है।

फिर भी दोनोंमें भेद इसलिये है कि स्मृत ग्रन्थके शब्द नित्य नहीं हैं; क्योंकि ब्रह्माद्वारा निर्मित नहीं हैं, अतः अपौरुषेय हैं और वेदमें ब्रह्माका किसी प्रकारका कृतित्व नहीं है, न वेदका उच्चारण उनका कृत है, न अर्थ कृत है, न शब्द कृत है। इस प्रकार वेद ब्रह्मरूप ठहरता है और वेदाङ्ग आयुर्वेद भी भगवान् श्रीविष्णुका स्वरूप ही है।

दौर्भाग्यसे पाश्चात्त्य विद्वानोंके मस्तिष्कमें वेदकी इस अपौरुषेयताका तथ्य उतर नहीं पाया। एक साधारण दृष्टान्तसे हम इस तथ्यको बुद्धिमें उतार सकते हैं। जैसे किसी श्रुतधर व्यक्तिने रेडियो सुना। उससे किसी गानेका प्रसारण हो रहा था। श्रुतधर व्यक्तिने उस गानेके शब्द और अर्थके साथ-साथ उसके उच्चारणको भी याद कर लिया और गा-गाकर सुनाने लगा। यहाँ विचारणीय यह है कि श्रुतधर जिस ध्वनिको सुना रहा है, वह उसके द्वारा निर्मित है क्या? इसी प्रकार उस गानेके शब्दोंको जो सुना रहा है, वे शब्द उसके द्वारा निर्मित हैं क्या तथा उस गानेके जो अर्थ हैं, वे भी उसके द्वारा निर्मित हैं क्या? इस प्रश्नके उत्तरमें सभी लोग एकमतसे कहेंगे कि उस सुने हुए गानेमें उस श्रुतधर व्यक्तिका कोई कृतित्व नहीं है; क्योंकि गानेके शब्द-अर्थ आदि सभी वस्तुओंको रेडियोसे सुनकर वह सुना रहा है, इसमें उसका कोई कृतित्व नहीं है। इसी तरह इस श्रुतधरकी भाँति ब्रह्माने अपने मुखसे उच्चरित शब्दोंको सुना। अर्थ और उच्चारण भी सुनकर ही उन्होंने विश्वको वेद प्रदान किया। इसलिये श्रुतधर व्यक्तिकी तरह ब्रह्माका भी वेदके शब्द-अर्थ तथा उच्चारणमें कोई कृतित्व नहीं है। ईश्वर नित्य है और उसका स्वरूपभूत वेद भी नित्य है, वह सदा उच्चरित हो ही रहा है। भले ही हमारे कान उसे न सुन सकते हों। ब्रह्माने बहुत तपस्या करनेके बाद उसे सुना। बहुतसे ऋषियोंने तपस्या करके ब्रह्माकी तरह वेदको सुना है। इस तरह वेद शाश्वत है और ईश्वरका स्वरूप है। वेद आयुर्वेद है, इसलिये आयुर्वेद भी शाश्वत है। इसीलिये आचार्य चरकने ईश्वरकी तरह अपौरुषेय होनेके कारण आयुर्वेदको शाश्वत कहा है—

सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यते, अनादित्वात्, स्वभावसंसिद्धलक्षणत्वात्, भावस्वभावनित्यत्वाच्च।

(चरक० सूत्र० ३०। २७)

पाश्चात्त्य विपश्चितोंने वेदोंमें श्रम किया है, किंतु वे वेदके अपौरुषेय-स्वरूपको समझ नहीं सके। इसीलिये जब आयुर्वेदको शाश्वत कहा जाता है तो शाश्वत शब्द और नित्य शब्दमें अन्तर समझने लगते हैं और समझते हैं कि मनुष्यमें जब बुद्धिका विकास हुआ तब आयुर्वेद बना। सच पूछा जाय तो शास्त्रने शाश्वत और नित्यको पर्यायवाची माना है।[१]

भगवान् विष्णु इस प्रकार वेद या आयुर्वेदस्वरूप ठहरते हैं।

भगवान् विष्णुद्वारा आयुर्वेदका प्रयोग

प्रारम्भिक कुछ मन्वन्तरोंके बाद चाक्षुष मन्वन्तर आनेपर भगवान् विष्णुको ऐसा औषधरत्न प्रकट करना पड़ा जो न ब्रह्माके पास था, न उनके शिष्य दक्ष प्रजापतिके पास, न उनके शिष्य इन्द्रके पास और न चमत्कारी देववैद्य अश्विनीकुमारोंके पास ही था।

घटना इस प्रकारकी है—छठे मनुका नाम था चाक्षुष। उन दिनों दुर्वासाके शापसे देवराज इन्द्रके साथ-साथ सारे देवता भी श्रीहीन हो गये थे। दैत्योंने देवताओंको भगाकर दर-दरका भिखारी बना दिया था। निराश होनेपर सब देवता मिलकर अपने पितामह ब्रह्माके पास पहुँचे। ब्रह्माजीने जब देखा कि इन्द्र, वायु आदि सभी देवता अत्यन्त श्रीहीन और शक्तिहीन हो गये हैं तथा ये विकट परिस्थितिमें पड़ गये हैं, तब वे भी चिन्तित हो गये। उन्होंने भगवान्‌का स्मरण

१. (क) शश्वद्भवः शाश्वतः=नित्यो धर्मः (गीता शांकरभाष्य ११। १८)
(ख) शाश्वतं=नित्यं (गीता शां०भा०)

किया। इस स्मरणसे उन्हें बल मिला। शङ्कर आदि सभी देवताओंको साथ लेकर वे भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें गये। किंतु उन्हें वहाँ कुछ दिखायी न पड़ा। दर्शनके लिये ब्रह्माजीने लम्बी स्तुति की। इससे भगवान् उनके बीच प्रकट हो गये। किंतु भगवान्की इस छविको केवल भगवान् शङ्कर और ब्रह्माजी ही देख सके। ब्रह्मा और देवताओंने अपनी दुःखद परिस्थिति उनके सामने रख दी। भगवान्ने देवताओंको राय दी कि स्थिर लाभके लिये तुम लोग दैत्योंसे संधि कर लो ताकि समुद्र मथा जा सके। उस मन्थनसे हमें अमृतरूप औषध निकालना है। यह कार्य अकेले तुम लोगोंसे नहीं हो सकेगा, उस दिव्य रसके उपयोगसे तुम भी बल-वीर्यसे सम्पन्न हो जाओगे और मरकर भी फिर जी उठोगे। तब दैत्य स्वयं तुमपर आक्रमण करनेसे कतराने लगेंगे। इसलिये तुम लोग दैत्योंके साथ सम्पूर्ण औषधियाँ लाकर अमृतके लिये क्षीरसागरमें डालो। इस मन्थनसे औषधियोंका सारभूत अमृत आदि लोकोपकारक वस्तुएँ निकल सकेंगी। इस मन्थनमें मन्दराचलको मथानी बनाया जायगा और वासुकि नागको नेति। इन सब उपकरणोंको शीघ्र ही जुटाओ (विष्णुपु० १।९।७६—८०)। देवताओं और दानवोंने नाना प्रकारकी औषधियाँ लाकर क्षीरसागरमें डालीं और मन्थन प्रारम्भ हुआ।

उस अमृतरूप औषधतत्त्वको प्राप्त करना इतना कठिन था कि केवल इतने ही साधनोंसे वह उपलब्ध नहीं हो सका। इसलिये भगवान्ने स्वयं कूर्मरूप धारण करके मन्दराचलके आधारभूत और अदृश्यरूपसे एक अन्य विशाल रूप धारणकर उस पर्वतको ऊपरसे दबा रखा था। भगवान्ने देखा कि केवल देवताओं और असुरोंकी शक्तिसे अमृतका निकलना कठिन है तो स्वयं दैत्यका रूप बनाकर दैत्योंके दलमें और देवताका रूप बनाकर देवताओंके दलमें जाकर मन्थन-क्रियाको सम्पन्न कराया (विष्णुपु० १।९।८८—९१)।

औषधियोंके मन्थनसे जो रस तैयार होगा, उस अनुपातके संतुलित मिश्रणके लिये अपने अंशांशसे धन्वन्तरिके रूपमें अवतीर्ण होकर समुद्रमें अदृष्ट-रूपसे वे प्रविष्ट हो गये। वहाँ उन्होंने औषधियोंमें रसका उचित अनुपातमें मिश्रणकर उसे अमृतका रूप प्रदान किया। उस सम्मिश्रणमें वे इतने दत्तचित्त हुए कि जब अमृतमय कलश लेकर बाहर प्रकट हुए तो उनके मुखसे भगवान् विष्णुके नामोंका जप और आरोग्यके साधक औषधोंके नामका भी उच्चारण हो रहा था। इतनी तन्मयतासे धन्वन्तरिने उस दिव्य औषधको निकाला।

किंतु दैत्य तो दैत्य ही होते हैं। उन्होंने अमृतके उस कलशको हथिया लिया। देवता विषादसे भर गये और फिर उन्होंने भगवान्की शरण ली। फिर भगवान्ने अपनी मायासे दैत्योंको मोहितकर देवताओंको अमृत पिला दिया और स्वयं वैकुण्ठधाम चले गये।

इस प्रकार देवताओंके सबल हो जानेपर सूर्य-ग्रह-नक्षत्रादि आकाशके गोलकोंने अपनी गतिमें नियमितता पा ली। संसार फिर सुखी-सम्पन्न होकर उल्लाससे भर गया।

औषधका प्रयोग फिर जनताके महान् पालक अश्विनीकुमारोंके हाथमें आ गया। बहुत काल बाद मनुष्यलोकमें जब रोगोंने अपने पाँव फैलाये और पृथ्वीके प्राणी फिर दीन-दुःखी होने लगे, तब भगवान् नारायण श्रीविष्णुने अंशांशरूपमें जो अपना अवतार धन्वन्तरिरूपमें लिया था, उस धन्वन्तरिरूपसे राजा धन्वके यहाँ पुत्ररूपमें आविर्भूत हुए; क्योंकि राजा धन्वने इन्हीं अब्ज धन्वन्तरिको पुत्ररूपसे पानेके लिये तप किया था। गर्भावस्थामें ही इन्हें अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त हो गयी थीं। विष्णुके अंशांशरूपमें अवतीर्ण भगवान् धन्वन्तरिने आयुर्वेदको आठ अङ्गोंमें बाँट दिया। वे आठ अङ्ग इस प्रकार हैं—(१) कायचिकित्सा, (२) बालचिकित्सा, (३) ग्रहचिकित्सा, (४) ऊर्ध्वाङ्गचिकित्सा, (५) शल्यचिकित्सा, (६) दंष्ट्रचिकित्सा, (७) जराचिकित्सा तथा (८) वृषचिकित्सा।

परम्पराकी स्थापना—जिस तरह पितामह ब्रह्माने दक्ष प्रजापतिको, भगवान् शङ्करने शुक्राचार्यको आयुर्वेद पढ़ाकर परम्पराकी स्थापना की थी, उसी प्रकार भगवान् श्रीविष्णुने गरुडजीको आयुर्वेद पढ़ाकर परम्परा चलायी।

इस तरह आयुर्वेदस्वरूप भगवान् विष्णुने आवश्यकता पड़नेपर आयुर्वेदसे प्राणियोंको सुखी-सम्पन्न बनाया।

(ला०बि०मि०)



आयुर्वेदके प्रथम अध्येता दक्ष प्रजापति

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये त्रिदेव मूर्तिमान् आयुर्वेद ही हैं, किंतु इन्होंने आयुर्वेदको जो प्रयोगात्मक रूप प्रदान नहीं किया, उसका कारण यह है कि सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और इसे विश्राम प्रदान करना—ये तीनों ही कार्य बहुत ही उलझनसे भरे हैं। यही कारण है कि एक ही तत्त्व सृष्टिकार्य सँभालनेके लिये ब्रह्मा बन गया, स्थितिके लिये विष्णु बन गया और क्रियाको विश्राम देनेके लिये उसीने शङ्करका रूप ले लिया। जब इन तीनों कार्योंके लिये एक ही तत्त्वको तीन रूप पृथक्-पृथक् धारण करने पड़े, तब आयुर्वेदके प्रयोगात्मक कार्यको वे कैसे कर पाते? क्योंकि इसका उद्देश्य चौबीसों घंटे प्राणियोंकी सेवा करना है। इसलिये आयुर्वेदके मूर्तिरूप तीनों देवोंने जैसे यह भार अश्विनीकुमारोंपर छोड़ा, वैसे ही प्रजापति दक्षने भी यही मार्ग अपनाया।

दक्षप्रजापतिके सामने भी कार्यका अम्बार लगा हुआ था। वे सभी प्रजापतियोंके प्रधान चुन लिये गये, इसलिये उनका कार्य और बढ़ गया था। फिर वे अपने जीवनमें आयुर्वेदको प्रयोगरूपमें कैसे लाते? फिर भी त्रिदेवोंकी तरह दक्ष प्रजापतिके जीवनमें भी कुछ ऐसा अवसर आ गया कि उन्हें उसे प्रयोगात्मक रूप देना ही पड़ा।

औषधका प्रयोग दो रूपोंमें होता है—रोगियोंके रोग-निवारणके लिये और विवशोंकी विवशता दूर करनेके लिये। ऐसी स्थितिमें उनमें रोगको उत्पन्न कर देना आवश्यक हो जाता है।

प्रजापति दक्षने सृष्टि बढ़ानेके लिये बहुत संतानें उत्पन्न कीं। उनमेंसे सत्ताईस कन्याओंका विवाह चन्द्रमाके साथ कर दिया। वे सभी अत्यन्त सुन्दर थीं। उनके रूपकी समता करनेवाली पृथ्वीपर कोई स्त्री न थी। उन सत्ताइसोंमें रोहिणी सौन्दर्यमें सबसे बढ़ी हुई थी। उसके सौन्दर्यने चन्द्रमाको आकृष्ट कर लिया था। वे निरन्तर उसीके साथ रहने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि अन्य छब्बीस दक्ष-कन्याओंकी उपेक्षा हो गयी। उन्हें क्रोध आना स्वाभाविक था; क्योंकि विषमता अच्छी नहीं होती, यह शास्त्र-विरुद्ध भी है। अप्रसन्न होकर वे छब्बीसों बहनें अपने पिता दक्ष प्रजापतिके पास पहुँचीं और बोलीं कि चन्द्रमा कभी हम लोगोंके पास नहीं आते। अतः हम सभी चाहती हैं कि नियम लेकर आपके पास रहकर तपस्या करें।

दक्षको चन्द्रमाका यह अधर्मपूर्ण व्यवहार अच्छा न लगा, उन्होंने चन्द्रमाको समझाया—तुम सभी पत्नियोंके प्रति सम भाव रखो, नहीं तो तुम्हें पाप लगेगा। यह तुम स्वयं जानते ही हो। इसके बाद दक्षने अपनी कन्याओंको चन्द्रमाके पास भेज दिया। पिताका आदेश पालन कर छब्बीसों बहनें चन्द्रमाके पास पहुँचीं, किंतु चन्द्रमा रोहिणीमें इतने आसक्त थे कि उन्होंने फिर सबकी उपेक्षा कर दी। इस तरह तीन बार सभी बहनोंको पिताके पास लौटकर पुराने अभियोगको सुनाना पड़ा।

आसक्ति इतनी क्रूर होती है कि यह अपने चंगुलमें फँसे व्यक्तिकी आँखें ही फोड़ देती है और कान भी बुत कर देती है, जिससे वह आसक्त व्यक्ति अपनेसे होती हुई भयानक-से-भयानक हत्याओंको न तो देख पाता है और न उनसे उपजी कराहोंको सुन ही पाता है। चन्द्रमा इसी घोर आसक्तिमें फँस गये थे। अपनी छब्बीस पत्नियोंकी हत्याओंको न तो वे देख पाते थे और न उनकी तड़पती हुई कराहोंको ही सुन पाते थे।

दक्ष भी सोमको प्यार-भरे शब्दोंमें समझाते-समझाते थक गये थे। उन्होंने राजयक्ष्मा नामक रोगकी सृष्टि कर दी—

तच्छ्रुत्वा भगवान् क्रुद्धो यक्ष्माणं पृथ्वीपते॥
ससर्ग शेषात् सोमाय स चोडुपतिमाविशत्।

(महाभारत शल्य० ३५। ६१-६२)

यह रोग चन्द्रमाको हो गया। इसकी भयानकताके कारण चन्द्रमा दिनोंदिन क्षीण होते चले गये। इस रोगसे छूटनेके लिये उन्होंने बहुत यज्ञ किये, किंतु मुक्त न हो सके। क्षीण होते-होते उनका प्रकाश लुप्त-सा हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि एक तो अन्न आदि ओषधियोंकी उत्पत्ति रुक गयी दूसरे उनके स्वाद, रस और प्रभाव भी नष्ट हो गये। संसार विनाशके कगारपर आ खड़ा हुआ। देवताओंसे चन्द्रमाकी यह दुर्दशा देखी नहीं

गयी। जब वे जान गये कि दक्षने इनके लिये एक यक्ष्मा नामक रोगकी सृष्टि कर रखी है, तब वे दक्ष प्रजापतिके पास जाकर बोले कि 'चन्द्रमापर प्रसन्न होइये, उनके रोगके कारण संसार ही विनष्ट होनेको तैयार है।' तब दक्ष प्रजापतिने इस रोगको हटानेके लिये चन्द्रमाको सरस्वती नदीमें गोता लगानेको कहा। सरस्वती एक तो स्वयं देवी हैं, दूसरे उनके जलमें इस रोगको हटानेकी शक्ति भी है। दौर्भाग्यसे आज सरस्वती नदीका दर्शन नहीं होता।

आयुर्वेदमें इतनी क्षमता है कि रोगोंको समूल नाश कर दे और उनकी सृष्टि भी कर दे। दक्षकी तरह चिकित्सकोंके चिकित्सक भगवान् शङ्करने बाणासुरके युद्धमें ज्वरकी ही सृष्टि कर डाली थी। इसी प्रकार आजसे दो हजार वर्ष पहले मगध-सम्राट्को सिरदर्द रहता था, ठीक निदान न हो सकनेसे लाख चिकित्सा करनेपर भी वह दर्द गया नहीं। उस समय तक्षशिलाके स्नातक जीवककी तूती बोल रही थी। जीवकके पास दो ऐसी लकड़ियाँ थीं, जो 'एक्स-रे'का काम करती थीं। उन लकड़ियोंसे जीवकको यह स्पष्ट ज्ञान हो गया कि कोई कनखजूरा कभी उनके नाकमें घुस गया होगा, जो वहाँ चिपक गया और वहाँका रस पी रहा है। इस समय अङ्ग-प्रत्यङ्ग बढ़नेसे उसने भीषण रूप ले लिया। निदान हो जानेपर रोगको हटाना कठिन काम नहीं होता, लेकिन जीवक जान रहा था कि जो भी दवा इनके नाकमें दी जायगी, उससे कनखजूरा तो मर जायगा, किंतु राजाको इतनी असह्य पीडा होगी कि वह वैद्यपर ही क्रुद्ध होकर उसे दण्ड दे सकता है। इसलिये वैद्यने एक चाल चली। राजासे कहा—'आप अपने यहाँके सबसे तेज घोड़ेको दे दीजिये, उससे हमें किसी आवश्यक कार्यके लिये एक घंटेके लिये बाहर जाना है, तबतक आप दवाके प्रयोगसे स्वस्थ हो जायँगे। एक दवा मैं दिये जा रहा हूँ, इसे थोड़ी देर बाद नाकमें डालियेगा। एक घंटे बाद मैं वापस आऊँगा। राजाने घोड़ेकी व्यवस्था कर दी। जीवक घोड़ेपर बैठकर बहुत तेजीसे भागा और अपने अभिलषित स्थानपर पहुँच घोड़ेको बाँधकर बैठ गया। उसने एक सेबके कई टुकड़े किये, एक टुकड़ेमें रोगोत्पादक दवा मिलायी और दूसरे टुकड़ेमें रोगशामक तथा स्वयं कई टुकड़े काटकर धीरे-धीरे खाने लगा। वह देखता जाता था कि हमारे पीछे हमको पकड़नेके लिये कोई आ रहा है कि नहीं। थोड़ी देर बाद सेनापति आ पहुँचा। उसका रुख बहुत कठोर था—डाँटता हुआ बोला—'सम्राट्को तुमने कौन-सा जहर दिया? वे इतने छटपटा रहे हैं कि जिसका ठिकाना नहीं है। चलो, तुम्हें फाँसी लगायी जायगी।'

जीवकने कहा—'सेनापतिजी! जल्दी क्या है? आप भी थोड़ा फल खा लीजिये, थक गये होंगे। खाकर चले चलेंगे।' सेनापतिको उसकी राय पसंद आ गयी। उसने कहा—अच्छा दे दो। जीवकने रोगोत्पादक दवा-मिश्रित सेबका टुकड़ा सेनापतिको खानेके लिये दे दिया। उस टुकड़ेको मुँहमें रखते ही बेचारे सेनापतिके हाथ-पाँव स्तब्ध हो गये, बोली बंद हो गयी, वह निढाल होकर पड़ गया। बेचारेकी आँखोंसे आँसूका प्रवाह बह चला। जीवकने शान्ति और प्रेमसे समझाया 'सेनापतिजी! हमने आपको कोई नुकसान नहीं पहुँचाया है, आप बहुत तैशमें आये थे, हमको मारते-पीटते ले चलते और पीछे इससे आपको भी बहुत पश्चात्ताप होता। आप पाँच मिनट विश्राम कीजिये। हम जो कह रहे हैं, उसका प्रमाण अभी मिल जायगा। आपके आनेके बाद सम्राट् स्वस्थ हो गये हैं और हमारे स्वागतके लिये उन्होंने बड़े-बड़े राजपुरुषोंको भेजा है, जो शान्तिपाठ करते हुए मुझे ले चलेंगे, यह देखकर आपको अपनी अशिष्टताके लिये तकलीफ होती। आपको यह तकलीफ न हो, इसीलिये हमने थोड़ी देरके लिये ऐसे रोगकी सृष्टि कर दी है, ताकि आप कुछ अशिष्टता न कर सकें।'

इतनेमें सचमुच जीवकके स्वागतके लिये एक बहुत बड़ा समूह आ पहुँचा। एक सम्राट्की तरह उसका स्वागत किया गया। तब जीवकने सेबका वह टुकड़ा सेनापतिके मुँहमें लगाया, जिसमें रोगशमन करनेकी शक्ति थी। रोगशामक दवा-मिश्रित टुकड़ेको मुँहमें लगाते ही सेनापति भला-चंगा हो गया।

जीवकके इन दोनों प्रयोगोंसे सेनापतिको शारीरिक और मानसिक विश्राम ही मिला था। कोई कष्ट नहीं हुआ था। इस प्रकार वैद्योंमें आवश्यकतानुसार रोगकी सृष्टि और रोगके शमन करनेकी शक्ति होती है।

परम्परा—दक्ष प्रजापतिने समग्र आयुर्वेद अश्विनीकुमारोंको दिया और इस परम्पराको बनाये रखा। (ला०बि०मि०)

देववैद्य अश्विनीकुमार

त्वष्टाने अपनी कन्या संज्ञाका विवाह भगवान् भास्करसे किया था। संज्ञाका अर्थ होता है सम्यक् ज्ञानवाली। संज्ञामें अपने नामके अनुरूप ही सम्यक् ज्ञानका गुण विद्यमान था। वह अपने पतिकी सेवामें निरन्तर लगी रहती थी; क्योंकि पत्नीके लिये यही सम्यक् ज्ञान है। इस सेवामें भगवान् भास्करका प्रचण्ड तेज उसे विघ्न पहुँचाता था, क्योंकि भगवान्‌का वह प्रचण्ड तेज उसे सहन नहीं हो पाता था। वह उस तेजको जी कड़ा करके सहा करती और पतिको यह नहीं समझने देती थी कि उनसे उसको कोई कष्ट हो रहा है। वह सोचती थी कि धीरे-धीरे सहनशक्ति आ जायगी। किंतु मनु, यम और यमुना—इन संतानोंके हो जानेके बाद भी पतिका तेज उसके लिये असह्य रहा। उसने तपस्याकी शरण ली। किंतु पतिकी सेवा छोड़कर पत्नीके लिये तपस्या करना भी धर्म नहीं माना जाता। इसलिये उसने एक उपाय निकाला। उसने अपनी छायाको पतिकी सेवाके लिये नियुक्त कर दिया और स्वयं अपने सतीत्वकी सुरक्षाके लिये वह अश्वाका रूप धारण करके उत्तरकुरुमें तपस्या करने लगी।

जब भगवान् सूर्यको इस रहस्यका पता चला, तब वे अपनी पत्नीके प्रति दयार्द्र हो गये और अश्वरूप धारणकर उससे मिले। इस प्रकार संज्ञासे जुड़वाँ संतानें उत्पन्न हुईं, इसमें एकका नाम दस्र और दूसरेका नासत्य है। माताके नामपर इनका संयुक्त नाम अश्विनीकुमार है। (महा०अनु० १५०।१७-१८)

इनका सौन्दर्य बहुत आकर्षक है (ऋ० ६।६२।५)। इनके देहसे सुनहरी ज्योति छिटकती रहती है (ऋ० ८।८।२)। ये दोनों देवता जितने सुन्दर हैं, उतने ही सुन्दर उनके पावन कर्म हैं। स्मरण करते ही वे उपासकोंके पास पहुँच जाते हैं और उनके संकटको तुरंत दूर कर देते हैं (ऋ० १।११२।३)। शयु नामक एक ऋषि थे। इनकी गाय वन्ध्या थी, अश्विनीकुमारोंने गायके थनोंको इतना सशक्त कर दिया कि उनसे दूधकी धारा बहने लगी (ऋ० १।११२।३)। दुर्दान्त असुरोंने रेभ नामक ऋषिके हाथ-पैर बाँधकर उन्हें जलमें डुबा दिया था। अश्विनीकुमारोंने उनको बाल-बाल बचा लिया। असुरोंने यही दुर्गति वन्दन ऋषिकी भी की। अश्विनीकुमारोंने उन्हें भी शीघ्र ही बचा लिया (ऋ० १।११२।५)। राजर्षि अन्तकको बाँधकर असुरोंने अथाह जलमें फेंक दिया था। यही अत्याचार राजर्षि भुज्युके साथ भी किये जानेपर अश्विनीकुमारोंने उन्हें भी बचा लिया (तैत्ति० ब्राह्मण ३।१)।

चमत्कारी चिकित्सक

देवताओंने इन दयालु अश्विनीकुमारोंके ऊपर चिकित्साका पूरा भार सौंप रखा था। **'अथ भूतदयां प्रति'** यह आयुर्वेदका सिद्धान्त इनके जीवनमें स्वभाव बनकर उतरा हुआ था। ये हर प्राणीको ढूँढ़-ढूँढ़कर उसकी मानसिक और शारीरिक बाधा दूर किया करते थे।

(१) शल्य-कर्म

(क) कटे हुए सिरको जोड़ना—एक बार देवराज इन्द्रने दध्यङ्‌ङाथर्वण ऋषिपर रोक लगा दी थी कि वे मधुविद्याका उपदेश किसीको न करें। नहीं तो जिस समय वे पढ़ाने लगेंगे, उसी समय उनका सिर काट दिया जायगा। इस तरहकी रोक लग जानेसे इस आत्मविद्याका विनाश ही हो जाता। अश्विनीकुमार अन्य प्राणियोंकी तरह इस अध्यात्म-विद्यापर भी पसीज गये। ये दध्यङ्‌ङाथर्वण ऋषिसे उस विद्याको पढ़ने गये। दध्यङ्‌ङाथर्वण ऋषि महान् औपनिषद पुरुष थे। वे भी चाहते थे कि ब्रह्मविद्याका प्रसार रुके नहीं। किंतु उनके सामने विवशता थी, उन्होंने अश्विनीकुमारोंसे अपनी विवशता बताते हुए देवराज इन्द्रकी कही हुई चेतावनी सुनायी कि 'तुम इस ब्रह्मविद्याको किसीको मत पढ़ाना, यदि पढ़ाओगे तो तुम्हारा मस्तक उसी समय काट डालूँगा'—

स होवाचेन्द्रेण वा उक्तोऽस्म्येतच्चेदन्यस्मा अनुब्रूयास्तत एव ते शिरश्छिन्द्यामिति।

(बृहदा०शा०भा० २।५।१६)

इसके बाद अपने वाक्यका उपसंहार करते हुए ऋषिने कहा—'बीचहीमें सिर कट जायगा तो विद्या अधूरी ही रह जायगी। मैं पूरी विद्याका उपदेश कैसे कर सकता हूँ?' इसपर अश्विनीकुमारोंने कहा—'हम दोनोंने एक उपाय ढूँढ़ निकाला है। आपके पढ़ानेके पहले हम आपका मस्तक काटकर कहीं सुरक्षित रख देंगे, इसके बाद अश्वका सिर काटकर आपके सिरमें जोड़ देंगे। इस प्रकार पहले अश्वके सिरसे उपदेश देकर फिर निजी मस्तकसे आप विद्याका पूरा प्रवचन कर सकेंगे।'

ऋषि महान् थे। वे अश्विनीकुमारोंको इस विद्याका अधिकारी समझ चुके थे और अधिकारीको विद्या-प्रदान एक आवश्यक कर्तव्य होता है, दूसरे विद्याका बचाव भी हो रहा था। इसलिये महान् ऋषिने अश्विनीकुमारोंको अपनी स्वीकृति दे दी। उन्होंने अपना मस्तक कटवाकर घोड़ेका सिर लगवा लिया और उसी मस्तकसे विद्याके पूर्वाङ्गका उपदेश दिया। इसी समय इन्द्रने आकर इनका सिर काट डाला। इसके बाद सिद्धहस्त अश्विनीकुमारोंने उनके निजी सिरको धड़में फिरसे जोड़ दिया। इस सिरसे अवशिष्ट समग्र मधु-विद्याका उपदेश अश्विनीकुमारोंके प्रति इन्होंने किया। (बृहदा०शा०भा० २।५।१६)

(ख) दीर्घतमाका कटा सिर जोड़ा गया—दीर्घतमा सूक्तद्रष्टा ऋषि थे। ये ममताके पुत्र थे। एक तो ये जन्मान्ध थे, दूसरे जर्जर वृद्ध हो चुके थे। दास लोग इनकी सेवा करते-करते ऊब चुके थे। वे चाहते थे कि इनका शरीर न रहे तो हमें छुटकारा मिल जाय। सभीने मिलकर असहाय दीर्घतमाको आगमें झोंक दिया। ऋषिने अश्विनीकुमारोंका स्मरण किया। इन दोनों देववैद्योंने ऋषिको बाल-बाल बचा लिया। जलनेका शरीरपर और मनपर कोई खराब असर न पड़ने दिया। दास तो इनको मारनेपर तुले ही थे। अवसर मिलते ही उन लोगोंने ऋषिके हाथ-पैर बाँधकर अथाह जलमें डाल दिया। ऋषिने पुनः अश्विनीकुमारोंकी शरण ली। इस बार भी उनका बाल बाँका न हुआ। दास बहुत उद्विग्न हुए। त्रैतत् तो आपेसे बाहर हो गया और उसने तलवारका ऐसा हाथ जमाया कि सिर कटकर दूर छिटक गया। ऋषिको इस क्रियाकी सुगबुगाहट मिल गयी थी, इसलिये उन्होंने तुरंत अश्विनीकुमारोंको याद करना शुरू कर दिया था। परिणाम यह हुआ कि दयालु अश्विनीकुमार आये और दूर पड़े हुए सिरको जोड़कर उन्हें भला-चंगा बना दिया। (ऋ० १।१५८)

(ग) शरीरके तीन कटे टुकड़ोंको जोड़ना—शत्रुओंने श्याव ऋषिके शरीरको काटकर तीन टुकड़े कर दिये थे। अश्विनीकुमारोंने तीनों टुकड़ोंको जोड़कर उन्हें पुनर्जीवित कर दिया। (ऋ० १। ११७)

(घ) कटी जाँघके स्थानपर लोहेकी जाँघ लगाना—खेल नामक एक सुयोग्य राजा थे। अगस्त्यजी उनके पुरोहित थे। उनकी पत्नी विश्पला थी। वह युद्धमें कुशल थी, संग्राममें लड़ने जाया करती थी, एक दिन युद्धमें शत्रुओंने उसकी एक जाँघ काटकर अलग कर दी। अगस्त्यजीने अश्विनीकुमारोंकी स्तुति की। अश्विनीकुमार आ गये और विश्पलाको लोहेकी जाँघ लगा दी तथा तुरंत ही इस योग्य बना दिया कि वह चलने-फिरने लगी और छिपे हुए धनको दूसरी जगह ले गयी। (ऋ० १।११६।१५)

(२) वृद्धसे युवा बनाना

(क) च्यवन ऋषिको यौवन प्रदान—च्यवन मुनि महर्षि भृगुके पुत्र थे। जन्मसे ही तेजस्वी और तपस्याके प्रेमी थे। एक बार उन्होंने वैदूर्य पर्वतके निकट नर्मदाके तटपर तपस्या आरम्भ की। एकाग्र होनेसे वे ठूंठे काठके समान जान पड़ते थे। धीरे-धीरे दीमकोंने उनको मिट्टीसे ढक दिया। लताएँ उनपर चढ़ गयीं। किंतु तपस्यामें लीन च्यवनको इन सबका भान नहीं था। उन्हीं दिनों राजा शर्याति इस सरोवरके तटपर अपने पूरे लाव-लश्करके साथ आये। राजा शर्याति आदर्श प्रजापालक थे और जनताके प्रिय थे। सब सुख होनेके बावजूद संतानके नामपर केवल एक सुन्दर पुत्री थी, जिसका नाम था सुकन्या। सुकन्याको वह वनस्थली बहुत भायी। वह सखियोंके साथ वनमें इधर-उधर घूमने लगी। घूमते-घामते वह च्यवनकी उस बाँबीके पास जा पहुँची। वहाँकी भूमि बहुत ही सुहावनी थी। उन लोगोंकी चहलकदमीसे ऋषिका ध्यान टूट गया। संयोगसे कन्या अकेली ही बाँबीके पास जा पहुँची। उसकी सुन्दरता देख च्यवनको बहुत आह्लाद हुआ। उन्होंने सुकन्याको पुकारा, किंतु वह आवाज इतनी क्षीण थी कि सुकन्या उसे सुन न सकी। वह आवाज प्रेमसिक्त थी। वातावरणमें मादकता लाती हुई, फूलने-फलने लगी। इधर जब सुकन्याने उस बाँबीमें चमकती हुई दो चीजें देखी, तब उसे बहुत कौतूहल हुआ। इतना कौतूहल हुआ कि उस रहस्यको जाननेके लिये उन्हें काँटेसे बेध दिया। ऋषि च्यवनमें सभी गुण थे, किंतु उनमें क्रोध नामका बहुत बड़ा दुर्गुण घर किये बैठा था। आँखें बींध जानेसे वह क्रोधसे लाल हो गये और उन्होंने शर्यातिकी सेनाके मल-मूत्र बंद कर दिये। राजा शर्यातिकी सेना अनुशासित थी, किंतु मल-मूत्रावरोधसे वह छटपटाने लगी। जो जहाँ था वह वहीं कराहने लगा।

राजा समझ गये कि यहाँ जो च्यवन ऋषि कहीं तप कर रहे हैं, उनकी हमारी ओरसे कोई अवज्ञा अवश्य हो गयी है। उन्होंने सबसे पूछा—यहाँ च्यवन ऋषि तपस्या कर रहे हैं, वे स्वभावतः क्रोधी हैं, उनका किसीने अपराध तो

नहीं किया? शीघ्र बता दें। सुकन्याने आपबीती सुना दी। यह सुनकर शर्याति शीघ्र ही बाँबीके पास गये, उन्होंने बाँबीसे ढके वयोवृद्ध महात्मा च्यवनको देखा और उनसे अपने सैनिकोंका कष्ट-निवारण करनेके लिये प्रार्थना की। उन्होंने कहा—'मेरी पुत्रीसे अज्ञानवश आपका अपराध हो गया है, आप उस अपराधको क्षमा करें।'

वृद्ध ऋषि सुकन्यापर पहले ही आसक्त हो गये थे। उन्होंने कहा—'मैं इस अपराधको तभी क्षमा कर सकता हूँ, जब तुम्हारी कन्या पतिरूपमें मुझे वरण कर ले।'

राजा निरुपाय थे। उन्हें अपनी महान् हृदयवाली पुत्रीपर विश्वास था कि वह प्रजाके हितके लिये अपना बलिदान स्वीकार कर लेगी। उन्होंने महात्मा च्यवनको अपनी पुत्री दे दी। च्यवन मुनिके प्रसन्न होते ही सभी संकट टल गये। खुशी-खुशी लोग राजधानी लौट आये।

सुकन्याका ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। वह तप और नियमका पालन करती थी। प्रेमपूर्वक पतिकी सेवा करने लगी। च्यवनकी जिस क्षीण आवाजको वह पहले नहीं सुन सकी थी, उसे अब वह कण-कणमें गूँजती हुई सुन रही थी। शरीर बूढ़ा होता है, किंतु प्रेम निरन्तर तरुण ही बना रहता है। पतिप्रेम ही पत्नीके लिये धर्म है और उस धर्ममें च्यवनकी वह क्षीण आवाज प्राणका संचार कर रही थी। उन्हीं दिनों रुग्ण मानवोंकी खोज[1]में दोनों अश्विनीकुमार पृथ्वीपर विचरण कर रहे थे। संयोगसे वे च्यवनके आश्रमकी ओरसे कहीं जा रहे थे। उस समय सुकन्या स्नान करके अपने आश्रमकी ओर लौट रही थी। उसे देखकर अश्विनीकुमारोंको बहुत विस्मय हुआ। उन्होंने उससे पूछा—'तुम किसकी पुत्री और किसकी पत्नी हो?' सुकन्याने अपने पिता और पतिका नाम बताया, फिर अपना नाम भी बता दिया। अन्तमें कहा कि 'मैं अपने पतिदेवके प्रति निष्ठा रखती हूँ।'

अश्विनीकुमारोंने परीक्षाकी दृष्टिसे कहा—'सुकन्ये! तुम अप्रतिम रूपवती हो, तुम्हारी तुलना किसीसे नहीं की जा सकती। ऐसी स्थितिमें उस वृद्ध पतिकी उपासना कैसे करती हो, जो काम-भोगसे शून्य है? अतः च्यवनको छोड़कर हम दोनोंमेंसे किसी एकको अपना पति चुन लो।' सुकन्याने नम्रतासे कहा—'महानुभावो! आप मेरे विषयमें अनुचित आशंका न करें, मैं अपने पतिमें पूर्ण अनुराग रखती हूँ। प्रेम आदान नहीं, प्रदान चाहता है। पतिका सुख ही मेरा सुख है।'

सुकन्या परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुकी थी। दोनों देववैद्योंको इससे बहुत संतोष हुआ। वे बोले—'हम दोनों देवताओंके श्रेष्ठ वैद्य हैं—'आवां देवभिषग्वरौ' (महा० वन० १२३। १२)। तुम्हारे पतिको हम अपने-जैसा तरुण और सुन्दर बना देंगे, उस स्थितिमें तुम हम तीनोंमेंसे किसी एकको अपना पति बना लेना। यदि यह शर्त तुझे स्वीकार हो तो तुम अपने पतिको बुला लो।'

सुकन्याने जब च्यवनसे इस घटनाको सुनाया तो सुन्दरता और यौवन पानेके लिये वे ललचा उठे। वे अश्विनीकुमारोंके अद्भुत चमत्कारसे अवगत थे, अतः सुकन्याके साथ वे अश्विनीकुमारोंके पास पहुँचे।

अश्विनीकुमारोंने पहले तो च्यवन ऋषिको जलमें उतारा। थोड़ी देर बाद वे स्वयं भी उसी जलमें प्रवेश कर गये। एक मुहूर्ततक जलके अंदर अश्विनीकुमारोंने च्यवनकी चिकित्सा की।[2] इसके बाद वे तीनों जब जलसे बाहर निकले तीनोंका रूप-रंग एवं अवस्था एक ही-जैसी थी। उन तीनोंने सुकन्यासे एक साथ ही कहा—'हम तीनोंमेंसे किसी एकको अपनी रुचिके अनुसार अपना पति बना लो।'



१. एतस्मिन् समये भुवं विचरन्तौ भिषज्यन्तौ (श०ब्रा० ४।१।५।८ व्याख्या)

२. ऋग्वेदने स्पष्ट लिखा है कि देववैद्य अश्विनीकुमारोंने औषध-प्रयोगके द्वारा ही बूढ़े च्यवन ऋषिको युवा बनाया था— युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः। (अश्विना) हे अश्विनीकुमारो! (युवं) तुम दोनोंने (शचीभिः आत्मीयैर्भैषज्यलक्षणैः कर्मभिः) (सायण) भैषज्यरूप कार्यके द्वारा (जरन्तं च्यवानम्) बूढ़े च्यवन ऋषिको (युवानम्) फिरसे जवान (चक्रथुः) किया था। (ऋक्० १।११७।१३)

प्रारम्भमें तो सुकन्या ठगी-सी खड़ी रह गयी। उन तीनोंमेंसे उसका पति कौन है, वह समझ नहीं पाती थी। अन्तमें उसके पातिव्रत्य धर्मने उसका साथ दिया। वह पतिको पहचान गयी और उसने च्यवनको पतिके रूपमें चुन लिया। सुकन्या इस बार भी परीक्षामें खरी उतरी।

च्यवन मुनिने तरुण अवस्था, मनोवाञ्छित रूप और पतिव्रता पत्नीको पाकर बहुत ही हर्षका अनुभव किया। वे देववैद्य अश्विनीकुमारोंका आभार मानने लगे। उन्होंने प्रसन्न होकर दोनों देवोंसे कहा—'आप दोनोंने मुझे उपकारके बोझसे लाद दिया है, यह तभी हलका होगा, जब मैं आप दोनोंको यज्ञमें देवराज इन्द्रके सामने ही सोमपानका अधिकारी बना दूँगा—

कृतो भवद्भ्यां वृद्धः सन् भार्यां च प्राप्तवानिमाम्।
तस्माद् युवां करिष्यामि प्रीत्याहं सोमपीथिनौ।
मिषतो देवराजस्य सत्यमेतद् ब्रवीमि वाम्॥

(महाभारत वन० १२३। २३)

जर्जर बूढ़ेका जवान हो जाना और देवताओंमें सबसे सुन्दर अश्विनीकुमारोंकी सुन्दरताका उस शरीरमें उतर जाना—ये दोनों बातें ऐसी विलक्षण थीं कि बात-ही-बातमें सारी दुनियामें फैल गयीं। राजा शर्यातिने जब यह शुभ समाचार सुना तो उन्हें वह सुख मिला, जो सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य मिल जानेसे ही हो सकता है। सुकन्याकी माता तो प्रसन्नतासे रो पड़ी। राजा पत्नी और सेनाके साथ महर्षि च्यवनके आश्रमपर आये। वहाँ च्यवन और सुकन्याकी जोड़ीको सुखी देखकर पत्नीसहित शर्यातिको इतना हर्ष हुआ कि वह रोमावलियोंसे फूट पड़ा। च्यवन ऋषिने आये हुए लोगोंका अत्यधिक आदर किया। राजा और रानीके समीप बैठकर सुन्दर-सुन्दर कथाएँ सुनायीं। अन्तमें च्यवनने कहा—'राजन्! मैं आपसे यज्ञ कराऊँगा, आप तैयारी करें।' महर्षि च्यवनके इस प्रस्तावसे राजा शर्याति बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उनके कथनका बहुत सम्मान किया।

समयसे यज्ञ प्रारम्भ हो गया। महर्षि च्यवनने दोनों अश्विनीकुमारोंको देनेके लिये हाथमें सोमरस लिया। देवराज इन्द्र वहीं बैठे थे, उन्होंने मुनिको मना किया। उन्होंने कहा कि मेरा मत यह है कि वैद्यवृत्तिके कारण इन्हें यज्ञमें सोमपानका अधिकार नहीं रह गया है—

उभावेतौ न सोमार्हौ नासत्याविति मे मतिः।
भिषजौ दिवि देवानां कर्मणा तेन नार्हतः॥

(महाभारत वन० १२४। ९)

च्यवनने कहा—'देवराज! ये अश्विनीकुमार भी देवता ही हैं, इनमें उत्साह और बुद्धिमत्ता—ये दोनों भरे हुए हैं। रूपमें सब देवताओंसे ये बढ़-चढ़कर हैं। इन्होंने मुझे देवताओंके समान दिव्य रूपसे युक्त और अजर बनाया है। फिर इन्हें यज्ञमें सोमरसका अधिकार कैसे नहीं?'

इन्द्रने उत्तर देते हुए कहा—'ये दोनों चिकित्साका कार्य करते हैं और मनमाना रूप धारण करके मनुष्य-लोकमें भी विचरण करते हैं, ऐसी स्थितिमें इन्हें सोमपानका अधिकार कैसे रह सकता है?'

इन्द्र इस बातको बार-बार दोहराने लगे। तब समर्थ महर्षि च्यवनने इन्द्रकी बातोंकी अवहेलना करके अश्विनीकुमारोंको देनेके लिये सोमरस उठा लिया। 'महर्षि च्यवन! यदि तुम इन्हें सोमरस दोगे तो मैं तुमपर वज्रसे प्रहार करूँगा।' इसके जवाबमें महर्षि मुसकराये और अश्विनीकुमारोंको देनेके लिये सोमरस हाथमें ले लिया। देवराज इन्द्रने प्रहार करनेके लिये वज्र उठा लिया। तब महर्षि च्यवनने उनकी भुजाको ही स्तम्भित कर दिया और मन्त्रोंका उच्चारण कर अश्विनीकुमारोंके लिये अग्निमें सोमरसकी आहुति दे दी।



इसके बाद इन्द्रको मारनेके लिये च्यवन ऋषिने अपने तपोबलसे एक कृत्या प्रकट कर दी। वह कृत्या बहुत ही भयानक थी। उसका नीचेका ओठ धरतीपर लगा हुआ था और दूसरा स्वर्गलोकतक पहुँच गया था। भयंकर गर्जना कर वह कृत्या इन्द्रको खानेके लिये दौड़ी, इन्द्र घबड़ा गये। उन्होंने महर्षि च्यवनसे कहा—'आप मुझपर प्रसन्न हों, ये दोनों अश्विनीकुमार आजसे सोमपानके अधिकारी होंगे। इस कृत्याको आप हटा दें। मैंने तो यह कार्य इस उद्देश्यसे किया है, जिससे आपकी शक्ति अधिक-से-अधिक प्रकाशमें आये तथा विश्वमें सुकन्या और उसके पिताकी कीर्तिका विस्तार हो।' यह सुनकर महर्षि च्यवनका क्रोध शान्त हो गया, उन्होंने देवेन्द्रके सब कष्टोंको हटा लिया।

(ख) वन्दन ऋषिको यौवन प्रदान—वन्दन ऋषि अश्विनीकुमारोंपर बहुत भरोसा रखते थे। उनकी कारुणिकतापर उन्हें गहरा विश्वास था और वे प्रतिदिन अश्विनीकुमारोंकी स्तुति किया करते थे। अश्विनीकुमारोंपर श्रद्धाके साथ-साथ इनकी उम्र भी बढ़ती चली गयी। बुढ़ापा आ गया। धीरे-धीरे बुढ़ापेका असर इनके अङ्ग-प्रत्यङ्गपर लक्षित होने लगा। चलना-फिरना कठिन होने लगा। तब इन्होंने अश्विनीकुमारोंसे प्रार्थना की कि वे इनके बुढ़ापेको हटा दें। परम दयालु अश्विनीकुमारोंने इनकी प्रार्थना सुन ली और शीघ्र ही इनके पास आ गये। फिर उन्होंने इनके शरीरके शिथिल अङ्गोंको वैसे ही नया बना दिया जैसे कोई शिल्पी किसी पुराने रथको उसके अवयवोंको इधर-उधर घटा-बढ़ाकर नया बना देता है (ऋ० १।११९।७)। अश्विनीकुमार अत्यन्त दयालु हैं। उन्होंने नवयौवन तो प्रदान किया ही साथ ही इनकी याचनासे भी आगे बढ़कर उन्होंने इनकी आयुको भी बढ़ा दिया। अश्विनीकुमारोंकी कृपामयी दृष्टिसे इनके जीवनमें जो भी विघ्न आते थे, उसे वे टालते जाते थे। एक बार वन्दन ऋषि कुँएमें गिर गये। अश्विनीद्वयने इनको कुँएसे भी बाहर निकाल दिया। कुँएमें गिर जानेसे इनकी पत्नी बहुत रो-धो रही थीं, उन्हें भी आश्वस्त कर दिया (ऋ० १।११६।६)।

(ग) घोषाको युवावस्था प्रदान—घोषा कक्षीवान् ऋषिकी कन्या थी। वह कुष्ठरोगसे ग्रसित हो गयी थी। विवाह न होनेसे पिताके घरमें ही रहती थी। तपश्चर्याको उसने अपने जीवनका अङ्ग बना लिया था। उम्र ढल जानेपर उसके मनमें संताप हुआ कि एक स्त्रीके लिये उसका पति ही सब कुछ होता है, पतिकी सेवासे बढ़कर स्त्रीके लिये और कोई कर्तव्य नहीं रहता। पति नहीं रहनेसे पुत्र भी न होगा और परलोकके लिये पुत्र आधार होता है। अतः पुत्रका होना भी एक स्त्रीके लिये आवश्यक होता है, किंतु मैं दोनोंसे शून्य हूँ। इस चिन्ताने धीरे-धीरे उसपर अधिकार जमा लिया।

आतस्थे महती चिन्ता न पुत्रो न पतिर्मम॥

(बृहद्देवता ७।४३)

पीछे उसे याद आया कि मेरे पिताके सामने भी यह बुढ़ापा एक समस्या बनकर खड़ी हो गयी थी, तब पिताजीने दोनों अश्विनीकुमारोंका सहारा लिया था और उनको प्रसन्न करके जवानी प्राप्त कर ली थी, जवानीके साथ लम्बी आयु, आरोग्य एवं ऐश्वर्य भी प्राप्त कर लिये थे। दोनों अश्विनीकुमार बहुत दयालु हैं, उन्होंने पिताजीको '**सर्वभूतहन्**' विष भी दिया था, जिससे सभी उपद्रवोंका हनन होता था।

इससे घोषामें आत्मविश्वास जाग उठा। वह सोचने लगी कि मैं उन्हींकी पुत्री हूँ। मैं भी पिताकी तरह जवानी, रूप और सौभाग्य प्राप्त कर सकती हूँ। मुझे भी अश्विनीकुमारोंको संतुष्ट करना चाहिये। परंतु उसे दुःख हुआ कि अश्विनीकुमारोंके संतुष्ट करने लायक उसके पास कोई मन्त्र नहीं है। इस चिन्ताको उसके तपने दूर कर दिया। तपस्याके प्रभावसे दो सूक्तों (ऋ० १०।३९-४०)- का उसे दर्शन हो गया। इन दो सूक्तोंके गानसे अश्विनीद्वय प्रसन्न हो गये। अश्विनीकुमारोंने घोषाको भी जवान बना दिया, रोगसे रहित कर दिया और सुन्दर भी बना दिया। अश्विनीकुमार इतने दयालु हैं कि उन्होंने घोषाके लिये पतिकी भी व्यवस्था कर दी और पुत्रके रूपमें ऋषि सुहस्त्यको प्रदान किया (बृहद्देवता)।

(घ) श्याव ऋषिका कुष्ठ हटाकर उन्हें जवान बनाया—घोषाकी तरह श्याव ऋषिके कुष्ठको भी अश्विनीकुमारोंने ठीक कर दिया था और उन्हें इस योग्य बना दिया कि वे विवाह भी कर सकें। विवाह करा भी दिया (ऋ० १।७८)

श्याव ऋषिके एक ओरके अङ्ग-प्रत्यङ्ग कुष्ठरोगसे गल गये, अश्विनीकुमारोंने उन्हें भी शीघ्र ही भला-चंगा कर दिया (ऋ० १।११७।२४)।

(३) अंधोंको आँखें दीं

(क) एक बार उपमन्युने आकके पत्ते खाये, पत्तोंने पेटके अंदर आगकी ज्वाला उठा दी। जिससे आँखोंकी ज्योति नष्ट हो गयी, बेचारा अंधा हो गया। अंधा होनेके कारण कुँएमें गिर पड़ा। जब शामको उपमन्यु अपने गुरु आयोद धौम्यके पास नहीं पहुँचा, तब उपाध्याय उसे खोजनेके लिये स्वयं जंगलमें चले गये और आवाज लगायी—'उपमन्यु! कहाँ हो? चले आओ।' उपमन्युने कुँएमेंसे ही आवाज लगायी—'गुरुजी! मैं कुँएमें गिर पड़ा हूँ। निकल नहीं सकता।' जब उपाध्यायको पता चला कि आकके पत्ते खानेसे इसकी आँखें खराब हो गयी हैं, तब उन्होंने उपमन्युसे कहा—'बेटा! अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हैं, तुम उनकी स्तुति करो, वे तुम्हारी आँखें ठीक कर देंगे।' उपमन्युने गुरुकी आज्ञा पाकर अश्विनीकुमारोंकी ऋग्वेदके मन्त्रोंद्वारा स्तुति प्रारम्भ की। दयालु अश्विनीकुमार रमणीक स्तुति सुनकर झट वहाँ आ गये और प्यारभरे शब्दोंमें बोले—'उपमन्यो! यह पुआ है, इसे खा लो।' उपमन्युने नम्रतासे कहा—'भगवन्! मैं



ब्रह्मचारी हूँ। बिना गुरुके निवेदन किये[१] इस पुएको नहीं खा सकता हूँ। अश्विनीकुमारोंने कहा—'ऐसा ही करो। तुम्हारी इस गुरुभक्तिसे हम प्रसन्न हैं, इससे तुम्हारी आँखें तो ठीक हो ही जायँगी, तुम्हारे दाँत भी सोनेके बन जायँगे। इतना ही नहीं, तुम्हारी बुद्धिमें सम्पूर्ण वेद तथा सभी धर्मशास्त्र स्वतः स्फुरित हो जायँगे।' (महा० आदिपर्व अ० ३)

(ख) इसी प्रकार ऋज्राश्वके दोनों नेत्र नष्ट हो गये थे। वे कुछ भी देख नहीं पाते थे, चिकित्साके द्वारा अश्विनीकुमारोंने ऋज्राश्वकी आँखें भी ठीक कर दीं (ऋग्वेद १।११६।१६)।

(ग) असुरोंने कण्व ऋषिकी आँखोंको आगसे झुलसा दिया था। वे कुछ भी नहीं देख पाते थे। अश्विनीकुमारोंने उनकी भी आँखें ठीक कर दीं (ऋग्वेद १।११८।७)।

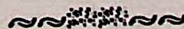
(घ) कवि भी आँखोंके न रहनेसे चल-फिर नहीं सकते थे। अश्विनीकुमारोंने उन्हें आँखें दीं (ऋ० १। ११७। ८)।

वध्रिमती नामकी एक सती महिला थी, पुत्रके बिना बहुत दुःखी रहती थी, उसने भी अश्विनीकुमारोंकी शरण ली। दोनों वैद्योंने उसे 'हिरण्यहस्त' नामक बहुत सुन्दर और योग्य पुत्र प्रदान किया (ऋग्वेद १।११७।२४)।

इस प्रकार वेद और पुराणने अश्विनीकुमारोंको प्राणियोंपर दया करनेवाले दक्ष वैद्यके रूपमें हमारे सामने उपस्थित किया है। अन्तमें उनकी प्रशंसामें कहा है—

'हे अश्विनीकुमारो! रोगग्रस्त पुरुषको जिसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये हों, उन्हें स्वस्थ कर दो। आप अङ्ग-प्रत्यङ्गको जोड़कर पहले जैसा ठीक बना देते हैं।'

अत्रिके अपत्य पौर ऋषिके शब्दोंमें—'हे अश्विनीकुमारो! हमारे पिता अत्रि असुरोंद्वारा अग्निमें झोंक दिये गये थे, तब आपके स्तवनसे उन्हें कोई ताप नहीं हुआ था (ऋ० ५। ७३। ६)। ऋषिने पुनः कहा—हे अश्विनीकुमारो! पुरातत्त्वके जाननेवाले विद्वान् जो आपको 'सुखदाता' कहते हैं, वह निश्चय ही सत्य है (ऋ० ५। ७३। ९)। (ला०बि०मि०)



१. आयुर्वेदने शिष्योंको आदेश दिया है कि तुम पहले गुरुको अर्पण करो, उसके बाद उसका उपयोग करो—पूर्वं गुर्वर्थोपाहरणे यथाशक्ति प्रयतितव्यम् (चरक वि० अ० ८।१३)।

देवराज इन्द्रका शल्यकर्म

[जिनका अध्यापन भूतलपर आयुर्वेदके रूपमें अवतीर्ण हुआ]

देवराज इन्द्रने अश्विनीकुमारोंसे आयुर्वेदको प्राप्त किया। इस शाश्वत विद्याको अश्विनीकुमारोंने दक्ष प्रजापतिसे और दक्ष प्रजापतिने ब्रह्माजीसे प्राप्त किया था। त्रिदेवोंकी तरह देवराज इन्द्रने भी आयुर्वेदका प्रयोगात्मक रूप अश्विनीकुमारोंके ऊपर ही छोड़ रखा था; क्योंकि इन्द्रके ऊपर तीनों लोकोंके पालनका विपुल भार था (महा० आदि० ३। १४८-१४९)। फिर अन्य देवोंकी तरह अन्तरङ्ग अवसर आनेपर इन्द्रने भी आयुर्वेदको प्रयोगात्मक रूप दिया है। जैसे—(१) अपालाके चर्मरोग तथा उसके पिताके खालित्यका निवारण एवं (२) परावृज ऋषिके अंधापन और पङ्गुरोगका निवारण।

(१) अपाला अत्रिकी पुत्री थी, वह चर्मरोगसे पीडित थी। इसलिये उसके पतिने दुर्भगा कहकर उसे त्याग दिया था। वह पिताके घरमें रहने लगी और त्वचाके इस रोगको दूर करनेके लिये इन्द्रकी उपासना करने लगी। आगे चलकर उपासनाने कठोर तपका रूप ले लिया। एक बार अपालाके मनमें आया कि देवराज इन्द्रको सोमका रस बहुत भाता है, क्यों न उन्हें सोमपान करा दूँ! वह सोमकी खोजमें नदीके तटपर पहुँची। नहाकर जब लौट रही थी, तो सोमलता उसे प्राप्त हो गयी। वह बहुत प्रसन्न हुई। उसने एक ऋचा **'कन्यावा०'** (ऋक्० ८। ९१। १)-से सोमकी स्तुति की (बृहद्देवता ६। १०१)। उसने सोमको चबाया और चबाकर **'असौ य एषि०'** (ऋक्० ८। ९१। २) इस ऋचासे इन्द्रका आवाहन किया (बृहद्देवता ६। १०२)।

देवता अपने भक्तोंकी अभिलाषा जानते हैं। इन्द्रने भी समझ लिया कि अपाला हमें सोमरस पिलाना चाहती है। वे तुरंत उसके सामने आ पहुँचे। अपाला उन्हें पहचान न सकी। सोमलता चबाते समय दाँतोंके घर्षणसे मीठी ध्वनि आ रही थी, उसको लक्ष्यकर इन्द्रने पूछा—'क्या पत्थरोंसे सोम पीसा जा रहा है?' अपालाने उत्तर दिया 'नहीं'; इस उत्तरको सुनकर इन्द्र लौटने लगे। अपाला पहचान नहीं रही थी। संदेहमें पड़कर बोली—'आप लौट क्यों रहे हैं? आप तो सोम पीनेके लिये घर-घर पहुँचा करते हैं, आप मेरे घर चलिये, आपका अधिक सम्मान करूँगी, वहाँ सोम पिलाऊँगी तथा भूजा हुआ जौ, गुड़ और अपूप भी दूँगी।' जब इन्द्र अपालाके घर पहुँचे तो उसने इन्द्रको पहचान लिया। उसने अपने मुखमें रखे हुए सोमसे कहा—'हे सोम! तुम आये हुए इन्द्रके लिये शीघ्र ही निचुड़ जाओ।' देवता भक्तवत्सल होते हैं। इन्द्रने अपालाकी इच्छा पूर्ण कर दी और उसका दिया सोम पी लिया। प्रसन्न होकर बोले—'अपाले! बोलो, तुम क्या चाहती हो? मैं तुम्हारी कामनाएँ पूर्ण करूँगा।' अपालाने प्रथम वर यह माँगा—'पिताजीका सिर गंजा हो गया है, आप उनका खालित्य मिटा दें।' उसने द्वितीय वर माँगा—'पिताजीका खेत ऊसर हो गया है, वह हरा-भरा और फलोंसे लद जाय।'

इन्द्रने अत्रिके खालित्यदोषको हटा दिया और उनके ऊसर खेतको हरा-भरा भी बना दिया। उसके बाद इन्द्रने अपालाके चर्म रोगको हटानेके लिये शल्य-क्रियाका प्रयोग किया। यहाँ शल्यका काम उन्होंने अपने रथके जुएके बीचके छिद्रसे लिया। अपालाको जुएके बीचके छिद्रमें डालकर बाहर खींचा। ऐसा उन्होंने तीन बार किया; उसकी त्वचा पहली बारके छिलनेसे शल्यक (शाही), दूसरी बार गोधा तथा तीसरी बार कृकलास बन गयी। इस प्रकार त्वचाके तीन आवरण निकालकर उसके नीचेकी त्वचाको उन्होंने बिलकुल सूर्यकी तरह चमका दिया (ऋक्० ८। ९१। ७)।

इन्द्रका हस्तलाघव—अपालाकी त्वचा गिरगिट (कृकलास) और मगरमच्छ (गोधा)-की तरह घिनौनी एवं शाही (शल्यक)-की तरह कँटीली थी। इन्द्रने पहली बारकी शल्यक्रियासे कँटीला भाग छीलकर हटा दिया। दूसरी बार घड़ियाल-जैसी चमड़ीको छीलकर उसके देहसे अलग कर दिया और तीसरी बार गिरगिट-जैसी रूखी चमड़ीको छीलकर अलग कर दिया। इसके बाद उसकी बची हुई त्वचामें सूर्यके तेज-जैसी चमक ला दी। ये सब कृत्य हुए, किंतु इसका दुःखदायी प्रभाव अपालापर न पड़ा। ऐसी चिकित्सा विस्मापक होती है। अपालाको इन क्रियाओंसे वैसे ही कोई कष्ट नहीं हुआ, जैसे दध्यङ्डाथर्वण ऋषिके सिरको काटने और जोड़नेमें उनपर उसका कोई

असर नहीं हुआ था। सिर कटते और जुड़ते गये, किंतु उनका अध्यापनका कर्म चलता ही रहा, जैसे कुछ हुआ ही न हो। अश्विनीकुमारोंका वह हस्तलाघव इनके शिष्य इन्द्रमें भी ज्यों-का-त्यों आ गया था, तभी अपालाको इस शल्यक्रियासे न वर्तमानमें कष्टदायक अनुभूति हुई और न भविष्यमें।

(२) परावृज ऋषिका अंधापन और लँगड़ापन हटाना—परावृज अंधे और लँगड़े हो गये। देवराज इन्द्रने उनका अंधापन मिटा दिया। आकृति भी सुन्दर बना दी और लँगड़ापन हटाकर चलने-फिरनेके योग्य बना दिया।

(ला०बि०मि०)



भूतलपर आयुर्वेदके प्रकाशक महर्षि भरद्वाज

अथ भूतदयां प्रति—जिस प्रकार पितामह ब्रह्माने अपनी संततियोंपर दयार्द्र होकर आयुर्वेद-ग्रन्थका निर्माण किया, उसी प्रकार प्रत्येक ऋषि प्राणियोंपर करुणा करनेके लिये ही आयुर्वेदके प्रति आकृष्ट हुए हैं। हिमालय प्रदेशमें जो बहुतसे ऋषि इकट्ठे हुए थे, उसका उद्देश्य ही रोगोंसे पीडितोंको बचानेका था—

किं करोमि क्व गच्छामि कथं लोका निरामयाः।
भवन्ति सामयानेतान्न शक्नोमि निरीक्षितुम्॥

(भावप्रकाश पूर्वखण्ड १। १९)

अर्थात् मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ कि संसारके प्राणी रोगसे रहित हो जायँ। मैं किसी व्यक्तिको रोगसे ग्रसित देखनेमें समर्थ नहीं हूँ। यह आवाज केवल आत्रेय ऋषिकी ही नहीं, अपितु प्रत्येक ऋषिकी थी। इसीलिये बिना बुलाये सभी हिमालय प्रदेशमें एकत्रित हो गये।

भरद्वाजकी परदुःखकातरता—भरद्वाज मुनि बचपनसे ही जनताके सुखमें ही अपना सुख देखने लगे थे। वे देवगुरु बृहस्पतिके पुत्र थे। वहाँके वातावरणने उन्हें समझा रखा था कि प्रत्येक मानवका कल्याण वेदसे ही सम्भव है, अतः उन्होंने समग्र वेदकी प्राप्तिका संकल्प ले लिया। वे वेदाध्ययनमें दिन-रात लगे रहते। वेदके मन्त्र-पर-मन्त्र आते-जाते और उनकी समाप्ति कहीं दीखती न थी। इस तरह वेदाध्ययनमें उनका एक सौ वर्ष बीत गया, किंतु वेदका कोई ओर-छोर नहीं दिखायी दे रहा था। वे समझ गये कि केवल अध्ययनसे समग्र वेदकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। इसलिये देवराज इन्द्रकी सहायता लेनी चाहिये और इस प्रकार अपने श्रमसाध्य तपसे उन्होंने देवराजको प्रसन्न कर लिया। देवराजने उनकी आयुके तीन सौ वर्ष और बढ़ा दिये। अथक श्रममें वे तीन सौ वर्ष भी समाप्त हो गये, किंतु वेदके छोरका कोई पता नहीं लग सका। उनके अध्ययन-रूपी तपस्यासे देवराज बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने दर्शन देकर ऋषि भरद्वाजको कृतार्थ कर दिया तथा कहा कि वेद अनन्त होते हैं—**'अनन्ता वै वेदाः'** (तैत्ति० ब्रा०)। वेदका कोई अन्त नहीं होता। तुम अध्ययनसे समग्र वेद नहीं पढ़ सकोगे, इसलिये **'सावित्राग्निचयन'** नामक यज्ञ कर डालो, जिससे तुम्हें समग्र वेदका ज्ञान स्वतः हो जायगा।

द्रष्टा होनेसे समग्र वेदका दर्शन—इस यज्ञसे सूर्य-भगवान् प्रसन्न हो गये और उन्होंने भरद्वाजको मन्त्र-द्रष्टा बना दिया (तैत्ति० ब्रा०)। ऋषि द्रष्टा होनेके बाद जिस अंशको चाहते थे, वेदका वह अंश उनकी आँखोंके सामने वैसे ही लिखा हुआ दिखायी पड़ता, जैसे हम अपनी आँखोंसे पुस्तकोंमें देखते हैं। डॉ० पॉलब्रन्टनने महमूदवेकी घटनामें बताया है कि महमूदवेमें कुछ ऐसी गुप्तशक्ति थी, जिसके बलपर वह किसीके मनकी बातको वैसे ही जान लेता था, जैसे हम किसी किताबमें देखकर पढ़ लेते हैं। डॉ० पॉलब्रन्टनकी पुस्तकका अनुवाद 'गुप्त भारतकी खोज' के नामसे प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने बताया है कि अध्यात्मविद्याकी खोजमें ये भारत आये, संयोगसे उसी होटलमें ठहरे थे, जिस होटलमें मिस्रका तान्त्रिक महमूदवे ठहरा हुआ था। सबेरे उठकर डॉ० पॉलब्रन्टनने देखा कि उसके बगलवाली कोठरीमें लोग बड़े अदबके साथ क्रमबद्ध आ रहे हैं और किसीसे मिल-जुलकर लौट रहे हैं। इन्हें पता चला कि इसमें मिस्रके तान्त्रिक महमूदवे ठहरे हैं और मनकी बात बताते हैं। पॉलब्रन्टनको बड़ी प्रसन्नता हुई कि भारतकी धरतीपर पैर रखते ही एक गुप्तशक्तिके स्वामीसे उनकी भेंट हुई। वे भी अवसर पाकर महमूदवेसे मिले। औपचारिक बातचीतके बाद इन्होंने प्रश्न किया कि हमने सुना है कि आप किसीके भी मनकी बात जान जाते हैं, यह कहाँतक सत्य है? महमूदवेने मुस्कराकर

कहा—हाँ, यह सत्य है; आप कुछ मनमें रखिये, प्रश्न कीजिये और मैं बता दूँगा। तरीका यह है कि आप अपने मनकी बात एक कागजपर लिख लीजिये, मैं दूर बैठा हूँ। लिखते समय आप परीक्षा करते रहें कि मैं आपकी लिखावटको देख न सकूँ। इतना कहकर वह दूसरी ओर मुँह करके सड़ककी ओर निहारने लगा। फिर बोला— 'अगर लिखना समाप्त हो गया हो तो उस कागजको मोड़कर हाथमें रख लो और लिखनेकी पेन्सिल भी उसी हाथमें रख लेना।' डॉ० पॉलब्रन्टनने कहा—'हाँ, मैंने पेन्सिल-कागजको हाथमें रख लिया है।' तब वह डॉक्टरके पास आकर बैठा और उसने कहा कि 'आपने जो पूछा, वह प्रश्न यह है—मैं तीन वर्ष पहले किस पत्रका सम्पादक था—और उस पत्रका नाम अपने हाथके कागजको खोलकर पढ़ लीजिये।' पॉलब्रन्टनने बड़े आश्चर्यसे देखा कि तीन वर्ष पहले जिस पत्रका वह सम्पादक था, उसका नाम हाथके कागजमें लिखा हुआ था।

लंबी कथा है, हमें इस घटनासे यही देखना है कि उसके मनकी बातको उस तान्त्रिकने कैसे पढ़ लिया? पूछनेपर तान्त्रिकने रहस्य बताया कि मैंने कुछ प्रेतात्माओंको वशमें कर लिया है, उसमें मेरा मरा हुआ भाई भी है, उसका काम यह है कि दूसरेके मनकी बात पढ़कर मेरी आँखोंके सामने लिख देता है, मैं उसे बता देता हूँ।

जिस तरह महमूदवे प्रेतात्माके द्वारा लिखी हुई आनुपूर्वीको पढ़ लेता था, उसी तरह ऋषि लोगोंकी आँखोंके सामने भी वेदकी आनुपूर्वी दिखायी दे जाती है।

जैसे ऋषि बन जानेके बाद ब्रह्माका हृदय रेडियो-जैसा प्रतिफलनमें सक्षम हो गया था, वैसे ही ऋषि भरद्वाजका हृदय भी रेडियो बनकर नित्य प्रसारित होनेवाले वेदको मुखसे प्रकट कर देता था और उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा प्रचय—इन चारों स्वरोंके साथ ऋषिको वह मन्त्र सुनायी भी पड़ जाता था।

इस प्रकार वेदका जितना अंश वे चाहते थे, उतना उनको प्रत्यक्ष दिखायी दे जाता था। इस प्रकार समग्र वेदको अध्ययनसे नहीं पाया जा सकता, तपस्यासे जाना सकता है।

समग्र वेदके दर्शन और श्रवणसे समग्र आयुर्वेद भी ऋषि भरद्वाजके हस्तगत हो गया, किंतु आयुर्वेद क्रियात्मक होता है। क्रियात्मक रूप ऋषिके पास नहीं था और रोगी रोगसे पीडित होकर बिलबिला रहे थे। यह समस्या सभी ऋषियोंके सामने थी कि रोगी रोगकी पीडासे परेशान थे और क्रियात्मक रूप न जाननेके कारण हिमालयके एक प्रदेशमें इकट्ठे हो गये। उसमें प्रायः शीर्षस्थानीय सभी ऋषि थे। वहाँ बैठकर ऋषिगण जनताके रोगोंको दूर करनेके लिये उपाय ढूँढ़ने लगे। अन्तमें सभी ऋषियोंने एकमतसे ऋषि भरद्वाजको चुना कि ये देवलोक जाकर इन्द्रसे आयुर्वेद प्राप्त करें। इन्द्रसे प्राप्त किया जो आयुर्वेद होगा, उसे हम लोग क्रमसे पढ़कर रोगसम्बन्धी भयसे मुक्त हो सकेंगे—

त्वं योग्यो भगवन् सहस्रनयनं याचस्व लब्धं क्रमादायुर्वेदमधीत्य यं गदभयान्मुक्ता भवामो वयम्॥

(भावप्रकाश पूर्व० १। ४६)

भूतलपर आयुर्वेदका अवतरण—ऋषियोंकी प्रेरणासे महर्षि भरद्वाज स्वर्गलोक गये, वहाँ इन्द्रसे अङ्गोंसहित आयुर्वेदको पढ़कर पृथ्वीपर लौट आये और आयुर्वेदसे पृथिवीकी जनताको रोगसे मुक्त कर दिया। अन्य ऋषियोंने भी भरद्वाजका साथ दिया और वे दुनियासे रोगकी आर्तिको हटाकर ही संतुष्ट हुए।

शिष्य-परम्पराकी स्थापना—शिष्य-प्रशिष्योंके द्वारा आयुर्वेदके उपयोगी तत्त्वसे प्रत्येक प्राणीको लाभ पहुँचानेके लिये भरद्वाजजीने शिष्योंको पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। उनमेंसे एक महान् शिष्य धन्वन्तरि (अब्ज) थे। ये वही धन्वन्तरि हैं, जो भगवान् विष्णुके अशांशावतार हैं और जिन्होंने समुद्रके भीतर मथे हुए औषधियोंके कणोंका उचित संयोजनकर अमृत-जैसा दिव्य औषध तैयार किया था। काशिराज धन्वने इन्हीं धन्वन्तरिको पुत्ररूपमें प्रासिके लिये घोर तप किया था। धन्वन्तरिने उनको वरदान दिया कि हम तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे अवतीर्ण होंगे। महर्षि भरद्वाजने इन्हीं धन्वन्तरिको सविधि आयुर्वेद प्रदान किया। धन्वन्तरि तो धन्वन्तरि ही ठहरे, उन्होंने महर्षि भरद्वाजसे पढ़कर आयुर्वेदको आठ भागोंमें विभक्त कर दिया—

आयुर्वेदं भरद्वाजात्प्राप्तेः भिषजां क्रियाम्।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत्॥

(महा०)

इसी तथ्यको ब्रह्माण्डपुराणने भी लिखा है।

(ला०बि०मि०)



महर्षि वाल्मीकिके आरोग्य-साधन

[रामायणकालीन भारतमें चिकित्सा-व्यवस्था]

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणका स्वाध्याय करनेपर सर्वसाधन-सम्पन्न, सर्वथा स्वस्थ अतएव एक परम प्रसन्न समाजका चित्र बरबस हमारी आँखोंके सामने उभरकर आता है। चक्रवर्ती साम्राज्यकी तत्कालीन राजधानी अयोध्यामें विविध रोगोंके उपचारके लिये आवश्यक औषधियोंसे भरपूर तथा रोगियोंकी देखभालके लिये नितान्त उपयोगी अन्य समस्त सुविधाओंसे सम्पन्न चिकित्सालयोंकी व्यवस्था थी, जहाँ रोगोंके निदान किंवा उपचारमें परम कुशल सुयोग्य वैद्य सर्वदा सुलभ रहते थे। उनकी सेवाओंसे प्रसन्न होकर समय-समयपर सम्राट् उन्हें विविध रूपोंमें पुरस्कार प्रदान करके सम्मानित किया करते थे—

कच्चिद् वृद्धांश्च बालांश्च वैद्यान् मुख्यांश्च राघव।
दानेन मनसा वाचा त्रिभिरेतैर्बुभूषसे॥
(वा० रा० २।१००।६०)

भगवान् श्रीराम चित्रकूटमें भरतजीसे अन्य समाचारोंके साथ-साथ अयोध्याके वैद्योंका भी कुशल-क्षेम पूछते हैं। वैद्योंको समुचित रूपसे सम्मानित करनेमें भरत कभी प्रमाद तो नहीं करते हैं? यह जिज्ञासा भी प्रकट करते हैं (वा० रा० २।१००।४२)। इतना ही नहीं, भरतजीके साथ चित्रकूट आये हुए वैद्योंसे भी श्रीराम बड़ी तत्परताके साथ मिलते हैं (वा० रा० २।८३।१४)।

कोपभवनमें निश्चेष्ट-अवस्थामें पड़ी हुई कैकेयीको देखकर महाराज दशरथ उन्हें व्याधिग्रस्त समझ बैठते हैं और घबराकर वैद्योंको बुलानेमें व्यग्र हो उठते हैं। कैकेयीको आश्वासन भी देते हैं कि तुम अपनी बीमारी बताओ तो सही, मेरे पास ऐसे कुशल वैद्य हैं जो तुम्हें तुरंत रोगमुक्त कर देंगे—

सन्ति मे कुशला वैद्यास्त्वभितुष्टाश्च सर्वशः॥
सुखितां त्वां करिष्यन्ति व्याधिमाचक्ष्व भामिनि।
(वा०रा० २।१०।३०-३१)

चिकित्सा-पद्धति

रामायणमें अनेक प्रकारकी चिकित्सा-पद्धतियोंका उल्लेख मिलता है। आयुर्वेद-विज्ञानके पारङ्गत वैद्य अपनी-अपनी रसायनशालाओंमें ओषधियोंका निर्माण कराया करते थे। एतदर्थ नाना प्रकारके रोगोंके उपशमनके लिये औषधियोंके निर्माणमें उपयोगी लताओं, गुल्मों, पौधों, पत्तों, जड़ों, फूलों, जटाओं किंवा छालोंके अन्वेषणके लिये बड़ी संख्यामें सहायक वैद्योंका समूह घने जंगलोंमें, पर्वतोंपर तथा पर्वत-कन्दराओंमें नियमित रूपसे विचरण किया करता था; क्योंकि मूर्च्छा, श्वासावरोध, जलोदर, मूत्रावरोध, रक्त-प्रवाह-जैसे अनेक घातक रोगोंपर अनेक वानस्पत्य औषधियाँ जादूकी तरह तत्काल प्रभावकारी सिद्ध होतीं हैं। राम-रावण-युद्धके समय लक्ष्मणजीके मूर्च्छित हो जानेपर वैद्यराज सुषेण संजीवकरणी (संजीवनी) नामक वानस्पत्यौषधि लानेके लिये श्रीहनुमान्‌जीको हिमालय पर्वतपर भेजते हैं। वहाँ संजीवकरणीके साथ-साथ तीन और औषधियोंका भी वर्णन किया गया है—

दक्षिणे शिखरे जाता महौषधिमिहानय॥
विशल्यकरणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा।
संजीवकरणीं वीर संधानीं च महौषधीम्॥
(वा०रा० ६।१०१।३१-३२)

अर्थात् हे वीर! तुम हिमालय पर्वतके दक्षिण शिखरपर उत्पन्न होनेवाली विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी, संजीवकरणी और संधानी नामक महौषधियाँ जाकर ले आओ।

इन चारों औषधियोंमेंसे मूर्च्छामें संजीवकरणी, बाण या भालेके प्रहारसे घाव हो जानेपर विशल्यकरणी, घावोंके निशान भी न रहने पायें, इसके लिये सावर्ण्यकरणी और टूटी हुई हड्डियोंको जोड़नेके लिये संधानी नामक औषधिका प्रयोग प्रभावकारी सिद्ध हुआ करता था।

महेन्द्र पर्वतपर अपने फणोंपर स्वस्तिकका चिह्न धारण करनेवाले महाभयंकर विषधर सर्प निवास करते थे। उनके प्राणघातक विषको भी समाप्त कर देनेकी क्षमता रखनेवाली अनेक वनौषधियाँ वहाँ पुष्कल मात्रामें उत्पन्न हुआ करती थीं (वा० रा० ५।१।१९)।

वनस्पतियोंसे प्राप्त होनेवाली औषधियोंका प्रयोग तो

रोगोंके उपशमनके लिये किया ही जाता था, परंतु युद्धमें शस्त्र-प्रहारसे कटे हुए अङ्गोंको पुनः जोड़नेके लिये तथा गले-सड़े किसी अङ्गको काटकर शरीरसे अलग कर देनेके लिये आधुनिक शल्यक्रिया (Surgery)-का भी उपयोग किया जाता था। परंतु शल्यक्रियाको प्राथमिकता नहीं दी जाती थी। शस्त्र-प्रहारसे होनेवाले घावोंको तो वनौषधियोंसे भरा ही जाता था, घावोंके कारण होनेवाली भयानक शारीरिक वेदनाको भी जड़ी-बूटियोंसे ही दूर किया जाता था। श्रीलक्ष्मणजीने अपने प्रबल शस्त्र-प्रहारद्वारा देवताओंको भी विस्मित कर डालनेवाले अपूर्व युद्ध-कौशलसे मेघनादको समाप्त तो कर दिया था, परंतु उसके बाण-प्रहारोंसे उनके शरीरमें भी असह्य पीडा देनेवाले अगणित घाव हो गये थे, जिनके कारण उन्हें श्वासतक लेनेमें कठिनाई हो रही थी। उनकी यह करुण दशा देखकर श्रीराम शोक-विह्वल हो उठे। तब वैद्यराज सुषेणने लक्ष्मणजीकी नाकमें एक विशिष्ट औषधि सुँघायी, जिससे उनके शरीरसे बाण निकल गये और वे क्षणभरमें पीडामुक्त हो गये—

लक्ष्मणाय ददौ नस्तः सुषेणः परमौषधम्॥
स तस्य गन्धमाघ्राय विशल्यः समपद्यत।
तदा निर्वेदनश्चैव संरूढव्रण एव च॥
(वा० रा० ६। ९१। २४-२५)

परंतु पूर्ण-गर्भा महिलाओंके असावधानीवश फिसलकर गिर जाने अथवा किसी अन्य कारणसे यदि उनका गर्भस्थ शिशु उलट जाता और स्वाभाविक प्रसवके द्वारा उसका बाहर आ पाना सम्भव नहीं हो पाता तो ऐसी गम्भीर परिस्थितिमें वैद्य शल्यक्रियाका ही मार्ग अपनाया करते थे तथा तीक्ष्ण औजारोंके द्वारा आवश्यक चीर-फाड़ करके गर्भस्थ बालकको सफलतापूर्वक बाहर ले आया करते थे।

अशोकवाटिकामें रावण जब जानकीजीको डराते हुए कहता है कि तुमने यदि दो महीनोंके भीतर मेरी बात नहीं मानी तो मेरे रसोइये तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे—

द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां......सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः॥
(वा० रा० ५। २२। ९)

तब जानकीजी अपने सम्भावित अङ्गच्छेदको गर्भस्थ बालकके लिये की जानेवाली शल्यक्रियाकी तरह महान् कष्टदायक मानकर व्याकुल हो उठती हैं—

तस्मिन्ननागच्छति लोकनाथे
गर्भस्थजन्तोरिव शल्यकृन्तः।
नूनं ममाङ्गान्यचिरादनार्यः
शस्त्रैः शितैश्छेत्स्यति राक्षसेन्द्रः॥
(वा० रा० ५। २८। ६)

अर्थात् लोकनायक श्रीराम यदि समयसे यहाँ नहीं पहुँच पाये तो यह दुष्ट रावण मेरे अङ्गोंको वैसे ही काट डालेगा, जैसे गर्भस्थ शिशुकी (सुख-प्रसवके लिये) शल्यक्रिया करनेवाला वैद्य।

ऐसा प्रतीत होता है कि शल्यक्रियाके समय वैद्योंके सहायक-रूपमें नापित भी उपस्थित रहा करते थे और छोटी-मोटी चीर-फाड़ तो वे ही कर डालते थे; क्योंकि उक्त श्लोककी टीकामें वाल्मीकीय रामायणके प्रामाणिक टीकाकार श्रीगोविन्दराज महोदय 'शल्यकृन्तः'का अर्थ 'नापित' करते हैं। जो भी हो, महर्षि वाल्मीकि श्रीरामके राज्यकी विशेषताओंमें तीन बातें मुख्यतया बताते हैं—

१-सामान्य जनता नीरोग रहती थी।

२-बूढ़े भी स्वस्थ होनेके कारण शीघ्र नहीं मरते थे।

३-महिलाएँ भी स्वस्थ शरीरवाली होनेके कारण 'अरोग-प्रसवा' थीं।

इस वर्णनसे संकेत मिलता है कि तत्कालीन भारतकी चिकित्सा-व्यवस्था नितान्त सफल एवं सर्वाङ्गीण थी। यथा—

अनामयश्च मर्त्यानां साग्रो मासो गतो ह्ययम्॥
जीर्णानामपि सत्त्वानां मृत्युर्नायाति राघव।
अरोगप्रसवा नार्यो वपुष्मन्तो हि मानवाः॥
(वा० रा० ७। ४१। १८-१९)

[भरतजी श्रीरामजीसे कहते हैं कि हे राघव!] आपके राज्यमें अभिषिक्त हुए एक माससे अधिक हो गया, तबसे सभी लोग नीरोग दिखायी देते हैं। बूढ़े प्राणियोंके पास भी मृत्यु नहीं फटकती है। स्त्रियाँ बिना कष्टके प्रसव करती हैं। सभी मनुष्योंके शरीर हृष्ट-पुष्ट दिखायी देते हैं।

इतना ही नहीं, समुचित और उच्च चिकित्सा-व्यवस्था होनेके कारण लोगोंको रोगका भय ही नहीं रह गया था—

न व्याधिजं भयं चासीद् रामे राज्यं प्रशासति।
(वा० रा० ६। १२८। ९८)

हमारे पूर्वजन्मोंके पाप ही रोग बनकर प्रकट होते हैं, जो औषधिके साथ-साथ दान, हवन, व्रत और देवार्चनसे दूर होते हैं, यह श्रीधन्वन्तरिका कथन है—

पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैः जपहोमसुरार्चनैः॥

इस तथ्यपर भी तत्कालीन समाजका दृढ विश्वास था। तभी उस समयके स्त्री-पुरुष दान, पुण्य व्रत किंवा भगवदाराधना-जैसे आध्यात्मिक क्रिया-कलाप रोगमुक्तिके लिये भी किया करते थे। श्रीहनुमान्‌जीके आविर्भावके समय वायुदेवताके प्रकुपित हो जानेपर जब मूत्रावरोध-जैसा भयंकर रोग फैल गया, तब स्त्री-पुरुषोंने सम्मिलित रूपसे वायुदेवताकी ही आराधना की और उनके कृपा-प्रसादसे रोगमुक्त हुए (वा०रा० ७। ३५-३६)।

शासकीय प्रणालीकी असफलतासे किंवा राष्ट्राध्यक्ष आदिके प्रमादसे ही जनपदोंमें रोग फैलते हैं, जिससे अकालमृत्यु- जैसी त्रासद घटनाएँ घटती हैं, यह भावना उस समय समाजमें बद्धमूल थी। इसलिये शासकीय व्यक्ति अपने आचरण एवं चिकित्सा-व्यवस्थापर भरपूर ध्यान दिया करते थे।

(शास्त्रार्थ-पञ्चानन पं० श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री)



महर्षि वेदव्यासजीका आरोग्य-विषयक अवदान

महर्षि वेदव्यास भगवान् नारायणके अवतार हैं— **'व्यासो नारायणः स्वयम्', 'व्यासाय विष्णुरूपाय'**। वे अजर-अमर हैं तथा सभी आधि-व्याधियोंसे मुक्त हैं। महर्षि वेदव्यास सात चिरजीवियोंमेंसे एक हैं—**'अश्वत्थामा बलिर्व्यासो०'**।[१] सभी प्रकारकी आधि-व्याधियों तथा रोग-दोषोंसे मुक्तिके लिये और दीर्घ आयु एवं आरोग्यकी प्राप्तिके लिये पुण्यश्लोक भगवान् वेदव्यासजीका नित्य प्रातः स्मरण करना चाहिये। वेदव्यासजी परम भागवत हैं[२], जगत्‌पर इनका महान् उपकार है। सच्चे भक्तोंको ये आज भी दर्शन देते हैं और उनके कष्टोंका निवारण करके उन्हें भगवत्-पथका पथिक बना देते हैं।

महर्षि वेदव्यास वसिष्ठजीके प्रपौत्र, शक्ति-ऋषिके पौत्र, पराशरजीके पुत्र तथा महाभागवत शुकदेवजीके पिता हैं। वे परम गुरु हैं। पुराणोंमें प्रसिद्धि है कि यमुनाके द्वीपमें उनका प्राकट्य हुआ, इसलिये वे द्वैपायन, श्याम (कृष्ण) वर्णके थे, इसलिये कृष्ण द्वैपायन और वेद-संहिताका उन्होंने विभाजन किया, इसलिये व्यास किंवा वेदव्यास कहलाते हैं। वे प्रकट होते ही युवा हो गये और वेदोंका उच्चारण करने लगे। भगवान् वेदव्यासकी कृपासे ही हमें ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि इस रूपमें प्राप्त हुए। अठारह पुराण तथा उपपुराण हमें उनके अनुग्रहसे ही प्राप्त हुए हैं। इतिहास (महाभारत), ब्रह्मसूत्र (वेदान्तदर्शन), व्यासस्मृति तथा योगदर्शन (व्यासभाष्य) आदि सब वेदव्यासजीके द्वारा ही हमें प्राप्त हुए हैं। आजके विश्वका सारा ज्ञान-विज्ञान तथा सम्पूर्ण आरोग्यशास्त्र महर्षि वेदव्यासजीका उच्छिष्ट है— **'व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'**। **'यन्न भारते तन्न भारते'** के अनुसार धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष आदिके विषयमें जो उनके द्वारा कहा गया है, उसका ही अनुसरण अन्यत्र भी हुआ है, जो उन्होंने नहीं कहा, वह अन्यत्र भी नहीं मिलता।[३] उन्हींकी कृपासे श्रीमद्भगवद्गीता-जैसा ग्रन्थरत्न विश्वको प्राप्त हो सका है— **'व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम्'** (गीता १८। ७५)। वे महाशाल शौनक आदि कुलपतियों, शंकराचार्य, गोविन्दाचार्य आदि विभूतियोंके भी परम गुरु हैं। उनकी सबपर समान रूपसे कृपा-दृष्टि है।

अपने अध्यात्म, तपोबल, ज्ञान-विज्ञान एवं आरोग्यदानके माध्यमसे उन्होंने प्राणिजगत्‌की जो सेवा की है, जो उपकार किया है, वह चिरस्मरणीय है। संसारके प्राणियोंके दुःख-दर्द, रोग-कष्टोंको देखकर आर्द्रहृदय महर्षि वेदव्यासजी सदा उनके व्याधिहरणका ही उपाय सोचा करते हैं। वेद-संहिताओंमें जो आरोग्यके मूल बीज सन्निहित थे, उन्हें

---

१. अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः। कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥
२. प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीकव्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान्। रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणादीन् पुण्यानिमान् परमभागवतान् स्मरामि॥
३. धर्मे अर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ। यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्॥

उन्होंने सबके कल्याणके लिये पुराणोंमें विस्तृतरूपसे प्रकाशित कर दिया—'इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्।' उन्होंने वेदान्तदर्शन (ब्रह्मसूत्र), श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंमें जहाँ अध्यात्म-चिकित्सा और भवरोगसे मुक्तिके उपायोंका निदर्शन किया है, वहीं कई पुराणों—गरुडपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मवैवर्त तथा बृहद्धर्मपुराण आदिमें युक्तिव्यपाश्रय-चिकित्साके अवलम्बनसे पथ्यापथ्य-विचारपूर्वक औषध-सेवन तथा संयम-नियमके अनुपालनद्वारा सदा नीरोग रहनेकी जीवन-पद्धति भी निर्दिष्ट की है।

भगवान् वेदव्यासने शरीरमें स्थित कुपित दोषको सभी रोगोंका मूल कारण माना है और दोषके प्रकुपित होनेका कारण अनेक प्रकारके अहित पदार्थोंका सेवन भी बताया है। उन्होंने चार प्रकारके रोग बताये हैं—(१) शारीर, (२) मानस, (३) आगन्तुक तथा (४) सहज। ज्वर, कुष्ठ आदि शारीर रोग हैं, क्रोध आदि मानस रोग हैं, चोट आदिसे उत्पन्न रोग आगन्तुक हैं और भूख-बुढ़ापा आदि सहज रोग हैं—

शारीरमानसागन्तुसहजा व्याधयो मताः।
शारीरा ज्वरकुष्ठाद्याः क्रोधाद्या मानसा मताः॥
आगन्तवो विघातोत्थाः सहजाः क्षुज्जरादयः।

(अग्नि० २८०। १-२)

ओषधियोंमें अमोघ शक्ति होती है और उनमें देवताओंका निवास होता है। सोम (चन्द्रमा) ओषधियोंके अधिष्ठातृ देवता हैं। इसलिये ओषधियोंके चयन, उत्पाटन आदिमें जहाँ उनकी प्रार्थना आदि की जाती है, वहीं चिकित्सा करनेसे पूर्व औषध प्रदान करते समय तथा ओषधि-सेवन करते समय देवताओंसे दीर्घ आयु-आरोग्यप्राप्तिकी प्रार्थना करनी चाहिये, ऐसा महर्षि व्यासजी निर्देश देते हैं—

हरिगोद्विजचन्द्रार्कसुरादीन् प्रतिपूज्य च।
.... भेषजारम्भमाचरेत्॥

(अग्नि० २८०। १२)

अर्थात् भगवान् विष्णु, गोमाता, ब्राह्मण, चन्द्रमा, आरोग्यके अधिष्ठाता भगवान् सूर्य आदि देवताओंका पूजन करके चिकित्सा-कर्म किंवा औषध प्रारम्भ करे।

भगवान् वेदव्यासजी यह निर्देश करते हैं कि रोगीकी आरोग्य-प्राप्तिकी कामनासे औषध-कर्ममें निम्न प्रार्थना करनी चाहिये, ऐसा करनेसे औषधमें देवत्वकी प्रतिष्ठा हो जाती है, फलतः रोग दूर हो जाता है और आनन्दकी प्राप्ति होती है, मन्त्र इस प्रकार है—

ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः।
ऋषयश्चौषधिग्रामा भूतसङ्घाश्च पान्तु ते॥
रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा।
सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते॥

(अग्नि० २८०। १३-१४)

अर्थात् ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार, रुद्र, इन्द्र, भूमि, चन्द्रमा, सूर्य, अनिल (वायु), अनल (अग्नि), ऋषि, ओषधिसमूह तथा भूतसमुदाय—ये तुम्हारी रक्षा करें। जैसे ऋषियोंके लिये रसायन, देवताओंके लिये अमृत तथा श्रेष्ठ नागोंके लिये सुधा ही उत्तम एवं गुणकारी है, वैसे ही यह औषध तुम्हारे लिये आरोग्यकारक एवं प्राणरक्षक हो।

गरुड, अग्नि आदि पुराणोंमें वेदव्यासजीने समग्र अष्टाङ्ग आयुर्वेदका वर्णन किया है। उन्होंने रोगोंके निदान, उनके उपचार, ओषधियों तथा सिद्धयोगोंके वर्णनके साथ ही रसायनशास्त्र, ऋतुचर्या, दिनचर्या, पथ्यापथ्य-विवेक, संयम, नियम, ग्रहदोष, अगदतन्त्र, बालग्रहदोष, स्त्रीचिकित्सा तथा मृत्युञ्जय-योग आदि बताये हैं। इसी प्रकार अश्वायुर्वेद, गजायुर्वेद, गवायुर्वेद तथा वृक्षायुर्वेद आदिका भी वर्णन किया है।

व्यासजी बताते हैं कि सामान्यतया ओषधियोंके निर्माणकी पाँच विधियाँ होती हैं, यथा—रस, कल्क, क्वाथ, शीतकषाय तथा फाण्ट। औषधोंको निचोड़नेसे रस होता है, मन्थनसे कल्क बनता है, औटानेसे क्वाथ होता है, रात्रिभर रखनेसे शीतकषाय तथा जलमें कुछ गरम करके छान लेनेसे फाण्ट होता है, यथा—

ओषधीनां पञ्चविधा तथा भवति कल्पना।
रसः कल्कः शृतः शीतः फाण्टश्च मनुजोत्तम॥
रसश्च पीडको ज्ञेयः कल्क आलोडिताद्भवेत्।
क्वथितश्च शृतो ज्ञेयः शीतः पर्युषितो निशाम्॥
सद्योऽभिशृतपूतं यत् तत् फाण्टमभिधीयते।

(अग्नि० २८१। २१-२३)

यह तो सामान्यतः स्थावर ओषधियोंद्वारा आरोग्य-प्राप्तिकी बात हुई। इसीके साथ ही वेदव्यासजी यह भी बताते हैं कि मन्त्रोंके जप, देवाराधन आदिद्वारा भी प्रारब्धजन्य रोगोंकी चिकित्सा होती है। उन्होंने मन्त्रोंको आयु और आरोग्यका कर्ता बताया है—'आयुरारोग्यकर्तारम्' (अग्नि० २८४। १)। वे बताते हैं कि 'ॐ हूं विष्णवे नमः'

यह मन्त्र उत्तम औषध है। इसका जप करनेसे देवता और असुर श्रीसम्पन्न तथा नीरोग हो गये थे—

ॐ हूं नमो विष्णवे मन्त्रोऽयं चौषधं परम्॥
अनेन देवा ह्यसुराः सश्रियो नीरुजोऽभवन्।

(अग्नि० २८४।३-४)

इसी प्रकार सर्वोत्तम औषध क्या हैं? इसके विषयमें वे कहते हैं—

सर्वरोगप्रशान्त्यै स्याद्विष्णोर्ध्यानं च पूजनम्॥

(अग्नि० २८०।४८)

अर्थात् सब रोगोंकी शान्तिके लिये भगवान् विष्णुका ध्यान एवं पूजन सर्वोत्तम औषध है।

भगवान् व्यासदेव एक विलक्षण बात बतलाते हुए कहते हैं कि यदि मानव जगत्के सब प्राणियोंमें भगवदद्बुद्धि या आत्मबुद्धि या परमात्म-बुद्धिकी भावना करते हुए सबके उपकारका व्रत ले ले और सदैव धर्माचरण करे तो वह सदाके लिये रोगोंसे मुक्त हो जायगा और भवरोगसे भी छुटकारा प्राप्त कर लेगा। इसे उन्होंने महौषध (महान् औषध) बताया है—

'भूतानामुपकारश्च तथा धर्मो महौषधम्।'

(अग्नि० २८४।४)

व्यासजीकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनका स्मरण करनेसे उनकी कृपाद्वारा उत्तम स्वास्थ्य एवं अखण्ड भक्ति—दोनों प्राप्त होती है, कलिका कोई प्रभाव नहीं होने पाता, ऐसे भगवान् व्यासको नमस्कार है—

व्यासं व्यासकरं वन्दे मुनिं नारायणं स्वयम्।
यतः प्राप्तकृपालोकाल्लोका मुक्ताः कलेर्ग्रहात्॥



श्रीमद्भगवद्गीतामें आरोग्य-उक्ति

तनरोग, मनोरोग और भवरोगसे मुक्त रहना सच्चा आरोग्ययुक्त होना है। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें 'युक्त' के ग्रहण और 'अति' के त्यागद्वारा तनरोगसे, आन्तरिक विकारोंके त्यागद्वारा मनोरोगसे और भगवच्छरणापन्न होकर भवरोगसे छुटकारा पानेकी युक्ति बतायी है।

जड़-चेतन सभीको नीरोगी होना जरूरी है। पौधे और वृक्ष भी यदि रुग्ण रहें तो शुद्ध फूल और फल नहीं हो सकते। इसलिये नीरोगिता सबके लिये अनिवार्य वस्तु है। चेतन प्राणियोंमें सर्वश्रेष्ठ मनुष्यके लिये तो कहना ही नहीं है। व्याधिग्रस्त तन-मनवाले व्यक्तिसे कुछ नहीं बन सकता। स्वस्थ मन और नीरोग शरीरवाला मनुष्य ही मानव-जीवनके उद्देश्यको सफलतापूर्वक प्राप्त कर सकता है। शरीरकी भी अपेक्षा मनका नीरोग रहना अत्यावश्यक है; क्योंकि शरीरकी व्याधि असाध्य होकर अन्तिम स्थितिमें पहुँचनेपर इस वर्तमान स्थूल शरीरका अन्त हो जाता है—

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

(गीता २।२२)

अर्थात् जीर्ण हुए शरीरोंको त्यागकर जीवात्मा दूसरे नये शरीरोंमें चला जाता है।

जीर्ण शरीरसे जीव निकल जानेपर इस वर्तमान स्थूल शरीरसे तो छुटकारा मिल जाता है, पर मन व्याधिग्रस्त रहनेपर जन्म-जन्मान्तर बिगड़ जाता है। व्याधिग्रस्त मन जीवको अधोगतिमें ले जाता है, यह निश्चित है। इसलिये भगवान् श्रीकृष्णने नीरोग—ज्वररहित मनसे संतापरहित होकर कर्म करनेको कहा है—

युध्यस्व विगतज्वरः

(गीता ३।३०)

व्यग्रता, आसक्ति, ममता, चिन्ता, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, अहंकार, असहिष्णुता, अधैर्य और दर्प आदि मनकी व्याधियाँ हैं। इनके वशीभूत होना मानसिक व्याधिग्रस्त होना है। इन्हीं व्याधियोंको भगवान् श्रीकृष्णने 'ज्वर' कहा है। जो इन व्याधियोंसे मुक्त रहता है यानी काम, क्रोधादिके वेगोंको सहन-दमन कर सकता है, वही व्यक्ति सुखी रह सकता है—वही योगी हो सकता है—

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥

(गीता ५।२३)

इन व्याधियोंसे युक्त रहनेवाला मन ही मानवका शत्रु है और इनसे विपरीत यानी इनके वशमें न होकर स्वस्थ रहनेवाला मन ही मानवका मित्र है—

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥

(गीता ६।६)

अर्थात् जिस जीवात्माद्वारा मन और इन्द्रियोंसहित शरीर जीता हुआ है, उसका तो वह आप ही मित्र है और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियोंसहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिये वह आप ही शत्रुके सदृश शत्रुतामें वर्तता है।

ऐसे मित्ररूप मनका सहारा लेकर परमपदकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील रहना ही मनुष्यमात्रका कर्तव्य है—

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी॥
(गीता १५।४)

उस (आसक्ति आदिसे रहित होने)-के पश्चात् उस परमपद (परमात्मा)-को ढूँढ़ना चाहिये, जिसमें पहुँच जानेपर (जिसको पा जानेपर) फिर लौटकर (संसारमें) नहीं आना पड़ता। मैं उन्हीं आदिपुरुषकी शरणमें पहुँचूँ, जिनसे अनादिकालसे चली आयी सृष्टि विस्तारको प्राप्त हुई है।

इस मानव-शरीरकी प्राप्ति बहुत दुर्लभ है। चौरासी लाख योनियोंमें भटकनेके बाद भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे यह योनि मिल पाती है। ऐसी पवित्र और दुर्लभ योनिको पाकर भी इन्द्रियोंके भोगोंमें ही सुख मानकर आयुको गँवाना बुद्धिमानी नहीं है। भगवान् श्रीराम अपने प्रजाजनोंको सम्बोधित करते हैं—

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥
एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥
× × ×
आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। ....॥
(रा०च०मा० ७।४३।७-८, ४३; ४४।१-२, ४—७)

अज्ञानवश आसक्त होकर जीव जबतक कर्म करता रहेगा, तबतक विषयोंमें उसकी लिप्सा रहेगी। लिप्साके कारण वह कर्म करेगा और उससे शुभ तथा अशुभ कर्म बनता रहेगा। इन्द्रियोंके अधोगामी होनेके कारण उनसे प्रायः अशुभ कर्म यानी अधर्म ही बनते हैं। अधर्मका फल बुरा ही होता है। जब वे कर्मके फलस्वरूप अनेक कष्ट भोगते हैं, तब वे ईश्वरको दोषी मानकर चिल्लाते—रोते रहते हैं और कहते हैं—ईश्वरने मुझे ऐसा कष्ट दिया। वे अपने दूषित कर्मोंके फलस्वरूप भोगनेको मिला हुआ दुःख नहीं मानते। यदि उनसे कुछ पुण्य हो भी गया तो भी उस पुण्यके प्रभावसे जो स्वर्गादि भोग या इस लोकमें ऐश्वर्य अथवा इच्छित वस्तुकी प्राप्ति हो भी जाय तो वह सुख-भोग सदा रहनेवाला नहीं होगा और भोग भोगते-भोगते बीती आयुकी सुध भी नहीं रहेगी। परिणाम यह होता है कि उस भोगसे उसे तृप्ति भी नहीं होती। महाराज ययाति हजारों-हजार वर्षोंतक सशक्त इन्द्रियोंसे सुख भोगते रहे, पर उस भोगसे उनकी तृप्ति नहीं हो सकी और उन भोगोंसे ऊबकर उन्होंने अन्तमें कहा—

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥
पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयान् सेवतोऽसकृत्।
तथापि चानुसवनं तृष्णा तेषूपजायते॥
(श्रीमद्भा० ९।१९।१३-१४, १८)

अर्थात् पृथ्वीमें जितने भी धन-धान्य, (हाथी, घोड़े और गाय आदि) पशु और स्त्रियाँ आदि वस्तुएँ हैं, कोई भी उस पुरुषके मनको तृप्त नहीं कर सकता, जिसका मन कामवासनासे हरण हो चुका हो। विषयानुरागियोंकी कामनाएँ भोगोंके भोगनेसे कभी शान्त नहीं हो सकतीं। जैसे प्रज्वलित अग्निमें घी डालनेसे आग नहीं बुझती, वरन् और अधिक भभक उठती है। पूरे एक हजार वर्ष विषयोंको भोगते-भोगते मैंने बिताया, इतनेपर भी मेरी तृप्ति होना तो दूर भोग भोगनेकी तृष्णा बढ़ती ही जा रही है।

इस प्रकार क्षणिक सुख एवं दीर्घ दुःखसे होनेवाली मनकी हर्ष और विषादकी दशा बने रहना ही मानसिक व्याधि है। इस व्याधिको मिटानेकी औषधि है—धैर्य और

श्रद्धाको अपनाते हुए विषयोंकी अनित्यता तथा दुःखरूपताको[१] समझते हुए भगवान्‌की शरणमें जाना—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥[२]

(गीता ९। ३३)

भगवान्‌को सम्पूर्ण लोकोंका महान् ईश्वर, सम्पूर्ण यज्ञ और तपस्याओंका स्वामी, सभी प्राणियोंका अहैतुकी स्नेहदाता समझकर मनको उन्हींकी ओर लगानेका प्रयास करते रहना चाहिये—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २९)

हमारा मन जितना-जितना परमात्माकी ओर झुकता जायगा, उतनी-उतनी मनमें शान्ति आती जायगी। जहाँ शान्ति आयी, मन प्रसन्न हो जायगा। प्रसन्नता आनेपर मनका उद्वेग मिट जाता है। मनका उद्वेग मिटना ही दुःखोंकी परिसमाप्ति है— **'प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते'** (गीता २। ६५)। दुःखका अन्त होना ही आरोग्यकी सच्ची प्राप्ति है। इस तरहकी आरोग्यता प्राप्त करना ही मानव-जीवनका पुरुषार्थ है।

इस आन्तरिक आरोग्यकी प्राप्तिके लिये स्थूल शरीरका स्वस्थ रहना जरूरी है। शारीरिक रोगजनित कष्टके रहते साधनमें सधैर्य जुटे रह सकनेकी शक्ति किसी बिरले संतमें ही हो सकती है। इसलिये कहा है—

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' यानी शारीरिक स्वस्थताके लिये जीवन संयमी होना चाहिये। कोई असंयमी व्यक्ति नीरोगतारूपी सिद्धि नहीं पा सकता—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

(गीता ६। १६-१७)

'अधिक खानेवाला या बिलकुल कम खानेवाला, अधिक सोनेवाला या अधिक जागनेवाला व्यक्ति (मनको वशमें करनेवाली सिद्धिरूप-) योगको नहीं पा सकता। इस दुःखको मिटानेवाले योगको तो ठीक-ठीक खाने-सोनेवाला, ठीक-ठीक कर्म करनेवाला और उचित मात्रामें चलने-फिरनेवाला व्यक्ति ही सिद्ध कर सकता है।'

जीभको मीठी लगनेवाली वस्तु मिली, ठूँस-ठूँसकर खाया; मनोवाञ्छित चीज न मिली, दिनभर भूखे रहा; सिनेमा-नाटक देखने गया, रात-रातभर जागता रहा; कभी आलसमें दस-दस घंटे सोता रहा—ऐसा व्यक्ति कभी मनकी शान्ति—नीरोगत्व पानेके साधनमें सिद्ध नहीं हो सकता। शरीरके साथ मनके आरोग्य-लाभके इच्छुकको तो खान-पान, सोने-जागने और काम करनेमें संयमसे रहना जरूरी है। प्रकृतिके अनुकूल नपा-तुला और (न्यायपूर्वक उपार्जित) शुद्ध भोजनसे शरीर स्वस्थ तथा बुद्धि निर्मल होती है— **'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः'** (छान्दोग्य० ७। २६। २)। स्वस्थ शरीरके लिये उपर्युक्त सावधानीके साथ-साथ चलना-फिरना तथा टहलना भी आवश्यक है। टहलनेके अतिरिक्त व्यायाम भी कर सकते हैं। पर व्यायाम भी सोच-समझकर पूरी जानकारी प्राप्त करके ही करना चाहिये, जो शरीरके उपयुक्त और अनुकूल हो। इससे अधिक और बिना जानकारीके किये गये व्यायामसे लाभकी जगह हानि हो सकती है। कहावत भी है— ***'देखादेखी साधै जोग, छीजै काया बाढ़ै रोग।'***

आहारके विषयमें भगवान् श्रीकृष्णने 'अश्नतः' और 'आहारः'—ये दो शब्द कहे हैं। आहार वह वस्तु है, जिसे ग्रहण करनेसे मन-प्राण और शरीर चल पाते हैं। अब यह जान लेना आवश्यक है कि वह आहार क्या है और कौन वस्तु किसको अच्छी लगती है, उसे प्रयोग करनेवालेकी प्रकृति कैसी है तथा उसके प्रयोगसे कैसा फल मिलता है? इस विषयको भगवान्‌ने गीताके सत्रहवें अध्यायमें स्पष्ट किया है। सृष्टि त्रिगुणात्मिका होनेसे आहारको उपभोगमें लानेवाले भी तीन प्रकारके होते हैं—सत्त्व, रज और तमोगुणी स्वभाववाले। अपनी-अपनी प्रकृति (स्वभाव)-के अनुसार ही मानवोंको आहार अच्छा लगता है और उन

---

१. ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते। आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥ (गीता ५। २२)
इन्द्रियोंका विषयोंके साथ मेल हो जानेपर जो सुख भासते हैं, वे दुःखके ही कारण हैं। दीखनेवाला अनित्य है। ज्ञानीजन उनमें लिप्त नहीं होते।

२. अनित्य (सदा न रहनेवाला) तथा सुखसे रहित इस लोकको पाकर मेरा (परमात्मप्रभुका) भजन करो।

वस्तुओंके सेवनके परिणाम भी अलग-अलग होते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं—

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥
(८—१०)

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले, रसयुक्त, स्निग्ध (चिकने) एवं मनको स्वभावसे ही प्रिय लगनेवाले तथा स्थायी— चिर (अधिक कालतक) प्रभाववाले भोजन सात्त्विक स्वभाववालोंको रुचिकर लगते हैं।

अति कड़ुवा (तिक्त और चरपरा), खट्टा, नमकीन, अत्यधिक उष्ण, तीखा, रूखा, दाहकारक, दुःख-पीडा और रोग पैदा करनेवाला भोजन राजसी है। ऐसा भोजन राजसी स्वभाववालोंको अच्छा लगता है।

अधपका, रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, बासी और जूठन (खानेसे बचा हुआ) आहार तामसी होता है, तामसी स्वभाववालोंको ऐसा भोजन अच्छा लगता है।

इस प्रकार गीतोक्त युक्त आहार-विहार आदिके सेवनसे तथा मानसिक कटुताका त्याग कर भगवच्छरणका अवलम्ब लेकर चला जाय तो तनरोग, मनोरोग और भवरोग सदाके लिये समाप्त हो जायँगे तथा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आरोग्य सदा बना रहेगा।

[श्रीनारायणप्रसादजी श्रेष्ठ]



गोस्वामी तुलसीदासजीकी आरोग्य-साधना

पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्ति मानव-जीवनका लक्ष्य है और उसकी प्राप्तिका माध्यम है—स्वस्थ शरीर। यथा— 'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्' (च०सं०सू० १।१५)। स्वस्थ शरीर ही साधन-भजन, चिन्तन-मनन, निदिध्यासन आदि करनेमें समर्थ होता है। इसीलिये सद्ग्रन्थोंमें स्वस्थ जीवनकी चर्चा प्रायः किसी-न-किसी रूपमें मिल जाती है। तुलसी-साहित्यमें भी यह चर्चा यथास्थान उपलब्ध है। शरीर और मन दोनोंके स्वस्थ रहनेकी अपेक्षा है, इसीलिये तुलसीरचित काव्योंमें दोनोंकी चर्चा यथास्थान संनिहित है। धर्म-साधनके लिये शरीरकी अनिवार्य आवश्यकता है—

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।'

शरीर विकारग्रस्त होता रहता है। इससे यह क्षीण और दुर्बल हो जाता है। यह विकार मिथ्या आहार-विहारजनित है। शरीरके क्षीण होनेसे आनन्दकी स्थिति बिगड़ जाती है और तब मनुष्य आनन्द खोकर कष्टका अनुभव करता है। इन सारी बातोंका विशद विवेचन तुलसी-साहित्यमें यथास्थान उपलब्ध है। सर्वप्रथम हम शरीरके आरोग्यकी बात सोचें। इस शरीर-रोगके तीन भेद बताये गये हैं—दैहिक, दैविक और भौतिक। दैहिक रोगका सम्बन्ध व्रण तथा ज्वर आदिसे है। दैविकका सम्बन्ध किसी देवताके कोपजनित शापादिसे है। इसके निराकरणके उपाय भी बताये गये हैं। तुलसीदासजी स्वयं एक बार बाहु-पीडासे ग्रस्त हो गये थे। अपनी रचना हनुमानबाहुकमें उन्होंने इस पीडाका बड़ा ही सजीव चित्रण किया है—

पायँपीर पेटपीर बाँहपीर मुँहपीर,
जरजर सकल सरीर पीरमई है।
(हनुमानबाहुक ३८)

इस रोगके निवारणके लिये उन्होंने हनुमान्‌जीसे प्रार्थना की। उनके विश्वासके अनुसार यह रोग इन्हीं कारणोंसे हुआ है—

आपने ही पापतें त्रितापतें कि सापतें,
बढ़ी है बाँहबेदन कही न सहि जाति है।
(हनुमानबाहुक ३०)

इसके निवारणार्थ अनेक उपचार किये गये—

औषध अनेक जंत्र-मंत्र-टोटकादि किये,
बादि भये देवता मनाये अधिकाति है॥
(हनुमानबाहुक ३०)

सबसे हार मानकर अन्तमें उन्होंने हनुमान्‌जीकी शरण

ली और कहा—

बाँह पीर महाबीर बेगि ही निवारिये॥

(हनुमानबाहुक २०)

फिर उन्होंने अपने इष्ट श्रीरामसे यही विनय की—

बाँहकी बेदन बाँहपगार
पुकारत आरत आनँद भूलो।
श्रीरघुबीर निवारिये पीर
रहौं दरबार परो लटि लूलो॥

(हनुमानबाहुक ३६)

इस रोगका कोई निराकरण न देख क्षुब्ध होकर उन्होंने मान लिया कि यह इस जन्मके या विगत जन्मके किसी अपराधका फल है और यह कर्म-फल भोगना ही है—

तुम्हतें कहा न होय हाहा सो बुझैये मोहि,
हौं हूँ रहों मौन ही बयो सो जानि लुनिये॥

(हनुमानबाहुक ४४)

प्रायः छोटे-छोटे बच्चोंको जब किसीकी भी नजर लग जाती है और वे अत्यन्त कष्टमें हो जाते हैं, तब न तो माँका दूध लेते हैं और न ही चैनसे रह पाते हैं। उनकी शान्तिके लिये मन्त्रोंका प्रयोग और टोटकाका भी प्रयोग किया जाता है। गीतावलीमें भगवान् रामकी यही दशा ही गयी है। इसके निवारणके लिये गुरु वसिष्ठजी आते हैं। उस समय भी बालक रामकी वही अवस्था रहती है—

आजु अनरसे हैं भोरके, पय पियत न नीके।
रहत न बैठे, ठाढ़े, पालने झुलावत हू, रोवत राम मेरो
सो सोच सबहीके॥

× × ×

बेगि बोलि कुलगुर, छुऔ माथे हाथ अमीके।
सुनत आइ ऋषि कुस हरे नरसिंह मंत्र पढ़े, जो
जो सुमिरत भय भीके॥

(गीता० बालकाण्ड १२)

आरोग्य रहनेके लिये तुलसी-काव्यमें आहार और विहारपर विशेष विचार किया गया है। आहार-विहारकी उपेक्षा शारीरिक रोगके कारण हैं। भोजन क्या और कितना करना चाहिये, इसके सम्बन्धमें यह द्रष्टव्य है—

भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी॥

(रा०च०मा० ७। ११९। ९)

भोजन केवल स्वादके लिये नहीं, प्रत्युत आरोग्य-वृद्धिके लिये ही होना चाहिये।

सरुज सरीर बादि बहु भोगा।

(रा०च०मा० २। १७८। ५)

प्रभुका अवतार पथभ्रष्ट लोगोंको सन्मार्गपर लानेके लिये ही होता है। अपने इष्ट रामके जीवनमें तुलसीदासजीने सदाचार और आरोग्यकी वृद्धि करनेवाले व्यवहारोंका दिग्दर्शन कराया है, जिनका अनुसरण कर हम सच्चरित्र एवं नीरोग रह सकते हैं। श्रीरामके उठने-बैठने, खाने-पीने तथा खेलने आदिके सम्बन्धमें चर्चा करके तुलसीदासजीने प्रेरणा लेनेकी बात बतायी है। कितना उदात्त चरित्र है भगवान् श्रीरामका! यथासमय सोने, जागने और नित्यक्रियासे निवृत्त होनेका कितना अच्छा वर्णन मानसमें मिलता है! भोजनके बाद गुरुसेवा और तब शयन। पहले गुरु सोते हैं, फिर राम; और राम लक्ष्मणसे सोनेके लिये कहते हैं। साँझ होती है, दोनों भाई संध्या-वन्दनके लिये चले जाते हैं—

निसि प्रबेस मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं संध्याबंदनु कीन्हा॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥
मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥

(रा०च०मा० १। २२६। १—३, ६)

पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता।

(रा०च०मा० १। २२६। ८)

जगनेका भी यही क्रम है।

उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान।
गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान॥

(रा०च०मा० १। २२६)

और तब—

सकल सौच करि जाइ नहाए।

(रा०च०मा० १। २२७। १)

—ये हैं स्वास्थ्यके नियम। इनका पालन करनेसे आरोग्य-लाभ होता है। इस प्रकारके अनेक उदाहरण

तुलसीकाव्यमें उपलब्ध हैं, जिनका अनुसरण आरोग्यदायक है। शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये संयम आवश्यक है और रोगग्रस्त होनेपर उपयुक्त औषध भी। उपचारकी भी आवश्यकता कम नहीं है। लक्ष्मणको जब शक्तिबाण लगा था और उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी तब हनुमान्जी श्रीरामकी आज्ञासे वैद्यको बुला लाये और ओषधि लायी गयी। इस कथाका उल्लेख मानसमें है।

तुलसीदासजीने पापको रोगोंकी जड़ माना है। कृतघ्नताको सबसे बड़ा पाप कहा है। ये पाप रोगके रूपमें प्रकट होते हैं—

तुलसी अनाथ सो सनाथ रघुनाथ कियो,
दियो फल सीलसिंधु आपने सुभायको॥
नीच यहि बीच पति पाइ भरुहाइगो,
बिहाइ प्रभु-भजन बचन मन कायको।
तातें तनु पोषियत घोर बरतोर मिस,
फूटि फूटि निकसत लोन रामरायको॥

(हनुमानबाहुक ४१)

मानस-रोगकी चर्चा काकभुशुण्डि-गरुड-प्रसंगमें मिलती है। भुशुण्डिने गरुडके पूछनेपर कहा था—

मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई॥

(रा०च०मा० ७। १२१। ७)

इस क्रममें भुशुण्डिजीने कुछ मानस-रोगोंका उल्लेख किया है, वे हैं—काम, लोभ, क्रोध, मनोरथ, ममता, दुष्टता, अहंकार, तृष्णा, मत्सर आदि। जिन्हें ये रोग लगते हैं, उनकी दशा खिन्न-सी हो जाती है। मोह तो सम्पूर्ण व्याधियोंकी जड़ है—

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥

(रा०च०मा० ७। १२१। २८—३१)

विषय तथा मनोरथ आदि अनेक रोग हैं, इनका वर्णन कहाँतक किया जाय? मनुष्यके मरनेके लिये एक ही व्याधि पर्याप्त है और जिनके पास इतनी व्याधियाँ हैं, उनका क्या कहना?

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि॥

(रा०च०मा० ७। १२१ क)

इस संदर्भमें एक और प्रसंग उल्लेखनीय है और वह है—रामवनगमनके बाद भरतजीके राज्याभिषेकसे सम्बन्धित विचारका। भरतजी शोकाकुल हैं। गुरु, माता, मन्त्री, प्रजा और पुरजन—सभीकी राय इन्हें राजतिलक देनेकी है। इतनी बड़ी सभाको भरतजी क्या उत्तर दें—यह सोचकर उनका मन उद्विग्न हो रहा है। भरतजी चिन्ताकुल हो रहे हैं।

माता कौसल्याने स्पष्ट कर दिया है—

'गुर बिबेक सागर जगु जाना।'

(रा०च०मा० २। १८२। १)

और इसलिये—

'पूत पथ्य गुर आयसु अहई॥'

(रा०च०मा० २। १७६। १)

परंतु भरतजीके मनको परितोष नहीं है। उनका हृदय दग्ध हो रहा है—

एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय रामु दुखारी॥

(रा०च०मा० २। १८२। ६)

और इसी कारण वे रामका दर्शन चाहते हैं। उनका विश्वास है—

देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ॥

(रा०च०मा० २। १८२)

और इस प्रकार चित्रकूटमें जाकर रामके दर्शनसे श्रीभरतको संतोष मिलता है, परितोष होता है और बहुत हदतक इस मानस-रोगकी निवृत्ति हो जाती है। अतः भगवत्-शरण एक ऐसी ओषधि है, जो हर प्रकारके शारीरिक और मानसिक रोगोंसे मनुष्यको छुटकारा दिला सकती है।

[डॉ० श्रीशुकदेवजी राय एम्०ए०, पी-एच्०डी, साहित्यरत्न]

आयुर्वेदकी आचार्य-परम्परा और आरोग्य-साधना*

समस्त मङ्गलोंके भी मङ्गलकारी बीजस्वरूप सनातन परमेश्वरने मङ्गलके आधारभूत चार वेदोंको प्रकट किया। उनके नाम हैं—ऋक्, यजु, साम और अथर्व। उन वेदोंको देखकर और उनके अर्थका विचार करके प्रजापतिने आयुर्वेदका संकलन किया। इस प्रकार पञ्चम वेदका निर्माण करके भगवान्ने उसे सूर्यदेवके हाथमें दे दिया। उससे सूर्यदेवने एक स्वतन्त्र संहिता बनायी। फिर उन्होंने अपने शिष्योंको अपनी वह 'आयुर्वेदसंहिता' दी और पढ़ायी। तत्पश्चात् उन शिष्योंने भी अनेक संहिताओंका निर्माण किया। उन विद्वानोंके नाम और उनके द्वारा रचे हुए तन्त्रोंके नाम, जो रोगनाशके बीजरूप हैं इस प्रकार है—

धन्वन्तरि, काशिराज, दिवोदास, दोनों अश्विनीकुमार, नकुल, सहदेव, सूर्यपुत्र यम, च्यवन, जनक, बुध, जाबाल, जाजलि, पैल, करथ और अगस्त्य।

ये सभी विद्वान् वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञाता तथा रोगोंके नाशक (वैद्य) हैं। सबसे पहले भगवान् धन्वन्तरिने **'चिकित्सा-तत्त्वविज्ञान'** नामक एक मनोहर तन्त्रका निर्माण किया। काशिराजने **'दिव्य चिकित्सा-कौमुदी'** का प्रणयन किया। दिवोदासने **'चिकित्सा-दर्पण'** नामक ग्रन्थ रचा। दोनों अश्विनीकुमारोंने **'चिकित्सा-सारतन्त्र'**की रचना की, जो भ्रमका निवारण करनेवाला है। नकुलने **'वैद्यकसर्वस्व'** नामक तन्त्र तथा सहदेवने **'व्याधिसिन्धुविमर्दन'**नामक ग्रन्थ तैयार किया। यमराजने **'ज्ञानार्णव'** नामक महातन्त्रकी रचना की और भगवान् च्यवन मुनिने **'जीवदान'** नामक ग्रन्थ निर्मित किया। योगी जनकने **'वैद्यसंदेहभञ्जन'** नामक ग्रन्थ लिखा। चन्द्रकुमार बुधने **'सर्वसार'**, जाबालने **'तन्त्रसार'** और जाजलि मुनिने **'वेदाङ्ग-सार'** नामक तन्त्रकी रचना की। पैलने **'निदान-तन्त्र'**, करथने उत्तम **'सर्वधर-तन्त्र'**तथा अगस्त्यजीने **'द्वैधनिर्णय'** तन्त्रका निर्माण किया।

ये सोलह तन्त्र चिकित्सा-शास्त्रके बीज हैं, रोग-नाशके कारण हैं तथा शरीरमें बलका आधान करनेवाले हैं। आयुर्वेदके समुद्रको ज्ञानरूपी मथानीसे मथकर विद्वानोंने उससे नवनीत-स्वरूप ये तन्त्र-ग्रन्थ प्रकट किये हैं। आयुर्वेदके अनुसार रोगोंका परिज्ञान करके वेदनाको रोक देना—इतना ही वैद्यका वैद्यत्व है। वैद्य आयुका स्वामी नहीं है—वह उसे घटा अथवा बढ़ा नहीं सकता। चिकित्सक आयुर्वेदका ज्ञाता, चिकित्साकी क्रियाको यथार्थरूपसे जाननेवाला धर्मनिष्ठ और दयालु होता है; इसलिये उसे 'वैद्य' कहा गया है।

दारुण ज्वर समस्त रोगोंका जनक है। उसे रोकना कठिन होता है। वह शिवका भक्त और योगी है। उसका स्वभाव निष्ठुर और आकृति विकृत (विकराल) है। उसके तीन पैर, तीन सिर, छः हाथ और नौ नेत्र हैं। वह भयंकर ज्वर काल, अन्तक और यमके समान विनाशकारी है। भस्म ही उसका अस्त्र है तथा रुद्र उसके देवता हैं। मन्दाग्नि उसका जनक है। मन्दाग्निके जनक तीन हैं—वात, पित्त और कफ। ये ही प्राणियोंको दुःख देनेवाले हैं। वातज, पित्तज और कफज—ये ज्वरके तीन भेद हैं। एक चौथा ज्वर भी होता है, जिसे त्रिदोषज भी कहते हैं। पाण्डु, कामल, कुष्ठ, शोथ, प्लीहा, शूलक, ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, खाँसी, व्रण (फोड़ा), हलीमक, मूत्रकृच्छ्र, रक्तविकार या रक्तदोषसे उत्पन्न होनेवाला गुल्म, विषमेह, कुब्ज, गोद, गलगण्ड (घेघा), भ्रमरी, संनिपात, विषूचिका (हैजा) और दारुणी आदि अनेक रोग हैं। इन्हींके भेद और प्रभेदोंको लेकर चौंसठ रोग माने गये हैं। ये चौंसठ रोग मृत्युकन्याके पुत्र हैं और जरा उसकी पुत्री है। जरा अपने भाइयोंके साथ सदा भूतलपर भ्रमण किया करती है।

नीरोग कौन रहता है? तथा किसे वृद्धावस्था नहीं आती?

रोग उस मनुष्यके पास नहीं जाते, जो इनके

* ब्रह्मवैवर्तपुराणमें वैद्यकसंहिताका वर्णन, आयुर्वेदकी आचार्य-परम्परा, उसके प्रमुख सोलह विद्वानों तथा उनके द्वारा रचित प्रमुख तन्त्रोंके नामका निर्देशन, ज्वर आदि चौंसठ रोग, उनके हेतुभूत वात, पित्त तथा कफकी उत्पत्तिके कारण और उनके निवारणके उपायोंका विवेचन हुआ है, जो यहाँ प्रस्तुत है।

निवारणका उपाय जानता है और संयमसे रहता है। उसे देखकर रोग उसी तरह भागते हैं, जैसे गरुड़को देखकर साँप। नेत्रोंको जलसे धोना, प्रतिदिन व्यायाम करना, पैरोंके तलवोंमें तेल मलना, दोनों कानोंमें तेल डालना और मस्तकपर भी तेल रखना—यह प्रयोग जरा और व्याधिका नाश करनेवाला है। जो वसन्त-ऋतुमें भ्रमण, स्वल्पमात्रामें अग्निसेवन तथा नयी अवस्थावाली भार्याका यथासमय उपभोग करता है, उसके पास जरा अवस्था नहीं जाती। ग्रीष्म-ऋतुमें जो तालाब या पोखरेके शीतल जलमें स्नान करता, घिसा हुआ चन्दन लगाता और वायुसेवन करता है, उसके निकट जरा अवस्था नहीं जाती। वर्षा-ऋतुमें जो गरम जलसे नहाता, वर्षाके जलका सेवन नहीं करता और ठीक समयपर परिमित भोजन करता है, उसे वृद्धावस्था नहीं प्राप्त होती। जो शरद्-ऋतुकी प्रचण्ड धूपका सेवन नहीं करता, उसमें घूमना-फिरना छोड़ देता है तथा कुएँ, बावड़ी या तालाबके जलमें नहाता है और परिमित भोजन करता है, उसके पास वृद्धावस्था नहीं फटक पाती। जो हेमन्त-ऋतुमें प्रातःकाल अथवा पोखरे आदिके जलमें स्नान करता, यथासमय आग तापता, तुरंतकी तैयार की हुई गरम-गरम रसोई खाता है, उसके पास जरा-अवस्था नहीं जाती। जो शिशिर-ऋतुमें गरम कपड़े, प्रज्वलित अग्नि और नये बने हुए गरम-गरम अन्नका सेवन करता है तथा गरम जलसे ही स्नान करता है, उसके समीप वृद्धावस्थाकी पहुँच नहीं हो पाती।

जो तुरंतके बने हुए ताजे अन्नका, खीर और घृतका उचित सेवन करता है, वृद्धावस्था उसके निकट नहीं जाती। जो भूख लगनेपर ही उत्तम अन्न खाता तथा प्यास लगनेपर ठंडा जल पीता है, उसके पास वृद्धावस्था नहीं पहुँच पाती। जो प्रतिदिन दही, ताजा मक्खन और गुड़ खाता तथा संयमसे रहता है, उसके समीप जरावस्था नहीं जा पाती।

जो मांस, वृद्धा स्त्री, नवोदित सूर्य तथा तरुण दधि (पाँच दिनके रखे हुए दही)-का सेवन करता है, उसपर जरावस्था अपने भाइयोंके साथ हर्षपूर्वक आक्रमण करती है। जो रातको दही खाते हैं, कुलटा एवं रजस्वला स्त्रीका सेवन करते हैं, उनके पास भाइयोंसहित जरावस्था बड़े हर्षके साथ आती है। रजस्वला, कुलटा, विधवा, जारदूती, शूद्रके पुरोहितकी पत्नी तथा ऋतुहीना जो स्त्रियाँ हैं, उनका अन्न ग्रहण करनेवाले लोगोंको बड़ा पाप लगता है। उस पापके साथ ही जरावस्था उनके पास आती है। रोगोंके साथ पापोंकी सदा अटूट मैत्री होती है। पाप ही रोग, वृद्धावस्था तथा नाना प्रकारके विघ्नोंका बीज है। पापसे रोग होता है, पापसे बुढ़ापा आता है और पापसे ही दैन्य, दुःख एवं भयंकर शोककी उत्पत्ति होती है। वह महान् वैर उत्पन्न करनेवाला, दोषोंका बीज और अमङ्गलकारी होता है। इसलिये भारतके संत पुरुष सदा भयातुर हो कभी पापका आचरण नहीं करते—

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा।
पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयङ्करः॥
तस्मात् पापं महावैरं दोषबीजममङ्गलम्।
भारते संततं सन्तो नाचरन्ति भयातुराः॥

(ब्रह्मखण्ड १६।५१-५२)

जो अपने धर्मके आचरणमें लगा हुआ है, भगवान्‌के मन्त्रकी दीक्षा ले चुका है, श्रीहरिकी समाराधनामें संलग्न है, गुरु, देवता और अतिथियोंका भक्त है, तपस्यामें आसक्त है, व्रत और उपवासमें लगा रहता है और सदा तीर्थसेवन करता है, ऐसे पुरुषोंके पास जरा-अवस्था नहीं जाती है और न दुर्जय रोगसमूह ही उसपर आक्रमण करते हैं।

त्रिदोष

वात, पित्त और कफ—ये तीन ज्वरके जनक हैं। जब भूखकी आग प्रज्वलित हो रही हो और उस समय आहार न मिले तो प्राणियोंके शरीरमें मणिपूरक[१] चक्रमें पित्तका प्रकोप होता है। ताड़ और बेलका फल खाकर तत्काल जल पी लिया जाय तो वही सद्यः प्राणनाशक पित्त हो जाता है। जो दैवका मारा हुआ पुरुष शरद्-ऋतुमें गरम पानी पीता और भाद्रपदमासमें तिक्त भोजन करता है,

१-तन्त्रके अनुसार छः चक्रोंमेंसे तीसरा चक्र, जिसकी स्थिति नाभिके पास मानी जाती है। यह तेजोमय और विद्युत्के समान आभावाला है। इसका रंग नीला है। इसमें दस दल होते हैं और उन दलोंपर 'ड'से लेकर 'फ' तकके अक्षर अङ्कित हैं। वह चक्र शिवका निवासस्थान माना जाता है। उसपर ध्यान लगानेसे सब विषयोंका ज्ञान हो जाता है।

उसका पित्त बढ़ जाता है। धनिया पीसकर उसे शक्करके साथ ठंडे जलमें घोल दिया जाय तो उसको पीनेसे पित्तकी शान्ति होती है। चना, सब प्रकारका गव्य पदार्थ, तक्ररहित दही, पके हुए बेल और ताड़के फल, ईखके रससे बनी हुई सब वस्तुएँ, अदरक, मूँगकी दालका जूस तथा शर्करामिश्रित तिलका चूर्ण—ये सब पित्तका नाश करनेवाली ओषधियाँ हैं, जो तत्काल बल और पुष्टि प्रदान करती हैं। भोजनके बाद तुरंत स्नान करना, बिना प्यासके जल पीना, सारे शरीरमें तिलका तेल मलना, स्निग्ध तैल तथा स्निग्ध आँवलेके द्रवका सेवन, बासी अन्नका भोजन, तक्रपान, केलेका पका हुआ फल, दही, वर्षाका जल, शक्करका शर्बत, अत्यन्त चिकनाईसे युक्त जलका सेवन, नारियलका जल, बासी पानीसे रूखा स्नान (बिना तेल लगाये नहाना), तरबूजके पके फल खाना, ककड़ीके अधिक पके हुए फलका सेवन करना, वर्षा-ऋतुमें तालाबमें नहाना और मूली खाना—इन सबसे कफकी वृद्धि होती है। वह कफ ब्रह्मरन्ध्रमें उत्पन्न होता है, जो महान् वीर्यनाशक माना गया है। आग तापकर शरीरसे पसीना निकालना, पकाये हुए तेल-विशेषको काममें लाना, घूमना, सूखे पदार्थ खाना, सूखी पकी हर्रेका सेवन करना, कच्चा पिण्डारक[1] (पिण्डारा), कच्चा केला, बेसवार (पीसा हुआ जीरा, मिर्च, लौंग आदि मसाला), सिन्धुवार (सिन्दुवार या निर्गुण्डी), अनाहार (उपवास), अपानक (पानी न पीना), घृतमिश्रित रोचना-चूर्ण, घी मिलाया हुआ सूखा शक्कर, काली मिर्च, पिप्पल, सूखा अदरक, जीवक[2] (अष्टवर्गान्तर्गत औषध-विशेष) तथा मधु—ये द्रव्य तत्काल कफको दूर करनेवाले तथा बल और पुष्टि देनेवाले हैं।

भोजनके बाद तुरंत पैदल यात्रा करना और दौड़ना तथा आग तापना, सदा घूमना और मैथुन करना, वृद्धा स्त्रीके साथ सहवास करना, मनमें निरन्तर संताप रहना, अत्यन्त रूखा खाना, उपवास करना, किसीके साथ जूझना, कलह करना, कटु वचन बोलना, भय और शोकसे अभिभूत होना—ये सब केवल वायुकी उत्पत्तिके कारण हैं। आज्ञा नामक चक्रमें वायुकी उत्पत्ति होती है।

केलेका पका हुआ फल, बिजौरा नीबूके फलके साथ चीनीका शर्बत, नारियलका जल, तुरंतका तैयार किया हुआ तक्र, उत्तम पिट्ठी (पूआ, कचौरी आदि), भैंसका केवल मीठा दही या उसमें शक्कर मिला हो, तुरंतका बासी अन्न, सौवीर (जौकी काँजी), ठंडा पानी, पकाया हुआ तेल-विशेष अथवा केवल तिलका तेल, नारियल, ताड़, खजूर, आँवलेका बना हुआ उष्ण द्रव-पदार्थ, ठंडे और गरम जलका स्नान, सुस्निग्ध चन्दनका द्रव, चिकने कमलपत्रकी शय्या और स्निग्ध व्यञ्जन—ये सब वस्तुएँ तत्काल ही वायुदोषका नाश करनेवाली हैं। (ब्रह्मवैवर्तपुराण)



भगवन्नाम-संकीर्तनसे वास्तविक आरोग्यकी प्राप्ति

आत्यन्तिकं व्याधिहरं जनानां चिकित्सिकं वेदविदो वदन्ति।
संसारतापत्रयनाशबीजं गोविन्द दामोदर माधवेति॥

वेदवेत्ताओंका कहना है कि गोविन्द, दामोदर और माधव—ये नाम मनुष्योंके समस्त रोगोंको समूल उन्मूलन करनेवाले भेषज हैं और संसारके (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक—इन) त्रिविध तापोंका नाश करनेके लिये बीजमन्त्रके समान हैं।



---

१. एक प्रकारका फल-शाक।

२. एक जड़ीका पौधा। 'भावप्रकाश' के अनुसार यह पौधा हिमालयके शिखरोंपर होता है। इसका कन्द लहसुनके कन्दके समान और इसकी पत्तियाँ महीन सारहीन होती हैं। इसकी टहनियोंमें बारीक काँटे होते हैं और दूध निकलता है। यह अष्टवर्ग औषधके अन्तर्गत है और इसका कन्द मधुर, बलकारक तथा कामोद्दीपक होता है। ऋषभ और जीवक दोनों एक ही जातिके गुल्म हैं, भेद केवल इतना ही है कि ऋषभकी आकृति बैलके सींगकी तरह होती है और जीवककी झाड़ूकी-सी।

स्वस्थ रहनेके लिये संकल्पबलकी आवश्यकता

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

संकल्प, विचार या भावनाका महत्त्व संसारके सभी विद्वानोंको मान्य है। संसारके सभी बलोंसे संकल्पका बल श्रेष्ठ है। वेदादि शास्त्रोंका तो कहना है कि परमात्माके संकल्पसे ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड बनकर तैयार होता है। वैसे तो किसी भी कार्यके मूलमें संकल्प होना आवश्यक है। स्थूल-सूक्ष्म किसी प्रकारका संकल्प-विचार हुए बिना कोई भी कार्य नहीं हो सकता। देह, इन्द्रिय आदि किसीकी भी हलचलमें मनकी हलचल आवश्यक है। अतएव यह भी कहा जा सकता है कि संसारकी सभी गति अथवा उन्नतिका मूल संकल्प ही है, परंतु साधारण स्थानोंमें संकल्पके पश्चात् अन्यान्य सामग्रियों और प्रयत्नोंकी भी अपेक्षा हुआ करती है। जैसे—कुलाल (कुम्भकार) घट-निर्माणका विचार करता है। तत्पश्चात् मृत्तिका, दण्ड, चक्र, चीवरादि सामग्रियोंका सञ्चय करता है, फिर हस्त आदि व्यापारसे घटको बनाता है। परंतु परमात्मा किसी भी सामग्रीकी अपेक्षा न करके अपने संकल्पमात्रसे ही विश्वका उत्पादन, पालन और संहार करता है।

वेदान्तके सिद्धान्तानुसार यह जगत् जड़ परमाणुओंके एकत्रित हो जानेमात्रसे नहीं बना, साथ ही विद्युत्-कणों या प्रकृतिकी हलचलसे भी नहीं बना; किंतु अनिर्वचनीय, माया-शक्तिविशिष्ट वस्तुतः सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदशून्य परमात्मासे ही यह संसार बना है, वही इसके उपादानकारण तथा निमित्तकारण भी हैं। नैयायिक, वैशेषिक, योगी आदिके मतानुसार भी विश्वप्रपञ्च जड़ कार्य नहीं हो सकता। जब संसारके कोई भी प्राचीन विलक्षण कार्य एवं आधुनिक रेल, तार, मोटर, वायुयान आदि विविध कल-पुर्जे बिना किसी बुद्धिमान् चेतनके अपने-आप नहीं बन जाते, परमाणुओं, विद्युत्-कणों या प्रकृतिसे इनका निर्माण बतलानेवाला अश्रद्धेय समझा जाता है, तब विलक्षण संसार और तदन्तर्गत विभिन्न यन्त्रोंके आविष्कारक वैज्ञानिकोंके मन-बुद्धि (मस्तिष्क, दिमाग) आदिके बनानेवालेको जड़ कैसे कहा जाय? जब साधारणसे चित्र-ड्राइंग भी परमाणुओंके एकत्रित हो जानेमात्रसे नहीं बनते तो विश्व कैसे बन सकता है? भेद यही है कि इन मतोंमें परमाणु प्रकृति आदिका नियामक परमेश्वर माना जाता है; परमाणु, प्रकृति समवायिकारण या उपादान माने जाते हैं, परमात्मा निमित्त कारण माना जाता है, परंतु वेदान्त सिद्धान्तमें परमात्मा ही उपादान और निमित्त—दोनों ही तरहका कारण है। वह अपने संकल्पसे अपने-आपको ही प्रपञ्चरूपमें प्रकट करता है।

वाचस्पति मिश्रने कहा है कि 'भगवान्के स्वाभाविक सहज निःश्वाससे अनन्त विद्याओंके उद्गम-स्थान वेदोंका प्रादुर्भाव होता है, उनके अवलोकन (निहारने)-से ही ब्रह्माण्डोंके उपादानभूत पञ्चमहाभूत—आकाश, वायु, तेज आदिकी उत्पत्ति होती है और भगवान्के मन्दहास (मुस्कराहट)-से ही अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड बनकर तैयार हो जाते हैं। उनके सोनेसे—आँख मीच लेनेसे ही विश्वका प्रलय हो जाता है।' यहाँ भी रूपकके द्वारा परमात्माके संकल्पसे ही साक्षात् एवं परम्परासे विश्वकी उत्पत्ति आदिका वर्णन किया गया है। यहाँ पूर्व-पूर्व कार्योंमें बुद्धि एवं प्रयत्नकी निरपेक्षता उत्तरोत्तर कार्योंमें कुछ सापेक्षता कही गयी है।

सारांश यह है कि भगवान् अपने संकल्पसे ही सम्पूर्ण संसारको बनाते हैं। भगवान्का ही अंश जीवात्मा है और भगवान्की मायाका ही अंश जीवका मन है। अतः भगवान् और मायाकी शक्ति वैसे ही जीवात्मा और मनमें रहती है, जैसे महाकाशकी अवकाशप्रदत्त शक्ति घटाकाशमें रहती है, जलकी शीतलता, मधुरता उसके अंश तरंगमें हुआ करती है, अग्निका दहन, प्रकाशन-सामर्थ्य उसके अंश विस्फुल्लिङ्ग (चिनगारी)-में रहा करता है। इस दृष्टिसे भगवान्की सभी शक्तियाँ जीवात्मामें होती हैं। मायाकी शक्तियाँ मनमें रहती हैं। इसीलिये शास्त्रोंने कहा है कि जीवात्मा अपने संकल्प-विचारोंसे बहुत कुछ कार्य कर सकता है। हाँ, अत्याचार, अनाचार, पापाचार एवं व्यभिचार आदिसे संकल्पकी शक्ति कमजोर हो जाती है। सदाचार, सद्विचार, सद्धर्म तथा तपस्या आदिसे संकल्पकी शक्तियाँ दृढ़ (जोरदार) हो जाती हैं।

परमेश्वरकी आराधनासे जीवात्मामें स्वाभाविक परमात्म-सम्बन्धी ऐश्वर्य प्रकट होते हैं, अन्यथा छिपे रहते हैं। सिद्ध

योगीन्द्र और मुनीन्द्र अपने संकल्पसे ही घटको पट और पटको घट बना सकते हैं। लौकिक महर्षियोंका वचन अर्थानुसारी हुआ करता है, अर्थात् जैसा अर्थ होता है उनका वैसा ही वचन होता है, परंतु सिद्ध प्राचीन महर्षियोंके वचनोंका अनुसरण तो अर्थको ही करना पड़ता है। अर्थात् वे अर्थको जैसा देखते हैं उसे वैसा ही बनना पड़ता है। इसीलिये अगस्त्यके वचनसे नहुषको अजगर बनना पड़ा था। संकल्पसे ही विश्वामित्रने बहुत-से नक्षत्रों और वस्तुओंको बनाया था। वचनके साथ भी संकल्प रहता है। अतएव, वचनके प्रभावके साथ संकल्पका प्रभाव रहता है।

सुना जाता है कि अमेरिका आदिमें बहुत-से मनोविज्ञानके अभ्यासी संकल्प या विचारसे ही गुलाबके फूलोंको घटाने या बढ़ानेमें सफल हो जाते हैं। एलोपैथिक एवं होम्योपैथिक आदि चिकित्साओंसे निराश रोगियोंको मनोविज्ञानकी महिमासे लाभान्वित करते हैं। एक मनोविज्ञानके पंडितने जीवनसे निराश किसी लड़कीको कई दिनोंतक बर्फके भीतर रखकर मनोविज्ञानके बलसे आराम पहुँचाया था। इसी प्रकार मनसे ही बहुत रोगोंसे आराम हो रहे हैं। वैसे हर एकके मनमें भी संकल्पकी प्रधानता रहती है, कारण सभी कामं पहले मन या बुद्धिके साहाय्यकी अपेक्षा रखते हैं, पश्चात् किसी अन्यकी सफलतामें बुद्धि या सूझका बड़ा हाथ रहता है। अच्छी सूझसे ही व्यापारमें लाभ होता है। संग्राम जीतनेमें भी मन्त्रियों तथा सेनापतियोंकी उत्तम सूझ ही लाभदायक होती है। कितने स्थलोंमें नीति-निर्धारणकी ही बुद्धिमानी या गलतीसे व्यक्ति या समाज ही नहीं, किंतु राष्ट्र-का-राष्ट्र उन्नत या अवनत हो जाता है। विचारकी गलतीसे ही कहीं-कहीं बड़े-बड़े विजयी लोग एकदम पतनके गर्तमें चले जाते हैं। विचारकी ही अच्छाईसे कितने पथभ्रष्ट व्यक्तियोंका अतर्कित कायापलट देखा जाता है। इसीलिये मानना पड़ता है कि स्थूल जगत् किसी सूक्ष्म जगत्के नियन्त्रणमें रहते हैं। ऊपरसे देखनेमें स्थूल जगत् ही सब कुछ है, परंतु जब देखते हैं कि चींटी, चिड़िया, उष्ट्र, हाथी आदिके छोटे-बड़े देह सूक्ष्म विचारपर ही उठते, चलते, फिरते, बैठते हैं, तब यह कहनेमें कोई भी संकोच नहीं रह जाता कि ब्रह्मादि स्तम्बपर्यन्त सभी प्राणियोंकी जो भी हलचलें हैं और उन हलचलोंसे जो भी कार्य सम्पन्न होते हैं, सब सूक्ष्म विचार मन या बुद्धिके ही कार्य हैं। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वायु आदिके भी हलचलका कारण सूक्ष्म विचार ही हो सकता है। वह विचार अपनेसे भी सूक्ष्म चेतनाभास या अखण्ड बोधकी अपेक्षा रखता है। इसीलिये कहा जाता है कि अचेतनोंकी प्रवृत्ति तभी होती है, जब चेतनसे अधिष्ठित होता है। जैसे अश्व, सारथी आदिसे अधिष्ठित होनेपर ही रथ चलता है, अन्यथा नहीं; वैसे ही विचार या चेतनासे अधिष्ठित होनेपर ही सम्पूर्ण जड़ जगत् चेतन होता है। इसी न्यायसे यह भी कहा जाता है कि दृश्य जगत्का नियन्त्रण अदृश्य जगत्से होता है। इसी प्रकार आधिदैविक जगत्से आधिभौतिक जगत्का नियन्त्रण समझना चाहिये। विशेषकर जीवोंका उत्थान-पतन बहुत कुछ विचारोंपर ही अवलम्बित है।

शास्त्र कहते हैं कि पुरुष क्रतुमय है। अतएव **'यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते, यत्कर्म कुरुते तदभिनिष्पद्यते।'** पुरुष जैसा संकल्प करने लगता है वैसा ही कर्म करता है, जैसा कर्म करता है वैसा ही बन जाता है। जिन बातोंका प्राणी बार-बार विचार करता है, धीरे-धीरे वैसी ही इच्छा हो जाती है, इच्छानुसारी कर्म और कर्मानुसारिणी गति होती है। अतः स्पष्ट है कि अच्छे कर्म करनेके लिये अच्छे विचारोंको लाना चाहिये। बुरे कर्मोंको त्यागनेके पहले बुरे विचारोंको त्यागना चाहिये। जो बुरे विचारोंका त्याग नहीं करता, वह कोटि-कोटि प्रयत्नोंसे भी बुरे कर्मोंसे छुटकारा नहीं पा सकता। कितने प्राणी दुराचार, दुर्विचारजन्य दुर्व्यसन आदिको छोड़ना चाहते हैं। मद्यपायी वेश्यागामी व्यसनके कारण दुःखी होता है और रोगी बनता है, व्यसनको छोड़ना चाहता है, उपाय भी ढूँढ़ता है, महात्माओंके पास रोता भी है, छोड़नेकी प्रतिज्ञा भी कर लेता है; परंतु जो सावधानीसे मद्यपान, वेश्यागमन आदि दुराचारोंके बराबर चिन्तन और मननका परित्याग करता है, उनका स्मरण ही नहीं होने देता, विचार आते ही उसे विचारान्तरोंसे काट देता है, वह तो छुटकारा पा जाता है, परंतु जो बुरे विचारोंको न छोड़कर उनका रस लेता रहता है, वह कभी बुरे कर्मोंसे छुटकारा नहीं पा सकता, वह बार-बार भग्नप्रतिज्ञ होकर रोता है। विचारोंके समय असावधान रहता है। विचारसे क्या होता है? बुरा कर्म नहीं करूँगा, उसीके त्यागकी मैंने प्रतिज्ञा की है, इस तरह अपनेको धोखा देकर

विचारके रसका अनुभव करता है। वह कभी भी व्यसनसे आत्मत्राण नहीं कर सकता है। इसीलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह किसी तरह बुरे विचारोंको हटाये।

जिस समय बुरे विचार आने लगें, उस समय अन्यमनस्क होनेका प्रयत्न करे। भगवद्ध्यानसे, मन्त्र-जपसे, श्रवणसे, सत्सङ्गसे बुरे विचारोंकी धारा तोड़ देनी चाहिये। भले ही उपन्यासों, नाटकों, समाचार-पत्रोंको पढ़ना पड़े, परंतु बुरे विचारोंकी धारा अवश्य तोड़नी चाहिये। इसी प्रकार अच्छे कर्मोंके लिये तथा स्वस्थ होनेके लिये पहले अच्छे विचारोंको लाना चाहिये। अच्छे शास्त्रोंका अभ्यास, अच्छे पुरुषोंका सङ्ग करने और पवित्र वातावरणमें रहनेसे अच्छे विचार बनते हैं, बुरे विचार और बुरे कर्म छूट जाते हैं। एकाएक मनका संकल्प-विकल्पसे रहित होना असम्भव है, अतः तदर्थ प्रयत्न व्यर्थ है। जैसे भाद्रपदमें सिंधु, शतद्रु, गङ्गा आदि नदियोंका वेग रोककर उनके उद्गम स्थानमें लौटाकर उन्हें सुखा देना असम्भव है, परंतु उनकी धाराओंका मुँह फेरकर उन्हें छिन्न-भिन्नकर सुखाना सम्भव है; वैसे ही मनके संकल्पोंको एकदम रोक देना असम्भव है, परंतु बुरे विचारोंको रोककर सात्त्विक विचारोंकी धाराओंको चलाकर सात्त्विक वृत्तियोंसे तामसिक वृत्तियोंको काटकर, शनैः-शनैः अन्तरङ्ग सूक्ष्म सात्त्विक वृत्तियोंसे स्थूल बहिरङ्ग सात्त्विक वृत्तियोंको भी काटकर निवृत्तिकता सम्पादित की जा सकती है। वैदिक शास्त्रोंमें बालकोंके विचारोंको सँभालनेका बड़ा ध्यान रखा गया है। स्त्रियों और बालकोंके निर्मल-कोमल, पवित्र अन्तःकरणोंमें पहलेसे ही जो बातें अङ्कित हो जाती हैं, वे ही सदा काम आती हैं। चित्त या अन्तःकरण यदि अद्भुत लाक्षा (लाख)-के समान कठोर होता है तो उसमें किसी भी आचरण या उपदेशका प्रभाव नहीं पड़ता और जब वह द्रुत लाक्षाके समान कोमल रहता है, तब लाक्षापर मुहरके अक्षरोंके समान निर्मल-कोमल पवित्र अन्तःकरण उत्तम आचरणों एवं उपदेशोंसे प्रभावित होता है। पहलेसे ही बुरे सङ्गों और ग्रन्थोंसे बालकोंके हृदयमें कूड़ा-करकटका भरा जाना अत्यन्त हानिकारक है। इसीलिये अच्छे पुरुषोंका सङ्ग तथा सच्छास्त्रोंके अभ्यासमें ही उन्हें लगाना अच्छा है। प्रत्येक दृष्टिसे स्वस्थ रहनेका यही अमोघ उपाय है—

यादृशैः संनिविशते यादृशांश्चैव सेवते।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति पूरुषः॥

अर्थात् जैसे लोगोंका सहवास होता है और जैसे लोगोंका सेवन होता है तथा जैसा होनेकी उत्कट वाञ्छा होती है, प्राणी वैसा ही हो जाता है।



जीवन और मृत्युका रहस्य

(ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

जीवन और मृत्यु—दोनों ही शब्द संस्कृत भाषाके हैं तथा परस्पर विरोधी हैं। 'जीव प्राणधारणे'—धातुसे 'जीवन' शब्द और 'मृङ प्राणत्यागे' से 'मृत्यु' शब्दकी व्युत्पत्ति होती है। प्राणधारणसे प्राणत्याग बिलकुल विपरीतार्थक है। इसका सीधा-सा अभिप्राय यह है कि जबतक प्राण-वायुका संचार नासिकारन्ध्रद्वारा होता रहता है, तबतक 'जीवन' और जब प्राण-वायुका नासिकारन्ध्रोंसे गतागत समाप्त हो जाता है, तब 'मृत्यु' शब्दका प्रयोग होने लगता है। इस प्राण-वायुके धारण और परित्यागद्वारा जो जीवन और मरण—ये दो अवस्थाएँ बनीं, ये शरीरकी हैं या शरीरके अभ्यन्तर निवास करनेवाले जीवकी अथवा केवल वायुकी?

जीवन और मृत्युका व्यपदेश शरीरसे सम्बन्ध रखता है। अर्थात् जबतक शरीरमें प्राण-वायुका संचार रहता है, तबतक नेत्रोंसे अंधा, कानोंसे वधिर और वाणीसे गूँगा भी 'जीवित' ही कहा जाता है। जब प्राण-वायुका सम्बन्ध शरीरसे हट जाता है, तब सभी इन्द्रियोंसे सम्पृक्त होता हुआ भी वह 'मृत' माना जाता है। इसलिये प्राणको सबसे उत्तम माना गया। **यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च॥** (छान्दोग्य० ५।१।१) इसी अध्यायमें प्राणको सबसे श्रेष्ठ बताया गया है— '**ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन्को नः श्रेष्ठ इति तान् होवाच यस्मिन् व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्येत स वः श्रेष्ठः॥**' (छान्दोग्य० ५।१।७) 'प्रजापतिके पास जाकर समस्त इन्द्रियोंसहित प्राणोंने कहा—'भगवन्! हम सबमें कौन बड़ा है?' प्रजापति भगवान्ने सीधा उत्तर दिया

कि 'जिसके निकल जानेपर यह शरीर अत्यन्त हेय समझा जाय वही सबसे बड़ा है।' प्रजापतिकी इस बातपर विश्वास न कर सबसे पहले वागिन्द्रियने शरीरका परित्याग किया; पर शरीरकी केवल वक्तृत्व शक्तिको छोड़कर और कुछ हानि नहीं हुई। पूर्वकी भाँति सुनना, देखना और समझना बना रहा। इसी प्रकार क्रम-क्रमसे एक-एक कर सब इन्द्रियोंने शरीरका परित्याग करते हुए यह परीक्षा की कि क्या हमारे शरीरमें न रहनेसे यह उसी प्रकार कार्य-क्षम (जीवित) रहेगा या नहीं? पर इन्द्रियोंके निकल जानेपर प्राण-वायुके रहते-रहते शरीरकी 'जीवित' संज्ञा ही रही 'मृत' नहीं। अतः इसी क्रममें शरीरका त्याग कर प्राणोंके निकलनेका समय आया। सभी इन्द्रियाँ बेचैन हो गयीं और प्रार्थना करने लगीं—'**भगवन्नेधि त्वं नः श्रेष्ठोऽसि मोत्क्रमीरिति।**' (५।१।१२) इस प्रकार प्राणका स्थान शरीरमें सबसे ऊँचा है।

अब विचार यह करना है कि 'क्या प्राण-परित्यागसे शरीरकी मृत्यु और प्राणके रहते-रहते जीवन, बस, इतना ही सत्य और तत्त्व है या जीवन-मरण-व्यपदेशमें अन्य भी कोई तथ्य है?' इस सम्बन्धमें नास्तिक और आस्तिक दो सम्प्रदाय सामने आते हैं। 'नास्तिक' का कहना है कि 'पृथिव्यादि पञ्चभूतोंके स्व-स्व मात्राके अनुसार मिल जानेपर एक शक्ति उत्पन्न होती है, जिससे शरीरमें चैतन्यता आ जाती है। इन पाँचों तत्त्वोंका आंशिक अथवा सर्वांश विघटन ही मृत्यु है। अतएव शरीरसे पूर्व कोई चैतन्य तत्त्व (जीव) नामकी सत्ता ही सिद्ध नहीं होगी तथा न मृत्युके पश्चात् उस शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाला तत्त्व किसी लोक-लोकान्तर या किसी भी रूपान्तरमें अवशेष रहता है, जो शरीरद्वारा किये गये बुरे-भले कर्मोंका फल भोग करे, इसलिये आनन्दपूर्वक इस शरीररूपी आत्माका किन्हीं भी सदसत् उपायोंद्वारा आप्यायन करते रहो और आनन्दसे जीवन बिताओ—'**भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः**', '**ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।**' इत्यादि उनका घण्टा-घोष है। इस स्थितिके अनुसार शरीरकी उत्पत्ति भी कामासक्त स्त्री-पुरुषोंके परस्पर देह-संघर्षके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इस प्रकारके विचारवादियोंके लिये काम-तृप्ति सर्वत्र समान है।

अब 'आस्तिक' सम्प्रदाय आता है। वह नास्तिककी उपर्युक्त आंशिक युक्तियोंकी धज्जी उड़ा देता है यह कहते हुए कि 'यदि शरीरकी उत्पत्ति (जीवन) और विनाश (मृत्यु)-का कोई परोक्ष कारण नहीं है तो सभी मनुष्य समान रूप, समान शरीर, समान आयु और समान भोगवाले होने चाहिये थे। विषमताका क्या कारण है?' समान रूपादिके सम्बन्धमें नास्तिक यह कहकर कपड़े छुड़ाना चाहता है कि 'किसी देशकी जलवायु, खान-पान और आर्थिक व्यवस्थाके ढाँचेके अनुसार रूप, आयु और अवस्था निर्भर करती है।' पर हम पूछते हैं कि जन्मसे अंधे, जन्मसे गूँगे और जन्मसे बहरे क्यों उत्पन्न होते हैं? यदि यह कहो कि इसमें माता-पिताका दूषित शुक्र और शोणित ही कारण है तो पूछना होगा कि इससे पहलेके और बादके बच्चोंमें इस प्रकारका ऐन्द्रिय-दोष न होनेसे शुक्र-शोणितका दूषण कहाँ गया? अतः यह अवश्य मानना होगा कि हमारे जीवन-मृत्युके साथ न केवल प्राणका संसर्ग है, अपितु और भी कोई इस प्रकारके तत्त्व अवश्य हैं, जो प्राणके सहचारी या प्राणानुगामी हैं। वह तत्त्व सम्भूय होकर जैसे इस शरीरको धारण करता है, ठीक वैसे ही शरीरान्तर-धारणकी क्षमता भी रखता है। जैसे इस भूलोकमें इस शरीरद्वारा रहता है, वैसे ही इस लोकमें देहान्तर और लोकान्तरमें शरीरान्तर प्राप्त करनेकी क्षमता भी रखता है। इसलिये—

चैतन्यं यदधिष्ठानं लिङ्गदेहश्च यः पुनः।
चिच्छाया लिङ्गदेहस्था तत्संघो जीव उच्यते॥
(पञ्चदशी-द्वैत ११)

—के अनुसार लिङ्गशरीरकी कल्पनाका आधारभूत चैतन्य-अधिष्ठान, लिङ्गशरीर—पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय, पञ्चप्राण, मन और बुद्धि—ये सत्रह तत्त्व तथा इन सत्रह तत्त्वोंमें पड़ा हुआ चिदाभास—यह 'जीव' शब्दसे लिया जाता है। अतएव यह सत्रह तत्त्ववाला जीव कर्मानुसार शरीरान्तरमें गतागत करता रहता है। इस प्रकार अधिष्ठानचैतन्य, लिङ्गदेह और चिदाभास—इनकी कभी मृत्यु नहीं होती और न इनका कभी जीवन होता है। इनसे युक्त शरीरका ग्रहण 'जन्म' और उस शरीरका त्याग ही 'मृत्यु' मानी जाती है। अतएव गीतामें—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
(२।२२)

—कहा गया है अर्थात् 'जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है, उसी प्रकार जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है।' पुराने वस्त्रके त्याग और ग्रहणमें भी कुछ निमित्त होता है। कोई उत्सव या अन्य हेतु होनेपर ही वस्त्रान्तर धारण किये जाते हैं। ठीक उसी प्रकार कर्मनिमित्तक ही देहान्तरके धारण करनेका कारण होता है। इसीलिये छान्दोग्योपनिषद् (६।८।४)-में 'सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः' कहकर सिद्ध किया गया है कि 'हे सौम्य! इस समस्त संसारका मूल सत्तत्त्व है और इस सब प्रजाका एकमात्र सदधिष्ठान है तथा सब प्रजा सत्तत्त्वमें ही स्थित है।' इस प्रकार शरीरसे भिन्न, प्राणसे भिन्न तथा इन्द्रियग्रामसे भिन्न एक तत्त्व है, जो शरीरान्तरोंमें गतागत करता है और उसकी जीवन तथा मृत्यु—ये दो गतियाँ हैं।

यह तो एक अत्यन्त सामान्य और साधारण-सी बात है। पर इससे भी आगे बहुत ही विचारणीय बात यह है कि आखिर वह तत्त्व, जो पूर्वोक्त तीन वस्तुओंका संघ है, वह कैसे मनुष्य और स्त्रीके शुक्र-शोणितमें पहुँचा, कहाँसे गया, कैसे गया इत्यादि? यह एक गम्भीर प्रश्न है। इसी प्रसङ्गको दृष्टिमें रखते हुए श्वेताश्वतरोपनिषद् (१।१)-में लिखते हैं—

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता
जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु
वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्॥

इसका उत्तर देते हुए आगे लिखा है—'काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा, भूत प्रभृति आत्म-संयोगसे शरीरके कारण होते हैं, केवल आत्मा इस सम्बन्धमें कारण नहीं माना जाता।' जिस प्रकार उत्पत्स्यमान अङ्कुरके प्रति न केवल बीज, न केवल भूमि और न केवल कृषक कारण है—बीज, भूमि, कृषक, जल, वायु सभी समुदित होकर अङ्कुरके कारण बनते हैं, ठीक उसी प्रकार अन्नादि मेघद्वारा और शुक्र-शोणित अन्नद्वारा बननेपर जीव भी उन-उन पदार्थोंके द्वारा उन्हींमें ओतप्रोत हुआ जीवन-मरणके चक्करमें पड़ा रहता है। इस महाचक्रसे छुटकारा पानेके लिये जप, तप, ध्यान और समाधिका विधान शास्त्रोंमें बताया गया है। वह एक देव आत्मा या ब्रह्मपदवाच्य ऊर्णनाभि (मकड़ी)-की भाँति अपने द्वारा उत्पन्न की गयी वस्तुओंसे ही अपनेको बाँध लेता है। ठीक उसी प्रकार यह आत्मारूपी दिव्य प्रकाशवाला देव अपने द्वारा उत्पन्न की गयी वस्तुओंसे अपनेको ही बाँध लेता है। यथा—

यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतो देव एकः
स्वमावृणोत्। स नो दधाद्ब्रह्माप्ययम्॥

(श्वेताश्वतर० ६।१०)

इसी बातको और स्पष्ट करते हुए कौषीतकि-ब्राह्मणोपनिषद्में लिखा है कि 'लोग इस संसारको छोड़कर परलोकमें जाते समय पहले चन्द्रमामें पहुँचते हैं। यदि उन जीवोंके कर्म तुरंत जन्म लेनेके योग्य होते हैं तो वे वर्षाद्वारा भूमिपर आ जाते हैं और जिन शरीरोंके उपयोगी उनके कर्म होते हैं, उन शरीरोंमें वे पहुँच जाते हैं। कोई कीड़े, पतंगे, पक्षी, सिंह; कोई मनुष्य, देव, गन्धर्व इत्यादि शरीरोंमें जन्म ग्रहण कर लेते हैं।'

इस प्रकार जीवन-मृत्युका शास्त्रोंमें बहुत विवेचन है। पर वस्तुस्थिति यह है कि वही एक तत्त्व ब्रह्म या आत्मा सर्वत्र है। कर्मानुसार उसीका देहान्तरमें प्रवेश-निवेश होता है। यह सब सत्-असत् कर्म-कलापका परिणाम है। वास्तवमें यदि आत्म-तत्त्वको ठीक समझ लिया जाय—मनन और निदिध्यासनद्वारा पूर्ण निष्ठा हो जाय तो जन्म देनेवाले कर्मोंकी समाप्ति हो जाती है। जब जन्म देनेवाले कर्म नहीं, तब मृत्यु कहाँसे? इसीलिये वेदान्तियोंका यह डिण्डिम घोष है—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥

(आत्मोपनिषद् ३१)

अर्थात् न तो आत्माकी कभी उत्पत्ति होती है और न कहीं यह अवरुद्ध किया जा सकता है; न आत्मा कभी बंधनमें पड़ता है और न ही कभी इसे साधना करनेकी आवश्यकता पड़ती है; न तो इसे कभी मोक्षके लिये प्रयत्न करना पड़ता है और न यह कभी मुक्त ही होता है; क्योंकि यह पहलेसे ही मुक्त है। वास्तवमें यही पारमार्थिक स्थिति है।

आयुर्वेद भगवान्‌की देन

(ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराज)

महर्षि चरक, सुश्रुत एवं वाग्भटके अनुसार आयुर्वेदके मूल प्रवर्तक साक्षात् भगवान् हैं। भगवान्‌के द्वारा इन्द्रको, इन्द्रसे भरद्वाजको और भरद्वाजसे अन्य ऋषियोंको आयुर्वेदकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार आयुर्वेद अपने-आपमें सर्वाङ्ग-सम्पूर्ण ईश्वरीय विज्ञान है। आयुर्वेदके प्रवर्तक धन्वन्तरि चौबीस अवतारोंमेंसे एक अवतार हैं। उनके द्वारा प्रदत्त आयुर्वेदमें किसी प्रकारकी कमी नहीं है। इसीलिये कल्प-कल्पान्तर, युग-युगान्तरके बाद भी आयुर्वेदिक औषधियाँ पूर्ण सावधानीसे और विधि-विधानके अनुसार नहीं बननेपर भी लाभ ही करती हैं। यदि उन्हें आयुर्वेदशास्त्रमें निर्दिष्ट विधिके अनुसार उपयुक्त भूमि एवं उपयुक्त मुहूर्तमें पूर्ण सम्मानके साथ पैदा किया जाय, मन्त्रादिके प्रयोगसे उनकी रक्षा की जाय, फिर शास्त्रीय विधिसे सम्मानपूर्वक पूजन करके निमन्त्रण देकर लाया जाय और शास्त्रीय विधिसे उनका निर्माण किया जाय, निदानपूर्वक रोगका निश्चय करके रोगीकी अवस्था, शक्ति, क्षमता आदिका विचार करके प्रयोग किया जाय तो वे कभी भी हानि नहीं करेंगी तथा सर्वथा लाभदायक ही होंगी।

अंग्रेजी दवाइयाँ अनेक यन्त्रोंमें छान-छानकर तैयार की जाती हैं, फिर भी उनकी विपरीत प्रतिक्रिया (रिऐक्शन) होनेपर भयंकर हानि होती है। इसके विपरीत देशी दवाइयाँ विधिपूर्वक न बननेपर भी लाभ भले न करें, पर हानिकारक तो होतीं ही नहीं।

यह कहते हुए कष्ट होता है कि बहुत कम वैद्य ऐसे हैं, जो आदिसे अन्ततक अपनी देख-रेखमें औषधका निर्माण कराके उसका उपयोग करते हैं। देखा तो यह जाता है कि वैद्यराज महोदयके यहाँ काम करनेवाले वैद्यक विद्यासे सर्वथा अनभिज्ञ सेवक लम्बी-चौड़ी लिस्ट लेकर पंसारीकी दूकान जाते हैं। पंसारी समझता है कि स्टॉकमें रखा कूड़ा-करकट निकालनेका अवसर आ गया। वह पुड़िया बँधवाकर ले जाता है, कूट-छानकर औषधि बना लेता है। यह भगवान्‌की ही देन है कि इस प्रकारकी भी औषधि रोगीको लाभदायक भले ही न हो, नुकसान कभी नहीं करती। आयुर्वेदिक औषधियोंमें यह बड़ी विशेषता है कि वे धीरे-धीरे लाभ करती हैं, किंतु उनका प्रभाव स्थायी होता है; जब कि अंग्रेजी दवाइयाँ शीघ्र लाभ करती हैं, किंतु उनका प्रभाव स्थायी नहीं होता। यह भी दुःखके साथ कहना पड़ता है कि आजकलके नये वैद्य पाश्चात्त्य ढंगसे बन-ठनकर अपने-आपको डॉक्टर कहलानेमें गौरव समझते हैं। जब कि शास्त्रोंके अनुसार वैद्योंको अनुल्वण—सौम्य वेष धारण करना चाहिये। आयुर्वेदका अध्ययन भी आचार्योंके आज्ञानुसार उपनयनपूर्वक होना चाहिये। स्पष्ट है कि उपनयनके अधिकारी ही आयुर्वेद-विद्या पढ़नेके अधिकारी हैं।

यहाँ महापुरुषोंसे प्राप्त कुछ अनुभूत योग दिये जाते हैं। उनको चिकित्सकके निर्देशानुसार काममें लाना चाहिये।

आधाशीशी (आधा सिर दुखना)

शुद्ध देशी घी एवं चीनीमें बनी हुई जलेबी रातको काँसेके बर्तनमें दूधमें भिगोना चाहिये। रातभर उसे छतपर रखना चाहिये जिससे चन्द्रमाकी किरणें उसपर पड़ें। प्रातः स्नान कर अधिकारानुसार संध्या-पूजाके पश्चात् भगवान्‌को निवेदन करके जितनी वह हजम हो सके खाना चाहिये।

सब प्रकारके उदर-रोगों (संग्रहणी)-के लिये

एक रत्ती शङ्खभस्म, एक रत्ती सिद्धप्राणेश्वर, एक रत्ती रामबाण-रस, आधी रत्ती स्वर्णपर्पटी, आधा रत्ती मकरध्वज—इन सबको मिलाकर दो पुड़िया बनानी चाहिये। एक सुबह और एक शामको भुने हुए जीरेके चूर्ण और शहदके साथ लेना चाहिये।

पुरानी संग्रहणी

संग्रहणीमें प्रातः-सायं रामबाण-रस सादे पानीके साथ और मध्याह्नमें दो रत्ती सिद्धप्राणेश्वर चावलके पानीके साथ लेना चाहिये।

पथ्य—प्रातःकाल पुराने चावल और मूँगकी खिचड़ी खाये और सायंकाल भूख लगे तो थोड़ा शुद्ध घी और चीनीका हलवा खा ले।

ब्लड-शुगर या यूरिन-शुगर
खून, पेशाबकी चीनी

इस रोगमें दूध-दहीसे बचना चाहिये। इसमें न अधिक बैठना चाहिये और न अधिक लेटे रहना चाहिये। अधिक नींद भी नहीं लेनी चाहिये। अधिक-से-अधिक पुट अभ्रकभस्म शहदके साथ लेना चाहिये। रात्रिमें सोते समय एक तोला त्रिफला सादे जलके साथ लेना चाहिये।

बिना दवाईके भी शुगर-रोग गर्मीके दिनोंमें चैत्रसे भाद्रपदतक जौकी रोटी खानेसे और आश्विनसे फाल्गुनतक बाजरेकी रोटी, मूँगकी दाल, मेथी, पालक, बथुआ एवं चौलाईका शाक खानेसे मिट सकती है।

तमक श्वास (स्नोफीलिया) दमा

इसमें कर्पूररस और अभ्रक एक-एक रत्ती लेना चाहिये। सूर्यास्तके बाद भोजन नहीं करना चाहिये। घी या तेलमें तली हुई वस्तुएँ नहीं खानी चाहिये। भारी वस्तु भी नहीं लेनी चाहिये।

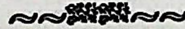
एग्ज़िमा

कर्पूर एवं नारियलका तेल तथा नीबूका रस समान मात्रामें खरल करके मलहम बना ले। इसका दिनमें दो बार प्रयोग करना चाहिये।

आँखकी दवा

सभी प्रकारके आँखके रोगोंमें नीबूके रसको मिश्रीकी एक तारकी चासनीमें डालकर ठंडा करके, सादे काँचकी शीशीमें भर ले। इसे काजलकी तरह दिनमें दो बार आँखमें लगाये।

(प्रेषक—ब्रह्मचारी सर्वेश्वर चैतन्य)



ब्रह्मचर्य-रक्षाके उपाय और फल

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

१. जिस देश, जाति और वंशके लोग चाहते हों कि हमारी संतान-परम्परामें ब्रह्मचारी उत्पन्न हों, उन्हें ब्रह्मचर्य तथा ब्रह्मचारीका विशेष आदर करना चाहिये और स्वयं शास्त्रोक्त आश्रमोचित ब्रह्मचर्यके नियमोंका यथाविधि पालन करना चाहिये। वंशपरम्परा और माता-पिताके भावका ब्रह्मचर्यपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। अनैतिक रीतिसे उत्पन्न संतानसे ब्रह्मचर्यकी आशा रखना उपहासास्पद है। यदि माता-पिताका संयोग केवल उद्दाम भोगलालसाकी तृप्तिके लिये ही होता है तो भावी संतान वासनापूर्ति-परायण हो जाय, इसमें क्या आश्चर्य है? भावी शिशुके शरीरगत सारे ही उपादान माता-पिताके मन और धातुओंसे ही संघटित होते हैं। यदि मूलमें ही दोष रहा तो कार्य निर्दोष कैसे हो सकता है? इसलिये माता-पिताको धर्मबुद्धिसे ऋतुकालमें शास्त्रोक्त रीतिसे संयोग करके संतानोत्पादन करना चाहिये। माता-पिताके मनमें आदर्श ब्रह्मचारी संतान ही उत्पन्न करनेका संकल्प होना चाहिये। जबतक शिशु गर्भमें रहे, माता-पिताको वासनारहित जीवन व्यतीत करना चाहिये। माता-पिताके भाव-बीज ही संतानमें अङ्कुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होते हैं।

२. जबतक शिशु माताका दूध पीता है, तबतक माताके शरीरसे और भावसे भी कामकी वृत्तिका स्पर्श न होना ही श्रेयस्कर है; क्योंकि मनमें कामावेश होनेपर शरीरके प्रत्येक अवयव एवं परमाणुमें उसकी व्याप्ति हो जाती है। इससे बच्चोंके मनमें भोगसम्बन्धी संस्कार तो पड़ते ही हैं, स्नायुओंमें उत्तेजना भी होने लगती है। छोटे-छोटे बच्चोंके मस्तिष्क और शरीरके अवयव बहुत ही कोमल एवं स्निग्ध होते हैं। शैशवमें ही उनपर जैसी छाप पड़ जाती है, वही जीवनभर प्रकाशित होती रहती है। जो लोग अपनी संतानको ब्रह्मचारी बनाना चाहते हैं, उनके लिये यह आवश्यक है कि जबतक वह दूध पीता रहे, तबतक अपनी वासनाको शान्त रखें।

३. माता-पिताको शिशुके सम्मुख ऐसी कोई चेष्टा कभी नहीं करनी चाहिये, जिसको देखकर उसके जीवनमें भी बुरी आदतें उतर आयें। खट्टा, चरपरा, चाट, मिठाई न तो स्वयं खाना चाहिये और न बच्चोंको ही खिलाना चाहिये। शरीरकी चरम धातु (वीर्य) रग-रगमें अनुस्यूत रहती है। बचपनमें भी उत्तेजक पदार्थोंके सेवनसे उसका पृथक्करण होने लगता है। इसीसे छोटे-छोटे बच्चोंको भी

प्रमेह, धातुक्षय हो जाते हैं। बचपनसे ही आहार-शुद्धि ब्रह्मचर्यके लिये अत्यन्त आवश्यक है। आहार-शुद्धिके सम्बन्धमें चार बातें ध्यानमें रखनी चाहिये—

(अ) आहार स्वभावसे ही उत्तेजक न हो। मांस, शराब, प्याज, लहसुन आदि जन्मसे ही उत्तेजक हैं।

(आ) भोज्य पदार्थमें कोई ऐसी वस्तु न मिली हो, जिससे वह वीर्यक्षरणका हेतु बन जाय—जैसे अमचूर, राई, गरम मसाले, लाल मिर्च इत्यादि। धूम्रपान ब्रह्मचर्यका महान् शत्रु है।

(इ) भोजनकी वस्तु रजस्वला एवं प्रबल काम-वासनावाली स्त्रीके द्वारा स्पर्श की हुई या बनायी हुई न हो। कुत्ते और गीध आदिकी दृष्टि भोजनपर नहीं पड़नी चाहिये। भोजनपर भावका बहुत प्रभाव पड़ता है। रोती हुई स्त्रीके हाथका भोजन करनेसे रोना पड़ता है।

(ई) भोज्य पदार्थपर अपना न्यायसंगत स्वत्व होना भी आवश्यक है। दूसरेका हक मनको बाहर खींचता है। गृहस्थको बिना परिश्रम अथवा बिना मूल्यका भोजन नहीं करना चाहिये। इससे विकारोंकी वृद्धि होकर गृहस्थोचित ब्रह्मचर्य भङ्ग हो जाता है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासीका भिक्षापर न्यायोचित स्वत्व है; परंतु यदि वे आश्रमोचित कर्मानुष्ठान न करें, केवल भिक्षाजीवी बन जायँ तो उनका पतन हो जाता है। ब्रह्मचारीके लिये श्रम अपेक्षित है, चाहे वह किसी भी आश्रममें क्यों न रहता हो। श्रमसे ही शुक्रका पाचन होता है।

४. जब बालक थोड़ा बड़ा हो जाय, तब उसे भोगमय वातावरणसे अलग रखना चाहिये। प्राचीन कालमें इसके लिये गुरुकुल अथवा ऋषिकुलकी प्रणाली थी। इससे अनेक लाभ हैं—

(क) अध्ययनकी निश्चिन्त सुविधा।

(ख) आदर्श आचार्यसे आचरणसम्बन्धी व्यावहारिक शिक्षा।

(ग) आचार्य एवं आश्रमकी सेवासे स्वार्थत्याग एवं सार्वजनिक हितका अभ्यास।

(घ) एक विशेष परिवारमें ही मोह-ममताकी शिथिलता।

(ङ) भोगमय जीवनसे पृथक् रहकर अपने लिये प्रवृत्ति एवं निवृत्तिमार्गमेंसे कोई एक चुननेके लिये संतुलित बुद्धिद्वारा विचार।

(च) संग्रह-परिग्रहके आडम्बरके बिना भी सुखी रहनेकी आदत पड़ जानेसे अर्थासक्ति और भोगलिप्साकी निवृत्ति तथा भ्रष्टाचार, अत्याचार, अनाचार और व्यभिचार आदिसे स्वयं घृणा होना।

(छ) शान्तचित्तसे आत्मस्वरूप एवं परमात्मस्वरूपका विवेचन होनेसे तत्त्वसाक्षात्कार होकर परमानन्दस्वरूप ब्रह्ममें स्वाभाविक स्थिति।

(ज) विश्व, राष्ट्र, सम्प्रदाय, समाज, परिवार एवं व्यक्तिकी सेवाकी योग्यता प्राप्त होना।

५. माता-पिता एकसे अधिक पुत्र उत्पन्न न करें तो सर्वोत्तम है। यदि अधिक पुत्र उत्पन्न करना ही हो तो बालकको ब्रह्मचर्याश्रममें निश्चितरूपसे भेज दें, जिससे बालकके स्वाभाविक ब्रह्मचर्यके भावपर कोई ठेस न पहुँचे और वह आदर्श आचार्यकी शरणमें रहकर सत्य, अहिंसा आदि सद्‌गुणोंको सीख सके एवं ज्ञानोपार्जन भी कर सके।

६. आचार्यका आदर्श होना परम आवश्यक है। वह भी ब्रह्मचारी हो तो सर्वोत्तम। यदि गृहस्थ हो तो अपनी स्त्रीको आश्रमसे सर्वथा पृथक् रखे। स्वयं संध्या-वन्दन, बलिवैश्वदेव आदि नित्यकर्मका अनुष्ठान करे। सत्य, अहिंसा आदि नियमोंका पालन करे। स्वाध्यायशील और परिश्रमी हो। उद्धत वेश-भूषा धारण न करे। शौकीनी न करे। सादगीसे रहे। ब्रह्मचारियोंको अपने पुत्रके ही समान समझे। अपने आचरणके द्वारा उनके हृदयपर स्वार्थत्याग, विश्वसेवा, श्रद्धा, अभय आदि दैवीसम्पत्तिके भाव अङ्कित करे। आचार्यके गुण ही ब्रह्मचारीमें उतरते हैं। आचार्यको आलस्य, प्रमाद, परनिन्दा आदि दोष भूलकर भी नहीं अपनाने चाहिये। काशीके एक विद्वान् आचार्य एक बार अपने पुत्रके सामने संध्या-वन्दनमें किञ्चित् प्रमाद कर बैठे थे, जिससे उनके पुत्रने संध्या-वन्दन करना ही छोड़ दिया।

७. ब्रह्मचारियोंके जीवनकी आधार-शिला श्रद्धा और विश्वास ही है। बाल्यावस्थामें उनके विचार, ज्ञान और अनुभवकी मात्रा अत्यन्त स्वल्प होती है। इसलिये ब्रह्मचर्य-

आश्रममें ऐसी शिक्षा देनी चाहिये, जिससे ब्रह्मचारियोंके अन्तःकरणमें शास्त्रके प्रति महत्त्व-बुद्धि, धर्ममें निष्ठा और ईश्वरमें विश्वासकी वृद्धि हो। प्राथमिक शिक्षामें खण्डन-मण्डनवाले ग्रन्थोंको स्थान नहीं देना चाहिये। एक समाजके प्रति राग और दूसरेके प्रति द्वेष उत्पन्न करनेवाली शिक्षा अनर्थकी जननी है। इसीसे व्यापक वैमनस्य, संघर्ष, कलह एवं गृहयुद्धोंकी उत्पत्ति होती है। शिक्षा सर्वतोमुखी होनी चाहिये। उसमें साधारण उठने-बैठने, खाने-पीने, बोलने आदिकी शिष्ट रीति बतानेके साथ-ही-साथ घरेलू काम-धंधे, चिकित्सा, व्यापार आदिकी बातें भी बतानी चाहिये। इतिहास, भूगोल, विज्ञान, शासन-प्रणाली, संविधान, देश-विदेशकी संस्कृति, अन्ताराष्ट्रिय सम्बन्ध आदिका प्रशिक्षण भी आवश्यक है। पाठनकी रीति ऐसी होनी चाहिये, जिससे केवल किताबी ज्ञान न होकर रचनात्मक और अनुभवात्मक ज्ञान प्राप्त हो। कूपमण्डूकवत् सङ्कीर्ण प्रवृत्तियों और भावनाओंका अन्त कर देना चाहिये। यदि अन्तःकरणमें ईश्वर और धर्मपर विश्वासकी स्थापना नहीं की गयी तो संसारकी कोई भी शिक्षा मनुष्यको ईमानदार और चरित्रवान् बनानेमें सफल नहीं हो सकती। कोई भी शासन, विधान, पुलिस, सेना एवं अस्त्र-शस्त्र मनुष्यके हृदयको नहीं गढ़ सकता। श्रद्धा, भावना, विचार और आचरणके द्वारा ही उसका निर्माण हो सकता है।

८. ब्रह्मचारियोंको अपने आचार्यके प्रति निश्छल, नम्र एवं अत्यन्त श्रद्धालु होना चाहिये। उनके प्रत्यक्ष और परोक्षमें भी बड़ी सभ्यता, समझदारी, विनय और मर्यादासे बर्ताव करना चाहिये। आचार्यसे पीछे सोना और पहले उठना चाहिये। स्नान, संध्या-वन्दन, हवन, व्यायाम और स्वाध्यायसे शरीर एवं बुद्धिका पोषण होता है। उपासनाके बिना चित्तमें एकाग्रता और सूक्ष्मता नहीं आती। आसनके अभ्यासके साथ-साथ थोड़ा प्राणायाम भी लाभकारी है। इससे शास्त्रका तात्पर्य ग्रहण करनेमें बड़ी सहायता मिलती है। ब्रह्मचारीको कब्ज कभी नहीं होने देना चाहिये। उससे ही आलस्य, प्रमाद और आगे चलकर स्वप्नदोषकी सृष्टि होती है। पेटकी खराबीसे मनमें विकार आने लगते हैं। इसके लिये भोजनपर नियन्त्रण रखना अनिवार्य है। अत्याहार और अनाहार दोनों ही क़ब्ज़के कारण बनते हैं। सात्त्विक भोजन भी मात्रासे अधिक लेनेपर विष हो जाता है। इसलिये भोजनमें मात्राका परिमित होना बहुत ही जरूरी है। आजके संसारमें भोजन न मिलनेसे उतने मनुष्य रुग्ण एवं काल-कवलित नहीं होते, जितने अधिक भोजन करनेके कारण होते हैं। अपनी उन्नति, अन्तर्मुखता और संयमका लेखा-जोखा रखना चाहिये। जीवनको आत्मबल, उत्साह और आशासे पूर्ण कर देना चाहिये। ब्रह्मचारीका संकल्प दृढ़ एवं अविचल हो।

९. ब्रह्मचर्याश्रमके संचालकोंको इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि ब्रह्मचारी भीतर कुछ और तथा बाहर कुछ और न होने पावे। ब्रह्मचारीके जो दोष-दुर्गुण निवृत्त करने हों, उनके प्रति पहले उनमें दोषबुद्धि उदय करानी चाहिये और जो काम कराना हो उसके प्रति महत्त्वबुद्धि, जिससे उनकी वर्धिष्णु विचार-शक्तिपर कोई आघात न लगे। विशेष दबाव डालकर जो नियम पालन कराये जाते हैं, उनका प्रभाव प्रतिक्रियात्मक पड़ता है। ब्रह्मचारीकी बुद्धि ज्यों-ज्यों विकसित होती जाय, त्यों-त्यों उनके आचारसम्बन्धी विज्ञानमें भी वृद्धि होनी चाहिये। अन्यथा ब्रह्मचर्याश्रमसे निकलते ही वे एकाएक समस्त नियमोंको तोड़ डालते हैं और जिस जीवन-निर्माणके लिये उनसे तपस्या करायी जाती है, वह नहीं हो पाता। एक बात और भी ध्यानमें रखनेकी है। ब्रह्मचारियोंके द्वारा जो उनकी विद्या-बुद्धिके सार्वजनिक प्रदर्शन कराये जाते हैं, वे सच्चे हों। उनमें दम्भकी मात्रा बिलकुल नहीं होनी चाहिये। ब्रह्मचारी छात्रको जिस विषयका ज्ञान नहीं है, यदि वह दूसरेसे उधार लेकर, रटकर, नकल करके या अन्य किसी अनुचित रीतिसे जनसमाजमें उसका प्रदर्शन करता है तो थोड़ी देरके लिये संचालकों, आचार्यों एवं ब्रह्मचारियोंको तात्कालिक वाहवाही और प्रशंसा प्राप्त हो जाती है। कुछ आर्थिक लाभ होना भी सम्भव है; परंतु इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव प्रतिकूल पड़ता है। झूठे अभिमान और दम्भसे बढ़कर कोई पतनका स्थान नहीं है। अपनी कमजोरियोंको जानना, अज्ञानको पहचानना, सतत आत्मनिरीक्षण करना सबसे बड़ी शिक्षा है।

१०. अध्ययन-अध्यापनमें एक हदतक भाषा और व्याकरणका ज्ञान आवश्यक है; परंतु वही सब कुछ नहीं

है। वस्तुके ठोस ज्ञानपर ही मुख्य दृष्टि रखनी चाहिये। केवल 'गौ' शब्द, उसके धेनु, सुरभि, वृषभ आदि पर्याय एवं उन शब्दोंके भिन्न-भिन्न प्रयोगोंकी रीति जान लेना ही पर्याप्त नहीं है। कोष, व्याकरण, साहित्य, यमक-अनुप्रास आदिकी अच्छी जानकारी होनेपर भी यदि गायसे परिचय नहीं है तो सब व्यर्थ है। इसी प्रकार जिस विषयका अध्ययन हो, उसका क्रियात्मक, रचनात्मक, प्रयोगात्मक और व्यावहारिक अनुभव भी होना चाहिये। किसीको झाड़ुओंके बहुतसे नाम और आकृतियाँ मालूम हों, परंतु झाड़ू लगाना न आता हो तो उस ज्ञानका क्या महत्त्व है? इसी प्रकार धर्म, ब्रह्म, प्रेम आदि पदार्थोंका भी साक्षात्कार होना चाहिये। केवल पदवाक्य और प्रमाणके ज्ञानसे ही अपनेको कृतकृत्य नहीं मान लेना चाहिये। सारे अध्ययन, अध्यापन, संयम, नियम, जप, तप, धारणा, ध्यान आदि साधन सत्य वस्तुके साक्षात्कारके लिये हैं। यदि इस जीवनमें सत्यका साक्षात्कार नहीं हो पाया तो बहुत बड़ी भूल—जीवनका विनाश समझना चाहिये।

११. ब्रह्मचर्य-रक्षाके लिये छान्दोग्योपनिषद्‌में छः बातोंपर विशेष बल दिया गया है—

(१) इष्ट अर्थात् अग्निहोत्र, शारीरिक, वाचिक और मानसिक तपस्या, वेदोंका स्वाध्याय, वेदोक्त आचरणका अनुष्ठान, अतिथि-सेवा और बलिवैश्वदेव।

(२) यज्ञ अर्थात् देवाराधन, अपने हककी वस्तुओंको औरोंके प्रति वितरण, पञ्चभूतोंकी शुद्धि, समष्टिकी सेवा।

(३) मौन—मनमें वासनाओंका स्फुरण न होना, मनोराज्य न होना। आवश्यकतासे अधिक भाषण न करना।

(४) अरण्यायन—शान्त, एकान्त, पवित्र, निर्जन वनमें वास करना।

(५) सत्रायण—सत्संगमें निवास करना।

(६) अनाशकायन—भोजनके सम्बन्धमें एक निश्चित शैली रखना।

१२. शतपथ-ब्राह्मणमें ब्रह्मचारीकी चार शक्तियोंका उल्लेख प्राप्त होता है—

(१) अग्निके समान तेजस्विता।

(२) मृत्युके समान दोषों—दुर्गुणोंके मारणकी शक्तिका होना।

(३) आचार्यके समान दूसरोंको शिक्षा देनेकी शक्तिका विद्यमान रहना।

(४) संसारके किसी भी स्थान, वस्तु, व्यक्ति आदिकी अपेक्षा रखे बिना आत्माराम होकर रहना।

१३. गोपथ आदि ब्राह्मण-ग्रन्थों, धर्मसूत्रों, गृह्यसूत्रों एवं मन्वादि धर्मसंहिताओंमें सर्वत्र ही ब्रह्मचारियोंके लिये नृत्य, वाद्य, संगीत, नाट्य आदिका निषेध प्राप्त होता है। ललित कलाएँ अन्तस्तलकी सुषुप्त वासनाओंको धीरे-धीरे कुरेदती हैं और उन्हें उकसाती तथा भड़काती हैं। भगवद्विषयक ललित कलाएँ उतनी बाधक नहीं हैं। फिर भी ब्रह्मचारियोंको शृङ्गारसम्बन्धी अभिनय और भावभङ्गिमासे सर्वथा पृथक् रहना चाहिये। रासलीलाके श्रवण-श्रावणके द्वारा कामविजयकी प्रणाली भी शृङ्गार-रसाकृष्ट व्यक्तियोंके लिये ही है। ब्रह्मचारियोंके लिये वह हानिकारक है। ऐसी अवस्थामें नाटक, सिनेमा आदि विकारवर्धक एवं उद्दीपक प्रसंगोंसे पृथक् रहनेमें ही ब्रह्मचारियोंका कल्याण है।

१४. समावर्तन-संस्कारके पूर्व अपने स्वभाव, रुचि, महत्त्वाकांक्षा, योग्यता, स्वहित, परहित आदिका गम्भीर विवेचन कर लेना चाहिये। पूरी सचाईसे इस बातका अनुशीलन करना चाहिये कि हम सांसारिक भोग्य पदार्थोंकी प्राप्तिसे सुखी होते हैं, हमें सुन्दर वस्त्र-आभूषण, भोजन, मान-प्रतिष्ठा, बड़ाई और धन आदिकी प्राप्तिसे सुख होता है अथवा इनके त्यागसे। यदि किञ्चित् भी लौकिक वासना अन्तःकरणमें शेष हो तो त्यागमय आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा धारण न करके निःसंकोच गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये और तदनुकूल ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। गृहस्थोचित ब्रह्मचर्यमें निम्नलिखित बातोंका ध्यान रखना चाहिये—

(१) गृहस्थाश्रम भोग भोगनेके लिये नहीं है अपितु भोगवासनाओंको नियन्त्रित करके उन्हें नाश करनेके लिये है। ब्रह्मचर्यमें जैसा शक्तिसंचय, ज्ञानका प्रकाश, तपस्याकी वृद्धि, लौकिक सुख एवं पारमार्थिक सुखकी प्राप्ति है भोगमें उसका लक्षांश भी नहीं है। जैसे फोड़ा होनेपर उसकी मवाद निकलते समय एक प्रकारका सुख होता है,

वैसे ही मनमें विकार या मन्थनकी पीडा होनेपर वीर्यपातसे एक प्रकारका हलकापन अथवा आभासमात्र सुखका अनुभव होता है। जैसे भाँगका नशा उतर जानेपर सुस्ती, कमजोरी और उदासी मालूम पड़ती है, वैसे ही कामावेश शान्त हो जानेपर स्त्री-पुरुषका पारस्परिक संग कोई सुख, स्वाद, विलास नहीं दे पाता है। यह एक प्रकारका रोग, विवशता, पराधीनता और दुःखका मूल है। इसका न होना ही अच्छा है। संयमपर दृष्टि रखते हुए ही भोग करना चाहिये।

(२) एक पुरुषका एक स्त्रीसे और एक स्त्रीका एक ही पुरुषसे संयोग होना चाहिये। मनमें विकार आ जानेसे भी शील, संयम और व्रत भङ्ग हो जाता है और इस प्रकार मनोवैज्ञानिक पतन हो जानेसे जीवन अनियमित, उच्छृङ्खल एवं अधोगामी हो जाता है।

(३) स्त्री-पुरुषके संयोगके सम्बन्धमें अवस्था, शक्ति, समय, स्थान आदिका भी ध्यान रखना चाहिये।

(४) व्यभिचारको प्रोत्साहन देनेवाली गर्भ-निरोधकी प्रणालियोंको कभी काममें नहीं लाना चाहिये। संयम अवश्य रखना चाहिये।

(५) पति-पत्नीको अलग-अलग शयन करना चाहिये।

(६) सम्भव हो तो एक पुत्र उत्पन्न होनेके बाद इस शक्ति-क्षयकारिणी क्रियासे विरत हो जाना चाहिये और वैराग्य हो तो वानप्रस्थ अथवा संन्यास-आश्रममें प्रवेश कर लेना चाहिये अथवा विश्वसेवाके कार्यमें लग जाना चाहिये। यह विश्व ही परमात्माका मूर्तरूप है।

(७) गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी यथाशक्ति स्वार्थत्याग करके विश्वसेवाके आदर्शको पूर्ण करना चाहिये।

१५. आजीवन त्यागमय ब्रह्मचारी-जीवन व्यतीत करना अथवा ब्रह्मचर्याश्रमके बाद संन्यासाश्रममें प्रवेश करना आपत्तिकी बात नहीं है; किंतु इसके पूर्व अपने अधिकार (योग्यता और शक्ति)-का भलीभाँति विचार कर लेना आवश्यक है। केवल तात्कालिक आकांक्षा, रुचि और आवेशसे प्रेरित होकर ऐसा करना बुद्धिमानीकी बात नहीं है। लक्ष्य-प्राप्तिके लिये पूर्ण निश्चय और वज्रकठोर दृढ़ताकी आवश्यकता है। जिसमें इन्द्रियदमन, मनपर विजय, तपस्या, द्वन्द्व-तितिक्षा एवं कष्टसहनमें ही सुखका भाव है, वही त्यागमय जीवनका अधिकारी है। बिना वैराग्य एवं त्यागकी तीव्र भावना हुए आजीवन ब्रह्मचर्यका संकल्प निष्फल ही नहीं, पतनका हेतु भी है। ईश्वर, आचार्य, शास्त्र एवं आत्मदेवकी कृपाका संबल लेकर ही इस मार्गपर अग्रसर होना चाहिये।

१६. आजीवन ब्रह्मचारीके लिये सबसे पहली बात यह है कि वह अपनी एक निष्ठाका निर्णय—निश्चय कर ले। उसे चार निष्ठाओंमेंसे अपने लिये कोई एक चुन लेना चाहिये—

(१) कर्म—यज्ञ-यागादि, वेदोक्त कर्मकाण्ड, अशिक्षा-निवारण, रोग-निवारण, स्वच्छताका प्रचार, लोगोंमें नैतिक जीवनकी ओर रुचि उत्पन्न करना।

(२) उपासना—गायत्री-जप, नाम-जप, देवाराधन, सङ्कीर्तन, कथा-श्रवण, भक्तिके विभिन्न अङ्गोंका अनुष्ठान।

(३) योग—आसन, प्राणायाम आदिके द्वारा चित्तवृत्तियोंके निरोधका अभ्यास।

(४) ज्ञान—श्रवण, मनन, निदिध्यासनके द्वारा आत्मसाक्षात्कारके लिये प्रयत्न।

इन चारोंमेंसे किसी एकको प्रधान और शेषको गौण-रूपसे धारण करना चाहिये। सभी निष्ठाओंमें इन्द्रियसंयम, मनोनिरोध एवं सदाचारयुक्त मृदु व्यवहारकी अपेक्षा है। किसी एक निष्ठाको स्वीकार किये बिना अकर्मण्यता—बेकारी आनेका भय रहता है, जिससे मनमें विकारोंके आ जानेकी सम्भावना रहती है। निकम्मे आदमीका जीवन प्रमादका घर होता है।

१७. ब्रह्मचारीको कामविजयके साथ-ही-साथ अत्यन्त सूक्ष्म और तीक्ष्ण दृष्टिसे अन्य दोषोंपर भी ध्यान रखना चाहिये। काम बड़ा मायावी है। वह तरह-तरहके रूप धारण करके आक्रमण करता रहता है; जैसे—

(क) मोह-ममता—यह मेरा प्रिय व्यक्ति अथवा प्रिय वस्तु है, पहले इस प्रकार सम्बन्ध जोड़कर पीछे भोगबुद्धि उत्पन्न करा देता है।

(ख) लोभ—पहले साधनाकी सुविधा और आवश्यक सामग्रीके छलसे द्रव्य इकट्ठा करा लेता है और पीछे

वासनापूर्तिके लिये उसका उपयोग कराता है।

(ग) क्रोध—पहले अपने आलोचक अथवा निन्दकको अपने मार्गसे हटा देता है और फिर इच्छापूर्तिकी छूट दे देता है।

(घ) मान-प्रतिष्ठा—पहले लोगोंके चित्तपर अपनी धाक जमाकर फिर मनमानी कराता है।

(ङ) मिथ्या अभिमान—अब मेरा चित्त निर्विकार हो चुका है, मैं योगी हूँ, ज्ञानी हूँ, भक्त हूँ, सिद्ध हूँ—ऐसी अन्धता उत्पन्न करके फिर भोगके गढ़ेमें डाल देता है, इत्यादि।

कामके इन मायावी रूपोंसे बचनेके लिये सतत सावधानीकी आवश्यकता है। इसके लिये इन उपायोंपर चलना चाहिये—

(१) किसीसे विशेष हेल-मेल न बढ़ाना, सम्बन्धी एवं परिचितोंके देशमें न रहना और न आना-जाना।

(२) पैसे एवं वस्तुओंका संग्रह न करना।

(३) आलोचकों एवं निन्दकोंको अपना हितैषी समझना और उनकी आलोचनाका आत्मनिरीक्षणमें सदुपयोग करना। कभी-कभी निन्दकोंके द्वारा अपने ऐसे छिपे दोषोंका पता चल जाता है, जिनका ज्ञान स्वयं साधकको भी नहीं रहता है।

(४) अपने ऊपर लोगोंकी विशेष श्रद्धा कभी न कराये। मान-प्रतिष्ठाका अत्यन्त निषेध भी न करे; क्योंकि वह निषेधसे ही बढ़ती है। जहाँतक हो सके स्वयं उससे बचना चाहिये।

(५) किसी प्रकारका अभिमान धारण न करे। अभिमान ही कामका आश्रय है। अभिमानके सहारे ही वह फूलता-फलता है। परिपूर्णतम परब्रह्म परमात्मामें द्वैत नामकी कोई वस्तु ही नहीं है, फिर कौन किसका अभिमान करे! (क्रमशः)



स्वस्थ तन एवं स्वस्थ मन

(ब्रह्मलीन योगिराज श्रीदेवराहा बाबाजीके अमृत वचन)

मनको प्रसन्न एवं स्वस्थ रखनेका पहला उपाय है—शरीरको स्वस्थ रखना। शरीर वह रथ है, जिसपर बैठकर जीवनकी यात्रा करनी होती है। शरीर एक चलता-फिरता देव-मन्दिर है, जिसमें स्वयं भगवान् अपनी विभूतियोंके साथ विराजते हैं। अतः मनकी निर्मलता और बुद्धिकी शुद्धताका साधन शरीरसे प्रारम्भ होता है। शरीर तो एक साधनमात्र है, जिसकी सहायतासे परम साध्यको प्राप्त करनेके लिये योग, तप, जप आदि किया जाता है। इस साधनरूपी शरीरको स्वस्थ और पवित्र रखनेसे ही योगकी शुरुआत होती है।

मांसाहार, शराब, धूम्रपान आदि—ये सभी रोगोंकी जड़ हैं। सात्त्विक भोजनसे रक्त शुद्ध रहता है। तामसी भोजनसे शरीर आलसी और रोगी रहता है। सात्त्विक भोजनसे गरीबी भी दूर रहती है तथा जीवनमें संतोष और प्रसन्नता आती है। अमीर आदमी यदि व्यसनोंमें फँसा रहे, तामसी वृत्ति रखे तो दरिद्रता सहज आयेगी। अपनी वृत्तियोंकी संतुष्टिके लिये वह पाप करेगा, धोखा देगा और फलस्वरूप दुःखका भागी होगा। दुःख नाना प्रकारके रोगोंके रूपमें भी कष्ट देता है। प्रकृतिके निकट रहो। शुद्ध मिट्टीमें भी औषधिके गुण हैं। बच्चोंका शुद्ध मिट्टीमें खेलना बुरा नहीं है। नेत्र-ज्योतिकी रक्षाके लिये सबेरे नंगे पाँव घासपर टहलो। दर्दके स्थानपर किसीके दाहिने पैरका अँगूठा लगवाओ तो आराम पहुँचेगा। दाहिने पाँवके अँगूठेसे विद्युत्-तरङ्गें विशेष रूपसे प्रवाहित होती हैं। इसलिये महान् पुरुषोंका चरणामृत लिया जाता है। आसनोंकी सिद्धिसे शरीर नीरोग रहता है। बद्धपद्मासन स्वास्थ्यके लिये लाभप्रद है।

सूर्यकी किरणोंमें औषधिके प्रचुर गुण हैं। पहले समयमें कुएँ चौड़े होते थे, जिससे सूर्य तथा चन्द्रमाकी किरणें पानीतक पहुँच सकें। जिस पानी या भोजनपर सूर्य अथवा चन्द्रमाकी किरणें पड़ेंगी, वह अपेक्षाकृत अधिक स्वादिष्ट तथा मीठा होगा।

भोजन या दूध-दही तब सेवन करे, जब दायाँ स्वर चल रहा हो। जल-ग्रहण करनेके समय बायाँ स्वर चलना

चाहिये। इसके विपरीत आचरणसे काया रोगी होती है—

दहिने स्वर भोजन करै, बाँयें पीवै नीर।
ऐसा संयम जब करै, सुखी रहै शरीर॥
बाँयें स्वर भोजन करै, दहिने पीवे नीर।
दस दिन भूला यों करै, पावै रोग शरीर॥

सात्त्विक भोजन-पानसे और सादे वस्त्र धारण करनेसे बुद्धि शुद्ध रहती है। सात्त्विक जीवनसे शान्ति मिलती है। तामसिक जीवनसे बेचैनी रहती है, उद्वेग रहता है तथा जलन और ईर्ष्या होती है। इसी कारण बीड़ी-सिगरेट आदि मादक वस्तुओंका उपयोग नहीं करना चाहिये। इनसे वृत्तियाँ तामसिक होती हैं। इनके सेवनसे बुरी आदतें पड़ जाती हैं। तंबाकू खाने-पीनेसे तेज नष्ट हो जाता है। कहा गया है कि युद्धमें कामधेनुके कान कटनेसे जहाँ रक्त गिरा वहीं तंबाकू उगा और पनपा। अतः मादक द्रव्योंके सेवनसे आरोग्यकामी मनुष्यको सदा बचना चाहिये। स्वस्थ विचार स्वस्थ मनसे उत्पन्न होता है, स्वस्थ मन स्वस्थ शरीरमें रहता है और उसीका शरीर स्वस्थ रहता है, जिसकी इन्द्रियाँ अपने वशमें हैं। इन्द्रियोंको वशमें रखनेके लिये प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्तमें जगकर परमात्माका एक घंटा नियमसे ध्यान किया जाय तो कल्याण अवश्य होगा।

(प्रेषक— श्रीमदनजी शर्मा)

'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्'

(गोलोकवासी संत पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

जबतक मैंने आयुर्वेदके ग्रन्थोंका अध्ययन नहीं किया था, तबतक मैं यही समझता था कि उनमें रोगोंका निदान तथा सोंठ, मिर्च, पीपल, हर्रा, बहेड़ा, आमलादि ओषधियाँ ही लिखी होंगी। किंतु जब मैंने आर्ष आयुर्वेदिक ग्रन्थोंका अध्ययन किया, तब मुझे पता चला कि यह तो मोक्ष-मार्गका शासन करनेवाला, शिक्षा देनेवाला शास्त्र है। इसका एकमात्र उद्देश्य रोगोंसे छुटकारा करना ही नहीं है, अपितु इसका मुख्य उद्देश्य तो मोक्ष प्राप्त करनेका साधन बताना है। शास्त्रका अर्थ ही है— (शिष्यते अनेन इति शास्त्रम्) जो हमें मोक्ष-मार्ग सिखाये। जैसे सांख्यशास्त्र कहता है, प्रकृति-पुरुषके विवेकसे मोक्ष होता है। योगशास्त्र कहता है, योगद्वारा समाधि प्राप्त करनेसे मोक्ष मिलता है। वेदान्तशास्त्र कहता है— ब्रह्मज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। उसी प्रकार आयुर्वेदशास्त्र कहता है— 'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्' —धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-प्राप्तिमें श्रेष्ठ मूलकारण शरीरका नीरोग होना ही है। स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ मन रहता है, तभी ब्रह्मका चिन्तन सम्भव है। जैसे पैरमें यदि काँटा गड़ जाय तो सब समय उसीमें मन लगा रहता है वैसे ही रोगग्रस्त शरीरका मन रोगकी चिन्तामें लगा रहता है। वह ब्रह्म-चिन्तन कैसे करेगा? चरकने दार्शनिक ढंगसे प्रकृति-पुरुषका बड़ा विचार किया है और प्रायः वे सांख्य-शास्त्रके ही सिद्धान्तके पोषक हैं। हमारे यहाँ रोगोंका नाश केवल विषयोंके भोगके ही लिये नहीं है। विषयोंका भलीभाँति भोग भी स्वस्थ पुरुष ही कर सकता है। आयुर्वेद तो स्वास्थ्य-लाभ इसीलिये कराना चाहता है, जिससे हम भलीभाँति मोक्षमार्गका चिन्तन कर सकें। इसके लिये सबसे पहले शरीर स्वस्थ होना चाहिये। स्वस्थ काया होनेपर ही अन्तःकरण विशुद्ध बन सकता है।

यह शरीर व्याधियोंका घर है— शरीरं व्याधिमन्दिरम्। व्याधि होती है पूर्वजन्मोंके पापोंके कारण— 'पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।' पूर्वजन्मके पाप ही रोग बनकर मनुष्योंको पीडा देते हैं। जो ब्रह्मवेत्ता ऋषिगण पापरहित—निष्कल्मष होते थे, वे जरा, रोग तथा मृत्युसे रहित होते थे।

रोगोंके भेद—

शास्त्रोंमें रोग चार प्रकारके बताये गये हैं— १-स्वाभाविक, २-आगन्तुक, ३-मानसिक और ४-कायिक।

१-स्वाभाविक रोग वे कहलाते हैं, जो शरीरमें स्वभावसे ही होते हैं, जैसे प्यास, भूख भी एक प्रकारके रोग ही हैं। शरीरधारियोंको भूख, प्यास, निद्रा, जागना, मृत्यु—ये स्वाभाविक होते हैं। इनकी औषधि भी है। भूखकी औषधि भोजन है, प्यासकी औषधि पानी या पेय पदार्थ है, निद्राकी औषधि सोना है और मृत्युकी कोई

औषधि नहीं है।

एक स्वाभाविक रोग और है, जैसे कोई जन्मसे ही अन्धा उत्पन्न होता है, किसीका कोई अङ्ग विकृत होकर उत्पन्न होता है, ये सब स्वाभाविक रोगोंके अन्तर्गत आते हैं।

२-दूसरे हैं आगन्तुक रोग, जैसे किसी बैलने सींग मार दिया, किसी पशुने लात मार दी, किसी विषैले कीड़ेने काट लिया अथवा किसी रोगसे आँख फूट गयी या किसी बाहरी कारणसे अङ्ग-भङ्ग हो गया—ये सब आगन्तुक रोग हैं।

३-तीसरा है मानसिक रोग, जो मनके द्वारा शरीरको क्लेश देता है। जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, भय, अहंकार, दीनता, पिशुनता, विवाद तथा इसी प्रकार मनमें उठनेवाले अन्य विकार—ये सब मानसिक रोग ही हैं। कोई-कोई उन्माद, अपस्मार, मूर्च्छा, भ्रम और तम आदि रोगोंकी गणना भी मानस रोगोंमें ही करते हैं।

४-कायिक रोग वह है जो त्रिदोषोंके न्यूनाधिक्यसे होता है, जैसे ज्वर, पाण्डुरोग आदि-आदि।

आप यथेच्छाचार करेंगे, मिथ्या आहार-विहार करेंगे तो धातुओंमें विषमता आ जायगी। आमाशयमें दोष एकत्रित हो जायँगे, वे अनेक रोगोंको उत्पन्न करेंगे और आपकी अकाल-मृत्यु हो जायगी। रसायनके सेवनसे बृहद् विवर मुखसे लेकर गुदातक विशुद्ध बन जायगा, इससे आप पूरी आयु सौ वर्षोंतक जीवित रह सकेंगे। शरीरमें जब वात, पित्तादि दोष बढ़ जाते हैं, तब स्नायुओंमें—नसोंमें मल भर जाता है, इससे सम्मोहन हो जाता है, स्मृति नष्ट हो जाती है। रसायन-सेवनसे नाडियोंकी शुद्धि हो जाती है, इससे स्मृति-भ्रंश नहीं होता। वृद्धावस्थामें, यहाँतक कि मरणावस्थामें भी स्मृति ज्यों-की-त्यों बनी रहती है।

रसायन-सेवन किस अवस्थामें करना चाहिये—साठ वर्षकी अवस्थाके पश्चात् रसायन-सेवनसे विशेष लाभ नहीं मिलता। कारण यह है कि वात-पित्तादि दोष अन्य धातुसे मिलकर आँतोंमें अपना स्थायी घर बना लेते हैं। उन्हें गलाना कठिन हो जाता है। इसलिये रसायन-सेवन या तो युवावस्थाके आरम्भ होनेपर अथवा युवावस्थाके मध्यमें चालीस वर्षकी अवस्थामें करना चाहिये; क्योंकि चालीस-पचास वर्षके पश्चात् धातुओंका क्षय होना आरम्भ हो जाता है।

आयुर्वेदशास्त्र रसायन-सेवन अर्थात् औषधि-चिकित्सापर विशेष बल देता है।

आयुर्वेदशास्त्र क्या है?

पहले आयु शब्दपर ही विचार करें। इस शरीररूपी यन्त्रको सुचारुरूपसे रखते हुए कौन सञ्चालन करता है? उस शक्तिको प्राणशक्ति कहते हैं। इसीलिये उपनिषदोंमें प्राणको ब्रह्म कहा है। प्राण शरीरके कण-कणमें व्याप्त है, शरीरके कर्णेन्द्रियादि तो सो भी जाते हैं, विश्राम कर लेते हैं, किंतु यह प्राणशक्ति कभी भी न तो सोती है न विश्राम ही करती है। रात-दिन अनवरतरूपमें कार्य करती ही रहती है, चलती ही रहती है—'चरैवेति-चरैवेति' यही इसका मूल मन्त्र है। जबतक प्राणशक्ति चलती रहती है, तभीतक प्राणियोंकी आयु रहती है। जब यह इस शरीरमें काम करना बंद कर देती है, तब आयु समाप्त हो जाती है। प्राण जबतक कार्य करते रहते हैं तभीतक जीवन है, प्राणी तभीतक जीवित कहलाता है; प्राणशक्तिके कार्य बंद करनेपर वह मृतक कहलाने लगता है। इसलिये आयुको—प्राणशक्तिको जो यथावत् रखनेका ज्ञान कराये वही आयुर्वेद है। शरीरमें प्राण ही तो सब कुछ हैं, प्राण ही शरीरकी रक्षा करते हैं, उसे आधि-व्याधियोंसे बचाये रखनेका प्रयत्न करते हैं। प्राणोंको स्वस्थ कैसे रखा जाय, इसीकी शिक्षा आयुर्वेद देता है। प्राणोंका हरण करनेवाले, उन्हें क्षति पहुँचानेवाले रोग हैं। रोगोंकी उत्पत्ति रागसे, अश्रुओंसे, शोकसे हुई है। अतः रोग शोकको उत्पन्न करनेवाले हैं, अन्तःकरणके शोकको आधि कहते हैं, काया—देहके दुःख-शोकको व्याधि कहते हैं। आधि और व्याधि दोनों ही प्राणोंको हानि पहुँचानेवाले हैं, अतः आयुर्वेद दोनोंकी चिकित्सा करके शरीरको स्वस्थ रखनेका उपाय बताता है।

स्वस्थ किसे कहते हैं

स्वका अर्थ है आत्मा। आत्मा शब्द देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, जीवात्मा तथा परमात्मा—इन सबके लिये प्रयुक्त होता है। जब हम किसी व्याधिसे ग्रस्त रहते हैं तो व्याधिग्रस्त या रोगग्रस्त कहलाते हैं। उस समय हम स्वस्थ नहीं रहते। स्वस्थका अर्थ है नीरोग। जो अपने-आपमें—सुखस्वरूप आत्मामें स्थित रहे वही स्वस्थ कहलाता है। (**स्वस्मिन् तिष्ठतीति स्वस्थः**) कैसे जाने कि ये स्वस्थ हैं? जिसके वात, पित्त और कफ—ये दोष सम हों इनमें विषमता न

आ जाय। आवश्यकतासे अधिक वायु, पित्त, कफ न बढ़ जाय। यदि एक अधिक कुपित होकर बढ़ जाता है तो शेष दो घट जाते हैं, जैसे शरीरमें कफ बढ़ जाय तो वात और पित्त घट जायँगे। इसी प्रकार पित्त बढ़नेपर वात और कफ घट जायँगे। अतः स्वस्थताके लिये तीनोंका सम होना आवश्यक है। तीनों ही दोष कुपित हो जायँ तो त्रिदोष हो जाता है, वह प्राणी फिर बच नहीं सकता। अतः तीनों दोष सम होने चाहिये। अग्नि भी तीन प्रकारकी होती है। मन्दाग्नि, तीव्राग्नि और समाग्नि—एक चौथी हविषाग्नि भी होती है। उसमें भूख कभी शान्त ही नहीं होती चाहे जितना खाते जाओ। मन्दाग्निमें भूख नहीं लगती, तीव्राग्निमें आवश्यकतासे अधिक भूख लगती है। अतः अग्नि सम होनी चाहिये। धातु भी सम रहनी चाहिये। रस, रक्त, मांस, मज्जा, अस्थि, मेद और शुक्र—इनमेंसे कोई भी आवश्यकतासे अधिक बढ़ जायँगे तो रोग पैदा करेंगे। अधिक क्षय हो जायँगे तो भी रोग उत्पन्न करेंगे। अतः धातुएँ भी सम होनी चाहिये। मलकी क्रिया भी सम होनी चाहिये। अधिक मल निकलेगा या कम निकलेगा तो भी रोग होंगे। प्राण विशेषकर रक्तमें, वीर्यमें और मलमें रहते हैं। इन तीनोंके क्षयका ही नाम राजयक्ष्मा है। इन्द्रिय और मन प्रफुल्लित तथा प्रसन्न रहें तो ऐसे प्राणीको ही स्वस्थ कहते हैं।[१]

स्वस्थ पुरुषकी छः पहिचान है—(१) खूब खुलकर भूख लगे, (२) जो खाय वह भली प्रकार पच जाय, (३) समयपर बँधा हुआ चिकना एक बारमें मल निकल जाय, पेट हलका हो जाय, (४) शुद्ध डकार आवे, (५) अपानवायु शब्द तथा दुर्गन्धरहित सरलतासे निकल जाय और (६) मन प्रसन्न रहे, निश्चिन्त रहे। ये छः लक्षण स्वस्थताके हैं। आयुर्वेदशास्त्रका उद्देश्य रोगोंको शान्त करना नहीं है। उसका मुख्य उद्देश्य तो अन्तःकरणको शुद्ध बनाकर मोक्ष प्रदान करना है। शुद्धान्तःकरण शुद्ध शरीरमें—नीरोग कायामें ही रह सकता है, अतः रोगोंका निदान और उनकी चिकित्सा मोक्षके साधनमात्र हैं। इसीलिये कहा है—

'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्'—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षके लिये शरीरको नीरोग रखना यह मुख्य कारण है। नीरोग शरीरसे ही सभी पुरुषार्थ प्राप्त किये जा सकते हैं।[२]



भवरोगसे मुक्तिका उपाय

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय संत स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

१. आत्म-निरीक्षण करना अर्थात् प्राप्त विवेकके प्रकाशमें अपने दोषोंको देखना।

२. की हुई भूलको पुनः न दोहरानेका व्रत लेकर सरल विश्वासपूर्वक भगवान्‌से प्रार्थना करना।

३. विचारका प्रयोग अपनेपर और विश्वासका दूसरोंपर करना अर्थात् न्याय अपनेपर और प्रेम तथा क्षमा अन्यपर करना।

४. जितेन्द्रियता, सेवा, भगवच्चिन्तन और सत्यकी खोजद्वारा अपना निर्माण।

५. दूसरोंके कर्तव्यको अपना अधिकार, दूसरोंकी उदारताको अपना गुण और दूसरोंकी निर्बलताको अपना बल न मानना।

६. पारिवारिक तथा जातीय सम्बन्ध न होते हुए भी पारिवारिक भावनाके अनुरूप ही पारस्परिक सम्बोधन तथा सद्भाव अर्थात् कर्मकी भिन्नता होनेपर भी स्नेहकी एकता बनाये रखना।

७. निकटवर्ती जन-समाजकी यथाशक्ति क्रियात्मक रूपसे सेवा करना।

८. शारीरिक हितकी दृष्टिसे आहार-विहारमें संयम तथा दैनिक कार्योंमें स्वावलम्बन रखना।

९. शरीर श्रमी, मन संयमी, बुद्धि विवेकवती, हृदय अनुरागी तथा अहंको अभिमान-शून्य करके अपनेको सुन्दर बनाना।

१०. सिक्केसे वस्तु, वस्तुसे व्यक्ति, व्यक्तिसे विवेक तथा विवेकसे सत्यको अधिक महत्त्व देना।

११. व्यर्थ चिन्तनके त्याग तथा वर्तमानके सदुपयोगद्वारा भविष्यको उज्ज्वल बनाना।

प्रेषक—एक साधक



१-समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

२-संकीर्तन भवन, झूसी (प्रयाग)-से प्रकाशित 'कायाकल्प और कल्प-चिकित्सा' से संकलित।

ब्रह्मचर्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

ब्रह्मचर्यका यौगिक अर्थ है ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये वेदोंका अध्ययन करना। प्राचीन कालमें छात्रगण ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये गुरुके यहाँ रहकर सावधानीके साथ वीर्यकी रक्षा करते हुए वेदाध्ययन करते थे। इसलिये धीरे-धीरे 'ब्रह्मचर्य' शब्द वीर्यरक्षाके अर्थमें रूढ़ हो गया। आज हमें इसी वीर्यरक्षाके सम्बन्धमें कुछ विचार करना है। वीर्यरक्षा ही जीवन है और वीर्यका नाश ही मृत्यु है। वीर्यरक्षाके प्रभावसे ही प्राचीन कालके लोग दीर्घजीवी, नीरोग, हृष्ट-पुष्ट, बलवान्, बुद्धिमान्, तेजस्वी, शूरवीर और दृढ़संकल्प होते थे। वीर्यरक्षाके कारण ही वे शीत, आतप, वर्षा आदिको सहकर नाना प्रकारके तप करनेमें समर्थ होते थे। ब्रह्मचर्यके बलसे ही वे प्राणवायुको रोककर शरीर और मनकी शुद्धिके द्वारा नाना प्रकारके योग-साधनोंमें सफलता प्राप्त करते थे। ब्रह्मचर्यके बलसे ही वे थोड़े ही समयमें नाना प्रकारकी विद्याओंको सीखकर अपने ज्ञानके द्वारा अपना और जगत्का लौकिक एवं पारमार्थिक दोनों प्रकारका कल्याण करनेमें समर्थ होते थे। शरीरमें सार वस्तु वीर्य ही है। इसीके नाशसे आज हमारा देश रसातलको पहुँच गया है। ब्रह्मचर्यके नाशके कारण ही आज हम लोग नाना प्रकारकी बीमारियोंके शिकार हो रहे हैं, थोड़ी ही अवस्थामें कालके गालमें जा रहे हैं। इसीके कारण आज हम लोग अपने बल, तेज, वीरता और आत्मसम्मानको खोकर पराधीनताकी बेड़ीमें जकड़े हुए हैं और जो हमारा देश किसी समय विश्वका सिरमौर और सभ्यताका उद्गमस्थान बना हुआ था, वही आज दूसरोंके द्वारा लाञ्छित और पददलित हो रहा है। विद्या-बुद्धि, बल-वीर्य, कला-कौशल—सबमें आज हम पिछड़े हुए हैं। इसीके कारण आज हम चरित्रसे भी गिर गये हैं। सारांश यह है कि किसी भी बातको लेकर आज हम संसारके सामने अपना मस्तक ऊँचा नहीं कर सकते। वीर्यका नाश ही हमारी इस गिरी हुई दशाका प्रधान कारण मालूम होता है। वीर्यके नाशसे शरीर, बल, तेज, बुद्धि, धन, मान, लोक, परलोक—सबकी हानि होती है। परमात्माकी प्राप्ति तो वीर्यकी रक्षा न करनेवालेसे कोसों दूर रहती है।

ब्रह्मचर्यके बिना कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता। रोगसे मुक्त होनेके लिये, स्वास्थ्य-लाभके लिये, बल-बुद्धिके विकासके लिये, विद्याभ्यासके लिये तथा योगाभ्यासके लिये तो ब्रह्मचर्यकी बड़ी भारी आवश्यकता है। उत्तम संतानकी प्राप्ति, स्वर्गकी प्राप्ति, सिद्धियोंकी प्राप्ति, अन्तःकरणकी शुद्धि तथा परमात्माकी प्राप्ति—ब्रह्मचर्यसे सब कुछ सम्भव है और ब्रह्मचर्यके बिना कुछ भी नहीं हो सकता। सांख्ययोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, राजयोग, हठयोग—सभी साधनोंमें ब्रह्मचर्यकी आवश्यकता होती है। अतः लोक-परलोकमें अपना हित चाहनेवालेको बड़ी सावधानी एवं तत्परताके साथ वीर्यरक्षाके लिये चेष्टा करनी चाहिये।

सब प्रकारके मैथुनके त्यागका नाम ही ब्रह्मचर्य है। मैथुनके निम्नलिखित प्रकार शास्त्रोंमें कहे गये हैं—

(१) स्मरण—किसी सुन्दर युवती स्त्रीके रूप-लावण्य अथवा हाव, भाव, कटाक्ष एवं शृङ्गारका स्मरण करना, कुत्सित पुरुषोंकी कुत्सित क्रियाओंका स्मरण करना, अपने द्वारा पूर्वमें घटी हुई मैथुन आदि क्रियाका स्मरण करना, भविष्यमें किसी स्त्रीके साथ मैथुन करनेका संकल्प अथवा भावना करना, माला, चन्दन, इत्र, फुलेल, लवेंडर आदि कामोद्दीपक एवं शृङ्गारके पदार्थोंका स्मरण करना, पूर्वमें देखे हुए किसी सुन्दर स्त्री अथवा बालकके चित्रका या अश्लील चित्रका स्मरण करना—ये सभी मानसिक मैथुनके अन्तर्गत हैं। इनसे वीर्यका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षरूपमें नाश होता है और मनपर तो बुरा प्रभाव पड़ता ही है। मन खराब होनेसे आगे चलकर वैसी क्रिया भी घट सकती है। इसलिये सर्वाङ्गमें ब्रह्मचर्यका पालन करनेवालेको चाहिये कि वह उक्त सभी प्रकारके मानसिक मैथुनका त्याग कर दे, जिससे मनमें कामोद्दीपन हो ऐसा कोई संकल्प ही न करे और यदि हो जाय तो उसका तत्काल विवेक एवं विचारके द्वारा त्याग कर दे।

(२) श्रवण—गंदे तथा कामोद्दीपक एवं शृङ्गार-

रसके गानोंको सुनना, शृङ्गार-रसका गद्य-पद्यात्मक वर्णन सुनना, स्त्रियोंके रूप-लावण्य तथा अङ्गोंका वर्णन सुनना, उनके हाव, भाव, कटाक्षका वर्णन सुनना, कामविषयक बातें सुनना आदि—ये सभी श्रवणरूप मैथुनके अन्तर्गत हैं। ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह उक्त सभी प्रकारके श्रवणका त्याग कर दे।

(३) कीर्तन—अश्लील बातोंका कथन, शृङ्गार-रसका वर्णन, स्त्रियोंके रूप-लावण्य, यौवन एवं शृङ्गारकी प्रशंसा तथा उनके हाव, भाव, कटाक्ष आदिका वर्णन, विलासिताका वर्णन, कामोद्दीपक अथवा गंदे गीत गाना तथा ऐसे साहित्यको स्वयं पढ़ना और दूसरोंको सुनाना एवं कथा आदिमें ऐसे प्रसङ्गोंको विस्तारके साथ कहना—ये सभी कीर्तनरूप मैथुनके अन्तर्गत हैं। ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह इन सबका त्याग कर दे।

(४) प्रेक्षण—स्त्रियोंके रूप-लावण्य, शृङ्गार तथा उनके अङ्गोंकी रचनाको देखना, किसी सुन्दरी स्त्री अथवा सुन्दर बालकके रूप या चित्रको देखना, नाटक-सिनेमा देखना, कामोद्दीपक वस्तुओं तथा सजावटके सामानको देखना, दर्पण आदिमें अपना रूप तथा शृङ्गार देखना—यह सभी प्रेक्षणरूप मैथुनके अन्तर्गत हैं। ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह जान-बूझकर तो इन वस्तुओंको देखे ही नहीं; यदि भूलसे इनपर दृष्टि पड़ जाय तो इन्हें स्वप्नवत्, मायामय, नाशवान् एवं दुःखरूप समझकर तुरंत इनपरसे दृष्टिको हटा ले, दृष्टिको इनपर ठहरने न दे।

(५) केलि—स्त्रियोंके साथ हँसी-मजाक करना, नाचना-गाना, आमोद-प्रमोदके लिये क्लब वगैरहमें जाना, जलविहार करना, फाग खेलना, गंदी चेष्टाएँ करना, स्त्रीसङ्ग करना आदि—ये सभी केलिरूप मैथुनके अन्तर्गत हैं। ब्रह्मचारीको इन सबका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

(६) शृङ्गार—अपनेको सुन्दर दिखलानेके लिये बाल सँवारना, कंघी करना, काकुल रखना, शरीरको वस्त्राभूषणादिसे सजाना, इत्र, फुलेल, लवेंडर आदिका व्यवहार करना, फूलोंकी माला धारण करना, अङ्गराग एवं सुरमा लगाना, उबटन करना, साबुन-तेल, पाउडर लगाना, दाँतोंमें मिस्सी लगाना, दाँतोंमें सोना जड़वाना, शौकके लिये बिना आवश्यकताके चश्मा लगाना, होठ लाल करनेके लिये पान खाना—यह सभी शृङ्गारके अन्तर्गत है। दूसरोंके चित्तको आकर्षण करनेके उद्देश्यसे किया हुआ यह सभी शृङ्गार कामोद्दीपक, अतएव मैथुनका अङ्ग होनेके कारण ब्रह्मचारीके लिये सर्वथा त्याज्य है। कुमारी कन्याओं, बालकों, विधवाओं, संन्यासियों एवं वानप्रस्थोंको तो उक्त सभी प्रकारके शृङ्गारसे सर्वथा बचना चाहिये। विवाहित स्त्री-पुरुषोंको भी ऋतुकालमें सहवासके समयके अतिरिक्त और समयमें इन सभी शृङ्गारोंसे यथासम्भव बचना चाहिये।

(७) गुह्यभाषण—स्त्रियोंके साथ एकान्तमें अश्लील बातें करना, उनके रूप-लावण्य, यौवन एवं शृङ्गारकी प्रशंसा करना, हँसी-मजाक करना—यह सभी गुह्यभाषणरूप मैथुनके अन्तर्गत है, अतएव ब्रह्मचारीके लिये सर्वथा त्याज्य है।

(८) स्पर्श—कामबुद्धिसे किसी स्त्री अथवा बालकका स्पर्श, चुम्बन तथा आलिङ्गन करना, कामोद्दीपक पदार्थोंका स्पर्श करना आदि यह सभी स्पर्शरूप मैथुनके अन्तर्गत है, अतएव ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवालेके लिये त्याज्य है।

उपर्युक्त बातें पुरुषोंको लक्ष्यमें रखकर ही कही गयी हैं। स्त्रियोंको भी पुरुषोंके सम्बन्धमें यही बात समझनी चाहिये। पुरुषोंको परस्त्रीके साथ और स्त्रियोंको परपुरुषके साथ तो इन आठों प्रकारके मैथुनका त्याग हर हालतमें करना ही चाहिये। ऐसा न करनेवाले महान् पापके भागी होते हैं और इस लोक तथा परलोकमें महान् दुःख भोगते हैं। गृहस्थोंको अपनी विवाहिता पत्नीके साथ भी ऋतुकालकी अनिन्दित रात्रियोंको छोड़कर शेष समयमें उक्त आठों प्रकारके मैथुनसे बचना चाहिये। ऐसा करनेवाले गृहस्थ होते हुए भी ब्रह्मचारी हैं। बाकी तीन आश्रमवालों तथा विधवा स्त्रियोंके लिये तो सभी अवस्थाओंमें उक्त आठों प्रकारके मैथुनका त्याग सर्वथा अनिवार्य है।

परमात्मप्राप्तिके उद्देश्यसे किये गये उपर्युक्त ब्रह्मचर्यके पालनमात्रसे मनुष्यका कल्याण हो सकता है, यह बात भगवान् श्रीकृष्णने गीताके आठवें अध्यायके ११वें श्लोकमें कही है। भगवान् कहते हैं—

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥

'वेदके जाननेवाले विद्वान् जिस सच्चिदानन्दघनरूप परमपदको अविनाशी कहते हैं, आसक्तिरहित यत्नशील संन्यासी महात्माजन जिसमें प्रवेश करते हैं और जिस परमपदको चाहनेवाले ब्रह्मचारी लोग ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, उस परमपदको मैं तेरे लिये संक्षेपमें कहूँगा।'

कठोपनिषद्में भी इस श्लोकसे मिलता-जुलता मन्त्र आया है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥
(१।२।१५)

'सारे वेद जिस पदका वर्णन करते हैं,समस्त तपोंको जिसकी प्राप्तिका साधन बतलाते हैं तथा जिसकी इच्छा रखनेवाले ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उस पदको मैं तुम्हें संक्षेपसे बताता हूँ—'ओम्' यही वह पद है।'

उक्त दोनों ही मन्त्रोंमें परमपदकी इच्छासे ब्रह्मचर्यके पालनकी बात आयी है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि परमात्माकी प्राप्तिके उद्देश्यसे किये गये ब्रह्मचर्यके पालनमात्रसे मनुष्यका कल्याण हो सकता है। क्षत्रियकुल-चूडामणि वीरवर भीष्मकी जो इतनी महिमा है, वह उनके अखण्ड ब्रह्मचर्य-व्रतको लेकर ही है। इसीके कारण उनका 'भीष्म' नाम पड़ा और इसीके प्रतापसे उन्हें अपने पिता शान्तनुसे इच्छामृत्युका वरदान मिला, जिसके कारण वे संसारमें अजेय हो गये। यही कारण था कि वे सहस्रबाहु-जैसे अप्रतिम योद्धाकी भुजाओंका छेदन करनेवाले तथा इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर देनेवाले महाप्रतापी परशुरामसे भी नहीं हारे। इतना ही नहीं, परात्पर भगवान् श्रीकृष्णको भी इनके कारण महाभारतयुद्धमें शस्त्र ग्रहण करना पड़ा। उनकी यह सब महिमा ब्रह्मचर्यके ही कारण थी। वे भगवान्के अनन्य भक्त, आदर्श पितृभक्त तथा महान् ज्ञानी एवं शास्त्रोंके ज्ञाता भी थे; परंतु उनकी महिमाका प्रधान कारण उनका आदर्श ब्रह्मचर्य ही था। इसीके कारण वे अपने अस्त्रविद्याके गुरु भगवान् परशुरामके कोपभाजन हुए, परंतु विवाह न करनेका अपना हठ नहीं छोड़ा। धन्य ब्रह्मचर्य! भक्तश्रेष्ठ हनुमान्, सनकादि मुनीश्वर,महामुनि शुकदेव तथा बालखिल्यादि ऋषि भी अपने ब्रह्मचर्यके लिये प्रसिद्ध हैं।

ब्रह्मचर्यकी रक्षासे लाभ और उसके नाशसे हानि

ब्रह्मचर्यकी रक्षासे शरीरमें बल, तेज, उत्साह एवं ओजकी वृद्धि होती है, शीत, उष्ण, पीडा आदि सहन करनेकी शक्ति आती है, अधिक परिश्रम करनेपर भी थकावट कम आती है, प्राणवायुको रोकनेकी शक्ति आती है, शरीरमें फुर्ती एवं चेतनता रहती है, आलस्य तथा तन्द्रा कम आती है, बीमारियोंके आक्रमणको रोकनेकी शक्ति आती है, मन प्रसन्न रहता है, कार्य करनेकी क्षमता प्रचुरमात्रामें रहती है, दूसरेके मनपर प्रभाव डालनेकी शक्ति आती है, संतान दीर्घायु, बलिष्ठ एवं स्वस्थ होती है, इन्द्रियाँ सबल रहती हैं, शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुदृढ़ रहते हैं, आयु बढ़ती है, वृद्धावस्था जल्दी नहीं आती, शरीर स्वस्थ एवं हलका रहता है, स्मरणशक्ति बढ़ती है, बुद्धि तीव्र होती है, मन बलवान् होता है, कायरता नहीं आती, कर्तव्यकर्म करनेमें अनुत्साह नहीं होता, बड़ी-से-बड़ी विपत्ति आनेपर भी धैर्य नहीं छूटता, कठिनाइयों एवं विघ्न-बाधाओंका वीरतापूर्वक सामना करनेकी शक्ति आती है, धर्मपर दृढ़ आस्था होती है, अन्तःकरण शुद्ध रहता है, आत्मसम्मानका भाव बढ़ता है, दुर्बलोंको सतानेकी प्रवृत्ति कम होती है, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदिके भाव कम होते हैं, क्षमाका भाव बढ़ता है, दूसरोंके प्रति सहिष्णुता तथा सहानुभूति बढ़ती है, दूसरोंका कष्ट दूर करने तथा दीन-दुःखियोंकी सेवा करनेका भाव बढ़ता है, सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है, वीर्यमें अमोघता आती है, परस्त्रीके प्रति मातृभाव जाग्रत् होता है, नास्तिकता तथा निराशाके भाव कम होते हैं; असफलतामें भी विषाद नहीं होता, सबके प्रति प्रेम एवं सद्भाव रहता है तथा सबसे बढ़कर भगवत्प्राप्तिकी योग्यता आती है, जो

मनुष्य-जीवनका चरम फल है, जिसके लिये यह मनुष्यदेह हमें मिला है।

इसके विपरीत ब्रह्मचर्यके नाशसे मनुष्य नाना प्रकारकी बीमारियोंका शिकार हो जाता है, शरीर खोखला हो जाता है, थोड़ा-सा भी परिश्रम अथवा कष्ट सहन नहीं होता, शीत, उष्ण आदिका प्रभाव शरीरपर बहुत जल्दी होता है, स्मरणशक्ति कमजोर हो जाती है, संतान उत्पन्न करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है, संतान होती भी है तो दुर्बल एवं अल्पायु होती है, मन अत्यन्त दुर्बल हो जाता है, संकल्पशक्ति कमजोर हो जाती है, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, जरा भी प्रतिकूलता सहन नहीं होती, आत्मविश्वास कम हो जाता है, काम करनेमें उत्साह नहीं रहता, शरीरमें आलस्य छाया रहता है, चित्त सदा सशंकित रहता है, मनमें विषाद छाया रहता है, कोई भी नया काम हाथमें लेनेमें भय मालूम होता है, थोड़े-से भी मानसिक परिश्रमसे दिमागमें थकान आ जाती है, बुद्धि मन्द हो जाती है, अधिक सोचनेकी शक्ति नहीं रहती, असमयमें ही वृद्धावस्था आ घेरती है और थोड़ी ही अवस्थामें मनुष्य कालके गालमें चला जाता है, चित्त स्थिर नहीं हो पाता, मन और इन्द्रियाँ वशमें नहीं हो पातीं और मनुष्य भगवत्प्राप्तिके मार्गसे कोसों दूर हट जाता है। वह न इस लोकमें सुखी रहता है और न परलोकमें ही। ऐसी अवस्थामें मनुष्यको चाहिये कि बड़ी सावधानीसे वीर्यकी रक्षा करे। वीर्यरक्षा ही जीवन है और वीर्यनाश ही मृत्यु है, इस बातको सदा स्मरण रखे। गृहस्थाश्रममें भी केवल संतानोत्पादनके उद्देश्यसे ऋतुकालमें अधिक-से-अधिक महीनेमें दो बार स्त्रीसङ्ग करे।

ब्रह्मचर्यरक्षाके उपाय

उपर्युक्त प्रकारके मैथुनके त्यागके अतिरिक्त निम्नलिखित साधन भी ब्रह्मचर्यकी रक्षामें सहायक हो सकते हैं—

(१) भोजनमें उत्तेजक पदार्थोंका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। मिर्च, राई, गरम मसाले, अचार, खटाई, अधिक मीठा और अधिक गरम चीजें नहीं खानी चाहिये। भोजन खूब चबाकर करना चाहिये। भोजन सदा सादा, ताजा और नियमित समयपर करना चाहिये। मांस, लहसुन, प्याज आदि अभक्ष्य पदार्थ और मद्य, गाँजा, भाँग आदि अन्य नशीली वस्तुएँ तथा केशर, कस्तूरी एवं मकरध्वज आदि वाजीकरण औषधोंका भी सेवन नहीं करना चाहिये।

(२) यथासाध्य नित्य खुली हवामें सबेरे और सायंकाल पैदल घूमना चाहिये।

(३) रातको जल्दी सोकर सबेरे ब्राह्ममुहूर्तमें अर्थात् पहरभर रात रहे अथवा सूर्योदयसे कम-से-कम घंटेभर पूर्व अवश्य उठ जाना चाहिये। सोते समय पेशाब करके, हाथ-पैर धोकर तथा कुल्ला करके भगवान्‌का स्मरण करते हुए सोना चाहिये।

(४) कुसङ्गका सर्वथा त्याग कर यथासाध्य सदाचारी, वैराग्यवान्, भगवद्भक्त पुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये, जिससे मलिन वासनाएँ नष्ट होकर हृदयमें अच्छे भावोंका संग्रह हो।

(५) पति-पत्नीको छोड़कर अन्य स्त्री-पुरुष अकेलेमें कभी न बैठें और न एकान्तमें बातचीत ही करें।

(६) भगवद्गीता, रामायण, महाभारत, उपनिषद्, श्रीमद्भागवत आदि उत्तम ग्रन्थोंका नित्य नियमपूर्वक स्वाध्याय करना चाहिये। इससे बुद्धि शुद्ध होती है और मनमें गंदे विचार नहीं आते।

(७) ऐश, आराम, भोग, आलस्य, प्रमाद और पापमें समय नहीं बिताना चाहिये। मनको सदा किसी-न-किसी अच्छे काममें लगाये रखना चाहिये।

(८) मूत्रत्याग और मलत्यागके बाद इन्द्रियको ठंढे जलसे धोना चाहिये और मल-मूत्रकी हाजतको कभी नहीं रोकना चाहिये।

(९) यथासाध्य ठंढे जलसे नित्य स्नान करना चाहिये।

(१०) नित्य नियमितरूपसे किसी प्रकारका व्यायाम करना चाहिये। हो सके तो नित्यप्रति कुछ आसन एवं प्राणायामका भी अभ्यास करना चाहिये।

(११) लँगोटा या कौपीन रखना चाहिये।

(१२) नित्य नियमितरूपसे कुछ समयतक परमात्माका ध्यान अवश्य करना चाहिये।

(१३) यथाशक्ति भगवान्‌के किसी भी नामका श्रद्धा-प्रेमपूर्वक जप तथा कीर्तन करना चाहिये। कामवासना जाग्रत् हो तो नाम-जपकी धुन लगा देनी चाहिये, अथवा जोर-जोरसे कीर्तन करने लगना चाहिये। कामवासना नाम-

जप और कीर्तनके सामने कभी ठहर नहीं सकती।

(१४) जगत्‌में वैराग्यकी भावना करनी चाहिये। संसारकी अनित्यताका बार-बार स्मरण करना चाहिये। मृत्युको सदा याद रखना चाहिये।

(१५) पुरुषोंको स्त्रीके शरीरमें और स्त्रियोंको पुरुषके शरीरमें मलिनत्व-बुद्धि करनी चाहिये। ऐसा समझना चाहिये कि जिस आकृतिको हम सुन्दर समझते हैं, वह वास्तवमें चमड़ेमें लपेटा हुआ मांस, अस्थि, रुधिर, मज्जा, मल, मूत्र, कफ आदि मलिन एवं अपवित्र पदार्थोंका एक घृणित पिण्डमात्र है।

(१६) महीनेमें कम-से-कम दो दिन अर्थात् प्रत्येक एकादशीको उपवास करना चाहिये और अमावास्या तथा पूर्णिमाको केवल एक ही समय अर्थात् दिनमें भोजन करना चाहिये।

(१७) भगवान्‌की लीलाओं तथा महापुरुषों एवं वीर ब्रह्मचारियोंके चरित्रोंका मनन करना चाहिये।

(१८) यथासाध्य सबमें परमात्मभावना करनी चाहिये।

(१९) नित्य-निरन्तर भगवान्‌को स्मरण रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

ऊपर जितने साधन बताये गये हैं, उनमें अन्तिम साधना सबसे उत्तम तथा सबसे अधिक कारगर है। यदि नित्य-निरन्तर अन्तःकरणको भगवद्‌भावसे भरते रहनेकी चेष्टा की जाय तो मनमें गंदे भाव कभी उत्पन्न हो ही नहीं सकते। किसी कविने क्या ही सुन्दर कहा है—

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
सपनेहुँ कबहुँक रहि सकैं, रबि रजनी इक ठाम॥

जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेपर रात्रिके घोर अन्धकारका नाश हो जाता है, उसी तरह जिस हृदयमें भगवान् अपना डेरा जमा लेते हैं, अर्थात् नित्य-निरन्तर भगवान्‌का स्मरण होता है, वहाँ कामका उदय भी नहीं हो सकता। भगवद्भक्तिके प्रभावसे हृदयमें विवेक एवं वैराग्यका अपने-आप उदय हो जाता है। पद्मपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवतके माहात्म्यमें ज्ञान और वैराग्यको भक्तिके पुत्ररूपमें वर्णन किया गया है। अतः ब्रह्मचर्यकी रक्षा करनेके लिये नित्य-निरन्तर भगवान्‌का स्मरण करते रहना चाहिये। भगवत्स्मरणके प्रभावसे अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध होकर बहुत शीघ्र भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है, जो मनुष्य-जीवनका चरम लक्ष्य और ब्रह्मचर्यका अन्तिम फल है। भगवान्‌ने स्वयं गीताजीमें कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥
(८।१४)

आरोग्य-सम्बन्धी दोहे

१-शीतल जलमें डालकर सौंफ गलाओ आप।
मिश्रीके सँग पान कर मिटे दाह-संताप॥
२-फटे बिमाई या मुँह फटे, त्वचा खुरदुरी होय।
नीबू-मिश्रित आँवला सेवनसे सुख होय॥
३-सौंफ इलायची गर्मीमें, लौंग सर्दीमें खाय।
त्रिफला सदाबहार है, रोग सदैव हर जाय॥
४-वात-पित्त जब-जब बढ़े, पहुँचावे अति कष्ट।
सौंठ, आँवला, दाख सँग खावे पीड़ा नष्ट॥
५-नीबूके छिलके सुखा, बना लीजिये राख।
मिटै वमन मधु संग ले, बढ़ै वैद्यकी साख॥
६-लौंग इलायची चाबिये, रोजाना दस पाँच।
हटै श्लेष्मा कण्ठका, रहो स्वस्थ है साँच॥
७-स्याह नौन हरड़े मिला इसे खाइये रोज।
कब्ज गैस क्षणमें मिटै सीधी-सी है खोज॥
८-पत्ते नागरबेलके हरे चबाये कोय।
कण्ठ साफ-सुथरा रहे, रोग भला क्यों होय॥
९-खाँसी जब-जब भी करे, तुमको अति बेचैन।
सिकीं हींग अरु लौंगसे मिले सहज ही चैन॥
१०-छल-प्रपंचसे दूर हो, जन-मङ्गलकी चाह।
आत्मनिरोगी जन वही गहे सत्यकी राह॥

(श्रीधीरजकुमारजी खरया)

आरोग्य-साधन

(महात्मा गांधी)

साधारणतः लोग उस मनुष्यको नीरोग समझते हैं, जो मजेमें खाता-पीता है, चलता-फिरता है और वैद्यको नहीं बुलाता। पर सोचनेसे मालूम होगा कि लोग इसमें भूलते हैं। ऐसे उदाहरणोंकी कमी नहीं है कि खाते-पीते और चलते-फिरते मनुष्य भी रोगी हैं; परंतु बीमारीकी परवा न करनेके कारण अपनेको नीरोग मान बैठे हैं। बिलकुल नीरोग मनुष्य दुनियामें बहुत ही थोड़े मिलेंगे।

एक अंग्रेज लेखकका कथन है कि नीरोग उन्हीं मनुष्योंको कहना चाहिये, जिनके शुद्ध शरीरमें शुद्ध मनका वास हो। मनुष्य केवल शरीर ही तो नहीं है। शरीर तो उसके रहनेकी जगह है। शरीर, मन और इन्द्रियोंका ऐसा घना सम्बन्ध है कि इनमें किसी एकके बिगड़नेपर बाकीके बिगड़नेमें जरा भी देर नहीं लगती। शरीरकी उपमा गुलाबके फूलके साथ दी गयी है। गुलाबके फूलका ऊपरी भाग तो उसका शरीर है और सुगन्धि उसकी आत्मा। कागजके गुलाबको कोई पसंद नहीं करता। सूँघनेसे उसमें गुलाबकी सुगन्धि नहीं आयेगी, असली गुलाबकी परख वास ही है। जैसे गुलाबके समान दिखलायी पड़नेवाले गन्धहीन फूलको लोग फेंक देते हैं, वैसे ही ऐसे शरीरपर किसीका प्रेम नहीं हो सकता जो ऊपरसे देखनेमें तो अच्छा लगता है, पर उसके अंदर रहनेवाले आत्माके व्यवहार ठीक नहीं होते। बुरे चरित्रके लोग नीरोग नहीं गिने जाते। शरीर और आत्माका ऐसा गहरा सम्बन्ध है कि जिसका शरीर नीरोग होगा, उसका मन अवश्य ही शुद्ध होगा। पाश्चात्त्य देशोंमें इस मतका एक पंथ ही है कि जिसका मन शुद्ध होता है, उसके शरीरमें रोग होते ही नहीं और हुए भी तो वह शुद्ध मनके जोरसे अपना शरीर नीरोग कर सकता है। सार यह है कि आरोग्यका दृढ़ साधन हमारा मन ही है, मनकी शुद्धिसे ही आरोग्य प्राप्त होता है।

तामसिकता, आलस्य तथा बहरापन—ये सारे बीमारीके ही चिह्न हैं। कितने डॉक्टर तो चोरी आदि दुर्गुणोंको भी बीमारी ही मानते हैं। विलायतमें कितनी ही धनी स्त्रियाँ दूकानोंसे बहुत मामूली-मामूली चीजें चुराती देखी गयी हैं। वहाँ डॉक्टर इसे 'क्लेप्टेमेनिया' की बीमारी कहते हैं। कुछ मनुष्योंको खूनखराबी किये बिना कल नहीं पड़ती। यह भी एक तरहका रोग है।

हम कह सकते हैं कि जिनका शरीर अखण्ड है, शरीरमें किसी तरहकी कमी नहीं, दाँत ठीक हैं तथा कान-आँख इत्यादि मौजूद हैं; नाक नहीं बहती, चमड़ेसे पसीना बहता है और बसाता नहीं, पैर नहीं बसाते, मुँहसे बू नहीं निकलती, हाथ-पैर साधारण काम कर सकते हैं, जो विषयोंमें नहीं फँसे रहते, न बहुत मोटे हैं न पतले, जिनकी इन्द्रियाँ, मन सदा वशमें रहता है, वे ही नीरोग हैं। आरोग्य प्राप्त करके उसे भोगना आसान काम नहीं है। हमें ऐसा आरोग्य न मिलनेका कारण यह है कि हमारे माता-पिताको ऐसा आरोग्य प्राप्त नहीं। एक बहुत बड़े लेखकने लिखा है कि माता-पिता हर तरहसे योग्य हों तो उनकी संतति उनसे बढ़ी-चढ़ी होनी चाहिये। विकासवादी भी इसे मानते हैं। बिलकुल नीरोग मनुष्यको मौतका डर नहीं रहता। हमारा मौतसे बहुत डरना साबित करता है कि हम नीरोग नहीं हैं। मौत हमारे लिये एक बड़ा-सा फेरफार है, सृष्टिके नियमानुसार यह फेरफार सुखदायी होना चाहिये। ऊपर बताये हुए उच्च आरोग्यको पानेका यत्न करना हमारा कर्तव्य है।

× × ×

आरोग्यकी आवश्यकता क्या है? हमारा व्यवहार देखनेसे तो यही जान पड़ता है कि हम आरोग्यकी कोई आवश्यकता ही नहीं समझते। यह निर्विवाद है कि ऐश-आराम करना, शरीरहीको सारी चीजोंसे श्रेष्ठ समझना, उसकी दृढ़तापर गर्व करना आदि बातें यदि आरोग्य-रक्षाका उद्देश्य समझी जायँ तो ऐसे आरोग्यसे तो शरीरमें दूषित पित्तादिका भरा रहना ही उत्तम है।

सारे धर्मोंने इस शरीरको ईश्वरसे मिलने और उनके पहिचाननेका मन्दिर ठहराया है। यह मन्दिर हमें किरायेपर मिला है। मालिककी स्तुति और पूजाके रूपमें किराया चुकता है। किरायेदारका दूसरा कर्तव्य यह होना चाहिये कि वह घरका दुरुपयोग न करे और उसे भीतर एवं बाहरसे साफ रखते हुए नियत समयमें मालिकको ऐसी स्थितिमें सौंप दे, जिस स्थितिमें उनसे मिला था। किरायेदार यदि

भाड़ेकी सभी शर्तोंका पालन करता है तो गृहस्वामी किरायेकी अवधि पूरी होनेपर उसे इनाम देता तथा अपना वारिस भी बना लेता है।

जीवमात्र देहधारी है और सबके शरीरकी आकृति प्राय: एक-सी ही है—सुनने, देखने, सूँघने और भोग भोगनेके लिये सभी साधन-सम्पन्न हैं, इन सब बातोंमें समता होनेपर भी मनुष्य-शरीरको चिन्तामणि कहा गया है। चिन्तामणिका अर्थ यह है कि उसके द्वारा हम जो चीज चाहें पा सकते हैं। पशु-शरीरद्वारा जीव ज्ञानपूर्वक ईश्वरकी भक्ति नहीं कर सकता और इसमें संदेह नहीं कि जहाँ ज्ञानपूर्वक भक्ति नहीं, वहाँ मुक्ति नहीं और जहाँ मुक्ति नहीं, वहाँ न तो सच्चा सुख मिल सकता है और न दु:खोंका नाश ही हो सकता है। जब शरीरका सदुपयोग हो अर्थात् उसे ईश्वरका घर समझा जाय, तभी वह कामका है, अन्यथा वह हाड़-मांस और खूनसे भरा एक गंदा बरतन है और उसमेंसे निकलकर बाहर आनेवाला पानी तथा साँस दोनों जहरीली चीजें है। शरीरके असंख्य छोटे-बड़े छेदोंमेंसे निकलनेवाली चीजें इस योग्य नहीं कि हम उनको इकट्ठीकर रखना चाहें। उन्हें विचारने, देखने और छू जानेपर हम कै कर देते हैं। बड़े परिश्रम करनेपर हम कहीं इस योग्य हो सकते हैं कि उन बाहर निकली हुई चीजोंमें कीड़े न पड़ने दें—उनको बचा लें। ऐसी दशामें कितनी लज्जाकी बात है कि हम ऐसे शरीरके लिये बेईमानी, दगाबाजी, स्वेच्छाचारिता, कपट, चोरी, व्यभिचार इत्यादि लाखों न करने योग्य काम करें। क्या हम इन्हीं कामोंके लिये ऐसे शरीरको नित्य बड़े यत्नसे सँभाला करते हैं, जो सब प्रकारकी सँभाल होते हुए भी ठोकरकी अपेक्षा आघात सहनेकी शक्ति रखता है?

यह शरीरकी वास्तविक दशा है। जिस चीजका अच्छे-से-अच्छा उपयोग हो सकता है, उस वस्तुका दुरुपयोग होनेकी सत्ता उसीमें होती है। न हो तो उसका मूल्य निर्धारित नहीं किया जा सकता। सूर्यके तेजकी परीक्षा हम इसलिये कर सकते हैं कि उसके अभावमें अँधेरेकी स्थितिका हमें प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है। यही क्यों, जिन सूर्यके बिना हम घड़ी भर भी नहीं जी सकते, उन्हीं सूर्यमें हमको जलाकर राख कर डालनेकी भी शक्ति मौजूद है। राजाके सम्बन्धमें लीजिये—वह बहुत अच्छा हो सकता है और बहुत अधम भी बन सकता है।

शरीरको अपने वशमें रखनेके लिये एक ओर तो अन्तरात्माका प्रयत्न जारी रहता है, दूसरी ओर पापपुरुष शैतान अपने अनवरत उद्योगसे उसे अपनी मुट्ठीमें कर रखना चाहता है। जब शरीर अन्तरात्माके अधीन रहता है, तब वह रत्नके समान है और शैतानका अधिकार जम जानेपर साक्षात् नरककी खानि हो जाता है। जो शरीर विषयासक्त है, जिसमें तमाम दिन सब प्रकारकी सड़ने या सड़ानेवाली खुराक भरी जाती है, जिसमेंसे दुर्गन्धि निकला करती है, जिसके हाथ-पैर चोरीके काममें और जिसकी जीभ अभक्ष्य-भक्षण और अयोग्य-भाषणमें ही निरत रहती है, जिसकी आँख न देखने योग्य चीजोंके देखने, जिसके कान न सुनने योग्य बातोंके सुनने, जिसकी नाक न सूँघने योग्य चीजोंके सूँघनेमें व्यवहृत होते हैं, वह तो नरकसे भी गया-गुजरा है। नरकको तो सब नरकरूपमें ही देखते हैं, किंतु विचित्रता यह है कि शरीरको नरकके समान बनाते हुए भी हम उसे स्वर्गरूपमें गिनते चले जाते हैं। शरीरके सम्बन्धमें यह नारकीय दम्भ और राक्षसी ढोंग चल रहा है। पाखानेको पाखाना समझकर ही उपयोगमें लाना चाहिये और महलका उपयोग महलकी भाँति ही किया जाना चाहिये। जो लोग इनका विरुद्ध उपयोग करते हैं, वे वैसा ही फल भी भोगते हैं। ठीक यही बात शरीरपर घटती है। शैतानके कब्जेमें रहनेवाले अपने अन्तरात्माके वशमें न रहनेवाले शरीरसे आरोग्य चाहनेके बदले उसका नाश चाहना अधिक सुखकर है।

ईश्वरीय नियम पालनेसे ही शरीर नीरोग रह सकता है—शैतानी नियम पालनेसे नहीं। जहाँ सच्चा आरोग्य है, वहीं सच्चा सुख है और सच्चा आरोग्य प्राप्त करनेके लिये हमें स्वादेन्द्रिय जीभको जीतना ही जरूरी है। अन्यान्य विषयेन्द्रियाँ अपने-आप वश हो जाती हैं और जो इन्द्रियोंको वश कर लेता है, वह सारे संसारको वश कर लेता है, कारण यह कि वह मनुष्य ईश्वरका अधिकारी, उसका अंश बन जाता है।



स्वस्थ जीवनके लिये धारण करने योग्य ५१ बातें

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

१—रोज प्रातःकाल सूर्योदयसे पहले उठो। उठते ही भगवान्‌को प्रणाम करो, फिर हाथ-मुँह धोकर उषःपान करो। ठंडे जलसे आँखें धोओ।

२—पेशाब-पाखानेकी हाजतको कभी न रोको। पेटमें मल जमा न होने दो।

३—रोज दतुअन करो; भोजन करके हाथ, मुँह, दाँत अवश्य धोओ।

४—प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके सूर्यको अर्घ्य दो।

५—दोनों समय (प्रातः और संध्या) नियमपूर्वक श्रद्धाके साथ भगवत्प्रार्थना या संध्या करो।

६—हो सके तो प्रातःकाल शुद्ध वायुका सेवन अवश्य करो।

७—भूखसे अधिक न खाओ, जीभके स्वादके वशमें न होओ; पवित्रतासे बना हुआ—पवित्र कमाईका अन्न खाओ; किसीका भी जूठा कभी न खाओ, न किसीको अपना जूठा खिलाओ, मांस-मद्यका सेवन कभी न करो।

८—भोजनके समय जल न पीओ या बहुत थोड़ा पीओ।

९—पान, तंबाकू, सिगरेट, बीड़ी, चाय, काफी, भाँग, अफीम, गाँजा, चरस, ताश, चौपड़, शतरंज आदिका व्यसन न डालो; दवा अधिक सेवन न करो। पथ्य, परहेज, संयम, युक्ताहार-विहारका अधिक ध्यान रखो।

१०—दिनमें न सोओ, रातमें अधिक न जागो, छः घंटेसे अधिक न सोओ।

११—नियमितरूपसे धर्मग्रन्थोंका कुछ स्वाध्याय अवश्य करो।

१२—रोज नियमितरूपसे कम-से-कम २५,००० भगवान्‌के नामोंका जप अवश्य करो।

१३—संतोंके चरित्र और उनकी दिव्य वाणीका अध्ययन करो।

१४—जूआ कभी न खेलो, बाजी न लगाओ, होड़ न बदो।

१५—सिनेमा, स्त्रियोंका नाच आदि न देखो।

१६—कपड़े सादे पहनो और साफ रखो, मैले न होने दो; परंतु फैशनका खयाल बिलकुल न रखो। कपड़े बिगाड़कर भी न पहनो, बहुत कीमती कपड़े न पहनो।

१७—हजामत और नख न बढ़ने दो, परंतु शौकसे दिनमें दो बार बनाओ भी नहीं।

१८—अपने शरीरको सुन्दर दिखलानेका प्रयत्न न करो।

१९—किसी भी हालतमें यथासाध्य उधार न लो, उधार लेकर खर्च करनेसे आदत बिगड़ जाती है; जबतक उधार मिलता है, खर्च बढ़ता ही जाता है; पीछे बड़ी कठिनाई और बेइज्जती होती है।

२०—तकलीफ सहकर भी आमदनीसे कम खर्च करो, अधिक खर्च करनेवालों या अमीरोंको आदर्श न मानकर मितव्ययी पुरुषों और गरीबोंकी ओर ध्यान दो। मितव्ययी पुरुष आमदनीमेंसे कुछ बचाकर अपनी ताकतके अनुसार दुःखियोंकी सेवा कर सकता है, चाहे एक पैसेसे ही हो; खरी कमाईसे बचे हुए एक पैसेके द्वारा भी की हुई दीन-सेवा बहुत महत्त्वकी होती है। मितव्ययी पुरुषके बचाये हुए पैसे उसके आड़े वक्तपर काम आते हैं। जो अधिक खर्च करता है, उसकी आदत इतनी बिगड़ जाती है कि वह बहुत अधिक आमदनी होनेपर भी एक पैसा बचाकर दीनोंकी सेवा नहीं कर सकता। वह अपने खर्चसे ही परेशान रहता है और आमदनी न होने या कम होनेकी सूरतमें उसपर कष्टोंका पहाड़ टूट पड़ता है। मितव्ययी और अच्छी आदतवाले पुरुष ऐसी अवस्थामें दुःखी नहीं हुआ करते।

२१—नौकरोंसे दुर्व्यवहार न करो, दुःखमें उनकी सेवा-सहायता करो। उनका तिरस्कार-अपमान कभी न करो। उनकी आवश्यकताओंका खयाल रखो और अपनी परिस्थितिके अनुसार उन्हें पूरा करनेकी चेष्टा करो।

२२—अपरिचित मनुष्यसे दवा न लो, जादू-टोना किसीसे भी न करवाओ।

२३—नोट दूना बनानेवाले, आँकड़ा बतानेवाले, सोना बनानेवाले, सट्टा बतलानेवाले लोगोंसे सावधान रहो; ऐसा करनेवाले प्रायः ठग होते हैं।

२४—किसी अनजानेको पेटकी बात न कहो, जाने हुए भी सबसे न कहो; परंतु अपने सच्चे हितैषी बन्धुसे छिपाओ भी नहीं।

२५—जहाँ भी रहो किसी वयोवृद्ध अनुभवी पुरुषको अपना हितैषी जरूर बना लो। विपत्तिके समय उसकी सलाह बहुत काम देगी।

२६—प्रेम सबसे रखो, परंतु बहुत ज्यादा सम्बन्ध स्थापित न करो। अनावश्यक दावतोंमें न जाओ और न दावत देनेकी ही आदत डालो।

२७—जो कुछ काम करो, अच्छी तरहसे करो। बिगाड़कर जल्दी और ज्यादा करनेकी अपेक्षा सुधारकर थोड़ा करना भी अच्छा है, परंतु आलस्य-प्रमादको समीप न आने दो।

२८—जोशमें आकर कोई काम न करो।

२९—किसीसे विवाद या तर्क न करो, शास्त्रार्थ न करो। अपनेको सदा विद्यार्थी ही समझो। समझदारीका अभिमान न करो। सीखनेकी धुन रखो।

३०—मीठा बोलो, ताना न मारो, कड़वी जबान न कहो; बीचमें न बोलो, बिना पूछे सलाह न दो; सच बोलो, अधिक न बोलो, बिलकुल मौन भी न रहो; हँसी-मजाक न करो; निन्दा-चुगली न सुनो; गाली न दो, शाप-वरदान न दो।

३१—नम्र और विनयशील रहो, झूठी चापलूसी न करो, ऐंठो नहीं, मान दो, पर मान न चाहो।

३२—दूसरेके द्वारा अच्छा बर्ताव होनेपर ही मैं उसके साथ अच्छा करूँगा, ऐसी कल्पना न करो। अपनी ओरसे पहलेसे ही सबसे अच्छा बर्ताव करो, जो अपनी बुराई करे उसके साथ भी।

३३—गरीबोंके साथ सहानुभूति रखो।

३४—किसी फर्ममें, संस्थामें या किसी व्यक्तिके लिये काम करो—नौकरी करो तो पूरी वफादारीसे करो। सदा तन-मन-वचनसे उसका हित-चिन्तन ही करते रहो।

३५—जहाँ रहो अपनी ईमानदारी, वफादारी, होशियारी, कार्य-कुशलता, मीठे वचन, परिश्रम और सचाईसे अपनी जरूरत पैदा कर दो। अपना स्थान स्वयं बना लो।

३६—प्रत्यक्ष लाभ दीखनेपर भी अनुचित लोभ न करो। अपनी ईमानदारीको हर हालतमें बचाये रखो। दूसरेका हक किसी तरह भी स्वीकार न करो। ईमान न बिगाड़ो।

३७—आचरणोंको—चरित्रको सदा पवित्र बनाये रखनेकी कोशिश करो।

३८—बिना ही कारण मान-बड़ाईके लिये न तरसो। गरीबीसे न डरो, बेईमानी और बुरी आदतोंसे अवश्य भय करो।

३९—परायी स्त्रीको जलती हुई आग या सिंहसे भी अधिक भयानक समझो। स्त्री-सम्बन्धी चर्चा न करो, स्त्री-चिन्तन न करो, स्त्रियोंके चित्र न देखो, स्त्रियोंके सम्बन्धकी पुस्तकें न पढ़ो। यथासाध्य स्त्री-सहवास अपनी स्त्रीसे भी कम करो। यही बात स्त्रीके लिये पर-पुरुषके सम्बन्धमें है।

४०—सदा अशुभ भावनाओंसे अपनेको न घिरा रहने दो। उनको दूर भगाये रखो।

४१—विपत्तिमें धैर्य और सत्यको न छोड़ो, दूसरेपर दोष न दो।

४२—जहाँतक हो क्रोध न आने दो। क्रोध आ जाय तो उसका कुछ प्रायश्चित्त करो।

४३—दूसरोंके दोष न देखो, अपने देखो। किसीको छोटा न समझो। अपना दोष स्वीकार करनेको सदा तैयार रहो।

४४—अपने दोषोंकी डायरी रखो; रातको उसे रोज देखो और कल ये दोष नहीं होंगे, ऐसा दृढ़ निश्चय करो।

४५—वासना-कामनाओंको जीतनेकी चेष्टा करो। कामनापूर्तिकी अपेक्षा कामनाओंको जीतनेमें ही सुख है।

४६—अहिंसा, सत्य और दयाको विशेष बढ़ाओ।

४७—जीवनका प्रधान लक्ष्य एक ही है, यह दृढ़ निश्चय कर लो। वह लक्ष्य है—'भगवान्‌की उपलब्धि।'

४८—विषयचिन्तन, अशुभचिन्तनका त्याग करके यथासाध्य भगवच्चिन्तनका अभ्यास करो।

४९—भगवान् जो कुछ दें, उसीको आनन्दपूर्वक ग्रहण करनेका अभ्यास करो।

५०—इज्जत, मान और नामका मोह न करो।

५१—भगवान्‌की कृपामें विश्वास करो।



परिवार-नियोजनमें संयमकी आवश्यकता

(संत विनोबा भावे)

परिवार-नियोजनमें मैं अपने देशका कल्याण नहीं देखता, प्रत्युत इसमें आध्यात्मिक और नैतिक मूल्योंकी हार है, ऐसा मैं मानता हूँ। इसके कई पहलू हैं— आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षणिक। यह चीज ही ऐसी है कि बिलकुल जीवनके केन्द्रमें खड़ी है। इसलिये यों ही सहज-भावसे कह देना कि 'हाँ भाई! जन-संख्या बढ़ रही है तो करो नियमन,' यह मुझे जँचता नहीं।

पृथ्वीको पापका भार है, संख्याका नहीं

मैंने एक सूत्र बनाया है—'पृथ्वीको पापका भार है, संख्याका नहीं।' संतान पापसे बढ़ सकती है, पुण्यसे भी बढ़ सकती है और पापसे घट सकती है, पुण्यसे भी घट सकती है। पुण्य-मार्गसे संतान बढ़ेगी तो पृथ्वीको बोझ नहीं होगा। पुण्य-मार्गसे संतान घटेगी तो नुकसान नहीं होगा। पाप-मार्गसे संतान बढ़ेगी तो पृथ्वीको भार होगा और पाप-मार्गसे घटेगी तो नुकसान होगा। यह मेरा अपना एक विचार है। इसलिये संतति-निरोधके जो कृत्रिम उपाय चलते हैं, उन्हें मैं मातृत्वकी विडम्बना कहता हूँ।

युद्धसे भी भयानक

आज मानव-समाजमें सेक्सका ऊधम मचाया जा रहा है। मुझे इसमें युद्धसे भी ज्यादा भय मालूम होता है। अहिंसाको हिंसाका जितना भय है, उससे अधिक काम-वासनाका है। हर जगह विज्ञानकी सहायता ली जा रही है, जिसके कारण सेक्समें भी साइंटिफिक ऑट्टिट्यूड (वैज्ञानिक वृत्ति)-की आवश्यकता पैदा हुई है।

वैज्ञानिक दृष्टि और संयम

परिवार-नियोजनका तात्पर्य है—आत्मसंयम—अपनेपर नियन्त्रण रखना। यह चीज नामुमकिन नहीं। विज्ञानके ज़मानेमें पहलेसे ज्यादा आसान होनी चाहिये। उस विषयका स्वरूप क्या है, परिवारका उद्देश्य क्या है, ब्रह्मचर्यकी साधना क्या होती है, उसमें कौन-सी शक्ति भरी है, इन बातोंका आज विज्ञानके समयमें प्रजाको पहलेकी अपेक्षा अधिक स्वस्थ ज्ञान होगा। हममें एक ऐसी शक्ति है जिसे ऊपर उठाया जा सकता है। जैसे दीपक या लालटेनकी प्रभा होती है, उसे नीचेसे तेलकी शक्ति प्राप्त होती है, तभी उसकी प्रभा, बत्ती, ज्योति अच्छी तरह चमकती है। मनुष्यके लिये 'ब्रह्मचर्य' तेल है और प्रज्ञा प्रभा, उसकी बुद्धिमत्ता उसका प्रकाश है। ब्रह्मचर्यके तेलकी शक्ति उसे सतत मिलती रहे तो बुद्धिमत्ता तेजस्वी होती है। वह न रही तो बुद्धि ही निर्बल हो जाती है, बुद्धिकी प्रतिभा कम होती है।

देश तेजोहीन होगा

कृत्रिम उपायोंके अवलम्बसे केवल संतान ही नहीं, बुद्धिमत्ता भी रुकेगी। यह जो क्रिएटिव एनर्जी (सर्जक शक्ति) है, जिसे हम 'वीर्य' कहते हैं, उसीसे वाल्मीकि-जैसे महाकवि पैदा हुए, महावीर हनुमान्-जैसे उसीसे हुए। प्रतिभावान् पुरुष और तत्त्वज्ञानी उसीसे निकले। उस निर्माण-शक्तिका मनुष्य दुरुपयोग करता है अर्थात् संख्या-नियमन करके संतानको रोक लिया और उस शक्तिका दूसरी तरफ जो उपयोग हो सकता था, उसे विषयोपभोगमें लगा दिया। विषय-वासनापर जो अंकुश रहता था, वह नहीं रहा। पति-पत्नी संतान उत्पन्न न हो, ऐसी व्यवस्था करके विषय-वासनामें व्यस्त रहेंगे तो उनके दिमागका कोई संतुलन नहीं रहेगा। ऐसी स्थितिमें देश तेजोहीन बनेगा। संतान कम होगी तो लाभ होगा, यह मानकर ये लोग उसे उत्तेजन देंगे। परंतु केवल संतान ही कम नहीं होगी, ज्ञानतन्तु भी क्षीण होंगे, प्रभा कम होगी, प्रज्ञा कम पड़ेगी, तेजस्विता कम होगी।

पुरुषार्थ बढ़ायें

दुनियाका अनुभव है कि जब जीवनमें पुरुषार्थ बढ़ता है, तब विषय-वासना कम होती है। सबको अच्छी तरह पुरुषार्थ करनेका अवसर मिलेगा तो स्वभावत: विषय-वासनापर नियन्त्रण हो जायगा। साथ ही हिंदुस्तानका

पुरुषार्थ जितना बढ़ेगा, उतना ही पोषणका प्रबन्धन भी बढ़ेगा। जहाँ पोषण अच्छा नहीं मिलता, वहाँ भोग-वासना बढ़ती है। जानवरोंमें भी यह देखा गया है। शेरके बच्चे कम होते हैं, बकरीके ज्यादा। बलवान् जानवरोंमें विषय-वासना कम होती है और निर्बलमें ज्यादा। फिर कमजोरोंकी जो संतान पैदा होती है, वह भी निर्वीर्य या निकम्मी होती है। इसलिये मैं कहता हूँ कि यह विषय सामाजिक और आध्यात्मिक है, उससे खिलवाड़ न किया जाय। ऐसे वातावरणका निर्माण किया जाय, जो संयमके अनुकूल हो। समाजमें पुरुषार्थ बढ़ायें, साहित्य सुधारें और गंदे साहित्य-सिनेमा आदिपर पूर्णतः प्रतिबन्ध लगायें।

चार आश्रमोंकी योजना

शास्त्रोंके अध्ययन-मननसे यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि हमारे पूर्वजोंने ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम एवं संन्यासाश्रमकी जो योजना बनायी थी, वह ठीक है। यदि ऐसी मर्यादा हम बनाते हैं तो उससे हमें लाभ होगा। गृहस्थाश्रमका पैमाना २५ सालकी आयुसे ४५ वर्षतक हो तो संतानका भी थोड़ा-बहुत नियमन होना चाहिये। वह होगा तो लाभ-ही-लाभ मिलेगा और आध्यात्मिक शक्तियाँ भी मिलेंगी।

हमारे सामने एक आदर्श होना चाहिये कि इतने वर्षोंके बाद हम गृहस्थाश्रमसे निवृत्त होंगे। जैसे विधिपूर्वक गृहस्थाश्रम स्वीकार करते हैं, वैसे ही विधिपूर्वक गृहस्थाश्रमका विसर्जन भी होना चाहिये। इससे हम विषय-वासनासे मुक्त होते हैं।

'विषय-वासनासे मुक्ति सहज ही मिलेगी'—ऐसे भ्रममें जो रहता है, वह स्वयं अपनी कब्र खोदता है'—ऐसा महाराज ययातिने कहा है। वे बूढ़े हो गये थे, परंतु उन्हें वासना-तृप्ति नहीं हुई थी, इसलिये उन्होंने अपने बच्चोंसे जवानी माँगी। बच्चोंने दे दी। जवान होकर दुबारा भोग भोगा, परंतु फिर भी उनकी तृप्ति नहीं हुई। फिर महाराज ययातिने अपना अनुभव श्रीमद्भागवतमें बता दिया—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥
(९।१९।१४)

अर्थात् 'कामके उपभोगसे काम-पिपासा कम नहीं होती। घीसे जैसे अग्नि बढ़ती है, वैसे ही वह बढ़ती चली जाती है।' चाहे शक्ति घट जाय, इच्छा तो बढ़ती ही रहती है। इसलिये उसको तोड़ना ही होता है। स्वायम्भुव मनुकी कथा तुलसीदासजीने रामायणमें दी है ***'होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन'***—बुढ़ापा आया, परंतु विषय-वासना नहीं मिटी। मनुको बड़ा दुःख हुआ कि ***'जनम गयउ हरिभगति बिनु।'*** तब उन्होंने क्या किया?' ***'बरबस राज सुतहि तब दीन्हा।'***—जबर्दस्ती राज्य अपने पुत्रको सौंप दिया और ***'नारि समेत गवन बन कीन्हा।'***—पत्नीके साथ वनमें प्रवेश किया।' ये तुलसी-रामायणके शब्द हैं। इस तरह अपने-पर, अपनी इन्द्रियोंपर, मनपर जबर्दस्ती करनेका अधिकार पुरुषको होता है। उसका उपयोग उन्होंने किया और वनमें चले गये। सारांश यह कि विषय-वासना ऐसे ही टूटेगी। उसमेंसे हम छूटेंगे, ऐसा मानना बिलकुल गलत है।

विषय-वासनाकी एक मर्यादा होनी चाहिये। जब लोकमत होता है, तभी यह सम्भव होती है। जिन्होंने यह वानप्रस्थाश्रमकी कल्पना निकाली, उन्होंने इस विषयमें लोकमत बनाया था। परंतु वह लोकमत आज टूट गया, वानप्रस्थाश्रम समाप्त हो गया। गृहस्थाश्रमकी प्रतिष्ठा गयी। ऐसी स्थितिमें जो समाज रहता है, वह कैसे आगे बढ़ेगा? यह शोचनीय बात है। इसलिये वानप्रस्थकी बात करनी चाहिये।

जिस दिन चार आश्रमोंकी स्थापनाकी आशा मैं छोड़ूँगा, उस दिन हिंदू होनेका दावा भी छोड़ दूँगा और कहना पड़ेगा कि यह केवल हिंदुओंकी वस्तु नहीं है। मुहम्मदने भी लिखा है कि '४० सालके बाद मनुष्यका ध्यान भगवान्‌की ओर जाना चाहिये' और जाता है। उन्होंने ४० की मर्यादा मानी, जिसमें मनुष्यको विषय-वासनासे अलग होना चाहिये।

आरोग्य और भोजन-विज्ञान

(स्वामी श्रीदयानन्दजी)

आर्यशास्त्रमें अन्यान्य यज्ञोंकी तरह भोजन-व्यापारको भी एक नित्ययज्ञ कहा गया है। इस नित्ययज्ञके यज्ञेश्वर भगवान् वैश्वानर कहे गये हैं, यथा—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥
(गीता १५। १४)

श्रीभगवान् वैश्वानर (जठराग्नि)-रूपसे प्रत्येक प्राणीमें बैठकर प्राण और अपान-वायुकी सहकारितासे चर्व्य, चोष्य, लेह्य तथा पेय—इन चार प्रकारके भोज्य अन्नोंको भक्षण करते हैं। अन्ततः आर्यभोजनसे केवल उदरपूर्ति ही नहीं होती, अपितु श्रीभगवान्‌की पूजा भी होती है; इसीसे हमारे शास्त्रोंमें भोजनकी पवित्रतापर विशेष विचार किया गया है। इस सम्बन्धमें सबसे पहले स्थानका विचार करना चाहिये; अर्थात् चाहे जिस स्थानमें बैठकर या खड़े-खड़े भोजन करना ठीक नहीं; क्योंकि अशुचि स्थानमें पूजा करनेसे कोई फल नहीं होता, भगवान् असंतुष्ट होते हैं। भोजनका स्थान पवित्र, एकान्त और गोमय तथा जल आदिसे शुद्ध किया हुआ होना चाहिये। दूसरे स्वयं पवित्र होकर भोजन करना चाहिये; क्योंकि अपवित्र शरीर और अशुचि मनसे भगवत्पूजा करनेसे कोई फल नहीं होता। तीसरे जिस वस्तुसे पूजा करनी हो, वह पवित्र और सात्त्विक होनी चाहिये; क्योंकि अशुद्ध और तामसिक वस्तुओंसे भगवान्‌की पूजा नहीं की ज़ाती। उससे शरीर, मन, बुद्धि और आत्माका कलुषित होना सम्भव है। अन्ततः खाद्य द्रव्य शुद्ध और सात्त्विक होना आवश्यक है। चौथे पूजाकी वस्तु जिसमें संग्रह की जाय, वह पात्र स्वच्छ और परिष्कृत होना चाहिये। वह किसी अपवित्र व्यक्ति अथवा जीवसे स्पर्श किया हुआ नहीं होना चाहिये; क्योंकि पूजाके फूल, नैवेद्य आदि नीच जीव या पापियोंसे छुए जानेपर पूजाके योग्य नहीं रहते; इसीसे पापी या नीच जीवोंका अन्न ग्रहण करना निषिद्ध है। यही नहीं, उनका छुआ अन्न भी ग्रहण नहीं करना चाहिये। इसी कारण हमारे प्राचीन ऋषियोंने आहारपर बहुत विचार करके आहार-सम्बन्धी नाना प्रकारके आचारोंका निर्णय किया है।

भोजनके विषयमें भगवान् मनुने लिखा है—

'आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः'।

आयु चाहनेवालेको पूर्वमुख और यश चाहनेवालेको दक्षिणमुख भोजन करना चाहिये।

पूर्वदिशासे प्राण और शक्तिका उदय होता है। प्राणस्वरूप सूर्यदेव पूर्वसे ही उदित होते हैं, इस कारण पूर्वाभिमुख होकर भोजन करनेसे आयुका बढ़ना स्वाभाविक है। इस विषयमें पश्चिमी पण्डितोंने भी अन्वेषण किया है। यथा—

Dr. George Starr White of the New York Medical College discovered that a healthy Person had a slight difference in sound over each organ when faced east than he had when he faced north and he deduced that the reason for this is that when a person faces north the magnetic lines of force cut through a larger surface of the sympathetic nervous chain.

डॉ० जार्जका सिद्धान्त है कि उत्तरकी ओर मुँह करके खानेसे वैद्युतिक प्रवाह नसोंके द्वारा अधिक वेग तथा विस्तारके साथ चलता है, इसलिये वह उतना आयुर्वृद्धिकर नहीं है जितना कि पूर्वाभिमुख भोजन। इसी प्रकार यश देनेवाले पितरोंका सम्बन्ध दक्षिण दिशाके साथ रहनेके कारण दक्षिणाभिमुख भोजनसे यशोलाभ होता है। स्नान तथा पूजादिसे शरीर और मनकी पवित्रता बढ़ती है, इसलिये शास्त्रमें कहा है—

'अस्नात्वाशी मलं भुङ्क्ते अजपी पूयशोणितम्'।

नीरोग शरीर होनेपर बिना स्नान किये खानेसे मल-भोजन और बिना जप-पूजा किये खानेसे पूय-शोणित-भोजनका दोष होता है। इसलिये स्नान करनेके बाद भोजन करना चाहिये। शास्त्रोंमें लिखा है—

पञ्चार्द्रो भोजनं कुर्यात् प्राङ्मुखो मौनमास्थितः।
हस्तौ पादौ तथैवास्यमेषा पञ्चार्द्रता मता॥

'दोनों हाथ, दोनों पाँव और मुँह धोकर, पूर्वाभिमुख हो, मौन अवलम्बनकर भोजन करे।' योगशास्त्रमें मनुष्यके

स्वाभाविक श्वासकी गति बारह अङ्गुल, किंतु भोजनकालमें बीस अङ्गुल बतायी गयी है। श्वासकी गति अधिक होनेपर आयु घटती और कम होनेपर बढ़ती है। लोभसे भोजन करनेमें तथा हाथ-पाँव न धोकर भोजन करनेमें श्वासगति बढ़ती है। इसी कारण भगवान्‌को भोग लगाकर प्रसादरूपसे तथा हाथ-पाँव धोकर खानेकी विधि है। मनुने कहा है—

आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत्।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥

भींगे-पैर भोजन करे, परंतु शयन न करे। भींगे-पैर भोजन करनेसे आयु बढ़ती है और शयन करनेसे घटती है। मौन होकर भोजन करनेको इसलिये कहा है कि भोजन करते समय बोलते रहनेसे लार कम उत्पन्न होगी, फलतः मुँह सूख जानेसे बीच-बीचमें पानी पीना पड़ेगा। लार कम उत्पन्न होने और मुँह सूखनेके कारण पानी पीनेसे पाचनक्रियामें बाधा उत्पन्न होगी। महाभारतमें लिखा है—'एकवस्त्रो न भुञ्जीत' केवल एक वस्त्र धारण करके भोजन न करे। भोजन करते समय एक उत्तरीय (दुपट्टा) ओढ़ लेना चाहिये; वह रेशमी हो तो अधिक अच्छा है। भोजन करते हुए शरीरयन्त्रकी जो क्रियाएँ होती हैं, उनमें बाहरी वायु बाधा न पहुँचा सके, इसीलिये यह व्यवस्था है। रेशमी वस्त्र इस कारण अच्छा समझा गया है कि रेशम भीतरी शक्तिको सुरक्षित रखकर बाहरी शक्तिका उसपर परिणाम नहीं होने देता। इस प्रकार पवित्र भावसे भोजन करना चाहिये। स्नान करनेके पश्चात् ही भोजन करना उचित है, क्योंकि भगवत्पूजा बिना स्नान किये नहीं की जाती और पूजा किये बिना भोजन करना निषिद्ध है। शरीर अस्वस्थ रहनेपर गीले कपड़ेसे शरीर पोंछकर वस्त्र बदल दे और भस्मस्नान अथवा मानसिक स्नान कर ले। मानसिक स्नान, श्रीविष्णु-भगवान्‌का स्मरण करके 'स्वर्गसे गङ्गाकी धारा आयी और उसमें स्नानकर मैं पवित्र हुआ' ऐसी दृढ़ भावना करनेसे होता है। भस्मस्नान शिवमन्त्रसे अग्निहोत्रकी विभूतिको अभिमन्त्रित कर देहमें लगानेसे होता है।

भोजनके पहले भोज्य पदार्थोंका भगवान्‌को नैवेद्य दिखाकर तब प्रसाद समझकर भोजन करे। प्रसादरूपसे भोज्य पदार्थोंका सेवन करनेसे अन्नमें अनुचित आसक्ति न रहेगी। जब कि संसारकी सब वस्तुएँ भगवान्‌की उत्पन्न की हुई हैं, तब उन्हें पकाकर भगवान्‌को बिना अर्पण किये खानेसे निस्संदेह पाप होगा। गीता (३। १२)-में कहा है—

'तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः'॥

देवताकी दी हुई वस्तु उन्हें बिना समर्पण किये जो खाता है, वह चोर है, अतः भगवान्‌को समर्पण करके ही अन्न ग्रहण करना चाहिये।

खाद्य वस्तुएँ पवित्र और सात्त्विक होनी चाहिये। इसका कारण छान्दोग्योपनिषद्‌में बताया गया है। यथा—

'अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्मा॑ःसं योऽणिष्ठस्तन्मनः॥'

'दध्नः सोम्य मथ्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तत् सर्पिर्भवति॥ एवमेव खलु सोम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तन्मनो भवति॥'

(६। ५। १; ६। ६। १-२)

और भी—

'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।'

खाया हुआ अन्न तीन भागमें विभक्त हो जाता है—स्थूल असार अंश मल बनता है, मध्यम अंशसे मांस बनता है और सूक्ष्म अंशसे मनकी पुष्टि होती है। जिस प्रकार दधिके मथनेपर उसका सूक्ष्म अंश ऊपर आकर घृत बनता है, उसी प्रकार अन्नके सूक्ष्मांशसे मन बनता है। मन अन्नमय ही है। आहारशुद्धिसे सत्त्वशुद्धि, सत्त्वशुद्धिसे ध्रुवा स्मृति और स्मृतिशुद्धिसे सभी ग्रन्थियोंका मोचन होता है। अतः सिद्ध हुआ कि अन्नके सात्त्विकादि गुणानुसार मन भी सात्त्विकादि भावापन्न होगा। साधारणतः देखा जाता है कि अन्न न खानेसे मन दुर्बल हो जाता है, चिन्तन-शक्ति नष्ट होने लगती है। अन्न खानेसे मन सबल होता है तथा चिन्तन-शक्ति बढ़ने लगती है। अतः यही अन्न यदि तामसिक होगा तो मन, बुद्धि, प्राण और शरीर तामसिक होंगे; जिससे ब्रह्मचर्यधारण और साधना आदि असम्भव हो जायँगे। इसी तरह राजसिक अन्नसे भी मन और बुद्धि चञ्चल होते हैं, अतः पवित्र और सात्त्विक अन्न ही ग्रहण करना चाहिये। खाद्याखाद्यके सम्बन्धमें पश्चिमी देशोंमें जिस प्रणालीसे विचार किया गया है, वह सर्वाङ्गदृष्ट्या पूर्ण नहीं है। उन्होंने केवल इतना ही विचार किया है कि किस वस्तुमें कौन-सा रासायनिक द्रव्य कितना है। कैलशियम, प्रोटीन तथा विटामिन आदि जिसमें न्यून हो वह अखाद्य और जिसमें

अधिक हो वह खाद्य है—इतना ही मोटा सिद्धान्त उन्होंने बना लिया है। कौन-सी वस्तु किस ऋतुमें, किस प्रकारके शरीरके लिये, किस प्रकारसे सेवन की जाय, जिससे शरीर और मनका स्वास्थ्य परिवर्धित हो, इसकी विधि पश्चिमी चिकित्साशास्त्रकी पोथियोंमें नहीं मिलती। उन देशोंमें शीत अधिक है, अत: एक-सी ही वस्तुओंके बारहों मास सेवन करनेसे तद्देशवासियोंका काम बन जाता है; परंतु इस देशमें छहों ऋतु एक-से ही बलवान् हैं। ऋतुभेदसे वात, पित्त और कफकी न्यूनाधिकता होनेके कारण शारीरिक तथा मानसिक अवस्थामें कितना परिवर्तन होता है, यह जाननेकी वे अबतक चेष्टा नहीं करते। दूसरे, पश्चिमी देशोंकी यह निर्णयविधि बड़ी ही जटिल है। वहाँके प्रसिद्ध विद्वान् भी खाद्याखाद्यके सम्बन्धमें अभी एकमत नहीं हैं। तीसरे, उदरमें जाकर इन सब खाद्य-द्रव्योंका किस प्रकार विश्लेषण होता है और उससे शरीर-पोषणकारी कौन-से गुण उत्पन्न होते हैं, साधारण रासायनिक विश्लेषणद्वारा उसका निरूपण नहीं हो सकता। चौथे, इस देशके खाद्य-द्रव्योंके साथ उस देशके खाद्य-द्रव्योंके गुणावगुणका निर्णय नहीं हो सकता। सबसे बढ़कर बात यह है कि खाद्य-द्रव्योंके साथ मनका क्या सम्बन्ध है, सो पश्चिमी लोग नहीं जानते। अत: हमारे देशके खाद्याखाद्यका विचार हमारी शास्त्रीय विधियोंके अनुसार ही होना चाहिये। उसमें किसी खाद्यवस्तुमें चाहे कितना ही विटामिन हो यदि उसके परिणामद्वारा शरीरमें या मनमें विषयभाव, तमोगुण आदि बढ़ेंगे तो वह अवश्य ही वर्जित मानी जायगी। भगवान् श्रीकृष्णने सात्त्विक, राजसिक और तामसिक-भेदसे खाद्य-द्रव्योंको तीन भागोंमें विभक्त किया है। यथा—

आयु:सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धना: ।
रस्या: स्निग्धा: स्थिरा हृद्या आहारा: सात्त्विकप्रिया:॥
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिन: ।
आहारा राजसस्येष्टा दु:खशोकामयप्रदा:॥
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥

(गीता १७। ८—१०)

सरस, स्निग्ध, सारवान् और हृदयग्राही आहार सात्त्विक होता है। अधिक कटु, अम्ल, लवण, उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष और विदाही (जलन उत्पन्न करनेवाला, चरपरा) आहार राजसिक है और बासी, रसहीन, दुर्गन्धयुक्त, जूठा और अपवित्र आहार तामसिक है। सात्त्विक आहारसे आयु, बल, उत्साह, आरोग्य, सुख और प्रीतिकी वृद्धि होती है और चित्तमें सत्त्वगुणकी वृद्धि तथा आध्यात्मिक उन्नति भी होती है। राजसिक आहारसे दु:ख, शोक और रोग उत्पन्न होते हैं और तामसिक आहारसे जड़ता, अज्ञान, कुरोग और पशुभाव बढ़ता है। अत: राजसिक और तामसिक खाद्य-द्रव्योंका परित्याग कर सात्त्विक आहार करना चाहिये। इसी कारण आर्यशास्त्रमें प्याज तथा लहसुन आदि राजसिक और तामसिक वस्तुओंका भोजन करना निषिद्ध है, यथा—

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च॥

(मनु० ५। ५)

लहसुन, गाजर, प्याज, कवक (कुकुरमुत्ता) (तथा विष्ठादि अपवित्र वस्तुसे उत्पन्न शाकादि) द्विजातियोंके लिये सर्वथा अभक्ष्य हैं। इन वस्तुओंके खानेसे मन, बुद्धि, शरीर, प्राण, आत्मा—सभी मलिन हो जाते हैं और ब्रह्मचर्यनाश, पशुभाववृद्धि, कामवृद्धि, चित्तचाञ्चल्य आदि उत्पन्न होकर आध्यात्मिक उन्नतिका मार्ग एकाएक बंद हो जाता है।

यह डॉक्टरी विज्ञान-सम्मत है कि स्पर्शसे एकके शरीरसे दूसरेके शरीरमें रोग संक्रमित होते हैं।

Miss Helen M. Mathews of the University of British Columbia demonstrated that bacili were readily transferred from one to another by even hand-shaking or shakehand.

अर्थात् मिस हेलेनने यन्त्रके द्वारा स्पष्ट प्रमाणित कर दिखाया है कि हाथके साथ हाथका स्पर्श होनेपर भी रोगके बीज एक दूसरेमें चले जाते हैं। केवल रोग ही नहीं, स्पर्शसे शारीरिक और मानसिक वृत्तियोंमें हेर-फेर भी हो जाता है। प्रत्येक मनुष्यमें एक प्रकारकी विद्युत्-शक्ति रहती है, जो मनुष्यकी प्रकृति और चरित्रके भेदसे प्रत्येकमें विभिन्न जातीय होकर स्थित है। तामसिकोंमें तमोमयी, राजसिकोंमें रजोमयी और सात्त्विकोंमें सत्त्वमयी विद्युत् विराजमान है। अन्तत: जिस वृत्तिके लोगोंके साथ रहा जाय, जिस वृत्तिके लोगोंका छुआ या दिया अन्न सेवन किया जाय; उसी प्रकारकी वृत्ति सहवासियों अथवा अन्न ग्रहण करनेवालोंमें संक्रमित होगी। भिन्न-भिन्न प्रकारकी

विद्युत्का प्रकृतिपरिणाम एक दूसरेपर हुए बिना न रहेगा। अत: चाहे जिसका भी हो, छुआ या दिया हुआ अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये। हिन्दूशास्त्रोंमें नीच, अपवित्र, पापी और चाण्डाल आदिका छुआ अन्न ग्रहण करनेका जो निषेध है तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रको अलग-अलग पंक्तियोंमें बैठकर भोजन करनेकी जो आज्ञा है, इसका कारण भी यही है कि प्रत्येक वर्णकी विद्युत् (प्रकृति) जन्मसे ही विभिन्न प्रकारकी होती है और उसका अन्य प्रकृतिमें संक्रमण होना स्वाभाविक है। अपनेसे निम्न श्रेणीके लोगोंके साथ बैठकर भोजन करनेसे अपनी उच्चगुणविशिष्ट विद्युत् मलिन हो जाती है अथवा नाना जातिकी बिजलीके विपरीत संघर्षसे किसीका भी भोजन परिपक्व नहीं हो पाता।

भोजनके समय इन नियमोंका पालन करना आवश्यक है। एक वर्णमें पंक्तिभोजनके समय यह भी नियम अवश्य रखना चाहिये कि जितने व्यक्ति एक साथ बैठें, सभी भोजनका प्रारम्भ तथा समाप्ति एक ही साथ करें; क्योंकि पंक्तिमें भोजनके समय सबके शारीरिक यन्त्रमें क्रियाविशेष होनेसे तथा एक साथ बैठनेके कारण सभीके भीतर एक वैद्युतिक शृंखला (Electric line or circle) बन जाती है। उसीमेंसे जो आगे उठ जायगा, वह यदि दुर्बल है तो उसकी वैद्युतिक शक्तिको बाकी बैठनेवाले खींच लेंगे, जिससे उस पहले उठनेवालेके पेटमें भोजन पचेगा नहीं और वह दुर्बल हो जायगा। दूसरे उठनेवाला यदि अधिक शक्तिशाली है तो सारे बैठनेवालोंकी विद्युत्-शक्तिको वह खींचकर उठेगा, जिससे बाकी सभीके पेटमें विकार हो सकता है। अत: पंक्तिभोजनमें साथ ही बैठने-उठनेका नियम अवश्य रखना चाहिये। और यदि किसीसे अन्न लेना हो तो सत्पात्र देखकर उससे लेना चाहिये, क्योंकि पापियोंका अन्न ग्रहण करनेसे उसका पाप अपनेमें भी संक्रमित होगा। भीष्मपितामहने दुर्योधनका पापान्न ग्रहण किया था, इसीसे उनका ज्ञान लुप्त हो गया था और द्रौपदीके वस्त्रहरणके समय वे द्रौपदीकी रक्षा नहीं कर सके थे। जब इतने बड़े महात्माकी भी पापान्नके ग्रहण करनेसे बुद्धि पलटती है तो साधारण जीवोंकी तो बात ही क्या है? सारांश यह है कि सत्पात्रके यहाँका भोजनार्थ निमन्त्रण स्वीकार करना और सत्पात्रका ही अन्न ग्रहण करना चाहिये।

भोजनमें स्पर्शदोषकी तरह दृष्टिदोषके गुणका भी विचार आर्यशास्त्रमें किया गया है। केवल आर्यशास्त्रमें ही नहीं पश्चिमी विद्वानोंने भी स्पर्शदोषके साथ दृष्टिदोषके विषयमें बहुत कुछ विचार किया है। प्रसिद्ध विज्ञानवित् फ्लामेरियन (Flammarion) साहब कहते हैं—

What is this mysterious force, this something which flows through the nerves of the hand, to the finger tips? This mysterious force by some scientists called 'Ethereal Fluid', by others 'Fluid Force' starts from the brain, unites itself with the impulses, thoughts and acts, flows through the nerves, the same as the nervous fluid to each one of its three centres of radiation viz the hand, the eyes and the soles of the feet. From each one of these respective centres, this invisible recorder registers its particular results, but it is through the hand, where this emotional wireless, reveals its greatest power.

(The mysterious power which operates through the hand—Kalpaka)

वह कौन शक्ति है जो हाथकी नसोंके द्वारा अँगुलियोंके अन्ततक चली जाती है? इसीको वैज्ञानिकगण 'आकाशी शक्ति' कहते हैं। वह मस्तिष्कसे प्रारम्भ होती है, मनोवृत्तियोंके साथ जा मिलती है और स्नायुपथसे प्रवाहित होकर हाथ, आँख और पाँवकी एड़ीतक पहुँचती है। इन तीनोंके ही द्वारा दूसरोंपर यह अपना प्रभाव दिखाती है, किंतु इसका सबसे अधिक प्रभाव हाथकी अँगुलियोंद्वारा ही प्रकट होता है। अब आर्यशास्त्रीय विचार कहते हैं। यथा—

पितृमातृसुहृद्वैद्यपुण्यकृद्धंसबर्हिणाम् ।
सारसस्य चकोरस्य भोजने दृष्टिरुत्तमा॥

पिता, माता, सुहृद्, वैद्य, पुण्यात्मा, हंस, मयूर, सारस और चकवेकी दृष्टि भोजनमें उत्तम है। इनकी दृष्टि पड़नेसे अन्नका दोष दूर हो जाता है। चकवेके विषयमें मत्स्यपुराणमें लिखा है कि 'चकोरस्य विरज्येते नयने विषदर्शनात्।' अन्नमें विष आदि दोष रहनेपर चकवे आँखें मूँद लेते हैं जिससे विषाक्त अन्नका पता लग जाता है। दृष्टिदोषके

विषयमें लिखा है—

हीनदीनक्षुधार्त्तानां पाषण्डस्त्रैणरोगिणाम्।
कुक्कुटाहिशुनां दृष्टिर्भोजने नैव शोभना॥

नीच, दरिद्र, भूखे, पाषण्ड, स्त्रैण, रोगी, मुर्गे, सर्प और कुत्तेकी दृष्टि भोजनमें ठीक नहीं होती है। उनकी विषदृष्टि अन्नमें संक्रमित होनेसे अजीर्ण रोग उत्पन्न होते हैं। अच्छी या बुरी दृष्टिमें कितनी शक्ति है सो आजकल मेस्मेरिज्म, हिप्नटिज्म आदि विद्याओंके द्वारा स्पष्ट प्रमाणित हो चुका है। यदि कभी इनमेंसे किसीकी दृष्टि अन्नपर पड़ जाय तो निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर उसके अर्थका चिन्तन करते-करते भोजन करना चाहिये। यथा—

अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः।
इति संचिन्त्य भुञ्जानं दृष्टिदोषो न बाधते॥
अञ्जनीगर्भसम्भूतं कुमारं ब्रह्मचारिणम्।
दृष्टिदोषविनाशाय हनुमन्तं स्मराम्यहम्॥

अन्न ब्रह्माका रूप है और अन्नका रस विष्णुरूप है तथा भोक्ता महेश्वर हैं, इस प्रकार चिन्तन करते-करते भोजन करनेपर दृष्टिदोष नहीं होता। अञ्जनीकुमार ब्रह्मचारी हनुमान्‌को दृष्टिदोषनाशार्थ मैं स्मरण करता हूँ, ये ही सब भोजनके विषयमें नियम हैं।

दिनमें एक ही बार भोजन करना चाहिये। 'आपस्तम्ब'में लिखा है कि 'दिवा पुनर्न भुञ्जीत नान्यत्र फलमूलयोः' तात्पर्य यह कि दिनमें एक ही बार भोजन करना चाहिये; परंतु क्षुधाबोध होनेपर फल-मूल आदिका आहार कर सकते हैं।

किसी वस्तुसे माथा लपेट कर और जूता पहनकर भोजन करना उचित नहीं—

यो भुङ्क्ते वेष्टितशिरा यश्च भुङ्क्ते विदिङ्मुखः।
सोपानत्कश्च यो भुङ्क्ते सर्वं विद्यात् तदासुरम्॥

किसी वस्तुसे माथा लपेट कर तथा शास्त्रनिषिद्ध दिशाकी ओर मुख करके और जूता पहनकर, खाना आसुरी प्रकृतिका लक्षण है। रात्रिमें हलका भोजन करना चाहिये। क्योंकि निद्रावस्थामें स्नायुशक्ति दुर्बल रहती है, उस समय गम्भीर भोजनका परिपाक ठीक नहीं होता। दिन या रात्रिका भोजन ऐसा न हो, जिसमें खूब चरपरे मसाले पड़े हों और जो आसानीसे पच न सके, न पचनेवाले भोजन करनेसे शरीर और मन दोनों बिगड़ते हैं। अतः सहजमें पचनेवाले हलके पदार्थ ही खाये जायँ। संध्याके समय भोजन न करे; क्योंकि संध्याके समय भूत-प्रेतोंकी दृष्टि अन्नपर रहती है। उनकी अन्नपर आसक्ति रहनेसे उस समय अन्न ग्रहण करनेवालोंके अन्नपरिपाकमें संदेह रहता है। इसी तरह अधिक रात बीत जानेपर भी भोजन न करे; क्योंकि भोजनोत्तर कम-से-कम दो घंटे जागकर तब सोना चाहिये। ऐसा न करनेसे अन्न नहीं पचेगा। अन्नके न पचनेसे गाढ़ निद्रा नहीं लगेगी। अच्छी नींद न आनेसे नाना प्रकारके स्वप्न दीख पड़ेंगे और निद्राभङ्ग होगा; जिससे स्वास्थ्य ठीक नहीं रहेगा। भोजन कर लेनेके कुछ समय पश्चात् जल पीना चाहिये। वह स्वच्छ, लघु, शीतल, सुगन्धित, स्वयं स्वादहीन, हृद्य और तृष्णानिवारक हो। जलके विषयमें महर्षि यमने कहा है—

दिवार्करश्मिसंस्पृष्टं रात्रौ नक्षत्रमासितैः।
संध्ययोश्च तथोभाभ्यां पवित्रं जलमुच्यते॥

दिनमें सूर्यकिरण, रात्रिको चन्द्र-किरण और सन्ध्याओंमें दोनों किरणोंसे संस्पृष्ट जल ही उत्तम है। जिस जलपर सूर्यकिरण नहीं पड़ते अथवा जिस जलको वायु नहीं सोखती, वह अति स्वच्छ रहनेपर भी कफ उत्पन्न करता है। उस जलको गरम करके ठंडा होनेपर पिये। ऐसा जल काश, श्वास, ज्वर, कफ, वात, आम और अजीर्णका नाश करता है। नारियलका जल मधुर, पाचक और पित्तशामक होता है। लाल नारियलके जलमें केवल पित्तशमनका ही गुण है। सोडावाटर, लेमनेड आदि क्षारयुक्त जल इस देशके आहार-विहार और जलवायुके लिये सर्वथा अनुपयुक्त और अपथ्यकर है।

जल पीनेके विषयमें भावप्रकाशमें लिखा है—

अत्यम्बुपानाच्च विपच्यतेऽन्न-
मनम्बुपानाच्च स एव दोषः।
तस्मान्नरो वह्निविवर्धनाय
मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि॥

अर्थात् बहुत जल पीनेसे तथा बिलकुल ही न पीनेसे अन्नका परिपाक नहीं होता। इसलिये पाकाग्निके बढ़ानेके लिये बार-बार थोड़ा-थोड़ा जल पीना चाहिये।

आर्यशास्त्रमें मिताहारकी बड़ी प्रशंसा की गयी है। मिताहारके लक्षणके विषयमें लिखा है—

कुक्षेर्भागद्वयं भोज्यैस्तृतीयं वारि पूरयेत्।
वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्॥

उदरका दो भाग भोज्य-पदार्थोंसे तथा तीसरा भाग

जलसे पूर्ण किया जाय और चौथा भाग वायु संचारके लिये खाली रखा जाय, यही मिताहारका लक्षण है। इससे आयु बढ़ती है, रोगका नाश होता है तथा बल और सुखका लाभ होता है।

भुक्त्वा पाणितलं धृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते।
अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति॥
स्वर्यातिश्च सुकन्यां च च्यवनं शक्रमश्विनौ।
भोजनान्ते स्मरेद् यस्तु तस्य चक्षुर्न हीयते॥

भोजनके बाद मुखप्रक्षालन करना चाहिये, जिससे मुखमें उच्छिष्ट न रहे। तदनन्तर 'स्वर्याति' आदि मन्त्रपाठ करते हुए आर्द्र हस्तद्वय घर्षणपूर्वक दोनों चक्षुओंमें तीन बार लगानेपर दृष्टिशक्ति अच्छी होती है। तदनन्तर क्या करना चाहिये, उसके लिये लिखा है—

भुक्त्वा राजवदासीत यावन्न विकृतिं गतः।
ततः शतपदं गत्वा वामपार्श्वेन संविशेत्॥
एवं चाधोगतश्चान्नं सुखं तिष्ठति जीर्यति॥

भोजनके बाद पहले वीरासनमें बैठना चाहिये, पश्चात् शतपद घूमकर वामपार्श्वमें सोना चाहिये। भावप्रकाशमें लिखा है कि—

वामदिशायामनलो नाभेरूर्ध्वेऽस्ति जन्तूनाम्।
तस्मात्तु वामपार्श्वे शयीत भुक्तप्रपाकार्थम्॥

नाभिके ऊपर वामपार्श्वमें अग्नि रहती है, इसलिये वामपार्श्वमें सोनेपर अन्नका परिपाक अच्छा होता है।

भोजनके बाद कठिन परिश्रम कदापि नहीं करना चाहिये, उससे रक्त-संचालन अधिक होनेपर पाकक्रियामें बाधा होती है। इसलिये लिखा है—

अनायासप्रदायीनि कुर्यात् कर्माण्यतन्द्रितः।

जिससे परिश्रम न हो, इस प्रकारके हलके काम कर सकते हैं वैद्यकशास्त्रमें और भी लिखा है—

भुक्त्वोपविशतस्तन्द्रा शयानस्य तु पुष्टता।
आयुश्चंक्रममाणस्य मृत्युर्धावति धावतः॥

भोजनके बाद बैठे रहनेसे शरीरमें भारीपन और इन्द्रियोंमें शिथिलता आने लगती है, सोये रहनेसे शरीर पुष्ट होता है, थोड़ी देर पादचारण करनेसे आयु बढ़ती है और खाते ही दौड़नेसे मृत्यु भी पीछे-पीछे जाती है। ये सब आहारके नियम हैं। इनका पालन करना चाहिये।

भगवद्भजनसे रोगोंका नाश

(ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाईजी व्यास)

'भोगापवर्गार्थं प्रकृतेरात्मा' इस सूत्रके अनुसार यह शरीर भोग और मोक्ष दोनोंके लिये है। इसलिये शरीरकी रक्षा सदैव करनी चाहिये, इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

श्रीअष्टावक्रजी महाराज श्रीजनकसे कहते हैं—'हे जनक! श्रमका नाम ही दुःख है। जिसमें थकान लगे उसका नाम श्रम है और जिसमें श्रम न हो उसका नाम है सुख। श्रम शारीरिक और मानसिक दो प्रकारका होता है। शारीरिक श्रमकी अपेक्षा मानसिक श्रम अधिक हानिकारक है। परमाणु कम होनेसे जो शरीरपर प्रभाव पड़ता है, उसीका नाम श्रम है। मनके परमाणु कम होनेसे—क्षीण होनेसे उनकी पूर्ति विलम्बसे होती है, इससे वह विशेष दुःखदायी होता है। शरीरके परमाणु कम होनेसे उनके स्थानपर नये परमाणु शीघ्र आ जाते हैं—अतः दुःख कम होता है। यही है शरीर और श्रमका सिद्धान्त। इसलिये जैसे भी शरीर और मनको थकान न लगे वैसा ही काम करना चाहिये। परमाणु घिसनेसे लेकर नये परमाणु आनेतक बीचमें जो घिसनेकी और पूर्तिकी क्रिया होती है, उसीको रोग अथवा ज्वर आदि नामसे पुकारा जाता है। इससे छुटकारा पानेके लिये मानसिक चिन्ता और श्रमका त्याग करके विश्राम करना चाहिये। इसके लिये आनन्द और प्रसन्नता बहुत ही उत्तम औषधि है। इसलिये शान्ति और आनन्दके साथ जीवन व्यतीत हो, वैसी ही व्यवस्था करनी चाहिये।'

यह शरीर पञ्चतत्त्वोंका बना है—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। निचले तत्त्वसे ऊपरका तत्त्व दूषित होता है, जैसे जलमें पृथ्वी (मिट्टी) मिले तो जल कीचड़युक्त हो जाता है। तेज (अग्नि)-में जल डाले तो धुआँ पैदा होता है। यही बात जगत्के सभी पदार्थोंके विषयमें समझनी चाहिये। नीचेका तत्त्व ऊपरके तत्त्वसे शुद्ध होता है, जैसे गंदाजल उबालनेसे शुद्ध होता है, तेज

वायुसे शुद्ध होता है अर्थात् अग्नि बिना वायुके नहीं जलती। उसी प्रकार वायु आकाशसे शुद्ध होता है अर्थात् बंद स्थानका वायु दूषित और खुले आकाशका वायु शुद्ध होता है। इन बातोंपर अच्छी तरह विचार करके साधकको इन्हें अपने जीवनमें लाना चाहिये। श्रम करनेसे शरीरके जो परमाणु घिसकर नष्ट होते हैं, वे मलके रूपमें बाहर आते हैं। उन परमाणुओंकी पूर्तिके लिये शरीरके अंदरसे जो आवाज आती है उसीका नाम है भूख। इसीलिये शरीरको जीवित रखनेके लिये आहारकी आवश्यकता होती है। शरीरके परमाणु तो आहारसे मिल जाते हैं, परंतु उससे थकान नहीं मिटती है। यदि ऐसा सम्भव होता तो मनुष्य खाता रहता और रात-दिन काम भी करता रहता, परंतु ऐसा होता नहीं है। थकान तो निद्रासे ही दूर होती है। निद्राका अर्थ है मनको आराम—मनकी निश्चिन्तता। तात्पर्य मनुष्यको काम करके विश्राम करना चाहिये। विश्राम भी दो प्रकारका होता है—१-जाग्रद् विश्राम और २-निद्रित विश्राम। निद्रामें विश्राम तो सभी लेते हैं, परंतु जाग्रद् विश्राम तो इस जमानेमें विरले ही जानते हैं। मन भी पाँच सूक्ष्म भूतोंका बना है, उनमेंसे आकाश थकान दूर करता है तथा उसके दूसरे नम्बरपर है वायु। इसीलिये दिनमें काम करनेके पश्चात् खुले आकाशमें शुद्ध वायुमें शान्तिपूर्वक बैठना चाहिये। खेल, मनोरंजन अथवा बातचीतसे पूर्ण आराम नहीं मिलता। शान्तिपूर्वक प्राकृतिक सौन्दर्यको देखते हुए निर्विचार अवस्थामें अथवा आत्म-विचारमें बैठनेसे पूर्ण विश्राम मिलता है।

बहुतसे लोग कहते हैं कि हम अमुक काम करनेसे बहुत थक जाते हैं, अतः अब वह काम नहीं करेंगे। परंतु सत्य बात तो यह है कि मनुष्य कामसे कम थकता है, परंतु चिन्ता करने, बहुत बोलने और क्रोध करने—इन तीन बातोंसे बहुत थकता है। इसे एक उदाहरणसे समझें—एक मनुष्य एक घंटा भगवन्नाम लिखनेसे उतना नहीं थकता, जितना एक घंटा बोलनेसे थकता है। इसलिये मनुष्यको आवश्यक होनेपर भी बहुत कम बोलनेका अभ्यास करना चाहिये और अपने सभी काम नियमित करने चाहिये। दिनमें करनेवाले कार्योंकी एक सूची प्रातःकालमें तैयार कर लेनी चाहिये और सायंकाल उनका निरीक्षण करना चाहिये। जो काम हो गये हों, उन्हें चिह्नित कर देना चाहिये।

रोग, दुःख और दर्द पापके फल हैं—वे पुण्य और भगवद्भजनके बिना समाप्त नहीं हो सकते, इसलिये अधिक-से-अधिक भजन करना चाहिये। भगवन्नाम-जपसे दुःख मिटता है, यह मेरे अनुभवकी बात है। जप और भजनसे ही मेरे बहुत-से दर्द मिटे हैं। मुझे दमा हो गया था, मेरे एक मित्रने कहा कि अब यह शरीरके साथ ही समाप्त होगा। जो दमा मुझे वर्षोंसे पीड़ा दे रहा था, भगवद्भजन करनेसे वह एक रातमें ही न जाने कहाँ छूमन्तर हो गया। एक बार मैं बहुत बीमार पड़ा, डॉक्टर भी निराश हो गये, परंतु प्रणवके जपसे मैं ठीक हो गया। एक समय अचानक ही मेरे सिर और कानमें बहुत तेज दर्द प्रारम्भ हुआ, परंतु वह भी एक घंटेमें समाप्त हो गया। यह सब भगवान्‌की दयाका प्रताप है। मनुष्यको बहुत दयालु होना चाहिये—अन्तःकरणमें दया होना और मन एवं शरीरसे ईश्वरका भजन करना चाहिये। किसीका अपमान तो कभी न करे, परंतु किसीकी भलाई करनेका अवसर हाथसे न जाने दे। अभिमान न करे, अपने दोष देखते रहे, सबके प्रति कपटरहित सरल वाणी बोले। इतना करे तो दुःख और दर्दमें परमात्मा शीघ्र आराम करते हैं।

ईश्वरका भजन करनेवाले व्यक्तिके जीवनमें विघ्न और दुःख आते तो हैं, परंतु थोड़े समयमें ही चले जाते हैं। जिस दुःख-दर्दमें भगवद्भजन न हो उसे बहुत बड़ा विघ्न समझना चाहिये। निष्काम कर्मका एक यही फल है कि भगवान्‌का भजन अधिक-से-अधिक हो। रोगोंसे छुटकारा पानेके लिये दवा और ईश्वर-भजन—ये ही दो उपाय हैं। जहाँ दवा नहीं काम करती, वहाँ ईश्वर-भजन काम करता है—*'हारे को हरि नाम।'*

भगवन्नाम-जप समस्त रोगोंको मिटानेका अमोघ साधन है। इसलिये दुःख और रोगमें मनुष्यको दवाके साथ भगवद्भजन भी करना चाहिये।

रोग मात्र पापका फल है और सुख पुण्योंका फल है। दुःख, रोग और पापोंका नाश करनेमें निष्काम कर्म-जैसा कोई अन्य उपाय नहीं है। परमात्माकी निष्काम सेवासे सभी दुःख और रोग नष्ट हो जाते हैं। प्रभु भोग और मोक्ष दोनोंके दाता हैं—इससे भगवान्‌का भजन निष्कामभावसे करना चाहिये। **'हरिः ॐ तत्सत्!'**

[प्रे०—रजनीकान्त शर्मा]



आरोग्य—प्राथमिक आवश्यकता

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृङ्गेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)

श्रीभगवत्पाद शंकराचार्यजीने कहा है कि 'पुत्र-मित्र-कलत्र आदिका सुख जन्म-जन्ममें प्राप्त हो सकता है; परंतु मनुष्यत्व, पुरुषत्व और विवेककी प्राप्ति नहीं होती'—

पुत्रमित्रकलत्रादिसुखं जन्मनि जन्मनि।
मर्त्यत्वं पुरुषत्वं च विवेकश्च न लभ्यते॥

ऋषियों और मनीषियोंका मानना है कि मनुष्यका जन्म—जन्मान्तरोंमें किये गये पुण्यका परिणाम होता है। पूर्वकृत सुकृतके बिना मर्त्यत्व अर्थात् मनुष्यत्व प्राप्त नहीं हो सकता। नाना योनियोंमें भ्रमण करनेवाला जीव पत्नी, पुत्र और मित्र आदिसे प्राप्त होनेवाले सुखका सम्भागी बन सकता है। नाना कष्ट भोगनेकी स्थितिवाली योनिमें रहकर भी ऐसे सुखको वह प्राप्त कर सकता है; परंतु कष्टोंसे वह मुक्त नहीं हो सकता अर्थात् नाना योनियोंमें स्वकर्मके अनुसार उसे भ्रमण करना ही पड़ता है; वह जन्म-मरणके दुर्धर चक्रसे बच नहीं सकता।

मनुष्य-जन्मकी सर्वश्रेष्ठताके विषयमें आध्यात्मिक या पारमार्थिक विश्वास रखनेवाले लोगोंमें ही नहीं, तद्भिन्न प्रकृतिवाले लोगोंमें भी कोई संदेह नहीं है। सब लोग यह स्वीकार करते हैं कि अन्य सभी जीव-जन्तुओंसे मानव सर्वथा उच्च है और वह सब प्रकारसे अपनी उन्नति कर सकता है। वह अपनी बुद्धिशक्तिका उपयोग करके अद्भुत सफलता प्राप्त कर सकता है।

लौकिक दृष्टिसे हो या आध्यात्मिक दृष्टिसे अपने लक्ष्यकी साधनाके लिये अथवा गन्तव्यतक पहुँचनेके लिये मनुष्यको स्वस्थ मन और स्वस्थ शरीरकी नितान्त आवश्यकता है। मानसिक स्वास्थ्य और शारीरिक स्वास्थ्य अनेक संदर्भोंमें एक-दूसरेके पूरक होते हैं। अतएव जिस भाँति मनको अपने वशमें रखना अवश्यम्भावी होता है, उसी भाँति शरीरको भी नियन्त्रित रखना आवश्यक होता है।

यह माना गया है कि मनुष्यका यह जन्म यथानिर्दिष्ट धर्म-परिपालनके द्वारा परमात्मा किंवा परमपदको प्राप्त करनेके लिये है। धर्मके अनुसार चलनेसे इहलोक तथा परलोकमें सुखकी स्थिति होगी। धर्मकी अवहेलना करनेसे कष्ट भोगना पड़ेगा। धर्मका साधन शरीर है। 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'—यह उक्ति तो सुपरिचित है।

तात्पर्य यह है कि पुरुषार्थचतुष्टय (धर्मार्थकाममोक्ष)-की सिद्धि तभी होती है, जब मनुष्य अपने शरीरको स्वस्थ और शुचि रखकर सही पथपर अग्रसर होता है। चार पुरुषार्थ जो बताये गये हैं, उनमें वास्तविक पुरुषार्थ मोक्ष है। दुर्लभ मनुष्य-जन्मकी प्राप्ति होनेसे मोक्षकी साधनामें लगे रहना चाहिये, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। भगवत्पादजीने कहा है—

यावन्नाश्रयते रोगो यावन्नाश्रयते जरा।
यावन्न धीर्विपर्येति यावन्मृत्युं न पश्यति॥
तावदेव नरः स्वस्थः सारग्रहणतत्परः।
विवेकी प्रययेताशु भवबन्धविमुक्तये॥

अर्थात् मनुष्य कबतक स्वस्थ है? जबतक रोग उसके पास नहीं पहुँचते, जबतक वृद्धावस्थाका उसपर आक्रमण नहीं होता और जबतक वह मृत्युको नहीं देखता। अतएव उसे विवेकी और सारग्रहण-तत्पर होना चाहिये तथा भवबन्धनसे विमुक्ति पानेके लिये शीघ्र ही प्रयत्न करना चाहिये।

आरोग्यके अभावमें लौकिक दृष्टिसे भी मनुष्य वाञ्छित सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। अतएव आरोग्यकी रक्षा हमारी प्राथमिक आवश्यकता है। मनुष्य अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करते हुए अपने जीवनको सुखमय बनाये, इस दृष्टिसे ही आयुर्वेदका प्रणयन हुआ है। भगवान्ने धन्वन्तरिके अवताररूपमें इस जगत्का कल्याण किया है और देवलोकमें देवताओंके कल्याणार्थ अश्विनीकुमार हैं।

यज्ञ, दान, जप-तप आदि क्रियाएँ सुचारुरूपसे सम्पन्न करनेके लिये दैहिक स्वास्थ्य या नीरोगताकी अपेक्षा सब लोग करते हैं। देहपर ममता नहीं होनी चाहिये,

यह बात ठीक है। पर अस्वस्थताकी अवस्थामें कोई कार्य सम्पन्न भी नहीं हो सकता। इसलिये हमारे पूर्वजोंने सदाचारकी शिक्षा दी है। धर्मशास्त्रादि ग्रन्थोंमें ऐसी अनेक बातें बतायी गयी हैं, जिनके अनुसार चलनेसे मनुष्य शारीरिक दृष्टिसे स्वस्थ रह सकता है, बौद्धिक दृष्टिसे प्रगति कर सकता है तथा आध्यात्मिक पथपर अग्रसर होकर पुरुषार्थकी साधना कर सकता है।

ब्राह्ममुहूर्तमें उठ करके शौचादिसे निवृत्त हो स्नान करनेसे, संध्योपासना और भगवदर्चना या पूजा-पाठ करनेसे शरीरको नवोन्मेष मिलता है तथा आगेके दैनिक कार्यक्रम सुगमतासे करनेका उत्साह प्रवृद्ध होता है। यह केवल आचारकी ही बात नहीं है, लौकिक कार्योंमें सफलता पानेके लिये भी इस प्रकारका अभ्यास अनावश्यक नहीं कहा जा सकता। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी सूर्योदयके पूर्व उठकर दैनिक कार्योंमें लग जाना सही मार्ग ही माना जाता है। मानव-शरीरमें एक सद्‌गुण यह है कि आप जिस तरहसे अभ्यास करेंगे, उसी तरहसे वह अपना दायित्व निभायेगा। आहार-सेवनके विषयमें भी यह बात सही कही जा सकती है।

बुद्धिमान् व्यक्तिको ज्ञात है कि हम जिस प्रकारका भोजन करते हैं, उस प्रकार हमारा जीवन चलता है और शरीरका स्वास्थ्य भी तदनुसार होता है। बात तो यह है कि हम भोजनके लिये जीवित नहीं, जीवित हैं इसलिये भोजन करते हैं। सात्त्विक आहारके सेवनसे सात्त्विकताकी वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्यकी भी रक्षा होती है। ऐसा व्यक्ति लौकिक और पारलौकिक साधनामें सफल हो सकता है। भगवान्‌ने गीता (६।१७)-में कहा है—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

तात्पर्य यह कि जो व्यक्ति भोजनादिके विषयमें नियन्त्रित मनवाला होता है, उसमें सात्त्विक प्रवृत्तिके कारण विवेकका जागरण होता है। कोई यह प्रश्न कर सकता है कि क्या सात्त्विक प्रवृत्तिके व्यक्तिको रोग नहीं होता? उत्तर यह है कि वह यौगिक चिकित्सासे अपने रोगको दूर करनेका यत्न करता है। संसारमें प्रायः कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो जीवनभर पूर्णतः रोगमुक्त रहा हो। बड़े-बड़े लोगोंको भी, महात्माओंको भी कभी कोई-न-कोई रोग हो जाता है। मनुष्यको शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगना ही पड़ता है— **'अवश्यमनुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'**। रोगके दो कारण माने गये हैं—(१) पूर्व-कर्मका परिणाम, जिसको प्रारब्ध कहा जाता है और (२) आहारादि-दोष अथवा कुपथ्य। कहा भी गया है— **'जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते'**। अतएव प्रथम कारणका निराकरण नहीं किया जा सकता। भोगसे ही प्रारब्धका क्षय होता है। दूसरा कारण जो बताया गया है उसका निवारण सम्भव है। इसीलिये तो आयुर्वेदादि चिकित्सा-पद्धतियाँ हैं। नीरोगताके लिये शारीरिक व्यायाम, शुद्ध जल-हवा आदिकी भी आवश्यकता है।

शरीरको व्याधिग्रस्त नहीं होने देना चाहिये। पथ्य और औषधसेवन यथोचित रीतिसे करने चाहिये। कहा भी गया है कि ऋणशेष, अग्निशेष और व्याधिशेषको नहीं रहने देना चाहिये; क्योंकि शेष रहनेसे उनकी वृद्धि होती है, जिससे वे हमारे लिये हानिकर होती हैं—

ऋणशेषं चाग्निशेषं व्याधिशेषं तथैव च।
पुनः पुनः प्रवर्धन्ते तस्माच्छेषं न कारयेत्॥

सत्संकल्प और ईश्वरप्रणिधानादिसे भी आरोग्यलाभ होता है। जब हम किसी भी शुभ कार्यका आरम्भ करते हैं तब संकल्पमें 'आयुरारोग्यादि' की सिद्धिकी बात करते हैं। आरोग्य तो सर्वथा वाञ्छित है। नवधा भक्तिमें पादसेवन, अर्चन, वन्दन और दास्यके जो प्रकार बताये गये हैं, उनसे हमको दोहरे लाभ होते हैं। ये शारीरिक क्रियासे सम्बन्धित होनेके कारण इनसे शारीरिक व्यायाम होता है और इष्टदेवकी करुणाके हम पात्र बन जाते हैं। हमारे परमगुरु श्रीजगद्‌गुरु शंकराचार्य ब्रह्मलीन चन्द्रशेखर भारती महाराजजी कहा करते थे कि भगवान्‌के मन्दिरमें प्रदक्षिणा करनेसे शारीरिक व्यायाम तथा पारमार्थिक प्रयोजन दोनोंकी सिद्धि सम्भव है।

यह देखा गया है और अनुभवसिद्ध बात है कि केवल औषधियोंसे ही आरोग्यलाभ नहीं होता। चिकित्सकके प्रयत्नके साथ ईश्वरानुग्रह भी रहे तो शीघ्र ही सफलता

मिलती है। सच तो यह है कि ईश्वरानुग्रहके बिना कोई भी कार्य सफल नहीं होता। श्रद्धालु भक्तोंकी दृष्टिमें गङ्गाजल ही औषध है और नारायण ही वैद्य हैं। कहा गया है—

शरीरे जर्जरीभूते व्याधिग्रस्ते कलेवरे।
औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः॥

संसारमें बार-बार जन्म लेना, अनेक कष्टोंको भोगना, नाना रोगोंका शिकार बनना—ये सब तो वात्याचक्र हैं। इनसे बचनेका एकमात्र उपाय है परमार्थके पथपर अग्रसर होना। अतः परमेश्वरकी शरणमें जाना चाहिये। कहा गया है कि परमेश्वर भवरोगके वैद्य हैं। श्रीरुद्राध्यायमें उनको 'भिषक्' कहा है—'**अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्**'। इसलिये उनसे हम प्रार्थना करते हैं कि 'हे त्र्यम्बक वेदरूप पुण्यदाता परमेश्वर! मृत्युके पाशसे हमको बचाओ, जन्म-मरणसे हमको मुक्त करो और हमको 'अमृत' बनाओ।'

भगवान्‌के नाममें महत्तर शक्ति है। श्रद्धा-भक्तिसमन्वित चित्तसे हरि, शिव ऐसे दो अक्षर भी कहें तो भवबन्धनसे मुक्त हो सकते हैं। 'स्कन्दपुराण' में कहा गया है—

शिवेति द्व्यक्षरं नाम त्रायते महतो भयात्।

'शिव' शब्द तो वेदसार है। शंकरसंहितामें कहा गया है—

सर्वासामपि विद्यानामुत्कृष्टा श्रुतिरुच्यते।
चतुर्णामपि वेदानां यजुर्वेदो विशिष्यते॥
यजुर्वेदे चतुष्काण्डः श्रीरुद्रस्तत्र तत्र च।
नमः सोमाय चेत्यत्र वरा पञ्चाक्षरी मता॥
तन्मध्ये जीवरत्नं स्याच्छिव इत्यक्षरद्वयम्॥

इस सारतत्त्वको ग्रहणकर लोग आरोग्यकी रक्षा करते हुए तथा धर्मका भी अनुसरण करते हुए परम पुरुषार्थको प्राप्त कर धन्य होवें।



आयुर्वेदके प्रवर्तक आचार्य तथा आयुर्वेद-परम्परामें चरक

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज)

भारतीय सनातन वैदिक परम्परा मूलतः आध्यात्मिक रही है, किंतु वह एक ओर जहाँ अपनी अखण्ड तथा परमपूत साधनाके द्वारा साध्यभूत मोक्षमूलक पारमार्थिक किंवा आमुष्मिक सत्यताका सतत अनुसंधान करती रही है, वहीं यह साधनपक्षके प्रति भी गम्भीर रही है। कहीं भी साध्यकी अपेक्षा साधनकी उपेक्षा नहीं की गयी है। यहाँ आदिकालसे ही साध्य एवं साधन—दोनोंमें पूर्ण संतुलन बना रहा है। इसीलिये सर्वधर्म तथा सर्वविद्याधिष्ठान वेदोंका प्राधान्य स्वीकार करते हुए भी वेदाङ्गों और उपवेदोंको भी पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। यहाँ धनुर्वेद हो या स्थापत्यवेद, गान्धर्ववेद हो या आयुर्वेद—सभी समान महत्त्वके हैं। फिर भी ऐहिक किंवा पारलौकिक फलोंके प्राप्त्यर्थ करणीय प्रयत्नोंके साधनभूत मानव-शरीर, जिसके बिना कोई भी धर्म, नियम निभने असम्भव हैं, की रक्षाका एकमात्र साधन आयुर्वेद है, जिसपर वेदोंके संहिता-कालसे ही गम्भीर विचार होते आये हैं; क्योंकि ये आयुर्वेदिक सिद्धान्त वेदमूलक हैं। इनके द्वारा प्राणिजगत्‌की आयु-रक्षा, वृद्धि एवं सुखकी प्राप्ति होती है।

आयुर्वेद नामसे विख्यात यह जीवन-रक्षा-शास्त्र पुरुषार्थचतुष्टयसे साक्षात् सम्बद्ध है। इसके अन्तर्गत अधिकारी, विषय, सम्बन्ध एवं प्रयोजन-प्रभृतिका सम्यक् विधान भी है। अतः लौकिक और अलौकिक—इन उभयविध मान्यताओंके संधिबिन्दुपर विद्यमान आयुर्वेदशास्त्र त्रिकालाबाधित, व्यावहारिक तथा जीवन्त भारतीय दर्शन है, जिसके बिना मानव-जीवन और उसके लक्ष्य अधूरे हैं। यह भारतीय भावभूमिसे सीधे सम्बद्ध भारतीय मनीषाकी अप्रतिमताका जाज्वल्यमान प्रमाण है, जिसके अन्तर्गत न केवल मानव, अपितु समूचे जड-चेतनात्मक विश्वकी प्रकृति, स्थिति, उसके आचार, उपयोग, परिवर्तन और परिणाम-सम्बन्धी नियमों—सिद्धान्तोंका चूडान्त निदर्शन है। यह ऐतिहासिकताके अखण्ड काल-प्रवाहके निकषपर खरीसिद्ध, सर्वथा लाभकारी विश्वकी सर्वप्राचीन चिन्तन-पद्धति है, जिसके तपःपूत चिन्तक

ऋषियोंकी एक पावन परम्परा है।

अथर्ववेदके उपाङ्गभूत आयुर्वेदके आचार्यों तथा ग्रन्थोंकी संख्या-सूची इतनी सुदीर्घ है कि उसकी गणना कर पाना एक कठिन कार्य है। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि आचार्य चरक एवं उनकी संहिता आयुर्वेदिक चिन्तन-शृङ्खलाके मुकुटमणि हैं। तदनुसार आयुर्वेदिक सिद्धान्तोंका उपदेश ब्रह्माने प्रजापतिको, प्रजापतिने अश्विनीकुमारोंको, अश्विनीकुमारोंने इन्द्रको और इन्द्रने भरद्वाजको दिया, जिसे ऋषिप्रवर भरद्वाजने अङ्गिराप्रभृति अन्य ऋषियोंको अक्षरशः सुना दिया। यथा—

ब्रह्मणा हि यथाप्रोक्तमायुर्वेदं प्रजापतिः।
जग्राह निखिलेनादावश्विनौ तु पुनस्ततः॥
अश्विभ्यां भगवाञ्छक्रः प्रतिपेदे ह केवलम्।
ऋषिप्रोक्तो भरद्वाजस्तस्माच्छक्रमुपागमत्॥
तेनायुरमितं लेभे भरद्वाजः सुखान्वितम्।
ऋषिभ्योऽनधिकं तच्च शशंसानवशेषयन्॥

(च० सं० सूत्र १।४-५, २६)

कुछ लोगोंके मतमें भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, वसिष्ठ और कश्यप आदि ऋषियोंने स्वयं इन्द्रके पास जाकर आयुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण की[1] तथा काश्यपसंहिताके अनुसार अत्रिने इन्द्रसे ज्ञान प्राप्त कर उसे अपने पुत्रों एवं शिष्योंको दिया—'इन्द्रः ऋषिभ्यश्चतुर्भ्यः कश्यपवसिष्ठात्र्यङ्गिरोभृगुभ्यः ते पुत्रेभ्यः शिष्येभ्यश्च प्रददुः।' (काश्यपसंहिता पृ० ६१) जिससे आयुर्वेदकी यह परम्परा आत्रेयपर्यन्त आ सकी।

आयुर्वेदकी ज्ञान-शृंखलामें अनेक आत्रेयोंका उल्लेख होनेके बावजूद पुनर्वसु आत्रेय, जो शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मणोंमें उल्लिखित गान्धारनरेश नग्नजित्के राजवैद्य थे, का समय काफी प्राचीन है। कुछ लोग इन्हें ई०पू० ३००० वर्ष और कुछ लोग ई०पू० ८०० वर्ष मानते हैं।

चरकसंहिताके अन्तर्गत अग्निवेशप्रभृति छः ऋषियोंको महर्षि आत्रेयका शिष्य बताया गया है; जो पाणिनिसे पूर्ववर्ती थे। किंतु जहाँतक चरकका प्रश्न है, इनके संदर्भमें बहुत मतभेद है। कुछ लोग इन्हें शेषावतार मानते हुए महाभाष्यकार और योगसूत्रकार पतञ्जलिका दूसरा रूप मानते हैं; यथा—

पातञ्जलमहाभाष्यचरकप्रतिसंस्कृतै-
र्मनोवाक्कायदोषाणां हर्त्रेऽहिपतये नमः॥

(चक्रपाणि)

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां
मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत् तं प्रवरं मुनीनां
पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

(विज्ञानभिक्षु, योगवार्तिक)

सूत्राणि योगशास्त्रे वैद्यकशास्त्रे च वार्तिकानि ततः।
कृत्वा पतञ्जलिमुनिः प्रचारयामास जगदिदं त्रातुम्॥

(रामभद्रदीक्षित, पतञ्जलिचरितम्)

अर्थात् भगवान् पतञ्जलिने ही समय-समयपर चरक आदिका विभिन्न रूप धारण करके व्याकरण, वैद्यक एवं योगको लोकमें प्रचारित किया, जिससे लोगोंके मन, वाक् और शरीरके दोष दूर हो सकें। इसी प्रकार वाक्यपदीयकार भर्तृहरिने ब्रह्मकाण्डमें तथा भोजने अपने ग्रन्थके अन्तर्गत इसी आशयके श्लोक दिये हैं, यथा—

कायवाग्बुद्धिविषया ये मलाः पर्यवस्थिताः।
चिकित्सालक्षणाध्यात्मयोगैस्तेषां विशुद्धयः॥[2]

(ब्रह्मकाण्ड)

शब्दानामनुशासनं विदधता पातञ्जले कुर्वता
वृत्तिं राजमृगाङ्कसंज्ञमपि व्यातन्वता वैद्यके।
वाक्चेतोवपुषां मलः फणिभृतां भर्त्रेव येनोद्धृत-
स्तस्य श्रीरणरङ्गमल्लनृपतेर्वाचो जयन्त्युज्ज्वलाः॥

(भोज)

जो कुछ भी हो, किंतु आचार्य चरकने विश्वके हितहेतु जो अमूल्य रत्न प्रदान किये हैं, वे त्रिकालाबाधित हैं और रहेंगे। उनकी संहिता आयुर्वेद-ग्रन्थ-मणिमालाका सुमेरु है। इसके अन्तर्गत न केवल पूर्ववर्ती चिन्तकोंके अमूल्य चिन्तनोंका समन्वय है, अपितु यह परवर्ती कृतियोंका प्रेरणास्रोत भी है। इसमें आठ स्थान, एक सौ

१-आयुर्वेदसमुत्थानीय रसायनपाद (चरक चिकि० १।४।३)
२-चरकसंहिताकी भूमिका पृ० २५।

बीस अध्याय एवं बारह हजार श्लोक हैं। सूत्रस्थानमें तीस अध्याय हैं, जिसमें चार-चार अध्यायोंके एक-एक चतुष्क बनाये गये हैं, जिन्हें क्रमशः—भेषज, स्वस्थ, निर्देश, कल्पना, रोग, योजना और अन्नपान कहा गया है।

इनका ग्रन्थ मात्र औषधियोंकी सूची ही नहीं, अपितु यह पूर्ण तथा प्रकाण्ड व्यवहारशास्त्र है, जिसमें आयुर्वेदकी परिभाषा, प्रवृत्ति, आयुके लक्षण, व्यक्तिकी आदर्श अहोरात्रि-चर्या, रोगोत्पत्तिके कारण, दोष, पञ्चकर्म और द्रव्योंके गुणधर्मप्रभृति तत्त्वोंपर सविस्तार प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार निदान तथा विमान स्थानोंके आठ-आठ अध्यायोंमें ओषधि-संग्रह, जनपदोध्वंस, वैद्यहेतु शास्त्रपरीक्षा, गुरुपरीक्षा, अध्ययन-अध्यापन-विधि, सम्भाषा-परिषद् तथा चिकित्सा एवं उसके उद्देश्य आदि विविध विषयोंपर गम्भीरतया विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थके कालजयित्व, उपयोगित्व एवं लोकप्रियत्वका अनुमानमात्र इससे किया जा सकता है कि सम्प्रति इसपर भट्टारहरिश्चन्द्रकृत न्यास, जेज्जटप्रणीत पदव्याख्या, चक्रपाणिरचित आयुर्वेददीपिका, शिवदाससेनप्रसूत तत्त्वप्रदीपिका, कविराज गङ्गाधरकृत जल्पकल्पतरु तथा योगीन्द्रनाथसेनाविर्भूत चरकोपस्कार-व्याख्या नामकी परम प्रख्यात टीकाएँ प्राप्त हैं। एतदतिरिक्त अनेक प्रामाणिक हिन्दी व्याख्याएँ भी सुलभ हैं। चरकसंहिताविहित सिद्धान्तोंके अनुरूप चर्याशील व्यक्ति कभी अस्वस्थ नहीं हो सकता; क्योंकि यहाँ रोगविमुक्तिके लक्षण, रोगके प्रकृतिज्ञापक लक्षण, सार-संहनन, प्रमाण तथा सात्म्य-सत्त्व-वय आदिके वर्गीकरण इत्यादिके विपुल विधान हैं।

इनके अनुसार वात, पित्त और कफके कुपित होनेके फलको ही रोग कहते हैं, किंतु इनमेंसे किसीका कोप तभी होता है, जब व्यक्ति विषम तथा अनुचित अन्नपानानुपान, अशास्त्रीय आचार एवं जीवनकी गतिविधियोंमें असावधानी करता है। इसके अतिरिक्त इनके यहाँ शुभाशुभ लक्षणोंके आधारपर शिशुका भविष्य-ज्ञान, धात्रीके गुण-दोष, कुमार-चिकित्सा, स्त्रीकी विविध अवस्थाओंमें चिकित्सा, मानवके वमन, रेचन तथा शरीरके विभिन्न अङ्गों तथा स्थितियोंके अनुरूप ओषधियोंके असंख्य विधान देखे जा सकते हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थको विविध ओषधियों, निदानों, रसों, रसायनों, शास्त्रीय सिद्धान्तों एवं विश्वहितके उपायोंका विश्वकोश कहा जा सकता है। यदि इसकी सूक्ष्मतया मीमांसा की जाय तो यह पर्यावरण-सुधारके लिये भी उपयोगी रत्नकोष है; क्योंकि इनके मतमें पर्यावरण दो प्रकारका है—१-आभ्यन्तर और २-बाह्य।

आज लोकमें प्रायः जिस पर्यावरणकी चर्चा है, जिसमें समागत प्रदूषणोंको दूर करनेके उपाय बहुचर्चित बने हुए हैं, वे सभी बाह्य हैं। सम्प्रति ऐसे-ऐसे रोग उत्पन्न हो रहे हैं, जिनके कारणों तथा उपचारोंका ज्ञान चिकित्सकोंको नहीं है; क्योंकि पर्यावरणकी विकृतिको लेकर आज वायु, अन्न, जल, भूमि और ओषधियाँ—ये सभी प्रदूषित हो रहे हैं। आजका भोज्यमान अन्न रासायनिक तत्त्वों, नदियों—जलाशयों, फैक्ट्रियोंके गंदे नालों, भूमि-विस्फोटकों तथा उपयोगी ओषधियोंमें विकृति आनेके कारण सत्त्वरेण प्रदूषित हो रहा है। गायके चारेमें यूरियाका मिश्रण दूधको प्रभावित करता है। गोवंशका विनाश हो रहा है। खादके लिये पर्याप्त गोबर नहीं मिल पा रहा है। बीज-वपनसे लेकर अन्नके घर आनेतक उसमें अनेक जहरीले पाउडर निक्षिप्त किये जाते हैं। वह रस-रक्तक्रमेण माता-पिताद्वारा बालकको विरासतमें प्राप्त होता है। इस प्रकार जहाँ बीज ही दोषपूर्ण है, वहाँ भला फल कैसे निर्दुष्ट हो सकता है। ठीक इसी प्रकार उच्छेदसे वृक्षरक्षा, गङ्गा बचाओ अभियान, परमाणु-अस्त्र-निरस्त्रीकरण तथा जनरक्षाहेतु सुरक्षा-व्यवस्था आदि उपाय भौतिक किंवा बाह्य पर्यावरण-प्रदूषण-निवारणके अन्तर्गत माने जाते हैं, किंतु वस्तुतः बाह्यरीतिसे पर्यावरण-प्रदूषणका नियन्त्रण सम्भव नहीं है, जितना आध्यात्मिक, धार्मिक, नैतिक अर्थात् आभ्यन्तरीय रीतिसे सम्भावित है।

आचार्य चरकके अनुसार वायु, जल, देश और कालके विकृत होनेपर समूची ओषधियाँ भी विकृत हो जाती हैं। इसलिये ऐसा होनेपर समूची सृष्टि रोगापन्न हो जाती है, किंतु उनसे मुक्तिके लिये ओषधिसेवन इत्यादिके अतिरिक्त चरकसंहितामें जिन उपायोंकी गणना करायी गयी है, उनमें सत्य बोलना, जीवमात्रपर दया करना, दान,

बलिवैश्वदेव, देवपूजा, सद्वृत्तपालन, शान्ति, आत्मरक्षा, कल्याणकारी गाँवों तथा नगरोंका सेवन, ब्रह्मचर्यपालन, ब्रह्मचारियोंकी सेवा, धर्मकथा, जितेन्द्रिय महर्षियोंकी सेवा, सात्त्विक, धार्मिक और वृद्धोंद्वारा प्रशंसित लोगोंकी संगति आदिका महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिनसे जीवनके भयंकर कालमें भी मनुष्यकी रक्षा हो सकती है; यथा—

सत्यं भूते दया दानं बलयो देवतार्चनम्।
सद्वृत्तस्यानुवृत्तिश्च प्रशमो गुप्तिरात्मनः॥
हितं जनपदानां च शिवानामुपसेवनम्।
सेवनं ब्रह्मचर्यस्य तथैव ब्रह्मचारिणाम्॥
संकथा धर्मशास्त्राणां महर्षीणां जितात्मनाम्।
धार्मिकैः सात्त्विकैर्नित्यं सहास्या वृद्धसंमतैः॥
इत्येतद् भेषजं प्रोक्तमायुषः परिपालनम्।
येषामनियतो मृत्युस्तस्मिन् काले सुदारुणे॥

(चरकसंहिता विमान ३। १६—१९)

चरकसंहिताके अन्तर्गत अग्निवेशकी शंकाओंका समाधान करते हुए भगवान् आत्रेयने कहा है कि वायु आदिकी विकृतिका मूल अधर्म होता है या उसका मूल कारण पूर्वजन्मकृत अपराध होता है, जिन्हें प्रज्ञापराध कहा जाता है। कहना न होगा कि इसी अधर्म—प्रज्ञापराधको आभ्यन्तर प्रदूषण कहते हैं और इसी प्रदूषणका नियन्त्रण वास्तविक पर्यावरण-प्रदूषण-निरोध कहा जायगा; क्योंकि एवंविध नियमनके अभावमें प्रदूषणकी वृद्धिको रोकना सम्भव नहीं है। संहिताकारका मत है कि गाँव, नगर, प्रान्त अथवा देशके प्रधान पुरुषोंद्वारा कृत अधर्म सामान्यजनानुकरणीय होता है, जिससे अधर्म बढ़ता जाता है और उसके प्रभाववश धर्म तिरोहित-सा हो जाता है। बादमें लुप्तधर्मियों एवं अधार्मिकोंका साथ देवगण भी छोड़ देते हैं। फलतः उन जनपदोंकी ऋतुएँ बिगड़ जाती हैं, वर्षा समयसे नहीं होती। वायु और पृथ्वी भी विकृत हो जाते हैं, जल सूख जाता है और ओषधियाँ अपने स्वाभाविक गुण छोड़ देती हैं।[1]

इसी प्रकार आगे भी सर्वविध भूतादि आक्रमण, युद्धमें मृत्यु एवं शापादिको प्रज्ञापराधके ही परिणाम बताते हुए महर्षि चरकने कहा है कि धर्मरहित जन गुरु, वृद्ध, ऋषि, सिद्ध और पूज्योंका तिरस्कार कर अनुचित आचरण करते हैं, जिससे पूज्योंके शापवश वे नष्ट हो जाते हैं। अधर्म वह तत्त्व है, जो श्रान्ति, आलस्य, संचय, परिग्रह और लोभका जनक है—'लोभः पापस्य कारणम्'।

प्राचीन कालमें प्रज्ञापराध न होनेके कारण जनता सुखी तथा शान्त थी, किंतु कालक्रमसे अधर्मके वृद्धिवश लोभसे द्रोह, द्रोहसे झूठ, झूठसे काम-क्रोध, अहंकार, द्वेष, कटुता, अभिघात, भय, ताप, शोक, चिन्ता और उद्वेगकी प्रवृत्ति बढ़ती गयी। परिणामतः पञ्चमहाभूतोंके गुण नष्ट होने लगे और वायु, जल, देश एवं काल विकृत होकर व्याधिका सर्जन करने लगे।

ध्यातव्य है कि मनुष्यकी निश्चित तथा अनिश्चित आयुके लिये महर्षि आत्रेयने दैव और पुरुषकार (कर्तव्य)-को ही आधार माना है—

इहाग्निवेशभूतानामायुर्युक्तिमपेक्षते।
दैवे पुरुषकारे च स्थितं ह्यस्य बलाबलम्॥

(चरकसंहिता विमान ३। ३०)

दैव और पुरुषकारका निर्धारण करते हुए उनका कहना है कि—

दैवमात्मकृतं विद्यात् कर्म यत् पौर्वदैहिकम्।
स्मृतः पुरुषकारस्तु क्रियते यदिहापरम्॥

(चरकसंहिता विमान ३। ३१)

अर्थात् पूर्व जन्ममें कृत कर्म दैव और वर्तमान जन्ममें अपने द्वारा कृत कर्म पुरुषकार या पुरुषार्थ समझना चाहिये। आगे भी कहा गया है—

तयोरुदारयोर्युक्तिर्दीर्घस्य च सुखस्य च।
नियतस्यायुषो हेतुर्विपरीतस्य चेतरा॥

(चरकसंहिता विमान ३। ३३)

अर्थात् दैव और पुरुषार्थ—इन दोनोंका संयोग सुख और दीर्घ आयुको प्रदान करनेवाला तथा हीन संयोग

१-चरकसंहिता विमानस्थान (३। २०)।

अल्पसुख, अल्पायुका विधायक होता है।

विचारणीय है कि 'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे'के अनुसार जो स्थिति व्यक्तिके लिये होती है, वही समष्टिके लिये भी होती है। अतः यदि अधर्मका विनाश अर्थात् प्रज्ञापराधका त्याग एवं धर्मका पालन किया जाय तो व्यक्ति, प्रान्त, देश किंवा विश्व सुखी हो जायगा तथा यह समूची सृष्टि अनन्त कालतक अमर रहेगी, अन्यथा विनष्ट हो जायगी।

इन सारे तथ्योंपर ध्यान देते हुए चरकसंहिताकार कहीं लंघन, पाचन और दोषावसेचनसे लाभका विधान करते हैं तो कहीं अचिकित्स्य पुरुषके लक्षण तथा वैद्यका कर्तव्य बताते हैं एवं साथ-साथ निवास-योग्य देशके लक्षणोंका निर्देश भी करते हैं। इनके अनुसार अहितकारी, कटुभाषी, निन्दक, अधर्मी, क्रोधी और परछिद्रान्वेषी व्यक्तिकी दवा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वह दैव और पुरुषकार—दोनों दृष्टियोंसे अपराधी है। वह अधर्मके परिणामस्वरूप रोगी है और आज भी अधर्ममें लिप्त है। इसी प्रकार जांगल, अनूप और साधारण देशोंका वर्गीकरण भी आचार्यने किया है, जिसमें पर्यावरणका विशेष ध्यान रखा गया है। जल, वनस्पति, वात, भूमि और ऋतु आदिको अधिक महत्त्व दिया गया है, जिससे चरकसंहिताकी महत्ता तथा लोकप्रियता अनुदिन बढ़ती जा रही है।

इस प्रकार निष्कर्षरूपमें कहा जा सकता है कि ऋषिवर्य चरक अद्भुत प्रतिभाके धनी थे ही, साथ ही वे प्रकाण्ड वैयाकरण, सफल पर्यावरणशास्त्री, निष्णात दैवज्ञ, विलक्षण राष्ट्रप्रेमी, अभूतपूर्व प्रकृतिप्रेमी, अद्वितीय लोकहितचिन्तक तथा ऋतम्भरा प्रज्ञाके परम धनाढ्य महापुरुष थे। वे विश्वकी रक्षाके लिये प्रभुद्वारा प्रदत्त वरदान थे और थे धन्वन्तरीय सिद्धान्तोंके ध्वजवाहक विद्वद्धुरीण आचार्य। यह सृष्टि यावच्चन्द्रदिवाकरौ क्रान्तदर्शी ऋषि चरकके प्रति कृतज्ञ रहेगी। अतः मैं भी महामुनि चरकको प्रणाम करते हुए और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए प्रणामाञ्जलि अर्पित करता हूँ—'महामुनिं तं चरकं नमामि।'



आयुर्वेदिक चिकित्सापद्धतिकी दार्शनिक आधारशिला

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज)

१-आयुर्वेद—श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धके अनुसार श्रीमन्नारायण परब्रह्मस्वरूप हैं। उनके नाभिकमलसे स्फुरित स्वयंभू ब्रह्माजी शब्दब्रह्मात्मक हैं। ब्रह्माजीके पूर्वमुखसे ऋग्वेद और आयुर्वेदकी अभिव्यक्ति मान्य है। अतएव आयुर्वेदको ऋग्वेदीय उपवेद माना गया है। पुष्टिकर्मान्तर्गत आयुर्वेद होनेसे आयुर्वेदजगत्में आयुर्वेदको अथर्ववेदीय माननेकी प्रथा प्रसिद्ध है। 'भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति' (मनुस्मृति १२।९७)-के अनुसार जो कुछ त्रिकालगर्भित वेद्य है, वह वेदप्रतिपाद्य है। आयुके स्वरूप, आयुकी रक्षा और वृद्धि एवं स्वस्थ जीवनसे सम्बद्ध वेदविज्ञान 'आयुर्वेद' है। जो आयुका वेद हो, उसे आयुर्वेद कहते हैं 'आयुषो वेदः आयुर्वेदः'। आयु, धारि, जीवित, नित्यग और अनुबन्ध पर्यायवाची शब्द हैं। शरीर, इन्द्रिय, प्राणान्तःकरण और आत्माके संयोग (सहस्थिति)-को आयु कहते हैं—

शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।
नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते॥
(च० सं० सूत्र० १।४२)

वेदोंका अर्थ वेदमूलक, विज्ञान, विचार, तदर्थ और उपलब्धि है। 'विद् विचारणे-विन्ते, विद्-सत्तायाम्-विद्यते, विद्लृलाभे-विन्दति विन्दते वा।' जिसमें आयुके स्वरूप, अन्त-हेतुपर विचार किया गया है तथा जो आयुके अपघातक रोगोंका निवारक तथा सर्वहितप्रद सुखद जीवनका आधायक है, वह आयुर्वेद है—

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते॥
(च० सं० सूत्र० १।४१)

योगी आयु और भोगपर संयमके द्वारा अधिकार प्राप्त कर सकते हैं।

२-आयुःप्रभेद—दर्शनशास्त्रोंमें आयुके स्वरूपभूत और

कर्मफलभूत दो प्रकार हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा अमृतस्वरूप मृत्युञ्जयस्वभाव होनेसे अक्षय आयु है। योगदर्शनके अनुसार जाति, आयु और भोग—ये प्रारब्धके तीन फल हैं। जातिका अर्थ मनुष्यादिशरीरोपलब्धिरूप जन्म है। आयुका अर्थ श्वास-प्रश्वासकी शरीरमें स्थिति और अवधि है। भोगका अर्थ भोग्य सामग्रीकी समुपलब्धि और सुखदुःखानुभूति है। इस प्रकार द्वितीय प्रभेदके अनुसार जन्मोत्तर जीवन और नाश 'आयुः' शब्दका अर्थ है।

उक्त रीतिसे यद्यपि प्रारब्धाधीन होनेसे आयुरक्षण और वृद्धि आदिमें पुरुषप्रयत्न निरर्थक ही है, तथापि मनुष्य-जीवनमें तरु-लता-गुल्मादि एवं पश्वादितुल्य प्रारब्धकी दासता चरितार्थ न होनेसे आयुरक्षण और वृद्धि आदिमें पुरुषप्रयत्न सार्थक ही है।

३-युगानुरूप आयुका निर्धारण—महर्षि चरकके अनुसार जिस युगमें मनुष्यकी जो आयु निश्चित की गयी है, उसे युगके प्रारम्भकी आयु समझनी चाहिये। युगायुके प्रति सौवें अंशमें मनुष्यकी सामान्य आयुमेंसे एक वर्षकी आयु क्षीण होती है। कलियुगके मनुष्योंकी आयु (सामान्य) १०० वर्ष और परमायु युगायु दिव्य वर्ष १२००÷१०=१२० वर्ष है। कलियुगकी पूर्णायु ४३२००० वर्ष है। ४३२०००÷१००=४३२० वर्ष कलिके समाप्त होनेपर मनुष्यकी आयु १००-१=९९ वर्ष रह जाती है। इसी क्रमसे आयुका ह्रास मान्य है—

संवत्सरशते पूर्णे याति संवत्सरः क्षयम्।
देहिनामायुषः काले यत्र यन्मानमिष्यते॥
(च० सं० वि० स्था० ३। २६)

४-आयुर्हेतु—अक्षय आयुकी समुपलब्धि मृत्युञ्जयस्वरूप अमृताक्षर आत्माके बोधसे सम्भव है। स्वस्थ-सुखद आयुके लिये युक्त (सात्त्विक, संतुलित) आहार, युक्त विहार, युक्त कर्म, युक्त निद्रा और युक्त अवबोधरूप संयमित जीवन एवं देवाराधन अपेक्षित है।

५-आयुर्वेदिक चिकित्सा और चिकित्सक—वेदोंकी प्रामाणिकतासम्पन्न चिकित्सापद्धति आयुर्वेद है। देहान्तरंग आत्माकी मान्यतासम्पन्न चिकित्सापद्धति आयुर्वेद है। देहनाशसे आत्माके अनाशकी भावनासम्पन्न चिकित्सापद्धति आयुर्वेद है। देहीके अविद्या—काम, कर्ममूलक जन्मादिकी प्रस्थापनासम्पन्न चिकित्सापद्धति आयुर्वेद है। देवाराधन और ईश्वरोपासनाकी उद्भावनासम्पन्न चिकित्सापद्धति आयुर्वेद है। अतएव आस्तिक प्रस्थापनकी चिकित्सापद्धति आयुर्वेद है।

रोगकी निवृत्ति और स्वास्थ्यकी अभिव्यक्तिमें हेतुभूत द्रव्यादिका योग औषधि है और स्वास्थ्याभिव्यञ्जक व्यक्ति ही चिकित्सक है। सभी कर्मोंकी सिद्धिमें सम्यक् प्रयोग ही कारण होता है। चिकित्सामें सफलता चिकित्सकके सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त होनेकी सूचना देती है। अभिप्राय यह है कि द्रव्यादिका समुचित प्रयोग चिकित्सामें सफलताका द्योतक है और औषधिका समुचित प्रयोग चिकित्सककी श्रेष्ठताका द्योतक है।

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते।
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत्॥
सम्यक् प्रयोगं सर्वेषां सिद्धिराख्याति कर्मणाम्।
सिद्धिराख्याति सर्वैश्च गुणैर्युक्तं भिषक्तमम्॥
(च०सं० सूत्र १। १३४-१३५)

औषधिसंरचनामें प्रयुक्त द्रव्योंके नाम, रूप, गुण, मिश्रण, अनुपात, प्रमाण, देश, काल, आतुरकी आयु-प्रकृतिके अनुरूप मात्रा, अनुपान, सेवनकाल और संख्या, प्रयोगावधि, आतुरकी आर्थिक स्थिति आदिका जानकार हितैषी और तत्पर चिकित्सक धन्वन्तरिके समान पूज्य है। ऐसे चिकित्सक ही भिषज् कहने योग्य हैं। '**बिभेत्यस्माद् रोगः**' जिससे रोग भयभीत हों, वह चिकित्सक भिषज् है।

सभी औषधियोंकी युक्ति (योजना, सम्मिश्रण) औषधिमात्रा और कालादिपर निर्भर करती है। सिद्धि युक्तिमें संनिहित है। यही कारण है कि द्रव्योंके गुण-धर्मादिके मर्मज्ञ चिकित्सकसे भी युक्तिज्ञ (युक्तिका जानकार) चिकित्सक सदैव श्रेष्ठ होता है।

मात्राकालाश्रया युक्तिः सिद्धिर्युक्तौ प्रतिष्ठिता।
तिष्ठत्युपरि युक्तिज्ञो द्रव्यज्ञानवतां सदा॥
(च०सं० सूत्र० २। १६)

जो चिकित्सक प्रत्येक आतुरकी परीक्षा करके देश, कालके अनुसार इन औषधियोंके योग (मिश्रण)-को जानता है, उसे उत्तम चिकित्सक कहा जाता है—

योगमासां तु यो विद्याद्देशकालोपपादितम्।
पुरुषं पुरुषं वीक्ष्य स ज्ञेयो भिषगुत्तमः॥
(च०सं० सूत्र० १।१२३)

६-आयुर्वेद-प्रयोजन—'स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम्, आतुरस्य विकारप्रशमनं च'—स्वस्थके स्वास्थ्यकी रक्षा और रोगीके विकारका प्रशमन चिकित्साशास्त्रके द्विविध प्रयोजन हैं।

७-आहारमीमांसा—अतिभोजन और अधिक अनशन जीवनका घातक है। इसी अभिप्रायसे भगवद्गीताका वचन है—'नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः'। (६।१६)। भोज्य, भक्ष्य, चर्व्य, लेह्य, चोष्य और पेय—षड्विध आहार हैं। चर्व्यका भक्ष्यमें अन्तर्भाव कर लेनेपर पञ्चविध आहार होते हैं। पेयका भोज्यमें अन्तर्भाव कर लेनेपर चतुर्विध आहार होते हैं। भात-दाल आदि भोज्य हैं। लड्डू, पूरी, रोटी आदि भक्ष्य हैं। चूड़ा, चना आदि चर्व्य हैं। चटनी आदि लेह्य हैं। आम, ईख आदि चोष्य हैं। शर्बत, शिकंजी, दूध आदि पेय हैं। इन सबका सम्मिलित नाम आहार है।

उक्त चतुर्विध, पञ्चविध और षड्विध आहारमें पार्थिव, जलीय और तैजस अंशका समावेश है। पार्थिव भोजन भूख-निवारक और बलाधायक है। अदाहप्रद और तैजसप्राय उष्णभोजन अग्निवर्धक तथा बलप्रदायक है। अग्निमान्द्यमें अविनियुक्त जलीय भोजन और जलका सेवन तृप्तिकारक एवं प्राणपोषक है। भूखनिवृत्ति, पुष्टि और तुष्टि भोजनके ये तीन प्रयोजन हैं।

पार्थिव और अग्निवर्धक उष्ण है, अतएव आग्नेय भोजनके द्वारा उदरका आधा भाग, जल और पेय पदार्थोंके द्वारा उदरका चौथाई भाग भरना चाहिये। शेष चौथाई भाग वायुके लिये रिक्त छोड़ देना चाहिये।

तैत्तिरीयोपनिषत्-सम्मत पञ्चीकरणप्रक्रिया और छान्दोग्योपनिषत्-सम्मत त्रिवृत्करणप्रक्रियाका शास्त्रसम्मत सामञ्जस्य इस प्रकार है। पैङ्गलोपनिषत् और त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्के अनुसार 'वाक्' आकाशीय है। अपञ्चीकृत आकाशके चौथाई रजोंऽशसे वाक् नामक कर्मेन्द्रियकी अभिव्यक्ति होती है। वाक्से शब्दोच्चारण भी वाक्को शब्दगुणक आकाशीय सिद्ध करता है। परंतु 'तेजोमयी वाक्' (छा०उ० ६।५।४) इस छान्दोग्यश्रुतिसे वाक्की तेजोमयता भी सिद्ध है। वाक्के अधिदैव पैङ्गलोपनिषदादिने अग्निको स्वीकार किया है। इस दृष्टिसे वाक्की तेजोमयता भी सिद्ध है। आकाशीय भोजनका अभाव होनेसे भी आहार-प्रसंगमें वाक्की तेजोमयता सिद्ध है। तैजस सुवर्णभस्मादि और तैजसप्राय दुग्धादिके सेवनसे वाक्की बलवत्ता अनुभवसिद्ध है।

प्राणकी वायुरूपता स्पर्शगुणयुक्तताके कारण है। यह तथ्य श्रुति-स्मृतिसिद्ध है। आहारप्रसंगमें 'आपोमयः प्राणः' (छा०उ० ६।५।४) कहकर श्रुतिने प्राणकी आपोमयताका प्रतिपादन किया है। इस प्रकार वायुका अन्तर्भाव जलमें श्रुतियोंको अभीष्ट है।

उक्त रीतिसे पार्थिव भोजनके द्वारा कर्मेन्द्रियोंमें पार्थिव गुदा, ज्ञानेन्द्रियोंमें पार्थिव घ्राण, अन्तःकरणमें पार्थिव अहंकार, प्राणोंमें पार्थिव प्राणका पोषण होता है। मलकी निष्पत्ति भी पार्थिव भोजनसे होती है। इसके अतिरिक्त सप्त-धातुओंमें मांस और मेदका पार्थिव भोजनसे पोषण होता है। जलपान और जलीय भोजनके द्वारा कर्मेन्द्रियोंमें वायव्य हाथ और जलीय उपस्थ, ज्ञानेन्द्रियोंमें वायव्य त्वक् और जलीय रसना, अन्तःकरणोंमें वायव्य मन और जलीय चित्त तथा प्राणोंमें वायव्य व्यान और जलीय अपानका पोषण होता है, साथ ही मूत्रादिकी निष्पत्ति होती है। सप्तधातुओंमें जलपान और जलीय भोजनसे रस और रक्तका पोषण होता है। तैजस और तैजसप्राय भोजन करनेपर कर्मेन्द्रियोंमें आकाशीय वाक्, आग्नेय पाद (पाँव)-का, ज्ञानेन्द्रियोंमें आकाशीय श्रोत्र और आग्नेय नेत्रका, अन्तःकरणोंमें आकाशीय ज्ञातृत्व और आग्नेयी बुद्धिका तथा प्राणोंमें आकाशीय समान और आग्नेय उदानका पोषण होता है। तैजस और तैजसप्राय भोजनसे सप्तधातुओंमें मज्जा और अस्थिका पोषण होता है। पार्थिव, जलीय और तैजस—तीनों प्रकारके आहार शुक्रनामक सप्तम धातुके उत्पादक और पोषक हैं।

निसर्गसिद्ध जन्मलब्ध योग्यताके बलपर मरुस्थल, समुद्र और भूतलके विविध प्राणी बिना जलके प्राणयुक्त, बिना अन्नके मनोयुक्त और बिना तैजस आहारके वाग्युक्त दृष्टिगोचर होते हैं। त्रिवृत्करणकी प्रक्रियाके अनुसार

एकके सेवनसे शेषकी पूर्ति निसर्गसिद्ध योग्यताके बलपर सिद्ध है—

तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्तते।
अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरं च यत्॥
(च० सं० सूत्र० ५। १३)

'जिस पदार्थके सेवनसे स्वास्थ्यकी अनुवृत्ति हो अर्थात् स्वास्थ्य बना रहे और जो आहार-विहार अजात (अनुत्पन्न) विकारोंको न होने दे, उनका नित्य सेवन करना चाहिये।'

भौतिक जगत्में पृथ्वी, जल, तेज एक-दूसरेसे संश्लिष्ट हैं। किसी भी वस्तुका स्थूल विभाग पृथ्वीकी प्रधानतासे सम्भव है। किसी भी वस्तुका सूक्ष्म विभाग जलकी प्रधानतासे सम्भव है। किसी भी वस्तुका अति-सूक्ष्म विभाग तेजकी प्रधानतासे सम्भव है। पञ्चीकरणकी प्रक्रियामें किसी भी वस्तुके स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम और कारणसंज्ञक पञ्चविभाग अभीष्ट हैं।

जो अग्नि है, वह पृथ्वी है। जो द्रव है, वह जल है। जो उष्ण है, वह तेज है। जो संचारयुक्त है, वह वायु है। जो सुषिर (सच्छिद्र) है, वह आकाश है। धारण पृथ्वीका कार्य है। पिण्डीकरण जलका कार्य है। प्रकाशन तेजका कार्य है। अवकाशप्रदान आकाशका कार्य है।

सेवित आहारसे मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु, कषाय नामक षड्विध रस निष्पन्न होते हैं। रससे 'शोणित', शोणितसे 'मांस' और मांससे 'मेद' बनता है। मेदसे 'स्नायु'की उत्पत्ति होती है। स्नायुसे 'अस्थि'का उद्भव होता है। अस्थिसे 'मज्जा'की उत्पत्ति होती है। मज्जासे 'शुक्र'का उद्भव होता है। स्त्रीनिष्ठ द्वितीय धातु शोणित और पुरुषनिष्ठ सप्तम धातु शुक्रके साहचर्यसे संतानोत्पत्ति सम्भव है।

आहारसारसर्वस्व शुक्र है। अपने उस शुक्रकी रक्षा करनी चाहिये। कारण यह है कि शुक्रक्षयसे विविध रोगोंकी अथवा मरणकी भी सम्प्राप्ति सम्भव है—

आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः।
क्षयो ह्यस्य बहून् रोगान्मरणं वा नियच्छति॥
(च०सं० नि० ६। ९)

८-चिकित्सा और चिकित्सक-कर्म—शरीरमें विषम हुए सप्तधातुओंकी समता-सम्पादक विविध क्रिया चिकित्सा है। विविध धातुओंको सम करना चिकित्सकोंका कर्म है—

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां स्मृतम्॥
(च० सं० सूत्र० १६। ३४)

शरीरमें धातुओंकी विषमता न होने देना और सप्तधातुओंका शरीरानुबन्ध (देहसम्बन्ध) बनाये रखना चिकित्साकर्मका उद्देश्य है—

कथं शरीरे धातूनां वैषम्यं न भवेदिति।
समानां चानुबन्धः स्यादित्यर्थं क्रियते क्रिया॥
(च०सं० सूत्र० १६। ३५)

धातुवैषम्यके कारणोंको रोकना और धातुसाम्य-सम्पादक पदार्थोंका सेवन करना स्वास्थ्यके लिये आवश्यक है—

त्यागाद् विषमहेतूनां समानां चोपसेवनात्।
विषमा नानुबध्नन्ति जायन्ते धातवः समाः॥
(च०सं० सूत्र० १६। ३६)

जिन कारणोंसे धातु विषम होते हों उनका त्याग करनेसे और जिनसे धातु सम होते हों उनके निरन्तर सेवन करनेसे विषम धातुओंकी निरन्तर उत्पत्तिका नाश हो जाता है। फलतः शरीरमें सभी धातुएँ संतुलित मात्रारूप समावस्थामें विद्यमान होती हैं।

देशविरुद्ध, कालविरुद्ध, अग्निविरुद्ध, मात्राविरुद्ध (समानमात्रामें मधु और घृत), सात्म्य (स्वभावके अनुकूल)-विरुद्ध, वातादिविरुद्ध, संस्कारविरुद्ध, शीत-उष्णवीर्य-विरुद्ध, कोष्ठविरुद्ध, अवस्थाविरुद्ध, क्रमविरुद्ध (अत्यन्त भूख लगनेपर भोजन, मलमूत्र विसर्जनके बिना भोजन), परिहारविरुद्ध (गरिष्ठ आहारके बाद उष्णवीर्य पदार्थका सेवन), उपचारविरुद्ध (घृतादि स्निग्ध वस्तुके सेवनके अनन्तर शीतल जलसेवन), पाकविरुद्ध (अपक्व, अतिपक्व, दुष्ट दारुसे पकाया भोजन), संयोगविरुद्ध (दुग्धके साथ अम्लरसका सेवन), हृदयविरुद्ध (अरुचिकर), सम्पद्विरुद्ध (विकृत, अपूर्ण, शुष्करस) और विधिविरुद्ध (दोषदृष्टियुक्त व्यक्तियोंके सम्मुख आहार) अहितकर होनेसे त्याज्य होते हैं—

यच्चापि देशकालाग्निमात्रासात्म्यानिलादिभिः।
संस्कारतो वीर्यतश्च कोष्ठावस्थाक्रमैरपि॥
परिहारोपचाराभ्यां पाकात् संयोगतोऽपि च।
विरुद्धं तच्च न हितं हृत्सम्पद्विधिभिश्च यत्॥

(च० सं० सू० २६।८६-८७)

उत्तम चिकित्सक देश-कालादिविरुद्ध आहारसे रोगीको दूर रखते हैं। स्वास्थ्यलाभकी इच्छावाले स्वयं ही देश-कालादिविरुद्ध आहारका सेवन नहीं करते।

९-चिकित्साके चार चरण—सभी प्रकारके विकारों (रोगों)-की शान्तिके लिये गुणवान् चिकित्सक, गुणयुक्त औषधयुक्त द्रव्य, गुणसम्पन्न उपस्थाता (परिचायक) एवं गुणवान् रोगीका होना परमावश्यक है—

भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम्।
गुणवत्कारणं ज्ञेयं विकारव्युपशान्तये॥

(च० सं० सू० ९।३)

१०-चिकित्सा—धातुओंके विकृत अर्थात् व्यक्तिके रोगी हो जानेपर प्रशस्त वैद्य (गुणवान् वैद्य) आदि चारों पादों (वैद्य, द्रव्य, परिचारक और रोगी)-की धातुओंको समान करनेके लिये जो क्रिया की जाती है, उसे चिकित्सा कहते हैं—

चतुर्णां भिषगादीनां शस्तानां धातुवैकृते।
प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्था चिकित्सेत्यभिधीयते॥

(च० सं० सू० ९।५)

वात, पित्त, कफ तथा रस, रक्त आदि सप्तधातुओंकी विकृति (विषम अवस्थामें स्थिति)-को विकार कहते हैं। वातादि त्रिविध दोषों तथा रसादि सप्तधातुओंकी समावस्थाको प्रकृति कहते हैं। दूसरे शब्दोंमें आरोग्य (नीरोगता)-की सुख और विकृति (विकार)-की दुःख संज्ञा है।

विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते।
सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च॥

(च० सं० सू० ९।४)

१०-शुद्ध चिकित्सा—वाग्भटके अनुसार जो चिकित्सा दोषका शमनकर उसे साम्यावस्थामें ले आये अर्थात् रोगका शमन कर दे तथा अन्य रोग और दोषको उत्पन्न न करे वह शुद्ध चिकित्सा है—

प्रयोगः शमयेद् व्याधिं योऽन्यमन्यमुदीरयेत्।
नाऽसौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद् यो न कोपयेत्॥

(अष्टाङ्गहृदय सूत्र० १३।१६)

जो प्राप्त रोग-दोषका निवारण न कर सके और विविध रोग-दोषोंको उत्पन्न भी कर दे, वह तो चिकित्साके नामपर प्राणघातक प्रयोग ही है।

१२-चिकित्सकके चार गुण—शास्त्रका सर्वतोमुखी ज्ञान, चिकित्सा-कर्मका बार-बार प्रत्यक्ष परिज्ञान, दक्षता और पवित्रता—ये चिकित्सकके चार गुण हैं—

श्रुते पर्यवदातत्वं बहुशो दृष्टकर्मता।
दाक्ष्यं शौचमिति ज्ञेयं वैद्ये गुणचतुष्टयम्॥

(च० सं० सू० ९।६)

उत्तम चिकित्सक बननेके इच्छुक व्यक्तिको चिकित्सा तथा तत्सम्बन्धित शास्त्रोंमें, उसके अर्थ भलीभाँति समझनेमें, शास्त्रीय विधियोंकी प्रवृत्तिमें और औषधि-निर्माण, पञ्चकर्मादि, प्रयोगादिरूप चार विधियोंमें प्रवृत्त वैद्यको 'प्राणाभिसर' कहते हैं—

तस्माच्छास्त्रेऽर्थविज्ञाने प्रवृत्तौ कर्मदर्शने।
भिषक् चतुष्टये युक्तः प्राणाभिसर उच्यते॥

(च० सं० सू० ९।१८)

निदानरूप हेतुमें, लक्षणरूप लिङ्गमें, रोगोंको शान्त करनेमें और पुनः उत्पन्न न होने देनेमें जो पूर्ण बोध रखता है, वह सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक ही 'राजवैद्य' कहा जाता है—

हेतौ लिङ्गे प्रशमने रोगाणामपुनर्भवे।
ज्ञानं चतुर्विधं यस्य स राजार्हो भिषक्तमः॥

(च० सं० सू० ९।१९)

१३-स्वस्थके लक्षण—जिसके जीवनमें दोष, अग्नि, धातु, मलक्रिया सम हों तथा जो निर्मल शरीर, प्रसन्न इन्द्रिय और मनसे सम्पन्न हो, वह स्वस्थ है—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

(सु० सं० सू० १५।४०)

१४-स्वास्थ्यप्रद उत्तम वैद्यके लक्षण—शस्त्र, शास्त्र और सलिल (जल) अपने गुण और दोषकी प्रवृत्तिके लिये पात्र (प्रयोक्ता और बरतन)-की अपेक्षा रखते हैं।

अतः चिकित्साकर्ममें प्रवृत्त होनेके पूर्व चिकित्सक अपनी प्रज्ञाको प्रशस्त रखे—

शस्त्रं शास्त्राणि सलिलं गुणदोषप्रवृत्तये।
पात्रापेक्षीण्यतः प्रज्ञां चिकित्सार्थं विशोधयेत्॥

(च० सं० सू० ९।२०)

विद्या (अपने विषयका ज्ञान), वितर्क, विज्ञान (प्रयोगविधिकी जानकारी), स्मृति, तत्परता और चिकित्सारूप क्रिया—ये छः गुण जिस चिकित्सकमें होते हैं, वह सभी साध्य रोगोंकी चिकित्सामें सफल होता है—

विद्या वितर्को विज्ञानं स्मृतिस्तत्परता क्रिया।
यस्यैते षड्गुणास्तस्य न साध्यमतिवर्तते॥

(च० सं० सू० ९।२१)

विद्या, मति, कर्मदृष्टि (चिकित्साकर्मके प्रति एकाग्रता), अभ्यास, सिद्धि (चिकित्सामें सफलतादि) और विशेषज्ञका समाश्रय—इन छः गुणोंमेंसे प्रत्येक गुण मनुष्यको योग्य वैद्य बनानेके लिये पर्याप्त है, यानी समर्थ है।

विद्या मतिः कर्मदृष्टिरभ्यासः सिद्धिराश्रयः।
वैद्यशब्दाभिनिष्पत्तावलमेकैकमप्यतः ॥

(च० सं० सू० ९।२२)

जिसमें उक्त विद्यादि सभी शुभ गुण होते हैं, वह वैद्य शब्दकी योग्यताका निर्वाह करता हुआ प्राणिमात्रको सुख देनेवाला होता है—

यस्य त्वेते गुणाः सर्वे सन्ति विद्यादयः शुभाः।
स वैद्यशब्दं सद्भूतमर्हन् प्राणिसुखप्रदः॥

(च० सं० सू० ९।२३)

वस्तुमात्रको प्रकाशित करनेके लिये शास्त्र ज्योतिःस्वरूप है और अपनी शुद्ध बुद्धि दृष्टि (नेत्र)-रूप है। शास्त्र और बुद्धिसे सम्पन्न वैद्य चिकित्सा करता हुआ अपराध (भूल) नहीं कर सकता—

शास्त्रं ज्योतिः प्रकाशार्थं दर्शनं बुद्धिरात्मनः।
ताभ्यां भिषक् सुयुक्ताभ्यां चिकित्सन् नापराध्यति॥

(च० सं० सू० ९।२४)

मैत्री, रोगीके प्रति कारुण्य, साध्य और संयमी रोगीमें प्रीति, असाध्य और असंयमी रोगीकी उपेक्षा—ये चतुर्विध वैद्यवृत्तियाँ हैं।

मैत्री कारुण्यमार्तेषु शक्ये प्रीतिरुपेक्षणम्।
प्रकृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यवृत्तिश्चतुर्विधा॥

(च० सं० सू० ९।२६)

उत्तम चिकित्सक प्रज्ञा और प्राणशक्तिसे सम्पन्न होते हैं तथा प्राणशक्ति और प्रज्ञाके विशेषज्ञ होते हैं। यही कारण है कि चिकित्सकको वैद्य, कविराज और प्राणाचार्य कहा जाता है। उन्हें सप्तधातुमय शरीरका और शरीरान्तर्गत नाडियोंका भी सम्यक्-ज्ञान होता है। स्थूल शरीरमें सूक्ष्म शरीरकी और सूक्ष्म शरीरमें कारण शरीरकी अभिव्यञ्जकता बनी रहे, कारण शरीर जीवका अभिव्यञ्जक बना रहे, जीव शिवसंज्ञक सर्वेश्वरसे तादात्म्यापत्ति लाभ कर सके, इन तथ्योंके जानकार वैद्य ब्रह्मातुल्य पूज्य हैं।

स्थूलदेहगत वात, पित्त और कफके स्वरूप, स्वभाव, प्रभाव तथा इनके शमनके उपायोंका मर्मज्ञ वैद्यको होना चाहिये। सप्तधातुकी विकृति, संस्कृति आदिका विज्ञान भी वैद्यके लिये आवश्यक है। पृथ्वी और पार्थिव द्रव्योंका, जल और जलीय पदार्थोंका, तेज और तैजस तत्त्वोंका तथा वायु और वायव्य वस्तुओंका परिज्ञाता एवं इनके साधर्म्य-वैधर्म्यके विज्ञाता उत्तम वैद्य हैं।

१५-चिकित्साकी दार्शनिक आधारशिला—रोग और स्वास्थ्यका आश्रय स्थूल, सूक्ष्म, कारण—त्रिविध शरीरोंसे युक्त जीवसंज्ञक आत्मा है। कार्यकारणसंघातरूप शरीर, कर्ता-भोक्ता जीव, कारणात्मक सूक्ष्म शरीर, कारणगत विविध चेष्टा तथा प्रारब्ध या अनुग्राहक देवरूप दैव—ये रोग और स्वास्थ्यके पञ्चविध हेतु हैं। आत्मा निर्विकार है। शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरणके आध्यासिक योगसे उसमें कर्तृत्व और भोक्तृत्व है। **'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः'** (कठोपनिषद् १।३।४)।

वात, पित्त, कफजन्य शरीर-रोगोंकी प्राप्ति होती है। रजोगुण और तमोगुणके कारण काम, क्रोध और लोभादिसंज्ञक मानस रोगोंकी प्राप्ति होती है—

वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शारीरो दोषसंग्रहः।
मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च॥

(चरक० सू० १।५७)

वायु स्वयं देव हैं अथवा वायुके देव सूर्य हैं। पित्तके

देव अग्नि हैं। कफके देव सोम हैं। सूर्य, अग्नि और सोमके कुपित होनेसे रोगोंकी और प्रसन्न होनेसे स्वास्थ्यकी सिद्धि सम्भव है। चोट लगनेसे जो व्रण-वेदनादिकी प्राप्ति होती है, वह आघातज रोग है। आघातज रोग त्वगादि स्थूल शरीरान्तर्गत धातुओंको दोषयुक्त बनाता है। पञ्चभूतोंमें आकाश पृथिव्यादि भूतचतुष्टयका धारक है। पृथ्वी और जलके योगसे कफ बनता है। तेजके योगसे पित्त बनता है। वायु स्वयं वात है। पञ्चभूत और पञ्चीकरणकी प्रक्रिया तैत्तिरीयोपनिषत्के अनुसार है। छान्दोग्योपनिषत्के अनुसार अन्न (पृथ्वी), अप् (जल) और तेजोरूप त्रिभूतसे त्रिवृत्करणकी प्रक्रिया सधती है। अन्नमें आकाशका अन्तर्भाव होता है। पृथ्वी और आकाश दोनों धारक हैं। जलमें सोम और वायुका अन्तर्भाव होता है। सोम और जल दोनों ही शीतल हैं। जलका तरंगायित रहना, प्रवाहयुक्त रहना वायुयोगसे सम्भव है। लोकमें जलवायुका युगवत् प्रयोग भी उक्त तथ्यको सिद्ध करता है। तेजमें अग्नि और सूर्यका अन्तर्भाव है। इस प्रकार कफ, वात और पित्त—अन्न, जल और तेजःक्रमसे सिद्ध हैं।

बार-बार भीगते रहनेपर वायुरोगकी प्राप्ति भी जल और वायुकी तादात्म्यापत्तिको सिद्ध करती है। वायुरोगकी घनता व्यक्तिको अजगर-सरीखा अन्न (पृथ्वी)-वत् जडप्राय बना देती है। इस प्रकार जलवायु और पृथ्वीकी एकरूपता भी कालक्रमसे सध जाती है।

छान्दोग्योपनिषत्के छठे अध्यायमें अन्नको कृष्ण, जलको श्वेत और तेजको रक्तवर्ण माना गया है। वायुरोगकी घनता व्यक्तिको अन्नसंज्ञक पृथ्वीतुल्य कृष्ण बना देती है। कफ श्वेत और पित्त रक्तवर्णका होता है।

दर्शनप्रस्थानमें सत्त्व, रजस् और तमस् त्रिगुण हैं। त्रिगुणकी साम्यावस्था प्रकृति है। प्रकृतिकार्य आकाशादि कार्यप्रपञ्च विकृति है। चिकित्साप्रस्थानमें वात, पित्त, कफरूप त्रिधातुकी साम्यावस्था तथा तत्सम्भव स्वास्थ्य और सुख प्रकृति है। त्रिधातुकी विषमावस्था एवं तत्सम्भव रोग और दुःख विकृति है।

दोनों प्रस्थानोंमें सामञ्जस्य इस प्रकार है—

आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी पञ्चभूत हैं। शरीर पाञ्चभौतिक है। आकाश और तेज सत्त्वप्रधान है। वायु और जल रजःप्रधान है। पृथ्वी तमःप्रधाना है। वायुके योगसे वात, तेजके योगसे पित्त और जल तथा पृथ्वीके योगसे कफकी सिद्धि सम्भव है।

विकारः प्रकृतिश्चैव द्वयं सर्वं समासतः।
तद्धेतुवशगं हेतोरभावान्नानुवर्तते॥
(च० सं० नि० ८।४१)

चरकसंहिताने निज, आगन्तुक और मानस—त्रिविध रोग माना है। वातज, पित्तज और कफज रोगोंको निज कहा गया है। अग्निदाह, आघात, विषाक्त भोजनादिसेवन और भूतावेशादिक आगन्तुक माने गये हैं। इष्टकी अप्राप्ति और इष्टनिवृत्ति तथा अनिष्टसम्प्राप्तिसम्भव वेदनाको मानस माना गया है। चन्दनमें सुगन्धि स्वाभाविक है। मलिन द्रव्यके संसर्गसे दुर्गन्धि है। आगन्तुक दुर्गन्धिका निवारण कर देनेपर स्वभावसिद्ध सुगन्धि अभिव्यक्त हो जाती है। इसी प्रकार स्वास्थ्य आत्मपरम्परा सिद्ध होनेसे स्वाभाविक है। रोग अविद्या, काम, कर्मपरम्परा सिद्ध होनेसे आगन्तुक है। आगन्तुक रोगकी निवृत्तिसे स्वतःसिद्ध स्वास्थ्यकी अभिव्यक्ति सम्भव है।

वेदान्तप्रस्थानमें स्थूल, सूक्ष्म शरीर और संसारकी पाञ्चभौतिकता सिद्ध है। आकाश, वायु, तेज, बल और पृथ्वीके क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध गुण हैं। मनसे संकल्प, बुद्धिसे निश्चय, चित्तसे स्मरण, अहंसे गर्व और अन्तःकरणसे ज्ञातृत्व निष्पन्न होता है।

उत्तम चिकित्सक उपयुक्त पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश, उपयुक्त गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द तथा उपयुक्त संकल्प, निश्चय, स्मरण, गर्व और ज्ञातृत्वसे विविध रोगोंका निवारण करते हैं।

परो भूतदया धर्म इति मत्वा चिकित्सया।
वर्तते यः स सिद्धार्थः सुखमत्यन्तमश्नुते॥
(चरक सं० चिकित्सा० १।४।६२)

'प्राणिमात्रपर दया करना ही सर्वोत्तम धर्म है।' ऐसा सोचकर जो वैद्य चिकित्सा-क्षेत्रमें प्रवृत्त होता है, वही सिद्धार्थ है, वही वास्तविक सुख और सुयशको प्राप्त करता है।

आयुर्वेदमें धर्म और दर्शन-संदर्भ

(अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीचिन्मयानन्द सरस्वतीजी महाराज)

१. षड्दर्शनका आयुर्वेदमें महत्त्वपूर्ण स्थान—वेदोंका तात्पर्य धर्म और ब्रह्ममें संनिहित है। 'धर्म' यज्ञादिरूप होनेसे भाव अर्थात् अनुष्ठेय है। 'ब्रह्म' सच्चिदानन्दस्वरूप होनेसे भूत अर्थात् सिद्ध है। आयुर्वेद उपवेद होनेसे धर्म और ब्रह्ममूलक चिकित्सा-पद्धति है। यह जीवोंके पूर्वजन्म, पुनर्जन्म, उत्क्रमण और अधोगतिको स्वीकार करनेवाली तथा वेदोंको प्रमाण माननेवाली और ईश्वरभक्तिका प्रतिपादन करनेवाली चिकित्सा-पद्धति है। यह वैशेषिकोंके द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवायरूप षड्विध भावपदार्थोंको और नैयायिकोंके प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम और उपमानरूप चतुर्विध प्रमाणोंको तथा वादके चौवालीस प्रभेदोंको (च० सं० वि० ८) एवं सांख्योंके त्रिगुणात्मक प्रधान (अव्यक्त, प्रकृति) और महत्, अहम्, मन, दशविध इन्द्रिय तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धसंज्ञक पञ्चतन्मात्राओंको एवं आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वीसंज्ञक पञ्चमहाभूतरूप चतुर्विंशति अचित्-अनात्म-वस्तुओंको और अविक्रिय विज्ञानात्मा पुरुषसंज्ञक चिद्वस्तुको स्वीकार करनेवाली चिकित्सा-पद्धति है—

सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्।
ह्रासहेतुर्विशेषश्च प्रवृत्तिरुभयस्य तु॥

(च० सं० सूत्र० १। ४४)

अर्थात् सदा सभी भावोंकी वृद्धि करनेवाला सामान्य होता है और ह्रास (कम करनेवाले)-का कारण विशेष होता है। इस शास्त्रमें दोनोंकी प्रवृत्ति की जाती है अर्थात् इन दोनोंकी प्रवृत्ति (क्रिया)-से दोष, धातु एवं मलोंकी वृद्धि और ह्रास किया जाता है।

पुनश्च धातुभेदेन चतुर्विंशतिकः स्मृतः।
मनो दशेन्द्रियाण्यर्थाः प्रकृतिश्चाष्टधातुकी॥

(च० सं० शारीरस्थान १। १७)

निरन्तरं नावयवः कश्चित् सूक्ष्मस्य चात्मनः॥

(च० सं० सूत्र० ११। १०)

अर्थात् पुरुष धातुभेदसे २४ तत्त्वोंका माना जाता है। ये २४ तत्त्व हैं—मन, दस इन्द्रियाँ; अर्थ—शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध और आठ धातुएँ—(१) अव्यक्त, (२) महान्, (३) अहंकार, (४) आकाश, (५) वायु, (६) अग्नि, (७) जल तथा (८) पृथिवी तन्मात्राएँ इनसे युक्त प्रकृति।

निष्क्रियं च स्वतन्त्रं च वशिनं सर्वगं विभुम्।
वदन्त्यात्मानमात्मज्ञाः क्षेत्रज्ञं साक्षिणं तथा॥

(च० सं० शारीरस्था० १। ५)

आत्माको जाननेवाले ज्ञानी पुरुष आत्माको (क्रियाशून्य) स्वतन्त्र, वशी (जितेन्द्रिय), सर्वत्र जानेवाला, व्यापक, क्षेत्रज्ञ (शरीरको भलीभाँति समझनेवाला), साक्षी (संसारमें उत्पन्न होनेवाली वस्तुओंको देखनेवाला) है, ऐसा कहते हैं। यहाँ 'तथा' शब्दसे आत्माको निर्विकार भी माना जाता है।

योगियोंके अष्टाङ्गयोग और अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेशसंज्ञक पञ्चविध क्लेश, शुक्ल-कृष्ण-मिश्रसंज्ञक त्रिविध कर्म, सुख-दुःख-मोहसंज्ञक त्रिविध विपाक और अन्तःकरणनिष्ठ संस्कारसंज्ञक आशयसे अपरामृष्ट (नित्यमुक्त) पुरुषविशेषरूप सर्वेश्वरको स्वीकार करनेवाली चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद है।

आयुर्वेद वेदान्तशैलीमें देवताओंको विग्रहयुक्त तथा सर्वेश्वरको धन्वन्तरि-शिवादिरूपोंमें अवतारयुक्त माननेवाली एवं आत्माकी ब्रह्मरूपता और सर्वरूपताको स्वीकार करनेवाली चिकित्सा-पद्धति है। आयुर्वेद वैदिक प्रस्थानके अनुरूप धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थचतुष्टयको माननेवाली चिकित्सा-पद्धति है।

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्॥
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च।

(च० सं० सूत्र० १। १५-१६)

धर्म-अर्थ-काम-मोक्षका आरोग्य ही प्रधान कारण है। रोग उस सुखमय श्रेय और जीवनका अपहर्ता है।

योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम्।
मोक्षे निवृत्तिर्निःशेषा योगो मोक्षप्रवर्तकः॥
आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानां संनिकर्षात् प्रवर्तते।
सुखदुःखमनारम्भादात्मस्थे मनसि स्थिरे॥
निवर्तते तदुभयं वशित्वं चोपजायते।
सशरीरस्य योगज्ञास्तं योगमृषयो विदुः॥

आवेशश्चेतसो ज्ञानमर्थानां छन्दतः क्रिया।
दृष्टिः श्रोत्रं स्मृतिः कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम्॥
इत्यष्टविधमाख्यातं योगिनां बलमैश्वरम्।
शुद्धसत्त्वसमाधानात् तत् सर्वमुपजायते॥
(च० सं० शारीरस्थान १। १३७—१४१)

—इनका भाव यह है कि योग और मोक्षमें सभी प्रकारकी वेदनाओंकी निवृत्ति हो जाती है। मोक्ष होनेपर वेदनाओंका समूल विनाश हो जाता है और योगद्वारा मानव मोक्षमार्गमें प्रवृत्त होता है। अतएव योगको मोक्षका प्रवर्तक कहा गया है। आत्माका मनसे, मनका इन्द्रियोंसे और इन्द्रियोंका अपने-अपने शब्द, स्पर्शादि विषयोंसे जब संयोग होता है, तब सुख तथा दुःखकी प्राप्ति होती है। इसके विपरीत जब आत्मामें मन स्थिरभावसे रहता है, तब सुख-दुःखकी प्रतीति नहीं हो पाती। अतएव सुख-दुःखकी निवृत्ति हो जाती है तथा शरीरधारी पुरुष वशी हो जाता है। योगको जाननेवाले महर्षि इस स्थितिको 'योग' नामसे जानते हैं। दूसरेके शरीरमें प्रवेश कर जाना, दूसरेके मनकी बात जान लेना, सभी प्रकारके विषयोंको जान लेनेकी शक्ति, किसी भी कार्यमें स्वच्छन्द होकर प्रवृत्त होनेकी क्षमता, दृष्टिकी विशेष शक्ति, श्रवणकी विशेष शक्ति आदि—इस प्रकार योगियोंमें होनेवाले बलके आठ भेद होते हैं। इनकी समुपलब्धि शुद्ध सत्त्वकी सुस्थिर प्रतिष्ठासे सम्भव है।

मोक्षो रजस्तमोऽभावाद् बलवत्कर्मसंक्षयात्।
वियोगः सर्वसंयोगैरपुनर्भव उच्यते॥
(च० सं० शारीरस्थान १। १४२)

अर्थात् रजोगुण और तमोगुणके अभाव हो जानेसे तथा पुनर्भवमें हेतुभूत कर्मोंका क्षय हो जानेसे और दुःख एवं दुःखहेतुओंके सर्वविध संयोगोंका वियोग मोक्षसंज्ञक अपुनर्भवरूप योग कहा जाता है।

शुद्धसत्त्वस्य या शुद्धा सत्या बुद्धिः प्रवर्तते।
यया भिनत्त्यतिबलं महामोहमयं तमः॥
सर्वभावस्वभावज्ञो यया भवति निःस्पृहः।
योगं यया साधयते सांख्यः सम्पद्यते यया॥
यया नोपैत्यहङ्कारं नोपास्ते कारणं यया।
यया नालम्बते किञ्चित् सर्वं संन्यस्यते यया॥
याति ब्रह्म यया नित्यमजरं शान्तमव्ययम्।
विद्या सिद्धिर्मतिर्मेधा प्रज्ञा ज्ञानं च सा मता॥
लोके विततमात्मानं लोकं चात्मनि पश्यतः।
परावरदृशः शान्तिर्ज्ञानमूला न नश्यति॥
पश्यतः सर्वभावान् हि सर्वावस्थासु सर्वदा।
ब्रह्मभूतस्य संयोगो न शुद्धस्योपपद्यते॥
नात्मनः करणाभावाल्लिङ्गमप्युपलभ्यते।
स सर्वकरणायोगान्मुक्त इत्यभिधीयते॥
विपापं विरजः शान्तं परमक्षरमव्ययम्।
अमृतं ब्रह्म निर्वाणं पर्यायैः शान्तिरुच्यते॥
(च० सं० शारीरस्थान ५। १६—२३)

भाव यह है कि जिससे वह सर्वभावोंके स्वभावको जानता है, जिससे निःस्पृह रहता है, जिससे वह योगकी सिद्धि करता है, जिससे वह सांख्यतत्त्वका ज्ञानी हो जाता है, जिससे वह अहंकारको प्राप्त नहीं करता, जिससे वह जन्म-मरणरूप कारणोंकी उपासना नहीं करता, जिससे वह राग-द्वेषादि किसीका आश्रय नहीं लेता, जिससे वह सभी सांसारिक वस्तुओंका परित्याग कर देता है, जिससे नित्य-अजर-शान्त तथा अक्षरब्रह्मको प्राप्त किया जा सकता है, उसी सत्या बुद्धिको सिद्धि, मति, मेधा, प्रज्ञा और ज्ञान माना गया है। सम्पूर्ण संसारमें आत्माको विस्तृत और सम्पूर्ण संसारको अपनेमें देखनेवाले तत्त्वज्ञकी ज्ञानमूला शान्ति नष्ट नहीं होती। सदैव सब अवस्थाओंमें सभी शरीरगत भावोंको समानरूपसे देखते हुए ब्रह्मभूत जीवन्मुक्त अतएव शुद्धचित्त महापुरुषका देहेन्द्रियादिके साथ सम्बन्ध नहीं होता। अविक्रिय विज्ञानघनताके बोधसे लिङ्गविमुक्त 'जीवन्मुक्त' ऐसा कहा जाता है। विपाप, विरजस्, शान्त, पर, अक्षर, अव्यय, अमृत, ब्रह्म, निर्वाण और शान्ति—इन पर्यायोंद्वारा मोक्षका परिचय दिया जाता है।

२. आयुर्वेदमें पञ्चभूत, त्रिगुण और त्रिदोषका वेदान्तसम्मत प्रतिपादन—चरकने 'सर्वं द्रव्यं पाञ्चभौतिकम्' (च० सं०) 'महाभूतानि खं वायुरग्निरापः क्षितिस्तथा' (च० सं० शारीरस्थान १। २७) आदि वचनोंके अनुसार सभी द्रव्योंकी त्रिगुणमयता और पाञ्चभौतिकताका प्रतिपादन कर वात, पित्त, कफरूप त्रिधातुसंज्ञक त्रिदोषके साम्य और शमनका पथ प्रशस्त किया है।

वेदान्तप्रस्थानके अनुरूप ही चरकसंहिताने सूत्रस्थानान्तर्गत इन्द्रियोपक्रमणीयाध्याय ८ में इन्द्रियोंकी भौतिकता और मनकी इन्द्रियपरताका प्रतिपादन किया है। 'खं श्रोत्रे' (च०

सं० सूत्र० ८। १४) आदि वचनोंके अनुसार '**श्रोत्र**' (कान) आकाशीय है, शब्दगुणग्राहक है, अतएव शब्दज्ञानमें हेतु है। '**त्वक्**' वायव्य है, स्पर्शगुणग्राहक है, अतएव स्पर्शज्ञानमें हेतु है। '**नेत्र**' तैजस हैं, रूपगुणग्राहक हैं, अतएव रूपज्ञानमें हेतु हैं। '**रसना**' जलीय है, रसगुणकी ग्राहिका है, अतएव रसज्ञानमें हेतु है। '**घ्राण**' पार्थिव है, गन्धगुणग्राहक है, अतएव गन्धज्ञानमें हेतु है।

उक्त रीतिसे श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना और नासिका सूक्ष्म शरीरके अन्तर्गत पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ हैं। 'ग्राह्य-ग्राहकभाव साजात्यमें होता है, वैजात्यमें नहीं।' इस नियमके अनुसार आकाशीय गोत्रसे आकाशीय शब्दग्रहण आदि उपयुक्त है। सूक्ष्म शरीरके अन्तर्गत वाक्, पाणि (हाथ), पाद (पाँव), उपस्थ (लिङ्ग) और वायु (गुदा) नामक पञ्चकर्मेन्द्रियाँ हैं। वाक्से आकाशीय शब्दका विसर्जन होता है। पाणिसे वायव्य स्पर्शका विसर्जनरूप प्रदान होता है। पादसे तैजस विसर्जनरूप गन्तव्यतक गमन होता है। उपस्थसे वारुणरस विसर्जनरूप रतिसम्पादन होता है। गुदासे पार्थिव गन्ध एवं गन्धयुक्त मलका विसर्जन होता है।

सूक्ष्म शरीरके अन्तर्गत प्राण, अपान, समान, उदान और व्यानसंज्ञक पञ्चप्राण प्रतिष्ठित हैं। मुख-नासिकाके मध्य तथा हृदय-नाभिमण्डल और पादाङ्गुष्ठ-**प्राण** स्थान हैं। गुदा-मेढ्र-ऊरु और जानु-**अपान** स्थान हैं। सर्वशरीरमें **समान**की स्थिति है। सर्वसंधियोंमें तथा पाँव-हाथमें **उदान**की स्थिति है। श्रोत्र, ऊरु, कटि, गुल्फ, स्कन्ध और गलामें **व्यान**की स्थिति है। प्राणसे उच्छ्वास, अपानसे श्रवण, समानसे समीकरण, उदानसे ग्रहण और व्यानसे उन्नयन सम्भव है। प्राणसे उच्छ्वास और समीकृत रसादिका पृथक्करण मान्य है। अपानसे श्रवण और मूत्रादि-विसर्जन मान्य है। उदानसे उद्गिरण और उन्नयन सम्भव है। समानसे शरीर-पोषण और समीकरण सम्भव है। व्यानसे प्राण-अपानादि चेष्टारूप ग्रहण सम्भव है।

नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जयसंज्ञक पञ्च उपप्राण हैं। उद्गारादि क्रिया-सम्पादन नागसे होता है। अक्ष्यादि-निमीलन कूर्मसे होता है। भूख-प्यास-सम्पादन कृकरसे सम्भव है। निद्रादिसम्पादन देवदत्तसे सम्भव है। मृत गात्रकी शोभादि धनञ्जयसे सम्भव है।

सूक्ष्म शरीरके अन्तर्गत अन्तःकरण (ज्ञातृत्व), मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्काररूप प्रत्यक्-करणोंके पञ्चप्रभेद त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्को मान्य हैं। अन्तःकरणसे ज्ञान, मनसे संकल्प, बुद्धिसे निश्चय, चित्तसे अनुसंधान और अहंकारसे अभिमानका सम्पादन सम्भव है। ज्ञातृत्व (अन्तःकरण), समानवायु, श्रोत्रेन्द्रिय, वागिन्द्रिय और शब्दगुणकी आकाशमें स्थिति है अर्थात् ये आकाशीय हैं। मन, व्यानवायु, त्वक्, हस्तेन्द्रिय तथा स्पर्शकी वायुमें स्थिति है, अर्थात् ये वायव्य हैं। बुद्धि, उदानवायु, चक्षु और पाद तथा रूप अग्निमें स्थित हैं अर्थात् ये तैजस हैं। चित्त, अपानवायु, जिह्वा, उपस्थ तथा रसकी जलमें स्थिति है अर्थात् ये वारुण हैं। अहंकार, प्राणवायु, घ्राण, गुदा और गन्धगुण पृथिवीमें स्थित हैं, अर्थात् ये पार्थिव हैं। आकाशीय समानवायुके अन्तर्गत कृकर नामक उपप्राण मान्य है। वायव्य व्यानान्तर्गत धनञ्जय नामक उपप्राण मान्य है। तैजस उदानमें देवदत्त नामक उपप्राणका अन्तर्भाव है। जलीय अपानमें कूर्म नामक उपप्राणका अन्तर्भाव है। पार्थिव प्राणान्तर्गत नाग नामक उपप्राण मान्य है।

इस प्रकार पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पञ्चभूत हैं। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पञ्च-विषय हैं। ज्ञातृत्व, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—ये पञ्चविध अन्तःकरण हैं। ज्ञान, संकल्प, निश्चय, अनुसंधान और अभिमान—ये अन्तःकरण पञ्चकके पञ्चविध विषय हैं।

सुषुम्णा, इडा, पिंगला, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, पयस्विनी, अलम्बुषा और कौशिकी आदि कन्दसमुद्भूता प्रमुख दस नाडियाँ हैं। गुदाके पृष्ठभागमें कन्दमध्यस्थ मूर्धापर्यन्त पद्मसूत्रसदृश वीणा-दण्डतुल्य ऋजु-विद्युद्वर्ण **सुषुम्णा** है। सुषुम्णाके वामभागमें वामनासापुटपर्यन्त इडा नामकी चन्द्रनाडी है। सुषुम्णाके दक्षिणभागमें दक्षिण नासापुटपर्यन्त **पिङ्गला** नामकी सूर्यनाडी है। चन्द्र और सूर्य कालके धारक हैं। सुषुम्णा कालभोक्त्री है। इडाके पृष्ठभागसे सव्य (वाम) नेत्रपर्यन्त **गान्धारी** है। वामपादाङ्गुष्ठपर्यन्त **हस्तिजिह्वा** है। पिङ्गलाके पृष्ठभागमें स्थित दक्षिण श्रोत्र और नेत्रपर्यन्त **पूषा** है। गान्धारी और सरस्वतीके मध्य पादाङ्गुष्ठसे याम्य (दक्षिण) कर्णान्त **पयस्विनी** है। पायुमूलसे नीचे और श्रोत्रपर्यन्त **अलम्बुषा** है। कन्दसे पादाङ्गुष्ठपर्यन्त **कौशिकी** है।

उक्त रीतिसे पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च प्राण, पञ्च उपप्राण और अन्तःकरण—इस पञ्चकका समुदाय सूक्ष्म शरीर है। काम और कर्मकी स्थिति सूक्ष्म शरीरके अन्तर्गत है।

पञ्चभूतोंमें पृथिवी और जलके योगसे कफकी निष्पत्ति होती है। तेजसे पित्तकी अभिव्यक्ति होती है। वायुकी विकृतिसे वायुरोगकी अभिव्यक्ति होती है। भूतचतुष्टयका आश्रय होनेसे देहगत आकाश कफ, पित्त और वात—इन तीनोंका आश्रय है। कफ और लोभका, पित्त और क्रोधका तथा वात और कामका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

कारणशरीर अज्ञानात्मक है। आत्मबोधसे अज्ञाननिवृत्ति और स्वतःसिद्ध अक्षय आयुरूप आत्माकी निरावरण स्फूर्ति सम्भव है। धर्मानुष्ठान और देवाराधनके द्वारा सूक्ष्म शरीरगत काम-क्रोधादि आधिकी निवृत्ति सम्भव है। स्थूल शरीरगत कफ, पित्त और वातज व्याधियोंका शमन शुद्ध पृथ्वी, जल, तेज और वायुके सेवनसे सम्भव है।

३. कर्मसिद्धान्त और पुनर्जन्मादिका आयुर्वेदमें युक्तियुक्त प्रतिपादन—आयुर्वेदके अनुसार ऋतम्भराप्रज्ञासम्पन्न महर्षियोंने ऋगादि वेदोंका अनुशीलन करके स्मृतियों तथा पुराण-महाभारतादि शास्त्रोंकी संरचना की है। प्रज्ञापराधके कारण वेदादि शास्त्रोंमें अनास्थाके वशीभूत व्यक्ति उनकी अवहेलना करके असत्कर्ममूलक अधर्माचरणमें संलिप्त रहता है। प्रज्ञापराध, असत्कर्म और अधर्माचरणके कारण वायु, जल, देश और कालमें विकृति सम्भव है। वायु तथा जलादिकी विकृति, रुग्णता, अराजकता, राष्ट्रकी विपन्नता, विखण्डता और सर्वनाशमें हेतु है। भ्रम, प्रमाद, आलस्य, काम, क्रोध, लोभ, भय तथा छल आदिके कारण सम्प्राप्त विवेकमें अनास्थादि दोषोंसे समाच्छादित बुद्धि प्रज्ञापराधका मूल है। ध्यान रहे; जरायुज, देव, नर, पश्वादि तथा अण्डजादि पक्षी आदिके माता-पिता होते हैं; परंतु स्वेदज और उद्भिज्जोंके माता-पिता नहीं होते। अतएव माता-पिताके आत्मतत्त्वका संतानमें संचार मानना उपयुक्त नहीं। यही कारण है कि स्वलक्षण पञ्चभूतात्मक जड शरीर और चेतन आत्माके संयोग और वियोगमें जीवोंका कर्म ही हेतु है। आत्मा अनादि और चिद्रूप होनेसे नित्य है। अतएव उसकी परनिर्मिति (किसी अन्यसे संरचना) असम्भव है। हाँ, अज्ञ जीवोंके कर्मानुरूप चेतनविशिष्ट संघातरूप परमात्माद्वारा निर्मिति (परनिर्मिति) अभीष्ट ही है—

आत्मा मातुः पितुर्वा यः सोऽपत्यं यदि संचरेत्।
द्विविधं संचरेदात्मा सर्वो वाऽवयवेन वा॥
सर्वश्चेत् संचरेन्मातुः पितुर्वा मरणं भवेत्।
निरन्तरं नावयवः कश्चित् सूक्ष्मस्य चात्मनः॥
बुद्धिर्मनश्च निर्णीते यथैवात्मा तथैव ते।
येषां चैषा मतिस्तेषां योनिर्नास्ति चतुर्विधा॥
विद्यात् स्वाभाविकं षण्णां धातूनां यत् स्वलक्षणम्।
संयोगे च वियोगे च तेषां कर्मैव कारणम्॥
अनादेश्चेतनाधातोर्नेष्यते परनिर्मितिः।
पर आत्मा स चेद्धेतुरिष्टोऽस्तु परनिर्मितिः॥

(च०सं० सूत्र० ११।९—१३)

शरीर, वाक्, मनःप्रवृत्तिका नाम कर्म है—कर्म वाङ्मनःशरीरप्रवृत्तिः। (च० सूत्र० ११।३९)। इनका अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग रुग्णतामें तथा सम्यग्योग स्वास्थ्यमें हेतु है। विषयलोलुपताके वशीभूत होकर विषयोंका अतिसेवनरूप अतियोग पुष्टप्रज्ञा और प्राणशक्तिसे सम्पन्न पुष्टशरीररूप स्वास्थ्यका प्रत्यक्ष ही घातक है। वागादि इन्द्रियोंका काष्ठमौनादि अप्रयोगरूप अयोगमूकादि होनेमें प्रत्यक्ष प्रमाणसे ही सिद्ध है। भोजन, शयन, दर्शन, स्पर्शन, रसनादिका अयुक्त प्रयोगरूप मिथ्यायोग प्रज्ञाशक्ति और प्राणशक्तिसम्पन्न शरीरका प्रत्यक्ष ही घातक है।

पूर्वकर्म, कर्मगत वैचित्र्य, दुग्धपानादिमें नवजात शिशुकी प्रवृत्ति आदि युक्तियोंसे आयुर्वेदने पुनर्जन्म सिद्ध किया है।

ध्यान रहे—

पुण्यशब्दो विपापत्वान्मनोवाक्कायकर्मणाम्।
धर्मार्थकामान् पुरुषः सुखी भुङ्क्ते चिनोति च॥

(च० सं० सूत्र० ७।३०)

अर्थात् 'मानसिक, वाचिक और कायिक कर्मोंद्वारा निष्पाप पुरुष पुण्यवान् कहा जाता है। इस लोकमें सुखी रहता हुआ धर्म, अर्थ तथा कामरूप त्रिवर्गका उपयोग करता है और जन्मान्तरके लिये पुण्योंका चयन करता है।'

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः।
सुखं च न विना धर्मात् तस्माद् धर्मपरो भवेत्॥

(अष्टाङ्गहृदय सू० अ० २।२०)

'सभी प्राणियोंकी सभी प्रवृत्तियाँ सुखके लिये होती हैं। सुख बिना धर्मके नहीं होता, इसलिये धर्मपरायण होना चाहिये।'



रोग और भैषज्य

(स्वामी श्रीविज्ञानानन्दजी सरस्वती)

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'— धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस पुरुषार्थचतुष्टयकी सिद्धिके लिये सर्वतोभावेन शरीरका स्वस्थ तथा नीरोग होना नितान्त आवश्यक होता है। रोगोंसे आक्रान्त शरीरके द्वारा कोई भी पुरुषार्थ सिद्ध नहीं किया जा सकता, यह निश्चित है। अभिप्राय यह है कि स्वस्थ शरीरके द्वारा ही धर्म-कर्मोंका अनुष्ठान किया जा सकता है। धर्मपूर्वक या न्यायपूर्वक ही अर्थोपार्जन किया जाता है, धर्मपूर्वक ही अपनी विवाहिता धर्मपत्नीसे पुत्रोत्पन्न किया जाता है और धर्मपूर्वक अर्थात् धर्मका आचरण करते हुए ही योगादि—आध्यात्मिक मोक्ष-साधनाओंके द्वारा कैवल्य मोक्ष प्राप्त किया जाता है, जिसे अन्तिम पुरुषार्थ माना जाता है।

परंतु शास्त्रकारोंने हमारे इस शरीरको रोग-व्याधियोंका एक बड़ा भण्डारघर भी कहा है—'शरीरं व्याधिमन्दिरम्'। बात भी सत्य है; क्योंकि मानव-शरीरके जन्मके साथ ही रोग और मृत्यु भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरूपसे पैदा हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि हमारे शरीरके जो उपादान कारण हैं, वे ही विकारी तथा अनित्य हैं। हमारा शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु—इन पाँच भूतों (तत्त्वों)-से बना है और माता-पिताके रज-वीर्यसे उत्पन्न हुआ है। इसलिये उन सब तत्त्वोंके गुण-धर्म आदिका शरीरमें होना स्वाभाविक है और उनके कार्योंमें व्यतिक्रम हो जानेपर शरीरमें विकार यानी रोग उत्पन्न होना भी स्वाभाविक ही है। परंतु केवल मनुष्य-शरीर ही रोगी बनते हों, ऐसी बात नहीं है, पशु-पक्षी आदि सभीके शरीर रोगी बनते हैं।

परंतु एक बात यह है कि पशु आदि जीव बीमार पड़ जानेपर मनुष्यकी तरह इलाज कराने नहीं जाते, किंतु आहार ग्रहण करना छोड़ देते हैं, पूर्णतया उपवास करते हैं और सूर्यकी धूपमें पड़े रहते हैं। इससे वे शीघ्र स्वस्थ बन जाते हैं। इससे पता चलता है कि वे अज्ञात रूपसे मानो प्राकृतिक चिकित्सा ही कर लेते हैं। रोग-निवारण-हेतु आज विभिन्न प्रकारकी चिकित्सा-पद्धतियाँ हैं, जैसे एलोपैथी, होम्योपैथी, साइकोपैथी, यूनानी चिकित्सा, चुम्बक-चिकित्सा, नैचुरोपैथी तथा योग-चिकित्सा आदि-आदि। इन चिकित्सा-प्रणालियोंके द्वारा रोग-पीडित असंख्य नर-नारी यथासम्भव आरोग्य-लाभ भी प्राप्त कर रहे हैं। भारतीय आर्ष आयुर्वेदिक पद्धतिकी सर्वातिशायिता, गुणवत्ता, महत्ता तथा आरोग्य-शक्तिसे सारा विश्व लाभान्वित होता रहा है, यह बात किसीसे छिपी नहीं है।

भारतीय चिकित्सा-शास्त्र—आयुर्वेद प्राचीनसे प्राचीनतम है और वह वेदके साथ सम्बन्धित है। वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इन चारों वेदोंके चार उपवेद भी हैं। जैसे—

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गन्धर्वश्चेति ते त्रयः।
स्थापत्यवेदमपरमुपवेदश्चतुर्विधः ॥

आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और स्थापत्यवेद—ये चार उपाङ्ग यानी उपवेद हैं। इनमेंसे ऋग्वेदका उपवेद स्थापत्यवेद, यजुर्वेदका धनुर्वेद, सामवेदका गन्धर्ववेद और अथर्ववेदका आयुर्वेद है। आयुर्वेद अथर्ववेदका उपवेद है इस बातका प्रमाण भी है। जैसे सुश्रुतसंहितामें कहा है—'इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य।' (सुश्रुत० सू० अ० १। ३)। आयुका ज्ञान ही आयुर्वेद है अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन तथा आत्माका योग ही आयु है और इस आयु-सम्बन्धी प्रत्येक ज्ञेयविषयक ज्ञानको आयुर्वेद कहते हैं—'आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वाऽऽयुर्विन्दतीत्यायुर्वेदः'। आयुर्वेद मनुष्यको कैसे प्राप्त हुआ है, इस बातको चरकसंहितामें कहा गया है—

ब्रह्मणा हि यथाप्रोक्तमायुर्वेदं प्रजापतिः।
जग्राह निखिलेनादावश्विनौ तु पुनस्ततः॥
अश्विभ्यां भगवाञ्छक्रः प्रतिपेदे ह केवलम्।
ऋषिप्रोक्तो भरद्वाजस्तस्माच्छक्रमुपागमत्॥

(सूत्र० १।४-५)

अर्थात् जिस प्रकार सम्पूर्ण आयुर्वेदका उपदेश ब्रह्माजीने किया था, उसको उसी रूपमें ठीक-ठीक सर्वप्रथम दक्षप्रजापतिने ग्रहण किया। इसके पश्चात् दक्षप्रजापतिसे अश्विनीकुमारोंने, अश्विनीकुमारोंसे इन्द्रने और इन्द्रसे ऋषियोंके कहनेपर भरद्वाज मुनिने सम्पूर्ण आयुर्वेदका ज्ञान प्राप्त किया। तबसे भरद्वाज मुनिके द्वारा अन्य ऋषि-मुनियोंको आयुर्वेदका ज्ञान प्राप्त हुआ है। अतः आयुर्वेदकी चिकित्सा-प्रणाली लाखों-लाख वर्षोंकी अनुभूतिपर आधृत है।

स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन प्राप्त करनेके लिये आयुर्वेदिक औषधि ही अनुकूल रहती है। एलोपैथी औषधिमें एक दोष यह है कि मियाद पूर्ण हो जानेपर यह खराब हो जाती है और दूसरा मुख्य दोष यह है कि इसका शरीरपर प्रतिकूल प्रभाव (साइड इफैक्ट) भी पड़नेकी सम्भावना रहती है, परंतु आयुर्वेदिक औषधिमें ये दोष नहीं हैं। युक्त आहार-विहार और पथ्यसेवनसे आयुर्वेदिक औषधि न केवल रोग ही ठीक करती है, अपितु उत्तम स्वास्थ्यको स्थिर रखती है तथा मानसिक विकारोंको भी ठीक कर देती है। आयुर्वेदिक औषध-भण्डार इतना विशाल है कि इससे सभी प्रकारके रोगोंकी चिकित्सा की जा सकती है, परंतु जिस मात्रामें और जिस रूपमें आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणालीका विकास होना चाहिये था, ऐसा नहीं हो पाया है। एलोपैथी चिकित्सा-प्रणालीका प्रभाव आज विश्वव्यापी-सा हो गया है। इससे त्वरित लाभ होता देख अधिक महँगी होनेपर भी लोगोंमें अंग्रेजी औषधके प्रति ही आस्था देखी जाती है। वस्तुतः त्वरित लाभ चाहनेवालेके लिये वह भले ही अनुकूल जान पड़ती हो, परंतु भारत-जैसे देशकी जलवायु (Climate)-में रहनेवालोंके लिये आयुर्वेदिक औषधि ही अधिक अनुकूल रहती है।

बात पुरानी है। एक दिन जैमिनि मुनि अपने आश्रमके एक वृक्षके नीचे बैठे हुए थे। उसी वृक्षकी शाखापर बैठा एक पक्षी अचानक बोल पड़ा कि '**कोऽरुक्**' अर्थात् नीरोग कौन है? जैमिनि मुनि पक्षीकी वाणी समझते थे, इसलिये उत्तरमें कहा कि '**हितभुक्**'। जो हितकर, पुष्टिकर तथा अनुकूल आहार ग्रहण करता है। पक्षी पुनः बोल पड़ा कि '**कोऽरुक्**'? मुनिने पुनः उत्तरमें कहा कि '**मितभुक्**' जो परिमित आहार ग्रहण करनेवाला है। पक्षी पुनः बोल उठा कि '**कोऽरुक्**'? जैमिनि मुनिने पुनः उसके उत्तरमें कहा— जो '**हितभुक्**' और '**मितभुक्**' है, वही स्वस्थ शरीरका आनन्द प्राप्त करता है अर्थात् जो व्यक्ति अपनी प्रकृतिके अनुकूल भोजन ग्रहण करता है और यथासमय परिमित भोजन करता है, वही स्वस्थ रहकर आनन्दमय दीर्घ जीवन व्यतीत कर सकता है।

हृदयरोग

दिलका दौरा पड़ना ही हृदयरोग है। हृदयरोग (Heart Disease) एक घातक रोग है, जो आज व्यापक रूपमें फैलता जा रहा है। इस रोगसे बचनेके लिये कुछ विशेष उपाय इस संदर्भमें प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

हमारा हृदय मांसपेशियोंसे निर्मित एक खोखला यन्त्र है। हृदयका अधिकांश भाग वक्षके वामभागमें अवस्थित रहता है। हृदय रसका स्थान है अतः दूषित रसके सम्पर्कसे हृदय या उसके अवयवोंमें विकृति होनेसे हृदयमें रोग उत्पन्न होते हैं। शरीरके दूषित रक्तको लेकर फेफड़ेमें भेजना तथा वहाँ शोधित रक्तको फिर शरीरमें सर्वत्र प्रेषित-करना हृदयका कार्य है। इस यन्त्रमें विकृतिके उत्पन्न होनेको ही हृदयरोग कहा जाता है। हमारे शरीरके अन्यान्य यन्त्रोंके समान हार्टकी मांसपेशियाँ भी शरीरके रक्त-स्रोतसे ही पुष्टि प्राप्त करती हैं। किसी कारणसे जब वही रक्त-स्रोत दूषित हो जाता है, तब हार्ट भी रोगग्रस्त बन जाता है। सामान्य रूपसे इसे हृदयरोग कहते हैं।

देशवासियो! आचार्य सुश्रुतका कहना है—

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः।
कुर्वन्ति हृदये बाधां हृद्रोगं तं प्रचक्षते॥

(सुश्रुत० उ० ४३।४)

अर्थात् अपने कारणोंसे कुपित हुए वात आदि दोष रसको दूषित करके (उसके आधार) हृदयमें उपस्थित होकर हृदयमें विकार उत्पन्न कर देते हैं, इसे हृद्रोग कहते हैं।

हृदयरोग होनेके अनेक कारण

हृदयरोग कई कारणोंसे होता है, जैसे बिलकुल परिश्रम न करना, मशीनकी तरह अत्यधिक परिश्रम करना, अधिक मात्रामें तीक्ष्ण भोजन करना, शक्तिसे अधिक दौड़ना तथा भय, चिन्ता, त्रास, विरेचन, अधिक वमन, अधिक मद्यपान एवं धूम्रपान करना, हृदयमें चोट लगना एवं सब समय मानसिक तनावमें रहना आदि। इनके अतिरिक्त जब हमारे शरीरके भीतर अत्यधिक दूषित पदार्थोंका संचय हो जाता है और उनके द्वारा हृदय आक्रान्त हो जाता है, तब हृदयरोग उत्पन्न हो जाता है।[१]

१-व्यायामतीक्ष्णातिविरेकबस्तिचिन्ताभयत्रासगदातिचाराः। छर्द्यामसन्धारणकर्षणानि हृद्रोगकर्तृणि तथाऽभिघातः॥ (चरक० चि० २६।७६)

हृदयरोगके लक्षण

चरकसंहितामें[१] तीन प्रकारका हृदयरोग बताया गया है—वातज, पित्तज और कफज। इन तीनोंका पृथक्-पृथक् लक्षण भी बताया गया है। इनका वर्णन आगे किया जा रहा है—

(१) वातज हृदयरोगका लक्षण—वायुसे होनेवाले हृदयरोगमें विशेषकर हृदयमें शून्यताका हो जाना, द्रवता तथा शुष्कता आदिका अनुभव होना, हृदयमें पीडाका होना, स्तम्भ और मोहका अनुभव होना वातज हृदयरोगका लक्षण है।

(२) पित्तज हृदयरोगका लक्षण—पित्तजन्य होनेवाले हृदयरोगमें आँखोंके सामने अन्धकार छा जाना, शरीरमें दाहका अनुभव होना—विशेषकर हृदयमें। मोह, त्रास तथा तापकी वृद्धि, ज्वर होना और शरीर पीला पड़ जाना आदि इसके लक्षण हैं।

(३) कफज हृदयरोगका लक्षण—कफसे होनेवाले हृदयरोगमें हृदय जकड़ा हुआ-सा, भारी तथा स्तिमित प्रतीत होता है। कण्ठकी नलीमें कफका जमा होना तथा ज्वर, कास और तन्द्रा आदिका होना इसका लक्षण है।

यदि उक्त सभी लक्षण एक साथ पाये जाते हों तो उसे **'संनिपातज हृद्रोग'** कहा जाता है और यदि हृदय-देशमें कण्डू और तीव्र वेदना हो तो उसे **'कृमिजन्य हृद्रोग'** कहा जाता है।

हृदयरोग-निवारण

चरकने हृदयरोग-निवारणके लिये पूर्वकथित वातज, पित्तज और कफज—इन तीनोंके पृथक्-पृथक् औषध-प्रयोगका विधान बताया है। केवल इतना ही नहीं, अपितु एक-एक रोगकी अनेकों औषधियाँ बतायी हैं। परंतु इस प्रसंगमें सबसे सरल और एक-एक औषधिका प्रयोग ही बतलाया जा रहा है—

(१) वातज हृदयरोगका निवारण—पुष्कर-मूल, बिजौरा नीबूका मूल, सोंठ, कचूर तथा हरड़—इन पाँचों द्रव्योंको समान भागमें लेकर कल्क बनाये। उस कल्कमें यवक्षार-जल या खट्टे अनारका रस, गोघृत और सेंधा नमक मिलाकर पिलाना चाहिये। इससे वातज हृदयरोग तथा विकर्तिकरोग दूर होते हैं।[२]

(२) पित्तज हृदयरोगका निवारण—कशेरू, सेवार, अदरक, पुण्डरिया-काठ, मूलेठी, कमल-डण्डीकी गाँठ—इन द्रव्योंका सम्मिलित कल्क, गोदुग्ध और घृतको एकमें मिलाकर पाक करे और मधुके साथ इस कशेरुकादि घृतका सेवन करनेसे पित्तज हृदयरोग नष्ट हो जाता है।[३]

(३) कफज हृदयरोगका निवारण—इस रोगके निवारणके लिये शिलाजीतका प्रयोग किया जाता है। परंतु शिलाजीतकी सेवन-विधि **'चरकसंहिता'** के रसायनकल्पमें कथित नियमके अनुसार ही होनी चाहिये। क्योंकि ताम्र-शिलाजीत ही कफज हृदयरोगमें लाभकारी होता है। इसके अतिरिक्त च्यवनप्राश, अगस्त्य-हरीतकी लेह, ब्राह्मी रसायन और आमलकी रसायन जो अच्छे वैद्यके द्वारा निर्मित हों, उनका सेवन करना चाहिये।[४] इससे कफज तथा अन्य हृदयरोग भी समूल नष्ट हो जाते हैं।

परंतु ऐसा भी देखा गया है कि हार्टपर प्रभाव-विस्तारके लिये यौगिक आसनसे बढ़कर ऐसा कोई दूसरा उपाय नहीं है। अतः किसी दक्षयोगीसे हृदयरोग-सम्बन्धी यौगिक आसनोंको विधिपूर्वक सीख लेना चाहिये। परंतु यौगिक आसन स्वस्थ दशामें ही करना चाहिये। रोगकी प्रबल अवस्थामें नहीं; क्योंकि रोगकी उस अवस्थामें तो विश्राम ही एकमात्र उपाय है। स्वस्थ अवस्थामें हलका-हलका यौगिक आसन तथा सायं-प्रातः भ्रमण इस रोगके रोगीके लिये अनुकूल रहता है। इससे हार्ट क्रमशः सबल होता जाता है और उसका नया गठन होता है। रोगी अपनेको स्वस्थ अनुभव करने लगता है। कभी-कभी जलवायुका परिवर्तन करना भी इस रोगके रोगीके लिये हितकर रहता है। पर तीन हजार फीटसे अधिक ऊँचाईवाले स्थान रोगीके लिये अनुकूल नहीं हैं; क्योंकि इससे श्वास फूलने लगता है और श्वास लेनेमें कष्ट होता है। हृदयरोगके रोगीको अपना मानसिक संतुलन बनाये रखना चाहिये और धैर्य, शान्ति तथा आत्मविश्वासको भी सतत बनाये रखना चाहिये। इससे हृदयरोगसे छुटकारा मिल जाता है।



१-सूत्रस्थान १७। ३०—४०, चिकित्सास्थान २६। ७८—८०

२-सपुष्कराह्वं फलपूरमूलं महौषधं शुंठ्यभया च कल्काः। क्षाराम्लसर्पिर्लवणैर्विमिश्राः स्युर्वातहृद्रोगविकर्तिकाघ्नाः॥ (चरक० चि० २६। ८३)

३-कशेरुकाशैवलशृङ्गवेरप्रपौण्डरीकं मधुकं बिसस्य। ग्रन्थिश्च सर्पिः पयसा पचेत्तैः क्षौद्रान्वितं पित्तहृदामयघ्नम्॥ (चरक० चि० २६। ९३)

४-शिलाह्वयं वा भिषगप्रमत्तः प्रयोजयेत् कल्पविधानदृष्टम्। प्राशं तथागस्त्यमथापि लेहं रसायनं ब्राह्ममथामलक्याः॥ (चरक० चि० २६। ९८)

महारोग और उससे मुक्ति

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीमद्विष्णुस्वामिमतानुयायि श्रीगोपाल वैष्णवपीठाधीश्वर श्री १००८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

देवक्या पालितो गर्भे लालितोऽङ्के यशोदया।
राधयाऽऽराधितो देवो गोपालो मे प्रसीदतु॥

अखिल ब्रह्माण्डनायक, भक्तजन-सुखदायक, सच्चिदानन्दमय, जगदीश, जगन्मय, परब्रह्म गोपाल श्रीकृष्णने निज क्रीडाके लिये जगत्की रचना की है। त्रैलोक्यमें सप्तद्वीपवती पृथ्वीमें जम्बूद्वीपके नव खण्डोंमें भरतखण्ड पुण्यमय है; क्योंकि इसमें नानारूपसे भगवान् अवतीर्ण हुए हैं तथा ऋषि-मुनियोंने जप, तप, स्वाध्याय, योग और समाधिद्वारा अनेकानेक सिद्धियाँ प्राप्त करके आत्मोन्नति करते हुए परम पदकी प्राप्ति की है।

सभी श्रेयोंका साधक मानव-शरीर ही है तथा भगवत्प्रिय भी है। 'तासां मे पौरुषी प्रिया' (भागवत०)। इस नर-तनको पानेके लिये देवता भी लालायित रहते हैं। ऐसा सुदुर्लभ मनुष्य-जन्म अनेकों जन्म बीत जानेके बाद अन्तिम जन्ममें प्राप्त होता है। यह मानव-कलेवर अनित्य होकर भी पुरुषार्थोंका साधक होनेसे अन्य योनियोंसे श्रेष्ठ है। भगवान्की उपासना भी नर-तन-साध्य है। सात्त्विक, राजस तथा तामस कर्मोंकी विचित्रतासे ही देव, तिर्यक्, मनुष्य-योनिमें जन्म होता है। सत्त्वसे देव, सत्त्व एवं रजसे मनुष्य और तमोगुणसे तिर्यक्-योनिमें जन्म होता है। भगवत्प्राप्तिके लिये सत्कर्म मनुष्य-योनिमें उपयुक्त है।

इस मनुष्य-योनिमें जन्म लेकर वर्णाश्रमानुकूल कर्मोंके करनेसे चित्त-शुद्धिद्वारा भागवतधर्मोंमें रुचि उत्पन्न होती है और तभी मानव आत्म-कल्याण करनेमें समर्थ होता है। इस मानव-शरीरकी स्थितिके लिये तीन वस्तुएँ अपेक्षित होती हैं—अन्न, जल तथा औषधि। अन्न एवं जल प्राणका आहार है। मिताहारी रहनेसे शरीर रोगग्रस्त नहीं होता। उदरके दो भाग अन्नसे, एक भाग जलसे तथा एक भाग वायुके संचरणसे पूर्ति करनेसे रोग पैदा नहीं होते। अधिक भोग भोगनेसे शरीर रुग्ण हो जाता है; क्योंकि रोग भोगपूर्वक होता है। बुद्धि भी अन्नपर आधारित है। सदन्न-सेवनसे सद्बुद्धि उत्पन्न होती है और सद्बुद्धिद्वारा सत्कर्म करनेसे सद्गतिकी प्राप्ति होती है। कदन्नके उपभोगसे कुबुद्धि उत्पन्न होती है और कुबुद्धिद्वारा कुकर्म करनेसे कुगतिकी प्राप्ति होती है। अतः सात्त्विक आहार करना ही अभीष्ट है। दुःख, शोक तथा रोगसे बचनेके लिये सदन्न ही उपादेय है। अन्न एवं जलकी गड़बड़ीसे उत्पन्न रोगोंका निदान करनेके लिये औषधि-सेवनका विधान है। जिस देशका जो जन्तु है, उसके लिये उसी देशकी औषधि गुणकारी होती है। यह आयुर्वेदाचार्य महर्षि सुश्रुतका मत है। इस घोर कलिकालमें आयुर्वेदिक औषधियाँ लुप्त-गुप्त-सी होती जा रही हैं, यह नितान्त खेदकी बात है। आयुर्वेदमें नाडी-विज्ञान प्रमुख है, उसके बिना—रोगोंका कारण जाने बिना चिकित्सा अधूरी होती है। आजकल भौतिकवादका प्रबल प्रचार होता जा रहा है। इसलिये जड़ी-बूटी प्रभृति औषधियोंकी पहचान करना और भी आवश्यक हो गया है ताकि रासायनिक औषधि, आसव, अवलेह, चूर्ण तथा वटी आदिका आविष्कार—निर्माण होता रहे। हमारे यहाँ आर्षशास्त्रोंमें जप-पूजा-हवन आदि रोग-निवारक उपाय भी निर्दिष्ट हैं। आज विडम्बना है कि हजारों-लाखों रुपया इलाजमें व्यय हो जाता है, पर आरोग्य-लाभ अत्यल्प ही है। एक रोगके नष्ट कर देनेपर दूसरा रोग उत्पन्न हो जाता है।

उष्ण देशकी औषधि शीत देशमें और शीत देशकी औषधि उष्ण देशमें गुणकारी नहीं हो सकती। अतः भारतवासियोंके लिये भारतीय औषधिका सेवन करना ही अभीष्ट है।

सूर्य प्रत्यक्ष देव हैं, उनकी उपासनासे भी आरोग्य प्राप्त हो सकता है। 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्' (मत्स्य०पु०)। जबतक ओज, इन्द्रिय-शक्ति, मानसिक सामर्थ्य बल, शारीरिक शक्ति विद्यमान है तबतक आत्मकल्याणके लिये सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये। कहावत है *'फिर पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गयीं खेत'*। अतः मनुष्य-जन्म पाकर अपना कल्याण करना अत्यावश्यक है। सम्पूर्ण रोगोंमें जन्म-मरण महारोग है, उसकी निवृत्तिके लिये भगवच्छरण-गमनके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। अतः हरिकी शरणमें जाकर भजन करो।

हरिः शं ते करिष्यति।



वास्तविक आरोग्य

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

वास्तविक आरोग्य परमात्मप्राप्तिमें ही है। इसलिये गीतामें परमात्माको 'अनामय' कहा गया है—'जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्' (२।५१)। 'आमय' नाम रोगका है। जिसमें किंचिन्मात्र भी किसी प्रकारका रोग अथवा विकार न हो, उसको 'अनामय' अर्थात् निर्विकार कहते हैं। जन्म-मरण ही सबसे बड़ा रोग है— 'को दीर्घरोगो भव एव साधो' (प्रश्नोत्तरी ७)। अनामय-पदकी प्राप्ति होनेपर इन जन्म-मरणरूप रोगका सदाके लिये नाश हो जाता है। इसलिये जो महापुरुष परमात्मतत्त्वको प्राप्त हो चुके हैं, वही असली नीरोग हैं। उपनिषद्में आया है—

आत्मानं चेद् विजानीयादयमस्मीति पूरुषः।
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्॥

(बृहदारण्यक० ४।४।१२)

'यदि पुरुष आत्माको 'मैं यह हूँ' इस प्रकार विशेषरूपसे जान जाय तो फिर क्या इच्छा करता हुआ और किस कामनासे शरीरके तापसे अनुतप्त हो?'

तात्पर्य है कि आत्मा और परमात्मा—दोनों नीरोग (अनामय) हैं। रोग केवल शरीरमें ही आता है। इसलिये कहा गया है—'शरीरं व्याधिमन्दिरम्'। शरीरमें रोग दो प्रकारसे आते हैं—प्रारब्धसे और कुपथ्यसे। पुराने पापोंका फल भुगतानेके लिये शरीरमें जो रोग पैदा होते हैं, वे 'प्रारब्धजन्य' कहलाते हैं। जो रोग निषिद्ध खान-पान, आहार-विहार आदिसे पैदा होते हैं, वे 'कुपथ्यजन्य' कहलाते हैं। अतः पथ्यका सेवन करनेसे, संयमपूर्वक रहनेसे और दवाई लेनेसे भी जो रोग मिटता नहीं, उसको 'प्रारब्धजन्य' जानना चाहिये। दवाई और पथ्यका सेवन करनेसे जो रोग मिट जाता है, उसको 'कुपथ्यजन्य' जानना चाहिये।

कुपथ्यजन्य रोग चार प्रकारके होते हैं— १. साध्य—जो रोग दवाई लेनेसे मिट जाते हैं। २. कृच्छ्रसाध्य—जो रोग कई दिनतक दवाई और पथ्यका विशेषतासे सेवन करनेपर मिटते हैं। ३. याप्य—जो पथ्य आदिका सेवन करनेसे दबे रहते हैं, जड़से नहीं मिटते। ४. असाध्य—जो रोग दवाई आदिका सेवन करनेपर भी नहीं मिटते। प्रारब्धसे होनेवाला रोग तो असाध्य होता ही है, कुपथ्यसे होनेवाला रोग भी ज्यादा दिन रहनेसे कभी-कभी असाध्य हो जाता है। ऐसे असाध्य रोग प्रायः दवाइयोंसे दूर नहीं होते। किसी संतके आशीर्वादसे, मन्त्रोंके प्रबल अनुष्ठानसे अथवा विशेष पुण्यकर्म करनेसे ऐसे रोग दूर हो सकते हैं।

कुपथ्यजन्य रोगीके असाध्य होनेमें कई कारण हो सकते हैं; जैसे—१. रोग बहुत पुराना हो जाय, २. रोगी कुपथ्यका सेवन कर ले, ३. जिन जड़ी-बूटियोंसे दवाइयाँ बनी हों, वे पुरानी हों, ४. रोगीका वैद्यपर और औषधपर विश्वास न हो, ५. रोगीका खान-पान, आहार-विहार आदिमें संयम न हो, आदि-आदि।

जो रोगी बार-बार तरह-तरहकी दवाइयाँ लेता रहता है, दवाइयोंका अधिक मात्रामें सेवन करता है, उसको दवाइयोंसे विशेष लाभ नहीं होता; क्योंकि दवाइयाँ उसके लिये आहाररूप हो जाती हैं। गाँवोंमें रहनेवाले प्रायः दवाई नहीं लेते, पर कभी वे दवाई लें तो उनपर दवाई बहुत जल्दी असर करती है। जो लोग मदिरा, चाय आदि नशीली वस्तुओंका सेवन करते हैं, उनकी आँतें खराब हो जाती हैं, जिससे उनके शरीरपर दवाइयाँ असर नहीं करतीं। जो व्यक्ति धर्मशास्त्र और आयुर्वेदशास्त्रके विरुद्ध खान-पान, आहार-विहार करता है, उसका कुपथ्यजन्य रोग दवाइयोंका सेवन करनेपर भी दूर नहीं होता।

अधिकतर रोग कुपथ्यसे पैदा होते हैं। कुपथ्यजन्य रोगसे शरीरकी ज्यादा क्षति होती है। कुपथ्यका त्याग और पथ्यका सेवन दवाइयोंसे भी बढ़कर रोग दूर करनेवाला है। इसलिये कहा गया है—

पथ्ये सति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः।
पथ्येऽसति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः॥

(वैद्यजीवनम् १०)

'पथ्यसे रहनेपर रोगी व्यक्तिको औषधके सेवनसे क्या प्रयोजन? और पथ्यसे न रहनेपर रोगी व्यक्तिको औषधके सेवनसे क्या प्रयोजन?' तात्पर्य है कि पथ्यसे रहनेपर रोगी

व्यक्तिका रोग बिना औषध लिये मिट जाता है और पथ्यसे न रहनेपर उसका रोग औषध लेनेपर भी मिटता नहीं।

रोगीके साथ खाने-पीनेसे, रोगीके पात्रमें भोजन करनेसे, रोगीके आसनपर बैठनेसे, रोगीके वस्त्र आदिको काममें लेनेसे तथा व्यभिचार आदिसे ऐसे संकर (मिश्रित) रोग हो जाते हैं, जिनकी पहचान करना बड़ा कठिन हो जाता है। जब रोगकी पहचान ही नहीं होगी तो फिर वैद्यकी दवाई क्या काम करेगी?

युगके प्रभावसे जड़ी-बूटियोंकी शक्ति क्षीण हो गयी है। कई दिव्य जड़ी-बूटियाँ लुप्त हो गयी हैं। दवाइयाँ बनानेवाले ठीक ढंगसे दवाइयाँ नहीं बनाते और पैसोंके लोभमें आकर जिस दवाईमें जो चीज मिलानी चाहिये, उसको न मिलाकर दूसरी सस्ती चीज मिला देते हैं। अतः वह दवाई वैसी गुणकारी नहीं होती।

जो रोगोंके कारण दुःखी रहता है, उसपर रोग ज्यादा असर करते हैं। परंतु जो भजन-स्मरण करता है, संयमसे रहता है, प्रसन्न रहता है, उसपर रोग ज्यादा असर नहीं करते। चित्तकी प्रसन्नतासे उसके रोग नष्ट हो जाते हैं।

प्रारब्धजन्य रोगके मिटनेमें दवाई तो केवल निमित्तमात्र बनती है। मूलमें तो प्रारब्धकर्म समाप्त होनेसे ही रोग मिटता है। जिन कर्मोंके कारण रोग हुआ है, उन कर्मोंसे बढ़कर कोई पुण्यकर्म, प्रायश्चित्त, मन्त्र आदिका अनुष्ठान किया जाय तो प्रारब्धजन्य रोग मिट जाता है। परंतु इसमें प्रारब्धके बलाबलका प्रभाव पड़ता है अर्थात् प्रारब्धकी अपेक्षा अनुष्ठान प्रबल हो तो रोग मिट जाता है और अनुष्ठानकी अपेक्षा प्रारब्ध प्रबल हो तो रोग नहीं मिटता अथवा थोड़ा ही लाभ होता है।

लोगोंकी ऐसी धारणा बन गयी है कि दवाईके रूपमें मांस, अण्डा, मदिरा आदिका सेवन करना बुरा नहीं है। वास्तवमें यह महान् पतन करनेवाली बात है! ऐसा माननेवाले वे ही लोग होते हैं, जिनका केवल शरीरको ठीक रखनेका, सुख-आरामका ही उद्देश्य है, जिनको धर्मकी अथवा अपना कल्याण करनेकी परवाह नहीं है। अशुद्ध चीज लेनेसे शरीर ठीक हो जायगा—यह नियम नहीं है, उल्टे नये रोग पैदा हो जायँगे। पशुओंके रोग उनका मांस खानेवालोंमें भी आ जाते हैं। अशुद्ध चीज लेनेसे जो पाप होगा, उसका दण्ड तो भोगना ही पड़ेगा। अतः दवाईके रूपमें भी अशुद्ध चीज नहीं खानी चाहिये। जिसका शरीरमें राग नहीं है, जिसका उद्देश्य अपना कल्याण करना है, वह नाशवान् शरीरके लिये अशुद्ध चीजोंका सेवन करके पाप क्यों करेगा?

अन्न और जल—इन दोनोंके सिवाय मनुष्यमें अन्य किसी चीजका व्यसन नहीं होना चाहिये। जीवित रहनेके लिये अन्न और जल लेना ही पड़ता है, पर चाय, काफी, बीड़ी, सिगरेट, जर्दा, पान-मसाला, तम्बाकू, अफीम, चिलम आदि न ले तो मनुष्य मर नहीं जाता। इन चीजोंको लेनेसे आदत खराब होती है, समय खराब होता है, पैसा खराब होता है, शरीर खराब होता है! दुर्व्यसनोंकी आदत पड़ जाय तो फिर उनको छोड़ना बड़ा कठिन होता है और मनुष्य उनके अधीन हो जाता है। पराधीनको स्वप्नमें भी सुख नहीं मिलता—*'पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं'* (मानस, बाल० १०२।३)।

गीतामें भगवान्ने **'आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः'** पदोंसे सात्त्विक भोजनका फल पहले बताया और बादमें भोजनके पदार्थोंका वर्णन किया। इससे सिद्ध होता है कि सात्त्विक मनुष्य भोजन करनेसे पहले उसके परिणामपर विचार करता है।[1] परंतु राजस मनुष्यकी दृष्टि सबसे पहले भोजनकी तरफ जाती है, उसके परिणामकी तरफ नहीं, इसलिये भगवान्ने पहले राजस भोजनके पदार्थोंका वर्णन किया और बादमें **'दुःखशोकामयप्रदाः'** पदसे उसका फल बताया।[2] अगर मनुष्य आरम्भमें ही भोजनके परिणामपर विचार करे तो फिर उसको राजस भोजन करनेमें हिचकिचाहट होगी; क्योंकि कोई भी मनुष्य परिणाममें दुःख, शोक और रोगको नहीं चाहता। परंतु भोजनमें आसक्ति होनेके कारण राजस मनुष्यकी बुद्धि परिणामकी तरफ जाती ही

१-आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः। रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥ (गीता १७।८)

२-कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः। आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥ (गीता १७।९)

नहीं। तामस मनुष्यमें मूढ़ता रहती है; अतः मोहपूर्वक भोजन करनेके कारण वह परिणामको देखता ही नहीं। इसलिये भगवान्ने तामस भोजनका फल बताया ही नहीं।[१] भोजन न्याययुक्त है या नहीं, उसपर मेरा हक लगता है या नहीं, वह शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार है या नहीं, उसका परिणाम अच्छा है या नहीं—इन बातोंपर कुछ भी विचार न करके तामस मनुष्य पशुकी तरह खानेमें प्रवृत्त हो जाता है।

सात्त्विक मनुष्य तो श्रेष्ठ है ही, उससे भी श्रेष्ठ वह भगवद्भक्त है, जो भोजनके पदार्थोंको पहले भगवान्के अर्पण करके फिर उनको प्रसादरूपसे ग्रहण करता है। इसलिये गीतामें भगवान् कहते हैं—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥

(गीता ९। २७-२८)

'हे कुन्तीपुत्र! तू जो कुछ करता है, जो कुछ भोजन करता है, जो कुछ यज्ञ करता है, जो कुछ दान देता है और जो कुछ तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर दे।'

'इस प्रकार मेरे अर्पण करनेसे तू कर्मबन्धनसे और शुभ (विहित) तथा अशुभ (निषिद्ध) सम्पूर्ण कर्मोंके फलोंसे मुक्त हो जायगा। ऐसे अपनेसहित सब कुछ मेरे अर्पण करनेवाला और सबसे सर्वथा मुक्त हुआ तू मुझे प्राप्त हो जायगा।'

सब कुछ भगवान्के अर्पण करनेका परिणाम यह होगा कि मनुष्यका जन्म-मरणरूप महान् रोग मिट जायगा। जन्म-मरणरूप रोग मिटनेसे ही मनुष्यको वास्तविक आरोग्यकी प्राप्ति होगी। इस आरोग्यका प्राप्त करना ही मानवजीवनका लक्ष्य है।



हठयोग-साधना—स्वरूप एवं उपयोगिता

(श्रीगोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज)

हठयोग-साधना—नाथ-सम्प्रदायकी योग-साधना जगत्के लिये एक अनुपम, विशिष्ट और मौलिक देन है। यह विद्या शिवकथित है। योगिराज श्रीमत्स्येन्द्रनाथजीकी साधनामें तथा महायोगी गोरखनाथकृत गोरक्षसंहिता, सिद्धसिद्धान्तपद्धति, विवेकमार्तण्ड, योगबीज आदि संस्कृत-ग्रन्थों और 'गोरखबानी'में हठयोग-साधनाकी ही अमृतमयी सारगर्भित व्याख्या उपलब्ध होती है। नाथसिद्ध चौरंगीनाथ, भर्तृहरिनाथ, गोपीचन्द, जालन्धरनाथ आदिकी बानियोंमें भी इस साधनाका प्रक्रियात्मक विश्लेषण प्राप्त होता है। हठयोग-साधनाके सम्बन्धमें भगवान् शिवका कथन है—

इदमेकं सुनिष्पन्नं योगशास्त्रं परं मतम्॥

(शिवसंहिता)

यह शिवद्वारा परिभाषित हठयोग-साधना परम गोप्य है। योगशास्त्रोंमें इस साधनाको अधिकारीके प्रति ही निरूपित करनेका आदेश है। हठयोग-साधना प्राण-साधना है। हठयोगके सम्बन्धमें महायोगी गोरखनाथजी कहते हैं—

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद्धठयोगो निगद्यते॥

हठयोग तनको स्वस्थ, मनको स्थिर और आत्माको परमपदमें प्रतिष्ठित करने अथवा अमृतत्वको प्राप्त करनेका अमोघ साधन तथा महाज्ञान है। हठयोग-साधना मानवीय जीवनको सहज और नैसर्गिक—प्राकृतिक वातावरणके अनुकूल संयोजित करनेका शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक प्रयोग है। इसमें शरीर-शुद्धिके साधन इस प्रकार बताये गये हैं—

शोधनं दृढता चैव स्थैर्यं धैर्यं च लाघवम्।
प्रत्यक्षं च निर्लिप्तं च घटस्थं सप्तसाधनम्॥
षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद् दृढम्।
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता॥
प्राणायामाल्लाघवं च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनि।
समाधिना निर्लिप्तं च मुक्तिरेव न संशयः॥

(घेरण्डसंहिता १। ९—११)

१-यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्। उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥ (गीता १७। १०)

शरीरकी शुद्धिके लिये शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य, धैर्य, लाघव, प्रत्यक्ष और निर्लिप्त—ये सप्तसाधन हैं। षट्कर्मद्वारा शोधन, आसनोंसे दृढ़ता, मुद्राओंसे स्थिरता, प्रत्याहारसे धीरता, प्राणायामसे लाघव, ध्यानसे ध्येयका प्रत्यक्ष दर्शन तथा समाधिद्वारा निर्लिप्त-अनासक्तिका विधान है। इस क्रमसे हठयोग-साधना करनेपर मुक्ति—स्वरूपावस्थानकी प्राप्ति होती है।

हठयोगकी साधनामें लगे साधकको इस बातका ज्ञान होना आवश्यक है कि जो कुछ ब्रह्माण्डमें है, वह सब हमारे शरीरमें भी है। हठयोगकी अन्तरङ्ग-साधनामें इस जानकारीकी महती उपयोगिता है। पिण्डमें ही ब्रह्माण्ड-दर्शन अथवा सर्वात्मबोध हठयोगका मूल तत्त्व है। महायोगी श्रीगोरखनाथजीका स्वयं कथन है कि षट्चक्र, द्विलक्ष्य, पञ्चव्योम, स्तम्भ, नवद्वार, पञ्चाधिदैवकी अपने शरीरमें ही विद्यमानताका जिन्हें ज्ञान नहीं है, वे किस हठयोगकी साधनामें सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। यह शरीर ब्रह्माण्ड कहा जाता है। यद्यपि श्रीगोरखनाथजीने 'सिद्ध-सिद्धान्तपद्धति' में नवचक्रोंका वर्णन किया है तथापि छ: चक्रोंपर ही हठयोगकी साधना आधारित है। उन्हींके भेदनसे साधक सहस्रारमें शिवका साक्षात्कार करता है। वे षट्चक्र मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र नामवाले हैं। इसी तरह सोलह आधार और हैं—पादाङ्गुष्ठ, मूलाधार, गुदा, मेढ्राधार, उड्डीयानबन्धाधार, नाभि-आधार, हृदयाधार, कण्ठाधार, घण्टिकाधार, तालु-आधार, जिह्वा-आधार, भ्रूमध्य-आधार, नासाधार, नासिकामूलाधार, ललाट-आधार और ब्रह्मरन्ध्र-आधार। बाह्य और आभ्यन्तर दो लक्ष्य हैं। तीसरा लक्ष्य मध्य भी कहा जाता है। आत्माके स्वरूपकी अभिव्यक्तिके लिये पञ्चाकाशमें आकाश, पराकाश, महाकाश, तत्त्वाकाश और सूर्याकाशके महत्त्वपर बल दिया जाता है। मुख, दो नेत्र, दो कान, दो नासारन्ध्र, एक उपस्थ और एक गुदा—ये शरीरके नौ दरवाजे हैं। पाँच अधिदेवताका अभिप्राय आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वीसे है। ये देवता ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव हैं। हठयोगमें इन तत्त्वोंका ज्ञान होना आवश्यक है।

हठयोगमें कायशोधन अथवा घटशोधन या शरीरकी शुद्धि आवश्यक साधन-तत्त्व है। इसमें षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, मुद्राबन्धकी क्रियाका ही महत्त्व स्वीकृत है। इनके द्वारा शरीर योगाग्निमें शुद्ध होकर पक्वदेह कहलाता है। षट्कर्मके अङ्ग हैं—धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक और कपालभाति। इनके द्वारा कफ-पित्त-वातके दोष नष्ट होते हैं। शरीरमें ताजगी आती है। दीर्घायु और आरोग्यकी प्राप्ति होती है। शरीरके मलका शोधन होता है। नाडियोंके निर्दोष होनेपर प्राणवायुका शरीरमें सञ्चार होता है। वायुकी यथेष्ट धारणा, जठराग्निका प्रदीपन, नादकी अभिव्यक्ति और आरोग्य आदि शरीरकी नाडियोंके मलशोधनके ही परिणाम हैं। हठयोगकी साधनामें आसनोंको बड़ा महत्त्व दिया है। गोरक्षसंहितामें सिद्धासन और पद्मासनके अभ्यासपर बल दिया गया है। 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' में गोरखनाथजीने 'आसनमिति स्वरूपसमानता' कहा है। 'हठयोगप्रदीपिका' में आसनको हठयोगका प्रथम अङ्ग बताया है। आसनोंसे शारीरिक और मानसिक रोग तथा प्राणायामसे पाप नष्ट होते हैं। 'गोरक्षसंहिता' के दूसरे शतकमें कहा गया है—

'आसनेन रुजो हन्ति प्राणायामेन पातकम्।'

वायुका अभ्यास ही प्राणायाम है। मलसे भरी नाडियोंके चक्रका शोधन प्राणायामसे ही होता है। हठयोगके साधकको बद्ध पद्मासनमें स्थित होकर चन्द्रनाडी—इडासे प्राणको भीतर भरना 'पूरक' कहलाता है। प्राणको रोकना 'कुम्भक' कहलाता है, इसके बाद सूर्यनाडी—पिंगलासे वायुको बाहर करना चाहिये, यह 'रेचक' है। प्राणायामके समय अमृतस्वरूप चन्द्रमाका ध्यान करनेसे प्राणी सुखी होता है। इसी तरह दायें नासारन्ध्रसे श्वास खींचकर थोड़ी देर भीतर रोककर वामनासारन्ध्र—चन्द्रनाडीसे बाहर निकालना चाहिये। वायुको भीतर स्थिर रखनेके समय नाभिमण्डलमें सूर्यका ध्यान करनेसे साधक सुखी होता है। प्राणसाधनासे नाडियोंके शुद्ध होनेपर साधक नाद-श्रवणद्वारा परमात्मा-चिन्तनमें तत्पर हो जाता है। गोरखनाथजीने 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' के दूसरे उपदेशमें कहा है कि—प्राणायाम करनेसे प्राण स्थिर होता है—'प्राणायाम इति प्राणस्य स्थिरता।'

पाँचों इन्द्रियोंको अपने विषयसे पृथक् कर लेना ही प्रत्याहार है। योगी प्रत्याहारके द्वारा इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर आत्माभिमुखी कर देता है। ऐसे तो हठयोगके परमाचार्य श्रीगोरखनाथजीने 'गोरक्षसंहिता' के दूसरे शतकमें

कहा है कि चन्द्रमाकी अमृतमयी धाराको मूलाधारमें स्थित सूर्य ग्रस्त कर लेता है, उसे सूर्यके मुखमें न पड़ने देकर योगी स्वयं ग्रस्त कर लेता है। यह प्रत्याहार है। हृदयमें मनकी निश्चलताके साथ पञ्चभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशका धारण करना ही धारणा है। इससे पाँचों तत्त्वोंपर योगी विजय प्राप्त करता है। अपने चित्तमें आत्मतत्त्वका चिन्तन करना हठयोगकी साधनामें ध्यान कहा जाता है। आत्मध्यानसे अमरत्वकी प्राप्ति होती है, चक्रभेदन करते हुए ध्यानद्वारा कुण्डलिनीको जाग्रत् करनेसे जीवात्मा परम शिवका साक्षात्कार कर लेता है। समाधिमें आत्माके यथार्थ स्वरूपका अनुभव होता है। ध्याता, ध्येय और ध्यान—तीनों एक हो जाते हैं। आत्मा और मनकी एकता ही समाधि है।

हठयोगकी चरम परिणति कुण्डलिनी-जागरणद्वारा षट्चक्रभेदन कर सहस्रारमें शिवका साक्षात्कार है, यह 'उन्मनी' अवस्थाकी परमसिद्धि है। हठयोगमें मुद्रा और बन्धके द्वारा नादानुसन्धान तथा कुण्डलिनी-जागरणमें विशिष्ट सहायता मिलती है। यद्यपि नादानुसन्धान प्राणायामकी सिद्धिका परिणाम है तथापि मुद्रा और अभ्याससे योगसाधक नाद सुनता है और नादकी सम्पूर्ण लयावस्थामें कुण्डलिनी-जागरणके फलस्वरूप वह शून्य अलख निरञ्जनरूपी तत्त्वमें समाहित हो जाता है। हठयोगमें नाद-श्रवणका भी बड़ा महत्त्व है। अनाहत ध्वनिरूपी नादके श्रवणसे सहज समाधि लग जाती है। नाद-श्रवणके लिये योगीको मुक्तासनमें स्थित होकर शाम्भवी मुद्राके द्वारा एकाग्रचित्तसे कर्ण, नेत्र और नासाके रन्ध्रों तथा मुखके द्वार हाथकी अँगुलियोंसे बंद करनेपर सुषुम्णा-मार्गसे स्फुट नादका श्रवण होता है। नादके अनुसन्धानसे सञ्चित पापोंका क्षय होता है। नादके चित्तकी तात्त्विक लय-अवस्थामें सर्वथा विलीन हो जानेपर योगी उन्मनी-अवस्था अथवा निर्विकल्पके भी परे सहज शून्यपद या कैवल्यमें स्वस्थ हो जाता है। मुद्रासे शरीर और मनकी स्थिरता सिद्ध होती है। हठयोगके आचार्य महर्षि घेरण्डने '**मुद्रया स्थिरता**' का प्रतिपादन किया है। महायोगी गोरखनाथका कथन है कि महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयानबन्ध, जालन्धरबन्ध और मूलबन्धके अभ्यासमें जो योगी कुशल होता है, वह मुक्तिका पात्र होता है—

महामुद्रां नभोमुद्रामुड्डीयानं जालन्धरम्।
मूलबन्धं च यो वेत्ति स योगी मुक्तिभाजनः॥

(गोरक्षसंहिता)

हृदयमें ठोड़ीको लगाकर दायें पैरकी एड़ीको योनिस्थानपर दबाकर बायें पैरको लम्बा करे और दोनों हाथोंसे पैरकों मध्यसे पकड़े। भीतर प्राण भरे, कुछ देर रोककर निकाल दे। इससे सारे रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके अभ्याससे सुप्त कुण्डलिनी सहज जाग जाती है। इसके बाद नभोमुद्रा और खेचरी मुद्राका विधान है। योगी जीभ ऊपर करके कुम्भककी विधिसे प्राण भीतर रोके। इसके अभ्याससे रोग, मृत्यु, क्षुधा, निद्रा, तृष्णा, मूर्च्छापर विजय प्राप्त कर लेता है। खेचरीके अभ्याससे वीर्य स्थिर होता है। उड्डीयानबन्धमें पेटको पीठकी ओर सिकोड़ा जाता है, इससे वायुकी शुद्धि होती है, जठराग्नि बढ़ती है। कण्ठको संकुचित करके ठोड़ीको हृदयसे लगाना 'जालन्धरबन्ध' है, यह बन्ध चन्द्रामृतरूपी जलको कपाल-कुहरके नीचे नहीं गिरने देता। मूलाधारमें स्थित सूर्य इस अमृतको नहीं सोख पाता। अपानवायुको ऊपरकी ओर खींच करके प्राणवायुसे मिलाना और पैरकी एड़ीसे सीवनी दबाकर गुदा-द्वारको सिकोड़ना मूलबन्ध है। विपरीतकरणी मुद्राके अभ्याससे योगी चन्द्रामृतका स्वयं पान करता है। चन्द्रमा तालुमूलमें—विशुद्धचक्रमें स्थिर होकर सुधाका स्राव करता है, जिसे नाभिमण्डलमें स्थित सूर्य अथवा अग्निसे बचाकर योगी स्वयं पी लेता है। इस मुद्राकी सिद्धिमें शीर्षासनका योगदान महत्त्वपूर्ण है।

हठयोगका परम लक्ष्य कुण्डलिनी-जागरणद्वारा षट्चक्रभेदन तथा कैवल्यकी प्राप्ति है। कुण्डलिनी हमारे मूलाधारमें अप्रबुद्ध और प्रबुद्ध-रूपमें स्थित है। यद्यपि देहमें स्थित कुण्डलिनी स्वभावसे चेतन है तथापि प्रबुद्ध न होनेकी अवस्थातक जीवात्माको सांसारिक द्वन्द्वोंमें विमोहित करनेके कारण बन्धनकारिणी है। जबतक वह सुप्त है, तबतक जन्म-मरणका फल देती है और जागनेपर सहस्रदलतक सञ्चार करती हुई योगियोंको उनके शुद्ध व्यापक आत्माके स्वरूपका ज्ञान करा देती है। गुदासे दो अङ्गुल ऊपर और लिङ्गसे दो अङ्गुल नीचे मूलाधारचक्रके बीच त्रिकोणके आधारके योनिकामपीठके मध्य शिवलिङ्गको

साढ़े तीन वलयोंमें लपेटकर नीचेकी ओर मुख करके विद्युत् प्रभाके समान चमकती हुई सुषुम्णाके मार्गको रोककर कुण्डलिनी स्थित है। अपानवायुके निकुञ्चनसे उसका उत्थान किया जाता है, वह सुषुम्णाके द्वारको छोड़ देती है। इसका उत्थान मूलबन्ध, उड्डीयानबन्ध और जालन्धरबन्धके अभ्याससे किया जाता है। वह ऊर्ध्वमुखी होकर षट्चक्रभेदन करती हुई सहस्रारमें पहुँच जाती है। मूलाधारमें ब्रह्मचक्र है। इसमें अग्निके समान दीप्ति-शक्तिका ध्यान करनेसे कुण्डलिनी जाग जाती है। इसके बाद स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्रका भेदन करती हुई सहस्रारमें पहुँच जाती है। सहस्रारसे स्रावित चन्द्रामृतका पान करनेमें योगी इसी समय प्रवृत्त होता है। ब्रह्मरन्ध्रमें पहुँचकर कुण्डलिनी शिवसे मिल जाती है अर्थात् अन्तर्भूत हो जाती है। चन्द्रमाके द्वारपर सूर्यका स्थित होना, जीवात्माका शिव-पदमें अभिन्न होना हठयोगका परम लक्ष्य है। यही हठयोगकी सिद्धि है, जिसे राजयोग-समाधिका सहज फल स्वीकार किया जाता है। यही उन्मनी सहजावस्था है, अमनस्कताके धरातलपर जीवात्मा और परमात्माकी अभेदता है।

आज सारे संसारके मानव शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक निश्चिन्त-अवस्थाकी प्राप्तिके लिये उद्विग्न हैं। वे शारीरिक समस्याको सुलझानेके लिये भारतकी योगसाधना-पद्धतिसे प्रेरणा ग्रहण करनेके लिये समुत्सुक हैं। हठयोगकी साधना सर्वाङ्गपूर्ण योगसाधना है। यह निर्विवाद है कि हठयोगके विभिन्न अङ्गोंकी साधनाके द्वारा जगत्के लोग स्वास्थ्य-समस्याका समाधान प्राप्त कर सकते हैं। ये अपने शरीरको नीरोग और मनको शान्त तथा स्थिर करनेके लिये भगवान् शिवद्वारा उपदिष्ट तथा महर्षि पतञ्जलिद्वारा अनुशासित और महायोगी गोरखनाथ तथा उनके अनुवर्ती नाथसिद्धोंद्वारा आचरित और उपदिष्ट योग—विशेषतया हठयोगको ग्रहण करके लोककल्याण तथा आत्मोद्धारके प्रयत्नमें सफल हो सकते हैं। हठयोगके शास्त्र-वर्णित साधना-क्रमसे अभ्यास करनेसे आजके जगत्में योगके सम्बन्धमें प्रचलित गलत धारणाओं और मनमानी मिथ्या विचारोंका निराकरण हो सकता है। मानवके शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक जागरणमें हठयोगकी महनीयता पूर्णरूपसे स्पष्ट है।

~~~~~~

'संसारव्याधिभेषजम्'

(स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी)

अपामीवामप स्त्रिधमप सेधत दुर्मतिम्।
आदित्यासो युयोतना नो अंहसः॥
(ऋग्वेद ८।१८।१०)

'हे दृढव्रती देवगणो (आदित्यासः)! हमारे रोगोंका निवारण कीजिये। हमारी दुर्मति तथा पापोंको दूर हटा दीजिये।'

आदित्य—सूर्यकी आराधनासे अखण्ड प्राकृतिक नियम-पालनकी प्रेरणा मिलती है। नियम-पालनसे स्वास्थ्य स्थिर रहता है। स्थिर स्वास्थ्यसे बुद्धि परिष्कृत होती है और सुसंस्कृत बुद्धि प्रभुस्मरण-जैसे जीवनके शाश्वत सिद्धान्तोंकी ओर मानवको उन्मुख करती है।

वेदोंकी अनेक सूक्तियाँ स्वस्थ जीवनकी उपादेयताका प्रतिपादन करती हैं। 'विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्' (यजुर्वेद १६।४८)। ग्रामके सभी प्राणी रोगरहित और हृष्ट-पुष्ट हों।

अथर्ववेदीय पैप्पलादशाखाके मन्त्रद्रष्टा ऋषि दीर्घायुष्य-सूक्तके माध्यमसे देवों, ऋषियों, गन्धर्वों, दिशाओं, औषधियों तथा सरिता-सागर आदिसे दीर्घ आयुकी कामना करते हैं—'दीर्घमायुः कृणोतु मे।'

अथर्ववेदके चतुर्थकाण्डका १३वाँ तथा ऋग्वेदके दशम मण्डलका १३७ वाँ सूक्त रोगनिवारण-सूक्तके नामसे प्रसिद्ध है।

त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत्॥
(अथर्व० ४।१३)

'हे देवो! इस रोगीकी रक्षा कीजिये। हे मरुतोंके समूहो! रक्षा करो। सब प्राणी रक्षा करें। जिससे यह रोगी नीरोग—पूर्ण स्वस्थ हो जाय।'

वेद इस मानव-शरीरका अति पल्लवित वर्णन करता है—
~~~~~~

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥ (यजु० ३४।५५)

भावार्थ है कि 'सातों ऋषि अहर्निश इस शरीररूपी पवित्र आश्रमका संरक्षण कर रहे हैं।'

यह शरीर सप्त सरिताओंका पवित्र तीर्थस्थल है, जो जाग्रदवस्थामें बाहर जाता है और सुप्तावस्थामें वापस आता है। यह शरीर पवित्र यज्ञशाला है, जिसके लिये दो देव दिन-रात सन्नद्ध हैं।

साथ ही यह शरीर देवालय है, यहाँ सूर्य चक्षुओंमें ज्योति बनकर, वायु छातीमें प्राण बनकर, अग्नि मुखमें वाणीरूप बनकर तथा उदरमें जठराग्नि बनकर एवं तैंतीस देवता अंशरूपमें आकर निवास करते हैं। पञ्चभूतोंसे एक पुरुषाकृतिका निर्माण कर ईश्वरने उसे क्षुधा-पिपासासे अभिभूत कर दिया, तब इन्द्रियाभिमानी देवताओंने परमेश्वरसे कहा कि हमारे योग्य स्थान बतायें, जिसमें बैठकर हम अपने भोज्य-पदार्थ अन्नका भक्षण कर सकें। देवताओंके इस आग्रहपर जलसे गौ और अश्वके आकारयुक्त एक पिण्ड बाहर आया। पर देवताओंने यह कहकर ठुकरा दिया कि यह हमारे आश्रयके अनुरूप नहीं है। अन्तमें जब मानव-शरीर आया तब सभी देव प्रसन्न हो गये। परमेश्वरने कहा— 'ता अब्रवीद्यथायतनं प्रविशतेति' अपने योग्य आश्रय स्थानोंमें तुम लोग प्रवेश करो। इसपर 'अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्'॥

(ऐतरेयोपनिषद् १। २।४)

अग्नि वाणी होकर मुखमें, वायु प्राण होकर नासिका-छिद्रमें, सूर्य प्रकाश बनकर नेत्रोंमें, दिशाएँ श्रोत्रेन्द्रिय बनकर कानोंमें, औषधियाँ और वनस्पति लोम होकर त्वचामें, चन्द्रमा मन होकर हृदयमें, मृत्यु अपान होकर नाभिमें और जल देवता वीर्य होकर शिश्नेन्द्रियमें प्रविष्ट हुए।

उपनिषद्का उक्त कथानक मानव-शरीरको देवालय होनेकी पुष्टि करता है। सम्भवतः इस कथानकको भौतिकवादी ऐहिक कौशलमें कुशल दम्भी-मस्तिष्क एकमात्र कपोल-कल्पना ही समझें, पर यह अति परिष्कृत वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, विषयान्तर न हो इसीलिये मात्र एक उदाहरण 'चन्द्रमा मन होकर हृदयमें प्रविष्ट हुए हैं' इसीको संक्षेपमें विवृत किया जा रहा है— चन्द्रमाका गर्भकी वृद्धिपर विशेष परिणाम होता है। वैदिक मन्त्रोंमें भी इसका संकेत मिलता है। चन्द्रमामें मातृवृत्ति है। फिर कलावान् तो वे हैं ही, इसलिये सूर्यकी ज्ञानमय प्रखर किरणोंको पचाकर और उन्हें भावनामय सौम्य रूप देकर माताके हृदयमें रहनेवाले कोमल गर्भतक उस जीवनामृतको पहुँचानेका प्रेमल और कुशल कार्य निरन्तर करते रहते हैं। इतना ही नहीं ओषधियोंका जो अमृतत्व है, वह सोमसे ही प्राप्त होता है। वे ओषधियोंके अधिपति कहे गये हैं।

सामान्य रूपसे यह मानव-शरीर दो भागोंमें विभक्त है— आभ्यन्तर और बाह्य। ***'नर तन सम नहिं कवनिउ देही'।*** कहे जानेवाले देव-दुर्लभ शरीरकी उपेक्षा निःसंदेह अविवेकपूर्ण है, रोगोंका उपचार स्वस्थ जीवनहेतु अनिवार्य है, परंतु केवल बाह्य शरीरके रक्षार्थ किया गया उद्योग एकाङ्गी होगा। सर्वाङ्गीण परिश्रम ही संस्कृत बुद्धिकी पहचान है। अतः मानसिक रोगका उपचार किये बिना शारीरिक रोग दूर नहीं होंगे।

यह अतार्किक सिद्धान्त है कि जगत्-नियन्ता प्रत्येक सत्कर्मपर पुरस्कार और दुष्कर्मपर दण्ड देता है तथा मानसिक अशुभ कर्मका दण्ड शरीरको भोगना पड़ता है।

शतशः श्रुतियाँ इस सिद्धान्तको घोषित कर रही हैं कि सृष्टिका मूलतत्त्व रसरूपता 'रसो वै सः' या आनन्दरूपता है। शास्त्रोंमें आनन्दके दो स्वरूप वर्णित हैं— १-शान्त्यानन्द और २-समृद्ध्यानन्द। प्रथमका सम्बन्ध अन्तर्मनसे है और दूसरेका बाह्य शरीरसे। मूल विषय मनका उपचार है। संत तुकारामने कहा है— ***'मन कर प्रसन्न सर्व सिद्धिचे कारण'*** मनको प्रसन्न रखो वही सब सिद्धियोंका मूल है। सुश्रुतसंहिता भी इस बातका प्रतिपादक है।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

(१५।४१)

त्रिदोषों, त्रयोदश अग्नियों और धातु-प्रक्रियाकी समता तथा आत्मा, इन्द्रिय और मनकी प्रसन्नता स्वास्थ्यका द्योतक है। मानसिक रोग जो विश्वका संक्रामक रोग बन गया है, उसका उपचार ही शारीरिक स्वस्थताकी प्रमुख शर्त है।

मानसिक रोगकी सर्वश्रेष्ठ ओषधि है—'भगवन्नाम-स्मरण।'

श्वेताश्वतरोपनिषद् कहता है—

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति॥

(६।२०)

अर्थात् यदि मानव (विज्ञान) व्यापक अमूर्त आकाशको चमड़ेकी भाँति लपेटनेमें भी समर्थ हो जाय (जो असम्भव है) तो भी परमात्मतत्त्वके ज्ञानके बिना उसके कष्टोंका अन्त असम्भव है।

मानस-रोगोंके वर्णनके पश्चात् गोस्वामीजी कहते हैं—*'भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान॥'* अतः *'बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल। बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥'* (रा०च०मा० ७। १२१ (ख), १२२ (क))

शास्त्रीय भाषामें पञ्चभूतात्मक योग-गुणोंका अनुभव (भगवन्नाम-जपद्वारा आत्मानुभूति) जिसे हो जाता है, उसे न रोग सताता है, न वृद्धावस्था और न असमय मृत्यु।

पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥

(श्वेता०उप० २।१२)

'गोविन्ददामोदरस्तोत्र'के रचयिता श्रीबिल्वमङ्गलाचार्यजीने त्रयताप-निवारणहेतु (दैहिक, दैविक, भौतिक) वेदवेत्ता विद्वानोंद्वारा निर्दिष्ट इसी नाम-रूपी चिकित्सककी ओर ध्यान आकृष्ट किया है—

आत्यन्तिकव्याधिहरं जनानां चिकित्सकं वेदविदो वदन्ति।
संसारतापत्रयनाशबीजं गोविन्द दामोदर माधवेति॥

हे कृष्ण! हिलते हुए पत्तेकी नोकपर अटकी हुई बूँदके समान क्षणभंगुर यह शरीर इसी समय आपके चरणरूपी पिंजरोंमें राजहंसकी तरह प्रविष्ट हो जाय; क्योंकि मरते समय वात, पित्त और कफद्वारा कण्ठावरोध हो जानेसे नाम-स्मरण भी असम्भव हो जायगा—

कृष्ण त्वदीयपदपंकजपञ्जरान्ते
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः।
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः
कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते॥

(प्रपन्नगीता ५३)

कृष्ण-मिलनकी विरहजन्य पीडासे अधीर होकर मीराके मानसिक रोगका चिकित्सक भी तो साँवरिया ही था न! *'मीरा की मन पीर मिटे जब वैद संवरिया होय'*।

सूरकी इस चेतावनीकी अनदेखी कहीं सिर धुननेको विवश न कर दे?

कहा भयो अबके मन सोचे पहिले नाहि कमायो।
सूरदास हरिनाम-भजन बिनु सिर धुनि-धुनि पछतायो॥

गुरु नानकदेव प्रभु-नाम-श्रवणसे कष्ट दूर होनेकी घोषणा करते हैं—

सुणिऐ ईसरु बरमा इन्दु। सुणिऐ मुखि सालाहण मन्दु।
सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद। सुणिऐ सासत सिम्रिति वेद।
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु॥

(श्रीजपुजी साहब ९)

अगर व्यक्ति नियमित भगवत्-नाम-स्मरण कर रहा है और देहावसानके अन्तिम क्षणोंमें भगवत्-चिन्तनमें असमर्थ हो जाता है तब भी भगवान्‌की असीम अपरिमेय अनुकम्पा देखिये—

स्थिरे मनसि सुखस्थे शरीरे सति यो नरः।
धातुसाम्ये स्थिते स्मर्ता विश्वरूपं च मां भजन्॥
ततस्तं म्रियमाणं तु काष्ठपाषाणसंनिभम्।
अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामि परमां गतिम्॥

(वराहपुराणका खिलांश)

भगवती वसुन्धराके पूछनेपर भगवान् वराह कहते हैं—'जो मेरा भक्त स्वस्थावस्थामें निरन्तर मेरा स्मरण करता रहता है, उसे मरते समय जब चेतना नहीं रहती और वह सूखे काष्ठ-पाषाणकी भाँति पड़ा रहकर मेरा चिन्तन करनेमें असमर्थ हो जाता है तो मैं उसका स्मरण करता हूँ और उसे परमगति—मुक्तिकी ओर ले जाता हूँ।'

मानसिक और शारीरिक रोगोंसे ग्रस्त हो जानेपर नैराश्यपूर्ण भावनाका परित्याग कर आजहीसे उस 'आयुष्यमारोग्यकरं कल्पकोट्यघनाशनम्' वैद्यकी शरण ग्रहण कर संसाररूप रोगके लिये सिद्ध औषधका सेवन कीजिये और इहलोकमें स्वस्थ रहकर परलोकके लिये पाथेय भी साथ ले जाइये। ये पाथेय हैं दो अक्षर 'हरि'—

प्राणप्रयाणपाथेयं संसारव्याधिभेषजम्।
दुःखक्लेशपरित्राणं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥

'जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका'

(आचार्य श्रीकृपाशंकरजी महाराज रामायणी)

जगद्वन्द्य सूक्ष्म द्रष्टा महाकवि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने सच्छास्त्रोंके अनेक अङ्गोंका स्पर्श किया है। जीवनकी अनेक समस्याओंका समाधान किया है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीका यह स्पर्श, यह समाधान कहीं विस्तारसे है तो कहीं संक्षेपसे, रोगोंका अत्यन्त संक्षिप्त परंतु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वर्णन श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें है।

श्रीकाकभुशुण्डिजी श्रीरामभक्तिचिन्तामणिका निरूपण करते हुए कहते हैं कि यह मणि जिस भाग्यवान्के हृदयमें निवास करती है, उसे प्रबल मानसरोग नहीं व्याप्त होते—

ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥

(७। १२०। ८)

श्रीकाकभुशुण्डिजीके इस उपदेशको हृदयङ्गम करनेके लिये श्रीगरुड़जी प्रश्न करते हैं—हे सर्वज्ञ! हे कृपालो! मानसरोग विलक्षण रोग है। अन्य प्राकृत रोगोंका परिज्ञान तो बाह्य लक्षणोंसे भी सम्भव है; परंतु मानसरोगका परिज्ञान बाह्य लक्षणोंसे कथमपि सम्भव नहीं है। रोगका लक्षण और उसके स्वरूपका विशेष ज्ञान परमावश्यक है, अन्यथा रोग-चिकित्सा सम्भव नहीं है। रोगकी चिकित्सा होनी ही चाहिये। इसलिये श्रीगरुड़जी श्रीकाकभुशुण्डिजीसे कहते हैं कि आप अत्यन्त सूक्ष्म मानसरोगोंको समझाकर कहिये—उसका भलीभाँति परिज्ञान कराइये—

मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई॥

(रा०च०मा० ७। १२१। ७)

विनतानन्दन श्रीगरुड़के अत्यन्त प्रष्टव्य प्रश्नका उत्तर श्रीकाकभुशुण्डिजीने चौबीस पंक्तियोंमें दिया है। अत्यन्त संक्षिप्त उत्तर है; परंतु सर्वाङ्गपरिपूर्ण है। उसका एक-एक शब्द मननीय है—

सुनहु तात अब मानस रोगा। ……बिषय आस दुर्बलता गई॥

(रा०च०मा० ७। १२१। २७, १२२। १०)

श्रीकाकभुशुण्डिजी कहते हैं कि प्राकृत रोगोंसे—कायिक रोगोंसे प्रत्येक प्राणी पीडित नहीं होते हैं, उन रोगोंके रोगी सब नहीं होते हैं; परंतु मानसरोगके रोगी तो प्रायः सभी होते हैं। यह मानसरोग इतना प्रबल है कि इसने सभीको आक्रान्त कर लिया है। *'जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा'* और *'एहि बिधि सकल जीव जग रोगी'*।

इन चौबीस पंक्तियोंमेंसे मात्र आधी पंक्तिकी संक्षिप्त व्याख्या यथामति यथासमय प्रस्तुत की जा रही है। इसी निदर्शन—उदाहरणसे समस्त पंक्तियोंकी गम्भीरता सुधीजन समझें।

'जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका' भौतिक ज्वरकी भाँति आध्यात्मिक ज्वर भी अनेक प्रकारके हैं, जैसे यौवन-ज्वर, काम-ज्वर, लोभ-ज्वर और मोह-ज्वर आदि।

'ज्वर' शब्दका अर्थ है—'ज्वरति जीर्णो भवत्यनेनेति ज्वरः' संतापार्थक 'ज्वर' धातुसे करणमें किंवा भावमें 'घञ्' प्रत्यय करनेसे 'ज्वर' शब्द निष्पन्न होता है। ज्वरके सामान्य लक्षण हैं—शरीरमें ईषत्कम्प, अङ्ग-शैथिल्य, मुखका परिशुष्क होना, शरीरका रोमाञ्चकण्टकित होना, शक्तिकी क्षीणता, स्वेदावरोध और देहमें दाह—जलनका होना—ये समस्त लक्षण प्रायः युगपत्—एक साथ शरीरमें प्रकट होते हैं—

स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा।
युगपद् यत्र रोगे तु स ज्वरो व्यपदिश्यते॥

महाभारतके युद्धारम्भमें जब श्रीअर्जुन मोहग्रस्त हो जाते हैं, तब उनके शरीरमें उपर्युक्त समस्त लक्षण युगपत् प्रकट हो जाते हैं—

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते॥
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः॥

(गीता १। २९, ३०)

अपने परम हितैषी सखा व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे श्रीअर्जुन कहते हैं—हे केशव! इस कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमिमें जो लोग समवेत हैं, उन सबको मैंने भलीभाँति देख लिया है। ये सब लोग तो मेरे स्वजन ही हैं। यद्यपि ये समस्त लोग युद्ध करनेके लिये ही समराङ्गणमें

उपस्थित हैं; परंतु मेरा इनसे युद्ध करनेके लिये कटिबद्ध होना कहाँतक उचित है? मेरा मन और बुद्धि—ये दोनों ही चकराने लगे हैं। हे माधव! मेरा शरीर थर-थर काँप रहा है, मेरा मुख परिशुष्क हो रहा है और मेरी देह मानो गली-सी जा रही है। मेरा समस्त अङ्ग रोमाञ्चकण्टकित हो रहा है, मेरे अन्तःकरणमें महती व्यथा हो रही है, एतावता गाण्डीव धनुष धारण करनेवाली मेरी मुट्ठी शिथिल हो रही है। हे श्रीकृष्णचन्द्र! यह गाण्डीव मेरे हाथसे छूट भी गया। यह मेरा वज्रादपि कठोर गाण्डीव, असह्य और भयंकर है; परंतु इस बन्धु-स्नेहजन्य मोहकी अद्भुत शक्ति, उस प्रचण्ड गाण्डीवकी शक्तिसे भी बढ़कर सिद्ध हो गयी है।

जिन वीरपुङ्गव श्रीअर्जुनने समराङ्गणमें किरातवेषधारी महाभयंकर प्रलयङ्कर श्रीशङ्करको भी युद्धमें प्रसन्न करके उनसे पाशुपतास्त्रकी उपलब्धि की थी, उन्हीं गाण्डीवधारी अर्जुनको इस मोहज्वर नामक मानसरोगने देखते-देखते अधिकृत कर लिया—जीत लिया। श्रीअर्जुनने श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा—हे करुणामय! मेरी त्वचा जल रही है। मैं खड़ा रहनेमें भी स्वयंको असमर्थ पा रहा हूँ। मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है।

अपने अनन्य भक्त श्रीअर्जुनके ऊपर अपार करुणा करके महान् मानसरोग—मोहज्वरके निवारण करनेमें परम समर्थ वैद्य गीताचार्य श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीगीताजीके सत्रह अध्यायोंके उपदेशका महौषध पान कराया और अन्तमें प्रश्न किया—हे पृथानन्दन! आपने मेरे द्वारा उपदिष्ट उपदेशको क्या समाहितचित्तसे श्रवण किया है? हे धनञ्जय! क्या इस महान् उपदेशामृत महौषधसे आपका अज्ञानजन्य मोहज्वर विनष्ट हो गया है?

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय॥

(गीता १८।७२)

करुणामय ठाकुरजीके इस करुणामय प्रश्नका उत्तर देते हुए श्रीअर्जुनजी कहते हैं—हे अच्युत! आपके महान् उपदेशरूप महौषधने मेरे मोहज्वरका विनाश कर दिया है। हे स्वामिन्! आपकी मङ्गलमयी कृपासे यथार्थ तत्त्वज्ञानरूपी स्मृति भी मैंने उपलब्ध कर ली है अर्थात् सम्मोहज्वरके द्वारा क्षीणशक्तिको भी मैंने पुनः सञ्चित कर लिया है। एतावता सम्प्रति बन्धुस्नेहकारुण्य प्रवृद्ध सम्पूर्ण शोकसे विमुक्त होकर मैं सर्वथा असन्दिग्ध होकर स्वस्थभावमें स्थित हूँ। हे करुणामय! अब मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा—युद्धादि कर्म करूँगा।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

(गीता १८।७३)

इस प्रकार सम्मोहज्वरकी भाँति अनेक ज्वर—आध्यात्मिक ज्वर शास्त्रोंमें वर्णित हैं। उनमें भी श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि 'मत्सरज्वर' और 'अविवेकज्वर' अतिशय प्रबल हैं।

मत्सरज्वर—दूसरोंकी सम्पत्तिको किंवा सम्मानको देखकर मनमें जो जलन होती है, उसे ही 'मत्सर' कहते हैं। 'असह्यपरसम्पत्तिः मत्सरः'। ज्वरकी भाँति इसमें भी मनमें दाह होता है। 'पद्मपुराण'के अनुसार 'आत्मधिक्कार-विशेषः मत्सरः' है अर्थात् दूसरोंकी वृद्धि देखकर अपनेको धिक्कृत करना ही, हीनभावनासे ग्रस्त होनेका नाम ही 'मत्सर' है—

निन्दति मां सदा लोका धिगस्तु मम जीवनम्।
इत्यात्मनि भवेद् यस्तु धिक्कारः स च मत्सरः॥

(पद्मपु० क्रिया० अ० १६)

अविवेकज्वर—नीतिकार कहते हैं—यौवन, धन-सम्पत्ति, प्रभुत्व और अविवेकिता—इन चारोंमें एक-एक अवगुण अनर्थकारी हैं। फिर यदि ये चारों ही युगपत्—एक साथ समवेत होकर एक ही पुरुषमें आ जायँ तो क्या कहना है?

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥

(हितोपदेश)

शास्त्रोंमें विवेककी अनेक प्रकारकी परिभाषायें हैं—(१) आपसमें मिलकर एक ही वस्तु-विषयका अनेक प्रकारसे विचार करके उस वस्तु-विषयके स्वरूपका निश्चय करना विवेक है। 'परस्परव्यावृत्त्या वस्तुस्वरूपनिश्चयः विवेकः'। (२) प्रकृति और पुरुषका सम्यक् प्रकारेण विवेचन करके उनका परिज्ञान करना ही विवेक है।

'प्रकृतिपुरुषयोर्विभागेन ज्ञानं विवेकः'। (३) नित्यानित्य वस्तुका परिज्ञान करना अर्थात् पूर्णब्रह्म परमात्मा ही नित्य वस्तु है। ब्रह्मव्यतिरिक्त अन्य समस्त वस्तु अनित्य है। यह निश्चय करना भी विवेक है। (४) आत्मानात्मका विवेक करना भी विवेक है। (५) सत् और असत् पदार्थका बुद्धिपूर्वक निर्धारण करना भी विवेक है। (६) सारा-सारतत्त्वका परिज्ञान भी विवेक है। (७) विवेककी महत्त्वपूर्ण परिभाषा है—*'हिताहितविवेक'*। कौन हमारा हितैषी है और कौन नहीं है, इसे भलीभाँति जान लेना ही विवेक है।

श्रीरामचरितमानसके बालकाण्डमें दो प्रसंग हैं। पहला देवर्षि श्रीनारदजीका और दूसरा राजा प्रतापभानुका। इन दोनों ही प्रसंगोंमें क्रमशः उत्थान और पतनका कारण हितैषीका पहचानना और न पहचानना ही है।

श्रीनारदजीने अपने हितैषीके परखनेमें, जाननेमें, पहचाननेमें भूल नहीं की। उन्होंने अत्यन्त स्नेहिल शब्दोंमें—आत्मविश्वासपूर्ण शब्दोंमें अपनी भावनाकी अभिव्यक्ति की है।

मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ॥

(१।१३२।२)

परिणामस्वरूप श्रीनारदका सर्वविध अमङ्गल नष्ट हो गया और उनका सब प्रकारसे मङ्गल सम्पन्न हो गया। श्रीहरिने उनके परमहितका आश्वासन स्वयं श्रीमुखसे दिया—

जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥

(१।१३२)

इसके विपरीत राजा प्रतापभानुने कपटी मुनिको अपने हितू—हितैषीके रूपमें वरण कर लिया—

तुम्ह तजि दीनदयाल निज हितू न देखउँ कोउ॥

(रा०च०मा० १।१६६)

परिणामस्वरूप राजा प्रतापभानुका सब प्रकारसे प्रशस्त जीवन नष्ट हो गया। *'सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा'*।

इस प्रकार हिताहितका परिज्ञान ही विवेक है। उपर्युक्त सभी प्रकारके भावोंका ग्रहण 'विवेक' शब्दमें समाहित है। विवेकका न होना ही 'अविवेक' है। 'न विवेको यस्य सः'।

यह अविवेक ही ज्वर है और मत्सर भी ज्वर है। इन दोनों प्रकारके ज्वरोंका तथा अन्य सभी प्रकारके मानस-रोगोंका विनाश दशरथनन्दन कौसल्यानन्दसंवर्द्धन रघुनन्दन भगवान् श्रीरामचन्द्रकी अहैतुकी कृपाके द्वारा ही सम्भव है। इसलिये प्राणिमात्रको अशरणशरण अकारणकरुण करुणासागर श्रीरामजीकी करुणाका अवलम्बन लेना चाहिये—भजन करना चाहिये।



मानसायुर्वेद-परिचय

(आचार्य श्रीकिशोरजी व्यास)

महाराष्ट्रके संत श्रीगुलाबराव महाराज एक अलौकिक विभूति रहे। ई० सन् १८८१—१९१५ तक उनका जीवन-काल रहा। विदर्भके सामान्य किसान-परिवारमें जनमे इस बालान्ध प्रज्ञाचक्षु संतने अपनी चौंतीस वर्षकी जीवनावधिमें जो लीलाएँ कीं तथा जिस अपूर्व रीतिसे पारमार्थिक मार्गदर्शम किया, वह तो विशाल ग्रन्थका विषय तथा धार्मिक जगत्के लिये एक अनोखी धरोहर है। उनका सारा जीवन ही लोकोत्तर चमत्कारोंसे भरा हुआ है, जिसे पढ़कर वैदिक सनातन-धर्मके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंके प्रति साधकोंकी आस्था दृढ़ हो जाती है। उनके जीवन-कालमें घटित प्रसंगोंको दूर रखकर उनके द्वारा निर्मित साहित्यका भी विचार किया जाय तो मन आश्चर्यमें डूब जाता है। संत श्रीज्ञानेश्वरजी महाराजसे कृपा-प्राप्त इन महात्माने जो उपदेश किया, उसमेंसे केवल एक-तिहाई अंश ही उस समय लिपिबद्ध हो पाया और यह एक तृतीयांश साहित्य भी एक सौ तीस ग्रन्थोंसे अधिक है तथा वेदोंसे लेकर आधुनिकतम विज्ञानतक लगभग सभी विषयोंका गहन प्रतिपादन तथा बेजोड़ समीक्षा उसमें उपलब्ध होती है। आर्य ऋषियोंके समस्त सिद्धान्त सर्वथा सत्य हैं—इसे बुद्धिनिष्ठ तर्कोंसे प्रमाणित किया जाय, यही

श्रीमहाराजके सम्पूर्ण वाङ्मय-निर्माणकी एकमात्र प्रेरणा तथा प्रतिज्ञा है।

योग, वेदान्त, दर्शनशास्त्र, भक्तिशास्त्र तथा संगीत आदि अनेक विषयोंके समान श्रीमहाराजने आयुर्वेदमें भी मौलिक लेखनका सूत्रपात किया है। उनके मानसायुर्वेद, भिषगीन्द्रशचीप्रभा, वैद्यनन्दिनी, वैद्यवृन्दावन, भिषक्पाटव-जैसे लघु ग्रन्थोंसे इस विषयके गहन ज्ञानका अनुमान किया जा सकता है। दैववशात् ये ग्रन्थ पूर्ण नहीं हो पाये, किंतु सम्प्रति जो उपलब्ध हैं वे भी आरोग्यप्राप्ति तथा रोग-चिकित्सामें सर्वथा नूतन दृष्टि प्रदान करनेमें समर्थ हैं। श्रीमहाराजके संस्कृत और मराठी भाषामें किये गये आयुर्वेदविषयक मार्गदर्शनका सार प्रस्तुत करनेका यहाँ प्रयास किया गया है—

श्रीमहाराजकी आयुर्वेदविषयक ग्रन्थ-रचना केवल व्याधि ठीक करनेके लिये ही नहीं, अपितु पामर-विषयी-मुमुक्षु तथा सिद्ध—इन सभीको स्वास्थ्य लाभ होकर यथाक्रम चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति हो सके—यह दृष्टि रखते हुए हुई है। पारमार्थिक साधकके लिये भी शरीर नीरोग तथा मन स्वस्थ रखना आवश्यक है। उत्तम स्वास्थ्य परमार्थ-साधनाका भी महत्त्वपूर्ण सोपान है, इसलिये यह विषय धार्मिक लोगोंके लिये भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

आयुर्वेदके अनुसार व्याधि-चिकित्साके दो अङ्ग हैं—'रोगानुत्पादनीय' अर्थात् व्याधि हो ही नहीं इसलिये प्रयास किया जाय और 'रोगनिवर्तनीय' अर्थात् व्याधि उत्पन्न होनेपर उसे दूर करनेका प्रयास किया जाय। इनमें आयुर्वेदकी दृष्टिसे प्रथम अङ्गका महत्त्व अधिक है। दैनन्दिन जीवन-व्यवहारकी रचना ही ऐसी हो कि रोग हो ही नहीं। इस अङ्गकी ओर पर्याप्त ध्यान देना आवश्यक है। रोगका प्रादुर्भाव हो ही नहीं, इसलिये यह जानना आवश्यक है कि रोगोंका मूल कारण क्या है?

श्रीमहाराजने प्राचीन ग्रन्थोंका प्रमाण देते हुए प्रतिपादन किया है कि रोगोंका मूल कारण चित्त-विकार अथवा अशुद्ध-चित्त है। अशुद्ध चित्तके तीव्र संवेगसे दोष प्रादुर्भूत होते हैं और दूषित चित्त रोगोंका मूल कारण है—

तीव्ररागाद् भवेद् वातो द्वेषात् पित्तं प्रजायते।
कफः संजायते मोहात् तमसोऽपि जडः स्मृतः॥
अतश्चित्तमशुद्धं हि तीव्रं चेद् दोषतामियात्।
रागादिदूषितं चित्तं गदजालं तनोति हि॥

(मानसायुर्वेद)

अर्थात् आसक्तिके तीव्र संवेगसे वात, द्वेषके तीव्र संवेगसे पित्त और मोहके तीव्र संवेगसे कफ दूषित हो जाता है। तमके तीव्र संवेगसे जडताका उत्पन्न होना बतलाया गया है। जब जडता उत्पन्न हो जाती है, तब चित्तमें अशुद्धि आ जाती है। राग आदिसे दूषित चित्त अनेक रोगोंका कारण बन जाता है।

'कामशोकभयाद् वायुः। क्रोधात् पित्तम्०' ऐसा कहकर माधवनिदानकार भी इसीका प्रतिपादन करते हैं।

रोग तीन प्रकारके होते हैं—कर्मज, दोषज तथा उभयज। कर्मज वे हैं जो अयोग्य कर्मसे उत्पन्न होते हैं। दोषज वे हैं जो त्रिदोषोंसे उत्पन्न होते हैं और दोनोंसे उत्पन्न उभयज कहलाते हैं। कर्मज रोग औषधिसे नहीं, जप-तप-अनुष्ठानादि कर्मोंसे दूर होते हैं। दोषज रोग औषधिसे ठीक होते हैं और उभयज रोग औषधिसे दबते हैं, किंतु फिर प्रादुर्भूत होते हैं तथा औषधिके साथ-साथ जप-तप-दान आदिसे नष्ट होते हैं।

जिससे पीडा होती है, वे सभी रोग कहे जा सकते हैं। इन रोगोंके फिर चार प्रकार होते हैं—(१) शारीरिक, (२) मानसिक, (३) आगन्तुक तथा (४) स्वाभाविक। शरीरको होनेवाले शारीरिक, मनको होनेवाले मानसोन्माद (हिस्टीरिया) तथा काम, क्रोध और शोक आदि मानसिक कहे जाते हैं। आगन्तुक यानी दैवी दुर्घटना-जैसे बिजली गिरना आदि है। भूख-प्यास आदि जन्मसे ही रोज अनुभूत पीडाएँ स्वाभाविक हैं। शरीर-रोग औषधिसे दूर होते हैं। मानसरोग धैर्यसे अथवा उत्तम धर्मपालनसे दूर होते हैं। आगन्तुक रोग दैवी शान्ति तथा औषधिसे दूर होते हैं।

आयुर्वेदमें त्रिदोषका विचार है। वह महत्त्वपूर्ण भी है, किंतु आयुर्वेदने प्रायः बहुतसे रोगोंका कारण त्रिदोष है ऐसा कहनेपर भी सभी रोगोंका कारण त्रिदोष नहीं कहा है। मुख्यतया मनोविकृतिको सभी रोगोंका कारण कहा है। दोष

कर्मोंसे नियन्त्रित होते हैं तथा गलत कर्मका कारण प्रज्ञापराध है—ऐसा वृद्ध वाग्भटके भूतोन्माद प्रकरणमें कहा गया है। चरकाचार्यजीने जनपदोध्वंसनीय नामक तृतीयाध्यायमें यही संकेत किया है। मनोविकारोंसे ही त्रिदोषोत्पत्ति कही है। त्रिदोषोंसे मनोविकारोंका प्रादुर्भाव नहीं कहा है।

काम शोकभयाद् वायुः क्रोधात् पित्तं त्रयो मलाः।

ऐसा माधवनिदानकारने स्पष्ट कहा है। वाग्भटने भी—

रागादिरोगान् सततानुषक्ता-
नशेषकायप्रसृतानशेषान्।
औत्सुक्यमोहारतिदाञ्झघान
योऽपूर्ववैद्याय नमोऽस्तु तस्मै॥

—इस अपने मङ्गलाचरणमें सभी रोगोंका कारण मनोविकार ही है, यह स्पष्ट-रूपसे मान्य किया है।

श्रीमहाराजकी दृष्टिसे आयुर्वेदने रोगोंका मूल कारण जन्तु (कीटाणु) नहीं माना है, अपितु मनोविकारोंके कारण रोगके कीटाणुओंका प्रादुर्भाव माना है। कीटाणु रोगका कारण नहीं, लक्षण हैं। मुख्यतया पहले विभिन्न सूक्ष्म मनोविकारोंके कारण इन कीटाणुओंका निर्माण होता है और वे रोगके सहकारी कारण बनकर व्याधिको प्रकट तथा वृद्धिंगत करते रहते हैं। सभी रोगोंका मूल कारण तो अशुद्ध चित्त ही है।

इसीलिये व्याधि-चिकित्सामें सर्वप्रथम व्याधिका निर्माण ही न हो इसलिये चित्तको शुद्ध रखना सर्वाधिक आवश्यक है। चित्त काम-क्रोध-भय-शोक तथा मत्सर आदि विकारोंसे सर्वथा मुक्त रहे तो व्याधिका प्रादुर्भाव ही न हो। इससे यह स्पष्ट होता है कि जीवन यदि धार्मिक, सदाचार-सम्पन्न होगा तो आरोग्य तथा दीर्घ आयुका लाभ अवश्य प्राप्त होगा।

इसीलिये महाराज अपनी मानसायुर्वेद-संहितामें कहते हैं—

सर्वेषामेव रोगाणामधर्मं कारणं महत्।
आरोग्यकारको धर्मो वैद्यशास्त्रेऽपि बोधितः॥

तथा

प्रसन्नचेतसः सौख्यमारोग्यं च भवेत् सदा।
अप्रसन्नस्य चित्तस्य रोगाः सर्वे भवन्ति हि॥

सदाचारसम्पन्न शान्त मन ही सभी ज्वरोंके नाश करनेका सही उपाय है यही वाग्भटाचार्य कहते हैं—

करुणार्द्रं मनः शुद्धं सर्वज्वरविनाशनम्।

(अष्टाङ्गहृदय चिकित्सा-स्थान)

रोग-चिकित्सामें औषधियोंका लाभ भी इसी कारणसे होता है कि औषधियोंमें चन्द्रमासे रस आता है। जैसा कि भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।

और चन्द्रमाका आविर्भाव भी समष्टि मनसे ही हुआ है—

चन्द्रमा मनसो जातः।

(पुरुषसूक्त)

तात्पर्य यह कि समष्टि मनसे उद्भूत चन्द्रमासे प्राप्त रस ओषधियोंमें आकर औषधिके माध्यमसे व्यष्टि मनपर अनुकूल परिणाम करके सूक्ष्म मनोदोषोंका निवारण करते हुए ही स्थूल रोगका निवारण करता है। सत्त्वगुणसम्पन्न मनमेंसे यह सोमप्रवाह रोगीको अमृतमय करके रोगमुक्त करता है। इसी कारण वाग्भटने जितेन्द्रिय, क्रोधरहित, सत्यवादी धार्मिक पुरुषको 'रसायन' यानी सभी व्याधियोंका निवारणकर्ता कहा है—

सत्यवादिनमक्रोधमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम्।
सद्वृत्तनिरतं शान्तं विद्यान्नित्यं रसायनम्॥

स्पष्ट है कि धर्मसम्पन्न सदाचारी जीवन तथा संत-संगतिसे व्याधियोंका समूल नाश होना सम्भव है।

ये सभी विचार इसलिये महत्त्वपूर्ण हैं कि भौतिकताकी चकाचौंधमें विषयोंके पीछे पागल होकर सुख चाहनेवालोंका भ्रम मिट जाय और धर्माचरण, भगवद्भक्ति तथा सत्संगतिकी महत्ताका आकलन हो जाय तो सभीका परम कल्याण होगा। आर्य वैद्यकशास्त्र ईश्वरनिष्ठा तथा आध्यात्मिक नींवपर खड़ा है और इसीके स्वीकारसे सभीका ऐहिक तथा पारमार्थिक पूर्ण हित होना सम्भव है। एक महत्त्वपूर्ण विषयका यह स्वल्प परिचयमात्र है।

आयुष्कालका रहस्य या आयुकी अभिवृद्धि

(डॉ० श्रीत्रिभोवनदास दामोदरदासजी सेठ)

दुर्लभ मनुष्यदेह बार-बार नहीं मिलता। इसलिये हृदयमें हरि-नामसे प्रेम धारण करनेका प्रयत्न करो। यदि एक बार दृढ़ निश्चय कर लो कि प्रभु-प्राप्ति करके ही रहूँगा तो फिर ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो तुम्हें प्रभु-प्राप्तिके मार्गसे हटा दे। भगवत्साक्षात्कार करके मानवजीवनको धन्य तथा सफल बनाना है। इसके लिये आयुवृद्धि और स्वास्थ्य-रक्षाके लिये प्रयत्नशील रहना अपना कर्तव्य है—

आचार्य कहते हैं—'इदं शरीरं खलु धर्मसाधनम्।' तथा—

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः।
सर्वकार्येष्वन्तरङ्गं शरीरस्य हि रक्षणम्॥

'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्तिके लिये नीरोग तथा स्वस्थ शरीर ही मुख्य साधन है। इसलिये शरीरकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये।' वेदमें भी दीर्घ जीवनकी प्राप्तिके लिये बार-बार कहा गया है—

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥ (अथर्ववेद १९।७१।१)

'ब्राह्मणोंको पवित्र करनेवाली, वरदान देनेवाली वेदमाता गायत्रीकी हम स्तुति करते हैं। वे हमें आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन और ब्रह्मतेज प्रदान करके ब्रह्मलोकमें जायें।'

इस मन्त्रमें सबसे प्रथम आयुका उल्लेख किया गया है। आयुके बिना प्रजा, कीर्ति, धन आदिका कुछ भी मूल्य नहीं है। आत्माके बिना देहका कोई मूल्य नहीं। यही बात आयुके विषयमें है। सौ वर्षकी आयुके लिये अनेक प्रार्थनाएँ देखनेमें आती हैं।

दीर्घ जीवनके लिये अथवा मृत्युको दूर करनेके लिये छः बातें आवश्यक हैं—(१) ब्रह्मचर्य, (२) प्राणायाम, (३) प्रणव-जप, (४) सिद्ध पुरुषकी कृपा, (५) ओषधि तथा रसायन-सेवन और (६) मिताहार। आयुकी रक्षा और वृद्धिके ये छः स्तम्भ हैं।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवभ्यः स्वराभरत्॥

(अथर्ववेद ११।५।१९)

'ब्रह्मचर्यरूपी तपसे विद्वानोंने मृत्युको दूर हटा दिया। इन्द्रने भी ब्रह्मचर्यके प्रतापसे देवताओंको सुख और तेज प्रदान किया।' यह मन्त्र आज्ञा देता है कि मृत्युको दूर करनेके लिये ब्रह्मचर्यका पालन अवश्य करो। ब्रह्मचर्यकी महिमाको मनुष्यने जबसे भुलाया, तभीसे उसका अधःपतन आरम्भ हो गया। जीवनमें उबाल, मेधाकी अप्रतिम शक्ति, जीवनकी मस्ती, यौवनका सात्त्विक उल्लास, आकृतिका ओजस्, वाणीकी दृढ़ता, कार्यकी दृढ़ता, सच्चे साहसकी स्वाभाविकता, जीवनमें चापल्य और चाञ्चल्य—ये सब पूर्ण ब्रह्मचर्यके चिह्न हैं।

वैज्ञानिकोंने यह निश्चय किया है कि ८० पाउंड भोजनसे ८० तोला खून बनता है और ८० तोला खूनसे दो तोला वीर्य बनता है। एक मासकी कमाई डेढ़ तोला वीर्य है। एक बार ब्रह्मचर्य-भङ्ग होनेसे लगभग डेढ़ तोला वीर्य निकलता है। इससे आयु घटती जाती है। कठिन परिश्रमसे प्राप्त की हुई शक्तिको एक बारमें नष्ट कर देना कैसी मूर्खता है। यही वीर्य यदि नष्ट न हो, तो ओजस् बनकर सारे शरीरको तेजस्वी बना देता है। इसी कारण कहा है—

'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।'

'वीर्यका नाश मृत्यु है और वीर्यकी रक्षा जीवन है।'

गुरुके सांनिध्यमें रहकर प्राणायाम करना सीखना चाहिये और फिर उसका अभ्यास बढ़ाना चाहिये। स्वरोदयके अनुसार एक दिनमें अर्थात् चौबीस घंटेमें मनुष्यके औसत इक्कीस हजार छः सौ श्वास चलते हैं। उनमें जितनी कमी की जाय उतनी ही आयु बढ़ जाती है तथा जितने ही श्वास बढ़ते हैं, उतनी ही आयु घट जाती है।

मैथुनक्रिया, क्रोध, उत्तेजना, हिंसा, आवेश, अतिहर्ष, दौड़ना आदिमें श्वास जल्दी-जल्दी चलकर बढ़ जाते हैं,

जिससे आयु घटती है और प्राणायाम, ध्यान, शान्ति, क्षमा, ब्रह्मचर्य, नम्रता, धीरे-धीरे चलना आदिमें श्वास धीमी गतिसे चलते हैं, अतः आयु बढ़ती है। आयुकी अवधि श्वासोंपर निर्धारित है, कालपर नहीं। आयुके घटने-बढ़नेका यह रहस्य निरन्तर स्मरण रखना चाहिये। मनुष्यको जहाँतक हो सके, जल्दी-जल्दी और लघु श्वास नहीं लेना चाहिये, प्रत्युत ऐसी आदत डालनी चाहिये कि श्वास लंबा हो और धीरे-धीरे चले। प्राणायाम इसका एक मुख्य साधन है। परंतु प्रत्येक मनुष्य प्राणायाम नहीं कर सकता, इसलिये दीर्घ श्वास-प्रश्वासकी क्रिया नीचे लिखे अनुसार करनेसे उद्देश्यकी सिद्धि हो सकती है।

प्रत्येक मनुष्यको प्रातः सूर्योदयसे पूर्व उठना चाहिये। मल-मूत्रका त्याग करके स्नान करे। तत्पश्चात् पृथिवीपर कम्बल या दरी बिछाकर सिरके नीचे बिना कोई तकिया रखे लेट जाय। हाथ-पैरको ढीला रखे। कमरका बन्धन ढीला करे और मुँह बंद करके नाकसे श्वास ले। श्वास इस प्रकार ले कि नाभिके साथ-साथ पेट फूलता जाय। इस प्रकार पेट भर जानेपर मुँह बंद रखते हुए नाकके द्वारा यों श्वास छोड़े कि धीरे-धीरे पेट बैठता चला जाय। नाकसे श्वास लेने और छोड़नेका समय एक-सा होना चाहिये। परंतु यह समय घड़ीसे मापना ठीक नहीं। प्रभुकी प्रार्थनासे एक चरण-पद लेकर मनमें एक बार जबतक पाठ होता रहे, तबतक श्वास ले; और पश्चात् वही पाठ एक बार होता रहे, तबतक श्वास छोड़े। पश्चात् जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जाय, वैसे-वैसे प्रार्थनाके पाठकी मात्रा बढ़ाता जाय। उसका दूसरा चरण ले ले (अथवा प्रार्थनाके स्थानमें भगवान्के नामका जप करता रहे)। अर्थात् जितने समयमें चौबीस अक्षरका उच्चारण हो, उतने समयतक श्वास लेने और उतने ही समयतक श्वास छोड़नेका अभ्यास करे। इस प्रकार कम-से-कम सात बार और अधिक-से-अधिक इक्कीस बार श्वास लेने-छोड़नेका नियमित अभ्यास करे। यह विशेष रूपसे याद रखे कि श्वास लेनेमें वायु नाभिपर्यन्त पहुँचता है या नहीं और श्वास छोड़ते समय नाभि खाली हो जाती है या नहीं। इस प्रकार क्रिया करनेके बाद दिन-रात यह ध्यान रखे कि श्वास छोटा तो नहीं हो रहा है। इसकी परीक्षा स्वयं ही की जा सकती है।

यदि यह क्रिया बराबर होती रहेगी तो इसे करनेवालेका मल साफ उतरेगा, पेशाब ठंडा होगा, भूख खूब लगेगी। खाया हुआ भोजन अधिक पचेगा, आँखका तेज बढ़ेगा। सिरमें आनेवाला चक्कर और दिमागकी गरमी शान्त होगी। शरीरमें शक्ति बढ़ने लगेगी।

किंतु यह क्रिया ठीक न होती होगी तो श्वास लेनेकी अपेक्षा छोड़नेमें समय कम लगेगा। ऐसी अवस्थामें उपर्युक्त गुणोंकी अपेक्षा विरुद्ध परिणाम निकलेगा। यदि कभी आवश्यक कार्यवश अधिक श्रम होनेके कारण श्वास जोर-जोरसे चलने लगे तो घबराकर मुँहसे श्वास न ले। अपितु मुँह बंद रखकर नाकसे श्वास लेते रहनेसे थोड़ी ही देरमें श्वास नियमित हो जायगा और थकावट दूर हो जायगी।

जैसे-जैसे नाभिसे श्वास निकालकर बाहर हवामें फेंका जायगा और बाहर हवामें शुद्ध हुए श्वासको नाकके द्वारा नाभिपर्यन्त पहुँचाया जायगा, वैसे-वैसे विष्णुपादामृतकी प्राप्ति अधिकाधिक होती जायगी; इस प्रकार दीर्घ जीवन प्राप्त करनेमें सफलता मिलेगी।

प्रणव-मन्त्रके जपसे आयु बढ़ती है। तैलधारावत् इस मन्त्रका जप श्वास-श्वासमें चलना चाहिये। नाडीके साथ प्रणव-मन्त्रका जप करनेसे बहुत शीघ्र प्रगति होती है। श्वास-प्रश्वासकी गति तालबद्ध बनती है। धातु और रसायनके विशेष योगसे विद्युत्-शक्ति प्रकट होती है। इसी प्रकार श्वास-प्रश्वासके साथ प्रणव-मन्त्रका जप करनेसे अमोघ शक्ति उत्पन्न होती है। अखण्ड गतिसे जप करनेसे मन उसमें स्थिर हो जाता है। जैसे चुंबकके सामने लोहा रखनेसे तुरंत ही वह लोहेको खींच लेता है, केवल चुंबककी शक्तिके पास लोहा आना चाहिये; इसी प्रकार अखण्ड प्रणव-मन्त्रका जप चुंबकके समान है, चित्तवृत्तियाँ लोहेके समान हैं। ये दोनों समीप आ जायँ तो प्रणव-मन्त्रका जप वृत्तियोंको खींच लेता है और वृत्तियाँ प्रणवमय बन जाती हैं। इस प्रकार दीर्घ जीवन और प्रभु-प्राप्तिकी साधना—दोनों साथ-साथ आगे बढ़ते हैं और जीवनका ध्येय सफल हो जाता है।

सिद्ध पुरुषकी कृपा भी इसमें विशेषरूपसे सहायक होती है। यदि ऐसे पुरुषकी कृपा हो तो दीर्घ जीवन और प्रभु-प्राप्ति दोनों ही सत्वर प्राप्त होते हैं।

मुमुक्षु आत्मसाक्षात्कार तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। परंतु इसका साधन भी शरीर ही है। यदि

बीचमें ही शरीरका पतन हो जाय तो अन्तिम लक्ष्य-स्थानतक पहुँचनेमें दीर्घ कालतक समय बिताना पड़ता है। बार-बार जन्म लेने और देह-त्याग करनेमें बहुत समय नष्ट होता है। अतएव किसी भी उपायसे शरीर सशक्त और स्वस्थ बना रहे तथा दीर्घ कालतक टिका रहे तो प्रभुकी प्राप्तिमें सहायक हो सकता है। शरीरको बलवान् बनानेमें शास्त्रोक्त औषध और रसायनका. सेवन भी बहुत काम करता है। कायाकल्पके प्रयोगसे शरीरको फिर तरुण-जैसा बलवान् बनाया जा सकता है। अमृत पीनेसे यह देह अमर हो जाता है। बहुतसे योगियोंका मत है कि हमारे परम गुरु मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ आदि आज भी अपने असली शरीरसे विद्यमान हैं। अश्वत्थामाके विषयमें भी यही बात कही जाती है। अतएव औषध और रसायनका सेवन करनेसे अपने ध्येयमें पर्याप्त सहायता मिलती है।

मिताहार शरीरको स्वस्थ बनाये रखनेमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। मिताहारका अर्थ है—पेटमें दो भाग भोजनसे, एक भाग जलसे भरे और एक भाग हवाके लिये खाली रखे। खाना तभी चाहिये जब भूख लगे।

आयुकी वृद्धि एवं जीवनके परम लक्ष्य प्रभुकी प्राप्तिके उपर्युक्त छः उपायोंका श्रद्धा तथा दृढ़तापूर्वक सेवन करके जीवनको सफल बनाना चाहिये।



प्राणवायु और आयुका सम्बन्ध

(आचार्य पं० श्रीचन्द्रभूषणजी ओझा)

अनन्त ब्रह्माण्डमें प्राण-तत्त्व ही चेतना-समुद्रकी तरह हिलोरा ले रहा है। ब्रह्म चेतनाकी ऊर्जा अर्थात् विश्वव्यापी शक्ति चेतना ही 'प्राण' है। 'प्राण' मात्र श्वास नहीं है, प्रत्युत वह तत्त्व है, जिससे श्वास-प्रश्वास आदि समस्त क्रियाएँ एक जीवित शरीरमें होती हैं।

प्राण ही ब्रह्म तथा विराट् है, वही सबका प्रेरक है। इसीसे सभी उसकी उपासना करते हैं। प्राण ही सूर्य है, चन्द्रमा है और वही प्रजापति है।

सृष्टिके आरम्भमें पाँचों स्थूल भूतों, लोक-लोकान्तर और सम्पूर्ण जङ्गम तथा स्थावर पदार्थ अपने उपादानकारण आकाशसे प्राण-शक्तिद्वारा उत्पन्न होते हैं, इसी प्राण-शक्तिद्वारा आश्रय पाकर जीवित रहते हैं और प्रलयके समय इसीका आश्रय न पाकर कार्यरूपसे नष्ट होकर अपने कारणरूप आकाशमें मिल जाते हैं। ये सभी भूत प्राणमें लीन होते हैं और प्राणसे प्रादुर्भूत होते हैं। देवता, मनुष्य तथा पशु आदि भी प्राणके सहारे ही साँस लेते हैं। इसीलिये प्राण ही सभी जन्तुओंकी आयु है, यही कारण है कि इसको 'सर्वायुष्' कहा जाता है। शरीररूपी पुरीमें निवास करनेसे तथा उसका स्वामी होनेके कारण 'प्राण' ही पुरुष कहा जाता है। जबतक इस शरीरमें प्राण है तभीतक जीवन है।

श्रुतिमें प्राणको प्रत्यक्ष मानकर उसका अभिनन्दन किया गया है— **वायो त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मासि** (ऋग्वेद)। अर्थात् प्राणवायु! आप प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं। प्राण ही जगत्का कारण-ब्रह्म है। मन्त्रज्ञान तथा पञ्चकोश प्राणपर ही आधारित हैं। प्राणको ही ऋषि माना गया है। मन्त्र-द्रष्टा ऋषियोंको उनके शरीरके आधारपर नहीं वरन् प्राणके ही आधारपर 'ऋषित्व' प्राप्त हुआ है। यही कारण है कि विभिन्न ऋषियोंके नामसे उसका ही उल्लेख हुआ है। उदाहरणार्थ इन्द्रियोंके नियन्त्रणको 'गृत्स' और कामदेवको 'मद' कहते हैं, ये दोनों ही कार्य प्राणशक्तिके द्वारा सम्पन्न होते हैं, इसलिये उन ऋषिको 'गृत्समद' कहते हैं। **'विश्वं मित्रं यस्य असौ विश्वामित्रम्'** तात्पर्य यह कि प्राणका अवलम्बन होनेसे यह समस्त विश्व मित्र है, इसलिये विश्वामित्र कहा गया। इसी प्रकार वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ आदि प्राणके अनेकों नाम ऋषि-बोधक हैं।

काया-नगरीमें प्राणवायु ही राजा है—**'कायानगरमध्ये तु मारुतः क्षितिपालकः।'** अर्थात् देवता, मनुष्य, पशु और समस्त प्राणी प्राणसे ही अनुप्राणित हैं। प्राण ही जीवन है। इस प्राण-शक्तिका एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण विज्ञान है। योग-साधनासे इस विज्ञानको प्रत्यक्ष अनुभूत किया जाता है। जिसने अपने सोते हुए प्राणको जगा लिया, उसके लिये सब ओर जाग्रत्-ऊर्जाका स्रोत प्रवाहित होने लगा।

मानव-शरीरमें वृत्तिके कार्यभेदसे इस प्राणवायुको

मुख्यतया दस भिन्न-भिन्न नामोंसे विभक्त किया गया है—

प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः।
नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनंजयः॥

(गोरक्षसंहिता)

अर्थात् प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय—ये दस प्रकारके प्राण-वायु हैं।

श्वासको अंदर ले जाना और बाहर निकालना, मुख और नासिकाद्वारा उसे गतिशील करना, भुक्त अन्न-जलको पचाना और अलग करना, अन्नको पुरीष तथा पानीको पसीना और मूत्र तथा रसादिको वीर्य बनाना प्राणवायुका ही कार्य है। यह हृदयसे लेकर नासिकापर्यन्त शरीरके ऊपरी भागमें वर्तमान है। ऊपरकी इन्द्रियोंका काम इसके आश्रित है। अपानवायुका कार्य गुदासे मल, उपस्थसे मूत्र और अण्डकोशसे वीर्य निकालना तथा गर्भ आदिको नीचे ले जाना एवं कमर, घुटने और जाँघका कार्य करना है। समानवायु देहके मध्य भागमें नाभिसे हृदयतक वर्तमान है। पचे हुए रस आदिको सब अङ्गों और नाडियोंमें बराबर बाँटना इसका कार्य है। कण्ठमें रहता हुआ उदानवायु सिरपर्यन्त गति करनेवाला है। शरीरको उठाये रखना इसका काम है। इसके द्वारा शरीरके व्यष्टि प्राणका समष्टि प्राणसे सम्बन्ध होता है। उदानद्वारा ही मृत्युके समय सूक्ष्म शरीरको स्थूल शरीरसे बाहर निकालना तथा सूक्ष्म शरीरके कर्म, गुण, वासनाओं और संस्कारोंके अनुसार गर्भमें प्रवेश होना है। योगिजन इसीके द्वारा स्थूल शरीरसे निकलकर लोकलोकान्तरमें घूम सकते हैं। व्यानका मुख्य स्थान उपस्थ-मूलसे ऊपर है। सम्पूर्ण स्थूल और सूक्ष्म नाडियोंमें गति करता हुआ यह शरीरके सभी अङ्गोंमें रुधिरका संचार करता है। नागवायु उद्गार (छींकना) आदि, कूर्मवायु संकोचन, कृकरवायु क्षुधा-तृष्णादि, देवदत्तवायु निद्रा-तन्द्रा आदि और धनंजयवायु पोषण आदिका कार्य करता है।

प्राणोंको अपने अधिकारमें चलानेवाले मनुष्यका अधिकार उसके शरीर, इन्द्रियों तथा मनपर हो जाता है। प्राणोंको अपने वशमें करनेका नाम 'प्राणायाम' है। प्राणायामसे मनुष्य स्वस्थ एवं नीरोग तथा दीर्घायु रहकर मन और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर सकता है। मनका प्राणसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनको रोकना अति कठिन है, पर प्राणके निरोधसे मनका निरोध सुगम हो जाता है। इसीलिये प्राणायामका मनुष्य-जीवनमें आत्यन्तिक महत्त्व है।

सूक्ष्म प्राण—मनुष्यके शरीरमें प्राणप्रवाहिनी नाडियाँ असंख्य हैं, इनमें पंद्रह प्रमुख हैं—(१) सुषुम्णा, (२) इडा, (३) पिंगला, (४) गांधारी, (५) हस्तिजिह्वा, (६) पूषा, (७) यशस्विनी, (८) शूरा, (९) कुहू, (१०) सरस्वती, (११) वारुणी, (१२) अलम्बुषा, (१३) विश्वोदरी, (१४) शङ्खिनी और (१५) चित्रा।

'सुषुम्णा, इडा, पिंगला'—ये तीन नाडियाँ प्रधान हैं। इन तीनोंमें सुषुम्णा सर्वश्रेष्ठ है। यह नाडी अति सूक्ष्म नलीके सदृश है, जो गुदाके निकटसे मेरुदण्डके भीतरसे होती हुई मस्तिष्कके ऊपर चली गयी है। इसी स्थानसे इसके वामभागसे इडा और दक्षिणभागसे पिंगला नासिकाके मूलपर्यन्त चली गयी है। वहाँ भ्रूमध्यमें ये तीनों नाडियाँ परस्पर मिल जाती हैं। सुषुम्णाको सरस्वती, इडाको गङ्गा और पिंगलाको यमुना भी कहते हैं। गुदाके समीप जहाँ ये तीनों नाडियाँ पृथक् होती हैं, उनको 'मुक्त-त्रिवेणी' और भ्रूमध्यमें जहाँ ये तीनों पुनः मिल गयी हैं, उनको 'युक्त-त्रिवेणी' कहते हैं।

इडाको चन्द्रनाडी और पिंगलाको सूर्यनाडी कहते हैं। जब बायें नथुनेसे श्वास अधिक वेगसे निकले या चलता रहे तो उसे इडा या चन्द्रस्वर कहते हैं और जब दायेंसे अधिक वेगसे निकले तो उसे पिंगला या सूर्यस्वर कहते हैं। जब दोनों नथुनोंसे श्वास समान गतिसे अथवा एक क्षण एक नथुनेसे दूसरे क्षण दूसरे नथुनेसे निःसृत हो तो उसे सुषुम्णास्वर कहते हैं।

स्वस्थ मनुष्यका स्वर प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदयके समयसे ढाई-ढाई घड़ीके हिसाबसे क्रमशः एक-एक नथुनेसे चला करता है। इस प्रकार एक दिन-रातमें बारह बार बायें और बारह बार ही दायें नथुनेसे क्रमानुसार श्वास चलता है। शारीरिक विकार एवं रोगकी अवस्थामें स्वर अनियमित चलने लगते हैं। जुकामकी अवस्थामें अपने प्रयत्नद्वारा स्वरको बदलनेसे रोग-निवृत्तिमें बड़ी सहायता मिलती है।

जब इडा अर्थात् चन्द्र वामस्वर चल रहा हो तो स्थायी कार्य करना चाहिये। इसमें अल्प श्रम और प्रबन्धकी आवश्यकता हो तथा दूध-जल आदि तरल पदार्थोंके पीने, पेशाब करने, यात्रा और भजन-साधन आदि शान्तिके कार्य

करने चाहिये। पिंगला अर्थात् सूर्य दायें स्वर चलनेके समय अधिक कठिन कार्य करने चाहिये, जिसमें अधिक परिश्रम अपेक्षित हो तथा कठिन यात्रा, परिश्रमके कार्य, भोजन, शौच, स्नान और शयन आदि करने चाहिये।

जब दोनों स्वर सम अथवा एक-एक क्षणमें बदलते हुए चल रहे हों तो इस स्थितिमें योग-साधन तथा सात्त्विक धर्मार्थकार्य करने चाहिये। यदि सुषुम्णास्वर नहीं चल रहा हो तो ध्यानादिसे पूर्व प्राणायाम अवश्य करना चाहिये।

सामान्यतया प्राणायाम श्वासोच्छ्वासकी एक व्यायाम-पद्धति है, जिससे फेफड़े बलिष्ठ होते हैं, रक्त-संचारकी व्यवस्था सुधरनेसे समग्र आरोग्य एवं दीर्घ आयुका लाभ मिलता है। शरीर-विज्ञानके अनुसार मानवके दोनों फेफड़े साँसको अपने भीतर भरनेके लिये वे यन्त्र हैं जिनमें भरी हुई वायु समस्त शरीरमें पहुँचकर ओषजन अर्थात् आक्सिजन प्रदान करती है और विभिन्न अवयवोंसे उत्पन्न हुई मलिनता (कार्बोनिक गैस)-को निकालकर बाहर करती है। यह क्रिया ठीक तरह होती रहनेसे फेफड़े मजबूत होते हैं और रक्त-शोधनका कार्य चलता रहता है।

प्राय: ऐसा देखा जाता है कि अधिकांश व्यक्ति गहरी साँस लेनेके अभ्यस्त नहीं होते हैं, वे उथली साँस ही लेते हैं, जिससे फेफड़ोंका लगभग एक चौथाई ही भाग कार्य करता है, शेष तीन चौथाई भाग लगभग निष्क्रिय पड़ा रहता है। शहदकी मक्खीके छत्तेकी तरह फेफड़ोंमें प्राय: सात करोड़ तीस लाख 'स्पंज' जैसे कोष्ठक होते हैं। साधारण हलकी साँस लेनेपर उनमेंसे लगभग दो करोड़ छिद्रोंमें ही प्राणवायुका संचार होता है, शेष पाँच करोड़ तीस लाख छिद्रोंमें प्राणवायु न पहुँचनेसे ये निष्क्रिय पड़े रहते हैं। परिणामत: इनमें जड़ता और गंदगी जमने लगती है, जिससे क्षय (टी०बी०), खाँसी, ब्रौंकाइटिस आदि भयंकर रोगोंसे व्यक्ति आक्रान्त हो जाता है।

इस प्रकार फेफड़ोंकी कार्य-पद्धतिका अधूरापन रक्त-शुद्धिपर प्रभाव डालता है। हृदय कमजोर पड़ता है और परिणामत: अकालमृत्यु नित्य ही उपस्थित रहती है, इस स्थितिमें प्राणायामकी महत्ता व्यक्तिकी दीर्घ आयुके लिये अत्यधिक हो जाती है। विभिन्न रोगोंका निवारण प्राण-वायुका प्राणायामके द्वारा नियमन करनेसे आसानीसे किया जा सकता है। इस विज्ञान अर्थात् प्राणवायुके विज्ञानकी जानकारीसे मानव स्वयं तथा दूसरोंके स्वास्थ्यको सुव्यवस्थित करके सुखी एवं आनन्दपूर्ण जीवनका पूर्ण लाभ लेता हुआ अपनी आयुको बढ़ा सकता है। यही कारण है कि प्रत्येक धर्म-कार्यमें, शुभकार्यमें तथा संध्या-वन्दनके नित्य-कर्ममें 'प्राणायाम' को एक आवश्यक धर्मकृत्यके रूपमें सम्मिलित किया गया है।

उद्वेग, चिन्ता, क्रोध, निराशा, भय और कामुकता आदि मनोविकारोंका समाधान 'प्राणायाम' द्वारा सरलतापूर्वक किया जा सकता है। इतना ही नहीं, मस्तिष्ककी क्षमता बढ़ानेमें स्मरण-शक्ति, कुशाग्रता, सूझ-बूझ, दूरदर्शिता, सूक्ष्म निरीक्षण, धारणा, प्रज्ञा, मेधा आदि मानसिक विशेषताओंका अभिवर्धन करके 'प्राणायाम' द्वारा दीर्घजीवी बनकर जीवनका वास्तविक आनन्द प्राप्त किया जा सकता है।

'प्राणायाम' मात्र साँस खींचना और छोड़ना ही नहीं है। यह तो उसकी प्रारम्भिक परिपाटी है। अनेक प्राणायाम ऐसे विलक्षण हैं, जिनमें साँस खींचने-छोड़नेकी आवश्यकता नहीं पड़ती है। उनमें 'प्राणवायु' का आकर्षण एवं विकर्षण ही प्रधान रहता है। 'प्राणवायु' का संचय होनेसे 'समाधि' लगती है। परिणामत: मानव कालको वशमें करके मनचाही अवधितक जीवित रह सकता है और प्राण-त्याग भी उसी सरलतासे कर सकता है।

शरीर और मन 'प्राणशक्ति' से ही चलते हैं। प्राणवायुपर नियन्त्रण करनेकी विधिको जाननेवाला अपने शरीर और मनकी प्रत्येक क्रियापर नियन्त्रण रख सकनेकी क्षमतासे सुसम्पन्न हो जाता है। इस प्रकारके सभी विधि-विधान 'प्राणायाम' विद्याके अन्तर्गत आते हैं। प्राणायामकी महिमाका वर्णन शास्त्रकारोंने इस प्रकार किया है—

प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम्।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्॥

अर्थात् सम्यक् प्राणायामसे शारीरिक दोष दूर होते हैं, कुम्भकसे शरीर और मन—ये दोनों मलरहित होते हैं, धारणासे पाप नष्ट होते हैं, प्रत्याहारसे इन्द्रियोंका संसर्ग छूटता है और ध्यानसे अनीश्वर यानी जिसके ऊपर कोई शासक नहीं है, ऐसे उस परमात्माका ज्ञान प्राप्त होता है।



प्राणतत्त्व

(आचार्य श्रीमुरलीधरजी पाण्डेय, एम्०ए०)

परमात्माकी चर एवं अचर-सृष्टिमें जो क्रियात्मिका शक्ति अथवा जो गत्यात्मिका शक्ति है, उसको प्राणशक्ति कहते हैं। प्राणशक्तिके कारण ही मानव, पशु-पक्षी, कीट-पतंग और वृक्ष, लता-गुल्म एवं पर्वत आदिके अवयवोंमें उपचय तथा अपचयकी वृद्धि एवं ह्रास होते हैं। प्राणशक्तिके कारण ही मनुष्य, पशु, वृक्ष एवं पाषाणके अवयव या अङ्ग विकसित होते हैं। जब इनमें प्राणशक्ति नहीं रह जाती, तब ये सूखने या सड़ने लगते हैं। चर-जगत् यानी मनुष्य तथा पशु आदिमें तो प्राणवियोगके लक्षण सद्यः प्रतीत होने लगते हैं, परंतु वृक्ष आदिमें कुछ विलम्बसे और पाषाण आदिमें तो बहुत ही विलम्बसे प्रतीत होते हैं। भारतमें लोग विन्ध्य-पर्वतको मृत पर्वत अर्थात् प्राणहीन पर्वत कहते हैं और हिमालयको सजीव या सप्राण कहते हैं। कहा जाता है कि हिमालय आज भी बढ़ रहा है। मनुष्य आदिके शरीरमें जो रक्तसंचार है, वह प्राणशक्तिकी ही क्रिया है। वृक्षोंमें जो रसका संचार हो रहा है, वह भी प्राणक्रियासे ही हो रहा है। जीवकी सत्ता तो सर्वत्र है, इसलिये जीव व्यापक है, पर प्राणके संयोग एवं वियोगसे ही शरीरमें जीवकी सत्ता और असत्ताका अनुमान करते हैं। इस तथ्यको अथर्ववेदके इन दो मन्त्रोंमें इस प्रकार कहा गया है—

यत्प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम्।
× × ×
अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन्।
(११।४—६)

छान्दोग्योपनिषद्में यह और भी स्पष्ट कहा गया है—

सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते।
(१।११।५)

प्राणके इस क्रिया-रूप, शक्ति-रूप और सर्वस्थितिकारक रूपको देखकर भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यजीने ब्रह्मसूत्रके प्राणाधिकरण सूत्रमें 'अत एव प्राणः' (१।१।२३)-के भाष्यमें प्राणको ब्रह्मतक कह डाला है—

तस्मात् सिद्धं प्रस्तावदेवतायाः प्राणस्य ब्रह्मत्वम्।

इसी प्रकार—

प्रतर्दनाधिकरणसूत्रमें—'प्राणस्तथानुगमात्' (१।१।२८)-के भाष्य 'अतः उपपन्नः संशयः। तत्र प्रसिद्धेर्वायुः प्राण इति प्राप्ते उच्यते—प्राणशब्दं ब्रह्म विज्ञेयम्। कुतः तथानुगमात्।'—में भी प्राणको ब्रह्म कहा है।

यद्यपि इन दोनों स्थलोंपर प्रकरणवशात् प्राणका अर्थ ब्रह्म करना पड़ा है; किंतु इतना तो मानना ही पड़ता है कि ब्रह्मसे कुछ सादृश्य होनेसे ही प्राणको ब्रह्म कहा गया है।

शरीरस्थित इस शक्तिपर विचार करते हुए आचार्योंने कहा है कि महत्तत्त्वके दो रूप हैं—(१) क्रियाशक्ति तथा (२) ज्ञानशक्ति। इस क्रियाशक्तिको प्राण कहते हैं और इस ज्ञानशक्तिको बुद्धि कहते हैं। इस तथ्यको आचार्योंने कई स्थलोंपर कहा है। जैसे बृहदारण्यकोपनिषद् (१।६।३)-के शाङ्करभाष्यमें—

'कार्यात्मके शरीरावस्थे क्रियात्मकस्तु प्राणः।'

यहीं २।२।१ के शा०भा०में—

प्राणः स्थूणा अन्नपानजनिताशक्तिः प्राणो बलमिति पर्यायः। यही बात २।१।१५ के शा०भा०में भी कही गयी है। इस तथ्यको श्रीविज्ञानभिक्षु ब्रह्मसूत्र— अणुश्च (२।४।१३)-के अपने विज्ञानभाष्यमें और भी स्पष्टरूपसे लिखते हैं—

'महत् तत्त्वस्य रूपद्वयम्-एका क्रियात्मिका शक्तिः प्राणः अपरा अध्यवसायात्मिका शक्तिः बुद्धिः'।

प्राण ही बुद्धि है इस बातको श्रीअप्पयदीक्षितने अपने सिद्धान्तलेशसंग्रहमें इस प्रकार स्वीकारा है—

प्राणाख्यबुद्ध्युत्क्रान्तेः (२ परि० जीवाणुत्वनिरास)-की व्याख्यामें कहा गया है कि—'यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या प्रज्ञा स प्राण इति श्रुतेः'।

सांख्यकारिका (२९)-की तथा पातञ्जलयोगसूत्र (३।३९)-की अपनी व्याख्यामें श्रीवाचस्पति मिश्रने भी यही कहा है।

देवीभागवतमें शक्तिरूप इस प्राणकी बड़ी अच्छी स्तुति की गयी है—

रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः
शूलं कोदण्डभिक्षूद्भवमगुणमप्यङ्कुशं पञ्चबाणान्।

बिभ्राणाऽसृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या
देवी बालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः॥
(११।८।१९)

इस प्राणकी उत्पत्तिके विषयमें शास्त्रोंमें अनेक प्रकार मिलते हैं। वेदान्तपरिभाषामें लिखा है कि परमात्माके ईक्षणसे पञ्चमहाभूत व्यक्त होते हैं। इन्हीं रजोगुणप्रधानभूत पञ्चमहाभूतोंसे प्राणकी उत्पत्ति होती है। जैसे—

रजोगुणोपेतैः पञ्चभूतैरेव मिलितैः पञ्च वायवः
प्राणापानव्यानोदानसमानाख्या जायन्ते।
(वे०प०वि०परि०)

यही बात विद्यारण्य स्वामीने पञ्चदशी ग्रन्थमें लिखी है—

तैः सर्वैः सहितैः प्राणो वृत्तिभेदात् स पञ्चधा।
प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च ते पुनः॥
(प० त० विवेक० १।२२)

बृहदारण्यकोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद् और प्रश्नोपनिषद्में तो साक्षात् परमात्मासे ही प्राणकी उत्पत्ति वर्णित है—

अस्मादात्मनः सर्वे प्राणाः······सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति।
(बृहदारण्यक उप० २।१।२०)

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी॥
(मु०उप० २।१।३)

'स प्राणमसृजत।' (प्र०उ० ६।४)

ब्रह्मसूत्रमें प्राणोत्पत्त्यधिकरण (२।४।२—४)-के सूत्रोंमें प्राणकी उत्पत्तिके विषयमें बहुत विचार किया गया है। अन्तमें कहा है कि— **'तस्मादपि प्राणानां ब्रह्मविकारत्वसिद्धिः'।** सांख्यसिद्धान्तके सृष्टि-प्रक्रियामें स्पर्शतन्मात्रासे वायुकी उत्पत्ति मानी गयी है और गतिके सामान्य होनेसे वायुके साथ प्राण शब्दका व्यवहार किया गया है। जैसे— **'सामान्यकरणवृत्ति-प्राणाद्या वायवः पञ्च।'** (सां०का० २९)। यही बात पातञ्जल-योगसूत्र (३।३९)-में भी कही गयी है। न्यायवैशेषिकाचार्योंने नौ द्रव्योंके अन्तर्गत वायुद्रव्यमें ही प्राणका अन्तर्भाव कर दिया है। उनका कहना है कि शरीरगत स्थानभेदसे एक ही वायु प्राण, अपान आदि नामोंसे व्यवहृत होता है। जैसे हृदयस्थानीय वायु प्राण है, गुदस्थानीय वायु अपान है। सम्पूर्ण शरीरमें घूमनेवाला वायु व्यान है। कण्ठस्थानीय वायु उदान है और नाभिस्थानीय वायु समान है।

इस प्रकार इन आचार्योंने वायुको प्राण कहा है। पर इनका तात्पर्य वायुको प्राण कहनेमें नहीं है। वस्तुतः प्राण गत्यात्मक है। वह साक्षात् ब्रह्मसे अथवा प्रकृतिरूपा मायासे उत्पन्न है। इस प्राणकी गत्यात्मकता सदागतिक वायुमें पायी जाती है। अतः गौणी वृत्तिसे वायुको प्राण कह देते हैं। इसमें भी शरीरके प्रधान अङ्ग हृदय या नासिकामें रहनेवाले वायुको विशेषरूपसे प्राणवायु कह देते हैं।

इसी प्रकार प्राणकी संख्याके विषयमें भी मतभेद है। कहीं प्राण एक है ऐसा कहा है, कहीं पाँच कहा है, कहीं सात, कहीं नौ, कहीं दस, कहीं ग्यारह और कहीं बारह। जैसे **'अणुश्च'** (ब्र०सू० २।४।१३)-के विज्ञानभाष्यमें कहा है कि महत्तत्त्वके दो रूप हैं—एक क्रियात्मिका शक्ति और दूसरी अध्यवसायात्मिका शक्ति। यहाँ क्रियात्मिका शक्ति प्राणको माना गया है जो एक है। पाँच प्राण तो प्रसिद्ध ही हैं। जैसे वेदान्त परिभाषाके विषय-प्रकरणमें कहा है— **'पञ्च प्राणमनोबुद्धि····'** इत्यादि इसीको पञ्चदशीकारने कहा है कि प्राण एक ही है। पर वृत्तिभेदसे पाँच प्रकारका हो जाता है— **'तैः सर्वैः सहितैः प्राणो वृत्तिभेदाच्च पञ्चधा'** (प०द०त०वि० १।२२) **'सप्त गतेर्विशेषितत्वाच्च'** (ब्र०सू० २।४।५)-के शाङ्करभाष्यमें कहा है— **'क्वचित् सप्त प्राणाः संकीर्त्यन्ते। सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्'** (मुण्ड० २।१।८) इति। **'क्वचिच्चाष्टौ प्राणा ग्रहत्वेन गुणेन संकीर्त्यन्ते—अष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहाः'** (बृ० ३।२।१) इति। **'क्वचिच्च—सप्त वै शीर्षण्याः प्राणा द्वाववाञ्चौ** (तै०सं० ५।१।७।१) इति। **क्वचिद्दशनव वै पुरुषे प्राणा नाभिर्दशमी इति। क्वचिदेकाश—दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशः'** (बृ० ३।९।४) इति। **'क्वचिद्द्वादश—सर्वेषां स्पर्शानां त्वगेकायनम्'** (बृ० २।४।११)। **'क्वचित् त्रयोदश चक्षुश्च द्रष्टव्यं च'। 'एवं हि विप्रतिपन्नाः प्रामेयत्तां प्रतिश्रुतयः'** (ब्र०सू० २।४ ।५ शा०भा०)। इस शांकरभाष्यकी अपनी भामती व्याख्यामें श्रीवाचस्पति मिश्रने इस प्रकार स्पष्ट किया है— सात प्राण हैं—चक्षु, घ्राण, रसना, वाक्, श्रोत्र, मन और त्वक्। आठ प्राण हैं—घ्राण, रसना, वाक्, चक्षु, श्रोत्र, मन, हस्त और त्वक्। नव प्राण हैं—दो श्रोत्र, दो आँख, दो घ्राण, एक वाणी, पायु और उपस्थ अथवा बुद्धि तथा मन। दस प्राण हैं—नव-दोश्रोत्र आदि और एक नाभि। ग्यारह प्राण हैं—पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय तथा मन।

बारह प्राण हैं—पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, मन और बारहवाँ हृदय। तेरह प्राण हैं—हृदय और मनके साथ पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय तथा अहंकार। यहाँ २।४।५ सूत्रसे लेकर २।४।१९ सूत्रतक प्राणपर बहुत विचार किया गया है। सप्त प्राणके पक्षमें भगवत्पादका अधिक झुकाव है। फिर अन्तमें निर्णय देते समय 'हस्तादयस्तु स्थितेऽतो नैवम्' इस ब्रह्मसूत्र (२।४।६)-के भाष्यमें लिखते हैं—**'तस्मादेकादशैव प्राणाः शब्दतः अर्थतश्चेति सिद्धम्'** अर्थात् यह सिद्ध हुआ कि शब्दतः और अर्थतः ग्यारह प्राण हैं। इसके बाद फिर 'न वायुक्रिये पृथगुपदेशात्' (ब्र०सू० २।४।९) इस सूत्रमें कहते हैं कि प्राण न तो वायु है और न तो क्रिया है। किंतु वायु ही अध्यात्मरूप प्राप्त कर पञ्चव्यूह होकर प्राण नामसे कहा जाता है। जैसे—

'तस्मादन्यो वायुक्रियाभ्यां प्राणः। कथं तर्हीयं श्रुतिः यः प्राणः स वायुरिति। उच्यते वायुरेवायमध्यात्ममापन्नः पञ्चव्यूहो विशेषात्मनाऽवतिष्ठमानः प्राणो नाम भण्यते। न तत्त्वान्तरं नापि वायुमात्रम्। अतश्चोभे अपि भेदाभेदश्रुती न विरुध्येते।'

इस प्रकार निर्णय दिया गया कि वायु महाभूत नहीं अपितु वायु जो देवतारूप है वही अपना पञ्चव्यूहरूप प्राण, अपान आदि रूपमें शरीरमें रहते हैं। अतः प्राण वायुदेवता हैं और प्राण, अपान आदि उनके व्यूह हैं। जैसे पाञ्चरात्र आगममें परमात्माके वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि व्यूह माने गये हैं।

छान्दोग्योपनिषद्के पञ्चम अध्यायमें एक प्राणविद्या वर्णित है। वहाँ यह दिखाया गया है कि एक बार प्राणके साथ चक्षुरादि इन्द्रियोंकी स्पर्धा हुई कि हम लोगोंमें कौन ज्येष्ठ है और कौन श्रेष्ठ है। महत्ता प्रदर्शित करनेके क्रममें चक्षुरिन्द्रिय चली गयी। चक्षुरिन्द्रियके चले जानेपर प्राणी अन्धा बनकर जीवित रहा। उस प्राणीको देखकर चक्षुरिन्द्रिय लज्जित हुई और अपनेको पराजित मानकर पुनः वापस आकर शरीरमें स्थित हो गयी। इसी प्रकार क्रमशः श्रोत्र, घ्राण, रसना तथा त्वक् आदि इन्द्रियाँ भी शरीर छोड़कर चली गयीं और वह व्यक्ति बधिर तथा मूक आदिके रूपमें जीवित रहा। अन्तमें प्राणकी पारी आयी। प्राण जाने लगा। प्राणके निकलते समय सभी इन्द्रियाँ शिथिल होने लगीं, निस्तेज होने लगीं और निष्क्रिय होने लगीं। तब सभी इन्द्रियोंने प्राणको रोका और प्राणसे शरीरमें रहनेके लिये अभ्यर्थना की। सभी इन्द्रियोंने प्राणसे न जानेके लिये कहा—**'अभिसमेत्योचुर्भगवन्नेधि त्वं नः श्रेष्ठोऽसि मोत्क्रमीरिति'** (छान्दोग्य० ५।१।१२)। अन्तमें स्वीकारा गया कि आँख, श्रोत्र आदि जो कहे जाते हैं वे सब प्राण ही हैं—

'न वै वाचो न चक्षूꣳषि न श्रोत्राणि न मनाꣳसीत्याचक्षते प्राणा इत्येवाचक्षते प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति।'

(छान्दोग्य० ५।१।१५)

इस स्थलपर इन्द्रियोंके साथ स्पर्धा होनेसे शंका होती है कि प्राण भी इन्द्रिय है क्या? पर वस्तुतः यह बात नहीं है। यथार्थतः प्राण सभी इन्द्रियोंका प्रेरक तथा उज्जीवक एवं शक्ति और बल है।

इस बातको भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यने बृहदारण्यकोपनिषद् (२।२।१)-के भाष्यमें इस प्रकार कहा है—

'प्राणः स्थूणा अन्नपानजनिताशक्तिः प्राणो बलमिति पर्यायः'।

प्राणशक्तिके बिना सभी इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं—मृततुल्य हो जाती हैं। इन्द्रियोंमें कार्यक्षमता प्राणसे ही प्राप्त होती है। यहाँ तक कि मनको रोकनेके लिये योगाचार्योंने प्राणको रोकनेका विधान किया है। प्राणको रोकनेपर मन भी रुक जाता है; इसीलिये प्राणायाम-विधिकी इतनी महत्ता है।

इन विवेचनोंसे स्पष्ट हो जाता है कि प्राण वायुदेवताका अध्यात्मरूप है और वह विशेषरूपसे पञ्चव्यूहात्मक बनकर प्राण-अपान आदि पाँच उपाधियाँ प्राप्त करता है। प्रकारान्तरसे यह प्रकृति अर्थात् परमात्माकी मायाशक्तिका एक रूप है। गत्यात्मक होनेके कारण वायुसे तुलना करके वायुरूप कह दिया जाता है। चर-अचर—ये सभी सृष्टिके उपचय तथा अपचयके कारण हैं। सभी प्रकारके शरीरोंमें स्थित जीवनसत्ताके अनुमापक हैं। प्राणशक्ति एक है। स्थानभेद तथा क्रियाभेदसे प्राणको एक, पाँच, सात, नौ, दस, ग्यारह तथा तेरहतक कह देते हैं। **'तस्माद् भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः'**। इति शम्।

भैषज्य-विज्ञानका मूल स्रोत—अथर्ववेद

(डॉ० श्रीश्रीकिशोरजी मिश्र)

'भैषज्य' शब्द भेषज शब्दसे स्वार्थमें 'अनन्तावसथेतिह-भेषजाञ्ञ्यः' (५।४।२३) इस सूत्रसे 'ञ्य' प्रत्यय करनेपर सिद्ध होता है। 'वैद्यक-रत्नमाला' के 'भैषज्यं भेषजं चायुर्द्रव्यमगदमौषधम्' इस वचनसे ज्ञात होता है कि 'भैषज्य' एवं 'भेषज'—ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। 'भेषज' शब्दकी व्युत्पत्ति दो प्रकारसे की जाती है—१-'भिषक् वैद्यस्तस्येदम्' इस अर्थमें 'अण्' प्रत्यय लगाकर व्युत्पादित भेषज शब्द सिद्ध होता है। वैद्यसे सम्बद्ध क्रिया एवं द्रव्य 'भैषज्य' तथा 'भेषज' कहे जाते हैं और २-'भेषो रोगस्तं जयति' अर्थात् रोगको पराजित करनेका उपाय भेषज है।

इस संदर्भमें 'भिषक्' शब्द भी विचारणीय है। भिषक् शब्दकी व्युत्पत्ति है—'बिभेति रोगो यस्मात्।' 'भी' धातुसे 'षुक्' प्रत्यय तथा ह्रस्व करनेपर 'भिषक्' शब्दकी निष्पत्ति होती है। इससे स्पष्ट है कि 'भेषज' अथवा 'भैषज्य' एवं 'भिषक्' शब्दोंसे प्राणीके रोग-शमनका उपाय तथा उसका कर्ता विवक्षित है।

अथर्ववेदमें पर्याप्त रूपमें भैषज्य-विज्ञानका मूल प्राप्त होता है। इसी कारण आयुर्वेदके संहिताकारोंने अथर्ववेदसे अपना सम्बन्ध बताया है।[१] आचार्य चरककी उक्ति है—

'तत्र चेत् प्रष्टारः स्युश्चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानां कं वेदमुपदिशन्त्यायुर्वेदविदः''''' तत्र भिषजा पृष्टेनैवं चतुर्णा-मृक्सामयजुरथर्ववेदानामात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्या'''''।'

(सूत्रस्थान ३०।१९-२०)

अर्थात् कोई प्रश्नकर्ता वैद्यसे यह प्रश्न करे कि ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद—इन चारों वेदोंमें आयुर्वेदविद् किस वेदका उपदेश करता है तो वैद्यको चाहिये कि वह अथर्ववेदमें अपनी भक्ति दिखलाये।

भैषज्य-विज्ञानका विस्तृत उल्लेख सर्वप्रथम अथर्ववेदमें ही है। इस कारण अथर्ववेदको 'भिषग्वेद' भी कहा जाता है। अथर्वसंहिताके इस मन्त्र—

यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा।
यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥

(११।६।१४)

—में इसे भिषग्वेदके रूपमें अभिहित किया गया है। अथर्ववेदका एक दूसरा नाम 'अथर्वाङ्गिरस' वेद भी है। यह संज्ञा भी अथर्ववेदके भैषज्य-विज्ञानको संकेतित करती है। अथर्वाङ्गिरसमें अथर्व+आङ्गिरस—ये दो शब्द हैं। 'अथर्व' शब्द हिंसार्थक थुर्वी धातु (पा० ५७१)-से निष्पन्न है। जिस भैषज्य-प्रक्रियामें किसी प्रकारकी हिंसाकी सम्भावना नहीं होती वह 'अथर्व' कही गयी है और रोगीके अङ्गों (शरीरावयवों)-में सप्तधातुमय जो रस प्रवहमान है, उसके आधारपर किया जानेवाला भैषज्य आङ्गिरस है।

तात्पर्य यह है कि 'अथर्व' शब्दसे अभिहित भैषज्य-प्रक्रियामें किसी प्रकारका उपचार किये बिना मन्त्र एवं तपकी शक्तिसे रोगका नाश किया जाता था। अतः इस प्रक्रियामें रोगीके शरीरपर किसी प्रकारके प्रतिकूल प्रभाव (Reaction)-द्वारा हिंसा (हानि)-की सम्भावना नहीं रहती थी, किंतु इसके विपरीत आङ्गिरसी चिकित्सा-पद्धतिमें रोगीके शरीरसे सम्बद्ध विभिन्न उपचार किये जाते थे। इन दोनों प्रकारकी चिकित्सा-पद्धतियोंका समावेश अथर्ववेदमें होनेके कारण इसे 'अथर्वाङ्गिरस' वेद कहा गया है। 'पञ्चविंशब्राह्मण' में अथर्वाने भेषजकी प्रक्रियाको दैवी ओषधियोंकी भाँति गुणकारी बतलाया है—

भेषजं वै देवानामाथर्वणो भैषज्यायारिष्ट्यै।

(१६।१०।१०)

अथर्ववेदमें प्रतिपादित भैषज्य-विज्ञानका पूर्ण एवं विस्तृत विवरण 'कौशिक गृह्यसूत्र' में प्राप्त होता है। अथर्ववेदसे सम्बद्ध इस गृह्यसूत्रमें भैषज्यके लिये एक पृथक् अध्याय है। कौशिक गृह्यसूत्रमें भैषज्यका लक्षण करते हुए सूत्रकारने कहा है—'लिङ्गयुपतापो भैषज्यम्॥' (२५।२)

रोगको लिङ्ग अर्थात् चिह्नोंद्वारा ज्ञात होनेके कारण

१-आयुर्वेदं नामोपाङ्गमथर्ववेदस्य (सुश्रुत० १।१।६)।
अथर्वान्तर्गतं सम्यगायुर्वेदं च लब्धवान् (भावप्रकाश पू० खं० १।५८) आदि।

लिङ्गी कहा जाता है। शरीरमें होनेवाले ज्वर, भ्रम, पीडा आदि रोगजनित विकार ही रोगके चिह्न हैं। निदानद्वारा रोगके उप यानी अत्यन्त समीप जाकर मन्त्र एवं ओषधि आदि उपचारोंसे रोग (ताप)-का विनाश करना 'उपताप' या 'भैषज्य' कहा जाता है।

रोग दो प्रकारके हो सकते हैं—पापजनित तथा आहारादिजनित। यद्यपि दोनों प्रकारके रोगोंके चिह्न समान ही ज्ञात होते हैं, तथापि जिन रोगोंकी उत्पत्ति आहारादिकी विकृतिद्वारा ज्ञात न हो सके तथा जिनपर आहारजनित रोगोंकी औषधियाँ सफल न हों, उन रोगोंको पापजनित मानकर आथर्वणिक भैषज्य-प्रक्रियाद्वारा उनका विनाश करना चाहिये। आहारादिजनित व्याधियोंपर आङ्गिरसी प्रक्रियाद्वारा विजय प्राप्त करनी चाहिये। कौशिक गृह्यकर्ताने यह अभिमत 'वचनादन्यत्' (२५। ३) सूत्रद्वारा प्रकट किया है।

आयुर्वेदशास्त्रके प्राचीन आचार्योंने भी अथर्ववैदिक भैषज्य-प्रक्रियाके उपर्युक्त सिद्धान्तको प्रायः यथावत् स्वीकार किया है। इस सम्बन्धमें चरकसंहिताका निम्नाङ्कित अंश उल्लेखनीय है—

'तद् द्विविधं व्यपाश्रयभेदात्, दैवव्यपाश्रयं युक्तिव्यपाश्रयं चेति। तत्र दैवव्यपाश्रयं मन्त्रौषधिमणिमङ्गलबल्युपहारहोमनियमप्रायश्चित्तोपवासदानस्वस्त्ययनप्रणिपातगमनादि। युक्तिव्यपाश्रयं संशोधनोपशमने चेष्टाश्च दृष्टफलाः।'

(विमान० ८। ७४)

अर्थात् भेषज आश्रयभेदसे दो प्रकारका होता है—१-दैवव्यपाश्रय तथा २-युक्तिव्यपाश्रय। इनमें मन्त्र, औषधि, मणिधारण, मङ्गलपाठ, बलि, उपहार, होम, नियम, प्रायश्चित्त, उपवास, दान, स्वस्त्ययनपाठ, प्रणिपात (देवताओंको नम्रतापूर्वक नमस्कार), गमन (तीर्थयात्रा) आदि क्रियाओंद्वारा जो चिकित्सा होती है, उसे 'दैवव्यपाश्रय भेषज' कहते हैं। संशोधन (वमन, विरेचन आदि), उपशमन और प्रत्यक्ष फल देनेवाली सभी क्रियाओंको 'युक्तिव्यपाश्रय भेषज' कहते हैं।

अथर्ववैदिक ओषधि-प्रक्रियाएँ

अथर्ववेदसंहिताके एकादश काण्डके चतुर्थ सूक्तका सोलहवाँ मन्त्र है—

आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि॥

इस मन्त्रसे यह संकेत प्राप्त होता है कि अथर्ववेदके अनुसार भैषज्य-कर्मके लिये कई प्रकारकी ओषधियाँ प्रयुक्त की जाती थीं, जिन्हें प्रयोगके अनुसार चार मुख्य विभागोंमें विभाजित किया गया है—१-आथर्वणी, २-आङ्गिरसी, ३-दैवी तथा ४-मनुष्यजा। सायण आदि सभी व्याख्याकारोंने इस मन्त्रका जो अर्थ किया है, उनके अनुसार अथर्वा नामक ऋषिद्वारा सृष्ट ओषधियाँ 'आथर्वणी' तथा अङ्गिरा ऋषिद्वारा प्रवर्तित ओषधियाँ 'आङ्गिरसी' और देवोंद्वारा सृष्ट ओषधियाँ 'दैवी' एवं मनुष्योंद्वारा प्रवर्तित ओषधियाँ 'मनुष्यजा' हैं। इस मन्त्रमें एक विशिष्ट भाव और निहित है, जो इस प्रकार है—

आथर्वणी ओषधि-प्रक्रियाएँ वे हैं, जो अथर्ववेदोक्त मन्त्र आदिके प्रयोगोंद्वारा रोगका शमन करनेमें समर्थ होती हैं। इसमें रोगीके शरीरका संयोग अपेक्षित नहीं है। दूसरी आङ्गिरसी ओषधियाँ रोगीके शरीरावयवोंमें प्रवाहित सप्तधातुमय रससे संयुक्त होकर रोगका शमन करती हैं। इनका प्रयोग रोगीके शरीरके आन्तरिक एवं बाह्य संयोगसे ही हो सकता है। तीसरी दैवी ओषधि-प्रक्रियाएँ वे हैं, जो रोगसे साक्षात् सम्बद्ध न होते हुए भी रोगके कारणभूत दैव या दुर्दृष्टके निवारणार्थ की जाती हैं। इस प्रकारकी प्रक्रियाएँ भी अथर्ववेदमें शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मोंके प्रयोगके रूपमें वर्णित हैं। शान्तिक एवं पौष्टिक विधानोंके प्रयोगसे रोगीका दुर्दैव अर्थात् पाप विनष्ट होता है तथा इससे रोगकी मुक्तिमें सहायता मिलती है। अतः इसे 'दैवी' कहा गया है।

चौथे प्रकारकी ओषधि-प्रक्रिया मनुष्यजा है। इसमें रोगीके शीघ्र स्वास्थ्य-लाभके लिये अन्य ओषधियोंके अतिरिक्त स्वच्छ वातावरण, सौमनस्य एवं अच्छी शुश्रूषाकी परम आवश्यकता होती है। यह सब मनुष्योंद्वारा ही सम्यक् रूपसे किया जा सकता है। अतः इसको 'मनुष्यजा' कहा गया है। आधुनिक चिकित्सा-विज्ञानने भी शीघ्र स्वास्थ्य-लाभके लिये स्वच्छता, शुश्रूषा तथा सद्व्यवहारका महत्त्व स्वीकार किया है। अथर्ववैदिक चिकित्सा-विज्ञानमें इस प्रणालीको मनुष्यजा शब्दसे व्यवहृत करते हुए इसकी

महत्ता स्वीकार की गयी है।

अथर्ववैदिक चिकित्सा-पद्धतिमें इन चारों प्रकारकी अथवा अपेक्षानुसार तीन या दो प्रकारकी ओषधियोंका एक साथ प्रयोग किया जाता था। इसके उदाहरणार्थ हम श्वित्रके निवारण-हेतु किये जानेवाले प्रयोगको ले सकते हैं। इस सम्बन्धमें कौशिक गृह्यसूत्रमें इस प्रकार निर्दिष्ट है—

नक्तं जाता सुपर्णो जात इति मन्त्रोक्तं शकृदा लोहितं प्रघृष्यालिम्पति॥
(२६।२२)

श्वित्रके उपचारके लिये भृङ्गराज, हरिद्रा, इन्द्रवारुणी आदि ओषधियोंको पीसकर 'नक्तं जाता०'(अथर्व० १।२३।१) तथा 'सुपर्णो जातः०'(१।२४।१) सूक्तोंसे उनका अभिमन्त्रण करना चाहिये। यह आथर्वण प्रक्रिया है। तदनन्तर श्वित्रके स्थानपर उनका लेप करना चाहिये, यह क्रिया आङ्गिरसी है। कौशिक गृह्यसूत्र— 'मारुतान्यपिहितः' (२६।२४)-के विधानानुसार दैवी ओषधि-प्रक्रियाके रूपमें मारुत-कर्मों (वृष्टिकर्मों)-को भी श्वित्रके निवारणहेतु करना चाहिये। यद्यपि मारुतकर्म भैषज्याध्यायके अन्तर्गत नहीं है तथापि रोगीके पूर्व दुर्दृष्टके निवारणार्थ इसका विधान किया गया है, यह स्पष्ट होता है। मनुष्यजा ओषधि-प्रक्रियाके रूपमें रोगीकी शुश्रूषा आदिकी आवश्यकता तो स्वभावतः सिद्ध है। इस प्रकार उक्त मन्त्रद्वारा रोगोंकी चिकित्साहेतु अथर्ववेदमें चारों प्रकारकी प्रक्रियाओंका एक साथ अथवा आवश्यकतानुसार दो या तीनका प्रयोग प्रतिपादित किया गया है।

अथर्ववेद (१।१।१)-के भाष्यमें आचार्य सायणने भी रुद्रभाष्यकारका मत उद्धृत करते हुए स्पष्ट किया है कि संहिताके जो सूक्त आथर्वणिक चिकित्सा-पद्धतिमें विनियुक्त हैं, उनके द्वारा आज्य आदि त्रयोदश द्रव्योंका होम तथा उपस्थापन भी चिकित्सकीय क्रियाके साथ किया जाना चाहिये। आयुर्वेद अथवा अन्य लौकिक उपचारोंमें रोगोंके शमनार्थ जिन ओषधियोंका उपयोग प्रचलित है, उनका तदनुसार उपयोग करते हुए भी अथर्वसंहिताके तत्सम्बन्धी मन्त्रोंका वाचन आथर्वणी चिकित्साके रूपमें करना चाहिये, यह कौशिकका अभिमत है। कौशिक गृह्यसूत्रका वचन इस प्रकार है—

ओषधिवनस्पतीनामनूक्तान्यप्रतिषिद्धानि भैषज्यानाम्॥
(३२।२६)

अभिप्राय यह है कि जिन रोगोंके शमनार्थ किसी प्रकारकी ओषधि—वनस्पतिका प्रयोग नहीं प्राप्त होता, उनमें भी अन्य चिकित्सा-प्रयोगोंके साथ भैषज्यके अथर्ववेदीय मन्त्रोंका पाठ करना चाहिये। इससे ओषधियोंका प्रभाव अधिक हो जाता है।

अथर्ववेदमें अष्टाङ्ग-आयुर्वेदका मूल

भारतीय दृष्टिसे सम्पूर्ण भैषज्य-विज्ञान आठ भागोंमें विभक्त किया जाता है—१-शल्य, २-शालाक्य, ३-कायचिकित्सा, ४-भूतविद्या, ५-कौमारभृत्य, ६-अगदतन्त्र, ७-रसायनतन्त्र तथा ८-वाजीकरण। भैषज्य-विज्ञानके ये सभी अङ्ग अथर्ववेदमें उपलब्ध होते हैं यथा—

१-शल्य—शल्यतन्त्रका आधुनिक रूप ही शल्यविज्ञान है। अथर्ववेदमें मूत्र एवं पुरीषका निरोध होनेपर 'विषितं तेऽस्ति बिलम्०' आदि मन्त्रोंसे चर्मशलाका या लौहशलाकाद्वारा शल्यक्रिया करनेका उल्लेख है। (कौशिक गृह्य० २५।१५ वस्तिं विष्यति॥) पशुओंकी कृमिचिकित्सामें भी शल्यक्रियाका प्रयोग अथर्ववेदमें उल्लिखित है—'उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु' आदि मन्त्रोंद्वारा कृमियुक्त स्थानकी दर्भसे शल्यक्रिया की जाती है 'दर्भैरभ्यस्यति' (कौ०गृ० २७।२३)। इसी प्रकार अन्य शल्यक्रियाओंका भी उल्लेख है। गण्डमालाके भैषज्य-प्रसंगमें उदकरक्षिका एवं मशक नामक जीवोंद्वारा दूषित रक्त निकालनेका भी विधान किया गया है। यथा—

उदकरक्षिकामशकादिभ्यां दंशयति॥
(कौशिक गृह्य० ३०।१६)

२-शालाक्य—ग्रीवासे ऊपरी भागकी आन्तरिक चिकित्सा शालाक्यके अन्तर्गत आती है। अथर्ववेदमें शिरोरोगके लिये विभिन्न प्रकारके उपचार प्राप्त होते हैं। शिरोवेदनाकी निवृत्तिके लिये 'जरायुजः०' (१।१२।१) आदि मन्त्रोंद्वारा नासिकामें घृतस्रावणका उल्लेख कौशिक गृह्यसूत्रमें किया गया है, यथा—'घृतं नस्तः' (२६।८)। अक्षिरोगोंके प्रशमनार्थ सर्षपक्षुपके मूल क्षीरलेहको 'आबयो अनाबयः०' (अथर्व० ६।१६।१) आदि मन्त्रोंसे आँखोंमें अञ्जन करना चाहिये, यथा—'क्षीरलेहमाङ्क्ते' (कौ०गृ० ३०।५)। इसी प्रकार कर्ण, नासिका एवं मुख आदिसे सम्बन्धित रोगोंके लिये भी अथर्ववेदमें उपचार वर्णित हैं। केशोंकी वृद्धि, उन्हें काला तथा सुन्दर रखना एवं गंजेपनके

निवारण आदिके लिये भी ओषधियोंका निर्देश अथर्वसंहितामें प्राप्त होता है।

३-कायचिकित्सा—कायचिकित्साके अन्तर्गत उदर एवं शरीरसे सम्बद्ध ज्वर, यक्ष्मा, पक्षाघात, स्राव, जलोदर, उदरशूल, वात-पित्त-कफके अनेकविध रोग आते हैं। कायसम्बन्धी चिकित्साका उल्लेख अथर्ववेदके भैषज्यप्रकरणमें सर्वाधिक एवं विस्तृत रूपमें प्राप्त होता है। ज्वरको अथर्वसंहितामें 'तक्मन्' संज्ञा दी गयी है तथा इसके कई प्रभेद भी निर्दिष्ट किये गये हैं। भिन्न-भिन्न प्रकारके ज्वरोंके लिये ओषधियाँ, क्वाथ एवं अन्य उपचार वर्णित हैं। यक्ष्माके भी क्षेत्रिय, राजयक्ष्मा आदि अनेक भेद एवं उपचार बतलाये गये हैं। रक्तस्रावके उपचारार्थ पृश्निपर्णीका लेपन (कौ०गृ० २६।३६) तथा मूत्र-पुरीषस्रावके लिये फाण्ट[1] पिलाने (कौ०गृ० २५।१८)-का विधान किया गया है। पक्षाघातमें चङ्क्रममृत्तिकासे मर्दन एवं धूपनद्वारा चिकित्सा की जाती है (कौ०गृ० ३१।१८-१९)। जलोदरके उपचारमें उदश्वित् (अर्धजलमिश्रित मथित दधि)-में दूध एवं मधु मिलाकर पिलाया जाता है (कौ० गृ० ३१।२३-२४)। श्लेष्म, वात, पित्त-विकारोंके लिये घृत एवं मधु-तेल आदिका भक्षण निर्दिष्ट किया गया है (कौ०गृ० २६।१)। इनके अतिरिक्त कुष्ठ, हृद्रोग, पाण्डुरोग, अत्यन्त तृषा, उदरशूल आदि अनेक रोगोंकी भैषज्य-प्रक्रिया कायचिकित्साके रूपमें अथर्ववेदमें वर्णित है।

४-भूतविद्या—इसके अन्तर्गत यक्ष, पिशाच, असुर, नाग आदिके आवेशसे दूषित चित्तवाले एवं उन्मत्त व्यक्तियोंकी चिकित्सा आती है। इससे सम्बद्ध उपचार भी अथर्ववेदमें वर्णित हैं। भयभीत व्यक्तिको सदम्पुष्पा-मणिके बन्धनद्वारा भयमुक्त किया जाता है (कौ०गृ० २८।७)। सर्वौषधिका लेपन आदि भी एतदर्थ उल्लिखित है (कौ०गृ० २६।२९)।

५-कौमारभृत्य—बालरोगोंकी चिकित्साको 'कौमारभृत्य' कहा गया है। समस्त स्त्रीरोग तथा प्रसूतितन्त्र भी इसमें अन्तर्भूत किये जा सकते हैं। बालरोगोंकी निवृत्तिके लिये **'यस्ते स्तनः०'** (अथर्व० ७।१०।१) ऋचासे स्तनपानका विधान है (कौ०गृ० ३२।१)। बालकृमियोंके निवारणार्थ बालकको नवनीतप्राशन कराना चाहिये (कौ०गृ० ३२।१) तथा तप्त मुसलद्वारा बालकके तालुको सेंकना चाहिये (कौ०गृ० २९।२२)। प्रसूति एवं स्त्री-सम्बन्धी रोगोंके भैषज्य भी अथर्ववेदमें विशद रूपसे प्राप्त होते हैं। गर्भस्रावके निवारणार्थ एवं गर्भसंधारण आदिके लिये विभिन्न चिकित्साओंका उल्लेख है। सुखपूर्वक प्रसवके लिये भी अथर्वसंहितामें कई विधान प्राप्त होते हैं।

६-अगदतन्त्र—विषतन्त्रका ही पर्याय अगदतन्त्र है। विभिन्न प्रकारके विषैले जीवोंसे रक्षा एवं विषोंके प्रतिकार आदिके लिये चिकित्सा अगदतन्त्रके अन्तर्गत आती है। अथर्ववेदमें स्कन्द नामक विशेष विषकी निवृत्तिके लिये **'वारिदं वारयातै०'** (अथर्व० ४।७।१) आदि मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित जलका पान विषग्रस्त व्यक्तिको कराया जाता है (कौ०गृ० २८।१)। मलद्वारा विष निकालनेके लिये मदन (धतूरे)-के फलोंको खिलाया जाता है (कौ०गृ० २८।४)। हरिद्राके साथ घृत पिलाकर भी विषका उपचार किया जाता है। दष्ट शरीरावयवको वस्त्रद्वारा बाँधे जानेका तथा विषग्रस्त व्यक्तिकी शिखाको भी बाँधे जानेका विधान किया है (कौ०गृ० २९।२—४)। दष्ट अवयवको तृण जलाकर प्रतप्त किया जाता है। विषके प्रभावका निराकरण करनेहेतु मधुमक्षिकाके नीडको भक्षण करानेका विधान भी उल्लिखित है (कौ०गृ० २९।२८)। इस प्रकार विषनिर्हरणके नाना उपाय अथर्ववेदसे ज्ञात होते हैं।

७-रसायनतन्त्र—अथर्वसंहितामें रसायनतन्त्रसे सम्बन्धित अधिक मन्त्र तो नहीं प्राप्त होते, किंतु कतिपय पौष्टिक कर्मोंके अन्तर्गत धातुओंके निर्माण एवं उपयोगकी प्रक्रियाका संकेत प्राप्त होता है। अथर्ववेद (१९।२६।३)-के अनुसार हिरण्यमणिधारणसे आयुष्य एवं वर्चस्की वृद्धि होती है। लोहे, चाँदी एवं सोनेके सम्मिश्रणसे निर्मित नवशालाकमणिके संधारणसे प्राणशक्तिकी वृद्धि होती है (अथर्व० ५।२८।१)। सीस नामक एक विशिष्ट धातुकी प्रशंसामें तो एक सम्पूर्ण सूक्त ही कहा गया है (अथर्व० १।१६।१)। इस धातुके प्रयोगसे समस्त शत्रुओंकी पराजय होती है। इस प्रकार अथर्ववेदमें रसायनतन्त्रका भी स्पष्ट प्रतिपादन है।

८-वाजीकरण—वीर्य एवं शक्ति-प्राप्त्यर्थ की जानेवाली

१-यह एक तरहका काढ़ा है, जो औषध-चूर्णको गरम पानीमें भिगोकर छान लेनेसे बनता है। औषध-चूर्णकी जानकारी विज्ञ वैद्यसे कर लेनी चाहिये।

चिकित्सा वाजीकरण है। शक्तिहीन पुरुषोंको शक्तिशाली बनाना इसका उद्देश्य है। इस चिकित्सासे सम्बन्धित मन्त्र भी अथर्ववेदमें प्राप्त होते हैं। वीर्यहीनताको कौशिकने 'ग्राम्य व्याधि' माना है। इन्द्रिय-पुष्टिके लिये सर्वसुरभिचूर्णका लेपन 'निर्दुरर्मण्य०' (अथर्व० १६।२।१) आदि मन्त्रोंसे किया जाता है। स्त्रियोंके वन्ध्यात्वहरणकी चिकित्सा भी वाजीकरणके अन्तर्गत आती है। स्त्रियोंसे सम्बद्ध इस प्रकारके अनेक विधान अथर्ववेदके सूक्तोंमें उपलब्ध हैं।

इस विवेचनसे स्पष्ट है कि भैषज्य-विज्ञानके समस्त अङ्गोंका उल्लेख अथर्ववेदमें प्राप्त होता है। अथर्ववेदकी चिकित्सा-पद्धति अत्यन्त उन्नत स्तरपर रही है। विभिन्न रोगोंके शमनमें उपयोगी—अजशृङ्गी, अपामार्ग, अरुन्धती, आञ्जन, उदुम्बर, उपजीका, ऋतावरी, कुष्ठ, गुग्गुल, चीपद्रु, जङ्गिड, दर्भ, नितत्नी, पाटा, पिप्पली, पृश्निपर्णी, मधुला, रेवती, रोहणी, लाक्षा, विषाणका, शतवार, सदम्पुष्पा, सहस्रपर्णी, सोम आदि वनस्पतियोंका उल्लेख अथर्वसंहिताके मन्त्रोंमें प्राप्त होता है। स्वास्थ्य-लाभके लिये अस्तृत, जङ्गिड, दर्भ, पर्ण, वरण, शतवार, शङ्ख, त्रिवृत्, अर्क, परिहस्त, दशवृक्ष आदि मणियोंके धारणका विधान भी अथर्ववेदमें उल्लिखित है।

सम्प्रति अथर्ववेदोक्त वनस्पतियाँ एवं मणियाँ किस रूपमें उपलब्ध हैं तथा अथर्ववेदकी प्रक्रियाके अनुसार इनका उपयोग अब भी कितना लाभकारी है, इस क्षेत्रमें प्रायोगिक अनुसंधान करना अत्यन्त उपादेय होगा। अथर्ववेदकी विलुप्त भैषज्य-परम्परापर शोधके माध्यमसे प्राचीन भारतीय चिकित्सा-पद्धतिके निगूढ महत्त्वपूर्ण तथ्य अवश्य उपलब्ध किये जा सकते हैं।



प्रकृति-प्रदत्त आठ चिकित्सक

(डॉ० श्रीविद्यानन्दजी 'ब्रह्मचारी' एम०ए०, पी-एच०डी०, विद्यावाचस्पति)

प्रकृति और मानव-शरीरमें जन्मजात साहचर्य रहा है। यह एक सर्वमान्य बात है कि मानव प्रकृतिकी शस्य-श्यामल-गोदमें जन्म लेता, पलता और उसीके विस्तृत प्रांगणमें क्रीडा कर अन्तर्धान हो जाता है।

इस शरीरका निर्माण भी धरती (मिट्टी), जल, अग्नि, आकाश और वायु—इन पाँच प्राकृतिक तत्त्वोंसे हुआ है। ये पाँचों तत्त्व मानव-जीवनके लिये प्रत्येक क्षण कल्याणप्रद हैं। प्रकृतिका यह विचित्र विधान है कि जिन तत्त्वोंसे प्राणीके शरीरका निर्माण हुआ, पुनः उन्हीं तत्त्वोंसे उसकी प्राकृतिक चिकित्साएँ (Natural Treatments) भी होती हैं।

प्रकृतिद्वारा प्रदत्त आठ ऐसे चिकित्सक हमें प्राप्त हैं, जिनके सहयोग तथा उचित सेवनसे हम यथासम्भव आरोग्य प्राप्त कर सकते हैं। वे चिकित्सक हैं—१-वायु, २-आहार, ३-जल, ४-उपवास, ५-सूर्य, ६-व्यायाम, ७-विचार और ८-निद्रा। यहाँ संक्षेपमें इनकी चर्चा की जा रही है—

१-वायु—प्रसिद्धि है कि मानव-जीवनमें वायुका स्थान जलसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। वेदमें कहा गया है कि वायु अमृत है, वायु ही प्राणरूपमें स्थित है। प्रातःकाल वायु-सेवन करनेसे देहकी धातुएँ और उपधातुएँ शुद्ध और पुष्ट होती हैं, मनुष्य बुद्धिमान् और बलवान् बनता है, नेत्र और श्रवणेन्द्रियकी शक्ति बढ़ती है तथा इन्द्रिय-निग्रह होता है एवं शान्ति मिलती है। प्रातःकालीन शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु पुष्पोंके सौरभको लेकर अपने पथमें सर्वत्र विकीर्ण करता है, अतः उस समय वायु-सेवन करनेसे मन प्रफुल्लित और प्रसन्न रहता है, साथ ही आनन्दकी अनुभूति भी होती है।

शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध भूमि, शुद्ध प्रकाश एवं शुद्ध अन्न यह 'पञ्चामृत' कहलाता है। प्रातःकालीन वायु-सेवन तथा भ्रमण सहस्रों रोगोंकी एक रामबाण औषधि है। शरीर, मन, प्राण, ब्रह्मचर्य, पवित्रता, प्रसन्नता, ओज, तेज, बल, सामर्थ्य, चिर-यौवन और चिर-उल्लास बनाये रखनेके लिये शुद्ध वायु-सेवन तथा प्रातःकालीन भ्रमण अति आवश्यक है। प्रातःकालका वायु-सेवन 'ब्राह्मवेलाका अमृतपान' कहा गया है।

२-आहार—शरीर और भोजनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रत्येक व्यक्तिको सात्त्विक भोजन करना चाहिये; क्योंकि सात्त्विक आहारसे शरीरकी सब धातुओंको लाभ पहुँचता है।

एक समय ईरानके एक बादशाहने अपने यहाँके एक श्रेष्ठ हकीमसे प्रश्न किया कि 'दिन-रातमें मनुष्यको कितना खाना चाहिये?' उत्तर मिला 'छ: दिरम' अर्थात् ३९ तोला। फिर पूछा, 'इतनेसे क्या होगा?' हकीमने कहा—'शरीर-पोषणके लिये इससे अधिक नहीं खाना चाहिये। इसके उपरान्त जो कुछ खाया जाता है, वह केवल बोझ ढोना और उम्र खोना है।'

मनुष्यको स्वल्प आहार करना चाहिये—'स्वल्पाहारः सुखावहः।' थोड़ा आहार करना स्वास्थ्यके लिये उपयोगी होता है। आहार उतना ही करना चाहिये, जितना कि सुगमतासे पच सके।

शुद्ध एवं सात्त्विक आहार शरीरका पोषण करनेवाला, शीघ्र बल देनेवाला, तृप्तिकारक, आयुष्य और तेजोवर्धक, साहस तथा मानसिक शक्ति और पाचनशक्तिको बढ़ानेवाला है। आहारसे ही शरीरमें सप्त धातुएँ बनती हैं। आयुर्वेदाचार्य महर्षि चरकने भी लिखा है कि 'देहो ह्याहारसम्भवः'—शरीर आहारसे ही बनता है। 'उपनिषद्'में भी आहारके विषयमें कहा गया है कि 'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।' (छान्दोग्योपनिषद् ७। २६। २) अर्थात् आहारकी शुद्धिसे सत्त्वकी शुद्धि होती है, सत्त्वशुद्धिसे बुद्धि निर्मल और निश्चयी बन जाती है। फिर पवित्र एवं निश्चयी बुद्धिसे मुक्ति भी सुगमतासे प्राप्त होती है।

गरिष्ठ भोजन अधिक हानिप्रद होता है। सच्ची भूख लगनेपर ही भोजन करना चाहिये। इससे यथेष्ट लाभ मिलता है। भोजन शान्तिपूर्वक करना चाहिये।

३-जल—स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये जलका महत्त्वपूर्ण स्थान है। सोकर उठते ही स्वच्छ जल पीना स्वास्थ्यके लिये बड़ा ही हितकर कहा गया है। लिखा है कि—

सवितुः समुदयकाले प्रसृतीः सलिलस्य पिबेदष्टौ।
रोगजरापरिमुक्तो जीवेद् वत्सरशतं साग्रम्॥

अर्थात् सूर्योदयके समय (सूर्योदयसे पहले) आठ घूँट जल पीनेवाला मनुष्य रोग और वृद्धावस्थासे मुक्त होकर सौ वर्षसे भी अधिक जीवित रहता है। कुएँका ताजा जल अथवा ताम्रपात्रमें रखा हुआ जल पीनेके लिये अधिक अच्छा है। खानेसे एक घंटा पूर्व अथवा खानेके दो घंटे बाद जल पीना चाहिये। एक व्यक्तिको एक दिनमें कम-से-कम ढाई सेर जल पीना चाहिये, इससे रक्तसंचार सुचारु रूपसे होता है।

४-उपवास—धर्मशास्त्रोंमें उपवासका बहुत महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। उपवाससे शरीर, मन और आत्मा सभीकी उन्नति होती है। उपवाससे शरीरके त्रिदोष नष्ट हो जाते हैं। आँतोंको अवशिष्ट भोजनके पचानेमें सुविधा मिलती है तथा शरीर स्वस्थ और हलका-सा प्रतीत होता है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे उपवास बहुत ही आवश्यक है। उपवास करनेसे मनुष्यकी आत्मिक शक्ति बढ़ती है। कहते हैं कि यदि महीनेमें दोनों एकादशियोंके निराहार-व्रतका विधिवत् पालन किया जाय तो प्रकृति पूर्ण सात्त्विक हो जाती है। जिन्हें उपवास करनेका अभ्यास नहीं है, उन्हें चाहिये कि वे सप्ताहमें एक दिन एक बार ही भोजन करें और धीरे-धीरे आगे चलकर सम्पूर्ण दिवस उपवास रखनेका व्रत लें।

उपवासका दिन भगवद्भजन, सत्साहित्यके स्वाध्याय आदि शुभ कर्मोंमें व्यतीत करना चाहिये। उपवास करनेवालोंको चाहिये कि वे अपने मनको चारों ओरसे खींचकर आत्मचिन्तनमें लगायें, धार्मिक विषयोंकी चर्चा करें और संत-महात्माओंके पास बैठकर उपदेश ग्रहण करें। इस प्रकारके उपवाससे शारीरिक और मानसिक आरोग्य प्राप्त होता है।

५-सूर्य—जीवनकी रक्षा करनेवाली सभी शक्तियोंका मूल स्रोत सूर्य है। 'सूर्यो हि भूतानामायुः।' समस्त चराचर भूतोंका जीवनाधार सूर्य है। यदि सूर्य न होते तो हम लोग एक क्षण भी जीवित न रह पाते। जीवनमें सूर्य-रश्मियोंका महत्त्व बहुत अधिक है। सूर्यकी किरणें शरीरके ऊपर पड़नेसे हमारे शरीरके अनेकों रोग-कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

सूर्यके प्रकाशसे रोगोत्पादक शक्ति नष्ट हो जाती है। सूर्यसे आरोग्य-प्राप्तिके विषयमें अथर्ववेदमें लिखा है—

मा ते प्राण उप दसन्मो अपानोऽपि धायि ते।
सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः॥
(५। ३०। १५)

अर्थात् हे जीव! तेरा प्राण विनाशको न प्राप्त हो और तेरा अपान भी कभी न रुके अर्थात् तेरे शरीरके श्वास-प्रश्वासकी क्रिया कभी बंद न हो। सबका स्वामी सूर्य—सबका प्रेरक परमात्मा तुझे अपनी व्यापक बलकारिणी किरणोंसे ऊँचा उठाये रखें—तेरे शरीरको और जीवनी-शक्तिको गिरने न दें।

सूर्यका प्रभाव मनुष्यके शरीर एवं मनपर बहुत गहरा पड़ता है। चिकित्सकोंका मत है कि सूर्य-रश्मि (Sun-beams)-के सेवनसे प्रत्येक प्रकारके रोग शान्त किये जा सकते हैं। यजुर्वेदमें कहा गया है कि चराचर प्राणी और समस्त पदार्थोंकी आत्मा तथा प्रकाश होनेसे परमेश्वरका नाम 'सूर्य' है **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'**—अतएव इन्हें वेदमें 'जीवनदाता' कहा गया है।

६-व्यायाम—आयुर्वेदका मत है कि व्यायाम करनेसे शरीरका विकास होता है, शरीरके अङ्गोंकी थकावट नष्ट हो जाती है, निद्रा खूब आती है और मनकी चञ्चलता दूर होती है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा आलस्य मिट जाता है। शारीरिक सौन्दर्यकी वृद्धि होती है और मुखकी कान्तिमें निखार आता है।

आयुर्वेदके मर्मज्ञ आचार्य वाग्भटने लिखा है—

लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः।
विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते॥

(अष्टाङ्गहृदय सूत्र० २।१०)

तात्पर्य यह है कि व्यायामसे शरीरमें स्फूर्ति आती है, कार्य करनेकी शक्ति बढ़ती है, जठराग्नि प्रज्वलित होती है, मोटापा नहीं रहता तथा शरीरके सब अङ्ग पुष्ट होते हैं। साथ ही यथोचित व्यायामसे प्रकृतिके विरुद्ध गरिष्ठ भोजन भी शीघ्र पच जाता है तथा शरीरमें शिथिलता जल्दी नहीं आ पाती। जीवनमें प्रसन्नता, स्वास्थ्य एवं सौन्दर्यके लिये व्यायाम नितान्त आवश्यक है। सदाचार और व्यायामके बलपर पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन सम्भव हो सकता है।

७-विचार—विचारशक्तिमें एक महान् उद्देश्य छिपा रहता है। इसलिये हमें अपने विचारोंको सदा-सर्वदा शुद्ध एवं पवित्र रखना चाहिये। विचारोंका प्रभाव सीधे स्वास्थ्यपर पड़ता है। सांकल्पिक दृढता तथा सात्त्विक चिन्तन-मनन रोगोंकी निर्मूलताके लिये बहुत आवश्यक है। दूषित विचारोंसे न केवल मन विकृत होकर रुग्ण होता है, अपितु शरीर भी अनारोग्य हो जाता है। सम्यक् सत्-चिन्तन एवं सम्यक् सद्विचार एक जीवनी-शक्ति है। अतः आरोग्य-लाभके लिये मनुष्यको विचार-शक्तिका आश्रय लेना चाहिये।

८-निद्रा—जिस प्रकार स्वास्थ्य-रक्षाके लिये शुद्ध वायु, जल, सूर्य और भोजन आदिकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार यथोचित निद्रा भी परमावश्यक है। एक स्थलपर कहा गया है—

निद्रा तु सेविता काले धातुसाम्यमतन्द्रिताम्।
पुष्टिं वर्णं बलोत्साहं वह्निदीप्तिं करोति हि॥

अर्थात् रात्रिमें ठीक समयपर सोनेसे धातुएँ साम्य-अवस्थामें रहती हैं और आलस्य दूर होता है। पुष्टि, कान्ति, बल और उत्साह बढ़ता है तथा अग्नि दीप्त होती है। स्वास्थ्यके लिये प्रगाढ निद्रा आवश्यक है। रात्रिमें सत्-विचारोंका स्मरण करते हुए शान्तिपूर्वक सोना चाहिये। सोते समय शरीरका वस्त्र ढीला होना चाहिये। उत्तम स्वास्थ्यके लिये सात्त्विक निद्रा आवश्यक है। दिनमें सोनेसे विविध प्रकारकी व्याधियाँ आ घेरती हैं।

यथाकाल निद्रासे निम्नलिखित लाभ होते हैं—१-नियमपूर्वक सोनेसे सारी श्रान्ति दूर हो जाती है। २-नये काम करनेकी नयी शक्ति प्राप्त होती है। ३-आयुर्बल बढ़ता है। ४-स्वप्नदोष, धातुदौर्बल्य, सिरके रोग, आलस्य, अल्पमूत्र और रक्तविकार आदिसे रक्षा होती है। ५-मन तथा इन्द्रियोंको विश्राम मिलता है।

सोनेसे पहले मनको समस्त शोक, चिन्ता और भयसे रहित कर लेना चाहिये तथा प्रसन्नता, संतोष और धैर्यके साथ सफलताकी कामना करनी चाहिये। इससे आप प्रातःकाल अपनेमें महान् परिवर्तन पायेंगे।

उपर्युक्त प्रकृति-प्रदत्त आठ चिकित्सकोंके समुचित सेवनसे मनुष्य-जीवन स्वस्थ, समृद्ध, सुख-सम्पत्ति तथा आनन्दसे परिपूर्ण और आयुष्मान् होता है।

आयुष्टे शरदः शतम्

(काशीपीठाधीश्वर श्रीरामशरणाचार्यजी)

श्रीमद्भागवतपुराण (२। ७। २१)-में बादरायण श्रीकृष्ण-द्वैपायन वेदव्यासजीने भगवान् धन्वन्तरिकी स्तुतिमें बड़ी सुन्दर बात कही है—

धन्वन्तरिश्च भगवान् स्वयमेव कीर्ति-
र्नाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हन्ति।
यज्ञे च भागममृतायुरवावरुन्ध
आयुश्च वेदमनुशास्त्यवतीर्य लोके॥

अर्थात् इस लोकमें अवतार लेकर आयुर्वेद शास्त्रका अनुशासन करनेवाले स्वनामधन्य भगवान् धन्वन्तरिके नामस्मरणसे ही बड़े-बड़े रोगियोंके रोग नष्ट हो जाते हैं और यह कोई मात्र अर्थवाद नहीं है, 'विश्वासः फलदायकः।' हमारे धर्मशास्त्र विश्वासकी धुरीपर टिके हैं, वे कहते हैं—

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥

अर्थात् मन्त्रमें, तीर्थमें, ब्राह्मणमें, देवतामें, दैवज्ञमें, औषधिमें तथा गुरुमें जो जैसी भावना (निष्ठा) रखता है, उसे फल भी तदनुरूप ही मिलता है।

चिकित्सा-शास्त्र, ज्योतिष तथा तन्त्र-मन्त्रके ग्रन्थ प्रत्यक्ष शास्त्रोंमें आते हैं, क्योंकि चिकित्सा-शास्त्रोंमें उल्लिखित औषधिका रोगानुसार सेवन करते ही रोगका नष्ट होना उसकी सत्यताका प्रत्यक्षीकरण करा देता है। इसी प्रकार ज्योतिषशास्त्रानुसार वर्षों पूर्व यह घोषणा कर दी जाती है कि अमुक दिन अमुक समयपर सूर्य या चन्द्र-ग्रहण होगा और ठीक उसी समयपर ग्रहण दिखायी भी देता है। यह हमारी प्राच्य भारतीय विद्याके लिये गौरवका विषय है। अन्यथा विज्ञानके लिये तो आज भी यह चुनौतीका विषय है कि किस समय, कौन-सा ग्रह कहाँ होगा? कौन किसको आच्छादित करेगा, उसकी ठीक गति क्या है? इत्यादि विराट् ब्रह्माण्डमें यह आज भी पाश्चात्य विज्ञानके लिये चुनौती है। तन्त्र-मन्त्रका प्रत्यक्षीकरण तो प्रसिद्ध ही है। मन्त्रोंसे साँप तथा बिच्छूके विषको शान्त करना तो साधारण बात है।

इसके अतिरिक्त अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंकी तुलनामें आयुर्वेदीय चिकित्सा-शास्त्रकी विशेषता यह भी है कि 'मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता' के सिद्धान्तानुसार बड़ी बातको संक्षिप्त—सूत्र-रूपमें ही कह देनेकी उसकी अपनी विशेषता है। जैसा कि देखें, कफ-वात-पित्त आदिकी चिकित्साके बारेमें संक्षेपमें ही कितनी सुन्दर बात कह दी गयी है—

वमनं कफनाशाय वातनाशाय मर्दनम्।
शयनं पित्तनाशाय ज्वरनाशाय लङ्घनम्॥

अर्थात् कफनाश करनेके लिये वमन (उलटी), वातरोगमें मर्दन (मालिश), पित्तरोगमें शयन तथा ज्वरमें लंघन (उपवास) करना चाहिये। आयुर्वेद शास्त्र केवल रोगीकी चिकित्सा करनेमें ही विश्वास नहीं करता, अपितु उसका तो सिद्धान्त है—'रोगी होकर चिकित्सा करनेसे अच्छा है कि बीमार ही न पड़ा जाय।' इसके लिये आयुर्वेद शास्त्रोंमें स्थान-स्थानपर ऐसी बातें भरी पड़ी हैं, जिसके अनुपालनसे वैद्यकी आवश्यकता भी नहीं पड़ती। जैसे—

दिनान्ते च पिबेद् दुग्धं निशान्ते च जलं पिबेत्।
भोजनान्ते पिबेत् तक्रं वैद्यस्य किं प्रयोजनम्॥

तात्पर्य यह कि यदि रात्रिको शयनसे पूर्व दुग्ध, प्रातःकाल उठकर जल और भोजनके बाद तक्र (मट्ठा) पिये तो जीवनमें वैद्यकी आवश्यकता ही क्यों पड़े? इस प्रकारके सूत्रोंके आधारपर ग्राम्य जीवनमें बारहों मासके उपयोगी खाद्योंका सुन्दर संकेत इस प्रकार कर दिया गया है, जिनका सेवन अवश्य करना चाहिये—

सावन हरें भादौं चीत, क्वार मास गुड़ खाये मीत।
कातिक मूली अगहन तेल, पूषे करै दूधसे मेल॥
माघे घी व खीचड़ खाय, फागुन उठि कै प्रात नहाय।
चैत मासमें नीम व्यसवनि, भर बैसाखे खाये अगहनि॥
जेठ मास दुपहरिया सोवै, ताकर दुख अषाढ़में रोवै॥

बारहों मासके इन विधि-खाद्योंके अतिरिक्त निषेध-खाद्य भी हैं, जिन्हें भूलकर भी ग्रहण न करे। जैसे—

चैते गुड़ बैसाखे तेल, जेठे पथ आषाढ़े बेल।
सावन साग न भादों दही, क्वार करैला कातिक मही॥

अगहन जीरा न पूषे घना, माघे मिश्री फागुन चना।
इन बारहसे बचे जो भाई, ता घर कबहूँ वैद न जाई॥

आयुर्वेदका सिद्धान्त है कि—'भुक्त्वा शतपदं गच्छेच्छायायां हि शनैः शनैः।' भोजन करनेके बाद छायामें सौ पग धीरे-धीरे चलना चाहिये। शयनसे कम-से-कम २-३ घंटे पहले ही भोजन कर लेना चाहिये, अन्यथा क़ब्ज़ रहेगी। इसके अतिरिक्त दीर्घायुके लिये भी एक जगह बड़ा सुन्दर संकेत कर दिया गया है कि—

वामशायी द्विभुञ्जानो षण्मूत्री द्विपुरीषकः।
स्वल्पमैथुनकारी च शतं वर्षाणि जीवति॥

अर्थात् बायीं करवट सोनेवाला, दिनमें दो बार भोजन करनेवाला, कम-से-कम छः बार लघुशंका, दो बार शौच जानेवाला, [गृहस्थमें आवश्यक होनेपर] स्वल्प-मैथुनकारी व्यक्ति सौ वर्षतक जीता है।

आयुर्वेद शास्त्र ही नहीं अपितु अथर्ववेदीय भगवती श्रुति भी ऐसी ही कामना करती हैं—

कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम्॥
(२।१३।४)

अर्थात् सभी देवता तुम्हारी आयु सौ वर्षकी करें।

परंतु आगे ही एक बात अवश्य कह दी है कि—

प्रत्यक् सेवस्व भेषजं जरदष्टि कृणोमि त्वा।

अर्थात् संयोगसे बीमार पड़ जानेपर औषधि अवश्य ले लेनी चाहिये। इसमें प्रमाद करनेकी आवश्यकता नहीं; क्योंकि—'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' स्वस्थ शरीर ही धर्म-साधनका माध्यम है। संत कहते हैं—

पहला सुख निरोगी काया। दूजा सुख घर में हो माया।
तीजा सुख सुत दारा वश में। चौथा सुख जस खूब कमाया॥

अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंसे भिन्न आयुर्वेद शास्त्र स्वास्थ्यका उपयोग धर्म-साधन ही स्वीकार करता है। इस बातका वह स्थान-स्थानपर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूपसे संकेत करता रहता है। इसीके अनुसार नारायण-तैलके उपयोगको बताते समय यह भी संकेत कर देता है कि वास्तवमें इन रोगोंका उपशमन नारायण (भगवान्)-के हाथमें है—

नारायणं भजत रे जठरेण युक्ता
नारायणं भजत रे पवनेन युक्ताः।
नारायणं भजत रे भवभीतियुक्ता
नारायणात् परतरं नहि किञ्चिदस्ति॥

अर्थात् हे जठराग्निसे पीड़ित मनुष्यो! तुम नारायणका भजन करो, हे वातव्याधिसे दुःखी मनुष्यो! तुम नारायणका भजन करो, हे संसाररूपी महाव्याधिसे डरे हुए मनुष्यो! तुम नारायणका ही भजन करो; क्योंकि इन कष्टोंसे उबारनेवाला नारायणसे अतिरिक्त और कोई दूसरा है ही नहीं।

यह भारतीयोंके लिये एक गौरवका विषय है कि पारेसे स्वर्ण बना देनेवाले रसायनाचार्य यहाँ तक डिण्डिम घोष कर देते हैं कि रस सिद्ध कर देनेपर इसके द्वारा दैहिक रोगकी बात ही क्या दुनिया भरके दारिद्र्य-रोगको मिटाया जा सकता है—

सिद्धे रसे करिष्यामि निर्दारिद्र्यमिदं जगत्॥

इस प्रकारके असंख्यों संकेत-सूत्र हमारे शास्त्रोंमें भरे पड़े हैं जिनपर व्यवस्थित रूपसे यदि सम्यक् अनुसन्धान किया जाय तो भारतवर्ष न केवल अपने प्राचीन गुरुत्वकी प्रतिष्ठाको पा जायगा, अपितु शीघ्र ही आजका भारत प्राचीन स्वर्ण-भारतमें भी बदल सकता है।

विभिन्न व्याधियोंके तारतम्यपर अनुसन्धान करनेसे एक बात सामने आती है कि जिन लोगोंका जन्म शीतकालमें होता है, उनको शीतकी बीमारियाँ ही अधिक होती हैं। जिनका जन्म ग्रीष्म-ऋतुमें होता है, उनको गर्मीकी ही बीमारियाँ अधिक होंगी तथा गर्मी भी असह्य होगी। इस प्रकारके अनुसन्धानोंमें जहाँ मानव-जातिका बहुत बड़ा कल्याण होगा, वहीं आधुनिक युगमें भी शास्त्रोंकी प्रामाणिकतापर रुचि बढ़ेगी।

चिकित्साके विषयमें वर्तमान स्थितिमें यह अवश्य चिन्तनीय बात है कि आजका तथाकथित चिकित्सक अनुसन्धान तथा स्वाध्याय-अनुगमके अभावमें रोगीपर खिलौनेकी तरह चिकित्साकी आड़में मात्र प्रयोग करता जाता है—

यस्य कस्य तरोर्मूलं येन केनापि पेष्टितम्।
यस्मै कस्मै प्रदातव्यं यद्वा तद्वा भविष्यति॥

अर्थात् जिस-किसी जड़ीको जिस-किसी भी प्रकार पीसकर जिस-किसी भी तरह जिस-किसी भी रोगीको दे

दो। कुछ-न-कुछ तो प्रतिक्रिया होगी ही और होता वही है कि अन्तमें प्रयोग करते-करते रोगी स्वर्ग ही सिधार जाता है। ऐसे चिकित्सकोंके बारेमें ठीक ही कहा गया है—

वैद्यराज नमस्तुभ्यं क्षपिताशेषमानव।
त्वयि विन्यस्तभारोऽयं कृतान्तः सुखमेधते॥

(सुभाषितावली २३। १९)

इस प्रमादमें आजकलके कुछ चिकित्सकोंकी अर्थबुद्धि भी कम कारण नहीं है, क्योंकि **'अर्थबुद्धिर्न धर्मवित्'** अर्थात् जिसकी बुद्धि अर्थमें लगी हो वह धर्माचरण नहीं कर सकता। जो लोग मरणासन्न व्यक्तिसे भी कुछ-न-कुछ धनागमकी कामना रखते हैं, वे चिकित्सा-सेवा कैसे कर पायँगे?

इसमें कोई संदेह नहीं कि आयुर्वेद शास्त्र औषधिसे भी अधिक महत्त्व पथ्यको देता है—

विनापि भेषजं व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते।
न तु पथ्यविहीनोऽयं भेषजानां शतैरपि।

पथ्यसेवनसे व्याधि बिना औषधिके भी नष्ट हो जाती है, परंतु जो पथ्यसेवन नहीं करता, युक्ताहार-विहार नहीं रखता, वह चाहे सैकड़ों औषधि ले ले, पर उसका वह रोग दूर नहीं होता। अतः आरोग्य-लाभार्थ संयमित जीवन जीनेकी आवश्यकता है।



आरोग्य-साधन

(पं० श्रीमुकुन्दवल्लभजी मिश्र, ज्यौतिषाचार्य)

आरोग्यं भास्करादिच्छेत्.......। (मत्स्यपुराण)

अन्तश्चरति रोचना ऽस्य प्राणादपानती। व्यख्यन्महिषो दिवम्॥ (ऋग्वेद १०। १८९। २)

ऊपरके इस वेदमन्त्र **'अन्तश्चरति०'**-में स्पष्ट कहा है कि भगवान् सूर्यकी रोचमाना दीप्ति अर्थात् सुन्दर प्रभा शरीरके मध्यमें मुख्य प्राणरूप होकर रहती है। इससे सिद्ध है कि शरीरका स्वस्थ, नीरोग, दीर्घजीवी होना भगवान् सूर्यकी कृपापर निर्भर है; क्योंकि सूर्य-किरणोंके द्वारा ही सारे जगत्में प्राणतत्त्वका संचार होता है। प्रश्नोपनिषद्में लिखा है—

यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते।

(१।६)

अर्थात् जब आदित्य प्रकाशमान होता है, तब वह समस्त प्राणोंको अपनी किरणोंमें रखता है।

इसमें भी एक रहस्य है। वह यह कि प्रातःकालकी सूर्य-किरणोंमें अस्वस्थताका नाश करनेकी जो अद्भुत शक्ति है, वह मध्याह्न तथा सायाह्नकी सूर्य-रश्मियोंमें नहीं है।

उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशः०।

(अथर्व० ९।८।२२)

वेदभगवान् कहते हैं कि प्रातःकालकी आदित्य-किरणोंसे अनेक व्याधियोंका नाश होता है। सूर्य-रश्मियोंमें विष दूर करनेकी भी शक्ति है। स्वस्थ शरीरसे ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं **'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'**। एतदर्थ आरोग्यके इच्छुक साधकोंको भगवान् सूर्यकी शरणमें रहना अत्यावश्यक है। सूर्यकी किरणोंमें व्याप्त प्राणोंको पोषण प्रदान करनेवाली महती शक्तिका निम्नलिखित सहज साधनसे आकर्षण करके साधक स्वस्थ, नीरोग और दीर्घजीवी होकर अन्तमें दिव्य प्रकाशको प्राप्त करके परमपदको भी प्राप्त कर सकता है। आलस्य या अविश्वासवश इस साधनको न करना एक प्रकारसे आत्मोन्नतिसे विमुख रहना है।

साधन—प्रातःकाल संध्या-वन्दनादिसे निवृत्त होकर प्रथम प्रहरमें, जबतक सूर्यकी धूप विशेष तेज न हो, तबतक एकान्तमें केवल एक वस्त्र पहनकर और मस्तक, हृदय, उदर आदि प्रायः सभी अङ्ग खुले रखकर पूर्वाभिमुख भगवान् सूर्यके प्रकाशमें खड़ा हो जाय। तदनन्तर हाथ जोड़, नेत्र बंद करके जगच्चक्षु भगवान् भास्करका ध्यान इस प्रकार करे—

पद्मासनः पद्मकरो द्विबाहुः
पद्मद्युतिः सप्ततुरङ्गवाहनः।
दिवाकरो लोकगुरुः किरीटी
मयि प्रसादं विदधातु देवः॥

यदि किसी साधकको नेत्रमान्द्यादि दोष हो तो वह

ध्यानके बाद नेत्रोपनिषद्‌का पाठ भी कर ले। तदनन्तर वाल्मीकिरामायणोक्त आर्ष आदित्यहृदयका पाठ तथा 'ॐ ह्रीं हंसः०' इस बीजसमन्वित मन्त्रका कम-से-कम पाँच माला जप करके मनमें दृढ़ धारणा करे कि जो सूर्य-किरणें हमारे शरीरपर पड़ रही हैं और जो हमारे चारों ओर फैल रही हैं, उन सबमें रहनेवाली आरोग्यदा प्राणशक्ति मेरे शरीरके रोम-रोममें प्रवेश कर रही है। नित्य नियमपूर्वक दस मिनटसे बीस मिनटतक इस प्रकार करे। साथ ही घंटा-रव-रणत्-स्वरसे ॐकारका उच्चारण ब्रह्मरन्ध्रतक पहुँचाना चाहिये। ऐसा करनेसे अनोखा आनन्द तथा दिव्य स्फूर्तियुक्त तेज मिलेगा। यदि किसी श्रद्धालु साधकको कष्टसाध्य अथवा असाध्य ऊरुक्षत, राजयक्ष्मा अथवा कुष्ठादि रोग अत्यन्त कष्ट दे रहे हों तो वह उपर्युक्त साधनके साथ-साथ निम्नलिखित काम्य रविव्रत भी करे। मेरा विश्वास है कि ऐसा करनेपर निश्चय ही इच्छानुसार लाभ होगा। यह व्रत गुरु-शुक्रास्तादि दोषसे रहित मार्गशीर्ष शुक्लपक्षसे प्रारम्भ करना चाहिये।

व्रती साधकको चाहिये कि रविवारको सूर्योदयसे ५ घड़ी (२ घंटे) पूर्व उठकर शौचशुद्धिके बाद ताजे या भिगोये हुए अपामार्ग (ओंगा-पुठकंडा)-की दातौनसे मुखशुद्धि करे। तदनन्तर स्नानादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर उपर्युक्त साधन करके भगवान् सूर्यके सम्मुख (चान्द्रमानसे) मार्गशीर्ष हो तो पहले दिनके तोड़े हुए और भगवान्‌को समर्पण किये हुए केवल तुलसीजीके तीन पत्र, पौषमें ३ पल गोघृत, माघमें ३ मुट्ठी तिल, फाल्गुनमें ३ पल गौका दही, चैत्रमें ३ पल गौका दूध, वैशाखमें सवत्सा गौका गोबर बदरीफल प्रमाणमें (बेर-जितना), ज्येष्ठमें ३ अञ्जलि गङ्गाजल (अभावमें भगवान्‌का चरणामृत), आषाढ़में ३ दाना काली मिर्च, श्रावणमें ३ पल जौका सत्तू, भाद्रपदमें सवत्सा गौका मूत्र ३ चुल्लू, आश्विनमें चीनी ३ पल तथा कार्तिकमें हविष्य ३ पल* भक्षण करे।

ऊपर जो द्वादश मासोंके रविवारोंकी भक्ष्य वस्तुएँ लिखी हैं, उनके अतिरिक्त अन्य वस्तु उस दिन मुखमें न डाले। भक्ष्य पदार्थके भक्षण करनेके अनन्तर आचमन करके मुखशुद्धि अवश्य करे। जहाँ केवल जलमात्रका ही वचन है, वहाँ आचमनकी आवश्यकता नहीं है। व्रती साधक उस दिन मौनधारणपूर्वक मनमें पहले बताये गये बीजमन्त्रका स्मरण करता हुआ एकान्तसेवन करे और प्रातः, मध्याह्न तथा सायंके समय रोली, पुष्प और चावलोंसे युक्त जलका अर्घ्य भी अवश्य दे। रात्रिको पवित्रतापूर्वक जमीनपर या काठके तख्ते अथवा चौकीपर पूर्वकी ओर सिर करके सोये।

साधको! इस रविव्रतसे स्वास्थ्यमें जो वर्णनातीत लाभ होते देखा गया है, वह किसी भी मानवीय औषधसे शतांशमें भी नहीं होता—ऐसा मेरा अनुभव है। यदि कोई साधक इस व्रतको बारह सालतक विश्वासपूर्वक करे तो वह पूर्णकाम होकर ब्रह्मरूप हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। यहाँ तो केवल दृढ़ श्रद्धा-भक्तिकी आवश्यकता है। कहाँतक लिखा जाय, कुछ समयतक विधिवत् इस साधनके करनेसे भगवान् भास्करकी कृपाका अद्भुत फल अपने-आप ही प्रत्यक्ष हो जायगा।

स्मरण रहे कि सूर्यके सामने मल-मूत्रका त्याग करना सभीके लिये, खास करके सूर्योपासकके लिये तो सर्वथा निषिद्ध है। रविवारको तैल, स्त्री-संसर्ग तथा नमकीन पदार्थका त्याग करना साधारण रविव्रत कहलाता है।



सर्वरोगोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्।
शान्तिदं सर्वरिष्टानां हरेर्नामानुकीर्तनम्॥

हरिनाम संकीर्तन सभी रोगोंका उपशमन करनेवाला, सभी उपद्रवोंका नाश करनेवाला और समस्त अरिष्टोंकी शान्ति करनेवाला है।



* एक पल ३ तोले ४ माशेका होता है।

वास्तुशास्त्र और आरोग्य

(श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन)

'वास्तु' शब्दका अर्थ है—निवास करना। जिस भूमिपर मनुष्य निवास करते हैं, उसे 'वास्तु' कहा जाता है। वास्तुशास्त्रमें गृह-निर्माण-सम्बन्धी विविध नियमोंका प्रतिपादन किया गया है। उनका पालन करनेसे मनुष्यको अन्य कई प्रकारके लाभोंके साथ-साथ आरोग्यलाभ भी होता है। वास्तुशास्त्रका विशेषज्ञ किसी मकानको देखकर यह बता सकता है कि इसमें निवास करनेवालेको क्या-क्या रोग हो सकते हैं। इस लेखमें संक्षिप्त रूपसे ऐसी बातोंका उल्लेख करनेकी चेष्टा की जाती है, जिनसे पाठकोंको इस बातका दिग्दर्शन हो जाय कि गृह-निर्माणमें किन दोषोंके कारण रोगोंकी उत्पत्ति होना सम्भव है।

१. भूमि-परीक्षा—भूमिके मध्यमें एक हाथ लंबा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा गड्ढा खोदे। खोदनेके बाद निकाली हुई सारी मिट्टी पुनः उसी गड्ढेमें भर दे। यदि गड्ढा भरनेसे मिट्टी शेष बच जाय तो वह उत्तम भूमि है। यदि मिट्टी गड्ढेके बराबर निकलती है तो वह मध्यम भूमि है और यदि गड्ढेसे कम निकलती है तो वह अधम भूमि है।

दूसरी विधि—उपर्युक्त प्रकारसे गड्ढा खोदकर उसमें पानी भर दे और उत्तर दिशाकी ओर सौ कदम चले, फिर लौटकर देखे। यदि गड्ढेमें पानी उतना ही रहे तो वह उत्तम भूमि है। यदि पानी कम (आधा) रहे तो वह मध्यम भूमि है और यदि बहुत कम रह जाय तो वह अधम भूमि है। अधम भूमिमें निवास करनेसे स्वास्थ्य और सुखकी हानि होती है।

ऊसर, चूहोंके बिलवाली, बाँबीवाली, फटी हुई, ऊबड़-खाबड़, गड्ढोंवाली और टीलोंवाली भूमिका त्याग कर देना चाहिये।

जिस भूमिमें गड्ढा खोदनेपर कोयला, भस्म, हड्डी, भूसा आदि निकले, उस भूमिपर मकान बनाकर रहनेसे रोग होते हैं तथा आयुका ह्रास होता है।

२. भूमिकी सतह—पूर्व, उत्तर और ईशान दिशामें नीची भूमि सब दृष्टियोंसे लाभप्रद होती है। आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य और मध्यमें नीची भूमि रोगोंको उत्पन्न करनेवाली होती है।

दक्षिण तथा आग्नेयके मध्य नीची और उत्तर एवं वायव्यके मध्य ऊँची भूमिका नाम 'रोगकर वास्तु' है, जो रोग उत्पन्न करती है।

३. गृहारम्भ—वैशाख, श्रावण, कार्तिक, मार्गशीर्ष और फाल्गुनमासमें करना चाहिये। इससे आरोग्य तथा धन-धान्यकी प्राप्ति होती है।

नींव खोदते समय यदि भूमिके भीतरसे पत्थर या ईंट निकले तो आयुकी वृद्धि होती है। यदि राख, कोयला, भूसी, हड्डी, कपास, लोहा आदि निकले तो रोग तथा दुःखकी प्राप्ति होती है।

४. वास्तुपुरुषके मर्म-स्थान—सिर, मुख, हृदय, दोनों स्तन और लिङ्ग—ये वास्तुपुरुषके मर्म-स्थान हैं। वास्तुपुरुषका सिर 'शिखी'में, मुख 'आप'में, हृदय 'ब्रह्मा'में, दोनों स्तन 'पृथ्वीधर' तथा 'अर्यमा'में और लिङ्ग 'इन्द्र' तथा 'जय'में है (देखें—वास्तुपुरुषका चार्ट)। वास्तुपुरुषके जिस मर्म-स्थानमें कील, खम्भा आदि गाड़ा जायगा, गृहस्वामीके उसी अङ्गमें पीडा या रोग उत्पन्न हो जायगा।

वास्तुपुरुषका हृदय (मध्यका ब्रह्म-स्थान) अतिमर्मस्थान है। इस जगह किसी दीवार, खम्भा आदिका निर्माण नहीं करना चाहिये। इस जगह जूठे बर्तन, अपवित्र पदार्थ भी नहीं रखने चाहिये। ऐसा करनेपर अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं।

५. गृहका आकार—चौकोर तथा आयताकार मकान उत्तम होता है। आयताकार मकानमें चौड़ाईकी दुगुनीसे अधिक लम्बाई नहीं होनी चाहिये। कछुएके आकारवाला घर पीडादायक है। कुम्भके आकारवाला घर कुष्ठरोग-प्रदायक है। तीन तथा छः कोनवाला घर आयुका क्षयकारक है। पाँच कोनवाला घर संतानको कष्ट देनेवाला है। आठ कोनवाला घर रोग उत्पन्न करता है।

घरको किसी एक दिशामें आगे नहीं बढ़ाना चाहिये। यदि बढ़ाना ही हो तो सभी दिशाओंमें समानरूपसे बढ़ाना

चाहिये। यदि घर वायव्य दिशामें आगे बढ़ाया जाय तो वात-व्याधि होती है। यदि वह दक्षिण दिशामें बढ़ाया जाय तो मृत्यु-भय होता है। उत्तर दिशामें बढ़ानेपर रोगोंकी वृद्धि होती है।

वास्तुचक्र

ईशान — पूर्व — आग्नेय

शिखी सिर	पर्जन्य नेत्र	जयन्त कान	इन्द्र कन्धा	सूर्य भुजा	सत्य भुजा	भृश भुजा	अन्तरिक्ष भुजा	अनिल भुजा
दिति नेत्र	आप मुख						सावित्र हाथ	पूषा मणिबन्ध
अदिति कान		आपवत्स छाती		अर्यमा स्तन		सविता हाथ		वितथ बगल
भुजग कन्धा								बृहत्क्षत बगल
सोम भुजा		पृथ्वीधर स्तन		ब्रह्मा हृदय		विवस्वान् पेट		यम ऊरु
भल्लाट भुजा								गन्धर्व घुटना
मुख्य भुजा		राजयक्ष्मा हाथ		मित्र पेट		इन्द्र लिङ्ग		भृंगराज जंघा
नाग भुजा	रुद्र हाथ						जय लिङ्ग	मृग नितम्ब
रोग भुजा	पापयक्ष्मा मणिबन्ध	शोष बगल	असुर बगल	वरुण ऊरु	पुष्पदन्त घुटना	सुग्रीव जंघा	दौवारिक नितम्ब	पिता पैर

उत्तर (बायीं ओर) — दक्षिण (दायीं ओर)

वायव्य — पश्चिम — नैर्ऋत्य

६. गृहनिर्माणकी सामग्री—ईंट, लोहा, पत्थर, मिट्टी और लकड़ी—ये नये मकानमें नये ही लगाने चाहिये। एक मकानमें उपयोग की गयी लकड़ी दूसरे मकानमें लगानेसे गृहस्वामीका नाश होता है।

मन्दिर, राजमहल और मठमें पत्थर लगाना शुभ है, पर घरमें पत्थर लगाना शुभ नहीं है।

पीपल, कदम्ब, नीम, बहेड़ा, आम, पाकर, गूलर, रीठा, वट, इमली, बबूल और सेमलके वृक्षकी लकड़ी घरके काममें नहीं लेनी चाहिये।

७. गृहके समीपस्थ वृक्ष—आग्नेय दिशामें वट, पीपल, सेमल, पाकर तथा गूलरका वृक्ष होनेसे पीडा और मृत्यु होती है। दक्षिणमें पाकर-वृक्ष रोग उत्पन्न करता है। उत्तरमें गूलर होनेसे नेत्ररोग होता है। बेर, केला, अनार, पीपल और नीबू—ये जिस घरमें होते हैं, उस घरकी वृद्धि नहीं होती।

घरके पास काँटेवाले, दूधवाले और फलवाले वृक्ष हानिप्रद हैं।

पाकर, गूलर, आम, नीम, बहेड़ा, पीपल, कपित्थ, बेर, निर्गुण्डी, इमली, कदम्ब, बेल तथा खजूर—ये सभी वृक्ष घरके समीप अशुभ हैं।

८. गृहके समीपस्थ अशुभ वस्तुएँ—देवमन्दिर, धूर्तका घर, सचिवका घर अथवा चौराहेके समीप घर बनानेसे

दुःख, शोक तथा भय बना रहता है।

९. मुख्य द्वार—जिस दिशामें द्वार बनाना हो, उस ओर मकानकी लम्बाईको बराबर नौ भागोंमें बाँटकर पाँच भाग दायें और तीन भाग बायें छोड़कर शेष (बायीं ओरसे चौथे) भागमें द्वार बनाना चाहिये। दायाँ और बायाँ भाग उसको माने, जो घरसे बाहर निकलते समय हो।

पूर्व अथवा उत्तरमें स्थित द्वार सुख-समृद्धि देनेवाला होता है। दक्षिणमें स्थित द्वार विशेषरूपसे स्त्रियोंके लिये दुःखदायी होता है।

द्वारका अपने-आप खुलना या बंद होना अशुभ है। द्वारके अपने-आप खुलनेसे उन्माद-रोग होता है और अपने-आप बंद होनेसे दुःख होता है।

१०. द्वार-वेध—मुख्य द्वारके सामने मार्ग या वृक्ष होनेसे गृहस्वामीको अनेक रोग होते हैं। कुआँ होनेसे मृगी तथा अतिसाररोग होता है। खम्भा एवं चबूतरा होनेसे मृत्यु होती है। बावड़ी होनेसे अतिसार एवं संनिपातरोग होता है। कुम्हारका चक्र होनेसे हृदयरोग होता है। शिला होनेसे पथरीरोग होता है। भस्म होनेसे बवासीररोग होता है।

यदि घरकी ऊँचाईसे दुगुनी जमीन छोड़कर वेध-वस्तु हो तो उसका दोष नहीं लगता।

११. गृहमें जल-स्थान—कुआँ या भूमिगत टंकी पूर्व, पश्चिम, उत्तर अथवा ईशान दिशामें होनी चाहिये। जलाशय या ऊर्ध्व टंकी उत्तर या ईशान दिशामें होनी चाहिये।

यदि घरके दक्षिण दिशामें कुआँ हो तो अद्भुत रोग होता है। नैर्ऋत्य दिशामें कुआँ होनेसे आयुका क्षय होता है।

१२. घरमें कमरोंकी स्थिति—यदि एक कमरा पश्चिममें और एक कमरा उत्तरमें हो तो वह गृहस्वामीके लिये मृत्युदायक होता है। इसी तरह पूर्व और उत्तर दिशामें कमरा हो तो आयुका ह्रास होता है। पूर्व और दक्षिण दिशामें कमरा हो तो वातरोग होता है। यदि पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशामें कमरा हो, पर दक्षिणमें कमरा न हो तो सब प्रकारके रोग होते हैं।

१३. गृहके आन्तरिक कक्ष—स्नानघर 'पूर्व'में, रसोई 'आग्नेय'में, शयनकक्ष 'दक्षिण'में, शस्त्रागार, सूतिकागृह, गृह-सामग्री और बड़े भाई या पिताका कक्ष 'नैर्ऋत्य'में, शौचालय 'नैर्ऋत्य', 'वायव्य' या 'दक्षिण-नैर्ऋत्य'में, भोजन करनेका स्थान 'पश्चिम'में, अन्न-भण्डार तथा पशु-गृह 'वायव्य'में, पूजागृह 'उत्तर' या 'ईशान'में, जल रखनेका स्थान 'उत्तर' या 'ईशान'में, धनका संग्रह 'उत्तर'में और नृत्यशाला 'पूर्व, पश्चिम, वायव्य या आग्नेय'में होनी चाहिये। घरका भारी सामान नैर्ऋत्य दिशामें रखना चाहिये।

१४. जानने योग्य आवश्यक बातें—ईशान दिशामें पति-पत्नी शयन करें तो रोग होना अवश्यम्भावी है।

सदा पूर्व या दक्षिणकी तरफ सिर करके सोना चाहिये। उत्तर या पश्चिमकी तरफ सिर करके सोनेसे शरीरमें रोग होते हैं तथा आयु क्षीण होती है।

दिनमें उत्तरकी ओर तथा रात्रिमें दक्षिणकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। दिनमें पूर्वकी ओर तथा रात्रिमें पश्चिमकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग करनेसे आधासीसीरोग होता है।

दिनके दूसरे और तीसरे पहर यदि किसी वृक्ष, मन्दिर आदिकी छाया मकानपर पड़े तो वह रोग उत्पन्न करती है।

एक दीवारसे मिले हुए दो मकान यमराजके समान गृहस्वामीका नाश करनेवाले होते हैं।

किसी मार्ग या गलीका अन्तिम मकान कष्टदायी होता है।

घरकी सीढ़ियाँ (पग), खम्भे, खिड़कियाँ, दरवाजे आदिकी 'इन्द्र-काल-राजा'—इस क्रमसे गणना करे। यदि अन्तमें 'काल' आये तो अशुभ समझना चाहिये।

दीपक (बल्ब आदि)-का मुख पूर्व अथवा उत्तरकी ओर रहना चाहिये।

दन्तधावन (दातुन), भोजन और क्षौरकर्म सदा पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके ही करने चाहिये।

जीवका गर्भवास और देहरचना

(वैद्य पं० श्रीनन्दकिशोरजी गौतम 'निर्मल', एम्०ए०, साहित्यायुर्वेदाचार्य, साहित्यायुर्वेदरत्न)

अखिल विश्वमें हमारा भारत ही एक ऐसा देश है जो पुनर्जन्मके सिद्धान्तमें पूर्ण विश्वास ही नहीं रखता, अपितु समय-समयपर त्रिकालदर्शी योगियोंद्वारा इस प्रकारके उदाहरण प्रत्यक्षरूपसे प्रस्तुत करनेमें समर्थ रहा है। अणिमा आदि अष्टसिद्धियोंको प्राप्त महापुरुष तो परकाया-प्रवेशतक करके ऐसा दिखाते आये हैं।

इससे यह प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि आत्मा अजर और अमर है तथा वह अपने प्रारब्ध (पूर्वसंचित कर्मफल)-के अनुसार सम्बन्धित मानव, पशु, कीट आदि योनियोंमें जन्म लेता है। श्रीमद्भागवत तथा गरुडपुराण (सारोद्धार) आदिमें इस बातका स्पष्ट प्रमाण मिलता है—

जीवका गर्भप्रवेश

'जीव प्रारब्ध-कर्मवश देह-प्राप्तिके लिये पुरुषके वीर्य-कणके आश्रित होकर स्त्रीके उदरमें प्रविष्ट[1] होता है।'

आयुर्वेदके विभिन्न ग्रन्थोंके आधारपर जीवके पूर्वकर्मानुसार गर्भप्रवेशका वर्णन इस प्रकार उपलब्ध होता है—'यह आत्मा जैसे शुभाशुभ कर्म पूर्वजन्ममें संचित करता है, उन्हींके आधारपर इसका पुनर्जन्म होता है और पूर्वदेहमें संस्कारित गुणोंका प्रादुर्भाव[2] इस जन्ममें होता है।'

जैसा कि योगिराज श्रीकृष्णने गीताके छठे अध्यायमें इस बातकी पुष्टि— **'तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्'**— इस वाक्यसे की है। इसी कारण हम संसारमें किसीको कुरूप, किसीको सुन्दर, किसीको लँगड़ा, किसीको लूला, किसीको मूक और किसीको कुबड़ा तो किसीको अंधा और किसीको काना देखते हैं। इसी प्रकार कोई जीव किसी महापुरुषके घर जन्म लेता है तो कोई किसी अधमके घर। कोई ऐश्वर्यशालीके घरमें जन्म लेता है तो कोई अकिंचन कुटीरमें पलता है। यह सम्पूर्ण विविधता पूर्वकृत कर्मके अनुसार होती है, जिसे कि हम 'दैव' भी कहते हैं—

'पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।'

चरक-संहिताके शारीरस्थानके चतुर्थ अध्यायमें भी इस बातकी पुष्टि इस प्रकार है—'सबसे पूर्व मनरूपी कारणके साथ संयुक्त हुआ आत्मा धातुगुणके ग्रहण करनेके लिये प्रवृत्त होता है अर्थात् अपने कर्मके अनुसार सत्त्व, रज तथा तम—इन गुणोंके ग्रहणके लिये अथवा महाभूतोंके ग्रहणके लिये प्रवृत्त होता है। आत्माका जैसा कर्म होता है और जैसा मन उसके साथ है, वैसा ही शरीर बनता है, वैसे ही पृथिवी आदि भूत होते हैं तथा अपने कर्मद्वारा प्रेरित किये हुए मनरूपी साधनके साथ स्थूल शरीरको उत्पन्न करनेके लिये उपादानभूत भूतोंको ग्रहण करता है। वह आत्मा हेतु, कारण, निमित्त, कर्ता, मन्ता, बोधयिता, बोद्धा, द्रष्टा, धाता, ब्रह्मा, विश्वकर्मा, विश्वरूप, पुरुषप्रभव, अव्यय, नित्यगुणी, भूतोंका ग्रहण करनेवाला प्रधान, अव्यक्त, जीवज्ञ, प्रकुल, चेतनावान्, प्रभु, भूतात्मा, इन्द्रियात्मा और अन्तरात्मा कहलाता[3] है।'

'वह जीव गर्भाशयमें अनुप्रविष्ट होकर शुक्र और शोणितसे मिलकर अपनेसे अपनेको गर्भरूपमें उत्पन्न करता है। अतएव गर्भमें इसकी आत्मसंज्ञा[4] होती है।'

'क्षेत्रज्ञ, वेदयिता, स्प्रष्टा, घ्राता, द्रष्टा, श्रोता, रसयिता, पुरुषस्रष्टा, गन्ता, साक्षी, धाता, वक्ता इत्यादि पर्यायवाची नामोंसे, जो ऋषियोंद्वारा पुकारा जाता है, वह क्षेत्रज्ञ (स्वयं अक्षय, अचिन्त्य और अव्यय होते हुए भी) दैवके संगसे सूक्ष्म भूत-तत्त्व, सत्त्व, रज, तम, दैव, आसुर या अन्य भावसे युक्त वायुसे प्रेरित हुआ गर्भाशयमें प्रविष्ट होकर

१-कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये। स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः॥ (श्रीमद्भा० ३।३१।१; ग०पु०सा० ६।५)

२-कर्मणा चोदितो येन तदाप्नोति पुनर्भवे। अभ्यस्ताः पूर्वदेहे ये तानेव भजते गुणान्॥ (सुश्रुत० शा० २।५५)

३-तत्र पूर्वं चेतनाधातुः सत्त्वकरणो गुणग्रहणाय पुनः प्रवर्तते। स हि हेतुः कारणं निमित्तमक्षरं कर्ता मन्ता बोधता बोद्धा द्रष्टा धाता ब्रह्मा विश्वकर्मा विश्वरूपः पुरुषः प्रभवोऽव्ययो नित्यो गुणी ग्रहणं प्राधानमव्यक्तं जीवो ज्ञः प्रकुलश्चेतनावान् प्रभुश्च भूतात्मा चेन्द्रियात्मा चान्तरात्मा चेति। (च०शा० ४।४)

४-स (आत्मा) गर्भाशयमनुप्रविश्य शुक्रशोणिताभ्यां संयोगमेत्य गर्भत्वेन जनयत्यात्मनात्मानम्, आत्मसंज्ञा हि गर्भे। (च०शा० ३।१२)

(शुक्र-आर्तवके संयोग होते ही) तत्काल उस संयोगमें अवस्थान[१] करता है।'

जीवका गर्भ-वृद्धिक्रम

गर्भमें प्रविष्ट होनेके बाद यह आत्मा पाञ्चभौतिक शरीरको धारण करने लगता है। इस शरीरकी वृद्धि गर्भमें क्रमशः नौ मासतक होनेका वर्णन विभिन्न ग्रन्थोंमें इस प्रकार मिलता है—

'डिम्बाणुके साथ मिले हुए शुक्राणुकी वृद्धि एक रात्रिमें कलल, पाँच रात्रिमें बुद्‌बुद, दस रात्रिमें कर्कन्धू (बेर)-के समान मांस-पिण्डके रूपमें होती है एवं अन्य मानवेतर योनियोंमें अंडेके रूपमें होती है। उसके बाद दो माहमें सिर और बाहु आदि अङ्गका विग्रह (विभाग) होता है। तीन माहमें नख, रोम, हड्डी, चर्म और लिङ्ग आदि छिद्र होते हैं। चार महीनेमें सातों धातु बनते हैं, पाँच महीनेमें क्षुधा तथा तृषाकी उत्पत्ति होती है एवं छः महीनेमें जरायु (झिल्ली)-में लिपटा हुआ दक्षिणकुक्षिमें भ्रमण करता है। सातवें महीनेमें सचेत होकर प्रसूतिवायुसे कम्पित होता हुआ विष्ठासे उत्पन्न सहोदर कृमिके समान चलता[२] रहता है।'

आयुर्वेदके प्रधान ग्रन्थ सुश्रुतसंहिताके आधारपर गर्भ-वृद्धिक्रम इस प्रकारसे उपलब्ध होता है—

'शुक्र और शोणितके संयोगसे प्रथम मासमें गर्भ कलल अर्थात् बुद्‌बुदाकार होता है। द्वितीय मासमें शीत (श्लेष्मा), उष्म (पित्त) और अनिल (वात)—इनसे पञ्चमहाभूतोंका समूह गाढ़ा बनता है। यदि वह समूह पिण्डाकृति हो तो पुत्र और पेशी (दीर्घाकृति) हो तो कन्या तथा अर्बुद गोला (Tumour)-के परिमाणका हो तो नपुंसक होता है। तृतीय मासमें दो हाथ, दो पैर और सिर ऐसे पाँच अवयवोंके पिण्ड होते हैं एवं गला, छाती, पीठ तथा पेट—ये अङ्ग और ठोड़ी, नासिका, कान, अँगुली, एड़ी इत्यादि प्रत्यङ्गोंका विभाग अस्पष्टतया ज्ञात होता है। चतुर्थ मासमें सब अङ्ग-प्रत्यङ्गके विभाग खूब स्पष्ट हो जाते हैं तथा गर्भका हृदय स्पष्ट होनेसे चेतना-धातु व्यक्त होता है; क्योंकि हृदय चेतना-धातुका स्थान (आश्रय) है। इसलिये इन्द्रियार्थ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धकी अभिलाषा चतुर्थ मासमें होती है।'

'पञ्चम मासमें मन अधिक प्रबुद्ध एवं सचेत होता है। षष्ठ मासमें बुद्धि प्राप्त होती है। सप्तममें सब अङ्ग-प्रत्यङ्गोंकी अभिव्यक्ति भलीभाँति होती है अर्थात् सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग—ग्रीवा-मूर्धा आदि स्पष्ट हो जाते हैं। अष्टम मासमें ओज चञ्चल रहता है। इस मासमें बालक पैदा होनेपर नैर्ऋत भागके कारण तथा ओजधातु क्षीण रहनेसे जीता नहीं। नवम, दशम, एकादश और द्वादश मासमें उत्पन्न बालक जीवित रहता है। इसके बाद यदि प्रसव न हो तो वह विकारी गर्भ समझा जाता है[३]।

जीवका गर्भवास

गरुडपुराण (सारोद्धार) तथा श्रीमद्भागवतमहापुराणमें

१-क्षेत्रज्ञो वेदयिता स्प्रष्टा घ्राता द्रष्टा श्रोता रसयिता पुरुषः स्रष्टा गन्ता साक्षी धाता वक्ता यः कोऽसावित्येवमादिभिः पर्यायवाचकैर्नामभिरभिधीयते दैवसंयोगादक्षयोऽव्ययोऽचिन्त्यो भूतात्मना सहान्वक्षं सत्त्वरजस्तमोभिर्दैवासुरैरपरैश्च भावैर्वायुनाऽभिप्रेर्यमाणो गर्भाशयमनुप्रविश्यावतिष्ठते।

(सुश्रुत, शा० ३। ३)

२-कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्‌बुदम्। दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम्॥
मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वङ्‌घ्र्याद्यङ्गविग्रहः। नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः॥
चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः। षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे॥
आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः। नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः॥

(श्रीमद्भा० ३। ३१। २—४, १०; ग० पु० सा० ६। ६—८, १५)

३-तत्र प्रथमे मासि कललं जायते; द्वितीये शीतोष्मानिलैरभिप्रपच्यमानानां महाभूतानां संघातो घनः सञ्जायते; यदि पिण्डः पुमान्, स्त्री चेत् पेशी, नपुंसकं चेदर्बुदमिति। तृतीये हस्तपादशिरसां पञ्च पिण्डका निर्वर्तन्तेऽङ्गप्रत्यङ्गविभागश्च सूक्ष्मो भवति, चतुर्थे सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्तो भवति, गर्भहृदयप्रव्यक्तिभावाच्चेतनाधातुरभिव्यक्तो भवति; कस्मात्? तत्स्थानत्वात्। तस्माद्गर्भश्चतुर्थे मास्यभिप्रायमिन्द्रियार्थेषु करोति।

पञ्चमे मनः प्रबुद्धतरं भवति, षष्ठे बुद्धिः, सप्तमे सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततरः, अष्टमेऽस्थिरीभवत्योजः, तत्र जातश्चेन्न जीवेन्निरोजस्त्वा-न्नैर्ऋतभागत्वाच्च, × × × नवमदशमैकादशद्वादशानामन्यतमस्मिञ्जायते अतोऽन्यथा विकारी भवति।

(सुश्रुत० शा० ३। १८, ३०)

जीवके गर्भवासका वर्णन इस प्रकार उपलब्ध है—

'माताद्वारा भुक्त अन्न-पानादिसे बढ़ा है रस, रक्त आदि धातु जिसका, ऐसा प्राणी असम्मत अर्थात् जिससे दुर्गन्ध आती है, जिसमें जीवकी सम्भूति है ऐसे विष्ठा और मूत्रके गर्तमें सोता है। सुकुमार होनेके कारण वह गर्तमें होनेवाले भूखे कीड़ोंके काटे जानेपर प्रतिक्षण उस क्लेशसे पीडित हो मूर्च्छित हो जाता है। मातासे खाये हुए कड़ुए, तीक्ष्ण, नमकीन (चटपटे), रूखे और खट्टे आदि उल्बण पदार्थसे छुए जानेपर जीवके अङ्गोंमें वेदना होती है तथा जरायु और आँतके बन्धनमें पड़कर पीठ और ग्रीवाके लचकनेसे काँखमें सिर करके पिंजरेके पक्षीके समान वह अङ्गोंके चलानेमें असमर्थ हो जाता है। वहाँ दैवयोगसे सौ जन्मकी बात स्मरणकर दीर्घ श्वास लेता है। अत: कुछ भी उसे सुख नहीं मिलता। संतप्त और भयभीत जीव धातुरूप सात बन्धनोंमें पड़कर तथा हाथ जोड़कर, जिसने इस उदरमें डाला है, उसकी दीन वचनोंसे स्तुति करता[1] है।'

'हे लक्ष्मीपते! हे जगत्के आधार, अशुभके नाशकर्ता, शरणागत-वत्सल श्रीविष्णु! मैं आपकी शरण हूँ। आपकी मायासे मोहित होकर देहमें 'मैं' तथा पुत्र-स्त्रीमें 'मेरा' अभिमान करके हे नाथ! मैं संसारको प्राप्त हुआ हूँ। मैंने कुटुम्बके लिये शुभ-अशुभ कर्म किया है, परंतु उस कर्मसे मैं अकेला ही दग्ध हो रहा हूँ और ये कुटुम्बी फलके भागी हुए। यदि इस योनिसे मेरा छुटकारा हुआ तो मैं आपके चरणोंका स्मरण करूँगा, जिससे संसारसे मुक्त हो जाऊँ। विष्ठा और मूत्रके कूपमें गिरा हुआ मैं बाहर निकलनेकी इच्छा करता हुआ जठराग्निसे दग्ध हो रहा हूँ, मुझे आप कब बाहर निकालेंगे[2]?'

जीवके इस करुण विलापको सुनकर सर्वान्तर्यामी प्रभु उसपर अपनी अहैतुकी कृपा करके उसे उस नारकीय स्थानसे बाहर निकाल देते हैं और ज्यों ही वह कर्म भोगकर बाहर आता है, त्यों ही वैष्णवी माया उस जीवको मोहित कर लेती है तथा वह मायासे लिप्त होकर परवश हुआ कुछ नहीं बोल पाता और संसारचक्रमें पुन: घूमने लगता है; किंतु पूर्वजन्मके प्रबल संस्कारसे यदि वह भगवद्भक्तिके सुमार्गपर लग जाता है तो इस जन्ममें अपना उद्धार कर सकता है। अत: माता-पिताको चाहिये कि अपने बालकोंमें प्रारम्भसे ही इस प्रकारके जीवनोद्धारक संस्कार डालें, जिससे जीवका सर्वथा कल्याण हो सके।

उपर्युक्त गर्भवासका वर्णन आयुर्वेद-ग्रन्थोंमें प्रकारान्तरसे इस प्रकार उपलब्ध होता है—

'गर्भकी स्वकीय प्यास और भूख नहीं होती। उसका जीवन पराधीन होता है अर्थात् माताके अधीन होता है। वह सत् और असत् (सूक्ष्म) अङ्गावयववाला गर्भ मातापर आश्रित रहता हुआ उपस्नेह (रिसकर आये रस) और उपस्वेद (उष्मा)-से जीवित रहता है। जब अङ्गके अवयव व्यक्त हो जाते हैं—स्थूलरूपमें आ जाते हैं, तब कुछ तो लोमकूपके मार्गसे उपस्नेह होता है और कुछ नाभिनालके मार्गसे। गर्भकी नाभिपर नाडी लगी रहती है। नाडीके साथ अपरा जुड़ी रहती है और अपराका सम्बन्ध माताके हृदयके साथ रहता है। गर्भको माताका हृदय स्पन्दमान (बहती हुई) सिराओंद्वारा उस अपराको रस या रक्तसे भरपूर किये रहता है। वह रस गर्भको वर्ण एवं बल देनेवाला होता है। सब

१- मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसम्मते । शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसम्भवे॥
कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात् प्रतिक्षणम्। मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः॥
कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः । मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थितवेदनः॥
उल्बेन संवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्च बहिरावृतः। आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः॥
अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे।
तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात् कर्म जन्मशतोद्भवम्। स्मरन् दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते॥
नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृताञ्जलिः। स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः॥
(गरुडपुराण सारोद्धार ६। ९—१४; श्रीमद्भा० ३। ३१। ५—९, ११)

२- श्रीपतिं जगदाधारमशुभक्षयकारकम्। व्रजामि शरणं विष्णुं शरणागतवत्सलम्॥
त्वन्मायामोहितो देहे तथा पुत्रकलत्रके। अहंममाभिमानेन गतोऽहं नाथ संसृतिम्॥
कृतं परिजनस्यार्थे मया कर्म शुभाशुभम्। एकाकी तेन दग्धोऽहं गतास्ते फलभागिनः॥
यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्स्मरिष्ये पदं तव। तमुपायं करिष्यामि येन मुक्तिं व्रजाम्यहम्॥
विण्मूत्रकूपे पतितो दग्धोऽहं जठराग्निना। इच्छन्नितो विवसितुं कदा निर्यास्यते बहिः॥
(गरुडपुराण सारोद्धार ६। १६—२०)

रसोंसे युक्त आहाररस गर्भिणी स्त्रीमें तीन भागोंमें बँट जाता है। एक भाग उसके अपने शरीरकी पुष्टिके लिये और दूसरा भाग क्षीरोत्पत्तिके लिये तथा तीसरा भाग गर्भवृद्धिके लिये होता है। इस प्रकार वह गर्भ इस आहारसे परिपालित होकर गर्भाशयमें जीवित रहता है।' (चरक० शारीरस्थानम् ६।१५)

'माताके निःश्वास, उच्छ्वास, संक्षोभ तथा स्वप्नसे उत्पन्न हुए निःश्वास, उच्छ्वास, संक्षोभ और स्वप्नोंको गर्भ प्राप्त करता है; अर्थात् जबतक बालक माताके गर्भमें रहता है, वह माताके शरीरके अङ्गके समान होता है और माताके प्रत्येक भले-बुरे कर्मका परिणाम जैसे उसके शरीरपर होता है, वैसे ही गर्भके ऊपर भी होता है। माता जब श्वासोच्छ्वास करती है, तब उसके रक्तकी शुद्धि होती है; साथ-ही-साथ गर्भके रक्तकी भी शुद्धि होती है। माता जब सोती है तो उसके साथ-ही-साथ गर्भको आराम मिलता है। माता जब भोजन करती है, तब उसके शरीरके पोषणके साथ गर्भका भी पोषण होता है। माता जब संक्षुब्ध होती है, तब उसके शरीरपर जो परिणाम होता है, वही परिणाम गर्भपर भी होता है। संक्षेपमें माताके प्रत्येक कर्मके साथ-साथ गर्भ भी वही कर्म करता जान पड़ता है। वास्तवमें न गर्भ श्वास लेता है, न सोता है, न भोजन करता है, न क्रुद्ध होता है और न मल-मूत्रका त्याग ही स्वतन्त्रवृत्तिसे करता है।' (सु०शा० २।५२)

गर्भ पूर्णरूपसे मातृवृत्तिपर आश्रित रहता है। अतः माताको यह आदेश दिया गया है कि वह अच्छे प्रकारका भोजन (लवणीय, कड़ुए, तीक्ष्ण, खट्टे, उल्बण आदि पदार्थोंसे रहित) करे। शारीरिक परिश्रम अधिक न करे। मनको कष्ट देनेवाली बातोंका चिन्तन न करके आराम करे। मलिन वस्त्र धारण न करे। ग्राम्य धर्म (मैथुन), गाड़ीकी सवारी आदि त्याग दे। शुद्ध सात्त्विक विचार करे, सात्त्विक वस्तु देखे, सात्त्विक बातें—कथाएँ सुने; तामसका सर्वथा त्याग कर दे। यह सब आदेश इसीलिये दिया गया है कि गर्भस्थ शिशुको किसी प्रकारकी पीडा न हो और वह शुद्ध-जीवन बने।

'गर्भकी नाभिमें लगी नाडीके द्वारा माताके आहाररससे गर्भका पोषण 'केदारकुल्या' न्यायसे होता है। जिस प्रकार सिंचाई करते समय कृषक विभिन्न आलबालों (क्यारियों)-में बोये पौधोंकी सिंचाई करता है, ठीक उसी तरह नाभि-नाडीकी एक ही मूलनालीसे जाते हुए आहाररसके द्वारा विभिन्न धातुओंका पोषण होता है।'

(अष्टाङ्गहृदय, शा० १।५६)



जन्मान्तरीय पापोंसे रोगोंकी उत्पत्ति

(धर्मशास्त्रादि सप्त आचार्य विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी, काव्यतीर्थ, एम्०ए० (हिन्दी-संस्कृत), साहित्यरत्न, पी-एच्०डी०, डी०लिट्०)

समस्त प्राणियोंमें मानव श्रेष्ठ है; क्योंकि इसने शारीरिक उन्नतिके साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नतिके शास्त्र रचे तथा ईश्वरीय प्रेरणा एवं साधनासे गहन अध्ययन किया और शास्त्रोंके सारको ग्रहणकर सुखी रहनेके उपाय ढूँढ़े, आरोग्यकी महत्ता समझी और जहाँ ये उपाय रुक गये तथा रोग-मुक्तिके उपाय न दीखे तो रोग क्यों होता है, इसकी खोज की और जितना हो सका आयुर्वेदसे लाभ लिया, शेष धर्मशास्त्रोंसे भी लाभ लिया है। यहाँ आयुर्वेदकी अपेक्षा विभिन्न धर्मशास्त्रों (स्मृतियों)-में रोग उत्पन्न होनेके जो लक्षण दिये गये हैं और जन्मान्तरीय किस निन्दित कर्मसे वर्तमानमें कौन-सा रोग हुआ है, इसका संक्षेपमें विचार किया गया है।

पूर्वजन्ममें किये पापोंसे रोग होते हैं और फिर रोगजनित चिह्न भी प्रकट होते हैं, पर जप आदि दैवव्यपाश्रयसे उनकी शान्ति भी हो जाती है अर्थात् रोग ठीक हो जाते हैं—

पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये।
बाधते व्याधिरूपेण तस्य जप्यादिभिः शमः॥

(शाता० स्मृति १।५)

धर्मशास्त्रोंमें निर्दिष्ट कर्मविपाकका संक्षेपमें यहाँ वर्णन किया जा रहा है—

(१) क्षयरोग—इसके सम्बन्धमें कहा गया है कि यह रोग तेल, घी तथा चिकनी वस्तु चुरानेके कारण होता है। त्वचामें पड़नेवाले चकत्ते भी इसी दुष्कर्मसे होते हैं। इतना ही नहीं, इस निन्दित कर्मसे कर्ताको पतित योनियोंका भोग भी भोगना पड़ता है। (गौतमस्मृति २०।१)

(२) मृगी—'प्रतिहन्ता गुरोरपस्मारी' (गौतमस्मृति

२०।१) गुरुकी ताड़ना करनेपर उसे मारनेवाला शिष्य दूसरे जन्ममें मृगीका रोगी होता है तथा गोदानसे उसकी शान्ति होती है।

(३) जन्मान्ध—'गोघ्नो जात्यन्धः' (गौतमस्मृति २०।१)। गोवध करनेवाला जन्मसे अन्धा होता है।

(४) मांसका गोला—नक्षत्रसे जीविका चलानेवाला मांसपिण्डका रोगी होता है। यह पिण्ड उदरमें हो या कन्धेपर।

(५) गण्डरोगी—निन्दित मार्गमें चलनेवाला गण्ड-रोगसे ग्रस्त होता है।

(६) खल्वाट—सिरपर बाल न होवे, उसे खल्वाट कहते हैं। दुराचार करनेवालेको यह रोग होता है।

(७) मधुमेह—अंग्रेजीमें इसे 'डाइबिटीज' कहते हैं। धर्मशास्त्रकी दृष्टिसे अनियमित और स्वच्छन्द यौनाचारसे यह रोग होता है। इसका प्रायश्चित्त करनेसे शान्ति मिलती है।

(९) हाथीपाँव-रोग—यह रोग अपने गोत्रकी स्त्रीसे गमन करनेपर होता है।

'सगोत्रसमयस्त्र्यभिगामी श्लीपदी।'

(१०) अजीर्णरोग—भोजनमें विघ्न करनेवालेको अजीर्ण हो जाता है। इसकी शान्ति गायत्रीमन्त्रद्वारा एक लाख आहुति देनेसे हो जाती है।

(११) कृमिलोदर रोग—रजस्वला या अन्त्यज-दृष्टि-दोषसे दूषित अन्नके भक्षणसे पेटमें कीड़े होते हैं। इसकी शुद्धि गोमूत्रपानसे होती है।

(१२) श्वास-कास—पीठ-पीछे निन्दा करनेवालेको नरक भोगनेके बाद श्वासरोग होता है।

(१३) शूलरोग—दूसरोंको दुःख देनेवाला शूलरोगी होता है। उसे अन्नदान और रुद्रजप करना चाहिये—

शूली परोपतापेन जायते तत्प्रमोचने।
सोऽन्नदानं प्रकुर्वीत तथा रुद्रं जपेन्नरः॥

(शाता० स्मृति ३।१२)

(१४) रक्तातिसाररोग—यह रोग वनमें आग लगानेवालेको होता है। उसे चाहिये कि वह पानीका प्याऊ लगाये।

दावाग्निदायकश्चैव रक्तातिसारवान् भवेत्।

(शाता० स्मृति ३।१३)

(१५) भगन्दर, बवासीर—ये दारुण रोग देव-मन्दिरमें या पुण्य-जलमें एक बार भी मूत्र-विष्ठा त्यागनेसे होते हैं—

सुरालये जले वापि शकृन्मूत्रं करोति यः।
गुदरोगो भवेत् तस्य पापरूपः सुदारुणः॥

(शाता० स्मृति ३।१४)

(१६) जलोदर-प्लीहा—स्त्रीके गर्भ गिरानेवालेको 'यकृत् प्लीहा' से सम्बद्ध और जलरोग होते हैं।

(१७) लकवा—सभामें पक्षपात करनेवालेको पक्षाघात होता है। उसे चाहिये कि वह सात्त्विक ब्राह्मणको बारह भर (तोला) स्वर्णदान देकर प्रायश्चित्त करे—

सभायां पक्षपाती च जायते पक्षघातवान्।
निष्कत्रयमितं हेम स दद्यात् सत्यवर्तिनाम्॥

(शाता० स्मृति ३।२२)

(१८) नेत्ररोग—यह रोग राँगा चुरानेवालेको होता है। वह एक दिन उपवास करके चार सौ भर राँगा दान करे। मधु चुरानेवालेको भी नेत्ररोग होता है, वह मधुधेनुका दान करे।

(१९) खुजली—यह रोग तेल चुरानेसे होता है—

तैलचौरस्तु पुरुषो भवेत् कण्ड्वादिपीडितः।

(शाता० स्मृति ४।१३)

इसकी शान्ति एक दिन उपवास करने तथा दो घड़े तेल दान करनेसे बतायी गयी है।

(२०) संग्रहणी—यह रोग नाना प्रकारके द्रव्य चुरानेसे होता है। प्रायः अन्न, जल, वस्त्र, सोना दान करनेसे लाभ होता है।

नानाविधद्रव्यचौरो जायते ग्रहिणीयुतः।

(शाता० स्मृति ४।३२)

(२१) पथरी—यह रोग सौतेली मातासे गमन करनेसे होता है।

मातुः सपत्निगमने जायते चाश्मरीगदः।

(शाता० स्मृति ५।२६)

इसकी शान्तिके लिये मधुधेनु और सौ द्रोण तिल दान करे।

(२२) कुबड़ा—पापी व्यक्ति अगम्यागमनसे दूसरे जन्ममें कुबड़ा होता है। वह काले मृगचर्मका दान करे।

(२३) प्रमेहरोग—यह रोग तपस्विनीके साथ गमन करनेसे होता है। इसकी शान्ति एक मासतक 'रुद्राष्टाध्यायी-पाठ' तथा सुवर्ण-दानसे होती है।

(२४) हृदयव्रण—यह रोग अपनी गोत्र-जातिकी

स्त्रीसे गमन करनेसे उत्पन्न होता है।

स्वजातिजायागमने जायते हृदयव्रणी।

(शाता० स्मृति ५। ३६)

प्राय: दो प्राजापत्यव्रत करनेसे हृदयरोगमें लाभ होता है।

(२५) मूत्राघात—यह रोग पशु-सम्भोगसे होता है। इसकी शान्तिके लिये तिलसे भरे दो पात्रोंका दान करे।

(२६) जिह्वारोग—यह रोग पका हुआ अन्न चुरानेवालेको होता है। इसकी शान्तिके लिये एक लाख गायत्री-जप और दशांश हवन करे।

(२७) गूँगा—विद्याकी पुस्तक चुरानेवाला गूँगा होता है। न्याय और इतिहासकी पुस्तक दान करे।

(२८) आधासीसी—यह रोग औषध चुरानेसे होता है। इसकी शान्तिका उपाय—सूर्यको अर्घ्य दे और एक माशा सोना दान करे।

औषधस्यापहरणे सूर्यावर्तः प्रजायते।
सूर्यायार्घः प्रदातव्यो मासं देयं च काञ्चनम्॥

(शाता० स्मृति ४। २६)

(२९) अंगुलिमें घाव—यह रोग फल चुरानेसे होता है। इसकी शान्तिके लिये दस हजार फल दान करे।

(३०) ज्वर—देव-द्रव्य चुरानेवालेको चार प्रकारके ज्वर होते हैं—ज्वर, महाज्वर, रौद्रज्वर और वैष्णवज्वर। इसकी शान्ति यथासंख्यक रुद्रीका पाठ करानेसे होती है।

धर्मशास्त्रोंमें जन्मान्तरीय रोगोंकी शान्तिके उपाय भी बतलाये गये हैं और पूर्वजन्मकृत पापोंके चिह्न इस जन्ममें रोगरूपमें प्रकट होते हैं, जिन्हें स्मृतिग्रन्थों तथा कर्म-विपाकमें देखा जा सकता है। यहाँ दिग्दर्शनमात्र है, श्रद्धा-विश्वास रखनेसे इन उपायोंसे लाभ अवश्य होगा।



सर्वरोगमूल—भवरोग

(श्रीश्यामलालजी हकीम)

इसमें संदेह क्या है कि शेष-अशेष रोगोंकी मूल जड़ है भवरोग, जो अति भयावह, विकराल है! संसारमें बार-बार जन्म लेना ही शारीरिक, मानसिक रोगोंकी पृष्ठभूमि है। यदि संसारमें आवागमन ही मिट जाय तो रोग कैसा? किंतु अनादि कालकी बहिर्मुखता संसारमें आनेपर ही दूर होती है। परम स्वतन्त्र श्रीभगवान्‌का अंश होनेसे जीवमें अणुस्वातन्त्र्य है। अनादि कालसे वह उसका प्रयोग कर भगवद्बहिर्मुख होकर मायाकी सेवा करनेमें अनुरक्त है। मायाबद्ध होनेसे अनेक प्रकारकी कामनाओंके वशीभूत होकर अनेक प्रकारके कर्म करता है। कर्मफल भोगे बिना उसकी निवृत्ति असम्भव है। कर्मफल-भोगके लिये भोगायतन शरीरकी अपरिहार्यता है। प्राकृत संसारमें ही भोगायतन शरीरकी प्राप्ति होनेपर भोगोंके उपयुक्त सुख-दुःखप्रद पदार्थ उपलब्ध होते हैं। अतः संसारमें आवागमन तबतक नहीं मिट सकता, जबतक मायाका सम्बन्ध है। भगवदंश जीव जबतक अपने शुद्ध स्वरूप भगवत्-दासत्वमें अवस्थित नहीं होता, तबतक माया इसे नहीं छोड़ती। माया तभी छोड़ती है जब जीव मायापति भगवान् श्रीकृष्णके शरणापन्न हो जाता है—

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७। १४)

भगवत्-शरणापन्न होनेपर फिर जीवको संसारमें जन्म नहीं लेना पड़ता, जन्म ही नहीं तो मरण भी नहीं—

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥

(गीता ८। १६)

तथा—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥

(गीता ८। १५)

श्रीभगवान्‌के शरणापन्न होनेपर दुःखोंके कारणभूत क्षणभङ्गुर पुनर्जन्मको अर्थात् संसारको महापुरुष प्राप्त नहीं होते। परम सिद्धि अर्थात् भगवत्-लोकको प्राप्त कर लेते हैं। वहाँसे फिर संसारमें आना ही नहीं होता।

अतः भवरोगसे निष्कृति या शाश्वत आरोग्य प्राप्त करनेके लिये एकमात्र अनुभूत रसायन है श्रीभगवान्‌की शरणापत्ति। शरणागत मनुष्य श्रीभगवान्‌के श्रीअच्युत, श्रीअनन्त, श्रीगोविन्द आदि नामोंका 'सततं कीर्तयन्तः'—निरन्तर नाम-संकीर्तन करता हुआ अपना सर्वस्व भगवान् श्रीकृष्णके अर्पण करके सदाके लिये शारीरिक, मानसिक रोग तथा भयावह भवरोग—सभी प्रकारके रोगोंसे छुटकारा पाकर वास्तविक आरोग्यकी उपलब्धि करता है।



स्वस्थ तनमें स्वस्थ मन

(मुनि श्रीकिशनलालजी)

स्वामी विवेकानन्दजीका स्वास्थ्यके विषयमें यह कथन संक्षिप्तमें सारभूत सत्यको प्रकट करता है कि 'स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ मनका निवास होता है।' जब स्थूल शरीर ही स्वस्थ नहीं होगा तो मन स्वस्थ कैसे रहेगा? शरीर एवं मन एक-दूसरेको प्रभावित करते हैं। मनके स्वस्थ होनेसे शरीर स्वस्थ होता है। शरीर यदि स्वस्थ है तो मन स्वस्थ होगा, ऐसी लोकोक्ति है। जब शरीर दुर्बल और अस्वस्थ होता है तब व्यक्तिका मन भी दुर्बल और अस्वस्थ हो जाता है। इसी भाँति जब मनकी स्थिति बिगड़ती है तब शरीर भी दुर्बल और अस्वस्थ हो जाता है। इस सत्यको आयुर्वेदाचार्योंने बड़े सुन्दर ढंगसे प्रदर्शित किया है—

शरीराज्जायते व्याधिर्मानसो नैव संशयः।
मानसाज्जायते व्याधिः शारीरो नैव संशयः॥

अर्थात् शरीरमें व्याधि उत्पन्न होती है तब मनमें भी व्याधि होगी, इसी प्रकार मनमें व्याधि उत्पन्न होनेपर शरीरमें भी व्याधि होगी, इसमें संशय नहीं है।

अतः यदि मनको स्वस्थ बनाना चाहते हैं तो शरीरको भी स्वस्थ बनाना आवश्यक है।

स्वास्थ्य क्या है? यह कठिन प्रश्न है। सामान्यतः रोग उत्पन्न न होनेको स्वास्थ्य माना जाता है जबकि यह यथार्थ नहीं है। रोग होना अस्वास्थ्य है किंतु रोग नहीं होना स्वास्थ्य नहीं हो सकता। रोगका अभाव स्वास्थ्यका प्रतीक कैसे हो सकता है? स्वास्थ्य यथार्थ है, विधायक स्थिति है, उसे निषेधसे कैसे जानेंगे? स्वास्थ्यका अपना अस्तित्व है, उसे कैसे अनुभव किया जाय? जो अङ्ग रुग्ण (बीमार) होता है, उस अङ्गका बार-बार स्मरण होता है और जो अङ्ग स्वस्थ है उसकी स्मृति होती ही नहीं। इससे यह सत्य उद्घाटित होता है कि स्वास्थ्य किसी निषेधका अस्तित्व नहीं है। आँग्लभाषामें 'हेल्थ' को स्वास्थ्य कहा गया है, किंतु इससे यथार्थकी अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। स्वस्थकी परिभाषामें कहा गया है—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

अर्थात् 'जिस व्यक्तिके त्रिदोष (वात, पित्त और कफ) सम हैं, जिसकी अग्नि और धातु सम हैं, मल और क्रिया सम हैं, जिसकी आत्मा, इन्द्रियाँ और मन प्रसन्न (निर्मल) हैं वह स्वस्थ है।' मानसिक स्वास्थ्यको परिभाषित करते हुए कहा गया है—'जो सुख-दुःखमें सम है, लौह और स्वर्णमें समान दृष्टिवाला है, प्रिय-अप्रियमें धीर है, निन्दा-संस्तुतिमें बराबर है; वही पूर्ण स्वस्थ हो सकता है।'

स्वास्थ्य और पथ्य—शरीरका विकास भोजन, पानी, मिट्टी, हवा, धूप आदिसे होता है। जैसा भोजन, पानी मिलता है, वैसा ही शरीर निर्मित होता है। व्यक्तिके शरीरपर स्वयंके कर्म-संस्कारोंका जहाँ प्रभाव पड़ता है, वहीं माता-पितासे प्राप्त संस्कारोंका भी अपना प्रभाव रहता है।

स्वास्थ्यके लिये भोजन, पानी आदि खाद्य पदार्थोंका विवेक अत्यन्त आवश्यक है। युवावस्थामें पाचन-तन्त्र शक्तिशाली होता है। इच्छित भोजन करके व्यक्ति अपनी इन्द्रियोंको संतुष्ट करता है। पाचन-तन्त्रका सम्यक् समायोजन न होनेपर वह रुग्ण और दुर्बल हो जाता है। निर्बल पाचन-तन्त्रसे पाचन-क्रिया सही नहीं रहती, जिससे व्यक्ति दुर्बल और बीमार होने लगता है।

उचित पथ्यका सेवन करनेवाला व्यक्ति बीमार नहीं होता। जो खाद्य है, शरीर एवं आँतोंके लिये अनुकूल है उसका विवेक रखना, जिन वस्तुओंका उपयोग स्वास्थ्यके लिये हितकर नहीं है उनसे परहेज करना ही उचित है। इसका परिणाम यह होता है कि पाचन-तन्त्र बिगड़ता नहीं। उचित पथ्यका सेवन करनेवालेके पास वैद्य आकर क्या करेगा? औषधिकी उसे अपेक्षा ही नहीं रहेगी।

अपथ्य-सेवनके द्वारा विकार उत्पन्न होते ही शरीर-तन्त्र दुर्बल बन जाता है। दुर्बल शरीरमें नाना प्रकारकी व्याधियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। ऐसी स्थितिमें एक रोग ठीक होता है तो दूसरा पैदा हो जाता है। इसलिये एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि शरीरका ताना-बाना, प्रतिरोधात्मक शक्ति (इम्यून-सिस्टम)-को मज़बूत बनाना आवश्यक है। जिस व्यक्तिका शरीर शक्तिसम्पन्न होता है और जो उचित

पथ्यका सेवन करता है, उसके लिये रोगकी कोई समस्या नहीं। किंतु प्रश्न तब भी यह रह जाता है कि दुर्बल शरीरको शक्तिशाली या स्वस्थ कैसे बनाया जाय?

चिकित्सा और औषधि—रोगी चिकित्सासे स्वस्थ होना चाहता है, यह उसकी मूल मनोवृत्ति है। कोई भी रोगी किसी चिकित्सासे स्वस्थ हो जाय उसका यह प्रयत्न रहता है। जो शरीरसे दुर्बल होता है उसका मानना रहता है कि वह शक्तिशाली और स्वस्थ बने। दुर्बलता सामान्यतः कोई बीमारी नहीं, किंतु दुर्बल शरीरमें रोगके प्रतिकारकी क्षमता कम होती है। इसलिये रोग आसानीसे उत्पन्न हो जाते हैं। औषधिके द्वारा रोगके प्रतिकारकी क्षमताको बल मिलता है अथवा रोगको नष्ट करनेके लिये औषधिका उपयोग किया जाता है।

भिन्न-भिन्न चिकित्सा-पद्धतियोंके अपने-अपने सिद्धान्त और दृष्टियाँ हैं। एलोपैथीका अपना चिन्तन है कि मलेरिया आदि रोग कीटाणुओंसे उत्पन्न होते हैं। कीटाणुओंके संयोगसे रोगकी उत्पत्ति होती है। वे कीटाणु नष्ट कर दिये जायँ तो व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है। रोगके कीटाणुओंको नष्ट करनेके लिये जिन औषधियोंका प्रयोग किया जाता है, उससे कीटाणु तो नष्ट हो जाते हैं, किंतु उस औषधिसे कुछ अन्य सहचर कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

होम्योपैथीमें रोग-निदानका अपना तरीका है। जिस औषधिसे जो लक्षण प्रकट होते हैं उनको देखकर, वैसी औषधिका प्रयोग किया जाता है—'**विषस्य विषमौषधम्**' विष देनेसे जैसे शरीरपर जो लक्षण पैदा होते हैं, उस विषसे बनी औषधिसे शरीरपर उत्पन्न होनेवाले लक्षण दूर हो जाते हैं।

आयुर्वेद-पद्धतिमें रोगीके रोगका निदान नाडी अथवा अन्य लक्षणोंसे होता है। मुख्यतः चिकित्सा-पद्धतिका यह आधार बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। ऋषि कहते हैं कि मुझे ऐसी पद्धति चाहिये, जिससे व्यक्ति रोगसे सदा मुक्त ही नहीं हो, अपितु स्वस्थ बने। आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धतिकी यह विचारधारा महत्त्वपूर्ण है कि जब औषधि शरीरको स्वस्थ बनाती है तब रोगके दोष अपने-आप दूर हो जाते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिके अनुसार शरीर विजातीय पदार्थको शरीरसे बाहर निकालनेकी कोशिश करता है—संयोगसे विजातीय तत्त्व अथवा दोषको शरीरसे बाहर फेंकनेकी कोशिश करता है। जब दोष बाहर निकल जाता है, तब व्यक्ति स्वास्थ्य-लाभका अनुभव करता है।

प्रेक्षाध्यान-पद्धतिने आधि, व्याधि और उपाधिको रोगकी उत्पत्तिका कारण माना है। आधि मनके असंतुलनसे उत्पन्न होनेवाला रोग है। व्याधि शारीरिक दोषसे उत्पन्न होनेवाला दोष है। उपाधि भावनात्मक रोग है। शरीर, मन और भावोंके असंतुलनसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंका समाधान कैसे हो? क्या रोगके प्रतिकारके लिये औषधिकी आवश्यकता है? अथवा कोई दूसरा विकल्प भी हो सकता है? वह विकल्प प्रेक्षाध्यानके द्वारा 'अमृत-पिटक'के रूपमें प्रस्तुत किया गया है। आचार्य महाप्राज्ञके अनुसार औषधि विवशतामें ग्रहण की जाती है। उत्तेजक औषधिका प्रयोग अर्थका नुकसान तो करता ही है, साथ ही उससे हमेशाके लिये कुछ शारीरिक समस्याएँ भी उत्पन्न हो जाती हैं।

चिकित्सा-पद्धति कोई भी क्यों न हो, व्यवस्थित होनी चाहिये। जिससे रोगीका चित्त समाहित रह सके। चिकित्सा एवं औषधिके परिणाम निकल सकें। आधि, व्याधि और उपाधि—ये तीनों व्यक्तिको पीडित करती हैं। पीडासे उद्वेलित व्यक्ति इन सबसे मुक्त होना चाहता है। '**अमृत-पिटक**'में औषधिके बिना स्वास्थ्य-उपलब्धिकी विधियोंका विश्लेषण है।

स्वास्थ्य-उपलब्धिका मार्ग—

स्वास्थ्य प्राप्त करनेके लिये आसन, प्राणायाम, कायोत्सर्ग एवं प्रेक्षा-अनुप्रेक्षाका प्रयोग रोगीके लिये हितकर है। इनसे व्यक्ति रोग-मुक्त होकर शक्तिशाली बनता है। शरीरकी दुर्बलताको शक्तिमें बदलनेके लिये '**अमृत-पिटक**' ने आसन-प्राणायामके माध्यमसे, प्रेक्षा, अनुप्रेक्षा, जप, तप आदिसे समाधान किया है। शारीरिक दुर्बलताको दूर करनेके लिये आसन आदिके प्रयोग जो निर्धारित हैं, वे निम्न हैं—

आसन—उत्तानपादासन, मकरासन, वज्रासन, ताड़ासन।

प्राणायाम—लयबद्ध दीर्घ श्वास।

प्रेक्षा—प्राणसंचारका प्रयोग। सर्वाङ्गशरीरप्रेक्षा-ध्यान।

अनुप्रेक्षा—शक्तिकी अनुप्रेक्षा।

जप—**आरोग्य बोहिलाभं, समाहि वरमुत्तमं दिन्त।**

तप—गरिष्ठ एवं तली हुई वस्तुओंका परिष्कार।

उपर्युक्त विधियोंको चिकित्सा न कहकर उन्हें स्वास्थ्य प्राप्त करानेवाली विधियाँ अथवा दृष्टि कहें तो अधिक उचित होगा।

स्वास्थ्य-लाभके लिये कुछ उपाय निम्नाङ्कित हैं—

आसन—शरीरको केवल मोड़ना, टेढ़ा-मेढ़ा करना ही आसन नहीं है। आसन केवल आकृतिमें आना नहीं है। आसन बाहरसे आकृतिरूपमें अवश्य दिखायी देता है, किंतु बाह्य आकार भीतरके भावोंको रूपान्तरित करता है। ***'जैसी मुद्रा, वैसा भाव'*** तथा ***'जैसा भाव, वैसी मुद्रा।'*** भावको बदलनेके लिये मुद्रा और आसनका उपयोग होता है। दुर्बल शरीरको शक्तिशाली एवं स्वस्थ बनानेके लिये **'अमृत-पिटक'** में चार आसनोंका निर्देश दिया गया है। आसनोंके साथ उनके विधि-विशेषको भी जानना आवश्यक है। प्राणायाम, प्रेक्षा, अनुप्रेक्षा, जप और तपके प्रयोगोंकी विधियोंके अनुसार जीवनचर्या अपनानेपर व्यक्ति स्वस्थ हो सकता है।

प्राणायाम—लयबद्ध दीर्घ श्वास—श्वास-प्रश्वासको गहरा और लम्बा करे। धीरे-धीरे श्वास ले, धीरे-धीरे श्वास छोड़े। अपने चित्तको कण्ठकूपके श्वास-नलीमें केन्द्रित करे। श्वास लेते समय श्वास-नलीको स्पर्श करते हुए भीतर जाये और छोड़ते समय भी उसी प्रकार स्पर्श करते हुए बाहर आये। इससे श्वास गहरा और दीर्घ होता है। श्वासको ग्रहण करते समय पेट फूले और छोड़ते समय पेट सिकुड़े। धीरे-धीरे लम्बा गहरा और लयबद्ध श्वास ले।

जितने समयमें लम्बा गहरा और धीमी गतिसे श्वास ले, उतने ही समयमें धीमी गतिसे धीरे-धीरे श्वासको बाहर छोड़े। यही क्रिया लगातार करे। लयबद्ध श्वास मनको एकाग्र और शरीरको स्वस्थ बनाता है।

प्राणायाम करते समय प्रत्येक श्वास लयबद्धरूपमें ५ सेकंड ले और ५ सेकंड छोड़े।

सर्वाङ्ग-शरीरप्रेक्षा—शरीरप्रेक्षामें हमें शरीरको देखना है। खुली आँखोंसे नहीं, बल्कि चित्तसे। आँखें बंद रहेंगी। चित्तको शरीरके प्रत्येक अवयवपर ले जाकर वहाँपर होनेवाले परिणमन, स्पन्दन, प्रकम्पन या संवेदन आदिको द्रष्टाभावसे देखना है। कपड़ेका स्पर्श, पसीना, खुजली, दर्द आदि जो कुछ भी अनुभव हो, उसे देखना है, केवल देखना है, उसका अनुभव करना है।

चित्तमें यह क्षमता है कि वह एक बिन्दुपर केन्द्रित हो सकता है और एक साथ पूरे शरीरपर फैल सकता है। चित्तको पैरके दोनों अँगूठोंपर केन्द्रित करे। पूरे शरीरके आकारमें फैलते हुए पैरसे सिरतक शीघ्रतासे ले जाय। उसी गतिसे सिरसे पैरतक ले आये। बीच-बीचमें श्वास-संयमके साथ शरीर-प्रेक्षाका प्रयोग करे। शरीरके कण-कणका स्पर्श करे। शरीरका कण-कण चेतना और प्राणके स्पर्शसे झंकृत हो उठे। अनुभव करे, जैसे पूरे शरीरमें बिजलीकी धारा दौड़ रही है। कपड़ेका स्पर्श, पसीना, खुजली, दर्द, स्पन्दन जो कुछ हो रहा है, उसका तटस्थ भावसे अनुभव करे। अब धीमी गतिसे चित्तकी यात्रा करे। कहीं पीडा, अवरोध हो उसपर कुछ क्षणोंके लिये रुके। केवल जाने। पूर्ण समभाव रहे।

अनुप्रेक्षाका प्रयोग करनेके लिये सर्वप्रथम महाप्राण ध्वनिका प्रयोग किया जाता है। कायोत्सर्ग, भावना और संकल्पसे अनुप्रेक्षाका अभ्यास, अनुचिन्तन कर महाप्राण ध्वनिके तीन बार उच्चारणसे प्रयोग सम्पन्न किया जाता है।

शक्तिकी अनुप्रेक्षा—१-महाप्राण ध्वनि, २-कायोत्सर्ग—अरुण रंगका श्वास ले। अनुभव करे कि चारों तरफ अरुण रंगके परमाणु फैले हुए हैं। अरुण रंगके परमाणु श्वासके साथ भीतर प्रवेश कर रहे हैं। पाँच मिनट तैजस केन्द्रपर चित्तको केन्द्रितकर अनुप्रेक्षा करे कि शक्तिका विकास हो रहा है। शरीरके कण-कणमें शक्तिका संचार हो रहा है।

अनुचिन्तन—विश्वमें शक्तिकी पूजा होती है। शक्तिशाली व्यक्ति ही जीवनमें सफल होता है ऐसा अनुचिन्तन करे।

महाप्राण ध्वनि—मन्त्रके अर्थ तथा मन्त्रके प्रभावी शब्दोंका भावनापूर्वक तीन बार जप करे। इसमें जिस विषयका जप करना है, उसको पुनः-पुनः दोहराना होता है। उससे शक्ति प्राप्त होती है और रोग दूर होते हैं।

तप—तपका अर्थ है संयम और तितिक्षा। अपनी इन्द्रियों और मनको संयत रखना सबसे बड़ा तप है। उससे जैसा चाहे वैसा परिणाम निकलता है।

स्वास्थ्यपर संगीतके स्वरोंका प्रभाव

(डॉ० श्रीप्रेमप्रकाशजी लक्कड़ एम्०ए०, पी-एच्०डी०, एल्-एल्०बी०, कमिश्नर)

गान्धर्ववेद (संगीतशास्त्र)-में स्वर सात बतलाये गये हैं। इन्हीं सात स्वरोंके मिश्रणसे सभी राग-रागिनियोंका स्वरूप निर्धारित हुआ है। स्वर-साधना एवं नादानुसंधानके विविध प्रयोग निर्दिष्ट हैं। इनसे शरीर, स्वास्थ्यको भी बल मिलता है।

इन सात स्वरोंके नाम हैं—सा, रे, ग, म, प, ध, नि।

सा (षड्ज)—नासिका, कण्ठ, उर, तालु, जिह्वा और दाँत—इन छः स्थानोंके सहयोगसे उत्पन्न होनेके कारण इसे षड्ज कहते हैं। अन्य छः स्वरोंकी उत्पत्तिका आधार होनेके कारण भी इसे षड्ज कहा जाता है।

इसका स्वभाव ठंडा, रंग गुलाबी और स्थान नाभि-प्रदेश है। इसका देवता अग्नि है। यह स्वर पित्तज रोगोंका शमन करता है। उदाहरण—मोरका स्वर षड्ज होता है।

रे (ऋषभ)—नाभिसे उठता हुआ वायु जब कण्ठ और शीर्षसे टकराकर ध्वनि करता है तो उस स्वरको रे (ऋषभ) कहते हैं।

इसकी प्रकृति शीतल तथा शुष्क, रंग हरा एवं पीला मिला हुआ और स्थान हृदय-प्रदेश है। इसका देवता ब्रह्मा है। यह स्वर कफ एवं पित्तप्रधान रोगोंका शमन करता है।

उदाहरण—पपीहाका स्वर ऋषभ होता है।

ग (गन्धार)—नाभिसे उठता हुआ वायु जब कण्ठ और शीर्षसे टकराकर नासिकाकी गन्धसे युक्त होकर निकलता है, तब उसे गन्धार कहते हैं। इसका स्वभाव ठंडा, रंग नारंगी और स्थान फेफड़ोंमें है। इसका देवता सरस्वती है। यह पित्तज रोगोंका शमन करता है।

उदाहरण—बकरेका स्वर गन्धार होता है।

म (मध्यम)—नाभिसे उठा हुआ वायु जब उर-प्रदेश और हृदयसे टकराकर मध्यभागमें नाद करता है, तब उसे मध्यम स्वर कहते हैं। इसका स्वभाव शुष्क, रंग गुलाबी और पीला मिश्रित तथा स्थान कण्ठ है। इसकी प्रकृति चंचल है। इस स्वरके देवता महादेव हैं।

यह वात और कफ-रोगोंका शमन करता है।

उदाहरण—कौआ मध्यम स्वरमें बोलता है।

प (पंचम)—नाभि, उर, हृदय, कण्ठ और शीर्ष—इन पाँच स्थानोंका स्पर्श करनेके कारण इस स्वरको पंचम कहते हैं। सात स्वरोंकी शृंखलामें पाँचवे स्थानपर होनेसे भी यह पंचम कहा जाता है।

इसकी प्रकृति उत्साहपूर्ण, रंग लाल और स्थान मुख है। इसका देवता लक्ष्मी कहा गया है। यह कफ-प्रधान रोगोंका शमन करता है। उदाहरण—कोयलका स्वर।

ध (धैवत)—पूर्वके पाँच स्वरोंका अनुसंधान करनेवाले इस स्वरकी प्रकृति चित्तको प्रसन्न और उदासीन दोनों बनाती है। इसका स्थान तालु है और देवता गणेश हैं।

यह पित्तज रोगोंका शमन करता है। उदाहरण—मेढकका स्वर।

नि (निषाद)—यह स्वर अपनी तीव्रतासे सभी स्वरोंको दबा देता है, अतः निषाद कहा गया है। इसका स्वभाव ठंडा-शुष्क, रंग काला और स्थान नासिका है। इसकी प्रकृति जोशीली और आह्लादकारी है। इसके देवता सूर्य हैं। यह वातज रोगोंका शमन करता है। उदाहरण—हाथीका स्वर।

असाध्य रोग और आयुर्वेद

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

रोगोंकी कोई संख्या नहीं है। कितने रोग हो चुके हैं, कितने रोग हैं और कितने रोग होंगे; इसकी कोई इयत्ता नहीं है। महर्षि चरकने बताया है कि चिकित्सकोंके सामने यदि कोई ऐसा रोग आ जाय जिससे वे परिचित नहीं हों, तो वे उस रोगके सामने नतमस्तक न हो जायँ, यह न सोचें कि मैं इस रोगको जानता नहीं तो इसकी चिकित्सा कैसे करूँ? आजतक किसी चिकित्सापद्धतिमें न तो ऐसी कोई पुस्तक है और न हो सकती है कि जिसमें भूत, भविष्य एवं वर्तमानके समस्त रोगोंका नाम लिखा गया हो। आयुर्वेदने बताया है कि रोग भले असंख्य हैं, किंतु उनके निदान संक्षिप्त और सूत्रबद्ध हैं। इसलिये उस रोगसे लड़ा जा सकता है और उसे समाप्त भी किया जा सकता है। अतः चिकित्सकको किसी नये रोगसे न घबड़ाकर उसकी चिकित्साके लिये दत्तचित्त हो जाना चाहिये। यह महर्षि चरकका आदेश है—

विकारनामाकुशलो न जिह्नीयात् कदाचन।
न हि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः॥
(चरक० सू० १८।४४)

इसी आधारपर आज भी दुनियामें असाध्य माने गये कुछ रोगोंकी चिकित्सा सफल रही है। यहाँ इनमेंसे कुछ रोगोंका संक्षेपमें उल्लेख इसलिये किया जा रहा है कि इनपर जो अनुसंधान करनेवाले हैं वे अनुसंधान करें और जो इस रोगसे ग्रस्त हैं, वे इससे लाभ उठायें—

(१) बिना नामका रोग

एक रोगीको देखा गया कि उसके दाहिने हाथकी कलाईके तीन हिस्से सूख गये हैं, एक हिस्सा बचा है। उसके उसी हाथकी दो अँगुलियाँ कंधेसे लग गयी हैं, उस हाथको हिलाना या इधर-उधर करना सम्भव न था। वह रुग्ण हाथ केवल बेकार ही नहीं हुआ था, अपितु तकलीफ भी देता रहता था। रोगीका सोना भी कठिन हो रहा था, इस विलक्षण रोगको देखकर हतप्रभ होना पड़ा। उससे पहला प्रश्न था—यह रोग तो पुराना दीखता है, इसकी चिकित्सा क्यों नहीं करायी? रोगीने कहा—तीन वर्षोंसे दवा करा रहा हूँ, किंतु दिनोंदिन रोग बढ़ता ही जा रहा है। मैंने कहा—इस रोगका मैं न तो नाम जानता हूँ और न चिकित्सा ही। यह नया रोग है, मेरे लिये अनजान है, आप विज्ञानकी शरणमें जायँ। छः महीनेके बाद रोगी लौटा। उसने कहा कि छः महीनोंतक तरह-तरहकी जाँच हुई, अंतमें यह कहा गया कि इस रोगकी दवा अभी निकली नहीं है। इस सिलसिलेमें भारतके चोटीके चिकित्सास्थानोंमें वह रोगी दौड़ चुका था। रोगी जब छः महीनेके बाद फिर लौटा तो चरकके आदेशसे बाध्य होना पड़ा। सहानुभूतिका तकाजा अलग था।

यह तो साधारणतया समझमें आ ही गया था कि हृदयसे जिन रक्तवाहिनियोंके द्वारा रक्तका जो संचार होता है, उनमेंसे किसीमें अवरोध आ गया है, इस अवरोधको रसराज आदि औषध दूर कर सकता है। फिर प्रकृति और वात, पित्त तथा कफका सामञ्जस्य बैठाकर दवा की गयी। उस दवासे वह रोगी रोगमुक्त हो गया। हाथके सूखे हुए भाग फिर पहलेकी आकारमें आ गये और अँगुलियोंने लिखने-पढ़नेका काम भी सँभाल लिया। धीरे-धीरे वजन उठानेकी आदत डाली गयी। अब वह बीस किलो वजनकी चीज उठा लेता है और उसको लेकर चल भी सकता है। उसे निम्नाङ्कित दवाएँ दी गयीं—

(१) रसराजरस-१½ ग्राम, (२) स्वर्णभस्म-२० मिलीग्राम, (३) महाशङ्खवटी-२ ग्राम, (४) कृमिमुद्गररस-३ ग्राम, (५) प्रवालपञ्चामृत-३ ग्राम, (६) पुनर्नवामंडूर-३ ग्राम, (७) चन्द्रप्रभावटी-३ ग्राम, (८) सीतोपलादि-२५ ग्राम। कुल=२१ पुड़िया।

लाभ कम दीखनेपर रसराजकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाकर ३ ग्रामतक ली जा सकती है।

(१) सुबह-शाम एक-एक पुड़िया शहदसे लेकर एक-पुटिया लहसुन काटकर खाना चाहिये। शीत-ऋतुमें यह एकपुटिया लहसुन पाँच-पाँच नगतक लिये जा सकते हैं।

(२) पचास ग्राम साधारण लहसुनको दो चम्मच तिल्ली या सरसोंके तेलमें पीसकर उबटन बनाना चाहिये।

बहुत महीन नहीं पीसे। फिर घायल हाथमें ऊपरसे नीचेतक उबटन लगाये।

सावधानी—उबटन लगाते समय लहसुनको घायल हाथपर धीरे-धीरे रगड़ें। इसे आधे मिनटके लिये भी छोड़ दिया जाय तो त्वचा जल जायगी।

(३) १० ग्राम ईसबगोलकी भूसी दूध या पानीसे लेकर कैस्टर ऑयल १ से ४ चम्मचतक ले। कैस्टर ऑयल लेनेका प्रकार यह है कि पावभर दूधमें चीनी मिला ले। आठ चम्मच दूध निकाल ले। उसमें एकसे चार चम्मचतक कैस्टर ऑयल सुविधाके अनुसार मिलाये। इतना मिलाये जितनेसे एक बारमें पेट साफ हो जाय।

विशेष सूचना—जाड़ेके दिनोंमें आधा अगहन बीत जानेपर एकपुटिया लहसुनका कल्प कर लें। नीरोग रहनेके लिये स्वस्थ व्यक्ति भी कल्प कर सकता है।

उपर्युक्त रोगमें तो प्रत्येक जाड़ेमें इस कल्पका सेवन आवश्यक होता है। २५० ग्राम मलाई निकाला हुआ दूध कड़ाहीमें डालकर उसी दूधमें २५० ग्राम पानी मिला दें। इस पानीमिले दूधमें एकपुटिया लहसुन कुचलकर पहले दिन एक, दूसरे दिन दो—इस तरह एक-एक बढ़ाते हुए पंद्रहवें दिन पंद्रह लहसुन डालें। आधा फाल्गुनतक पंद्रह-पंद्रह डालते रहें। उसके बाद चौदह, तेरह, बारह इस क्रमसे एक-एक कम करते हुए ज्येष्ठ आनेके पहलेतक दो-दो डालते रहें। प्रतिदिन वायविडंगका दरदरा चूर्ण १० ग्राम, अर्जुनकी छालका दरदरा चूर्ण ५ ग्राम, १० ग्राम शतावरका चूर्ण, ३ ग्राम असगंधका दरदरा चूर्ण दूध-पानीमें डालकर धीमी आँचमें पकावें। पानी जल जानेपर अर्थात् दूध शेष रहनेपर छानकर सबको फेंक दें। इस दूधमें तीन छोटी इलायचीका चूर्ण और इच्छाके अनुसार चीनी मिलाकर दूधको पी लें।

(२) स्क्लेरोडर्मा (Scleroderma)

आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें इस रोगके सम्बन्धमें कोई जानकारी दी गयी है, यह ढूँढ़ा न जा सका, किंतु आयुर्वेदने बताया है कि प्रकृति, वात, पित्त, कफ और उपसर्गके द्वारा सभी रोगोंको समझा जा सकता है और उसकी चिकित्सा भी की जा सकती है। इसी आधारपर रोगीको रोगसे मुक्त करनेमें सफलता मिल जाती है।

विज्ञानद्वारा इसका परिचय—आजके चिकित्सा-विज्ञानने इस रोगके सम्बन्धमें जानकारियाँ प्राप्त कर ली हैं। विज्ञानका मानना है कि यह एक संयोजी ऊतकों (Connective Tissue)-के विकारसे उत्पन्न होनेवाला रोग है। यह रोग, रोगप्रतिरोधी क्षमताकी कमीसे उत्पन्न होता है। इस रोगमें छोटी रक्तवाहिकाओंका भीतरी स्तर मोटा हो जाता है। यह रोग प्रायः ३० से ६० वर्षकी अवस्थामें उत्पन्न होते देखा गया है। कम रक्तप्रवाहके कारण प्रायः अँगुलियाँ पीली पड़ जाती हैं। धीरे-धीरे मुर्दा-सी हो जाती हैं।

कुछ लक्षण—(१) अँगुलियोंका सड़ना, (२) अँगुलियोंको घुमानेमें कठिनाई होना, (३) त्वचाकी ऊपरी सतहका एकदम पीला होना, (४) मुँहको फैलानेमें असमर्थताका अनुभव होना, (५) अस्थियोंपर पायी जानेवाली त्वचामें कसाव परिलक्षित होना।

रोग जब विकसित हो जाता है तब पाचनतन्त्रमें विकार, मांसपेशीका क्षय और वेदनाकी अनुभूति होती है।

रोगोंके निदानमें आजके विज्ञानने अत्यधिक सफलता प्राप्त कर ली है। इस रोगके भी परीक्षणसे प्रायः ५०% व्यक्तियोंमें Antinuclear antibody+ ve (धनात्मक) पाया जाता है।

इस तरह रोगके निदानमें तो सफलता मिल गयी है, किंतु अभीतक यह रोग विज्ञानके लिये असाध्य है; क्योंकि कोई भी कारगर दवा अभी नहीं निकली है। प्रडिनसोलोन (Prednisolone)-से तात्कालिक लाभ पहुँचाया जाता है।

सफल चिकित्सा न होनेके कारण इस रोगसे प्रायः ७०% रोगी ही पाँच वर्षतक जीवित रह पाते हैं।

आयुर्वेदके द्वारा साध्य—आयुर्वेदमें रसराज नामका एक औषध है, उसका काम है रक्तवाहिनियोंका प्रसारण करना। इस औषधसे रक्तवाहिनीमें जितने विकार आ जाते हैं, उनका भी सफाया हो जाता है और उचित स्थानोंपर रक्तका सञ्चार प्रारम्भ हो जाता है। इस दृष्टिकोणसे स्क्लेरोडर्मा रोगमें यह औषध सफल हो जाता है। दवाका संयोजन निम्न प्रकारसे किया जाय—

(१) रसराजरस-१ ग्राम, (२) स्वर्णभस्म-३० मिलीग्राम, (३) प्रवालपञ्चामृत-३ ग्राम, (४) चन्द्रप्रभावटी-३ ग्राम, (५) कृमिमुद्गररस-३ ग्राम, (६) सीतोपलादि-२५

ग्राम, (७) मोतीपिष्टी-१ ग्राम। कुल ३१ पुड़िया बनाकर एक-एक पुड़िया शहदसे तीन बार (सुबह-दोपहर एवं शाम) लेना चाहिये।

जो लोग लहसुन खाते हों, वे एकपुटिया लहसुन (बलानुसार एक-एक बढ़ायें) काटकर दवाकी खुराक लेनेके बाद पानी अथवा ५० ग्राम दूधसे ले लें।

सूचना—यदि ब्लडप्रेशर न हो तो १० दिनके बाद उपर्युक्त योगमें रसराजकी मात्राको दो ग्राम कर दें। फिर २१ वें दिनसे ३-३ ग्राम कर दें। पेट साफ न होता हो तो रातको छोटी हर्रेका प्रयोग करें।

पथ्यका पालन करना आवश्यक है। बिना चुपड़ी रोटी, मूँग या चनेकी दाल, नेनुवा, लौकी, परवल, पपीता, भिंडी, करेला, सहजन आदि लें। बथुआ छोड़कर पत्तीका और कोई शाक न लें। खोआ और तली-भुनी चीजें न खायें।

(३) हिपेटाइटिस-बी

ऑस्ट्रेलियाई वायरसके द्वारा 'हिपेटाइटिस-बी' रोग हो जाता है। यह रोग होने न पाये, इसका उपाय आजके विज्ञानने सोच लिया है। महीने-महीनेपर एक सुई लगायी जाती है, जिससे कहा जाता है कि इस सुईको लगवानेवाले व्यक्तिको हिपेटाइटिस-बी नहीं हो सकेगा। किंतु हिपेटाइटिस-बी रोग जब हो जाता है तब आजके विज्ञानके पास ऐसी कोई दवा नहीं है, जिससे रोगीको मृत्युके मुखसे बचाया जा सके। शत-प्रतिशत मृत्यु हो जाती है।

रोगका कारण—इस रोगमें ऑस्ट्रेलियाई वायरस खान-पानके द्वारा मुखमार्गसे शरीरमें प्रविष्ट हो जाते हैं और यकृत् (लीवर)-में अड्डा जमा लेते हैं। जब इनका पूरा परिवार विकसित हो जाता है, तब यकृत्की पित्तस्रावक्रियामें अवरोध हो जाता है और यकृत् फूलकर पेटमें फैल जाता है जिसको छूकर हम प्रत्यक्ष कर सकते हैं। इसके बाद असह्य पीडा होने लगती है, हाथ-पैर ठंडे होने लग जाते हैं और रोगीका प्राणान्त हो जाता है।

आयुर्वेद प्राचीनकालसे यकृत्-सम्बन्धी व्याधियोंकी चिकित्सा सफलतापूर्वक करता आ रहा है। आज भी यकृत्की सारी व्याधियोंकी चिकित्सा (कैंसर छोड़कर) आयुर्वेदसे हो जाती है।

हिपेटाइटिसका सामान्य अर्थ पीलिया होता है। इस रोगमें गदहपूर्णा (पुनर्नवा)-जड़का स्वरस ५०-५० ग्राम सुबह, दोपहर, शाम—तीन बार दिया जाता है। मूलीका रस सबेरे और ईखका रस कई बार प्रयोग किया जाता है। आजकल ईखके रसकी जगह ग्लूकोज दे दिया जाता है। ग्लूकोज बड़ी मात्रामें (सौ-सौ ग्राम) तीन-चार बार पिलाते रहना चाहिये। इस तरह हिपेटाइटिस-बीका मुख्य औषध तो गदहपूर्णाका रस है। अन्य ओषधियाँ निम्नलिखित हैं—

(१) पुनर्नवामण्डूर-३ ग्राम, (२) प्रवालपञ्चामृत-३ ग्राम, (३) रससिन्दूर-२ ग्राम, (४) सितोपलादि-५० ग्राम—इन सबोंकी ३१ पुड़िया बनायें। एक-एक पुड़िया सुबह-दोपहर-शाम खाकर ग्लूकोज मिला हुआ गदहपूर्णाका रस लेते जायँ। शौचशुद्धिके लिये छोटी हर्रेका उपयोग करें। आँवलेका रस भी हितकारी है। इस रोगमें हल्दी घोर अपथ्य है।

आधुनिक परीक्षण कराते रहें। औषध डेढ़-दो महीने चलाना चाहिये।

(४) कैंसर

जिन असाध्य रोगोंकी चर्चा यहाँ की जा रही है, उनमें कैंसर आज भी साध्य नहीं माना जाता। क्योंकि अभीतक इसमें कोई ठोस परिणाम उपलब्ध नहीं हो सके हैं। किंतु आजके विज्ञानने बहुत-से रोगोंको प्रत्यक्ष-सा कर लिया है। इस तरह निदानक्षेत्रमें इसे बहुत ही सफलता मिली है। कैंसर रोग जब प्रमाणित हो जाय तो निम्न चिकित्सासे सफलता मिली है।

इस निबन्धमें किसी भी रोगका पूरा-पूरा निदान न लिखकर इससे स्वास्थ्य प्राप्त करनेका तरीका ही लिखा जा रहा है; क्योंकि प्रत्यक्ष निदान तो विज्ञानसे ही सम्भव है। फिर भी इस रोगसे बचावके लिये कुछ जानकारी अपेक्षित है, यथा—

(१) शरीरमें पड़े तिल, मस्से आदिके वर्ण एवं आकारमें परिवर्तन होना, (२) घावका न भरना, (३) स्तन, ओष्ठ आदि किसी अङ्गपर गाँठका बनना, (४) मलकी अतिप्रवृत्ति या क़ब्ज़का होना, (५) वजन कम होना, (६) अकारण थकावट महसूस होना।

इन लक्षणोंके होनेपर चिकित्सकोंसे अपना परीक्षण कराना आवश्यक है।

कैंसरमें किसी अङ्गके ऊतककी कोशिकाओंमें असीम रूपसे विभाजन होने लगता है, जिससे यह व्याधि निरन्तर बढ़ती रहती है। कोशिकाएँ पोषक तत्त्वोंको चूसकर अन्य अङ्गोंको अस्वस्थ कर देती हैं।

अनुभूत औषध—यहाँ अनुभूत औषध दिये जा रहे हैं, जिनसे कैंसर रोगकी रोकथाम तो होती ही है, हो जानेपर उसे निर्मूल भी किया जा सकता है। फेफड़ेके कैंसर भी अच्छे हो गये हैं। लीवरकैंसरपर इसका उपयोग सन्देहास्पद रहा है।

सेमिनोवा कैंसरको तो निश्चित और शीघ्र ही ठीक किया जा सकता है। हाँ, कार्सिनोवा कैंसरमें देर लगती है। किंतु जो दवा लिखी जा रही है, उससे लाभ-ही-लाभ होना है। कोई प्रतिक्रिया नहीं होती।

(१) सिद्धमकरध्वज-१ ग्राम, (२) स्वर्णभस्म-३० मिलीग्राम, (३) नवरत्नरस-३ ग्राम, (४) प्रवालपञ्चामृत-३ ग्राम, (५) कृमिमुद्गररस-३ ग्राम, (६) बृहद्योगराजगुग्गुल-३ ग्राम, (७) सितोपलादि-५० ग्राम, (८) अम्बर-१/४ ग्राम, (९) पुनर्नवामण्डूर-३ ग्राम, (१०) तृणकान्तमणिपिष्टि-३ ग्राम।

खून आनेकी स्थितिमें बीच-बीचमें एक कप दूब (दूर्वा)-का रस भी ले लेना चाहिये। इसे दवाके साथ ही लेना कोई आवश्यक नहीं है।

सेवन विधि—सभी दवाओंको अच्छी तरह घोंटकर ४१ पुड़िया बनाये। सुबह एक पुड़िया शहदसे चाटकर ताजा गोमूत्र पीये। बछियाका गोमूत्र ज्यादा अच्छा माना जाता है। उसके अभावमें स्वस्थ गाय जो गर्भवती न हो, उसका मूत्र भी लिया जा सकता है। गोमूत्र सारक (दस्तावर) होता है इसलिये सबको एक तरहसे नहीं पचता है। इसे आधी छटाकसे शुरू कर २०० ग्रामतक बढ़ाना चाहिये।

दूसरी खुराक ९ बजे दिनमें तथा तीसरी तीन बजे शामको गेहूँके पौधेके रससे लेनी चाहिये। गेहूँके पौधेका रस भी आधी छटाकसे शुरू कर २००-२०० ग्रामतक होना चाहिये। देशी खाद डालकर गेहूँका पौधा लगा देना चाहिये। दूसरे दिन दूसरी जगह लगाना चाहिये। इसी तरह प्रतिदिन १० दिनतक अलग-अलग स्थानोंपर गेहूँ बोना चाहिये। दसवें दिनका पौधा काटकर, धोकर, पीसकर उसका रस लेना चाहिये। काटनेके बाद उसी दिन फिर गेहूँ बो देना चाहिये। इस तरह प्रतिदिन काटना-बोना चाहिये।

जबतक गेहूँ तैयार न हो और गेहूँके पौधेका रस न मिले तबतक दूसरी और तीसरी पुड़ियाको तीन ग्राम कच्ची हल्दीका रस—लगभग दो चम्मच (कच्ची हल्दी न मिलनेपर सूखी हल्दीका चूर्ण १ चम्मच) और दो चम्मच तुलसीका रस मिलाकर दवा लेनी चाहिये।

हरिद्राखण्ड (हरिद्राखण्ड नामका चूर्ण प्रत्येक औषधनिर्माता बनाते हैं)-को मुँहमें रखकर बार-बार चूसते रहना चाहिये। चूसनेके पहले गरम पानी और नमकसे दाँतोंको सेंकना चाहिये।

यदि गले या स्तन आदिमें कहीं गाँठ हो गयी हो तो उसको गोमूत्रमें हल्दीका चूर्ण मिलाकर गरमकर साफ रूईसे सेंकना चाहिये और इसीकी पट्टी लगानी चाहिये।

यदि घाव हो गया हो तो नीमके गरम पानीसे सेंककर मनःशिलादि मलहम लगाना चाहिये।

सावधानी—यह मलहम जहर होता है, इसलिये मुखवाले (घाव) रोगमें इसे न लगायें। अपितु कभी-कभी रूईको गोमूत्रमें भिगाकर उस स्थानपर रख दें या कच्ची हल्दीका रस या सूखी हल्दीके चूर्णके रसको रूईद्वारा इस स्थानपर रख दें। सुबह-शाम दो बार नीमके पानीसे सेंकना आवश्यक है। मलहम लगाकर हाथोंको राखसे खूब साफ करना चाहिये। छः बारतक गरम चाय पीयें और हरिद्राखण्ड चूसते ही रहें।

इस रोगमें हरी पत्तीकी चाय बहुत उपकार करती है। चौबीस घंटेमें हरी पत्तीवाली चायकी मात्रा ५ ग्राम ही होनी चाहिये। इसीको दूध मिलाकर चाय बनाकर बार-बार पीते रहना चाहिये। इससे ताकत बनी रहती है और रोग बढ़ने नहीं पाता।

(५) प्लास्टिक एक्जिमा

प्लास्टिक एग्जिमाके रोगका निर्णय हो जानेपर निम्नलिखित दवाका सेवन करें—

पुनर्नवामण्डूर-४ ग्राम, स्वर्णभस्म-३० मि०ग्राम, मोतीपिष्टी-१ ग्राम, प्रवालपञ्चामृत-३ ग्राम, कृमिमुद्गररस-३ ग्राम, सिद्धमकरध्वज-१ ग्राम, चन्द्रप्रभावटी-४ ग्राम,

सितोपलादि-२५ ग्राम, कासीसभस्म-२ ग्राम। कुल ४१ पुड़िया। गोमूत्रसे ९ बजे दिन तथा ३ बजे दिनमें तथा शामको गेहूँके पौधेके रसके साथ एक पुड़िया शहदसे चाट लें।

विशेष सूचना—उपर्युक्त सभी अनुपानोंमें ३-३ चम्मच लीवोसिन या लिवोकल्प मिला लें तो उत्तम लाभ हो।

(६) पथरी

पथरीका रोग आज आम बात हो गयी है। साठ-सत्तर वर्ष पहले भोजनमें कुलथीकी दाल खायी जाती थी। बाजारमें मिलती थी। किंतु इधर लोगोंने उसको खाना बंद कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज पथरीका रोग वेगसे बढ़ रहा है। यदि कुलथीका पानी भी पिया जाय तब इस रोगको या तो निकाला जा सकता है या गलाया जा सकता है। मूत्रवहा नाडीका पत्थर शीघ्र ही निकल जाता है। यदि यह वृक्कमें हो जाता है तो देर लगती है; क्योंकि वहाँसे निकाला नहीं जा सकता। हाँ, गलाया जा सकता है। दोनों स्थितियोंमें शल्यकर्मकी आवश्यकता नहीं रहती। कुलथी अपने प्रभावसे उस रोगको जड़मूलसे साफ कर देती है। औषध एवं उसके सेवनकी विधि इस प्रकार है—

(१) हजरल जहूर भस्म-३ ग्राम, (२) श्वेतपर्पटी-३ ग्राम, (३) पाषाणभेद-३ ग्राम, (४) चन्द्रप्रभावटी-४ ग्राम।

इन सबकी २१ पुड़िया बनायें। सुबह-शाम एक-एक पुड़िया निम्नलिखित काढ़ेसे लें—

काढ़ा—(१) कुलथी (या दाल)-१०० ग्राम, (२) वरुण (वरुणा)-की छाल-१५ ग्राम, (३) गदहपूर्णाकी जड़-१० ग्राम, (४) छोटी गोखरू-६ ग्राम, (५) बड़ी गोखरू-६ ग्राम, (६) भिंडीका बीज-३ ग्राम, (७) पानी-५०० ग्राम (आधा किलो)।

इन सबको जौकूट (जौके बराबर) चूर्ण कर लें। काढ़ेकी दवाओंको बहुत महीन न करें। जौकूट-चूर्णको आधा किलो पानीमें रातमें भिगो दें। सबेरे धीमी आँचपर काढ़ा बनायें। शेष १०० ग्राम रहनेपर उतार लें। ५० ग्राम काढ़ा सुबह एक पुड़िया खाकर पी लें।

पथ्य—नेनुवा, लौकी, परवल, पपीता, करेला आदि सब्जियोंको हल्के तेलमें जीरेसे छौंककर धनिया, हल्दी, काली मिर्च—इन मसालोंको खाया जा सकता है। गरम मसाला न लें।

अपथ्य—कैल्सियमकी वस्तुएँ जैसे दूध और रत्नोंका भस्म एवं टमाटर न लें।

सूचना—यदि यूरेटरमें बड़ा पत्थर होता है तो इन दवाओंसे निकलते समय दर्द महसूस होता है, इस दर्दको शुभ लक्षण समझना चाहिये। क्योंकि पत्थर अपने स्थानसे हटकर पेशाबके रास्ते निकलना चाह रहा है। ऐसी स्थितिमें बार-बार खूब पानी पीना चाहिये। इससे उसके निकलनेमें सुविधा होती है। यदि पथरी छोटी होती है तो तकलीफ नहीं होती, आसानीसे निकल जाती है। बड़ी पथरी निकलनेके बाद देखनेमें मांसका टुकड़ा लगता है; क्योंकि मांसको काटते हुए बाहर निकलता है, उसे रख दिया जाय तो बारह घंटे बाद वह पत्थर नजर आने लगता है। इस पत्थरका रंग हजरल जहूर पत्थरकी तरह नीलाभ होता है।

(७) प्रोस्टेड ग्लैंड (पौरुषग्रंथि)

पौरुषग्रंथिका रोग केवल पुरुषोंको ही होता है; क्योंकि पुरुषोंमें ही यह ग्रंथि पायी जाती है। पाँच वर्ष पहलेतक शल्यकर्म बार-बार करनेसे भी प्रायः यह रोग नहीं जाता था, किंतु आयुर्वेदिक औषधके सेवनसे यह रोग समूल नष्ट किया जा सकता है।

औषध—(१) काञ्चनार गुग्गुल-२५ ग्राम, (२) चन्द्रप्रभावटी-५ ग्राम, (३) चतुर्मुख रस १/४ ग्राम, (४) प्रवालपञ्चामृत-३ ग्राम, (५) ताम्रभस्म-१/८ ग्राम—इन सबकी २१ पुड़िया बनायें। एक पुड़िया दवा खाकर निम्नलिखित काढ़ेमें ८ बूँद शिलाजीत और २ ग्राम शीतल चीनी चूर्ण मिलाकर पी लें। सुबह-शाम लें। अपने संतोषके लिये दो-दो महीनेपर जाँच करायें। छः महीनेमें रोग समास हो जायगा।

काढ़ा—(१) वरुण (वरुणा)-की छाल-१५ ग्राम, (२) गदहपूर्णाकी जड़-१० ग्राम, (३) छोटी गोखरू-६ ग्राम, (४) बड़ी गोखरू-६ ग्राम, (५) पञ्चतृणमूल अर्थात् (क) ईखकी जड़-३ ग्राम, (ख) कासकी जड़-३ ग्राम, (ग) साठी धानकी जड़-३ ग्राम, (घ) कुशकी जड़-३ ग्राम। (ङ) शरकण्डेकी जड़-३ ग्राम, (७) सहजनकी छाल-१० ग्राम।

आधा किलो पानीमें काढ़ा बनायें। १०० ग्राम शेष रहनेपर ५० ग्राम सुबह तथा ५० ग्राम शाम दवाके साथ लें।

विशेष—यदि मूत्रमें दाह हो तो तीन बूँद चन्दनका

तेल तथा तीन ग्राम शीतल चीनीका चूर्ण काढ़ेमें मिला लें।

परहेज—पूर्वकी तरह।

(८) मायोपैथी

यह मांसपेशियोंका रोग है। विज्ञानकी जाँचसे जब यह रोग ज्ञात हो जाय, तब इसकी चिकित्सा प्रारम्भ करे। वैसे यह रोग असाध्य है। किसी पैथीमें इस रोगको हटानेकी क्षमता नहीं है। आयुर्वेदसे इस रोगमें कितना प्रतिशत लाभ होता है, ठीकसे नहीं कहा जा सकता। हाँ, एक रोगी, जिसने आजसे आठ-दस वर्ष पहले आयुर्वेदकी दवा की थी, वह आज भी स्वस्थ है। इसी आधारपर इस रोगकी दवा लिखी जाती है। जब रोगीने इस दवाको प्रारम्भ किया था तब उसकी अवस्था बारह वर्षकी थी।

विशेष—जो दवा लिखी जा रही है, वह प्रारम्भमें बहुत ही लाभ पहुँचाती है। रोगीको लगता है कि वह पाँच-छः महीनेमें ठीक हो जायगा; किंतु पीछे चलकर यह दवा सात्म्य (प्रभाव-विहीन-सी) होने लग जाती है और रोगीको अनुभव होता है कि अब मुझे लाभ नहीं हो रहा है, वैसी स्थितिमें दवाकी मात्रा बढ़ानी पड़ती है। इस रोगकी यह बड़ी विशेषता है। रोगीको घबड़ाना नहीं चाहिये।

इस रोगकी दूसरी विशेषता यह है कि इस रोगमें एक खुराक निरूढ़ वस्तिसे देना आवश्यक हो जाता है। इसके बिना केवल खानेसे लाभ नहीं पहुँचता।

दवाका क्रम—

(१) रसराजरस-डेढ़ ग्राम, (२) वृहद्वातचिन्तामणिरस-आधा ग्राम, (३) मल्लसिन्दूर-डेढ़ ग्राम, (४) प्रवालपञ्चामृत-तीन ग्राम, (५) कृमिमुद्गररस-तीन ग्राम, (६) गिलोयसत-पचीस ग्राम—इन सबकी इकतीस पुड़िया बना लें।

सेवनविधि—एक पुड़िया सुबह एक पुड़िया शामको शहदके साथ लें। जो लोग लहसुन खाते हैं, वे एकपुटिया लहसुन एकसे तीनतक काटकर निगल लें। तीसरी पुड़िया निरूढ़ वस्तिसे लेनी है। वस्तिको एनिमा कहते हैं। आयुर्वेदने तीन प्रकारकी वस्तियाँ मानी हैं। इनमें दो तरहकी वस्तियाँ तो सभी पैथियोंने अपना ली हैं, किंतु निरूढ़वस्तिका प्रचलन किसी पैथीमें नहीं है। जो दवा मुखसे लेनेपर उतना कारगर नहीं होती, वह निरूढ़वस्तिसे अधिक लाभप्रद हो जाती है। प्रस्तुत रोगमें निरूढ़वस्तिके बिना दवा लाभप्रद नहीं हो पाती। इस रोगकी यह विशेषता है।

सावधानी—उपर्युक्त दवाकी पुनः इक्कीस पुड़िया बनाकर अलग रख लें। जब पहली दवाका प्रभाव कम पड़ता दीख पड़े तो इक्कीस पुड़ियोंमेंसे आधी पुड़िया सुबहकी दवामें तथा आधी पुड़िया शामकी दवामें मिला लें। यदि इसका भी प्रभाव कम पड़ने लगे तो एक-एक पुड़िया पहलीवाली दवामें मिलाकर पूर्वोक्त विधिसे सेवन करें।

विशेष—(१) इस रोगमें बीस मिनटतक भस्त्रिका-प्राणायाम करना चाहिये। भस्त्रिका-प्राणायामके बहुत भेद हैं। यहाँ निम्नलिखित प्रकारका भस्त्रिका-प्राणायाम करे—

'भस्त्रिका' का अर्थ है 'भाथी'। भाथी इस गहराईसे वायु खींचती है कि जिससे उसके प्रत्येक अवयवतक वायु पहुँच जाती है और वह पूरी फूल उठती है तथा यह इस भाँति वायु फेंकती है कि उसका प्रत्येक अवयव भलीभाँति सिकुड़ जाता है। इसी तरह भस्त्रिका-प्राणायाममें वायुको इस तरह खींचा जाता है कि फेफड़ेके प्रत्येक कणिकातक वह पहुँच जाय और छोड़ते समय प्रत्येक कणिकासे वह निकल जाय।

प्रातः खाली पेट शवासनसे लेट जाय। मेरुदण्ड सीधा होना चाहिये। इसलिये चौकी या जमीनपर लेट जाय, फिर मुँह बंद करके नाकसे धीरे-धीरे श्वास खींचे। जब खींचना बंद हो जाय, तब मुँहसे फूँकते हुए धीरे-धीरे छोड़े, रोके नहीं। यह प्रयोग बीस मिनटसे कम न हो। खाली पेट करे। यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि श्वासका लेना और छोड़ना अत्यन्त धीरे-धीरे हो। इतना धीरे-धीरे कि नाकके पास हाथमें रखा हुआ सत्तू भी उड़ न सके—

न प्राणेनाप्यपानेन वेगाद् वायुं समुच्छ्वसेत्।
येन सक्तून् करस्थांश्च निःश्वासो नैव चालयेत्॥

(२) जैसे-जैसे ताकत मिलती जाय वैसे-वैसे घर्षण स्नान करे।

विधि—पानीमें भिगोकर मोटे तौलियेसे पहले एक पैरको खूब रगड़े फिर दूसरे पैरको, फिर दोनों हाथोंको और फिर सारे शरीरको रगड़े।

सूचना—एक बार फिर पेटका साफ होना आवश्यक है। यदि शौच शुद्ध न हो तो भुने हुए हर्रेके चूर्णका सेवन करें।

वे रोग, जिन्हें यन्त्र नहीं देख पाते

आयुर्वेदमें कुछ रोगोंके विस्तृत विवरण मिल जाते हैं, जिन्हें आजके यन्त्र देख नहीं पाते। इन रोगोंमेंसे दो-चार रोगोंका विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) परिणामशूल

इस रोगका 'परिणामशूल' यह नाम इसलिये पड़ा है कि छोटी आँतोंमें भोजनके पाक हो जानेके बाद जब किट्टका भाग बड़ी आँतोंमें पहुँचने लगता है तो उदरभागमें असह्य वेदना उत्पन्न होने लगती है। इसलिये इस वेदना (शूल)-का नाम परिणामशूल है। परिणामका अर्थ होता है पक जाना; क्योंकि भोजनके पक जानेके बाद यह शूल होता है, इसलिये इसका परिणामशूल नाम सार्थक है।

एक रोगिणी, जिसकी अवस्था ३०-३२ वर्षकी होगी, इस रोगसे पाँच वर्ष पीडित रही। तीन बजे दिनको उसके उदरमें वेदना प्रारम्भ होती थी, जो छटपटाहटमें परिणत हो जाती थी। इस छटपटाहटको वेदना-निवारक (पेनकिलर) दवासे कम कर दिया जाता था। प्रत्येक चिकित्सक अपने हाथमें आनेपर इस रोगका सर्वविध यान्त्रिक जाँच करवाते रहे, किंतु जाँचसे कोई रोग स्पष्ट नहीं होता था। ३-४ वर्ष बीत जानेके बाद वेदना-निवारक सभी औषध भी बेअसर हो गये। दर्दके मारे कराहते-कराहते रोगिणी बेहोश होने लगी। प्रत्येक दिन तीन बजे दर्द उठता और रोग बेहोशीमें परिणत हो जाता, फिर तीन-चार घंटेके बाद पीडा कम होने लगती।

लक्षण—रोगके नामसे ही इस रोगका लक्षण स्पष्ट हो जाता है। बात यह है कि बड़ी आँतोंकी दीवारमें मलका किट्टभाग जमकर ठोस परतका रूप ले लेता है। जब भोजन पक जानेके बाद, बड़ी आँतोंमें भोजनका यह निस्सार भाग फिर पहुँचने लगता है, तब पुरस्सरणक क्रियाके द्वारा उत्तरोत्तर पुराने परतनुमा किट्टभागके टकरावसे यह वेदना शुरू होती है और बढ़ती चली जाती है। इस तरह भोजनके ३-४ घंटे बाद होनेवाले दर्दको परिणामशूल कहते हैं।

बड़ी आँतका कुछ हिस्सा लीवर और प्लीहाके बीचमें फेफड़ोंके नीचे, आँतके स्पर्शसे ज्ञात हो जाता है। उक्त रोगिणीके आँतका यह भाग बहुत सूजकर गुठली-सा बाहर दिखने लगा था। उसके इस गाँठको देखकर बहुतोंने इसे हृदयरोग समझ लिया, किंतु यह हृदयरोग नहीं था।

चिकित्सा—चिकित्साकी सफलता यह है कि वह मूलरोगके कारणका निवारण कर दे। कैस्टर ऑयल (एरण्डका तेल) पीनेसे धीरे-धीरे आँतोंमें चिपके मलका किट्टभाग फूलकर बाहर निकलने लगता है। इसलिये मशीनमें जैसे तेलकी जरूरत होती है, उसी तरह इस रोगमें स्नेहन (ऑयलिंग)-की आवश्यकता होती है।

रातको मूँगकी खिचड़ी घीके साथ खाये और सोते समय एकसे चार चम्मचतक शुद्ध कैस्टर ऑयलको थोड़े दूधमें मिलाकर पी लेना चाहिये। उसके बाद मीठा दूध ऊपरसे पी ले। पेट सबका अलग-अलग होता है। इसलिये किसीका आधे चम्मचसे काम चलता है और किसीको चार चम्मच लेना पड़ता है। रोगीको ध्यान देना पड़ेगा कि कितने चम्मच कैस्टर ऑयलसे उसका एक बारमें पेट साफ हो जाता है। एक बार पेट साफ अवश्य होना चाहिये। कैस्टर ऑयल पीनेसे पहले १० ग्राम ईसबगोलकी भूसी लेना आवश्यक है।

इसमें दूसरी सावधानी यह बरतनी पड़ती है कि पेट दो घंटेके बाद खाली न रहे। अर्थात् हर दो-ढाई घंटेपर ५० ग्राम दूधमें एक चम्मच घरका बना चनेका सत्तू मिलाकर पी लिया जाय। जो लोग बिस्कुट खाते हों, वे सत्तूकी जगहपर प्रत्येक दो घंटेके बाद आरारोटका बिस्कुट खाकर दूध या पानी पी सकते हैं।

औषध—(क) (१) शूलवज्रिणीवटी-४ ग्राम, (२) प्रवालपञ्चामृत-३ ग्राम, (३) कृमिमुद्गर-३ ग्राम, (४) महाशंखवटी-२ ग्राम, (५) सीतोपलादि-२५ ग्राम, (६) टंकणभस्म-३ ग्राम, (७) महाशङ्खभस्म-३ ग्राम और (८) कपर्दक भस्म-३ ग्राम।

इन सबकी २१ पुड़िया बना लें। सुबह-शाम एक-एक पुड़िया शहदसे लेकर ऊपरसे एक छटाक दूध पी लें।

(ख) इस रोगमें पेट खाली नहीं रहना चाहिये। इसलिये २५० ग्राम दूधको चार भाग करके एक भागको घरके बने चनेके सत्तूके साथ लेते रहें। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है।

(ग) रातको मूँगकी खिचड़ी खाकर सोते समय १० ग्राम ईसबगोलकी भूसी लेकर कैस्टर ऑयल ले लें। खिचड़ीमें घी मिला लें। रोटी भी ली जा सकती है। किंतु खिचड़ी ज्यादा हितकर है। सोते समय एक-से-चार चम्मच कैस्टर ऑयल थोड़े-से दूधमें मिलाकर ले लें। बादमें मीठा दूध पी लें। तीन दिनके बाद इस तकलीफसे मुक्ति मिल जायगी। धीरे-धीरे एक किलोसे कम कैस्टर ऑयल नहीं पीना चाहिये। डेढ़ किलोतक पीना ज्यादा हितकर है।

विशेष—हिंग्वष्टक चूर्ण ३-३ ग्राम भोजनके पहले कौरमें सानकर खा लें।

पेटमें दर्द हो तब अग्नितुंडीवटी-२ गोली तोड़कर निगल जायँ और हिंग्वष्टक चूर्ण-५ ग्राम गरम पानीसे ले लें।

(२) सूर्यावर्त (Migraine)

आवर्तका अर्थ होता है चारों ओर चक्कर लगाना। इस प्रकार सूर्यावर्तका अभिप्राय यह होता है कि सूर्यका उदित होकर पृथ्वीका चक्कर लगाकर फिर उसका पूर्व दिशामें लौट आना। सूर्यके इस आवर्तनसे जो रोग उत्पन्न होता है, उसे भी लक्षणासे सूर्यावर्त ही कहा जाता है। इस तरह सूर्यावर्त शब्दसे रोगका पूरा परिचय मिल जाता है।

पूर्व दिशामें सूर्यका यह उदय भारतसे दो-तीन घंटा पहले ही हो जाता है। भारतसे एक घंटा पहले जापानमें सूर्योदय होता है और जापानसे एक घंटा पहले प्रशान्तमहासागरमें। इस तरह सूर्यका दर्शन भारतमें दो घंटे बाद ही होता है। सूर्यके इस आवर्तन (उदय)-के साथ ही सूर्यावर्तका रोग भारतवासी रोगियोंको होने लगता है; क्योंकि सूर्य अग्निका पिण्ड है और अग्नि ही शरीरमें पित्तरूपसे प्रतिष्ठित है। अतः सूर्यसे पित्तका गहरा सम्बन्ध है। प्रशान्तमहासागरमें जब सूर्यका आवर्तन हो जाता है तब रोगीके शरीरमें स्थित पित्त भी प्रभावित होने लगता है। यह पित्त रोगीके ललाट आदिमें स्थित कफको धीरे-धीरे सुखाने लगता है। जैसे-जैसे कफ सूखता जाता है, वैसे-वैसे रोगीका सिरदर्द (शिरोवेदना) बढ़ता जाता है। दोपहरमें २ बजेके बाद यह वेदना कम होती जाती है; क्योंकि पित्तका वेग भी कम होने लग जाता है और रोगी फिर सिरमें केवल भारीपन महसूस करता है। उसकी बेचैनी हट जाती है। जीर्ण होनेपर यह रोग ललाटमें परतकी तरह जम जाता है और उसको तेज यन्त्रसे खरोंचकर निकाला जा सकता है।

इस तरह यह रोग बहुत ही कष्टप्रद है। किंतु जितना यह कष्टप्रद है, उतनी ही आयुर्वेदने इसकी चिकित्सा सरल बना दी है। क्योंकि आयुर्वेदने इसके कारणका पता लगा लिया है और उस कारणके उत्पन्न होनेसे पहले ही दवाका सेवन करा देता है। इसलिये एक-दो दिनमें ही इस रोगसे मुक्ति मिल जाती है। औषध कुछ दिन चलाते रहना चाहिये।

औषध—आयुर्वेद कारणका पता लगाकर, उस कारणको प्रभावहीन करनेके लिये प्रशान्तमहासागरमें सूर्योदय होनेसे पहले ही अर्थात् भारतमें सूर्योदय होनेसे लगभग २-३ घंटे पहले ही औषधका सेवन करा देता है। विधि यह है—

एक छटाक जलेबीको रातको ही दूधमें भिगोकर सुरक्षित रख दें। लगभग तीन बजे गोदन्ती भस्म-१ ग्राम एवं शोधित नरसारचूर्ण-आधा ग्राम फाँककर इस दूध-जलेबीको खाकर भरपेट पानी पी लेना चाहिये। औषधके इस सेवनसे, सूर्यावर्तनसे जो पित्त प्रकुपित होता था, वह नहीं हो पायेगा और कफ पिघलकर तीन-चार दिनोंमें नाकसे निकल जायगा। कभी-कभी खून भी निकलता है, उसे देखकर रोगी घबराये नहीं; क्योंकि वह दूषित अवरुद्ध खून है, इसका निकलना ही श्रेयस्कर है। कम-से-कम ४१ दिनतक यह औषध चलाना चाहिये। ४१ दिनके बाद कुछ दिनोंतक आधा किलो पानी, चीनी मिलाकर हलका-हलका गरम, पीते रहना चाहिये। इस विधिसे यह रोग ४-५ दिनोंके बाद ही प्रभावहीन तो हो जाता है, किंतु लेयर (परत)-की तरह ललाटमें चिपके

हुए कफको निकालनेके लिये आवश्यकतानुसार २१ या ४१ दिनोंतक दूध-जलेबीका सेवन करना चाहिये। रोगीको फिर कभी यदि जुकाम हो जाय तो रातको तीन बजे पानीमें चीनी डालकर भरपेट पी लेना चाहिये, ताकि वह पित्त फिर जाग न जाय।

यदि षड्विन्दु तेलको नाकमें छः-छः बूँद डालें तब इस रोगसे जीवन-भरके लिये छुटकारा मिल जाता है। यह तेल इतना उत्तम है कि नाकमें डालने और सिरमें लगानेसे कंठके ऊपरके सम्पूर्ण रोग समाप्त हो जाते हैं। स्वस्थ व्यक्ति भी इसलिये इस तेलका सेवन कर सकता है। कान, आँख, नाकके एवं सिरके बाल गिरना तथा सफेद होना आदि उपद्रवोंसे यह बचाकर रखता है। साइनसके रोगियोंको ४ वर्षोंतक नाकमें इसको अवश्य डालते रहना चाहिये। यह साइनसरोग भी आज असाध्य ही है। शल्यकर्मके बाद भी नहीं जाता। बार-बार शल्यकर्म कबतक कोई करायेगा?

(३) वातगुल्म

प्रकृति हमारी माता है। हमारे स्वास्थ्यके विरोधी कोई तत्त्व अगर हमारे शरीरमें पनपने लगते हैं तो प्रकृति माता उनको दूर करनेके लिये भरसक प्रयत्न करती है। आँव भी एक ऐसा रोग है, जो शरीरमें सेन्द्रिय विष तैयार करता है। इसलिये प्रकृति माता उस विषको निकालनेके लिये बार-बार शौचकी संख्या बढ़ा देती है। किसी भी चिकित्सकका प्रकृतिके इस कार्यमें सहयोग करना ही कर्तव्य है, उसके विरुद्ध जाना नहीं। जब आँवके दस्त लगते हैं तब रोगीको एक तो बार-बार शौच जाना पड़ता है और उसको मरोड़ भी बहुत होता है। वह चाहता है कि इन दोनों कष्टोंसे बचे और चिकित्सकके पास दौड़ता है। इस स्थितिमें आयुर्वेद रोगीके कष्टकी निवृत्तिके लिये बेलके मुरब्बे आदिका सेवन कराता है और परहेज कराता है। औषधकी योजना ऐसी बताता है कि प्रकृतिके कार्यमें कोई बाधा न पड़े और रोगीका कष्ट दूर हो जाय। किंतु आजकल कुछ ऐसी औषधियाँ निकल गयी हैं, जिनके खिला देनेके बाद रोगीको तत्काल कष्टसे छुटकारा हो जाता है और वह समझता है कि हम शीघ्र ही अच्छे हो गये। शायद चिकित्सक भी समझता होगा कि हमने रोगीको ठीक कर दिया। किंतु होता है उलटा। प्रकृति जिस विषको आँवके माध्यमसे निकालना चाहती थी, वह आँव पेटमें ही रह गया। तब वह दो रूपोंमें परिणत हो जाता है। एक तो वह आँव आँतोंकी दीवारमें चिपककर परतकी तरह बन जाता है। दूसरे उसी आँवके ऊपर कुछ मांस भी चारों तरफसे बढ़ने लगती है, जो कई किलो भारतक हो जाता है। किंतु इसे किसी यन्त्रसे नहीं देखा जा सकता।

इसीका नाम वातगुल्म है। आयुर्वेदके अनुसार गुल्म दो प्रकारके होते हैं—(१) वातगुल्म और (२) रक्तगुल्म।

रक्तगुल्म तो गर्भाशयका रोग है और वातगुल्म पेटका रोग है। इसे देखनेके दो उपाय हैं—

(१) रोगीको चित लिटाकर उसके दोनों पैरोंको मोड़कर उसकी नाभिके चारों ओर अँगुलियोंसे टटोला जाय और उसकी सीमा देख ली जाय। हाथका स्पर्श बता देता है कि पेटमें एक गाँठ है और वह कितनी बड़ी है।

(२) दूसरा उपाय यह है कि पेट खोलकर देखे तो आँखें साफ देख लेती हैं कि पेटमें बहुत बड़ी गाँठ है। एक रोगीका पेट खोला गया, उसके पेटमें गुल्मकी पाँच गाँठें थीं। सबका ऑपरेशन एक साथ सम्भव न था, इसलिये वह सी दिया गया। प्रायः एक ही ऑपरेशनमें मृत्यु हो जाती है, बहुत सावधानी बरतनेपर कई ऑपरेशन सम्भव हैं।

औषध—[१] महाशंखवटी-२ ग्राम, कृमिमुद्गररस-३ ग्राम, प्रवालपञ्चामृत-३ ग्राम, कामदुधारस-४ ग्राम, साधारण सूतशेखररस-३ ग्राम, अम्बर-१/६ ग्राम, सिद्धमकरध्वज-१ ग्राम, सितोपलादि-२५ ग्राम—इन औषधोंकी २१ पुड़िया बनायें। सुबह-शाम एक-एक पुड़िया खाली पेट शहदके साथ लें।

[२] कुबेराक्षादिवटी-दो गोली, लहसुनादिवटी-दो गोली—चारों गोलियाँ निगलकर मीठा कुमार्यासव चार ढक्कन पानी मिलाकर पी लें। इसे भोजनके आधे घंटे बाद दोनों समय लें।

यदि लहसुनका परहेज हो तो लहसुनादिवटीके स्थानपर कपीलुहिंग्वादिवटी १ या २ गोली लें।

[३] रातको सोते समय १० ग्राम ईसबगोलकी

भूसीके साथ त्रिफलाचूर्ण पानी या दूधसे लें। दूधमें चीनी मिलायी जा सकती है। पेटको साफ रखना आवश्यक है। ईसबगोलकी भूसी परतकी तरह आँतोंमें चिपके आँवको फुलाता है और त्रिफला उसे निकालता है। इसलिये औषधसेवन करनेपर यदि शौचमें चिकनाहट मालूम पड़े तो रोगी घबराये नहीं, वह समझे कि आँव निकल रहा है।

इस रोगमें प्राय: अम्लपित्त भी हो जाता है, ऐसी स्थितिमें अविपत्तिकरचूर्ण ५-५ ग्राम भोजनसे १० मिनट पहले पानीसे ले लें। एक महीनेके लिये हर खट्टे फलका सेवन निषिद्ध है। इस अवसरपर मलायी निकाले हुए पावभर दूधको फ्रिजमें रख दें। यदि फ्रिज न हो तो मिट्टीके बरतनमें पानी डाल दें, उसीमें दूधके बरतनको रख दें ताकि वह ठंडा बना रहे। प्रत्येक दो घंटेपर पचास ग्राम दूध घरके चनेके सत्तूके साथ लेते रहें।

इस रोगमें परहेज बहुत जरूरी है।

(४) गर्भाशयके ट्यूबोंका जाम होना

गर्भाशयमें दो ट्यूब होते हैं। संतानके लिये इन ट्यूबोंका अत्यधिक महत्त्व है। यदि दोनों ट्यूब जाम हो जायँ तो संतान हो नहीं सकती।

ऐसी स्थितिमें निम्नलिखित औषधका सेवन लाभप्रद प्रमाणित हुआ है। पहले ट्यूबोंकी जाँच करा लें। फिर छ: महीने बाद सफलता मिल जाती है।

औषध—[१] रसराजरस-२ ग्राम, गुल्मकुठाररस-२ ग्राम, टंकणभस्म-२ ग्राम, काले तिलका चूर्ण-३० ग्राम, पुनर्नवामण्डूर-३ ग्राम—इन औषधियोंकी २१ पुड़िया बना लें। सुबह-शाम एक-एक पुड़िया शहदसे लें या पचास ग्राम चीनी मिले दूधसे लें।

[२] ४०० मिलीग्राम मीठे कुमार्यासवमें १४ मिलीग्राम शंखद्राव मिला लें। भोजनके आधे घंटेके बाद बोतलको अच्छी तरह हिलाकर ४ ढक्कन दवा ६ ढक्कन पानी मिलाकर पी लें। पेट साफ करनेके लिये हर्रे आदि लें। (ला०बि०मि०)



आयुर्वेदका प्रयोजन

(आचार्य श्रीप्रियव्रतजी शर्मा, भू०पू० निदेशक एवं डीन चिकित्सा-विज्ञान-संकाय, का०हि०वि० विद्यालय)

'प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च' (च०सू० ३०। २६)— आचार्य चरकके इस वचनके अनुसार आयुर्वेदका प्रयोजन है—स्वस्थ पुरुषके स्वास्थ्यकी रक्षा करना तथा रोगी पुरुषके विकारका शमन करना। पूर्वकालमें आयुर्वेदका अवतरण इसी उद्देश्यसे हुआ।

जो 'स्व' में रहे वह 'स्वस्थ' कहलाता है। प्रत्येक व्यक्तिका प्रतिनियत स्वभाव होता है, जिसके अनुसार उसका 'स्वधर्म' और 'स्वकर्म' संचालित होता है। संक्षेपमें इसे प्रकृति कह सकते हैं। इस प्रकार अपनी प्रकृतिमें स्थित रहनेवाला स्वस्थ तथा प्राकृत भाव स्वास्थ्य है। इसके विपरीत वैकृत भाव रोग है। 'साम्य' और 'वैषम्य'से इन्हीं अवस्थाओंका अभिधान किया गया है। सुश्रुतके अनुसार स्वस्थका लक्षण इस प्रकार है—जिसके दोष, धातु, मल तथा अग्नि सम (प्राकृत स्थितिमें) हों तथा आत्मा, इन्द्रिय और मन प्रसन्न हों। प्रसन्नतासे ही दोष आदिके साम्यका अनुमान होता है। अत: प्रसन्नता (प्रसाद) इसका मुख्य लक्षण है—'प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।' इस स्थितिकी रक्षा अर्थात् सर्वतोभावेन इसे बनाये रखना, बिगड़ने न देना, आयुर्वेदका प्रथम एवं प्रमुख प्रयोजन है। अतएव चरकने इसका उल्लेख प्रथमत: किया है। 'प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्' इस न्यायसे भी यही समीचीन है।

इसके लिये आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें दिनचर्या, ऋतुचर्या और सद्वृत्तका विधान किया गया है। दिनचर्यामें दन्तधावन, स्नान आदि शौचकर्म, व्यायाम, आहार और विश्राम उल्लेखनीय हैं। स्नान आदिसे शारीरिक शुद्धि तथा पूजा और ध्यान आदिसे चित्तकी शुद्धि होती है। प्राणायामसे दोनोंका शोधन होता है। इसका पालन न करनेसे अनेक शारीरिक तथा मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। स्नानमें शीत या उष्ण जलके उपयोगमें प्रकृति, देश, काल आदिका विचार करना चाहिये। व्यायामसे शरीर बलवान् होता है और उसमें स्फूर्ति आती है। व्यायाम न करनेसे स्थौल्य, प्रमेह आदि रोग होते हैं। अति व्यायाम करना भी रोगका

कारण है। आहार शरीरके पोषणके लिये आवश्यक है। इसका ग्रहण प्रकृति तथा अग्निबलके अनुसार मात्रापूर्वक करना श्रेयस्कर है। रात्रिमें निद्रासे शरीर और मनको विश्राम मिलता है। स्त्रीसंयोगका संयमित सेवन हितकर है। आहार, स्वप्न और ब्रह्मचर्य—ये तीन शरीरके उपस्तम्भ (धारण करनेवाले) कहे गये हैं—'त्रय उपस्तम्भा इति—आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति' (च० सू० ११। ३५)।

उपर्युक्त विधान वैयक्तिक स्वस्थवृत्त है, जब कि सद्वृत्त (शिष्टाचार) वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों स्तरोंपर स्वास्थ्यकी रक्षा करता है। पुरुषके लिये केवल वैयक्तिक स्वास्थ्य ही अपेक्षित नहीं है, अपितु सामाजिक स्वास्थ्य भी अभीष्ट है। इन्हीं दोनोंको दृष्टिमें रखकर चरकने हित-अहित आयु तथा सुख-दुःख आयुका प्रतिपादन किया है। हित-अहित सामाजिक स्वास्थ्य तथा सुख-दुःख वैयक्तिक स्वास्थ्यका निष्कर्ष है।

स्वास्थ्यरक्षामें रसायन और वाजीकरणका भी महत्त्व है। रसायनसे सभी धातु पुष्ट होते हैं, जिससे ओज दृढ़ होता है, जो रोगक्षमताका मूल है। जब कि वाजीकरण शुक्रको प्रशस्त बनाता है, जिससे संतान गुणसम्पन्न होती है। रसायन तारुण्यको बचाये रखता है, अतः इसे 'वयःस्थापन' भी कहते हैं। सामान्यतः लोग रसायनसे ओषधियोंका ग्रहण करते हैं, किंतु आहारमें ग्राह्य द्रव्य भी नित्य-रसायन हैं। काम्य-रसायनके रूपमें विभिन्न ओषधियोंका सेवन विहित है। सुश्रुतने शीतोदक, दुग्ध, घृत और मधुका पृथक्-पृथक् या मिश्रित कर 'वयःस्थापन' के रूपमें विधान किया है (सु०चि० ३७। ६)। इनका प्रयोग प्रकृतिके अनुसार करना चाहिये। इन द्रव्योंके साथ-साथ आचारका पालन भी मानसिक शान्तिके लिये आवश्यक है। यह 'आचार-रसायन' कहलाता है, बिना इसके रसायनका फल नहीं मिलता—

सत्यवादिनमक्रोधं निवृत्तं मद्यमैथुनात्।
अहिंसकमनायासं प्रशान्तं प्रियवादिनम्॥
जपशौचपरं धीरं दाननित्यं तपस्विनम्।
देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चने रतम्॥
आनृशंस्यपरं नित्यं नित्यं करुणवेदिनम्।
समजागरणस्वप्नं नित्यं क्षीरघृताशिनम्॥
देशकालप्रमाणज्ञं युक्तिज्ञमनहंकृतम्।
शस्ताचारमसंकीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम्॥
उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्मनाम्।
धर्मशास्त्रपरं विद्यान्नरं नित्यरसायनम्॥
(च०चि० १। ४। ३०—३४)

अर्थात् सत्य बोलनेवाले, क्रोध न करनेवाले, मद्य-सेवन और मैथुनसे दूर रहनेवाले, हिंसा न करनेवाले, श्रम न करनेवाले तथा शान्त, प्रियवादी, जप और पवित्रतामें तत्पर, धीर, सदा दान देनेवाले, तपस्वी, देवता, गौ, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु एवं वृद्धजनोंकी पूजा करनेमें तत्पर, क्रूरतासे दूर रहनेवाले, सर्वदा दयासे पूर्ण, उचित समयसे निद्रा त्यागने और शयन करनेवाले, सदा दूध और घृतका सेवन करनेवाले, देश, काल तथा मात्राको जाननेवाले, युक्तिको जाननेवाले, अहंकार न करनेवाले, उत्तम आचार-विचारवाले, संकीर्ण विचारसे शून्य, अध्यात्मविषयोंमें अपनी इन्द्रियोंको लगानेवाले, आस्तिक, जितात्मा, वृद्ध पुरुषोंकी सेवा करनेवाले तथा धर्मशास्त्रको पढ़नेवाले मनुष्य सदा रसायनयुक्त होते हैं।

इस प्रकार आहार, आचार और विहारका संतुलित प्रयोग स्वास्थ्य-रक्षाके लिये आवश्यक है। यदि कदाचित् मिथ्या आहार-विहारके कारण रोग उत्पन्न हो जायँ तो उनका शमन करके पुरुषको प्राकृत भावमें स्थापित करना आयुर्वेदका द्वितीय प्रयोजन है। इसी कारण चिकित्साको 'प्रकृतिस्थापन' कहा गया है। इसके लिये औषध, आहार (पथ्य) और विहारकी त्रिपुटीका समन्वित प्रयोग किया जाता है। चिकित्सामें दैवव्यपाश्रय, युक्तिव्यपाश्रय और सत्त्वावजय—इन तीनों उपायोंका प्रयोग विहित है, जिससे दोषोंका सर्वाङ्गीण शोधन और शमन हो सके। प्रथम दोषोंका संशोधन कर फिर संशमनका विधान है। संशोधनमें पञ्चकर्म महत्त्वपूर्ण है।

उपसंहार—इस प्रकार आयुर्वेदका प्रयोजन पुरुषको सर्वथा समर्थ रखना और बनाना है, जिससे वह पुरुषार्थ-चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष)-की प्राप्ति कर सके। इसी कारण आरोग्यको इनका मूल कहा गया है। अतः आरोग्यप्रदाता आयुर्वेद सर्वविध सेवनीय है—'आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः॥' (अष्टाङ्गहृदय सू० १। २)

आयुर्वेद शब्दका अर्थ, परिभाषा एवं प्रयोजन

(डॉ० श्रीसीतारामजी जायसवाल, फिजीसियन एण्ड सर्जन)

आयुर्हिताहितं व्याधिर्निदानं शमनं तथा।
विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते॥

जिस शास्त्रके द्वारा आयु (सुखी आयु तथा दुःखी आयु, हितकर आयु तथा अहितकर आयु)-का, हित (लाभदायक) एवं अहित (हानिकारक) आहार-विहार (स्वस्थवृत्त)-का, व्याधि (रोग)-निदान तथा शमन (चिकित्सा)-का ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उस (शास्त्र)-का नाम 'आयुर्वेद' है।

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते॥

(च०सू० १।४१)

अर्थात् जिस शास्त्रमें हितकर आयु तथा अहितकर आयु, सुखी आयु एवं दुःखी आयुका वर्णन हो तथा आयुके लिये हित एवं अहित आहार-विहार एवं औषधका वर्णन हो और आयुका मान बतलाया गया हो तथा आयुका वर्णन हो वह 'आयुर्वेद' कहलाता है। जितने समयपर्यन्त शरीर एवं आत्माका संयोग रहता है, उतने समयका नाम 'आयु' है। इसी समयमें प्राणी धर्मादिकी सिद्धि कर सकता है।

मानव आयुर्वेदशास्त्रद्वारा आयुके विषयमें ज्ञान प्राप्त करता है, अतः इसका नाम 'आयुर्वेद' है—

'आयुरस्मिन् विद्यते, अनेन वाऽऽयुर्विन्दन्ति इत्यायुर्वेदः।'

(सु० सू० १।१५)

शरीर एवं जीवका योग 'जीवन' कहलाता है, उससे युक्त कालका नाम 'आयु' है। आयुर्वेदद्वारा व्यक्ति आयुके विषयमें हित-अहित द्रव्य तथा गुण एवं कर्मको जानकर और उनका सेवन तथा परित्याग करके आरोग्ययुक्त—स्वास्थ्यलाभपूर्वक आयुको प्राप्त करता है और दूसरोंकी आयुका भी ज्ञान प्राप्त करता है।

आयुर्वेदका प्रयोजन

'व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः, स्वस्थस्य रक्षणं च।' (सु०सू० १।१४) इसके द्वारा रोगियोंको रोगसे मुक्ति मिलती है और स्वस्थ व्यक्तियोंके स्वास्थ्यकी रक्षा होती है।

आचार्य चरकका उद्घोष है— **'प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च'** (सूत्र० ३०।२६)। अर्थात् आयुर्वेदशास्त्रका प्रयोजन है—स्वस्थ पुरुषके स्वास्थ्यकी रक्षा करना और रोगी व्यक्तिके रोगको दूर करना।

धर्म, अर्थ एवं सुखादिका साधन आयु है। अतः आयुकी कामना करनेवालोंको आयुर्वेदके उपदेशोंमें परम आदर करना चाहिये।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः॥

(अष्टाङ्गहृदय सू० १।२)

आयुर्वेदके उपदेशों (विधि एवं निषेधों)-का आदर (पालन) करनेसे आयुका लाभ होता है और उससे धर्म आदिकी सिद्धि होती है।

~~~

आयुर्वेद—संक्षिप्त परिचय

(डॉ० श्रीप्रदीपकुमारजी सचान, प्रवक्ता, रा० आयु० का० झाँसी)

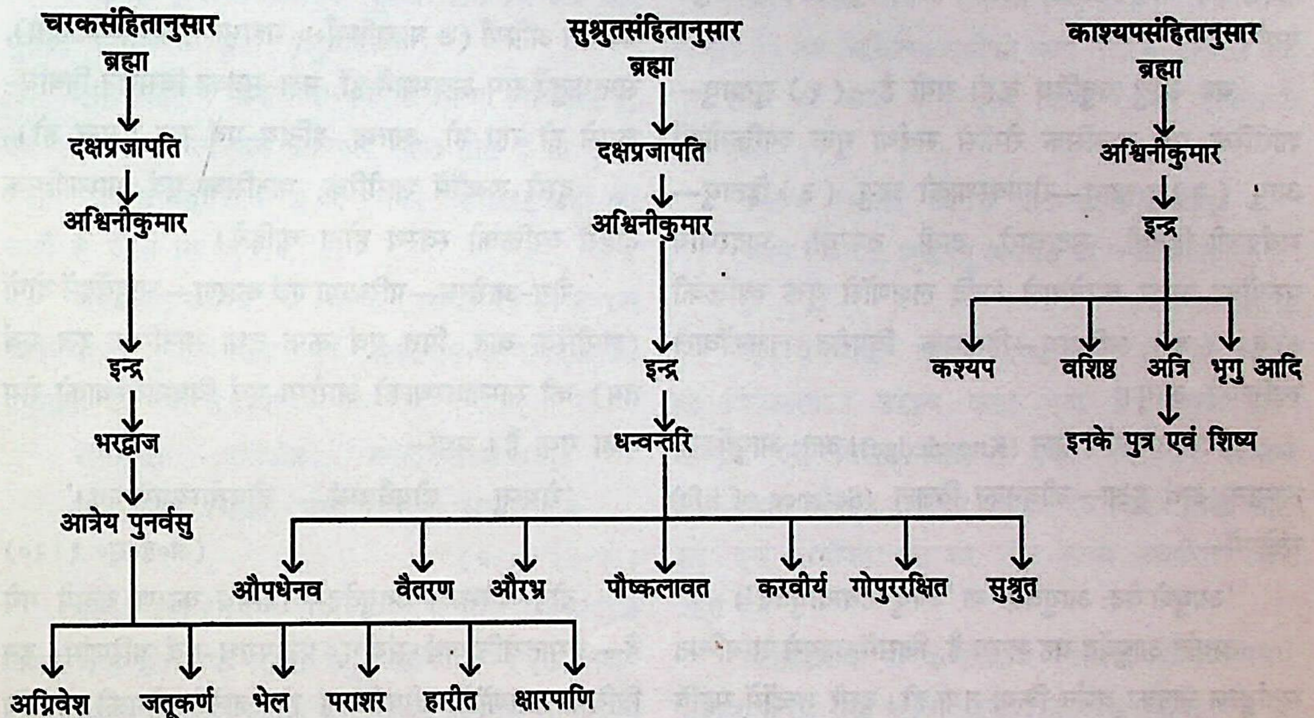
इतिहास—आयुर्वेदके इतिहासका अवलोकन करनेसे ज्ञात होता है कि इसके ग्रंथोंमें आयुर्वेदकी उत्पत्तिको ब्रह्माद्वारा सृष्टि-उत्पत्तिके पूर्व माना गया है। ब्रह्माद्वारा प्रणीत ब्रह्मसंहिता, जिसमें दस लाख श्लोक एवं एक हजार अध्याय थे, आज उपलब्ध नहीं है। देवलोकसे मर्त्यलोकमें आयुर्वेदको अवतरित करनेका श्रेय महर्षि भरद्वाजको है। वेदोंको प्राचीनतम वाङ्मय माना जाता है। ये समस्त ज्ञानके आदि स्रोत कहे जाते हैं, जिससे आयुर्वेदके आद्य स्रोत भी ये ही हैं। आयुर्वेदकी विषयवस्तु चतुर्विध वेदोंमें प्राप्त होती है, परंतु सर्वाधिक साम्यता अथर्ववेदसे होनेके कारण आचार्य सुश्रुतने आयुर्वेदको अथर्ववेदका उपाङ्ग (सु०सू० १।६) एवं वाग्भटने अथर्ववेदका उपवेद (अ०हृ०सू० ८।९) कहा है। आचार्य चरकने भी इसकी सर्वाधिक घनिष्ठता अथर्ववेदसे बतायी है एवं इसे पुण्यतम वेद कहा है (च०सू० १।४३)। ऋग्वेद प्राचीनतम होनेके कारण प्राचीनताकी दृष्टिसे चरणव्यूहमें आयुर्वेदको ऋग्वेदका उपवेद कहा गया है। महाभारत (सभापर्व ११।३३ पर नीलकण्ठकी व्याख्या)-में भी आयुर्वेदको ऋग्वेदका उपवेद कहा गया है। काश्यपसंहिता (आयुर्वेदका बालरोगसे सम्बन्धित ग्रंथ)
~~~

एवं ब्रह्मवैवर्तपुराणमें आयुर्वेदको पञ्चम वेद कहा गया है। आयुर्वेद शब्द नामतः वैदिक साहित्यमें कहींपर भी परिलक्षित नहीं होता है। आयुर्वेदोत्तर ग्रंथोंमें सर्वप्रथम इसका नाम पाणिनिकृत अष्टाध्यायी (क्रतूक्थादि- सूत्रान्ताट्ठक् ४।२।६०) आदिमें प्राप्त होता है।

चरकसंहिता एवं सुश्रुतसंहिता आद्य संहिताएँ हैं, जो कि पूर्णतः उपलब्ध हैं। अन्य काश्यपसंहिता, हारीतसंहिता आदि खण्डित अवस्थामें हैं। बादकी संहिताएँ अष्टाङ्गसंग्रह, अष्टाङ्गहृदय, माधवनिदान आदि चरक एवं सुश्रुतसंहिताको आधार मानकर सृजित की गयीं।

आयुर्वेदीय संहिताओंमें निम्नानुसार अवतरण-सम्बन्धी परम्परा प्राप्त होती है—

आयुर्वेदावतरण



संहितोक्त आयुर्वेद 'अष्टाङ्ग-आयुर्वेद' कहा गया है; क्योंकि इसके आठ अङ्ग हैं, यथा—

(१) शल्य (Surgery), (२) शालाक्य (Ophthalmology, Otology, Rhinology, Dentistry, Oropharyngology etc.), (३) कायचिकित्सा (Medicine), (४) अगदतंत्र (Toxicology, Medical Jurisprudence), (५) भूतविद्या (Psychiatry, Microbiology), (६) कौमारभृत्य (Paediatrics), (७) रसायन (Science of Rejuvenation, Immunology) एवं (८) वाजीकरण (Science of Aphrodisiac)।

इस अष्टाङ्ग-आयुर्वेदके जनक काशिराज दिवोदास धन्वन्तरिको माना जाता है। प्रारम्भिक आयुर्वेद मुख्यतः काष्ठौषधियोंपर निर्भर था, परंतु कालान्तरमें इसमें धातुओंका भी भस्मादिके रूपमें प्रयोग होने लगा। इस हेतु रसशास्त्र नामक शाखाका उदय हुआ।

आयुर्वेद शब्दका अर्थ—आयुर्वेद शब्द आयु एवं वेद—इन दो शब्दोंके मेलसे बना है। आयुका अर्थ इस प्रकार है—

(१) 'ऐति गच्छति इति आयुः' अर्थात् जो निरन्तर गतिमान् रहती है, उसे आयु कहते हैं।

(२) 'आयुर्जीवितकालः' (अमरकोष २।८।१२०) जीवितकालको आयु कहते हैं।

(३) 'चैतन्यानुवर्तनमायुः' (च०सू० ३०।२२) अर्थात् जन्मसे लेकर चेतनाके बने रहनेतकके कालको आयु कहते हैं।

(४) 'शरीरजीवयोर्योगो जीवनम्, तेनावच्छिन्नः काल

आयुः' अर्थात् शरीर एवं जीवके संयोगको जीवन कहते हैं तथा जीवनसे संयुक्त कालको आयु कहते हैं।

(५) शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।
नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते॥
(च० सू० १। ४२)

अर्थात् शरीर (Physical Body), इन्द्रिय (Senses), सत्त्व (Psyche) एवं आत्मा (Soul)-के संयोगको आयु कहते हैं। धारि, जीवित, नित्यग तथा अनुबन्ध—ये आयुके पर्याय हैं।

यह आयु चतुर्विध कही गयी है—(१) सुखायु—शारीरिक एवं मानसिक रोगोंसे सर्वथा मुक्त व्यक्तियोंकी आयु, (२) दुःखायु—रोगावस्थाकी आयु, (३) हितायु—सर्वप्राणी-हितैषी, सदाचारी, दानी, तपस्वी, आदरणीय पुरुषोंका आदर करनेवाले आदि लक्षणोंसे युक्त व्यक्तिकी आयु। (४) अहितायु—हितायुके विपरीत लक्षणोंवाले व्यक्तिकी आयु।

वेदसे तात्पर्य है ज्ञान (Knowledge)। अतः आयुर्वेदका सामान्य अर्थ हुआ—जीवनका विज्ञान (Science of life) संक्षेपमें—

'आयुषो वेदः आयुर्वेदः' या 'आयुर्वेदयत्यायुर्वेद'।

अर्थात् आयुर्वेद वह शास्त्र है, जिसमें आयुसे सम्बन्धित सर्वाङ्गीण ज्ञानका वर्णन किया गया हो। दूसरे शब्दोंमें महर्षि चरकने आयुर्वेदकी परिभाषा निम्नवत् दी है—

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते॥
(च०सू० १। ४१)

अर्थात् आयुर्वेद वह शास्त्र है, जिसमें हितायु, अहितायु, दुःखायु एवं सुखायु—इन चतुर्विध आयुओंके लिये क्या हित है, क्या अहित है, आयुका मान क्या है एवं इसका स्वरूप क्या है, आदिका वर्णन किया गया हो।

आयुर्वेदका प्रयोजन—आरोग्यावस्था बनाये रखना ही आयुर्वेदका लक्ष्य है। इस हेतु इसके दो प्रयोजन बताये गये हैं—

प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च। (च०सू० ३०। २६)

(१) स्वस्थ व्यक्तिके स्वास्थ्यकी रक्षा करना।
(२) रोगीके रोगोंका शमन करना।

स्वस्थ व्यक्तिकी परिभाषा आचार्य सुश्रुतने निम्न प्रकारसे दी है—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥
(सु०सू० १५। ४१)

अर्थात् स्वस्थ व्यक्ति वह है, जिसमें वातादि दोष, त्रयोदश अग्नियाँ (७ धात्वग्नियाँ+५ महाभूताग्नियाँ+१ जठराग्नि), सप्तधातुएँ सम अवस्थामें हों, मल-मूत्रका विसर्जन निर्बाध-रूपसे हो रहा हो, आत्मा, इन्द्रिय एवं मन प्रसन्न हो।

दूसरे शब्दोंमें शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिसे व्यक्तिको स्वस्थ होना चाहिये।

रोग-आरोग्य—परिभाषा एवं कारण—आयुर्वेदमें दोषों (शारीरिक वात, पित्त एवं कफ तथा मानसिक रज एवं तम)-की साम्यावस्थाको आरोग्य एवं विषमावस्थाको रोग कहा गया है। यथा—

'रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता।'
(अ०हृ०सू० १। २०)

दोष-वैषम्यके आयुर्वेदमें त्रिविध कारण बताये गये हैं—असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग, प्रज्ञापराध एवं परिणाम। इन त्रिविध कारणोंसे, दोषवैषम्य हो जानेसे रोगकी उत्पत्ति होती है। आयुर्वेदमें केवल पाञ्चभौतिक शरीरके रोगोंको ही रोग नहीं कहा जाता, अपितु शरीर, इन्द्रिय, मन एवं आत्माको होनेवाले दुःखोंको भी रोग कहते हैं।

'तद्दुःखसंयोगा व्याधय उच्यन्ते'
(सु०सू० १। २३)

'सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च।'
(च०सू० ९। ४)

असात्म्येन्द्रियार्थ संयोगसे तात्पर्य है, ज्ञानेन्द्रियोंका अपने विषयोंसे अतियोग, हीनयोग एवं मिथ्यायोग। प्रज्ञापराधसे अर्थ है बुद्धि (धी, धृति, स्मृति)-के विभ्रमसे मनसा-वाचा-कर्मणा अहित विहार। परिणामसे तात्पर्य है—ऋतुओंका अतियोग, हीनयोग एवं मिथ्यायोग।

रोगाधिष्ठान एवं व्याधि-भेद—आयुर्वेदमें व्याधिके

अधिष्ठान शरीर एवं मन माने गये हैं। आत्माको निर्विकार कहा गया है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक त्रिविध दुःख (व्याधि) कहे गये हैं।

आयुर्वेदमें क्षुधा, पिपासा, जरा, मृत्यु आदिको भी रोग कहा गया है। व्याधि एवं चिकित्साका वास्तविक क्षेत्र पाञ्चभौतिक शरीर (मनसहित) एवं आत्माका समुदायरूप चिकित्स्य पुरुष माना गया है।

पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुषः इति, स एव कर्म पुरुषः चिकित्साधिकृतः। (सु०शा०)

ऐसा इसलिये माना गया क्योंकि आत्मा निर्विकार है, एवं शरीर तथा मन जब आत्मासे रहित होते हैं तो उनमें व्याधि उत्पत्ति नहीं होती है या उनकी चिकित्सा नहीं की जाती है जैसा कि मृत शरीर।

रोग-निदान—त्रिविध कारणों (आयतनों)-से उत्पन्न व्याधियोंकी चिकित्साके पूर्व सर्वप्रथम रोग-निदानको प्रमुखता दी गयी है। यथा—

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्।
ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत्॥
(च०सू० २०।२०)

रोग-निदान हेतु रोग-रोगी-परीक्षाका विस्तारसे उल्लेख किया गया है। रोग-परीक्षा-हेतु पञ्चनिदान—(१) निदान (रोग-कारण Actiology), (२) पूर्वरूप (व्याधि-उत्पत्तिपूर्व उत्पन्न लक्षण Prodromal symptoms), (३) रूप (व्याधि-लक्षण Signs symptoms), (४) उपशय (Therapeutic test) एवं (५) सम्प्राप्ति (व्याधि-उत्पत्ति-प्रक्रिया Pathogenesis)-का वर्णन मिलता है। रोगी-परीक्षाके लिये त्रिविध (दर्शन, स्पर्शन एवं प्रश्न), पञ्चविध (पञ्चज्ञानेन्द्रिय-परीक्षा), षड्विध परीक्षा (पञ्चज्ञानेन्द्रिय+प्रश्न) तथा अष्टविध परीक्षा (नाडी, मूत्र, मल, जिह्वा, शब्द, स्पर्श, दृक्, आकृति)-का उल्लेख क्रमशः चरक, सुश्रुत एवं योगरत्नाकरने किया है। चरकने दशविध परीक्षा—(१) प्रकृति (Constitution), (२) विकृति (Pathology), (३) सार (Tissuequality), (४) संहनन (Compactness of body), (५) प्रमाण (Proportionate Relation of Body parts), (६) सात्म्य (Homologation), (७) सत्त्व (Psyche Nature), (८) आहार-शक्ति (Power of intake of food & Digestion), (९) व्यायाम-शक्ति (Body Power) एवं (१०) वय (Age)-का भी उल्लेख किया है।

चिकित्सा—आयुर्वेदमें स्वस्थ व्यक्तिके स्वास्थ्यकी रक्षा करनेपर विशेष बल दिया गया है। इस हेतु सद्वृत्त, ऋतुचर्या, दिनचर्या आदिका विस्तृत उल्लेख किया गया है।

दोषवैषम्यसे उत्पन्न रोगोंकी निवृत्ति-हेतु चिकित्साका विधान है। श्रेष्ठ चिकित्सा उसीको कहा गया है, जिससे एक रोग शान्त हो जाय, परंतु दूसरे किसी रोगकी उत्पत्ति न हो। यथा—

प्रयोगः शमयेद् व्याधिं योऽन्यमन्यमुदीरयेत्।
नासौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद् यो न कोपयेत्॥
(च०नि० ८।२३)

दोष-वैषम्यको दूरकर दोष-साम्य स्थापित करना ही चिकित्साका उद्देश्य कहा गया है। इसके लिये सामान्य एवं विशेष सिद्धान्त कहा गया है। सामान्य सिद्धान्तद्वारा घटे हुए दोषोंको बढ़ाकर एवं विशेष सिद्धान्तद्वारा बढ़े हुए दोषोंको घटाकर दोष-साम्य स्थापित किया जाता है।

चिकित्साके लिये त्रिविध विधियाँ—दैवव्यपाश्रय, युक्तिव्यपाश्रय तथा सत्त्वावजयका उल्लेख किया गया है। दैवव्यपाश्रयविधिमें तन्त्र, मन्त्र, मणिधारण, मङ्गलकर्मादिद्वारा; युक्तिव्यपाश्रयविधिमें युक्तिपूर्वक औषध-द्रव्योंद्वारा तथा सत्त्वावजय-चिकित्सामें मनको अहित विषयोंसे हटाकर, उसके बलको बढ़ाकर चिकित्सा की जाती है। युक्तिव्यपाश्रय-चिकित्साके अन्तर्गत संशोधन तथा संशमन-चिकित्सा आती है। संशोधन-चिकित्सामें शरीरमें बढ़े हुए दोषोंको बाहर निकाला जाता है। इसके अन्तर्गत पञ्चकर्म—वमन, विरेचन, वस्ति (आस्थापन एवं अनुवासन), रक्तमोक्षण तथा नस्यकर्म आते हैं। संशमन-चिकित्सामें बढ़े हुए दोषोंको शरीरके अंदर ही नष्ट किया जाता है। शस्त्रसाध्य रोगोंके लिये अष्टविध शस्त्रकर्म—(१) छेदन (Excision), (२) भेदन (Incision & Draingee), (३) ऐषण (Probing), (४) वेधन (Puncturing), (५) लेखन (Scrapping),

(६) आहरण (Extraction), (७) विस्रावण (Drainge) एवं (८) सीवन (Suturing)-का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त दो विशिष्ट चिकित्सा-विधियाँ रसायन एवं वाजीकरण कही गयी हैं। रसायनद्वारा आयु, मेधा, बल, व्याधिक्षमत्व उत्पन्न किया जाता है एवं वाजीकरणद्वारा शुक्र तथा व्यवाय-सम्बन्धी दोषोंको दूरकर संतान-प्राप्ति करायी जाती है।

अन्य चिकित्सा-प्रणालियोंके विपरीत आयुर्वेदमें मृत्युको भी व्याधि कहा गया है। साथ ही जीवन-मरणके चक्रसे मुक्तिका वर्णन भी किया गया है।

चरकने उपधाको दुःख (रोग) और दुःखके आश्रयभूत शरीरकी उत्पत्तिका मूल कहा है। सभी प्रकारकी उपधाओंका त्याग सम्पूर्ण दुःखोंका नाशक माना है। वस्तुतः रजस् एवं तमस् गुणका मन एवं आत्मासे सम्बन्ध रखना ही उपधा है। इस रजस् (राग) और तमस् (द्वेष)-के कारण ही दुःख और पुनर्जन्म होता है। यदि इनसे निवृत्ति मिल जाय तो सभी दुःख दूर होकर जीवन-मरणके चक्रसे मुक्ति मिल सकती है, जिसे मोक्ष कहते हैं। आयुर्वेदमें मोक्ष-प्राप्तिके साधनोंका भी उल्लेख किया गया है।

चरकने उपधारहित चिकित्साको नैष्ठिकी चिकित्सा कहा है। दूसरे शब्दोंमें नैष्ठिकी चिकित्साद्वारा रज एवं तम दोषोंपर विजय पाकर दुःखों (रोगों)-से आत्यन्तिक निवृत्ति सम्भव है।

उपसंहार—आयुर्वेद प्राचीनतम एवं दैवीय चिकित्सा-शास्त्र है। इसे अथर्ववेद या ऋग्वेदका उपवेद या पञ्चम वेद अथवा पुण्यतम वेद कहा गया है। यह चिकित्साशास्त्रके साथ-साथ दर्शनशास्त्र भी है। इसमें आयुसे सम्बन्धित समस्त ज्ञान होनेके कारण इसे आयुर्वेद—जीवनका विज्ञान (Science of Life) कहना अधिक युक्तिसंगत है। यह शाश्वत (अनादि एवं अनन्त) विज्ञान है। इसके द्वारा इहलौकिक एवं पारलौकिक दुःखोंकी निवृत्ति सम्भव है। इसके द्वारा समस्त प्राणियोंका कल्याण सम्भव है। अतः इसका आदर करना समस्त व्यक्तियोंका कर्तव्य है—आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः। (अष्टाङ्गहृदय सू० १। २)



आयुर्वेदकी वेदमूलकता

(डॉ०श्रीज्योतिर्मित्रजी, राष्ट्रिय आचार्य, भू०पू०प्रो० एवं अध्यक्ष चि० विज्ञान सं०, का०हि०वि० विद्यालय)

भारतीय परम्पराके अनुसार वेद ज्ञान-विज्ञानके भण्डार हैं और विश्वमें इनसे प्राचीन कोई साहित्य नहीं है। यह आयुर्वेद-विज्ञान, जो कि अनादिकालसे चलता चला आ रहा है[1] वेदका ही उपवेद[2] या उपाङ्ग है।

चरक एवं सुश्रुतकी संहिताएँ आयुर्वेदके आकरग्रन्थके रूपमें समावृत हैं। यहाँ आयुर्वेदीय संहिताओंमें उपन्यस्त वैदिक विचारोंके स्रोतोंको अन्वेषित कर विद्वज्जगत्के समक्ष प्रस्तुत करनेका प्रयास किया जा रहा है—

मूल स्रोत-अवगाहनसे पूर्व यह आवश्यक है कि हम वैदिक संहिताओंका सामान्य परिचय पा लें। वैदिक वाङ्मयके अन्तर्गत संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् एवं वेदाङ्ग-साहित्यकी गणना है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद—ये चारों चार संहिताओंके रूपमें उपन्यस्त हैं। वेदचतुष्टयीके रूपमें इनकी गणना है। ये संहिताएँ अनेक शाखाओंसे युक्त होनेके कारण विपुल थीं, पर आज वे सभी उपलब्ध नहीं हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि[3] के

१. (अ) सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यते, अनादित्वात्, स्वभावसंसिद्धलक्षणत्वात्, भावस्वभावनित्यत्वाच्च। (च० सू० ३०। २७)
(आ) सुश्रुत, सूत्र १। ६

२. चरणव्यूह (३६, प्रस्थानभेद ४) एवं महाभारत (सभापर्व ११। ३३ पर व्याख्याकार श्रीनीलकण्ठजीके अनुसार) आयुर्वेदको ऋग्वेदका उपवेद मानते हैं। अथर्व-परिशिष्ट (चरणव्यूह ४९)-में 'ब्रह्मवेदस्यायुर्वेदोपवेदः' इस प्रकार कहकर आयुर्वेदकी गणना अथर्ववेदके उपवेद-रूपमें है। चरक (तत्र भिषजा पृष्टेनैवं चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानामात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्या। चरक सूत्र ३०। २१) एवं उत्तरकालीन आयुर्वेदके ग्रन्थ (अष्टाङ्गहृदय, सूत्र० ८। ९)-में आयुर्वेदको अथर्ववेदका उपाङ्ग माना गया है। काश्यपसंहिता (विमान १, ताड़पत्रपर लिखित पुस्तकके अन्तर्गत ७६ वाँ पत्र) एवं ब्रह्मवैवर्तपुराण (१। १६। ९-१०)-में तो आयुर्वेदको एक पञ्चम वेद ही मान लिया गया है।

३. चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्याः बहुधा भिन्नाः। एकशतमध्वर्युशाखाः। सहस्रवर्त्मा सामवेदः। एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। नवधाथर्वणो वेदः।
—महाभाष्य

अनुसार ऋग्वेदकी २१, यजुर्वेदकी १००, सामवेदकी १००० एवं अथर्ववेदकी ९ शाखाएँ थीं। अथर्वपरिशिष्टके चरणव्यूहके अनुसार ऋग्वेदकी शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शांखायन एवं माण्डूकायन—ये पाँच प्रमुख शाखाएँ हैं, जिनमें सम्प्रति एकमात्र 'शाकल शाखा' उपलब्ध एवं प्रचलित है। यजुर्वेद शुक्ल एवं कृष्ण इन दो भागोंमें विभक्त है। शुक्ल यजुर्वेदकी प्रधान शाखाएँ माध्यन्दिन तथा काण्व हैं। काण्वशाखा प्रायः दक्षिणमें तथा माध्यन्दिनशाखा उत्तर भारतमें अधिक प्रचलित है। माध्यन्दिन संहिता ही 'वाजसनेयी संहिता' कहलाती है। चरणव्यूहके अनुसार कृष्ण यजुर्वेदकी ८५ शाखाएँ थीं, जिनमें केवल आज तैत्तिरीय, मैत्रायणीय, कठ एवं कपिष्ठल-कठ—ये चार शाखाएँ उपलब्ध हैं और इसीके अनुसार चरक शाखाके ही अन्तर्गत कठ [प्राच्य] एवं कपिष्ठल-कठका समावेश है। अथर्ववेदकी नामभेदसे पिप्पलाद, तौद, मौद, शौनकीय, जाजल, जलद, ब्रह्मवद, देवदर्श तथा चारणवैद्य—ये नौ शाखाएँ हैं। सम्प्रति शौनक शाखाका प्रचार है। अथर्ववेदकी अन्तिम शाखा चारणवैद्य आयुर्वेदसे अधिक सम्बद्ध है, पर यह उपलब्ध नहीं है। अथर्ववेदकी शौनक शाखामें २० काण्ड हैं।

अथर्ववेदके विविध नाम—विभिन्न ग्रन्थोंमें अथर्ववेदके ९ नाम उपलब्ध होते हैं। यथा—(१) अथर्ववेद, (२) अथर्वाङ्गिरसवेद, (३) आङ्गिरसवेद, (४) ब्रह्मवेद, (५) भृग्वङ्गिरोवेद, (६) छन्दोवेद, (७) महीवेद, (८) क्षत्रवेद तथा (९) भैषज्यवेद।

अथर्ववेदका विषय-विवेचन—अथर्ववेदके २० काण्डोंके विषयोंका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—**पहले काण्डमें** विविध रोगोंकी निवृत्ति, पाशमोचन, रक्षोनाशन, गर्भप्राप्ति और दीर्घायुकी प्राप्ति आदिके मन्त्र हैं। **दूसरे काण्डमें** विविध रोगनाशन, शत्रुनाशन, कृमिनाशन, दीर्घायुष्य आदिके मन्त्र हैं। **तीसरे काण्डमें** शत्रु-सेना-सम्मोहन, राजाका निर्वाचन, शाला-निर्माण, कृषि, पशुपालन, रोगनाशन आदिका वर्णन है। **चौथे काण्डमें** ब्रह्मविद्या, विषनाशन, राज्याभिषेक, वृष्टि, पापमोचन, ब्रह्मोदन आदिका वर्णन है। **पाँचवें काण्डमें** ब्रह्मविद्या, लाक्षा, शत्रुनाशन, विषनाशन, रोगनाशन, ब्रह्मगवी, कृत्या-परिहार आदिका वर्णन है। **छठे काण्डमें** शत्रुनाशन, रोगनाशन, दुःस्वप्रनाशन, बल-प्राप्ति, अन्न-समृद्धि आदिका वर्णन है। **सातवें काण्डमें** आत्मा, अंजन, पूर्णिमा, अमावास्या, शत्रुनाशन, पापनाशन आदिका वर्णन है। **आठवें काण्डमें** दीर्घायु-प्राप्ति, शत्रुनाशन, प्रतिसर-मणि और विराट् आदिका वर्णन है। **नवें काण्डमें** मधुविद्या, काम, शाला, पञ्चोदन, अतिथि-सत्कार, गोमहिमा, यक्ष-नाशन, आत्मा आदिका वर्णन है। **दसवें काण्डमें** कृत्यानिवारण, ब्रह्मविद्या, वरण-मणि, सर्पविष-नाशन, विजय-प्राप्ति, मणिबन्धन, ज्येष्ठब्रह्म आदिका वर्णन है। **ग्यारहवें काण्डमें** ब्रह्मोदन, रुद्र, प्राण, ब्रह्मचर्य, पाप-मोचन, ब्रह्म और शत्रुनाशन आदिका वर्णन है। **बारहवें काण्डमें** भूमिसूक्त, ब्रह्मगवी, स्वर्गोदन, वशा गौ आदिका वर्णन है। **तेरहवें काण्डमें** अध्यात्मका वर्णन है। **चौदहवें काण्डमें** विवाह-संस्कारका वर्णन है। **पंद्रहवें काण्डमें** व्रात्य तथा ब्रह्मका वर्णन है। **सोलहवें काण्डमें** दुःखमोचनका वर्णन है। **सतरहवें काण्डमें** अभ्युदयार्थ प्रार्थना है। **अठारहवें काण्डमें** पितृमेधका वर्णन है। **उन्नीसवें काण्डमें** यज्ञ, पुरुष, सूक्त, नक्षत्र, विविध मणियाँ, छन्द, अथर्ववेदका विभाजन, काम-काल आदिका वर्णन है और **बीसवें काण्डमें** सोमयागका वर्णन है।

कौशिक सूत्रके अनुसार वर्ण्य विषय—कौशिक गृह्यसूत्रको ही कौशिक सूत्र भी कहा जाता है। अथर्ववेदके वर्ण्य विषयोंके ज्ञानके लिये यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गृह्यसूत्र है। इसमें १६ संस्कारोंके अतिरिक्त अथर्ववेदके सभी सूक्तोंका विनियोग वर्णित है। इसमें यातुविद्या अर्थात् विभिन्न मन्त्रोंद्वारा जादूके प्रयोगकी विस्तृत प्रक्रिया भी दी गयी है।

आयुर्वेदके अष्टाङ्ग-विभाग और अथर्ववेद

चरक आदि संहिता ग्रन्थोंमें आयुर्वेदके अष्टाङ्ग-विभागानुसार वर्णन देखनेको मिलते हैं, परंतु इसके बहुत पूर्व वेदोंमें तीन प्रकारके कष्टों या दुःखोंके उपचारके लिये तीन ही प्रकारके प्रतिकार या उपाय (आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक) किये जाते थे। अष्टाङ्ग-आयुर्वेदका सर्वप्रथम नामकरण किसने किया, यह कहना दुष्कर है। प्राक्कालमें या संहिताकालमें अष्टाङ्ग-आयुर्वेदके

पृथक्-पृथक् अङ्गके विशेषज्ञोंका बाहुल्य था। जैसे महर्षि काश्यप कौमारभृत्य और अगदतन्त्रके विशिष्ट आचार्य थे, इसी प्रकार शल्यतन्त्रके भासुकि, कायचिकित्साके भारद्वाज और गार्ग्य, गालव, जनक, निमि आदि शालाक्य-तन्त्रके ज्ञाता थे। ऋक्, यजु और सामवेदके अतिरिक्त अथर्ववेदमें अष्टाङ्ग-आयुर्वेदकी सामग्री प्रचुर रूपमें पायी जाती है। अथर्ववेदके अभिचार-मन्त्रोंमें आगत सामग्रीका विशद वर्णन छान्दोग्योपनिषद् (७।१।२)-के अनुसार भूतविद्या-प्रसंगमें मिलता है। अथर्ववेदमें अष्टाङ्गके विषय यत्र-तत्र बिखरे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। सुश्रुतसंहिताके अनुसार निम्न पंक्तियोंमें आयुर्वेदके आठ अङ्गोंका स्पष्टीकरण किया गया है, जैसे—

(१) शल्य—विभिन्न प्रकारके तृण, प्रस्तर, अस्थि आदि, दूषित व्रण, अन्तःशल्य, गर्भशल्य आदिके निष्कासन-हेतु यन्त्र-शस्त्र, क्षार और अग्निके प्रयोग एवं व्रणके विनिश्चयके लिये जो कर्म किये जाते हैं, वे शल्यकर्म हैं।

(२) शालाक्य—ऊर्ध्वजत्रु रोग—सिर, नेत्र, नासा, कर्ण आदिमें होनेवाले रोगोंकी शान्तिके लिये तथा नेत्र-रोगमें शलाकाद्वारा किये जानेवाले कर्मको 'शालाक्य' कहते हैं।

(३) काय-चिकित्सा—ज्वर, अपस्मार, कुष्ठ आदि रोगोंकी शान्तिके लिये किये जानेवाले उपायको 'काय-चिकित्सा' के नामसे पुकारते हैं।

(४) भूत-विद्या—देव-गन्धर्व आदिके आवेशको शान्त करनेके लिये किये जानेवाले कर्मको 'भूत-विद्या' कहते हैं।

(५) कौमार-भृत्य—बालकोंके भरण-पोषण, धात्रीकी परीक्षा आदिका विधान जिसमें वर्णित हो, उसे 'कौमारभृत्य' कहते हैं।

(६) अगद-तन्त्र—सर्प, कीट आदिके दंशसे उत्पन्न विष तथा नानाविध स्थावर-विषोंकी शान्तिहेतु जिसमें उपाय बताये गये हों, वह 'अगद-तन्त्र' है।

(७) रसायन—वयःस्थापन, आयुष्य, बल और ओजकी वृद्धिके लिये तथा व्याधिसमुदायको दूर करने-हेतु जिसमें उपाय बताया गया हो वह 'रसायन' है।

(८) वाजीकरण—क्षीण-वीर्य-दोषको दूर करने, शुक्रसंशोधन, वृद्धावस्था दूर करने, अश्वसदृश पौरुष-शक्ति उत्पन्न करने एवं व्यवायमें अतिहर्षके निमित्तका जिसमें वर्णन किया गया हो वह 'वाजीकरण' के अङ्गमें परिगणित है।

अष्टाङ्ग-आयुर्वेदका विवेचनात्मक पर्यालोचन

(१) अथर्ववेद एवं अथर्वसाहित्यमें शल्यतन्त्र—यह एक आश्चर्यजनक सत्य है कि प्राचीन शल्यविशारदोंकी तुलनामें अर्वाचीन शल्यशास्त्री अभी बहुत कुछ पीछे हैं। साधारण व्रणकी चिकित्सा तथा अति दुष्कर शल्य-कर्ममें प्राचीन आथर्वण वैद्य या शल्यशास्त्री आश्चर्यकारक कर्म करते थे। अथर्ववेद[१] में शरीरसे पृथक् हुई अस्थियोंको रथके विभिन्न अङ्गोंके सदृश जोड़कर रथकी ही तरह मनुष्यको स्वस्थ बना देनेवाला आदेश दिया गया है। मूत्राघात[२] रोगमें शर तथा शलाका आदिद्वारा मूत्रको निकालने या भेदन करनेका आदेश दिया गया है। दुःख[३]-प्रसव तथा विकृत-प्रसवके लिये योनि-भेदन करनेका वर्णन मिलता है। कष्टसाध्य[४] लोहिनी और कृष्णा नामक अपचीको किसी विशेष शरसे भेदन करनेके लिये उल्लेख प्राप्त होता है। अपची[५] को पकानेके लिये लवणका उपचार आदि शल्य-प्रक्रियाओंका वर्णन भी किया गया है। ऋग्वेद[६] में अश्विनीकुमारोंद्वारा नाना चमत्काररूप भैषज्य विषय देखे जाते हैं, जैसे—दासोंद्वारा अग्नि और जलमें फेंकनेपर, पुनः सिर एवं वक्षःस्थलके टुकड़े-टुकड़े करनेपर भी जीवित दीर्घतमा ऋषिको अश्विनीकुमारोंने स्वस्थ कर दिया। कौशिक सूत्रमें अथर्ववेदीय मन्त्रोंके विनियोगके प्रदर्शनमें

---

१. यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघान । ऋभू रथस्येवाङ्गानि सं दधत्परुषा परुः॥ (अथर्व० ४।१२।७)

२. विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम्। तेना ते तन्वे शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं हिष्टे अस्तु बालिति॥ (अथर्व० १।३।१)

३. वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः। सिस्रतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ॥ (अथर्व० १।११।१)

४. अपचितां लोहिनीनां कृष्णा मातेति शुश्रुम । मुनेर्देवस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम्॥ (अथर्व० ७।७४।१)

५. आ सुस्रसः सुस्रसो असतीभ्यो असत्तराः। सेहोररसतरा लवणाद्विक्लेदीयसीः॥ (अथर्व० ७।७६।१)

६. उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम्। मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद् वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम्॥ (ऋ० १।१५८।४)

अथर्ववेदके विभिन्न मन्त्रोंकी महिमाको दर्शाते हुए चौथे अध्यायमें 'अथ भेषजानि'से प्रारम्भ करके रोगोंके प्रतिकारके लिये विभिन्न मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित करके जल, औषधि आदि पिलाना तथा मार्जन, हवन आदि अनेकों उपाय दिये हैं।

(२) शालाक्य-तन्त्र—इस तन्त्रमें ऊर्ध्वजत्रुकी व्याधियाँ जैसे—सिर, नेत्र, नासिका, गला आदिके रोगोंका वर्णन आता है। अथर्ववेद[1]में सम्पूर्ण सिरके रोगों तथा कानके रोगोंको दूर करनेका आदेश मिलता है। इन मन्त्रोंमें शीर्षक्ति, शीर्षामय और शीर्षण्य—सिरके इन तीन रोगोंका नामकरण मिलता है, जो पृथक्-पृथक् व्याधियाँ मालूम होती हैं। कुष्ठ नामक औषधिको शीर्षामय तथा नेत्ररोगनाशक कहा गया है। नेत्रके रोगोंके सम्बन्धमें अथर्ववेदमें विभिन्न साधनोंपर चिकित्साका वर्णन है, कहीं जल-चिकित्सा, कहीं आजनमणि तो कहीं जङ्गिडमणिके प्रयोगसे तथा कहीं कुष्ठ औषधि तो कहीं दिव्य सुवर्ण[2]के उपचार मिलते हैं।

(३) काय-चिकित्सा—आयुर्वेदके अष्टाङ्गोंमें काय-चिकित्साका वर्णन अथर्ववेदमें प्रचुर-रूपेण देखनेको मिलता है तथा इसके विनियोग कौशिक सूत्रमें स्थान-स्थानपर ओषधिके रूपमें तथा उपचार-रूपमें देखे जाते हैं। अथर्ववेदमें लगभग ज्ञात और अज्ञात तथा छोटी-बड़ी सौ व्याधियोंका वर्णन मिलता है। अथर्ववेदके नवम काण्डके ८वें सूक्तमें व्याधियोंके नामकरणकी एक सूची मिलती है, जिसके प्रथम चार मन्त्रोंमें सिरके रोगोंका वर्णन है। ५ से लेकर ९ तकके मन्त्रोंमें प्रचलित व्याधियोंका वर्णन किया गया है। हृदय और उदरकी व्याधियोंका वर्णन दससे लेकर १४ मन्त्रोंमें स्पष्ट वर्णित है। १५ से लेकर १७ तकके मन्त्रमें पार्श्वास्थि तथा गुदास्थिका वर्णन है। १८ से २१ तकके मन्त्रोंमें विशल्यक, विद्रधि आदि रोगोंके नामके साथ पाद, जानु एवं श्रोणिका वर्णन मिलता है। अथर्ववेदमें कुछ ऐसे रोगोंका वर्णन और चिकित्सा भी मिलती है, जो नीरोग होनेमें कालापेक्षी हैं तथा कुछ ऐसी व्याधियोंका उल्लेख मिलता है, जो अल्पकालापेक्षी तथा अस्पष्ट हैं।

विशिष्ट एवं कालापेक्षी व्याधियोंके नाम—तक्मन, आस्राव, मूत्रावरोध, नाडीव्रण, जलोदर, शीर्षक्ति, कास, किलास, क्षेत्रियरोग, जायान्य (क्षय), अपचित, श्लेष्म, बलास, हरीमा और हृदयामय आदि।

क्षुद्र एवं अल्पकालिक व्याधियाँ—पलित, पापयक्ष्मा, अज्ञातयक्ष्मा, अक्षत, विसर, पृष्ठयामय, आश्रीक, विश्रोक, विशल्यक, विद्रधि, क्षिप्त, हृद्योत, जलजि, शूल, पामा, पक्षाघात, अरिष्ठ, तृष्णा, अस्थिभङ्ग, जम्भ, संहनु, अङ्गभेद, अङ्गज्वर, लोहित, शमोलुनकेश, रुधिरास्राव, काहाबाह, कर्णशूल, विषूचिका तथा अप्वा आदि।

अथर्ववेदीय साहित्यमें व्याधियोंके वर्गीकरण या काय-चिकित्सात्मक निदानादि दृष्टिकोणसे विभाग नहीं देखे जाते, जैसा कि चरक, सुश्रुत आदि संहिताओंमें वर्गीकरण देखे जाते हैं। निज और आगन्तुक व्याधियोंका पृथक्करण सूत्र-रूपेण अथर्ववेदमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, परंतु अथर्ववेदके स्त्रीकर्माणि प्रकरण तथा कौशिक सूत्रके कण्डिका ३२ के २८ से २९ सूत्रमें मानस-रोगोंका दिग्दर्शन अत्यन्त स्पष्ट है।

४-भूत-विद्या—अष्टाङ्ग-आयुर्वेदका एक अङ्ग भूत-विद्या भी है, जिसमें गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, ग्रह आदिके आवेशसे दूषित शरीर एवं मनकी शान्तिके लिये कुछ कर्म जैसे—दान, पूजा आदि किये जाते हैं, यह भूत-विद्या है। इसका आदि स्रोत अथर्ववेद है। चरक, सुश्रुत तथा काश्यप आदि संहिता ग्रन्थोंमें पूतना या स्कन्द आदि ग्रहोंको बालरोगका कारण माना गया है। आयुर्वेदने उन्माद, अपस्मार आदि मानसिक एवं शारीरिक व्याधियोंके कारणोंमें भूत, प्रेत, पिशाच तथा गन्धर्वको भी एक कारण माना है।

(५) कौमारभृत्य—आयुर्वेदके अष्टाङ्ग-विभागोंमें कौमारभृत्य भी एक अङ्ग है। गर्भाधान[3], गर्भकी पुष्टि, गर्भ[4]-की रक्षा, सुखप्रसव[5] एवं जन्मकालके अमाङ्गलिक

१. शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम् । सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ (अथर्व० ९।८।१)
२. जङ्गिडमणि (अथर्व० १९।३५।३), कुष्ठ औषधि (अथर्व० ५।४।१०), दिव्य सुपर्ण ओषधि (अथर्व० ५।४।२)
३. (अथर्व० ५।२५।१—३) (अथर्व० ६।८१।१—३), ४. (अथर्व० ६।१७।१—४), ५. (अथर्व० १।११।१—६)
६. (अथर्व० ६।११०।१—३)

क्षणोंमें हानिकर प्रभाव[१] को दूर करनेके लिये अनेक मन्त्र अथर्ववेदमें मिलते हैं। अथर्ववेदमें कुछ ऐसे भी मन्त्र हैं जिनमें औषधि, मन्त्र एवं रक्षायन्त्र (ताबीज, कवच)-का प्रयोग निर्दिष्ट है[२] और सुखप्रसव के लिये भी मन्त्रोंका बाहुल्य वहाँ उपलब्ध होता है।

कौशिक सूत्र[३] की ३५वीं कण्डिकामें पुंसवन-संस्कारके लिये उपाय बताये गये हैं।

(६) अगद-तन्त्र—अथर्ववेदमें अगद तन्त्रसे सम्बन्धित विषय जैसे—स्थावर और जङ्गम-विष, सर्प, वृश्चिक, विषाक्त कीटाणु तथा विषाक्त बाण इत्यादिके विषयमें अनेकों मन्त्र[४] मिलते हैं। ऋग्वेद[५] में भी सर्पविष, वृश्चिकविष तथा विषाक्त कीटोंसे सम्बन्धित मन्त्र पाये जाते हैं। अथर्ववेदके एक मन्त्र[६] के अनुसार सूर्य, अग्नि, पृथ्वी, वनस्पति तथा कन्दमें यदि विष है तो उसे नष्ट करने या दूर करनेका आदेश दिया गया है। अथर्ववेदमें अनेक विषाक्त सर्पोंके नाम उपलब्ध होते हैं। विषको नष्ट करनेके लिये कुछ वनस्पतियों[७] से सम्बन्धित मन्त्र भी मिलते हैं। अथर्ववेदके चौथे काण्डमें विषाक्त[८] घातक विषको नष्ट करनेके लिये स्पष्ट वर्णन मिलता है। अथर्ववेदके छठे[९] काण्डमें सर्पविषकी चिकित्साके लिये जलको महत्त्वपूर्ण बताया गया है। चरकमें भी चिकित्सास्थान (२३, २५)-में जलसे परिषेचन और अवगाहन बताया गया है। दसवें[१०] काण्डमें पैत्व (श्वेत आक), तौदी और धृताची वनस्पतिका सर्पविषहरके लिये उल्लेख है।

कौशिक सूत्र[११] में सब प्रकारके विषस्तम्भके लिये उपाय दिये गये हैं। वृश्चिकविषको नष्ट करनेका भी उल्लेख है। जैसे—अथर्ववेदके ७वें काण्डके ५६वें सूक्त (१—८)-का जप करते हुए ज्येष्ठीमधु (जेठी मधु)-को पीसकर तथा निर्दिष्ट मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर रोगीको पान कराना चाहिये तथा क्षेत्रकी बल्मीक मिट्टीको पशु-चर्ममें बाँधकर कवचकी तरह धारण करना चाहिये।[१२]

(७) रसायन-तन्त्र—जो औषधि रसादि धातुओंमें क्षीणता न आने दे तथा व्याधियोंको विनष्ट कर स्वस्थ रखे, वही रसायन है। अथर्ववेदमें ऐसे अनेकों सूक्त[१३] हैं, जिनमें जल तथा इसके गुणोंकी प्रशंसा की गयी है तथा जलको वृद्धावस्था और व्याधि दूर करने एवं अनश्वरता पैदा करनेवाला द्रव्य बताया गया है। कुछ मन्त्रों[१४] में बताया गया है कि जल विभिन्न प्रकारके रोगोंका औषध है तथा यह शारीरिक दोषोंको दूर करके शरीर एवं त्वचाको सुस्थिर तथा स्वस्थ बनाता है। अथर्ववेद जलको रस मानता है तथा जलसे अक्षय बल[१५] और प्राणकी याचना करता है।

(८) वाजीकरण—अथर्ववेदमें पुरुषत्वके विकास या वृद्धिके लिये अनेक मन्त्रोंका उल्लेख मिलता है। कुछ मन्त्रोंमें अश्व, हस्ति, गर्दभ और वृषभ-सदृश पुरुषत्व[१६] शक्तिके अर्जनके लिये प्रार्थना की गयी है।

उपसंहार—वेदोंमें विशेषकर अथर्ववेदमें आयुर्वेदके विषय यत्र-तत्र बिखरे पड़े रहनेके कारण अष्टाङ्ग-आयुर्वेदके विभागरूपेण वर्गीकरणका अभाव परिलक्षित होता है, पर जो भी सामग्री सूत्ररूपमें उपलब्ध है, उसीका उपबृंहण होता चला गया। चरक आदि संहिता ग्रन्थोंमें इसका परिष्कृत रूप दिखलायी देता है। अथर्ववेदके सूत्र-ग्रन्थ कौशिक सूत्रमें अथर्ववेदीय भैषज्यसामग्रीका विनियोग स्पष्टरूपसे प्राप्त होता है। इस प्रकार आयुर्वेदकी वेदमूलकता सर्वथा स्पष्ट है।



१. (अथर्व० १।८१।१—३), २. (अथर्व० १।११।१—६), ३. कौ०सू० ३५।५
४. अथर्व० ४।६।१—८, ४।७।१—७, ७।८८।१,
५. ऋग्वेद ७।५०, १।१९१, ६. अथर्व० १०।४।२२, ७. अथर्व० २।२७।२,
८. अथर्व० ४।६।५, ९. अथर्व० ६।१२।३, १०. अथर्व० १०।४।५—७, १०।३।२४,
११.कौ०सू० २९।२।८, अथर्व० ५।१३।२ १२. कौ०सू० ३२।५—७ (केशव टीका),
१३. अथर्व० ३।७।५, ६।२४।२,
१४. अथर्व० ३।७।५—७, ४।३३, ६।२२—२४,
१५. अथर्व० ३।१३।५, १६. अथर्व० ४।४।८

ऋग्वेदका उपवेद आयुर्वेद—उद्भव एवं इतिहास

(दण्डी स्वामी श्रीमद् दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज)

'वेद' लौकिक एवं अलौकिक ज्ञानका साधन है। भगवान् मनु कहते हैं कि 'श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः' अर्थात् वेदोंको ही 'श्रुति' कहते हैं। यद्यपि 'अनन्ता वै वेदाः' ज्ञान अनन्त है, अतः वेद भी अनन्त हैं, ऐसा कहा गया है तथापि मुण्डकोपनिषद् चार वेद—१-ऋग्वेद, २-यजुर्वेद, ३-सामवेद और ४-अथर्ववेदको ही मान्यता प्रदान करता है—'ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः।'—इन चारों वेदोंके चार उपवेद भी हैं जो इस प्रकार हैं—

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रयः।
स्थापत्यवेदमपरमुपवेदश्चतुर्विधः ॥

जिस प्रकार 'अथर्ववेद'का उपवेद 'अर्थवेद' (स्थापत्यशिल्पशास्त्र) है और उसके निर्माता विश्वकर्मा हैं (शिल्पशास्त्रके ज्ञाताको 'मयासुर' भी माना गया है), 'सामवेद' का उपवेद 'गान्धर्ववेद' (संगीतशास्त्र) है और उसके कर्ता नारदमुनि हैं, 'यजुर्वेद'का उपवेद 'धनुर्वेद' (युद्धशास्त्र) है और उसके कर्ता विश्वामित्र हैं; उसी प्रकार 'ऋग्वेद'का उपवेद 'आयुर्वेद' (वैद्यकशास्त्र) है[1] और उसके उपदेष्टा धन्वन्तरि हैं।

जैसे छिद्रविहीन नौकासे ही नदीको पार करना सम्भव है, उसी प्रकार बिना रोगोंवाले स्वस्थ देहसे ही भवसरितासे पार होना शक्य है। इसीलिये 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' कहा गया है। 'अवधूत-गीता' में कायासिद्ध भगवान् 'श्रीदत्तात्रेय' शिवसुत 'कार्तिकस्वामी'को उपदेश करते हैं कि—

चिन्ताक्रान्तं धातुबद्धं शरीरं
नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम्।
तस्माच्चित्तं सर्वतो रक्षणीयं
स्वस्थे चित्ते बुद्धयः सम्भवन्ति॥
(८। २७)

इस श्लोकका सारांश यह है कि स्वस्थ देह रहनेपर ही क्रमशः स्वस्थ प्राण, स्वस्थ चित्त और स्वस्थ बुद्धि होना सम्भव है; फलतः 'स्व-स्वरूपबोध' सम्भव (शक्य) है। अतः 'देह' (शरीर)-का स्वस्थ (नीरोग) होना अत्यन्त आवश्यक है।

स्वस्थ देह रखनेके लिये हमारे प्राचीन कृपालु ऋषियोंने प्राचीनतम 'ऋग्वेद'का स्वानुभवपूर्ण उपवेद 'आयुर्वेद' हमें प्रदान किया है। इस 'आयुर्वेद'के 'अष्टाङ्ग' (आठ अङ्ग) इस प्रकार बताये हैं—

१-काय, २- शल्य, ३-शालाक्य, ४-बाल, ५-ग्रह, ६-विष, ७-रसायन और ८-वाजीकरण।

महर्षि चरकरचित बृहद्ग्रन्थ 'चरकसंहिता' के सूत्रस्थान (३०। २३)-में आयुर्वेद शब्दकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है—'तदायुर्वेदयतीत्यायुर्वेदः''' यतश्चायुष्याण्यनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माणि वेदयत्यतोऽप्यायुर्वेदः।' अर्थात् जो 'आयुष्य' का ज्ञान कराता है वह 'आयुर्वेद' है''' तथा जो 'आयुष्य' के हितप्रद और हानिकारक द्रव्य-गुण-कर्मको समझाकर कहता है, वह 'आयुर्वेद' कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि आयुर्वेद मनुष्यका दीर्घायुष्य-सम्बन्धी विचारकर्ता उपवेद है।

'काश्यपसंहिता' में आयुर्वेदका इतिहास इस प्रकार वर्णित है—'स्वयम्भूर्ब्रह्मा प्रजाः सिसृक्षुः प्रजानां परिपालनार्थमायुर्वेदमेवाग्रेऽसृजत्।' अर्थात् 'प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छा करनेवाले ब्रह्माने प्रजाके परिपालन-हेतु प्रथम आयुर्वेदका ही निर्माण किया था।' ब्रह्माने एक लाख श्लोकोंकी 'आयुर्वेदसंहिता' की रचना की थी और इसका नाम 'ब्रह्मसंहिता' रखा था। इस समय वह अनुपम सम्पूर्ण ग्रन्थरत्न उपलब्ध नहीं है, परंतु उस ग्रन्थके सोलहसे भी अधिक 'योग' आयुर्वेद-ग्रन्थमें प्राप्त हैं। उनमेंसे तीन योग इस प्रकार हैं—१-चन्द्रप्रभावटी, २-ब्राह्मीतेल और ३-ब्राह्मरसायन।

ब्रह्माने अपनी इस आयुर्वेद-विद्याको दक्ष-प्रजापति तथा भास्करको प्रदान किया। दक्षप्रजापतिकी परम्परामें सिद्धान्तका तथा भास्करकी परम्परामें चिकित्सा-पद्धतिका

१-दूसरे मतसे आयुर्वेद अथर्ववेदका उपवेद है—'तत्र भिषजा पृष्टेनैवं चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानामात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्या।' (चरक० सूत्र० ३०। २१) तथा 'इह खल्वायुर्वेदं नामोपाङ्गमथर्ववेदस्य०' (सुश्रुत० सू० १। ६)

प्राधान्य था।

दक्षप्रजापतिसे अश्विनीकुमारोंने आयुर्वेदका पूर्ण अध्ययन किया था। वायुपुराण (४९) कहता है कि 'अश्विनीकुमारोंने क्षीरसागर-स्थित 'चन्द्रपर्वत' (मानसरोवर-समीपस्थ 'गुर्ला-मान्धाता' पर्वत)-पर उत्तम प्रकारकी औषधियाँ उत्पन्न करनेका तथा यथासमयमें उनका उपयोग करनेका शुभ कार्य किया था।' पुराणोंमें वह कथा प्रसिद्ध है कि जिसमें वयोवृद्ध च्यवन ऋषिको अश्विनीकुमारोंने अपनी अद्भुत आयुर्वेदिक चिकित्साद्वारा 'तारुण्य' (यौवन) प्राप्त करवा दिया था। अश्विनीकुमारोंका वह आयुर्वेद-ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं है, किंतु 'आश्विनसंहिता', 'चिकित्सा-सार-तन्त्र', 'अश्विनीकुमारसंहिता' इत्यादि ग्रन्थोंका उल्लेख अन्य ग्रन्थोंमें मिलता है।

अश्विनीकुमारोंने ही देवराज इन्द्रको आयुर्वेदका ज्ञान प्रदान किया था। स्वयं इन्द्रने 'ऐन्द्रियरसायन', 'सर्वतोभद्र', 'दशमूलादि तेल', 'हरितक्यवलेह' इत्यादि योगोंका निर्माण किया था।

देवराज इन्द्रने आयुर्वेदका अद्भुत ज्ञान महर्षि भृगु, महर्षि अंगिरा, महर्षि अत्रि, महर्षि वसिष्ठ, महर्षि अगस्त्य, महर्षि पुलस्त्य, मुनि वामदेव, मुनि गौतम, मुनि असित आदि दस महापुरुषोंको प्रदान किया था। इनमें महर्षि भृगु तो चिकित्सा-प्रवीण थे। महर्षि अत्रिको महा-आयुर्वेद अर्थात् आयुर्वेदका महान् ज्ञाता कहा गया है। महर्षि कश्यपरचित आयुर्वेदिक संहिता 'वृद्धजीवकीय तन्त्र' नामसे प्रसिद्ध है। महर्षि अगस्त्यका ग्रन्थ 'द्वैधनिर्णय-तन्त्र' और मुनि वामदेवका 'आयुर्वेद-संहिता' नामक ग्रन्थरत्न प्रसिद्ध है। 'चरकसंहिता' में ऐसी कथा है कि 'ऋषिगणोंने लोककल्याणके लिये ऋषि भारद्वाजको अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर देवराज इन्द्रके पास (स्वर्गमें) आयुर्वेदका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये भेजा था। इन्द्रने भारद्वाजको वह सम्पूर्ण ज्ञान दे दिया। भारद्वाजने [पृथ्वीपर] वापस आकर वह ज्ञान अन्य ऋषि-मुनियोंको दिया था।'

भावप्रकाश नामक ग्रन्थ (१। १५)-में ऐसा कहा गया है कि 'देवराज इन्द्रसे प्राप्त आयुर्वेदका ज्ञान ऋषि भारद्वाजने तन्त्रग्रन्थके रूपमें आबद्ध किया था [ऐसा पता चला है कि चेन्नई—मद्रासके एक ग्रन्थालयमें हस्तलिखित तमिल-भाषामें 'भारद्वाजीय प्रकरण' और 'भेषज-कल्प' नामक ग्रन्थ विद्यमान है]।'

भारद्वाज ऋषिका एक शिष्य द्वितीय धन्वन्तरि नामसे था। उस बुद्धिमान् शिष्यने भिषक्-क्रियासहित आयुर्वेदका पूर्ण ज्ञान गुरुकृपासे प्राप्त किया था। उसने उस ज्ञानको आठ अङ्गोंमें विभक्त कर अपने शिष्योंको सिखाया था। ऐसे विद्वान् द्वितीय धन्वन्तरिको ऋषियोंने दो उपाधियाँ प्रदान की थीं—१-सर्वरोगप्रणाशन और २-आयुर्वेदप्रवर्तक। द्वितीय धन्वन्तरिने 'शल्यशास्त्र' का बहुत प्रचार किया। उनके ग्रन्थोंमें संनिपात-कलिका, धातुकल्प, रोगनिदान, वैद्य-चिन्तामणि, धन्वन्तरि-निघण्टु इत्यादि बहुत प्रसिद्ध थे।

भारद्वाज ऋषिका दूसरा शिष्य पुनर्वसु-आत्रेय नामका था। 'चरकसंहिता' में कहा गया है कि वह शिष्य बड़ा जिज्ञासु वृत्तिका था। वह अपने साथ आयुर्वेद-निष्णात ऋषि-मुनियोंको लेकर हिमालयमें शक्तिशाली अद्भुत औषधियों एवं वनस्पतियोंके शोधके लिये परिभ्रमण करता रहता था। वह काय-चिकित्सा-निष्णात था। उसे लोग 'चलता-फिरता (जंगम) औषधालय' कहते थे। तत्कालीन ऋषियोंद्वारा वह 'भिषग्विद्याप्रवर्तक' की उपाधिसे सम्मानित था।

द्वितीय धन्वन्तरिने शल्य-तन्त्रमें प्रावीण्य और उसके मित्र पुनर्वसु-आत्रेयने भिषग्विद्यामें प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उसके छः शिष्य थे—१-अग्निवेश, २-भेल, ३-जतूकर्ण, ४-पराशर, ५-हारीत और ६-क्षारपाणि। प्रत्येक शिष्योंने अपने-अपने नामसे आयुर्वेदके अच्छे-अच्छे ग्रन्थोंकी रचना की है, जैसे—१-अग्निवेशतन्त्र, २-भेल-संहिता, ३-पराशर-संहिता, ४-जतूकर्ण-काय-चिकित्सा, ५-हारीत-आयुर्वेद-संहिता और ६-क्षारपाणि-काय-चिकित्सा-तन्त्र।

देवराज इन्द्रके शिष्य निमिने शालाक्यतन्त्र नामक एक ग्रन्थकी रचना की। इस निमिके शिष्य करालने स्वयं कराल-तन्त्रमें नेत्ररोगके छानबे प्रकार वर्णित किये हैं। करालका उल्लेख चरकसंहिताके 'अक्षिरोग-प्रकरण' में है।

मुनि शौनक रचित शालाक्य-तन्त्र आयुर्वेदीय ग्रन्थरत्न था। कुछ लोगोंकी ऐसी मान्यता है कि इस ग्रन्थका रचयिता भद्रशौनक था।

बाह्लिक देश (अफगानिस्तान)-का प्रसिद्ध शालाक्य-तन्त्रज्ञ कांकायन था, जिसके असंख्य शिष्य थे। गार्ग्य,

गालव, सात्यकी आदिने धन्वन्तरिसे 'शल्य-शास्त्र' का ज्ञान प्राप्तकर 'शालाक्य-तन्त्र' नामसे प्रसिद्ध ग्रन्थोंकी रचना की थी। कई विद्वान् इस धन्वन्तरिको दिवोदास-धन्वन्तरि कहते हैं। उसने 'शल्य-चिकित्सा' का अच्छा प्रचार-प्रसार किया था। उसके सात विद्वान् शिष्य थे, जिनमेंसे एक था विश्वामित्रसुत सुश्रुत। ऐसा मत 'सुश्रुतसंहिता' (चि० २। ३)-का है। 'शालिहोत्रसंहिता' का मत है कि सुश्रुत विश्वामित्रका पुत्र नहीं, अपितु मुनि शालिहोत्रका पुत्र था। 'सुश्रुतसंहिता' के तीन पाठ इस प्रकार हैं—१-सुश्रुतसंहिता, २-वृद्ध-सुश्रुतसंहिता और ३-लघु-सुश्रुतसंहिता।

धन्वन्तरिके अन्य विद्वान् भिषक्-शिष्योंमें औपधेनव, औरभ्र, पौष्कलावत, करवीर्य, गोपुररक्षित, वैतरण, भोज, भालुकी, दारुक आदिने आयुर्वेदके ग्रन्थोंकी रचना की है।

काश्यपसंहितामें कहा गया है कि भृगु-वंशके ऋषि ऋचीकके पुत्र वृद्धजीवकने कश्यपसे आयुर्वेदके 'कुमार-तन्त्र' का ज्ञान प्राप्त किया था। वृद्धजीवकका ग्रन्थ 'वृद्धजीवकीय तन्त्र' नामसे जाना जाता है। एक और कुमारभृत्याचार्य (रावण) हो गया है, जिसने 'बाल-चिकित्सा', 'नाडी-परीक्षा', 'अर्क-प्रकाश' तथा 'उदेश-तन्त्र' इत्यादि प्रसिद्ध ग्रन्थोंकी रचना की है।

विविध प्रकारके विषोंके शमनके लिये उपाय बतानेवाले तन्त्रको 'अगद-तन्त्र' कहते हैं। कश्यप, उशना और बृहस्पति—ये तीनों 'अगद-तन्त्र' के आचार्य माने गये हैं।

आयुर्वेदका सबसे प्रभावी अङ्ग 'रस-तन्त्र' है। सुश्रुतसंहिता (सूत्र० १। ७)-में कहा गया है कि '**रसायनतन्त्रं नाम वयःस्थापनमायुर्मेधाबलकरं रोगापहरणसमर्थं च।**' अर्थात् रसायन-तन्त्र शतायुदायक, बल-बुद्धिवर्धक और रोगोंका अपहारक है। असंख्य ऋषि-मुनि-योगी योगबल एवं रसायनबलके प्रभावसे दीर्घायु हुए हैं। इस 'रसायन-तन्त्र' के प्रधानाचार्य भगवान् शिव हैं।

भृगु, अगस्त्य और वसिष्ठ—ये महर्षि रसतन्त्राचार्य माने गये हैं। ऋषि माण्डव्य, व्याडि, पतञ्जलि मुनि एवं आचार्य नागार्जुन आदि रसतन्त्रकार कहे गये हैं।

तन्त्रग्रन्थोंमें ऐसी कथा प्रसिद्ध है कि नागार्जुनने 'श्रीशैलम्' (आन्ध्र-प्रदेश)-में घोर तपस्या की थी, फलतः रसेश्वर भगवान् दत्तात्रेयने प्रसन्न होकर उन्हें रसविद्याका गुह्यतम ज्ञान प्रदान किया था। तबसे उनका नाम सिद्ध-नागार्जुन प्रचलित हुआ। 'सिद्ध-नागार्जुन' ने केवल भारतकी ही नहीं, अपितु समग्र जगत्की गरीबी दूर करनेके लिये घोषणा की थी कि '**रसे सिद्धे करिष्यामि निर्दारिद्र्यमिदं जगत्।**' अर्थात् 'मैं रसविद्याके सामर्थ्यसे सुवर्णका निर्माण कर सम्पूर्ण जगत्को निर्धनतासे मुक्त करा दूँगा।'

सिद्ध-नागार्जुनद्वारा रचित ग्रन्थोंमें 'रसरत्नाकर', 'कक्षपुटम्', 'आरोग्य-मञ्जरी', 'रसेन्द्र-मङ्गल', 'सिद्ध-नागार्जुनीय' आदि हैं।

'अष्टाङ्गहृदय' नामक ग्रन्थके रचयिता वाग्भट, 'अष्टाङ्गसंग्रह' के निमित्त वृद्ध-वाग्भट, 'माधवनिदान' के कर्ता माधवकर तथा चक्रपाणिदत्त, बंगसेन, मिल्हण, बोपदेव, लोलिंबराज, मोरेश्वर आदि विद्वानोंने उपवेद आयुर्वेदके मूल्यवान् ग्रन्थोंकी रचना की है।

जिस क्रियाके योगसे देह (शरीर)-में धातुसाम्यका प्रस्थापन होता है, उस क्रियाका नाम 'चिकित्सा' है और वही शुभ कर्म वैद्यराजका है—'**साम्यं प्रकृतिरुच्यते।**'

आयुर्वेद कहता है कि 'यदि धातुसाम्य तथा समप्रकृति रखना आ जाय तो देह नीरोग रहता है। संसारमें सभी जीव त्रिगुण (सत्त्व, रजस् और तमस्) और त्रिदोष (वात, पित्त और कफ)-से बद्ध हैं। अतः त्रिगुण एवं त्रिदोषकी समानता रखना अत्यन्त आवश्यक है।'

सुश्रुतसंहिताका कहना है कि 'जब त्रिदोष (वात, पित्त और कफ), सप्तधातु (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र) तथा मल सम होते हैं, तब देह स्वस्थ, रोग-रहित—नीरोग होता है।

अष्टाङ्गहृदयमें वाग्भट लिखते हैं कि 'सभी प्रकारके रोग-दोषोंका निवारण करुणा, दया, क्षमा तथा द्वेषहीन शुद्ध मनद्वारा किया जा सकता है। '**करुणार्द्रं मनः शुद्धं सर्वज्वरविनाशनम्॥**' (चिकित्सित० १। १७३) आधुनिक 'चिकित्सा-विज्ञान' भी इस सत्यको अब मानने लगा है।'

'आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः'

(वैद्य श्रीदयारामजी अवस्थी शास्त्री, एम्०ए०, आयुर्वेदाचार्य, बी०आई० एम०एम०)

सर्वप्रथम हमें यह समझना उपयुक्त होगा कि आयुर्वेद है क्या, जिसके उपदेशोंको हम स्वास्थ्य-हेतु परम श्रद्धासे स्वीकार करें।

आयुर्वेद शब्द आयु और वेद—इन दो शब्दोंसे बना है।

आयु शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है— एति—गच्छति इति 'आयुः'। 'इण्' धातुसे एतेर्णिच्च (उ० २। २८३) सूत्रद्वारा 'उसि' प्रत्यय करनेपर निष्पन्न होता है। आयुका अर्थ होता है जीवितकाल और उसके पर्यायवाची हैं धारि, जीवित, नित्यग एवं अनुबन्ध। यह आयु शरीर, इन्द्रिय, सत्त्व और आत्माका संयोगरूप है। आचार्य चरकने कहा है—

शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।
नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते॥

(च० सू० १। ४२)

जिस शास्त्रमें शरीर तथा इन्द्रिय आदिका वर्णन हो अथवा आयुके विषयमें जिससे जानकारी प्राप्त हो, उसे आयुर्वेद कहते हैं—

आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वा आयुर्विन्दन्ति इत्यायुर्वेदः।

(सु० सूत्र० १। १५)

और भी—

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते॥

(च० सू० १। ४१)

संक्षेपमें यह आयु चार प्रकारकी होती है—(१) हितायु, (२) अहितायु, (३) सुखायु और (४) दुःखायु। इन चारों प्रकारकी आयुके लिये प्रमाण और अप्रमाण आयुर्वेदशास्त्रमें वर्णित हैं। आयुका मान चेतना-निवृत्ति (गर्भसे मरणपर्यन्त चेतनाका रहना) है।

आयुर्वेदके उपदेशोंका पालन करनेपर आयु हितायु और सुखायु होती है अन्यथा अहितायु और दुःखायु होती है।

हित और सुख-आयु ही धर्म, अर्थ और सुखको दे सकती है। इसलिये वाग्भट-संहितामें कहा है—

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्।
आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः॥

(अष्टाङ्गहृदय सूत्र० १। २)

चरकसंहितामें भी कहा गया है कि आरोग्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चतुर्विध पुरुषार्थका उत्तम (प्रधान) मूल है—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्॥

(च०सू० १। १५)

धर्म-अर्थ-सुख (काम और मोक्ष) तभी सम्भव है, जब यह आयु ठीक हो और इसके ठीक रहनेके लिये तथा दीर्घ जीवनके लिये इस शरीरको स्वस्थ रखे। इसलिये आवश्यक है आयुर्वेदके उपदेशोंके अनुसार सत्-आहार-विहार आदिका पालन करना; क्योंकि आयुर्वेदका प्रयोजन है—स्वस्थ व्यक्तिके स्वास्थ्यका रक्षण और रुग्ण व्यक्तिके रोगका निवारण—

स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च॥

चरक, सुश्रुत, वाग्भट तथा अन्य आयुर्वेदज्ञ ऋषि-महर्षियोंने इसे ही आयुर्वेदका प्रयोजन बताया है।[1]

आयुर्वेदके उपदेशोंको अपने जीवनमें ढालकर ऋषि-महर्षियोंने अमित सुखायु प्राप्त की थी।

दिनचर्या क्या है? रात्रिचर्या क्या है? ऋतुएँ क्या हैं? उनकी चर्या क्या है? कौन-कौनसे रोग किस कालमें होते हैं? वात-पित्त-कफादि दोष किन कारणोंसे प्रकुपित होते हैं, उनका शमन कैसे किया जाय? रोगोंको समूल नष्ट करनेके लिये संशोधनात्मक चिकित्सा (पञ्चकर्मका विधान), नित्य नये रूपमें आने (उभरने)-वाले रोग, जिनके लक्षण ज्ञात नहीं हैं उनका वर्णन तथा चिकित्सा आदि सब कुछ आयुर्वेद (भारतीय चिकित्सा-विज्ञान)-में उल्लिखित है।

इसलिये यह कहा जा सकता है कि विश्वकी समस्त

१. (क) धातुसाम्यक्रिया चोक्ता तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम्॥ (च० सू० १। ५३)
(ख) व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः, स्वस्थस्य रक्षणं च। (सु० सू० १। १४)

चिकित्सा-प्रणालियाँ, जिनका 'प्राणिमात्र अस्वस्थ हों ही नहीं और स्वस्थकी रक्षा हो, यदि आतुर हो जाय तो उसे रोगसे छुटकारा दिलाया जाय'—यह उद्देश्य है, वह सब आयुर्वेद ही है।

भारतीय चिकित्सा-शास्त्रमें प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें उठनेसे लेकर रात्रिमें शयनपर्यन्त किस प्रकार समय व्यतीत करना चाहिये जिससे पदार्थ-चतुष्टयकी प्राप्ति हो, उसका वर्णन दिनचर्याके रूपमें यों किया गया है।

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।
शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिस्ततः॥
(अष्टाङ्गहृदय सू० २।१)

अर्थात् स्वस्थ प्राणीको प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें भगवन्नाम-स्मरण-पूर्वक उठकर शरीर-चिन्ता यानी स्वास्थ्यकी रक्षाके विषयमें विचार करनेके पश्चात् शौच आदि क्रियाके विधानको सम्पन्न करनेके बाद अगले दिनके लिये कार्यका प्रारम्भ करना चाहिये। इस प्रकार आयुर्वेदमें समस्त विषयोंका स्पष्ट वर्णन है।

पूर्ण स्वस्थ रहनेके लिये एक सूत्र है—

'हिताशी स्यात् मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः।'

अर्थात् हितकर भोजन करे, यथोचित मात्रामें भोजन करे, नियत समयपर भोजन करे और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करे।

वैद्यकीय आचारसंहिता

(वैद्य श्रीलक्ष्मीनारायणजी शुक्ल, आयुर्वेदाचार्य)

संसारकी समस्त मानव-जातिको त्रिविध तापोंसे पीडित, अनेकों शारीरिक और मानसिक रोगोंसे ग्रस्त तथा विविध बाधाओंके कारण उनके इहलोक और परलोकके हितसाधनमें निरन्तर व्यवधान डालनेवाले कष्टोंको देखकर प्राचीन कालमें तपस्वी, त्रिकालदर्शी, विद्वान् एवं आर्तत्राण-परायण महर्षियोंने अत्यन्त करुणावश होकर इन कष्टोंके निवारणहेतु समग्र जीवन-दर्शनके रूपमें जिस आरोग्यशास्त्रका प्रतिपादन और तत्त्वोपदेश किया, वही अमृत-तत्त्व आयुर्वेदके नामसे जाना जाता है। इसे पूर्ण मानव-धर्म ही कहना चाहिये, क्योंकि आयुर्वेदमें केवल रोगोंके कारण एवं उनकी चिकित्सामात्रका ही वर्णन नहीं है, प्रत्युत धर्मके समस्त सिद्धान्तोंका तथा काम-क्रोध, मोह-लोभ, ईर्ष्या-द्वेष आदि एवं इनके कारण होनेवाली शारीरिक और मानसिक व्याधियोंका तथा उनके निवारणार्थ सत्य, अहिंसा, असूया आदि धर्मके सभी अङ्गोंका भी विस्तारसे विवेचन हुआ है, इसीलिये इस शास्त्रके ज्ञानद्वारा मानव अपनी समस्त आधि-व्याधियोंसे मुक्त होकर स्वास्थ्य एवं दीर्घायु प्राप्त करते हुए अपने दोनों लोकों (इहलोक तथा परलोक)-का कल्याण एवं चतुर्विध पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष)-का सम्पादन कर सकता है।

आयुर्वेदशास्त्रका प्रादुर्भाव प्राणिमात्रके कल्याणकी पवित्र भावनासे ही हुआ है, इस शास्त्रकी प्राचीन अध्ययन-व्यवस्थाके अनुसार जो व्यक्ति इस शास्त्रका सम्यक् रीतिसे सम्पूर्ण अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त कर लेता था, वह 'विद ज्ञाने' इस धात्वर्थके अनुसार 'वैद्य' की पदवी प्राप्त करता था तथा इसका दीर्घ कालतक मनन करते हुए इसके समग्र अध्ययन एवं अध्यापन-कार्यको सम्पादित करनेकी जो उच्च योग्यता प्राप्त कर लेता था, उसे आयुर्वेदमें 'आचार्य' की पदवी प्रदान की जाती थी और इसी प्रकार 'प्राणाचार्य'*, भिषगाचार्य आदि उपाधियाँ भी चिकित्सककी कार्यकुशलता एवं योग्यताके आधारपर प्रदान की जाती थीं, किंतु उक्त सभी कोटिके चिकित्सकोंको उनके कार्यक्षेत्रमें कार्य

* शीलवान् मतिमान् युक्तो द्विजातिः शास्त्रपारगः। प्राणिभिर्गुरुवत् पूज्यः प्राणाचार्यः स हि स्मृतः॥
(चरक० चि० १।४।५१)

जो चिकित्सक अच्छे स्वभाववाला हो, बुद्धिमान् हो, अपने चिकित्सा-कार्यमें सदा तत्पर हो, द्विजाति हो, आयुर्वेद-शास्त्रका भलीभाँति अध्ययन किया हो, ऐसे वैद्यको प्राणाचार्य कहते हैं, वह प्राणियोंके लिये गुरुके समान पूज्य है।

करनेकी अनुशंसा या अनुमति प्रदान करनेसे पूर्व महर्षियोंद्वारा जिस दायित्वपूर्ण सदाचारका उन्हें पाठ पढ़ाया जाता था, वही उन चिकित्सकोंकी आचारसंहिता कही जाती है।

इस आचारसंहिताका आयुर्वेदमें अनेक स्थानों एवं संदर्भोंमें—जैसे अध्ययनसे पूर्व योग्य शास्त्रका चयन, इस विषयके ज्ञानदाता आचार्योंकी योग्यता एवं कुशलताका परीक्षण, योग्य शिष्योंका चयन करते समय उनके बौद्धिक एवं चारित्रिक गुणोंके स्तरका भी पूर्ण परीक्षण आदि—विस्तारसे वर्णन हुआ है। यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओंपर ही प्रकाश डालना अभीष्ट है—

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि इस पवित्र चिकित्सा-कार्यका मूल उद्देश्य विश्वकल्याण एवं पीडित मानवकी सेवा करना ही रहा है, अतः महर्षि चरक अपने स्नातकोंको स्पष्ट निर्देश देते हैं कि—

नार्थार्थं नापि कामार्थमथ भूतदयां प्रति।
वर्तते यश्चिकित्सायां स सर्वमतिवर्तते॥

(चरक० चि० १।४।५८)

अर्थात् जो चिकित्सक अपने स्वार्थ एवं काम्य वस्तुओंकी प्राप्ति (इच्छित वस्तुओंकी प्राप्ति)-की परवाह न करते हुए केवल प्राणियोंके कल्याणकी भावनासे ही चिकित्सा-कार्य करते हैं, वे ही सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक कहलानेके योग्य हैं। इसके विपरीत जो चिकित्सक केवल व्यावसायिक बुद्धिसे चिकित्सा-कार्यमें प्रवृत्त होते हैं उन्हें अधम कोटिका चिकित्सक माना जाता है। उनके लिये आचार्य चरकका कहना है—

कुर्वते ये तु वृत्त्यर्थं चिकित्सापण्यविक्रयम्।
ते हित्वा काञ्चनं राशिं पांशुराशिमुपासते॥

(चरक० चि० १।४।५९)

अर्थात् जो मूर्ख चिकित्सक इस ईश्वरीय ज्ञानका उपयोग अपनी वृत्ति अर्थात् पेट भरनेके लिये, क्रय-विक्रय या सौदेबाजीसे करता है, वह सोनेके ढेरोंको छोड़कर अपने लिये केवल धूलके कणोंके ढेर ही बटोरता है, क्योंकि यह तो जीवन देनेवाला विज्ञान है, अतः परदुःखकातर होकर मनुष्यके जीवनकी रक्षापर ही प्रथम ध्यान देना चाहिये; क्योंकि जीवनदानसे बढ़कर और कोई श्रेष्ठ दान ही नहीं है। अतः इस पवित्र कार्यको कैसी उत्कृष्ट भावनासे करना चाहिये इसके लिये वे निर्देशित करते हैं—

भिषगप्यातुरान् सर्वान् स्वसुतानिव यत्नवान्।
आबाधेभ्यो हि संरक्षेदिच्छन् धर्ममनुत्तमम्॥

(चरक० चि० १।४।५६)

अर्थात् समस्त आतुरों-व्याधिपीडितोंको अपने पुत्रोंकी भाँति मानते हुए अपने मानव-धर्मके पालन करनेकी इच्छा रखनेवाले चिकित्सकको उन्हें रोगोंसे मुक्त करनेका पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। तो फिर उस चिकित्सककी आजीविकाका क्या होगा? इस चिन्ताका समाधान तथा चिकित्सकको आश्वस्त करते हुए कहा गया है—

क्वचिदर्थः क्वचिन्मैत्री क्वचिद्धर्मः क्वचिद्यशः।
कर्माभ्यासः क्वचिच्चैषा चिकित्सा नास्ति निष्फला॥

अर्थात् इस कार्यमें कहींसे धन, कहींसे मित्रता, कहींसे धर्म (पुण्य), कहींसे यश (कीर्ति या प्रतिष्ठा) और कहींसे कर्माभ्यास, ऐसे उनको कुछ-न-कुछ तो मिलता ही है, क्योंकि चिकित्सा-कार्य सर्वथा निष्फल हो ही नहीं सकता। अतः चिकित्सकको इन चार वृत्तियोंका पालन करते हुए अपना कर्तव्य करते रहना चाहिये। ये चार वृत्तियाँ इस प्रकार हैं—

मैत्री कारुण्यमार्तेषु शक्ये प्रीतिरुपेक्षणम्।
प्रकृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यवृत्तिश्चतुर्विधा॥

(चरक० सू० ९।२६)

अर्थात् पीडित या दुःखी मनुष्योंके साथ मैत्रीभाव, समर्थ व्यक्तियों (साध्य व्याधिवालों)-से प्रीतिका भाव, दयनीय मनुष्योंके प्रति दयाका भाव एवं असाध्य रोगमें उपेक्षाका भाव रखना चाहिये। चिकित्सककी आजीविका-हेतु उसे और भी आश्वस्त किया गया है—

न देशो मनुजैर्हीनो न मनुष्या निरामयाः।
ततः सर्वत्र वैद्यानां सुसिद्धा एव वृत्तयः॥

अर्थात् कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ मनुष्योंका निवास न हो और उन्हें कोई रोग न होता हो, अतएव चिकित्सकके जीवन-निर्वाहकी व्यवस्था तो सब जगह सुलभ ही है। रोगीके लिये सर्वाधिक विश्वासपात्र व्यक्ति चिकित्सक ही होता है। अतः रोगीके इस विश्वासको सदैव

कायम रखना चाहिये, क्योंकि—

मातरि पितरि पुत्रान् बान्धवानपि चतुरः।
अथैतानपि शंकेत वैद्ये विश्वासमेति च॥

अर्थात् रोगी कदाचित् अपने माता-पिता, पुत्र एवं बान्धवोंके प्रति सशंकित रह भी सकता है, किंतु चिकित्सकके प्रति तो इतना विश्वस्त होता है कि उसे वह अपना जीवन ही सौंप देता है, चिकित्सकको सदैव पक्षपातरहित होकर सत्यनिष्ठासे कार्य करना चाहिये।

यह एक विचारणीय विषय है कि कर्तव्यनिष्ठ, सेवाभावी एवं करुणापूर्ण चिकित्सकोंका निर्माण सहजमें ही नहीं हो सकता है, इसके लिये उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षाके साथ ही उत्तम चरित्र एवं संस्कारोंसे शिक्षित करना होता है; किंतु आजकल तो प्रत्येक क्षेत्रमें इन संस्कारोंका अभाव ही हो गया है। इनके लिये हमारी वर्तमान शिक्षापद्धति भी दोषी है।

आयुर्वेद-चिकित्साका मुख्य प्रयोजन विश्वकल्याण एवं उसके द्वारा पीडित मानवकी सेवा करना ही है, इसी प्रकार अन्य सभी पद्धतियोंका भी यही पवित्र लक्ष्य निश्चित है।

किंतु आजकल चिकित्साके इस पवित्र क्षेत्रमें—चिकित्सा-जैसे जनकल्याणके पुनीत क्षेत्रमें इतनी नैतिकताका पतन अवश्य ही अत्यन्त लज्जाजनक है। इस समय अवश्य ही इस क्षेत्रमें कर्तव्यनिष्ठ, दयालु एवं परोपकारी चिकित्सकोंकी उपस्थिति है, किंतु वह नगण्य-सी ही है। इतना होनेपर भी महर्षियोंद्वारा उपदिष्ट आयुर्वेदशास्त्रके वचनोंपर पूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिये। उनका परम सम्मान करना चाहिये—

आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः।

(अष्टाङ्गहृदय सू० १।२)



वेदोंमें आयुर्वेदका तत्त्वानुसन्धान आवश्यक

(गोलोकवासी प्रो०डॉ० श्रीगोपालचन्द्रजी मिश्र, भूतपूर्व वेदविभागाध्यक्ष वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय)

आयुर्वेद जनहितकारी प्रत्यक्ष भारतीय शास्त्र है। भारतीय वाङ्मयके वर्गीकरणके अनुसार आयुर्वेदकी गणना उपवेदोंमें है। वेदोंके मन्त्र और उनसे प्रतिपादित यज्ञ-यागादि क्रियाओंकी विधि अलौकिक है, इसलिये अपरिवर्तनीय है। आयुर्वेद भी वेद है, इसके भी निर्देश जो द्रव्य, ऋतु, समय, मानव-प्रकृति आदिके हैं, वे अलौकिक तथा सामान्यतया अपरिवर्तनीय हैं। अलौकिक शब्दका अभिप्राय मानव-रचनासे परे है। प्राकृतिक औषधियोंमें गुण, ऋतु और समयका प्रभाव तथा मानवका वात, पित्त, कफादि प्रकृति-रचना मानव-रचनाकी परिधिमें नहीं है। मानव-रचनासे बहिर्भूत होनेपर भी इसमें आयुर्वेदचिकित्सा-शास्त्रद्वारा निर्दिष्ट साधनों, उपायों, विधियोंसे परिवर्तन सम्भव नहीं, बहुत अंशोंतक निश्चित कर सकता है। मूलभित्तिका अपरिवर्तन रखते हुए उसका साधनोंकी सहायतासे इच्छानुकूल प्रदर्शन—कला, स्फूर्ति या अभ्यास है। अलौकिकमें कला, स्फूर्ति या अभ्यासका संनिवेश ही आयुर्वेदको उपवेद बना देता है। प्रकृतिसिद्ध पदार्थोंमें तत्त्व, विवेक, प्रयोगजनित उपायोंसे स्वाभाविकताका परिवर्तन कर देना मानव-बुद्धिका सहयोग है। यह वेदोक्त यज्ञ-यागादि क्रियाओंमें सम्भव नहीं है। इसलिये ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व—ये चार वेद हैं और आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद एवं अर्थवेद उपवेद हैं; क्योंकि इनमें मानवका आन्तरिक विकास या स्फूर्तिका प्रयोग-परिवर्तन करनेकी क्षमता है। फिर भी यह मानना ही पड़ेगा कि पदार्थोंमें प्राकृतिक या सहज शक्ति मानव-रचनासे असम्बद्ध है। इस अंशके कारण ही इस चिकित्सा-शास्त्रमें वेद शब्दको प्राचीनोंने अपनाया है।

चार वेदोंके विषयमें मानवताकी मर्यादाके सर्वप्रथम उपदेष्टा मनुने बतलाया है—

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः॥
विभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम्।

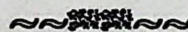
(१२।९४, ९९)

पितृगण, देवता तथा मनुष्योंकी शाश्वत दृष्टि (सनातन नेत्र) वेद ही है। यह मानव या किसी भी सृष्टिके जीवद्वारा रचनामें अशक्य और अप्रतिम है। वेद समस्त प्राणियों—

मानव, पशु-पक्षी आदिका पालन-पोषण करता है। यतः आयुर्वेद भी वेद शब्दसे सम्बन्धित है, अतः इसकी शाश्वतता, सामान्य मानवकी शक्तिसे अतीतता और अप्रतिमता अपरिहार्य है। आयुर्वेदका मूल वेद है। वेदोंमें नीरोग रहनेकी प्रार्थना प्रमुख है। प्रार्थना या यज्ञक्रियाके सम्बन्धसे रोग एवं उनके निराकरणके उपायोंका भी वेदोंमें संकेत है। इन संकेतोंको कतिपय दिव्यदृष्टि महर्षियोंने स्पष्ट समझकर रोगनिवृत्तिके विचार बताये हैं। अथर्ववेदमें रोग एवं उनके निवारणके उपाय अधिक स्पष्ट है, इसलिये अथर्ववेद श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्रके उपदेशक तत्त्वज्ञ ऋषियोंने अपने सूत्र-ग्रन्थोंमें स्पष्ट प्रयोग लिखे हैं। वैदिक ग्रन्थोंके संकेत ही मनीषी आचार्योंके अनुभवसे विकसित होकर आयुर्वेद-शास्त्ररूपसे परिणत हैं।

आज भी आयुर्वेद जाग्रत् है। आयुर्वेदीय ग्रन्थोंके आदेश, प्रयोग सफल हैं। आवश्यकता है ग्राहक दृष्टिकी। यह दृष्टि सहज तथा उपेय और विधेय—तीन प्रकारसे विभक्त की जा सकती है। सहज दृष्टि पूर्वजन्मके संस्कार, गुरुसेवा, देवाराधन तथा महापुरुषोंके आशीर्वादसे ही प्रकट होती है। इसमें कार्य-कारण-भावकी कल्पना अकिंचित्कर है। उपेय दृष्टि शास्त्राभ्यास, सत्संग एवं अनुभवसे प्राप्य है। विधेय दृष्टिसे अनुसन्धान साध्य है। इस दृष्टिसे यहाँ अभिप्राय यह है कि जिन वैदिक या आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें प्रतिपादित विधानोंका प्रयोग अज्ञात है, उनमें आत्मविवेकका संनिवेश करते हुए कमी-बेशीके फलके द्वारा प्रयोगशैली निश्चित करना। विधेय दृष्टि अनुसन्धानमूलक है। वेदके मूल मन्त्रों—ब्राह्मणों, सूत्रग्रन्थोंमें जो निर्देश हैं, वे अज्ञात एवं अव्यवहृत हैं। उनके साम्प्रदायिक ज्ञाता छिपे हुए या दुर्लभ हैं।

आज यह आवश्यकता है कि उपलब्ध एवं कृच्छ्रोपलब्ध वैदिक ग्रन्थोंको समझनेके लिये विचारक्षम साम्प्रदायिक अध्येताओंको ढूँढ़कर उनके सहयोगसे विधेय दृष्टिके उन्मेषके लिये भी यथोचित प्रयास किया जाय। जिससे आयुर्वेदका वेदत्व स्पष्टतया परिस्फुट, विलुप्त परम्पराका पुनरुज्जीवन हो सके और उत्तम आरोग्य-प्राप्तिकी लुप्त पद्धतियोंका प्रकाश हो सके।



'जीवेम शरदः शतम्'

(वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी, आयुर्वेद-वाचस्पति)

मनुष्यकी आकांक्षा वार्धक्यसे दूर रहकर दीर्घायु प्राप्त करनेकी आदिकालसे बलवती रही है। शतायु बननेकी कामना वेदोंमें निम्नलिखित रूपसे की गयी है—

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्। (यजुर्वेद ३६। २४)

अर्थात् 'हम सौ वर्षोंतक देखें, सौ वर्षोंतक जीयें, सौ वर्षोंतक सुनें, सौ वर्षोंतक हमारी वाक्-शक्ति बनी रहे, सौ वर्षोंतक हम स्वावलम्बी बने रहें अर्थात् किसीके आश्रित न होकर जीवित रहें।'

भारतीय दर्शनमें जीवनके चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षकी प्राप्तिके लिये मनुष्यका स्वस्थ एवं दीर्घायु होना आवश्यक माना गया है। इसी कारण चरकसंहिताका प्रारम्भ भी दीर्घजीवितीय नामक अध्यायसे किया गया है।

आचार्य सुश्रुतने सत्तर वर्षके बादकी अवस्थाको वृद्धावस्था माना है। उनका कहना है कि सत्तर वर्षकी उम्रके उपरान्त मानवके धातु, इन्द्रिय-बल तथा वीर्य (पराक्रम) दिन-प्रतिदिन क्षीण होने लगते हैं। मुखपर झुर्रियोंके आने, सिरके बालोंके पकने, श्वास-कास आदि रोग तथा शारीरिक क्रियाओंमें असमर्थता होनेसे बुढ़ापा परिलक्षित होने लगता है। यद्यपि भूख, प्यास, मृत्यु और नींदकी तरह जरा स्वाभाविक विकार है, पर समयसे पहले आनेवाला बुढ़ापा शतायु होनेमें सबसे बड़ा बाधक है। आयुर्वेदीय संहिताओंमें असामयिक बुढ़ापा आनेके कारणोंमें ऋतु, काल, प्रकृति तथा शास्त्र-विरुद्ध भोजन, लगातार अत्यधिक परिश्रम, दिनमें अधिक शयन, विषय-भोगका अति सेवन, नशीले पदार्थोंका उपयोग, पचनेके पूर्व फिर

भोजन, रात्रिमें भूखे पेट शयन, अधिक पैदल चलना, अति जागरण, अति भाषण, असंयम तथा चिंता, भय, क्रोध, लोभ, मोह और ईर्ष्याका उल्लेख किया गया है। इनके अतिरिक्त उच्च रक्तचाप, मधुमेह, कैंसर, हृदयरोग, मोटापा, गठिया, श्वास-रोग तथा मानसिक विकार बुढ़ापेको शीघ्र लानेके कारण बनते हैं।

वृद्धावस्थाको रोककर शतायु होनेका वर्णन आर्षग्रन्थोंमें स्थान-स्थानपर मिलता है। अमृत, सुधा, सोम तथा रसायन—ये सभी वैदिक ऋषियोंके आविष्कार हैं। देव-वैद्यों (अश्विनीकुमारों)-द्वारा च्यवन तथा कलि और काकशिवम्‌को वृद्धसे युवा बनाकर उनके मन और शरीरमें नयी चेतनाका संचार किये जानेका प्रमाण प्राप्त होता है। दीर्घायु प्राप्त करनेके लिये आयुर्वेदके रसायन-तन्त्रमें कुटी-प्रावेशिक (अन्तरङ्ग) तथा वातातपिक (बहिरङ्ग) ये दो पद्धतियाँ बतलायी गयी हैं। रसायनका सेवन करनेसे मनुष्य दीर्घ आयु, स्मरण-शक्ति, मेधा, आरोग्य, तरुणावस्था, कान्ति, सुन्दर वर्ण, उत्तम स्वर, देहसौष्ठव, नम्रता, वाक्-सिद्धि तथा सौन्दर्य आदि गुणोंको प्राप्त करता है। रसायन-सेवनके पूर्व पञ्चकर्मद्वारा शरीरका शोधन करना आवश्यक है। स्नेहन तथा स्वेदनके उपरान्त वमन, विरेचन, अनुवासन, आस्थापन और नस्य-क्रियाओंवाले पञ्चकर्मको बुढ़ापा टालनेके लिये बहुत कारगर पाया गया है। इससे निश्चित आयुकी तुलनामें जैविक आयु काफी कम हो जाती है। पचास वर्षके व्यक्तिको पञ्चकर्मके अभ्याससे तीस वर्षके स्वस्थ व्यक्तिकी-सी शक्ति तथा स्फूर्तिका अनुभव होता है। पञ्चकर्मसे सम्पूर्ण शरीरका निर्मलीकरण हो जाता है। आयुर्वेदमें वर्णित रसायन औषधियोंमें सामान्यतया आँवला, हरड़, पीपल, तुलसी, ब्राह्मी, अश्वगन्धा, शतावरी, मुलेठी, भिलावा, वचा, गिलोय, पुनर्नवा, सफेद मुसली, सोंठ, शंखपुष्पी, ज्योतिष्मती, रास्ना, जीवन्ती, मण्डूकपर्णी, दालचीनी तथा अष्टवर्ग प्रमुख हैं। धातुओंमें सोना, चाँदी, लोहा, पारा, अभ्रक आदि भस्म दीर्घायु प्राप्त करनेमें उपयोगी रहते हैं।

कुछ वैज्ञानिकोंका मत है कि स्तनधारी प्राणी जिस आयुमें शरीरकी पूर्ण वृद्धि प्राप्त करता है, उससे सात गुना अवधितक वह जीवित रह सकता है। प्रसिद्ध अमरीकी वैज्ञानिक डोनर डकलाके अनुसार मानव-मस्तिष्कके न्यूरोन १५० से २०० वर्षोंतक जीवित रह सकते हैं। मस्तिष्कमें १० अरबसे अधिक न्यूरोन होते हैं। प्रत्येकका अपना विद्युत् आवेग होता है। यदि मनुष्यके शरीरको क्षीण करनेवाले कारणोंको रोक लिया जाय तो यौवनको अधिक कालतक बनाये रखकर आयु बढ़ायी जा सकती है। मस्तिष्कमें स्थित पिट्यूइटरी ग्रन्थि भी एक ऐसा हारमोन तैयार करती है, जिससे प्रभावित होकर शरीर प्राणवायुके उपयोगको कम करने लगता है, फलस्वरूप अनेक कोशिकाएँ मरने लगती हैं। इसे 'मृत्युहारमोन' भी कहते हैं। इस विशेष हारमोनके निर्माणपर अंकुश लगाकर जीवनकालको बढ़ाया जा सकता है।

छोटे प्राणियोंकी हृदयगति बहुत अधिक होनेसे वे कुछ ही समयतक जीवित रहते हैं, जबकि धीमी गतिवाले प्राणियोंकी आयु ज्यादा होती है। प्रयोगोंद्वारा ज्ञात हुआ है कि हृदयकी धड़कन-संख्या घटा देनेपर प्राणीकी आयु बढ़ जाती है। इसके लिये प्राणायाम और अन्य यौगिक क्रियाएँ सार्थक पायी गयी हैं।

सदाचार-युक्त जीवनका लम्बी आयुसे बहुत गहरा सम्बन्ध है। आयुर्वेदमें वर्णित आचार और रसायन-सेवनसे शरीर तथा मानसिक भावोंकी शुद्धि होती है। आचार-रसाय्रनके अनुसार सत्य बोलने, क्रोध न करने, मद्यपान और विषय-भोगसे दूर रहने, प्रिय बोलने, शान्त रहने, पवित्रता रखने, हिंसा न करने, तपस्वी जीवन व्यतीत करने, पूज्योंकी सेवा करनेवाले तथा धैर्यवान् और दानशील व्यक्ति दीर्घायु प्राप्त करते हैं। संतुलित नींद लेनेवाला, दयाभाव रखनेवाला, देश-कालके अनुसार दिनचर्या रखनेवाला, अहंकाररहित, जितेन्द्रिय और धर्मपरायण मनुष्य सदैव बुढ़ापेसे दूर रहकर पूर्णायु प्राप्त करता है।

सौ वर्षकी आयु प्राप्त करनेके लिये आयुर्वेदमें निम्न सूत्रका वर्णन किया गया है—

वामशायी द्विभुञ्जानः षण्मूत्री द्विपुरीषकः।
स्वल्पमैथुनकारी च शतवर्षाणि जीवति॥

अर्थात् बायीं करवट सोनेवाला, दो बार (२४ घंटेमें) भोजन करनेवाला, दिन-रातमें छः बार मूत्रत्याग तथा दो

बार मलत्याग करनेवाला और आवश्यक होनेपर अल्पमात्रामें विषयोंका सेवन करनेवाला व्यक्ति सौ वर्षोंतक जीवित रहता है। आचार्य चरकके अनुसार—

षट्त्रिंशतं सहस्राणि रात्रीणां हितभोजनः।
जीवत्यनातुरो जन्तुर्जितात्मा सम्मतः सताम्॥
(चरक० सू० २७। ३४८)

अर्थात् हितकारी आहार-विहार करनेवाले, जितेन्द्रिय पुरुष सज्जनोंसे प्रशंसा प्राप्त करते हुए रोगरहित होकर ३६ हजार रात्रि (दिन)-तक अर्थात् सौ वर्षोंतक जीवित रहते हैं।

शतायु होनेमें आहारकी प्रमुख भूमिका है। हितकारी, सात्त्विक तथा नियन्त्रित आहार दीर्घ जीवन प्रदान करता है। पोषक तत्त्वोंसे भरपूर, कम परिमाणमें भोजन करना गुणकारी है। अमरीकाकी 'नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एजिंग' के अनुसार भोजनमें तीससे सत्तर प्रतिशततककी ली गयी भी खाद्य वस्तु उत्तम स्वास्थ्य और आयुवर्धनमें सहायक है। फलाहार कोशिकाओंकी धातु-पाक-क्रियामें वृद्धि करते हुए शरीरको घातक रोगोंसे बचाकर आयुमें बढ़ोत्तरी करता है। अनेक खोजोंके अनुसार बुढ़ापेमें विटामिन-सी तथा 'ई' का सेवन शरीरमें रोगके प्रतिरोधकी क्षमता उत्पन्न कर दीर्घायु प्रदान करता है। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालयके वैज्ञानिक एल० वालफोर्डके अनुसार—भोजनपर नियन्त्रण रखकर कम कैलोरीका प्रयोग करके हम अधिक समयतक युवा रह सकते हैं। नियत समयपर किया गया भोजन आरोग्यवर्धक तथा सर्वोत्तम माना गया है। युक्तिपूर्वक किया गया भोजन आयुवर्धक तथा अयुक्तिपूर्वक किया गया भोजन आयुनाशक होता है।

रोगोंसे बचकर चिरजीवी होनेके लिये व्यायाम उत्तम साधन है। खुली हवामें किया गया व्यायाम पेशी तथा नाडी-तन्त्रको मजबूत करके तनावमुक्त करनेमें सहायक है। विश्व-स्वास्थ्य-संगठनकी रिपोर्टके अनुसार इस समय व्यायाम और परिश्रम करनेवाले जापानियोंकी औसत आयु विश्वमें सर्वाधिक है। नियत परिमाणमें नित्य किया जानेवाला व्यायाम हमारे रक्तमें सुरक्षा-तन्त्रकी कोशिकाओंके बलमें अपार वृद्धि करता है। वैज्ञानिकोंके अनुसार हमारे खूनमें कैंसर-कोशिकाएँ बनती-बिगड़ती रहती हैं तथा रोगोत्पत्तिका स्थान तलाश करती हैं। व्यायामसे हमारी सुरक्षा-प्रणाली सक्रिय होकर कैंसर-कोशिकाओंपर नियन्त्रण कर लेती हैं। व्यायाम सर्दी, गर्मी और प्रतिकूल वातावरणसे भी शरीरकी रक्षा करता है।

आयुर्वेदमें मनके प्रतिकूल परिस्थितियोंको शीघ्र बुढ़ापा लानेका कारण माना गया है। मानसिक तनाव उच्च-रक्तचाप, हृदयरोग, सिरदर्द, संधिशूल, उदररोग, अवसाद आदि बहुत-सी व्याधियोंको जन्म देता है। क्रोध तथा तनावमें एड्रीनल ग्रन्थिसे एड्रीनलीनके साथ-साथ स्रवित होनेवाले हारमोन ग्लूको कार्टिकोइड्स स्मरण-शक्तिको दुर्बल करते हैं तथा बुढ़ापा आनेकी प्रक्रियाको तेज कर देते हैं। शाकाहारके सेवनसे, सात्त्विक विचारवाले ग्रन्थोंके अध्ययनसे तथा भगवच्चिन्तन-ध्यान करनेसे मनुष्य तनावमुक्त रह सकता है। डॉक्टर वालेसके अनुसार 'भावातीत ध्यान' से आठ घंटेमें प्राप्त होनेवाला विश्राम मात्र बीस मिनटमें ही प्राप्त हो जाता है। यह ध्यान हृदयकी गति तथा मानसिक तनावको भी कम करता है। डॉक्टर जोविंगके मतानुसार योगसाधनासे प्लाज्मा कोर्टिसोल तथा प्लाज्मा प्रोलेक्टिनकी मात्रा घटाई जा सकती है, जिससे बुढ़ापा दूर रहता है। तनावमुक्त और विनोदपूर्ण जीवन बूढ़ोंको भी जवान बनाये रखता है।

आचार्य चरकने 'आमलकं वयःस्थापनानां श्रेष्ठम्' कहकर यौवनको स्थिर रखनेवाले पदार्थोंमें आँवलेको सर्वोत्तम माना है। यह हृदय तथा नाडी-संस्थानके लिये पौष्टिक फल है। इसमें स्थित भरपूर विटामिन-सी दिलके दौरोंसे शरीरकी रक्षा करता है। आँवलेके नित्य सेवनसे धमनियोंमें कठोरता नहीं आती, फलस्वरूप व्यक्तिकी आयु लम्बी होती है। आँवलेसे निर्मित च्यवनप्राशका सेवन करके वृद्ध महर्षि च्यवन युवा बन गये थे। आयुर्वेदके प्राचीन ग्रन्थोंमें दीर्घ आयु प्रदान करनेवाली सैंकड़ों वनस्पतियों तथा कल्पों और रसायन-विधियोंका विस्तृत वर्णन मिलता है। इनके अतिरिक्त शुद्ध वायु, शुद्ध जल, नित्य स्नान, स्वच्छता, उपवास, प्राणायाम और विनम्रताको अपनाकर जीवन व्यतीत करनेवाला यथार्थवादी व्यक्ति दीर्घजीवी होता है। इतना ही नहीं उसका अन्तःकरण भी निर्मल रहता है और उसका जीवन सत्साधनामय हो जाता है।

आयुर्वेद और मृत्यु-विचार

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी)

प्रसिद्ध प्राचीन आयुर्वेद-ग्रन्थ 'भावप्रकाश'के प्रणेता आचार्य भावमिश्रने ग्रन्थके आरम्भमें ही आयुर्वेदके उत्पत्तिक्रम एवं उसके प्रवक्ताओंका वर्णन करते हुए लिखा है कि सर्वप्रथम विश्वविधाता ब्रह्माने अथर्ववेदके सर्वस्व-स्वरूप आयुर्वेदतन्त्रको प्रकाशित किया और अपने नामसे अतिशय सरल एक लाख श्लोकोंकी 'ब्रह्मसंहिता' नामक आयुर्वेदशास्त्रकी रचना की। तदनन्तर उन्होंने इस आयुर्वेदशास्त्रकी शिक्षा दक्ष प्रजापतिको दी। पुनः दक्षने इसे स्वर्गके वैद्यके रूपमें प्रतिष्ठित दोनों अश्विनीकुमारोंको सिखाया। दक्षसे आयुर्वेदका ज्ञान प्राप्त कर अश्विनीकुमारोंने स्वतन्त्र 'आयुर्वेदसंहिता' की रचना की और फिर उसकी शिक्षा उन्होंने इन्द्रको प्रदान की। इन्द्रने अश्विनीकुमारोंसे आयुर्वेदशास्त्रका अध्ययन कर उसका ज्ञान आत्रेय आदि अनेक मुनियोंको कराया।

मुनि आत्रेय आयुर्वेद पढ़ने स्वयं इन्द्रके पास गये थे। इन्द्रसे उन्होंने साङ्गोपाङ्ग आयुर्वेदका अध्ययन किया था। तत्पश्चात् उन्होंने 'आत्रेयसंहिता' नामसे स्वतन्त्र आयुर्वेद-ग्रन्थका प्रणयन किया। तदनन्तर क्रमशः—अग्निवेश, भेल, जतूकर्ण, पराशर, क्षीरपाणि और हारीतको आयुर्वेदतन्त्रकी शिक्षा दी। इन मुनियोंमें अग्निवेश आयुर्वेदतन्त्रके प्रथम कर्ता और प्रवक्ताके रूपमें प्रतिष्ठित हुए। उसके बाद भेल आदि मुनियोंने भी अपने-अपने आयुर्वेदतन्त्रकी रचना की और उसे अपने गुरु आत्रेय मुनिको सुनाया। वे अपने शिष्योंद्वारा रचित आयुर्वेदतन्त्रको सुनकर हर्षित हुए। अन्य मुनियों और देवताओंने भी उनके आयुर्वेदतन्त्रकी प्रशंसा की।

एक बार हिमालयके पास भरद्वाज आदि अनेक मुनि पधारे। पधारनेवालोंमें भरद्वाज मुनि सर्वप्रथम थे। सबके परामर्शानुसार रोगजनित मृत्युके भयसे मुक्तिका उपाय जाननेके लिये भरद्वाज इन्द्रके पास गये। उनसे उन्होंने साङ्गोपाङ्ग आयुर्वेदका अध्ययन किया। तदनन्तर उन्होंने सभी देहधारियोंको हजार वर्ष नीरोग जीवन जीनेकी विधि बतायी।

इन्द्रके अंशभूत शेष नामके मुनि पृथिवीवासियोंके कुशल-क्षेमकी जिज्ञासा और अनामयपृच्छाके निमित्त चरकी तरह गुप्तरूपसे धरतीपर आये, जहाँ उन्होंने रोगसे मरते हुए लोगोंको देखा। तब रोगोंके उपशमनके लिये आत्रेय मुनिके अग्निवेश आदि शिष्योंद्वारा रचित आयुर्वेदतन्त्रका संस्कार करके एक स्वतन्त्र आयुर्वेद-ग्रन्थकी रचना की, जो 'चरकसंहिता' नामसे प्रसिद्ध हुई। शेष नामक मुनि चरकी भाँति धरतीपर आये थे, इसलिये वे आचार्य चरकके नामसे विख्यात हुए।

एक बार इन्द्रकी दृष्टि धरतीपर पड़ी, जहाँ उन्होंने व्याधि-पीडित और मृत्युभयसे आक्रान्त लोगोंको देखा। दयासे द्रवित होकर उन्होंने आयुर्वेदके आदिदेवके रूपमें लोकपूजित धन्वन्तरिको पृथ्वीपर भेजा। इन्द्रकी आज्ञासे धन्वन्तरि काशीके दिवोदास राजाके रूपमें अवतीर्ण हुए, जिन्होंने इन्द्रसे आयुर्वेद पढ़कर उसे लोकजीवोंके स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये धरतीपर प्रकट किया। काशिराज नामसे प्रसिद्ध धन्वन्तरिने अपने नामसे 'धन्वन्तरिसंहिता' का निर्माण किया और उसकी शिक्षा लोगोंको दी।

विश्वामित्रने अपने पुत्र सुश्रुतको काशिराजके पास आयुर्वेद पढ़नेके लिये भेजा। सुश्रुतने काशिराजसे निवेदन किया कि रोगसे पीडित लोगोंको रोते और मरते देखकर मैं व्यथित हूँ, इसलिये आप मुझे आयुर्वेद पढ़ाइये। काशिराजने यत्नपूर्वक सुश्रुतको आयुर्वेदका ज्ञान प्रदान किया। अध्ययनके बाद सुश्रुतने भी स्वतन्त्र रूपसे आयुर्वेद-ग्रन्थकी रचना की, जो 'सुश्रुतसंहिता' नामसे प्रसिद्ध हुई। सुश्रुतके अतिरिक्त उनके सहाध्यायी मित्रोंने भी अपने-अपने नामसे आयुर्वेदतन्त्रका प्रणयन किया।

आयुर्वेदके प्रवर्तकों और प्रवक्ताओंके इस विवरणसे यह स्पष्ट है कि रोगसे होनेवाली मृत्युसे बचनेके लिये ही आयुर्वेदशास्त्रकी सृष्टि की गयी। भावमिश्रने रोगोंके अनिष्टकारी कार्योंका आकलन करते हुए उन्हें प्राणहारी कहा है। मूल श्लोक इस प्रकार है—

रोगाः कार्श्यकरा बलक्षयकरा देहस्य चेष्टाहरा
दुष्टा इन्द्रियशक्तिसंक्षयकराः सर्वाङ्गपीडाकराः।
धर्मार्थाखिलकाममुक्तिषु महाविघ्नस्वरूपा बलात्
प्राणानाशु हरन्ति सन्ति यदि ते क्षेमं कुतः प्राणिनाम्॥

(भावप्रकाश— आयुर्वेदप्रवक्तृ-प्रादुर्भावप्रकरण, श्लोक ४५)

अर्थात् रोग शरीरको कृश करते हैं, बलका क्षय करते हैं, देहकी सक्रियताका हरण करते हैं, दोषयुक्त वे रोग इन्द्रियोंकी शक्तिका भी विनाश करते हैं और सारे अङ्गोंको पीडा देते हैं। सबसे बढ़कर तो यह कि रोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थोंकी प्राप्तिमें महाविघ्न-स्वरूप हैं और शीघ्र ही बलपूर्वक प्राण हर लेते हैं। यदि इस प्रकारके रोग शरीरमें विद्यमान हैं तो फिर प्राणियोंका कल्याण कैसे सम्भव है?

भावमिश्रने आयुर्वेदके लक्षणोंका निर्देश करते हुए लिखा है—

आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा।
विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते॥

(भावप्रकाश—आयुर्वेदप्रवक्तृप्रादुर्भावप्रकरण, श्लोक ३)

अर्थात् आयुकी रक्षाके लिये हितकारी एवं अहितकारी तत्त्वोंके ज्ञानके साथ रोगोंका निदान और उनका शमन जिस तन्त्र या शास्त्रसे विद्वानोंद्वारा जाना जाता है, उसे आयुर्वेद कहते हैं।

पुनः 'आयुर्वेद' शब्दकी निरुक्तिके संदर्भमें भावमिश्र लिखते हैं—

अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति वेत्ति च।
तस्मान्मुनिवरैरेष आयुर्वेद इति स्मृतः॥

(भावप्रकाश—आयुर्वेदप्रवक्तृप्रादुर्भावप्रकरण, श्लोक ४)

अर्थात् जिस शास्त्रसे पुरुष आयु-लाभ करता है और आयुके बारेमें भी जानता है, उसे ही मुनिवरोंने आयुर्वेद कहा है।

वैद्यकर्मका निर्देश करते हुए भावमिश्रने लिखा है—

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः॥

(भावप्रकाश—मिश्रप्रकरण, मिश्रवर्ग, श्लोक ५३)

अर्थात् रोगोंका तत्त्व-परिज्ञान करना यानी सम्यक् परिचय प्राप्त करना और रोगजनित वेदनाका शमन करना ही वैद्यका वैद्यत्व है, वैद्य आयुका स्वामी नहीं है। तात्पर्य यह कि वैद्य रोगीकी पीडा दूर कर सकता है, आयुकी रक्षा नहीं कर सकता।

इस अर्थके अनुसार वैद्य जब आयुकी रक्षा नहीं कर सकता, तब समग्र आयुर्वेदशास्त्रकी ही व्यर्थता सिद्ध हो जायगी और **'अनेन पुरुषो यस्मादायुर्विन्दति'** यह निरुक्ति भी निरर्थक हो जायगी। इसलिये इस संदर्भके सही अर्थके निमित्त वैद्यकर्म-निर्देशविषयक उक्त श्लोकके चतुर्थ चरणमें प्रयुक्त 'न' का अन्वय इस प्रकार होगा—**'एतदेव वैद्यस्य वैद्यत्वं न, किंतु वैद्य आयुषोऽपि प्रभुः।'** अर्थात् वैद्यका वैद्यत्व यही नहीं है, अपितु वैद्य आयुका भी स्वामी है।

इसपर यह प्रश्न उठता है कि यदि वैद्य आयुका स्वामी हो जायगा, तब तो मनुष्य मरेगा ही नहीं, वह अमर हो जायगा, जब कि मनुष्यकी अमरता मृत्युलोकके नियमके विपरीत है। इसका समाधान करते हुए 'सुश्रुतसंहिता' में धन्वन्तरि कहते हैं—

एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते।
तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषाश्चागन्तवः स्मृताः॥

(भावप्रकाश—विवृतिश्लोक संग्रह ६ में 'सुश्रुतसंहिता' से उद्धृत)

अर्थात् अथर्ववेदोक्त आयुर्वेदके तत्त्वज्ञाता पुरुषके कथनानुसार मृत्युकी संख्या एक सौ एक है। इनमें एक मृत्यु कालमृत्यु है शेष सौ मृत्युएँ आगन्तुक हैं।

चिकित्सा करनेवाला वैद्य चिकित्साद्वारा इन्हीं सौ प्रकारकी आगन्तुक मृत्युओंसे मनुष्यको बचाता है।

आयुके अन्तमें शरीरका जो संहारकर्ता होता है, उसे ही काल कहते हैं। कालमृत्युको किसी भी उपायसे टाला नहीं जा सकता। श्लोक-प्रयुक्त **'कालसंयुक्तः'** का अर्थ है—कालके द्वारा संहारके लिये नियुक्त। इसलिये कालमृत्यु अवश्यम्भावी है। शेष सौ मृत्युएँ चूँकि आगन्तुक हैं, इसलिये इनके निवारणमें आयुर्वेद समर्थ है और इसी हेतु आयुर्वेदशास्त्रकी सृष्टि हुई।

आयुर्वेदमें आगन्तुक मृत्युके जो कारण बताये गये हैं, उनमें प्रमुख हैं—विषभक्षण करना और अजीर्ण जो पच न सके यानी अधिक भोजन करना तथा दूषित स्थानोंका जल पीना, अपनेसे अधिक बलशाली जीव-जन्तुओंसे लड़ना, विषैले जन्तुओं—साँप, बिच्छू आदिसे खेलना, ऊँचे पेड़ोंकी फुनगीपर चढ़ना, बड़ी-बड़ी नदियोंको तैरकर पार करना, रातमें अकेले राह चलना या किलेमें घूमना इत्यादि।

ज्ञातव्य है, आयु रहनेपर भी आगन्तुक मृत्यु दुर्निमित्त

एवं होनीकी प्रबलताके कारण मनुष्यको मार डालती है। जैसे तेल-बत्ती और लौके रहनेपर भी आँधी दीपकको बुझा देती है।

वैद्य मृत्युके आगन्तुक कारणोंका निवारण कर सकता है, इसलिये रस-रसायनके ज्ञाता वैद्य और मन्त्रवेत्ता पुरोहित यत्नपूर्वक आगन्तुक दोषोंके कारणोंसे राजाकी रक्षा करें। ऐसा 'सुश्रुतसंहिता'में धन्वन्तरिका वचन है—

दोषागन्तुनिमित्तेभ्यो रसमन्त्रविशारदौ।
रक्षेतां नृपतिं नित्यं यत्नाद्वैद्यपुरोहितौ॥

निष्कर्ष यह कि आयुर्वेदका अधीती वैद्य या कोई भी चिकित्सक आगन्तुक मृत्युको ही रोक सकता है, कालमृत्युको नहीं। 'माधवनिदान'के अनुसार जो वैद्य 'संनिपातज्वर'की चिकित्सा करता है, वह मृत्युसे लड़ता है। इस संदर्भमें यह पंक्ति स्मरणीय है—

'मृत्युना सह योद्धव्यं संनिपातं चिकित्सता।'

सचमुच रोगकी चिकित्सा करते समय चिकित्सक मृत्युसे जूझता है। यहाँ मृत्युसे तात्पर्य आगन्तुक मृत्युसे ही है।

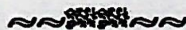
भावमिश्रने इसी संदर्भमें वैद्योंको निर्देश किया है कि वे चिकित्सा करनेके पूर्व रोगीके दीर्घायु और स्वल्पायु होनेके लक्षणोंका प्रयत्नपूर्वक परीक्षण करें। उसके बाद ही उसकी चिकित्सा करना स्वीकार करें। अन्यथा उनका चिकित्सा-कार्य सफल नहीं हो सकेगा। मूल श्लोक इस प्रकार है—

भिषगादौ परीक्षेत रुग्णस्यायुः प्रयत्नतः।
तत आयुषि विस्तीर्णे चिकित्सा सफला भवेत्॥

(भावप्रकाश—मिश्रप्रकरण, मिश्रवर्ग, श्लोक ५४)

अर्थात् वैद्य पहले प्रयत्नपूर्वक रोगीकी आयुका परीक्षण करे। आयु बड़ी रहनेपर ही चिकित्सा सफल हो सकती है।

आयुर्वेद मूलतः आयुर्विज्ञान है, जिसका सीधा सम्बन्ध शरीरसे है। शरीर ही जीता और मरता है। इसलिये आयुर्वेदशास्त्रमें आयु और मृत्युका विचार शरीराश्रित है।



आयुर्वेदीय निदानकी अनूठी पद्धति—नाडी-परीक्षा

(वैद्य श्रीगोविन्दप्रसादजी उपाध्याय, विभागाध्यक्ष रोगनिदान विज्ञान विभाग, आयुर्वेद महाविद्यालय, नागपुर)

आयुर्वेदमें व्याधि-निदानको बहुत महत्त्व दिया गया है। आचार्योंका स्पष्ट निर्देश है कि पहले रोगका ज्ञान करे, तदनन्तर अपने पास उपलब्ध औषधिका ज्ञान करे, तब उपचार प्रारम्भ करना चाहिये—

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्।
ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत्॥

(चरकसंहिता)

आयुर्वेदशास्त्रमें रोगनिदानके लिये रोगकी परीक्षा है और रोग-परीक्षणके माध्यमसे अनेक साधन बताये गये हैं, जिनमें अन्यतम है नाडी-परीक्षा।

विश्वकी सभी चिकित्सा-पद्धतियोंमें रोगीकी परीक्षाके क्रममें नाडीकी परीक्षाका विधान है, किंतु जितना व्यापक विचार नाडी-परीक्षाके संदर्भमें आयुर्वेदने किया है, उतना अन्य किसी भी चिकित्सा-पद्धतिमें नहीं किया गया है। आयुर्वेदमें नाडी-परीक्षा रोगनिदानकी पर्याय बन चुकी है। किसी वैद्यके पास रोगी आता है तो बिना अधिक चर्चा किये वह नाडीकी परीक्षा-हेतु अपना हाथ आगे बढ़ा देता है और अपेक्षा रखता है कि वैद्यजी नाडी-परीक्षा करके मेरा सम्पूर्ण निदान कर दें। कुछ ऐसे नाडी-वैद्य भी हुए हैं जो मात्र नाडीकी परीक्षा करके रोगीके लक्षण, व्याधि, परिणाम और आहार-विहारका सत्य-सत्य वर्णन कर देते थे।

वस्तुतः रोगीकी परीक्षाका विधान आयुर्वेदमें अति प्राचीन है और उन परीक्षणोंमें स्पर्श-परीक्षा एक स्वतन्त्र विज्ञान है। स्पर्श-परीक्षाके अन्तर्गत गतिमान् या स्फुरण करनेवाले अङ्गोंका स्पर्श कर परीक्षा करनेका स्पष्ट निर्देश है। इसी क्रममें नाडी-परीक्षा आती है। नाडी-परीक्षाकी व्यापक उपादेयताके कारण यह विज्ञान क्रमशः विकसित होता गया और इसके उपबृंहणमें प्राचीन योगशास्त्र एवं तन्त्र-विज्ञानका भरपूर सहयोग मिला है। रावण तथा कणाद आदि महर्षियोंने नाडीशास्त्रपर स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे हैं एवं योगरत्नाकर, शार्ङ्गधर आदिने सामग्री प्रस्तुत की है। रोगीका

शरीर व्याधिका आश्रय होता है। रुग्णावस्थामें शरीरके कुछ अङ्गोंमें अनुपेक्षणीय परिवर्तन आते हैं, जिनसे व्याधि-निदान-सम्बन्धी निश्चित संकेत मिलते हैं। आचार्योंने ऐसे आठ स्थानों (भावों)-में नाडी, मूत्र, मल, जिह्वा, शब्द, स्पर्श, नेत्र एवं आकृतिका वर्णन किया है, जहाँ ये परिवर्तन अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट एवं व्यापक स्वरूपके होते हैं—

रोगाक्रान्तस्य देहस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत्।
नाडी मूत्रं मलं जिह्वां शब्दस्पर्शदृगाकृती:॥

(योगरत्नाकर)

वैद्यको रोगग्रस्त व्यक्तिके इन आठ अङ्गोंकी परीक्षा करनी चाहिये। इनमें भी नाडी-परीक्षाको प्रथम और अनिवार्यरूपसे प्रत्येक आचार्योंने परिगणित किया है। आयुर्वेदकी परम्पराके अनुसार जो प्रधान होता है, उसका प्रथम उल्लेख किया जाता है। इस आधारपर इन परीक्षाओंमें नाडी-परीक्षा प्रमुख है। अन्य अङ्गोंकी परीक्षा स्थानिक विकृतियों या सीमितरूपसे सर्वाङ्गविकृतियोंको प्रकट करती है, परंतु नाडी-परीक्षाकी उपादेयता बहुत व्यापक है। नाडीके ज्ञानसे यह जान लिया जाता है कि शरीरमें प्राण है या नहीं। हाथके अँगूठेके मूलके नीचे जो नाडी है वह जीवके साक्षी-स्वरूप है। यथा—

करस्याङ्गुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी।
तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैः॥

(शार्ङ्गधर पूर्वखण्ड ३। १)

नाडीकी परीक्षा-विधि

(Methods of Pulse Examination)

नाडी-परीक्षा एक तान्त्रिक विज्ञान है, अतः उसकी परीक्षाके कुछ सुनिश्चित विधि-विधान हैं, कुछ निषेध हैं। नाडी-परीक्षा-सम्बन्धी साहित्यके अनुशीलनसे ज्ञात होता है कि नाडी-परीक्षा-विधानके तीन पक्ष हैं—(१) चिकित्सक-सम्बन्धी, (२) रोगी-सम्बन्धी और (३) परीक्षा-सम्बन्धी।

चिकित्सक-सम्बन्धी[1] —

(१) चिकित्सकको स्थिरचित्तसे तन्मयताके साथ नाडी-परीक्षा करनी चाहिये अर्थात् मन तथा बुद्धिकी एकाग्रताके साथ नाडीकी परीक्षा करे।

(२) नाडी-परीक्षा करते समय चिकित्सक सुखासनसे पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर परीक्षण करे।

(३) चिकित्सकद्वारा मद्य-जैसे किसी भी मादक द्रव्यका सेवन करके नाडी-परीक्षा करना निषिद्ध है।

(४) नाडी-परीक्षा करते समय मल-मूत्र आदिका वेग नहीं रहना चाहिये अन्यथा एकाग्रता नहीं बनती है।

(५) धनके लोभी, कामुक चिकित्सक नाडी-परीक्षा-द्वारा निदान करनेमें असमर्थ रहते हैं अर्थात् लोभ तथा काम-वासनासे रहित होकर नाडी-परीक्षा करनी चाहिये।

(६) चिकित्सकको अपने दायें हाथकी तीन अँगुलियोंद्वारा नाडी-परीक्षा करनी चाहिये।

(७) नाडी-परीक्षामें उतावलापन उचित नहीं है। कम-से-कम दो मिनट नाडी-परीक्षा करनी चाहिये।

रोगी-सम्बन्धी[2] —

(१) रोगीने मल-मूत्र-विसर्जन कर लिया हो अर्थात् मलोंका वेग-विधारण नहीं होना चाहिये।

(२) जब रोगी सुखासनसे बैठा हो, हाथ जानुके अंदर हो या आरामसे लेटा हो, तब परीक्षा करे।

(३) वह भूख-प्याससे पीडित न हो।

(४) तत्काल भोजन नहीं किया हो, सोया न हो, धूपसे न आया हो।

(५) व्यायाम तथा स्नान करनेके तत्काल बाद नाडी-परीक्षा न करे।

(६) व्यवाय (मैथुन) किया हुआ न हो एवं भूखे पेट न हो, मद्यपानरहित हो। उपवास न किया हो और

---

१. स्थिरचित्तो निरोगश्च सुखासीनः प्रसन्नधीः। नाडीज्ञानसमर्थः स्यादित्याहुः परमर्षयः॥
पीतमद्यश्चञ्चलात्मा मलमूत्रादिवेगयुत्। नाडीज्ञानेऽसमर्थः स्याल्लोभाक्रान्तश्च कामुकः॥ (नाडीज्ञानतरंगिणी)

२. सद्यःस्नातस्य सुप्तस्य क्षुत्तृष्णातपशीलिनः। व्यायामश्रान्तदेहस्य सम्यङ्नाडी न बुध्यते॥ (भावप्रकाश)
भुक्तस्य सद्यःस्नातस्य निद्रितस्योपवासिनः। व्यवायश्रान्तदेहस्य भूतावेशिनि रोदने॥
सुन्दरीणां च संयोगे मद्यपाने मतिभ्रमे। अपस्मारश्रान्तदेहे सम्यङ्नाडी न बुध्यते॥ (वसवराजीयम्)
त्यक्तमूत्रपुरीषस्य सुखासीनस्य रोगिणः। अन्तर्जानुकरस्थो हि नाडी सम्यक् परीक्षयेत्॥ (नाडीज्ञानतरंगिणी)

शरीर थका न हो।

(७) काम, क्रोध, शोक, भयग्रस्त, उद्विग्न, चञ्चल-मनवाले रोगीकी नाडी-परीक्षा न करे अथवा उन मनोभावोंको शान्त कर परीक्षा करनी चाहिये।

इन कारणोंसे नाडीकी प्राकृत गतिका यथोचित ज्ञान नहीं हो पाता। 'सम्यङ्नाडी न बुध्यते'से यही तात्पर्य है कि इन आहार-विहार, मनोभावोंके प्रभावसे नाडीकी स्वाभाविक गतिमें परिवर्तन आ जाता है और शरीर-दोष एवं रोग-सम्बन्धी वास्तविक गतिका ज्ञान नहीं हो पाता।

परीक्षा-सम्बन्धी[1]—

(१) प्रातः खाली पेट नाडी-परीक्षा करनेकी परम्परा है।

(२) रोगीको आरामसे लिटाकर या बैठाकर नाडी-परीक्षा करनी चाहिये।

(३) बैठे हुए रोगीका कुहनीसे आगेका हाथ वैद्य अपने बायें हाथपर रखे। ऊर्ध्वमुख-मुद्रामें, फिर मणिबन्ध-संधिमें अङ्गुष्ठ-मूलसे एक अंगुल नीचे, तीन अँगुलियोंसे बहिः-प्रकोष्ठीया धमनीका परीक्षण करे। बायें हाथके सहारेके कारण हाथ शिथिल रहता है और नाडीकी गति स्पष्ट मिलती है।

(४) रोगीकी अँगुलियोंको अंदरकी ओर थोड़ा मोड़कर केलेके समान आकार देकर रखना चाहिये।

(५) स्त्रियोंकी बायें हाथकी, पुरुषोंकी दायें हाथकी नाडी देखनेका विधान है। उत्तम तो यह है कि स्त्रियों तथा पुरुषों दोनोंहीकी नाडी दोनों हाथोंमें देखनी चाहिये। अनेक बार दोनों हाथोंकी गतियोंमें परस्पर भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। पुरुषकी पहले दायीं फिर बायीं तथा स्त्रीकी पहले बाँयी फिर दायीं नाडीकी परीक्षा करनी चाहिये।

(६) वैद्यको अपनी तर्जनी, मध्यमा, अनामिका—तीनों अँगुलियोंसे नाडीकी परीक्षा करनी चाहिये। एक-एक अँगुली उठाकर फिर थोड़ा दबाव डालकर गति देखनी चाहिये।

(७) मणिबन्धकी नाडी-गतिमें भ्रम या अस्पष्टता-सी स्थिति हो तो अन्य स्थानकी नाडी देखनी चाहिये और उनका परस्पर समन्वय करके देखना चाहिये।

(८) परीक्षण-हेतु रखी अँगुलियोंको उठाकर पुनः नाडीपर थोड़ा दबाव डालते हुए तीन बार परीक्षा करनी चाहिये। अब अंशांश दोष-विकृतिका या व्याधिका विनिश्चय करना चाहिये।

दोषानुसार नाडीकी गति—

आयुर्वेदने स्वास्थ्य एवं रोग—इन दोनोंके लिये क्रमशः दोषोंकी साम्यता एवं वैषम्यको उत्तरदायी माना है। दोषोंकी तीन अवस्थाएँ हैं—(१) वृद्धि, (२) क्षय एवं (३) साम्यता या समावस्था। इनमें समावस्था स्वास्थ्यके लिये और वृद्धि तथा क्षय-अवस्थाएँ रोगके लिये कारणीभूत होती हैं। अन्य शारीरिक क्रियाओंके साथ-साथ नाडीगतिमें भी इन दोषोंकी अवस्थाओंका प्रभाव पड़ता है—

दोषाः प्रवृद्धाः स्वं लिङ्गं दर्शयन्ति यथाबलम्।
क्षीणा जहति स्वं लिङ्गं समाः स्वं कर्म कुर्वते॥

अर्थात् प्रवृद्ध दोष अपने कार्योंको, गुणोंको प्रवृद्ध करते हैं तथा क्षीण हुए दोष अपने कार्यों, गुणोंको कम करते हैं, घटाते हैं तथा सममात्रामें रहनेपर वे अपने निर्धारित कार्योंको सम्पन्न करते हैं। ठीक इसी प्रकार नाडीमें इन दोषोंकी स्थितियाँ मिलती हैं अर्थात् प्रवृद्ध दोष नाडीमें अपनी प्रव्यक्तता और भी अधिक व्यक्त करते हैं तथा क्षीण दोष अपने स्थान, प्रव्यक्तता एवं गतिमें—ह्रास (कमी) प्रकट करते हैं। जब कि समावस्थामें दोष अपनी निर्धारित गति एवं स्थानपर उपलब्ध होते हैं। जैसा कि शास्त्रोंने उल्लिखित किया है कि तर्जनीके नीचे वायु, मध्यमाके नीचे पित्त और अनामिकाके नीचे कफकी नाडी प्रव्यक्त होती है—

वातेऽधिके भवेन्नाडी प्रव्यक्ता तर्जनीतले।
पित्ते व्यक्ताऽथ मध्यायां तृतीयाङ्गुलिका कफे॥

प्रव्यक्ततासे तात्पर्य है कि बिना अधिक दबाव किये नाडीका स्पन्दन किस अँगुली-विशेषके नीचे अधिक उछालके साथ प्रतीत होता है। इस परीक्षामें अँगुलियोंकी स्थिति तथा दबावका विशेष ध्यान रखना चाहिये अर्थात् अँगुली अपने स्थानपर स्थित हो, ऊपर या नीचे न रहे तथा अत्यन्त अल्प दबाव देनेकी अपेक्षा रहती है। अधिक

---

१. ईषद्विनम्रकृतकूर्परवामभागे हस्ते प्रसारितसदङ्गुलिसंधिके च।
अंगुष्ठमूलपरिपश्चिमभागमध्ये नाडी प्रभातसमये प्रहरं परीक्ष्या॥ (योगरत्नाकर)
एकाङ्गुलं परित्यज्य मणिबन्धे परीक्षयेत्। अधःकरेण निष्पीड्य त्रिभिरङ्गुलिभिर्मुदः॥
लघुवामेन हस्तेन चालम्ब्यातुरकूर्परम्। स्फुरणं नाडिकायास्तु शास्त्रेणानुभवैर्निजैः॥ (नाडी-परीक्षा)
वारत्रयं परीक्षेत धृत्वा धृत्वा विमोचयेत्। विमृश्य बहुधा बुद्ध्या रोगव्यक्तिं विनिर्दिशेत्॥ (योगरत्नाकर)

दबाव देनेपर प्रव्यक्तता समझनेमें भ्रम हो सकता है।

गतिके अनुसार दोष-ज्ञान—दोषोंके अनुसार कुछ विशिष्ट गतियोंका वर्णन बड़ी प्रधानताके साथ आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें किया गया है। गति-संख्याकी दृष्टिसे वात-नाडी विषम अर्थात् कभी अल्प, कभी तीव्र तथा कभी मन्द गति मिलती है। पित्तके कारण चपला अर्थात् तीव्र गति एवं कफके कारण स्थिरा या स्तब्धा अर्थात् मन्द गति मिलती है—

वाते वक्रगतिर्नाडी चपला पित्तवाहिनी।
स्थिरा श्लेष्मवती प्रोक्ता सर्वालिङ्गा च सर्वगा॥

(नाडी-परीक्षा)

विशिष्ट नाडी-गतिके सम्बन्धमें विभिन्न प्राणियोंकी गतियोंका उदाहरण देते हुए सभी आचार्योंने दोषानुसार विशिष्ट नाडी-गति स्पष्ट करनेका प्रयास किया है। उदाहरणोंसे ज्ञात होता है कि ये विशिष्ट नाडी-गतियाँ कितनी सूक्ष्म अनुभूतिपरक हैं। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि प्रत्येक व्यक्तिकी अनुभूतियाँ एक-सी होते हुए भी उनकी अभिव्यक्त करनेकी शैली भिन्न होती है, अतएव आचार्योंने बाह्य जगत्के पशु-पक्षियोंके उदाहरण दिये हैं। जिससे जिज्ञासुको बिना किसी भ्रमके उन गतियोंका स्थायी ज्ञान हो सके और सभीकी समझ एक-सी रहे—

वातोद्रेके गतिं कुर्याज्जलौकासर्पयोरिव।
पित्तोद्रेके तु सा नाडी काकमण्डूकयोर्गतिम्।
हंसस्येव कफोद्रेके गतिं पारावतस्य वा॥

(नाडी-परीक्षा)

वायुके अनुसार नाडीकी गति—वायुके विशेषणोंमें वक्रा या वक्रगतिका—ये दो सर्वाधिक उल्लिखित हैं। वक्रा विशिष्टगति अर्थात् रक्तवाहिनीमें अति वक्र विशिष्ट स्वभावकी गति (लहर)-से है। नाडी-परीक्षा करते समय वैद्य अपनी तीनों अँगुलियोंको एक रेखामें रखे। अँगुलियोंके मध्यमें स्थित केन्द्रक जो सर्वाधिक संज्ञावाही होता है, उसे नाडीके बीचोबीच रखना चाहिये और फिर ध्यानपूर्वक देखे कि नाडी-संवहन एक सीधी रेखामें आ रहा है अथवा कभी दायें, कभी बायें अंदरकी ओर या बाहरकी ओर स्पर्श करता हुआ आ रहा है। जैसे सर्पकी गति होती है, यही वक्रता है। दूसरे प्रकारकी वक्रता स्फुरणकी उच्चताके आधारपर हो सकती है, जैसा कि जलौकाकी गतिमें मिलता है।

पित्तानुसार नाडीकी गति—चपला, चपलगा, तीव्रा आदि विशेषण पित्त-प्रभावसे प्रवृद्ध नाडीकी गति-संख्याको सूचित करते हैं अर्थात् पित्त-प्रकोपके सर्वसामान्य परिवर्तनोंमें प्रति मिनट नाडीकी गति-संख्यामें वृद्धि अवश्यम्भावी है, जब कि स्फुलिङ्ग, काक-मण्डूक आदि जीवोंकी गतिके उदाहरण विशिष्ट स्वभाववाली गतियोंके लिये है। ये सभी जन्तु उछल-उछल कर चलते हैं अर्थात् इनका एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जानेके मध्य अन्तराल रहता है। इस प्रकार पित्तकी नाडी तय करनेके लिये दो प्रमुख आधार बनते हैं—(१) स्पन्दनकी उच्चता और (२) एक स्पन्दनसे दूसरे स्पन्दनके बीचमें निर्मित होनेवाला अन्तराल। इन आधारोंपर कह सकते हैं कि पित्तकी नाडी तीव्रगति, उच्चस्पन्दनयुक्त एवं अन्तरालके साथ उछलती हुई चलती है।

कफके अनुसार नाडीकी गति—स्थिरा, स्तिमितता, स्तब्धा, प्रसन्ना आदि विशेषण कफ-नाडीके संदर्भमें मिलते हैं। स्थिरा तथा स्तब्धासे तात्पर्य नाडीकी गति-संख्याकी कमी तथा नियमितता है। स्तिमितता या चिपचिपापन कफके अतिरिक्त आम, अजीर्ण-जैसी अन्य अवस्थाओंमें भी मिलता है। प्रसन्नासे तात्पर्य यह है कि नाडी पूर्ण और एक-सी गतिसे चलती हुई मिलती है।

विशिष्ट गतियोंके संदर्भमें हंस, कबूतर तथा हाथीकी गतियोंका उदाहरण दिया जाता है। ये सभी आरामसे बिना उतावलेपनके चलते हैं। कफके प्रभावसे भी नाडी बिना अकुलाहटके आरामसे चलती है।

रोगोंके अनुसार नाडीकी गति—रोगोंका ज्ञान होना नाडीकी परीक्षाका प्रमुख उद्देश्य है। विभिन्न नाडी-परीक्षा-सम्बन्धी ग्रन्थोंमें अनेक विशिष्ट रोगोंकी विशिष्ट नाडी-गतियाँ वर्णित हैं। व्यवहारमें भी अनेक वैद्यराज नाडी-परीक्षाद्वारा सटीक रोग-निदान करते हैं।

व्याधि-विशेषमें या व्याधिकी विशिष्ट अवस्थाके अनुसार विशिष्ट नाडी-गतियाँ मिलती हैं। जिज्ञासुजन नाडी-ग्रन्थोंका अध्ययन करके इस संदर्भमें ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

असाध्यतासूचक नाडीकी गति—आयुर्वेदके आचार्योंने व्याधिकी साध्यासाध्यतापर विशेष विचार किया है। रोगका चिकित्साक्रम-निर्धारण एवं परिणाम-ज्ञानके साथ-साथ चिकित्सकके यशकी रक्षा भी प्रमुख उद्देश्य है। असाध्यता एवं अरिष्टसूचक नाडीकी गतियोंका प्रचुर वर्णन नाडी-ग्रन्थोंमें मिलता है।

अनेक प्रकारसे काल-मर्यादाके साथ नाडीकी असाध्यता

शास्त्रमें वर्णित है। यथा—प्रहर, ज्वालावधि, सद्योमारक, सार्धप्रहर, एकरात्रि, अहोरात्र, त्रिदिवस, सप्तरात्रि, पक्ष या मास आदि। इनके पीछे ऋषियोंके अलौकिक ज्ञानकी भूमिका रही है। अनेक वैद्योंकी इस प्रकार कालावधिके साथ मृत्यु-घोषणा करने-हेतु ख्याति रही है। साधारणसे दीखते इन लक्षणोंका संयोग और उन्हें पकड़ लेनेका अभ्यास तथा उत्तम नाडी-ज्ञान ही इस प्रकारकी घोषणा करनेकी शक्ति दे सकता है।

यदि नाडी स्पर्शमें बहुत सूक्ष्म (पतली) हो, भिन्न-भिन्न गतियोंके साथ जल्दी-जल्दी चल रही हो, भारसे दबी हुई-सी चले, स्पर्शमें गीली-सी लगे, बार-बार स्पर्श अलभ्य हो जाय अर्थात् रह-रहकर स्पन्दनरहित होती हो तो उसे असाध्यतासूचक मानना चाहिये—

अतिसूक्ष्मा पृथक् शीघ्रा सवेगाभारिताऽर्द्रिका।
भूत्वाभूत्वा म्रियेतैव तदा विद्यादसाध्यताम्।

(नाडी-परीक्षा)

मृत्युसूचक नाडीकी गति—मणिबन्धसंधिके अपने स्थानसे च्युत नाडी निश्चितरूपसे मृत्युसूचक होती है—

'हन्ति स्थानविच्युता'। (नाडी-परीक्षा)

कुछ आचार्योंके मतसे स्थानच्युत नाडियाँ सद्यः मृत्युसूचक होती हैं अर्थात् शीघ्र ही मृत्यु होगी, यह संकेत देती हैं—

'स्थानच्युतिश्च नाडीनां सद्यो मरणहेतवः'॥

नाडीमें बार-बार कम्पन हो रहा हो, पतले धागेके समान सूक्ष्म स्पन्दन मिल रहा हो तथा अँगुलीको स्पर्श करता स्पन्दन अत्यन्त हल्का (अल्प बल) हो तो निश्चित मृत्युसूचक है।

जब शरीरका ताप अधिक हो एवं नाडी स्पर्शमें ठंडी हो और यदि शरीर ठंडा हो, किंतु नाडी स्पर्शमें उष्ण हो तथा अनेक प्रकारकी गतियोंके साथ चलती हो अर्थात् बार-बार जल्दी-जल्दी गति-परिवर्तन हो रहा हो तो वह भी मृत्युसूचक है—

महातापेऽपि शीतत्वं शीतत्वे तापिता सिरा।
नानाविधिगतिर्यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः॥

(नाडी-विज्ञान)

इस प्रकार आयुर्वेदीय साहित्यमें नाडी-परीक्षाके संदर्भमें बहुत विस्तारसे उपयोगी वर्णन प्राप्त होते हैं।

नाडी-विज्ञान

(वैद्य श्रीमदनगोपालजी शर्मा, भिषगाचार्य, पूर्व निदेशक, विभागाध्यक्ष-कायचिकित्सा, मौलिक सिद्धान्त राष्ट्रिय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर)

आयुर्वेद अनादि, शाश्वत एवं आयुका विज्ञान है। इसकी उत्पत्ति सृष्टिकी रचनाके साथ हुई। जिन तत्त्वोंसे सृष्टिकी रचना हुई, उन्हीं तत्त्वोंसे ही इसकी उत्पत्ति हुई। रचना एवं क्रियाका सम्पादन शरीरकी प्राकृत एवं विकृत अवस्थापर सम्भव है। ब्रह्माण्डमें स्थित तत्त्वोंसे पञ्चभूतोंद्वारा सारी सृष्टि प्राणिमात्र—जड-चेतन, स्थावर-जङ्गम, खनिज-वनस्पति यावन्मात्र समस्त वस्तुजातिकी रचना हुई है।

आयुर्वेदके मूल स्तम्भ पञ्चमहाभूत ही हैं। शरीरमें वात, पित्त एवं कफके भी इन पाँच भेदोंके आधारपर प्रत्येक दोषके पाँच-पाँच भेद किये गये हैं तथा उनके आधारपर शरीरमें स्थान, गुण तथा कर्मका वर्णन कर इनके प्राकृत कर्म बताये हैं, यही प्राकृत कर्म जब सम रहते हैं तो प्राकृतावस्था अर्थात् स्वस्थता रहती है और इनके विकृत हो जानेपर अप्राकृतावस्था अथवा अस्वस्थता हो जाती है। चिकित्सा-सिद्धान्तमें भी पञ्चमहाभूतोंकी प्रधानता होनेसे जो मूलभूत चिकित्सा है, उसमें क्षीण हुए दोष एवं महाभूतोंकी वृद्धि करना और जो बढ़े हुए हैं उनका ह्रास करना तथा समका पालन करना ही चिकित्सा है।

वात

शरीरस्थ वायु-दोषके शरीरके उत्तमाङ्गसे मूलाधारतक क्रमशः पाँच भेद किये हैं, जो इस प्रकार हैं—

प्राण—मूर्धामें। उदान—उर-प्रदेशमें। समान—कोष्ठमें। व्यान—सर्वशरीरमें। अपान—मूलाधारमें।

—इनमें महाभूतोंकी अधिकताको यदि लें तो प्राणवायु आकाश महाभूत-प्रधान, उदान अप् महाभूत-प्रधान, समान तैजस महाभूत-प्रधान, व्यान वायु महाभूत-प्रधान तथा अपान पृथ्वी महाभूत-प्रधान हैं।

पित्त

शरीरके उत्तमाङ्गसे अधोभागतक महाभूतोंकी प्रधानतासे पाँच भेद किये गये हैं, जैसे—

आलोचक—नेत्र, तैजस महाभूत-प्रधान।
साधक—हृदय, आकाश महाभूत-प्रधान।
पाचक—कोष्ठ, पृथ्वी तत्त्व-प्रधान।
रंजक—यकृत्, प्लीहा, अप् महाभूत-प्रधान।

भ्राजक—सर्वशरीरगत त्वक् वायु महाभूत-प्रधान।

कफ

इसी प्रकार कफके भी पाँच रूप-भेद हैं—

बोधक—जिह्वामें, तैजस महाभूत-प्रधान।

क्लेदक—आमाशयमें, अप् महाभूत-प्रधान।

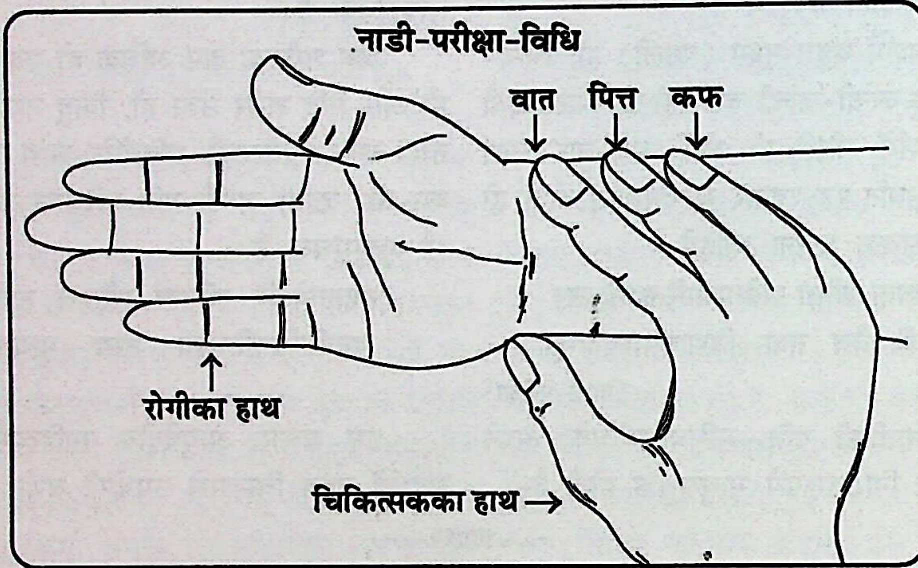
अवलम्बक—हृदयमें, पृथ्वी महाभूत-प्रधान।

तर्पक—इन्द्रियोंमें, आकाश महाभूत-प्रधान।

श्लेषक—संधियोंमें, वायु महाभूत-प्रधान।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शरीरमें सबके स्थान नियत हैं और प्रत्येकके कर्म भी शास्त्रमें वर्णित हैं। नाडी-परीक्षणसे पूर्व इनका ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है; क्योंकि नाडी-ज्ञान इनके बिना सम्भव नहीं।

नाडी-ज्ञान-प्रक्रिया



पुरुषके दायें हाथ एवं स्त्रीके बायें हाथके अंगुष्ठ-मूलसे कुछ दूरीपर तर्जनी, मध्यमा, अनामिका अँगुलियोंको क्रमशः रखकर कूर्पर-संधिको आश्रित न रखते हुए ९० डिग्रीके कोणपर चिकित्सक ध्यानस्थ हो हृदयसे आनेवाले स्पन्दनका अनुभव करे। तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिकाके स्पन्दनोंको तरतम-विधिसे ज्ञात करके प्रत्येक अँगुलीके नीचे पाँचों भेदोंको तर्जनीके नीचे पाँचों वायु, मध्यमाके नीचे पाँचों पित्त तथा अनामिकाके नीचे पाँचों कफका ज्ञान प्राप्त करे और उनके स्थान एवं कर्मका ज्ञान होनेपर उनसे होनेवाले कर्मोंके लक्षणवाली व्याधिका होना सुनिश्चित करे। किसी कर्मको प्रश्नके रूपमें पूछनेपर उसकी यथार्थताका ज्ञान करे। दोष-भेदसे भी नाडी-परीक्षा की जाती है। दोषोंके अंशांशकी वृद्धि (भेद-स्वरूप) तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिकाके स्पर्शमें स्पष्ट तरङ्गित होती है।

नाडी एवं नाडी-ज्ञानद्वारा रोगका ज्ञान प्राप्त करना एक असाधारण कार्य है। इसके लिये विपुल समय, ज्ञान एवं विपुल अनुभवकी अपेक्षा है। यहाँ अत्यन्त सूक्ष्म रूपमें दिशा-निर्देश किया गया है।

बालीमें आयुर्वेद-ग्रन्थके लेखक—श्रीगणेशजी

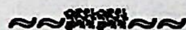
(श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास)

बालीमें मैं उस समय आश्चर्यचकित रह गया जब वहाँके एक ब्राह्मणश्रेष्ठसे, जो केन्द्रीय संसद्में वहाँका प्रतिनिधित्व करते थे, यह पता चला कि इस द्वीपमें ऐसी मान्यता है कि आयुर्वेदीय जड़ी-बूटियोंसे सम्बन्धी ग्रन्थके रचयिता स्वयं श्रीगणेशजी हैं। उन्होंने अपने धार्मिक ग्रन्थोंका उल्लेख करते हुए बताया कि एक बार भगवान् शिव बीमार पड़े तो उन्होंने नवग्रहों या नवदेवोंको बुलाकर अपनी चिकित्सा करनेके लिये कहा, किंतु वे सभी असफल रहे। तब उन्होंने संसारकी सभी जड़ी-बूटियोंको बुलाया और पूछा कि तुम सबमें गुण क्या हैं। सभीने बारी-बारीसे इसका बखान किया। जब यह क्रम चल रहा था तो एक ओर विराजमान श्रीगणेशजी महाराज उसे लिपिबद्ध कर रहे थे, जो अन्तमें एक विशाल ग्रन्थ बन गया, जिसका नाम 'प्रमानतरु' पड़ा। यहाँके वैद्य यह पुस्तक अपने पास

रखते हैं। यहाँके वैद्योंको प्रायः ज्योतिषका भी ज्ञान रहता है। इन ब्राह्मणश्रेष्ठने मुझे अपने अनुजसे मिलवाया, जो एक वैद्य थे।

इसके अतिरिक्त चीन, थाईलैंड, तिब्बत आदिमें आयुर्वेद अथवा देशी चिकित्सा-पद्धति बहुत लोकप्रिय है। थाइलैंडमें आयुर्वेदका अच्छा महत्त्व है और कुछ अच्छे वैद्य भी लोकप्रिय हैं। थाईलैंड, कम्बोडिया, मलेशिया, इंडोनेशिया आदिमें चिकित्साकी चीन देशकी पद्धति भी बहुत लोकप्रिय है। इसका कारण बड़ी संख्यामें वहाँ चीनियोंका निवासी होना भी है। मुझे चीन तथा थाईलैंड सिंगापुर, मलेशिया आदिमें यह जानकर बहुत संतोष हुआ कि वहाँ चीन-वैद्योंके माध्यमसे चीनी चिकित्सा-पद्धति बहुत लोकप्रिय है। जिस तरहसे भारतके बड़े शहरोंके साथ छोटे शहरोंमें भी आयुर्वेदिक दवाओंके बिक्री-केन्द्र कम हुए हैं या आयुर्वेदिक औषधियों, जड़ी-बूटियोंकी दुकानें नाममात्रको रह गयी हैं, वहाँ दूसरी ओर इन देशोंमें चीनियोंकी बड़ी-बड़ी दूकानें अनेक सड़कों और मोहल्लोंमें देखी जा सकती हैं। यहाँ बड़ी मात्रामें जड़ी-बूटियाँ, वन-औषधियों और उनसे बनी दवाइयोंकी बिक्री होती है। इसका अर्थ है कि वहाँके लोगोंका एलोपैथीके प्रचार-प्रसारके बावजूद भी देशी चिकित्सा-पद्धतिके प्रति अत्यधिक लगाव बना हुआ है और वे अनेक छोटे-बड़े रोगोंके लिये उनका सेवन करते हैं।

इधरके कुछ वर्षोंमें भारतीय जड़ी-बूटियों और उनसे बनी दवाओंकी लोकप्रियता बढ़ रही है—यहाँतक कि पश्चिमी देशोंकी बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ भी इधर उन्मुख हुई हैं। इसका सबसे बड़ा कारण भारतीय जड़ी-बूटियों और वन-औषधियोंकी कालातीत गुणवत्ता तो है ही साथ ही, एलोपैथीकी तेज दवाओंका जो बुरा प्रभाव मानव-शरीरपर दिखायी पड़ने लगा है, उससे भी उद्विग्न होकर लोग अब सम्पूर्ण आरोग्यकी प्राप्तिके लिये आयुर्वेदीय चिकित्साकी ओर फिरसे मुड़ने लगे हैं। आवश्यकता है आयुर्वेदिक वैद्योंमें अपनी देशी पद्धतिके विषयमें निष्ठा और आस्थाकी तथा साथ ही नित नये अनुसंधानोंकी।



आयुर्वेदका त्रिदोष-सिद्धान्त

(साधु श्रीनवलरामजी रामस्नेही, साहित्यायुर्वेदाचार्य, एम०ए०)

प्राणी भगवत्प्राप्ति मानव-शरीरसे ही कर सकता है, जिससे दुःखोंका नितान्त अभाव हो जाता है तथा सदाके लिये वह सुखी हो जाता है। मानव-शरीर और सृष्टिकी रचना समान-तत्त्वोंसे हुई है।

सृष्टि-क्रम-प्रयुक्त तत्त्व—इसमें सच्चिदानन्द परमात्मतत्त्व, प्रकृति (जड़), महत्तत्त्व, अहंकार, सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण है।

सत्त्वगुण और रजोगुण तथा अहंकारसे दस इन्द्रियोंकी और मनकी उत्पत्ति हुई। इन्द्रियाँ दस हैं—श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, घ्राण, वाक, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा। इनके साथ मनकी भी उत्पत्ति हुई, इस प्रकार ग्यारह हैं। इन इन्द्रियोंमें पूर्वकी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा बादकी पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं।

सत्त्वगुण अहंकार तथा तमोगुण अहंकारसे पाँच तन्मात्राएँ बनती हैं—१-शब्दतन्मात्रा, २-स्पर्शतन्मात्रा, ३-रूपतन्मात्रा, ४-रसतन्मात्रा तथा ५-गन्धतन्मात्रा।

पञ्चतन्मात्राओंसे पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति हुई। पञ्चमहाभूत हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। मानव-शरीर पञ्चमहाभूतोंसे निर्मित है। पाँच तत्त्वों एवं त्रिदोष (वात, पित्त, कफ)-के सम-अवस्थामें रहनेसे ही शरीर स्वस्थ रहता है।

त्रिदोष—

पित्तं पङ्गुः कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्॥

अर्थात् पित्त पंगु (परतन्त्र) है, कफ पंगु है, मल और धातु भी पंगु हैं। इनको वायु जहाँ ले जाता है, वहीं ये बादलके समान चले जाते हैं। ये वायुके अधीन हैं।

तीनों दोषोंमें वात (वायु) ही बलवान् है, क्योंकि वह शरीरके सभी अवयवोंका विभाग करता है। वह रजोगुण-युक्त है, सूक्ष्म, शीत, रूक्ष, लघु (हल्का) है और चल (गतिशील) है। वह मलाशय, अग्न्याशय, हृदय, कण्ठ [निकटता होनेसे फुफ्फुसतकमें] तथा समस्त

शरीरमें विचरता रहता है। अतएव वायुके पाँच भेद माने जाते हैं और इन स्थानोंमें विचरनेवाले होनेके कारण वायुके क्रमशः पाँच नाम हैं—१-प्राण, २-अपान, ३-समान, ४-उदान और ५-व्यान। यदि ये पाँचों वायु अपनी स्वाभाविक अवस्थामें रहें और अपने-अपने स्थानमें वर्तमान रहें तो अपने-अपने कार्योंको सम्पन्न करते हैं और इन पाँचोंके द्वारा रोगरहित इस शरीरका धारण होता है।

पाँचों प्राणोंके स्थान और कार्य—

१-प्राण—प्राणवायुके स्थान हैं—मस्तक, छाती, कण्ठ, जीभ, मुख, नाक। अपने अवयवोंमें रहकर यह इन्हें अपने कार्योंमें लगाता है। मूर्धामें रहनेवाला वायु मनका नियन्ता तथा प्रणेता है। मनका कार्य-क्षेत्र मस्तिष्क होता है। अतः वहाँ रहनेवाला वात उसपर अपना कार्य करता है। हर्ष और उत्साहका कारण होता है। प्राणवायु मनके ऊपर नियमन करता है और सम्पूर्ण इन्द्रियोंको अपने-अपने काममें लगाता है—यह कार्य मनका है। यदि प्राणवायु निकल जाय तो शरीर प्राणशून्य हो जाता है। प्राणवायुसे अन्न शरीरमें जाता है। यह वायु प्राणोंको धारण करता है। नाभिसे चलकर हृदयका स्पर्श करते हुए फुफ्फुस (फेफड़े)-में जाकर जो नाभिसे उठकर श्वास मुखमें आता है, उसे प्राणवायु कहते हैं।

२-अपान—दोनों अण्डकोष, मूत्राशय, मूत्रेन्द्रिय, नाभि, ऊरु, वक्षण तथा गुदा—ये अपानवायुके स्थान हैं। आँतमें रहनेवाला अपानवायु शुक्र, मूत्र, मल तथा आर्तव और गर्भको बाहर निकालता है, कुपित हुआ अपानवायु शरीरमें अनेक रोग उत्पन्न करता है। जैसे—आध्मान (अफारा), शूल, मूत्रकृच्छ्र आदि।

३-समान—स्वेद-दोष तथा जल-वहन करनेवाले स्रोतोंमें रहनेवाला तथा जठराग्निके पार्श्वमें इसका स्थान है। यह समानवायु अग्निके बलको बढ़ानेवाला होता है।

४-उदान—उदानवायुका स्थान नाभि, वक्षःप्रदेश और कण्ठ है। वाणीको निकालना, प्रत्येक कार्यमें यत्न करना, उत्साह बढ़ाना, बल और वर्ण आदिको समुचित रूपमें रखना उदानवायुका कार्य है।

५-व्यान—शीघ्र गमन करनेवाला व्यानवायु मनुष्यके सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त रहता है और इस व्यानवायुका कार्य सर्वदा शरीरमें गति उत्पन्न करना, अङ्गोंको फैलाना, अङ्गोंमें आक्षेपण (खिंचाव)-को उत्पन्न करना, निमेष—पलकोंका खोलना, बंद करना आदि है।

वातके लक्षण (गुण)—

रूक्षः शीतो लघुः सूक्ष्मश्चलोऽथ विशदः खरः।
विपरीतगुणैर्द्रव्यैर्मारुतः सम्प्रशाम्यति॥

वात रूक्ष, शीतल, लघु, सूक्ष्म, चल (चञ्चल), विशद और खर (खुरदरापन)—इन भौतिक गुणोंसे युक्त होता है।

प्राकृतिक वायुके गुणोंके विपरीत—स्निग्ध, उष्ण, गुरु, स्थूल, स्थिर, पिच्छिल (चिपचिपा) और श्लक्ष्ण गुणोंवाले द्रव्योंसे प्रकुपित वायुका शमन होता है। जैसे—घृत-तेल, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), पीपलामूल, आँवला, गुग्गुल, सेंधा नमक, मेथी, शिलाजीत, च्यवनप्राश, शतावर, मुलेठी, अष्टवर्ग, मुनक्का, अजवायन, एरंडका तेल आदि।

योगी लोग योग-प्रक्रिया एवं आसन तथा प्राणायामके द्वारा वायुका शमन एवं वात-चिकित्सा करते हैं—

पित्तके गुण, स्थान तथा नाम—

पित्तमुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्त्वगुणोत्तरम्।
कटुतिक्तरसं ज्ञेयं विदग्धं चाम्लतां व्रजेत्॥

पित्त उष्ण (गर्म), द्रव (पतला या तरल), पीला, नीला, सत्त्वगुण प्रधान, चरपरा और कड़ुवा है। पित्त जब विकृत हो जाता है तो खट्टा हो जाता है। पित्त पाँच प्रकारका होता है—१-पाचक, २-भ्राजक, ३-रंजक, ४-आलोचक, ५-साधक।

१-पाचक—अग्न्याशयमें जो पित्त है, वह अग्निरूप है और तिलपरिमित है। यह भोजन पचानेका काम करता है।

२-भ्राजक—त्वचामें जो पित्त है, वह शरीरकी कान्तिका उत्पादक, लेप और अभ्यङ्ग (मालिश)-का पाचक या शोषक है।

३-रंजक—यकृत्‌में जो पित्त है वह वमनमें दिखलायी पड़ता है एवं रसको रक्त बनाता है।

४-आलोचक—जो पित्त दोनों आँखोंमें है, वह रूपका दर्शन कराता है।

५-साधक—जो पित्त हृदयमें रहता है, वह मेधा (बुद्धि) तथा प्रज्ञा (सोचने-विचारनेकी शक्ति)-का हेतु है।

पित्तके विपरीत गुणोंवाले द्रव्योंके प्रयोगसे इसका

शमन होता है। पित्तके विपरीत गुण हैं—पूर्ण स्निग्ध, शीत, मृदु, सान्द्र, स्थिर, मधुर, तिक्त और कषाय ऐसे द्रव्योंसे पित्तका शमन होता है। आँवला, मुलेठी, द्राक्षा, गन्नेका रस, मिस्री, अनार, चन्दन, कमल, खस तृण, पित्तपापड़ा, परवल, नागकेशर, जामुन, उशीर, नागरमोथा, धनिया, सुगन्धबाला, शतावर, दूर्वारस, नीम, चिरायता, कुटकी, प्रवाल-पिष्टी, मोती-पिष्टी, चाँदी-भस्म, गो-दुग्ध, गुलाब-पुष्प आदि द्रव्य पित्त-शामक हैं।

कफके गुण, स्थान तथा नाम—

कफः स्निग्धो गुरुः श्वेतः पिच्छिलः शीतलस्तथा।
तमोगुणाधिकः स्वादु विदग्धो लवणो भवेत्॥

कफ स्निग्ध, गुरु, श्वेत, पिच्छिल (चिपचिपा), शीतल, तमोगुणी और मीठा है। जब यह दूषित होता है तो नमकीन हो जाता है। यह पाँच प्रकारका होता है—१-क्लेदन, २-स्नेहन, ३-रसन, ४-अवलम्बन, ५-श्लेष्मक।

कफ आमाशयमें क्लेदन-रूप, सिरके भीतर स्नेहन-रूप, कण्ठमें रसन-रूप तथा हृदयमें अवलम्बन-रूप है। शरीरकी सम्पूर्ण संधियोंमें रहता हुआ यह शरीरमें स्थिरता तथा सामर्थ्य प्रदान करता है। इसका रूप श्लेष्मक है।

कफके विपरीत गुणोंवाले द्रव्योंसे कफका शमन होता है। जैसे लघु, उष्ण, कठिन, रूक्ष, कटु, चल, विशद। यथा सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, पीपलामूल, चित्रक, जीरा, सेंधा नमक, काकड़ासिंगी, पुष्कर मूल, जवासा, हरिद्रा (हल्दी), इलायची, अजवायन, गोजिह्वा आदि द्रव्य।

पञ्चकर्म—स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन तथा वस्ति—इन पाँचोंके द्वारा त्रिदोषोंकी चिकित्सा करनी चाहिये।

द्रव्योंके छः रसों (मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय तथा तिक्त)-के द्वारा त्रिदोषोंकी चिकित्सा करनी चाहिये।

उत्पन्न रस	रसोंके उत्पादक महाभूत	शमन होनेवाले दोष	कुपित होने वाले दोष
१-मधुर	जल, पृथ्वी	वात, पित्त	कफ
२-अम्ल	पृथ्वी, अग्नि	वात	पित्त कफ
३-लवण	जल, अग्नि	वात	पित्त कफ
४-कटु	वायु, अग्नि	कफ	पित्त वात
५-कषाय	वायु, पृथ्वी	पित्त कफ	वात
६-तिक्त	वायु, आकाश	पित्त कफ	वात

स्वस्थकी परिभाषा

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥
(सुश्रुत सू० १५।४०)

जिस प्राणीके दोष (अर्थात् पाँच प्रकारके वात, पाँच प्रकारके पित्त तथा पाँच प्रकारके कफ) सम हों, अग्नि (जठराग्नि या पाचनशक्ति) सम हो तथा धातु (रसादि सातों धातुएँ), मल (मल, मूत्र तथा स्वेद आदि) तथा क्रिया (सोना, जागना आदि) सम हों, आत्मा, सभी इन्द्रियाँ और मन प्रसन्न हों, वह स्वस्थ कहा जाता है।

मनुष्य स्वस्थ रहनेपर ही चारों पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षकी प्राप्ति कर सकता है।

~~~~

दोषसाम्यमरोगता

(आचार्य श्रीविष्णुदत्तजी अग्रवाल, प्रिन्सिपल ऋषिकुल स्टेट आयुर्वेदिक कॉलेज, हरद्वार)

जीवन-विज्ञानके रूपमें प्रतिष्ठित आयुर्वेदका सिद्धान्त है—'रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता' (अष्टा०सू० १।२०) अर्थात् दोषोंका शरीरमें विषमावस्थामें रहना रोग एवं दोषोंकी साम्यावस्थामें स्थित रहना ही आरोग्य है। जो द्रव्य शरीरको दूषित करते हैं, वे दोष कहे जाते हैं। वात-पित्त तथा कफ—ये शारीरिक दोष हैं। इसी प्रकार मनको दूषित करनेवाले दो मानस दोष हैं—रज एवं तम—

वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शारीरो दोषसंग्रहः।
मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च॥
(च०सू० १।५७)

शरीररूपी भवनको टिकाये रखनेवाले तीन महास्तम्भोंके रूपमें मानव-देहमें बाल्यावस्थासे वृद्धावस्थापर्यन्त समस्त उपयोगी क्रियाएँ दोषोंके अधीन हैं—'दोषधातुमलमूलं हि शरीरम्' (सु०सू० १५।३)। इस प्रकार दोष और धातु एवं मलमेंसे दोष ही क्रियाशील तत्त्व है।
~~~~

दोष एवं व्याधिका सम्बन्ध—इन दोषोंका व्याधियोंके साथ कार्यकारण-भावसे सम्बन्ध होता है, रोग कार्य है तथा दोष उसका कारण। जिसमें देहकी स्वाभाविक क्रियाएँ कराने एवं इनपर नियन्त्रण रखनेका सामर्थ्य हो, प्रकृति-निर्माणकी क्षमता हो और जिसमें स्वतन्त्रतापूर्वक देहको दूषित करनेकी प्रवृत्ति हो, उसीको दोष कहा जा सकता है। आरोग्यकी अवस्थामें ये दोष प्राकृत रूपमें या संतुलित अवस्थामें रहते हैं और ये तीनों परस्पर विरोधी गुण रखते हुए भी एक-दूसरेके घातक नहीं होते—

विरुद्धैरपि न त्वेते गुणैर्घ्नन्ति परस्परम्।
दोषाः सहजसात्म्यत्वाद् विषं घोरमहीनिव॥
(च०चि० २६। २९०)

असात्म्य आहार, ऋतुओंमें परिवर्तन, असामान्य आचरण एवं जनपदोद्ध्वंसके कारण दोष कुपित होकर रोगोंको उत्पन्न करते हैं। रोगकी स्थितिमें जो लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं, वे दो प्रकारके होते हैं[1]—(१) प्रकृति-समसमवायजन्य एवं (२) विकृति-विषमसमवायजन्य।

प्रकृति-समसमवायकी स्थितिमें रोगोत्पादक दोषके लक्षणोंके तुल्य ही रोगमें लक्षण होते हैं, जैसे वात-व्याधिमें व्यथा, शूल, संकोच, चक्कर आना, कम्पन, मुखवैरस्य, मुखशोष, चञ्चलता आदि। पित्तज व्याधियोंमें उष्णता, दाह, स्वेदाधिक्य, स्राव, लालिमा आदि। कफज व्याधियोंमें शरीरमें भारीपन, श्वेतता (रक्ताल्पता), अजीर्ण, वमन एवं अङ्गोंमें जकड़न आदि लक्षण होते हैं।

विकृति-विषमसमवायकी स्थितिमें रोगोत्पत्ति होना विकृत दोषोंकी संसर्गता धातुओंके साथ होनेका परिणाम है। ऐसी अवस्थामें कुछ लक्षण-दोष एवं धातुओंके सम्मूर्च्छन (जैव रासायनिक संयोग)-के फलस्वरूप होते हैं, जैसे—रोमाञ्च, रोमहर्ष, निद्रानाश, मूर्च्छा, अन्धकार छाना आदि।

महर्षि चरकने रोगोत्पत्ति (च०विमान० अ० ३)-के वर्णनमें यह स्पष्ट किया है कि रोगकी उत्पत्तिका मूल कारण परिग्रह है। संचयकी प्रवृत्तिसे लोभ तत्पश्चात् अभिद्रोहकी उत्पत्ति हुई। अभिद्रोहसे असत्य-भाषण एवं इससे काम, क्रोध, अहंकार, द्वेष, कठोरता, अभिघात, भय, संताप, शोक, चिन्ता, उद्वेग आदिकी प्रवृत्तिके परिणामस्वरूप आहार-विहारके सम्यक् पालनका ह्रास होनेकी प्रवृत्तिसे अग्नि एवं वायुके विकारोंसे ग्रस्त होकर प्राणियोंमें ज्वरादि रोगोंका प्रवेश हुआ और प्राणियोंकी आयुका ह्रास होने लगा।

वात-दोषका प्राधान्य—भारतीय दार्शनिक विचारधाराके अनुसार वायु-तत्त्वको समस्त विश्वकी उत्पत्ति एवं विनाशका मूल हेतु माना गया है।

महर्षि चरकने वायुको जीवन धारण करनेवाला स्वीकार किया है। आकाश महाभूत-प्रधान होनेके कारण इसको सर्वगत एवं स्वयम्भू कहा है। सुश्रुतने वायुको 'सर्वचेष्टासमूहः सर्वशरीरस्पन्दनम्' कहकर स्पष्ट किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि तीनों दोषोंमें प्रधान दोष वायु ही है। कफ एवं पित्त-दोष भी वायुकी गतिसे ही गतिशील होते हैं और प्राकृत एवं विकृतावस्थामें शरीर-धारण एवं रोगके कारण होते हैं—

पित्तं पङ्गुः कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्॥
(शार्ङ्ग० पू० ५। २५)

वात अचिन्त्यवीर्य है अर्थात् इसके द्वारा महाप्राणता उत्पन्न हो जानेपर मनुष्य अलौकिक कार्य सम्पन्न कर सकता है।

विकृत हो जानेपर रोग भी इसके द्वारा सबसे अधिक उत्पन्न होते हैं। प्राकृत वातके प्रभावसे दोष, धातु, अग्नि—इन सबमें सामञ्जस्य बना रहता है। सब इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयोंको ठीकसे ग्रहण करती हैं एवं देहमें होनेवाली सभी प्रकारकी गतियाँ एवं क्रियाएँ अनुकूल रूपमें सम्पन्न होती हैं। 'स्वयंभूरेष''''करोत्यकुपितोऽनिलः' (सु०नि० १। ५—१०)

प्राकृत पित्त शरीरमें उष्ण, तीक्ष्ण आदि गुणोंसे युक्त रसरंजन, पाचन, दर्शन, विचारजनन, तेज-उत्पादन, उष्मोत्पत्ति आदि आग्नेय कर्मोंका सम्पादन करता है तथा शौर्य, साहस, अमर्ष, तेज आदि मानस विशेषताओंको जन्म देता है।

प्राकृत श्लेष्मा शरीरमें उपचय या वृद्धिकारक है। शरीरमें प्रत्येक मूर्तिमान् या आकृतियुक्त भावका यह उपादान द्रव्य है एवं उसका संवर्धक है। यह धातु-पुष्टिके साथ-साथ उसे जीवन-तत्त्व भी प्रदान करता है। रससे

---

१. प्रकृतिसमसमवायविकृतिविषमसमवाययोश्चायमर्थः—प्रकृत्या हेतुभूतया समः कारणानुरूपः समवायः कार्यकारणभावसम्बन्धः प्रकृतिसमसमवायः। कारणानुरूपं कार्यमित्यर्थः। विकृत्या हेतुभूतया विषमः कारणाननुरूपः समवायो विकृतिविषमसमवायः। (मा०नि०ज्वर १४ मधुकोष व्याख्या)

शुक्रपर्यन्त प्राय: प्रत्येक देह-धातुका पोषक एवं संवर्धक है, प्रत्येक धातुका मूल जनक— जन्मदाता एवं सारभूत अंश है। इसी अंशको ओज कहा गया है, जो शरीरमें विशेष प्रकारका बल—रोगप्रतिरोधक-क्षमताको जन्म देता है।

दोष एवं क्रिया-काल—क्रिया-कालका अर्थ है चिकित्सा-काल। दोष-वैषम्य एवं रोगोत्पत्तिके मध्य छ: अवस्थाओंका वर्णन आयुर्वेदमनीषी सुश्रुतद्वारा किया गया है। यदि दोष-वैषम्यकी स्थितिको रोगोत्पत्तिसे पूर्व पहचान लिया जाय तो समुचित आहार-विहारसे ही रोगोत्पत्तिसे बचा जा सकता है। इसलिये रोगोत्पत्तिसे पूर्वकी दोष-वैषम्यकी स्थितियोंको ही चिकित्सा-कालके रूपमें स्वीकार किया है। ये छ: क्रियाकाल इस प्रकार हैं—१-संचय, २-प्रकोप, ३-प्रसर, ४-स्थान-संश्रय, ५-व्यक्त और ६-भेद।

१-संचय—दोष-वैषम्यके तीन कारण हैं—(१) असात्म्येन्द्रियार्थ-संयोग, (२) प्रज्ञापराध एवं (३) परिणाम। इन्द्रियोंका अपने विषयोंसे हीनयोग, अतियोग एवं मिथ्यायोगको असात्म्येन्द्रियार्थ-संयोग कहते हैं। ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियोंका विषयोंसे समावस्थामें संयोग होनेसे रोग उत्पन्न नहीं होते। धी (बुद्धि), धृति (धारण एवं नियमन-शक्ति) एवं स्मृतिके भ्रंश होनेसे मनुष्य जो अशुभ कर्म करता है, उन्हें प्रज्ञापराध कहते हैं एवं ऋतुओंके परिवर्तनके परिणामस्वरूप दोष-वैषम्यको परिणाम कहा जाता है। उपर्युक्त कारणोंसे प्रथमत: दोष अपने स्थानमें संचित होते हैं, जैसे श्रोणि एवं गुदामें वात-संचय एवं आमाशय तथा पक्वाशयके मध्य क्षुद्रान्त्रमें पित्त-संचय और आमाशयमें कफ-संचय होता है। इस अवस्थामें वात-संचयसे स्तब्धपूर्ण कोष्ठता अर्थात् उदरमें भारीपन, अधोवायु एवं उद्गारका निग्रह; पित्त-संचयसे मन्दोष्णता तथा पीतावभासता अर्थात् भोजनका पाचन न होना तथा शरीरमें दुर्बलता प्रतीत होना एवं कफ-संचयसे अङ्गोंमें भारीपन, आलस्य तथा विपरीत गुणोंवाले खान-पानके सेवनकी इच्छा होना आदि लक्षण होते हैं। इस स्थितिमें उष्ण जल-सेवन, पाचन एवं लंघन आदि क्रियाओंसे रोगकी अवस्थातक पहुँचनेसे रोका जा सकता है। आगे दोषोंकी गतियाँ बलवान् होनेसे इनका नियमन कठिन होता जाता है—

ते तूत्तरासु गतिषु भवन्ति बलवत्तरा: (सु०सू० २१। ३७)।

२-प्रकोप—प्रकोपकी अवस्थामें दोष अपने स्थानसे बाहर निकलकर अन्य धातुओंको दूषित करते हैं। यह प्रकोप विलपनरूपा-वृद्धि है। इस अवस्थामें वात-प्रकोपसे कोष्ठ-तोद-संचरण अर्थात् उदरमें पीडा तथा उदरका फूलना और पित्त-प्रकोपसे अम्लिका, पिपासा, परिदाह अर्थात् खट्टी डकारें, बार-बार प्यास लगना, सारे शरीरमें जलनकी प्रतीति और कफ-प्रकोपसे अन्न-द्वेष एवं हृदयोत्क्लेद अर्थात् भोजनमें अरुचि एवं वमन होनेकी प्रतीति आदि लक्षण होते हैं। इस अवस्थामें साधारण औषधियों—जैसे हींग, अदरक, अजवायन, आमलकी, नीबू, अनार आदि द्रव्योंके सेवनसे ही रोगोंके आगे बढ़नेकी अवस्थाको रोका जा सकता है।

३-प्रसर—ऋतुओंमें परिवर्तन होनेसे दोषोंका संचय एवं प्रकोप होता है। परंतु अनुकूल ऋतुके अनुसार उक्त दोष स्वत: ही प्रशमकी अवस्थामें आ जाते हैं। दोषोंका संचय, प्रकोप, प्रशम—बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था, दिन-रात्रि एवं भोजनकी अवस्थाओंपर निर्भर करता है। परंतु प्रकोपकी अवस्थामें अनुचित आहार-विहार-सेवनसे दोष प्रसरावस्थाकी ओर चले जाते हैं। प्रसर वायुके द्वारा होता है एवं इसमें दोष अपने स्थानसे अन्य स्रोतोंमें प्रवेश कर जाते हैं। इसमें दोषोंके साथ स्रोतस्-विकारके लक्षण भी दृष्टिगोचर होते हैं। अनुकूल अवस्था न मिलनेपर ये दोष काफी समयतक स्रोतसोंमें पड़े रह सकते हैं एवं स्रोतसोंमें विकारकी अन्य स्थितियाँ मिलनेपर ये रोग उत्पन्न करते हैं। आहार-विहार एवं औषधि-सेवनके उपरान्त क्षीण होनेपर भी ये दोष स्रोतसोंमें काफी समय तक पड़े रह सकते हैं एवं विकृतिके कारण उत्पन्न होनेपर पुन: व्याधि उत्पन्न कर देते हैं।

४-स्थान-संश्रय—दोषोंकी धातुओंमें स्थितिसे दोष-धातु सम्मूर्छन होकर स्थानसंश्रयावस्था उत्पन्न होती है, जो चौथी क्रिया-कालकी अवस्था है। इसमें शारीरिक धातुओंमें जैव रासायनिक परिवर्तन होते हैं एवं शरीरमें एकसे अनेक क्रियाएँ बाधित होने लगती हैं।

५-व्यक्त—व्यक्तावस्था या पञ्चम क्रिया-काल रोगकी अवस्था है। इसमें रोगके लक्षण प्रकट होते हैं। इनकी चिकित्सा उचित निदान-पद्धति अपनानेके पश्चात् ही की जाती है।

६-भेद—अन्तिम क्रिया-काल रोगोंकी उत्तरोत्तर जटिल अवस्था है। इसमें औषधियोंके साथ शल्य-चिकित्सा, पञ्चकर्म-चिकित्सा एवं विशिष्ट चिकित्सा-पद्धतियोंका भी सहारा लेना आवश्यक है।

दोष-साम्य ही आयुर्वेदका उद्देश्य है। महर्षि चरकने ग्रन्थके प्रारम्भमें उद्धृत किया है— '**धातुसाम्यक्रिया चोक्ता तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम्।**' (सू० १।५३) अर्थात् विषम दोषोंको साम्यावस्थामें लाना एवं उनके द्वारा विकृत धातुओंको समावस्थामें लाना ही आयुर्वेदका प्रयोजन है। दोष-साम्यकी स्थितिको बनाये रखनेके लिये आयुर्वेदने आहार-विहार, दिनचर्या, ऋतुचर्या, सद्वृत्त, योग, आचार-रसायन आदि अनेक विधाओंका वर्णन किया है, जिससे रोगकी रोकथाममें सहायता प्राप्त हो। दोष-वैषम्यकी अवस्थाको समावस्थामें लाने-हेतु ही चिकित्सा-ग्रन्थोंकी रचना की गयी है—

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां स्मृतम्॥

(च०सू० १६।३४)

अर्थात् जिस-किसी क्रियासे विकृतिगत दोषोंकी एवं धातुओंकी समावस्थाको प्राप्त किया जा सके, वे सभी चिकित्सा हैं, केवल औषधि-प्रयोग ही चिकित्सा नहीं है। चिकित्साकी सभी विधाएँ दोष-साम्यकी स्थितिको प्राप्त करनेके लिये ही उपदिष्ट हैं। इस सिद्धान्तके अनुसार आयुर्वेदका अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंसे एवं अन्य पद्धतिमें व्यवहृत औषधियोंसे कोई विरोध नहीं हो सकता। दोष-साम्य ही चिकित्सा-कर्मका मूल उद्देश्य है, जिससे आरोग्यकी प्राप्ति सम्भव है। रोगरहित शरीर ही धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षकी स्थितिको प्राप्त करता है—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।

(च०सू० १।१५)

व्याधियाँ सात प्रकारकी होती हैं—(१) आदिबलप्रवृत्त (Genetic), (२) जन्मबलप्रवृत्त (Congenital), (३) दोपबलप्रवृत्त (Disturbance in Homeostatsis), (४) संघातबलप्रवृत्त (Traumatic), (५) कालबलप्रवृत्त (Seasonal), (६) दैवबलप्रवृत्त (Spritual) एवं (७) स्वभावबलप्रवृत्त (Natural)। इनमें रोगी एवं रोग-बलकी परीक्षा करके ही चिकित्साकी विवेचना प्रस्तुत की जाती है। विभिन्न व्याधियोंमें दोष-साम्यकी स्थितिको उत्पन्न करना ही चिकित्साका मुख्य उद्देश्य है। व्याधियोंके उपर्युक्त प्रकारके साथ चिकित्सा-विधियाँ भी तीन प्रकारकी होती हैं—

(१) **दैवव्यपाश्रय**—इसमें मन्त्र-बलि, मङ्गलकर्म, स्वस्तिवाचन, मणिधारण तथा हवन आदि हैं।

(२) **युक्तिव्यपाश्रय**—इसमें औषधि, आहार-विहार-सेवन एवं संशोधन या पञ्चकर्म-चिकित्साका समावेश है।

(३) **सत्त्वावजय**—इसमें अहित अर्थोंकी ओरसे मनोनिग्रहके उपाय हैं। दोष-साम्य ही उक्त चिकित्सा-पद्धतिका एकमात्र उद्देश्य है।

दिनचर्या, ऋतुचर्या आदि दोषपरक ही हैं—

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा।
धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा॥

(सु०सू० २१।८)

सूर्य-चन्द्रमा एवं वायुकी गतियोंसे विसर्गकाल एवं आदानकालका विक्षेप होता है। विसर्गकाल (दक्षिणायन)-में तीन ऋतुएँ—वर्षा, शरद् एवं हेमन्त तथा आदानकाल (उत्तरायण)-में तीन ऋतुएँ—शिशिर, वसन्त एवं ग्रीष्म होती हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा, सूर्य एवं वायुकी गति जगत्का धारण, पोषण एवं नियमन करती हैं, उसी प्रकार शरीरमें क्रमशः कफ, पित्त और वायुके द्वारा शरीरका धारण, पोषण एवं नियमन किया जाता है। उक्त गतियोंके आधारपर त्रिदोष-विज्ञानके द्वारा दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्याके विभिन्न आयामोंका विवरण आयुर्वेदमें वर्णित है। दिवास्वप्न, रात्रि-जागरण, ऋतुओंमें विपरीत भोजन, शीत वायुका सेवन आदि विभिन्न रोगोंके कारण बताये गये हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण जीवनकालको दोषोंकी गतियोंके परिप्रेक्ष्यमें आयुर्वेदीय दृष्टिकोणसे आहार-विहार एवं चर्याके द्वारा '**दोषसाम्यमरोगता**' के सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है।

मानसिक दोष, साम्यावस्था एवं मोक्ष—रज एवं तम मानस-दोष कहे गये हैं। रज एवं तमके संयोगसे पुरुषकी व्यक्तावस्था एवं सत्त्वगुणके बढ़ जानेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। महर्षि चरकका मत है—

रजस्तमोभ्यां युक्तस्य संयोगोऽयमनन्तवान्।
ताभ्यां निराकृताभ्यां तु सत्त्ववृद्ध्या निवर्तते॥

(च०शा० १।३६)

अव्यक्ताद्व्यक्ततां याति व्यक्तादव्यक्ततां पुनः।
रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चक्रवत् परिवर्तते॥

(च०शा० १।६८)

इस प्रकार स्पष्ट है कि रज एवं तम गुणके संयोगसे ही चौबीस तत्त्वोंसे युक्त राशि-पुरुषकी उत्पत्ति होती है एवं कर्म-बन्धनमें बँधा हुआ पुरुष चक्रवत् व्यक्तसे अव्यक्त

एवं पुनः व्यक्तावस्थाको प्राप्त होता है। रज एवं तम गुणका मन एवं आत्मासे सम्बन्ध रखना ही उपधा कहा जाता है। इन रज (राग) और तम (द्वेष)-के कारण ही दुःख और शरीर-धारण अर्थात् पुनर्जन्म होता है। फलतः पुनर्जन्मकी परम्परा होनेसे राग-द्वेष बना रहता है, जिससे दुःखकी उत्पत्ति होती रहती है। यदि रज एवं तमका मनसे सम्बन्ध छूट जाता है तो सभी दुःख दूर होकर आत्यन्तिक सुख या मोक्षकी प्राप्ति होती है—

मोक्षो रजस्तमोऽभावात् बलवत्कर्मसंक्षयात्।
वियोगः सर्वसंयोगैरपुनर्भव उच्यते॥

(च०शा० १।१४२)

मोक्ष-प्राप्ति तथा दुःखोंसे निःशेष निवृत्तिके उपाय क्या हैं, इसपर चरकने योगके मार्गको स्पष्ट किया है—

योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम्।
मोक्षे निवृत्तिर्निःशेषा योगो मोक्षप्रवर्तकः॥

(च०शा० १।१३७)

आत्माका परम तत्त्व या परमात्मासे संयोग ही योग है। वस्तुतः सर्वोत्कृष्ट मानस-स्वास्थ्य ही मोक्ष है। इसकी प्राप्ति-हेतु महर्षि पतञ्जलिद्वारा अष्टाङ्गयोगका वर्णन किया गया है। यह भी माना जाता है कि महर्षि पतञ्जलिद्वारा ही चरकसंहिताकी रचना शारीरिक दोष दूर करने-हेतु एवं योग-विद्याकी रचना मानस दोष-निराकरण-हेतु की गयी। इस प्रकारकी मोक्षदायिनी चिकित्सा-विद्याको चरकने नैष्ठिकी चिकित्साके नामसे निरूपित किया है। उपधारहित चिकित्साको ही नैष्ठिकी चिकित्सा कहा गया है—

'चिकित्सा तु नैष्ठिकी या विनोपधाम्।

(च०शा० १।९४)

उपधा ही रोगकी एवं दुःखके आश्रयभूत शरीरकी उत्पत्तिमें कारण है अर्थात् जीवनके कर्म-क्षेत्रमें तृष्णा या आसक्तिका होना संयोग या दुःख है। अनासक्ति तृष्णारहित जीवनका उपभोग मुक्ति है। इस प्रकार आयुर्वेदमें शारीरिक दोषोंकी साम्यताके साथ मानस-दोषोंसे निवृत्तिके उपायोंका वर्णन सम्पूर्ण आरोग्यकी प्राप्तिका लक्ष्यरूप है।

समस्त सृष्टि एवं ब्रह्माण्डमें चेतन-तत्त्व व्याप्त है एवं परम चैतन्यके लीलास्वरूप ही जीव पाञ्चभौतिक शरीर धारण करता है, जो विभिन्न शारीरिक दोषोंकी दृष्टिसे शारीरिक व्याधियों एवं मानस-दोषोंके द्वारा मानसिक व्याधियोंसे आवृत रहता है। सृष्टिके चक्रमें आवेष्टित जीवको मोक्षकी प्राप्ति-हेतु नाना जन्मोंके अनेकानेक रूपोंके अनुभवोंसे गुजरना होता है, जो परम चैतन्यकी महान् लीलाका सूक्ष्म अङ्ग है। मानवका कर्तव्य है कि वह जीवनको हितकर पदार्थोंके सेवन, हितकर आहार-विहार एवं आचार-विचारोंकी ओर ही प्रेरित करे और परमब्रह्मकी सत्ताका स्पन्दन अन्तरात्मामें सदैव अनुभव करता रहे।



जनपदोंके उद्ध्वंस होनेके कारण तथा उनसे बचनेके सूत्र

(आचार्य डॉ० श्रीगौरकृष्णजी गोस्वामी शास्त्री, काव्यपुराण दर्शनतीर्थ, आयुर्वेदशिरोमणि)

जब स्वभावतः शुद्ध वायु, जल, देश तथा काल विकृत हो जाते हैं, तब विभिन्न प्रकृतिके मानवोंका देह, आहार, बल, मन, अवस्था समान होनेपर भी एक साथ एक ही समय एक ही रोगसे नगरों और जनपदोंका देखते-देखते विनाश हो जाता है।

प्रदूषित वायुके लक्षण—ऋतु-विपरीत, अत्यन्त निश्चल, अत्यन्त वेगसे चलनेवाला, अति कर्कश, शीतल, रुक्षतर, भयानक शब्द करनेवाला, कष्टकारी, रेत, धूल और धुआँसे भरे हुए वायुको रोग पैदा करनेवाला जानना चाहिये, इससे जनपदमें आधि—मानसिक पीडा—रोग पैदा होते हैं।

वातमेवंविधमनारोग्यकरं विद्यात्।

(चरक वि० ३।६।१)

प्रदूषित जलके लक्षण—जो जल अत्यन्त विकृत हो गया हो यानी जिसका गन्ध और रंग बिगड़ गया हो — स्पर्श करने योग्य न रह गया हो, उसका जलीय गुण नष्ट हो गया हो, पीनेके योग्य न हो, जिन जलाशयोंका जल सूख करके कम रह गया हो, पक्षी अन्यत्र चले गये हों, ऐसे जलको विकृत समझना चाहिये; इसके सेवनसे जनपद ध्वंस हो जाते हैं।

प्रदूषित देशके लक्षण—जिस देश या स्थानके वर्ण, गन्ध, रस तथा स्पर्श विकृत हो गये हों, जिस स्थानसे सड़ाँध आती हो तथा साँप आदि हिंसक जन्तु और मच्छर, मक्खी, चूहा, गिद्ध आदि पक्षियोंकी प्रचुरता हो और गीदड़ आदि जन्तुओंसे युक्त जहाँ लताएँ बहुत हों, जहाँका वायु धुआँसे

युक्त हो तथा जहाँ कुत्ते रोते हों, पक्षी विशेषकर उड़ते हों, जहाँ मनुष्योंमें धर्म, सत्य, लज्जा, आचार, शील आदि गुणोंका अभाव हो, जहाँ सरोवर सूख गये हों, जहाँ बिजली, भूकम्प, भूस्खलनकी अधिकता हो, जहाँ सूर्य-चन्द्रमाकी आकृति मलिन हो गयी हो, जहाँ मनुष्य रोते हुए दिखायी दें, जहाँ अन्धकारकी विशेषता हो ऐसा देश दूषित समझना चाहिये। इससे जपनदमें प्रदूषण उत्पन्न हो जाता है।

प्रदूषित कालके लक्षण—ऋतुके लक्षणोंके विपरीत काल हो—ग्रीष्म-ऋतुमें शीत और शीत-ऋतुमें ग्रीष्मका अनुभव हो अथवा अधिक ग्रीष्म अर्थात् जहाँ मनुष्य जला-सा जाता हो। इसी प्रकार अन्य ऋतुओंमें भी विपरीतता आ जाती हो—यह दूषित कालका लक्षण है, इससे जनपदमें संत्रस्तता आ जाती है।

विकृत वायु, जल, देश और कालमें काल-तत्त्व प्रमुख है। यद्यपि वायुके अनारोग्य होनेके लक्षणोंके कारण यह दुष्परिहार्य है तथापि वातहीन स्थानपर रहा जाय तो इससे बचा जा सकता है। जीवन-धारणके लिये जल आवश्यक है। परंतु दूषित जलकी शुद्धि यन्त्रोंद्वारा सम्भव है। देश-त्याग करके जाना बहुत कठिन है, परंतु प्राणकी रक्षाके लिये अन्यत्र जाना पड़ता है। पर काल सर्वप्रमुख होनेके कारण दुष्परिहार्य होनेपर भी गुणप्रद औषधियोंके प्रयोगसे आरोग्यप्रद चिकित्सा की जा सकती है। किंतु जिन मानवोंका पूर्वकृत कर्म और दैव विपरीत है, उन्हें काल-व्यालके आक्रमणसे बचाया नहीं जा सकता।

वायु आदिकी विगुणताका मुख्य कारण अधर्म है। पूर्वकृत गर्हित कर्म तथा अधर्मका उद्भव प्रज्ञापराध है। जिस प्रकार नगर या जनपदका प्रधान अधिकारी जब धर्मकी उपेक्षा करके अधर्मका आश्रय लेता है, तब स्वाभाविक रूपसे उसके अनुगत जन भी इस अधर्मको बढ़ानेमें कृतसंकल्प होते हैं। प्रवञ्चना, असत्य आदिकी प्रबलता बढ़ जाती है और यह प्रबलता बढ़कर धर्मको आच्छादित कर देती है। जब धर्म लुप्त हो जाता है तब देवता भी उन अधार्मिक पुरुषोंका परित्याग कर देते हैं। धर्मके लुप्त होनेपर अधर्मकी वृद्धि होती है। जब दैवी गुणोंसे परित्यक्त उन देश और जनपदोंकी ऋतुमें विकृति आ जाती है, प्रचुर वर्षा नहीं होती अथवा वर्षाका अभाव एवं विकृत वर्षा होती है, वायु उचित रूपसे प्रवाहित नहीं होता, पृथ्वी विकृत हो जाती है, जल सूखकर विकृत हो जाता है, औषधियाँ अपने स्वभावगत गुणोंको छोड़कर विकृत हो जाती हैं, तब उनके स्पर्श तथा सेवनसे नगर एवं जनपदोंका विनाश हो जाता है। उसी प्रकार शस्त्रजात युद्धोंसे भीषण नरसंहार होता है। मानवोंमें लोभ, क्रोध, मोह, अहंकार विशेषरूपसे परिलक्षित होता है। अल्पसैन्यशक्तिसम्पन्न परमाणुविहीन राष्ट्रोंपर प्रबल सैन्यशक्तिसम्पन्न राष्ट्र आक्रमण करके उन्हें परास्त करनेमें लग जाते हैं। इससे भी विनाश हो जाता है। इसका भी मूल कारण अधर्म है। अधर्मके आचरणसे देवता भी भूत आदिजन्य उपायोंसे मानवोंको नष्ट करते हैं। अभिशाप (अस्वच्छता)- से उत्पन्न होनेवाले जनपदोंके उद्ध्वंसका भी कारण अधर्म है। जो धर्मसे रहित हैं वे जब गुरु, वृद्ध, सिद्ध, आचार्य—इनकी अवज्ञा करके अहित कर्म करते हैं, तब वे अपमानित गुरुजन उन पुरुषोंके कुलके नाशके लिये उन्हें शाप देते हैं, जिसके द्वारा वे शीघ्र ही विनष्ट हो जाते हैं। यह भी जनपदके उद्ध्वंसका एक कारण है। इस जनपदोद्ध्वंसके आक्रमणसे बचनेके लिये सदाचरण ही प्रशस्त औषधि है। आचार्य चरकका कहना है—

सत्यं भूते दया दानं वलयो देवतार्चनम्।
सद्वृत्तस्यानुवृत्तिश्च प्रशमो गुप्तिरात्मनः॥
हितं जनपदानां च शिवानामुपसेवनम्।
सेवनं ब्रह्मचर्यस्य तथैव ब्रह्मचारिणाम्॥
संकथा धर्मशास्त्राणां महर्षीणां जितात्मनाम्।
धार्मिकैः सात्त्विकैर्नित्यं सहास्या वृद्धसम्मतैः॥
इत्येतद्भेषजं प्रोक्तमायुषः परिपालनम्।

(चरक० विमान० ३। १५—१८)

तात्पर्य यह कि सत्य बोलना तथा मन-वचन-कर्मसे प्राणियोंपर दया करना, उचित पात्रको दान देना, देवताकी पूजा करना, नैवेद्य निवेदन करना, शास्त्रानुकूल उनको चढ़ावा चढ़ाना, सत्पुरुषोंके आचारका अनुपालन, अपनी रक्षा तथा कल्याणकारक जनपदों—बस्तियोंका सेवन हितकर है। निरन्तर ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये, ब्रह्मचारियोंका संग करना चाहिये। धर्मशास्त्रोंकी कथा तथा जितेन्द्रिय महर्षियोंके साथ वार्तालाप, वृद्ध पुरुषोंद्वारा प्रशंसित धार्मिक एवं सात्त्विक पुरुषोंके साथ बैठना लाभकर है। ऋषियोंने प्राणियोंके उस दारुण कालसे बचने-हेतु उनकी आयुका परिपालन करनेवाले ये आरोग्यप्रद भेषज-सूत्र प्रतिपादित किये हैं।

आयुर्वेदमें शल्य एवं शालाक्य-चिकित्सा तथा यन्त्र-विवरण

(डॉ० श्रीकमलप्रकाशजी अग्रवाल)

आयुर्वेदकी रचना मानवकी उत्पत्तिसे पूर्व हो चुकी थी। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने 'ब्रह्मसंहिता' नामक एक त्रिसूत्रीय आयुर्वेदिक ग्रन्थकी रचना की। यह ग्रन्थ सहस्राध्यायी तथा एक लाख श्लोकोंसे युक्त था। कालान्तरमें जीवोंके अल्पायु तथा अल्पमेधावीपनको देखते हुए इस बृहत्-संहिताको स्वल्प आकार देते हुए आठ अङ्गोंमें विभक्त कर उन्होंने आयुर्वेदकी शिक्षा अपने शिष्य महेश्वर, भास्कर और प्रजापति दक्ष आदिको दी। प्रजापति दक्षने अश्विनीकुमारद्वयको तथा अश्विनीकुमारोंने इन्द्रको इस आयुर्वेदकी शिक्षा दी। यह वैद्योंकी देव-परम्परा थी।

तदनन्तर महर्षियोंद्वारा निवेदित किये जानेपर महर्षि भरद्वाज इन्द्रलोकमें गये और वे देवराज इन्द्रसे आयुर्वेदका ज्ञान प्राप्त कर पुनः भारतभूमिपर पधारे एवं हिमवान् पर्वतपर उन्होंने सभी महर्षियोंको आयुर्वेदका ज्ञान दिया। यह सब कार्य प्रजाजनोंको दुःखी जानकर तथा समस्त प्राणियोंके प्रति दया-भाव रखकर उनके हितके लिये किया गया। महर्षि भरद्वाजने आयुर्वेदके आठों अङ्गोंका ज्ञान सभी उपस्थित महर्षियोंको दिया, उनमें शल्य तथा शालाक्य-तन्त्र भी शामिल थे। ज्ञान-प्राप्त उन महर्षियोंने स्थान-स्थानपर जाकर आयुर्वेदद्वारा प्राणियोंकी सेवा की।

आयुर्वेदके आठ विभाग इस प्रकार हैं[१]—

१-शल्य—इसमें शल्य-चिकित्सा (सर्जरी) और प्रसूतिकर्मका वर्णन है।

२-शालाक्य—इसमें जत्रु (ग्रीवामूल)-से ऊपरके अङ्गों जैसे—नाक, कान, आँख, गला आदिके रोगोंका अध्ययन किया जाता है।

३-काय-चिकित्सा—इसमें शरीरके रोगोंकी चिकित्साका वर्णन है।

४-भूतविद्या—इसमें शान्तिकर्मके द्वारा रोगोंकी चिकित्सा बतलायी गयी है।

५-कौमारभृत्य—इसमें शिशु-चिकित्साका वर्णन है।

६-अगदतन्त्र—इसमें विष-चिकित्साका वर्णन है।

७-रसायनतन्त्र—इसमें अवस्था, आयुष्य, मेधा और बलको बढ़ानेवाले पौष्टिक रसायनोंका वर्णन है।

८-वाजीकरणतन्त्र—इसमें वीर्यवर्धक औषधियोंका वर्णन है।

आचार्य चरकके अनुसार आयुर्वेदका अध्ययन-स्थल आठ भागोंमें 'स्थान' नामसे इस प्रकार किया गया है—सूत्र, निदान, विमान, शारीर, इन्द्रिय, चिकित्सित, कल्प और सिद्धि। इनका परिचय क्रमशः निम्न है—

१-सूत्रस्थान—इसमें चिकित्सा, पथ्य और वैद्यके कर्तव्योंका वर्णन है।

२-निदानस्थान—इसमें मुख्य रोगोंका वर्णन है।

३-विमानस्थान—इसमें दोष आदिके मानका ज्ञान, आयुर्वेदीय विवेचन और आयुर्वेदके अध्येताके कर्तव्योंका उल्लेख है।

४-शारीरस्थान—इसमें शल्य-चिकित्सा और गर्भ-विज्ञानका वर्णन है।

५-इन्द्रियस्थान—इसमें अरिष्टजन्य रोगोंके निदानोंका वर्णन है।

६-चिकित्सितस्थान—इसमें मुख्य चिकित्साओंका वर्णन है।

७-कल्पस्थान—इसमें शरीरके पुनर्निर्माण एवं शरीरको किशोर-जैसा सुन्दर एवं आरोग्यमय बनानेका वर्णन है।

८-सिद्धिस्थान—इसमें वमन, विरेचन आदि पञ्चकर्मों-द्वारा सामान्य चिकित्साका वर्णन है।

सुश्रुतसंहिताके लेखक सुश्रुत हैं। यह आयुर्वेदका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें चिकित्सापर बल दिया गया है और शल्यके औजारोंका वर्णन है। सर्प-चिकित्सा और त्रिदोष-चिकित्सा-सिद्धान्तसे सिद्ध होता है कि आयुर्वेदने किसीका अनुकरण नहीं किया, बल्कि आयुर्वेदका अनुकरण यूनानी चिकित्सा-पद्धतिमें किया गया है। आयुर्वेद-पद्धतिका अनुकरण अरब तथा फारस-निवासियोंके द्वारा यूनानी चिकित्सा-पद्धतिमें किया गया है।

रत्न-विज्ञान और ज्योतिष, हस्तरेखा, तन्त्रशास्त्र तथा कामशास्त्र भी आयुर्वेदके अङ्ग हैं। आयुर्वेदमें वृक्षों और

१-सुश्रुत सू० १।७

पशु-चिकित्सापर भी ग्रन्थ हैं।

महाराज दिवोदास धन्वन्तरिने भी आयुर्वेदका ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने शल्य-शालाक्य (Surgery)-में विशेष योग्यता प्राप्त करके इस ज्ञानका प्रचार चिकित्सक महर्षियोंमें किया। परिणाम यह हुआ कि आधुनिक युगकी तरह काय-चिकित्सकों तथा शल्य-चिकित्सकोंके दो समुदाय आयुर्वेदमें कार्य करने लगे। कालान्तरमें शल्य-चिकित्सकोंके भी दो भाग हो गये—१-शल्य-चिकित्सक धान्वन्तरीय तथा २-शालाक्य-चिकित्सक या ऊर्ध्वाङ्ग-चिकित्सक। शालाक्य-चिकित्सकोंका कार्य-क्षेत्र नेत्र, कर्ण, नासिका, दन्त, मुख, तालु, ओष्ठ, गल-चिकित्सा एवं कपाल तथा मस्तिष्क-चिकित्सा आदि था।

शालाक्य-चिकित्साके स्रोत देवराज इन्द्र ही थे और पृथ्वीपर भरद्वाज एवं धन्वन्तरि थे। कांकायन, विदेह, निमि, गार्ग्य, गालव, भद्र, शौनक, कृष्णात्रेय, कराल, सात्यकि आदिने इस परम्पराको आगे बढ़ाया। सभी महर्षियोंने इस विषयपर अपने-अपने तन्त्र-ग्रन्थ लिखे। वे मूल रूपसे आज उपलब्ध नहीं हैं। उन तन्त्र-ग्रन्थोंके नाम हैं—१-विदेह-तन्त्र, २-कांकायन-तन्त्र, ३-निमि-तन्त्र, ४-गार्ग्य-तन्त्र, ५-गालव-तन्त्र, ६-सात्यकि-तन्त्र, ७-शौनक-तन्त्र, ८-कराल-तन्त्र, ९-चाक्षुष्य-तन्त्र और १०-कृष्णात्रेय-तन्त्र।

इन तन्त्र-ग्रन्थोंमें जत्रुसे ऊपर (ऊर्ध्व-जत्रु)-के रोगोंका वर्णन विशेषरूपसे किया गया है। ऊर्ध्व-जत्रुसे तात्पर्य है धड़के ऊपरका रोग अर्थात् कण्ठ और वक्षःस्थलका संयोग-स्थल। इसे जत्रु कहा गया है।

शालाक्य-तन्त्रका वर्णन आजके उपलब्ध ग्रन्थोंमें संक्षिप्त रूपसे चरक तथा कुछ विस्तारसे सुश्रुतमें पाया जाता है। सुश्रुतके उत्तर-तन्त्रमें अध्याय १—१९ तक नेत्र-रोगोंका, २०-२१वें अध्यायोंमें कर्ण-रोगोंका, २२—२४ वें अध्यायोंमें नासा-रोगोंका, २५-२६वें अध्यायोंमें शिरोरोगोंका वर्णन तथा चिकित्साका वर्णन है, इसी प्रकार चिकित्सास्थानके अध्याय २२ में तथा निदानस्थानके १६ एवं चरक-चिकित्सास्थानके २६वें अध्याय में ऊर्ध्वाङ्ग-रोगोंके निदान तथा उनकी चिकित्साका विवरण उपलब्ध है।

शलाका-यन्त्रोंका संक्षिप्त परिचय

शालाक्य-तन्त्रका मुख्य प्रयोजन है शलाका-यन्त्रका प्रयोग। आचार्य सुश्रुत तथा वाग्भट (अष्टाङ्ग-संग्रहकार)—ये दोनों इन यन्त्रोंके प्रयोगसे पूर्ण परिचित थे। महर्षि वाग्भटके अनुसार शलाका-यन्त्र नाना प्रकारकी आकृतिवाले होते हैं और अनेक कार्योंमें प्रयुक्त होते हैं। ये यथायोग्य लम्बे तथा मोटे होते हैं।

आचार्य सुश्रुतने शल्य-चिकित्सा (सर्जरी)-के लिये जिन यन्त्रों—औजारोंका विधान बतलाया, वे इतने अधिक किस्मोंके थे कि आज भी समस्त विश्वके शल्य-चिकित्सक एवं विद्वान् जानकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं। प्राचीनतम शल्य-चिकित्सक विभिन्न प्रकारकी शल्य-चिकित्साके लिये सवा सौसे भी अधिक किस्मके औजारोंका प्रयोग करते थे, जिनमें भाँति-भाँतिकी कैंची, चाकू, आरी, सूई, ट्यूब, सिरिंज, जमूर, स्पेकुला, लीवर, हुक, सलाई, जलोदर-रोगमें शरीरसे पानी निकालनेवाला यन्त्र तथा शलाका आदि मुख्य थे। यन्त्रोंके मुख कंक, सिंह, उलूक तथा काक आदि पशु-पक्षियोंके मुखके सदृश बनते थे और तदनुसार नाम भी होता था, जैसे—कंकमुख, सिंहास्य, काकमुख आदि। इनमेंसे कुछ-एक औजार आजके शल्य-चिकित्सा-औजारोंके आधार बने।

मनुष्यके सिरके आधे बालाग्रके बराबर पतली धारवाले 'वृद्धिपत्र' नामक यन्त्रसे रसौली (भौंहोंके पास आँखके ऊपर होनेवाली गिल्टी) निकाली जाती थी। मंडलाग्रसे घावोंको साफ किया जाता था। नाडी-यन्त्रसे दवाएँ शरीरके अंदर पहुँचायी जाती थीं। त्रिकुरचक्रमसे ऊतकोंको चीरकर उनमेंसे अवाञ्छित पदार्थ निकाले जाते थे। संदंशसे मांसमें चुभे काँटे आदि निकाले जाते थे। तालयन्त्रसे नाक, कानकी सफाई की जाती थी। दन्त-शङ्कुसे दाँत निकाले जाते थे। कारपत्रमसे हड्डियाँ काटी जाती थीं। ऐशानीसे शरीरमें 'पस' का पता लगाया जाता था। मुद्रिका-शस्त्र अँगूठीके आकारका एक विशेष प्रकारका चाकू था तथा उत्तरावास्त्रीसे नारी एवं पुरुषोंके शरीरमें एकत्र पेशाब बाहर निकाला जाता था। केवल जमूरे ही २४ किस्मके बताये गये हैं।

सुश्रुतने इन उपकरणोंको धारदार तथा भोथरी (कुंद-धारवाले) दो श्रेणियोंमें विभाजित कर रखा था और इनके आकार-प्रकार, स्वरूप, उपयोगिता, इन्हें पानी चढ़ाने, रोगाणुरहित करने तथा प्रयोगमें लानेकी विधियों एवं इनकी

सँभालके सम्बन्धमें पूर्ण योजनाबद्ध अध्ययन किया था। भोथरी-श्रेणीमें १०६ किस्मके शल्य-चिकित्सा-उपकरण थे। लोहेसे निर्मित उपकरण योग्य लोहारोंद्वारा चिकित्सकोंके निर्देशनमें बनाये जाते थे। इनका नाम उन जानवरों तथा पत्तों आदिके नामपर रखा जाता था, जिनसे मिलती-जुलती इनकी शक्ल होती थी। आचार्य सुश्रुतने आकृति-भेदसे छः प्रकारके यन्त्रभेद बताये हैं—१-स्वस्तिकयन्त्र, २-संदंशयन्त्र, ३-तालयन्त्र, ४-नाडीयन्त्र, ५-शलाकायन्त्र, ६-उपयन्त्र[1]। इन सभीके भेदोपभेद भी बताये हैं।

प्रमुख शालाक्य-यन्त्रोंका परिचय

१-गंडुपद-मुख शलाका-यन्त्र—यह दो प्रकारका होता है। इसका मुख केंचुएके समान होता है। यह नाडी-व्रणकी गतिके एषण (ढूँढ़ने)-के लिये प्रयुक्त होता है।

२-मसूरदल-मुख शलाका-यन्त्र—यह भी दो प्रकारका होता है। इसके द्वारा नासादि श्रोत्रगत शल्य निकाला जाता है। इसकी लम्बाई आठसे नौ अंगुलतक होती है। इसका मुख मसूरकी दाल या पत्रके सदृश होता है, अग्रभाग कुछ झुका-सा रहता है।

३-शंकुशलाका-यन्त्र—यह छः प्रकारका होता है। इसमें दो यन्त्र सर्पफणाकार होते हैं। इसका प्रयोग व्यूहन-कर्म (कटे हुए मांस, सिरा आदिको यथास्थान स्थापित करने)-में होता है। यह बारह और सोलह अंगुलतक लम्बा होता है।

४-शरपुंख-मुख शलाका-यन्त्र—यह दो प्रकारका होता है। इसका प्रयोग शल्यको चलाने तथा हिलानेमें होता है। इसकी लम्बाई दस अंगुलसे बारह अंगुल होती है। इसका मुख शरपुंखाके समान होता है।

५-वडिशमुख-यन्त्र—यह दो प्रकारका होता है। इसका प्रयोग शरीरके किसी अवयवांशको खींचनेमें होता है। इसकी लम्बाई दससे बारह अंगुल होती है।

६-गर्भांकुश-शलाका-यन्त्र—यह एक ही आकारका शंकु-जैसा होता है। यह आठ अंगुल लम्बा, परंतु कुछ झुका हुआ होता है। यह मूढ-गर्भ खींचनेके काममें आता है।

७-सर्पफण-शलाका-यन्त्र—यह एक ही आकृतिका सर्पके फणकी तरह होता है। इसका प्रयोग अश्मरीको खींचनेमें किया जाता है।

८-दन्तनिर्घातन-यन्त्र—यह एक प्रकारका आठ अंगुल लम्बा होता है और दाँत निकालनेके काममें आता है।

९-प्रमार्जनी शलाका-यन्त्र—यह छः प्रकारका होता है जैसे—

(क) इस प्रमार्जनी शलाका-यन्त्रके अग्रभागपर प्रमार्जनके समय रूई लपेट ली जाती है। इसका प्रयोग अनेक प्रकारके व्रणोंका क्लेद साफ करनेके लिये तथा अर्श आदिपर लगाया गया क्षार साफ करनेके लिये किया जाता है। इसमें दो घ्राण शलाकाएँ होती हैं, जो छःसे सात अंगुल लम्बी होती हैं। यह नासापुटोंको साफ करनेके लिये प्रयुक्त होती है।

(ख) कर्ण-शलाका-यन्त्र—यह दो प्रकारका होता है। यह आठसे नौ अंगुलतक लंबा होता है और कान साफ करनेके काममें आता है।

(ग) वायु-शलाका-यन्त्र—यह दो प्रकारका होता है। यह दससे बारह अंगुल लम्बा होता है। इससे गुदा-नाडियोंका व्रण साफ किया जाता है। इसीके द्वारा भग-व्रण भी साफ होता है। मूत्र-मार्गको साफ करनेके लिये भी अलग यन्त्र होते हैं।

(घ) कर्ण-शोधन-यन्त्र—अग्रभागसे यह चम्मच-सा होता है तथा पीछे शलाका होती है।

(ङ) अञ्जनार्थ-शलाका-यन्त्र—यह शलाका रोगानुसार विभिन्न धातुओंकी होती है और नेत्रमें अञ्जन लगानेके काममें आती है।

(च) अन्य शलाका-यन्त्र—क्षारकर्म, अग्निकर्म आदिके लिये अन्यान्य शलाकाएँ होती हैं, जो विभिन्न आकारकी छोटी, मोटी एवं पतली होती हैं। तन्त्र-वृद्धिमें प्रयुक्त होनेवाली शलाका अर्धचन्द्राकार (चतुर्थी) होती है।

उपर्युक्त सभी यन्त्रोंका ज्ञान आचार्य चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट आदिने आजसे हजारों-हजार वर्ष पूर्व करा दिया था।

विडम्बना है कि आज आयुर्वेदीय शल्य-शालाक्य-तन्त्रका ज्ञान उस प्रकार रह नहीं गया है जैसा पहले था, परंतु इसकी महत्ता तो आज भी वैसी ही है।



१-तानि षट् प्रकाराणि तद्यथा—स्वस्तिकयन्त्राणि, संदंशयन्त्राणि,तालयन्त्राणि, नाडीयन्त्राणि, शलाकायन्त्राणि, उपयन्त्राणि चेति। (सुश्रुत० सूत्र० ७।५)

आयुर्वेद और होम्योपैथी—एक विवेचन

(श्रीरामगोपालजी पालड़ीवाल)

प्राचीन कालसे ज्ञान-विज्ञानके सभी क्षेत्रोंमें भारतीय मनीषाका अवदान सर्वोत्कृष्ट रहा है। व्याधिग्रस्त प्राणियोंके पीडा-निवारण-हेतु आर्यमनीषाने सर्वाङ्गपूर्ण चिकित्साशास्त्र 'आयुर्वेदका' सृजन किया। इसमें मनुष्य तथा मनुष्येतर प्राणियोंकी व्याधि दूर करनेके लिये उत्तमोत्तम दिशा-निर्देश दिये गये हैं। जिनपर रीझकर वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति एलोपैथीके पुरोधा भी इसकी उपयोगिताको स्वीकार कर रहे हैं।

अधुना बहु प्रचलित होम्योपैथीके मूल सिद्धान्त भी हमें आयुर्वेदके प्राचीन ग्रन्थोंमें प्राप्त होते हैं। जैसे—ओषधि-निर्माणके लिये आयुर्वेद कहता है—'**मर्दनं गुणवर्धनम्**'। होम्योपैथी इसी सिद्धान्तके बलपर अपनी ओषधियोंको शक्तिकृत करके चमत्कार दिखाती है।

भारतीय रसायनशास्त्री 'नागार्जुन' जिन्होंने हीन धातुओंको सुवर्ण, रजत, महारजत-जैसी मूल्यवान् धातुओंमें परिणत करनेका चमत्कार हजारों वर्ष पहले करके दिखा दिया था, उनका सिद्धान्त वाक्य है—'**स्वल्पमात्रं बहुगुणसम्पन्नं योग्यभेषजम्**'। अर्थात् रोग-निवारणके लिये दवाका चुनाव यदि सही हुआ हो तो दवाकी मात्रा बहुत अर्थ नहीं रखती। यही बात तो होम्योपैथीमें होती है। दवाका नम्बर जितना ऊँचा होता जाता है, उसका प्रभाव तो बढ़ता जाता है पर उसमें मूल दवाकी मात्रा उतनी ही सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम होती जाती है। फिर भी दवाका चमत्कार प्रत्यक्ष देखा जाता है। इससे यह धारणा स्वाभाविक ही हो जाती है कि आरोग्यता प्रदान करनेवाली प्रकृति-प्रदत्त कोई अन्य शक्ति है, जिसको जीवनी-शक्ति या रोग-प्रतिषेधक शक्ति (Immunity) कहा जाता है। दवाका कार्य केवल उस शक्तिको प्रबुद्ध करके सही दिशा प्रदान करनामात्र है, शेष सारा कार्य प्रकृति स्वयं करती है। दुश्चिकित्स्य अथवा असाध्य माने जानेवाले कैंसर-रोगकी ओषधि खोजनेवाले विद्वानोंकी भी अनेक प्रयोग-परीक्षणोंके बाद यही धारणा बनी है कि शरीरमें प्रकृति-प्रदत्त रोग-निवारणकी शक्तिको परिपुष्ट कर दिया जाय तो रोग स्वयं निवृत्त हो जाता है। आयुर्वेदमें भी एक-एक औषध योगमें पचासों घटक द्रव्य होते हैं और दवाकी मात्रा एक रत्ती, आधी रत्तीकी दी जाती है। अब सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उस अल्प-सी मात्रामें पचासों ओषधियोंकी मात्राका अनुपात क्या होता है? इससे अवगत होता है कि मनीषी नागार्जुनका दिया हुआ सिद्धान्त कितना सार्थक है।

इस संदर्भमें यह विचारणीय हो जाता है कि जब साधारण समझी जानेवाली वनौषधियों तथा अन्य वस्तुओंको सूक्ष्मतम मात्रामें प्रयोगकर एक होम्योपैथ रोग-निवारणका चमत्कार दिखाता है तो आयुर्वेदके अत्यन्त वीर्यवान् सिद्ध औषधोंका सूक्ष्मतममात्रामें प्रयोग करके स्वल्प व्ययमें ही आर्तनारायणको रोगमुक्त करनेका शास्त्रसम्मत प्रयास युक्तिसंगत ही तो समझा जायगा।

अपने सीमित दायरेमें इस प्रयासका सुफल प्राप्त हो रहा है। त्रिदोषोंपर अधिकार रखनेवाली 'वज्र-भस्म' आयुर्वेदकी सर्वाधिक मूल्यवान् ओषधि है। इसमें शरीरके जीर्ण-अक्षम कोषों (Cells)-को नष्टकर नये कोषोंकी वृद्धि करनेकी अपूर्व शक्ति है। अपने इस गुणके कारण वर्तमानमें महामारीका रूप लेनेवाले कैंसर तथा एड्स (AIDS) नामसे प्रसिद्ध असाध्य रोगोंपर भी इसका आरोग्यजनक प्रभाव परिलक्षित हुआ है। अवश्य ही इसके साथ-साथ पथ्य-परहेज तथा सहायक अन्य औषधोंका प्रयोग भी होना चाहिये।

इसके द्वारा शरीरके भीतर-बाहर अनेक स्थानोंपर होनेवाले अर्बुद, रक्त-कैंसर, एलर्जी आदि रोगोंमें भी बहुत उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुए हैं। आयुर्वेदके उत्साही चिकित्सकोंके सामने प्रयोग-परीक्षणका एक सर्वथा नवीन एवं विस्तृत क्षेत्र खुला पड़ा है। इसका लाभ उठाना चाहिये।



आयुर्वेदमें दिव्य औषधियाँ

(पद्मश्री वैद्य श्रीसुरेशजी चतुर्वेदी, आयुर्वेदाचार्य)

भारत ही नहीं, अपितु समस्त विश्वमें रोगोंके बढ़ते हुए स्वरूपको देखकर मनमें दुःख होना स्वाभाविक ही है। वास्तवमें काल, इन्द्रियार्थ और कर्मका हीनयोग, मिथ्यायोग और अतियोग रोगके कारण होते हैं। उक्त क्रियाओंसे पञ्चतत्त्वोंमें विषमता आ जाती है। यह विषमता प्रकृतिमें भी विकृति लाती है और हमारे शारीरिक तत्त्वोंको भी विकृत करके रोगका कारण सिद्ध होती है।

आज संसारके प्राणियोंकी जैसी स्थिति है, वैसी स्थितिका वर्णन हमें आयुर्वेदमें मिलता है। एक बार संसारके प्राणियोंके दुःखसे दुःखी हो ऋषि-महर्षि उनके कल्याणकी कामनासे औषधियोंके आकर हिमालयपर आये। सहस्रचक्षु देवराज इन्द्रने इन सभी ऋषि-महर्षियोंको देव-भूमिमें आया देखकर उनका स्वागत किया और उनके आगमनका प्रयोजन पूछा। इसपर ऋषियोंने कहा कि देवराज! संसारमें मनुष्य बहुत ही शारीरिक एवं मानसिक कष्ट पा रहे हैं। क्या उनके कल्याणका कोई मार्ग नहीं है। चिन्तित देवराज इन्द्रने उत्तर देते हुए स्पष्ट किया कि सर्वप्रथम ब्रह्माने प्रजापतिको आयुर्वेदका ज्ञान कराया। तदनन्तर प्रजापतिने अश्विनीकुमारोंको और अश्विनीकुमारोंने मुझे जनकल्याणार्थ आयुर्वेदका उपदेश किया था। आयुर्वेदप्रोक्त उन्हीं दिव्य महौषधियोंके विषयमें मैं आप सबको बताऊँगा। आप सब ध्यान देकर सुनें—महर्षियो! इस हिमालयप्रदेशमें अगम्य स्थानोंपर कठिनतासे प्राप्त होनेवाली ऐसी अनेक औषधियाँ हैं, जो कि देवताओंको प्रिय हैं और जिनके प्रभाव भी दिव्य ही होते हैं। इनमें अनेक औषधियाँ तो साधारण मनुष्योंको दिख भी नहीं पातीं, इनकी प्राप्तिके लिये पूर्ण तपोमय जीवन, त्याग तथा सात्त्विक भावना, ब्रह्मचर्यजीवन और लोक-कल्याणकारी विचार होना परम आवश्यक होता है। आप-जैसे महानुभावोंको उनका ज्ञान कराते हुए मुझे जरा भी संकोच नहीं हो रहा है। असंख्य दिव्य औषधियोंमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—ऐन्द्री, पयस्या, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, श्रावणी, महाश्रावणी, शतावर, विदारीकन्द, जीवन्ती, पुनर्नवा, नागबाला, स्थिरा, बचा, क्षत्रा, अतिक्षत्रा, मेदा, महामेदा, काकोली, जीवक, ऋषभक, मधुयष्टी, मुद्गपर्णी तथा माषपर्णी आदि। इन औषधियोंकी जब आप आवश्यकताका अनुभव करें तो सर्वप्रथम शुभ मुहूर्तमें पवित्र होकर शुभ भावनासे इनके समक्ष जाकर इन्हें सम्बोधित करते हुए लोककल्याणका अपना उद्देश्य बतायें, वनस्पतियोंमें प्राण होते हैं। तदनन्तर 'मैं आपको ग्रहण करना चाहता हूँ', ऐसा विचार प्रकट कर शुभ दिन, शुभ कालका निमन्त्रण दें। फिर पवित्र होकर उस शुभ दिन, शुभ कालमें मन्त्रोंसे इन्हें अभिमन्त्रित करते हुए औषधियोंको किसी भी प्रकारका क्लेश न हो, इसका ध्यान रखते हुए इनका उत्पाटन करें अर्थात् उखाड़ें। इस विधिसे ग्रहण की हुई औषधियोंका सेवन दुःखी प्राणियोंको विधिपूर्वक गायके दूधके साथ कराना चाहिये।

देवराजके मुखसे दिव्य औषधियोंके नाम तथा विधि जानकर सभी ऋषि-महर्षि गद्गद हो गये। पुनः उन्होंने प्रश्न किया कि हे देवताओंके देव! कृपया हमें यह भी निर्देश करें कि इन औषधियोंका विशेषरूपसे प्राणियोंपर क्या प्रभाव होता है?

इन्द्र बोले—'इन दिव्य औषधियोंके सेवनसे मनुष्योंकी आयु तरुण रहेगी। आरोग्यको प्राप्त होकर शरीरका वर्ण भी सुन्दर होगा, आवाज भी सुन्दर होगी और शरीर पुष्ट होकर बुद्धि-स्मृति भी पुष्ट होगी। परिणामस्वरूप बलकी वृद्धि होकर सभी आकांक्षाएँ पूर्ण होती हैं।' तदनन्तर देवराज इन्द्र बोले कि मेरी इच्छा है कि आप सब जनकल्याणके हेतु इन दिव्य औषधियोंकी जानकारी मनुष्योंको करायें।

देवराज इन्द्रके ये वचन सुनकर सभी ऋषि बोले कि हे देवेश! हम आपकी आज्ञाका पूर्णरूपसे पालन करेंगे।

तदनन्तर देवराजकी आज्ञा लेकर सारे ऋषि-समुदायने अपने-अपने आश्रमोंकी ओर प्रसन्नमुद्रामें प्रस्थान किया।

देवराज इन्द्रसे भारद्वाज ऋषिने दिव्य औषधियोंका वर्णन सुनकर यथावत् पुनर्वसु आत्रेयको सुनाया। महर्षि आत्रेयने उसे अपने छः शिष्योंको समझाया। शिष्योंने भलीभाँति समझकर अपने-अपने ग्रन्थ रचे, जिनमें कि इन औषधियोंका वर्णन मिलता है। इन्हीं दिव्य औषधियोंका यहाँ संक्षिप्त रूपमें वर्णन किया जा रहा है—

ऐन्द्री (इन्द्रायण)—यह औषधि दो प्रकारकी होती है—सफेद पुष्पवाली और लाल पुष्पवाली। कहीं-कहीं पीले पुष्पवाली ऐन्द्रीको इन्द्रावारुणी, गवादनी, मृगादनी, विषाध्वनि, गवाक्षी तथा सूर्या नामसे सम्बोधित किया जाता है।

१. लाल इन्द्रायण—इसे विशाला, महाफला, चित्रफला, त्रयूसी, रम्यादिहीवल्ली, महेन्द्र वारुणी—इन नामोंसे सम्बोधित किया गया है।

२. श्वेतपुष्पी—अर्थात् बड़ी इन्द्रायणीको मृगाक्षी, नागदन्ती, वारुणी, गर्जचिभटा—इन नामोंसे जाना जाता है।

इन औषधियोंकी लता होती है जो कि भारतमें सर्वत्र देखी जाती है। इसका स्वाद दो प्रकारका होता है कड़वा एवं मीठा। औषधियोंमें कड़वी इन्द्रायणीका ही प्रयोग होता है। इसकी बेल जमीनपर फैलती है। बेलके पत्ते कई कोणवाले होते हैं। बेलमें फल एवं फूल भी लगते हैं।

उपयोग—इसका प्रयोग पेटकी शुद्धिके लिये होता है। मूढगर्भको निकालनेके लिये भी इसका सफल प्रयोग होता है। उदर-संस्थानके सभी रोगोंपर इसका हितकारी प्रभाव होता है। पित्तकी विकृतिमें भी यह बड़ी लाभदायक होती है।

ब्राह्मी—यह औषधि हिमालयपर विशेष प्रकारसे प्राप्त होती है। सभी स्थानोंपर जो ब्राह्मी मिलती है, वह वास्तवमें ब्राह्मीका भेद मण्डूकपर्णी नामक औषधि है। असली ब्राह्मी हिमालय एवं पंजाबके पर्वतीय भागोंमें मिलती है। इसे संस्कृतमें कपोतबंका, सरस्वती, सोमवल्ली—इन नामोंसे जाना जाता है। इस वनस्पतिके छोटे-छोटे गोल पत्ते होते हैं, जो कि पृथक्-पृथक् तनेसे सम्बन्धित होते हैं। यह जलयुक्त एवं जलके निकटवर्ती भागोंमें उत्पन्न होती है। इसमें फूल भी लगते हैं।

उपयोग—ब्राह्मीका उपयोग विशेषकर मस्तिष्क-रोग एवं वातनाडीकी विकृतिपर होता है। यह अपस्मार, उन्माद तथा हृदयके लिये हितकारी है। यह शीतल होती है और परम रसायन मानी गयी है। ब्राह्मी कुष्ठ, प्रमेह, रक्तविकार, पांडु तथा शोथके लिये विशेष हितकारी होती है।

शंखपुष्पी—यह औषधि हिमालयकी चार हजार फुटकी ऊँचाईतक प्राप्त होती है। यह सीलोन, बर्मा तथा अफ्रीकाके कुछ भागोंमें भी प्राप्त होती है। इसे प्राचीन ग्रन्थोंमें शंखहवा, शंखा, मांगलय, कुसमा—इन नामोंसे सम्बोधित किया गया है। इसके क्षुप (छोटे तने या झाड़) जलासन्न भूमिमें पैदा होते हैं। यह एक हाथतक ऊँचा होता है। इसमें अनेक शाखाएँ होती हैं। पत्ते पतले और लम्बे शंखकी तरह आवर्तित होते हैं। इसके पुष्प श्वेत, रक्त एवं नील वर्णके होते हैं। परंतु व्यवहारमें आनेवाली शंखपुष्पी श्वेतपुष्पी ही श्रेष्ठ एवं उपयोगी होती है। यह उष्णवीर्य एवं रसायन होती है। मेधाके लिये अत्यन्त लाभकारी है। मानसिक विकारोंको तथा अपस्मारको नष्ट करती है। स्वर एवं कान्ति तथा निद्रा लानेके लिये परम उपयोगी है।

जीवन्ती—इसे संस्कृतमें मधुश्रवा भी कहते हैं। यह एक प्रकारकी बेल होती है जो काफी ऊँची बढ़ जाती है। यह औषधि हिमालयके अधिक ऊँचाईवाले क्षेत्रमें प्राप्त होती है और तोड़नेपर छः महीनेतक नहीं सूखती। यह वायु, पित्त एवं कफ—इन तीनों दोषोंको नष्ट करनेवाली होती है। यह परम रसायन, बलकारी, नेत्रोंके लिये हितकारी, दस्त बाँधनेवाली और शीतवीर्य औषधि है। यह वीर्यवर्धक होती है। सभी महर्षियोंने इसका प्रयोग शाकमें श्रेष्ठ माना है। इसकी जड़का चूर्ण तीन ग्रामकी मात्रामें दूधके साथ सेवन करना चाहिये। जो व्यक्ति किसी भी प्रकारके विषसे ग्रसित हो, जिन्हें रातको कम दिखायी देता हो, ऐसे व्यक्तियोंके लिये यह परम हितकारी है।

ब्रह्मदण्डी—इसे अजदण्डी भी कहते हैं। इसका एक प्रकारका क्षुप (तना) होता है जो एक फुटसे चार फुट ऊँचा होता है। इसके पत्ते एकसे तीन इंच लम्बे होते हैं।

ब्रह्मदण्डी उष्णवीर्य होती है। यह वायु एवं कफको नष्ट करती है। इसका विशेष प्रयोग स्मृतिवर्धनादि तथा श्वेतकुष्ठ, चर्मरोग एवं कृमिनाशके लिये होता है। यह अपस्मार, उन्मादपर भी विशेष लाभकारी होती है। क्लीबता नष्ट करनेके लिये इसका सफल प्रयोग होता है। इसका ठंडईके रूपमें भी प्रयोग होता है। कुछ महर्षियोंके मतसे यह पारदको बाँधनेके लिये भी सफल सिद्ध है। ब्रह्मदण्डी हिमालयके अतिरिक्त महाबलेश्वर, मद्रास, मैसूर तथा मध्य भारतके पर्वतोंपर भी उपलब्ध होती है।

रुद्रवन्ती—इसे चणपली तथा संजीवनी भी कहते हैं। इस औषधिके छोटे-छोटे छः से अठारह इंच ऊँचे क्षुप (तने) होते हैं, जिनमें अनेक शाखाएँ एवं अनेक छोटे-छोटे चनेके

समान पत्ते होते हैं। इसकी उत्पत्ति उष्ण प्रदेशोंमें तथा सीलोनमें होती है।

यह उष्णवीर्य, परम रसायन औषधि है तथा क्षय, कास, श्वास, प्रमेह, रक्तपित्त, कृमिरोगको नष्ट करती है। इसके पत्तेका चूर्ण दोसे चार ग्रामकी मात्रामें जल या दूधके साथ सेवन करना उपयुक्त है।

उक्त नामोंसे आजकल जो औषधियाँ प्रचलित हैं, उनके सम्बन्धमें अभीतक भिन्न-भिन्न आचार्योंके मतोंकी सुनिश्चित धारणा नहीं बन पायी है। इन दिव्य औषधियोंकी वास्तवमें जानकारी तथा इनकी उपलब्धि न होनेके कारण तद्गुणसमा (उनके समान गुण-धर्मवाली) औषधियोंका ही प्रयोग हो रहा है।

पौराणिक कथा है कि दीर्घकालसे घोर तपस्यामें लीन महर्षि भार्गव (च्यवन)-का सम्पूर्ण शरीर मिट्टीसे ढक गया, केवल उनके नेत्र खुले रह गये थे। राजा शर्यातिकी पुत्री सुकन्याने भ्रमसे महर्षिके नेत्रोंको शलाकासे बींध दिया। फलस्वरूप उनमेंसे रक्त प्रवाहित हो उठा। शापके भयसे राजा शर्यातिने महर्षिकी सेवा-शुश्रूषाके लिये अपनी कन्याका उनसे विवाह कर दिया।

सुकन्या एक दिन सरिताके तटपर जल भरने गयी थी। वहाँ उसे अप्रतिम सौन्दर्यवाले अश्विनीकुमारोंके दर्शन हुए। सुकन्याकी परिस्थितिपर उन्हें दया आयी और उन्होंने उसे एक प्रयोग बताया। उसके फलस्वरूप महर्षिकी नेत्रज्योति लौट आयी और वे पूर्णरूपसे युवा भी हो गये। यही च्यवन ऋषिके नामसे प्रख्यात हुए। इन्होंने जिन औषधियोंका सेवन कर पुनर्जीवन प्राप्त किया था, उनके वर्णन विशेषरूपसे इन नामोंसे प्रचलित हैं—

जीवक, ऋषभ (ऋषभक), मेदा-महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, मांसपर्णी, जीवन्ती और मुलहठी। इन औषधियोंके साथ ऋद्धि तथा वृद्धिको मिला देनेसे अष्टवर्ग बनता है।

जीवक-ऋषभक—ये दोनों औषधियाँ हिमालय पर्वतपर उत्पन्न होती हैं। इनके कन्द लहसुनके समान होते हैं। भीतरसे ये कन्द खोखले होते हैं। इनके पत्र सूक्ष्म होते हैं। जीवकका आकार कूर्चा तथा ऋषभकका बैलके सींगके समान होता है।

मेदा-महामेदा—इनकी उत्पत्ति भोरंग प्रदेशमें होती है। महामेदा सूखे अदरकके समान होती है। इसकी लता पीले रंगकी होती है। मेदाका वर्ण श्वेताभ होता है। खुरचनेपर इसमेंसे मेद धातुके समान द्रव भी निकलता है।

काकोली-क्षीरकाकोली—इनकी भी उत्पत्ति भोरंग देशमें मानी जाती है। काकोली कुछ कृष्णवर्ण असगन्धके आकारकी होती है। क्षीरकाकोली श्वेतवर्णकी पीवरी असगन्धके समान होती है। इसमें गन्धयुक्त दूधका स्राव होता है।

ऋद्धि-वृद्धि—इनकी उत्पत्ति श्यामल प्रदेशमें मानी गयी है। ऋद्धिका फल कपासकी गाँठकी भाँति बायेंसे दायें तथा वृद्धिका दायेंसे बायेंकी ओर घूमा हुआ होता है।

उपर्युक्त औषधियाँ हिमालय पर्वतपर प्राप्त होती हैं। इनमें कच (काँटे) होते हैं। वैसे आजकल ये औषधियाँ दुर्लभ ही हैं। संक्षिप्तमें ये औषधियाँ धातुओंको पुष्ट करने, वीर्य बढ़ाने तथा शारीरिक और मानसिक तत्त्ववृद्धिमें अति गुणकारी होती हैं। साथ ही कफको बढ़ानेवाली, स्त्रियोंके दूधमें वृद्धि करनेवाली तथा गर्भदायक भी मानी गयी हैं। पित्तविकार, दाह, शोक, ज्वर, रक्तपित्त, प्रमेह तथा क्षयरोगोंमें भी इनका प्रयोग अति प्रभावशाली सिद्ध होता है। वृद्धावस्थाको समाप्त कर नवयौवन प्राप्त करनेमें भी ये औषधियाँ काफी लाभप्रद हो सकती हैं। इन औषधियोंकी दुर्लभता-सी है। अतः इनके गुणोंका प्रतिनिधित्व करनेवाली अन्य औषधियाँ भी खोजी गयीं। चिकित्सकोंने मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोलीके स्थानपर शालम मिश्री, शकाकुल मिश्री, बहुमन सफेद तथा बहुमन सुर्खको उपयोगमें लानेकी बात कही है। आचार्य भावमिश्रने भी महामेदाके लिये शतावर, जीवक तथा ऋषभकके लिये विदारीकन्द, काकोली, क्षीरकाकोलीके लिये अश्वगन्धा, ऋद्धि और वृद्धिके लिये वाराही कन्दका उपयोग करनेके लिये कहा है।

इन चारों औषधियोंके मूल-कन्द ही उपयोगमें आते हैं। इनके गुणोंमें भी समानता पायी जाती है। ये भारी, शीतल, स्वादिष्ठ, वीर्यवर्धक तथा जीवनीय शक्तियोंको बढ़ानेवाली होती हैं। नेत्रोंकी दुर्बलताको भी नष्ट करनेमें सहायक होती हैं।

विश्वकी दृष्टि हमारी जड़ी-बूटियोंपर

(श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)

प्रकृतिने मनुष्यके प्रादुर्भावके पहले ही विभिन्न प्रकारकी जड़ी-बूटियाँ एवं वनस्पतियाँ पैदा कर दीं। इन जड़ी-बूटियोंमें वे सारी गुणवत्ताएँ स्थित हैं, जो रोगी होनेसे बचाने तथा रोगको ठीक करनेके लिये आवश्यक हैं।

मनुष्यने सबसे पहले कब और किस पौधेका उपयोग औषधिके रूपमें किया था, इसका कोई प्रामाणिक दस्तावेज उपलब्ध नहीं है, पर हमारे देशमें ऋग्वेद औषधीय पौधोंके विषयमें जानकारी प्रदान करनेवाला प्रथम प्रामाणिक ग्रन्थ है। ऋग्वेदके द्वारा पता चलता है कि आर्य मनीषी प्राचीन कालमें 'सोम' नामक पौधेका उपयोग औषधिके रूपमें करते थे। प्राचीन भारतीय चिकित्सा-पद्धतिमें जड़ी-बूटियोंसे निर्मित औषधियोंका अधिक वर्णन मिलता है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि मनुष्यने रोगग्रस्त होते ही पहले उन पौधोंका औषधिके रूपमें उपयोग किया जो उन्हें अपने नजदीक सरलतासे मिल जाते थे। यही कारण है कि वैदिक चिकित्सकों एवं ग्रन्थकारोंने यह निष्कर्ष निकाला कि रोगी अपने आस-पास उगनेवाली जड़ी-बूटियोंसे ही ठीक हो सकता है। उसे जड़ी-बूटियोंकी खोजमें व्यर्थ ही दूर देशतक भटकनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

जड़ी-बूटियोंके विदेशी शोधकर्ताओंने सदासे ही जंगलमें रहकर विभिन्न प्राकृतिक औषधियोंसे चिकित्सा कर रहे व्यक्तियोंको सम्मान दिया है। एक ब्रिटिश विशेषज्ञ अपनी पुस्तकमें लिखते हैं कि यदि भारतीय जड़ी-बूटियोंके विषयमें जानकारी चाहिये तो आपको जंगलसे जुड़े लोगोंपर विश्वास करना होगा, उनके साथ रहना होगा और जड़ी-बूटियोंके अन्वेषणमें घने जंगलोंके अंदर जाना होगा तथा ऊँचे पहाड़ोंपर भी चढ़ना होगा।

विश्वमें जड़ी-बूटियोंसे निर्मित औषधियोंका प्रचलन जोरोंपर है। नवीनतम आकलनके अनुसार वर्तमानमें विश्वमें लगभग तीन लाख करोड़ रुपयेकी जड़ी-बूटीसे बनी औषधियोंकी बिक्री हो रही है। जड़ी-बूटीके क्षेत्रमें विश्वकी प्रमुख कम्पनियाँ प्राकृतिक रूपसे सम्पन्न भारतको आधार बनाना चाह रही हैं। भारतमें वैदिक कालसे ही औषधीय महत्त्व रखनेवाले पौधों, लताओं और वृक्षोंकी पहचान की गयी है। जड़ी-बूटियोंके चमत्कारिक औषधीय प्रभावको वैज्ञानिक धरातलपर जाँचा-परखा जा चुका है। आज भी आयुर्वेदिक दवाओंका प्रचलन देहातों, कस्बों और छोटे शहरोंमें अधिक है। महानगरोंका सम्पन्न वर्ग भी एलोपैथिक दवाओंके दुष्प्रभावोंसे घबड़ाकर आयुर्वेदकी ओर लौटने लगा है। एकाएक ही विश्वमें एलोपैथिक दवाओंके स्थानपर वैकल्पिक जड़ी-बूटीकी परम्परागत दवाओंकी तरफ लोगोंका झुकाव बढ़ने लगा है। अनेक कम्पनियोंने जड़ी-बूटी (हर्बल) सौन्दर्य-प्रसाधनोंके उत्पादनोंको बाजारमें उतारा है। भारतसे औषधीय पौधे, वृक्ष-उत्पादोंका निर्यात भी जोर पकड़ रहा है। वर्तमानमें चार सौ छत्तीस करोड़ रुपयोंके औषधीय पौधोंका निर्यात हो रहा है। इसके निर्यातमें सौ गुनातक वृद्धि होनेकी पूरी सम्भावना है।

महर्षि चरककी 'चरकसंहिता' में पेड़-पौधोंके औषधीय महत्त्वकी गहन विवेचना की गयी है। इसमें प्रत्येक पेड़-पौधोंकी जड़से लेकर पुष्प, पत्ते और अन्य भागोंके औषधीय गुणों और उनसे रोगोंके उपचारकी विधियाँ वर्णित हैं। आयुर्वेदके देवता धन्वन्तरिने जड़ी-बूटियोंके अलौकिक संसारसे जगत्का साक्षात्कार कराया है। पेड़-पौधोंका औषधीय महत्त्व अनेक पौराणिक आख्यानोंमें व्यक्त हुआ है। पीपलमें भगवान् विष्णुका वास बताया गया है। बीसवीं सदीमें वैज्ञानिकोंने यह खोज निकाला कि केवल पीपल ही एक ऐसा वृक्ष है, जो रात-दिन ऑक्सीजन छोड़ता है, जबकि अन्य पेड़ रातको कार्बन डाइ-आक्साइड छोड़ते हैं। घरोंमें तुलसीके पौधोंके पूजनकी सुदीर्घ परम्परा है। तुलसीके पौधेके सभी भाग यानी जड़, फूल, फल, पत्ती तथा डंठल आदिका औषधीय महत्त्व है। भारतमें वर्षोंसे जहरीले आकके पौधेसे फोड़े-फुंसीका

उपचार किया जाता है। गाँवोंसे शहरोंतक नीमके औषधीय गुणोंसे कौन अपरिचित है? चर्मरोगमें, कपड़ोंको कीड़ोंसे बचानेमें, दाँतोंको नीरोग रखनेमें तथा अनाजको घुन लगनेसे बचानेमें नीमका उपयोग सदियोंसे लोग करते आये हैं। नीम-खलीकी खाद दोहरा काम करती है—खादका तथा फसलको कीटाणुमुक्त रखनेका। चेचकके फैलनेपर नीमकी पत्तियोंको दरवाजेपर बाँधनेकी पुरानी परम्परा है। विवाहके अवसरपर कहीं-कहीं वरपक्ष जब कन्यापक्षके दरवाजेपर जाता है और तोरण मारता है तो वह भी नीमकी ही डाली रहती है।

विश्व-स्वास्थ्य-संगठनने कहा है कि अगले बीस वर्षोंमें यानी सन् २०२० ई० तक एलोपैथीकी एंटीबायटिक दवा मनुष्यके शरीरपर असर करना बंद कर देगी, यानी शरीर एंटीबायटिकके प्रति इम्यून हो जायगा। यह स्थिति आनेसे पहले ही पूरे विश्वको सचेत हो जाना होगा कि तब शरीरको एलोपैथी पद्धति कैसे नीरोग रख पायेगी। इसका एकमात्र उपाय है जड़ी-बूटियोंका अधिकाधिक उपयोग। यही कारण है कि विश्वका झुकाव जड़ी-बूटियोंके उपयोगकी ओर बढ़ा है। सारे विश्वकी निगाहें हमारे देशकी जड़ी-बूटियोंपर लगी हैं। क्यों? कारण, हमारे पास जड़ी-बूटियोंके विज्ञानका शास्त्र आयुर्वेदके रूपमें उपलब्ध है। हमारा आयुर्वेद विश्वका प्राचीनतम शास्त्र है। हमारी जड़ी-बूटियाँ भी सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न हैं। कारण, प्रखर सूर्य तथा सभी प्रकारके मौसम ही उन्हें शक्तिसम्पन्नता प्रदान करते हैं। विकसित देशोंके पास प्रखर सूर्य नहीं हैं तथा इतने मौसम भी वहाँ नहीं होते हैं। यही कारण है कि हमारी जड़ी-बूटियाँ दुनियामें सर्वाधिक प्रभावशाली हैं। हमें केवल इसका प्रसार-प्रचार करके इसे विश्वव्यापी बनाना है।

आज केवल आयुर्वेदकी प्रामाणिकताके आधारपर विश्वबाजार हमारी जड़ी-बूटियोंकी ओर आकर्षित नहीं होगा। विदेशोंमें आकर्षण बढ़ाने-हेतु प्रयोगशालामें जाँच तथा क्लिनिकल ट्रायल भी आवश्यक है। विश्वके सामने जब सप्रमाण सारी गुणवत्ता रखी जायगी तो हमारे देशकी जड़ी-बूटियोंकी माँग विश्व-स्तरपर बढ़ना अवश्यम्भावी है। हमें विकसित देशोंकी आवश्यकताके अनुरूप तो निर्माण करना ही होगा, हमारे देशवासियोंमें भी जड़ी-बूटियोंसे निर्मित औषधियोंके उपयोगके प्रति भी पुनः आकर्षण पैदा करना होगा। हमारे देशमें जड़ी-बूटियाँ सर्वत्र फैली हैं। जंगल एवं पहाड़ इनसे भरे पड़े हैं। बहुत-सी दुर्लभ जड़ी-बूटियोंको सुरक्षित रखनेकी भी आवश्यकता है, ताकि उनका लोप न हो जाय। हमारी सरकारको भी जड़ी-बूटियोंके महत्त्वके प्रति सचेत होनेकी आवश्यकता है, ताकि आवश्यकताके अनुरूप प्रयोगशालाओंका निर्माण हो तथा उन्हें पूरी गुणवत्ताके साथ सुरक्षित रख सकें।

यदि फ्रीज-ड्राइंगकी नयी तकनीकसे जड़ी-बूटियोंको सुखाया जाय तो सारी गुणवत्ताएँ सुरक्षित रहेंगी, जैसे रंग, स्वाद, गन्ध तथा शक्तिसम्पन्नता आदि। इन्हें कैप्सूलमें भरकर वर्षपर्यन्त सुलभ कराया जा सकता है। आयुर्वेदसम्मत जड़ी-बूटियोंको उपयोगी बनाने-हेतु प्राचीन एवं नवीनको एक साथ जुड़ना पड़ेगा। यदि आजके विज्ञानकी देन फ्रीज-ड्राइंग तकनीक न होती तो जड़ी-बूटियोंके सारे गुण-धर्म सुरक्षित रख पाना सम्भव न होता। आजकल रोगोंकी जाँचके भी काफी उपकरण विज्ञानने हमें सुलभ कराये हैं, जबकि पहले केवल नाडीविज्ञान था। जाँच करानेमें इन विज्ञानसम्मत उपकरणोंका उपयोग हमारे लिये अत्यन्त लाभकारी है।

सरकारको जड़ी-बूटियोंके उत्पादन, संरक्षण तथा दवाके रूपमें उपयोग-हेतु फ्रीज-ड्राइंग तकनीकको विकसित करनेकी परम आवश्यकता है। चीन जड़ी-बूटियोंके निर्यातसे २२००० करोड़ रुपये तथा थाइलैंड १०००० करोड़ रुपयेकी विदेशी मुद्रा अर्जित कर रहा है। निर्यातके इन आँकड़ोंके सामने हमारा निर्यात नगण्य है। यदि हमने ध्यान नहीं दिया तो हमारी जड़ी-बूटियाँ विदेशोंसे निर्मित होकर हमारे ही देशमें आयेंगी और हमें ऊँचे मूल्योंमें खरीदनेके लिये विवश होना पड़ेगा। यदि ऐसा हुआ तो यह हमारा घोर निन्दनीय अपराध होगा और भावी पीढ़ी हमें कभी क्षमा नहीं करेगी। भविष्यमें स्वस्थ रहनेका विकल्प केवल जड़ी-बूटियोंके अधिकाधिक सेवनमें ही निहित है।



सच्ची घटना—

आयुर्वेदकी अनूठी चिकित्सा

(गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुआ)

एक रियासतके राजा अचानक गम्भीर रूपसे अस्वस्थ हो गये। भूख-प्यास पूरी तरह समाप्त हो जानेसे उनका शरीर पीला पड़ता गया और जर्जर होने लगा।

राजकुमार तथा अन्य परिवारजनोंने बड़े-बड़े चिकित्सकोंसे उनकी जाँच करायी। अन्तमें उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि इनके शरीरकी ग्रन्थियोंसे निकलकर मुँहमें आनेवाला विक्षेप द्रव्य, जिसे लार कहते हैं, बनना बंद हो गया है। लार ही पाचन-क्रियाका प्रमुख साधन है। उसका बनना बंद होनेसे उन्हें भूख-प्याससे वञ्चित होना पड़ा है।

ऐलोपैथी पद्धतिके बड़े-बड़े चिकित्सकोंको बम्बई-कलकत्तातकसे बुलाया गया, कई विदेशी डॉक्टर भी बुलाये गये। सभीने अपनी-अपनी दवाएँ दीं, किंतु राजा साहबको रोगमुक्त नहीं किया जा सका। अब तो राज्यके तमाम लोग यही समझने लगे कि राजा साहबकी मृत्यु संनिकट है।

एक दिन अचानक राज्यके किसी गाँवके वयोवृद्ध आयुर्वेदाचार्य वैद्यजी नगरमें आये। उन्हें बताया गया कि हमारे राजा साहब एक भयंकर बीमारीसे ग्रस्त हैं। यह बीमारी असाध्य घोषित की जा चुकी है। कलकत्ता-बम्बईतकके डॉक्टर उनका इलाज करनेमें असमर्थ रहे हैं।

वैद्यजी राजाके प्रधानमन्त्रीके पास पहुँचे और बोले—'मैं भी आपके राज्यका एक नागरिक हूँ। मैंने जब राजा साहबकी बीमारीके बारेमें सुना तो अपना कर्तव्य समझकर राजमहलतक आया हूँ। क्या मैं राजा साहबको देख सकता हूँ?' पहले तो प्रधानमन्त्रीने उस धोती-कुर्ता पहने, माथेपर तिलक लगाये सादे वेश-भूषावाले ग्रामीण वैद्यको देखकर उपेक्षा-भाव दर्शाया, परंतु अन्तमें सोचा कि राजाको इन्हें दिखा देनेमें क्या हर्ज है। उन्हें राजाके कमरेमें ले जाया गया।

वैद्यजीने राजाकी नब्ज देखी। उनकी आँखों तथा जीभका जायजा लिया। अचानक वैद्यजीके मुखपर मुस्कराहट दौड़ गयी। राजकुमार तथा प्रधानमन्त्रीसे बोले—'मैं रोगको समझ गया हूँ। अब यह बताओ कि इन्हें दवा खिलाकर स्वस्थ करूँ या दवा दिखाकर?'

कुछ देर चुप रहनेके बाद वैद्यजीने कहा—'आप १० युवक, १० चाकू तथा १० नीबू मँगाइये। मैं अभी इन्हें रोग-मुक्त करके पूर्ण स्वस्थ बनाता हूँ।' यह सुनकर सभी आश्चर्यमें पड़ गये कि वैद्यजीका यह अनूठा नुस्खा आखिर किस तरह राजा साहबको स्वस्थ कर सकेगा। सबने कहा—'लगता है वैद्य कोई सनकी है।'

विचार-विमर्शके बाद युवकों, चाकुओं तथा नीबुओंकी व्यवस्था कर दी गयी।

वैद्यजीने दसों युवकोंको लाइनमें खड़ा कर दिया। हरेकके हाथमें एक नीबू तथा चाकू थमा दिया। उन्हें बताया कि मैं जैसे ही संकेत करूँ एक युवक राजा साहबकी शय्याके पास पहुँचे, उनके मुखके पास नीबू ले जाय—नीबूको चाकूसे काटे तथा उसके दोनों हिस्से वहाँ रखे बर्तनमें निचोड़ दे। इसके बाद दूसरा युवक भी ऐसा ही करे।

राजा साहबके कमरेमें रानी, राजकुमार, प्रधानमन्त्री आदि बैठे इस अनूठी चिकित्साके प्रयोगको देख रहे थे। वैद्यजीके संकेतपर एक युवक कमरेमें आया—उसने राजासाहबको प्रणाम किया, नीबू मुँहके पास ले जाकर चाकूसे काटा तथा उसके दोनों हिस्सोंको निचोड़ दिया।

तीन युवकोंके इस प्रयोगके बाद राजासाहबने जीभ चलायी। चौथे युवकने जैसे ही नीबू काटकर रस निचोड़ा कि राजासाहबकी आँखोंमें चमक आने लगी। नीबूके रसकी धारको देखकर नीबूका चिन्तन करके राजासाहबके मुँहमें पानी (लार) आने लगा था। उनकी ग्रन्थियोंने लार बनानी शुरू कर दी थी।

देखते-ही-देखते राजा साहबका मुँह लारसे भरने लगा। वैद्यजीने उन्हें नीबूके रसमें तुलसीपत्र तथा काली मिर्च डलवाकर पिलवायी। कुछ ही देरमें राजासाहब उठ बैठे। उनके शरीरकी लार बनानेवाली ग्रन्थियाँ अपना कार्य करने लगीं।

अब तो राजासाहबका पूरा परिवार उन ग्रामीण वैद्यजीके प्रति नतमस्तक हो उठा था। बड़े-बड़े अंग्रेजी-पद्धतिके डॉक्टर राजा-साहबको नीरोगी नहीं बना पाये थे, वहीं एक साधारण वैद्यजीने अपने एक देशी नुस्खेसे राजासाहबको रोगमुक्त कर दिखाया था।

राजपरिवारके लोगोंने वैद्यजीको स्वर्णमुद्राएँ इनाममें देनी चाहीं, पर उन्होंने कहा—'मैं इस राज्यका नागरिक हूँ—क्या मेरा यह कर्तव्य नहीं है कि मैं अपने राजाके स्वास्थ्यके लिये कुछ करूँ और उन्होंने इनाम लेनेसे इनकार कर दिया।' [प्रेषक—शिवकुमार गोयल]

विविध चिकित्सा-पद्धतियाँ

[मानवशरीर परमात्म प्रभुकी एक सर्वश्रेष्ठ कृति है, जिसे स्वस्थ एवं नीरोग रखना प्रत्येक मनुष्यका प्रथम कर्तव्य एवं धर्म है। वर्तमान समयमें जीवनकी जटिलताएँ इतनी बढ़ती जा रही हैं कि मनुष्य विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक रोगोंसे आक्रान्त हो रहा है। जहाँ जनजीवनमें सामान्यतः नये-नये रोग विकसित हो रहे हैं, वहीं चिकित्सा-पद्धतियोंका भी विस्तार हो रहा है। एक रोगका उपचार दूसरे अन्य रोगोंको जन्म दे देता है और ओषधियोंकी संख्या भी बढ़ रही है।

प्राचीन कालसे भारतमें विभिन्न चिकित्सा-पद्धतियाँ प्रचलित हैं, रोगोंके विस्तार होनेके कारण कुछ नयी पद्धतियाँ भी सामने आ रही हैं तथा सभी चिकित्साशास्त्रोंके पृथक्-पृथक् गुण और दोष भी हैं। कुछ पद्धतियाँ ऐसी हैं, जिनसे रोग तो शीघ्र ठीक हो जाते हैं, परंतु उनमें स्थायित्व नहीं रहता। कुछ ऐसी भी पद्धति है, जिसके उपचारसे निर्दिष्ट रोग तो ठीक हो जाता है, पर दूसरा रोग पनप जाता है, पर इसके साथ ही भारतकी प्राचीन चिकित्सा-पद्धतियोंमें ऐसे भी उपचार हैं, जो रोगके गुण-दोषोंको साम्यावस्थामें लाकर स्थायी लाभ एवं आरोग्य प्रदान करते हैं। हम यहाँ जन-सामान्यकी जानकारीके लिये चिकित्साकी विभिन्न पद्धतियोंको प्रस्तुत कर रहे हैं।—सं०]

स्वर-विज्ञान और बिना औषध रोगनाशके उपाय

(परिव्राजकाचार्य परमहंस श्रीमत्स्वामी निगमानन्दजी सरस्वती)

विश्वपिता विधाताने मनुष्य-जन्मके समयमें ही देहके साथ एक ऐसा आश्चर्यजनक कौशलपूर्ण अपूर्व उपाय रच दिया है, जिसे जान लेनेपर सांसारिक, वैषयिक किसी भी कार्यमें असफलताका दुःख नहीं हो सकता। हम इस अपूर्व कौशलको नहीं जानते, इसी कारण हमारा कार्य असफल हो जाता है, आशा भङ्ग हो जाती है, हमें मनस्ताप और रोग भोगना पड़ता है। यह विषय जिस शास्त्रमें है, उसे स्वरोदयशास्त्र कहते हैं। यह शास्त्र जितना दुर्लभ है, उतना ही स्वरके ज्ञाता गुरुका भी अभाव है। यह शास्त्र प्रत्यक्ष फल देनेवाला है। मुझे पद-पदपर इसका प्रत्यक्ष फल देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ा है। यद्यपि समग्र स्वरोदयशास्त्र ठीक-ठीक लिपिबद्ध करना बिलकुल असम्भव है तथापि मात्र साधकोंके कामकी कुछ बातें यहाँ संक्षेपमें दी जा रही हैं—

स्वरोदयशास्त्र सीखनेके लिये श्वास-प्रश्वासकी गतिके सम्बन्धमें सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इस शास्त्रका वचन है— 'कायानगरमध्ये तु मारुतः क्षितिपालकः।' यानी 'देहरूपी नगरमें वायु राजाके संमान है।' प्राणवायु 'निःश्वास' और 'प्रश्वास'—इन दो नामोंसे पुकारा जाता है। वायु ग्रहण करनेका नाम 'निःश्वास' और वायुके परित्याग करनेका नाम 'प्रश्वास' है। जीवके जन्मसे लेकर मृत्युके अन्तिम क्षणतक निरन्तर श्वास-प्रश्वासकी क्रिया होती रहती है। यह निःश्वास दोनों नासापुटों—नासिकाके दोनों छिद्रोंसे एक ही समय एक साथ समानरूपसे नहीं चला करता, कभी बायें और कभी दायें पुटसे चलता है। कभी-कभी एकाध घड़ीतक एक ही समय दोनों नासापुटोंद्वारा समानभावसे श्वास प्रवाहित होता है।

बायें नासापुटके श्वासको इडामें चलना, दाहिनी नासिकाके श्वासको पिंगलामें चलना और दोनों नासापुटोंसे एक समान चलनेपर उसे सुषुम्णामें चलना कहते हैं। एक नासापुटको दबाकर दूसरेके द्वारा श्वासको बाहर निकालनेपर यह साफ मालूम हो जाता है कि एक नासिकासे सरलतापूर्वक श्वास-प्रवाह चल रहा है और दूसरा नासापुट मानो बंद है अर्थात् उससे दूसरी नासिकाकी तरह सरलतापूर्वक श्वास बाहर नहीं निकलता। जिस नासिकासे सरलतापूर्वक श्वास बाहर निकलता हो, उस समय उसी नासिकाका श्वास कहना चाहिये। किस नासिकासे श्वास बाहर निकल रहा है, इसे पाठक उपर्युक्त प्रकारसे समझ सकते हैं। क्रमशः अभ्यास होनेपर बहुत आसानीसे मालूम होने लगता है कि किस नासिकासे निःश्वास प्रवाहित होता है। प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदयके समयसे ढाई-ढाई घड़ीके हिसाबसे एक-एक नासिकासे श्वास चलता है। इस

प्रकार रात-दिनमें बारह बार बायीं और बारह बार दायीं नासिकासे क्रमानुसार श्वास चलता है। किस दिन किस नासिकासे पहले श्वास-क्रिया होती है, इसका एक निर्दिष्ट नियम है। यथा—

आदौ चन्द्रः सिते पक्षे भास्करस्तु सितेतरे।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुस्त्रीणि त्रीणि क्रमोदये॥

(पवनविजयस्वरोदय)

शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे तीन-तीन दिनकी बारीसे चन्द्र अर्थात् बायीं नासिकासे तथा कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे तीन-तीन दिनकी बारीसे सूर्यनाडी अर्थात् दायीं नासिकासे पहले श्वास प्रवाहित होता है अर्थात् शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा—इन नौ तिथियोंमें प्रातःकाल सूर्योदयके समय पहले बायीं नासिकासे तथा चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और द्वादशी—इन छः तिथियोंमें प्रातःकाल पहले दायीं नासिकासे श्वास चलना आरम्भ होता है और वह ढाई घड़ीतक रहता है। उसके बाद दूसरी नासिकासे श्वास चलना प्रारम्भ होता है। कृष्णपक्षकी प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा अमावास्या—इन नौ तिथियोंमें सूर्योदयके समय पहले दायीं नासिकासे तथा चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और द्वादशी—इन छः तिथियोंमें सूर्योदयकालमें पहले बायीं नासिकासे श्वास चलना आरम्भ होता है और ढाई घड़ीके बाद दाहिनी नासिकासे चलने लगता है। इस प्रकार नियमपूर्वक ढाई-ढाई घड़ीतक एक-एक नासिकासे श्वास चलता है। यही मनुष्य-जीवनमें श्वासकी गतिका स्वाभाविक नियम है।

वहेत् तावद् घटीमध्ये पञ्चतत्त्वानि निर्दिशेत्।

(स्वरोदयशास्त्र)

प्रतिदिन रात-दिनकी साठ घड़ियोंमें ढाई-ढाई घड़ीके हिसाबसे एक-एक नासिकासे निर्दिष्ट क्रमसे श्वास चलनेके समय क्रमशः पञ्चतत्त्वोंका उदय होता है। इस श्वास-प्रश्वासकी गतिको समझकर कार्य करनेपर शरीर स्वस्थ रहता है और मनुष्य दीर्घजीवी होता है, फलस्वरूप सांसारिक, वैषयिक—सभी कार्योंमें सफलता मिलनेके कारण सुखपूर्वक संसार-यात्रा पूरी होती है।

बायीं नासिकाका श्वासफल

जिस समय इडा नाडीसे अर्थात् बायीं नासिकासे श्वास चलता हो, उस समय स्थिर कर्मोंको करना चाहिये। जैसे—अलंकार-धारण, दूरकी यात्रा, आश्रममें प्रवेश, राजमन्दिर तथा महल बनाना एवं द्रव्यादिका ग्रहण करना। तालाब, कुआँ आदि जलाशय तथा देवस्तम्भ आदिकी प्रतिष्ठा करना। इसी समय यात्रा, दान, विवाह, नवीन वस्त्रधारण, शान्तिकर्म, पौष्टिक कर्म, दिव्यौषधसेवन, रसायनकार्य, प्रभुदर्शन, मित्रता-स्थापन आदि शुभ कार्य करने चाहिये। बायीं नासिकासे श्वास चलनेके समय शुभ कार्योंमें सिद्धि मिलती है। परंतु वायु, अग्नि और आकाशतत्त्वके उदयके समय उक्त कार्य नहीं करने चाहिये।

दायीं नासिकाका श्वासफल

जिस समय पिंगला नाडी अर्थात् दाहिनी नासिकासे श्वास चलता हो उस समय कठिन कर्म करने चाहिये। जैसे—कठिन क्रूर-विद्याका अध्ययन और अध्यापन, स्त्रीसंसर्ग, नौकादि आरोहण, तान्त्रिकमतानुसार वीरमन्त्रादिसम्मत उपासना, शत्रु-दण्ड, शस्त्राभ्यास, गमन, पशुविक्रय, ईंट, पत्थर, काठ तथा रत्न आदिका घिसना और छीलना, संगीत-अभ्यास, यन्त्र-तन्त्र बनाना, किले और पहाड़पर चढ़ना, हाथी, घोड़ा तथा रथ आदिकी सवारी सीखना, व्यायाम, षट्कर्मसाधन, यक्षिणी, बेताल तथा भूतादिसाधन, औषधसेवन, लिपिलेखन, दान, क्रय-विक्रय, युद्ध, भोग, राजदर्शन तथा स्नानाहार आदि।

सुषुम्णा नाडीका श्वासफल

दोनों नासापुटोंसे श्वास चलनेके समय किसी प्रकारका शुभ या अशुभ कार्य नहीं करना चाहिये। उस समय कोई भी काम करनेसे वह निष्फल होगा तथा योगाभ्यास और ध्यान-धारणादिके द्वारा मात्र भगवत्स्मरण करना उचित है। सुषुम्णा नाडीसे श्वास चलनेके समय किसीको भी शाप या वर-प्रदान सफल होता है।

श्वास-प्रश्वासकी गति जानकर, तत्त्वज्ञान और तिथि-नक्षत्रके अनुसार, ठीक-ठीक नियमपूर्वक सब कर्मोंको

करनेपर आशाभङ्गजनित मनस्ताप नहीं भोगना पड़ता।

रोगोत्पत्तिका पूर्ण ज्ञान और उसका प्रतिकार

प्रतिपदा आदि तिथियोंको यदि निश्चित नियमके विरुद्ध श्वास चले तो निःसंदेह कुछ अमङ्गल होगा। जैसे, शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको प्रातः नींद टूटनेपर सूर्योदयके समय पहले यदि दायीं नासिकासे श्वासका चलना आरम्भ हो तो उसी दिनसे पूर्णिमातकके बीच गर्मीके कारण और कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिको सूर्योदयके समय पहले बायीं नासिकासे श्वासका चलना आरम्भ हो तो उसी दिनसे अमावास्यातकके भीतर कफ या सर्दीके कारण कोई पीड़ा होगी, इसमें संदेह नहीं।

दो पखवाड़ोंतक इसी प्रकार विपरीत ढंगसे सूर्योदयकालमें निःश्वास चलता रहे तो किसी आत्मीय स्वजनको भारी बीमारी होगी अथवा मृत्यु होगी या और किसी प्रकारकी विपत्ति आयेगी। तीन पखवाड़ोंसे ऊपर लगातार गड़बड़ होनेपर निश्चित रूपसे अपनी मृत्यु हो जायगी।

शुक्ल अथवा कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल यदि विपरीत ढंगसे निःश्वास-गतिका पता लग जाय तो उस नासिकाको कई दिनोंतक बंद रखनेसे रोगोत्पत्तिकी सम्भावना नहीं रहती। उस नासिकाको इस तरह बंद रखना चाहिये जिसमें उससे निःश्वास न चले। इस प्रकार कुछ दिनोंतक दिन-रात निरन्तर (स्नान और भोजनका समय छोड़कर) नाक बंद रखनेसे उक्त तिथियोंके भीतर बिलकुल ही कोई रोग नहीं होगा।

यदि असावधानीवश निःश्वासमें गड़बड़ी होनेसे कोई रोग उत्पन्न हो जाय तो जबतक रोग दूर न हो जाय, तबतक ऐसा करना चाहिये कि जिससे शुक्लपक्षमें दायीं और कृष्णपक्षमें बायीं नासिकासे श्वास न चले। ऐसा करनेसे रोग शीघ्र दूर हो जायगा। यदि कोई भारी रोग होनेकी सम्भावना होगी तो वह बहुत सामान्य रूपमें होगा और फिर थोड़े ही दिनोंमें दूर हो जायगा। ऐसा करनेसे न तो रोगजनित कष्ट भोगना पड़ेगा और न चिकित्सकको धन ही देना पड़ेगा।

नासिका बंद करनेका नियम

नाकके छिद्रमें घुस सके, इतनी-सी पुरानी साफ रूई लेकर उसकी गोल पोटली-सी बना ले और उसे साफ बारीक कपड़ेसे लपेटकर सिल ले। फिर इस पोटलीको नाकके छिद्रमें घुसाकर छिद्रको इस प्रकार बंद कर दे, जिसमें उस नाकसे श्वास-प्रश्वास-कार्य बिलकुल ही न हो। जिन लोगोंको कोई सिर-सम्बन्धी रोग है अथवा जिनका मस्तक दुर्बल हो, उन्हें रूईसे नाक बंद न कर मात्र स्वच्छ पतले वस्त्रकी पोटली बनाकर उसीसे नाक बंद करनी चाहिये।

किसी भी कारण, जितने क्षण या जितने दिन नासिका बंद रखनेकी आवश्यकता हो उतने क्षणों या उतने दिनोंतक अधिक परिश्रमका कार्य, धूम्रपान, जोरसे चिल्लाना, दौड़ना आदि नहीं करना चाहिये। जब जिस किसी कारणसे नाक बंद रखनेकी आवश्यकता हो, तभी इन नियमोंका पालन अवश्य करना चाहिये। नयी अथवा बिना साफ की हुई मैली रूई कभी नाकमें नहीं डालनी चाहिये।

निःश्वास बदलनेका तरीका

कार्यभेदसे तथा अन्यान्य अनेक कारणोंसे एक नासिकासे दूसरी नासिकामें वायुकी गति बदलनेकी भी आवश्यकता हुआ करती है। कार्यके अनुकूल नासिकासे श्वास चलना आरम्भ होनेतक, उसे न करके चुपचाप बैठे रहना किसीके लिये भी सम्भव नहीं। अतएव अपनी इच्छाके अनुसार श्वासकी गति बदलनेकी क्रिया सीख लेना नितान्त आवश्यक है। यह क्रिया अत्यन्त सहज है, सामान्य चेष्टासे ही श्वास-गति बदली जा सकती है।

जिस नासिकासे श्वास चलता हो, उसके विपरीत दूसरी नासिकाको अँगूठेसे दबा देना चाहिये और जिससे श्वास चलता हो उसके द्वारा वायु खींचना चाहिये। फिर उसे दबाकर दूसरी नासिकासे वायुको निकालना चाहिये। कुछ देरतक इसी तरह एकसे श्वास लेकर दूसरीसे निकालते रहनेसे अवश्य श्वासकी गति बदल जायगी। जिस नासिकासे श्वास चलता हो उसी करवट सोकर यह क्रिया करनेसे अति शीघ्र श्वासकी गति बदल जाती है और दूसरी नासिकासे श्वास प्रवाहित होने लगता है। इस क्रियाके बिना भी जिस नाकसे श्वास चलता है, केवल उस करवट कुछ समयतक सोये रहनेसे भी श्वासकी गति

बदल जाती है।

इस लेखमें जहाँ-जहाँ निःश्वास बदलनेकी बात लिखी जायगी, वहाँ-वहाँ पाठकोंको इसी कौशलसे श्वासकी गति बदलनेकी बात समझनी चाहिये। जो अपनी इच्छाके अनुसार वायुको रोक और निकाल सकता है, वही वायुपर विजय प्राप्त कर सकता है।

बिना औषधके रोगनिवारण

अनियमित क्रियाके कारण जिस तरह मानव-देहमें रोग उत्पन्न होते हैं, उसी तरह औषधके बिना ही भीतरी क्रियाओंके द्वारा नीरोग होनेके उपाय भगवान्‌के बनाये हुए हैं। हम लोग उस भगवत्प्रदत्त सहज कौशलको नहीं जानते, इसी कारण दीर्घ कालतक रोगजनित दुःख भोगते हैं। यहाँ रोगोंके निदानके लिये स्वरोदयशास्त्रोक्त कुछ यौगिक उपायोंका उल्लेख किया जा रहा है, जिनके प्रयोगसे विशेष लाभ हो सकता है—

ज्वर—ज्वरका आक्रमण होनेपर अथवा आक्रमणकी आशङ्का होनेपर जिस नासिकासे श्वास चलता हो, उस नासिकाको बंद कर देना चाहिये। जबतक ज्वर न उतरे और शरीर स्वस्थ न हो जाय, तबतक उस नासिकाको बंद ही रखना चाहिये। ऐसा करनेसे दस-पंद्रह दिनोंमें उतरनेवाला ज्वर पाँच-सात दिनोंमें अवश्य ही उतर जायगा। ज्वरकालमें मन-ही-मन सदा चाँदीके समान श्वेत वर्णका ध्यान करनेसे अति शीघ्र लाभ होता है।

सिन्दुवारकी जड़ रोगीके हाथमें बाँध देनेसे सब प्रकारके ज्वर निश्चय ही दूर हो जाते हैं।

अँतरिया-ज्वर—श्वेत अपराजिता अथवा पलाशके कुछ पत्तोंको हाथसे मलकर, कपड़ेसे लपेटकर एक पोटली बना लेनी चाहिये और जिस दिन ज्वरकी बारी हो उस दिन सबेरेसे ही उसे सूँघते रहना चाहिये। अँतरिया-ज्वर बंद हो जायगा।

सिरदर्द—सिरदर्द होनेपर दोनों हाथोंकी केहुनीके ऊपर धोतीके किनारे अथवा रस्सीसे खूब कसकर बाँध देना चाहिये। इससे पाँच-सात मिनटमें ही सिरदर्द जाता रहेगा। ऐसा बाँधना चाहिये कि रोगीको हाथमें अत्यन्त दर्द मालूम हो। सिरदर्द अच्छा होते ही बाँहें खोल देनी चाहिये।

सिरदर्द दूसरे प्रकारका एक और होता है, जिसे साधारणतः 'अधकपाली' या 'आधासीसी' कहते हैं। कपालके मध्यसे बायीं या दायीं ओर आधे कपाल और मस्तकमें अत्यन्त पीडा मालूम होती है। प्रायः यह पीडा सूर्योदयके समय आरम्भ होती है और दिन चढ़नेके साथ-साथ यह भी बढ़ती जाती है। दोपहरके बाद घटनी प्रारम्भ होती है और सायंतक प्रायः नहीं ही रहती। इस रोगका आक्रमण होनेपर जिस तरफके कपालमें दर्द हो, ऊपर लिखे अनुसार उसी तरफकी केहुनीके ऊपर जोरसे रस्सी बाँध देनी चाहिये। थोड़ी ही देरमें दर्द शान्त हो जायगा और रोग जाता रहेगा। दूसरे दिन यदि पुनः दर्द शुरू हो और प्रतिदिन एक ही नासिकासे श्वास चलते समय हो तो सिरदर्द मालूम होते ही उस नाकको बंद कर देना चाहिये और हाथको भी बाँध रखना चाहिये। 'अधकपाली' सिरदर्दमें इस क्रियासे होनेवाले आश्चर्यजनक फलको देखकर आप चकित रह जायँगे।

सिरमें पीडा—जिस व्यक्तिके सिरमें पीडा हो उसे प्रातःकाल शय्यासे उठते ही नासापुटसे शीतल जल पीना चाहिये। इससे मस्तिष्क शीतल रहेगा, सिर भारी नहीं होगा और सर्दी नहीं लगेगी। यह क्रिया विशेष कठिन भी नहीं है। एक पात्रमें ठंडा जल भरकर उसमें नाक डुबाकर धीरे-धीरे गलेके भीतर जल खींचना चाहिये। यह क्रिया क्रमशः अभ्याससे सहज हो जायगी। सिरमें पीडा होनेपर चिकित्सक रोगीके आरोग्य होनेकी आशा छोड़ देता है, रोगीको भी भीषण कष्ट होता है; परंतु इस उपायसे निश्चय ही आशातीत लाभ पहुँचेगा।

उदरामय, अजीर्ण आदि—भोजन तथा जलपान आदि जो कुछ भी करना हो वह सब दायीं नासिकासे श्वास चलते समय करना चाहिये। प्रतिदिन इस नियमद्वारा आहार करनेसे वह बहुत आसानीसे पच जायगा और कभी अजीर्ण-रोग नहीं होगा। जो लोग इस रोगसे दुःखी हैं, वे भी यदि इस नियमके अनुसार प्रतिदिन भोजन करें तो खायी हुई चीज पच जायगी और धीरे-धीरे उनका रोग दूर हो जायगा। भोजनके बाद थोड़ी देर बायीं करवट सोना चाहिये।

जिन्हें समय न हो उन्हें ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे भोजनके बाद दस-पंद्रह मिनटतक दायीं नासिकासे श्वास चले अर्थात् पूर्वोक्त नियमके अनुसार रूईद्वारा बायीं नासिका बंद कर लेनी चाहिये। गुरुपाक (भारी) भोजन करनेपर भी इस नियमसे वह शीघ्र पच जाता है।

स्थिरताके साथ बैठकर नाभिमण्डलमें अपलक (एकटक) दृष्टि जमाकर नाभिकन्दका ध्यान करनेसे एक सप्ताहमें उदरामय (उदर-सम्बन्धी) रोग दूर हो जाता है।

श्वास रोककर नाभिको खींचकर नाभिकी ग्रन्थिको एक सौ बार मेरुदण्डसे मिलानेपर आमादि उदरामयजनित सब तरहकी पीडाएँ दूर हो जाती हैं और जठराग्नि तथा पाचनशक्ति बढ़ जाती है।

प्लीहा—रातको बिछौनेपर सोकर और प्रातः शय्या-त्यागके समय हाथ और पैरोंको सिकोड़कर छोड़ देना चाहिये। फिर कभी बायीं और कभी दायीं करवट टेढ़ा-मेढ़ा शरीर करके समस्त शरीरको सिकोड़ना और फैलाना चाहिये। प्रतिदिन चार-पाँच मिनट ऐसा करनेसे प्लीहा-यकृत् (तिल्ली, लीवर)-रोग दूर हो जायगा। सर्वदा इसका अभ्यास करनेसे प्लीहा-यकृत्-रोगकी पीडा कभी नहीं भोगनी पड़ेगी अर्थात् निर्मूल हो जायगी।

दन्तरोग—प्रतिदिन जितनी बार मल-मूत्रका त्याग करे, उतनी बार दाँतोंकी दोनों पंक्तियोंको मिलाकर जोरसे दबाये रखे। जबतक मल या मूत्र निकलता रहे, तबतक दाँतोंसे दाँत मिलाकर दबाये रहना चाहिये। दो-चार दिन ऐसा करनेसे कमजोर दाँतोंकी जड़ मजबूत हो जायगी। नियमित अभ्यास करनेसे दन्तमूल दृढ़ हो जाता है और दाँत दीर्घ कालतक काम देते हैं तथा दाँतोंमें किसी प्रकारकी बीमारी होनेका कोई भय नहीं रहता।

स्नायविक वेदना—छाती, पीठ या बगलमें—चाहे जिस स्थानमें स्नायविक या अन्य किसी प्रकारकी वेदना हो तो वेदना प्रतीत होते ही जिस नासिकासे श्वास चलता हो उसे बंद कर देनेसे दो-चार मिनटके पश्चात् अवश्य ही वेदना शान्त हो जायगी।

दमा या श्वासरोग—जब दमेका जोरका दौरा हो तब जिस नासिकासे निःश्वास चलता हो, उसे बंद करके दूसरी नासिकासे श्वास चलाना चाहिये। दस-पंद्रह मिनटमें दमेका जोर कम हो जायगा। प्रतिदिन ऐसा करनेसे महीनेभरमें पीडा शान्त हो जायगी। दिनमें जितने ही अधिक समयतक यह क्रिया की जायगी, उतना ही शीघ्र यह रोग दूर होगा। दमाके समान कष्टदायक कोई रोग नहीं, दमाका जोर होनेपर इस क्रियासे बिना किसी दवाके बीमारी चली जाती है।

वात—प्रतिदिन भोजनके बाद कंघीसे सिर झाड़ना चाहिये। कंघी इस प्रकार चलानी चाहिये जिसमें उसके काँटे सिरको स्पर्श करें। उसके बाद वीरासन लगाकर अर्थात् दोनों पैर पीछेकी ओर मोड़कर उनके ऊपर पंद्रह मिनट बैठना चाहिये। प्रतिदिन दोनों समय भोजनके बाद इस प्रकार बैठनेसे कितना भी पुराना वात क्यों न हो निश्चय ही अच्छा हो जायगा। यदि स्वस्थ आदमी इस नियमका पालन करे तो उसे वातरोग होनेकी कोई आशङ्का नहीं रहेगी।

नेत्ररोग—प्रतिदिन सबेरे बिछौनेसे उठते ही सबसे पहले मुँहमें जितना पानी भरा जा सके उतना भरकर दूसरे जलसे आँखोंको बीस बार झपटा मारकर धोना चाहिये।

प्रतिदिन दोनों समय भोजनके बाद हाथ-मुँह धोते समय कम-से-कम सात बार आँखोंमें जलका झपटा देना चाहिये।

जितनी बार मुँहमें जल डाले, उतनी बार आँख और मुँहको धोना न भूले।

प्रतिदिन स्नान-कालमें तेल मालिश करते समय पहले दोनों पैरोंके अँगूठोंके नखोंको तेलसे भर देना चाहिये और फिर तेल लगाना चाहिये।

ये नियम नेत्रोंके लिये विशेष लाभदायक हैं। इनसे दृष्टिशक्ति तेज होती है, आँखें स्निग्ध रहती हैं और आँखोंमें कोई बीमारी होनेकी सम्भावना नहीं रहती। नेत्र मनुष्यके परमधन हैं। अतएव प्रतिदिन नियमपालनमें कभी आलस्य नहीं करना चाहिये। (क्रमशः)

'नाना पन्था विद्यते'*

[चिकित्साकी विभिन्न पद्धतियाँ]

(डॉ० श्रीवत्सराजजी)

रोग होनेपर उपचारकी आवश्यकता होती है और लोग अपनी-अपनी आस्था तथा पसंदके अनुसार विभिन्न उपचार-विधियाँ अपनाते हैं। प्रत्येक उपचार-विधिके निष्णात चिकित्सक हैं, सम्भव है आपकी कोई अपनी विधि हो। घरोंमें तो दादी माँकी विधि चलती है और हर परिवारके पास अनुभूत घरेलू उपचार होते हैं। इष्ट-मित्र, बन्धु-बान्धव, परिवारजन और अड़ोसी-पड़ोसी भी बिना माँगी सलाह देनेमें चूकते नहीं। हमने बड़े-बड़े प्रबुद्ध घरोंमें झाड़-फूँक होते देखी है। तकलीफ बढ़ी तो वैद्य, हकीम, होमियोपैथ डॉक्टर भी बुलाये जाते हैं। शुरू होता है सिलसिला जाँच-पड़तालका, अस्पतालमें भरती होनेका। परेशान घरवाले ज्योतिषीके यहाँ जाते हैं जन्मपत्री, समयका चौघड़िया दिखाते हैं, प्रश्न-विचारका सहारा लेते हैं। यदि ग्रहदशा बिगड़ी हो तो उसकी शान्ति होती है, पूजा-पाठ, मनौती, चढ़ावा, जप, व्रत, होम आदिका क्रम प्रारम्भ होता है। बात और बिगड़ी तो गीतापाठ, रामायणपाठ आरम्भ होता है और जब आशाकी किरण डूबने लगती है तो 'महामृत्युञ्जय'का जप आरम्भ होता है, कविराज अमोघ 'मकरध्वज' लेकर उपस्थित होते हैं, संत-महात्माकी दुआ माँगी जाती है। गोस्वामीजीने 'हनुमानचालीसा' में लिखा है— *'नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा'॥* बाबा विश्वनाथका चरणामृत और चन्दन, संकठाजीकी रोरीकी सहायता-हेतु आते हैं। आधिभौतिक, आधिदैविक, आधिदैहिक सभी उपायोंका सहारा भी जब काम नहीं आता तो गङ्गाजल और तुलसीका उपचार करते हैं; क्योंकि कहा है—'औषधिर्जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः'।

प्राचीन भारतमें उपचारकी बात कही जाती थी— पैथियोंकी चर्चा नहीं थी, पर भला हो पश्चिमी विद्वानोंका कि उन्होंने 'पैथी' का सृजन किया। सच पूछिये तो अठारहवीं सदीतक वहाँ भी 'पैथी' नहीं थी, अनुभूत उपचार थे। यह 'पैथी' शब्द यूनानी भाषाके 'पैथास'— वेदनानुभूतिसे बना है। कालान्तरमें उपचार-विधियाँ 'पैथी' कहलाने लगीं और-तो-और आयुर्वेद, यूनानी, ऐलोपैथी भी 'पैथी' बन गये।

आप पूछेंगे कि क्या ये सब 'पैथी' नहीं हैं? नहीं, ये सभी 'चिकित्सा-शास्त्र' हैं; क्योंकि इनमें निष्णात विद्वान् मात्र उपचारकी बात नहीं सीखते, बल्कि शरीर-रचना, क्रिया, स्वस्थवृत्त, औषधिके गुण-दोष-विज्ञान, विकृति-विज्ञान, जैव रसायन, अगदतन्त्र, काय-चिकित्सा, शल्य-चिकित्सा, स्त्रीरोग-चिकित्सा, नेत्र-चिकित्सा, बाल-चिकित्सा, मनोचिकित्सा (मनश्चिकित्सा)-का अध्ययन करते हैं। आयुर्वेदका तो पाठ्यक्रम ही 'अष्टाङ्ग आयुर्वेद' का है। 'पैथियों' के साथ ऐसा नहीं है। वे एक दर्शन या दृष्टिविशेषका आधार लेकर उपचार-विधि विकसित करते हैं।

जैसे संसारमें उपासनाके अनेक सम्प्रदाय हैं, उसी प्रकार उपचारकी भी सैकड़ों पैथियाँ हैं। हम यहाँ आपकी जानकारीके लिये शताधिक पैथियोंकी सूची दे रहे हैं। इन्हें विकल्प-चिकित्सा, समानान्तर-चिकित्सा, परिधि (फिंज)-चिकित्सा आदि अनेक नामोंसे जाना जाता है। इनका विस्तृत परिचय तो एक विशाल ग्रन्थका विषय है, हम तो केवल नाम गिना रहे हैं, एक-दो पंक्तिमें परिचय भी दे रहे हैं। यदि आपकी रुचि हो तो इनके ग्रन्थ मँगा सकते हैं, इन पैथियोंके चिकित्सकोंसे मिल सकते हैं, उपचार करा सकते हैं।

एक बात यह भी जानने योग्य है कि ये सभी देशों—सीमाओंमें बँधी नहीं हैं और विश्वके अनेक देशोंमें इनका प्रचार-प्रसार है। इसके साथ ही एक बात यह भी जान लेने योग्य है कि 'पैथी' का नामकरण कब और कैसे हुआ? एक प्रसिद्ध चिकित्सक थे डॉ० सैमुअल हैनीमैन (१७५५-१८४३ ई०)। उन्होंने अपनी उपचार-विधिको 'होमियोपैथी' नाम दिया और अन्य उपचार-विधियोंको ऐलोपैथी (विपरीत-चिकित्सा) कहा। इस अर्थमें यूनानी, तिब्बी, आयुर्वेद सभी ऐलोपैथी कहे जा सकते हैं। यूरोपमें उस समय 'गेलन' द्वारा निदेशित पद्धति प्रचलित थी, जिसमें आयुर्वेदकी तरह पञ्चकर्म (प्रस्वेद, वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण और वस्ति)-का प्रचलन था। बड़ी मात्रामें काष्ठ-औषधियाँ और रसायनसे बनी औषधियाँ (काढ़ा,

* इस लेखमें १३५ पैथी (चिकित्सा-पद्धति) गिनायी गयी हैं, जो वर्तमान समयमें रोगीके उपचारके लिये उपलब्ध बतायी जाती हैं।

भस्म आदि) दी जाती थीं। संखिया और बार-बार रक्त निकालने (फस्त खोलने)-के उपचारके कारण रोगी मर जाता था। इसका दर्शन था रोगकारकका शमन करनेके लिये विपरीत उपचार। हैनीमैनने इसे समझा और अत्यन्त सूक्ष्म मात्रामें औषधि देनेकी व्यवस्था की तथा एक नयी दृष्टि दी कि जिस पदार्थको लेनेसे जो भी लक्षण पैदा होते हैं, रोगमें वैसे लक्षण पैदा होनेपर उस पदार्थकी सूक्ष्म मात्रा रोगका निवारण करती है। वैज्ञानिक पुनरुत्थानके युगमें गेलनकी ऐलोपैथी शेष हो गयी (यद्यपि नाम चल रहा है) और उसका स्थान आधुनिक वैज्ञानिक चिकित्साने ले लिया है। 'हिन्दू' धर्मकी भाँति जो भी तर्कसंगत है, विज्ञानसम्मत है, लाभकारी है, इसमें संयुक्त हो सकता है। इतिहासका अवलोकन करें तो एक मजेदार बात ज्ञात होगी कि उन दिनों पैथी नहीं 'नुस्खे' की चर्चा होती थी (अभी बीसवीं सदीके उत्तरार्धतक)। ये नुस्खे अपने देश या चिकित्सकके नामसे सुख्यात थे और पूरा विश्वास था कि रोग-विशेषमें ये चमत्कारी हैं, पर आज यह बात लुप्तप्राय हो गयी है। आधुनिक चिकित्सकोंके यहाँ डिस्पेंसरी नहीं रही है, वैद्यों या हकीमोंके यहाँ दवा नहीं बनती। बाजारमें सब कुछ मिलता है तो आइये आजकी प्रचलित पैथियोंसे मिलें—

'पैथियाँ' (अकारादि-क्रमसे)

१. अक्यूपंचर और अक्यूप्रेशर—चीनमें विगत चार हजार वर्षोंसे प्रचलित, जिसमें चीनके 'यिंग यांग' दर्शनके आधारपर सुइयाँ (बहुत छोटी) चुभोते या दबाव डालते हैं। इसीके साथ 'मोक्षाबस्टेशन'—मोक्षा बीज जलाकर दागनेकी भी चिकित्सा है।

२. अप्रत्यक्ष उपचार (एबसेन्ट हीलिंग)—रोगीका पत्र पाकर 'चर्च' में उसके आरोग्यकी प्रार्थना की जाती है। इसी प्रकारकी पैथी 'टेली मेडिसीन' या 'टेलीपैथी' भी है।

३. अरोमाथिरैपी (गन्ध-चिकित्सा)—बहुत पुराने समयमें नीमकी धुनी या मिर्चेकी बुकनीकी धुनीका प्रयोग करते थे।

४. आर्गेनोथिरैपी—शरीरके अङ्गोंका दवाके रूपमें उपयोग।

५. आर्गोनथिरैपी—डॉ० विलहेम रीखद्वारा 'आर्गोन' (जीवतत्त्व-चिकित्सा) नामक शक्तिकी खोज और उसके द्वारा चिकित्सा।

६. आचार-चिकित्सा (बिहेवियरलथिरैपी)।

७. ऑटो-सजेशन—मनको विश्वास दिलाना। दर्पणके समक्ष खड़े होकर कहना 'मैं अच्छा हूँ।'

८. आदिम चिकित्सा—विश्वभरके आदिवासी अपनी चिकित्सा-विधिसे उपचार करते हैं।

९. आध्यात्मिक चिकित्सा (स्पिरिचुअल हीलिंग)—सिद्धान्त 'कहो मत उपचार दो।'

१०. ऑस्टियोपैथी—अत्यन्त लोकप्रिय प्रचलित चिकित्सा-विधि। पीठका दर्द दूर करते-करते यह पूर्ण उपचार-विधि बन गयी। हड्डियों, जोड़ों और मांस-पेशियोंके संचालनद्वारा रोगमें आराम पहुँचाना। इनके चिकित्सक अपनेको नसोंके जानकार बताते हैं। मेरुदण्डके आकारपर इनका विशेष जोर है। इसकी शाखाएँ हैं—'क्रेनियल (कपाल) ऑस्टियोपैथी, एप्लायड काइनेसियोलॉजी (प्रयुक्त पेशी संजोयन), काइरोप्रैक्टिक' आदि।

११. ऑटिज्म।

१२. एसेंशल-ऑयलथिरैपी—सुगन्धित तेलोंसे उपचार।

१३. एंथ्रोपोसोफियल-मेडिसिन।

१४. एनकाउण्टर-चिकित्सा।

१५. औषधिविहीन उपचार—कोई औषधि न ले, आरामसे लेट जाय, प्रकृतिको चिकित्सा करने दे।

१६. कलरथिरैपी (क्रोमोपैथी)—रंग और स्वास्थ्यका सम्बन्ध है। उपचारमें रंगीन जल, रंगीन प्रकाश आदिका उपयोग होता है।

१७. कॉपरथिरैपी—ताम्रपात्रमें रखे जलको पीनेसे रोग नष्ट होते हैं।

१८. कॉस्मेटिक थिरैपी—(प्रसाधन-चिकित्सा)।

१९. कपिंग—अत्यन्त प्राचीन विधि। कटोरेमें थोड़ा-सा आसव रखकर जला देते हैं और फिर उसे रुग्णस्थानपर उलटा करके चिपका देते हैं, रिक्तताके कारण कटोरा चिपक जाता है।

२०. कनछेदन—(कर्णवेध, स्टेपल पंचर)।

२१. क्रिश्चियन साईन्स—ईसाई धार्मिक आस्थासे उपचार।

२२. काहूना हीलिंग—पोलीनीशिया द्वीपकी एक समग्र उपचार-विधि।

२३. केशोपैथी—रोगीके सिरका एक केश लेकर उसका उपचार। बिना दवा खिलाये यह उपचार होता है।

२४. कॉटरी—(तप्त किये गये लोहेसे दागकर इलाज करना) गाँवोंमें लोग आज भी बच्चोंकी तिल्ली बढ़नेपर इस विधिसे उपचार करते हैं।

२५. को-काउन्सिलिंग—सलाह-चिकित्सा।

२६. कीचोपैथी—(मडबाथ, मिट्टीस्नान) रूसके काला

सागर क्षेत्रमें प्रचलित चिकित्सा।

२७. क्रिस्टल क्योर।

२८. गर्सन न्यूट्रिशनथैरैपी—एक प्रकारकी पोषण-चिकित्सा।

२९. गिनसिंग—चीनमें पैदा होनेवाली चमत्कारी जड़ी गिनसिंग (जीवनदायिनी मूल)-से उपचार।

३०. ग्राफोलॉजी—हस्तलेख-चिकित्सा।

३१. गर्म जलका उपचार।

३२. ग्रहशान्ति।

३३. गन्ना-रस-चिकित्सा।

३४. गाजर-चिकित्सा।

३५. घास-चिकित्सा।

३६. चुम्बक-चिकित्सा (मैग्नेटोथिरैपी)—आजकल बहुत विज्ञापित है।

३७. जल-चिकित्सा—अत्यन्त प्राचीन चिकित्सा-विधि है। जलकी रोगहारी शक्तिमें अपार विश्वास। संसार-भरमें झरनों, कूपों, तालाबों, नदीके जलोंकी रोगहारी शक्तिको मान्यता। अनेक उष्ण जलके स्रोतोंमें गन्धक होता है, जो त्वचाके रोगको अच्छा करता है। हमारे यहाँ तो गङ्गाजलको 'औषधिर्जाह्नवीतोयम्' कहा है। अभिमन्त्रित जलसे मार्जन करनेकी विधि है।

३८. ज्योतिष-चिकित्सा—एस्ट्रोलॉजी मेडिसिन।

३९. ज्वर-चिकित्सा—(पाइरेटोथैरैपी)।

४०. टेली रेडियोलॉजी एण्ड फोटोबायोलॉजी।

४१. टाई-ची-चुआन-विधि—चीनी-चिकित्सा।

४२. टोटको पैथी।

४३. ट्रांस पर्सनल साइकोलॉजी।

४४. डायानेटिक्स।

४५. डू-इन।

४६. टहलनेकी चिकित्सा।

४७. ताओ-ऑफ लविंग—प्रेम-चिकित्सा।

४८. ताजा रस (रॉ जूस)-थिरैपी।

४९. तिब्बी चिकित्सा।

५०. ध्वनि-चिकित्सा—अतिस्वन-ध्वनि (अल्ट्रा साउण्ड)-से दवा। ऐसी ही 'सोनोथिरैपी' है।

५१. ध्यान-चिकित्सा (मेडिटेशन)—ऐसी ही 'विपश्यना-विधि' भी है।

५२. नैचुरोपैथी (प्राकृतिक चिकित्सा) इस पैथीसे पूज्य बापू (महात्मा गाँधी)-का नाम जुड़ा है। इसमें प्राकृतिक ढंग और विधियोंसे उपचार करते हैं—स्नान, गीली पट्टी, मिट्टीका लेप, वस्ति, उपवास, ताजा आहार, हरी शाक-सब्जी, फल, वाष्प-स्नान आदिका उपयोग होता है। प्राकृतिक नियमोंसे रहनेवाला एक सम्प्रदाय भी बन गया है, जिसके उपनिवेश अनेक देशोंमें हैं। ये लोग नग्नावस्थामें बिना किसी प्रकारकी आधुनिक सुविधाका उपयोग किये प्रकृतिके सांनिध्यमें रहते हैं।

५३. निगेटिव आयनथिरैपी—सिल्वर आयोडाइडके आयनोंसे युक्त जलका पान कराते हैं।

५४. नस्य-चिकित्सा—सुँघनी या छिंकनीसे उपचार।

५५. निद्रा-चिकित्सा—प्राचीन युगमें यूनानमें मन्दिरमें शयनकी चिकित्सा प्रचलित थी। देवता स्वप्नमें आकर उपचार कर देते थे।

५६. नृत्य-चिकित्सा—नाचसे भी लाभ होता है। इसके अन्तर्गत बेली, डांसिंग, हूलाहूला नृत्य भी आते हैं।

५७. नोल्स-ब्रीदिंग-ट्रिटमेण्ट—श्वासोपचार।

५८. पुष्प-चिकित्सा (फ्लावर हीलिंग)—पुष्प और स्वास्थ्यका सम्बन्ध है और इस आधारपर विभिन्न पुष्पोंसे उपचार करते हैं।

५९. प्राणिक उपचार—मानव-शरीरके चारों ओर उसकी ऊर्जासे प्रभामण्डल बनता है। इस विधिका मानना है कि रोगके कारण शक्तिका ह्रास हो जाता है या कहीं अधिक शक्ति हो जाती है। वे मानते हैं कि विश्व शक्तिसे भरा है, ब्रह्माण्ड-किरणोंसे शक्ति-वर्षा होती रहती है। उपचारक शरीरकी शक्तिकी ऊर्जा घटा या बढ़ाकर रोगका शमन करता है। इस विधिने तन्त्र और योगका भी सहारा लिया है, वे मानते हैं कि ऊर्जाका नियन्त्रण चक्रोंद्वारा होता है। इसी प्रकार ऊर्जामय बननेके लिये 'ध्यान' (मेडिटेशन)-का महत्त्व माना गया है। विशेष बात यह कि उपचार करते समय रोगीका स्पर्श नहीं करते। इस विधिमें दूरसे चिकित्सा भी सम्भव है। यह विधि अपनेको अन्य उपचार-विधियोंका विरोधी न मानकर पूरक मानती है। इसमें मानसिक और आत्मिक उपचारका भी विधान है।

६०. पिरामिड थिरैपी—मिस्र देशके पिरामिड आश्चर्यके साथ ही रहस्यमय भी रहे हैं। इस विधिके उपचारक मानते हैं कि पिरामिड आकारके कक्ष या तंबूमें रोगी लेटे तो अच्छा हो जाता है।

६१. प्रीनेटल थिरैपी (गर्भावस्थामें उपचार)।

६२. पल्स्ड हाई फ्रिक्वेंसी थिरैपी।

६३. पैटर्न थिरैपी।

६४. फोटोग्राफ-चिकित्सा—उपचारक आपका फोटो ले जाता है और उसका उपचार करता है, रोग आपका अच्छा होता है। इसीका एक रूप है 'इमेजिनियरिंग' अर्थात् 'छबि अभियान्त्रिकी'।

६५. फल-चिकित्सा—फल खाइये (विशेष रोगमें विशेष फल) और स्वास्थ्य-लाभ कीजिये।

६६. फिजियो थिरैपी—शरीरका मालिश, व्यायाम आदिसे उपचार और रोग न होने देनेका उपचार। इसके अन्तर्गत सौर-चिकित्सा, फोटो थिरैपी (प्रकाश-उपचार), ताप-चिकित्सा, वैलनियो थिरैपी (खनिजयुक्त प्राकृतिक जलोंसे), विद्युत्-चिकित्सा सभी शामिल हैं।

६७. बाख रेमेडीज।

६८. बैट्स आई थिरैपी (त्राटक-चिकित्सा)।

६९. बायो एनर्जी।

७०. बायो फीडबैक।

७१. बायो रिद्म।

७२. बीज-चिकित्सा (सीड थिरैपी)।

७३. बायोकेमिक—होमियोपैथी-जैसी लोकप्रिय विधि जो रसायन—यौगिकोंका प्रयोग करती है।

७४. मैक्रोबायटिक्स—एक प्रकारकी आहार-चिकित्सा, जो चीनके यिंग-यांग सिद्धान्तपर आधारित है।

७५. मधुमक्खी डंक-चिकित्सा।

७६. मनोनाट्य उपचार—नाटकद्वारा मानसिक रोगोंकी थिरैपी। इसी प्रकार आर्ट थिरैपी—चित्रकला उपचार भी है।

७७. मैजिक मेडिसिन—जादुई-इलाज।

७८. मेटल थिरैपी—धातु-चिकित्सा।

७९. मोमियाई—एक युगमें मिस्र देशकी 'ममी' का उपचारमें प्रयोग होता था।

८०. मेगाविटामिन थिरैपी।

८१. मकड़ी उपचार (स्पाइडर थिरैपी)।

८२. योगा—वर्तमान युगमें बाजारीकरणके चलते योगमें वर्णित प्राणायाम और आसनका उपचारके लिये उपयोग होने लगा है। यम-नियमविहीन योग 'योगा' बन गया है।

८३. रत्न-चिकित्सा (जेमोपैथी)—रत्न धारण करनेसे रोग दूर हो सकते हैं, इसका अब पूरा शास्त्र बन गया है।

८४. रुद्राक्ष-चिकित्सा।

८५. रोगस्थानान्तरण-चिकित्सा—इस विधिमें लोग विश्वास करते हैं कि रोग दूसरे प्राणीको दिये जा सकते हैं और इस प्रकार रोग दूर होता है। इसमें मेढक, बत्तख आदिको रोग-ट्रान्सफर करते हैं।

८६. रेडियस्थीसिया और रेडियानिक्स—स्पन्दनको पहिचानकर भू-गर्भसे जल, तेल, खजाना खोजनेके माहिरोंके ज्ञानसे इलाज करनेका तरीका भी निकाला है। इसका उपयोग पुरातत्त्वज्ञ भी करते हैं। द्विशाख टहनी, पेण्डुलम आदिका इसमें उपयोग होता है।

८७. रिफ्लेक्सोलॉजी—भारत और चीनकी प्राचीन विद्याओंसे और 'हठयोग' से सम्बन्धित यह विधि दबाव और मालिशद्वारा उपचार करती है।

८८. रीखियन थिरैपी या रेकी—वर्तमान समयमें काफी प्रचलित विधि। शरीरमें हो रहे शक्ति-प्रवाहको स्पर्शद्वारा सन्तुलित करते हैं।

८९. रोल्फिग—आहार-विहार तथा नियमनद्वारा चिकित्सा। इसमें हवाफेर, व्यायाम, निद्रा, गर्म जल-स्नान आदिका तथा छुट्टी, विश्राम और स्थान-परिवर्तन लाभ करते हैं।

९०. लौंग-इलायची-उपचार (कार्डमम थिरैपी)—तथा मसाला-उपचार।

९१. लहसुन-चिकित्सा—अत्यन्त पुरानी विधि।

९२. लेसर थिरैपी—लेसर किरणोंसे उपचार—विशेष रूपसे नेत्ररोगोंमें।

९३. वाइन थिरैपी—आसवसे उपचार।

९४. विश्वासोपचार (फेथ हीलिंग)।

९५. वास्तु-चिकित्सा—रोगीके बदले उसके आवासका इलाज।

९६. शियात्सु मसाज।

९७. शफूफ-चिकित्सा।

९८. शीत-चिकित्सा—(प्रशीतन-विधि), शीतनिद्रा।

९९. शॉक थिरैपी।

१००. शकुन-विचार।

१०१. शब्द-चिकित्सा (वर्ड थिरैपी)—बातचीतसे इलाज।

१०२. स्पाथिरैपी—एक प्रकारकी स्नान-चिकित्सा।

१०३. सेल्फ अवेयरनेस—आत्मबोध-उपचार।

१०४. सिकन्दरी तकनीक (एलेक्जेंडरियन तकनीक)।

१०५. साइबरनेटिक्स।

१०६. साइकोथिरैपी।

१०७. स्नान-चिकित्सा, सौना बाथ।

१०८. सथिया—ग्रामके नेत्र-चिकित्सक (सचल) और कानका मैल निकालनेवाले नाऊ, जो प्राचीन युगमें

चीर-फाड़ करते थे और इसीसे आज भी सर्जनको 'बार्बर सर्जन' कहते हैं।

१०९. सैंड बैगथिरैपी।

११०. साहित्योपचार—गीता, रामचरितमानस, हनुमान-चालीसा तथा सत्साहित्य आदिका पाठ।

१११. संगीत-चिकित्सा—संगीत सुननेसे रोग अच्छे होते हैं।

११२. संशोधन-चिकित्सा—(पञ्चकर्म) सिद्ध-चिकित्सा।

११३. सुरमा-उपचार (अञ्जन-चिकित्सा)।

११४. समग्र चिकित्सा—होलिस्टिक मेडिसिन तथा पोली पैथी अनेक पैथियोंका एक साथ उपयोग।

११५. सूखो पैथी—जलका निषेध।

११६. सौर-चिकित्सा—धूपसे इलाज, हीलियो थिरैपी (रंगीन प्रकारसे 'सोलेरियम' में इलाज करते हैं)।

११७. हैंड हीलिंग (स्पर्श-चिकित्सा)—यह उपचार आदिकालसे प्रचलित है। संत-महात्मा तथा राजपुरुषका स्पर्श होनेसे रोग दूर हो जाते हैं। मिस्र देशके मन्दिरोंमें स्पर्श-पुजारी होते थे। ईसा मसीहद्वारा स्पर्श करके कुष्ठरोग दूर करने, मृतकको जिलानेके चमत्कार लोकविख्यात हैं। इंग्लैण्डमें 'रायल टच' की कथा कही जाती है। भारतके महात्माओंने तो अनेक बार यह चमत्कार किया है। महान् चिकित्सक सुश्रुतने अपनी संहितामें शल्यमें काम आनेवाले उपकरणोंकी सूची दी है और इनमें प्रथम नाम 'हाथ' का है। हाथका कमाल हर जगह दीखता है।

११८. हेल्थ फार्म्स—स्वास्थ्यशालाएँ।

११९. हेल्थ फूड्स—स्वस्थ आहार।

१२०. हेब्रेक नेम चेंजिंग—विश्वव्यापी विश्वास है कि नामपर टोना किया जा सकता है। जहाँ बच्चे जन्मते ही मर जाते हैं, नवजातका नाम गोबर, भोंदू आदि देते हैं। रातमें नाम लेकर नहीं पुकारते। हेब्रू लोग नाम-परिवर्तन करके रोग भगाते थे। हमारे यहाँ भी जन्मपत्रीका गोपन नाम होता है।

१२१. हर्बलिज्म (जड़ी-बूटीसे इलाज)—आजकल हर्बलका फैशन चल रहा है। बाजारमें हर्बलके नामसे साबुन, तेल, सौन्दर्य-प्रसाधन, शैम्पू, लेप और दवाएँ बिक रही हैं। आयुर्वेदमें यह गम्भीर विषय है, वे जड़ीको आमन्त्रित एवं अभिमन्त्रित करते थे, साइत देखकर तोड़ते थे और शास्त्रानुसार उपयोग करते थे।

१२२. हाई वोल्टेज फोटो थिरैपी—आकाशीय विद्युत्की चमकने विद्वानोंको आकर्षित किया। हाई वोल्टेजके उपचारमूलक प्रभावका प्रयोग किया गया है। 'किर्लियन फोटोग्राफ' प्रभामण्डल दिखाते हैं।

१२३. होमियोपैथी—समानसे समानका उपचार, एक मान्यता कि जितना अधिक डाईल्यूशन होगा, औषधिकी शक्ति उतनी बढ़ेगी। रोगके सूक्ष्मतम लक्षणोंको नोट करनेकी परम्परा इस विधिमें चली। इस विधिके अन्वेषक हैनीमैनको आधुनिक चिकित्सा-जगत्में 'फार्मोकोलॉजीके जनक' का विरुद प्राप्त है। इसीकी शाखा 'इलेक्ट्रो होमियोपैथी' है।

१२४. हिप्नोटिज्म और मेसमेरिज्म।

१२५. हस्तयोग।

१२६. हाईकोलोनिक लवाज।

१२७. हाईब्रिडोमा।

१२८. हील (रीकास्ट) फुटवियर (पादत्राण) थिरैपी।

१२९. हास-चिकित्सा (लाफ्टर मेडिसिन)।

१३०. शिवाम्बु-चिकित्सा—स्वमूत्रपान-चिकित्सा।

१३१. स्वेंडिश मसाज।

१३२. वेगन उपचार—विशुद्ध शाकाहार—दूध, घी भी वर्जित।

१३३. शाकाहार—साग-भाजी-चिकित्सा।

१३४. सायोनिक मेडिसिन—समग्र मानवकी जीवन्त शक्तियोंके नियमनद्वारा उपचार।

१३५. सायनिक सर्जरी (मनःशल्य)—बिना चीर-फाड़के मानसिक शक्तिद्वारा शल्य-क्रिया करनेकी विधि।

इसके अलावा भी उपचारकी अनेक विधियाँ हैं, जो हमारे अज्ञानवश इस सूचीमें नहीं हैं। कुछका तो नाम ही नहीं है, जैसे एक केन्द्रिय स्वास्थ्य-मन्त्रीने चार मास प्रशिक्षण और दवाकी एक पेटी देकर गाँवोंमें चिकित्सा करनेके लिये, चीनकी एक योजनाकी नकलमें चिकित्सक बनानेका उपक्रम किया था। यह 'चौमासा पैथी' चली नहीं। पुनः अनेक लोग स्वयम्भू चिकित्सक होते हैं। बाकी आप बीमार पड़े तो रिश्तेदार, मित्र, पड़ोसी सभी अनुभूत चिकित्सा और नेक सलाह देनेसे नहीं चूकते।

कहा है 'विश्वासः फलदायकः' सो अपना उपचार स्वयं चुनें। बाकी तो वैद्य नारायण हरि हैं ही, जो भवरोगसे मुक्ति प्रदान करते हैं। उनकी कृपासे 'पन्थ' सुगम हो जाते हैं।

आधुनिक चिकित्सा-पद्धतिका विकास-क्रम

(डॉ० श्री के० त्रिपाठी, एम्० बी० बी० एस्०, एम्० डी०, डी० एम्०)

आधुनिक चिकित्साके लिये प्रचलित अंग्रेजी शब्द 'एलोपैथी' चिकित्सा-शास्त्रकी दृष्टिसे एक अवैज्ञानिक शब्द है और वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें चिकित्सा-साहित्यमें इसका कहीं भी प्रयोग नहीं होता। वस्तुतः साहित्य, कला, संस्कृति और मौलिक विज्ञानका क्रमिक विकास ही आधुनिक चिकित्साकी आधारशिला है, जिसका भौतिक, रसायन, गणित एवं प्रायोगिक मानदण्डोंपर निरन्तर परिमार्जन होता रहा है तथा इसी परिमार्जनको कुछ और परिष्कृत करनेकी निरन्तरता ही इसे सार्वभौमिक एवं लोकोपयोगी बनाये हुए है।

पुरातनकालीन भित्तिका-चित्रों और गुफाओंकी अनुकृतियोंके आधारपर इस बातकी पुष्टि होती है कि उस समय मनुष्यको शरीर-रचना और विकृत अङ्गोंका पूरा ज्ञान था। पशुओं और मनुष्योंके प्रजननसम्बन्धी रोगोंके चित्र भी इन गुफाओंके चित्रोंमें मिलते हैं। काशीक्षेत्रके पास मिर्जापुर किलेके लिखुनिया स्थित प्रपातके भित्ति-चित्रोंमें इस तरहके अनेक चित्र मिलते हैं, जो इसके प्रमाण हैं कि भारतके इस क्षेत्रमें मनुष्य संसारके अन्य भागसे अधिक विकसित थे।

यह ज्ञात होता है, ईसाके ९००० वर्षपूर्व मनुष्यने कुछ शल्य-क्रियाकी विधियोंका प्रयोग भी किया। ऐसी विधियाँ मस्तिष्कके अंदर प्रविष्ट हुईं दुष्ट आत्माओंको बाहर निकालनेके लिये सम्भवतः प्रयोग की जाती थीं, जिसमें कपालकी हड्डीमें छेद करके मस्तिष्कका तनाव कम कर दिया जाता था। ग्रीकके इतिहासमें एक ही रोगीके ऊपर इस तरह कई बार की गयी शल्य-क्रियाके प्रमाण मिलते हैं। आज भी इस शल्य-क्रियाको आधुनिक तन्त्रिकाशल्यक मस्तिष्कमें ट्यूमरके बायप्सीके लिये प्रयोग करते हैं। इस ऑपरेशनका एक दूसरा भी पक्ष है और वह यह कि कुछ स्थानोंमें इस ट्रिफाइन-विधिद्वारा निकाली गयी हड्डी गलेमें बाँधकर लटकायी जाती थी, ताकि दुष्ट आत्माओंकी प्रतिच्छाया उसपर न पड़ सके।

मिस्रमें चिकित्सा-शास्त्रका विकास

मिस्रमें चिकित्सा-शास्त्रका विकास नील नदीकी संस्कृतिके उत्थान और पतनके साथ-साथ ही हुआ। भित्ति-चित्रोंसे लेखनकलाके विकासमें सम्भवतः हजारों वर्ष लगे होंगे और सुमेरियन और बेबिलोनियाके निवासियोंने इस कलाको पत्थरोंपर उत्कीर्ण करके चित्रात्मक शब्दावली तैयार की। कागजके आविष्कारके पूर्व भारतमें भोजपत्रोंपर लिखनेकी कलाका ज्ञान था। मिस्रकी आधुनिक चिकित्सा-शास्त्रमें सबसे बड़ी देन है शरीर-रचनाका प्रामाणिक अध्ययन। मिस्रमें पिरामिडके अंदर मृत-शरीरको रखनेकी कला ईसाके ३५०० वर्षपूर्व ही प्रचलित हो चुकी थी। इस कलामें पारंगत लोगोंको शरीर-रचनाके बारेमें ज्ञान था और अधिकांशतः शरीरकी विकृतिके आधारपर रचनागत दोषोंका ज्ञान भी इसी आधारपर हुआ। जैसे लकवा (फालिज)-के रोगमें मस्तिष्कके विशेष भागमें दोषका होना। मिस्रकी चिकित्सा-पद्धतिकी विशिष्टता थी उसमें धर्मका समायोजन। इस परम्परामें अनेक देवताओंका आवाहन करके चिकित्सा की जाती थी, प्रमुख देवताओंमें थोभ, हरमिस, आइसिस और उसका पुत्र होरस था। मिस्रकी सभ्यतामें विद्वान् इमहोतेप (२६०० वर्ष ई०पूर्व) हुए, जिन्हें चिकित्सा-शास्त्रका पूरा ज्ञान था। चिकित्सा-विज्ञानके विकासमें दुष्ट आत्माओंद्वारा रोग फैलानेकी धारणाका एक विशेष महत्त्व है, इन दुष्ट आत्माओंसे मुक्तिके लिये रोगीको अखाद्य वस्तुएँ दी जाती थीं अथवा कटु, तिक्त, कषाय गुणवाले पदार्थोंको पीनेको दिया जाता था, ताकि रोगीके शरीरसे वमन या विरेचन हो सके। इस प्रकार रोग, कारण और औषधिके सम्बन्धकी परम्पराका विकास हुआ और भूमिके अंदर पाये जानेवाले खनिज लवण, गंधक, ताम्र और पारेका प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

शल्यक्रियाका विकास भी सम्भवतः ग्रीक चिकित्सामें खतनेकी प्रक्रियासे हुआ होगा। घावको चीरने एवं कटे अङ्गोंको सीनेकी पद्धतिका विकास भी यहींसे हुआ तथापि मस्तिष्कमें छेद करनेकी कला एवं अङ्गोंको काटनेकी कलाका विकास अबतक यहाँ नहीं हुआ था। मेसोपोटामियामें सुमेरियन कालमें लेखनकलाका विकास हुआ और राजा

अषुरबनिपालके यहाँ स्लेटोंपर उत्कीर्ण पुस्तकालयके आधारपर (७०० ईसापूर्व) प्रमाण मिलते हैं कि ग्रीक और मेसोपोटामियन-चिकित्सामें काफी समानता थी।

ईसाके पूर्व २००० वर्षोंतक राजा हम्मूरबीद्वारा निर्धारित नियमोंके अन्तर्गत हर चिकित्सकको चिकित्सा करनी होती थी और उसका पालन न करनेपर कठोर राजदण्ड भुगतना पड़ता था। बेबिलोनियामें इस कालतक चिकित्सकोंके पास कम-से-कम २५० पौधे, १२० खनिज-लवणोंका ज्ञान हो चुका था। आसीरियामें रहनेवालोंको गंधकका भी प्रयोग करना आता था, जो कि आजतक औषधिके रूपमें प्रयुक्त होता है।

ग्रीसमें चिकित्सा-पद्धतिके विकासका सारा श्रेय हिप्पोक्रेट्स, अरस्तू और गैलेनको जाता है, जिन्होंने लक्षणोंके आधारपर रोग, कारण और औषधिकी व्याख्या की। ईसाके १४०० वर्षपूर्व एशिया और यूरोपके मध्यभागमें हेलेनिक और माइ-सीनियनकी संस्कृतिके विलयके कारण एक विशिष्ट प्रकारकी जातिका उदय हुआ। इसमें एसकुलेपियसका प्रमुख स्थान है, जिन्हें देवताके तुल्य माना गया है और आजतक उनके हाथमें लिये गये सर्पसे लिपटे दंडको विश्वमें चिकित्साके चिह्नकी मान्यता प्राप्त है। चिकित्साशास्त्रके पितामह माने जानेवाले हिप्पोक्रेट्सने प्रामाणिक तौरपर उस समयकी प्रचलित सभी चिकित्सा-पद्धतियोंको एक सूत्रमें पिरोकर आधुनिक चिकित्सा-शास्त्रकी नींव डाली। यहाँ यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि तबतक भारतमें सुश्रुतद्वारा विकसित की गयी चिकित्सा-पद्धति अपने चरम उत्कर्षपर थी और हिप्पोक्रेट्सके लेखोंमें उसका पूरा प्रभाव है।

ग्रीस चिकित्सा-पद्धतिमें वैज्ञानिक दृष्टिकोणकी उपजका सारा श्रेय आयोनियन और इटैलियन-ग्रीक दार्शनिकोंको जाता है, जिनका उद्भव ईसाके पूर्व छठी शताब्दीमें हुआ था। ग्रीक चिकित्सामें भिषक्-कर्मका कार्य प्रमुखतया मन्दिरोंमें रहनेवाले पुरोहितोंद्वारा किया जाता रहा।

रोग, कारण और निदानके त्रिकोण और चिकित्सा-शास्त्रमें लक्षण और कारकका विश्लेषण करनेकी परम्पराके जन्मदाता हिप्पोक्रेट्सने तार्किक दृष्टिसे इनकी अलग व्याख्या की और क्रेते नामक द्वीपमें उत्पन्न हुए इस महापुरुषने समकालीन मान्यताओं और तथ्योंके आधारपर जो चिकित्साकी परम्परा चलायी, वह आजतक यथावत् बनी हुई है, मात्र उसमें समय-समयपर वैज्ञानिक शोधोंके आधारपर थोड़ा-बहुत परिवर्तन हुए हैं। आजतकके विकसित चिकित्सा-विज्ञानका शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो, जहाँ हिप्पोक्रेट्सकी दृष्टि न गयी हो। यहाँतक कि रोमकी संस्कृति नष्ट होनेके बाद जब यूरोपमें कला, विज्ञान और संस्कृतिका पुनरुत्थान हुआ, तब हिप्पोक्रेट्सके सिद्धान्तोंको ही पुनः स्थापित किया गया।

अरस्तूके पिता मैसिडोनियाके रहनेवाले चिकित्सक थे। अरस्तू (३८४-३२२ ईसापूर्व)-ने १७ वर्षकी आयुमें एथेन्समें प्लेटोका शिष्यत्व प्राप्त किया। प्लेटोकी मृत्युके बाद वे फिलिपके पुत्र अलेक्जेंडरके शिक्षक बने और तबतक वहाँ रहे, जबतक कि अलेक्जेंडर एशियामें युद्धके लिये नहीं चले गये। अरस्तू वापस एथेन्समें आकर पुनः चिकित्सा-शास्त्र पढ़ाने लगे और ३२२ ई०पूर्वमें उनकी मृत्यु हो गयी। अरस्तू मूलतः प्रकृति-प्रेमी थे और जीवके विकासक्रमके आधारपर उन्होंने तुलनात्मक शरीररचनाके वैज्ञानिक अध्ययनका विकास किया। चित्रोंके आधारपर उन्होंने भ्रूणविज्ञान और मानवके विकासका वर्णन किया। उनके द्वारा प्रस्तुत अंडेसे जीवका विकसित होना एवं भ्रूणके विकासका क्रम तथा मानव-शरीरसे उसका तुलनात्मक अध्ययन आगे चलकर जन्मजात रोगोंको समझनेके लिये एक प्रमुख प्रायोगिक माध्यम बना। इसी कालमें अरस्तूने मन, शरीर और हृदयके भी भेदको समझाया और मन तथा हृदयके दार्शनिक पक्षको भी जोड़ा। आयुर्वेदशास्त्रमें पञ्चतत्त्वके सिद्धान्तकी तरह उसने पित्त, अग्नि, जल, रक्त और पृथ्वीके संयोगसे मानव-शरीरके रचनाकी परिकल्पना की। भारतमें यह वही काल था जब सुश्रुतकी शल्य-शास्त्रकी चिकित्सा शीर्षपर पहुँच चुकी थी।

रोममें चिकित्सा-शास्त्रका विकास ग्रीक लोगोंके प्रभावके पूर्व स्थानीय आसीरियोंकी मान्यताओं और परम्पराओंपर आधारित था और उसमें तर्क और विज्ञानका नितान्त अभाव था।

ईसाकी पहली शताब्दीके प्रारम्भकालमें सेल्सस नामक वैज्ञानिकने रोगसे विकृत अङ्गोंके अध्ययनकी परम्परा डाली। सेल्सस, एस्क्यूलेपियसकी परम्पराके शिष्य थे और उन्होंने आन्तरिक-बाह्य लक्षणोंपर सर्वाधिक शोध किये। इस कालमें रोमके नाविकोंने समुद्री यात्राएँ प्रारम्भ कर दी थीं, अतः लम्बी यात्रामें होनेवाले रोगोंके कारण निदानका भी समावेश किया गया। शल्यक्रियामें प्रयुक्त यन्त्रोंका और परिमार्जन हुआ तथा उन कई शल्य-क्रियाओंका उल्लेख मिलता है, जो कि सुश्रुतद्वारा प्रतिपादित थीं। ईसाके १७२ वर्षोंके बाद ही शल्य-क्रियाद्वारा प्रसवकी परम्परा डाली गयी और जूलियसका जन्म हुआ, जिसे जूलियस सीजर कहा गया। सीजरके कालमें रोममें चिकित्सा-कलाका पूरा विकास हुआ। अन्य देशोंके विद्वान् चिकित्सकोंको सीजरने बसाया तथा चिकित्सा-विद्यालयोंकी स्थापना की।

प्रथम शताब्दीके प्रारम्भमें पेरागमोंन नामक स्थानमें प्रख्यात यायावर चिकित्सा-वैज्ञानिक गैलनका उदय हुआ। उन्होंने स्मिरनामें शरीर-रचनाकी शिक्षा प्राप्त की और एशियामें दूर-दूरतक यात्राएँ कीं। अन्ततः एलेक्जोण्ड्रियामें आकर यन्त्रोंका विकास किया। गैलेन मूलतः यथार्थ शरीर-रचनाके वैज्ञानिक थे और उन्होंने स्तनपायी जीवों और मनुष्योंके अंदर तुलनात्मक शरीर-रचनाशास्त्र और क्रियाकी व्याख्या की और प्रचलित मान्यताओंको वैज्ञानिक दृष्टि देकर उनका निरूपण किया। इसमें प्रमुख था हृदयकी रचना, मस्तिष्क और यकृत्का कार्य एवं श्वसन-क्रिया। गैलेनने मात्र औषधियोंका उद्धरण दिया, वे निदान और रोगकी चिकित्साके बारेमें बहुत कम ही लिख पाये।

मध्यकालमें चिकित्साका विकास (२०० से १५०० ई० तक)

रोमसाम्राज्यके उत्थान और पतनके साथ-साथ आधुनिक चिकित्साकी परम्परा लम्बे समयतक चर्च और पादरियोंके अधिकारमें चली गयी। निराश्रित पीडित लोग भारी संख्यामें आकर चर्चमें पादरियोंके यहाँ आश्रय पाते थे और रोगमुक्तिके लिये विश्राम करते थे। चिकित्सा-क्रिया जाननेवाले संतोंमें प्रमुख थे—सेंट ल्यूक, सेंट कासमस और डामियन।

सातवीं शताब्दीमें इस्लामिक संस्कृतिका उदय हुआ और तत्काल ही पूरे मध्य एशियामें ग्रीक एवं लैटिन-चिकित्सा-पुस्तकोंका अनुवाद अरबी भाषामें होने लगा। इस कालमें तेहरान, परसियाका निवासी रहेजस (९२३ ई०) और फराज-बिन-सलीमकी लिखी हुई किताब अल-हवाई प्रमुख है जो ग्रीक-अरब-चिकित्सा-पद्धतिका विश्वकोष मानी जाती है। एविसेना और आइसक ज्यूडियसने इस मिली-जुली संस्कृतिमें वैज्ञानिक चिकित्सा-शिक्षाको पुस्तकके रूपमें लिखकर प्रसारित किया।

आइबोरीयन उपमहाद्वीपमें थोड़े समय बाद ही इस्लाम-धर्मका प्रभाव समाप्त होने लगा और आठवीं शताब्दीके बाद ही लैटिनकी उपभाषा स्पेनिश विकसित हुई। इन अनुवादों और पुस्तकोंका प्रभाव यूरोपमें तत्कालीन १२वीं-१३वीं शताब्दीपर पड़ा। समूची चिकित्सा-पद्धतिका अध्ययन मात्र पुस्तकोंपर आधारित रहा और प्रायोगिक शिक्षाकी कोई भी व्यवस्था न बन पायी। इटलीके बोलोनामें ११५६ ई०में विश्वविद्यालय-स्तरपर चिकित्सा-शिक्षामें वनस्पतिशास्त्र और भौतिकशास्त्रका समावेश नहीं हुआ था। फिर भी शरीर-रचना और शरीर-क्रियाके अध्ययनके लिये शवच्छेदनकी प्रक्रिया आवश्यक थी। इस प्रकार बोलोनामें शल्य-शिक्षा व्यवस्थित ढंगसे प्रारम्भ हुई। इस कालमें सैलीसीटोंके विलियम, सर्वियाके विशप थिओजोरिक और फ्लोरेसके थेडियस थे, जिन्होंने शल्यकी तकनीकोंका विकास किया, मवादके बाहर निकालनेके बारेमें लिखा। १३वीं शताब्दीके प्रारम्भमें बोलोनामें फ्रांससे हेनरी-डी-मॉडे विव्लेका आगमन हुआ, जिसने बोलोनाके चिकित्सा-पुस्तकोंका अनुवाद फ्रेंचभाषामें किया, इस प्रकार फ्रांसीसी लोग रोमसे शल्य-चिकित्साको लानेवाले पहले लोग हुए।

१४वीं शताब्दीसे चिकित्सा-शास्त्रमें वैज्ञानिक मूल्योंको पुनःस्थापित करनेका सारा श्रेय उन वैज्ञानिकोंको जाता है, जो वैज्ञानिकके साथ-साथ चित्रकार, साहित्यकार एवं विचारक थे। इस परम्परामें सबसे पहले लियोनाडौन्दाविचींने गैलेनकी मान्यताओंको पुनः परखा और भिन्न-भिन्न जीवोंपर इसके प्रयोग किये। उन्होंने फेफड़े और हृदयकी रक्तशिराओं और धमनियोंका नामकरण किया। चित्रोंको

प्रदर्शित करके उन्होंने इस क्रियाको समझाया और हृदयके कपाटोंकी रचनाका रहस्य खोला। 'फेफड़े और हृदय मिलकर मस्तिष्कमें हवा भरते हैं' गैलेनने इस मान्यताको समाप्त किया और हृदयसे अलग मस्तिष्कको जानेवाली रक्तवाहिनियोंको चित्रद्वारा प्रदर्शित किया। ब्रूसल्सके वेसेलियस (१५१४—१५६४ ई०)-ने चिकित्सा और कलामें सृजनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए मांसपेशियोंकी क्रिया, मस्तिष्कके अंदरकी बनावट, तन्त्रिकाओं और रक्तवाहिनियोंके अलग-अलग भागोंको चित्रद्वारा बनाकर समझानेका प्रयास किया। अपने अथक परिश्रम और प्रतिभाके बलपर बेसेलियस पादुआमें शरीर-रचना और शल्य-क्रियाके प्रोफेसर नियुक्त हुए। इसी कालमें यूरोपमें प्लास्टिक सर्जरी विकसित हुई, जो कि हजार वर्षपूर्व भारतमें पूर्ण विकसित हो चुकी थी।

फिलिप बाम्बस्ट वाल हैनहीम जिनका जन्म स्विट्जरलैण्डमें हुआ (१४९३—१५४१ ई०), वे ही आगे चलकर थियोफ्रास्टस पैरासेलसके नामसे प्रसिद्ध हुए। वे बासल (स्विट्जरलैण्ड)-में चिकित्साशास्त्रके प्रोफेसर नियुक्त हुए। पैरासेलसने ही सर्वप्रथम (सल्फर) गंधक और पारेका प्रयोग औषधिके रूपमें किया। इस कालमें ग्रीकसाहित्यका प्रचुर मात्रामें लैटिनमें अनुवाद हुआ और १६वीं सदीके प्रारम्भ (१५१८ ई०)-में थॉमस लिनाकरेद्वारा रायल कॉलेज ऑफ फिजिशियनकी स्थापना लन्दनमें की गयी।

रोगोंके संक्रमण और संक्रामक रोगोंका सर्वप्रथम विचार इसी कालमें फ्रैकास्टोरोद्वारा प्रतिपादित किया गया। १५४६ ई०में फ्रैकास्टोरोने संक्रामक रोग और संक्रमणके बारेमें तार्किक पक्ष प्रस्तुत किये और सूक्ष्म जीवोंकी सम्भावनाओंकी व्याख्या की, जो एक व्यक्तिसे दूसरे व्यक्तिके शरीरमें स्पर्श या वायुद्वारा फैल सकते हैं। फ्रेंच वैज्ञानिक गिलाम-डी-बैलो (१५३८—१६१६ ई०) द्वारा हिप्पोक्रेटिक विचारधारावाले संक्रामक रोगोंकी संक्रामकताकी चेतनाका इसी कालमें उदय हुआ और खुजलीवाले कीड़ोंद्वारा टाइफस रोगके संक्रमणके बारेमें भी तथ्य इकट्ठे किये गये। डी-बैलोंने इसी कालमें काली खाँसी, गठिया एवं जोड़ोंके दर्दका अन्तर बताया, जो कि इसके पूर्व हिप्पोक्रेट्सके द्वारा स्थापित किया जा चुका था। रोगके लक्षणोंके आधारपर उसके अतिप्रभावकी वैज्ञानिक विवेचना सर्वप्रथम लन्दनमें थॉमस साइडैन हैम (१६२४—१६८९ ई०)-ने की। अपने परीक्षण और विश्लेषणकी कलाके कारण ही उन्हें उस कालमें 'अंग्रेजोंका हिप्पोक्रेट्स' कहा गया।

भौतिक और रासायनिक विज्ञानके आधारपर रोगोंके समझनेकी प्रक्रियामें जियोरडानो, ब्रूनो, कूपरनिकस, गिलबर्ट केपलर और गैलिलियो प्रमुख हैं, जिन्होंने १७वीं शताब्दीमें जीवविज्ञान और भौतिकशास्त्रको एक सूत्रमें पिरोकर एक सार्वभौमिक शोधकी परम्पराका सूत्रपात किया। गैलिलियोके प्रकाश और लेन्सके समायोजनकी कलाने माइक्रोस्कोपके अन्वेषणकी नींव डाली। १६३६ ई०में सैनटोहियोंने रक्तवाहिनियोंको नाडीके रूपमें परिभाषित करके उसे रेखाङ्कित करनेके यन्त्रका आविष्कार किया। गैलिलियोद्वारा अध्ययन किये गये पारेके गुणको सैक्टोरियसने नैदानकीय थर्मामीटरमें बदलकर तापक्रमको नापनेका कार्य भी प्रारम्भ किया। श्वसन और इसके अन्तर्गत होनेवाले ऊर्जाके क्षयका भी अध्ययन सैक्टोरियसने अपने-आपको एक डिब्बेमें बंद करके ऊर्जाके क्षरण और उत्पन्न होनेकी विधिका अध्ययन किया। इससे आधुनिक चयापचय (मेटाबालिज्म)-की नींव पड़ी।

१७वीं शताब्दीमें ही अंग्रेज वैज्ञानिक विलियम हार्वे (१५७८—१६५७ ई०)-ने आधुनिक हृदयपर व्याख्या की। माइक्रोस्कोपका प्रयोग भ्रूणविज्ञान और जीवनके विकासमें भी किया गया तथा रक्तमें श्वेत एवं लाल रुधिरकणिकाओंके बारेमें भी ल्यूवेन हॉकने माइक्रोस्कोपके आधारपर चित्र बनाकर दर्शाया। प्रत्येक अङ्गोंके सूक्ष्म विवेचनसे वैज्ञानिकोंकी ढेर सारी भ्रान्तियाँ जाती रहीं। १७वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें अंग्रेज वैज्ञानिक राबर्ट ब्वायल (१६२६—१६९१ ई०)-ने वायुका जीवके श्वसनकी आवश्यकताके रूपमें आविष्कार किया और जॉन मेयोके माध्यमसे श्वसनमें ऑक्सीजनकी सम्भावनाओंपर विचार किया। जासेफ ब्लैक (१७२८—१७९९ ई०)-ने आगे चलकर जल, पानी और ऑक्सीजनके वर्तमान रासायनिक सूत्रोंकी व्याख्या की और प्रीस्टलेने इसी बीच (१७३३—१८०४ ई०)-में वायुकी प्रकृतिको

समझकर हाइड्रोजन गैसोंका भी आविष्कार किया।

१७वीं शताब्दीके मध्यमें स्टीफेन होल्स (१६७७—१७६१ ई०) जब रक्तकी श्यामताका अध्ययन करते समय घोड़ेके गलेकी रक्तवाहिनीका अध्ययन कर रहे थे, तब रक्तके प्रवाहसे चमत्कृत होकर उन्होंने रक्तचाप नापनेका यन्त्र बनाया, जो आगे चलकर पारेके तुलनात्मक रूपमें मापा जाने लगा। बोलोनामें गुली गैलवानी (१७३६—१७९८ ई०)-ने मेंढककी तन्त्रिकामें प्रवाहित होनेवाली विद्युत्-तरङ्गोंका पता लगाया और तन्त्रिकाओंको उद्दीप्त करके मांसपेशियोंमें गति स्थापित करनेकी विधिका आविष्कार किया।

फ्रेंच रसायनज्ञ लैवाइजर (१७४३—१७९४ ई०) इस समय गैसोंके प्रभावका दहनकी प्रक्रियाके लिये प्रयोग कर रहे थे और प्रीस्टले तथा लैवाइजरने संयुक्तरूपमें श्वसनक्रियामें प्रयुक्त होनेवाली विशिष्ट गैस ऑक्सीजनका नामकरण किया। इस कालमें शवच्छेदनकी परम्पराकी पुनःस्थापना हुई और रोग एवं उससे होनेवाली विकृतियोंका भलीभाँति अध्ययन किया गया। मारगैगनी (१६८२—१७७१ ई०)-ने सूक्ष्म यन्त्रोंके माध्यमसे विकृति विज्ञानकी आधारशिला रखी। नाडीको देखनेकी कला, अङ्गोंको स्पर्श करके सम्भावित विकृत अङ्गोंकी पहचान, हृदय एवं छातीके रोगोंमें ठोक करके पानीके इकट्ठे होनेकी सम्भावना एवं श्वास तथा हृदयकी ध्वनियोंको सुनकर रोगको पहचाननेकी कलाका विकास इसी कालमें हुआ। इसी कालमें लैनेक (१८१९ई०)-ने कागजको लपेटकर ध्वनिको केन्द्रित करके श्वसन और हृदयकी धड़कनको सुनकर रोगके निदानकी परम्परा डाली और बादमें चलकर इसका रूप लकड़ी तथा रबरकी ट्यूबने ले लिया। श्रवणकी विधिमें प्रयोग होनेवाले रोगोंके आधारपर नामकरण लैनेकने ही किये हैं। १७वीं शताब्दीके मध्यमें फ्रांसमें चिकित्सकोंने प्रसव-क्रियामें योगदान करना प्रारम्भ किया।

विलियम स्मेलीने लन्दनमें प्रसव-सम्बन्धी यन्त्रोंका इस प्रकार परिमार्जन किया कि माता एवं शिशु दोनोंकी रक्षा की जा सके। स्मेलीके शिष्य विलियम हंटर (१७१८—८३ ई०) और उनके भाई जॉन हंटरने शरीर-रचनाके साथ-साथ प्रसूति-विज्ञानमें उल्लेखनीय कार्य किया। जॉन हंटरने शरीर-रचनाके शिक्षा-कालमें शल्य-क्रिया भी की और विकृत अङ्गोंको संकलित करके विशाल संग्रहालयकी भी स्थापना की। यह आज भी लन्दनके रॉयल कॉलेज ऑफ सर्जन्सके यहाँ सुरक्षित है। अपने कौशल, पुरुषार्थ और ज्ञानकी क्षमतापर उन्हें इतना गर्व था कि उन्होंने अपनी बीमारीके समय एक बार मुस्कराकर कहा कि 'अब आप आसानीसे दूसरा जॉन हंटर नहीं पायेंगे।' इसी कालमें ब्रिटिश सर्जन परसीवल पॉट (१७१४—८८ई०)-का अभ्युदय हुआ, जिन्होंने हड्डीके टूटनेकी चिकित्सा, रीढ़की हड्डीकी टी०बी० एवं हार्निया तथा कैंसर-रोगकी शल्य-चिकित्साका विवरण दिया।

इस कालमें पूरे यूरोपमें औद्योगिक क्रान्ति हो रही थी। संक्रामक रोगोंको नियन्त्रित करनेके नियम बने। १८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें सूक्ष्मदर्शी यन्त्रोंकी उपलब्धताने सूक्ष्म जीवों एवं बैक्टीरिया तथा एक कोशीय जीव (प्रोटोजोआ)-को स्थापित कर लिया। पास्चर (१८२२—१८९५ ई०)-ने रोग एवं वनस्पतिविज्ञानसे सूक्ष्म जीवोंका सम्बन्ध स्थापित किया। इसी कालमें फ्रेंच वैज्ञानिक क्लाडे बर्नाड (१८१३—१८७८ ई०)-ने जीवकी कोशिकाओंमें शर्कराकी उपयोगिता, लीवरमें शर्कराको संग्रहीत करनेकी क्रिया और उसे पुनः शर्करामें बदलनेकी क्रियाको खोज निकाला। १८५७ ई०में अन्तः-वातावरण और बाह्य वातावरणका सिद्धान्त प्रतिपादित किया, जो आजतक अकाट्य है। जर्मन वैज्ञानिक कार्ल फ्रिडरिख विल्हेल्म लुडविग (१८१६—१८९५ ई०)-ने लारग्रन्थियोंके महत्त्वको बताया तथा पाचन-क्रियामें इनका योगदान निर्धारित किया। रूसके वैज्ञानिक पैवलॉव (१८४८—१९३६ ई०)-ने पेटके स्रावका सम्बन्ध दृष्टि, घ्राण एवं श्रवणसे स्थापित किया, जो बादमें चलकर नोबल पुरस्कारसे सम्मानित हुए।

इस समय यद्यपि शल्य-क्रियाकी महत्ता चिकित्साक्षेत्रमें पर्याप्त फैल चुकी थी, परंतु अधिकांशतः शल्य-क्रिया पीडा एवं चीत्कारमें होती थी। निःसंज्ञकरणका ज्ञान उन दिनों केवल अङ्गोंमें रक्तप्रवाहको रोकनेतक ही सीमित था, जो कि कुछ ही अङ्गोंमें प्रयुक्त होता था। सम्मोहन क्रियाद्वारा शल्य-कर्म सर्वप्रथम भारतमें जेम्स एस्डेलने किया, जो (१८०८-१८५९ ई० तक) भारतमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीके

चिकित्सकके रूपमें रहे। सर हम्फ्री डेवीने नाइट्रस ऑक्साइडको सूँघनेके बाद यह विचार बनाया कि यह हँसनेवाली गैस शल्य-क्रियामें दर्दको भुला सकती है। इसका प्रचलन ब्रिटेन और अमेरिकामें सल्फ्यूरिक ईथरके साथ होने लगा था, परंतु इसका सर्वप्रथम प्रयोग वेल्स (१८१५-१८४८ ई०)-ने दाँतको उखाड़नेके लिये किया। वेल्सने इसका सार्वजनिक प्रदर्शन १८४५ ई० में अमेरिकाके मासाचुसेटस चिकित्सालयमें किया, जहाँ दुर्भाग्यवश एक व्यक्ति इस प्रक्रियामें चीख पड़ा। वेल्सके ही एक शिष्य मार्टनने १८४६ ई० में ईथरके प्रयोगसे इस सफलताको प्राप्त कर लिया। इसके उपरान्त लिस्टरमें (१७९४-१८७० ई०) प्रसवमें ईथरका प्रयोग हुआ। सिम्पसनने ही क्लोरोफार्मका उपयोग १८४७ ई० में किया। यद्यपि इसकी खोज १८३१ ई० में पेरिसमें इयूजीन सुवेरियन, अमेरिकामें सैमुएल गूथरी और लिबिग १९३४ ई० में कर चुके थे। अबतक पम्पके माध्यमसे क्लोरोफार्म, ईथर और नाइट्रस ऑक्साइडके मिश्रण और अलग-अलग प्रयोगकी विधिके यन्त्रोंका विकास हो चुका था और दर्दनाशक शल्य-क्रियाके कारण शल्य-क्रियाका विकास बड़े ही त्वराके साथ हुआ। १८८५ ई० में जेम्स कार्निग स्टुअर्ड हाल्स्टेडने कोकेनको सूईके द्वारा नसोंमें लगाकर संज्ञा-शून्यताको पैदा किया और १८७४ ई० में क्लोरल हाइड्रेटको नसोंमें लगाकर सूईद्वारा निश्चेतना पैदा करनेकी विधि निकाली गयी, जो कि १९०३ ई० के बाद बिचुरटेसकी खोजके बाद और प्रभावी हो गयी। लॉर्ड लिस्टर (१८२७-१९१२ ई०)-ने यद्यपि अपने जीवनका प्रारम्भ एक शल्य-चिकित्सकके रूपमें किया, तथापि उनकी प्रसिद्धि एण्टीसेप्टिककी खोजके कारण हुई।

लिस्टरने अबतक माइक्रोस्कोपसे घाव बनानेवाले विषाणुओंका अध्ययन कर लिया था। उन्होंने विषाणुओंसे मुक्ति पानेके लिये कार्बोलिक एसिडसे घाव धोनेकी परम्परा शुरू की तथा चिकित्साके पूर्व यन्त्रोंको भी इससे धोया जाने लगा। कार्बोलिक एसिडसे अङ्गोंमें कई बार घाव हो जाते थे, अतः हाथोंमें रबड़के दस्ताने पहननेकी भी कला इसी कालमें प्रचलित हुई। लिस्टरके पूर्व ही सोमेविलिस (१८१८-१८६५ ई०) कार्बोलिक एसिडका प्रयोग कर चुके थे, परंतु दुर्भाग्यवश उनके कार्यको बहुत ख्याति न मिल सकी और उनकी मृत्यु विक्षिप्त-अवस्थामें हंगरीके पागलखानेमें हो गयी।

एटिसोप्सिस, निश्चेतनाकी कला और विषाणुओं (बैक्टीरिया और वायरस)-के ज्ञानने शल्य-चिकित्साको सहज बना दिया और १९वीं शताब्दीके उत्तरार्ध कालमें प्रत्येक चिकित्साके लिये शल्यके प्रयोग किये गये। इसमें अमेरिकामें केन्टुकी नामक स्थानपर सफलतापूर्वक चिकित्सा करनेवाले मैकडावैल (१७७१-१८३० ई०) हुए। जेम्स सिम्स (१८१३-१८८३ ई०) जिन्होंने न्यूयार्कमें स्त्रियोंके मूत्र-जननेन्द्रिय मार्गकी कठिन शल्य-चिकित्सा की। लन्दनमें सार थॉमस स्पेन्सर हुए। स्पेन्सरने शल्य-चिकित्साके साथ-साथ शल्य-यन्त्रोंका भी विकास किया। कैंसररोगमें शल्य-चिकित्सा ही उस समय सबसे उपयोगी चिकित्सा थी, क्योंकि इस समय अन्य किसी भी कैंसरकी औषधिका विकास नहीं हुआ था। इसमें सर्वाधिक ख्याति क्रिश्चियन एलबर्ट लियोडन बिलरॉय (१८२९-१८९४ ई०)-की हुई, जिन्होंने सभी अङ्गोंके कैंसरके लिये शल्य-चिकित्साकी तकनीकका विकास किया। सर विलियम मैक्सीवनने (१८२४-१९२४ ई०) हड्डी एवं अन्य अङ्गोंके प्रत्यारोपणकी शल्य-चिकित्सा प्रारम्भ की और तन्त्रिका तथा मस्तिष्ककी शल्य-क्रियाका अलगसे विकास किया। वे लिस्टरके शिष्य थे और ग्लासगोमें लिस्टरके बाद उसी पदपर ३५ वर्षोंतक अध्यापक रहे। उन्होंने मस्तिष्कमें शल्य-क्रिया करके जमे हुए रक्तको निकालनेकी तकनीकका विकास किया। रीढ़की हड्डीमें स्थित ट्यूमर एवं मस्तिष्क और सुषुम्णा नाडीके मवादको शल्य-क्रियासे भी निकालनेकी क्रिया उन्हींके द्वारा प्रारम्भ की गयी।

नैदानिक चिकित्साका विकास और एक्स-रे

रॉन्टजनने १८९५ ई० में वैक्यूम ट्यूब्ससे निकली अज्ञात किरणोंको एक्स किरणोंका नाम दिया और निदानकी एक विशिष्ट दिशा दी। ६ जनवरी १९१९ ई० को लन्दनमें विद्युत् विभागके एक इंजीनियरने इसका उपयोग टूटी हड्डीका पता लगानेके लिये किया और १८९७ ई० में डब्ल्यू०बी० कैननने बेरियम घोलके ऊपर इसकी

अपारदर्शिताकी पुष्टि की, जिसके कारण आँतके रोगोंमें इसके उपयोगकी पुष्टि हुई।

मैडम क्यूरी और उनके पति पियरे क्यूरीने संयुक्त रेडियमकी रेडियोधर्मिताके आधारपर कैंसरकी चिकित्सा शुरू की और शीघ्र ही रेडियोधर्मी तत्त्वोंकी गणनाके आधारपर अन्य रोगोंके निदान और उपचारपर अनेक शोध-पत्र प्रकाशित हुए। २०वीं शताब्दीके प्रारम्भकालमें जीव-वैज्ञानिकोंद्वारा जीवाणुओंका विशद अध्ययन, रसायनज्ञोंद्वारा औषधियोंका निर्माण एवं आसवनकी विधि तथा प्रतिरोधक क्षमताके आधारपर रोग-निरोधक विधियोंके अध्ययनने आधुनिक चिकित्साको बहु-आयामी बना दिया। प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्धमें सैनिकोंकी रक्षाके लिये शासनकी ओरसे चिकित्सकीय शोधकार्योंको अधिक महत्त्व दिया गया, जिसमें ब्रिटेन, अमेरिका, जर्मनी और पूर्व यूरोपीय देशोंकी प्रमुखता रही। जीवाणुओंको शरीरमें नष्ट करनेकी नयी परम्परा भी इन्हीं मौलिक वैज्ञानिकोंसे शुरू हुई और अलेक्जेण्डर फ्लेमिंगने १९२८ ई० में फफूँदके जीवाणुओंको नष्ट करनेकी विधिका विकास किया तथा पेनिसिलीनका विकास हुआ, जो कि फफूँदद्वारा विकसित की गयी। १९३५ ई०तक सल्कोनामाइडका विकास हो गया। १९४०-४१ ई०में ऑक्सफोर्डके चेन और फ्लोरेने पेनिसिलीनके लिये शुद्धीकरणकी व्यवस्था की। १९५२ ई०तक आते-आते वाक्समैनने स्ट्रेपटोमाइसीनको स्थापित कर दिया।

इस तरह आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान निरन्तर देश-काल और समयके सापेक्ष प्रयोगोंपर हर बार परखा जाता रहा और तब कहीं जाकर **'सर्वे सन्तु निरामयाः'** के उद्देश्यकी पूर्ति कर पाया। यह सारे देशोंकी धरोहर है, समूची मानवताका इसमें सम्यक् योगदान है और सबने इसको अपने-अपने ज्ञानसे सींचकर वैश्वीकरणके इस शीर्षपर लाकर खड़ा किया है।



एलोपैथी चिकित्साके मूल सिद्धान्त—गुण-दोष

[ऐतिहासिक दृष्टि]

(डॉ० श्रीभानुशंकरजी मेहता)

चलती को गाड़ी कहें, जले दूध को खोया।
रंगी को नारंगी कहें, देख कबीरा रोया॥

इस संसारका यही चलन है, जो नाम दे दिया, वही चल गया। 'एटम' का अर्थ होता है 'अखण्ड' और आज खण्ड-खण्ड हो गये परमाणुको 'एटम' ही कहते हैं। हिंदी देशके सभी वासियोंको हिंदू न कहकर, जो मुसलमान, सिख या ईसाई नहीं हैं, वे सब हिंदू कहलाते हैं और सनातन धर्मको बड़े-बड़े विद्वान् 'हिंदू-धर्म' की संज्ञा देते हैं। राजधर्म, व्यक्तिधर्म आदि होते हुए भी हमारा देश 'धर्मनिरपेक्ष' है। कुछ ऐसी ही स्थिति एलोपैथीकी है। इसका अर्थ है विपरीत-चिकित्सा। एलोपैथी कभी कोई चिकित्साशास्त्र रही हो, ऐसा आपको ढूँढ़े नहीं मिलेगा। फिर भी आजकी 'आधुनिक वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति' को हमारे देशमें सर्वत्र (सरकारद्वारा भी) 'एलोपैथी' कहा जाता है।

इस नामकी कथा समझनेके लिये दो सौ वर्ष पीछे जाना होगा। सन् १७५५ ई० में जर्मनीमें सैमुअल फ्रेडरिख क्रिस्टियान हैनीमैनका जन्म हुआ। वह लीपजिग विश्वविद्यालयमें अध्ययन करके डॉक्टर बन गया। वियनामें कार्य करनेके बाद वह पुनः लीपजिग आया और कलेनकी 'मैटीरिया मेडिका' का अनुवाद करने लगा। वह 'कुनैन' के बारेमें पढ़ रहा था, तभी उसे एक नयी दृष्टि मिली। कुनैन खानेसे जाड़ा देकर बुखार आता है और यही जड़ैया बुखार अच्छा भी करती है। उसने सिद्धान्त स्थापित किया कि 'बड़ी मात्रामें रोग-जैसे लक्षण पैदा करनेवाली औषधि, अल्पमात्रामें उस रोगको दूर करती है।' सन् १८११ ई० में उसने 'आर्गेनन' लिखा। उसने अपनी पद्धतिका नाम दिया 'होमियोपैथी'। इस पद्धतिमें उसने यह भी स्थापित किया कि 'औषधिकी मात्रा घोलमें ज्यों-ज्यों कम होती है, त्यों-

त्यों उसकी रोगहारी शक्ति बढ़ती जाती है।' उसने कहा कि तीन प्रकारके रोग होते हैं—सोरा, सिफलिस, साइकोसिस। हैनीमैनने अपनी पद्धतिसे अलग जो पद्धतियाँ थीं, उन्हें **'एलोपैथी'** कहा। हैनीमैनने दो उपकार किये—एक तो उसने औषधि-विज्ञानके गहन अध्ययनपर बल दिया, अतः उसे **'फादर ऑफ माडर्न फार्मोकोलॉजी'** का विरुद प्राप्त है, दूसरे उस युगके चिकित्सक वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण, कपिंग, दहनके साथ ही बड़ी मात्रामें और कई औषधियाँ मिलाकर काढ़ा तथा गोलियाँ खिलाते थे। जो रोगी प्रकृतिकी सहायतासे अच्छे भी हो सकते थे, वे इस बर्बर-चिकित्साके कारण मर जाते थे। सूक्ष्म मात्रामें औषधि देकर हैनीमैनने इनकी रक्षा की। तत्कालीन **'एलोपैथी'** को समझनेके लिये हमें विश्व आयुर्विज्ञानका संक्षिप्त सिंहावलोकन करना होगा।

आदिकालमें सर्वत्र मानव मानता था कि रोग देव-प्रकोप, भूत-प्रेत, जादू आदिसे होते हैं और वैसी ही चिकित्सा भी करते रहे हैं। धर्मने पापको रोगका मूल कारण बताया, अतः व्रत, पूजा, प्रायश्चित्त चिकित्साका चलन हुआ। ग्रहोंकी दशा दूर की गयी। जंतर-मंतर, ताबीज, टोना, टोटका और जादुई इलाज उपलब्ध हुए। सारे विश्वमें इनमें एकरूपता है। हाँ, ये लोग तर्कसंगत ढंगसे घावकी मरहम-पट्टी करते थे—टूटी हड्डी जोड़ते थे।

आगे सभ्यताओंका जन्म हुआ—भारत, चीन, मेसोपोटेमिया (वर्तमान ईराक, प्राचीन सुमेर, बाबुल, असुर), मिस्र, यूनान और अमेरिकाके देश। बाबुलसे कीलाक्षर लिपिमें लिखी ईंटें मिली हैं, मिस्रसे पेपिरस (भोजपत्र पोथियाँ) मिले हैं। ये सब ६००० वर्षकी कथाएँ हैं। चीनने अपना दर्शन तैयार किया था और उस आधारपर चिकित्सा-पद्धति भी चलायी थी, साथ ही उसके पास समृद्ध औषधि-भण्डार भी था। भारतने वैदिक युगमें ही उपचारके अनेक तरीके ढूँढ़े—जल, अग्नि, मन्त्र और औषधियाँ। आगे सांख्यदर्शनके साथ त्रिदोष-सिद्धान्त स्थापित हुआ। सप्त मूलधातु, पचीस तत्त्व, मर्मस्थान ढूँढ़े गये, रोग पहिचाने गये, उनके निदानमें पाँचों इन्द्रियोंके उपयोगका उल्लेख हुआ। चरक और सुश्रुत-जैसे महान् चिकित्सकोंने समृद्ध चिकित्सा-शास्त्र दिये। सुश्रुत तो विश्वके पहले प्लास्टिक सर्जन माने गये। आहारसे उपचार, जादुई और धार्मिक उपचार, ज्योतिष और प्रेतबाधाके उपचार, पञ्चकर्म उपलब्ध हुए। आयुर्वेदके पास शानदार औषधि-भण्डार था, जिसमें वनस्पति, प्राणिज और खनिज औषधियाँ थीं। स्वच्छतापर भी विशेष बल था। मुख-हस्त-प्रच्छालन, मालिश, स्नानसे शरीरको स्वस्थ रखना और आहारमें विविधताका उपयोग। शल्य-क्रियाके उत्तम औजार उपलब्ध थे। सच पूछिये तो आयुर्वेद कोई चिकित्सा-पद्धति-मात्र नहीं था, प्रत्युत समग्र जीवन जीनेका तरीका था, स्वस्थवृत्त था।

यूनानको ज्ञानोदयका देश माना जाता था, जो अब गलत सिद्ध हो चुका है। फिर भी ईसापूर्व यूनानमें महान् विचारक और विद्वान् पैदा हुए, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। ईसासे १२०० वर्षपूर्व एस्क्लीपियसको चमत्कारी उपचारका यश मिला था और रोगी मन्दिरमें शयन करके रोगमुक्त होते थे। उन दिनों आहार, स्नान, व्यायामका चिकित्सामें समावेश था। जिन दिनों भारतमें महावीर और बुद्धका आगमन हुआ, उस युगमें—ईसापूर्व ४६० में हिपोक्रेटिजका जन्म हुआ, जिसे आधुनिक चिकित्साका जन्मदाता कहते हैं। इसने निदान, इलाज और फलश्रुतिकी बात कही, रोगको सहज प्राकृतिक कारणोंसे होना बताया और कहा हर रोगका अपना स्थान और स्वभाव होता है। रुग्णतापर आहार-विहार-वृत्तिका प्रभाव होता है। उसने प्राकृतिक चिकित्सापर बल दिया। ठीकसे रोगीका विवरण लिखनेकी प्रथा चलायी और उसकी लिखी शपथ आज भी चिकित्सा-विज्ञानके स्नातक लेते हैं।

इससे रोचक बात यह है कि यूनानमें चिकित्साशास्त्रपर भारतका प्रबल प्रभाव पड़ा, साथ ही उसने बाबुल, चीन और मिस्रसे भी बहुत-सा ज्ञान लिया। पाइथागोरसने अङ्कशास्त्र दिया तो इम्पोडिकिलीजने त्रिदोषको चार दोष बना दिया—कफ, पित्त, वायुके स्थानपर अग्नि, वायु, पीला पित्त और काला पित्त (अवसाद) बना दिया।

यूनानमें तीन बड़े दार्शनिक वैज्ञानिक हुए हैं—

सुकरात, अफलातून (प्लेटो) और अरस्तू। अरस्तू सिकंदरका गुरु था और सिकंदर जब भारत आया तो यहाँसे बहुत-से विद्वान् ले गया। आज भी इन विद्वानोंके दर्शनका अध्ययन होता है। यह नहीं कि विरोधी नहीं थे, एसक्लीपियाड्सने कहा—प्रकृति कोई उपचार नहीं करती, चिकित्सकको ही त्वरासे, सुरक्षित ढंगसे और ठीकसे उपचार करना चाहिये। उसने दोष-सिद्धान्त (सांख्य)-को नकार दिया और कण-सिद्धान्त (कणाद) चलाया। उसके अनुसार ठोस कण स्पन्दन करते हैं, इनका संकोच और विस्फार रोग करता है, उपचार माने इनका संतुलन। उसका इलाज था मालिश, पुल्टिस, टॉनिक, शुद्ध वायु, उत्तम आहार और मानसिकतापर विशेष ध्यान।

ईसाके युगमें यूनानका प्रभाव अस्त हुआ और ज्ञानका केन्द्र रोम बना। यूनानी डॉक्टर रोममें जमा हुए, पर सैनिक जगत्में उनकी चली नहीं। सन् १६१ ई०में गालेन नामक चिकित्सक पैदा हुआ। वह अपनेको हिपोक्रेटीजका अनुयायी बताता था, पर उसके सिद्धान्तोंका (जिनमें अनेक भ्रमपूर्ण थे) रुतबा पंद्रहवीं सदीतक छाया रहा। तिसपरसे चर्चने उसके सिद्धान्तोंको धर्मसे जोड़ दिया। गालेनके विरुद्ध बोलना माने प्राण देना। सर्वीटसने कहा—रक्त फेफड़ेमें जाकर शुद्ध होता है तो उसे जिंदा जला दिया गया। शरीर-रचनाके महान् आचार्य वेजेलियसको देश छोड़कर भागना पड़ा। सैनिक-शासित रोममें व्यायामशालाएँ, स्नानागार, स्वच्छताका बोलबाला था। चर्चने अपने धार्मिक उन्मादके बीच अच्छी बात यह की कि उसने यूनानी ग्रन्थोंका संग्रह किया, उनका अनुवाद कराया, नहीं तो वही दशा होती कि यवनोंने सिकंदरियामें महान् ग्रन्थ-भरे पुस्तकालयको जलाकर भस्म कर दिया था।

फिर योरपपर इस्लामी देशोंका कब्जा हुआ। इनकी चिकित्सामें अच्छी पैठ थी। फारसके रजीने 'किताब अलहावी' लिखी, जिसमें समग्र चिकित्सा-ज्ञान था। फिर अबूसिनाने 'अलकानून' लिखी, जो तिब्बीका पाठ्यग्रन्थ था और सारे योरपके चिकित्सा-विद्यालयोंमें पढ़ाया जाता था। इसीके चिकित्सकोंको 'हकीम' कहते हैं। अरब देशने रसायन, कीमियाईपर बहुत काम किया और रसायनकी बहुत-सी तरकीबें—आसवन, सबलिमेशन आदि ईजाद की। बारहवीं सदीमें स्पेनके कार्डोवामें एक यहूदी चिकित्सक हुआ, जो बादमें काहिरा चला गया, उसका **'कोड ऑफ मैमुद्दीन'** बहुत प्रसिद्ध हुआ।

चौदहवीं-पंद्रहवीं-सोलहवीं सदीको रेनेसां (पुनर्जागरण)-का युग कहते हैं। सोलहवीं सदीमें लियोनार्दो द विंची, विजेलियस (१५४३ ई०) और अम्ब्रोसियो पारेने पुरानी मान्यताएँ तोड़ीं। इसी युगमें एक सिद्ध पारासेल्सस हुआ, जिसने देशी भाषामें चिकित्सा-शास्त्र पढ़ाना शुरू किया और विद्यालयके प्राङ्गणमें 'गालेन' और 'कानून'-जैसे ग्रन्थ जला डाले। सत्रहवीं सदीमें विलियम हार्वेने रक्त-संचार सिद्धकर हमेशाके लिये गालेनका साम्राज्य ध्वंस कर दिया। अब बात थी 'देखो, खोज करो', केवल **'बाबावाक्यं प्रमाणम्'** मत मानो। अनेक विद्वान् वाद लेकर आये, रिचर्ड वाइजमैनने कहा—चार्ल्स द्वितीय (राजा)-के स्पर्शसे रोगी अच्छे हो जाते हैं, थामस ब्राउनने कहा—रोग चुड़ैलें पैदा करती हैं, रेनेडेकार्टेसने मानव-शरीरको मशीन-जैसा माना। ल्युवेनहाकने माइक्रोस्कोपका आविष्कार किया, लेनेकने स्टेथेस्कोप बनाया तो आवबर्गरने पर्कशन (ठोक-बजाकर) रोग-निदानकी तरकीबें निकालीं। मेस्मर प्राणीमें चुम्बक-शक्ति देखते थे तो गॉल कपालकी बनावटसे रोग पहिचानते थे। 'बहुतै जोगी मठ उजाड़' की स्थिति थी। जैसा पहले कहा—पञ्चकर्म और विशेष रूपसे खून निकालनेके कारण अपार नुकसान हो रहा था। संखिया, अंजन-जैसे विष प्रयुक्त होते थे। जेनरने शीतलाका टीका निकाल दिया था और नाविकोंमें स्कर्वी नामक रोग नीबू खानेसे ठीक हो जाता है, ये लिंडकी खोज थी।

उन्नीसवीं सदी—इधर प्रयोगशालामें प्रयोग-प्रक्रिया ही चल रही थी, मोरगैग्नीने रोगोंको अङ्गोंके विकारके रूपमें देखा, आगे इन्हें तन्तु-विकारके रूपमें देखा गया। फिर फिर्खोने कहा—रोगका मूल 'कोष' का विकार है। उधर पास्चरने जीवाणुकी खोज की तो कॉखने जर्मथ्योरी स्थापित की। प्रयोगका महत्त्व बढ़ा। एक्स-रे और रेडियम आये। अनेक रोगोंका रहस्य खुला।

हमने इतिहासकी हलचलसे आपको अवगत कराया। भारतमें भी मुस्लिम-शासनमें हकीमीको प्रोत्साहन मिला। यूनानसे विद्वान् फारस आये, यह तिब्बीका विस्तार हुआ— त्रिदोष अब चार दोष बन गये—कफ, पित्त, वायु तथा खून और इनके सूखे-गीले, गरम-ठंडे होनेकी चर्चा हुई, जो आज भी लोकमें व्याप्त है। औषधियोंका लेन-देन हुआ। इस्लामके बाद अंग्रेज आये और योरपकी चिकित्सा ले आये। वे इस विद्याको देना नहीं चाहते थे, पर केवल सहायक बनाना चाहते थे, परंतु चतुर भारतीयोंने विद्या हथिया ली और विश्वके श्रेष्ठ चिकित्सकोंके स्थानपर बैठ गये।

अब यहाँ दो बातें समझ लें। हैनीमैनसे पूर्व संसारमें पद्धतियाँ तो बहुत थीं, पर सभी उपचार कहलाती थीं, नुस्खोंका बोलबाला था। पुराने चिकित्सकोंकी डायरियाँ देखें तो लिखा मिलेगा—'यह नुस्खा मुझे मिस्त्री-चिकित्सकसे मिला, बहुत कारगर है।' हैनीमैनने पैथीका श्रीगणेश किया और आज सैकड़ों पैथियाँ बन गयी हैं। दूसरी बात यह कि चिकित्सा-विज्ञान या शास्त्र केवल उपचार नहीं है, उसमें बहुत-से विषयोंका अध्ययन करना होता है। ज्यादातर पैथियाँ एक दृष्टि-विशेषके आधारपर उपचार करती हैं, जबकि केवल कुछ ही पद्धतियाँ 'शास्त्र' कहला सकती हैं। आयुर्वेद एक शास्त्र है, उसे अष्टाङ्ग-आयुर्वेद कहा गया। यूनानी और तिब्बी भी शास्त्र हैं और उसी प्रकार आधुनिक चिकित्सा भी शास्त्र है, इसमें शरीर-रचना, शरीर-क्रिया, जीव-रसायन, औषधि-शास्त्र, विकृति-विज्ञान, स्वास्थिकी, अगद-तन्त्र, काय-चिकित्सा, शल्य, नेत्र-चिकित्सा, स्त्री-रोग तथा मातृत्व, बच्चोंकी बीमारियाँ, वृद्धोंकी बीमारियाँ और मनोचिकित्सा शामिल है। सच पूछिये तो उपचार-विद्या इस विशाल शास्त्रका छोटा-सा अंश है और इन विषयोंका ज्ञान इतना बढ़ गया है कि एक व्यक्ति समग्र चिकित्सक नहीं हो सकता। अस्तु, विशेषज्ञताकी प्रथा चली, जो अब अपनी चरम अवस्थाको पहुँच गयी है।

दूसरे महायुद्धके बाद अनुसंधानकी गति इतनी तीव्र हो गयी है कि सभी प्रगतियोंका लेखा-जोखा पेश करना भी कठिन है। भारतीय चिन्तन संश्लेषणात्मक है, जब कि आधुनिक विज्ञान विश्लेषणात्मक है अर्थात् सूक्ष्मसे सूक्ष्मतरकी यात्रा चल रही है। फिर्खौने रोगका केन्द्र कोषमें देखा तो दूसरेने कुछ रोगोंको दो कोषोंके बीचमें स्थित स्थानपर रख दिया। फिर कोषके अंदर देखा गया। उसके केन्द्रको परखा गया। केन्द्रमें गुण-सूत्र दिखे और गुण-सूत्रपर स्थित गुणाणु मिले और इस प्रकार चमत्कारी **'जीन थिरैपी'** मिल गयी।

आम आदमी आधुनिक-चिकित्साके बारेमें बहुत कम जानता है, इस कारण बहुत-से प्रवाद फैले हैं, जैसे लोग कहते हैं कि एलोपैथीमें सभी रोगोंका कारण जर्म होते हैं। क्या वास्तवमें ऐसा है? आइये, आधुनिक चिकित्सामें रोगके कारण क्या बताये गये हैं, यह देखें—

(१) बाह्य भौतिक कारणोंसे रुग्णता—दुर्घटना, मारपीट, गोली लगना, जलना, डूबना, दम घुटना, विद्युत्-स्पर्शाघात, लू लगना, समुद्री यात्रा, वायुयान-यात्राकी बीमारी, पहाड़की बीमारी, गहरे समुद्रमें जानेसे उत्पन्न रोग (केसियन डिजीज), फ्रास्ट बाइट (बर्फसे जलना), प्रदूषणजन्य रोग।

(२) विष—पारा, सीसा, संखिया, शराब, कोयलेकी गैस, जहरीली गैस, नींदकी दवा, भाँग, गाँजा, चरस, अफीम, कोकेन, विषाक्त आहार, सर्पदंश, बिच्छू तथा अन्य विषैले जीवोंका काटना, नशीली दवाएँ (जो आज अभिशाप बन गयी हैं)।

(३) परजीवी कृमि-रोग—केंचुआ, फीताकृमि, अंकुश-कृमि, चून्ना, फाइलेरिया आदि।

आज इन जीवोंके जीवनवृत्त समझे जा चुके हैं और इनसे बचनेके सरल उपाय भी उपलब्ध हैं—जैसे साग-सब्जी धोकर खाना, जूते पहनकर चलना, शौचालयका उपयोग आदि।

(४) चयापचयके रोग (मेटाबोलिक)—भोजनका पचना, रस बनना, उससे नया तन्तु बनना, उच्छिष्टके विसर्जन आदिमें गड़बड़ी होना। इसमें अम्लता, क्षारता, गाउट, (गठिया), मोटापा आदि रोग हैं।

(५) प्रणाली-विहीन ग्रन्थियोंके विकार—शरीरमें अनेक प्रणाली-विहीन ग्रन्थियाँ हैं, जिनके स्रावसे शरीरका काम चलता है। इन ग्रन्थियोंमें—

(क) पिट्यूइटरी—जिसके विकारसे आदमी फैलकर 'जायन्ट' हो जाता है या फिर बालरूप बना रहता है। डायबिटीज इनसिपिडस (जलीय मूत्र भारी मात्रामें होना)-जैसे रोग इसी विकारके कारण उत्पन्न होते हैं। यह ग्रन्थि सभी ग्रन्थियोंका नियन्त्रण करती है।

(ख) थायरायड अधिक होना घेघा, मिक्सीडिमा आदिका कारण है।

(ग) पैराथायरायड—कैलशियमके चयापचयमें गड़बड़ी, टिनैनी, हड्डियोंका अकारण टूटना आदि।

(घ) सुप्रारीनल—एडीसन रोग, सफेद दाग आदि।

(ङ) थाइमस—गलेका रोग—स्टेटसथाइमेटिक्स।

(च) स्त्री-पुरुषकी प्रजनन-ग्रन्थियाँ—अनेक उपद्रव।

(छ) पैंक्रियाज—मधुमेह।

(ज) पीनियल बाडी।

(६) हीनताजनक रोग—

(क) विटामिनोंकी कमी—स्कर्वी, बेरी-बेरी, रिकेट्स, रतौंधी, पेलाग्रा।

(ख) खनिजकी कमी—लोहा, कैलशियम, जिंक आदि सूक्ष्म मात्रामें आवश्यक तत्त्वोंकी कमी।

(ग) आहार-तत्त्वोंका असंतुलन—प्रोटीनकी कमी, वसाकी कमी, खुज्जाकी कमी, जलकी कमी, शर्कराकी कमी।

(७) अस्थि और मांसपेशियोंके रोग तथा अस्थि-संधि-रोग—इसके अन्तर्गत वह खतरनाक रोग भी है, जिसमें थोड़ा-सा काम करनेपर मांसपेशियाँ थक जाती हैं। कारण अज्ञात है। वृद्धावस्थामें जोड़ सूख जाते हैं, रीढ़की हड्डीके रोग, जिनमें आजकल 'स्पांडिलाइटिस' प्रसिद्ध है। इस शीर्षकके अन्तर्गत और बहुत-से रोग हैं।

(८) विघटनके रोग (डीजनरेशन)—क्लाउडी, फैटी, अमीलायड आदि अनेक रोग हैं, जिनमें तन्तु विघटित हो जाते हैं। कारण अल्प ज्ञात हैं।

(९) रक्त-प्रणालीके रोग—हृदय-रोग—रक्तकी कमी, वार्धक्य, रक्तस्राव, रक्तहीनता, ल्यूकीमिया, हाजकिंस (तिल्ली)-के रोग, परपूरा, हिमोफीलिया, साइनोसिस आदि। हृदयके रोगमें रक्तवाहिनीमें बाधा, तन्त्रिका-विद्युत्-संचारमें बाधा आदि हैं। हार्ट-अटैक आजके युगकी प्रमुख बीमारी है। रक्तचाप बढ़ना भी आजकी बीमारी है।

(१०) मूत्र-प्रणालीके रोग—पथरी, प्रॉस्टेटकी वृद्धि, मूत्रकृच्छ्र, गुर्देका अभाव।

(११) तन्त्रिका-रोग (नर्वस-सिस्टम)—छोटे-बड़े मस्तिष्क, सुषुम्णा (स्पाइनल कार्ड) और तन्त्रिकाओंके रोग आदि।

(१२) श्वास-प्रणालीके रोग—अनेक।

(१३) आन्त्र-प्रणालीके रोग—मुख, लारग्रन्थि, ग्रसनी, आमाशय, छोटी-बड़ी आँतके रोग। पित्त थैली—पथरी। आँतकी रक्त-प्रणाली और लसिका ग्रन्थिके रोग, जिनमें बवासीर (पाइल्स) रोग भी है।

(१४) अर्बुद—कैंसर, सार्कोमा आदि दुष्टवृद्धियाँ आजके प्रमुख रोग हैं। साधु वृद्धि या ट्यूमर भी होते हैं।

(१५) शरीर-रक्षा-प्रणाली (इम्यून सिस्टम)—आज जिस एड्स रोगकी अति चर्चा है, उसमें एड्सका विषाणु इसी प्रणालीको ठप कर देता है और रोगसे लड़नेकी शक्ति क्षीण या बंद हो जाती है।

(१६) अतिचेतना—एलर्जीकी भी आजके युगमें बहुत चर्चा है। कोई भी गन्ध, खाद्य, दृश्य, औषधि शरीरको नापसंद हो तो एलर्जी (जलपित्ती-जैसी) उभर आती है।

(१७) सूक्ष्म जीवाणुजन्य रोग—उपर्युक्त सभी कारणोंमें कोई भी 'जर्म' का कारण नहीं होता। संसारमें सूक्ष्म और सूक्ष्मतर जीव हैं, जिनमें अनेक हितकारी और कुछ रोगकारक हैं। क्रमसे देखें तो—

(१) एककोषीय जीव—(क) अमीबा—अमीबिक डिसेन्ट्री, सच पूछिये तो यह सबसे बड़ा रोग है, अत्यन्त व्यापक है। अच्छा तो होता है, पर दूषित जल और वातावरणसे पुन: हो जाता है। बड़ी आँतमें घर बनाकर बैठे अमीबापर औषधिका असर भी नहीं होता।

(ख) मलेरिया—इसके उपद्रवसे सभी परिचित हैं।

(ग) अन्य एक कोषीय जीव भी सताते हैं।

(२) फफूँदी—शरीरमें भी भुखड़ी लग सकती है। कण्ठ, कान तथा पैरमें इसका उपद्रव बहुत होता है, दाद-खाजसे कौन परिचित नहीं है?

(३) जीवाणु (बैक्टीरिया)—नाना प्रकारके सूक्ष्म जीवोंने मानव-जीवनमें बहुत उपद्रव किया है। इनके कारण महामारियाँ फैली हैं। प्लेग, हैजा, डिफ्थीरिया, मियादी बुखार, पेचिशसे तो सभी परिचित हैं। ये शरीरके जिस भी अङ्गपर आक्रमण करते हैं और शरीर लड़ नहीं पाता तो बीमार हो जाता है—मेनिनजाइटिस, आँख-आना, कानका बहना, टांसिल बढ़ना, कण्ठके रोग, फेफड़े, जो विशेष रूपसे क्षयरोग-ग्रस्त होते हैं, आँतकी सूजन, अपेंडिसाटिस, पेरिटोनायटिस, हिपेटाइटिस आदि, हड्डी-जोड़ भी इनसे आक्रान्त होते हैं और मांसपेशियाँ भी। त्वचा और तन्त्रिकाके रोग भी ये पैदा करते हैं। जहाँ भी इनका आक्रमण होगा वहाँ सूजन, लाली तथा दर्द होगा। फोड़े और फुंसीकी जड़में ये ही हैं। सिफलिस, गनोरियामी इन्हींकी देन है।

(४) रिकेट्सिया—यह तथा अन्य सूक्ष्म जीव—टाइफस-जैसे रोग पैदा करते हैं।

(५) विषाणु—पुराने जमानेमें चेचक, जलातंक, मम्स, कमल-जैसे रोग होते थे, पर कारण नहीं मिलता था; क्योंकि ये इतने छोटे जीव हैं कि अत्यन्त सूक्ष्म छन्ने भी इन्हें नहीं रोक पाते थे और माइक्रोस्कोपमें ये दीखते नहीं थे। अब इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप आया तो ये दृष्ट हो गये। पहले अज्ञात कारण, मौसमी ज्वर, बाल लकवा (पोलियो), मस्तिष्कार्ति, गैस्ट्रो, कँवल, जुकाम, नेत्र-रोग, वाइरल, निमोनिया-जैसे अनेक रोग, विस्फोटक रोग—चेचक, छोटी माता, दुलारी, एकलंगी माता, मम्स आदिके कारक यही हैं।

विषाणु रोगकी चिकित्सा अभी भी आसान नहीं है, पर जीवाणुजन्य रोगोंपर काफी सफलता प्राप्त की जा चुकी है। आधुनिक जीवावसादक और जीवाणुमारक औषधि तथा प्रतिबन्ध चिकित्साके बलपर महामारियाँ समाप्त की गयी हैं। मानवताके घोर शत्रु क्षय और कुष्ठसे भी अच्छी लड़ाई चल रही है।

(१८) गर्भावस्थाके रोग—गर्भमें स्थित भ्रूणको रोग हो सकते हैं। इन्हें कांजेनिटल रोग कहते हैं। मातासे शिशुको रोग लग सकते हैं। रक्तके वर्गमें अन्तर हो तो शिशुके प्राणोंपर आ बीतती है। बनावटमें गड़बड़ी हो सकती है—कटे-फटे होंठ, अङ्गविशेष न होना, बड़ा सिर, जुड़वाँ-जुड़े हुए, विरूप शिशु।

(१९) पैतृक रोग—पिता-माताके गुणाणुमें दोष हो तो बच्चेमें रोग हो सकता है—रंगान्धता, हीमोफीलिया ऐसे ही रोग हैं।

हमने यथाशक्ति रोगकारण गिनाये, अभी और भी बहुत-से कारण हैं। आज एक बड़ा कारण जो पूरे विज्ञानको बदनाम कर रहा है, वह है—

(२०) इयात्रोजेनिक रोग—यह औषधिजन्य रोग है। इसका कारण आदमी और उसका विज्ञान है।

(२१) रेडियेशन रोग—यह नया कारण हिरोशिमापर एटम बम फूटनेपर प्रसिद्ध हुआ। चेर्नोबिल दुर्घटनामें भी विकिरणसे लोग मर गये। यह आधुनिक विज्ञानप्रदत्त एक अभिशाप है।

अन्तिम कारण और रोग इस प्रकार हैं—

(२२) मानसिक रोग—यह भी निम्न अवस्थाओंमें मिलता है—

(क) साधारण—इसमें रोगी चिन्ताग्रस्त रहता है।

(ख) हिस्टिरिया—आतंक, तनावग्रस्त।

(ग) उन्माद—इसमें रोगी असाधारण आचरण करता है, लोग उसे 'पागल' कहते हैं। इसके अनेक प्रकार हैं और आज अनेक मानसिक रोग अच्छे किये जा रहे हैं।

अन्तिम है—

(२३) जीर्णता—वृद्धावस्थाके रोगोंकी अब अलग श्रेणी बन गयी है। वृद्धोंकी संख्या बढ़ी है, अतः समस्या विकट हुई है।

अब हम आधुनिक विज्ञानके निदान-उपचारकी बात अत्यन्त संक्षेपमें कहेंगे। रोग-निदानकी अनेक विधियाँ विकसित हो गयी हैं, जैसे—ई०सी०जी०, ई०ई०जी०, अल्ट्रा साउण्ड, स्कैन तथा पैथोलॉजी प्रयोगशालाओंमें सैकड़ों परीक्षण। जीवाणु और विषाणु पहिचाने ही नहीं

जाते, उनका संवर्धन करके उनपर किसी औषधिका क्या प्रभाव होगा, यह भी जाना जा सकता है। ऑपरेशनसे निकले तन्तुका परीक्षण रोगकी सही पहिचान कराता है।

इलाजकी दृष्टिसे विगत पचास वर्षोंमें अपार प्रगति हुई है। पहले डॉक्टर डिस्पेंसरीमें मिक्सचर, पाउडर, गोली बनाते थे, मरहम-पट्टी करते थे, अब डिस्पेंसरी बंद हो गयी है। बाजारमें सब दवाएँ उपलब्ध हैं। एक भ्रम कि डॉक्टर हर रोगमें इंजेक्शन लगाते हैं, यह भी गलत है और अकारण इंजेक्शन लगाना अपराध है। ऑपरेशन या शल्य-क्रिया अब बहुत आगे बढ़ गयी है, अब बिना चीरा लगाये भी ऑपरेशन हो सकता है।

बहुत-से रोगोंका इलाज खान-पान (जैसे अंकुरित चना, ताजे फल, हरी सब्जियाँ, चिकने मसालेदार भोजनपर रोक) विश्राम, व्यायाम (टहलना), विशेष व्यायाम जैसे ट्रैक्शन आदि, वायु-परिवर्तन आदिसे हो जाता है।

कहते हैं आधुनिक चिकित्सा महँगी है और उससे फायदा होता ही नहीं, नुकसान ही होता है। यह भी कि इससे रोग दब जाता है, जड़से आराम नहीं होता। शायद ये आरोप ठीक हों—डॉक्टर अपने शास्त्रज्ञानके अनुसार इलाज न करें, धन कमाने बैठें तो ऐसे आरोप लगेंगे ही। दवाओंके दाम तो व्यापारी वर्ग और सरकारके हाथ है। सन् बीस-तीसमें डॉक्टरकी फीस पाँच रुपये, सिविल सर्जनकी सोलह रुपये थी—आज जब रुपयेकी कीमत एक पैसा हो गयी है तो फीस पाँच सौ रुपये होनी चाहिये, जो नहीं है। सच तो यह है कि लूट मचानेवाला डॉक्टर भी आज मध्य-वर्गका सदस्य है, जबकि अतीतमें वह उच्च-वर्गमें था। फायदेकी बात तो अस्पतालों, दवाखानोंमें भीड़ देखें, क्यों वे सस्ती, कारगर चिकित्साके पास नहीं जाते?

आधुनिक चिकित्सा विश्वव्यापी है, विश्व स्वास्थ्य-संघद्वारा निर्देशित है। विज्ञानने आज अनेक रोगोंका समूल नाश—उन्मूलन कर दिया है*, लोगोंको दीर्घ जीवन दिया है। जहाँ स्वतन्त्रतासे पूर्व हजारों बच्चों (नवजात)-में तीन सौसे पाँच सौतक मर जाते थे, वह संख्या हमारे देशमें सौ-से कम हो गयी है, उन्नत देशोंमें तो यह आठ-दस मात्र है। प्रसवमें माताकी मृत्यु विज्ञान अपने लिये कलंक मानता है। रोग-उन्मूलन और सफल उपचारका दुष्परिणाम हुआ है—जनसंख्याकी वृद्धि। आज विज्ञान तुला बैठा है कि किसीको मरने नहीं देंगे—ठीक है, पर जीवनका मूल्य नहीं बढ़ पाया है, जीवन सुखी नहीं है, मन अशान्त है। यह भीड़ कैसे घटे? एक सुझाव यह है कि आधुनिक चिकित्सापर समग्र रोक लगा दी जाय। अन्य उपचार-विधियाँ सस्ती हैं, जड़से रोग दूर कर सकती हैं, उन्हें मौका दिया जाय। पाँच वर्ष बाद आधुनिक चिकित्सा चमत्कारी परिणाम देखकर स्वयं परिवर्तन कर लेगी।

आधुनिक विज्ञानकी चिकित्सा और प्राचीन आयुर्वेदकी एक बात नोट करने लायक है और वह यह कि चिकित्सा-शास्त्री कभी अपनेको सर्वज्ञ नहीं कहते थे। वे मानते थे कि अनेक रोगोंके कारण अज्ञात हैं, अनेक रोगोंका इलाज हमें ज्ञात नहीं है। आजका चिकित्सक जब कहता है कि 'आपके रोगका कारण मुझे ज्ञात नहीं', तब वह सच बोलता है, भले इसे उसका अज्ञान और उसके शास्त्रको निरर्थक कहा जाय।

अन्तमें एक ही बात कहनी है 'हिंदू-धर्म' एक सागर है, उसमें नास्तिकसे लेकर बहुदेव-पूजकतक सब समा जाते हैं और कोई मजहब इतने सम्प्रदाय स्वीकार नहीं करेगा। आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान भी ऐसा ही है, इसमें सब समा सकते हैं, किसीसे विरोध नहीं। आपकी औषधि या विधि यदि कारगर है तो स्वीकार्य है। क्यों कारगर है, इसकी बहस नहीं। यह काम शोधकर्ताओंका है। हमारा तो एक ही फर्ज है—रोगीको पीड़ासे मुक्ति मिले, रोग दूर हो और वह सार्थक, सफल तथा सुखी जीवन जी सके।

हमारी प्रार्थना है—

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।'



* चिकित्सा-शास्त्रका बड़ा अङ्ग है—'प्रिवेण्टिव मेडिसिन' और इसके अधिकारी 'हेल्थ अफसर' कहलाते हैं। ये व्यक्तिकी ही नहीं पूरे समाज, नगर, राष्ट्रके स्वास्थ्यकी चिन्ता करते हैं और विश्वको रोग-मुक्त करनेके उपाय ढूँढ़नेमें लगे हैं।

एलोपैथी चिकित्सासे लाभ तथा हानि

(श्रीमती उषाकिरणजी अग्रवाल)

एलोपैथी चिकित्सा इस समय सारे संसारमें तेजीसे फैल रही है। उसके अनुसंधान भी सभी क्षेत्रोंमें हो रहे हैं, परंतु जिन परिणामोंकी इस विज्ञानको आशा थी, वे नहीं मिल पा रहे हैं।

एलोपैथीसे लाभ—एलोपैथी चिकित्सासे कुछ लाभ होना निर्विवाद है, जैसे यह मनुष्यको तुरंत राहत दिला देती है। मनुष्य यह चाहता है कि मुझे कष्टोंसे शीघ्र-से-शीघ्र राहत मिल सके। एलोपैथी चिकित्सा उसमें सफल रही है। दूसरा निर्विवाद लाभ सफल शल्यचिकित्सा है। एलोपैथीने शल्यचिकित्सामें वास्तवमें आशातीत सफलता प्राप्त की है। पहले तो परम्परागत औजारोंद्वारा शल्यचिकित्सा की जाती थी, परंतु विज्ञानके बढ़ते चरणोंने इन औजारोंका स्थान विज्ञानकी नयी तकनीकोंको दे दिया है। इसमें लेज़रका प्रयोग उल्लेखनीय है। अणु तकनीकने भी इस चिकित्सा-पद्धतिमें बहुत सहायता की है। अब तो विज्ञान निरन्तर इस ओर प्रयत्नशील है कि जहाँतक हो, शल्यचिकित्सामें चीर-फाड़ कम-से-कम करना पड़े।

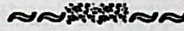
एलोपैथी चिकित्सा विज्ञानके स्थापित सिद्धान्तोंपर आधारित है। इसमें नित्य नया प्रयोग होता रहता है, जो इस चिकित्सा-पद्धतिको प्रगतिकी ओर ही ले जा रहा है, परंतु इन सबके होते हुए भी इसको अपेक्षित सफलता नहीं मिल पा रही है। इस पद्धतिमें 'इंजेक्शन' एक ऐसी ही प्रक्रिया है, जिसके परिणाम शीघ्र ही सामने आ जाते हैं और इसके द्वारा मनुष्यको तत्काल राहत मिलती है। इस प्रक्रियासे कई कठिन रोगोंपर अंकुश लगानेमें सहायता मिली है। वैज्ञानिक पद्धतिपर चलते हुए इस चिकित्सा-पद्धतिमें विभिन्न परीक्षणोंका विशेष महत्त्व है। यदि परीक्षणोंमें रोगके लक्षण नहीं आते तो डॉक्टर यह मानकर चलता है कि रोगीको कोई रोग नहीं है, परंतु वास्तविकता यह नहीं होती। परीक्षणोंमें कहीं-न-कहीं कुछ कमियाँ रह ही जाती हैं, जिनके लिये वे और परीक्षण करना चाहते हैं। नये-नये यन्त्र निकाले जा रहे हैं, नयी-नयी तकनीक विकसित की जा रही है, जिससे परीक्षण पूर्ण हो सके, परंतु यह कितना सफल हुआ है, यह तो भविष्य ही बता पायेगा।

एलोपैथीसे हानियाँ—एलोपैथीसे लाभ तो जो हैं, वे प्रत्यक्ष ही हैं, पर इस पद्धतिमें जो सबसे बड़ा दोष है, वह है दवाइयोंका प्रतिकूल प्रभाव (साइड इफ़ेक्ट)। एक तो दवाइयाँ रोगको दबा देती हैं, इससे रोग निर्मूल नहीं हो पाता, साथ ही वह किसी अन्य रोगको जन्म भी दे देता है। यह इस पैथीके मौलिक सिद्धान्तकी ही न्यूनता है। दूसरी बात है अधिकतर रोग डॉक्टरोंके अनुसार असाध्य भी हैं। जैसे हृदयरोग, कैंसर, एड्स, दमा, मधुमेह आदि। यहाँतक कि साधारणसे लगनेवाले रोग जुकामका भी एलोपैथीमें कोई उपचार नहीं। पेटसे सम्बन्धित जितने भी रोग हैं, वे तो अधिक डॉक्टरोंके समझमें कम ही आते हैं। उदररोगोंका परीक्षण भी कठिन होता है तथा उसके सकारात्मक परिणाम भी नहीं मिल पाते। उदररोगोंका जितना सटीक एवं सफल उपचार आयुर्वेदमें है, उतना और दूसरी चिकित्सा-पद्धतिमें देखनेमें नहीं आता। अधिकतर रोग उदरसे प्रारम्भ होते हैं, अतः यदि वहाँपर अंकुश लगाया जा सके तो कई रोगोंका निदान स्वतः हो सकता है। मनुष्य अधिकतर स्वस्थ और नीरोग रह सकता है। डॉक्टरोंके पास एक ही अस्त्र है कि वे 'एन्टीबाईटिक' दवाई देते हैं, जो लाभ कम और हानि अधिक करती है। इन दवाइयोंका उदरपर सीधा दुष्प्रभाव पड़ता है और व्यक्तिकी पाचनक्रिया उलट-पलट हो जाती है। यदि वह उस दवाईको शीघ्र ही बंद न कर दे तो दूसरी व्याधियाँ उग्र रूप ले लेती हैं। इस चिकित्सा-पद्धतिमें औषधिसे अधिक शल्यचिकित्सा सफल हो पायी है। यहाँतक कि जिन कई रोगोंका आयुर्वेद अथवा यूनानी या होम्योपैथिक चिकित्सामें औषधियोंसे उपचार हो जाता है, वहाँ भी एलोपैथी शल्यचिकित्साका सहारा लेती है। दूसरे शब्दोंमें यह पद्धति शल्यचिकित्सापर अधिक आधारित होती जा रही है। इससे यह चिकित्सा अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंसे महँगी भी होती

जा रही है और साधारण व्यक्तिकी पहुँचसे बाहर होती जा रही है। एलोपैथीमें यह भी देखनेमें आया है कि कई ऐसे रोग हैं, जिनका कोई कारण डॉक्टरोंकी समझमें नहीं आता। वे उसका नाम 'एलर्जी' दे देते हैं, इसका उनके पास कोई उपचार नहीं है। डॉक्टर लोग इस 'एलर्जी'के उपचारके विषयमें सतत प्रयत्नशील हैं, परंतु अभीतक उन्हें विशेष सफलता नहीं मिल पायी है। इस कथित रोगके विशेषज्ञ भी हो गये हैं, परंतु परिणाम कोई विशेष नहीं मिल पाया है।

यह कहा जा सकता है कि एलोपैथिक चिकित्सासे लाभ सीमित हैं, परंतु इससे हानियाँ अधिक हैं। इसलिये आज संसारके जिन देशोंमें केवल इसी चिकित्सा-पद्धतिका अनुसरण हो रहा है, वे भी दूसरी चिकित्सा-पद्धतियोंकी ओर आकर्षित हो रहे हैं। यूरोपके कुछ देश होम्योपैथिक अथवा प्राकृतिक चिकित्साकी ओर आकर्षित हो रहे हैं। जब कि अमरीकाके लोग अब आयुर्वेदकी ओर विशेष आकर्षित हो रहे हैं। वहाँ उस विषयमें अनुसंधान भी तेजीसे किये जा रहे हैं, इसके उदाहरण हैं कि कुछ आयुर्वेदिक औषधियाँ अमरीकासे भारत आ रही हैं और वे सफलतापूर्वक प्रयोगमें लायी जा रही हैं।

यह तथ्य तो सही है कि एलोपैथिक चिकित्सा वैज्ञानिक कसौटीपर खरी है। इसलिये इसका प्रचार-प्रसार भी अधिक हो सका, परंतु मेरे विचारसे यह चिकित्सा-पद्धति अपने-आपमें पूर्ण नहीं है। आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति अपने-आपमें पूर्ण है, परंतु इसका अधिक प्रचार नहीं हो पाया। इसमें हमारी मानसिकता—विदेशी पद्धति श्रेष्ठ है—भी एक मुख्य हेतु है। आयुर्वेदिक चिकित्सामें विश्वास बढ़ाना हम सबका कर्तव्य होना चाहिये; क्योंकि यह श्रेष्ठ, सफल एवं पूर्ण चिकित्सा-पद्धति है।



होमियोपैथी चिकित्सा-विज्ञान

(डॉ० श्रीशिवकुमारजी जोशी होमियोपैथ)

आज चिकित्सा-विज्ञानमें जैसे एलोपैथी, आयुर्वेद, यूनानी आदि चिकित्सा-पद्धतियाँ प्रचलित हैं, उसी प्रकार होमियोपैथी भी एक अद्भुत चिकित्सा-प्रणालीके रूपमें प्रचलित है। होमियोपैथीकी दवा साबूदाने-जैसी मीठी-मीठी गोलियोंके नामसे जानी जाती है।

होमियोपैथीके प्रणेता डॉ० हैनीमैन (१७५५-१८४३ ई०) थे, जो जर्मनीके निवासी थे। डॉ० हैनीमैन ऐलोपैथीमें एम्०डी० उपाधिप्राप्त चिकित्सक थे। उन्होंने दस वर्षोंतक एलोपैथीकी चिकित्साके दौरान यह अनुभव किया कि इस पद्धतिमें रोगको तेज दवाओंसे दबा दिया जाता है, जो आगे चलकर घातक दुष्परिणामोंके रूपमें उभरता ही रहता है। एक बीमारी हटती है तो दूसरी उठ खड़ी होती है, फिर तीसरी और अन्तमें ऐसी जटिल बीमारी हो जाती है कि वह असाध्य रोगकी श्रेणीमें आ जाती है। इन घटनाओंसे डॉ० हैनीमैनके अन्तर्मनमें नफ़रत पैदा होते ही उन्होंने ऐलोपैथीकी चिकित्साको हमेशाके लिये छोड़ दिया और सन् १७९० ई० से दिन-रात एक करके एक निर्दोष एवं सार्थक चिकित्सा-प्रणालीकी खोजमें अपना पूरा जीवन खपा दिया, अन्तमें इन महापुरुष डॉ० हैनीमैनने पीडित मानवताकी सेवाके लिये होमियोपैथी चिकित्सा-विज्ञान-जैसी संजीवनी विद्या खोज ही निकाली।

होमियोपैथी चिकित्सा-प्रणालीके मुख्य सिद्धान्त

(१) मानवका जो स्थूल शरीर हमें दीखता है, वह अति सूक्ष्म तत्त्वोंसे बना है। रोगका प्रारम्भ स्थूल शरीरमें नहीं होता, पहले रोग सूक्ष्म शरीरमें आता है। यदि सूक्ष्म शरीर (जीवनी शक्ति—वाइटल फोर्स) स्वस्थ है, सबल है, रेजिस्टेन्स पावर (रोगप्रतिरोधक शक्ति) मजबूत है तो रोगका आक्रमण सूक्ष्म शरीरपर नहीं हो सकता और स्थूल शरीर स्वस्थ बना रहता है। किंतु यदि हमारी जीवनी शक्ति (सूक्ष्म शरीर—आन्तरिक शक्ति) अस्वस्थ है, निर्बल है तो रोग पहले भीतरी शक्तिपर आक्रमण कर उसे और निर्बल कर देता है, फिर स्थूल शरीरपर विभिन्न अङ्गोंमें रोगोंके लक्षण प्रकट होने लगते हैं। जैसे—सिर-दर्द, पेट-दर्द, सर्दी-जुकाम, खाँसी, कै-दस्त, बुखार इत्यादि।

यदि उपचारसे इस सूक्ष्म शरीर (जीवनी शक्ति)-को

रोगमुक्त कर लिया जाता है तो स्थूल शरीर अपने-आप रोगमुक्त हो जाता है।

होमियोपैथीकी शक्तीकृत दवा सूक्ष्म रूपमें ही होती है। अतः सूक्ष्म तत्त्वपर सूक्ष्म तत्त्वका ही स्थायी प्रभाव पड़ता है और रोगी रोगमुक्त हो जाता है।

(२) स्वस्थ शरीरमें जो औषधि रोगके जिन लक्षणोंको उत्पन्न करती है, यदि रोगीमें वैसे ही लक्षण पाये जाते हैं तो वही औषधि होमियोपैथीके शक्तीकृत रूपमें (सूक्ष्म रूपमें) उन लक्षणोंको ठीक कर देगी, बीमारीका नाम चाहे कुछ भी क्यों न हो। इस सिद्धान्तको एक उदाहरणद्वारा नीचे स्पष्ट किया जा रहा है—

जैसे स्वस्थ शरीरमें संखिया (आर्सेनिक) बेचैनी पैदा करता है, शरीरमें जलन उत्पन्न करता है, बार-बार प्यास लगती है, इस तरहके अनेक लक्षण पैदा करता है। होमियोपैथीके सिद्धान्तके अनुरूप यदि वैसे ही लक्षण किसी रोगीमें पाये जाते हैं तो इन लक्षणोंको होमियोपैथीकी आर्सेनिक नामक शक्तीकृत दवा दूर कर देगी। उपर्युक्त लक्षण चाहे हैजेमें हों, सर्दी-जुकाम-बुखारमें हों, पेटके अल्सरमें हों, सिरदर्दमें हों या कैंसरमें हों। बीमारीके नामसे कोई मतलब नहीं—बीमारीका नाम चाहे जो हो—रोगीके ये लक्षण आर्सेनिक नामकी होमियोपैथीकी दवासे ठीक हो जायँगे और रोगी रोगमुक्त होगा।

(३) होमियोपैथीमें रोगका नहीं, रोगीका इलाज होता है। रोगीके लक्षणोंको प्रधानता दी जाती है, बीमारीके नामको नहीं।

(४) होमियोपैथीके उपचारका आधार खासतौरसे पुराने-जीर्ण (क्रानिक) तथा असाध्य कहे जानेवाले रोगोंके लिये रोगीकी केस हिस्ट्री लेते समय उनके लक्षणोंकी प्राथमिकताका क्रम इस प्रकार रहता है—

(अ) मानसिक लक्षण।

(ब) सर्वाङ्गीण लक्षण यानी व्यापक लक्षण, जो पूरे शरीरकी पीडाका बोध कराता हो।

(स) अङ्ग-विशेषके लक्षण।

(द) कोई असाधारण या विलक्षण लक्षण।

(इ) रोगीकी प्रकृति।

नये रोगियोंमें अथवा अबोध बच्चों तथा आकस्मिक असामान्य स्थितिमें मौजूदा रोगीकी स्थिति एवं मौसमके अनुरूप रोगीको तात्कालिक लाभ देने-हेतु सामयिक चिकित्सा-व्यवस्था की जाती है, ताकि रोगीको शीघ्र लाभ हो सके।

होमियोपैथिक दवाका शक्तीकरण (Potentialisation)—सभी पैथियोंमें औषधियाँ मूलतः सब वही होती हैं, भेद केवल इनके निर्माण एवं प्रयोगमें होता है।

होमियोपैथिक दवा बनानेकी विधि बड़ी ही विचित्र है। इस विधिमें औषधिके स्थूल रूपको इतने सूक्ष्मतम रूपमें परिवर्तित कर दिया जाता है कि दवाकी तीसरी शक्तीकृत दवामें दवाका स्थूल अंश तो क्या, दवाके सूक्ष्म अंशका भी पता नहीं चलता।

होमियोपैथीकी किसी भी शक्तीकृत दवामें ६ शक्तिके बाद दवाके अणु-परमाणु भी नहीं देखे जा सकते, दवाकी आन्तरिक अदृश्य शक्ति जाग्रत् हो जाती है और इस तरह दवाकी आन्तरिक जीवनी शक्ति रोगीको ठीक करती है।

होमियोपैथीकी शक्तीकृत दवा ६ शक्तिके बाद ३०, २००, १०००, १०,०००, ५०,००० तथा १ लाख पावर (पोटेन्सी)-वाली होती है। इन उच्चतर शक्तीकृत दवाओंमें दवाका नामोनिशान ही नहीं रहता, जबकि ये सूक्ष्मतम अदृश्य शक्तिरूपा होमियोपैथिक दवाइयाँ पुराने, जटिल तथा असाध्य कहे जानेवाले रोगोंको जड़मूलसे स्थायी रूपसे नष्ट कर देनेका सामर्थ्य रखती हैं तथा उस रोगजन्य अन्तरङ्गको Regenerate करनेकी क्षमता भी रखती हैं।

होमियोपैथिक दवाओंका परीक्षण (Proving of Drugs)—कौन-सी औषधि स्वस्थ व्यक्तिमें क्या लक्षण पैदा करती है, डॉ० हैनीमैनने ही इसका आविष्कार किया।

होमियोपैथीकी अधिकांश दवाका डॉ० हैनीमैनने स्वयं तथा अपने कई स्वस्थ सहयोगियोंपर परीक्षण किया—उनमें जो-जो शारीरिक तथा मानसिक लक्षण उत्पन्न हुए, उनका सम्पूर्ण रेकार्ड किया गया। इस प्रकार परीक्षित होमियोपैथिक शक्तीकृत दवाओंका जो सजीव चित्रण संकलित किया गया, उस ग्रन्थका नाम **होमियोपैथिक मैटेरिया-मेडिका** रखा गया। चूँकि होमियोपैथिक दवाओंके परीक्षणका आधार स्वस्थ मानव-शरीर रहा है। अतः

जबतक मानव पृथ्वीपर है, होमियोपैथीकी वे ही दवाइयाँ सदियोंतक चलती रहेंगी।

ऐलोपैथी दवा बार-बार इसलिये नयी-नयी बदलती रहती है कि उसके परीक्षणका आधार चूहे, बंदर, गिनीपीग-जैसे जानवर तथा रोगी होते हैं।

होमियोपैथी दवाके चयनका सिद्धान्त—सिद्धान्तरूपसे होमियोपैथका काम ऐसी औषधिका निर्वाचन करना है, जिसके लक्षण हूबहू रोगीके लक्षणोंसे मिलते हों। जब रोगीके लक्षणों और औषधिके लक्षणोंमें अधिक-से-अधिक साम्यता, समानता, एकरूपता पायी जाती है तो वही औषधि रोगको दूर करेगी।

औषधि और रोगीका वैयक्तिकीकरण (Individualisation) करना होमियोपैथीका सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्तके आधारपर होमियोपैथ रोगीद्वारा बताये गये सम्पूर्ण लक्षणोंको ध्यानमें रखकर ही उपयुक्त औषधि एवं दवाकी पोटेन्सी (पावर)-का चयन करता है। यह चयन-प्रक्रिया होमियोपैथके अध्ययन और अनुभवपर आधारित रहती है।

होमियोपैथी चिकित्सा-प्रणालीके बारेमें कुछ व्यावहारिक जानकारी

(१) होमियोपैथिक दवाकी कोई एक्सपायरी डेट नहीं होती है। (यदि दवाको धूप, धूल, धुँआ, तेज गन्ध तथा केमिकल्ससे बचाकर रखा जाय तो यह दवा कई वर्षोंतक चलती रहेगी।)

(२) इस दवाके कोई साइड इफ़ेक्ट (दुष्प्रभाव) नहीं होते हैं।

(३) इस दवामें कोई विशेष परहेज नहीं होता है। केवल तेज गन्धवाली वस्तुओंसे परहेज करना है।

(४) दवाको हाथ नहीं लगाना चाहिये, शीशीके ढक्कनसे या सफेद कागजके टुकड़ेपर लेकर सीधे मुँहमें डालकर चूस लेना चाहिये। साधारणतः बड़ोंको चार गोली तथा बच्चोंको २ गोली।

(५) दवा लेनेके १५-२० मिनिट पहले तथा दवा लेनेके १५-२० मिनिट बादतक मुँहमें कुछ भी नहीं डालना चाहिये। भोजनमें ३०-३० मिनिटका पहले और बादमें समयका ध्यान रखना है।

(६) चाय-काफी-तंबाकू-पान-प्याज-लहसुन—इनपर कोई बंदिश नहीं है, परंतु ध्यान रखें दवा लेनेके आधा घंटा पहले तथा दवा लेनेके आधा घंटा बादतक इनका उपयोग नहीं करें, अन्यथा तेज गन्ध दवाके पावरको कम कर सकती है।

(७) किसी भी कारणसे आवश्यकता पड़नेपर यदि कोई अन्य पद्धतिकी दवाका प्रयोग करना पड़े तो उस समयतकके लिये होमियोपैथिक दवा बंद कर देनी चाहिये। उसके बाद दूसरे दिनसे पुनः यथावत् चालू कर सकते हैं।

(८) होमियोपैथी चिकित्सा-प्रणालीमें रोगीके लक्षणोंके आधारपर ही उपचार किया जाता है। लक्षणोंद्वारा ही अङ्ग-विशेषके रोगग्रस्त होनेकी जानकारी हो जाती है। इसी कारण साधारणतः अकारण रोगीकी भारी-भरकम खर्चीली जाँचें नहीं करायी जाती हैं।

होमियोपैथिक चिकित्सा-पद्धति सरल है, सस्ती है और पुराने रोगोंमें स्थायी लाभ देनेका सामर्थ्य रखती है।

(९) होमियोपैथी चिकित्साके बारेमें आवश्यक जानकारीके अभावमें कुछ लोगोंमें भ्रम, भ्रान्तियाँ तथा गलत धारणाएँ फैली हुई हैं, जिसकी वजहसे वे होमियोपैथी चिकित्सा करानेमें हिचकिचाते हैं, उनके द्वारा अक्सर ऐसा कहा जाता है कि—

(अ) होमियोपैथी दवा देरसे असर करती है।

(ब) होमियोपैथीमें पहले रोगको बढ़ाया जाता है।

(स) होमियोपैथिक दवासे तात्कालिक लाभ नहीं होता है तथा दवा काफी लंबे समयतक लेनी पड़ती है।

(द) होमियोपैथी दवा समयपर बार-बार दिनमें कई बार लेनी पड़ती है।

(इ) कुछ लोगोंका यह भी मानना है कि इतने बड़े शरीरमें ४-५ साबूदाने-जैसी गोली क्या असर करेगी?

ऐसी कई भ्रान्तियों एवं गलत धारणाओंके कारण होमियोपैथीकी सही जानकारीके अभावमें रोगी तात्कालिक एवं क्षणिक लाभके लिये इधर-उधर भटकनेके उपरान्त अन्तमें स्थायी लाभके लिये होमियोपैथी चिकित्साके लिये आते हैं और जब वे इस संजीवनी चिकित्सा-विद्यासे लाभान्वित होते हैं तो फिर इसे छोड़कर दूसरी चिकित्सा-पद्धति नहीं अपनाते।

होमियोपैथी चिकित्सा-पद्धति और असाध्य रोग

(डॉ० श्रीसोमनाथजी मुखर्जी एम० बी० एच० एस०, एम० बी० एच० सी०)

चिकित्सा एक साधना है, सेवा-भावसे चिकित्सा करनेपर पूर्णरूपसे सफलता मिलती है। प्रत्येक चिकित्सा-पद्धतियोंका अपना अलग-अलग महत्त्व है। कुछ रोग जैसे डिप्थीरिया, टिटनेस, एड्स तथा कुष्ठरोगके लिये ऐलोपैथीको उत्कृष्ट समझा जाता है। वातरोग, पक्षाघात आदिमें आयुर्वेदका महत्त्व है। इसी प्रकार जटिल एवं पुराने रोगोंमें होमियोपैथी चिकित्सा-पद्धतिका महत्त्व ज्यादा लाभकारी सिद्ध हुआ है। सभी पैथियोंमें रोगीके प्रति सहानुभूति नितान्त आवश्यक है।

स्वामी विवेकानन्दजीने कहा था कि जीवको शिव समझकर चिकित्सा करना ही जीवका वास्तविक धर्म है।

होमियोपैथी चिकित्सा-पद्धतिकी विशेषतापर मैं एक-दो उदाहरण आपके समक्ष रखना चाहता हूँ। होमियोपैथिक औषधिके चयनमें रोगीके शारीरिक एवं मानसिक लक्षणोंपर विचार किया जाता है, इसमें पुराने इतिहासका विशेष प्रयोजन होता है, यथा—

(१) अड़सठ वर्षके एक रोगीको पूरी तरहसे स्वर-भङ्ग हो गया था। जसलोक अस्पताल (मुम्बई)-ने टंग-पैरालाइज्ड कहकर वापस भेज दिया था, उस रोगीके पुराने इतिहाससे पता चला कि उक्त रोगीको चार वर्षकी उम्रमें चेचक निकली थी जो कि उस समय उसके शरीरमें पूर्ण-रूपसे विकसित नहीं हुई थी, आज उसीके फलस्वरूप ऐसी स्थिति आयी है। होमियोपैथिक औषधि केवल दो खुराक देनेसे कुछ दिनों पश्चात् स्वर-भङ्ग ठीक हो गया और पुराना स्वर वापस आ गया।

(२) एक रोगीको अकेलेपनमें गश (मूर्च्छा) आती थी, उसका इलाज भेल्लौरसे करानेपर भी सफलता न मिलनेपर रोगीको होमियोपैथिक इलाजके लिये सलाह दी गयी। पुराने इतिहाससे पता चला कि उसका पालन-पोषण बड़े परिवारमें—शोरगुलमें हुआ था, परंतु विवाहके उपरान्त उसे अकेलेपनमें रहना पड़ा; क्योंकि उसका पति अपने कार्यपर चला जाता था। उसीके परिणामस्वरूप उसके मनमें भयसे यह रोग उत्पन्न हो गया और वह बेहोशीमें परिवर्तित हो गया। इसमें होमियोपैथिक इलाजसे ही सफलता प्राप्त हुई।

(३) एक चौदह सालकी लड़कीको जुविनाइल डाइबिटिज था, काफी चिकित्सा करानेके पश्चात् वे लोग होमियोपैथीकी शरणमें आये। रोगीके इतिहाससे ज्ञात हुआ कि जब वह माँके गर्भमें थी, तब उसकी माँका मानसिक संतुलन खराब था। फलस्वरूप पैदा होते ही बच्चीमें इस रोगकी उत्पत्ति हुई, अतः इसी आधारपर इस रोगकी चिकित्सा करनेपर रोग समाप्त हो गया।

अतः होमियोपैथिक भाइयोंसे हमारा निवेदन है कि प्रत्येक मरीजका पूर्वका इतिहास लेकर ही उसकी चिकित्सा करें, तभी रोगोंमें पूर्णरूपसे सफलता मिलेगी।



होमियोपैथिक चिकित्सा-पद्धतिद्वारा शारीरिक एवं मानसिक व्याधियोंका निवारण

(डॉ० श्रीरफीक अहमद एम्०ए०, पी-एच्०डी०(होमियोपैथ))

मानव एक प्राणी होनेके कारण व्याधियोंसे ग्रस्त होता रहा है। यह रुग्णता मुख्यतः दो प्रकारकी है—शारीरिक एवं मानसिक। इसके उपचार-हेतु वह आदिकालसे ही सतत प्रयत्नशील रहा है और उसका प्रयत्न निरन्तर विकासोन्मुख रहा है। यदि आज उन चिकित्सा-प्रयासोंकी ओर दृष्टिपात करें तो मुख्यतः एलोपैथिक चिकित्सा अग्रगण्य है। समस्त विश्वके राष्ट्रोंमें इसका वर्चस्व व्याप्त है। आयुर्वेदिक, यूनानी तथा होमियोपैथिक चिकित्सा-पद्धति गौण है। आयुर्वेदिक चिकित्साका श्रीगणेश, अनुसंधान एवं विकास भारतभूमिपर हुआ है, जिसमें ऋषियों-योगियोंकी अहम् भूमिका रही है। इसका भूतपूर्व इतिहास अत्यन्त गौरवमय एवं वैभवशाली रहा है। धन्वन्तरि तथा चरक-जैसे महा मनीषियोंने इसे

पुष्पित एवं पल्लवित किया है। यह पद्धति आज भी जीवित है। यूनानी अर्थात् तिबिया प्रणालियोंका प्रादुर्भाव यूनानसे हुआ है। इसलामी शासनमें लुकमान-जैसे हकीमोंने इसे पराकाष्ठापर पहुँचाया। होमियोपैथिक चिकित्सा जर्मनके एक ख्यातिप्राप्त एलोपैथिक चिकित्सक सेम्युअल हैनीमैनद्वारा आविष्कृत होनेके कारण इसका नाम होमियोपैथिक पड़ा है। यद्यपि इसका इतिहास पुराना नहीं है, फिर भी यह लोकप्रियताकी ओर अग्रसर है। इसका मुख्य सिद्धान्त स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर है। किसी ओषधिके सेवनसे जो लक्षण प्रकट हो यदि वही लक्षण किसी रोगीमें दिखायी पड़े तो उसी ओषधिका सूक्ष्मांश देनेसे लाभ प्राप्त किया जा सकता है। जिस प्रकार क्विनाइयनके सेवनसे कम्प-ज्वर पैदा होता है, तो यदि किसीको कम्प-ज्वर अर्थात् मलेरियाके लक्षण दिखायी पड़ें तो उसीका सूक्ष्मांश अर्थात् चायना-शक्तीकृत ओषधि उसे रोगमुक्त करनेमें सक्षम है। यहाँ यह प्रासंगिक होगा कि कुछ अन्य आधुनिक पद्धतियोंपर भी दृष्टिपात कर लिया जाय। जैसे चीनद्वारा प्रतिपादित एक्यूपंक्चर-पद्धति। जिसमें रोग-विशेषको निर्धारित चिह्नोंद्वारा चिह्नाङ्कित करके उसमें अतिरिक्त ऊर्जाद्वारा स्नायुमण्डलको गति प्रदान करते हुए रोगोंके निवारणकी व्यवस्था है। चुम्बक-चिकित्साके माध्यमसे भी उसमें ऋण तथा धन चुम्बकीय क्षेत्रोंको स्पर्श कराते हुए दर्दोंके निवारण तथा पक्षाघात एवं स्नायु-दौर्बल्यमें इसका प्रयोग किया जाता है। मेज्मेरिज्म अर्थात् प्रयोगकर्ताद्वारा अपनी मानसिक शक्तियोंको केन्द्रित करके भुक्तभोगीपर डालकर कुछ मनोरोग—जैसे अनिद्रा, चिन्ता, भय, शोक तथा आत्महीनतामें इस पद्धतिका प्रयोग किया जाने लगा है। इसके अतिरिक्त बिना किसी ओषधिके प्राकृतिक चिकित्साका भी कुछ व्याधियोंमें प्रयोग किया जा रहा है, जिसमें प्रकृतिके महाभूत, जैसे—जल, अग्नि, मिट्टी तथा वायुद्वारा इसकी चिकित्सा की जाती है, जो जनसाधारणके लिये दुस्तर तथा कठिन तो अवश्य है, परंतु पथ्य, परहेजद्वारा सहज प्राकृत जीवन व्यतीतकर गम्भीर रोगोंसे मुक्ति पायी जा सकती है। रोग-निवारणमें गोमूत्र एवं स्वमूत्र-प्रयोगद्वारा भी सहायता प्राप्त होती है।

इन सभी चिकित्सा-प्रणालियोंमें होमियोपैथी सहज-सुलभ, प्राकृत तथा सस्ती एवं दीर्घ लाभके लिये अपनी आभा विश्वमें विकीर्ण कर रही है। इस विज्ञानके आधारपर हमारे शरीरमें रोग होनेके कारण तीन महाविष हैं। जिस प्रकार आयुर्वेदमें कफ-पित्त और वायु है, उसी प्रकार होमियोपैथीमें सोरा, सिफलिश और सायकोसिस है। नब्बे प्रतिशत रोगोंका मूल शरीरमें 'सोरा' दोषका आविर्भाव है। इसने मानवजातिका सबसे बड़ा अहित किया है। इसी दोषकी सक्रियताके कारण शरीरमें मानसिक चञ्चलता, कामुकता, एक्जिमा, खाज, खुजली, सोरायसिस, कुष्ठ, चर्मरोग तथा उदर एवं स्नायुरोग पैदा हो जाते हैं। सायकोसिस विषके सक्रिय होनेके कारण शरीरमें अतिरिक्त वृद्धि जैसे रसौली, मस्से, गाँठ, गुठलियाँ, कैंसर तथा अस्थिवृद्धि आदि हो जाती हैं और सिफलिश विषके कारण उपदंश, यौन-रोग, एड्स, जनेन्द्रिय-सम्बन्धी रोग होते हैं। श्लैष्मिक झिल्ली, आन्त्रव्रण (अल्सर) आदि इसीके अन्तर्गत हैं। सोरादोषको निष्क्रिय करनेके लिये सल्फर तथा सिफलिशके लिये मर्कसाल और सायकोसिसके लिये थूजाका विधान है। ये तीनों मुख्य औषधियाँ इस त्रिविषके लिये मोटेरूपमें गिनायी जा सकती हैं। इसके पश्चात् रोगीके स्थूल, तथा दुर्बल जीवनी-शक्तिका परीक्षण किया जाता है। उसकी मानसिक स्थितिको व्यापकरूपसे ध्यानमें रखा जाता है। उसकी इच्छाओं, अनिच्छाओं तथा रोगकी समय-विशेषमें ह्रास एवं वृद्धि, रोगग्रस्त अङ्गके लक्षण, शीतल तथा गर्मका भी वर्गीकरण करनेमें ध्यान देना आवश्यक है। साथ-साथ रोगीके भूतपूर्व रोगोंका इतिहास, वंश-परम्परासे चली आयी व्याधियाँ जैसे दमा, कैंसर आदि-आदि तथा जलवायु, मौसमविशेष और वेश आदिको भी निरखा-परखा जाना आवश्यक होता है।

रोग-विशेषमें मुख्यरूपसे प्रयुक्त होनेवाली कुछ ओषधियोंकी एक संक्षिप्त सारणी यहाँ दी जा रही है—

एकोनाइट—रोगके आरम्भमें सभी रोगोंकी उग्रता, तीव्र ज्वर, हृदयरोग, ज्वर, घबड़ाहट, बेचैनी आदिकी प्रारम्भ-अवस्थामें सेवनीय है।

आस एल्बम—इसको संखिया-विषसे शक्तीकृत करके ३ लक्षणोंपर मुख्यतासे प्रयोग किया जाता है। यह दवा

पसीना, घबड़ाहट, बेचैनी, प्यास-जैसे रोगोंकी पुरानी अवस्थामें प्रयुक्त की जाती है। दमा, श्वास, कास, पुराने चर्मरोग आदिमें सेवनीय है।

एंटिमटार्ट—यह मुख्यतः बच्चोंकी दवा है। सर्दी, खाँसी, निमोनिया, छातीमें बलगमकी गड़गड़ाहट आदि इसके मुख्य लक्षण हैं।

एसिड फॉस—यह धातुरोग तथा मानसिक दुर्बलताकी प्रमुख ओषधि है।

एल्युमिना—यह वृद्धोंके कब्जमें विशेष उपयोगी है।

एनाकार्डियम—यह स्मृतिहीनता तथा मानसिक भ्रम आदिमें उपयोगी है।

बेलाडोना—यह मुख्यतः बच्चोंकी ओषधि है। चेहरेका लाल हो जाना, काल्पनिक मूर्ति देखना तथा चौंकना आदि भाव दीखनेपर उपयोगी है।

ब्रायोनिया—यह ज्वर तथा वातकी मुख्य ओषधि है।

कल्कैरिया कार्ब—यह बच्चोंकी ओषधि है। मोटे, थुलथुले, पसीनेदार, मिट्टी तथा खड़िया खानेवाले बच्चों तथा पित्त पथरी, वृक्क पथरीमें—जिसमें दर्दके समय पसीना हो, तो यह उसके लिये एक महान् उपकारी ओषधि है।

कास्टिकम—दाहिनी ओर पक्षाघातमें इस दवाकी उच्च शक्तिसे निश्चित लाभ होता है तथा गलनलीके रोग जैसे स्वरभंग, लकवा आदिमें इसका विधान है।

कैन्थरिस—जलनके साथ मूत्रमें बूँद-बूँद आनेमें यह निश्चित लाभकारी है।

कार्बोवेज—यह दिमागी अवस्था और उदर-रोगमें वायुसे पेट फूलनेमें लाभकर है।

चेली डोनियम—यह दाहिने स्कन्धास्थिमें दर्द होनेमें और यकृत् तथा कब्जमें उपयोगी है।

सीना—यह कृमि-रोगकी महोषधि है।

क्युप्रममेट—यह मानसिक मृगी—जिसमें ऐंठन होकर मुट्ठी हो जाय तथा चेहरा नीला हो जाय—की अचूक ओषधि है।

ग्रैफाइटिस—यह मोटी, गोरी, थुलथुली महिलाओंमें क़ब्ज़ तथा मासिक धर्मकी गड़बड़ीमें लाभकारी है।

हीपर सल्फर—यह एक कीटाणुनाशक ओषधि है। जिस व्रणमें गाढ़ा मवाद आता हो, उसे सुखानेके लिये यह अति उत्तम है।

हायोसियामस—यह पागलपन दूर करनेकी अचूक दवा है, इसका लक्षण वीभत्स प्रदर्शन करना होता है।

इग्नेशिया—यह मानसिक रोगोंमें, हिस्टीरिया आदिमें—जिसके मूलमें हर्ष, शोक, चिन्ता तथा प्रेमसे निराशाका इतिहास हो, उसमें उपयोगी है।

इपीकाकुआना—यह मिचली तथा वमन-रोगमें प्रथम सेवनीय है।

कालीफास—यह मानसिक दुर्बलता एवं स्नायु-दौर्बल्यमें—विचूर्ण ६ एक्स, १२ एक्स, ३० एक्स आदि—लाभकारी है।

लैकेसिस—यह सर्वविषकी ओषधि है, जो शरीरके वामभागके पक्षाघात, गाँठ, रसौली तथा कांबमल-जैसे कुसाध्य रोगमें रामबाण है।

लाइकोपोडियम—इसका प्रयोग विशेष रूपसे दुबले-पतले, यकृत्-रोगी, मूत्रावरोध, नपुंसकता, निचले उदरके दाहिनी ओरमें फूलने आदिमें किया जाता है।

मर्कसाल—यह पारद-निर्मित है। पेचिशी आँव, मुँह आना, तथा चर्मरोगमें इसका सफलतापूर्वक व्यवहार किया जाता है।

नक्सवोमिका—यह होमियोपैथी-विज्ञानकी मुख्य ओषधि है। आधुनिक जगत्‌की व्यस्त बाधाओंकी यह एक आदर्श ओषधि है। उदररोग, मानसिक भ्रान्ति, क्रोध, क़ब्ज़ आदिमें यह एक मान्यताप्राप्त ओषधि है।

नैट्रमसल्फ—यह दमाके रोगी बच्चोंकी महत्त्वपूर्ण औषधि है।

पल्सेटिला—यदि नक्स पुरुषोंकी ओषधि है तो पल्सका स्त्री-जगत्‌में आदरणीय स्थान है। रोनेवाली महिलाओंके लिये तथा मानसिक रोगग्रस्त, मासिक दोषयुक्त तथा गैस, तेजाब आदिमें इसके उपकारको भुलाया नहीं जा सकता।

रसटॉक्स—भीगकर तथा ठंडसे बढ़नेवाले चर्मरोग और वातके लिये यह उपयोगी है।

सल्फर—यह सोरानाशक है तथा चर्मरोगोंको बाह्य पटलपर लानेमें अव्यर्थ भूमिका निभाती है।

ट्युबरकुलीनम—इसके उच्च शक्तिका प्रयोग क्षयरोगों तथा इसके विषको दूर करनेके लिये किया जाता है।

जिंक्ममेट—यह स्नायु टॉनिक पैरोंके हिलने, कम्पन तथा दुर्बलता आदिमें उपकारी है।

यद्यपि यह विज्ञान विशाल एवं विस्तृत है, फिर भी जनसाधारणके लाभके लिये होमियोपैथिक पद्धतिद्वारा स्वास्थ्यलाभका संक्षिप्तमें विवरण प्रस्तुत किया गया है। सत्परामर्श करके इनसे लाभ उठाना चाहिये।



बायोकैमिक चिकित्सा-प्रणाली

(डॉ० श्रीविष्णुप्रकाशजी शर्मा)

डॉ० सेम्युअल हैनीमैनद्वारा होम्योपैथीके सिद्धान्तकी प्रतिष्ठाके बाद चिकित्साक्षेत्रमें सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान जर्मन विद्वान् डॉ० डब्ल्यू० एच० शुस्लरका रहा, जिन्होंने सन् १८७३ ई० में जैव रसायनप्रणाली (बायोकैमिक चिकित्सा-प्रणाली)-का प्रतिपादन किया। रोगियोंकी जाँचके बाद डॉ० शुस्लरने पाया कि शारीरिक संरचनामें बारह अकार्बनिक टिस्यू लवण महत्त्वपूर्ण हैं और शरीर-निर्माणके भौतिक आधार हैं। जब जीवित कोषोंमें इन लवणोंके कणोंकी गतिविधियोंमें कोई अन्तर आता है और इनका संतुलन बिगड़ जाता है तब रोग पैदा होता है। आवश्यक लवणकी कमीको औषधि-रूपमें देनेसे रोग दूर किया जा सकता है। सामान्यरूपसे यही बायोकैमिक चिकित्सा है।

बायोकैमिक औषधियाँ होम्योपैथिक औषधियाँ ही हैं, जो डॉ० शुस्लरके जैव रसायनसिद्धान्तसे पहले भी प्रयोग होती थीं, तथापि जैव रसायन-चिकित्सा होम्योपैथिक चिकित्सासे भिन्न है। होम्योपैथीका तत्त्व है काँटेसे काँटा निकालना अर्थात् जो दवा स्वस्थ आदमीमें अधिक मात्रामें देनेपर बुरे लक्षण उत्पन्न करती है, वही दवा कम मात्रामें देनेपर वैसे ही बुरे लक्षणवाले रोगोंको दूर करती है। जब कि जैव रसायन-चिकित्सामें जिन लवणोंकी कमीसे रोग उत्पन्न हुआ है, उन्हें देनेसे रोग अच्छा हो जाता है। होम्योपैथीमें बहुत दवाएँ प्रयोग की जाती हैं, जब कि जैव रसायनमें मात्र बारह। होम्योपैथीमें विभिन्न लक्षणोंके लिये एक दवा चुनना कठिन तथा अनिश्चित है, पर बायोकैमिकमें दवा चुनना आसान और सुनिश्चित है। ये बारह लवण निम्न हैं—

१. कैलकेरिया क्लोरिका, २. कैलकेरिया फास्फोरिका, ३. कैलकेरिया सल्फूरिका, ४. फैरम फास्फोरिकम्, ५. काली म्यूरिएटिकम्, ६. काली फास्फोरिकम्, ७. काली सल्फ्यूरिकम्, ८. मैग्नेशिया फास्फोरिकम्, ९. नेट्रम म्यूरिएटिकम्, १०. नेट्रम फास्फोरिकम्, ११. नेट्रम सल्फ्यूरिकम् और १२. साइलेशिया।

रोगीको दिया जानेवाला लवण इतना सूक्ष्म होना चाहिये कि वह शीघ्र शरीरके रेशोंमें मिल जाय। इसलिये लवणका अंश घटाकर उसे अधिक शक्तिशाली बनाते हैं। ये दवाएँ जीभपर रखकर चूसकर प्रयोगमें लायी जाती हैं। बायोकैमिक औषधियाँ आयोलाइज़ेशनके सिद्धान्तपर कार्य करती हैं, अतः गर्म पानीमें घोलकर जीभपर एक-एक चम्मच प्रयोग करनेसे अधिक प्रभावशाली होती हैं। जहाँतक सम्भव हो ये दवाएँ खाली पेट प्रयोगमें लायी जानी चाहिये। औषध किसी साफ-सुथरे कागजपर बनानी चाहिये। टिकियाका प्रयोग भी कागजपर रखकर ही करना चाहिये, हाथसे नहीं। एक खुराकमें आयुके अनुसार एकसे चार टिकिया लेनी चाहिये। पानीके साथ लेनेके लिये १/४ टिकिया १० चम्मच गर्म पानीमें घोले तथा एक खुराकमें दो चम्मच ले। रोगीकी तीव्रताके अनुसार दिनमें चार खुराकसे लेकर पाँच मिनट या उससे कम समयमें दो-दो चम्मच दवाई दी जा सकती है।

इन दवाइयोंका एक और खास गुण है कि दूसरी प्रणालीकी दवाइयोंके चलते, इनका प्रयोग रोगीको कुछ भी हानि नहीं करता। ये दवाइयाँ पूर्णरूपसे हानिरहित हैं

और एक दिनके बच्चे, गर्भवती स्त्री तथा वृद्ध रोगीको बिना किसी डरके दी जा सकती हैं। ये दूसरी दवाइयोंके मुकाबले सस्ती भी हैं और बहुत कम मात्रामें प्रयोग की जाती हैं। साथ ही स्वादिष्ठ होनेसे बच्चे भी आसानीसे खा सकते हैं।

कुछ नुस्खे घरेलू प्रयोगके लिये दिये जा रहे हैं, जो आपातकालीन स्थितिमें बड़े ही लाभप्रद रहेंगे—

१. चोट लगनेपर जब खून बह रहा हो—फैरम फास० १२× का पाउडर चोटपर डाले, साथ ही टिकिया जीभपर रखे, तुरंत आराम मिलेगा।

२. बैंरें, ततैया, भौंरा आदि कीड़ोंके काटनेपर—नेट्रम म्यूरिएटिकम् ३× की एक टिकिया पीसकर पानीमें पतला पेस्ट बनाकर, काटनेके स्थानपर लगाये। साथ ही टिकिया जीभपर रखे। तुरंत लाभ होगा।

३. रह-रहकर होनेवाले सिरदर्द, पेटदर्द या पेटमें मरोड़ होनेपर—मैग्नेशिया फास० ३× खूब गर्म पानीमें घोलकर दो-दो चम्मच ले।

४. साधारण बुखारमें—फैरम फास० १२×, काली म्यूरि० ३× तथा नेट्रम सल्फ० ३× मिलाकर ले।

५. दिलका दौरा पड़नेपर या लो ब्लडप्रेशर होनेपर—कैलकेरिया फास० १२×, काली फास० ३× और नेट्रम म्यूरिएटिकम् ३×का मिश्रण गर्म पानीमें घोलकर दो-दो चम्मच ले, शीघ्र ही आराम हो जायगा।

६. आँखकी लालीमें—फैरम फास० १२× की टिकिया पीसकर डिस्टिल्ड वाटरमें घोलकर आँखमें डाले। टिकिया भी ले।

७. मुँहमें तथा जीभपर—छाले होनेपर काली म्यूरिएटिकम् ३× और काली फास० ३× का पाउडर छालोंपर लगाये तथा इसीसे कुल्ला करे।

८. सिगरेटकी आदत छुड़ानेके लिये—कैलकेरिया फास० ३× और नेट्रम म्यूरिएटिकम् ३× के मिश्रणको गर्म पानीमें घोल कर ले।



प्राचीन 'रोम' की चिकित्सा-पद्धति—'हिलियोथेरपी' एवं 'क्रोमोपैथी'

(डॉ० श्रीदेवदत्तजी आचार्य, एम०डी०)

इटलीकी राजधानी 'रोम' अति प्राचीन नगर माना गया है। उसकी नींव 'पेलेटाईन' नामक पहाड़ीपर रहनेवाले एक देवता 'रोमुलस' ने डाली थी। उनके नामके आधे आदि शब्द 'रोमु' को लेकर इस शहरका नाम 'रोम' पड़ा।

रोमके सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० टिलनिका मानना है कि प्राचीन रोममें प्राय: ६०० वर्षतक कोई वैद्य ही नहीं था, वैद्यकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी; क्योंकि रोमन लोग सूर्यकिरणों, विविध रंगों तथा जल, वायु और मिट्टी एवं व्यायाम इत्यादिके सही उपयोगोंद्वारा अपना उत्तम स्वास्थ्य बनाये रखते थे। उन दिनों रोमन-साम्राज्य विश्वमें महान् शक्तिसम्पन्न माना जाता था।

प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० रेम्सन कहते हैं कि 'अपना स्वास्थ्य अच्छा बनाये रखनेके लिये और दीर्घायुकी प्राप्तिके लिये हमें प्रकृतिदेवीने असंख्य अमूल्य उपाय प्रदान किये हैं। फिर भी हम उनका सदुपयोग न कर विष-जैसी ओषधियोंका सेवन करते रहते हैं, विपुल धनराशि व्यय करते हैं और बदलेमें हानि ही प्राप्त करते हैं। क्या हमारे लिये यह शोचनीय बात नहीं है?'

रोमन भाषामें 'हिलियो' का अर्थ है 'सूर्य' और 'थेरपी' का अर्थ है 'चिकित्सा-पद्धति'। प्राचीन रोममें यह 'हिलियोथेरपी' अर्थात् सूर्य-चिकित्सा-पद्धति अत्यन्त लोकप्रिय थी। इसी प्रकार सूर्य-किरणों एवं रंगोंद्वारा विविध प्रकारके रोगोंका निवारण करनेकी एक अनोखी पद्धति भी थी, जिसको क्रोमोपैथी (CHROMOPATHY) कहा गया है। 'क्रोमो' से तात्पर्य रंगसे है और 'पैथी' का तात्पर्य चिकित्सासे है।

पृथ्वीके सभी पदार्थोंमें रंग विद्यमान है। आकाशीय पदार्थ भी पृथ्वीपर रंगीन किरणें फेंकते हैं। जंगली पशु-पक्षी आदि जब बीमार पड़ जाते हैं, तब स्वास्थ्यकी प्राप्ति-हेतु वे अपने बीमार देहपर प्रात:कालके सूर्यकी किरणें पड़ने देते हैं। इस प्रकार सूर्यस्नान (SUN-BATH) करनेसे

वे बिना दवाइयोंके ही पुनः स्वास्थ्य-लाभ कर लेते हैं। दुःखकी बात है कि मनुष्य इस सूर्य-चिकित्सा-पद्धति (हिलियोथेरपी)-की उपेक्षा करते हैं।

विश्वके प्राचीनतम ग्रन्थ वेदमें सूर्यके विषयमें अनेकों ऋचाएँ (मन्त्र) विद्यमान हैं। सूर्योपासना तो प्राचीन भारतकी धरोहर ही है। वेदोंमें निहित गायत्री-मन्त्र सूर्यप्रार्थनापरक ही है, जिसमें साधक—उपासक सवितादेवसे 'धी' (प्रज्ञा)-प्राप्तिकी महती इच्छा करता है। सविता या सावित्री तो सूर्यके ही सृजनकर्ता-रूपके शक्तिरूप हैं।

ऋग्वेद (६। ५१। २)-में कहा है कि—

'ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्॥'

अर्थात् 'सूर्य मनुष्योंके अच्छे-बुरे कृत्योंको देखते हैं।' प्राचीन कालमें सूर्यके प्रकाशमें शपथ—कसम-(OATH) ली जाती थी और लोग पाप करनेसे डरते थे।

सूर्यको वेदमें स्थावर तथा जंगम-सृष्टिका आत्मा कहा है—**'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'**। ऋग्वेद (७। ६३। ४)-में कहा है कि **'नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि।'** अर्थात् 'सभीको निद्रासे जाग्रत् करनेवाले सूर्य ही हैं, उनकी प्रेरणासे लोग अपने-अपने विविध कार्योंमें लग जाते हैं।' ऋग्वेद (१। १६४। १०)-में कहा है कि 'सृष्टिके सभी प्राणियोंका जीवन सूर्यपर अवलम्बित है, सूर्य मनुष्योंकी शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक व्याधियाँ दूर करते हैं, सुस्वास्थ्य और दीर्घायु प्रदान करते हैं। विशेषतः हृदयरोग, आँखका पीलियारोग, कुष्ठरोग, महारोग, बुद्धिमन्दता इत्यादि मिटाते हैं।'

अथर्ववेद (१३। ३। १०)-में सूर्यके सात नाम आये हैं, जो सूर्यकी सात रश्मियोंके द्योतक हैं। वेदमें सूर्यका एक नाम सप्तरश्मि भी है। वेदकालीन प्राचीन ऋषियोंने उत्कट तपस्याद्वारा सूर्यके विषयमें अन्वेषणकर विश्वके समक्ष यह सत्य प्रस्तुत किया है कि सूर्यमें सात रंग हैं।

विज्ञानी न्यूटनने सात रंगके चक्र (Wheel of seven colours)-का जो सिद्धान्त विश्वके समक्ष प्रस्तुत किया है, वह वास्तवमें वैदिक ऋषियोंका 'सप्तरश्मि' या 'सप्ताश्व-गवेषणा' ही है। विज्ञान कहता है कि सात रंगों—V I B G Y O R (वायोलेट, इंडिगो, ब्राउन, ग्रीन, यलो, ऑरेंज और रेड)-को एक चक्रपर अङ्कित कर उस चक्रको शीघ्रतासे घुमानेसे चक्रका रंग श्वेत (White) दिखायी पड़ता है। इसी कारण हमें सूर्य शुभ्र दीखता है।

सूर्यके ये सातों रंग हमारे स्वास्थ्यके लिये बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। यदि हम प्रातःकाल स्नान करनेके पश्चात् नित्य संध्या-वन्दन और सूर्य-स्नान करें तो प्रातःकालीन सूर्यकी रश्मियाँ हमें शारीरिक रोग-निवारक तथा बुद्धि-बलवर्धक प्रतीत होंगी।

सूर्यकिरण-चिकित्सा (हिलियोथेरपी)-से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं—

१-जहाँ-जहाँ सूर्यका प्रकाश पड़ता है, वहाँ-वहाँसे रोगकी निवृत्ति होती है।

२-सूर्य-किरणें निःशुल्क प्राप्त होती हैं।

३-सूर्य-किरणें आधुनिक ओषधियों-जैसी दुष्प्रभावी तथा दुर्गन्ध-भरी नहीं होतीं, प्रत्युत उनके सेवनसे शरीरमें स्फूर्ति तथा चैतन्यता आती है और आनन्दकी अनुभूति होती है। उनका कोई दुष्प्रभाव नहीं होता।

सूर्य-स्नान—सूर्य-किरणोंके सेवनसे हमारे देहके कौन-कौन, कैसे-कैसे रोगोंका निवारण होता है और अन्य क्या-क्या लाभ मिलते हैं, उसके विषयमें कहा गया है कि—

सूर्यतापः स्वेदवहः सर्वरोगविनाशकः।
मेदच्छेदकरश्चैव बलोत्साहविवर्धनः॥
दद्रुविस्फोटकुष्ठघ्नः कामलाशोथनाशकः।
ज्वरातिसारशूलानां हारको नात्र संशयः॥
कफपित्तोद्भवान् रोगान् वातरोगांस्तथैव च।
तत्सेवनान्नरो जित्वा जीवेच्च शरदां शतम्॥

अर्थात् सूर्यका ताप स्वेदको बढ़ानेवाला और सभी प्रकारके रोगोंको नष्ट करनेवाला, मेदका छेदन करनेवाला, बल तथा उत्साहको बढ़ानेवाला है। यह दद्रु, विस्फोट, कुष्ठ, कामला, शोथ, ज्वर, अतिसार, शूल तथा कफ एवं वात और पित्त—इन त्रिदोषोंसे उत्पन्न रोगोंको दूर करनेवाला है। इसके सेवनसे मनुष्य रोगोंपर विजय प्राप्त करके दीर्घायु प्राप्त करता है।

सारांश यह है कि सभी प्रकारके रोगोंका निवारण सूर्य-किरणोंके सेवनसे होता है। शक्ति एवं उत्साहमें वृद्धि

होती है और शतायुकी प्राप्ति होती है।

सूर्यके प्रकाशसे हमें प्राण-तत्त्व तथा उष्णता—ये दोनों प्राप्त होते हैं, जो हमारे जीवनको स्वस्थ तथा दीर्घजीवी बनाते हैं। सूर्यकिरणद्वारा 'ओजोन वायु' उत्पन्न होती है, जो हमें और हमारी पृथ्वीको सुरक्षित रखती है। यह 'ओजोन' हमारी शक्तिको बढ़ाती है तथा रक्तको विशुद्ध करती है, हृदयको शक्तिशाली बनाती है और हड्डी तथा नाडी इत्यादिको सक्षम बनाती है।

प्राचीन रोम शहरमें कई स्थानोंपर Solarium (सोलेरियम)—सूर्य-उपचारगृह थे, जहाँ जाकर रोगी निःशुल्क रोग-निवारण करवाते थे।

रोम शहरमें 'क्रोमो-हाईड्रोपैथी' के चिकित्सालय भी थे, जहाँपर रंगचिकित्साद्वारा रोगोंको दूर किया जाता था। यह पद्धति इस प्रकार है—

वर्षाका जल अथवा कूप-तडाग-निर्झरका विशुद्ध जल लाकर सप्तरंग (V I B G Y O R)-मेंसे भिन्न-भिन्न रंगकी बोतलोंमें भरे और बोतलका मुख बंद करके उसके ऊपर चिकनी मिट्टी लगा दे। इसके बाद उन रंगीन बोतलोंको 'सोलेरिया' (गच्ची)-में, सूर्य-किरणें जहाँ पड़ती हैं, वहाँपर रखे। इस प्रकार दो-चार दिनतक रखनेपर सूर्य-किरणोंके प्रभावसे रंगीन बोतलोंका जल जीवन-जल बन जाता है, उसमें रोगके निवारणकी शक्ति (Healing properties) आ जाती है। रोगीको ऐसा जल थोड़ा-थोड़ा पिलानेपर वह रोगमुक्त हो जाता है।

'क्रोमो-हाइड्रोपैथी' के निष्णात डॉ० लेविटका अभिमत है कि लाल (Red) रंगकी बोतलका जल शक्तिदायक (Tonic) है। ऐसा जल त्वचाके रोगोंको नष्ट करनेकी क्षमता रखता है। पीले (Yellow) रंगकी बोतलका जल बदहजमी (Constipation), पेशाबके दर्द इत्यादिको मिटाता है। नीले (Blue) रंगकी बोतलका जल असाध्य चर्मरोगका निवारण करता है, यह 'पोटाश परमैंगेनेट' से भी अच्छा काम देता है। संतरा-जैसे (Orange) रंगकी बोतलका जल भूखमें वृद्धि करता है तथा संधिवात दूर करता है। हरा (Green) रंगकी बोतलका जल आँखोंके रोग, इन्फ्लुएन्जा (शीतज्वर), सिफिलिस मिटाता है। जामुनी (Purple) रंगकी बोतलका जल रक्तकी शुद्धि करता है, रक्तके रोगोंका निवारण करता है, लीवर-पित्ताशयके रोग मिटाता है। वायोलेट पुष्पके (Violet) रंगकी बोतलका जल नाडियोंके रोगको मिटाता है।

रंगद्वारा रोग-निवारण-पद्धति (Colour-Theraphy)-के विषयमें कतिपय निष्णात डॉक्टरोंका स्वानुभव इस प्रकार है—१-डॉ० फिन्सेन (कोपेनहेगन) कहते हैं कि चेचक-शीतला (Smallpox)-के मरीजको लाल रंगकी बोतलका जल पिलाते रहनेपर तथा लाल रंगके कमरेमें रखनेपर कुछ ही दिनोंमें वह अच्छा हो जाता है।

२-डॉ० बेबिट (लंडन) कहते हैं कि पक्षाघात (पैरैलिसिस)-के मरीजको लाल रंगका जल पिलाकर और लाल रंगसे रँगे कमरेमें रखकर रोगमुक्त किया था।'

३-डॉ० लूडविकका मानना है कि तीव्र ज्वरग्रस्त मरीज (हायफिवर)-को और मन्दबुद्धिके व्यक्तिको कभी भी लाल रंगके कमरेमें नहीं रखना चाहिये। मरीज अधिक बीमार हो जायगा।

४-डॉ० हेनरी (अमेरिका)-का कहना है कि 'सर्दी-जुकामसे ग्रस्त मरीजको, लीवरके रोगीको बदहजमी (कोन्स्टीपेशन)-के मरीजको, जोंडिक्स, किडनी, ब्रेन ट्रबल, ब्रोंकाईटिस, न्यूमोनिया, आँतके रोगी आदिको पीले रंग (Yellow-colour)-की बोतलका सूर्यकिरणवाला जल पिलानेपर तथा पीले रंगसे रँगे कमरेमें रखनेपर मरीज रोगमुक्त हो जाते हैं।'

५-डॉ० ई०ए० वोनकोटका कहना है कि चित्तभ्रम हुए (ब्रेन रिटार्टेड) मरीजको नीले (Blue) रंगकी बोतलका जल पिलाते रहनेसे और नीले रंगसे रँगे कमरेमें रखनेपर वह कुछ ही दिनोंमें अच्छा हो जाता है।

६-चक्षु-विशेषज्ञ डॉ० मूर (लंडन)-का कहना है 'हरे रंगकी बोतलका जल पिलाते रहनेसे आँखोंके मरीज और ज्ञानतन्तुके कमजोर पड़नेवाले मरीज अच्छे हो जाते हैं। हरे रंगसे रँगे कमरेमें रखनेपर ऐसे रोगोंके मरीज शीघ्र रोग-मुक्त हो जाते हैं।'



क्रोमोपैथी अर्थात् रंग-किरण-चिकित्सा

(डॉ० श्री डी० ए० जगताप)

'क्रोमो' का अर्थ है रंग और 'पैथी' का उपचार-पद्धति। क्रोमोपैथी-पद्धतिद्वारा कई प्रकारके रंगोंसे तरह-तरहके पुराने और नये रोगोंको ठीक किया जा सकता है।

सूर्यके प्रकाशमें कई तरहके रंग होते हैं जो हवाको शुद्ध करते हैं तथा वातावरण, पानी एवं जमीनी कीटाणुओंका नाश करते हैं। यह सब नैसर्गिक रूपसे नियमित होता रहता है।

प्राचीन ऋषि-मुनियोंकी सूर्योपासना और 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'-आदि वचनोंसे स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है कि सूर्यसे स्वास्थ्य-लाभ होता है। नित्य-कर्म—संध्यामें मुख्य रूपसे सवितादेव—सूर्यनारायणकी आराधना होती आयी है। यूरोपमें जहाँ कुछ दिनोंतक सूर्य-दर्शन नहीं होता है, वहाँ आकाशमें सूर्यके दिखायी देनेपर लोग जल्दी-जल्दी खुले शरीरद्वारा सूर्यका प्रकाश लेते हैं।

सूर्य-प्रकाशमें तरह-तरहके रंग होते हैं, इनका मूल रंग निम्नलिखित है—

(१) लाल—इसका उपयोग उष्णता और उत्तेजना देनेके लिये होता है। इस रंगमें रजोगुणका आधिक्य होता है।

(२) पीला—इसका उपयोग चमक देने तथा शरीरके इन्द्रियोंको उत्तेजित करनेके लिये होता है। इसमें तमोगुणकी प्रधानता रहती है।

(३) नीला—इस रंगका मुख्य काम है शरीरको ठंडा करना। यह सत्त्वप्रधान है।

—इन तीनों प्राथमिक रंगोंको त्रिगुणात्मक—त्रिमूर्ति कहते हैं। शेष रंग—नारंगी, हरा, परपल, जामुनी, गुलाबी, सुनहरा पीला, गाढ़ा नीला, इ० दुय्यम, अल्ट्रा व्हॉयलेट-स्वरूपके होते हैं। ये नौ रंग प्राथमिक रंगोंके मिश्रणसे बनते हैं।

रंगोंके क्रमशः गुण और धर्म

(१) लाल—प्रेम-भावनाका प्रतीक है।

(२) पीला—बुद्धिका प्रतीक है।

(३) नीला—सत्य तथा आशाका प्रतीक है।

मिश्रित रंगोंके गुण और धर्म

[१] नारंगी—आरोग्य, बुद्धि तथा दैवी महत्त्वाकांक्षाका प्रतीक है।

[२] हरा—आशा, समृद्धि और बुद्धिका प्रतीक है।

[३] परपल—यश और प्रसिद्धिका प्रतीक है।

[४] जामुनी—श्रद्धा, अशक्तपन तथा नम्रताका प्रतीक है।

[५] गुलाबी—दयाका प्रतीक है।

[६] सुनहरा पीला—बुद्धिका प्रतीक है।

[७] गाढ़ा नीला—दया तथा शान्तिका प्रतीक है।

[८] इंडीगो—संगीतका प्रतीक है।

[९] अल्ट्रा व्हॉयलेट—विविधताका, कार्यक्षमताका प्रतीक है।

—इनके अतिरिक्त काला तथा सफेद और ग्रे—ये तीन रंग और होते हैं। इन तीनों रंगोंके गुण और धर्म इस प्रकार हैं—

१-काला—अँधेरा, तिरस्कार तथा तमसाच्छन्न बुद्धिका प्रतीक है।

२-सफेद—सत्ता, शुद्धता एवं स्वच्छताका प्रतीक है।

३-ग्रे—दुःख तथा डरका प्रतीक है।

रंग-चिकित्साका कारण

लाल—तरह-तरहके रंग तरह-तरहकी बीमारियोंको ठीक कर सकते हैं, यदि उसे शरीरके खुले हुए भागोंमें लेन्ससे डाला जाय। इस दृष्टिसे लाल तथा गुलाबी आर्टरीके खूनको बढ़ाने, उष्णता-निर्माण आदिमें उपयोगी होता है।

पीला तथा नारंगी—ये नर्व्हस एक्शन बढ़ाते हैं तथा उष्णताका निर्माण करते हैं, सूजन दूर करके शक्तिका निर्माण करते हैं और यकृत् तथा अँतड़ियोंकी बीमारियोंमें अधिक उपयोगी होते हैं।

नीला तथा जामुनी—नर्व्हस—उत्तेजकता कम करते

हैं, सूजन तथा बुखार और तीव्र दर्दको कम करते हैं। मस्तिष्ककी बीमारियोंमें अधिक उपयोगी होते हैं।

हरा—बुखार, स्त्री-सम्बन्धी रोग, लैंगिक तथा नीचेके मज्जातन्तु तथा नितम्ब—इनके दर्दके लिये तथा कैन्सर और अल्सर एवं जननेन्द्रियके लिये उपयुक्त होता है।

परपल—अशुद्ध रक्तको शुद्ध करने, जठर, यकृत्, स्प्लीन, नर्व्हस-सिस्टमके लिये उपयुक्त है।

दैनिक जीवनमें क्रोमोपैथीका उपयोग

(१) लाल तथा गुलाबी सब्जियाँ और फल उष्ण होते हैं, ये टॉनिकके रूपमें—कमजोरीमें उपयोगी पड़ते हैं।

(२) पीले तथा नारंगी रंगकी सब्जियाँ और फल बद्धकोष्ठता, वायु-संधिवात तथा मूत्ररोगमें उपयोगी हैं।

(३) नीला, इंडीगो, जामुनी तथा जामुनी सब्जियाँ और फल ठंडे होनेके कारण निद्रानाशमें, नींद न आनेमें, जुलाब और बुखार इत्यादिमें उपयोगी हैं।

(४) हरी सब्जियाँ तथा फल—ये मूत्र तथा लैंगिक बीमारियोंमें उपयोगी होते हैं।

पानी—ठंडा पानी सूर्यप्रकाशमें दो-तीन घंटा रखनेसे सर्दी, संधिवात, नर्व्हस रोग आदिमें उपयोगी होता है।

भोजन—लाल रंगमें अन्न चार्ज करनेपर यह शरीरके अशक्तपन तथा फीकापनमें उपयोगी होता है। पीले रंगसे चार्ज करनेपर बद्धकोष्ठता दूर होती है। नीले रंगसे चार्ज करनेपर वह भोजन जुलाब, नर्व्हसनेस, नींद न आनेमें उपयोगी होता है।

कपड़े—सभी ऋतुओंमें सफेद कपड़े पहननेसे शरीर नीरोग रहता है। नीली पगड़ी या टोपी पहननेपर सूर्यके उष्मासे होनेवाली तकलीफ कम होती है। अशक्त तथा ठंडे प्रकृतिके व्यक्तियोंको लाल कपड़े पहनने चाहिये। बद्धकोष्ठता तथा यकृत्‌की तकलीफ होनेपर पीला कपड़ा पहनना चाहिये। बार-बार सर्दी होनेवालोंको सफेद तथा पतले कपड़े पहनने चाहिये और धूपमें घूमना चाहिये। त्वचाकी बीमारीवाले व्यक्तियोंको काला कपड़ा नहीं पहनना चाहिये।

तेल—लाल रंगसे तेल चार्ज करनेपर मालिश करनेसे पक्षाघात या संधिवातकी बीमारीमें लाभ होता है। पीले तथा नारंगी रंगसे चार्ज करनेपर और उसे पीनेसे जुलाब होने (पेट साफ होने), यकृत् तथा स्प्लीनकी बीमारीमें उपयोगी होता है। नीले तथा जामुनी रंगसे चार्ज करनेपर बाल झड़ने, बालोंके असमयमें पकने, जुआँ होने तथा सिरदर्द होनेमें फायदा होता है। हरे रंगसे चार्ज करनेपर त्वचाकी बीमारियों तथा गजकर्ण आदिमें लाभ होता है।

क्रोमोपैथी-उपचारकी पद्धतिसे सभी प्रकारकी पुरानी तथा नयी बीमारियाँ ठीक होती हैं, विशेषतः स्पॉन्डिलाईटिस, आर्थ्राइटिस, संधिवात, सर्दी, ब्राँकाइटिस, दमा, कानमें स्राव होना या कान दर्द करना, आँखकी विभिन्न बीमारियों, आधा शीशी-माइग्रेन, ॲसीडीटी, अल्सर, सिरदर्दके सभी प्रकार, टॉन्सील, पचनेन्द्रियोंकी बद्धकोष्ठता, जुलाब, डिसेंट्री, गजकर्ण (दाद), सोरायसीस इत्यादि त्वचाकी बीमारियाँ, नर्व्हसनेस मानसिक बीमारियों, उदासीनता, श्वेत प्रदर, अन्धत्व, स्तनके गाँठ, स्त्रियोंके मासिक धर्मकी सभी शिकायतों, छोटे बच्चोंकी सभी प्रकारकी बीमारियों आदिपर भी यह उपचार-पद्धति नियमित रूपसे लेनेपर लाभ पहुँचाती है।

क्रोमोपैथीकी उपयोगिता

क्रोमोपैथी औषधियोंका जहरीला उपयोग नहीं होता तथा इनमें रिएक्शन (दुष्प्रभाव) भी नहीं होता है।

बेहोश करनेके लिये ऐनस्थियाकी आवश्यकता नहीं पड़ती। चीर-फाड़ न होनेसे खून नहीं निकलता, उसी प्रकार जख्मका घाव भी नहीं रहता।

उपचारके समय न तो दर्द होता है और न किसी प्रकारकी तकलीफ ही होती है।

दवाकी उपाय-योजना जिस प्रकार एकदम सरल, सीधी तथा निसर्गके नियमोंके साथ रहती है, उसी प्रकार इसका लाभ भी अवश्य ही मिलता है।

एक्यूप्रेशरका इतिहास *

(डॉ० श्रीआर०के० शर्मा)

कोई भी मनुष्य अस्वस्थ रहना नहीं चाहता; किंतु मनुष्यको रोग होते ही क्यों हैं? रोग होनेके प्रमुख रूपसे दो कारण होते हैं—(१) मनुष्यकी लापरवाही, गलत रहन-सहन, अस्वस्थता, असंतुलित आहार, शरीरके लिये हानिकारक पदार्थोंका सेवन, मानसिक तनाव, भय, चिन्ता, क्रोध, ईर्ष्या, दैनिक व्यायाम न करना, बीड़ी-सिगरेट, शराब-गुटखा आदिका सेवन-जैसी हानिकारक आदतें तथा देर राततक टी०वी० देखना, पार्टियोंमें भाग लेना तथा प्रातःकाल देरसे उठना-जैसी आदतोंके चलते बीमारियाँ शरीरमें अपना घर बना लेती हैं। (२) व्यक्तिका स्वयंपर नियन्त्रण नहीं होता, जैसे प्रदूषण, संक्रमण, चोट लगना, अंग-भंग हो जाना, उम्रके साथ होनेवाली समस्याएँ तथा आनुवंशिक या जन्मजात रोग आदि।

इस प्रकार यह तो निश्चित है कि मानव-शरीर किसी-न-किसी प्रकार रोगोंसे घिरा रहता है। यह प्रक्रिया मानव-सभ्यताकी शुरुआतके साथ ही चली आ रही है। इसी क्रममें रोगोंको ठीक करनेके लिये, प्राचीन कालसे ही अनेक चिकित्सापद्धतियाँ अपनायी जाती रही हैं और नित्य नयी-नयी खोजें तथा अनुसंधान भी होते रहे हैं। शोधकर्ताओंका मत है कि मानवद्वारा रोगोंके निदानहेतु अपनायी जानेवाली चिकित्सापद्धतियोंमें एक्यूप्रेशर-पद्धतिका विशिष्ट स्थान है।

इस चिकित्सापद्धतिके उद्‌भवके बारेमें विद्वानोंकी दो राय है—भारतीय विद्वान् मानते हैं कि इस पद्धतिकी शुरुआत भारतवर्षमें लगभग पाँच हजार वर्षपूर्व हो गयी थी, जब कि चीनी विद्वानोंका मत है कि लगभग छः हजार वर्षपूर्व इस चिकित्सापद्धतिकी शुरुआत चीनमें हुई। यह कह पाना मुश्किल है कि यह ज्ञान भारतसे चीन गया या चीनसे भारत आया था, किंतु इस ज्ञानको वर्तमान वैज्ञानिक स्वरूपतक पहुँचानेका श्रेय निस्संदेह चीनी विद्वानोंको ही है। चीनमें एक्यूप्रेशरको सर्वाधिक मान्यता प्राप्त चिकित्सापद्धतिके रूपमें सदियोंसे अपनाया जाता रहा है। चीनके प्राचीन ग्रन्थोंमें एक्यूप्रेशर तथा एक्यूपंक्चरके उल्लेख मिलते हैं। डॉ० चु० लिएनद्वारा लिखित 'चेन चियु सुएह' (अर्वाचीन एक्यूपंक्चर) नामक ग्रन्थ, चीनमें इस विषयका अधिकृत प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इसमें एक्यूप्रेशरके ६६९ बिन्दुओंकी सूची दी गयी है। कुछ अन्य चार्टोंमें १००० बिंदु दर्शाये गये हैं। किंतु दैनिक प्रयोगमें १००-१२० बिंदु ही अधिक महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। 'एक्यू' का अर्थ है बिंदु तथा 'प्रेशर' का अर्थ है दबाव अर्थात् दर्दवाले बिंदुओंपर दबाव देना ही एक्यूप्रेशर है।

छठी शताब्दीमें इस पद्धतिका ज्ञान बौद्धभिक्षुओंद्वारा चीनसे जापान पहुँचा। जापानमें इस पद्धतिको शिआत्सु (SHIATSU) कहते हैं। शिआत्सु दो अक्षरोंसे मिलकर बना शब्द है—शि (SHI) अर्थात् उँगली तथा आत्सु (ATSU) अर्थात् दबाव। इस पद्धतिमें सिर्फ हाथके अँगूठों तथा उँगलियोंके साथ दबाव दिया जाता है।

वैज्ञानिक शोधोंसे यह स्पष्ट हो गया है कि शरीरकी सतह (त्वचा)-पर मौजूद कुछ निश्चित बिंदुओंको दबानेसे शरीरके भीतरी अङ्गोंपर प्रभाव उत्पन्न कर सम्बन्धित-अङ्गका रोग दूर किया जा सकता है।

एक्यूप्रेशर प्राचीन भारतीय मालिशका ही परिष्कृत रूप है जिसका अर्थ है—पैरों, हाथों, चेहरे तथा शरीरके कुछ खास केन्द्रों (बिन्दुओं)-पर दबाव डालना। इन बिंदुओंको रिफ्लेक्स सेंटर (Reflex Centre) अर्थात् प्रतिबिम्ब-केन्द्र भी कहते हैं। इसीलिये इस विज्ञानको रिफ्लेक्सोलॉजीके नामसे भी जाना जाता है। पैर, हाथ, चेहरे या कानपर पाया जानेवाला प्रत्येक प्रतिबिम्ब-केन्द्र मटरके दानेके बराबर होता है। पीठ तथा छातीपर भी कुछ प्रतिबिम्ब-केन्द्र होते हैं।

एक्यूप्रेशर-पद्धतिका आधार दबावयुक्त गहरी मालिश ही है। शोधकर्ताओंका मानना है कि दबावके साथ मालिश करनेसे रक्तसंचार ठीक हो जाता है, जिससे शरीरकी शक्ति और स्फूर्ति बढ़ जाती है। शरीरकी शक्ति बढ़नेसे विभिन्न अङ्गोंमें जमा हुए अवाञ्छनीय तथा विषपूर्ण पदार्थ पसीना, मूत्र एवं मलद्वारा शरीरसे बाहर निकल जाते हैं और शरीर

* मनोज पाकेट बुक्ससे प्रका० 'एक्यूप्रेशर-चिकित्सा'-से साभार।

नीरोग हो जाता है।

बीसवीं शताब्दीतक एक्यूप्रेशरकी ख्याति चीनमें भी कोई अधिक नहीं थी। सत्तरके दशकके आसपास इसने चीनमें पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त की। इसके बाद धीरे-धीरे विश्वके अन्य देशोंमें भी यह विज्ञान फैलने लगा। अमेरिकाके लोग अपने-आपको वैज्ञानिक रूपसे अधिक विकसित मानते हैं, इसलिये बिना तथ्योंके कोई बात स्वीकार नहीं करते। सन् १९७० ई० तक अमेरिकाने एक्यूप्रेशरको मान्यता नहीं दी थी। सन् १९७१ ई०में तत्कालीन अमेरिकाके राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन चीनकी यात्रापर गये। उनके साथ गये पत्रकारोंके प्रतिनिधिमण्डलमें जेम्स रस्टन नामक संवाददाता भी थे। चीन पहुँचनेके कुछ घंटे बाद ही रस्टनको अपेंडिसाइटिसका दर्द उठा। अपेंडिक्सपर सूजन बढ़ने या उसके फट जानेसे अनेक विषमताएँ खड़ी हो सकती थीं, अतः तुरंत ऑपरेशन किया गया, किंतु ऑपरेशनके बाद भी दर्द दूर नहीं हुआ। तब रस्टनका उपचार एक्यूपंक्चर तथा एक्यूप्रेशरसे किया गया। (एक्यूपंक्चरमें उपचार चाँदीकी सुइयोंसे करते हैं।) इस उपचारसे कुछ मिनटोंमें ही जेम्स रस्टनको आराम हो गया। इस उपचारपद्धतिसे रस्टन ही नहीं, अमेरिकाके राष्ट्रपति निक्सन भी प्रभावित हुए। इसके बाद यह विज्ञान समस्त यूरोपमें तेजीसे फैलने लगा।

इस पद्धतिकी सफलताका प्रमुख कारण यह है कि बिना औषधि तथा ऑपरेशनके अनेकों कष्टप्रद रोग कुछ ही समयमें ठीक हो जाते हैं। इसके अलावा अनेक रोगोंको दूर रखनेमें भी यह चिकित्सा-पद्धति मदद करती है।

विश्व-स्वास्थ्य-संगठन (वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइजेशन— W.H.O)-ने एक्यूप्रेशर तथा एक्यूपंक्चर-चिकित्सा-पद्धतियोंकी उपयोगिताको स्वीकारते हुए निम्नलिखित रोगोंमें इस चिकित्सापद्धतिको अधिक कारगर पाया है—सर्दी, जुकाम, टान्सिलकी सूजन, साइनुसाइटिस, ब्रॉंकाइटिस, दमा, आँखोंका दर्द, मोतियाबिंद, दाँतोंका दर्द, जीभ तथा मुँहके छाले, गलेकी सूजन और पीडा, पेटमें गैस बनना, एसिडिटी, माइग्रेन तथा अन्य सिरदर्द, नाडियोंका दर्द, लकवा, मिनीयर्स डिजीज, सियेटिका, पीठका दर्द, घुटनोंका दर्द, कंधोंकी अकड़न, बिस्तरमें मूत्रत्याग, आँतोंके घाव, पेचिश, क़ब्ज़ आदि।

एक्यूप्रेशर तथा एक्यूपंक्चरमें अन्तर

एक्यूप्रेशर लेटिन शब्द एकस (Acus)-से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है सूई (Needle) तथा प्रेसर (Pressure)-का शाब्दिक अर्थ है दबाव। किंतु व्यावहारिक रूपसे एक्यूप्रेशरका अभिप्राय सूइयोंद्वारा किये गये उपचारसे नहीं है। सूइयोंद्वारा किये गये उपचारको एक्यूपंक्चर (Acupuncture) कहते हैं।

हालाँकि एक्यूप्रेशर तथा एक्यूपंक्चर दोनों ही चीनी पद्धतियाँ हैं, किंतु दोनोंमें मुख्य अन्तर यह है कि एक्यूपंक्चरमें विशेष प्रकारकी चाँदी या सोनेकी बनी सूइयाँ, एक खास ढंगसे शरीरके विभिन्न भागोंपर लगायी जाती हैं। एक्यूप्रेशरपद्धतिमें सूइयोंके स्थानपर हाथोंके अँगूठों, उँगलियों तथा विशेष उपकरणोंकी सहायतासे रोगसे सम्बन्धित केन्द्रोंपर मालिशयुक्त दबाव डाला जाता है। शरीरके हाथ-पैर, कान तथा चेहरेपर ही अधिसंख्य एक्यूबिंदु (प्रतिबिम्ब-केन्द्र) होते हैं। वैसे पेट, पीठ, छाती, कंधे तथा कूल्हों आदि अङ्गोंपर भी प्रतिबिम्ब-केन्द्र होते हैं।

एक्यूप्रेशर-पद्धतिके लाभ

एक्यूप्रेशर-पद्धति एक स्वयं चिकित्सापद्धति है, जिसकी सहायतासे आप अपने सामान्य रोगोंका सफलतापूर्वक उपचार कर सकते हैं। इस पद्धतिके प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं—

१-कमर, घुटने, कंधे, कोहनी तथा सिरदर्दके अलावा अन्य कहीं, किसी भी अङ्गपर दर्द होनेकी स्थितिमें इस पद्धतिकी सहायतासे दर्द दूर करनेमें सहायता मिलती है।

२-मनकी उद्विग्नता, क्रोध, बेचैनी, निराशा तथा ईर्ष्या आदिको दूर करनेमें यह पद्धति बहुत लाभप्रद है। इसे एक प्रयोगद्वारा सिद्ध भी कर सकते हैं, जैसे मनमें किसी भी प्रकारकी अशान्ति होनेपर एक्यूप्रेशर-उपचार अपनायें और ई०ई०जी (इलेक्ट्रोएनसिफेलोग्राम) करवायें। इससे ज्ञात होगा कि उसमें डेल्टा और थीटा तरंगोंकी तीव्रता तथा आवृत्ति कम हो गयी है। इसका अर्थ है कि मन शान्त हो चुका है।

३-एक्यूप्रेशरकी सहायतासे स्नायुओं (नाडीतन्त्र)-को उत्तेजित करनेमें मदद मिलती है। इसके प्रभावसे पोलियो तथा लकवा-जैसे रोगोंको दूर करनेमें मदद मिलती है।

४-इससे शरीरकी प्राकृतिक रोग-निवारणशक्तिमें बढ़ोत्तरी होती है। इसके प्रभावसे हृदयकी धड़कन, श्वासक्रिया, उपापचय, रक्तचाप आदि सामान्य रहते हैं, जिससे व्यक्ति सदैव स्वस्थ तथा स्फूर्तिमान् बना रहता है।

५-एक्यूप्रेशरके उपचारसे लाल रक्तकोशिकाएँ, श्वेत-

रक्तकोशिकाएँ तथा शरीरका तापमान आदि—ये सब सामान्य स्तरपर रहते हैं और शरीर नीरोगी रहता है।

६-एक्यूप्रेशरकी सहायतासे संधियों और स्नायुओंको मजबूत किया जा सकता है।

७-हृदयशूल-जैसी आपातकालीन परिस्थितियोंमें चिकित्सकके आने या रोगीको अस्पतालतक पहुँचानेसे पहलेतक एक्यूप्रेशर-उपचार अपनाकर रोगीकी जानका ख़तरा बखूबी टाला जा सकता है।

८-इस पद्धतिद्वारा समस्त ग्रन्थियोंका कार्य नियमित हो जाता है।

९-एक्यूप्रेशरद्वारा आन्तरिक अङ्गोंके साधारण कार्यमें तेजी लायी जा सकती है।

१०-एक्यूप्रेशरकी सहायतासे त्वचामें स्फूर्ति पैदा होती है।

११-एक्यूप्रेशर एक हानिरहित पद्धति है, जिसे अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंके साथ भी अपनाया जा सकता है।

एक्यूप्रेशरकी सीमाएँ

१-गुर्देकी पथरी तथा पके मोतियाबिंदमें एक्यूप्रेशरसे कोई विशेष लाभ नहीं मिलता।

२-कैंसर, हड्डीके टूटने (फ्रैक्चर) या शिजोफ्रेनिया-जैसे मानसिक रोगोंमें एक्यूप्रेशर अधिक उपयोगी नहीं रहता।

३-उपर्युक्त रोगोंके अलावा आन्त्र-अवरोध-जैसी शल्यक्रियाकी स्थितियोंमें भी एक्यूप्रेशर अधिक कारगर नहीं रहता।

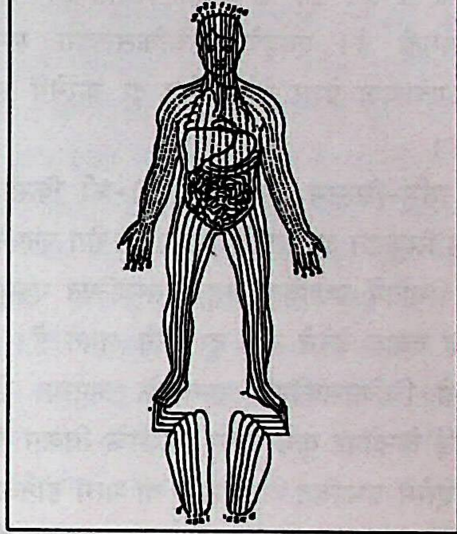
एक्यूप्रेशरके सिद्धान्त

प्रत्येक विज्ञानको कसौटीपर कसनेके कुछ सिद्धान्त होते हैं। एक्यूप्रेशर-चिकित्सापद्धति भी कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तोंके आधारपर कार्य करती है।

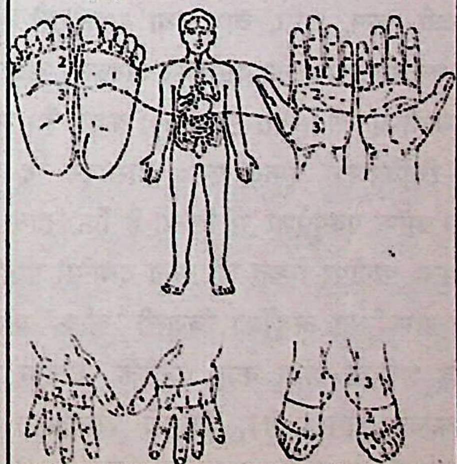
एक्यूप्रेशर-चिकित्सापद्धतिका प्रथम सिद्धान्त यह है कि मनुष्यको शारीरिक तथा भावात्मक रूपसे अलग-अलग नहीं, वरन् एक अभिन्न इकाई माना गया है।

इस पद्धतिका दूसरा सिद्धान्त यह है कि रक्तवाहिकाओं तथा नर्वस-सिस्टम (स्नायुसंस्थान)-की समस्त छोटी-बड़ी नाडियोंके आखिरी हिस्से हाथों तथा पैरोंमें होते हैं अर्थात् हाथों तथा पैरोंकी नाडियोंका शरीरके सारे अङ्गोंसे सम्बन्ध है। यह जानना अब कठिन नहीं रह गया है कि कौन-सी नाडी मस्तिष्कसे सम्बन्धित है और कौन-सी नाडी हृदयसे।

इस तथ्यको आसानीसे समझनेके लिये सम्पूर्ण शरीरको सिरसे लेकर पैरतक लम्बाईमें दस भागोंमें (सिरके मध्य हिस्सेसे दाहिनी तरफ पाँच भाग तथा सिरके मध्य हिस्सेसे बायीं तरफ पाँच भाग) बाँटा गया है अर्थात् पैरों तथा हाथोंकी अँगुलियोंको आधार मानकर सिरतक सारे शरीरमें दस समानान्तर रेखाएँ खींची जायँ तो यह आसानीसे पता चल जाता है कि शरीरका कौन-सा अङ्ग हाथों या पैरोंके किस भागसे सम्बन्धित है।


लम्बाईके रूपमें शरीरके तीन भाग

इसी प्रकार चौड़ाईमें भी शरीरको तीन भागोंमें बाँटा जा सकता है। जिससे हमें रोग-प्रभावित अङ्गके हाथ या पैरपर स्थित प्रतिबिम्बकेन्द्र (एक्यूबिंदु)-का पता चल जाता है।


चौड़ाईके रूपमें शरीरके तीन भाग

इसी प्रकार चेहरे तथा कानके रिफ्लेक्स सेंटर्सकी भी जानकारी हो जाती है।

एक्यूप्रेशर और रोगके कारण

एक्यूप्रेशर-चिकित्सापद्धतिके अनुभवी चिकित्सकों तथा शोधकर्ताओंके अनुसार रोगोंके अनेक कारण हो सकते हैं, जिनमेंसे कुछ महत्त्वपूर्ण कारण इस प्रकार हैं—

१-मनुष्य रोगी तभी होता है जब रोगसे सम्बन्धित अङ्गविशेषमें रक्तका प्रवाह ठीक नहीं रहता या रक्तवाहिकाओंमें कोई विकृति आ जाती है अथवा रक्तवाहिकाएँ सिकुड़ जाती हैं। ऐसी अवस्थामें शरीरका वह अङ्ग ठंडा या गर्म हो जाता है। इन दोनों ही स्थितियोंमें बीमारियाँ पनपने लगती हैं। एक्यूप्रेशर-चिकित्साद्वारा सम्बन्धित अङ्गपर आवश्यक प्रेशर देनेसे रोग दूर करनेमें सहायता मिलती है।

२-नर्वस-सिस्टम (नाडीसंस्थान)-की किसी नसमें विकृति या सिकुड़न आ जानेके कारण भी रोग पनपने लगते हैं। ऐसी स्थितिमें प्रभावित अङ्गसे सम्बन्धित एक्यूबिंदुपर विधिपूर्वक दबाव देनेसे रोग दूर होने लगते हैं।

चीनी चिकित्सकोंकी मान्यताके अनुसार रोगग्रस्त होनेपर कई केन्द्रोंपर कुछ खास किस्मके विकार पैदा हो जाते हैं। ऐसेमें प्रभावित केन्द्र ठंडा या गरम होनेके स्थान चेतनाशून्य, कठोर, चिकने, दर्दयुक्त या धब्बेदार हो जाते हैं। इस प्रकार शरीरका प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ जाता है और शरीर रोगग्रस्त हो जाता है।

भारतीय शास्त्रों तथा आयुर्वेदिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा-सिद्धान्तोंके अनुसार हमारा शरीर पाँच तत्त्वों अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाशसे बना है। इन पाँचों तत्त्वोंका संचालन शरीरकी अंदरूनी ऊर्जा करती है, जिसे बायो एनर्जी (Bio-Energy) कहते हैं। सुप्रसिद्ध एक्यूप्रेशर-चिकित्सक एफ० एम० होस्टनने 'द हीलिंग बेनिफिट्स ऑफ एक्यूप्रेशर'में लिखा है कि 'हाथ-पैर या शरीरके अन्य भागोंपर स्थित जो केन्द्र दबानेसे पीडा करते हैं, वहाँसे सम्बन्धित अङ्गोंकी बिजली 'लीक' कर जाती है (अर्थात् शरीरके अंदर काम करनेके स्थानपर शरीरसे बाहर निकलने लगती है), जिससे सम्बन्धित अङ्गमें किसी-न-किसी कारण विकार आ जाता है। इन प्रतिबिम्ब-केन्द्रोंपर दबाव देनेसे शरीरकी एनर्जी (शक्ति)-का प्रवाह सामान्य हो जाता है और प्रभावित अङ्गके विकार दूर होने लगते हैं।

वैज्ञानिक कसौटीपर एक्यूप्रेशर

एक्यूबिन्दुओं (प्रतिबिम्बकेन्द्रों)-को दबानेसे रोगनिवारक प्रभाव किस प्रकार उत्पन्न होता है, इस बातको वैज्ञानिक कसौटीपर कसनेके लिये अनेक सिद्धान्त प्रचलित हैं। वैज्ञानिक प्रयोगोंद्वारा सिद्ध हो चुके दो सिद्धान्त अधिक महत्त्वपूर्ण हैं—डॉ० फिलिक्स मॅनका क्यूटेनो विसरल रिफ्लेक्स सिद्धान्त तथा डॉ० किम बांगहानका जीव विद्युत् बांगहॉन कॉर्पसल सिद्धान्त।

क्यूटेनो विसरल रिफ्लेक्स सिद्धान्त

हमारे शरीरकी समस्त क्रियाओंको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है—ऐच्छिक क्रियाएँ तथा अनैच्छिक क्रियाएँ। एक तीसरे प्रकारकी क्रियाएँ और होती हैं, जिन्हें 'रिफ्लेक्स क्रियाएँ' कहते हैं।

ऐच्छिक क्रियाओंमें खाना, बात करना, सोचना आदि हैं तो अनैच्छिक क्रियाओंमें भोजनका पाचन, मल-मूत्र-निर्माण, रक्तपरिभ्रमण, हृदयका संकुचन आदि प्रमुख हैं। शरीरकी ये दोनों क्रियाएँ मस्तिष्क एवं इच्छाशक्तिका अतिक्रमण कर अपने-आप होती हैं। उदाहरणके तौरपर यदि हाथ किसी अत्यन्त गर्म वस्तुका स्पर्श कर लेता है तो वह सेकंडके सौंवे हिस्सेमें अपने-आप खिंच जाता है। यही प्रक्रिया अचानक साँपके पैर या हाथसे छू जानेपर हो सकती है। महिलाओंमें चूहे या कॉकरोचके पाससे गुजर जानेमात्रसे ये क्रियाएँ हो जाती हैं। हाथ या पैरके खिंच जानेके बाद हमें वास्तविकताका खयाल आता है। ऐसी क्रियाको प्रतिक्षिप्त-क्रिया या 'रिफ्लेक्स क्रिया' कहते हैं। यह आत्मरक्षाके लिये होनेवाली क्रिया है।

रिफ्लेक्सोलॉजीकी यह क्रिया एक्यूप्रेशरको समझनेमें बहुत मदद करती है। डॉ० फिलिक्स मॅनके मतानुसार एक्यूप्रेशर भी एक प्रकारकी रिफ्लेक्स क्रिया ही है। शोधोंद्वारा यह स्पष्ट हो गया है कि यदि कोई अङ्ग रोगग्रस्त हो जाता है तो तुरंत ही उसका रिफ्लेक्स असर कुछ विशेष बिंदुओंपर पड़ता है, जिन्हें रिफ्लेक्स-सेंटर कहते हैं और तुरंत ही उन बिंदुओंमें दर्द होने लगता है। दर्दयुक्त बिंदुओंको दबाने या

सूईके द्वारा छेदनेसे विद्युत्-तरङ्गें उत्पन्न होती हैं। ये तरङ्गें पलभरमें ही सम्बन्धित अङ्गतक पहुँच जाती हैं और रोगको ठीक करनेकी क्रिया प्रारम्भ कर देती हैं।

इस प्रकार स्वायत्त नाडी-संस्थान (Autonomous Nervous System—ज्ञानतन्त्र) ही एक्यूप्रेशरकी प्रभावोत्पादकताका प्रमुख सिद्धान्त है। जीवनी शक्तिका तीव्र संवहन नाडी-संस्थानके द्वारा ही सम्भव है। पश्चिमी शोधकर्ताओंका भी मत है कि जीवनीशक्ति स्वायत्त नाडी-संस्थानके सिम्पेपेटिक तथा पैरा सिम्पेथिटिक मार्गोंसे बहती है।

बांगहॉन कॉर्पसल सिद्धान्त

शताब्दियोंसे कोरियाके लोगोंकी यह मान्यता रही है कि शरीरमें जीवनी शक्तिका वाहक और स्वतन्त्र कार्यप्रणालीवाला क्युंगराक नामका एक तन्त्र होता है। इस मान्यताको डॉ० बांगहॉनने अपने प्रयोगोंद्वारा सिद्ध कर दिखाया। सन् १९६३ तथा सन् १९६५ में उत्तरी कोरियाके प्योंगयांग नामक शहरमें आयोजित 'साइंटिफिक सिम्पोज़ियम' में प्रोफेसर डॉ० किम बांगहॉनने इस संदर्भमें अपना शोधपत्र भी पढ़ा, जिससे एक्यूप्रेशरपद्धतिको वैज्ञानिक कसौटीपर कसनेमें सफलता हासिल हुई।

त्वचाकी सतहपर स्थित एक्यूप्रेशर तथा एक्यूपंक्चर बिंदुओंके ठीक नीचे विशिष्ट प्रकारके कोषोंको ढूँढनेमें डॉ० बांगहॉन सफल हुए, जो कि पूर्वमें अज्ञात थे। इन कोषोंको उन्हींके नामपर बांगहॉन-कोष नाम दिया गया है। ये कोष अत्यन्त बारीक नलिकाओंसे जुड़े रहते हैं। इन नलिकाओंका चित्र बनानेपर जो तस्वीर उभरती है, वह 'मेरीडियन'-जैसी ही होती है। शरीरकी सतहपर और शरीरके अंदरके बांगहॉन-कोष कुछ भिन्न होते हैं। इसी प्रकार अन्य ज्ञातकोषोंसे भी इन बांगहॉन कोषोंकी रचना बिलकुल भिन्न होती है। इसी प्रकार इन कोषोंको जोड़नेवाली नलिकाओंकी संरचना, अन्य ज्ञात नलिकाओंकी संरचनासे भिन्न होती है। वास्तवमें बांगहॉन कोषोंसे बननेवाली इन नलिकाओंको ही 'मेरीडियन' कहते हैं। डॉ० बांगहॉनके मुताबिक उपर्युक्त कोषों तथा नलिकाओंके माध्यमसे ही जीवनी शक्ति प्रवाहित होती है।

डॉ० बांगहॉनने बांगहॉन कोषोंसे बनी नलिकाओंके शरीरमें कुल चौदह मेरीडियन बताये हैं। दो-दो जोड़ियोंवाले बारह तथा अलग-अलग दो (कुल चौदह) मेरीडियन होते हैं। ये सभी मेरीडियन शरीरके महत्त्वपूर्ण अङ्गों और तन्त्रोंसे जुड़े होते हैं। इस सिद्धान्तसे यह भी सिद्ध होता है कि शरीरमें जो बल होता है, उसे दो भागोंमें बाँट सकते हैं—यांग-बल तथा यिन-बल। मेरीडियन भी इन्हीं बलोंके आधारपर कार्य करते हैं। यांग और यिन-बलोंमें रुकावट आनेपर ही रोग उत्पन्न होते हैं।

एक्यूप्रेशर बिन्दुओंको दबानेपर उसका सीधा प्रभाव उपर्युक्त बांगहॉन कोषोंपर पड़ता है और जीवनीशक्तिके परिभ्रमणमें आयी हुई रुकावट दूर होती है। इस प्रकार यांग तथा यिन-बलोंका संतुलन भी बना रहता है।



एक्यूप्रेशर-चिकित्सा

(डॉ० श्रीबृजेशकुमारजी साहू एम्०एस्-सी०, पी-एच्०डी०, आयुर्वेदरत्न)

एक्यूप्रेशर ऐसी चिकित्सा-पद्धति है, जिससे रोग दूर ही नहीं किये जाते, बल्कि जड़से मिटा देनेका प्रयत्न किया जाता है।

एक्यूप्रेशर—एक भारतीय पद्धति

यह पद्धति प्राचीन भारतीय पद्धतियोंमेंसे एक है, इस पद्धतिका उल्लेख सुश्रुतसंहितामें भी मिलता है तथा हमारे प्राचीन आयुर्वेदाचार्य इसके जानकार थे। हमारे ऋषि-मुनि, साधु-संत एवं गृहस्थ अपने दैनिक जीवनमें इस पद्धतिको अपनाकर अपना तथा अपने शिष्योंका सहजमें उपचार किया करते थे।

ध्यान, योग एवं विभिन्न आसनोंके परिप्रेक्ष्यमें एक्यूप्रेशर आंशिकरूपसे हमारे सम्मुख आता है। प्राचीन कालसे महिलाओंका शरीरके भिन्न-भिन्न अङ्गोंमें आभूषण पहनना, गृहकार्योंमें सहयोग तथा सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाजोंके पीछे भी इसी पद्धतिका हाथ माना गया है। स्त्रियोंका हाथमें कड़ा पहनना, कपड़े धोना, पैरोंमें पायल पहनना, गलेमें हार, ललाटपर चमकती बिंदिया तथा दैनिक कार्यों—जैसे कुँएसे पानी खींचना, झुककर वृद्ध जनोंके

चरण-स्पर्श करना, वन्दना करना आदि भी एक्यूप्रेशरकी परिधिमें आते हैं। ऐसे कार्योंसे भारतीय संस्कृतिका निर्वाह तो होता ही है, साथमें शरीरकी विभिन्न मुद्राओंसे भी हमारा शरीर स्वस्थ रहता है। भारतमें लगभग दस वर्षोंसे इस चिकित्सा-पद्धतिके प्रति व्यापक चेतना जाग्रत् हुई है।

एक्यूप्रेशर क्या है?

सामान्यरूपसे मानव-शरीरमें स्थित निश्चित बिन्दुओंपर दबाव डालकर रोग-निराकरण करनेकी पद्धतिको एक्यूप्रेशर-पद्धति कहा जाता है। एक्यूप्रेशर दो शब्दोंसे मिलकर बना है। 'एक्यू' का साधारण अर्थ है 'तीक्ष्ण' और 'प्रेशर' का अर्थ है 'दबाव'। शरीरके निश्चित बिन्दुओंपर दबाव डालकर रोगको नष्ट करनेकी इस पद्धतिके द्वारा पाँवके तलवोंमें तथा हाथकी हथेलियोंमें स्थित बिन्दुओंपर दबाव डालकर रोगका निदान किया जाता है। एक्यूप्रेशरमें दबावको तथा एक्यूपंक्चरमें सूइयोंको प्रयोगमें लाया जाता है।

एक्यूप्रेशरके सिद्धान्त

इस पद्धतिका पहला सिद्धान्त है कि प्रत्येक रोगका उपचार शरीरको शारीरिक एवं भावनात्मक रूपसे संगठित (Unit) मानकर किया जाता है। एक्यूप्रेशर-पद्धति मनुष्यको शारीरिक एवं भावनात्मक रूपसे एक अभिन्न इकाई मानती है।

दूसरा प्रमुख सिद्धान्त है कि सभी रक्त-संचार नाडियों, स्नायु-संस्थान एवं ग्रन्थियोंके अन्तिम सिरे हथेली अथवा पगथली (पदतल)-में स्थित होते हैं। इस पद्धतिका मुख्य उद्देश्य स्नायु-संस्थान एवं रक्त-संचारको सुव्यवस्थित करना एवं मांसपेशियोंको शक्तिशाली बनाना है। जब कोई व्यक्ति अपनी सामर्थ्यको न पहचानकर अपने शरीरके गुणधर्म एवं क्षमताकी उपेक्षा कर खान-पान, व्यायाम और निद्रा आदिके नियमोंका उल्लंघन करता है, तब उसके शरीरमें उत्पन्न द्रव्य रक्त-प्रवाहमें अवरोध पैदा करता है। यह अवरोध शरीरके आन्तरिक एवं बाह्य वातावरणके असंतुलनसे भी उत्पन्न होता है।

अङ्गोंमें रक्तकी कमीसे शिथिलता आने लगती है। फलतः कार्य-क्षमता घटने लगती है, मांसपेशियाँ मन्द पड़ जाती हैं, हाथ और पाँवमें स्थित मांसपेशियोंके ऊतक (Tissues) अपने निश्चित स्थानसे हटने लगते हैं। परिणामस्वरूप पैरोंमें स्थित छब्बीस हड्डियोंमेंसे कोई भी हड्डी अपना स्थान छोड़ने लगती है। उससे पैरोंमें स्थित रक्त एवं स्नायु-संस्थानकी नाडियोंके अन्तिम सिरेपर अधिक दबाव पड़ने लगता है और उन सम्बन्धित केन्द्रोंके अङ्गोंमें नाडी ठीकसे कार्य नहीं कर पाती। फलतः रक्त-संचार कम हो जाता है एवं रक्तकी कमीसे रासायनिक तत्त्व, अपद्रव्य (व्यर्थ-पदार्थ) इन हटे हुए जोड़ोंके आस-पास जमा होने लगते हैं। जितने अधिक विकार जमा होंगे उतना ही अधिक रोग बढ़ेगा।

जब कोई अङ्ग शिथिल होकर निष्क्रिय हो जाता है, तब हाथकी हथेली और पाँवके तलवोंमें स्थित उससे सम्बन्धित सभी बिन्दुओंमें अवरोध उत्पन्न हो जाता है तथा शक्करके दानों-जैसे क्रिस्टल जमा हो जाते हैं, जिन्हें 'टॉक्सिन' क्रिस्टल भी कहते हैं। नसों (नाडी)-के छोरमें स्थित ये कण रक्त-प्रवाहको अवरुद्ध करते हैं। एक्यूप्रेशर-पद्धतिसे इन दबाव-बिन्दुओंपर प्रेशर (दबाव) दिया जाता है। इससे अवरोध बने हुए ये कण नष्ट हो जाते हैं और रक्त-प्रवाह व्यवस्थित हो जानेसे रोगग्रस्त अङ्ग नीरोग बन जाते हैं।

अधिकतर लोग तनावसे ग्रसित रहते हैं। एक्यूप्रेशर ज्ञान-तन्तुके कोशोंको कार्यरत कर मानसिक तनाव कम करता है और चेतना जाग्रत् करके मानव-शरीरमें शक्ति उत्पन्न करता है।

एक्यूप्रेशरकी तीन शाखाएँ हैं—१-मेरिडीयनोलोजी, २-जोनोलोजी तथा ३-शिआत्सु।

मेरिडीयनोलोजी—मानव-शरीर पाँच महाभूतोंसे बना है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश। इन सबका संचालन हमारे शरीरमें स्थित प्राणशक्तिसे होता है। यह प्राणशक्ति चौदह मुख्य मार्गोंद्वारा शरीरमें प्रवाहित होती रहती है, जिन्हें मेरिडीयन लाईन कहते हैं। इस शक्तिके दो गुण-धर्म हैं, जिन्हें ऋणात्मक एवं धनात्मक कहा जाता है। इन दोनों गुण-धर्मोंके संतुलनसे शरीर आरोग्य एवं इनके

असंतुलनसे शरीर रोगी हो जाता है। एक्यूप्रेशर इस असंतुलनको दूर करके शरीरको रोगमुक्त करता है।

जोनोलोजी—इसके अन्तर्गत शरीरको दस भागोंमें बाँटा गया है। शरीरके मध्यभागसे पाँच भाग बायीं ओर और पाँच भाग दायीं ओर होते हैं, जिनके अन्तिम सिरे हाथ और पैरकी पाँचों अँगुलियोंमें होते हैं। दाहिने भागके अवयवोंमें उत्पन्न होनेवाले रोगोंके प्रतिबिम्ब दाहिनी हथेली अथवा दाहिनी पगथली (पदतल)-में प्रतिबिम्बित होते हैं तथा बायें भागके अवयवोंमें उत्पन्न होनेवाले रोगोंके प्रतिबिम्ब बायीं हथेली एवं बायीं पगथली (पदतल)-में प्रतिबिम्बित होते हैं। तात्पर्य यह है कि जो अवयव जिस जोनमें होता है, उसका प्रतिबिम्ब भी उसी जोनमें होता है। इस पद्धतिको जोनोलोजी, जोनोथैरेपी या रिफ्लोक्सोलोजी भी कहा जाता है।

शिआत्सु—शिआत्सुमें 'शि' अर्थात् अँगुली और 'आत्सु' का तात्पर्य है दबाव। शरीरमें स्थित निर्धारित दाब-बिन्दुओंपर दबाव डालकर रोग-मुक्त करनेकी पद्धतिको शिआत्सु कहते हैं।

'दाब-बिन्दु' हमारे सारे शरीरपर फैले रहते हैं। किसी भी रोगसे मुक्ति दिलाने-हेतु मानव-शरीरके उस अवयवके क्षेत्र-बिन्दुओंको दबाव देकर उस रोगसे मुक्ति दिलायी जा सकती है।

मुख्य बीमारियाँ, जिनमें एक्यूप्रेशर कारगर प्रमाणित होता है

साइटिका, पुराना जुकाम, नज़्ला, स्लिपडिस्क, गर्दनका दर्द, पीठका दर्द, पैरों तथा एड़ियोंका दर्द, पिण्डलियोंमें ऐंठन, ब्लड-प्रेशर, क़ब्ज़, बदहजमी, गठिया, मासिक धर्म, डिप्रेशन, अनिद्रा, स्मरण-शक्ति, माईग्रेन इत्यादि।

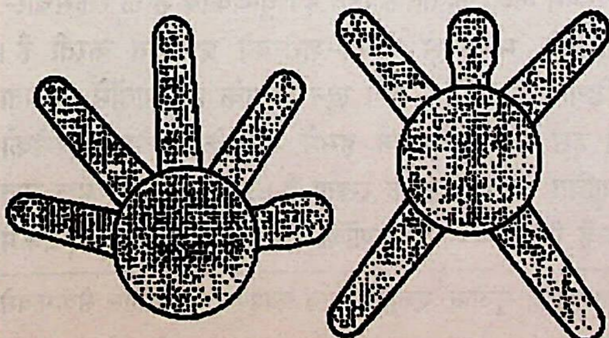
एक्यूप्रेशर-चिकित्सा-पद्धतिद्वारा उपचार कभी भी, कहीं भी तथा किसी भी समयपर किया जा सकता है, परंतु भोजन करनेके एक घंटा पहले तथा एक घंटा बाद ही इस पद्धतिको प्रयोगमें लाना श्रेयस्कर है तथा एक दिनमें केवल दो बार ही इसको करना चाहिये अन्यथा यह हानिकारक भी सिद्ध हो सकता है।

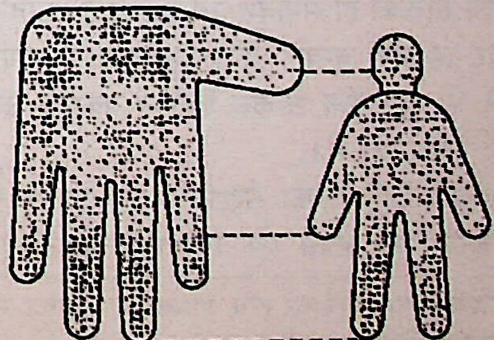


सुजोक-चिकित्सा-पद्धति

(डॉ० सुश्री गीतांजली अग्रवाल, सुजोक थेरेपिस्ट)

'सुजोक-चिकित्सा' एक्यूप्रेशर—एक्यूपंक्चर-चिकित्सा-पद्धतिपर ही आधारित है। 'सुजोक' कोरियन भाषाका शब्द है, कोरियाकी भाषामें 'सु' का अर्थ है हाथ और 'जोक' का अर्थ है पैर। हमारे हाथ एवं पैरोंके अङ्गोंकी बनावटमें हमारे शरीरकी बनावटसे काफी समानता है। अतः हाथ तथा पैरके सूक्ष्म विन्दुओंका ज्ञान प्राप्त करके रोगोंकी चिकित्सा की जा सकती है। हमारे शरीरमें छः भाग हैं—सिर, धड़, दो हाथ तथा दो पैर। ऐसे ही हाथके पंजेके भी छः भाग हैं—अँगूठा, हथेली तथा चार उँगलियाँ।





कोरियाके डॉ० पार्कने लंबी खोज एवं अनुसंधानके बाद पाया कि ईश्वरने हाथ-पैरके पंजोंमें ही ऐसी मशीन फिट कर रखी है, जिससे आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है। इसी आधारपर डॉ० पार्कने इस पद्धतिको प्रस्तुत किया है। यह चिकित्सा-पद्धति एक्यूप्रेशर-एक्यूपंक्चर चिकित्सा-पद्धतिकी ही एडवांस टेक्नालॉजी है।

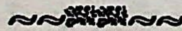
एक्यूप्रेशर-एक्यूपंक्चर-पद्धतिमें सम्पूर्ण शरीरके विन्दुओंपर दबाव एवं सूई लगाकर उपचार किया जाता है। जबकि 'सुजोक-पद्धति' में हाथके पंजेके विन्दुओं एवं पैरके विन्दुओंपर उपचार किया जाता है। इतना ही नहीं हाथकी एक उँगली और उसके एक पोरपर भी उपचार किया जा सकता है। उपचार भी इतना सरल कि यदि रोगी छोटी सूई भी नहीं लगाना चाहता तो केवल गेहूँके दाने-बराबर मेगनेट, सीड एवं कलर लगाकर ही उपचार किया जा सकता है। एवं रिजल्ट भी बहुत फास्ट है।

सुजोक-पद्धतिमें जन्मसे हुई बीमारियोंके लिये विशेष रूपसे जो व्यवस्था की गयी है वह है जन्मके दिनाङ्क एवं समयके आधारपर। जैसे ज्योतिषमें कुण्डली तैयार की जाती है वैसे ही इसमें जन्म-समय आदिको ध्यानमें रखकर स्वास्थ्य-कुण्डली बनायी जाती है। जन्मके समय कौन-सी ऊर्जा प्रवाहित हो रही थी, अब कौन-सी ऊर्जा प्रवाहित हो रही है, यह जानकर उपचार किया जाता है। पञ्चतत्त्वोंका भी संतुलन बनाया जाता है, चक्रोंको भी संतुलित किया जाता है।

हमारा शरीर पञ्चतत्त्वोंसे बना हुआ है और मृत्युके उपरान्त इन्हीं पञ्चतत्त्वोंमें विलीन हो जाता है यह हम सभी जानते हैं। इन्हीं पञ्चतत्त्वोंमें असंतुलन हो जानेपर शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। मोटे तौरपर रोगीके लक्षणों एवं हाथकी रेखाएँ ही देखकर पञ्चतत्त्वोंकी जानकारी मिल जाती है। इसे वैज्ञानिक रूपसे परीक्षण करने-हेतु हाथकी उँगलियोंमें ऊर्जा-बिन्दुओंको चैक कर बताया जा सकता है कि कौन-सा तत्त्व कम-ज्यादा एवं कौन-सी ऊर्जा कम-ज्यादा है, उसके अनुसार वर्तमान एवं भविष्यमें आनेवाली बीमारियोंका इलाज किया जाता है। इसे पञ्चतत्त्व-उपचार या मेटाफिजिकल ट्रीटमेन्ट कहा जाता है।

इस चिकित्सा-पद्धतिकी यह विशेषता है कि इसमें न ही कोई दवा लेनी पड़ती है और न ही कोई साइड अफेक्ट होता है। इस चिकित्सा-पद्धतिका किसी चिकित्सा-पद्धतिसे विरोध नहीं है, कोई भी चिकित्सा चलते हुए इस पद्धतिसे इलाज किया जा सकता है।

आजके व्यस्ततम समयमें हम अपने स्वास्थ्यपर ध्यान नहीं दे पाते। हमारा जीवनयापन, रहन-सहन, खान-पान सभी कुछ प्रकृतिके विपरीत हो गया है। आम आदमी ज़िंदगीकी आपाधापीमें मानसिक तनावसे ग्रस्त रहता है, जिसके कारण वह रोगग्रस्त हो जाता है। अतः हमें अपने स्वास्थ्यके प्रति विशेष सचेष्ट रहनेकी आवश्यकता है, यदि हमें अपना जीवन सुखमय बनाना है तो अपने खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार तथा दैनन्दिन-चर्याकी उपेक्षा न कर उसे नियमित और संतुलित बनाना होगा।*



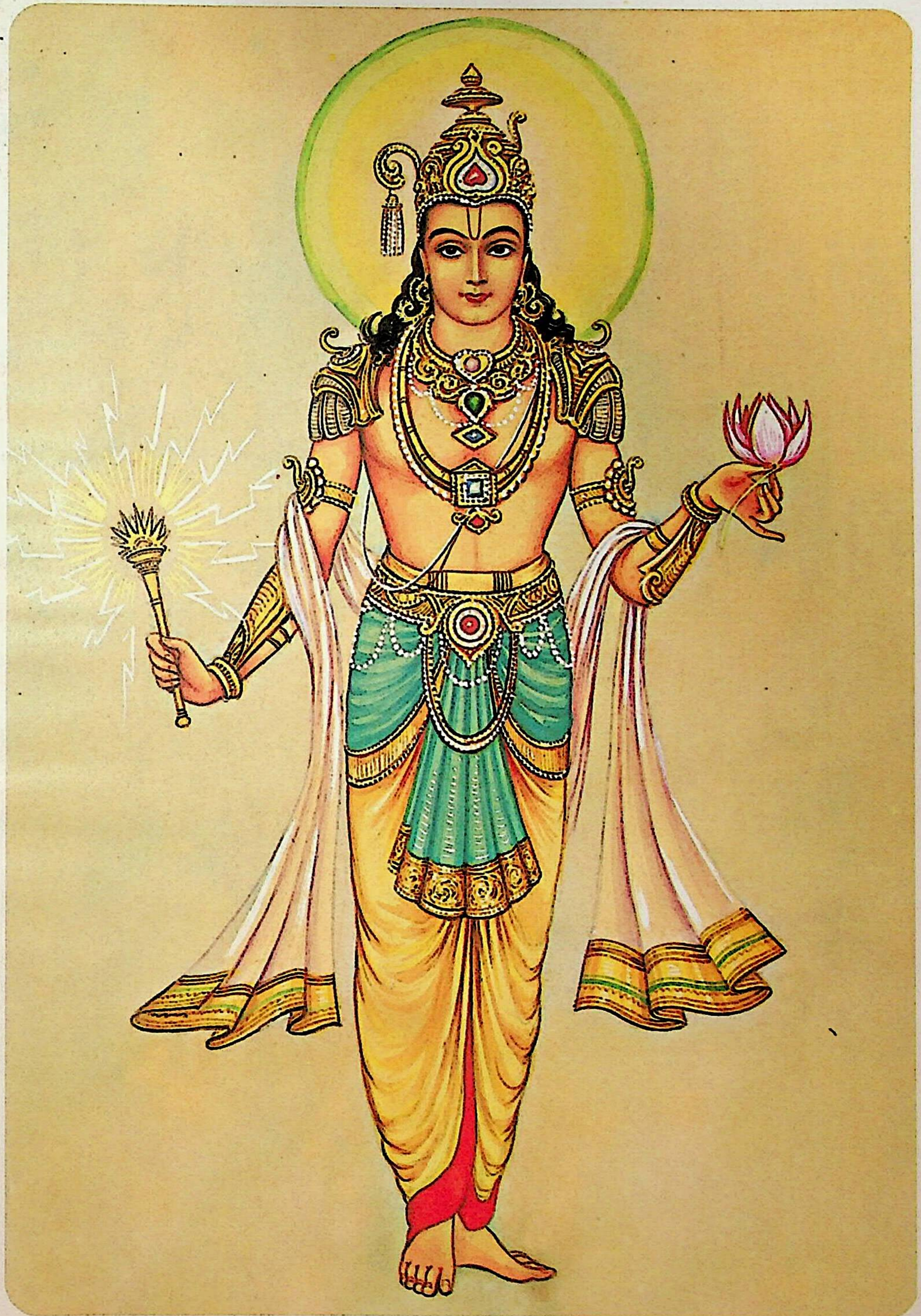
चुम्बक-चिकित्सा (मैगनेट थिरेपी)

(श्रीबाबूलालजी अग्रवाल)

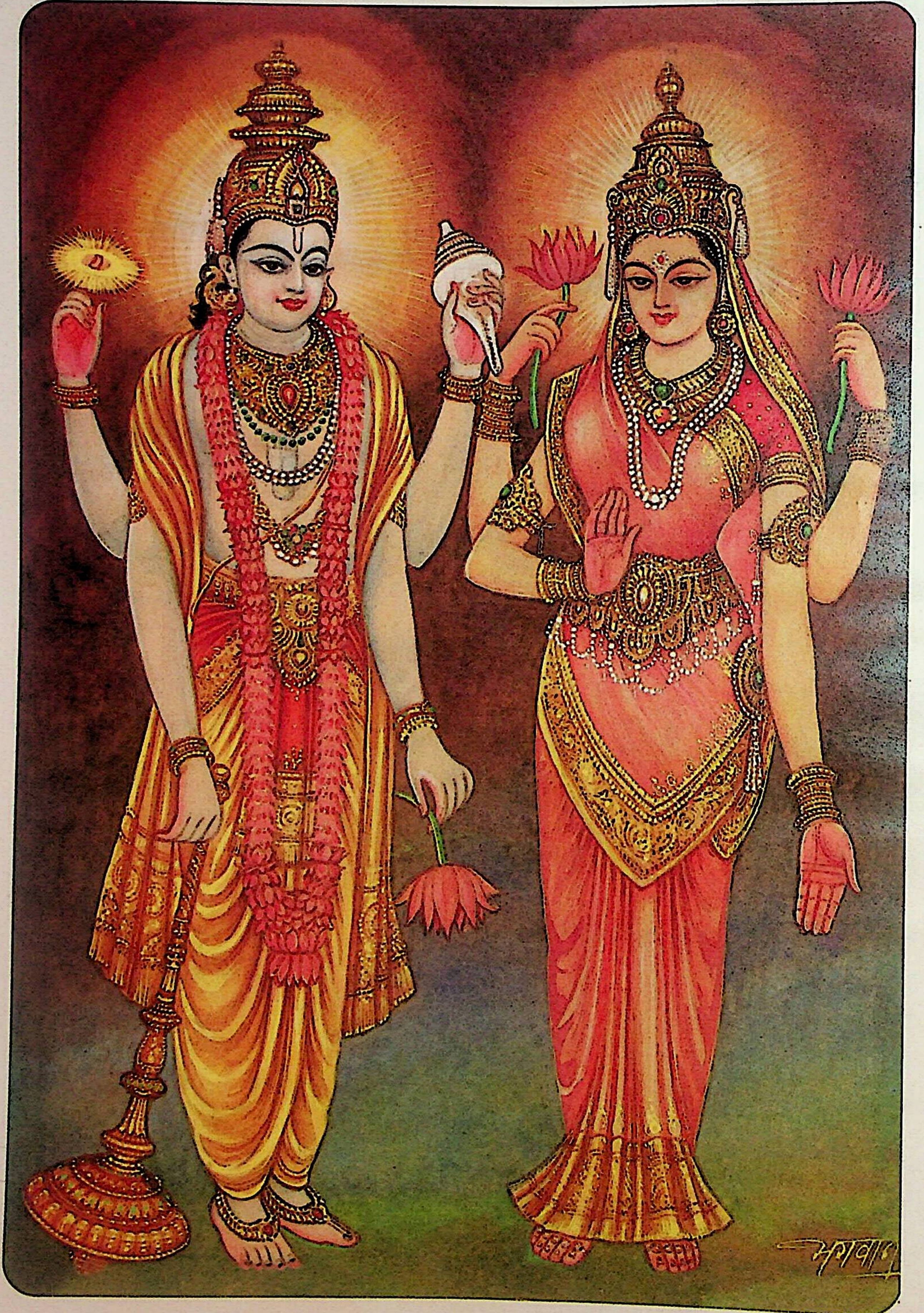
इस अखिल ब्रह्माण्डकी रचनामें हम विचार करें तो चुम्बकीय शक्तिका ही समावेश-सा दीखता है। धरती, सूर्य, तारे और ग्रह सभी चुम्बक-जैसा कार्य करते हैं। आधुनिक विज्ञानने भी चुम्बकीय शक्तिसे विभिन्न प्रकारके उपयोगी यन्त्रोंकी रचना की है।

चुम्बक-चिकित्साका सैद्धान्तिक आधार यह है कि हमारा शरीर मूल रूपसे एक विद्युतीय संरचना है और प्रत्येक मानवके शरीरमें कुछ चुम्बकीय तत्त्व जीवनके आरम्भसे लेकर अन्ततक रहते हैं। चुम्बकीय शक्ति रक्तसंचार-प्रणालीके माध्यमसे मानव-शरीरको प्रभावित करती है। नाडियों और नसोंके द्वारा खून शरीरके हर भागोंमें पहुँचता है। इस प्रकार चुम्बक हमारे शरीरके प्रत्येक हिस्सेको प्रभावित करनेकी शक्ति रखता है। इस सम्बन्धमें मूल बात यह है कि चुम्बक रक्तकणोंके होमोग्लोबिन तथा साइटोकेम

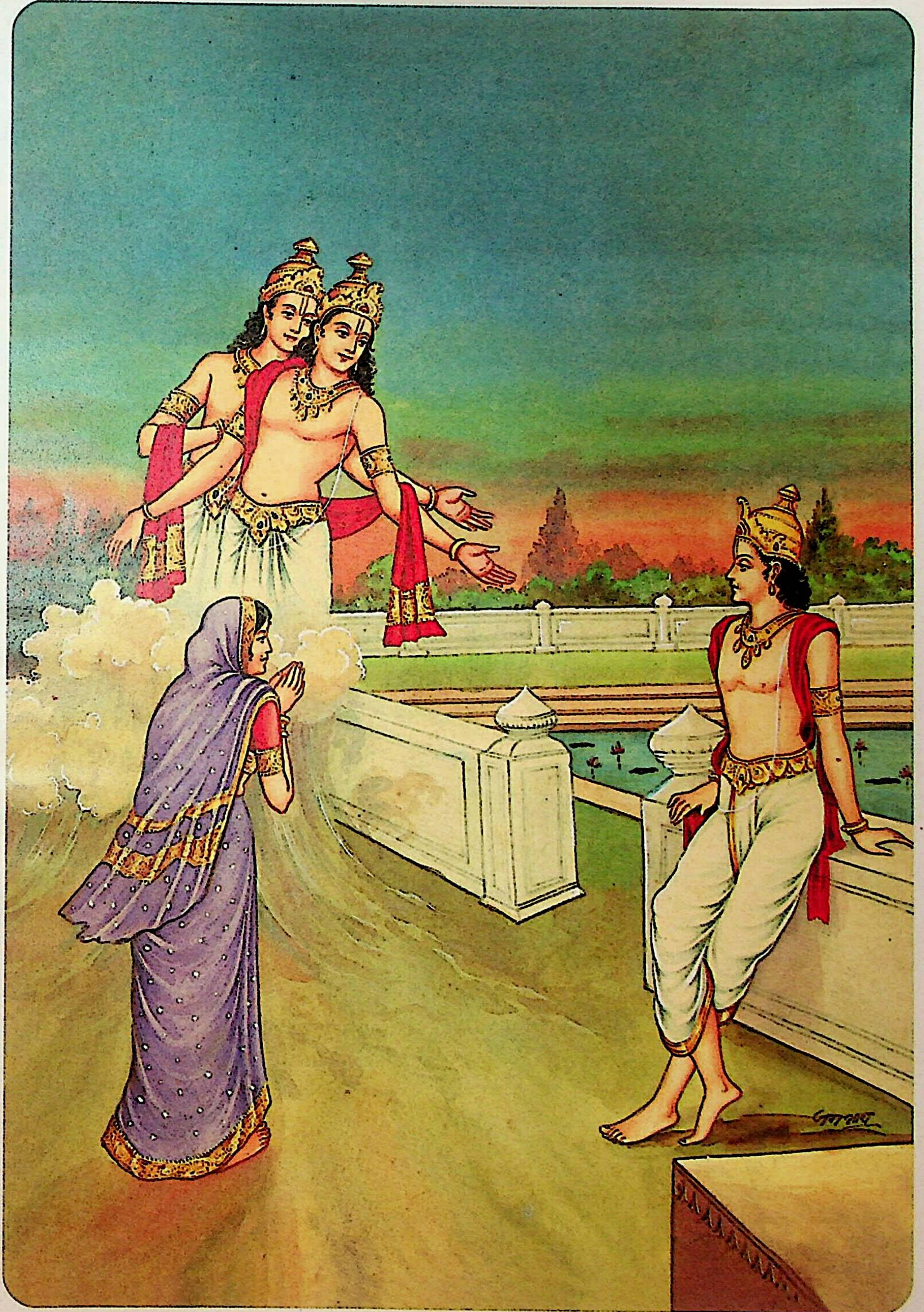
* एक्यूप्रेशर-एक्यूपंक्चर शोध, प्रशिक्षण एवं उपचार-संस्थान, इलाहाबादद्वारा, सुजोक, एक्यूप्रेशर एवं एक्यूपंक्चर-पद्धतिसे सेवाभावसे रोगोंका उपचार किया जाता है।



आयुर्वेदके उपदेष्टा देवराज इन्द्र



आरोग्यका मूलमन्त्र—भगवान् लक्ष्मी-नारायणका स्मरण-ध्यान



देववैद्य अश्विनीकुमारोंद्वारा महर्षि च्यवनको युवावस्थाकी प्राप्ति



सदाचार, सेवा और आरोग्य

नामक अणुओंमें निहित लौह-तत्त्वोंपर प्रभाव डालता है। इस तरह चुम्बकीय क्षेत्रके सम्पर्कमें आकर खूनके गुण और कार्यमें लाभकारी परिवर्तन आ जाता है और इससे शरीरके अनेकों रोग ठीक हो जाते हैं।

चुम्बक-चिकित्सा-पद्धतिमें न तो कोई कष्ट है और न ही किसी प्रतिक्रियाकी आशंका। अतः बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष आदि सभी रोगियोंपर इसका प्रयोग सरलता एवं सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

प्राचीन कालमें भी आकर्षणशक्ति एवं चुम्बकीय शक्तिका पूर्ण परिज्ञान एवं प्रयोग था। अथर्ववेदके प्रथम काण्ड सूक्त १७ मन्त्र ३-४ में स्त्रीरोगोंके उपचारमें आकर्षणशक्तिके प्रयोगका उल्लेख है। मृत्युके पूर्व मनुष्यका सिर उत्तर दिशा एवं पैर दक्षिण दिशाकी ओर करनेकी प्राचीन कालसे चली आ रही प्रथा भी चुम्बकीय ज्ञानपर आधारित है। ऐसा करनेसे धरती और शरीरमें चुम्बकीय क्षमता हो जानेके कारण मृत्युके समयकी पीडा—वेदना कम हो जाती है। इसी प्रकार रत्न-धारणके पीछे भी यही विज्ञान काम करता है। योगकी विभिन्न क्रियाओंसे शरीरमें जो प्रतिक्रियाएँ पैदा की जाती हैं, वे चुम्बकके प्रयोगसे भी उत्पन्न की जा सकती हैं।

विदेशोंमें भी चुम्बकीय ज्ञान प्राचीन कालमें था। मिस्रकी राजकुमारी अपनी सुन्दरता बनाये रखनेके लिये अपने माथेपर एक चुम्बक बाँधे रहती थी। स्विस विद्वान् डॉक्टर पैरासेल्सस, डॉ० मैलमैर, डॉ० गैलीलियो, डॉ० माहकैलफै रेडे तथा होम्योपैथीके जनक डॉ० हैनीमैनने भी चुम्बक-चिकित्साका सफल प्रयोग किया है। अमेरिकामें न्यूयार्कके डॉ० मैक्लीनने चुम्बकसे कैंसर-जैसी असाध्य बीमारीका सफल इलाज किया है। रूसवाले चुम्बकीय जलसे दर्द, सूजन यहाँतक कि पथरी-जैसे कठिन रोगोंका भी इलाज कर रहे हैं। वे चुम्बकीय जलको वंडर वाटर अर्थात् चमत्कारी जल कहते हैं। जापानियोंने अनेक चुम्बकीय उपकरण जैसे—बाजूबंद, हार, पेटियाँ, कुर्सियाँ, बिछौने आदि बनाये हैं और वे इनसे विभिन्न प्रकारके रोगोंका इलाज करते हैं। इंग्लैंडमें खूनके प्लाज्मा और अन्य कोशिकाओंसे रक्त-कोशिकाओंको अलग करनेमें अब चुम्बकका प्रयोग किया जाता है। इससे पहले यह काम रासायनिक पद्धतिसे होता था। डेनमार्क, नार्वे, फ्रांस, स्विटजरलैंड आदि अनेक पश्चिमी देशोंमें चिकित्साके क्षेत्रोंमें चुम्बकका प्रयोग सफलतासे किया जा रहा है।

भारतमें भी अनेक होम्योपैथिक और एलोपैथिक डॉक्टर चिकित्सामें चुम्बकीय उपकरणोंका प्रयोग सफलतासे कर रहे हैं। चुम्बकीय जलका पौधोंपर भी आश्चर्यजनक असर पड़ता है। ऐसे जलसे सींचनेपर पौधोंमें सामान्यकी अपेक्षा २० से ४० प्रतिशततक अधिक वृद्धि देखी गयी है।

इलाज-हेतु चुम्बकोंको मोटे तौरपर दो वर्गोंमें बाँटा जा सकता है। पहले वर्गमें प्राकृतिक खनिज हैं जिनमें लौह-चट्टानें प्रमुख हैं। ऐसे चुम्बकोंकी शक्तिमें आवश्यकतानुसार घटाना-बढ़ाना सम्भव नहीं होनेके कारण इनका इलाज-हेतु प्रयोग बहुत ही कम किया जाता है। दूसरे वर्गमें मनुष्यद्वारा बिजलीसे चार्ज करके तैयार किये गये चुम्बक आते हैं। जिनमें आवश्यकतानुसार कम-ज्यादा चुम्बकीय शक्ति समाविष्ट की जा सकती है और जिन्हें शरीरके विभिन्न अङ्गोंपर प्रयोग-हेतु सुविधाजनक आकारोंमें तैयार किया जाता है—(१) विद्युत्-चुम्बक एवं (२) स्थायी चुम्बक।

(१) विद्युत्-चुम्बक—वे चुम्बक हैं जो बिजलीकी तरंग मिलनेपर ही काम कर सकते हैं। विद्युत्के अभावमें वे चुम्बकीय कार्य नहीं कर सकते। ऐसे चुम्बक विद्युत्-यन्त्रों एवं अनेक अन्य यन्त्रोंमें प्रयुक्त किये जाते हैं।

(२) स्थायी चुम्बक—स्थायी चुम्बक बिजलीसे चार्ज किये जाते हैं, परंतु एक बार चार्ज हो जानेके बाद उन्हें विद्युत्-तरंगोंकी आवश्यकता नहीं रहती। ये लम्बे समयतक अर्थात् वर्षोंतक अपनी चुम्बकीय शक्ति बनाये रखते हैं। कुछ वर्षोंके बाद यदि शक्ति कम हो जाय तो उन्हें दुबारा चार्ज किया जा सकता है और ये फिर कई वर्षोंतक काम करते रहते हैं। सामान्य रूपसे चुम्बक-चिकित्सामें ये स्थायी चुम्बक ही काममें लाये जाते

हैं। इनकी इसी प्रकृतिके कारण अन्यान्य समस्त चिकित्सा-पद्धतियोंसे चुम्बक-चिकित्सा-पद्धति सबसे सस्ती सिद्ध होती है। चुम्बक-चिकित्सामें १०० गॉससे १५०० गॉस-तकके शक्तिसम्पन्न चुम्बकोंका प्रयोग प्रायः किया जाता है।

१-सिरेमिकके कम शक्तिसम्पन्न चुम्बक कोमल अङ्ग जैसे—आँख, कान, नाक, गला आदिके काममें लाये जाते हैं।

२-धातुसे बने मध्यम शक्तिसम्पन्न चुम्बक बच्चों तथा दुर्बल व्यक्तियोंके लिये प्रयोगमें लाये जाते हैं।

३-धातुसे बने हाई पावर चुम्बक अन्य सभी रोगों तथा रोगियोंके लिये प्रयोगमें लाये जाते हैं।

आमतौरपर प्रतिदिन रोगीको दस मिनट ही चुम्बक लगाना पर्याप्त है, पर कुछ पुरानी तथा लम्बी अवधिकी बीमारियोंमें जैसे—गठिया, लकवा, पोलियो, साइटिका दर्द आदिमें चुम्बक लगानेकी अवधि बढ़ायी जा सकती है। चुम्बक-चिकित्साके बारेमें अन्य लाभकारी तथा कुछ विशेष बातें इस प्रकार हैं—

(१) चुम्बकीय तरंगें शरीरके भीतर जमा हो जानेवाले हानिकर तत्त्वों (कैलशियम, कोलस्ट्रोल आदि)-को साफ करके खूनको पतला और साफ बनाती हैं। इससे हृदयगति सहज बनती है, रक्तचाप नियमित रहता है और घबराहट दूर हो जाती है।

(२) चुम्बक कोशिकाओंको विकसित करके उन्हें बढ़ा देता है, स्नायुओंको नया जीवन देता है।

(३) चुम्बकके दो ध्रुव होते हैं—उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव। उत्तरी ध्रुव कीटाणुओंको मारता है और फोड़ा, दाद, गठिया तथा चर्मरोगोंके लिये यह काममें लाया जाता है। दक्षिणी ध्रुव शरीरको गर्मी और शक्ति प्रदान करता है।

(४) चुम्बकका प्रयोग रोगके इलाज और उसकी रोकथाम—दोनोंके लिये किया जाता है।

(५) एक पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति भी नीरोग बने रहनेके लिये चुम्बक तथा चुम्बकीय जलका नियमित प्रयोग कर सकता है।

(६) चुम्बकके उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवोंपर जल, तेल, दूध आदि पदार्थ रखे जानेपर उनमें उसी प्रकारकी चुम्बकीय शक्तिका समावेश हो जाता है, जिसका प्रयोग विविध रोगोंके उपचारमें किया जाता है।

(७) चुम्बकीय शक्ति प्लास्टिक, कपड़े, गत्ते, शीशे, रबड़, स्टैनलेस स्टील तथा लकड़ीमेंसे भी पायी जा सकती है।

(८) प्रायः चुम्बकके उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव चुम्बकके टूटनेपर भी अलग नहीं होते, किंतु चिकित्साके प्रयोग-हेतु अलग-अलग ध्रुवोंके चुम्बकोंका निर्माण किया गया है।

चुम्बक-चिकित्सा लेते समय कुछ सावधानियाँ भी बरतनी आवश्यक हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) चुम्बक लगानेके बाद एक घंटेतक कोई ठंडी चीज खानी या पीनी नहीं चाहिये।

(२) लगभग दो घंटेतक नहाना भी वर्जित है।

(३) भोजन करनेके दो घंटे बाद ही चुम्बक लगाना चाहिये तथा चुम्बक लगानेके दो घंटे बाद ही भोजन करना चाहिये।

(४) गर्भवती स्त्रियों तथा शरीरके कोमल अङ्गोंपर शक्तिशाली चुम्बकोंका प्रयोग करना वर्जित है।

(५) किसी-किसीको चुम्बककी शक्ति ग्रहण करनेकी क्षमता नहीं होती है। ऐसे रोगीको मिचली, वमन, शरीरमें झुनझुनाहट, सिर चकरानेकी प्रतिक्रिया होने लगती है। ऐसी दशामें एक जस्तेकी प्लेटपर पाँच मिनट हाथ रखनेसे चुम्बकका प्रतिकूल प्रभाव समाप्त हो जाता है।

चुम्बक-चिकित्सा-क्षेत्रमें हुए अबतकके विकासों, प्रयोगों और अनुभवोंके आधारपर यह कहा जा सकता है कि चुम्बक मनुष्यों और पशुओंके विभिन्न रोगोंके उपचारका एक अच्छा माध्यम है। चुम्बकीय चिकित्सा-पद्धतिमें कोई ओषधि नहीं दी जाती। अतः इससे केवल लाभ ही हो सकता है हानि नहीं। अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंकी औषधियाँ मँहगी और कभी-कभी हानिकारक भी हो सकती हैं। भारत-जैसे देशके लिये तो यह पद्धति बहुत उपयोगी है।

स्पर्श-चिकित्सा

(बाबा श्रीश्रीमुरलीधरणजी)

आजके दौरमें दुनियामें सभी तनावग्रस्त हैं, बेचैन हैं, जिसके लिये आदमी स्वयं जिम्मेदार है। इंसान हर पल, हर दिन कुछ पानेके प्रयत्नमें लगा हुआ है। भौतिक वस्तुओंको पानेकी इच्छा ही तनावका मूल कारण है। हमें अपनी सोचको नकारात्मक नहीं सकारात्मक बनाना होगा।

नकारात्मक विचार एवं नकारात्मक कोशिकाएँ (Cells) दिव्य शक्तिद्वारा नष्ट की जा सकती हैं। यह दिव्य शक्ति ऋषिगण तपस्याके द्वारा प्राप्त कर लेते हैं। तपस्याके द्वारा यह शक्ति शरीरमें प्रवाह करने लगती है, जिससे विचारोंमें बदलाव आने लगता है। युग-युगसे हम सुनते आ रहे हैं कि किसी महात्माकी हथेलीके स्पर्शसे कई लोग शारीरिक रोगसे मुक्त हो गये। यह वही दिव्य शक्ति है, यह वही प्राण-शक्ति है, जिसे ऋषिगण हथेलियोंके द्वारा दूसरोंके शरीरमें प्रवाह करते रहे। आज इसीको स्पर्श-चिकित्सा कहा जाता है।

मानव-इतिहासमें सनातन कालसे प्राण-शक्तिपर आधारित चिकित्साकी विधि रही है। स्पर्श-चिकित्सा जिस ऊर्जासे होती है, यह वही शक्ति है, जो ब्रह्माण्डमें प्रत्येक जीवकी सृष्टि करती है और उसका पोषण करती है। स्पर्श-चिकित्सा हमारे देशकी अद्भुत देन है, यह हमारी धरोहर है। स्पर्श-चिकित्सा ऋग्वेदमें वर्णित है। धीरे-धीरे लोग इसे भूल गये और फिर जापानसे इसका व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। यह हमारी ही संस्कृतिका एक अंश है और आज देश-देशान्तरोंमें इस 'प्राण-शक्ति' को विभिन्न नामोंसे जाना जाता है। चीनी लोग इसे 'ची', ईसाई समाज 'प्रकाश', रूसी वैज्ञानिक 'बायोप्लाज्मिक ऊर्जा' और जापानी इसे 'रेकी' कहते हैं। हमारे देशमें भी आजकल यह 'रेकी' के नामसे प्रचलित है।

आजकल इस जापानी-विद्यानुसार थोड़े दिनके प्रशिक्षणद्वारा साधारण व्यक्ति इस ऊर्जाको अपने शरीरमें प्रवाहित करनेकी प्रणाली सीख लेता है। यह ऊर्जा सहस्रार-चक्रके माध्यमसे प्रवेश करती है। वहाँसे तीसरे नेत्र अर्थात् आज्ञा-चक्रसे होते हुए नीचेकी ओर विशुद्ध-चक्र (गले)-में आती है। फिर अनाहत-चक्र यानी हृदयतक पहुँचकर पूरे शरीरमें फैल जाती है। तत्पश्चात् मनुष्यकी हथेलियोंद्वारा प्रवाहित होती है। इससे हम अपनी तथा दूसरोंकी चिकित्सा सुचारुरूपसे कर सकते हैं। स्पर्श-चिकित्साके द्वारा प्राणीकी शारीरिक, मानसिक चिकित्सा एवं आध्यात्मिक विकास होता है। यह रोगके कारणोंको निर्मूल करती है।

स्पर्श-चिकित्सासे शारीरिक आरोग्यता—स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ मनका वास होता है अर्थात् यदि आपका शरीर विकार (रोग)-से युक्त है तो मनमें तरह-तरहकी आशंकाएँ उठती हैं। उसे दूर करनेके लिये पहले तनका स्वस्थ होना आवश्यक है। स्पर्श-चिकित्सासे सर्दी-जुकामसे लेकर कैंसरतकका उपचार किया जा सकता है। शुरूमें रोगीको जब स्पर्श-चिकित्सा दी जाती है तो भौतिक और भावनात्मक विकार शरीरसे निकलने शुरू होते हैं। आधुनिक औषधियोंके फलस्वरूप जो विषैले रासायनिक पदार्थ (toxins) शरीरमें घर कर लेते हैं, वे निकलने शुरू होते हैं। दो ही दिनमें रोगीको शरीर हलका प्रतीत होने लगता है। शरीरके चौबीस निर्धारित अङ्गोंपर हाथसे स्पर्श किया जाता है। रोगीके जिस अङ्गमें जितनी ऊर्जाकी जरूरत है, उतनी ही ऊर्जा रोगी चिकित्सकके हथेलियोंसे खींचता है। कहनेका तात्पर्य है कि चिकित्सकको तो अपनी हथेलियोंसे अनुभव हो ही जाता है, पर स्वस्थ होना चिकित्सकसे ज्यादा रोगीपर निर्भर करता है। इस चिकित्सापर रोगीका यदि दृढ़ विश्वास हो तो वह बहुत शीघ्र स्वस्थ हो सकता है। कई रोग जैसे कैंसर यदि बहुत आगे बढ़ चुका हो तो हालाँकि रोगी एकदम ठीक नहीं भी हो सकता है। पर उसके बाकी जीवनमें कम-से-कम पीड़ा तो कम की ही जा सकती है। ऐसा हमारा प्रत्यक्ष अनुभव है।

स्पर्श-चिकित्साकी यह विशेषता है कि इसमें सुयोग्य एवं अनुभवी चिकित्सक दूरसे भी चिकित्सा कर सकता है—स्पर्शकी आवश्यकता नहीं होती, केवल ध्यानके माध्यमसे ऊर्जा पृथ्वीके किसी भी कोनेमें रोगीतक

पहुँचायी जा सकती है।

मैं अपने कुछेक अनुभवोंका संक्षिप्तमें उल्लेख करना चाहूँगा। हालहीमें एक महिला जो गत कई वर्षोंसे जोड़ोंके दर्दसे बुरी तरह ग्रस्त थी, स्पर्श-चिकित्सा सीखने आयी। दर्दके मारे उसका इतना बुरा हाल था कि दीक्षाके दौरान हलकेसे हाथ छूनेमात्रसे वह चीख उठी। पर बादमें उसका दर्द ऐसा गायब हुआ कि दो महीने हो गये, उसने किसी आधुनिक औषधिको हाथतक नहीं लगाया है। एक सज्जन कमरके दर्दसे बेचैन थे और कोई ऐसी प्रणाली उन्होंने नहीं छोड़ी, जिसे उन्होंने न आजमाया हो। स्पर्श-चिकित्सासे इक्कीस दिनोंमें ही उन्हें दर्दसे पूर्णतः मुक्ति मिल गयी। जहाँ आधुनिक चिकित्सा हार मान जाती है, वहाँ स्पर्श-चिकित्सा एकमात्र उपाय है। हालहीमें एक महिला जिसे मधुमेहकी बीमारी है, उसने स्पर्श-चिकित्सा शुरू की। चिकित्साके आरम्भमें blood sugar count २३० थी और एक महीनेकी चिकित्साके उपरान्त यह १३० आ गयी। स्पर्श-चिकित्सा जब उसने शुरू की, तब सभी आधुनिक दवाइयोंको बंद कर दिया था। पैरोंका दर्द तो गायब ही हो गया।

स्पर्श-चिकित्सा और मानसिक उत्थान

प्रत्येक मनुष्यकी अपनी एक आभा होती है और हरेक मनुष्यके तरंगोंका स्तर अलग होता है। शरीरके अंदर और बाहर जो विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्रकी तरंगें हैं, उसके ऊपर हमारे आचार-विचार, रूप सभी निर्भर करते हैं। वर्तमान समयमें भौतिकताके कारण शरीरमें विद्यमान तरंगें बहुत निम्न स्तरकी हो गयी हैं, जिसकी वजहसे मनमें शंका पैदा होती है, नकारात्मक विचार उत्पन्न होते हैं। जब सूक्ष्म शरीरकी तरंगें बढ़ती हैं, तब नकारात्मक विचार स्वतः कम होने लगते हैं। स्पर्श-चिकित्सासे तरंगें बढ़ायी जा सकती हैं।

उदाहरणके रूपमें यदि कोई १००० (cycles/second)-के स्तरपर स्फुरण करता है तो नियमित रूपसे स्पर्श-चिकित्सा करते रहनेसे इसे २८०० से ३२०० (cycles/second)-तक उठाया जा सकता है। इससे कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत् होती है और सहस्रार-चक्रपर जा मिलती है। तब वह तारोंकी दुनिया (astral plane)-में पहुँच जाता है। उस स्तरपर पहुँचनेपर मनुष्य बहुत कुछ दिव्य देख-सुन पाता है। इसी तरह वेद-पुराण ऋषियोंको श्रुतिके रूपमें प्राप्त हुए। उस स्तरपर पहुँचनेपर मनुष्यका मन शान्त हो जाता है, नकारात्मक भावनाओंसे मुक्ति मिल जाती है, वह भौतिक आकर्षणोंको नकारने लगता है। मनुष्यका मानसिक संतुलन बना रहता है, तनाव कम हो जाता है, उसका मनोबल बढ़ जाता है, वह रोगमुक्त हो जाता है, उसकी स्मरण-शक्तिका विकास होता है और व्यक्तित्वमें निखार आता है।

स्पर्श-चिकित्सा और आध्यात्मिक विकास

जैसे-जैसे शरीरकी ऊर्जा बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे मनुष्यका आत्मसंतुलन बढ़ता है और कर्ताका परिचय महान् आत्माओंसे होने लगता है। वह जीवनके सही पथपर स्वतः अग्रसर होने लगता है। सांसारिक कर्मोंको निभानेके लिये जिन व्यक्तियोंका सम्पर्क अनिवार्य है, वही उसके इर्द-गिर्द रह जाते हैं, बाकी सब धीरे-धीरे दूर होते चले जायँगे।

ध्यान-मग्न होनेमें स्पर्श-चिकित्सा अत्यधिक सहायक रही है। स्पर्श-चिकित्सासे आपके शरीरकी तरंगोंमें बहुत परिवर्तन आता है और आप बिना कठिनाईके ध्यान-मग्न हो पाते हैं।

यदि आपका मन किसी दूसरेके बताये पथपर अग्रसर होना नहीं चाहता और यदि स्वयं मन जानना चाहता है कि सही क्या है, उचित मार्ग क्या है तो यह केवल ध्यानके माध्यमसे ही जाना जा सकता है और ध्यानके लिये शारीरिक ऊर्जा बढ़ाना आवश्यक है। स्पर्श-चिकित्सासे धीरे-धीरे आत्मबोध होने लगता है, आज्ञा-चक्रका विकास होता है, जिससे आप सुदूर रहनेवालोंके वातावरण एवं परिस्थितिका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

स्पर्श-चिकित्साके अन्य उपयोग

स्पर्श-चिकित्सासे किसी भी चीजकी ऊर्जा बढ़ायी जा सकती है, कोई भी शुभ कार्य निर्विघ्न पूर्ण किया जा सकता है। इससे पशु-पक्षी एवं पेड़-पौधोंका भी इलाज किया जा सकता है। कई बार तो शक्तिहीन वस्तुओंपर स्पर्श-चिकित्सा काम कर जाती है। अपने व्यवसाय, नौकरी, पढ़ाई या अन्य किसी भी अच्छी भावनाको स्पर्श-चिकित्साद्वारा लाभान्वित किया जा सकता है। बुरी लत छुड़ायी जा सकती है।

स्पर्श-चिकित्सा और भारतीय सभ्यता

हजारों साल पहलेसे हमारे ऋषि-मुनि स्पर्श-चिकित्साकी पद्धति प्रयोगमें ला रहे हैं। सनातन धर्मकी पर्याय भारतीय सभ्यता और स्पर्श-चिकित्साका बहुत घनिष्ठ सम्पर्क है। सनातन धर्मका अर्थ है सत्य और आनन्दका धर्म।

पुराने समयमें जब कोई चिकित्सा-पद्धति उपलब्ध नहीं थी, तब हम गुरु या महापुरुषके आशीर्वादपर ही निर्भर थे। किसी भी महापुरुषके सम्मुख जाते ही हम सर्वप्रथम हाथ जोड़ते हैं। अतिथिका स्वागत हम हाथ जोड़कर करते हैं। हाथ जोड़नेकी सभ्यता केवल हमारे देशमें ही है। प्रत्येक हथेलीके नाडीमण्डल, अँगुलियोंके छोरपर ८००० (cycles/second)-के स्तरपर तरंगें स्फुरण करती हैं। जब हम हथेलियोंको जोड़ते हैं तो अंदरकी तरंगें १६००० (cycles/second)-पर स्फुरण करने लगती हैं। इसका असर तुरंत हमारे दिमाग, शरीर और ग्रन्थियोंपर पड़ता है। मन शान्त हो जाता है, सद् विचार आने लगते हैं और हम सबको सम्मानसे स्वीकार करते हैं। किसी भी चीजकी स्वीकृति पानेके लिये हमारे मनमें स्वीकृतिकी क्षमता होनी चाहिये। केवल सोचनेसे यह प्राप्त नहीं हो सकता है। हाथ जोड़ते ही हमारे अंदरकी शक्तिका प्रभाव १६००० (cycles/second)-पर चलने लगता है।

हाथ जोड़नेके पश्चात् हम उनका चरण-स्पर्श करते हैं, साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं। इसका अर्थ यह होता है कि शरीरके आठ अङ्गों—आज्ञा-चक्र, हृदय, मणिपूर-चक्र, स्वाधिष्ठान-चक्र, घुटने और दोनों हाथको धरतीपर स्पर्श कराते हैं। फिर बायें हाथसे बायाँ पैर और दायें हाथसे दायाँ पैर छूना चाहिये। हमारे बायें मस्तिष्कका असर दायीं ओर होता है और दायें मस्तिष्कका बायीं ओर। दायाँ मस्तिष्क आध्यात्मिक प्रवृत्तिका होता है और बायाँ मस्तिष्क सोच-विचारका कार्य करता है। दोनोंकी तरंगें अलग-अलग स्तरकी होती हैं। यदि हम दायें हाथसे बायें पैरका स्पर्श करें तो दोनों मस्तिष्क अपनी प्रवृत्तिके प्रतिकूल काम करेंगे। साष्टाङ्ग प्रणाम करते समय शरीरकी हरेक प्रक्रियाका मन विश्लेषण करता है। मन कहता है कि तुम उन महापुरुषके चरणके धूलके बराबर हो। इससे अंदरके अहंकारका पतन हो जाता है। गुरु या उन महापुरुषने तपस्यासे बहुत शक्ति प्राप्त की है। उनके पैरोंके अँगूठोंसे हम उस ऊर्जाको अपने अंदर ले सकते हैं।

तत्पश्चात् महापुरुष हमें आशीर्वाद देते हैं। आशीर्वाद लेना है तो बरतन पूरी तरहसे खाली करना होगा। आधा झुकनेसे आधा आशीर्वाद प्राप्त होता है, साष्टाङ्ग प्रणामसे पूरा आशीर्वाद। वे अन्तरिक्षसे प्राण-शक्तिको अपने अंदर लेकर, अपने विचारोंको ऊर्जामें बदलकर, अपनी हथेलियोंद्वारा हमारे सहस्रार-चक्रतक पहुँचाते हैं। यह ऊर्जा हमारे सहस्रार-चक्र और आज्ञा-चक्रसे होते हुए हमारे पूरे शरीरमें फैल जाती है और हमारी ऊर्जा बढ़ जाती है। हमें अपने अंदर परिवर्तन प्रतीत होने लगता है और मन शान्त हो जाता है एवं हम शारीरिक स्वस्थता प्राप्त कर लेते हैं।

आज हम सभी तनावग्रस्त हैं। न हम ध्यान लगा पाते हैं, न अपनी अन्तरात्माको जाग्रत् कर पाते हैं, अपना अस्तित्व नहीं जान पाते। आत्मोद्धारके लिये और जीवनको सफल बनानेके लिये शास्त्रोंमें बतायी गयी प्रक्रियाओंको अपनाना होगा। महापुरुषोंका सांनिध्य ही एकमात्र उपाय है। गुरुका आशीर्वाद, उनके हाथोंका प्रसाद और उनका चरणामृत—ये सब स्पर्श-चिकित्साके ही अङ्ग हैं। असंख्य सकारात्मक विचारोंसे वह स्पर्श करते हैं और उनके स्पर्शका लाभ मिलता ही है।

स्पर्श-चिकित्सा सभी चिकित्सा-पद्धतिमें सबसे सरल है और कभी हानिकारक नहीं हो सकती है। नामके अनुसार केवल स्पर्शसे ही चिकित्सा होती है। इसलिये आजकल हर पद्धतिके चिकित्सक, चाहे होम्योपैथी हो या आधुनिक चिकित्सा, चाहे आयुर्वेद हो या एक्यूप्रेशर, सभी स्पर्श-चिकित्साका ज्ञान प्राप्त करके इसे सुचारुरूपसे अपनी पद्धतिके साथ जोड़कर इससे लाभ उठा सकते हैं।

स्पर्श-चिकित्सासे तन, मन और आत्मा—ये तीनों नीरोग हो जाते हैं, आध्यात्मिक विकास होता है, मानसिक संतुलन बना रहता है, विचार सकारात्मक हो जाते हैं, तब शरीर स्वतः ही रोगमुक्त हो जाता है।

'स्पर्श-चिकित्सा' बनाम 'रेकी-चिकित्सा'

(डॉ० श्रीराजकुमारजी शर्मा)

स्पर्शद्वारा ऊर्जाका शक्तिपात ही चिकित्सा-क्षेत्रमें 'रेकी-चिकित्सा'-पद्धतिके नामसे प्रसिद्ध है।

यह सरल-सुविधाजनक, सस्ती और दुष्प्रभावरहित उपचार-पद्धति है। अन्य चिकित्सा-पद्धतियोंके प्रतिकूल नहीं, सहयोगी भी है। यह रोग-शोक, चिन्तासे मुक्तकर नाना दुष्प्रवृत्तियोंका समूल नाश करनेमें भी उपयोगी है। अन्तःप्रेरणा, अतीन्द्रिय श्रवण-दृष्टिकी क्षमता, बल-बुद्धिको बढ़ानेवाली और काया-कल्प कर मनको शान्ति तथा ध्यान-क्रियामें सहयोग प्रदान करनेवाली है। साथ ही संकल्प और प्रतीकोंद्वारा ऊर्जा-प्रेषणसे दूरस्थ उपचारमें भी सक्षम है।

रेकी है क्या?

'स्पर्श-चिकित्सा' बनाम 'रेकी-चिकित्सा'-पद्धतिके प्रणेता डॉ० मिकाओ उसुई हैं और उनका 'रेकी' शब्द जापानी है। 'रे' का अर्थ है 'ईश्वरीय-सृष्टि' (ब्रह्माण्ड) और 'की' का अर्थ है 'प्राण-ऊर्जा' (जीवनी-शक्ति)।

रेकी-स्रोत कहाँ?

डॉ० उसुईद्वारा प्रस्तुत 'रेकी' अर्थात् 'ऊर्जा-प्रवाह'-का ज्ञान मानवको सृष्टिके आदिमें ही हो चुका था। महापुरुषोंने चाहे हृदयकी एकाग्रतामें स्वयं अनुभव किया या अन्यसे प्राप्त किया, यह है उसी ज्ञानकी पुनरावृत्ति। यह ज्ञान भारतसे तिब्बत-चीन होते हुए जापान पहुँचा और डॉ० उसुई (पूर्व ईसाई)-ने भारत-तिब्बत-यात्रा और बौद्ध धर्मके साथ इस ज्ञानकी दीक्षा ली। भारतसे जापानतककी यात्रामें इस ज्ञानका कलेवर बदल जाना स्वाभाविक है, पर इसकी मूल आत्मा वही है।

रेकी-परम्परा

डॉ० उसुईके उन्नीस शिष्योंमेंसे यद्यपि 'डॉ० वातानोव' सप्त-स्तरीय ज्ञानी थे, परंतु टोकियोमें 'रेकी-चिकित्सालय'-की स्थापनासे यश मिला डॉ० चुजीरो हयाशीको। उनके देहान्त (सन् १९३९)-के पश्चात् उनकी शिष्या श्रीमती 'हवायो टकाटा' (जापानी-अमेरिकन महिला)-ने अपने बाईस शिष्योंको यह ज्ञान देकर (सन् १९८० में) इहलोकसे विदा ली। इस समय 'रेकी एलायन्स' और 'अमेरिकन अन्तर्राष्ट्रीय रेकी ऐसोसियेशन'—ये दो संस्थाएँ तथा व्यक्तिरूपसे मारीन ओ टूल, कैटनानी तथा पाला हॉरेन इसके शिक्षक हैं।

'रेकी' अर्थात् ऊर्जा-प्रवाह दिव्य शक्ति-चैतन्यस्वरूप है, जिसकी सिद्धि-हेतु आध्यात्मिक साधना, एकाग्रता एवं सतत अभ्यासकी आवश्यकता है।

रेकी-चिकित्सा-पद्धति

रोगोत्पत्तिके कारण—आत्मा-परमात्मामें विश्वास, श्रद्धा, निष्ठा, दृढ़ इच्छाशक्ति, ईमानदारी, संयम, त्याग, विनम्रता, सत्साहस और माधुर्य आदि प्रवृत्तियाँ सुख-शान्ति, आरोग्य और सम्पन्नताकी हेतु हैं। इनके विपरीत छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष, चिन्ता-क्रोध, लोभ-मोह, आलस्य-असंयम, अन्याय-असत्य, निन्दा एवं कटुवाणी आदि नकारात्मक दुष्प्रवृत्तियाँ और प्रदूषित वातावरण, दुर्व्यसन, अपखाद्य तथा जीवनकी जटिलताएँ शरीरकी रस-स्रावी ग्रन्थियोंको असंतुलित कर मानसिक तनाव, घबराहट, चिन्ता, सिर-दर्द, ब्लड-प्रेशर, अनिद्रा, अपच, शारीरिक दौर्बल्य, अपङ्गता, ट्यूमर और कैंसर आदि रोग-शोकको जन्म देती हैं।

उपचार-प्रक्रिया—रेकी—ऊर्जा स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर[1]का सशक्त माध्यम 'साधना-चक्र-प्रणाली'[2] और 'रस-स्रावी-प्रणाली' में तारतम्य बैठाकर (पुनः संतुलन स्थापित कर) शरीरको रोग-मुक्त करती है। उसई-पद्धतिमें सूक्ष्म शरीरके चक्र स्थूल शरीरकी रस-स्रावी ग्रन्थियोंके समीप ही हैं। यथा—सूक्ष्म-शरीरमें सहस्रार-चक्रके समीप

१. शास्त्रोंके अनुसार हमारा शरीर पाँच कोशोंमें विभक्त है—आनन्दमय, विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय एवं अन्नमय। अन्नमय कोश—'स्थूल-शरीर', विज्ञानमय, मनोमय तथा प्राणमय कोश मिलकर 'सूक्ष्म-शरीर' तथा आनन्दमय कोश 'कारण-शरीर' है।

२. गुदाके निकटसे मेरुदण्डके भीतरसे मस्तिष्कके ऊपरतक जानेवाली सर्वश्रेष्ठ नाडी—'सुषुम्णानाडी' में सत्त्वप्रधान प्रकाशमय अद्भुत शक्तिशाली, सूक्ष्म-शरीर प्राण तथा विभिन्न नाडियोंसे मिले सूक्ष्म-शक्तियोंके अनेक केन्द्र हैं, जिन्हें पद्म-कमल तथा चक्र कहते हैं। सुषुम्णानाडीमें विद्यमान मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार-चक्र हैं।

पीनियल ग्रन्थि स्थित है। यहीं ज्ञाता-ज्ञेयका—आत्मा-परमात्माका एकाकार होता है। आत्म-ज्ञान, विवेक-शक्तिके केन्द्र आज्ञाचक्रके समीप आत्मसंचालित नाडी-तन्त्र, रस-स्रावी पिट्यूटरी ग्रन्थि स्थित है, इसी प्रकार थाइराइट ग्रन्थि, थाइमस ग्रन्थि, एड्रीनल आदि ग्रन्थियाँ भी अनाहतचक्र, मणिपूरचक्र, स्वाधिष्ठानचक्रके समीप स्थित हैं। रेकी ऊर्जा-उपचारमें इन ऊर्जा-केन्द्रों और चक्रोंके संतुलनसे शरीरके भावतरंगोंमें वृद्धि होनेसे शरीरकी सभी प्रणालियोंमें संतुलन आ जाता है।

रेकीके पाँच सिद्धान्त

सफलता पानेके मार्गमें सबसे बड़ी चुनौती नकारात्मक विचारों तथा कार्योंसे छुटकारा पाना, सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना एवं बीचमें असफलताओंके रहते धैर्य धारण कर आगे बढ़ते रहनेसे मनोरथ पूरा होता है। डॉ० उसईने अन्त:करणको विकृत करनेवाली रोगोंकी जनक नकारात्मक प्रवृत्तियोंको सकारात्मक प्रवृत्तियोंमें बदलने-हेतु पाँच सिद्धान्तोंको निर्धारित किया। साधक इनका नित्य-प्रति संकल्प लेता है, सोनेसे पूर्व दोहराता है और दिनभरके अपने क्रिया-कलापका स्वत: द्रष्टा बनकर, मूल्याङ्कन कर आत्मसंतोष अनुभव करता है। ये उसे दिनभरके प्रपञ्चोंसे दूर रखते हैं, दिनचर्यामें सम्मिलित हो जीवनके अङ्ग बनकर अन्तर्ज्ञान एवं विचारोंको पवित्र कर सुख-शान्तिकी नींद सुलाते हैं। मानसिक ऊर्जाओंके पुन:संतुलन-क्षमताओंकी किसीमें कमी नहीं है, पर यदि इन्हें विकसित या इनका उपयोग न किया जाय तो इन क्षमताओंका कोई लाभ नहीं—

१-केवल आज मैं क्रोध नहीं करूँगा—आवेशमें क्रोधी अनर्गल अलापद्वारा राहोंमें काँटे बिखेर अपना तथा अन्यका जीवन कण्टकमय बना देता है और वे जीवनभर चुभते रहते हैं।

२-केवल आज मैं चिन्ता नहीं करूँगा—

'चिता दहति निर्जीवं चिन्ता दहति जीवितम्'।

'चिता तो निर्जीवको जलाती है, पर चिन्ता जीवित व्यक्तिको ही जला देती है।'

भविष्य जो आया ही नहीं, उसकी चिन्तामें रहकर वर्तमानको खोना है। जो बीत गया उसमें भी अब कुछ किया नहीं जा सकता। उसकी चिन्ता भी व्यर्थ है। अत: वर्तमानको सुधारना है।

३-केवल आज मैं उस परम सत्ताका आभार व्यक्त करूँगा—आज जो भी ज्ञान-मान-सम्मान, यश-पद-बल, धन-ऐश्वर्य मेरा है, उसे मैंने परिजन-परिश्रम, बुद्धि-चतुराई और इन्द्रियोंद्वारा प्राप्त किया, पर ये संचालित तो उसी सत्तासे हैं, उसके बिना मेरी हस्ती क्या? जहाँ मैं विवश, हताश-निराश हुआ, उसीने हाथ दे सम्भाला। अत: मुझे उस परम सत्ताका आभार व्यक्त करना होगा।

४-केवल आज मैं अपना काम ईमानदारीसे करूँगा—एक झूठको पचाने-हेतु सौ झूठ बोलकर भी अन्तरात्मा बेचैन एवं तनावग्रस्त रहता है और ईमानदार रहनेसे—सत्यकी शरण लेनेसे नि:संकोच, संतुष्ट-शान्त होकर सुखकी नींद सोये।

५-केवल आज मैं सब प्राणियोंसे प्रेम एवं उनका सम्मान करूँगा—सृष्टिके समस्त मानव, पशु-पक्षी, पेड़-पौधोंमें उसी चैतन्यकी चेतना व्याप्त है तो फिर पराया कौन? सब अपने हैं, सभीसे प्रेम करना है, सबको सम्मान देना है।

आहार—मांस-मदिरा, धूम्रपान-तम्बाकू आदि, नशीले पेय-पदार्थ, अधिक तेल-मसालोंमें तले-भुने, चरपरे-चटपटे, गरिष्ठ पदार्थोंसे रहित, सादा सुपाच्य पोषक भोजन ले। भरपूर जल पीये, पर भोजनके समय नहीं। ताजे फलों और शाक-सब्जियोंका सेवन करे या उनका रसाहार ले। फल तथा कच्चे शाक-सब्जियोंके रसमें नीबू, गाजर और सेबका रस मिलानेपर रसाहार स्वादिष्ट होकर बीस-पचीस मिनटमें पचकर नवीन रक्तकणों—कोशिकाओंका शीघ्रातिशीघ्र निर्माण कर शरीरसे विष, विजातीय पदार्थोंको निकालकर, शरीरको रोग-मुक्त कर नयी स्फूर्ति तथा शक्ति प्रदान करते हैं। इसके साथ ही आसन, प्राणायाम तथा ध्यानकी प्रक्रियाका भी अवलम्बन ले। ऊर्जा-प्रवाहकी तरंग जितनी मुक्त होती है, उसका अनुभव मनको स्वत: होता है और हम उतने ही समृद्ध-संतुष्ट और स्वयंको स्वस्थ भी अनुभव करने लगते हैं।

साधक प्राणायामद्वारा मस्तिष्कके स्नायु-जाल (मस्तिष्कसे सम्पूर्ण दूषित रक्तको निकाल और हृदयमें शुद्ध रक्त

अधिकाधिक भरनेपर) तथा मनोविकारों (काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मात्सर्य, ईर्ष्या-द्वेष और घृणा-शोकादि)-को दबाकर जहाँ मानसिक समता-स्थापनमें समर्थ होता है, वहीं शरीरके अन्य स्नायुओं, ग्रन्थि-समूहों और मांस-पेशियोंको समृद्ध-सशक्त एवं पुष्ट बनाता है। श्वास लेते हुए भावना करे कि शुद्ध वायुके साथ हमारा शरीर सुन्दर, सशक्त, स्वस्थ एवं नीरोग हो रहा है और श्वास छोड़ते समय ऐसी ही भावना करे कि शरीरके सब दूषित मल-विकार आदि श्वासके साथ बाहर निकल रहे हैं।

श्वास-क्रिया स्वाभाविक होनेपर, मनके स्थिरता-हेतु दिव्य ऊर्जाके स्थूल स्वरूप-चिन्तनार्थ श्वास लेते समय भावना करे कि सूर्य-जैसा स्वर्णमय प्रकाशपुञ्ज आकाशमें स्थिर है। सारा आकाश प्रकाशमान है। श्वास छोड़ते समय भावना करे कि वह सुनहरा प्रकाशपुञ्ज (सुदर्शनचक्रकी भाँति) घूमता हुआ हमारे सिरपर धीरे-धीरे आ रहा है। गहरे श्वासकी गतिके साथ वह बैंगनी प्रकाश छोड़ते हुए सहस्रार-चक्रके भीतर प्रवेश कर रहा है। हमारे गहरे श्वासके साथ वह धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुआ क्रमशः ज्ञान-चक्रतक आते हुए नीलवर्ण, विशुद्धचक्रमें हरित-नील (फिरोजी) आभा, अनाहतमें हरितवर्ण, मणिपूरमें पीतवर्ण, स्वाधिष्ठानमें सिन्दूरी वर्ण तथा मूलाधारमें रक्तवर्णी आलोक फैलाकर जागरूक चेतना, प्रेम और समृद्धि प्रदान कर रहा है।

रेकी-आवाहन—अपने दोनों हाथोंको पुष्पाञ्जलि-अर्पणकी मुद्रामें पसारते हुए स्वयंका (अथवा अन्यका) उपचार करनेसे पूर्व रेकी-शक्तिका निम्न प्रकारसे आवाहन करे—'हे ईश्वरीय रेकी-शक्ति! मैं (अपना नाम उच्चारण कर) श्री (रोगीका नाम लेकर)-का उपचार करना चाहता हूँ, कृपया अपनी दिव्य शक्तिका मेरे शरीरमें संचार करें।' यह तीन बार कहना है। इसके पश्चात् मार्ग-दर्शक गुरुका आवाहन करे—'समस्त जाने-अनजाने रेकी मार्गदर्शक गुरुजनो! मैं (नाम) रेकी-उपचार करने-हेतु आपका आवाहन कर रहा हूँ। आप उपचारमें सहयोग करनेकी कृपा करें।'

ऊर्जा-चक्रोंका चैतन्यकरण—हथेलियोंके मध्य गहराईमें एक इंच व्यासके और अँगुलियोंके ऊपरी छोरोंके पोरोंपर नन्हे चक्र हैं। इनपर ध्यान देते हुए बारी-बारीसे पहले एक हाथकी अँगुलियोंके चक्रोंको दूसरे हाथकी हथेलीके चक्रमें, घड़ीकी सूइयोंके चलनेकी दिशामें प्रत्येकको सात-सात बार फिर दूसरी हथेलीकी अँगुलियोंको तथा दोनों हथेलियोंके चक्रोंको परस्पर इक्कीस-इक्कीस बार घुमाते हुए रगड़कर चेतन करे। अब दोनों हथेली आमने-सामने दो फीटकी दूरीपर रख धीरे-धीरे इन्हें पास लानेका प्रयास करे। ध्यान चक्रोंपर ही केन्द्रित रहे। यदि हथेलियोंमें हलकी-सी कम्पन-झनझनाहट-कसाव या तनाव आदिकी संवेदनशीलताका आभास हो तो समझ ले, चक्र चेतन हो गये हैं और आगे उपचारकी ओर बढ़े, अन्यथा इन्हें जाग्रत् करने-हेतु पुनः उक्त क्रिया दोहराये।

आभा-मण्डल-शुद्धिकरण—देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियोंके मुख-मण्डल उनके चित्रोंमें प्रखर प्रकाशयुक्त आभा-मण्डलके मध्य दर्शाये जाते हैं। ऐसा ही चुम्बकीय या प्रकाश ऊर्जा-क्षेत्र सभी निर्जीव-सजीव प्राणियों, पेड़-पौधोंका भी होता है। इसे आभा-मण्डल (ओरा) कहते हैं। शरीरसे लगभग छः से आठ फीटकी दूरीतक बाह्य आभा-मण्डल और चारसे छः इंचकी दूरीतक आन्तरिक आभा-मण्डल फैला रहता है। रेकी-उपचार आन्तरिक आभा-मण्डलपर अवलम्बित है। रोगीको अपने सामने खड़ाकर ले अथवा लिटा ले। उपचारकर्ता अपनी हथेलियाँ कपनुमा मुद्रामें कर उसके सिरके ऊपरसे पैरोंतक शरीरसे तीन-चार इंचकी दूरी बनाये रखे और शरीरके समस्त दूषित तत्त्वोंको समेटकर अपने बायें कन्धेके ऊपरसे झिटकते हुए फेंककर अन्तरिक्षमें प्रज्वलित तप्त अग्निकुण्डमें भस्म कर दे। ऐसी क्रिया सात बार दोहराये। मनमें भावना करे कि प्रकृतिकी ओरसे जामुनी रंगकी अग्नि जल रही है, जिसमें दूषित तत्त्व भस्म हो रहे हैं।[१] इस तरह आभा-मण्डलके शुद्धिकरणोपरान्त अपने हाथ शुद्ध[२] कर स्वतः शुद्ध जल पीये, रोगीको भी

१-रोगीके शरीरमें कोई घाव, नासूर, फोड़ा, ट्यूमर या कैंसर आदि हो तो उपचारकर्ता मनमें भावना करे कि वह स्वयं एक सर्जन है और कल्पित रूपसे उस स्थलकी चीर-फाड़-क्रिया हाथोंसे करते हुए उसके अंदरका सब दूषित पदार्थ समेटकर भस्म कर रहा है।

२-एक चम्मच नमक एक ग्लास पानीमें घोलकर हाथोंको शुद्ध करनेसे समस्त दूषित पदार्थ गल जाते हैं।

पिलाये। प्रायः सामान्य रोग तो तीन-चार दिनतक आभा-मण्डलके शुद्ध करनेपर शान्त हो जाते हैं, पर जीर्ण रोगोंके लिये रेकी-उपचार भी दे।

स्पर्श-ऊर्जा (रेकी)-उपचारकी चौबीस स्थितियाँ— चक्रों (हथेलियों)-के चेतन होनेपर अनुभव करे कि दिव्य ऊर्जा शरीरमें प्रवाहित हो रही है। अब अपनी हथेलियोंसे निम्न स्थितियोंमें कम-से-कम तीनसे पाँच मिनटतक स्पर्श दे।[1] पीडित अङ्गोंपर पंद्रहसे तीस मिनट (उदर और तलुओंका शरीरके विभिन्न अङ्गोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसपर) उपचारके अन्तमें अतिरिक्त ऊर्जा-स्पर्श देनेसे ये नीरोगी और सशक्त होंगे। उपचारकर्ता तथा रोगी (दोनों)- की श्वसन-क्रियाकी लय समान होनेपर उसकी पीडा एवं आरामकी दशाका अनुभव उपचारकर्ताको होने लगता है। हथेलीकी अँगुली परस्पर मिली रहे, सामान्य स्थितिमें बायीं हथेली बायें अङ्गोंमें और दायींको दायें अङ्गोंमें निम्न स्थितियोंमें निर्देशानुसार शरीरको स्पर्श दे। वक्ष एवं प्रजनन अङ्गोंका स्पर्श वर्जित है। तीन इंच ऊपरसे ऊर्जा स्पर्श दे। एक स्थितिसे दूसरी स्थितिमें जाते समय शरीरसे ऊर्जा-सम्पर्क न टूटे। पहले एक हाथ उठाकर वह जब दूसरी स्थितिपर पहुँच जाय तब दूसरा हाथ उठाये।

स्पर्श-चिकित्साकी चौबीस स्थितियाँ इस प्रकार हैं—(१) दोनों हथेलियाँ दोनों आँखोंपर, (२) कानोंपर, (३) जबड़ोंपर, (४) कनपटियोंपर, (५) मस्तिष्कपर (पीछे) दोनों एक साथ, (६) बायीं हथेली पाँचवीं स्थितिमें ही दायें मस्तकपर, (७) बायीं हथेली गर्दनके पीछे दायीं आगे गलेपर, (८) बायीं गलेसे नीचे वक्षपर दायीं-बायीं हथेलीके नीचे, (९) बायीं नाभिसे ऊपर तथा दायीं नाभिपर, (१०) बायीं-दायीं हथेलीके नीचे पेडूपर दायीं उसके नीचे, (११) फेफड़ोंपर, (१२) बायीं प्लीहा-हृदयपर, दायीं यकृत्पर, (१३) बायीं छोटी आँतपर, दायीं बड़ी आँतपर, (१४) दोनों हथेलियाँ नाभिसे नीचे मूत्राशय, डिम्बग्रन्थि, अण्डकोशपर, (१५) दोनों कन्धोंपर, (१६) पीछे गुर्दोंपर, (१७) गुर्दोंके नीचे पीठपर, (१८) रीढ़के अन्तिम छोरपर दोनों साथ-साथ, (१९) बायीं हथेली दायीं भुजापर, दायीं हथेली बायीं भुजापर (आलिङ्गनमुद्रामें), (२०) जंघाओंपर, (२१) घुटनोंपर, (२२) पिण्डलियोंपर, (२३) टखनोंपर और (२४) तलुओंपर।

तदनन्तर पीडित अङ्गों—उदर और तलुओंपर अतिरिक्त स्पर्श देना है तो दे, अन्यथा रेकी-उपचार पूरा हुआ। अब रेकी-मार्गदर्शक गुरुओं एवं रोगीका आभार व्यक्तकर सम्बन्ध तोड़ ले। यथा—'हे दिव्य रेकी-शक्ति! आपका एवं समस्त जाने-अनजाने मार्गदर्शक रेकी गुरुओंका इस उपचार-क्रियामें कृपा करने-हेतु मैं (नाम) आपका आभारी हूँ एवं श्री (रोगीका नाम लेकर)-ने जो अपने उपचारका दायित्व मुझे सौंपा था, उसके लिये आभार व्यक्त करता हूँ और अब आप सभीसे मैं अपना सम्बन्ध विच्छेद करता हूँ, विच्छेद करता हूँ; विच्छेद करता हूँ। इसके उपरान्त उपर्युक्त विधिसे हाथ शुद्धकर शुद्ध जल स्वयं पीये एवं रोगीको पिलाये।[2]



त्रिफला—हरड़, बहेड़ा, आँवलाकी समान मात्राको त्रिफला कहते हैं।
त्रिकटु—सोंठ, कालीमिर्च, पीपलकी बराबर मात्राको त्रिकटु कहते हैं।
त्रिमद—वायविडंग, नागरमोथा, चित्रककी समान मात्राको त्रिमद कहते हैं।
त्रिजात—दालचीनी, तेजपात एवं इलायचीकी समान मात्राको त्रिजात कहते हैं।
त्रिलवण—सेंधानमक, कालानमक और विड्नमककी समान मात्राको त्रिलवण कहते हैं।



१-उपचारके समय बारम्बार समयकी अवधि एवं स्थितियोंको बदलते समय ध्यान भङ्ग न हो, पूर्वहीमें समस्त निर्देशोंको रिकार्ड कर ले।

२-इस लेखमें प्रस्तुत तथ्योंपर यदि कोई शंका हो तो उसके समाधान-हेतु निम्नलिखित पतेपर जवाबी पोस्टकार्ड भेज सकते हैं, अथवा दूरभाषसे सम्पर्क कर सकते हैं— डॉ० राजकुमार शर्मा

ॐश्रीहरिः पॉलीक्लीनिक, विष्णु मार्केट-दौराला, पिन—२५०२२१, दूरभाष—(०१२१) ६४४३२१

पिरामिड-चिकित्सा

(डॉ० श्रीसत्यनारायणजी बाहेती)

मिस्रके पिरामिड दुनियाके सात आश्चर्योंमें परिगणित हैं। दुनियाके वैज्ञानिक उसका रहस्य जाननेको उत्सुक हैं। उसकी गहन खोजमें इस प्रकार लगे हुए हैं कि हजारों साल पहलेकी लाशें (ममी) पिरामिडके नीचे रखी हुई हैं। फिर भी खराब क्यों नहीं हो रही हैं, इसका क्या कारण है? अभीतककी की हुई खोजोंसे पता चला है कि इसके नीचे तथा इसके ऊपर विद्युत्-लहरें बराबर चलती रहती हैं, जिनसे ऊर्जाका बहाव निरन्तर होता रहता है, इसी कारण लाशोंमें दुर्गन्ध (बदबू) नहीं आ रही है। कुछ और गहन खोज करनेके पश्चात् वैज्ञानिकोंने यह भी पाया है कि इस ऊर्जाद्वारा हम अपने दैनिक जीवनमें भी लाभ उठा सकते हैं। पिरामिडद्वारा विभिन्न उपयोग हो सकता है और हम दैनिक जीवनमें इसे अपनाकर अधिक लाभ उठा सकते हैं।

पिरामिडके कुछ उपयोग इस प्रकार हैं—

१-पिरामिडका व्यवहार सिरके ऊपर करनेसे मानव-मस्तिष्कपर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है और हमारे विचार अच्छे हो जाते हैं।

२-बच्चोंको घरपर अध्ययन-कालमें पिरामिड पहनाकर तथा कुर्सीके नीचे रखकर उनकी बुद्धिका विकास करवा सकते हैं, उन्हें याद जल्दी हो जायगा एवं होशियार हो जायँगे।



अध्ययन करते वक्त पिरामिडका उपयोग

३-पिरामिडको जलकी हंडीके ऊपर रख देनेसे बारह घंटेके भीतर ही जल अधिक स्वादयुक्त, मीठा तथा आरोग्यप्रद हो जाता है।



जलको आरोग्यप्रद बनानेके लिये पिरामिडका उपयोग

४-खाने-पीनेके सामान एवं अङ्कुरित खाद्य-पदार्थ पिरामिडके नीचे रखनेसे गुणयुक्त एवं स्वादयुक्त हो जाते हैं तथा लम्बे समयतक ताजे बने रहते हैं। दूध, दही, मिठाई तथा अनाज कुछ भी रख सकते हैं।

५-शरीरके जिस भागमें रोग या दर्द हो, उस भागपर पिरामिड रखनेसे रोग एवं दर्द दूर हो जाता है। पेटकी गड़बड़ीमें पिरामिड पेटपर रखनेसे पेट ठीक हो जाता है तथा पिरामिडका चार्ज किया हुआ गरम जल पीनेसे भी अच्छा लाभ होता है।



दर्दको दूर करनेके लिये पिरामिडका उपयोग

६-तरकारी तथा साग-भाजी पिरामिडके नीचे रखनेपर ताजी बनी रहती है, जल्दी खराब नहीं होती।

७-प्रतिदिन चेहरे एवं आँखोंको पिरामिडयुक्त जलद्वारा धोनेसे त्वचा चमकने लगती है, चेहरेकी कान्ति एवं आँखोंकी रोशनी बढ़ जाती है।

८-पिरामिडको हैटकी तरह प्रतिदिन प्रातः-सायं आधे घंटेतक पहन रखनेसे सिर-दर्द, आधा-शीशी, बालोंका झड़ना, साइनस, टेंशन, डिप्रेशन, अनिद्रा, सफेद बाल आदि बीमारियाँ दूर होती हैं।

९-ध्यान तथा पूजा-प्रार्थना करते समय पिरामिड पहन लेनेसे एकाग्रता मिलती है।

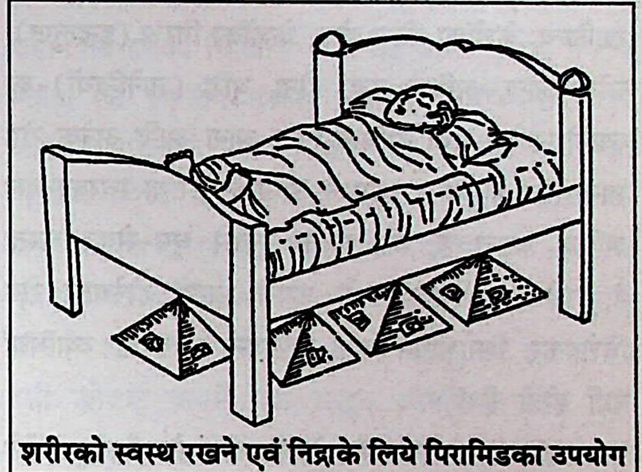
१०-क़ब्ज़के रोगी यदि प्रातः चार गिलास जल पीकर पेटपर पिरामिड रखें तो मल-विसर्जनमें कठिनाई नहीं होगी।

११-ऑफिसमें कुर्सीके नीचे पिरामिड रखनेसे ऊर्जा (Energy) मिलती है तथा शरीरमें फुरती आती है।

१२-टूथपेस्ट, तेल, बाम एवं दवाइयाँ पिरामिडके नीचे तीन-चार दिन रखनेसे उनकी शक्ति बढ़ जाती है।

१३-बगीचोंमें पिरामिडयुक्त जलका सिंचन करनेसे फूलोंके रंग आकर्षक हो जाते हैं और वे रोगमुक्त रहते हैं।

१४-रातको सोते समय पलंगके नीचे पिरामिड रखनेसे बहुत अच्छी नींद आती है तथा नींदकी गोलियोंसे छुटकारा मिल जाता है।



शरीरको स्वस्थ रखने एवं निद्राके लिये पिरामिडका उपयोग

१५-पिरामिड-जलसे तैयार की गयी तुलसीकी पत्ती खानेसे सर्दी, ज्वर, दर्द तथा अनेक रोगोंमें लाभ होता है।

१६-वास्तुशास्त्रमें भी पिरामिडका विशेष महत्त्व बताया गया है।

१७-अनेक पिरामिडोंसे बने यन्त्रको नित्यप्रति व्यवहारमें लानेसे शरीरके हर प्रकारके रोग दूर हो जाते हैं।

धूम्रपान-चिकित्सा

[औषधियोंका धुआँ नासिका तथा मुखद्वारा लेना]

(श्रीनाथूरामजी गुप्त)

औषधियोंके धूम्रको पान करनेकी एक चिकित्सा-पद्धति भी आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें वर्णित है। यज्ञोंद्वारा अग्निकुण्डसे निकले पवित्र होतव्य द्रव्यसे उद्दीप्त वायुद्वारा सम्पूर्ण वायुमण्डलकी पवित्रता सर्वविश्रुत ही है। इस धूमसे न केवल देवता आप्यायित होते हैं, अपितु सम्पूर्ण प्राणिजगत् लाभान्वित होता है। प्राचीन कालमें नित्य हवनकी परम्परा थी। जिससे पूरा परिसर सुगन्धित रहता था। आयुर्वेदके आचार्योंने रोगोंके उपशमनके लिये विशेष प्रकारकी औषधियोंद्वारा धूम्रवर्तिकाका निर्माण करके पुनः उसे प्रज्वलित कर विधिपूर्वक धूम्रके सेवनका विधान किया है, जिससे अनेक रोग शान्त हो जाते हैं। यह धूम्रपान आजके तथाकथित पतनकारी और अनारोग्यकारक धूम्रपानसे सर्वथा भिन्न है।

इसमें यह सिद्धान्त है कि जब मादक द्रव्योंकी गन्ध अग्निके संसर्गसे तीव्र होकर शरीरको अधिक हानि पहुँचाती है तथा नये विकार उत्पन्न करती है तो रोगनाशक या पौष्टिक द्रव्य निश्चय ही अग्निके माध्यमसे विखण्डित हो, धूम्रपानद्वारा शरीरको पुष्टि तथा आरोग्य प्रदान करेंगे।

धूम्रपानके लाभके विषयमें आचार्य चरक बताते हैं—धूम्रपान करनेसे सिरका भारीपन, शिरःशूल, पीनस, अर्धाव-भेदक (Hemicrania), शूल, कास, हिचकी, दमा, गलग्रह,

दाँतोंकी दुर्बलता, कान, नाक, नेत्रोंसे दोषजन्य-स्रावका होना, पूतिघ्राण (नाकसे दुर्गन्धका निकलना Ogoena), आस्यगन्ध (Foul smell of mouth), दाँतका शूल, खालित्य, केशोंका पीला होना, केशोंका गिरना (इन्द्रलुप्त), छींक आना, अधिक तन्द्रा होना, बुद्धि (ज्ञानेन्द्रियों)-का व्यामोह होना तथा अधिक निद्रा आना आदि अनेक रोग शान्त होते हैं। बाल, कपाल, इन्द्रियोंका तथा स्वरका बल अधिक बढ़ता है, जो व्यक्ति मुखसे धूम्र-सेवन करता है, उसे जत्रु (ठोढ़ी)-के ऊपरी भागमें होनेवाले रोग विशेषकर शिरोभागमें वात-कफजन्य बलवती व्याधियाँ नहीं होती हैं।[१]

यदि सिर, नाक और नेत्रगत दोष हो और धूम्र पीने योग्य पुरुष हो तो उसे नासिकासे धूम्रपान करना चाहिये और यदि कण्ठगत दोष हो तो मुखसे धूम्र पीना चाहिये। नासिकासे धूम्र पीनेके बाद धूम्रको मुखसे ही निकालना चाहिये। धूम-कवल (घूँट) मुखसे लेनेपर नासिकासे कभी न निकाले; क्योंकि विरुद्ध मार्गमें गया हुआ धूम नेत्रोंको नष्ट कर देता है।[२]

औषधिके धूम्रपानकी विधिका वर्णन करते हुए लिखा गया है कि रोगके अनुसार निर्धारित औषधियोंको कूट-छानकर एक सरकंडेके ऊपर लपेटकर जौके आकारकी (बींचमें मोटी आदि-अन्तमें पतली) अँगूठेके समान मोटी तथा आठ अंगुल लम्बी वर्ति (बत्ती) बनानी चाहिये। छायामें रखनेपर जब बत्ती सूख जाय तो सीकको निकालकर घृत, तेल आदि स्नेहसे उसे आर्द्रकर धूमनेत्र (Cigarette Holder)-में रखकर अग्निसे जलाकर इस सुखकारी प्रायोगिक धूम्रका धीरे-धीरे तीन या नौ बार सुखपूर्वक सेवन करना चाहिये। धूम्रपानहेतु योग (मिश्रणहेतु औषधियों)-का वर्णन करते हुए महर्षि चरक लिखते हैं—

हरेणुकां प्रियङ्गुं च पृथ्वीकां केशरं नखम्॥
ह्रीवेरं चन्दनं पत्रं त्वगेलोशीरपद्मकम्।
ध्यामकं मधुकं मांसीं गुग्गुल्वगुरुशर्करम्॥
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षलोध्रत्वचः शुभाः।
वन्यं सर्जरसं मुस्तं शैलेयं कमलोत्पले॥
श्रीवेष्टकं शल्लकीं च शुकबर्हमथापि च।

(चरक सूत्र० ५। २०—२३)

अर्थात् हरेणुका, प्रियंगुफूल, पृथ्वीका (काला जीरा), केशर, नख, ह्रीवेर, सफेद चन्दन, तेजपत्र, दालचीनी, छोटी इलायची, खश, पद्मांक, ध्यामक, मुलहठी, जटामासी, गुग्गुल, अगर, शर्करा, बरगदकी छाल, गूलरकी छाल, पीपलकी छाल, पाकड़की छाल, लोधकी छाल, वन्य, सर्जरस (राल), नागरमोथा, शैलेय, श्वेत कमलपुष्प, नीलकमल, श्रीवेष्टक, शल्लकी तथा शुकबर्ह—इन औषधियोंकी वर्तिका बनानी चाहिये।

शिरोविरेचनार्थ (सिरके भारी होनेपर छींक लेने-हेतु) निम्न धूम्रपान-योग बताया गया है—

श्वेता ज्योतिष्मती चैव हरितालं मनःशिला॥
गन्धाश्चागुरुपत्राद्या धूमं मूर्धविरेचने।

(चरक सू० ५। २६-२७)

अर्थात् अपराजिता, मालकाँगनी, हरताल, मैनसिल, अगर तथा तेजपत्र—इन औषधियोंकी वर्तिका बनाकर धूम्रपान करनेसे शिरोविरेचन होता है। यह चिकित्सा-पद्धति अब लुप्तप्राय हो गयी है, पर प्राचीन समयमें यह मुख्य आरोग्यविधि थी।



१-चरक सू० ५। २७—३३।

२-धूमयोग्यः पिबेद्दोषे शिरोघ्राणाक्षिसंश्रये॥
घ्राणेनास्येन कण्ठस्थे मुखेन घ्राणपो वमेत्। आस्येन धूमकवलान् पिबन् घ्राणेन नोद्वमेत्॥
प्रतिलोमं गतो ह्याशु धूमो हिंस्याद्धि चक्षुषी।

(चरक सूत्र० ५। ४६—४८)

औषध-ऊर्जा प्रसारण—बाल (केश)-चिकित्सा-प्रणाली

(डॉ० श्रीअश्विनीकुमारजी)

प्रारम्भसे ही चिकित्साके क्षेत्रमें निरन्तर खोजें होती रही हैं और आध्यात्मिक चिकित्सा अति प्राचीन चिकित्साके रूपमें मान्य रहती आयी है। आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति शाश्वत चिकित्साके रूपमें सदासे प्रतिष्ठित रही है। कालक्रममें पाश्चात्य जगत्के अनुसन्धानोंने चिकित्साके क्षेत्रमें नये मानदण्डों, मूल्यों एवं मान्यताओंको स्थापित किया और उसका व्यापक प्रचार-प्रसार भी हुआ है।

लंबे समयतक औषधियोंका व्यवहार विभिन्न रूपोंमें किया जाता रहा है। महान् दार्शनिक 'हिप्पोक्रेट' ने तो औषध-व्यवहारके क्षेत्रमें एक नया आयाम दिया और लोगोंको बताया कि औषधीय गुणवाले पदार्थोंका समान एवं असमान लक्षणोंके आधारपर व्यवहार किया जा सकता है। असमान लक्षणोंवाली प्रक्रिया तो लोकप्रिय होती चली गयी, परंतु समान लक्षण पैदा करनेवाले औषधका व्यवहार उतना लोकप्रिय नहीं हो पाया।

आजसे करीब दो सौ वर्ष पूर्व 'डॉ० हैनिमैन' ने असमान लक्षणोंपर औषधकी असफलताओंके आकलनके पश्चात् यह महसूस किया कि यह पद्धति पूर्ण नहीं है। तब स्थायी आरोग्यताकी खोजमें संलग्न डॉ० हैनिमैनने एक बहुत ही आश्चर्यजनक खोज कर डाली। उन्होंने मनुष्यके शरीरमें वर्तमान जीवनी-शक्तिको रोगका मूलभूत कारण माना। उनकी मान्यता थी कि प्रत्येक मनुष्यकी जीवनी-शक्ति उसके स्वस्थ शरीरके संचालन-हेतु उत्तरदायी है। अतः जीवनी-शक्तिके कमजोर होनेकी स्थितिमें सम्पूर्ण शरीरमें अस्वस्थताके लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं एवं व्यक्ति बीमार पड़ने लगता है। डॉ० हैनिमैनने पाया कि जीवनी-शक्तिका स्वरूप अति सूक्ष्म एवं शक्तिशाली है। इसका संचालन स्वयं होता है एवं यह किसीपर निर्भर नहीं रहती। यह ऊर्जास्वरूप है। इसका शरीरमें होना इस बातसे तय होता कि शरीर गतिमान् रहता है, जिसे हम जीवनके रूपमें देखते हैं। इसके अभावमें शरीर मृत हो जाता है। अतः यह जीवनी-शक्ति शक्तिशाली ऊर्जाका रूप है। डॉ० हैनिमैनने इसी ऊर्जास्वरूप जीवनी-शक्ति चिकित्साकी बात कही। तब इसकी चिकित्सा कैसे की जाय? इसपर उन्होंने बताया कि प्रकृतिमें हजारों प्रकारकी जड़ी-बूटियाँ एवं औषधीय गुणवाले पदार्थ विद्यमान हैं, जिनके उपयोगका निर्धारण मनुष्य अपने ज्ञानके आधारपर करता आया है। अपने शोधके दौरान डॉ० हैनिमैनने पाया कि इन औषधीय गुणवाले पदार्थोंमें विद्यमान जीवनी-शक्तिका व्यवहार मनुष्यकी जीवनी-शक्तिकी चिकित्साके लिये किया जा सकता है। इसी खोजके क्रममें एक अद्भुत औषधिका उदय डॉ० हैनिमैनद्वारा हुआ, जिसे आज हम होमियोपैथीकी ऊर्जात्मक औषधि (पोटेन्टाइज्ड)-के रूपमें जानते हैं। होमियोपैथीकी यह रहस्यमय औषधि आज भी संदेहकी दृष्टिसे देखी जाती है, क्योंकि इन औषधियोंमें एक भी मूल औषधके अणु विद्यमान नहीं रहते हैं। परंतु दो सौ वर्षोंका अनुभव यह बताता है कि ये ऊर्जात्मक औषधियाँ कई असाध्य कहे जानेवाले रोगोंको ठीक कर चुकी हैं। इसलिये इस ऊर्जा—औषधिकी सत्ताको स्वीकार करना पड़ता है। स्वयं डॉ० हैनिमैन अपनेद्वारा खोजी गयी औषधिके प्रति काफी उत्साहित एवं इनके व्यवहारके प्रति सजग थे। उन्हें आभास था कि ऊर्जा खानेकी वस्तु नहीं होती है। अतः इसके व्यवहारहेतु उन्होंने खिलाना (परम्परा), स्पर्श या सूँघना-जैसे साधनोंके व्यवहारकी बातें कहीं। यही नहीं, उन्होंने होमियो-औषधियोंके प्रभावकी तुलना मेस्मेरिज्मसे कर डाली, निश्चय ही ऊर्जा औषधिद्वारा जीवनी-शक्तिकी चिकित्सा करनेका विधान होमियोपैथ पद्धति है।

कालक्रममें आजसे करीब चालीस वर्षों पूर्व डॉ० बी० सहनीने पुनः डॉ० हैनिमैनके खोजोंमें नयी शृङ्खला स्थापित की। उन्होंने अनुभव कर यह पाया कि ऊर्जा-औषध निश्चय ही खाने योग्य वस्तु नहीं है। यह तो मात्र ऊर्जाका प्रभाव है कि जिसमें जीवनी-शक्तिको प्रभावित करनेकी क्षमता है। ऊर्जा-प्रभावमें प्रसारणका गुण होता है, अतः ऊर्जा-औषध केवल प्रसारणद्वारा ही जीवनी-शक्तिको

प्रभावित करता है। डॉ० बी० सहनीकी यह महान् खोज चिकित्सा-जगत्‌की एक क्रान्तिकारी उपलब्धि है, क्योंकि परम्परागत दवा खिलानेको उन्होंने प्रसारणमें विस्थापित किया। दवाओंका प्रसारण दूरसे भी सम्भव है, केवल एक माध्यमकी आवश्यकता रहती है।

दवाओंका दूरसे प्रसारण ऊर्जा औषधियोंका एक विशिष्ट गुण है। होमियोपैथी एवं अन्य पदार्थविहीन औषधियाँ जिनमें ये गुण हैं, प्रसारित हो सकती हैं। इन्हें प्रसारण करने-हेतु केवल माध्यमकी आवश्यकता होती है।

प्रसारणके माध्यमके रूपमें शरीरके किसी भी अङ्ग या अवयवका व्यवहार किया जा सकता है। 'बाल' (केश) एक बहुत ही सुगम माध्यम है, जिसे अति सरलताके साथ प्राप्त किया जा सकता है, अतः बालद्वारा दवा-प्रसारणकी परम्परा चल पड़ी। इसे डॉ० बी० सहनीके अनुयायियोंद्वारा 'सहनी इन्फेक्ट' के नामसे जाना जाने लगा। प्रश्न उठता है कि दवाओंका प्रसारण कैसे सम्भव है? उपर्युक्त वर्णित तथ्योंको अगर देखें तो आजके वर्तमान 'रिमोट एप्लीकेशन' के समयमें इसे समझना अति सरल हो जाता है। आज हमारे जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें रिमोटका व्यवहार हो रहा है। टेलिविजन, रेडियो, अन्तरिक्ष यान सभी 'रिमोट कण्ट्रोल' द्वारा संचालित हैं। वैज्ञानिक उपकरणोंमें एक निश्चित फ्रिक्वेन्सीकी वेवको प्रसारितकर कार्य सम्पादन किया जा रहा है। इसी प्रकार ऊर्जा-औषधिमें भी प्रत्येक औषधिकी अपनी वेवलेंग्थ (तरंग-दैर्घ्य) होती है, इनकी फ्रिक्वेन्सी भी निश्चित है। प्रत्येक मनुष्यकी जीवनी-शक्ति भी एक निश्चित वेवलेंग्थकी होती है। इस प्रकार करोड़ों तरहके वेवलेंग्थ हैं, यानी प्रत्येक मनुष्यका अपना वेवलेंग्थ। इसी प्रकार सभी ऊर्जा-औषधियोंका अपना अलग वेवलेंग्थ है। ये दो जब एक-दूसरेके सम्पर्कमें आते हैं तो परस्पर प्रभावित होकर अवस्था-परिवर्तन करते हैं। इस अवस्था-परिवर्तनको हम औषधीय प्रभावके रूपमें देखते हैं। मनुष्यके शरीरके कोई भी अङ्ग या अवयव अपने अंदर वर्तमान ऊर्जाके वेवलेंग्थकी फ्रिक्वेन्सी प्राप्त करते रहते हैं, चाहे वह शरीरसे अलग क्यों न हो जाय। यही कारण है कि शरीरसे अलग बाल दवाके सम्पर्कमें आनेपर अनुनादके रूपमें रोगीके शरीरतक औषधि-ऊर्जाको प्रेषित कर देता है।

वैज्ञानिक व्याख्या कई आधार लेकर की जा सकती है। स्वयं डॉ० बी० सहनीने अपने शोध-पत्रमें 'रमन'-के प्रभावको लेकर इसकी व्याख्या करनेकी कोशिश की है, परंतु अभी निश्चय ही हम इस क्षेत्रमें औषध-ऊर्जा-प्रेषणके सही स्वरूपकी पूरी कार्य-प्रणालीको नहीं जान पाये हैं। यह विज्ञानकी सीमा है। दर्शनका प्रादुर्भाव व्यवहारमें प्राप्त परिणामके आधारपर होता है तत्पश्चात् वैज्ञानिक व्याख्या।

आज इन व्याख्याओंके परे व्यावहारिक रूपसे यह देखा जा रहा है कि सैकड़ों तरहके असाध्य कहे जानेवाले रोगोंपर औषध-ऊर्जाका दूरसे तात्कालिक प्रभाव हो रहा है।

इस चिकित्सा-विधिमें निरन्तर खोज बनाये रखने-हेतु स्वयं डॉ० बी० सहनी अपने जीवनकालमें ही 'रिसर्च इन्सटीट्यूट ऑफ सहनी ड्रग एवं होमियोपैथी' की स्थापना सन् १९७० ई० में कर चुके थे। संस्थानका प्रधान कार्यालय शिवपुरी, पटनामें अवस्थित है। इस संस्थानमें डॉ० सहनीके कार्यपर विस्तृत अध्ययन करने-हेतु निरन्तर खोज जारी है। साथ ही इस विधिके प्रशिक्षण एवं प्रसारण-हेतु प्रयास किये जा रहे हैं। संस्थान्के निश्चित पाठ्यक्रमद्वारा प्रशिक्षणकी व्यवस्था है। इसके साथ ही रोगियोंकी चिकित्सा-हेतु देश-विदेशके विभिन्न स्थानोंपर चिकित्सा-केन्द्र एवं चिकित्साकी स्थापनाका प्रयास किया जा रहा है।

भविष्यमें टेले-केन्द्रके स्वरूप टेले-चिकित्साके माध्यमसे दूर-दराज बैठे रोगियोंकी चिकित्सा एवं सभी केन्द्रों एवं चिकित्सकोंका एक-दूसरेसे कम्प्यूटरद्वारा जुड़े रहना असम्भव नहीं दिखता। यह भी सम्भव है कि आनेवाले अन्तरिक्ष युगके साथ चिकित्साको जोड़ने-हेतु औषध-ऊर्जा प्रसारणकी आवश्यकता होगी और यह चिकित्सा-जगत्‌की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि होगी।



ज्योतिष—रोग एवं उपचार

(श्रीनलिनजी पाण्डे 'तारकेश')

ज्योतिष-विज्ञान और चिकित्सा-शास्त्रका सम्बन्ध प्राचीन कालसे रहा है। पूर्वकालमें एक सुयोग्य चिकित्सकके लिये ज्योतिष-विषयका ज्ञाता होना अनिवार्य था। इससे रोग-निदानमें सरलता होती थी। यद्यपि कुछ दशक पूर्वतक विदेशी प्रभावके कारण हमारे ज्योतिष-ज्ञानपर कड़ी और भ्रामक आलोचनाओंका कोहरा छाया था तथा इसे बड़ी हेय दृष्टिसे देखा जाता था, तथापि सौभाग्यसे इधर कुछ समयसे लोगोंका विश्वास तथा आकर्षण इस विषयपर पुनः बढ़ता नजर आ रहा है।

ज्योतिष-शास्त्रके द्वारा रोगकी प्रकृति, रोगका प्रभाव-क्षेत्र, रोगका निदान और साथ ही रोगके प्रकट होनेकी अवधि तथा कारणोंका भलीभाँति विश्लेषण किया जा सकता है। यद्यपि आजकल चिकित्सा-विज्ञानने पर्याप्त उन्नति कर ली है तथा कई आधुनिक और उन्नत प्रकारके चिकित्सीय उपकरणोंद्वारा रोगकी पहचान सूक्ष्मतासे हो भी जाती है, तथापि कई बार देखनेमें आता है कि जहाँ इन उन्नत उपकरणोंद्वारा रोगकी पहचानका सटीक निष्कर्ष नहीं निकल पाता है, वहीं रोगीका स्वास्थ्य, धन, समय आदिका व्यर्थ-व्यय क्लेशकारक भी हो जाता है। अतः ऐसेमें जो बात रह जाती है वह है दैवव्यपाश्रय-चिकित्सा। किसी विद्वान् दैवज्ञके विश्लेषण एवं उचित परामर्शद्वारा न केवल स्थिति स्पष्ट होती है, अपितु कई बार अत्यन्त सहजतासे (ग्रहदान तथा जप आदिसे) रोग दूर हो जाता है। इस दृष्टिसे एक कुशल ज्योतिषी चिकित्साविद् तथा रोगी दोनोंके लिये मार्गदर्शक बन सकता है।

ज्योतिष-शास्त्रमें द्वादश राशियों, नवग्रहों, सत्ताईस नक्षत्रों आदिके द्वारा रोगके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त की जा सकती है। कालपुरुषके विभिन्न अङ्गोंको नियन्त्रित और निर्देशित करनेवाली राशियों, ग्रहों आदिकी स्थितियोंके आधारपर हम किसी निष्कर्षपर पहुँचते हैं। जन्म-चक्रमें स्थित प्रत्येक राशि, ग्रह आदि शरीरके किसी-न-किसी अङ्गका प्रतिनिधित्व करते हैं। जिस ग्रह आदिका दूषित प्रभाव होता है, उससे सम्बन्धित अङ्गपर रोगका प्रभाव रह सकता है। इस सम्बन्धमें चन्द्रमाके अंशादिके आधारपर निकाली गयी विंशोत्तरीदशा (या अन्य प्रकारकी दशा)-का अध्ययन महत्त्वपूर्ण रहता है।

ज्योतिष-विज्ञानमें किसी भी विषयके परिज्ञानके लिये जन्म-चक्रके तीन बिन्दुओं—लग्न, सूर्य तथा चन्द्रका अलग-अलग और परस्पर एक-दूसरेसे अन्तःसम्बन्धोंका विश्लेषण मुख्य होता है। यह अध्ययन 'ज्योतिष और रोग'-के संदर्भमें और भी उपयोगी है। लग्न जहाँ बाह्य शरीरका, बाह्य व्यक्तित्वका दर्पण होता है, वहीं सूर्य आत्मिक शरीर, इच्छा-शक्ति, तेज एवं ओजका प्रतीक होता है। चन्द्रमाका सम्बन्ध हमारे मानसिक व्यक्तित्व, भावनाओं तथा संवेदनाओंसे होता है। सामान्य रूपसे यह समझा जा सकता है कि लग्न मस्तिष्कका, चन्द्र मन, उदर और इन्द्रियोंका तथा सूर्य आत्मस्वरूप एवं हृदयका प्रतिनिधित्व करता है।

सामान्य रूपमें हम राशियों और ग्रहोंके अन्तःसम्बन्धको इस तरह समझ सकते हैं कि राशियाँ जैसे अलग-अलग आकृतियोंवाले पात्र हों और ग्रह अलग-अलग प्रकृतिके पदार्थ तो जैसी प्रकृतिके पदार्थको जैसी आकृतिके पात्रमें डाला जायगा, वह तदनुरूप आचरण करेगा और वैसा ही फल भी देगा।

राशियोंसे सम्बन्धित रोग एवं अङ्ग

विविध राशियों, भावोंके द्वारा हमारे किन-किन अङ्गोंका बोध होता है और किस प्रकारके रोग इनके द्वारा सम्भावित हैं, सर्वप्रथम इसपर संक्षिप्त चर्चा अग्रसारणी 'क' में वर्णित है—

सारणी 'क' राशियोंसे सम्बन्धित रोग एवं अङ्ग

भाव	राशि	तत्त्व	अङ्ग	सम्भावित रोग
प्रथम	मेष	अग्नि	पिट्यूटरी ग्लैण्ड, पाइनीअल ग्लैण्ड, सिर, दिमाग, ऊपरी जबड़ा।	मस्तिष्क-रोग, विकार, सिरदर्द, मलेरिया, रक्ताघात, नेत्ररोग, पाइरिया, मुँहासे, चेचक, मसूढ़ेका दर्द, कोढ़, उन्माद, चक्कर-मिरगी आदि।
द्वितीय	वृष	पृथ्वी	थायराइड, गला, जीभ, नाक, आवाज, चेहरा, ग्रासनली तथा निचला जबड़ा।	गलगण्ड, मोटापा, कण्ठप्रदाह, डिप्थीरिया, फोड़ा-फुंसी, मद्य-सेवन, नेत्र-दोष, मुखपक्षाघात, दाँत-दर्द, मसूढ़ेकी सूजन।
तृतीय	मिथुन	वायु	स्कन्ध, फेफड़ा, ऊपरी पसली, कन्धे, कान, हाथ-बाजू, स्वरयन्त्र, श्वास-नली, कोशिकाएँ।	दमा, श्वास-नली-शोथ, मानसिक असंतुलन, मस्तिष्कज्वर, रोगभ्रमी, कंधेकी जकड़न, बाजूकी नसका दर्द, नकसीर, साइनोसाइटिस, एलर्जी, ब्रोंकाइटिस।
चतुर्थ	कर्क	जल	थाइमस ग्लैण्ड, नीचेकी पसली, फेफड़ा, स्तन, उदर।	अजीर्ण, अपच, उदर और पाचन-सम्बन्धी रोग, क्षय, कफ, गैस-विकार, जलोदर, कैंसर, वातरोग।
पञ्चम	सिंह	अग्नि	एड्रेनिल, तिल्ली, पित्ताशय, हृदय, यकृत्, पीठ, कोख, कमर, रक्त।	हृदयरोग, पीलिया, बुखार, मूर्च्छा, तीव्र-कम धड़कन, नेत्ररोग, कटिवेदना, आमवातिकज्वर, चेचक, अग्निमान्द्य, चलनविभ्रम।
षष्ठ	कन्या	पृथ्वी	नाभिचक्र, अग्न्याशय, कमर, मेखलाक्षेत्र, आँत।	आँतरोग, कोष्ठबद्धता, ऐंठन, बृहदान्त्र, शोथ, दस्त, हैजा, मूत्रकृच्छ्ररोग, आमाशयव्रण, मलद्वार-कष्ट, अर्थराईटिस।
सप्तम	तुला	वायु	गुर्दे, मूत्राशय, वस्ति, अण्डाशय, डिम्ब-ग्रन्थि, मूत्रवाहिनी, गर्भाशय नलिकाएँ।	गुर्दे-मूत्राशयरोग, कमर-दर्द, स्पाण्डलाइटिस, मधुमेह, रीढ़की हड्डीका दर्द, वृक्कशोथ, पथरी।
अष्टम	वृश्चिक	जल	मलद्वार, मलाशय, भ्रूण, लिङ्ग, योनि, अण्डकोष, गर्भाशय, प्रोस्टेट।	बवासीर, नासूर (नाड़ी-व्रण), पथरी, रतिरोग, रक्त-दूषित, विषपदार्थ, विचित्र कठिन रोग, कैंसर, हर्निया।
नवम	धनु	अग्नि	नितम्ब, जंघा।	साइटिका, रक्त-विकार, ट्यूमर, गठिया, दुर्घटना, चोट, घाव, पक्षाघात।
दशम	मकर	पृथ्वी	घुटने, जोड़, बाह्य त्वचा, बाल, नाखून, कंकाल।	घुटने, जोड़ोंका दर्द, गठिया, एक्जिमा, चमड़ीके रोग, मिरगी, ल्यूकोडर्मा, दाँत-दर्द, हाथीपाँव।
एकादश	कुम्भ	वायु	पाँव, कान, साँस, गुल्फ, एड़ी।	स्नायु-स्थानकी बीमारी, हृदयरोग, रक्त-विकार, पागलपन।
द्वादश	मीन	जल	तलवा, पाँव, दाँत।	गोखरू, लसिकातन्त्रके रोग, फोड़ा, व्रण, टी०बी०, ट्यूमर, कफदोष, पैरका लकवा, पैर, एड़ीका दर्द।

द्वादश राशियोंमें, भावोंमें कुछ अग्नि-तत्त्वका, कुछ वायु आदि तत्त्वका प्रतिनिधित्व करते हैं। इन तत्त्वोंकी प्रकृतिके आधारपर भी रोगकी पहचान सरलतासे हो सकती है। यथा—

१, ५, ९ राशि/भाव—अग्नितत्त्व प्रधान होनेसे ओज, बल तथा क्रियात्मकताका प्रतिनिधित्व करता है। सामान्यत: शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है। अस्वस्थता थोड़े समयकी, किंतु तीव्र हो सकती है। इनमें माइग्रेन, अनिद्रा, मूर्च्छा, तीव्र सिरदर्द, मुँहासे आदि कठिनाइयाँ रह सकती हैं। इससे भूख-प्यास, निद्रा, आलस्य आदिकी अभिव्यक्ति होती है।

२, ६, १० राशि/भाव—पृथ्वीतत्त्व प्रधान होनेसे हड्डियों, मांस, त्वचा, नाखून, नाडी-रोग, केश आदिको बताता है। इनसे संधिवात, गठिया, वायु-विकार, कठिन-जटिल रोग, वजन एवं सम्बन्धित रोग, कीड़े, सर्पद्वारा काटना, वाहन-दुर्घटनाकी अभिव्यक्ति होती है।

३, ७, ११ राशि/भाव—वायुतत्त्व प्रधान होनेसे प्राण-वायुको बताता है। मानसिक विकार, निराशा, तनाव, पक्षाघात, अतिनशा (धुँआ), बुद्धि-विभ्रम, ग्रन्थियोंका कार्य,अधिक श्रमसे होनेवाले रोग होते हैं। फैलना, सिकुड़ना, चलना-फिरना, शरीरके कार्य व्यक्त होते हैं।

४, ८, १२ राशि/भाव—जलतत्त्व प्रधान होनेसे रक्त तथा जलीय पदार्थका नियन्त्रण होता है। ट्यूमर, कैंसर, कफ, इन्द्ररोग, हिस्टीरिया, अतिनशा (तरल), घबराहट, फोबिया-जैसे रोग सम्भावित होते हैं। ये भाव शरीरमें स्थित वीर्य, रक्त, त्वचा, मज्जा, मूत्र, लारको व्यक्त करते हैं।

नवग्रह, रोग तथा तत्सम्बन्धित अङ्ग

नवग्रहोंमें सूर्य-चन्द्र आदि तो जिस राशिमें बैठते हैं, उसके अनुरूप रोग-विचार होता है तथा राशिसे उनकी शत्रुता, मित्रताको भी देखा जाता है तथापि उनका स्वतन्त्र रूपमें जिस अङ्ग या रोग-विशेष बतलानेकी सम्भावना रहती है, वह निम्न सारणी 'ख' द्वारा समझी जा सकती है—

सारणी 'ख' नवग्रह, रोग तथा तत्सम्बन्धित अङ्ग

ग्रह	अङ्ग	रोग
सूर्य	सिर, हृदय, आँख (दायीं), मुख, तिल्ली, गला, मस्तिष्क, पित्ताशय, हड्डी, रक्त, फेफड़े, स्तन।	मस्तिष्क-रोग, हृदय-रोग, उच्च रक्तचाप, उदर-विकार, मेननजाइटिस, मिरगी, सिरदर्द, नेत्रविकार, बुखार।
चन्द्र	छाती, लार, गर्भ, जल, रक्त, लसिका, ग्रन्थियाँ, कफ, मूत्र, मन, आँख (बायीं), उदर, डिम्बग्रन्थि, जननाङ्ग (महिला)।	नेत्ररोग, हिस्टीरिया, ठंड, कफ, उदर-रोग, अस्थमा, डायरिया, दस्त, मानसिक रोग, जननाङ्ग रोग (स्त्रियोचित), पागलपन, हैजा, ट्यूमर, ड्रॉप्सी।
मंगल	पित्त, मात्रक, मांसपेशी, स्वादेन्द्रिय, पेशीतन्त्र, तन्तु, बाह्य-जननाङ्ग, प्रोस्टेट, गुदा, रक्त, अस्थि-मज्जा, नाक, नस, ऊतक।	तीव्र ज्वर, सिरदर्द, मुँहासे, चेचक, घाव, जलन, कटना, बवासीर, नासूर, साइनस, गर्भपात, रक्ताल्पता, फोड़ा, लकवा, पक्षाघात, पोलियो, गले-गर्दनके रोग, हाइड्रोसील, हर्निया।
बुध	स्नायु-तन्त्र, जीभ, आँत, वाणी, नाक, कान, गला, फेफड़े।	मस्तिष्क-विकार, स्मृतिह्रास, पक्षाघात, हकलाहट, दौरे आना, सूँघने, सुनने अथवा बोलनेकी शक्तिका ह्रास।
बृहस्पति	यकृत्, नितम्ब, जाँघ, मांस, चर्बी, कफ, पाँव।	पीलिया, यकृत्-सम्बन्धी रोग, अपच, मोतियाबिन्द, रक्त-कैंसर, फुफ्फुसावरण, शोथ, वात, बादी, उदर-वायु, तिल्ली-कष्ट, साइटिका, गठिया, कटिवेदना, नाभि-चलना।
शुक्र	जननाङ्ग, आँख, मुख, दुड्डी, गाल, गुर्दे, ग्लैण्ड, वीर्य।	काले-नीले धब्बे, चमड़ीके रोग, कोढ़, सफेद दाग, गुप्ताङ्ग-रोग, मधुमेह, नेत्ररोग, मोतियाबिन्द, रक्ताल्पता, एक्जिमा, मूत्ररोग। (क्रमश:)

ग्रह	अङ्ग	रोग
शनि	पाँव, घुटने, श्वास, हड्डी, बाल, नाखून, दाँत, कान।	बहरापन, दाँत-दर्द, पायरिया, ब्लडप्रेशर, कठिन उदरशूल, आर्थराईटिस, कैंसर, स्पांडलाइटिस, हाथ-पाँवकी कँपकपाहट, साइटिका, मूर्च्छा, जटिल रोग।
राहु, केतु	राहु मुख्यत: शरीरके ऊपरी हिस्से और केतु शरीरके निचले धड़को बतलाता है।	प्राय: ये दोनों ग्रह क्रमश: शनि और मंगलके अनुरूप रोग-व्याधि देते हैं या जिस राशि-भावमें बैठते हैं, उसके अनुरूप रोग-व्याधि देते हैं। राहु, केतुसे सम्बन्धित रोगकी पहचान प्राय: कठिनाईसे हो पाती है।

द्वादश राशियों, भाव और नवग्रहोंके आधारपर शरीरके अङ्गों और व्याधियोंकी जानकारीके पश्चात् हम गतिशील दशाओंके स्वामीकी सबलता या दुर्बलताको अपने अध्ययनका आधार बनाते हैं। नैसर्गिक शुभग्रह—बृहस्पति, शुक्र, बुध तथा चन्द्रमा—क्रमागत रूपमें पापग्रह—शनि, मंगल, राहु, सूर्य, केतुसे पीडित होनेपर अपनी दशावधिमें रोग देते हैं।

द्वादश लग्न तथा शुभ-अशुभ ग्रह

प्रत्येक लग्नके लिये शुभ-अशुभ ग्रह भिन्न-भिन्न होते हैं। अत: उनके आधारपर भी यह निर्णय लिया जाता है कि कौन-सा ग्रह शुभकारी है और कौन अशुभकारी। निम्न सारणी 'ग' से यह स्पष्ट किया गया है—

सारणी 'ग'—द्वादशलग्न तथा शुभ-अशुभ ग्रह

लग्न	शुभ ग्रह	अशुभ ग्रह	मध्यम ग्रह
मेष	सूर्य, चन्द्र, मंगल, बृहस्पति	बुध, शुक्र	शनि
वृष	बुध, शुक्र	चन्द्र, मंगल, बृहस्पति	सूर्य, शनि
मिथुन	बुध, शुक्र	मंगल, बृहस्पति	शनि
कर्क	चन्द्र, मंगल, बृहस्पति	बुध, शनि	सूर्य, शुक्र
सिंह	सूर्य, मंगल, बृहस्पति	बुध, शनि	चन्द्र, शुक्र
कन्या	चन्द्र, बुध, शुक्र	सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शनि	
तुला	बुध, शुक्र, शनि	सूर्य, मंगल, बृहस्पति	चन्द्र
वृश्चिक	सूर्य, चन्द्र, मंगल, बृहस्पति	बुध, शुक्र, शनि	चन्द्र
धनु	सूर्य, मंगल, बृहस्पति	बुध, शुक्र, शनि	चन्द्र
मकर	बुध, शुक्र, शनि	मंगल, बृहस्पति	सूर्य, चन्द्र
कुम्भ	शुक्र, शनि	चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति	सूर्य
मीन	चन्द्र, बृहस्पति	सूर्य, बुध, शुक्र, शनि	मंगल

गोचर, दशाफल तथा जप-दान

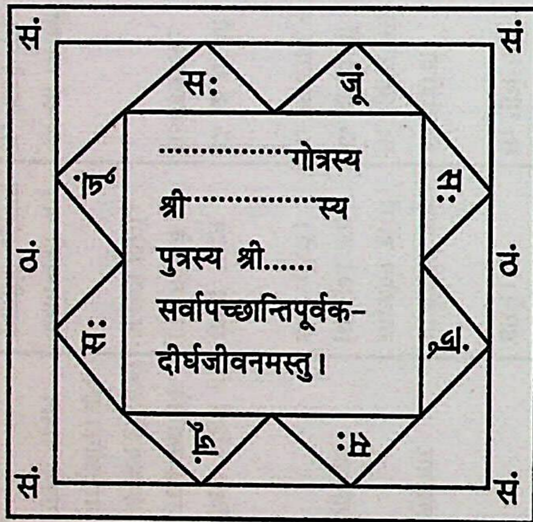
गोचर (दैनिक ग्रह-स्थिति)-में ग्रहोंकी स्थिति भी रोगकी अवधि और तीव्रता आदिको स्पष्ट करती है। प्राय: द्वितीय, षष्ठ और अष्टम भावमें स्थित ग्रह तथा इनके स्वामीकी दशावधिमें शारीरिक रोगकी सघनता होती है। इसके अतिरिक्त तीसरे, सातवें, बारहवें भावके स्वामी भी रोगोत्पत्तिको व्यक्त करते हैं। दशाओंके स्वामीके आधारपर ही मुख्यत: रोग-निवारणार्थ दान-जप करके स्थितियोंमें सुधार लाया जा सकता है। निम्न सारणी 'घ' में नवग्रहोंके अशुभ फलके शमनार्थ किये जानेवाले उपायोंकी जानकारीसे लाभ उठाया जा सकता है—

सारणी—'घ'—अरिष्ट-निवारणके लिये ग्रहोंका जप-दान-पूजन

ग्रह १	दान-सामग्री २	रत्न ३	व्रत-सम्बन्धित दिन ४	जड़ी-बूटी धारण ५	जप ६	जप-संख्या ७	जप-काल ८	हवन-समिधा ९	अन्य पूजन १०
सूर्य	गेहूँ, गुड़, लाल वस्त्र, घी, लाल वर्णकी गाय, माणिक, ताम्र-वस्तु, स्वर्ण, लाल फल तथा अन्य वस्तुएँ, दक्षिणा।	माणिक	रविवार	बेलपत्रकी जड़ लाल डोरेमें।	ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः	७०००	सूर्योदय	आक	हरिवंशपुराण, सूर्यपूजन, सूर्य-अर्घ्य, गायत्री-जप, आदित्य-हृदयस्तोत्र-पाठ।
चन्द्र	चावल, श्वेत चन्दन, शङ्ख, कपूर, दही, दूध, घी, श्वेत वस्त्र, चाँदी, कांस्य-पात्र, सफेद अन्य वस्तुएँ, दक्षिणा।	मोती	सोमवार	खिरनीकी जड़ सफेद डोरेमें।	ॐ श्रां श्रीं श्रौं सः चन्द्रमसे नमः	११०००	संध्या	पलाश	शिवपूजन, सतीचन्द्रपूजन, पूर्णिमा-व्रत।
मंगल	गेहूँ, मसूर-दाल, घी, गुड़, स्वर्ण, लाल वस्त्र, लाल चन्दन, लाल फल तथा अन्य वस्तुएँ, ताम्र-वस्तु, दक्षिणा।	मूँगा	मंगलवार	अनन्तमूलकी जड़ लाल डोरेमें।	ॐ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः	१००००	सूर्योदय	खैर	हनुमत्पूजन, ब्रह्मचर्य-पालन, मांस-मदिरासे दूर।
बुध	मूँग, चीनी, हरा वस्त्र, हरी सब्जी, कांस्य-पात्र, अन्य हरी वस्तुएँ, दक्षिणा।	पन्ना	बुधवार	विधारकी जड़ हरे डोरेमें।	ॐ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः	९०००	सूर्योदय	अपामार्ग	दुर्गा-गणेश-पूजन, बुध-पूजन।
बृहस्पति	पीले चावल, चना-दाल, हल्दी, शहद, पीला वस्त्र, पीले फल, धर्मग्रन्थ, कांस्य-पात्र, स्वर्ण, दक्षिणा।	पुष्पराग	बृहस्पति	केलेकी जड़ पीले डोरेमें।	ॐ ग्रां ग्रीं ग्रौं सः गुरवे नमः	१९०००	संध्या	पीपल	विष्णु-गुरुपूजन, गौ, द्विज-वृद्धसेवा।
शुक्र	चाँदी, चावल, मिस्री, श्वेत चन्दन, चमकीला वस्त्र, सुगन्धित पदार्थ, दक्षिणा।	हीरा	शुक्रवार	सरपोंखाकी जड़ चमकीले डोरेमें।	ॐ द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्राय नमः	१६०००	सूर्योदय	गूलर	लक्ष्मीदेवी-पूजन, शुक्र-पूजन।
शनि	उरद, काले तिल, काले चने, तेल, काला वस्त्र, लौहपात्र, काले जूते, चाकू, दक्षिणा।	नीलम	शनिवार	बिच्छूकी जड़ काले डोरेमें।	ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनैश्चराय नमः	२३०००	संध्याकाल	शमी	भैरव-पूजन, शनि-पूजन।
राहु	सात अनाज, उरद, नारियल, चाकू, कम्बल, बिल्व-पत्र, कस्तूरी, तिल, खिचड़ी, अष्टधातु-मुद्रिका, दक्षिणा।	गोमेद	जिस राशिमें हो उसके स्वामीके अनुरूप ही रंगकी वस्तुओंका दान	सफेद चन्दन (स्वामी)-के अनुरूप डोरेमें।	ॐ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः राहवे नमः	१८०००	रात्रि	दूर्वा	शिव, सर्प, राहु-पूजन।
केतु	सात अनाज, तिल, नारियल, ऊनी वस्त्र, कोई हथियार (कैंची), खिचड़ी, अष्टधातु-मुद्रिका, दक्षिणा।	लहसुनिया	राहुके समान	असगन्धकी जड़ स्वामीके अनुरूप डोरेमें।	ॐ स्रां स्रीं स्रौं सः केतवे नमः	१००००	रात्रि	कुशा	गणेश और केतु-पूजन।

नवग्रह दान-पूजन आदिसे रोगोपचारमें श्रद्धाकी महती भूमिका होती है। पूर्ण निष्ठा, उत्साह तथा संकल्पबद्धतासे किये गये कार्यकी सफलता वैसे भी सुनिश्चित होती है। रोग-पीडित व्यक्ति यदि दान-जप आदि कृत्य स्वयं करे तो यह सर्वश्रेष्ठ स्थिति है अन्यथा अन्य पारिवारिक जन या योग्य ब्राह्मणद्वारा प्रतिनिधिरूपमें यह सम्पादित किया जा सकता है। अत्यन्त मारकग्रहकी दशा हो तो 'महामृत्युञ्जय-जप' करना चाहिये। सर्वव्याधि-विनाशके लिये 'लघुमृत्युञ्जय-जप' 'ॐ जूं सः' (नाम, जिसके लिये है) 'पालय पालय सः जूं ॐ' इस मन्त्रका ११ लाख जप तथा एक लाख दस हजार दशांशका जप करनेसे सब प्रकारके रोगोंका नाश होता है। इतना न हो तो कम-से-कम सवा लाख जप और

श्रीमहामृत्युञ्जय-कवच-यन्त्र



साढ़े बारह हजार दशांश-जप करना चाहिये। इसके साथ ही निम्न यन्त्र भी भोजपत्रपर अष्टगन्धसे लिखकर सिद्ध मुहूर्तमें गुग्गुलका धूप देकर धारण करना चाहिये। पुरुषके दाहिने तथा स्त्रीके बायें हाथमें बाँधना चाहिये। गोत्र, पिताका नाम, पुत्र या पुत्री (रोगी)-का नाम यथास्थान लिख देना चाहिये। यन्त्र इस प्रकार है—

नवग्रह-यन्त्र

८ ॐ ह्रीं राहवे नमः	१ ॐ ह्रीं सूर्याय नमः	६ ॐ ह्रीं शुक्राय नमः
३ ॐ ह्रीं भौमाय नमः	५ ॐ ह्रीं गुरवे नमः	७ ॐ ह्रीं शनैश्चराय नमः
४ ॐ ह्रीं बुधाय नमः	९ ॐ ह्रीं केतवे नमः	२ ॐ ह्रीं सोमाय नमः

इसके अतिरिक्त यदि एक साथ अधिक ग्रहोंका दूषित प्रभाव रोगकी उत्पत्ति और वृद्धिका कारण हो तो नवग्रह-यन्त्रको भोजपत्रपर अष्टगन्धकी स्याहीसे किसी शुभ सिद्ध मुहूर्तमें अपने पास रखने, धारण करने तथा पूजन करनेसे भी अरिष्टका नाश होता है। यन्त्रको चाँदी, सप्त-अष्टधातुमें भी बनाया जा सकता है।

यदि उपर्युक्त प्रयोगोंके साथ या असमर्थतावश मात्र कातरभावसे ही प्रभुका स्मरण किया जाय तो रोगमुक्तिकी सहज-प्राप्ति असम्भव नहीं है। भगवत्कृपासे सभी कुछ सम्भव है।

वेदोंमें सूर्यकिरण-चिकित्सा

(पद्मश्री डॉ० श्रीकपिलदेवजी द्विवेदी, निदेशक, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्)

वेदोंमें प्राकृतिक चिकित्सासे सम्बद्ध सामग्री पर्याप्त मात्रामें मिलती है। इसमें विशेष उल्लेखनीय है— १-सूर्यकिरण-चिकित्सा, २-वायु-चिकित्सा या प्राणायाम-चिकित्सा, ३-अग्नि-चिकित्सा, ४-जल-चिकित्सा, ५-मृत्-चिकित्सा, ६-यज्ञ-चिकित्सा, ७-मानस-चिकित्सा या मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, ८-मन्त्र-चिकित्सा, ९-हस्तस्पर्श-चिकित्सा, १०-उपचार-चिकित्सा। यहाँ केवल सूर्यकिरण-चिकित्साका विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

वेदोंमें सूर्यको इस स्थावर और जंगम जगत्की आत्मा कहा गया है— सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। (ऋक्० १।११५।१, यजु० ७।४२, अथर्व० १३।२।३५, तैत्ति० सं० १।४।४३।१)। यह मन्त्र ऋक्, यजु और अथर्व तीनों वेदोंमें आया है। प्रश्नोपनिषद्में भी सूर्यको 'प्राणः प्रजानाम्' अर्थात् मनुष्यमात्रका प्राण कहा गया है। मत्स्यपुराणका कहना है कि 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्' अर्थात् यदि नीरोगताकी इच्छा है तो सूर्यकी शरणमें जाओ। अतएव

प्राचीन ऋषि-मुनि और आचार्योंने सूर्योपासना तथा सूर्यनमस्कार आदिकी विधि प्रचलित की।

वेदोंमें उदित होते हुए सूर्यकी किरणोंका बहुत महत्त्व वर्णित किया गया है। अथर्ववेदके एक मन्त्रमें कहा गया है कि उदित होता हुआ सूर्य मृत्युके सभी कारणों अर्थात् सभी रोगोंको नष्ट करता है।[१] उदित होते हुए सूर्यसे अवरक्त (हलकी लाल— Infrared) किरणें निकलती हैं। इन लाल किरणोंमें जीवनी शक्ति होती है और रोगोंको नष्ट करनेकी विशेष क्षमता होती है। अतएव ऋग्वेदमें कहा गया है कि उदित होता हुआ सूर्य हृदयके सभी रोगोंको, पीलिया और रक्ताल्पता (Anaemia)-को दूर करता है।[२] अथर्ववेदमें भी इस बातकी पुष्टि करते हुए कहा गया है कि सूर्यकी अवरक्त किरणें हृदयकी बीमारियोंको तथा खूनकी कमीको दूर करती हैं।[३]

प्रातः सूर्योदयके समय पूर्वाभिमुख होकर संध्योपासना और हवन करनेका यही रहस्य है कि ऐसा करनेसे सूर्यकी अवरक्त किरणें सीधे छातीपर पड़ती हैं और उनके प्रभावसे व्यक्ति सदा नीरोग रहता है।

सूर्यकिरण-चिकित्सा-हेतु रोगी उदित होते हुए सूर्यके सम्मुख खड़े होकर या बैठकर सूर्यकी किरणोंको शरीरपर सीधे पड़ने दे। ऋतुके अनुसार शरीरको खुला रखे या हलका कपड़ा पहने, जिससे किरणोंका प्रभाव पूरे शरीरपर पड़ सके। कम-से-कम पंद्रह मिनट सूर्यके सम्मुख रहे। रोग और आवश्यकताके अनुसार यह समय आधा घंटातक बढ़ा सकते हैं। इसके बाद सूर्यकी किरणें तीव्र हो जाती हैं, अतः विशेष लाभ नहीं होगा। सूर्योदयके समयकी किरणोंका जो लाभ होता है, वह अन्य समय सम्भव नहीं है।

इस विषयमें अथर्ववेदके नौवें काण्डका आठवाँ सूक्त विशेष महत्त्वका है। इसमें बाईस मन्त्रोंमें सूर्यकिरण-चिकित्सासे ठीक होनेवाले रोगोंकी एक लम्बी सूची दी गयी है और कहा गया है कि उदित होता हुआ सूर्य इन रोगोंको नष्ट करता है।[४] इस सूचीमें निर्दिष्ट प्रमुख रोग हैं— सिरदर्द, कानदर्द, रक्तकी कमी, सभी प्रकारके सिरके रोग, बहरापन, अंधापन, शरीरमें किसी प्रकारका दर्द या अकड़न, सभी प्रकारके ज्वर, पीलिया (पाण्डुरोग), जलोदर, पेटके विविध रोग, विषका प्रभाव, वातरोग, कफज रोग, मूत्ररोग, आँखकी पीडा, फेफड़ोंके रोग, हड्डी-पसलीके रोग, आँतों और योनिके रोग, यक्ष्मा (T. B.), घाव, रीढ़की हड्डी, घुटना और कूल्हेके रोग आदि। एक अन्य सूक्तमें **'सूर्यः कृणोतु भेषजम्'** सूर्य इन रोगोंको ठीक करे, कहकर अपचित् (गण्डमाला), गलने और सड़नेवाली बीमारियाँ तथा कुष्ठ आदि रोगोंका उल्लेख किया गया है।[५]

अथर्ववेदका कथन है कि सूर्यके प्रकाशमें रहना अमृतके लोकमें रहनेके तुल्य है।[६] मृत्युके बन्धनोंको यदि तोड़ना है तो सूर्यके प्रकाशसे अपना सम्पर्क बनाये रखें।[७] सूर्य शरीरको नीरोगता प्रदान करते हैं— **सूर्यस्ते तन्वे शं तपाति।** (अथर्व० ८।१।५)

ऋग्वेदका कथन है कि सूर्य मनुष्यको नीरोगता, दीर्घायुष्य और समग्र सुख प्रदान करते हैं— **सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः॥** (ऋक्० १०।३६।१४) एक अन्य मन्त्रमें कहा गया है कि सूर्यकी किरणें मनुष्यको मृत्युसे बचाती हैं— **सूर्यस्त्वाधिपति-**

१-उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान्। (अथर्व० १७।१।३०)

२-उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्। हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥ (ऋक्० १।५०।११)

३-अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते। गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि॥ (अथर्व० १।२२।१)

४-(क) शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम्। सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे॥ (अथर्व० ९।८।१)

(ख) सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः। उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशः अङ्गभेदम् अशीशमः। (अथर्व० ९।८।२२)

५-(अ) अपचितः प्र पतत सुपर्णो वसतेरिव। (अथर्व० ६।८३।१)

(आ) असूतिका रामायण्य पचित् प्र पतिष्यति। ग्लौरितः प्र पतिष्यति स गलुन्तो नशिष्यति। (अथर्व० ६।८३।३)

६-सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके। (अथर्व० ८।१।१)

७-मृत्योः पड्वीशं अवमुञ्चमानः। मा च्छित्था··· सूर्यस्य संदृशः॥ (अथर्व० ८।१।४)

मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः ॥ (अथर्व० ५ । ३० । १५) सूर्यकी सात किरणोंसे सात प्रकारकी ऊर्जा प्राप्त होती है— **अधुक्षत् पिप्युषीमिषम् ऊर्जं सप्तपदीमरिः। सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः॥** (ऋक्० ८। ७२। १६)

सूर्यकिरणोंद्वारा चिकित्सा—इसके अनेक नाम प्रचलित हैं, जैसे सूर्य-चिकित्सा, सूर्यकिरण-चिकित्सा, रंग-चिकित्सा (Colour-therapy, chromo-therapy, chromopathy) आदि। इस चिकित्सामें सूर्यकी किरणोंको शरीरपर सीधे लेकर रोग-निवारण या सूर्यकी किरणोंसे प्रभावित जल, चीनी, तेल, घी, ग्लिसरीन आदिका प्रयोग करके रोगोंका निवारण किया जाता है।

सूर्यकिरण-चिकित्साका प्रसार—पाश्चात्त्य जगत्‌में इस चिकित्सा-पद्धतिका आविष्कार और प्रचार जनरल पंलिझन होनने किया था। तत्पश्चात् डॉक्टर पेन स्कॉट, डॉक्टर राबर्ट बोहलेंड तथा डॉक्टर एडविन, बेबिट आदिने इस चिकित्सा-पद्धतिको आगे बढ़ाया। धीरे-धीरे यह विद्या फ्रांस और इंग्लैण्ड आदि देशोंमें फैली। अब इस विषयपर प्रचुर साहित्य उपलब्ध है।

भारतवर्षमें विशेषरूपसे हिन्दीमें इस चिकित्सा-पद्धतिके प्रचार और उन्नयनका श्रेय श्रीगोविन्द बापूजी टोंगू और डॉक्टर द्वारकानाथ नारंग आदिको है। सम्प्रति हिन्दीमें इस विषयपर अनेक ग्रन्थ प्राप्य हैं।

सूर्यकी सात रंगकी क़िरणें—सूर्यकी किरणें सात रंगकी हैं। ऋग्वेद[१] और अथर्ववेदमें[२] सूर्यकी सात रंगकी किरणोंका उल्लेख सप्तरश्मि, सप्ताश्व (सप्त अश्व) आदि शब्दोंसे किया गया है।

इन सात रंगकी किरणोंका वैज्ञानिक दृष्टिसे बहुत महत्त्व है। प्रत्येक किरणका अलग-अलग प्रभाव है। इनकी गति और प्रकृति भी भिन्न-भिन्न है। इन सात रंगोंको मिला देनेसे सफेद रंग हो जाता है। इन सात रंगकी किरणोंसे ही संसारके प्रत्येक पदार्थको रूप-रंग प्राप्त होता है। इन सात किरणोंके तीन भेद किये गये हैं—उच्च, मध्य और निम्न अर्थात् गहरा, मध्यम और हल्का। इस प्रकार ७×३=२१ प्रकारकी किरणें हो जाती हैं। इनसे ही संसारके सारे रूप-रंग हैं। अथर्ववेदके प्रथम मन्त्रमें इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि ये २१ प्रकारकी किरणें संसारमें सर्वत्र फैली हुई हैं और ये ही सारे रूप-रंगोंको धारण करती हैं— **ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।** (अथर्व० १। १। १)

सात किरणोंके नाम और प्रभाव—इन सात किरणोंको अंग्रेजी और हिन्दीमें ये नाम दिये गये हैं—इनकी तरंग-दैर्घ्य (Wave-length) और आवृत्ति (Frequency) अलग-अलग है। अतः इनका प्रभाव भी पृथक्-पृथक् है। अपनी गति और प्रकृतिके अनुसार ये विभिन्न रोगोंको दूर करते हैं। इसकी संक्षिप्त रूपरेखा नीचे दी जा रही है। इन किरणोंको संक्षेपमें अंग्रेजी और हिन्दीमें ये नाम दिये गये हैं—(१) VIBGYOR. (२) बै नी आ ह पी ना ला।

नाम	संकेत	नाम	संकेत	प्रभाव
Violet	V	बैगनी	बै	शीतल, लाल कणोंका वर्धक, क्षयरोगका नाशक
Indigo	I	नीला	नी	शीतल, पित्तज रोगोंका नाशक, पौष्टिक
Blue	B	आसमानी	आ	शीतल, पित्तज रोगोंका नाशक, ज्वरनाशक
Green	G	हरा	ह	समशीतोष्ण, वातज रोगोंका नाशक, रक्तशोधक
Yellow	Y	पीला	पी	उष्ण, कफज़ रोगोंका नाशक, हृदय एवं उदररोगका नाशक
Orange	O	नारंगी	ना	उष्ण, कफज रोगोंका नाशक, मानसिक शक्तिवर्धक
Red	R	लाल	ला	अति उष्ण, कफज रोगोंका नाशक, उत्तेजक, केवल मालिश हेतु

१-(क) सप्तरश्मिरधमत् तमांसि। (ऋक्० ४। ५०। ४)
(ख) आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः। (ऋक्० ५। ४५। ९)
२-(ग) यः सप्तरश्मिर्वृषभः०। (अथर्व० २०। ३४। १३)

गति और प्रकृतिके आधारपर नीचेसे ऊपरवाली किरणें क्रमशः अधिक प्रभावशाली हैं। जैसे—लालसे अधिक नारंगी, उससे अधिक पीली और सबसे अधिक प्रभाववाली बैगनी है। अतः बैगनीसे अधिक शक्तिवाली किरणोंको परा-बैगनी (Ultra-violet) किरणें और लालसे कम शक्तिशाली किरणोंको अवरक्त (Infra-red) किरणें कहते हैं।

वस्तुतः मूल रंग तीन हैं—लाल, पीला और नीला। इनके मिश्रणसे ही अन्य रंग बनते हैं। जैसे-लाल और नीलेसे बैगनी, नीले और सफेदसे आसमानी, नीले और पीलेसे हरा, लाल और पीलेसे नारंगी।

सूर्यकी सात रंगकी किरणोंके तीन परिवार किये गये हैं—(१) पीला, नारंगी, लाल (२) हरा तथा (३) बैगनी, नीला, और आसमानी।

ओषधि-निर्माण-विधि—साधारणतयां ओषधि-निर्माणके लिये उसी रंगकी काँचकी साफ बोतल ली जाती है। विभिन्न रंगकी बोतल न मिलनेपर उस रंगका पतला कागज सादी शीशीपर पूरा चिपका दिया जाता है, अतः वह उस रंगका काम दे देती है। सात शीशी लेनेकी जगह प्रत्येक परिवारसे एक-एक रंग लेनेपर तीन बोतलोंसे काम चल जाता है। ये तीन रंग हैं—(१) नारंगी, (२) हरा तथा (३) नीला। इनमेंसे नारंगी कफ-जन्य रोगोंके लिये तथा हरा वातज रोगोंके लिये और नीला पित्तज रोगोंके लिये है। इस प्रकार वात, पित्त और कफ—इन त्रिदोषज रोगोंकी चिकित्सा हो जाती है।

बोतलोंको अच्छी तरह साफ करनेके बाद उनमें शुद्ध जल भरा जाता है। बोतलोंको कम-से-कम तीन अंगुल खाली रखे। तत्पश्चात् उन्हें ढक्कन लगाकर बंद कर दे। शुद्ध जलसे भरी इन बोतलोंको धूपमें छ:से आठ घंटे रखनेपर दवा तैयार हो जाती है। धूपमें बोतलोंको इस प्रकार रखे कि एक बोतलकी छाया दूसरे रंगकी बोतलपर न पड़े। रात्रिमें बोतलोंको अंदर रख ले। इस प्रकार बनी हुई दवाको दिनमें तीन या चार बार पिलावे। एक बार बनी दवाको चार या पाँच दिन सेवन कर सकते हैं। पुनः दुबारा बोतलोंमें दवा बना ले।

साधारणतया नारंगी रंगकी दवा भोजनके बाद पंद्रहसे तीस मिनटके अंदर लेनी चाहिये। हरे और नीले रंगकी दवाएँ खाली पेट या भोजनसे एक घंटा पहले ले। हरे रंगकी दवा प्रातः खाली पेट छ:-से आठ औंस ले सकते हैं। यह दवा विजातीय द्रव्योंको बाहर निकालकर शरीरको शुद्ध करती है। इसका विपरीत प्रभाव नहीं होता।

दवाकी मात्रा—आयुके अनुसार चायवाली चम्मचसे एक-से चार चम्मच एक बारमें ले। साधारणतया दवा दिनमें तीन या चार बार ले। तीव्र ज्वर आदिमें आवश्यकतानुसार एक-एक घंटेपर भी दवा ली जा सकती है।

विभिन्न रंगोंकी बोतलोंके पानीका उपयोग

(१) लाल (Red) रंग—लाल रंगकी बोतलका पानी अत्यन्त गर्म होता है, अतः इसे पीना वर्जित है। इसको पीनेसे खूनी दस्त या उलटी हो सकती है। इसका प्रयोग प्रायः मालिश करने या शरीरके बाहरी भागमें लगानेके काम आता है। यह आयोडीन (Iodine)-से अधिक गुणकारी है।

यह रक्त एवं स्नायुको उत्तेजित करता है। शरीरमें गर्मी बढ़ाता है। यह सभी प्रकारके वातरोग और कफरोगोंमें लाभ देता है।

(२) नारंगी (Orange) रंग—यह रक्तसंचारकी वृद्धि करता है, मांसपेशियोंको स्वस्थ रखता है और मानसिक शक्ति तथा इच्छाशक्तिको बढ़ाता है। बुद्धि और साहसको विकसित करता है। कफ-जन्य रोगोंका नाशक है।

यह कफ-जन्य रोग खाँसी, बुखार, निमोनिया, इनफ्लुएन्जा, श्वासरोग, क्षयरोग, पेटमें गैस बनना, हृदयरोग, गठिया, पक्षाघात, अजीर्ण, एनीमिया, रक्तमें लालकणोंकी कमीवाले रोगोंके लिये लाभप्रद हैं। माँके स्तनोंमें दूधकी वृद्धि करता है।

(३) पीला (Yellow) रंग—यह शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यके लिये अत्युत्तम है। यह हल्का रेचक भी है। पाचन-संस्थानको ठीक करता है। यह हृदय एवं उदररोगोंका नाशक है। इसकी प्रकृति उष्ण है, अतः पेचिश आदिमें इसे न ले।

यह पेटदर्द, पेट फूलना, क़ब्ज़, कृमिरोग एवं मेदरोग, तिल्ली, हृदय, जिगर और फेफड़ेके रोगोंमें भी लाभप्रद है। यह युवा पुरुषोंको तत्काल लाभ देता है। इसका पानी थोड़ी मात्रामें ही लेना चाहिये।

(४) हरा (Green) रंग—यह प्रकृतिका रंग है। समशीतोष्ण है। यह शरीर और मनको प्रसन्नता देता है। शरीरकी मांसपेशियोंका निर्माण करता है और उन्हें शक्ति देता है। मस्तिष्क और नाडी-संस्थानको बल देता है। रक्तशोधक है।

यह वातजन्य रोग, टाइफॉइड, मलेरिया आदि ज्वर, यकृत् और गुर्दोंकी सूजन, सभी चर्मरोग, फोड़ा-फुंसी, दाद, नेत्ररोग, मधुमेह, सूखी खाँसी, जुकाम, बवासीर, कैंसर, सिरदर्द, रक्तचाप, एक्जिमा आदि रोगोंमें लाभप्रद है।

(५) आसमानी (Blue) रंग—यह शीतल है। पित्त-जन्य रोगोंके लिये विशेष लाभकारी है। यह प्यास और आमाशयिक उत्तेजनाको शान्त करता है। यह अच्छा पोषक टॉनिक और एन्टीसेप्टिक है। सभी प्रकारके ज्वरोंके लिये रामबाण है। रक्त-प्रवाहको रोकता है। कफज रोगोंमें इसका प्रयोग न करे।

यह ज्वर, खाँसी, दस्त, पेचिश, संग्रहणी, दमा, सिरदर्द, मूत्ररोग, पथरी, त्वचारोग, नासूर, फोड़े-फुंसी, मस्तिष्क आदि रोगोंमें लाभप्रद है।

(६) नीला, गहरा नीला (Indigo) रंग—यह भी शीतल है। यह जीवमात्रको जीवनीशक्ति देता है। यह शीतलता और शान्ति देता है। कुछ क़ब्ज़ करता है। शरीरपर इसकी क्रिया अतिशीघ्र होती है।

यह आमाशय, अण्डकोश-वृद्धि, प्रदर, योनिरोग आदि रोगोंमें विशेष उपयोगी है। यह गर्मीके सभी रोगोंको दूर करता है।

(७) बैगनी (Violet) रंग—इसके गुण प्रायः नीले रंगके तुल्य हैं। यह रक्तमें लाल कणोंकी वृद्धि करता है। खूनकी कमीको दूर करता है। क्षय-रोगमें विशेष उपयोगी है। इससे अच्छी नींद आती है।

उक्त विवेचनके आधारपर कहा जा सकता है कि सूर्य वस्तुतः चर-अचर जगत्‌की आत्मा है। नीरोगताके लिये सूर्यकी शरणमें जाना अत्युत्तम है।



रोगोंका यौगिक निदान एवं चिकित्सा

(श्रीसोमचैतन्यजी श्रीवास्तव)

आरोग्य मनुष्य-जीवनमें प्रास्तव्य चारों पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका मूल है। योग-साधनामें भी व्याधिको योगका सर्वप्रमुख विघ्न माना गया है। अतएव लौकिक या अलौकिक पुरुषार्थके सम्पादनमें समर्थ बने रहनेके लिये आरोग्यवान्—आधि-व्याधिशून्य बने रहना अत्यन्त आवश्यक है। आयुर्वेदके अनुसार स्वस्थ पुरुषका लक्षण है आत्मा, मन एवं इन्द्रियोंके प्रसन्न रहनेके साथ-साथ शरीर-स्थित दोष—अग्नि, धातु, मल एवं क्रियाओंका सम-अवस्थामें रहना—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

समत्व ही योगका एवं सृष्टिव्यवस्थाका मूल आधार है। विषमतासे ही विकारकी उत्पत्ति होती है। सूक्ष्मदृष्टि रखनेवाले ऋषि एवं योगिगण केवल शारीरिक रोग एवं बाह्य वैषम्यपर ही नहीं; अपितु इनके उत्पादक सूक्ष्म शरीरके वैषम्यको भी दृष्टिमें रखते थे तथा उस विषमताको भी उत्पन्न करनेवाले कारणोंको दूरकर शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तीनों प्रकारके स्वास्थ्य-लाभका उपदेश देते रहे हैं। स्वास्थ्यके विकार कर्मदोष, दुर्वृत्त, प्रज्ञाविकार, रजोगुण एवं तमोगुणका प्रभाव, शरीरगत पञ्चभूतोंमेंसे किन्हींका क्षय, श्वास-प्रक्रियामें विपर्यय, वातादि दोषोंकी वृद्धि, अपथ्य-भोजन आदि कारणोंसे होते हैं। आयुर्वेदिक दृष्टिसे व्यक्ति या जनपदमें होनेवाले व्याधि—दुःखका कारण प्रज्ञाविकार है। बुद्धि शरीर-सत्ताकी संचालिका है। बुद्धिमें लोभ, मोह, क्रोध, अभिमान आदिकी उत्पत्ति होनेसे व्यक्ति अधर्माचरण करने लगता है। अतः उस अधर्माचरणके

फलस्वरूप नाना प्रकारकी व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनसे सभी व्यक्ति दुःखी होते हैं। व्यक्तिगत अधर्माचरणका फल व्यक्तिको व्याधिके रूपमें मिलता है एवं समूहरूपमें किये गये अधर्मका फल जाति, समुदाय, ग्राम, नगर, प्रान्त, राष्ट्र एवं विश्वको व्यापक व्याधियों एवं अन्य उपद्रवोंके रूपमें मिलता है।

हठयोगके अनुसार भौतिक शरीरके दोषोंको दूर करनेके लिये एवं स्वस्थ बने रहनेके लिये षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, मुद्रा, धारणा एवं ध्यानका आलम्बन लेना चाहिये। षट्कर्मका उपयोग प्रवृद्ध कफ-दोषको दूर करके वात, पित्त एवं कफ—इन तीनों दोषोंको समभावमें स्थापित करनेके लिये होता है। यदि कफ-दोष बढ़ा न हो तो जिस अङ्गमें विकार या अशक्ति प्रतीत हो, उसी अङ्गको बलवान् बनाने या उस अङ्गसे विकारको दूर करनेके लिये षट्कर्मोंमेंसे यथावश्यक दो या तीन अथवा चार कर्मोंका अभ्यास करना चाहिये। धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलिक तथा कपालभाति—इन छः क्रियाओंको 'षट्कर्म' कहते हैं। धौति-कर्म कण्ठसे आमाशयतकके मार्गको स्वच्छ करके सभी प्रकारके कफरोगोंका नाश कर देता है। यह विशेषरूपसे कफप्रधान कास, श्वास, प्लीहा एवं कुष्ठरोगमें लाभकारी है। वस्ति-कर्मद्वारा गुदामार्ग एवं छोटी आँतके निचले हिस्सेकी सफाई हो जाती है। इससे अपानवायु एवं मलान्त्रके विकारसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंका शमन हो जाता है। आँतोंकी गर्मी शान्त होती है, कोष्ठबद्धता दूर होती है। आँतोंमें स्थित—संचित दोष नष्ट होते हैं। जठराग्निकी वृद्धि होती है। अनेक उदररोग नष्ट होते हैं। वस्ति-कर्म करनेसे वात-पित्त एवं कफसे उत्पन्न अनेक रोग तथा गुल्म, प्लीहा और जलोदर दूर होते हैं। नेति-कर्म नासिकामार्गको स्वच्छ कर कपाल-शोधनका कार्य करता है। यह विशेषरूपसे नेत्रोंको उत्तम दृष्टि प्रदान करता है और गलेसे ऊपर होनेवाले दाँत, मुख, जिह्वा, कर्ण एवं शिरोरोगोंको नष्ट करता है। त्राटक-कर्मद्वारा नेत्रोंके अनेक रोग नष्ट होते हैं एवं तन्द्रा, आलस्य आदि दोष नष्ट होते हैं। उदररोग एवं अन्य सभी दोषोंका नाश करनेके लिये नौलिक प्रमुख है। यह मन्दाग्निको नष्टकर जठराग्निकी वृद्धि करता है तथा भुक्तान्नको सुन्दर प्रकारसे पचानेकी शक्ति प्रदान करता है। इसका अभ्यास करनेसे वातादि दोषोंका शमन होनेसे चित्त सदा प्रसन्न रहता है। कपालभाति विशेषरूपसे कफ-दोषका शोषण करनेवाली है। षट्कर्मोंका अभ्यास करनेसे जब शरीरान्तर्गत कफ-दोष—मलादिक क्षीण हो जाते हैं, तब प्राणायामका अभ्यास करनेसे अधिक शीघ्र सफलता मिलती है।

जिन्हें पित्तकी अधिक शिकायत रहती है, उनके लिये गजकर्णी या कुंजल-क्रिया लाभदायक रहती है। इस क्रियामें प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होनेके बाद पर्याप्त मात्रामें नमकमिश्रित कुनकुना जल पीकर फिर वमन कर दिया जाता है। इससे आमाशयस्थ पित्तका शोधन होता है। जिन्हें मन्दाग्निकी शिकायत है या जिनका स्वास्थ्य उत्तम भोजन करनेपर भी सुधरता नहीं है, उन्हें अग्निसार नामक क्रियाका अभ्यास करना चाहिये। इस क्रियामें नाभिग्रन्थिको बार-बार मेरु-पृष्ठमें लगाना होता है। एक सौ बार लगा सकनेका अभ्यास हो जानेपर समझना चाहिये कि इस क्रियामें परिपक्वता प्राप्त हो गयी है, यह सभी प्रकारके उदररोगोंको दूर करनेमें सहायक है।

आसनका अभ्यास शरीरसे जडता, आलस्य एवं चञ्चलताको दूर करके सम्पूर्ण स्नायु-संस्थान एवं प्रत्येक अङ्गको पुष्ट बनानेके लिये होता है। इसके अभ्याससे शरीरके अङ्गोंके सभी भागोंमें एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म नाडियोंमें रक्त पहुँचता है, सभी ग्रन्थियाँ सुचारु रूपसे कार्य करती हैं। स्नायु-संस्थान बलवान् हो जानेपर साधक काम, क्रोध, भय आदिके आवेगोंको सहनेमें समर्थ होता है। वह मानस-रोगी नहीं बनता। शरीरका स्वास्थ्य मस्तिष्क, मेरुदण्ड, स्नायु-संस्थान, हृदय एवं फेफड़े तथा उदरके बलवान् होनेपर निर्भर है। अतः आसनोंका चुनाव इनपर पड़नेवाले प्रभावोंको दृष्टिमें रखकर करना चाहिये। जिसका जो अङ्ग कमजोर हो उसे सार्वाङ्गिक व्यायामके आसनोंका अभ्यास करनेके साथ-साथ उन दुर्बल अङ्गोंको पुष्ट करनेवाले आसनोंका अभ्यास विशेषरूपसे करना चाहिये। ध्यानके उपयोगी पद्मासन आदिको सर्वरोगनाशक इसलिये कहा जाता है कि इन आसनोंसे ध्यान या जपमें बैठनेपर शरीरमें

साम्यभाव, निश्चलता, शान्ति आदि गुण आ जाते हैं, जो भौतिक स्तरपर सत्त्वगुणकी वृद्धि करनेमें सहायक होते हैं। आरोग्यकी दृष्टिसे किये जानेवाले आसनोंमें पश्चिमोत्तान, मत्स्येन्द्र, गोरक्ष, सर्वाङ्ग, मयूर, भुजंग, शलभ, धनु, कुक्कुट, आकर्षणधनु एवं पद्म-आसन मुख्य हैं।

आसनोंको शनैः-शनैः किया जाय, जिससे अङ्गों एवं नाडियोंमें तनाव, स्थिरता, संतुलन, सहनशीलता एवं शिथिलता आ सके। अपनी पूर्ववत् स्थितिमें भी धीरे-धीरे ही आना चाहिये। जो अङ्ग रोगी हो, उस अङ्गपर बोझ डालनेवाले आसनोंका अभ्यास अधिक नहीं करना चाहिये। जैसे जिनके पेटमें घाव है या जो स्त्रियाँ मासिक-धर्मसे युक्त हैं, उन्हें उन दिनों पेटके आसन नहीं करने चाहिये। जिस आसनका प्रभाव जिस ग्लैंड्स या नाडी-चक्रपर पड़ता है—आसन करते समय वहीं ध्यान केन्द्रित करना चाहिये तथा गायत्री आदि मन्त्रोंका या तेज, बल, शक्ति देनेवाले मन्त्रोंका यथाशक्ति स्मरण करना चाहिये। एक आसनके बाद उसका प्रतियोगी आसन भी करना चाहिये। यथा—पश्चिमोत्तान-आसनका प्रतियोगी भुजंगासन और शलभासन है। हस्तपादासनका प्रतियोगी चक्रासन है। सर्वाङ्गासनका अभ्यास आवश्यक है। सूर्यनमस्कारको अन्य आसनोंके अभ्यासके पूर्व कर लेना लाभकारी है।

प्राणायामका अभ्यास शरीरस्थ सभी दोषोंका निराकरण कर प्राणमयकोष एवं सूक्ष्म शरीरको नीरोग तथा पुष्ट बनाता है। नाडी-शोधनका अभ्यास करनेके बाद ही कुम्भक प्राणायामोंका अभ्यास करना चाहिये। प्राणायामके सभी अभ्यास युक्तिपूर्वक शनैः-शनैः ही करने चाहिये तथा भस्त्रिका प्राणायामको छोड़कर सभी शेष प्राणायामोंमें रेचक एवं पूरक, दोनोंकी क्रियाएँ बहुत धीरे-धीरे करनी चाहिये। प्रत्येक कुम्भककी अपनी-अपनी दोषनाशक विशेष शक्ति है। अतः प्रवृद्ध दोषका विचार करके ही उसके दोषनाशक कुम्भकका अभ्यास करना चाहिये। सूर्यभेद प्राणायाम पित्तवर्धक, जरादोषनाशक, वातहर, कपालदोष एवं कृमिदोषको नष्ट करनेवाला है। उज्जायी कफरोग, क्रूरवायु, अजीर्ण, जलोदर, आमवात, क्षय, कास, ज्वर एवं प्लीहाको नष्ट करता है। स्वास्थ्य एवं पुष्टिकी प्राप्तिके लिये उज्जायी प्राणायामका विशेष रूपसे अभ्यास करना चाहिये। शीतली प्राणायाम अजीर्ण, कफ, पित्त, तृषा, गुल्म, प्लीहा एवं ज्वरको नष्ट करता है। भस्त्रिका प्राणायाम वात-पित्त-कफ-हर, शरीराग्निवर्धक एवं सर्वरोगहर है। व्यवहारमें संध्योपासनाके उपरान्त एवं जपसे पूर्व नाडी-शोधन, उज्जायी एवं भस्त्रिका प्राणायामका नित्य अभ्यास करनेका प्रचलन है।

रोग-निवारणके लिये स्वर-योगका आश्रय भी लिया जाता है। नीरोगताके लिये भोजन सदा दायाँ स्वर (श्वास) चलनेपर करना चाहिये। वाम स्वर शीतल एवं दक्षिणस्वर उष्ण माना जाता है। इसके अनुसार ही वात एवं कफ-प्रधान रोगोंमें दक्षिण नासिकासे श्वासको चलाया जाता है एवं पित्तप्रधान रोगमें वाम स्वरसे श्वासको चलाया जाता है। सामान्य नियम यह है कि रोगके प्रारम्भकालमें जिस नासिकासे श्वास चल रहा होता है, उसे बंद करके दूसरी नासिकासे श्वास रोग-शमन होनेतक चलाया जाता है। इस स्वर-परिवर्तनसे प्रवृद्ध दोषका संशमन हो जाता है। स्वरयोगकी जानकारीके लिये 'शिवस्वरोदय' एवं 'स्वर-चिन्तामणि' नामक ग्रन्थोंका अवलोकन करना चाहिये।

मुद्राओंके अभ्यासमें महामुद्रा, खेचरी, उड्डीयानबन्ध, जालन्धरबन्ध, मूलबन्ध एवं विपरीतकरणी मुख्य हैं। महामुद्रा क्षय, कुष्ठ, आवर्त, गुल्म, अजीर्ण आदि रोगों एवं सभी दोषोंको नष्ट करती है। इसके अभ्याससे पाचन-शक्तिकी प्रचण्ड वृद्धि होकर विषको भी पचानेकी क्षमता प्राप्त होती है। महामुद्राके साथ महाबन्ध एवं महावेधका भी अभ्यास किया जाता है। इन तीनोंके अभ्याससे वृद्धत्व दूर होता है एवं अनेक शारीरिक सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। खेचरी मुद्राके अभ्याससे शरीरमें अमृतत्व धर्मकी वृद्धि होती है। सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। शरीरकी सोमकलाका विकास होता है तथा देह-क्षयकी प्रक्रिया रुक जाती है। उड्डीयानका अभ्यास उदर एवं नाभिसे नीचे स्थित अङ्गोंके रोगोंको दूर कर पुरुषत्वकी अभिवृद्धि करता है। जननाङ्ग एवं प्रजननाङ्गके रोगोंसे पीडित नर-नारियोंको उड्डीयानबन्धका विशेष अभ्यास करना चाहिये। जालन्धरबन्धसे कण्ठ-रोगों एवं शिरोरोगोंका नाश होता है तथा मूलबन्धका अभ्यास गुदा एवं जननेन्द्रियपर, प्राण एवं अपानपर नियन्त्रण प्रदान करता

है। उड्डीयान एवं जालन्धरबन्धका अभ्यास तो प्राणायामके समय ही किया जाता है, परंतु मूलबन्धका अभ्यास सतत करना चाहिये। विपरीतकरणी मुद्राका ठीक-ठीक अभ्यास वलीपलितको दूर कर युवावस्था प्रदान करता है।

पूर्वोक्त मुद्राओंके अतिरिक्त घेरण्डसंहिताप्रोक्त कुछ अन्य मुद्राओंका अभ्यास भी रोगनाश, वलीपलितविनाश एवं स्वास्थ्य-लाभके लिये उपयोगी है। इनमेंसे नभोमुद्रा एवं माण्डूकीमुद्रा तालुस्थित अमृतपानमें सहायक होनेके कारण सभी रोगोंका नाश करनेवाली है। आश्विनी मुद्रा गुह्यरोगोंका नाश करनेवाली, अकालमृत्युको दूर करनेवाली तथा बल एवं पुष्टि प्रदान करनेवाली है। पाशिनी मुद्रासे बल एवं पुष्टिकी प्राप्ति होती है। तड़ागी मुद्रा एवं भुजंगिनी मुद्रा—ये दोनों ही उदरके अजीर्णादि रोगोंको नष्टकर दीर्घ जीवन प्रदान करती हैं।

रोगोंको दूर करनेमें ध्यान अथवा चिन्तनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। ध्यानसे शरीर, प्राण, मन, हृदय एवं बुद्धिमें शान्ति, पवित्रता एवं निर्मलता आती है। 'सदा प्राणिमात्रके कल्याणका विचार करनेसे एवं सभी सुखी हों, नीरोग हों, शान्त हों'—इस प्रकारकी भावनाओंकी तरङ्गोंको सभी दिशाओंमें प्रसारित करनेसे स्वयंको सुख तथा शान्तिकी प्राप्ति होती है। व्यक्ति जैसा चिन्तन करता है, प्राय: वह वैसा बन जाता है। 'मैं नीरोग हूँ, स्वस्थ हूँ'—ऐसा चिन्तन निरन्तर दृढ़तापूर्वक करते रहनेसे आरोग्य बना रहता है। इसे आत्मसम्मोहन 'ऑटो सजेशन' की विधि कहते हैं। इसी प्रकार प्रबल संकल्पशक्तिके द्वारा अपने या दूसरेके रोगोंको भी दूर किया जाता है। रोगनिवारणके लिये प्रमुख बात यह है कि रोग होनेपर उसका चिन्तन ही न करे, उसकी परवाह ही न करे। रोगका चिन्तन करनेसे रोग बद्धमूल हो जाता है एवं व्यक्तिका मनोबल दुर्बल हो जाता है। मानसिक रोगोंका संकल्पशक्ति एवं प्रज्ञाबलसे निवारण करना चाहिये एवं शारीरिक रोगोंका औषधोंसे। इन रोगोंके उन्मूलनमें यौगिक साधनोंका अद्भुत योगदान रहा है।

शारीरिक एवं मानसिक रोगोंसे मुक्ति चाहनेवालोंको योग-क्रियाओंका अभ्यास करनेके साथ-साथ रोगोत्पादक सभी मूल कारणोंका त्याग करना चाहिये तथा अपने लिये अनुकूल एवं चिकित्साशास्त्रद्वारा निर्दिष्ट सात्त्विक पथ्य, सदाचार एवं सत्कर्मका सेवन करना चाहिये। यथासम्भव अनिष्ट-चिन्तनसे बचना चाहिये तथा चित्तको राग-द्वेष-मोहादि दोषोंसे दूर करना चाहिये। सम्पूर्ण दु:खोंका मूल कारण तमोगुणजनित अज्ञान, लोभ, क्रोध तथा मोह है। त्रिगुणके प्रभाव तथा अज्ञानके बन्धनसे मुक्त होनेका एकमात्र उपाय योग है तथा योग-बलसे भी बड़ी शक्ति है भगवान्‌की अनुग्रह-शक्ति।

अतएव अहंता-ममताका त्याग करके भगवच्चरणोंका एकमात्र आश्रय लेकर योगसाधना करनेसे शारीरिक व्याधिके साथ-साथ त्रिविध ताप एवं भवव्याधि भी कट जाती है और ऐसा साधक पूर्णतम आनन्दको प्राप्त करनेमें सर्वथा समर्थ हो जाता है।

~~~~~~

प्राकृतिक चिकित्सा क्या है?

(डॉ० श्रीविमलकुमारजी मोदी, एम०डी०, एन०डी०)

जिन लोगोंने प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीके आधारभूत सिद्धान्तोंको नहीं समझा है, वे ऐसा कुछ समझते हैं कि यह कुछ खब्तों और वादोंका संग्रहमात्र है—कहींकी ईंट और कहींका रोड़ा लेकर भानमतीका कुनबा जोड़ा गया है और जो लोग इसके सिद्धान्तों और तथ्योंका प्रचार करते हैं, वे खब्ती हैं। कारण यह है कि वर्तमान पीढ़ीपर 'विज्ञान' शब्दका जादू इस प्रकार काम कर गया है कि लोग अपने शरीरमें निहित आरोग्यदायिनी प्राकृतिक शक्तियोंके सम्बन्धमें सरल, स्पष्ट और तर्कपूर्ण तथ्योंको सुनने तथा समझनेके लिये तैयार ही नहीं होते।

'प्रकृतिद्वारा रोगोपशमन' शब्दोंका प्रयोग उस आरोग्य-दायिनी शक्तिका द्योतन करनेके लिये किया जाता है, जो प्रत्येक जीवित प्राणीके शरीरमें अन्तर्निहित है। न तो यह कुछ वादोंका संग्रहमात्र है और न ऐसा कोई खब्त ही है,
~~~~~~

जो प्रचलित हो गया है। यह तो उसी समयसे व्यवहारमें आ रहा है, जबसे इस पृथ्वीपर जीवनका आरम्भ हुआ। प्राचीन कालमें आरोग्य-प्राप्तिका एकमात्र उपचार समझकर ही इसका आश्रय लिया जाता था; पर सभ्यता और तथाकथित विज्ञानके आगमनसे इसका परित्याग कर दिया गया।

आधारभूत सिद्धान्त

आरोग्य-लाभकी प्राकृतिक प्रणालीका अर्थ भलीभाँति समझनेके लिये इसके आधारभूत सिद्धान्तोंको मनमें अच्छी तरह बैठा लेना आवश्यक है। शरीर अपनी स्वच्छता, पुनर्निर्माण और क्षति-पूर्ति-जैसी कुछ प्रक्रियाओंद्वारा प्राकृतिक रूपमें स्वास्थ्य-प्राप्तिका निरन्तर प्रयत्न करता रहता है। घावोंको भरकर और टूटी हुई अस्थिको जोड़कर प्रकृति अपनी क्षति-पूर्तिकी प्रवृत्तिका परिचय स्पष्टरूपसे दे देती है। जिस शक्तिके द्वारा सब पदार्थोंका नियमन होता है, वह सर्वदा कार्यरत रहती है और उसके अभावमें जीवनका अस्तित्व क्षणभर भी स्थिर नहीं रह सकता। यह मानव-शरीरमें ही नहीं, बल्कि पृथ्वीपर विद्यमान हर एक पदार्थ और जीवधारीके अंदर कार्य करती रहती है और हम चाहे जो कुछ करें, सोचें या विश्वास रखें, यह अपना काम बराबर करती जाती है।

यह पद्धति इस बातकी असंदिग्धरूपसे शिक्षा देती है कि शरीरमें जो भी विकार या बीमारी होती है, वह वस्तुतः शरीरके प्राकृतिक रूपमें आत्म-परिष्कारका प्रयत्नमात्र है। यदि जनताका मस्तिष्क तथाकथित विज्ञान और रोगोत्पत्तिके कारणोंके मूलमें कीटाणुओंके होनेके सिद्धान्तसे, जिसे बहुत बढ़ा-चढ़ाकर वर्णित किया जाता है और चिकित्सक तथा जनसाधारण भी अनुचितरूपमें समझे हुए हैं, अत्यधिक प्रभावित न हो गया होता तो वह प्राकृतिक प्रणालीको स्वीकार कर इससे अवश्य सहायता लेती।

कीटाणु और रोग

इस स्थलपर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली कीटाणुओंके अस्तित्वको अस्वीकार नहीं करती; पर इसका कहना यह है कि वे रोगकी उत्पत्तिके कारण ही नहीं होते, जिसके लिये उनको इतना बदनाम किया जाता है। प्राकृतिक प्रणालीके अनुसार रोगके कीटाणु गंदगी और विषाक्त पदार्थके मौजूद होनेपर ही प्रकट होते हैं और बढ़ते हैं। शरीर तबतक किसी संक्रामक रोगसे आक्रान्त नहीं हो सकता, जबतक उस विशेष रोगके कीटाणुओंके बढ़ने योग्य पहलेसे क्षेत्र तैयार न हो। रोगोत्पत्तिके कारणोंके सम्बन्धमें प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालीका सिद्धान्त ज्यादा गहराईतक पहुँचता है। यह इस बातकी शिक्षा देता है कि सर्दी, बुखार, सीने या किसी अङ्गमें जकड़न, सूजन अथवा जलन, ग्रन्थिशोथ आदि सभी तीव्र रोग, जिनमेंसे प्रत्येकपर प्रचलित चिकित्सा-प्रणालीने एक स्वतन्त्र रोग होनेका 'लेबल' लगा रखा है, एक ही-जैसे हैं अर्थात् वे सभी शरीरमें गंदगी एकत्र होने और उसके विषाक्त होनेके स्वाभाविक परिणाम हैं। उसका यह भी कहना है कि तीव्र रोग विषको प्रभावहीन कर उसे बाहर निकालनेके प्रकृतिके प्रयत्नका प्रकट चिह्न है। यदि उसे निकालना सम्भव न हुआ तो प्रकृति उसे एक जगह अलग कर देनेका प्रयत्न करती है, जिससे वह हानिकर न हो।

प्रकृतिको सहायता

प्रकृतिके इस शक्तिके साथ मिलकर कार्य करना या उसके विरुद्ध आचरण करना बहुत कुछ हमारी इच्छापर निर्भर है; पर यदि इस विषयपर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो प्रकृतिके साथ मिलकर काम करना ही हमारे लिये श्रेयस्कर होगा, इसलिये उपचारसम्बन्धी जो प्रणाली काममें लायी जाय उसका शरीर-विज्ञानके सिद्धान्तकी दृढ़ नींवपर टिकना आवश्यक है और जिसे हम शरीरका प्राकृतिक नियम समझ रहे हैं, उसके कार्यान्वित होनेमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं आनी चाहिये। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये प्राकृतिक चिकित्सक तीव्र रोगोंमें, जब कि शारीरिक क्रियाकी दृष्टिसे शरीरको पूर्ण विश्रामकी जरूरत मालूम होती है, खानेसे परहेज कराते हैं और जीर्ण रोगोंमें विकारको बाहर निकालनेके लिये प्रकृतिको सहायता देनेके विचारसे आवश्यकताके अनुसार या तो उपवास कराते हैं या केवल फल अथवा शाकका रस देकर आंशिक उपवास कराते हैं।

सबसे बड़ी प्रयोगशाला

हमें यह समझकर कि नीरोग करनेकी शक्ति

उपचारमें है, कभी अपनेको भुलावेमें नहीं रखना चाहिये। आरोग्यतापर हमेशा प्रकृतिका ही विशेषाधिकार रहता है। शरीरकी निर्बलता या विकार दूर करनेमें प्रकृतिको सहायता पहुँचानेके लिये हमें बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाओंमें प्रयोगात्मक अनुसंधान-केन्द्रों या दवाएँ तैयार करनेके लिये व्यापारिक ढंगपर चलाये जानेवाले कारखानोंकी जरूरत नहीं प्रतीत होती। प्रकृतिने इस शरीरको सबसे बड़ी प्रयोगशालाके रूपमें तैयार किया है, जिसमें रासायनिक प्रक्रियाएँ इतने ऊँचे शिखरपर पहुँची हुई हैं कि हमारी दृष्टि वहाँ पहुँचनेमें सर्वथा असमर्थ हो जाती है और जिसमें रक्षणात्मक क्षमताके साधन सर्वदा उचित नियन्त्रणमें रहते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली इस मतका प्रचार करती है कि रोगका सिर्फ एक कारण होता है। यह जीवनयापन और आरोग्य-लाभके लिये जिस ढंगका प्रतिपादन करती है, वह वैज्ञानिक होनेके साथ ही विवेकपूर्ण एवं सरल भी है और स्वास्थ्य-लाभके लिये जिसका अर्थ मस्तिष्क तथा शरीरका एक होकर या अखण्डरूपमें रहना है—स्वयं अपनेमें और प्राकृतिक शक्तियोंके साथ सामञ्जस्य होना आवश्यक बतलाती है।



प्राकृतिक चिकित्साके सिद्धान्त

(डॉ० श्रीशरदचन्द्रजी त्रिवेदी, एम०डी०)

शरीरमें दूषित, विषाक्त एवं विजातीय पदार्थोंके एकत्र होनेसे रोग उत्पन्न होते हैं। इन पदार्थोंके एकत्र होनेका मुख्य स्थान पेट है। इसलिये यदि पेट स्वस्थ है तो हम भी स्वस्थ हैं और पेट बीमार तो हम बीमार। जो भोजन हम लेते हैं उसमें ७५ प्रतिशत क्षारतत्त्व एवं २५ प्रतिशत अम्लतत्त्व होना चाहिये। यदि भोजनमें २५ प्रतिशतसे अधिक अम्लीय आहार लिया जाता है तो रक्तमें अधिक खटाई हो जाती है, इस कारण वह दूषित हो जाता है। शरीर इस दूषित पदार्थको पसीने एवं मूत्रद्वारा अंदरसे बाहर निकालनेकी चेष्टा करता है। यदि बाहर नहीं निकलता है तो शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। इस प्रकार जो आहार (भोज्य पदार्थ) पच नहीं पाता अर्थात रस-रक्तमें परिवर्तित नहीं हो पाता, वह शरीरके लिये विजातीय पदार्थ है। उसे बाहर निकाल देना चाहिये। उसका कुछ अंश भी यदि शरीरमें रह जाय तो वह रक्त-संचरणके द्वारा समस्त शरीरमें फैलकर दूषित विकार एवं रोग उत्पन्न करता है। प्राकृतिक चिकित्साद्वारा इन्हीं विजातीय पदार्थोंको हटाकर शरीरको स्वस्थ किया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सामें पञ्चमहाभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाशद्वारा चिकित्सा की जाती है। बिना औषधके मिट्टी, पानी, हवा (एनिमा), सूर्य-प्रकाश, उपवास एवं फलों, सब्जियोंद्वारा चिकित्सा की जाती है। आहार, ऋतुचर्या, दिनचर्या, रात्रिचर्यापर विशेष ध्यान दिया जाता है तथा प्रकृतिके निकट रहनेका अधिकाधिक प्रयास किया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सामें मिट्टी, जल, धूप एवं उपवासका उपयोग

(१) मिट्टी-चिकित्साका उपयोग—

इस पञ्च-भूतात्मक शरीरमें मिट्टी (पृथ्वीतत्त्व)-की प्रधानता है। मिट्टी हमारे शरीरके विषों, विकारों, विजातीय पदार्थोंको निकाल बाहर करती है। यह प्रबल कीटाणुनाशक है। मिट्टी विश्वकी महानतम औषधि है।

मिट्टी-चिकित्साके प्रकार—(क) मिट्टीयुक्त जमीनपर नंगे पाँव चलना—स्वच्छ धरतीपर, बालू, मिट्टी या हरी दूबपर प्रातः-सायं भ्रमण करनेसे जीवनी-शक्ति बढ़कर अनेक रोगोंसे लड़नेकी क्षमता प्रदान करती है।

(ख) मिट्टीके बिस्तरपर सोना—धरतीपर सीधे लेटकर सोनेसे शरीरपर गुरुत्वाकर्षण-शक्ति शून्य हो जाती है। स्नायविक दुर्बलता, अवसाद, तनाव, अहंकारकी भावना दूर होकर नयी ऊर्जा एवं प्राण शरीरमें प्रविष्ट हो जाते हैं। इसके लिये सीधे धरतीपर या पलंगपर आठ इंचसे बारह इंचतक मोटी समतल बालू बिछाकर सोना चाहिये। प्रारम्भमें थोड़ी

कठिनाई होती है, परंतु अभ्यास करनेसे धीरे-धीरे आदत पड़ जाती है।

(ग) सर्वाङ्गमें गीली मिट्टीका लेप—सर्वप्रथम किसी अच्छे स्थानसे चिकनी मिट्टीको लाकर उसे कंकड़-पत्थररहित करके साफ-स्वच्छ करनेके बाद कूट-पीसकर छानकर शुद्ध जलमें बारह घंटेतक भिगो दे। उसके बाद आटेकी तरह गूँदकर मक्खन सदृश लोई बनाकर समस्त शरीरपर इस मुलायम मिट्टीको आधा सेमी० मोटी परतके रूपमें पेट, पैर, रीढ़, गर्दन, चेहरा, जननाङ्गों और सिरपर लेप करे। इसके बाद पौन घंटासे एक घंटातक धूप-स्नान ले। मिट्टी सूखनेसे त्वचामें खिंचाव होनेसे वहाँका व्यायाम होता है और रक्त-सञ्चार तीव्र होकर पोषण मिलता है। धूप-स्नानसे मिट्टीको पूर्णत: सुखाकर भलीभाँति स्नान करके विश्राम करे।

मिट्टीकी पट्टी तैयार करनेकी विधि—भुरभुरी चिकनी मिट्टी या काली मिट्टी किसी अच्छे स्थानसे लेकर उसे कूटकर एक-दो दिन धूपमें सुखा दे। कंकड़-पत्थर निकालकर साफ कर ले। इसे कूट-पीसकर छानकर बारह घंटेतक शुद्ध पानीमें भिगो दे। बारह घंटेके बाद लकड़ीकी करणी (पलटा)-से अच्छी तरह गूँदकर मक्खनकी तरह मुलायम कर ले। मिट्टीको इतना ही गीला रखे कि वह बहे नहीं (आटेके ढीलेपनसे थोड़ी कड़ी रखनी चाहिये)। मिट्टीकी पट्टीके लिये खादीका मोटा एवं सछिद्र कपड़ा अथवा जूटका टाट (पल्ली) काममें ले। अलग-अलग अङ्गोंके अनुसार बने साँचे (ट्रे)-में लकड़ीके पलटेसे मिट्टीको रखकर आधा इंच मोटी पट्टी बनावे। साँचा नहीं हो तो पत्थरकी शिला या लकड़ीके चौकोर पाटे (चौकी)-पर रखकर पट्टी बनावे।

इस पट्टीको पेट, रीढ़, सिर आदिपर सीधे सम्पर्कमें रखे। जिन रोगियोंको असुविधा हो तो साँचेमें नीचे खादीका सछिद्र कपड़ा या टाटकी एक तह बिछाकर उसपर मिट्टीकी पट्टी बनाकर चारों ओरसे पैक करके रखे। रोगीके अङ्गपर समतल तहवाला हिस्सा रखे। पट्टी रखनेके बाद ऊपरसे ऊनी वस्त्र या मोटे कपड़ेसे ढक दे। प्रत्येक रोगीका मिट्टी-पट्टीवाला वस्त्र अलग-अलग रखे। एक बार काममें ली हुई मिट्टीको दोबारा काममें नहीं ले। ठंडी मिट्टीकी पट्टी देनेसे पूर्व उस अङ्गको सेंकद्वारा किञ्चित् गरम कर ले। दुर्बल रोगी, श्वासरोग, दमा, जुकाम, तीव्र दर्द, साइटिका, आर्थराइटिस, गठिया, आमवात, गर्भावस्था, बच्चोंको यह प्रयोग यदि अरुचिकर एवं असुविधाजनक लगे तो नहीं करावे।

अङ्गोंके अनुसार अलग-अलग पट्टी बनाये

(अ) रीढ़की मिट्टी-पट्टी—डेढ़ फीट लम्बी एवं तीन इंच चौड़ी मिट्टीकी पट्टी बनाकर ग्रीवा-कशेरुकासे कटि-कशेरुकातक रखे।

(ब) सिरकी मिट्टी-पट्टी—८-१० इंच लम्बी, ४-६ इंच चौड़ी, आधा इंच मोटी पट्टी बनाकर सिरपर टोपीकी तरह रखे या कुछ छोटी बनाकर ललाटपर रखे।

(स) आँखकी मिट्टी-पट्टी—१० इंच लम्बी, ४ इंच चौड़ी, आधा इंच मोटी बनाकर आँखोंपर रखे।

(द) कानकी मिट्टी-पट्टी—कानोंमें रूई लगाकर कानपर गोलाकार मिट्टीकी पट्टी या लेप कर सकते हैं।

(य) पेटकी मिट्टी-पट्टी—एक फुट लम्बी, ६-८ इंच चौड़ी, आधा इंच मोटी पट्टी बनाकर नाभिसे लेकर नीचेतक, मध्य उदरपर रखनी चाहिये।

रीढ़, सिर तथा पेट तीनोंपर एक साथ मिट्टीकी पट्टी रखनेसे शिर:शूल (सिरदर्द), हाई ब्लडप्रेशर, तेज बुखार, मूर्च्छा, अनिद्रा, नपुंसकता, मस्तिष्क-ज्वर, स्नायु-दौर्बल्य, अवसाद, तनाव, मूत्ररोग इत्यादिमें लाभ होता है। आँखपर मिट्टी-पट्टी रखनेसे आँखोंके समस्त रोग, जलन, सूजन, दृष्टि-दोष दूर होते हैं। गलेकी सूजन, टांसिलाइटिस, स्वरयन्त्रकी सूजन (लैरिंजाइटिस) आदिमें स्थानीय वाष्प देकर गरम मिट्टीकी पुल्टिस बाँधे।

पेट, आमाशय, यकृत्, प्लीहा, कमर, जननाङ्ग, गुदाद्वार, अग्न्याशय आदि अङ्गोंपर मिट्टीकी पट्टी रखनेसे उनसे सम्बन्धित रोगोंमें लाभ मिलता है। पेटके प्रत्येक रोगमें पेडूपर मिट्टीकी पट्टी अवश्य देनी चाहिये।

(२) जल-चिकित्साके उपयोग

जल-चिकित्साकी विधियाँ—सामान्यत: हमारे शरीरमें ५५ प्रतिशतसे ७५ प्रतिशततक जल होता है। अत: जलका

महत्त्व स्वास्थ्यकी दृष्टिसे बहुत अधिक है—

(अ) गरम-ठंडा सेंक—सभी तरहके दर्द एवं सूजनमें इसके प्रयोगसे तुरंत लाभ मिलता है। सर्वप्रथम एक पात्रमें खूब गरम पानी तथा दूसरे पात्रमें खूब ठंडा (बर्फीला) पानी ले। तीन रोयेंदार तौलिये ले। गर्म पानीमें एक तौलियेके दोनों किनारे पकड़कर मध्यसे डुबोकर भिगो-निचोड़कर पीडित अङ्गपर रखे। ऊपर सूखा तौलिया ढक दे। तीन मिनटके बाद दूसरे तौलियेको ठंडे पानीमें भिगो-निचोड़कर दो मिनटतक पीडित अङ्गपर रखे। यह क्रम कम-से-कम पाँच बार करे। सेंक हमेशा गर्मसे प्रारम्भ करके ठंडेपर समाप्त करना चाहिये। समाप्तिके बाद सूखे तौलियेसे शुष्क घर्षण देकर स्थानीय लपेट बाँधकर आराम कराये। गर्म-ठंडे सेंकसे रक्त-वाहिनियाँ संकुचित प्रसरित होती हैं। विजातीय पदार्थ बाहर निकलते हैं। पेटके रोगोंमें गर्म-ठंडा सेंक एक मुख्य उपचार है। इससे चमत्कारिक लाभ मिलता है।

(ब) मेहन-स्नान (जननेन्द्रिय प्रक्षालन)—इस स्नानके लिये बैठनेके लिये ऐसा स्टूल हो जो सामनेकी ओरसे अर्द्धचन्द्राकारमें कटा हो ताकि उसपर बैठकर जननेन्द्रियपर पानी डालते समय नितम्ब या अन्य अङ्गपर पानीका स्पर्श नहीं हो सके। स्टूलके ठीक सामने उसकी ऊँचाईसे एक इंच नीचे ठंडे पानीसे भरा हुआ बड़ा पात्र (बेसिन) या चौड़े मुँहवाली बालटी रखनी चाहिये।

(स) कटि-स्नान—इसके लिये एक विशेष प्रकारका कुर्सीनुमा टब (लोहा, फाइबर, ग्लास या प्लास्टिक) लेकर उसमें पानी भरकर रोगीको बिठा देते हैं। रोगीके पैर टबसे बाहर एक पट्टेपर रखवा दिये जाते हैं। टबका पानी कमरसे लेकर जाँघोंके बीचवाले भागको डुबोकर रखता है। इस दौरान रोगी रोयेंदार तौलियेसे नाभि, पेडू, नितम्ब तथा जाँघोंको पानीके अंदर रगड़ते हुए मालिश करे।

रोगी निर्बल हो तो पैरोंको चौड़े मुँहके गर्म पानीके पात्रमें रखवाये एवं गर्दनतक कम्बल या गर्म कपड़ेसे ढक दे। ठंडे पानीका तापमान ५०°फा० से ८०°फा० तक रखना चाहिये। प्रारम्भमें सहने योग्य पानी रखे। थोड़ी देर बाद बर्फका पानी डालकर पानीका तापमान कम करते जाय। टबमें पानी उतना ही रखे कि उसमें रोगीके बैठनेपर पानी नाभितक आ जाय। कटि-स्नानसे पूर्व तथा कटि-स्नानके दौरान शरीरका कोई अन्य अङ्ग नहीं भीगना चाहिये। भोजन एवं कटि-स्नानके मध्य तथा कटि-स्नान एवं साधारण स्नानके मध्य एक घंटेका अन्तर रखना आवश्यक है। कटि-स्नान रोगीकी सहनशक्ति, स्थितिके अनुसार तीन मिनटसे प्रारम्भ करके बीस मिनटतक देना चाहिये।

कम ठंडे पानीका कटि-स्नान अधिक देरतक देनेकी अपेक्षा अधिक ठंडे पानीका कटि-स्नान थोड़ी देरतक देना ज्यादा लाभदायक होता है। ठंडे कटि-स्नानसे पूर्व तथा बादमें सूखे तौलियेसे घर्षण-स्नान करके शरीरको किञ्चित् गर्म कर लेना चाहिये, जिससे ठंडे पानीका प्रतिकूल असर नहीं पड़े। तीव्र कमर-दर्द, निमोनिया, खाँसी, अस्थमा (दमा), साइटिका, गर्भाशय-मूत्राशय-जननेन्द्रिय तथा आन्त्रकी तीव्र सूजनमें कटि-स्नान वर्जित है।

(द) वाष्प-स्नान—वाष्प-स्नानके लिये आजकल कई तरहके बने-बनाये यन्त्र मिलते हैं। सम्पूर्ण वाष्प-स्नानके लिये केबिननुमा पेटी होती है, जिसमें वाष्प निकलनेके लिये छोटे-छोटे छिद्र तथा ट्यूब लगे होते हैं। इन छिद्रोंका सम्बन्ध ताँबेकी या लोहेकी पतली पाइपद्वारा बॉयलर (वाष्प-उत्पादक यन्त्र)-से होता है। बॉयलर चलानेपर वाष्प केबिनमें या वाष्प-कक्षमें भर जाती है।

विधि—रोगीका सारा शरीर केबिनमें होता है। गर्दनके ऊपरका हिस्सा बाहर होता है। वाष्प-स्नानसे पूर्व सिर, चेहरा तथा गलेको ठंडे पानीसे धोकर सिरपर गीली तौलिया रखे। रोगीको नीबू, पानी, शहद या संतरेका रस १००-२०० मि०ली० तक पिला दे। पंद्रह-पंद्रह मिनटतक वाष्प-स्नान ले। इस दौरान अङ्ग-प्रत्यङ्गकी मालिश करनी चाहिये, जिससे विजातीय तत्त्व घुलकर त्वचासे बाहर निकलते हैं। वाष्प-स्नानके बाद ठंडे पानीसे स्नान करना चाहिये।

घरपर वाष्प-स्नान लेनेके लिये बंद कमरेमें मूँजकी चारपाईपर रोगीको लिटाकर कम्बलसे चारों ओर ढक दे तथा खाटके नीचे दो पतीलोंमें पानी भरकर उबाले। एक पात्र पैरोंकी तरफ और दूसरा पीठके नीचे रखे। रोगी

करवट बदल-बदलकर सारे शरीरपर वाष्प-स्नान ले।

(य) स्थानीय वाष्प-स्नान—आजकल रेडीमेड फेशियल सोना बाथ-जैसे यन्त्र बाजारमें मिलते हैं। इसके अलावा घरपर प्रेशर-कुकरकी सीटी हटाकर उसमें सात-दस फुट लम्बी पारदर्शक रबड़की पाइप लगाये। प्रेशर-कुकरको आधा पानीसे भरकर गर्म करे। भाप बननेपर किसी कपड़ेसे पाइपके दूसरे छोरको पकड़कर अलग-अलग अङ्गोंपर स्थानीय वाष्प दे। १०-१५ मिनटतक ही स्थानीय वाष्प ले। इसके तुरंत बाद ठंडे पानीमें भिगो-निचोड़कर तेजीसे घर्षण-स्नान देकर सूती-ऊनी लपेट बाँधे।

(र) गर्म-पाद-स्नान—दो टब या बालटी लें। उनमें गर्म पानी भरे। फिर सिर, चेहरा, गला धोकर सिरपर गीली तौलिया रखकर स्टूलपर बैठ जाय। दोनों पैरोंको बालटीमें रखे। गर्दनसे लेकर टबतकके हिस्सेको गर्म कम्बलसे इस तरह ढक दे कि भाप बाहर नहीं निकले। जबतक रोगीको पसीना नहीं आये, तबतक गर्म-पाद-स्नान दे। पसीना नहीं आये तो गर्म पानी पिलाये। टबमें पानी घुटनोंतक रखे। १०-१५ मिनटमें पसीना आने लगता है। पसीना आनेके बाद ठंडा स्नान, ठंडा घर्षण-स्नान अथवा स्पंज बाथ देकर आराम कराये। गर्म-पाद-स्नानसे रक्तप्रवाह पैरोंकी तरफ नीचे आता है। फलतः यकृत् और गुर्दे सक्रिय होकर दूषित विषोंको तेजीसे निकालने लगते हैं।

(ल) सूखा-घर्षण—एक अच्छी किस्मका रोयेंदार सूखा तौलिया लेकर हल्के हाथसे सर्वप्रथम बायें हाथपर फिर क्रमशः दायें हाथपर, दायें पैरपर, बायें पैर, पेडू, छाती, जंघा, पीठ, नितम्ब आदि समस्त अङ्गोंका घर्षण करे। इससे रक्त-संचरण तीव्र होकर त्वचा लाल हो जाती है। तत्पश्चात् ठंडे पानीसे स्नान कराये।

(व) ठंडा स्पंज-स्नान—बर्फका सादा पानी, ताजा पानी अथवा नीमके पत्तोंसे युक्त उबला पानी रोगीकी स्थितिके अनुसार तीन रोयेंदार तौलिये पानीमें बारी-बारीसे भिगोकर निचोड़कर घर्षण-स्नान करे। सबसे पहले बायाँ हाथ, दायाँ हाथ, दायाँ पैर, बायाँ पैर, पेडू, छाती, जंघा, पीठ, नितम्ब, गुदाद्वार, जननेन्द्रिय आदि अङ्गोंपर क्रमशः घर्षण-मालिश करे। पानी गंदला हो जानेपर बदलते रहे। अन्तमें सूखे तौलियेसे सारे शरीरका सूखा घर्षण करके शरीरको गर्म कर दे और विश्राम कराये।

(श) गीली चादरकी लपेट—दो कम्बल, एक सूती सफेद चादर, एक पतला कपड़ेका टुकड़ा, एक प्लास्टिककी चादर तथा दो तौलिये ले। पलंग या जमीनपर दोनों कम्बल बिछा दे। इसके ऊपर सफेद चादरको नीमके पत्तोंसे युक्त उबले पानीमें भिगो-निचोड़कर बिछाये। रोगीका सिर, चेहरा ठंडे पानीसे धो-पोंछकर एक गिलास गर्म पानी पिलाये तथा सिरपर गीली तौलिया बाँधे। लंगोट या कौपीन बाँधकर रोगीको निर्वस्त्र लिटा दे। पहले हाथोंको बाहर निकालकर सूती गीली चादरमें धड़को लपेट दे, फिर दोनों पैरोंको अच्छी तरह लपेटकर हाथों एवं गर्दनको भी लपेट दे ताकि सारा शरीर गीली चादरके सम्पर्कमें ही रहे। ऊपरसे कम्बलको भलीभाँति लपेट दे।

फिर प्लास्टिककी चादर भी लपेटकर ऊपर कम्बल लपेट सकते हैं। (यदि पसीना नहीं आ रहा हो तो) पाँचसे पंद्रह मिनटमें शरीरसे गर्मी निकलकर पसीना आने लगता है। त्वचा सक्रिय होकर रक्त-संचार तीव्र होने लगता है। इस उपचारसे यकृत्, प्लीहा, अग्न्याशय, पीलिया, पेटके रोग ठीक होते हैं। गीली चादरकी लपेट रोगीकी शारीरिक स्थितिके अनुसार १५—३० मिनटतक दे सकते हैं। गीली चादर-लपेटके बाद सामान्य स्नान कराये। लपेटके दौरान सिर-दर्द, चक्कर, मूर्च्छाके लक्षण दिखे तो उपचार बंद कर दे। पाण्डु (रक्ताल्पता), दुर्बलता, हृदय-रोग, अस्थमा, निमोनिया, गठिया आदि स्थितिमें गीली चादर-लपेट नहीं देनी चाहिये।

(ह) पेटकी लपेट—छः फुट लम्बी एवं बारह इंच चौड़ी सूती कपड़े एवं ऊनी कपड़ेकी पट्टी बनाये। ऊनी पट्टीके दूसरे सिरेपर डोरी बँधी हो। सर्वप्रथम पेटपर सेंक या स्थानीय भाप देकर उसे गर्म करे एवं सूती कपड़ेको पानीमें भिगो-निचोड़कर तीन बार पेटपर लपेट दे। सूती कपड़ेको ठंडे पानीमें भिगोये। इसके ऊपर सूखी ऊनी लपेट इस तरहसे बाँधे कि नीचेकी सूती लपेट नहीं दिखे और वायु अवरुद्ध हो जाय। लपेटको इतना ढीला नहीं छोड़े

कि वायु अंदर प्रवेश करके क्रियाहीनता उत्पन्न कर दे। इतनी बाँधें भी नहीं कि रक्तप्रवाह रुककर रोगीको बेचैनी होने लगे। पिण्डलियोंके लिये छः फुट लम्बी एवं चार इंच चौड़ी लपेट प्रयोगमें लानी चाहिये।

(३) सूर्य-स्नान (धूप-स्नान)-का उपयोग

प्राकृतिक चिकित्सामें सूर्य-स्नानका विशेष महत्त्व है। इसके सेवनसे शरीरमें विटामिन-'डी' की प्राप्ति होती है।

स्थानका चुनाव—सूर्य-स्नानके लिये एकान्त स्थान होना चाहिये, जैसे—मकानकी छत, दीवारकी ओट आदि।

विधि—सूर्य-स्नानके समय शरीरसे कपड़े हटा देने चाहिये ताकि सूर्यकी किरणें सीधे शरीरपर पड़ें।

सर्वप्रथम धूपमें चित लेट जायँ। बादमें पेटके बल लेटकर सूर्य-स्नान लेना आरामदायक रहता है। सूर्य-स्नानके समय धूप सौम्य होनी चाहिये तथा सिरपर एक सूखा तौलिया रखें। यदि तेज धूप हो तो सिरपर गीला कपड़ा रखना आवश्यक है। धूप-स्नान लेते समय आँखें बंद रखनी चाहिये अन्यथा दृष्टि कमजोर होती है।

अवधि—सूर्य-स्नानकी समय-सीमा रोगीकी अवस्था, रोगकी तीव्रता-जीर्णता तथा ऋतुके अनुसार निश्चित करें। ग्रीष्म-ऋतुमें १०—३० मिनटतक तथा शीत-ऋतुमें २०—६० मिनटतक सूर्य-स्नान लें।

ऋतुकाल—ग्रीष्म-ऋतुमें प्रातः साढ़े सातसे आठ बजेके पूर्व सूर्य-स्नान लें एवं सायंकालमें साढ़े पाँचसे छः बजेके पश्चात् सूर्य-स्नान लेना उपयुक्त रहता है। शीत-ऋतुमें प्रातः नौसे साढ़े नौके पहले एवं सायंकालमें चार बजेसे पाँच बजेके बाद सूर्य-स्नान लेना चाहिये। इस तरहसे संक्षेपमें प्राकृतिक चिकित्साकी विधियों-प्रविधियोंके बारेमें समझाया गया है।

फिर भी सावधानीपूर्वक रोग एवं रोगीकी स्थिति, अवस्था, देश, काल, बल आदिको ध्यानमें रखते हुए चिकित्सा-लाभ लें अथवा किसी योग्य प्राकृतिक चिकित्सककी देख-रेखमें उपचार कराना चाहिये।

(४) प्राकृतिक चिकित्सामें उपवासका महत्त्व

पेटके रोगोंमें उपवास (आकाश)-चिकित्साका सर्वाधिक महत्त्व है। रोगीकी अवस्थाके अनुसार अर्ध उपवास, एकाहार रसोपवास, फल-उपवास, दुग्ध-उपवास, मट्ठा-उपवास कराया जाता है। पूर्ण उपवासमें सादे जलके अलावा कुछ नहीं दिया जाता है।

उपवास-विधि—मानसिक रूपसे स्वयंको तैयार करें तथा शारीरिक दृष्टिसे प्रारम्भमें दो दिन भोजनकी मात्रा आधी कर दें। सब्जियाँ तथा फल बढ़ा दें। एक-दो दिन एक समय केवल रोटी, सब्जी, सलाद लें तथा दूसरे समय केवल फल लें। एकसे तीन दिन फलाहार, फिर एकसे तीन दिन रसाहार, पुनः एकसे तीन दिन नीबूका पानी, शहदपर रहें। रोगीकी शारीरिक, मानसिक अवस्थाको देखते हुए दो-तीन दिनतक संतरेके रसपर रहकर सीधे उपवासपर आ जाय।

उपवासके दौरान मल सूख जाता है। उपवासके पहले अर्द्धशङ्ख-प्रक्षालन या नाशपाती, आँवला, करेलेके रससे पेटको पूर्ण साफ कर लेना चाहिये। उपवासके दौरान एनिमा, मिट्टी-पट्टी, मालिश, धूप-स्नान, टहलना, आसन, प्राणायाम, कुञ्जल आदि चिकित्सारोगके अनुसार लें। इस दौरान एक घंटेके अन्तरालपर एक गिलास पानीमें एक नीबू निचोड़कर पीते रहें।

उपवास तोड़नेकी विधि—लम्बे उपवासमें एक-दो दिन कुछ परेशानी अवश्य होती है, फिर कोई कठिनाई नहीं होती। लम्बा उपवास करना जितना सरल है, तोड़ना उससे ज्यादा कठिन है। यदि वैज्ञानिक ढंगसे उपवास नहीं तोड़ा जाय तो अनिष्ट होकर मृत्यु भी हो सकती है। उपवास तोड़ते समय शीघ्र पाचक फलोंके रसमें पानी मिलाकर लें, ताकि पाचन-तन्त्र भोजन ग्रहण करनेकी आदत डाल सके। संतरेके १२५ मि०ली० रसमें १०० मि०ली० जल मिलाकर धीरे-धीरे चूसकर पियें। दो-तीन घंटेके अन्तरसे जल-मिश्रित रस लेते रहे। संतरा उपलब्ध नहीं हो तो एक नीबूका रस तथा दो चम्मच शहदमें एक गिलास पानी मिलाकर पियें अथवा बीस-तीस मुनक्का, किशमिश भिगो-मसल-छानकर पानी मिलाकर लें। दूसरे दिनसे रस या सब्जियोंके सूप (परवल, लौकी, टिण्डा,

(परवल, लौकी, टिण्डा, तोरई, टमाटर आदि)-की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाते जायँ तथा क्रमशः उबली सब्जी, फल, चपातीकी पपड़ी, पतला दलिया लें। संतरा, पपीता, अंगूर, टमाटर, सेब, केला आदि फल उत्तम हैं। जितने दिन उपवास करें कम-से-कम उतने ही दिन सामान्य आहारपर आनेमें लगना चाहिये। उपवास-काल एवं उपवास तोड़नेके समय पर्याप्त मात्रामें पानी पीना अत्यन्त आवश्यक है। पानी नहीं पीनेसे विजातीय तत्त्व बाहर नहीं निकल पाते एवं तरह-तरहके उपद्रव होने लगते हैं।

निषेध—गर्भिणी स्त्री, दुग्धावस्था (बच्चा दूध पीता हो ऐसी स्त्री), कमजोर, बालक, हृदय-रोगी, मधुमेह, राजयक्ष्मा (टी०बी०)-का रोगी, कृश व्यक्ति, सुकोमल प्रकृतिके व्यक्तिको लम्बे उपवास नहीं करने चाहिये।

लाभ—पेटके समस्त रोग—दमा, गठिया, आमवात, संधिवात, त्वक्विकार, चर्मरोग, मोटापा आदि जीर्ण रोगोंमें उपवास एक सर्वोत्तम निसर्गोपचार है।

दीर्घ उपवास हमेशा किसी विशेषज्ञके निर्देशनमें ही करना चाहिये।

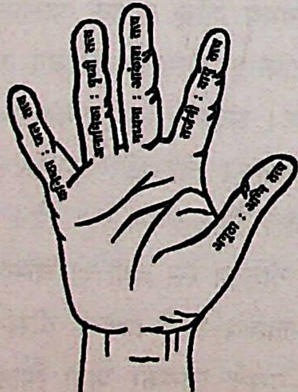
~~~~~~

हस्त-मुद्रा-चिकित्सा

(डॉ० श्रीसत्यनारायणजी बाहेती)

मानव-शरीर अनन्त रहस्योंसे भरा हुआ है। शरीरकी अपनी एक मुद्रामयी भाषा है, जिसे करनेसे शारीरिक स्वास्थ्य-लाभमें सहयोग प्राप्त होता है। यह शरीर पञ्चतत्त्वोंके योगसे बना है। पाँच तत्त्व ये हैं—(१) पृथ्वी, (२) जल, (३) अग्नि, (४) वायु एवं (५) आकाश। शरीरमें जब भी इन तत्त्वोंका असंतुलन होता है, रोग पैदा हो जाते हैं। यदि हम इनका संतुलन करना सीख जायँ तो बीमार हो ही नहीं सकते एवं यदि हो भी जायँ तो इन तत्त्वोंको संतुलित करके आरोग्यता वापस ला सकते हैं।

हस्त-मुद्रा-चिकित्साके अनुसार हाथ तथा हाथोंकी अँगुलियों और अँगुलियोंसे बननेवाली मुद्राओंमें आरोग्यका राज छिपा हुआ है। हाथकी अँगुलियोंमें पञ्चतत्त्व प्रतिष्ठित हैं।



ऋषि-मुनियोंने हजारों साल पहले इसकी खोज कर ली थी एवं इसे उपयोगमें बराबर प्रतिदिन लाते रहे, इसीलिये वे लोग स्वस्थ रहते थे। ये शरीरमें चैतन्यको अभिव्यक्ति देनेवाली कुंजियाँ हैं।

मनुष्यका मस्तिष्क विकसित है, उसमें अनन्त क्षमताएँ हैं। ये क्षमताएँ आवृत हैं, उन्हें अनावृत करके हम अपने लक्ष्यको पा सकते हैं।

नृत्य करते समय भी मुद्राएँ बनायी जाती हैं, जो शरीरकी हजारों नसों एवं नाडियोंको प्रभावित करती हैं और उनका प्रभाव भी शरीरपर अच्छा पड़ता है।

हस्त-मुद्राएँ तत्काल ही असर करना शुरू कर देती हैं। जिस हाथमें ये मुद्राएँ बनाते हैं, शरीरके विपरीत भागमें उनका तुरंत असर होना शुरू हो जाता है। इन सब मुद्राओंका प्रयोग करते समय वज्रासन, पद्मासन अथवा सुखासनका प्रयोग करना चाहिये।

इन मुद्राओंको प्रतिदिन तीससे पैंतालीस मिनटतक करनेसे पूर्ण लाभ होता है। एक बारमें न कर सके तो दो-तीन बारमें भी किया जा सकता है।

किसी भी मुद्राको करते समय जिन अँगुलियोंका कोई काम न हो उन्हें सीधी रखे।

वैसे तो मुद्राएँ बहुत हैं पर कुछ मुख्य मुद्राओंका वर्णन यहाँ किया जा रहा है, जैसे—
~~~~~~

(१) ज्ञान-मुद्रा



विधि—अँगूठेको तर्जनी अँगुलीके सिरेपर लगा दे। शेष तीनों अँगुलियाँ चित्रके अनुसार सीधी रहेंगी।

लाभ—स्मरण-शक्तिका विकास होता है और ज्ञानकी वृद्धि होती है, पढ़नेमें मन लगता है, मस्तिष्कके स्नायु मजबूत होते हैं, सिर-दर्द दूर होता है तथा अनिद्राका नाश, स्वभावमें परिवर्तन, अध्यात्म-शक्तिका विकास और क्रोधका नाश होता है।

सावधानी—खान-पान सात्त्विक रखना चाहिये, पान-पराग, सुपारी, जर्दा इत्यादिका सेवन न करे। अति उष्ण और अति शीतल पेय पदार्थोंका सेवन न करे।

(२) वायु-मुद्रा



विधि—तर्जनी अँगुलीको मोड़कर अँगूठेके मूलमें लगाकर हलका दबाये। शेष अँगुलियाँ सीधी रखे।

लाभ—वायु शान्त होती है। लकवा, साइटिका, गठिया, संधिवात, घुटनेके दर्द ठीक होते हैं। गर्दनके दर्द, रीढ़के दर्द तथा पारकिंसन्स रोगमें फायदा होता है।

विशेष—इस मुद्रासे लाभ न होनेपर प्राण-मुद्रा (संख्या १०)-के अनुसार प्रयोग करे।

सावधानी—लाभ हो जानेतक ही करे।

(३) आकाश-मुद्रा



विधि—मध्यमा अँगुलीको अँगूठेके अग्रभागसे मिलाये। शेष तीनों अँगुलियाँ सीधी रहें।

लाभ—कानके सब प्रकारके रोग जैसे बहरापन आदि, हड्डियोंकी कमजोरी तथा हृदय-रोग ठीक होता है।

सावधानी—भोजन करते समय एवं चलते-फिरते यह मुद्रा न करे। हाथोंको सीधा रखे। लाभ हो जानेतक ही करे।

(४) शून्य-मुद्रा



विधि—मध्यमा अँगुलीको मोड़कर अँगुष्ठके मूलमें लगाये एवं अँगूठेसे दबाये।

लाभ—कानके सब प्रकारके रोग जैसे बहरापन आदि दूर होकर शब्द साफ सुनायी देता है, मसूढ़ेकी पकड़ मजबूत होती है तथा गलेके रोग एवं थायरायड-रोगमें फायदा होता है।

(५) पृथ्वी-मुद्रा



विधि—अनामिका अँगुलीको अँगूठेसे लगाकर रखे।

लाभ—शरीरमें स्फूर्ति, कान्ति एवं तेजस्विता आती है। दुर्बल व्यक्ति मोटा बन सकता है, वजन बढ़ता है, जीवनी शक्तिका विकास होता है। यह मुद्रा पाचन-क्रिया ठीक करती है, सात्त्विक गुणोंका विकास करती है, दिमागमें शान्ति लाती है तथा विटामिनकी कमीको दूर करती है।

(६) सूर्य-मुद्रा



विधि—अनामिका अँगुलीको अँगूठेके मूलपर लगाकर अँगूठेसे दबाये।

लाभ—शरीर संतुलित होता है, वजन घटता है, मोटापा कम होता है। शरीरमें उष्णताकी वृद्धि, तनावमें कमी, शक्तिका विकास, खूनका कोलस्ट्रॉल कम होता है। यह मुद्रा मधुमेह, यकृत् (जिगर)-के दोषोंको दूर करती है।

सावधानी—दुर्बल व्यक्ति इसे न करे। गर्मीमें ज्यादा समयतक न करे।

(७) वरुण-मुद्रा



विधि—कनिष्ठा अँगुलीको अँगूठेसे लगाकर मिलाये।

लाभ—यह मुद्रा शरीरमें रूखापन नष्ट करके चिकनाई बढ़ाती है, चमड़ी चमकीली तथा मुलायम बनाती है। चर्म-रोग, रक्त-विकार एवं जल-तत्त्वकी कमीसे उत्पन्न व्याधियोंको दूर करती है। मुँहासोंको नष्ट करती और चेहरेको सुन्दर बनाती है।

सावधानी—कफ-प्रकृतिवाले इस मुद्राका प्रयोग अधिक न करें।

(८) अपान-मुद्रा



विधि—मध्यमा तथा अनामिका अँगुलियोंको अँगूठेके अग्रभागसे लगा दे।

लाभ—शरीर और नाडीकी शुद्धि तथा कब्ज दूर होता है। मल-दोष नष्ट होते हैं, बवासीर दूर होता है। वायु-विकार, मधुमेह, मूत्रावरोध, गुर्दोंके दोष, दाँतोंके दोष दूर होते हैं। पेटके लिये उपयोगी है, हृदय-रोगमें फायदा होता है तथा यह पसीना लाती है।

सावधानी—इस मुद्रासे मूत्र अधिक होगा।

(९) अपान वायु या हृदय-रोग-मुद्रा



विधि—तर्जनी अँगुलीको अँगूठेके मूलमें लगाये तथा मध्यमा और अनामिका अँगुलियोंको अँगूठेके अग्रभागसे लगा दे।

लाभ—जिनका दिल कमजोर है, उन्हें इसे प्रतिदिन करना चाहिये। दिलका दौरा पड़ते ही यह मुद्रा करानेपर आराम होता है। पेटमें गैस होनेपर यह उसे निकाल देती है। सिर-दर्द होने तथा दमेकी शिकायत होनेपर लाभ होता है। सीढ़ी चढ़नेसे पाँच-दस मिनट पहले यह मुद्रा करके चढ़े। इससे उच्च रक्तचापमें फायदा होता है।

सावधानी—हृदयका दौरा आते ही इस मुद्राका आकस्मिक तौरपर उपयोग करे।

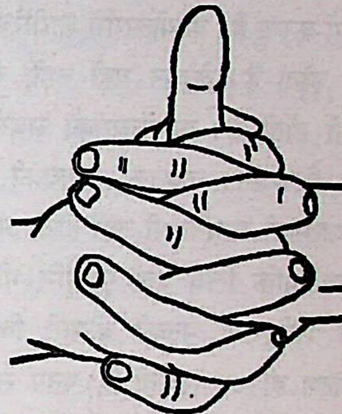
(१०) प्राण-मुद्रा



विधि—कनिष्ठा तथा अनामिका अँगुलियोंके अग्रभागको अँगूठेके अग्रभागसे मिलाये।

लाभ—यह मुद्रा शारीरिक दुर्बलता दूर करती है, मनको शान्त करती है, आँखोंके दोषोंको दूर करके ज्योति बढ़ाती है, शरीरकी रोग-प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाती है, विटामिनोंकी कमीको दूर करती है तथा थकान दूर करके नवशक्तिका संचार करती है। लंबे उपवास-कालके दौरान भूख-प्यास नहीं सताती तथा चेहरे और आँखों एवं शरीरको चमकदार बनाती है। अनिद्रामें इसे ज्ञान-मुद्रा (संख्या १)-के साथ करे।

(११) लिङ्ग-मुद्रा



विधि—चित्रके अनुसार मुट्ठी बाँधे तथा बायें हाथके अँगूठेको खड़ा रखे, अन्य अँगुलियाँ बँधी हुई रखे।

लाभ—शरीरमें गर्मी बढ़ाती है। सर्दी, जुकाम, दमा, खाँसी, साइनस, लकवा तथा निम्न रक्तचापमें लाभप्रद है, कफको सुखाती है।

सावधानी—इस मुद्राका प्रयोग करनेपर जल, फल, फलोंका रस, घी और दूधका सेवन अधिक मात्रामें करे। इस मुद्राको अधिक लम्बे समयतक न करे।



पुनर्नवादारुशुण्ठीक्वाथे मूत्रे च केवले। दशमूलरसे वाऽपि गुग्गुलः शोथनाशनः॥

(चक्रदत्त)

पुनर्नवा, देवदारु तथा सोंठके काढ़े या केवल गोमूत्र या दशमूलके काढ़ेको गुग्गुल मिलाकर पीनेसे शोथ दूर होता है।



कायोत्सर्ग और स्वास्थ्य

(आचार्य महाप्रज्ञ)

अध्यात्मके क्षेत्रमें अनेक प्रयोग आविष्कृत हुए, उनमें कायोत्सर्ग आधारभूत प्रयोग रहा। कायोत्सर्गके होनेपर दूसरे प्रयोग सहज सिद्ध हो जाते हैं। इसके अभावमें कोई भी प्रयोग पूरा सफल नहीं बनता। इसलिये कायोत्सर्गको अध्यात्म-साधनाकी आधारशिला कहा गया है। ध्यानके सारे प्रयोग कायोत्सर्गसे प्रारम्भ होते हैं।

कायोत्सर्गका प्रयोग बहुत व्यापक है। हठयोगका शब्द है—शवासन अर्थात् मुर्देकी तरह हो जाना। कायोत्सर्ग जैनयोगका शब्द है। इसमें मुर्दा-जैसा नहीं बनना है, बल्कि कायाका उत्सर्ग करना है। कायोत्सर्गमें शारीरिक प्रवृत्तियोंका शिथिलीकरण होता है। केवल यही नहीं, चैतन्यके प्रति जागरूकता भी होती है। कायोत्सर्गका सबसे प्रधान सूत्र है—ममत्वका विसर्जन। जबतक ममत्वकी ग्रन्थि प्रबल रहती है, अध्यात्मकी साधना भी नहीं होती और शारीरिक-मानसिक बीमारियोंके लिये एक पृष्ठभूमि भी तैयार रहती है। कोई भी शरीर या मनकी बीमारी किसी ग्रन्थिकी प्रबलताके कारण ही आ सकती है, पनप सकती है और अपना डेरा जमा सकती है। सबसे बड़ी बात है ममत्वका विसर्जन। शरीरके प्रति हमारी आसक्ति न रहे तो शरीर अधिक काम देता है। उसके प्रति आसक्ति बढ़ती है तो फिर वह भी बीमारियोंका साथ देने लग जाता है।

विकसित होती है अल्फा-तरंग—भगवान् महावीरका एक वचन बहुत महत्त्वपूर्ण है—'कायोत्सर्ग सब दुःखोंका मोक्ष करनेवाला है, सब दुःखोंसे छुटकारा देनेवाला है।' यह एक छोटा-सा सूत्र है, पर इसकी मर्मस्पर्शी व्याख्या करना बड़ी कठिन बात है। कायोत्सर्ग सब दुःखोंसे छुटकारा कैसे दे सकता है? यदि विज्ञानके संदर्भमें इसे हम समझनेका प्रयत्न करें तो बात कुछ समझमें आ सकती है। मस्तिष्ककी कई तरंगें हैं—अल्फा, बीटा, थीटा तथा गामा आदि। जब-जब अल्फा-तरंग संचरित होती है, मानसिक तनावसे मुक्ति मिलती है, शान्ति प्रस्फुटित होती है। कायोत्सर्गकी स्थितिमें अल्फा-तरंगको विकसित होनेका मौका मिलता है। कायोत्सर्ग किया और अल्फा-तरंगें उठने लग जायँगी, मानसिक तनाव घटना आरम्भ हो जायगा। ई०सी०जी० करनेवाला निर्देश देता है कि शरीरको बिलकुल ढीला छोड़कर सो जाओ। दाँत निकालते समय डॉक्टर सुझाव देता है कि जबड़ेको बिलकुल ढीला छोड़ दो। जबड़ा भिंचा रहा तो दाँत नहीं निकल पायेगा और दर्द भी ज्यादा होगा। दर्दको मिटाना है, दर्दको कम करना है तो कायोत्सर्ग अनिवार्य है।

तनाव और दर्द—वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे हम इसकी व्याख्या करते हैं। अभी जो नयी खोज हुई है, वह यह है कि रसायनके द्वारा हम पीडाको दूर कर सकते हैं। हमारे मस्तिष्कमें, सुषुम्णामें अनेक रसायन पैदा होते हैं जो पीडाको कम कर देते हैं। जब-जब व्यक्ति गहरी भक्तिमें डूबता है, वैराग्य-भावना बढ़ती है; ध्यानकी गहरी स्थिति बनती है तो वह रोगजनित पीडाको भूल जाता है। यही पीडा कायोत्सर्गकी स्थितिमें शामक दशा बनती है। कायोत्सर्गकी स्थितिमें हर पीडा कम हो जायगी। इस संदर्भमें महावीरका यह वचन—'कायोत्सर्ग सब दुःखोंको शान्त करनेवाला है'—कितना मूल्यवान् और महत्त्वपूर्ण है! जहाँ भी तनाव आयगा, दर्द बढ़ जायगा। तनाव और दर्दका गहरा सम्बन्ध है। जैसे ही तनाव कम होगा, पीडा कम हो जायगी। शरीरको ढीला करो, शिथिल करो, पीडा विलीन हो जायगी। जो रसायन हमारे शरीरमें पैदा होते हैं, उन्हें पैदा करनेके लिये कायोत्सर्ग सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

संजीवनी बूटी—कायोत्सर्ग-शतक इसपर बहुत अच्छा प्रकाश डालनेवाला ग्रन्थ है। इसमें कायोत्सर्गके विषयमें महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है। इससे लाभ क्या है? इस सम्बन्धमें कहा गया है—'इससे देह और मतिकी जडताका शोधन होता है।' आज विज्ञानके युगमें देहयुक्त जडताको शान्त करे तो बहुत सारी नयी बातें आ जाती हैं। कायोत्सर्गके द्वारा रक्त-विकार तथा मोह शान्त हो जाता है। विकारकी जो बीमारी है, कायोत्सर्गमें वह शान्त हो

जायगी। रक्तचापके लिये कायोत्सर्ग संजीवनी बूटीका काम करता है। जिन्हें रक्तचाप था, प्रेक्षाध्यान शिविर-कालमें उनसे कायोत्सर्गका प्रयोग करवाया गया। परिणाम यह हुआ कि जिनका रक्तचाप १७० था, आधे घंटेके कायोत्सर्गमें १४० पर आ गया। आधे घंटेमें इतना अन्तर आ जाता है, यदि दीर्घकालतक करे तो बहुत अन्तर आ सकता है। दीर्घकालतक कायोत्सर्गकी एक पद्धति रही है। गम्भीर मानसिक बीमारीके लिये बताया गया—पहले दिन पूरा कायोत्सर्ग, दिन-रातका कायोत्सर्ग। दूसरे दिन उससे कुछ कम। तीसरे दिन पुनः अहोरात्र कायोत्सर्ग और चौथे दिन कुछ कम। यह क्रम बराबर चले। नौ दिनका यह क्रम होता है। इस क्रमसे प्रयोग करे तो गम्भीर मानसिक बीमारी शान्त हो जायगी।

कायोत्सर्गकी एक लम्बी प्रक्रिया है। एक दिनका, दो दिनका और बारह दिनका कायोत्सर्ग। यह दीर्घकालिक कायोत्सर्ग रक्तचाप और हृदयरोगके लिये बड़ा कल्याणकारी है। हृदय, मस्तिष्क और मेरुदण्डके लिये बहुत उपयोगी है। इन तीनोंको आराम देना कायोत्सर्गका मुख्य प्रयोजन है। ये तीनों स्वस्थ हैं तो सब कुछ ठीक है। मस्तिष्क, हृदय और मेरुदण्ड ठीक काम कर रहा है तो स्वास्थ्यकी काफी सुविधा हो जाती है। मानसिक तनाव और इससे उत्पन्न विकृतिके लिये कायोत्सर्ग-जैसा कोई महत्त्वपूर्ण उपाय या चिकित्साकी दूसरी पद्धति नहीं है। मनश्चिकित्सकके पास रोगी जाता है तो चिकित्सक सबसे पहले सुझाव देता है—'तुम बिलकुल ढीले होकर सो जाओ।' मांसपेशियोंकी, मस्तिष्कीय स्नायुओंकी और पूरे शरीरकी शिथिलताकी स्थितिमें प्राणका संतुलन हो जाता है। प्राणका संतुलन कायोत्सर्गकी मुद्रामें होता है।

प्राण-संतुलनका प्रयोग—असंतुलित प्राण अनेक बीमारियोंके लिये उत्तरदायी है। प्राणके असंतुलनकी बीमारीको अभी मेडिकल साइंसने भी नहीं पकड़ा है। जहाँ भी प्राण-ऊर्जा अधिक एकत्रित हो गयी, वहाँ कोई-न-कोई गड़बड़ी वह अवश्य पैदा करेगी। शरीरमें प्राण-ऊर्जा संतुलित रहनी चाहिये तथा नाडियोंमें प्राण-ऊर्जाका प्रवाह भी संतुलित होना चाहिये। जहाँ ऊर्जा ज्यादा एकत्रित हुई, वहाँ समस्या पैदा हो गयी। मनुष्यके कामकेन्द्रमें ज्यादा इकट्ठा हुई तो काम-वासना प्रबल हो जायगी और उसे सहन करना कठिन हो जायगा। जहाँ भी प्राण-ऊर्जा आवश्यकतासे अधिक होगी, वहाँ बीमारी पैदा कर देगी। नाभिमें ज्यादा हो गयी तो क्रोध आने लग जायगा, चिड़चिड़ापन बढ़ जायगा, अनेक विकृतियाँ पैदा हो जायँगी। प्राणका संतुलन रहे तो व्यक्ति अनेक विकृतियोंसे बच सकता है। प्राण-संतुलनका एक सुन्दर उपाय है—कायोत्सर्ग। जहाँ शिथिलता होती है, वहाँ प्राण-ऊर्जाका असंतुलन संतुलनमें बदल जाता है। प्राणका प्रवाह अपने-आप ठीक हो जाता है।

प्राण-संतुलनका एक उपाय है—मन्द श्वास। श्वासको मन्द करना बहुत आवश्यक है। अच्छे स्वास्थ्यके लिये एक बड़ी शर्त यह है कि श्वास कभी तेज न हो। कायोत्सर्ग करे, श्वास अपने-आप मन्द हो जायगा। इसे करनेसे पूर्व श्वासकी संख्याका माप करे और दस मिनटके बाद पुनः श्वासकी संख्याका माप करे तो पायेंगे कि श्वासकी संख्या कम—मन्द हो गयी है। प्राणका संतुलन, श्वासको मन्द करना—यह सब कायोत्सर्गकी अवस्थामें सहज प्राप्त होते हैं।

अनिद्रा, थकान और कायोत्सर्ग—अनिद्रा-रोग आज बहुत व्यापक हो रहा है। नींद नहीं आती, बड़ी समस्या रहती है। कायोत्सर्ग नींदकी सर्वोत्तम गोली है। जिन्होंने ठीकसे कायोत्सर्ग साधा है, अनिद्रा-रोग उन्हें कभी नहीं सतायेगा। थकान भी एक बड़ी समस्या है। बहुत-सी बीमारियाँ थकानके कारण पैदा होती हैं। अधिक मानसिक श्रम किया, मस्तिष्क थक गया। बहुत ज्यादा शारीरिक श्रम किया, शरीर थक गया। हृदयसे ज्यादा काम लिया, हृदय थक गया। किडनीसे ज्यादा काम लिया, किडनी थक गयी। लीवरसे ज्यादा काम लिया तो वह थक गया। शारीरिक अथवा आङ्गिक जो थकान होती है, वह बीमारीको पैदा करती है। कायोत्सर्ग थकानको मिटानेका बहुत अच्छा उपाय है। यदि आपको थकान है तो पाँच मिनट कायोत्सर्गमें चले जायँ, थकान एकदम मिट जायगी।

खिंचाव और शिथिलीकरण—योगासन-पद्धतिमें विधान किया गया है—आसन करो। आसनका काम है खिंचाव—

तनाव पैदा करना। मांसपेशियोंको तनाव देना बहुत आवश्यक है। किंतु इन्हें तनाव देनेके बाद ढीला छोड़ दो। यह स्वास्थ्यका बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र है—खिंचाव दो और शिथिलीकरण करो। यह विधान रहा—सर्वाङ्ग-आसन करो, उसके बाद विपरीत-आसन—मत्स्यासन करो। उसके अन्तरालमें एक मिनटका कायोत्सर्ग करो। भुजङ्गासन या कोई दूसरा आसन करो तो बीचमें एक मिनटका कायोत्सर्ग करो। प्रत्येक आसनके बाद एक मिनटका कायोत्सर्ग। तनाव-ही-तनाव देते रहे तो आसन भी खराबी पैदा करेंगे। हमारा हृदय भी निरन्तर नहीं चलता है। हृदय बहुत अच्छा कायोत्सर्ग करता है। एक क्षण वह चलता है और एक क्षण बाद कायोत्सर्गमें चला जाता है। ऐसा करनेसे ही वह चौबीस घंटे धड़क पाता है। यदि कायोत्सर्ग न करे तो इतना काम नहीं कर सकता।

स्वास्थ्यका महत्त्वपूर्ण सूत्र है—खिंचाव और शिथिलीकरण। कायोत्सर्ग विश्राम देनेवाला है। यह शरीर और मन—दोनोंको विश्राम देता है। हमारी शारीरिक और मानसिक प्रणालीको स्वस्थ रखनेका महत्त्वपूर्ण सूत्र है—कायोत्सर्ग। मनपर भी कितना भार होता है! कोई गधा, बैल, ऊँट जितना भार नहीं ढोता, उससे ज्यादा भारवाहक मन है। एक छोटी-सी घटना घटी और चली गयी, किंतु उसका भार मनों-टनोंसे भी ज्यादा हो जाता है। इतना भार हमारा मन और मस्तिष्क ढोता है। वह भार कैसे मिटाया जाय? इसके लिये बहुत सुन्दर प्रयोग है—कायोत्सर्ग।

भार-विशोधन—पूछा गया—'भन्ते! कायोत्सर्गसे क्या होता है?' कहा गया—'जो भार है, उसका विशोधन होता है।' कोई ऐसा आचरण या व्यवहार हो गया, ऐसी कोई घटना हो गयी और उससे मनपर जो बोझ आ गया, उसका विशोधन होता है। प्राचीन कालमें प्रायश्चित्तविधि कायोत्सर्ग ही रही। अमुक व्यवहार अकरणीय हो गया, आठ श्वासोच्छ्वासका कायोत्सर्ग करो। अमुक व्यवहार अकरणीय हो गया, पंद्रह श्वासोच्छ्वासका कायोत्सर्ग, पचीस श्वासोच्छ्वासका कायोत्सर्ग अथवा क्रमशः हजार श्वासोच्छ्वासका कायोत्सर्ग। कायोत्सर्ग एक प्रक्रिया रही है भार-विशोधनकी, प्रायश्चित्तकी। उससे आगे एक और महत्त्वपूर्ण सूचना दी गयी है—जब चित्तकी विशुद्धि हो जाती है, तब वह बोझ उतर जाता है और हृदय पूर्ण शान्त हो जाता है। जैसे अनाजकी बोरी ढोनेवाला उसे ढोते समय बड़े भारका अनुभव करता है, किंतु जब वह उस बोरीको उतारकर विश्राम लेता है तो उसे ऐसा अनुभव होता है, जैसे वह बिलकुल हलका हो गया हो। हमारे आचरणों, व्यवहारों, घटनाओं, परिस्थितियोंका जो दिमागपर मानसिक बोझ होता है, वह कायोत्सर्ग करते ही एकदम हलका हो जाता है। व्यक्ति असीम सुख-शान्तिका अनुभव करता है। शारीरिक, मानसिक तनावसे मुक्ति तथा स्वास्थ्यकी अमूल्य निष्पत्तियाँ और सूचनाएँ इसके द्वारा दी गयीं।

समाधान है संवर—कायोत्सर्गके बिना न मनकी शुद्धि हो सकती है और न दिमागकी। इसका भी एक आध्यात्मिक, तात्त्विक कारण है। आश्रव और संवर—ये दो बातें हैं। आश्रव मानसिक और भावात्मक विकृतिको भी पैदा करता है। जहाँ आश्रव है, वहाँ विकृति पैदा होगी। डॉक्टर कहते हैं—सामने कोई व्यक्ति खाँसता है तो दूसरे व्यक्तिको नाकपर कपड़ा लगा लेना चाहिये। किसीको इन्फेक्शन है तो सामनेवालेको नाकपर कपड़ा लगा लेना चाहिये। डॉक्टर जब ऑपरेशन करता है, नाकपर वस्त्र बाँध लेता है। कारण यही है कि बीमारीका संक्रमण न हो। नाक खुला हुआ है तो श्वासके साथ रोग-कीटाणु भीतर प्रवेश पा जायँगे। नाक बंद कर लो, संवर हो गया। नाकका संवर करना जरूरी है। आश्रव समस्याका मूल और संवर समाधान है। हमारे शरीरमें आश्रव बहुत हैं। आश्रवद्वार खुला हुआ है। शरीरके सारे दरवाजे बंद हों तो मन कुछ नहीं कर सकता। शरीरका योग न मिले तो कुछ नहीं हो सकता। मनोवर्गणाको और वचनवर्गणाको कौन ग्रहण करता है? शरीर करता है। यदि शरीरका कायोत्सर्ग हो जाय, शरीर शिथिल हो जाय तो मनका दरवाजा तथा बीमारियोंका द्वार भी बंद हो जाय। यह तात्त्विक बात हमारे लिये कितनी व्यावहारिक है! जिन भद्रगणोंने बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही—चञ्चलता एक ही है और वह शरीरकी चञ्चलता है। कायाको ठीकसे साध लो तो मन सध जायगा, वाणी और सब बातें सध जायँगी—कितना महत्त्वपूर्ण सूत्र है यह! यदि हम इसका ठीक उपयोग करें, कायाको साध लें, कायसिद्धि कर लें और स्थिर रहना सीख जायँ तो अनेक समस्याओंसे मुक्ति मिल जाय।

रहस्यपूर्ण प्रयोग—कायोत्सर्गका एक प्रकार है ऊर्ध्व

कायोत्सर्ग—खड़े-खड़े कायोत्सर्ग करना। भगवान् महावीरने कायाके उत्सर्गके जो प्रकार बतलाये, उनमें एक है ऊर्ध्व कायोत्सर्ग। इससे एक रहस्य प्रकट होता है। ऊर्ध्व कायोत्सर्गद्वारा प्राण-ऊर्जा संतुलित बन जाती है, कहीं अधिक इकट्ठी नहीं हो पाती। ब्रह्मचर्यकी सिद्धिका यह रहस्यपूर्ण प्रयोग है। इसका रहस्य यह है कि जिसमें रागात्मक प्रवृत्ति है, वह ज्यादा बैठना नहीं चाहता। जिसमें द्वेषात्मक प्रवृत्ति है, वह ज्यादा चलना नहीं चाहता। यह ऑपन साइंसका नियम है। रागात्मक प्रवृत्तिके लिये गमनयोगका संयम अपेक्षित है। कितना रहस्यपूर्ण सूत्र है यह! यह ऊर्ध्व-स्थान ब्रह्मचर्यकी साधनाका महत्त्वपूर्ण सूत्र है। बैठकर कायोत्सर्ग करनेसे गुरुत्वाकर्षण कम हो जाता है। खड़े होकर कायोत्सर्ग करनेसे गुरुत्वाकर्षण बहुत कम हो जाता है। जब गुरुत्वाकर्षण बढ़ जाता है, तब गुरुत्वाकर्षण भी भार पैदा करता है। कायोत्सर्गकी अवस्थामें बैठे हैं तो गुरुत्वाकर्षण कम हो जायगा। लेटकर कायोत्सर्ग करें तो भी यही स्थिति बनती है। यह सामान्य प्रकार है। कायोत्सर्गके दो प्रकार और भी हैं—वाम-पार्श्व-शयन कायोत्सर्ग और दक्षिण-पार्श्व-शयन कायोत्सर्ग। बायीं और दायीं करवट लेटकर कायोत्सर्ग करना।

इस प्रकार कायोत्सर्गकी अनेक निष्पत्तियाँ और परिणतियाँ हैं। स्वास्थ्यकी, मनके बोझको उतारनेकी, मानसिक और शारीरिक तनावको कम करनेकी दृष्टिसे विचार करें तो कायोत्सर्गके नये-नये पहलू हमारे सामने आते हैं। यदि पूछा जाय कि प्रेक्षाध्यानकी पद्धतिमें आधारभूत प्रयोग क्या है तो उत्तर होगा—कायोत्सर्ग। प्रेक्षाध्यानका प्रारम्भ-बिन्दु और अन्तिम-बिन्दु भी कायोत्सर्ग है। आत्माकी साधनाका पहला और अन्तिम बिन्दु भी कायोत्सर्ग है। इसलिये इसे आत्मिक स्वास्थ्यका अमोघ सूत्र भी कहा जा सकता है। [प्रे०—श्रीरामनिवासजी अग्रवाल]



यज्ञोपवीतसे स्वास्थ्य-लाभ

(वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी)

यज्ञोपवीत भारतीय संस्कृतिका मौलिक सूत्र है। इसका सम्बन्ध हमारे आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक जीवनसे है। यज्ञोपवीत अर्थात् जनेऊको 'यज्ञसूत्र' तथा 'ब्रह्मसूत्र' भी कहा जाता है। बायें कन्धेपर स्थित जनेऊ देवभावकी तथा दायें कन्धेपर स्थित पितृभावकी द्योतक है। मनुष्यत्वसे देवत्व प्राप्त करने-हेतु यज्ञोपवीत सशक्त साधन है।

यज्ञोपवीतका हमारे स्वास्थ्यसे बहुत गहरा सम्बन्ध है। हृदय, आँतों तथा फेफड़ोंकी क्रियाओंपर इसका व्यापक प्रभाव पड़ता है। लंदनके 'क्वीन एलिजाबेथ चिल्ड्रेन हॉस्पिटल'के भारतीय मूलके डॉ०एस०आर० सक्सेनाके अनुसार हिन्दुओंद्वारा मल-मूत्र त्यागके समय कानपर जनेऊ लपेटनेका वैज्ञानिक आधार है। ऐसा करनेसे आँतोंकी अपकर्षण गति बढ़ती है, जिससे क़ब्ज़ दूर होती है तथा मूत्राशयकी मांसपेशियोंका संकोच वेगके साथ होता है। कानके पासकी नसें दाबनेसे बढ़े हुए रक्तचापको नियन्त्रित तथा कष्टसे होनेवाली श्वासक्रियाको सामान्य किया जा सकता है।

कानपर लपेटी गयी जनेऊ मल-मूत्र त्यागके बाद अशुद्ध हाथोंको तुरंत साफ करने-हेतु प्रेरित करती है। यज्ञोपवीत धारण करनेके बाद बार-बार हाथ-पैर तथा मुखकी सफाई करते रहनेसे बहुतसे संक्रामक रोग नहीं होते। योगशास्त्रोंमें स्मरणशक्ति तथा नेत्र-ज्योति बढ़ानेके लिये 'कर्णपीडासन' का बहुत महत्त्व है। इस आसनमें घुटनोंद्वारा कानपर दबाव डाला जाता है। कानपर कसकर जनेऊ लपेटनेसे 'कर्णपीडासन'के सभी लाभोंकी प्राप्ति होती है।

इटलीमें 'बारी विश्वविद्यालय'के न्यूरोसर्जन प्रो० एनारीका पिरांजेलीने यह सिद्ध किया है कि कानके मूलमें चारों तरफ दबाव डालनेसे हृदय मजबूत होता है। पिरांजेलीने हिन्दुओंद्वारा कानपर लपेटी गयी जनेऊको हृदयरोगोंसे बचानेवाली ढालकी संज्ञा दी है।



नैसर्गिक चिकित्सा

[रोग ऐसे भी ठीक हो जाते रहे]

(डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

यह बात अच्छी तरह समझमें आती है कि प्रकृति माता अपनी गोदमें जिन वनस्पतियों, औषधियोंको स्वयं उगाती है, उनका औषधीय गुण स्वाभाविक रूपसे बना रहता है और उनकी गुणवत्ता भी विलक्षण रहती है। इसीलिये उन औषधियोंसे निर्मित औषधोंका प्रभाव भी अक्षुण्ण होता है। अपने भारत देशके लिये प्राकृतिक सम्पदाका आलय—हिमालय वरदानस्वरूप है। उसी हिमालयके एक संक्षिप्त भू-भाग कूर्माचल—कुमाऊँके पर्वतीय देशको यहाँ अध्ययनका विषय बनाया गया है और यहाँकी पुरातन आरोग्य-विधाका किञ्चित् निदर्शन करानेका प्रयास किया गया है। सम्प्रति यह भू-भाग उत्तराञ्चलकी परिसीमामें अन्तर्हित है।

प्रकृतिके सांनिध्यका कुछ ऐसा प्रभाव है कि यहाँ रोग कम पनपते हैं। यहाँका परिवेश शुद्ध एवं सत्त्वसम्पन्न है। यहाँ प्रवहमान वायुके परमाणुओंमें विचित्र स्फूर्ति एवं चैतन्य शक्ति परिव्याप्त है। देवदारु-बनीके सघन प्रदेश स्वयंमें रोगोंके प्राकृतिक निदानस्थल-से हैं। वर्षभरमें प्राय: दस माह शीतका प्रभाव रहता है। एतदर्थ बीमारियाँ कम होती हैं। अभी कुछ ही समय पहलेकी बात है, लोगोंका जीवन अत्यन्त सादगीपूर्ण था। आहार-विहार अत्यन्त संयमित था, दिनचर्या नियमोंमें बँधी थी, कठोर परिश्रम होनेसे शारीरिक व्यायाम स्वत: सम्पन्न हो जाता था—*'भूख मीठी कि भोजन मीठा'*—यह कहावत चरितार्थ होती दिखती थी। लोग प्रकृतिके अनुकूल चलते थे, शुद्ध जल एवं शुद्ध वायु उपलब्ध थी। घरोंको गोबरसे लीपा-पोता जाता था। आचार-विचार, खान-पानपर लोग बड़ा ध्यान देते थे, वे सदाचारपरायण थे, तो फिर रोगोंको पनपनेका मौका कैसे मिलता? जन्मान्तरीय कर्मज व्याधियोंके लिये दैवव्यपाश्रय-चिकित्साका अवलम्बन बहुतायतसे होता रहा, लोग सुखी थे, सम्पन्न थे, नीरोग थे, स्वस्थ थे एवं बलिष्ठ थे। लोगोंकी इतनी आवश्यकताएँ नहीं थीं। अत: अमन-चैन अधिक था।

यदि कुछ आधि-व्याधि आ भी गयी तो उसका भी उपाय कर लिया जाता था। घरेलू औषधोंका बोलबाला था। आजके जैसे रोग सुने नहीं जाते थे। न कहीं अस्पताल, न कहीं डॉक्टर। घरेलू इलाज काफी था। घरकी बड़ी-बूढ़ी माताएँ सब जानती थीं। खास-खास लोगोंको जड़ी-बूटियोंका ज्ञान था। जंगलमें गये, जड़ी खोद लाये, घिसकर पिला दिया, बस रोग भाग गया। यह आश्चर्य नहीं, सत्य बात है। आज भी घरके सयाने ये सब बातें बताते हैं। वे सच्चे और सीधे-साधे होते हैं, झूठ नहीं बोलेंगे।

पेट-दर्द हुआ, अजीर्ण हुआ तो लंघन कराना मुख्य कार्य था। गाँवोंमें कुछ सयाने—बूढ़े लोग थे, जो चूल्हेकी हलकी गर्म-गर्म राखको लेकर नाभिके चारों ओर धीरे-धीरे इस प्रकार मलते थे कि दर्दमें शीघ्र ही आराम मिल जाता था और अपानवायु तथा आँतोंमें जमे मलका भी नि:सारण हो जाया करता था। पथ्यमें दही या मट्ठेका 'बाँट्' पिलाया जाता था। दही या मट्ठेको थोड़े पानीमें उबालकर हींग या मेथीसे छौंककर हल्दी-नमकसे युक्त बना पेय पदार्थ 'बाँट्' कहलाता है।

यहाँ सिंसुण नामक एक जहरीला काँटेदार पौधा होता है, यूँ ही छू जाय तो फफोले उठ जाते हैं, भयंकर खुजली और दर्द होता है, पर यह लाभकारी औषधि है। यह स्नायु-सम्बन्धी दोषों तथा नसोंके दर्द, कमरदर्द आदिमें उपयोगी है। जैसे कमरमें दर्द हो तो धूपमें रोगीको पेटके बल लिटाकर, किसी मोटे कपड़ेसे इस पौधेको पकड़कर, हलके कपड़ेसे ढकी कमरपर धीरे-धीरे इससे आघात किया जाता है, इसके काँटोंका असर अंदर प्रविष्ट होता है। हलकी चुभन तथा झनझनाहट मालूम पड़ती है, थोड़ी देरमें स्वत: ठीक हो जाती है, ऐसा तीन-चार दिन करनेसे दर्द जाता रहता है। यह सिंसुण गायोंके दूध बढ़ानेमें भी उपयोगी है।

अभी कुछ दिनों पहलेतक हिमालयके भोटदेशसे भोटिया तथा शौक लोग जाड़ोंकी ठंडसे बचनेके लिये नीचे उतर आते थे और अपने साथ हिमालयकी जड़ी-बूटियाँ—अतीस, कटकी, गन्ध्रायण, शिलाजीत, जम्मू आदि लाया करते थे, जो अनेक रोगोंके निवारणके लिये पर्याप्त होती थीं। यहाँका शिलाजीत बड़ा ही गुणकारी होता है। जाड़ोंमें दूधके साथ इसका सेवन आम बात थी।

शहदको यहाँकी भाषामें 'मौ' कहा जाता है, यह नाम शहदकी मक्खी 'मौन' के आधारपर पड़ा है। पहले खूब

होता रहा। शुद्ध ही होता था; मिलावट होती है, ऐसा लोग जानते भी नहीं थे। 'मौ' की कई कोटियाँ सुनी जाती हैं, जिनमें 'च्यूरिया मौ' सर्वोत्तम होता था। 'च्यूरा' के वृक्षमें छोटे-छोटे भीनी गन्धवाले सफेद-पीले फूल लगते हैं, उन्हींका रस लेकर मधुमक्खियाँ यह शहद बनाती रहीं।

शक्तिवर्धन तथा मस्तिष्कविकार दूर करनेके लिये 'दूर्वा' का रस पीना आम बात थी। माताएँ बच्चोंको गोष्ठमें ले जाकर धारोष्ण दूध पिलाया करती थीं। प्राय: हर घरमें गायें थीं। दो लोगोंके मिलनेपर कुशल-क्षेम-समाचारके मध्य 'धिनालि कतुक् छ' अर्थात् 'दूध देनेवाली गायें घरमें कितनी हैं'—यह अवश्य पूछा जाता था। दूध-घीका चलन था। घरोंमें छाँस् (मट्ठा) बाँटनेका रिवाज था। जले-कटे, घाव, फोड़े-फुंसी, दाद-खाजके लिये गायका घी चुपड़ना (मलना) पर्याप्त होता था। छोटे बच्चोंको मिट्टीसे ज्यादे परहेज नहीं कराया जाता था, अत: वे सुडौल रहते थे। गर्भवती स्त्रीका विशेष ख्याल रखा जाता था। गाँवकी बड़ी-बूढ़ी औरतें उसे रहनी-करनी सिखाती थीं। टीके-इंजेक्शनोंकी तब पैदाइश ही नहीं थी। नवप्रसूताके लिये गोमूत्रका पान तथा आगका सेंक करना मुख्य दवा थी। हाँ, गर्म दूधमें घी डालकर जरूर पिलाया जाता था। हल्दी, अजवाइन घीमें भूनकर, पानीमें उबालकर, गुड़ मिलाकर दिया जाता था। इससे प्रदर-सम्बन्धी कोई विकार नहीं होता था। शिशुके लिये माँका दूध ही सर्वोत्तम आहार रहा। दूधकी बोतलोंका जमाना तो अब आया है। जानकार माताएँ तो इन सबसे अब भी परहेज रखती हैं। आँखें लाल होने, उनसे पानी आने तथा बाहरी चोट लगनेमें माताका दूध आँखोंमें डालना अचूक औषध थी। हड्डी बिठानेवाले, नसोंका ज्ञान रखनेवाले तथा नाभिका उपचार करनेवाले आस-पासके गाँवोंसे बुला लिये जाते थे। एरंडकी पत्तियोंका सेंक दर्दनिवारक तथा शीतनिवारक होता था।

मालतीवसन्त, अभ्रक, रससिन्दूर, वंशलोचन आदिका प्रयोग होता था। दालचीनीके जंगल-के-जंगल अभी हालहीतक देखे गये हैं। ठंडके दिनोंमें इसकी मुलायम पत्तियाँ चायमें डाली जाती थीं। ठंडके दिनों कुल्थ (गहत)-से बना रस बड़े शौकसे लोग पीते थे। जाड़ा भी दूर और पथरीसे भी बचाव। वैद्यकीका भी खूब प्रचार था। कई गाँवोंमें औषधनिर्माण होता था। दाँतोंकी सफाई, पायरिया आदिके लिये 'तिमूर' नामक एक काष्ठौषधिका प्रयोग होता था। दाँतोंमें कीड़ा लगा तो कण्टकारीकी डंठलको आगमें जलाकर वह भस्म दाँतके खोहमें डाल दी, बस दर्दसे छुटकारा मिल गया। सिरमें तेल ठोंकना और शरीरमें तेल मलना अच्छा माना जाता था। ज्वर आदिमें लंघन तथा स्वेदन खूब कराया जाता था। ज्वर उतर जानेपर भी विशेष देखभाल होती थी। खुली हवा तथा ठंडसे परहेज कराया जाता था। पथ्यके रूपमें दही-चावल और पानीके संयोगसे बने तथा हलके नमक एवं हल्दीसे युक्त घी, हींग-मेथीसे छौंक लगे पक्क पदार्थ जो 'जौल्' कहलाता है, खिलाया जाता था। अड़ूसा (वासा) यहाँ खूब होता है। श्वास-कास, क्षय तथा खाँसी आदिमें इसके क्वाथके गुणोंसे लोग परिचित थे। ऐसी अनेक औषधियाँ यहाँ होती रही हैं, जिनसे सहजमें उपचार हो जाता रहा।

तब आजके जैसे इतने भयंकर रोग पैदा ही नहीं हुए थे। इन्फेक्शनसे भी लोग परिचित नहीं थे। दवा अपने प्राकृतिक रूपमें होती थी। इसलिये साइड इफेक्टकी कोई बात ही नहीं थी। दवा जाननेवालोंमें सेवाका भाव था, लोग भी उनका खूब आदर करते थे, परस्पर सद्भाव था। सब कामोंमें भगवान्‌को साक्षी रखा जाता था, अत: फायदा ही होता था। लोगोंकी आवश्यकताएँ कम थीं, मौजसे गुजारा होता था, आजके जैसी हाय-हाय न थी। अमन-चैन था, खुशहाली थी।

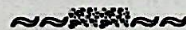
नये जमानेकी हवा क्या लगी कि सब उलटा-पुलटा हो गया। अब तो गाँव-गाँव स्वास्थ्य-केन्द्र खुल गये हैं, हॉस्पिटल खुलने लगे हैं, प्राईवेट क्लिनिक खुल रहे हैं, परामर्शकेन्द्रोंकी प्रतिष्ठा भी हो रही हैं, तथाकथित प्रैक्टिस चल पड़ी है, लोग भी अप-टू-डेट हो गये हैं, तो बेचारे रोग पीछे क्यों रहें? विकासकी बात है, रोगोंने भी पाँव फैलाने शुरू कर दिये हैं, वे भी विकासकी सोच रहे हैं। किसीको क्या फर्क पड़ेगा? पर गाँवकी बची-खुची वे बड़ी-बूढ़ी माताएँ और वे सयाने लोग, जो चुटकीमें सब ठीक कर दिया करते थे, यह सब देख-सुनकर बेहद परेशान हैं और बोल उठते हैं—'अभी ये हाल है, आगे क्या होगा, भगवान् ही जाने। अरे सपूतो! कुछ ऐसी रहनी-करनी बनाओ कि इन दवाओंसे पाला ही न पड़े।'



[देवदुर्लभ मानव-शरीरको स्वस्थ रखे बिना प्राणी अपने लक्ष्यतक पहुँच नहीं पाता। कर्म, ज्ञान, भक्ति, उपासना और चतुर्विध पुरुषार्थके समुचित साधन स्वस्थ जीवनमें ही सम्भव हो सकते हैं। आजकल शारीरिक तथा मानसिक भोग-विलासके प्रसाधनोंकी इतनी विपुलता हो गयी है कि सामान्य मानव मानसिक शान्ति और शारीरिक स्वास्थ्यसे दिनों-दिन विमुख एवं वञ्चित होता जा रहा है। जीवनकी अतिव्यस्तता, विलासिता या इन्द्रिय-लोलुपताके कारण मानसिक तनाव तथा शारीरिक कष्ट (गलत रहन-सहनका कुप्रभाव) बढ़ता जा रहा है। मानवके सहज स्वाभाविक गुण—प्रेम, सहानुभूति, सेवा तथा सद्व्यवहार आदि तीव्र गतिसे समाप्त होते जा रहे हैं और इनके स्थानपर घृणा, भय, ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि तेजीसे बढ़ते चले जा रहे हैं। इन परिस्थितियोंमें पाचन-तन्त्रके रोगोंकी उत्पत्ति होती है, जो सब प्रकारके रोगोंके कारण हैं। गम्भीरतासे विचार करनेपर यह ज्ञात होगा कि अन्तर्मनमें व्याप्त भय, ईर्ष्या, क्रोध, घृणा, राग-द्वेषके भीतर ही समस्त रोगोंका बीज या अंकुर विद्यमान है।

आजकल लोग स्वस्थ तो रहना चाहते हैं, पर इसके लिये डॉक्टरी दवाओंका प्रयोग अधिक करनेके परिणामस्वरूप उपस्थित रोगके दब जानेपर भी अन्य कई रोगोंके बीजका सूत्रपात शरीरमें हो जानेसे निरन्तर कष्टमें पड़े रहते हैं। सामान्यतः व्यक्ति छोटी-मोटी बीमारियोंसे परेशान रहते हैं और उनके लिये उन्हें बार-बार चिकित्सकोंकी शरण लेनी पड़ती है। वास्तवमें खान-पान, आहार-विहार एवं रहन-सहनकी अनियमितता तथा असंयमके कारण ही रोग और व्याधियोंका प्रादुर्भाव होता है। संयमित और नियमित जीवनसे प्राणी रोगमुक्त हो जाता है। प्रकृतिके कुछ सरल और स्वाभाविक नियम हैं, जिनके अनुपालनका ध्यान रखनेपर व्यक्ति प्रायः अस्वस्थ नहीं होते। यदि किसी कारणवश कोई बीमारी हो जाती है तो बिना औषध-सेवन किये वे प्राकृतिक नियमोंके पालनसे स्वस्थ हो सकते हैं।

प्राचीन कालसे भारतीय परम्परामें संयमित आहार-विहारसे युक्त नियमपूर्वक जीवनयापन ही स्वस्थ जीवनका सर्वोत्तम उपाय माना जाता है। इस दृष्टिसे सर्वसाधारणके लिये उपयोगी स्वस्थ जीवनके कुछ मूलभूत सिद्धान्त एवं सूत्र यहाँ प्रस्तुत हैं।— सं०]



स्वस्थताका रहस्य

रोगोंके उपचारकी अपेक्षा रोगोंसे बचना अधिक श्रेयस्कर है। यदि हम प्रयत्न करें और स्वास्थ्य-सम्बन्धी कुछ आवश्यक नियमोंकी जानकारी प्राप्त करके उनका नियमपूर्वक पालन करें तो अनेकों रोगोंसे बचकर प्रायः जीवनपर्यन्त स्वस्थ रह सकते हैं।

सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि स्वस्थ कौन है? वास्तवमें मनुष्यके स्वस्थ रहनेका अर्थ यह है कि उसके शरीरके सभी अङ्ग पूर्ण और अपने-अपने कार्यका निर्वाह करनेमें समर्थ हों, शरीर न अधिक स्थूल हो न अधिक दुर्बल तथा मन एवं मस्तिष्कपर पूर्ण अधिकार हो। स्वस्थ रहनेके लिये शरीर एवं मन दोनोंका स्वस्थ होना अनिवार्य है। यदि आपका शरीर स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट है, किंतु मन दुर्बल, अस्वस्थ एवं रोगी है तो ऐसी शारीरिक स्वस्थता किसी भी कार्यके लिये उपयोगी नहीं है। मनकी प्रेरणासे ही शरीरको कार्य करनेकी प्रेरणा मिलती है। अस्वस्थ मनद्वारा किया गया कार्य कभी भी सुचारुरूपसे पूर्ण नहीं हो सकता। इसी प्रकार यदि मन स्वस्थ है और शरीर दुर्बल तो मनद्वारा प्रेरित कार्यको शरीरकी दुर्बलता निष्क्रिय बना देगी। अतः पूर्ण स्वास्थ्यके लिये मन और तन—इन दोनोंका स्वस्थ होना अत्यावश्यक है।

स्वास्थ्यकी रक्षा—मानव-शरीर ईश्वरद्वारा निर्मित एक ऐसा जटिल तथा स्वचालित यन्त्र है, जिसमें एक ही समयमें विभिन्न अङ्ग, विभिन्न कार्योंका सम्पादन करते हैं। यदि हम इस यन्त्रके रख-रखावपर ध्यान नहीं देंगे तो क्या होगा? इसकी कार्यक्षमता व्यतीत होते हर क्षणके साथ कम होती जायगी, हमारा स्वास्थ्य हमसे छिन जायगा और शरीर रोगालय बनकर रह जायगा। अतः आवश्यक है कि हम इसे सही ढंगसे कार्य करनेकी स्थितिमें रखनेके लिये प्रयत्न करें। नीरोग एवं स्वस्थ रहनेके लिये निम्नलिखित नियमोंका पालन करना चाहिये—

१-सामर्थ्यानुसार व्यायाम करें।
२-भरपूर निद्रा लें तथा आराम करें।
३-सामयिक वस्त्रोंको धारण करें।
४-उठने-बैठनेकी उचित मुद्रा अपनायें।
५-शरीरको साफ और स्वच्छ रखें।
६-यथोचित मात्रामें पौष्टिक भोजन ग्रहण करें।
७-असत् स्वभावके अभ्याससे वञ्चित रहें।
८-तनावमुक्त रहें।
९-शरीरकी मालिश नियमित करें।
१०-सप्ताहमें एक बार उपवास अवश्य करें।

स्वास्थ्य एवं व्यायाम

शारीरिक व्यायाम हमारे लिये उतना ही आवश्यक है, जितना भोजन और पानी। यदि हम स्वस्थ, बलवान्, चुस्त और फुर्तीला बनना चाहते हैं तो व्यायाम अत्यावश्यक है। किंतु आजके—आधुनिक जीवनमें हम इतने आरामपसंद तथा आलस्ययुक्त हो गये हैं कि कुछ दूर पैदल चलना भी अपनी मान-मर्यादाके प्रतिकूल समझते हैं और विशेषतया वाहनोंका ही सहारा लेते हैं। इसी आरामपरस्तीके कारण हम सामान्य रोगोंके साथ-साथ हृदय-रोगोंको आमन्त्रित करते हैं। यदि हम नियमित व्यायाम करें तो न केवल रोगोंको अपने पास आनेसे रोक सकते हैं, वरन् अनेकों सामान्य रोगों—जैसे अपच, क़ब्ज़, अनिद्रा आदिको बिना औषधि-सेवनके ही दूर भगा सकते हैं। व्यायामका सर्वाधिक प्रभाव हमारी श्वास-क्रियापर पड़ता है। एक स्वस्थ व्यक्ति एक मिनटमें १५ से १८ बार श्वास लेता और छोड़ता है। श्वास लेते समय शुद्ध वायु ऑक्सीजनके रूपमें शरीरमें प्रविष्ट होता है और पूरे शरीरका भ्रमण करके कार्बन डाइऑक्साइडके रूपमें बाहर निकलता है। व्यायाम करते समय हमारी श्वास-प्रक्रिया तीव्र हो जाती है, इससे रक्तका संचार भी तेज हो जाता है तथा शरीरकी भीतरी सफाई ठीकसे होती रहती है। व्यायामद्वारा शरीरकी त्वचाके रोम-कूप खुल जाते हैं और भरपूर पसीना आने लगता है, जिससे शरीरकी अस्वच्छता बाहर निकल जाती है।

इसके अतिरिक्त व्यायामसे अन्य लाभ भी हैं, जैसे—

१-व्यायाम करनेसे अनेक रोगोंसे रक्षा होती है।
२-हृदय-संवहनी नलिकाओंको बल प्राप्त होता है।
३-दिलका दौरा (Heart Attack) पड़नेकी सम्भावना कम हो जाती है।
४-शरीरको विश्राम मिलता है, जिसके फलस्वरूप अनिद्रा, बेचैनी तथा तनाव-जैसे रोग भी दूर हो जाते हैं।
५-मानसिक एकाग्रता और सतर्कता बढ़ती है।
६-शारीरिक चुस्ती-फुर्ती और शक्ति बढ़ती है।
७-प्रसव-पीडा कम होती है।
८-अस्थमा, मधुमेह, गठिया, कमर-दर्द आदि रोग दूर हो जाते हैं।
९-मोटापा दूर होता है।
१०-पेटके रोगोंसे रक्षा होती है।

व्यायाम करनेसे पूर्व—व्यायाम प्रारम्भ करनेसे पहले यह जानना आवश्यक है कि आपका शारीरिक गठन कैसा है तथा आपका कार्यक्षेत्र क्या है? जो लोग शारीरिक परिश्रम अधिक करते हैं, उन्हें अधिक कठोर व्यायामकी आवश्यकता नहीं होती, किंतु जो इसके विपरीत मानसिक कार्य अधिक करते हैं, उन्हें कठोर व्यायामकी आवश्यकता हो सकती है। इसी प्रकार दुबले-पतले व्यक्तियोंको ऐसा व्यायाम करना चाहिये, जिससे उनके शरीरके सभी अङ्ग सक्रिय हो सकें। ऐसे व्यक्तियोंको यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि उनकी कमजोरीका मुख्य कारण दुबलापन नहीं, बल्कि मांसपेशियोंकी दुर्बलता है। अतः उन्हें ऐसा व्यायाम करना चाहिये जिससे मांसपेशियाँ मजबूत एवं सुदृढ़ हों। इसके विपरीत जिनका शरीर काफी सुडौल एवं मांसपेशियाँ मजबूत हैं, उनके लिये तनिक कठोर व्यायाम श्रेयस्कर होते हैं। जो किसी कारण मोटे हो गये हैं, उन्हें कठोर व्यायाम न करके ऐसा व्यायाम करना चाहिये, जिसका प्रभाव शरीरकी अनावश्यक चर्बीपर पड़े तथा जो इसे कम करके मांसपेशियोंको सुदृढ़ एवं मजबूत बनाये। ऐसे व्यक्तियोंके लिये उचित होगा कि वे किसी विशेषज्ञसे परामर्श प्राप्त करनेके पश्चात् ही अपने लिये व्यायामका चुनाव करें।

व्यायाम करते समय निम्नलिखित बातोंका ध्यान रखें—

(१) ढीले वस्त्र ही धारण करें। कसे हुए वस्त्र पहनकर व्यायाम नहीं करना चाहिये।

(२) कोई भी व्यायाम करनेके पश्चात् दस-बारह बार लम्बे एवं गहरे साँस लेने चाहिये।

(३) यदि किसीको कोई संक्रामक अथवा गम्भीर रोग हो तो उसे व्यायाम करनेसे पहले चिकित्सकसे परामर्श कर लेना चाहिये अन्यथा व्यायाम हानिकर सिद्ध हो सकता है।

(४) व्यायाम ऐसे स्थानपर करना चाहिये, जहाँ स्वच्छ वायुका आवागमन हो, वातावरण स्वच्छ हो। गंदे एवं अस्वच्छ वातावरणमें व्यायाम करनेसे कोई लाभ नहीं होता है।

व्यायाम करनेके लिये सबसे उपयुक्त एवं उत्तम समय प्रातःकालका होता है, किंतु उपर्युक्त सभी नियमोंका पालन करते हुए रात्रिको सोनेसे पूर्व भी हलका व्यायाम किया जा सकता है।

व्यायामकी विधि

व्यायाम कैसे किया जाय, इस विषयमें कोई एक ही मत प्रचलित नहीं है। कुछ विशेषज्ञोंका विचार है कि व्यायामकी गति तीव्र होनी चाहिये और कुछ विशेषज्ञोंका कहना है कि गति धीमी होनी चाहिये। परंतु सर्वश्रेष्ठ व्यायाम वही है जिसमें चुस्ती-फुर्ती तथा तेजी तो हो पर यह भी नहीं कि व्यायाम करनेवाला थकानका अनुभव करे। वस्तुतः व्यायामकी गति ऐसी होनी चाहिये जिससे मांसपेशियोंमें सिकुड़न एवं फैलाव उत्पन्न हो। इसके लिये उचित यही है कि मांसपेशियोंमें कुछ क्षणोंके लिये तनाव उत्पन्न करनेके बाद उन्हें ढीला छोड़ दिया जाय जिससे रक्त-संचरण तीव्र गतिसे हो सके।

व्यायाम करनेसे शरीरमेंसे स्वाभाविक रूपसे पसीना निकलता है तथा थकान होती है। अतः थकान दूर करनेके लिये कुछ देर विश्राम करना आवश्यक है। विश्राम पसीना सूखनेतक करना चाहिये, तत्पश्चात् शीतल जलसे स्नान करना चाहिये। इससे रही-सही थकान भी दूर हो जाती है एवं शरीरकी शुद्धि भी होती है।

सबसे उत्तम व्यायाम है भ्रमण—इसके लिये प्रातःकालका समय सर्वोत्तम है, इस समय वातावरण अत्यन्त ही आनन्ददायक होता है तथा वायु भी स्वच्छ एवं स्वास्थ्यवर्धक रहता है।

प्रातःकी सैर यदि हरी-हरी घासपर नंगे पाँव की जाय तो सर्वोत्तम है। इससे शरीर स्वस्थ रहता है, भूख अधिक लगती है तथा थकान भी अनुभव नहीं होती। नंगे पाँव सैर करनेसे पूर्व यह ध्यान रहे कि उस स्थानपर काँटे और गंदगी आदि न हो।

आहार एवं स्वास्थ्य

हम दिनभरमें जो कुछ भी सेवन करते अर्थात् खाते-पीते हैं, वह आहार कहलाता है। आहार एवं स्वास्थ्यका घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रतिदिनके आहारद्वारा शरीरको विकास तथा क्रियाओंके सम्पादन-हेतु आवश्यक ऊर्जा प्राप्त होती है। किंतु हममेंसे अधिकांश व्यक्ति यह नहीं जानते कि हमें कैसा आहार लेना चाहिये। वास्तवमें हमें ज्ञान ही नहीं है कि हमारे शरीरको किन आवश्यक तत्त्वोंकी आवश्यकता है तथा वे तत्त्व हमें किन स्रोतोंसे प्राप्त हो सकते हैं। उदाहरणके लिये अधिक शारीरिक श्रम करनेवाले व्यक्तियोंको अधिक पौष्टिक भोजनकी आवश्यकता होती है। इसके विपरीत हलका शारीरिक श्रम करनेवाले व्यक्तियोंको हलका तथा सुपाच्य भोजन करना चाहिये। वस्तुतः आहार ऐसा होना चाहिये जिससे शरीर स्वस्थ, पुष्ट तथा नीरोगी रहे।

आहार कैसा हो?

विभिन्न प्रकारके खाद्य पदार्थोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके पोषक तत्त्व समाहित होते हैं, जो शरीरके विभिन्न अङ्गोंको कार्यशील बनाये रखनेके लिये आवश्यक होते हैं। उदाहरणके लिये दूधमें विटामिन 'ए' प्रचुर मात्रामें होता है, जो शरीरके रोगोंसे रक्षा करने और अच्छी दृष्टिके लिये आवश्यक है। इसकी कमीसे शरीर रोगी तथा दृष्टि कमजोर हो सकती है। अतः हमारे भोजनमें इन पोषक तत्त्वों—जैसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन तथा खनिज-तत्त्वों आदिकी संतुलित मात्रा होनी चाहिये।

आहार-सम्बन्धी कुछ आवश्यक नियम

१-सदैव अपने कार्यके अनुसार आहार लेना चाहिये। यदि आपको कठोर शारीरिक परिश्रम करना पड़ता है तो

अधिक पौष्टिक आहार लेवें। यदि आप हलका शारीरिक परिश्रम करते हैं तो हलका सुपाच्य आहार लेवें।

२-प्रतिदिन निश्चित समयपर ही भोजन करना चाहिये।

३-भोजनको मुँहमें डालते ही निगलें नहीं, बल्कि खूब चबाकर खायें, इससे भोजन शीघ्र पचता है।

४-भोजन करनेमें शीघ्रता न करें और न ही बातोंमें व्यस्त रहें।

५-अधिक मिर्च-मसालोंसे युक्त तथा चटपटे और तले हुए खाद्य पदार्थ न खायें। इससे पाचन-तन्त्रके रोग—विकार उत्पन्न होते हैं।

६-आहार ग्रहण करनेके पश्चात् कुछ देर आराम अवश्य करें।

७-भोजनके मध्य अथवा तुरंत बाद पानी न पीयें। उचित तो यही है कि भोजन करनेके कुछ देर बाद पानी पिया जाय, किंतु यदि आवश्यक हो तो खानेके बाद बहुत कम मात्रामें पानी पी लेवें और इसके बाद कुछ देर ठहरकर ही पानी पीयें।

८-ध्यान रखें, कोई भी खाद्य पदार्थ बहुत गरम या बहुत ठंडा न खायें और न ही गरम खानेके साथ या बादमें ठंडा पानी पीयें।

९-आहार लेते समय अपना मन-मस्तिष्क चिन्तामुक्त रखें।

१०-भोजनके बाद पाचक चूर्ण या ऐसा ही कोई भी अन्य औषध-पदार्थ सेवन करनेकी आदत कभी न डालें। इससे पाचन-शक्ति कमजोर हो जाती है।

११-रात्रिको सोते समय यदि सम्भव हो तो गरम दूधका सेवन करें।

१२-भोजनोपरान्त यदि फलोंका सेवन किया जाय तो यह न केवल शक्तिवर्द्धक होता है, बल्कि इससे भोजन शीघ्र पच भी जाता है।

१३-जितनी भूख हो, उतना ही भोजन करें। स्वादिष्ट पकवान अधिक मात्रामें खानेका लालच अन्ततः अहितकर होता है।

१४-रात्रिके समय दही या लस्सीका सेवन न करें।

स्वच्छता एवं स्वास्थ्य

हम अपने स्वास्थ्यके विषयमें चाहे दिन-रात सोचते रहें तथा आहार-सम्बन्धी नियमोंका पालन करते रहें अथवा अपने स्वास्थ्यको बनाये रखनेके लिये कितने ही पौष्टिक पदार्थोंका सेवन करते रहें, किंतु स्वच्छता एवं सफाईके बिना यह सब व्यर्थ है; क्योंकि स्वच्छतासे ही स्वास्थ्यकी रक्षा की जा सकती है।

स्वच्छतासे हमारा तात्पर्य केवल शारीरिक स्वच्छतासे नहीं वरन् अपने घर और आस-पासके वातावरणसे भी है। इस विषयमें आपको निम्न बातोंका ध्यान रखना चाहिये—

१-प्रतिदिन ताजे पानीसे स्नान करें, तत्पश्चात् त्वचाको तौलियेसे भली-भाँति रगड़कर सुखायें।

२-दिनमें कम-से-कम दो बार मुँह एवं दाँतोंकी सफाई अवश्य करें।

३-सदैव साफ-सुथरे वस्त्र धारण करें।

४-पीनेका पानी एवं अन्य खाद्य पदार्थ भी स्वच्छ होने चाहिये, क्योंकि अस्वच्छतासे रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

५-आपका घर तथा दफ्तर साफ-सुथरा, हवादार एवं प्रकाशयुक्त होना चाहिये।

६-सामान्य वस्त्रोंकी भाँति सदैव स्वच्छ अन्तर्वस्त्र ही धारण करें तथा नियमपूर्वक बदलें।

७-वस्त्रोंकी भाँति विस्तर भी साफ होना चाहिये। विस्तरकी चादरको प्रतिदिन बदलें और अन्य वस्त्रोंको धूपमें सुखा लेवें।

८-अपने पहननेके वस्त्र, तौलिया, कंघा आदि वस्तुओंके विषयमें भी पूरा-पूरा ध्यान रखें। ये चीजें न तो किसीको प्रयोगमें लाने दें और न ही किसी दूसरे व्यक्तिकी ऐसी चीजें प्रयोगमें लायें। इससे रोगके जीवाणु फैलते हैं।

९-ऐसे खाद्य पदार्थोंका सेवन कदापि न करें जो गंदे या बासी हों अथवा जिनपर मक्खियाँ आदि बैठ चुकी हों।

१०-किसीकी जूठी चीज या जूठे बरतनका प्रयोग न करें और न ही किसी अन्य व्यक्तिको अपने जूठे पदार्थ अथवा बरतनका प्रयोग करने दें। अपने परिवारके सदस्योंके बीच भी इस नियमका पालन करें तथा आरम्भसे ही बच्चोंको अलग-अलग खानेकी आदत डालें।

११-रात्रिको सोनेसे पहले अपने दाँतों एवं मुँहकी अच्छी तरहसे सफाई करें और प्रातः उठनेपर भी यही काम करें।

१२-खाँसी, जुकाम आदि संक्रामक रोगोंमें खाँसते अथवा छींकते समय अपने नाक एवं मुँहके आगे रूमाल रखें, ताकि रोगके जीवाणु फैलने न पायें।

१३-यदि घरमें कोई रोगी हो अथवा आपको रोगीके पास रहना पड़े तो रोग जैसा भी हो, उससे सुरक्षित रहने तथा स्वच्छताके नियमोंका पालन करना अनिवार्य है।

१४-बहुत-से व्यक्तियोंको जगह-जगह थूकते रहनेकी आदत होती है, यह ठीक नहीं है। यदि आपमें भी यह आदत है तो इसे त्याग देवें।

१५-शारीरिक सफाई करते समय बगलों एवं गुप्तेन्द्रियोंकी सफाई करना न भूलें।

१६-हाथ-पाँवके नाखून बढ़ जानेसे इनमें गंदगी भर जाती है, इसलिये नाखून बढ़ने न दें, समय-समयपर उनका छेदन करते रहें।

१७-मुँहद्वारा नाखून काटते रहना, उँगली या अँगूठा चूसना, नाक-कानमें उँगली डालना आदि स्वास्थ्यके लिये हानिकारक हैं। अतः इन्हें त्याग देवें।

१८-मुँहद्वारा साँस नहीं लेनी चाहिये, यथासम्भव नाकद्वारा ही साँस लेवें।

१९-रात्रिको सोते समय मुँह ढककर न सोयें।

विश्राम एवं स्वास्थ्य

विश्राम करना स्वास्थ्यके लिये उतना ही आवश्यक है, जितना काम करना। विश्रामसे हमारे शरीरको शक्ति एवं स्फूर्ति मिलती है। हमारे शरीरमें कई अङ्ग हैं और ये सभी अङ्ग स्वतन्त्र अथवा सम्मिलित रूपसे अपना-अपना कार्य करते हैं। इन कार्योंके सम्पादनमें ये शक्ति अर्थात् ऊर्जा व्यय करते हैं। यदि इस ऊर्जाकी पूर्ति न हो तो ये कितनी देर कार्य कर पायेंगे! इन अङ्गोंको शक्ति उपलब्ध होती है आहार आदि विभिन्न साधनोंसे, जिनमें विश्रामका भी महत्त्वपूर्ण योगदान है।

विश्राम करनेसे श्रमित अङ्गोंको आराम मिल जाता है तथा उनमें फिरसे काम करनेकी क्षमता आ जाती है। इसके अतिरिक्त आजके भौतिकवादी युगमें मनुष्यकी मानसिक उलझनें इतनी बढ़ गयी हैं कि यदि समयपर विश्राम न मिले तो मानसिक दबाव तथा उत्तेजनासे मिरगी, हिस्टीरिया आदि-जैसे रोग हो सकते हैं। अतः मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्यके लिये विश्राम अनिवार्य है।

विश्रामका समय—विश्रामकी दो मुख्य अवस्थाएँ होती हैं—प्रथम कुछ देर विश्राम करना और द्वितीय नींद लेना। प्रथम अवस्थामें विश्राम-हेतु कोई निश्चित नियम नहीं है। जब भी आप शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रमके फलस्वरूप थकान अनुभव करें तो शरीरको ढीला छोड़कर तथा मस्तिष्कको विचारोंसे मुक्त करके कुछ समयके लिये लेट जायँ। ऐसा करनेसे थके हुए स्नायु पुनः क्रियाशील हो जाते हैं।

इसी प्रकार दोपहरके भोजनके पश्चात् भी कुछ देर विश्राम करना आवश्यक है, किंतु ऐसा केवल ग्रीष्मकालमें करना चाहिये। शीतकालमें विश्राम करना अहितकर है।

द्वितीय अवस्था अर्थात् निद्राके विषयमें निम्न बातोंका ध्यान रखना आवश्यक है—जो लोग दिनभर अधिक शारीरिक परिश्रम करते हैं, उन्हें कम-से-कम आठ एवं अधिक-से-अधिक दस घंटेकी नींद लेनी चाहिये। जो लोग कम शारीरिक श्रम करते हैं, उन्हें अधिकतम आठ घंटे सोना चाहिये। इसी प्रकार मानसिक कार्य करनेवाले व्यक्तिको भी आठ घंटेसे अधिक नहीं सोना चाहिये। यहाँ यह बात तो निश्चित एवं अन्तिमरूपसे कही जा सकती है कि प्रत्येक व्यक्तिको, चाहे वह शारीरिक श्रम करता है अथवा मानसिक, कम-से-कम छः घंटे अवश्य नींद लेनी चाहिये। नन्हें बच्चे काफी अधिक समयतक सोते रहते हैं। इनके सम्बन्धमें किसी प्रकारका कोई नियम नहीं होता।

आजकी भागती-दौड़ती जिंदगीमें अधिकांश लोग अनिद्रा-रोगके शिकार हो चले हैं। अनिद्राकी अवस्थामें नींद लानेके लिये नींदकी गोलियोंका सेवन करना विशेष हानिप्रद है।

पूर्ण विश्राम-हेतु कुछ अन्य नियम

विश्राम करनेके लिये एकान्त होना आवश्यक है, शोर-शराबेमें अच्छी नींद नहीं आती। विश्राम करते समय किसी प्रकारका मानसिक अथवा शारीरिक तनाव नहीं होना चाहिये। यदि आप मानसिक रूपसे थकान अनुभव कर रहे

हैं तो अत्यन्त आवश्यक है अपने मस्तिष्कको प्रत्येक विचारसे रिक्त कर दें तथा आँखें मूँदकर पड़े रहें। विश्रामके इन क्षणोंमें यदि आप अपनी किसी उलझन या समस्याके विषयमें सोचते रहेंगे तो आपकी थकानमें वृद्धि ही होगी। इसके विपरीत यदि मस्तिष्क खाली रहेगा तो पाँच-सात मिनट बाद ही आप अपनेको तरोताजा महसूस करने लगेंगे। गहरी एवं पूरी नींद लेनेके लिये आवश्यक है कि मनमें किसी प्रकारकी कोई चिन्ता अथवा मानसिक परेशानी न हो।

सोते समय पोशाक ढीली-ढाली होनी चाहिये; क्योंकि तंग लिबाससे विभिन्न शारीरिक अङ्गोंपर दबाव पड़ता है, जिससे इन अङ्गोंके कार्य-सम्पादनके प्राकृतिक क्रममें बाधा उत्पन्न हो जाती है और शरीरको आराम नहीं मिल पाता।

रात्रिको अधिक देरतक जागना और प्रातः देरतक सोये रहना स्वास्थ्यके लिये हानिकारक है। रातको सोने तथा प्रातः उठनेका समय निश्चित करें और सामान्य परिस्थितियोंमें इसमें कोई फेरबदल न करें।

नींद लेनेके पश्चात्—प्रातःकाल नींद पूरी होनेपर बिस्तर छोड़नेसे पूर्व सभीको चाहिये कि वे बिस्तरपर अपने शरीरको पूरी तरह फैलाकर कुछ समय लेटे रहें। उसके बाद सारे शरीरपर धीरे-धीरे दोनों हाथ मालिश करनेके ढंगसे घुमाने चाहिये। इससे रक्तसंचार बढ़नेमें सहायता मिलती है। उठनेसे पहले कुछ देर व्यक्तिको बिस्तरपर पेटके बल चित लेटना चाहिये, क्योंकि रात्रिके समय व्यक्ति दायीं या बायीं करवट सोता है। पेटके बल लेटनेसे पेट खुलकर साफ होता है, शरीरको भी आराम मिलता है। रीढ़की हड्डी भी सीधी बनी रहती है।

पेटके बल लेटनेके बाद व्यक्तिको पुनः बिस्तरपर सीधे लेटकर अपने दोनों पाँव सिकोड़कर घुटने छातीतक ले जाने चाहिये और दोनों हाथसे घुटने पकड़कर धीरे-धीरे नीचेको दबाने चाहिये, इससे भी पेट साफ रहता है। बिस्तर छोड़नेसे पूर्व आवश्यक है कि हम अपने हाथ और पैर हवामें घुमाते हुए हलका व्यायाम करें। पैरोंको इस प्रकार चलायें जैसे साइकिल चला रहे हों। इन उपायोंसे शरीरमें और अधिक स्फूर्ति तथा चेतनाका संचार होगा एवं स्वस्थ रहनेमें विशेष सहायता मिलेगी।

पोशाक एवं स्वास्थ्य—पोशाक अर्थात् वस्त्र धारण करनेका अर्थ मात्र सभ्य होनेका परिचय देना नहीं वरन् शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्यकी रक्षा करना है। अतः वस्त्रोंका चयन करते समय यह अवश्य ध्यान रखें कि वस्त्र ऐसे हों जिन्हें पहनकर शरीरकी रक्षा हो सके। इस संदर्भमें जलवायुका ध्यान रखना आवश्यक है। नायलॉन आदि सिंथेटिक वस्त्रोंको यथासम्भव न पहनें। ऐसे वस्त्र स्वास्थ्यकी दृष्टिसे हानिकारक होते हैं क्योंकि इनमें पसीना सोखनेकी क्षमता नहीं होती, जिससे त्वचामें संक्रमण होनेका भय रहता है।

चिन्ता एवं स्वास्थ्य—आपने सुना होगा 'चिन्ता चिता समान' चिन्तासे सर्वप्रथम तनाव, तत्पश्चात् शारीरिक अस्वस्थताकी उत्पत्ति होती है। अतः उत्तम स्वास्थ्यके लिये परम आवश्यक है कि हम सभी प्रकारकी चिन्ताओं, क्रोध, द्वेष और तनाव आदिसे दूर रहें।

चिन्ता त्यागकर ही हम स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकते हैं और चिन्ता त्यागना कोई कठिन काम भी नहीं है। निम्न बातोंका पालन करनेसे चिन्ता दूर हो सकती है—

१-सदैव प्रसन्न रहें। समस्याओंसे घबरायें नहीं, बल्कि उनका साहसपूर्वक सामना करें। जो लोग समस्याओंसे घबराते हैं, वे हालातके सामने न केवल हार मान लेते हैं, बल्कि अपना स्वास्थ्य भी नष्ट कर लेते हैं।

२-फलकी चिन्ता छोड़कर अपने प्रत्येक उत्तरदायित्वका पालन लगन एवं सचाईसे करें। प्रकृति स्वयं ही इसका फल देगी।

३-हालातसे कभी निराश न हों। जो व्यक्ति निराश हो जाते हैं, वे जीवनको भार मानने लगते हैं। जीवन बोझ नहीं बल्कि एक वरदान है।

४-अपने कर्तव्योंके प्रति निष्ठावान् बनें। कर्तव्य-पालन मनको वास्तविक प्रसन्नता एवं तृप्ति प्रदान करता है।

५-अधिकांश रोगोंकी उत्पत्ति मानसिक असंतोष,

चिन्ता एवं उद्विग्नताके कारण ही होती है। इनसे सदैव बचना चाहिये।

६-कभी किसी बातका वहम नहीं करना चाहिये, क्योंकि वहम ही प्रत्येक रोगोत्पत्तिका कारण है और इसका कोई उपचार नहीं।

शारीरिक मुद्राएँ एवं स्वास्थ्य—हमारी शारीरिक मुद्राओंका हमारे स्वास्थ्यसे सीधा सम्बन्ध है। जब हम खड़े होते हैं या उठते-बैठते अथवा विश्राम करते हैं, तब हमारे शरीरकी विभिन्न मांसपेशियाँ तथा अङ्ग विशेषरूपसे मेरुदण्ड निरन्तर दबावमें रहते हैं। यदि ये शारीरिक क्रियाएँ त्रुटिपूर्ण शारीरिक मुद्राओंके साथ की जायँ तो कमर-दर्द और गर्दन-दर्दके साथ-साथ शरीरके अन्य अङ्गों और जोड़ोंमें भी दर्द उत्पन्न हो सकता है। अपनी त्रुटिपूर्ण शारीरिक मुद्राओंको पहचानें तथा उन्हें सुधारनेका प्रयास करें। यदि आप निम्न उपायोंको प्रयोगमें लेते हैं तो अनेकों शारीरिक व्याधियोंसे सुरक्षित रहकर स्वस्थ-जीवन व्यतीत कर सकते हैं—

खड़े होनेकी सही मुद्रा—खड़े होनेकी सही शारीरिक मुद्रा वह है, जिसमें मेरुदण्डपर कम-से-कम दबाव पड़े तथा वह प्राकृतिक रूपसे 'S' के आकारमें रहे। यदि आपको अपने कार्यके प्रकृतिके अनुरूप अधिक देरतक खड़ा रहना पड़ता हो तो अपना एक पैर फर्शकी सतहसे साढ़े चार फीट ऊँचे स्टूलपर रखें, इससे मेरुदंडपर कम दबाव पड़ता है।

बैठनेकी सही मुद्रा—जिन लोगोंको लगातार कई-कई घंटे बैठकर काम करना होता है, उनके लिये आवश्यक है कि वह आरामदेह तथा सुविधाजनक डिजाइनकी कुर्सीका प्रयोग करें। आजकल ऐसी अनेकों कुर्सियाँ उपलब्ध हैं, जिनमें कमरके निचले भागके लिये हलका-सा घुमाव बना रहता है। कुर्सीकी ऊँचाई मेजके अनुरूप होनी चाहिये, ताकि कार्य करते समय आपके कंधों तथा गर्दनपर अनावश्यक दबाव न पड़े।

विश्राम करनेकी सही मुद्रा—विश्राम करनेकी सही मुद्रा आपकी व्यक्तिगत आवश्यकताओंपर निर्भर है। किसी व्यक्तिको करवटके बल लेटना अधिक भाता है तो किसीको पीठके बल लेटना। किंतु फिर भी विशेषज्ञोंकी रायमें विश्राम करनेकी सर्वश्रेष्ठ मुद्रा पीठके बल लेटनेकी है। इससे मेरुदण्डपर न्यूनतम दबाव पड़ता है।

दुर्व्यसन एवं स्वास्थ्य—धूम्रपान अथवा शराब पीना आज एक फैशन-सा बन गया है, जिसकी दौड़में महानगरोंमें रहनेवाली महिलाएँ भी पीछे नहीं हैं। घरों, उत्सवों या क्लबों इत्यादिमें अधिकांश पुरुष तथा महिलाएँ यूँ सिगरेट फूँकते अथवा शराब पीते नजर आते हैं मानो यह उनके व्यक्तित्वका प्रमुख आकर्षण हो। किंतु वे यह नहीं जानते कि इन दोनों दुर्व्यसनोंसे कैसे-कैसे भयानक रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

अमरीकाकी एक मेडिकल रिसर्च कॉउन्सिलद्वारा किये गये सर्वेक्षणके अनुसार धूम्रपान तथा शराब पीनेसे क्षयरोग, हृदयरोग, कैंसर आदि अनेकों मृत्युदायक रोग हो सकते हैं। अतः यदि आप स्वस्थ रहना चाहते हैं तो आपको इन दोनों दुर्व्यसनोंको तुरंत त्यागना होगा। इन हानिकारक आदतोंसे न केवल स्वास्थ्यका नाश होता है, बल्कि मनुष्य समाजमें भी प्रतिष्ठा खो बैठता है। अतः दृढ़निश्चय करके इनका तुरंत बहिष्कार कर दें। प्रारम्भमें आपको कुछ कठिनाइयाँ प्रतीत होंगी, लेकिन यदि आप अपने निश्चयपर अडिग रहे तो सफलता आपको मिलकर ही रहेगी।

मालिश एवं स्वास्थ्य—मालिश सरल एवं उपयोगी व्यायाम ही नहीं बल्कि हमारे शरीरके लिये टॉनिक भी है। मालिशसे रक्त-संचार तीव्र होता है तथा विभिन्न शारीरिक अङ्गोंकी थकान दूर होती है, शरीरमें स्फूर्ति और शक्तिका संचार होता है।

सारे शरीरकी धीरे-धीरे मालिश सरसों, जैतून अथवा बादामके तेलसे करनी चाहिये। अधिक कठोरतासे या बहुत जल्दी-जल्दी मालिश न करें।

रोगग्रस्त व्यक्तियोंकी रोगकी हालतमें मालिश नहीं करनी चाहिये—विशेषकर श्वास-रोगों, पेटके विकारों आदिसे पीडित व्यक्तियोंकी।

मालिश करनेसे पहले या एकदम बाद स्नान अथवा भोजन नहीं करना चाहिये। मालिश करनेके बाद, कम-से-

कम आधा घंटा विश्राम करनेके बाद स्नान करें।

स्वास्थ्यके साथ-साथ मालिश सौन्दर्यके लिये भी लाभप्रद है। मालिशसे चेहरेकी त्वचाका रंग निखर जाता है और सौन्दर्यमें वृद्धि होती है। इसी प्रकार सिरकी मालिश करनेसे मस्तिष्कको लाभ होता है तथा बाल घने, चमकीले और मजबूत बनते हैं।

उपवास एवं स्वास्थ्य—उपवास एक सरल प्राकृतिक क्रिया है, जो स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त आवश्यक है। उपवास करनेसे शरीरको आराम मिलता है तथा शरीरकी सफाई होती है। समय-समयपर एक-दो दिनका उपवास साधारण रोगोंके साथ-साथ अनेक असाध्य रोगों—जैसे मधुमेह, बवासीर आदिमें लाभ प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त पाचन-तन्त्रके रोगों, जैसे क़ब्ज़, अपच आदिमें तो उपवास चमत्कारिक प्रभाव दिखाता है।

उपवास करनेसे पूर्व यह भ्रम मनसे निकाल देना चाहिये कि इससे आप कमजोरी महसूस करेंगे। उपवाससे मन प्रसन्न रहता है तथा स्फूर्ति आती है।

उपवासके दौरान मुँहसे दुर्गन्ध-सी आती महसूस होती है और जीभका रंग सफेद पड़ जाता है। यह इस बातका लक्षण है कि आपके शरीरमें सफाईका काम आरम्भ हो गया है।

क्षय-रोग (टी०बी०) अथवा हृदयरोग-जैसे गम्भीर रोगोंमें उपवास करना अनुचित माना जाता है। इसी प्रकार स्त्रियोंको भी गर्भावस्थामें उपवास नहीं करना चाहिये।

कुछ ऐसे रोग भी हो सकते हैं, जिनमें सिर्फ उपवास करना ही पर्याप्त नहीं होता, बल्कि अन्य उपायोंको भी ग्रहण करनेकी जरूरत होती है, इसलिये चिकित्सककी सलाह लेनी चाहिये—विशेषत: उस समय जब किसी रोगके निवारणके लिये लम्बा उपवास करना हो।

उपवास आरम्भ करनेके चौबीस घंटे पहले गरिष्ठ खाद्य पदार्थोंका सेवन नहीं करना चाहिये। फलाहार करना ही उचित है।

उपवास करते समय बहुत सावधानी बरतनी चाहिये। पेटके विभिन्न अङ्ग उपवास-कालमें क्रियाशील नहीं रहते, इसलिये उपवास समाप्त करनेके तुरंत बाद ही ठोस खाद्य पदार्थोंका सेवन न करें। फलोंका रस लेना ही ठीक रहता है।



आरोग्ययुक्त शतायु-प्राप्तिकी कुंजी

(महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीबजरङ्गबलीजी ब्रह्मचारी)

हविष्यान्नकी आहुति पाकर कडुआ धुआँ भी मीठा और सुगन्धियुक्त हो जाता है तथा संखिया-जैसा भयानक विष भी संशोधन करनेपर औषध बन जाता है और समुद्रका खारा जल भी सूर्यकी किरणोंका संस्पर्श पाकर मधुरिमामें बदल जाता है—इसी प्रकार सदाचार, सद्विचार और समता आदिके अनुपालनसे कष्ट एवं क्लेशकारक मूढ चित्तवृत्तियोंका भी शमन हो जाता है तथा आरोग्य-आयु, स्वस्थ, सशक्त, शान्त वृत्तियोंका स्फुरण और जागरण होने लगता है।

यदि हम असत्‌से सत्‌की ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर और मृत्युसे अमरत्वकी ओर बढ़ना चाहते हैं, यदि हम निर्बल-दुर्बल, हताश-निराश-उदास मानव-जीवनमें सद्य: एक नयी ज्योति, नयी जागृति, नयी उमंग, नयी तरंग लाना चाहते हैं तब तो हमको बिना ननु-नच, बिना अगर-मगर, बिना किंतु-परंतुका संदेह प्रकट किये, पूर्ण निष्ठाके साथ सदाचार-सद्विचारसे परिपूर्ण आयु-आरोग्यवर्धक खान-पान, आचार-विचार, संयम-साधना, भाषा-भाव, सभ्यता-संस्कृतिको अपनाना ही होगा।

देश-वेश, मत-पक्षकी भिन्नता होते हुए भी प्राय: सभीमें शारीरिक एवं मानसिक रोगरहित आयु, आरोग्ययुक्त दीर्घजीवन-प्राप्तिकी भावना पायी जाती है। यही कारण है कि भारतीय मनीषियों-ऋषियों और महर्षियोंने पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्तिके माध्यमसे इस मानव-शरीरके लिये आयु-आरोग्यसे युक्त होने तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत रहनेकी कामना की है—'सर्वभूतहिते रता:।'

मनीषियोंने भगवान् सूर्यनारायणकी स्तुति करते हुए

सौ वर्षोंतक सबको नीरोग होकर, स्वस्थ-सशक्त बनकर जीवित रहने, देखने, सुनने, बोलने तथा अदीन अर्थात् समस्त साधनोंसे सम्पन्न होकर जीवनयापन करनेकी कामना की है। यथा—

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतःशृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्। (यजु० ३६। २४)

यद्यपि वैदिक संहिताओंमें आरोग्यके मौलिक सिद्धान्त अनुस्यूत हैं तथापि आरोग्ययुक्त आयुका विस्तृत विवेचन करनेवाला शास्त्र आयुर्वेद ही है। आयुर्वेदका उद्देश्य पुरुषार्थचतुष्टयकी निर्विघ्न एवं सम्यक् प्राप्तिके साधन शरीर और मनको रोगरहित रखना है, किंतु आत्मारहित शरीर और मन आयुर्वेदके लिये चिकित्स्य नहीं हैं। आत्मासे युक्त शरीर और मनवाला पुरुष ही आयुर्वेदके विवेचन और चिकित्साका विषय है।

रोग-आरोग्य तथा सुख-दुःखका आधार शरीर और मन ही माने गये हैं—

शरीरं सत्त्वसंज्ञं च व्याधीनामाश्रयो मतः।

(च० सू० १।५५)

जैसे मिठाईसे मिठास, खटाईसे खटास, इक्षुदण्ड (गन्ना)-से रस और दुग्धसे घृत निकल जानेपर ये सभी वस्तुएँ निःसार और तेजहीन हो जाती हैं, वैसे ही सदाचार, सद्विचार, संयम और साधनारहित जीवनमें आयु-आरोग्य टिक ही नहीं पाते हैं।

आयुर्वेदमें १०१ प्रकारकी मृत्यु बतायी गयी है, जिसमेंसे सदाचार और सद्विचारके धारण और पालन करनेपर १०० प्रकारकी आगन्तुक मृत्युओंपर सदाचारी विजय पा लेता है। शेष एक तो अनिवार्य है। यथा—

एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते।
तत्रैकः कालसंज्ञस्तु शेषास्त्वागन्तवः स्मृताः॥

महर्षि चरकका सिद्धान्त है कि जीवनका मूल सदाचार है—

'हितोपचारमूलं जीवितम्।'

आयु-आरोग्यकी वृद्धि और रोगोंकी आमूलचूल निवृत्ति कैसे हो? इस विषयपर आयुर्वेद और अन्य प्रकारकी अनेकों देशी-विदेशी चिकित्सा-पद्धतियोंने अपने-अपने ढंगसे विषय-प्रकाशन और मार्गदर्शन किया है।

इन सभी भिन्न-भिन्न चिकित्सा-पद्धतियोंके ग्रन्थों और पन्थोंकी अपनी-अपनी मान्यताएँ हैं, अपनी-अपनी विधियाँ हैं। विधियाँ अनेक हैं। कौन-सी विधि अपनायी जाय? यह प्रश्न प्रायः सबके सामने आता है। विधि वही अच्छी होती है, जिसकी सफलताके अनेकों प्रमाण उपस्थित हों, पथ वही अच्छा होता है, जिसपर अनेकों पथिकोंद्वारा लगाये गये पथ-चिह्न मार्गदर्शनमें सहायक हों।

यह सदाचार-सद्विचारका पथ, जिसे आयुर्वेदसमर्थित योग और वेदान्तका पथ भी कहा जा सकता है। यह ऐसा ही पथ है, यह ऐसी ही चिकित्सा-पद्धति है, जहाँ भिन्न-भिन्न सभी मतों-पथोंका उपसंहार होता है।

यह योगमार्ग आयु-आरोग्य-वृद्धिका प्रवेशद्वार है और वेदान्तमार्गका गन्तव्य स्थान है, जो लोगोंको शाश्वत आरोग्य प्रदान करता है और रोग-दोष, जरा-मरण-जैसी आधियों-व्याधियों-उपाधियोंसे सदाके लिये मुक्त कर देता है। यथा—

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥

(श्वेताश्वतर० २।१२)

आचार्य वाग्भटने नीरोग और शतायु मानव-जीवनकी प्राप्तिके लिये निम्नलिखित उपाय बताये हैं—

नित्यं हिताहारविहारसेवी
समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावा-
नाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥

(अष्टाङ्गहृदय सू० ४।३७)

अर्थात् नित्य हित (मित) आहार-विहार करनेवाला, सोच-समझकर कार्य करनेवाला, विषयोंमें अनासक्त, दान देनेवाला, हानि-लाभमें सम रहनेवाला, सत्यपरायण, क्षमावान्, आप्तपुरुषोंकी सेवा करनेवाला पुरुष नीरोग और शतायु होता है।

आचार्य चरकने इस बातको विस्तारसे बताते हुए कहा है—

नरो हिताहारविहारसेवी
समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावा-
नाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥

मतिर्वचः कर्म सुखानुबन्धं
सत्त्वं विधेयं विशदा च बुद्धिः।
ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे
यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः॥

(च० शा० २।४६-४७)

अर्थात् हितकारी आहार-विहारका सेवन करनेवाला, विचारपूर्वक काम करनेवाला, काम-क्रोधादि विषयोंमें आसक्त न रहनेवाला, सत्य बोलनेमें तत्पर, सहनशील और आप्त पुरुषोंकी सेवा करनेवाला मनुष्य अरोग (रोगरहित) रहता है। सुख देनेवाली मति, सुखकारक वचन एवं कर्म, अपने अधीन मन और शुद्ध तथा पापरहित बुद्धि जिनके पास है और जो ज्ञान प्राप्त करने, तपस्या करने तथा योग सिद्ध करनेमें तत्पर रहते हैं, उन्हें शारीरिक अथवा मानसिक कोई भी रोग नहीं होता।

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने भी इसी भावका निर्देश किया है—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

(६।१७)

महर्षि चरकने नीरोग और दीर्घायुका आधार विशेष रूपसे सदाचारको ही माना है—

स्वस्थवृत्तं यथोद्दिष्टं यः सम्यगनुतिष्ठति।
स समाः शतमव्याधिरायुषा न वियुज्यते॥

(च०सू० ८।३१)

अर्थात् जो व्यक्ति स्वस्थवृत्त (सदाचार)-का विधिपूर्वक पालन करता है, वह सौ वर्षोंकी रोगरहित आयुसे पृथक् नहीं होता अथवा सौ वर्षोंतक पूर्ण नीरोग रहता है।

इसके साथ मणि, मन्त्र-धारण, साधु, द्विज, गुरु-संतकृपा, देवपूजा, भगवन्नाम-स्मरण, जप-तप आदिसे भी रोगोंका शमन होता है, आरोग्यकी प्राप्ति होती है और सुख-शान्ति भी मिलती है। सदाचारके सम्यक् सेवन, यम-नियम-पालन, स्वाध्याय, साधना तथा धर्माचरणके नियमोंके पालनसे हमारे देशके महामनीषी कालजयी, चिरजीवी बने थे और उनके संस्मरणसे आज भी व्यक्ति सर्वव्याधिविवर्जित होकर सौ वर्षोंतक जीवित रह सकता है। यथा—

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥
सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम्।
जीवेद्वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः॥

(आचारेन्दु)

मानसिक स्वास्थ्य और सदाचार

(डॉ० श्रीमणिभाई भा० अमीन)

प्रसिद्ध है कि 'जिस मनुष्यका मन बिगड़ता है, उसका स्वभाव भी बिगड़ जाता है।' असंयम, असत्य, अभिमान, ईर्ष्या, दम्भ, क्रोध, हिंसा और कपट आदि दुर्गुण ही बिगड़े स्वभावके लक्षण हैं। ये सूक्ष्म रोग हैं। दुःस्वभाववाला व्यक्ति इन्द्रियोंके तेज और शक्तिको खो बैठता है और शरीरको भी रोगी बना देता है। अब यहाँ किस दोषसे कौन रोग होता है, थोड़ा इसपर विचार किया जाता है—

(१) असंयम—जीभको असंयमी रखनेसे वह चाहे-जैसे स्वादमें रस लेने लगती है और चाहे-जितना खानेको आतुर रहती है। परिणामस्वरूप पेटमें अधिक अयोग्य भोजन जल चला जाता है और वह पेट या अँतड़ियोंमें रोग उत्पन्न करता है। इसी प्रकार जीभके असंयमी होनेपर यदि वह चाहे-जैसी वाणी उच्चारण करे तो जीभद्वारा सम्बन्धित मस्तिष्कके ज्ञान-तन्तुओंको हानि पहुँचती है और कुछ समय पश्चात् जीभ कैंसर या लकवा हो जानेकी स्थितिमें पहुँच जाती है। जन्मसे उत्पन्न गूँगे बालक वाणीके दुरुपयोगका दण्ड इस नये जन्ममें पाते हैं। यह देखकर हमें भी सीखना चाहिये। इसी प्रकार शरीरकी समस्त इन्द्रियाँ भी असंयमी व्यवहारसे ही अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करती हैं।

(२) असत्य—असत्य बोलनेवाले व्यक्तिकी जीवनशक्ति नष्ट हो जाती है और वह सामान्य रोगका भी भोग बन जाता है। जीवनशक्तिका आधार 'तेज' है और

वह 'तेज' असत्यसे नष्ट होता है। असत्य बोलनेवाला तेज-हीन हो जाता है। साथ ही असत्य वाणी बोलनेसे हृदय और मस्तिष्कके ज्ञान-तन्तुओंकी हानि होती है। कुछ समय पश्चात् वह हृदयके रोग, पागलपन, पथरी, लकवा आदि रोगोंसे भी दु:खी हो जाय तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

(३) अभिमान—मनुष्यमें वायु, पित्त और कफ—तीनोंको एक साथ संनिपातके रूपमें उत्पन्न करनेवाला अभिमान है और इसीसे किसी कविने कहा है कि ***'पाप-मूल अभिमान'***। यह अभिमान ही मनुष्योंके दुर्गुणोंका राजा है और सब दोषों तथा रोगोंको आकर्षित करके लानेवाला बलवान् लोहेका चुम्बक है। अभिमानी व्यक्ति वायु, पित्त और कफके छोटे-बड़े अनेक रोगोंसे दु:खी रहता है।

(४) ईर्ष्या—ईर्ष्या करनेवाले मनुष्यमें पित्त बढ़ जाता है, जिससे उस मनुष्यकी इन्द्रियोंकी तेजस्विता नष्ट हो जाती है। ऐसे मनुष्यकी बुद्धि और हृदय पित्तके तेजाबमें जल जाते हैं एवं वह किसी काममें प्रगति नहीं कर पाता। ऐसे मनुष्य पित्त, पथरी, जलन, लीवर-खराबी आदि रोगोंसे दु:खित रहते हैं।

(५) दम्भ—दम्भी लोग *कफके परिणाममें गड़बड़ उत्पन्न करते हैं। उनके दम्भी स्वभावसे उनमें कफके समान भारीपन आ जाता है। उनकी समस्त इन्द्रियाँ तेजस्विता छोड़कर स्थूल होती जाती हैं। शरीरकी बुरी बनावट, भारीपन, गैस और इसी प्रकार कफजन्य अनेक रोग दम्भके कारण ही होते हैं।

(६) क्रोध—बिगड़े हुए मनसे अशक्य-जैसी अनेक कामनाओंके पूर्ण न होनेसे अथवा उनमें विघ्न आनेसे क्रोध उत्पन्न होता है। क्रुद्ध मनुष्य दूसरेकी हानि कर सकेगा या नहीं यह तो दैवाधीन है; परंतु सर्वप्रथम वह स्वयंकी भी हानि करता ही है। क्रोध करनेमें मनुष्यके मस्तिष्कको अपने बहुमूल्य एवं अधिक ओज:शक्तिका उपयोग करना पड़ता है। इस प्रकार अमूल्य ओज नष्ट हो जाता है और परिणामस्वरूप जीवनशक्ति नष्ट होती चली जाती है। तदुपरान्त क्रोधके मस्तिष्कमें आते ही ओजके विशाल एवं विकृत प्रवाहसे मस्तिष्कके ज्ञानतन्तु क्षीण हो जाते हैं। बिजलीका प्रवाह घरमें लगे हुए बल्बको पारिमाणिक मात्रामें आनेपर तो जलाता है, परंतु अधिक मात्रामें आनेपर बल्बको नष्ट कर देता है और कभी-कभी तो घरको भी हानि पहुँचाता है। इससे रक्षा पानेके लिये घरके बाहर फ्यूजकी व्यवस्था की जाती है। संयम और विवेक ही हमारे फ्यूज हैं। इन्हें त्याग देनेपर ओजका अत्यधिक प्रवाह क्रोधके रूपमें उत्पन्न हो जाता है और मस्तिष्कके कितने ही भागोंको जोखिममें डाल देता है। विशेषरूपसे क्रुद्ध मस्तिष्कको अधिक मात्रामें रक्तकी आवश्यकता पड़ती है। यह रक्तराशि मस्तिष्ककी ओर जानेवाले लघु रक्तप्रवाहको खींच लेता है। क्रोधी मनुष्यके मुख और आँखें कैसी लाल हो जाती हैं, यह सबको अनुभव होगा। हँसते समय मुँह लाल होता है, क्योंकि 'मुँह'की समग्र पेशियाँ विकसित होनेसे हृदयकी ओरसे खून खिंच आनेसे ऐसा होता है। विशेष शुद्ध खून मिलनेसे, वैसी ही पेशियाँ पुलकित होनेसे यह लालिमा लाभप्रद है और सौन्दर्यवर्धक भी है। परंतु ठीक इसके विपरीत क्रोधीकी शक्ल बिगड़ती जाती है और उसके बुद्धि, बल भी धीरे-धीरे क्षीण होने लगते हैं।

(७) हिंसा—हिंसा क्रोध और अभिमानसे उत्पन्न होती है। इसमें प्रवृत्त रहनेवाले व्यक्तिका रक्त सदा खौलता एवं गर्म रहता है। हिंसामें मस्तिष्क और हृदय दोनों गंदे होते हैं। अभिमान और क्रोधसे उत्पन्न रोगोंके उपरान्त ऐसे मनुष्यमें हृदयसे उत्पन्न रोग भी होते हैं। पराया दु:ख देखकर जो हृदय एकदम नरम बनकर द्रवित होने लगता है, वही हृदय अपने दु:खोंके सामने वज्र-जैसा कठोर भी बन जाता है। यह हृदयकी सत्य और वास्तविक स्थितिका गुण है। हिंसावाले मनुष्यके हृदयके ये गुण नष्ट हो जाते हैं। वह लोगोंका दु:ख देखकर हँसता है और अपने ऊपर दु:ख पड़नेपर निम्नश्रेणीका भीरु बन जाता है। तत्पश्चात् हृदयमें और सम्पूर्ण शरीरमें गर्म रक्त भ्रमण

* किंतु अथर्वपरिशिष्ट ६८ एवं 'योगरत्नाकर' आदिमें कफप्रकृतिवालोंको ही सर्वश्रेष्ठ धर्मात्मा कहा गया है।

करनेसे शरीरमें वायु, पित्त और कफ—इन तीनोंको उत्पन्न करता है, जिससे वह महाभयंकर रोगोंका शिकार बन जाता है।

(८) **छल-कपट**—कपट करनेवाला व्यक्ति भी सूक्ष्मरूपसे हिंसा ही करता है। परंतु उसकी हिंसा करनेकी युक्ति मायामय—कपटमय होनेसे दिखायी नहीं देती। वह साधारण विष-जैसी होती है। इससे ऐसे मनुष्य भी ऊपर वर्णित हिंसावाले व्यक्तिके समान ही रोगोंका शिकार बन जाते हैं। परंतु उसे जो रोगोंका दण्ड मिलता है, वह धीरे-धीरे असर करनेवाले विषके समान ही होता है।



वेदोंमें स्वस्थ-जीवनके मौलिक सूत्र

(डॉ० श्रीभवानीलालजी भारतीय एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

मानवजीवनका लक्ष्य है, पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्ति। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चतुर्विध पुरुषार्थकी प्राप्तिमें आरोग्यकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। कहा भी गया है—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।

(च० सू० १।१५)

महाकवि कालिदासने शिव-पार्वती संवादमें एक महत्त्वपूर्ण उक्ति लिखी है—'**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।**'

शरीर ही धर्मकी साधनाका प्रमुख साधन है। यह तो सत्य है कि मानवशरीर पाञ्चभौतिक होनेके कारण नश्वर है, अन्ततः नष्ट होनेवाला है, तथापि वह ऐसी क्षुद्र वस्तु भी नहीं है जिसकी उपेक्षा की जाय। जब कबीरने मानवशरीरको 'पानीका बुदबुदा' बताया तो उनका भाव यही था कि सीमित कालावधिके लिये जन्म लेनेवाले मनुष्यको उचित है कि वह यथाशीघ्र परमात्माको पहचाने तथा श्रेयोमार्गका पथिक बने।

वैदिकसंहिताओंमें मानवको स्वस्थ तथा नीरोग रहनेकी बार-बार प्रेरणा दी गयी है। वस्तुतः वेद मानवके हितकी विधाओं तथा विज्ञानोंका भण्डार है, भगवान् मनुके अनुसार वेद पितर, देव तथा मनुष्योंके मार्गदर्शनके लिये सनातन चक्षुओंके तुल्य हैं, जिनसे लोग अपने हित और अहितको पहचानकर कर्तव्याकर्तव्यका निर्धारण कर सकते हैं। मानव-स्वास्थ्यके लिये उपयोगी शरीरविज्ञान तथा स्वास्थ्यरक्षाका विशद निरूपण इस वाङ्मयमें उपलब्ध है। वेदोंकी दृष्टिमें यह शरीर न तो हेय है और न तिरस्कारके योग्य।

वेदोंमें मनुष्यके लिये दीर्घायुकी कामना की गयी है, जो शरीर-नीरोग होनेसे सम्भव है। '**आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताःश्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम्**' (यजु० ९।२१)—आदि मन्त्रोंमें मनुष्यके दीर्घायु होने तथा स्वजीवनको लोकहित (यज्ञ)-में लगानेकी बात कही गयी है। यह तभी सम्भव है जब उसके चक्षु तथा श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ और पञ्चप्राण पूर्ण स्वस्थ एवं बलयुक्त रहें। वेदोंमें ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंको बलिष्ठ, स्वस्थ तथा यशस्वी बनानेके लिये कहा गया है। '**प्राणश्च मेऽपानश्च मे**' (यजु० १८।२) मन्त्रमें प्राण, अपान तथा व्यान आदिको स्वस्थ रखनेके साथ-साथ वाक्, मन, नेत्र तथा श्रोत्र आदिको भी बलयुक्त रखनेकी बात कही गयी है।

संध्योपासनाके अन्तर्गत उपस्थान-मन्त्रमें स्पष्ट कहा गया है कि उसके नेत्र, कान तथा वाणी आदि इतने बलवान् हों, जिनसे वह सौ वर्षपर्यन्त पदार्थोंको देखता रहे, शब्दोंको सुनता रहे, वचनोंको बोलता रहे तथा स्वस्थ एवं सदाचारयुक्त-जीवन जीता रहे। केवल सौ वर्षपर्यन्त ही नहीं, उससे भी अधिक '**भूयश्च शरदः शतात्**'। वैदिक उक्तिमें शरीरको पत्थरकी भाँति सुदृढ़ बनानेकी बात कही गयी है—'**अश्मा भवतु ते तनूः**'।

आरोग्यलाभके विविध साधनों तथा उपायोंकी चर्चा भी वेदोंमें आयी है। उषःकालमें सूर्योदयसे पूर्व शैय्यात्यागको स्वास्थ्यके लिये अतीव उपयोगी बताया गया है। इसलिये वेदोंमें उषाको दिव्य ज्योति प्रदान करनेवाली तथा सत्कर्मोंमें प्रेरित करनेवाली देवीके रूपमें चित्रित किया गया है। जब प्रातःकालमें संध्याके लिये बैठते हैं तो हम उपस्थान-मन्त्रोंका उच्चारण करते हैं। उसी समय हमें पूर्व दिशामें भगवान् भास्कर उदित होते दिखायी देते हैं। इस पवित्र

तथा स्फूर्तिदायिनी वेलामें साधक एक ओर तो आकाशमें उदित होनेवाले मार्तण्डको देखता है, दूसरी ओर वह अपने हृदयाकाशमें प्रकाशयुक्त परमात्माके दिव्य लोकका अनुभव कर कह उठता है—

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥

(यजु० २०। २१)

अर्थात् अंधकारका निवारण करनेवाला यह ज्योतिःपुञ्ज सूर्य प्राची दिशामें उदित हुआ है, यही देवोंका देव परमात्मारूपी सूर्य मेरे मानस-क्षितिजपर प्रकट हुआ है और इससे निःसृत ज्ञानरश्मियोंकी ऊष्माका मैं अपने अन्तःकरणमें अनुभव कर रहा हूँ।

यो जागार तमृचः कामयन्ते (ऋक्० ५। ४४। १४) ऋग्वेदकी इस ऋचामें स्पष्ट कहा गया है कि जो जागता है, जल्दी उठकर प्रभुका स्मरण करता है, ऋचाएँ उसकी कामना पूरी करती हैं। सामादि अन्य वेदोंका ज्ञान भी उषःकालमें उठकर स्वाध्यायमें प्रवृत्त होनेवाले व्यक्तिके लिये ही सुलभ होता है। आलसी, प्रमादी, दीर्घसूत्री तथा देरतक सोते रहनेवाले लोग सौभाग्य और आरोग्यसे वञ्चित रहते हैं। जल्दी उठकर वायुसेवनके लिये भ्रमण करना चाहिये। इस सम्बन्धमें वेदका कहना है कि पर्वतोंकी उपत्यकाओंमें तथा नदियोंके संगमस्थलपर प्रकृतिकी छटा अवर्णनीय होती है। यहाँ विचरण करनेवाले अपनी बुद्धियोंका विकास करते हैं—

उपह्वरे गिरीणां संगथे च नदीनाम्।
धिया विप्रो अजायत॥

(ऋक्० ८। ६। २८)

शरीरको स्वस्थ और नीरोग रखनेके लिये शुद्ध, पुष्टिदायक, रोगनाशक अन्न तथा जलका सेवन आवश्यक है। जलके विषयमें वेद कहता है— **'आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे'** (यजु० ११। ५०)। भाव यह है कि जल हमें सुख प्रदान करनेवाला तथा ऊर्जा प्रदान करनेवाला हो।

अन्नविषयक अनेक मन्त्र वेदोंमें आये हैं। जिन पुष्टिकारक व्रीहि, गोधूम, मुद्ग आदि अन्नोंका हम सेवन करें, उनकी गणना निम्न मन्त्रमें की गयी है— **'व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे'''' गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्'** (यजु० १८। १२)।

भोजनमें गोदुग्धका सेवन अत्यन्त आवश्यक है। वेदोंमें गोमहिमाके अनेक मन्त्र आये हैं। गायकी महत्ताका वर्णन करते हुए उसे रुद्रसंज्ञक ब्रह्मचारियोंकी माता, वसुओंकी दुहिता तथा आदित्यसंज्ञक तेजस्वी पुरुषोंकी बहिन कहा गया है— **'माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः'** (ऋक्० ८। १०१। १५)।

अथर्ववेदके मन्त्रमें गायोंको सम्बोधित कर कहा गया है कि आप कृश तथा दुर्बल व्यक्तिको पुष्ट और स्वस्थ बना देती हैं। उसके शरीरकी सौन्दर्यवृद्धिका कारण आपका दुग्ध ही है। **'यूयं गावः'** आदि अथर्व-मन्त्र इसके प्रमाण हैं। अन्नके विषयमें वेदमें कतिपय आवश्यक निर्देश मिलते हैं। प्रथम तो यह कहा गया है कि अन्नपति परमात्मा ही हैं। वे ही हमें रोगरहित तथा बलवर्द्धक अन्न प्रदान करते हैं। वे इतने उदार तथा समदर्शी हैं कि दो पैरोंवाले मनुष्यों तथा चौपाये जानवरों—सभी प्राणियोंको अन्न प्रदान करते हैं—

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥

(यजु० ११। ८३)

भोजनके विषयमें एक अन्य प्रसिद्ध मन्त्र निम्न है—

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥

(ऋक्० १०। ११७। ६)

अर्थात् अकेला खानेवाला, अन्योंको भोजनादिसे वञ्चित रखनेवाला वास्तवमें पाप ही खाता है। ऐसा स्वार्थी व्यक्ति न तो स्वयंको ही पोषित करता है और न अपने मित्रोंको। भगवान् श्रीकृष्णने वेदकी इसी उक्तिको इस प्रकारसे बताया—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

(गीता ३। १३)

जो पापी अपने लिये ही पकाते हैं, वे वस्तुतः पाप ही

खाते हैं। आहार और अन्नकी शुद्धताके अनेक निर्देश वेदाश्रित उपनिषदादि ग्रन्थोंमें भी मिलते हैं, वहाँ कहा गया है—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः॥

(छा० उ० ७।२६।२)

अर्थात् सात्त्विक आहार-ग्रहण करनेसे मनकी शुद्धि होती है और मनके शुद्ध होनेपर अविचलित स्मृति प्राप्त होती है। उपनिषदोंमें ही अन्नकी निन्दा न करनेका उपदेश दिया गया है— **'अन्नं न निन्द्यात् तद् व्रतम्'**। भोजन आदिकी भाँति शान्त और स्थिर निद्रा भी आरोग्यके लिये आवश्यक है। ऋग्वेदीय रात्रिसूक्त (१०।१२७)-में इसका सुन्दर विवेचन हुआ है। रात्रिमें उचित समयपर सोना स्वास्थ्यके लिये जरूरी है। वेदमें रात्रिको द्युलोककी पुत्री कहा गया है। यह रात्रि वस्तुतः उषःकालमें बदलकर अन्धकारका विनाश करती है— **'ज्योतिषा बाधते तमः'** (ऋक्० १०।१२७।२)।

मनुष्यका नीरोग और स्वस्थ रहना केवल शरीररक्षणसे ही सम्भव नहीं है। इसी अभिप्रायसे उपनिषद् पञ्चकोशोंका उल्लेख करते हैं, जिनमें अन्नमय कोश, प्राणमय कोश तथा मनोमय कोशके बाद ही विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोशकी चर्चा हुई है। स्वस्थ प्राणशक्ति आरोग्यका प्रमुख कारण बनती है। वेदोंने तो प्राणोंको परमात्माका ही वाचक माना है— **'प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे'** (अथर्व० ११।४।१)।

इसी अभिप्रायको भगवान् बादरायणने अपने सूत्र **'अतएव प्राणः'** में कहा है। प्राण नामसे परमात्मा ही कथित हुए हैं।

आरोग्यका एक महत्त्वपूर्ण साधन है ब्रह्मचर्य। इसके पालनकी महिमाके लिये अथर्ववेदका ब्रह्मचर्य-सूक्त द्रष्टव्य है। वहाँ स्पष्ट कहा गया है कि ब्रह्मचर्यरूपी तपके द्वारा विद्वान् देवगण मृत्युपर भी विजय पा लेते हैं— **'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत'** (अथर्व० ११।५।१९)।

अथर्ववेदमें रोग, रोगके कारणों, उनके निवारणके उपायों, रोगनाशक औषधियों एवं वनस्पतियों तथा रोग दूर करनेवाले वैद्यों (भिषक्) आदिकी विस्तृत चर्चा मिलती है। ये सभी प्रकरण शारीरिक स्वास्थ्यसे ही सम्बद्ध हैं। मनोवैज्ञानिक चिकित्साके संकेत भी वेदोंमें मिलते हैं। **'यज्जाग्रतो दूरमुपैति दैवं०'** (यजु० ३४।१—६) आदि मन्त्र मनकी दिव्य शक्तियोंका उल्लेख कर उसे शिवसंकल्पवाला बनानेकी बात करते हैं। स्पर्शपूर्वक रोगनिवारणके संकेत भी अथर्ववेदके **'अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः'** (अथर्व ४।१३।६) आदि मन्त्रोंमें मिलते हैं, जिसमें सहानुभूतिप्रवण वैद्यका कोमल स्पर्श रोगीके लिये औषधिका काम करता है।

(प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल)



स्वस्थ रहनेकी आदर्श जीवनचर्या

(प्रो० श्रीवेणीमाधव अश्विनीकुमारजी शास्त्री एम०ए०, भिषगाचार्य)

महर्षि चरकके आयुर्वेदीय जीवनसिद्धान्तमें आयुके साथ हित एवं अहित तथा सुख एवं दुःख—इन दो स्थितियोंको देखा गया है। इनमें हित एवं सुख-आयुका पर्याय स्वस्थ जीवन होता है तथा अहित एवं दुःख-आयुका पर्याय रोगग्रस्त जीवन होता है। इसी अन्वेषणपर मानव-जीवनके अध्ययनके चिकित्सापरक आयुर्वेदविज्ञानमें चिकित्साके दो उद्देश्य स्पष्ट किये गये हैं—

१-स्वस्थकी ऊर्जा-वृद्धि करके दीर्घ जीवन।

२-रोगीके रोगका शमन करके प्रकृति-स्थापनद्वारा दीर्घ जीवन।

इसीलिये चरकके चिकित्सास्थान १।३ में महर्षि अग्निवेशने चिकित्साके पर्यायोंमें पथ्य तथा साधन—इन दो शब्दोंका प्रयोग किया है। इनमेंसे पथ्य आहार और विहार दोनोंकी पूर्तिके लिये प्रयुक्त किया गया है तथा साधनद्वारा उन उपायोंका उल्लेख किया गया है, जिनसे हमारे शरीरके घटक साम्यावस्थामें बने रहें और हम स्वस्थ रहें।

काल, अर्थ और कर्म व्याधियोंके सर्वव्यापक कारण माने जाते हैं और इनसे बचनेके लिये ही आयुर्वेदज्ञोंने

स्वस्थवृत्तके विधानका उद्देश किया है। स्वास्थ्यके अनुवर्तन-हेतु तथा विकारोंकी उत्पत्तिका प्रतिबन्धन करनेके लिये नित्य प्रयोजनीय विषय निम्न प्रकारसे चरकसंहिताकारने सूत्रस्थान पाँचमें वर्णित किये हैं—

१. आहार (पोषण), २. विहार (शारीरिक चर्या) और ३. सद्वृत्त (मानसचर्या)।

१. आहार

आहारको मानवदेहका पोषक और धारक माना गया है। इसीलिये चरकसूत्र २८।३ में आचार्यने आहारके देहधारकत्व और पोषकत्वके विषयमें लिखा है कि विधिवत् सेवित आहार शरीरका उपचय कर बल, वर्ण तथा सप्त धातुओंको ऊर्जा प्रदान करके सुख, आयुष्य और रोगप्रतिबन्धनका फल प्रदान करता है। इसीलिये चरक-सूत्रस्थान (२७।३४९-५०)-में कहा गया है कि—

प्राणाः प्राणभृतामन्नमन्नं लोकोऽभिधावति।
वर्णः प्रसादः सौस्वर्यं जीवितं प्रतिभा सुखम्॥
तुष्टिः पुष्टिर्बलं मेधा सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्।

आहारका विधिपूर्वक सेवन करनेके लिये आचार्यने नियम (उपदेश) किये हैं, उनमें सर्वप्रथम आहार-मात्राका नियमन है। मात्राको वैज्ञानिक कसौटीपर कसनेके लिये सात्म्य और असात्म्य दो प्रकारके आहार-प्रभावको ध्यानमें रखकर व्यावहारिक पद्धतिका निर्देश किया गया है। असात्म्य आहार आयुर्वेदिक सिद्धान्तके अनुसार प्रकृतिविरुद्ध होकर वात, पित्त, कफ—इन दोषों और रस, रक्त आदि धातुओं तथा स्वेद-मूत्रादि मलों एवं उपधातुओं, त्रयोदश अग्नियों तथा स्रोतस्-विशेषको दूषित करते हैं। इसीको दोषवैषम्य या धातुवैषम्यके नामसे रोग-सम्प्राप्तिका प्रथम सोपान माना जाता है। इसीलिये महर्षि चरकने शरीरोपयोगी आहार, नियमन और सन्तुलित लाभ प्राप्त करनेके लिये आठ प्रकारकी आहारविधि—विशेषायतन निर्धारित किये हैं—१. प्रकृति, २. करण, ३. संयोग, ४. राशि, ५. देश, ६. काल, ७. उपयोग-संस्था तथा ८. उपयोक्ता।[1]

(१) आहारका परीक्षण सर्वप्रथम प्रकृति-परीक्षणसे प्रारम्भ करना चाहिये। आहारोपयोगी द्रव्योंमें जो स्वाभाविक भिन्नता गुरु तथा लघु आदि रूपमें पायी जाती है, वह व्यक्तिको उसकी आवश्यकताके अनुसार चिकित्सकद्वारा निर्धारित की जानी चाहिये।

(२) करणपरीक्षामें स्वाभाविक द्रव्योंका संस्कार समाविष्ट होता है। संस्कारके द्वारा द्रव्यकी प्रकृतिमें गुणानुसन्धान किया जाता है। यह कार्य द्रव्यके ऊपर जल, अग्नि, मन्थन, देश, काल, वासना और भावनाके द्वारा किया जाता है।

(३) एक, दो या तीन द्रव्योंका संयोग करके सेवन करनेपर विशिष्ट गुणकी उत्पत्ति हो जाती है। जैसे—दूध, चावल तथा शक्कर मिला देनेपर अग्नि-संस्कारद्वारा उत्पन्न खीरका भोजन पृथक्-पृथक् दूध, शर्करा एवं चावलके गुणोंसे विशेष गुणवाला होता है।

(४) आहारकी मात्राका निर्धारण राशिके रूपमें दो प्रकारसे किया जाता है—(१) सर्वग्रह एवं (२) परिग्रह। सर्वग्रहका तात्पर्य मात्रात्मक तथा परिग्रहका तात्पर्य घटक तत्त्वोंकी मात्रामें रसोंकी तरतम मात्रासे है।

(५) देशनिर्णयमें आहारद्रव्योंकी उत्पत्ति और प्रयोगका विचार किया जाता है तथा देश-विशेषमें सात्म्यताका भी आहारनिर्णयमें विचार किया जाता है।

(६) कालसे आहारका सम्बन्ध दो प्रकारसे है—(१) नित्य व्यक्त होनेवाले अहोरात्रादि कालरूपमें तथा (२) व्यक्तिके शरीरसे सम्बन्धित आयुवर्गके रूपसे अहोरात्रादि-कालमें ऋतुचर्याका अनुशीलन तथा आवस्थिक कालसे विकासकी अवस्थाका अनुशीलन आहारनिर्णयमें करना चाहिये।

(७) इस क्रममें आहारप्रयोगका नियमपूर्वक आहारकी मात्रा जीर्ण होनेपर अपर आहारका सेवन विचारके योग्य होता है।

(८) उपयोक्तामें व्यक्तिके शरीरसे सम्बन्धित यह निर्णय व्यक्तिके अभ्यास एवं परम्परासे क्या सात्म्य है, क्या असात्म्य है इसका विचार अपेक्षित होता है।

आहारनिर्णयके उक्त बिन्दुओंके अतिरिक्त आहारकी गुणवत्ता तथा पोषकताको बढ़ानेके लिये शरीरकी दोष-धातु

१.तत्र खल्विमान्यष्टावाहारविधिविशेषायतनानि भवन्ति तद्यथा—प्रकृतिकरणसंयोगराशिदेशकालोपयोगसंस्थोपयोक्त्रष्टमानि। (विमानस्थान १।२१)

एवं मलकी रचनाओंको प्राकृत बनानेके लिये विभिन्न प्रकारके अभ्यास और व्यावहारिक नियम भी चरकसंहितामें निर्देशित किये गये हैं।[1] जैसे—

(१) उष्ण भोजन स्वादिष्ठ लगता है और भोजन करनेपर अग्निकी दीप्ति होती है, जिससे भोजन शीघ्र परिपाकको प्राप्त होता है, कोष्ठस्थ वायुका अनुलोमन होता है तथा कोष्ठस्थ श्लेष्माका ह्रास होकर आहार गुणवान् हो जाता है।

(२) स्निग्ध भोजनसे स्वादकी वृद्धि, भोजन करनेपर अदीप्त अग्निकी दीप्ति, शीघ्र परिपाक, कोष्ठस्थ वातानुलोमन, शरीरका उपचय, इन्द्रियोंका पोषण, बलकी वृद्धि तथा वर्णप्रसाद-उत्पत्तिका लाभ होता है।

(३) मात्रावत् आहारसेवन करनेसे कुक्षिमें स्थित वात, पित्त, कफ-दोषोंका वैषम्य नहीं होता, परिपाक यथासमय होकर सुखपूर्वक मलविसर्जन होता है। अग्निका संरक्षण होता है तथा बिना किसी कष्टके परिपाक हो जाता है।

(४) पूर्व आहार जीर्ण होनेपर (सम्यक्-रूपसे पच जानेपर) ही अपर आहारका सेवन करना चाहिये। अजीर्ण आहारके ऊपर भोजन करनेसे आम-दोषकी उत्पत्ति होकर सर्वदोषप्रकोप होनेकी सम्भावना होती है।

(५) आहारका संयोग परस्पर-विरुद्ध वीर्य-द्रव्योंके रूपमें नहीं होना चाहिये अन्यथा विरुद्ध वीर्यजन्य विकृतियाँ सम्भावित होती हैं, जैसे—कुष्ठ, अन्धत्व, विसर्प आदि।

(६) आहारके लिये समुचित एवं निर्धारित स्थानका ही व्यवहार होना चाहिये। जहाँ चाहे, वहाँ भोजन करना ठीक नहीं। इस नियमसे स्थानकी अशुद्धियाँ दूर होती हैं तथा वातावरणसम्बन्धी दूषित मानसिक भावोंकी मुक्ति हो जानेसे शुद्ध मनसे आहारकी गुणवृद्धि होती है। आहारके उपयोगके समय प्रयोग होनेवाले पात्र आदि उपकरणोंका पूर्णरूपसे आहारकी सुरक्षा तथा संरक्षणपर प्रभाव पड़ता है, अतः इन सभीका इष्ट और स्वच्छ होना आवश्यक है।

(७) शीघ्रतामें भोजन करनेसे भोजनका सम्यक् चर्वण न होनेके कारण क्लेदन और उसका संघातभेदन भी नहीं हो पाता, इसके साथ-साथ कभी-कभी शीघ्रतासे भोजन करनेसे भोजन अन्न-नलिकाके स्थानपर श्वास-नलिकामें भी प्रवेश कर जाता है। अतः भोजन अति द्रुतगतिसे नहीं करना चाहिये।

(८) अतिविलम्बित गतिसे भोजन करनेपर तृप्ति नहीं होती, भोजन अतिमात्रामें सेवित हो जाता है, आहार ठंडा हो जाता है, फलतः उसका परिपाक भी विकृत हो जाता है।

(९) भोजन करते समय आहार श्वास-नलिकामें प्रवेश कर सकता है। अतः ऐसी अवस्थामें बातें नहीं करनी चाहिये। आहारसेवनके समय हँसनेपर भी उपर्युक्त दोष होता है। साथ ही भोजन करनेमें मन लगाकर भोजन करना चाहिये।

(१०) व्यक्तिको आहार ग्रहण करते समय सेवित आहारके विषयमें सात्म्यता और असात्म्यताका ध्यान रखकर अपने शरीर और आयुका हित-विवेचन, चिन्तन करते हुए आहारका विधिपूर्वक सेवन करना चाहिये।

स्वास्थ्यके लिये उक्त आहार हितकारी तथा विकारोंका प्रतिबन्धन करनेवाली प्रणालीका परिपालन करनेसे न केवल शरीर स्वस्थ रहता है, अपितु शरीरके मूल घटक—वात, पित्त, कफ-दोष साम्य-अवस्थामें रहते हैं।

२. विहार

जहाँतक शरीरको स्वस्थ और व्याधि-प्रतिबन्धित रखनेके लिये बाह्य-जीवनोपयोगी कर्म-समुदायका सम्बन्ध है, वह सब आयुर्वेदमें योगारूढ संज्ञाके आधारपर विहारके नामसे जाना जाता है। इसमें दिनचर्या, ऋतुचर्या तथा सद्वृत्त पालन आदिके नियमोंका समावेश होता है।

दिनचर्या—शय्यात्यागके बाद व्यक्तिको स्वयं एक क्षण विचार करके देखना चाहिये कि मेरी शारीरिक स्थिति नित्य-जैसी है या कुछ विचार करने योग्य है, यदि किसी भी प्रकारकी प्रतिकूल वेदना हो तो उसका यथाशक्य समाधान वैयक्तिक स्तरपर अथवा अपने पारिवारिक चिकित्सकके परामर्शसे अवश्य कर लेना चाहिये, ऐसा करनेसे व्याधि-सम्बन्धित आपात स्थितियोंको समाधान-योग्य बनाया जा सकता है। यदि उपेक्षा की जाय तो छोटी-से-छोटा व्याधि भी महान् कष्टदायी हो सकती है।

१. उष्णं स्निग्धं मात्रावत्, जीर्णे वीर्याविरुद्धम्, इष्टे देशे इष्टसर्वोपकरणम्, नातिद्रुतम्, नातिविलम्बितम्, अजल्पन्, अहसन् तन्मना भुञ्जीत आत्मानमभिसमीक्ष्य सम्यक्। (विमानस्थान १। २४)

मलत्याग—प्रातः शय्यात्यागके उपरान्त मलविसर्जन करके मुखप्रक्षालन करना चाहिये।

मंजन और दन्तधावन—सुविधा एवं रुचिके आधारपर दातौन और मंजनका प्रयोग करना चाहिये। इससे दाँतोंमें चिपके हुए मल तथा जीवाणु दूर होते हैं। दातौनके लिये तिक्तरसके रूपमें नीमकी, कषायरसके रूपमें बबूलकी तथा मधुर रसके रूपमें महुएकी दातौन श्रेष्ठ और जीवाणुनाशक एवं शरीर-रचनाओंका पोषण करनेवाली मानी गयी है। मंजन अनेक प्रकारके अपनी परम्परा और सुविधाके अनुसार प्रयोग किये जा सकते हैं।

जिह्वा-शोधन—मुखशुद्धि और दन्तशुद्धिके बाद स्वर्ण, रजत या ताम्र अथवा लोहेसे निर्मित जीभीसे जिह्वापर संचित मलको दूर करना चाहिये।

अंजन—नेत्रोंकी सुरक्षा और दृष्टिका प्रसाधन करनेके लिये नित्य अंजनका प्रयोग करना चाहिये। पाँच या आठ दिनके अन्तरसे रसांजनका प्रयोग करना चाहिये। अंजनके प्रयोगसे दृष्टि दर्पणकी तरह स्वच्छ और तेजोमय हो जाती है। श्लेष्मासे होनेवाली व्याधियाँ प्रतिबन्धित होती हैं तथा दृष्टि निरन्तर निर्मल बनी रहती है। कतिपय आधुनिक नेत्रचिकित्सक यह भ्रान्ति पैदा करते हैं कि अंजन करनेसे नेत्र और दृष्टिकी हानि होती है—यह विचार स्वयंमें भ्रामक तो है ही, साथ ही बिना प्रयोग किये और फल देखे अज्ञानताका परिचायक भी है।

धूम्रवर्तिसेवन—शरीरके सबसे उपयोगी श्वासवह-संस्थानके मूल नासारन्ध्रोंको शुद्ध रखनेके लिये आयुर्वेदिक धूम्रसेवन भारतीय चिकित्सा-विज्ञानकी अतिविशिष्ट एक मौलिक विधि है। धूल, धूम, धूप, आधुनिक ठंडे पेय, चॉकलेट, फास्टफूड, आइस्क्रीम और फ्रिज आदिमें रखे गये आहारके अत्यधिक प्रयोगसे सबसे ज्यादा नशा तथा उससे सम्बन्धित अवयवोंको हानि पहुँचती है। यह हानि प्रतिश्याय, पीनस, नासार्श, शिर:शूल, तुंडिकरी तथा स्वरभेदके रूपमें उमड़ती है। इनसे बचनेके लिये धूम्रवर्तिका सेवन अत्यन्त लाभकारी उपाय है।[1]

नस्य—स्वस्थ-हित-नस्य पञ्चकर्मके अन्तर्गत परिगणित नस्य-कर्मसे पृथक् है। इसका प्रयोग वर्षा, शरद् और हेमन्त-ऋतुमें स्वच्छ आकाशवाले दिनोंमें करना चाहिये। इसके लिये आयुर्वेदकी अणुतेल-विधिका प्रयोग करना चाहिये। इस नस्यसे चक्षु, नासा, कर्ण तथा इन्द्रियोंकी रोगोंसे प्रतिरक्षा होती है तथा बालोंका पालित्य (असमयमें सफेद होना) भी नहीं होता।

मुखशुद्धि—मुखमें सुगन्ध और रसज्ञानकी उत्तमता बनाये रखनेके लिये जायफल, सुपारी, लवंग, कंकोल, छोटी इलायची तथा शुद्ध कर्पूरयुक्त पानका सेवन भोजनान्तमें करना चाहिये। इनके प्रयोगसे मुखकी दुर्गन्ध दूर होती है तथा सामान्य मुख-रोगोंका प्रतिबन्धन होता है।

तेल-गण्डूष—तिल-तेलको जलकी तरह मुखमें भरकर कुछ समयतक उसका कुल्ला करनेके रूपमें परिचालन करते हुए थूक देना चाहिये। इस प्रकारका प्रयोग रोगविशेषमें औषधिसिद्ध तेलोंसे भी किया जाता है। स्नेहगण्डूष धारण करनेसे हनु-संधिको बल मिलता है, मुखकी पुष्टि होती है, स्वर उत्तम होता है, रसज्ञान श्रेष्ठ होता है, आहारमें रुचि उत्पन्न होती है। कण्ठशोष, ओठोंका फटना, दन्तक्षय, दाँतोंका हिलना आदि तेल-गण्डूषके प्रयोगसे प्रतिबन्धित होते हैं।

शिरोऽभ्यङ्ग—नित्यप्रति सिरमें तिल अथवा नारियलका तेल या औषधिसिद्ध तेलका अभ्यङ्ग करना चाहिये। अभ्यङ्गके लिये तेलकी इतनी मात्रा होनी चाहिये, जिससे बाल पूरी तरह स्नेहाक्त हो जायँ। यह परम्परा दक्षिण भारत (केरल)-में आज भी प्रचलित है। शिरोऽभ्यङ्गसे शिर:शूल तथा पालित्यको रोका जा सकता है। चक्षु एवं कर्णेन्द्रियके रोगोंका प्रतिबन्धन होता है। मुखकी त्वचा कोमल तथा मधुर निद्राकी प्राप्ति होती है।

कर्णतर्पण—प्रतिदिन एक-एक बूँद तिलका तेल अथवा औषधियुक्त तेल कानोंमें डालना चाहिये, इससे वातजन्य कर्णव्याधियाँ, मन्यास्तम्भ, हनुग्रह तथा बाधिर्यका प्रतिबन्धन होता है।

शरीर-अभ्यङ्ग—नित्यप्रति स्नानसे पूर्व सम्पूर्ण शरीरके ऊपर तिलका तेल अथवा औषधियुक्त तेलका अभ्यङ्ग करना चाहिये। इससे शरीर इस प्रकार मुलायम और स्निग्ध

१. इसका प्रयोग एवं विधि चरक सूत्रस्थान ५। २०—५५ में द्रष्टव्य है।

हो जाता है, जैसे स्नेहके द्वारा मिट्टीका घड़ा और चर्म चिकना हो जाता है। अभ्यङ्गसे दृढ़ता और परिश्रम करनेकी शक्ति प्राप्त होती है। त्वचामें स्थित वातनाडियोंको श्रेष्ठ प्रकारका पोषण मिलता है। इससे विविध प्रकारके त्वचासम्बन्धी रोगोंका शमन होता है। उष्ण एवं शीतको सहन करनेकी क्षमता श्रेष्ठ हो जाती है।

पादाभ्यङ्ग—दोनों पैरोंके तलवोंमें नित्य तिलका तेल अथवा औषधियुक्त तेलका अभ्यङ्ग करनेसे वायुका शमन होता है। दृष्टि-सुख प्राप्त होता है। पैरोंमें स्वच्छता, खरता, स्तब्धता और श्रमका शमन होता है। पैर स्थिर एवं बलवान् होते हैं। गृध्रसी तथा पादस्फुटन, खल्लीशूल आदिका पूरी तरह प्रतिबन्धन होता है।

स्नान—अभ्यङ्ग-कर्म करनेके बाद शारीरिक शुद्धिके लिये यथा-ऋतु एवं सात्म्यताके अनुसार उष्ण या शीत जलसे स्नान करना चाहिये। स्नान करनेसे स्वेद एवं शारीरिक दुर्गन्ध दूर होती है। स्फूर्ति प्राप्त होती है। श्रम और तन्द्रा दूर होकर क्रियाशीलता बढ़ती है। अन्ताग्निका संदीपन होकर शरीरमें बलवृद्धि तथा ऊर्जावृद्धि होती है।

शुद्ध वस्त्रधारण—निर्मल वस्त्र-धारण करनेसे शरीरमें आकर्षण, आयु तथा श्रीकी वृद्धि होती है, दरिद्रताका नाश होता है।

सुगन्ध-मालाधारण—सुगन्धित पुष्पमाला धारण करनेसे वृष्य तथा आयुकी वृद्धि होती है।

आभूषणधारण—माङ्गलिक तथा हर्ष प्रदान करनेवाले, व्यक्तित्वमें प्रकाश करनेवाले और अनेकों प्रकारके लाभ प्राप्त करानेवाले रत्न, आभूषणधारण भारतीय परम्परामें अङ्गभूत हैं, इनको धारण करनेसे शारीरिक तथा मानसिक संतुष्टि प्राप्त होती है।

मलमार्ग एवं पादशुद्धि—नित्यप्रति आवश्यकता, अनिवार्यता और अभ्यासके साथ पैरों तथा मलमार्गोंको जल अथवा मृत्तिकासहित जलसे शुद्ध करनेसे मल दूर होते हैं। पवित्रता आती है तथा अलक्ष्मी और कलिदोषका निवारण होता है।

केश, श्मश्रु, नखकर्तन—पक्षमें तीन बार केश, श्मश्रु तथा नखोंका कर्तन और प्रसादन मल दूर करनेके लिये करना चाहिये। इससे पुष्टि तथा अविकारभाव एवं व्यक्तित्वमें चमत्कार पैदा होता है।

पादत्राण—पादसुरक्षा तथा पराक्रमवृद्धि करनेके लिये सुविधानुसार यथोचित पादत्राण धारण करने चाहिये। इससे दृष्टिमें वृद्धि एवं आकस्मिक दुर्घटनासे रक्षा होती है।

छत्रधारण—आवश्यकतानुसार ऋतुसुखको ध्यानमें रखकर छत्रधारण भी मानव-शरीरकी रक्षाके लिये आवश्यक होता है। इससे धूल, धूप, वर्षा तथा वायुसे रक्षा होती है।

रात्रिचर्या—दिनभरके व्यस्त कर्मोंको करनेके बाद रात्रिमें सेवनविधिके नियमानुसार आहारका सेवन करना चाहिये और नित्य यथासमय सोनेका क्रम बनाये रखना चाहिये। सुखनिद्राके लिये शयनस्थानकी स्वच्छता, वायुका उचित आवागमन, मच्छर आदिसे सुरक्षा तथा शय्यावस्त्रोंकी स्वच्छता होनी चाहिये।

ऋतुचर्या—शारीरिक स्वास्थ्यके परिपालन तथा विकार-प्रतिबन्धनके लिये आयुर्वेदज्ञोंने नित्य जीवनका क्रम, वातावरणमें होनेवाले परिवर्तनोंका पूर्णतः अध्ययन एवं विवेचन कर व्यावहारिक रूप देनेके लिये वर्षा, ग्रीष्म तथा शीत—इन ऋतुओंके छः भेद मानकर वैज्ञानिक दृष्टिसे आहार-विहारके नियम ऋतुचर्या-विधानके नामसे विस्तारपूर्वक निरूपित किये हैं। जो चरकसंहिताके सूत्रस्थान ६ में द्रष्टव्य हैं। उनका अनुपालन करना चाहिये।

३. सद्वृत्त

पूर्वमें स्वस्थ-हित और विकारप्रतिबन्धनके लिये आहार, दिनचर्या, रात्रिचर्या तथा ऋतुचर्यासम्बन्धी सामान्य नियम प्रस्तुत किये गये हैं। महर्षि चरकके अनुसार मानवका शरीर इन्द्रिय-सत्त्व एवं आत्माका संयोग है। इनमेंसे शरीरके लिये हितकर विषयोंका पूर्वमें वर्णन हुआ है। शेष मानस-क्षेत्र इन्द्रिय, मनके हितकर व्यवहारका विवरण सद्वृत्तके[1] अनुसार प्रस्तुत किया जा रहा है। सद्वृत्तका आचरण करनेपर एक साथ दो लाभ प्राप्त होते हैं—आरोग्य और इन्द्रियविजय। जैसे—

(१) देव, गौ, ब्राह्मण, सिद्ध, गुरु, वृद्ध तथा

१. द्रष्टव्य चरकसंहिता सूत्रस्थान अध्याय ८।

आचार्यकी पूजा करें।

(२) अग्निमें होम करें, प्रशस्त औषधि धारण करें, प्रातः-सायं स्नान करें।

(३) मलायनों तथा पैरोंका सम्यक् शोधन करें, पक्षमें तीन बार केश, श्मश्रु तथा नखकर्तन करें।

(४) नित्य स्वच्छ वस्त्र और सुगन्धि धारण करें, केशोंका सुन्दर विन्यास करें।

(५) सिर, कर्ण, घ्राण, पादमें नित्य स्नेहन करें तथा आयुर्वेदिक धूम्रपान करें।

(६) सभीसे पूर्व भाषण करें, प्रसन्नमुख रहें और दुर्गतिप्राप्त लोगोंकी रक्षा करें।

(७) हवन, यज्ञ, दान, बलिदान, अतिथिपूजा तथा पितरोंको पिण्ड-दान करें। समयपर हित, मित और मधुर वाणीका प्रयोग करें।

(८) स्वयंको नियन्त्रित रखें, धर्ममें आस्था रखें। निर्भीक, पवित्र, बुद्धियुक्त कार्यको उत्साहसहित आरम्भ करें। कार्यमें कुशलता, अपराधके प्रति क्षमा, नियमपूर्वक गुरुजनोंकी उपासना करें और छत्र, दण्ड, उपानह आदि धारण करें।

(९) मङ्गलाचरण करके कार्य आरम्भ करें।

(१०) दूषित भूमिका त्याग करें, मात्रामें व्यायाम करें। प्राणिमात्रमें बन्धुत्व रखें, क्रोधीको मनावें, भयभीतको आश्वासन दें, दीनोंको सहयोग दें, सत्यका आचरण करें, दूसरोंके कठोर वचनोंको सहें, प्रतिशोधका त्याग करें, स्वभाव शान्त रखें, राग-द्वेषके कारणोंका नियन्त्रण करें।

(११) असत्य न बोलें, परधन और परस्त्रीकी इच्छा न रखें, शीलका पालन करें, वैर न बढ़ायें, पाप न करें, पापका प्रायश्चित्त करें, स्वगुण एवं दूसरोंके दुर्गुणोंको न कहें, दूसरोंके रहस्योंको न खोलें, अधार्मिक, राजद्रोही, उन्मत्त, पतित, भ्रूणहन्ता, क्षुद्र एवं दुष्टोंकी संगति न करें।

(१२) विकृत यानपर यात्रा न करें, जानुके समान ऊँचे आसनपर न बैठें, असुखशय्यापर शयन न करें, पहाड़ोंकी चोटीपर न चलें, पेड़ोंपर न चढ़ें, नदीके प्रवाहके विरुद्ध न तैरें।

(१३) अग्निसे क्रीडा न करें, छायापर पादाघात न करें, ऊँचे शब्दोंमें न हँसें, शब्दवाले अपानवायुका त्याग न करें, खुले मुख जृम्भा (जंभाई), क्षवथु (छींक) और हास्यका प्रयोग न करें, नाकमें उँगली न डालें, दाँतोंको न घिसें, नखोंको न चबायें, अस्थियोंमें अभिघात न करें, पृथ्वीपर न लिखें, मिट्टीके ढेलेको न फोड़ें, अङ्गोंमें विकृत चेष्टा न करें, देर रात्रिमें मन्दिर आदि स्थानोंपर न जायँ, शून्य गृहमें अकेले प्रवेश न करें, अकेले जंगलमें न जायँ, पापकर्ममें लिप्त स्त्री, मित्र और सेवकोंका विश्वास न करें, श्रेष्ठ पुरुषोंका विरोध न करें, नीचोंकी संगतिमें न जायँ, कुटिल व्यक्तिसे दूर रहें, अनार्यकी संगतिमें न रहें, किसीको भयभीत न करें।

(१४) साहस, अतिबल, प्रजागरण, अतिस्नान, अतिपान, अतिअशन, अत्यशन न करें।

(१५) ऊर्ध्वजानु देरतक न बैठें, सर्पोंका स्पर्श न करें, सींगवाले जानवरोंसे दूर रहें, पूर्वी वायु, आतप तथा ओसका त्याग करें, समूहमें कलह न करें, नियत-चर्याके और आचार्यके बिना यज्ञ आरम्भ न करें, श्रमकी अवस्थामें अग्निसेवन न करें, अग्निके समीप संयत भाषण करें, कटिवस्त्र पहनकर ही यज्ञ करें, केशोंके अग्रभागको न खींचें, यात्रासे पूर्व रत्न, घृत, पूज्य और माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श शरीरके दक्षिण भागसे करें।

(१६) भोजन करनेके पूर्व शुद्ध वस्त्र और रत्न धारण करें, इष्ट देवताका जप करें, अग्निमें हवन, देवताओंको समर्पण, पितरोंको तर्पण और गुरु, अतिथि एवं उपाश्रितोंको यथाशक्य आहारलाभ दें। सुगन्धित स्नान तथा माला धारण करें, प्रक्षालित हस्त-पाद-बदन तथा उत्तराभिमुख हो एवं अशिष्ट, अपवित्र, बुभुक्षित सेवकोंसे परिवर्जित और पवित्र पात्रमें सुसज्जित इष्टदेश, इष्टकाल तथा इष्टभूमिपर जलसिंचनके बाद अभिमन्त्रित कर आहार ग्रहण करें। आहारकी निन्दा न करते हुए प्रसन्नमनसे भोजन ग्रहण करें।

(१७) बासी भोजन न करें तथा मांस और मसालेसे बना भोजन न करें। रात्रिमें दहीका सेवन न करें, सत्तूका सेवन न अकेले करें, न घनरूपमें तथा न रात्रिमें करें। अधारणीय वेगोंके समय कोई कार्य न करें, अग्नि, जल, सूर्य, चन्द्र तथा पूज्य लोगोंके सम्मुख थूक, छींक, पुरीष तथा मूत्रका उत्सर्जन न करें, धार्मिक एवं माङ्गलिक कार्योंके समय थूकना एवं नाक छिनकना वर्जित है।

(१८) स्त्रियोंपर अति विश्वास न करें, उनकी निन्दा न करें, उन्हें गुप्त रहस्य न बतायें, उन्हें बलपूर्वक अपने

अधिकारमें न रखें।

(१९) सज्जन और गुरुओंसे विवाद न करें, अधार्मिक आचरणसे पूजा न करें, समयका सर्वदा विचार करें, रात्रिमें वर्जित स्थानोंपर गमन न करें, संध्याकालमें आहार, अध्ययन, स्त्रीसेवन एवं निद्राका निषेध करें। बाल, वृद्ध, लोभी, मूर्ख, रोगी और नपुंसक लोगोंसे मैत्री न करें। मद्य, जुआ और वेश्यागमनका परित्याग करें। गुप्त बात सभीको न बतायें, किसीका अपमान न करें, परनिन्दा न करें, अहंकार न करें।

(२०) अधीर न हों, स्वजनोंसे विश्वासघात न करें, सेवकको सेवाका प्रतिफल दें, अकेले सुख न भोगें, दुःखदायी आचार और उपचारोंका अभ्यास न करें, हर किसीपर विश्वास न करें, हर एकपर शंका न करें, सर्वदा विचार ही न करते रहें।

(२१) कार्यके उचित समयको न त्यागें, बिना परीक्षाके अपना मत व्यक्त न करें, विलम्बसे कार्य करनेका त्याग करें, शोकमें न डूबें, कार्य पूर्ण होनेपर अति हर्ष और कार्य असफल होनेपर अति शोक न करें।

(२२) ब्रह्मचर्यका पालन करें तथा ज्ञान, दान, मैत्री, करुणा, हर्ष, उपेक्षा और शान्तिका युक्तिपूर्वक व्यवहार करें।

वर्तमान युगमें काल, अर्थ और कर्मके हीन, मिथ्या और अतियोगोंमें जीवनयापन करनेकी व्यवस्था हमारे सामने विकराल रूपसे उपस्थित है। इसीके परिणामस्वरूप ज्ञान और विज्ञानकी नयी एवं पुरानी चिकित्साप्रणालियोंके अहर्निश कार्य करनेपर भी असाध्य व्याधियाँ तथा रोगप्रतिबन्धनका लक्ष्य पूर्ण नहीं हो पा रहा है। आयुर्वेदके स्वस्थ-हित और व्याधिप्रतिबन्धक नियमोंका हर दृष्टिसे विश्लेषण किया जाय तो यह ज्ञात होता है कि प्रकृतिके अनुरूप जीवनक्रम स्वस्थ जीवनके परिपालनका मूल आधार है। प्रकृतिके बाह्य-स्वरूपसे हमारा वातावरण और आहार उपलब्ध होता है तथा आभ्यन्तर स्वरूपसे शारीरिक भावोंकी साम्यता और इन्द्रियोंकी प्रसन्नता प्राप्त होती है और यही आयुर्वेदमें प्रकृति-सुख-साम्यावस्था 'आरोग्य' कहा जाता है। अतः चरकोक्त वैयक्तिक स्वस्थवृत्तका तथा विकार-प्रतिबन्धनके लिये जीवनयापनकी सरल विधिका अनुपालन किया जाय तो निश्चय ही मनुष्यको स्वस्थ जीवन, दीर्घ जीवन तथा विकारोंका प्रतिबन्धन और सच्चा आरोग्य प्राप्त हो सकता है।



प्रकृतिके अष्टरूप जगत्को आरोग्य प्रदान करते हैं

(डॉ० आचार्य श्रीरामकिशोरजी मिश्र)

जो प्राणी प्रकृतिमें रहता है, उसे प्रकृतिके आठ रूप आरोग्य प्रदान करते हैं। प्रकृतिके आठ रूप हैं—जल, अग्नि, होता, सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी और वायु। प्रकृतिके ये आठों रूप यदि स्वच्छ और निर्मल तथा प्रसन्न हैं तो इनके सहयोगसे यह जीव-जगत् सदा स्वस्थ रहता है। महाकवि कालिदासने अभिज्ञानशाकुन्तलके नान्दीपाठमें प्रकृतिके इन आठ रूपोंका भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियोंके रूपमें स्मरण किया है—

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥

(अभिज्ञानशाकुन्तलम् १। १)

कालिदासने प्रकृतिको शिव और प्रकृतिके अष्टरूपोंको शिवकी अष्टमूर्तियाँ माना है। इन अष्टमूर्तियोंका सीधा सम्बन्ध पृथ्वीके जीव-जगत्से है।

(१) जब विधाताने सृष्टिकी रचना की तो उन्होंने सर्वप्रथम जलकी रचना की। अतः कालिदासने सबसे पहले शिवकी जलमयी मूर्तिका स्मरण किया है—'या सृष्टिः स्रष्टुराद्या'—स्रष्टाकी आद्य सृष्टि अर्थात् जल। स्वच्छ और निर्मल जलके सेवनसे शरीर स्वस्थ हो जाता है। जल जीवन है। जलके बिना प्राण-रक्षा नहीं होती। जल अन्तर्गत होकर शरीरके विकारोंको नष्ट कर देता है। जलमें समस्त रोगोंको नष्ट कर देनेवाली औषधियोंको उत्पन्न करनेकी शक्तिका वास है, जिससे समस्त बीज जलग्रहणकर अङ्कुरित हो अपने रूपको वृद्धिङ्गत करते हैं और उनसे प्राणियोंका शरीर आरोग्य प्राप्त करता है।

(२) प्रकृति अर्थात् शिवका द्वितीय रूप 'अग्नि' है,

जिसे कालिदासने **'वहति विधिहुतं या हविः'** के रूपमें स्मरण किया है, जिसका अर्थ है कि जो मूर्ति विधिपूर्वक हवन की गयी हव्य-सामग्रीको ग्रहण करती है अर्थात् अग्नि। अग्नि समस्त प्रकारके रोगोंको अपने प्रभावसे नष्ट कर देती है। इस प्रकार अग्नि प्राणीके बहुतसे रोगों—मन्दाग्नि आदिको नष्ट करके उसके शरीरको आरोग्य प्रदान कर स्वस्थ बनाती है।

(३) प्रकृतिका तृतीय रूप होता—यजमान है। सृष्टिके समस्त कर्म यज्ञ हैं और यज्ञोंका कर्ता यजमान होता है। अतः विधाता सबसे पहला यजमान था, जिसने सृष्टियज्ञ अर्थात् पृथ्वीकी रचना की। वह सृष्टिकर्म अनवरत हो रहा है। इस पृथ्वीका प्रत्येक क्रियाशील प्राणी होता—यजमान है। यजमान स्वकृतयज्ञसे उत्पन्न धूमसे जगत्प्रदूषणको नष्ट कर प्राणियोंको आरोग्य प्रदान करता है।

(४) (५) **'ये द्वे कालं विधत्तः'** कालिदासके इस वाक्यसे—जो दो मूर्तियाँ अर्थात् सूर्य और चन्द्र काल अर्थात् दिन और रात्रिका विधान करते हैं, वे प्रकृति अर्थात् शिवके चतुर्थ और पञ्चम रूप हैं, जिनका इस सृष्टिसे अटूट सम्बन्ध है।

सूर्य समस्त जगत्की आत्मा हैं। ये जगत्का नेत्र और सविता—जनक हैं। इनके बिना हम सब अन्धे हैं। यदि ये न हों तो पृथ्वीपर कुछ भी उत्पन्न नहीं होगा। इन्हींके प्रतिदिन उदित होनेसे संसारकी गतिविधियाँ चलती हैं। अपनी किरणोंसे ये जीव-जगत्को आरोग्य प्रदान करते हैं। इसीलिये आरोग्यके अभिलाषीको सूर्योपासना करनेका निर्देश शास्त्रोंमें प्राप्त है—**'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्'** (मत्स्य पु०)।

चन्द्रमा निशापति और ओषधिपति हैं। ये औषधियोंमें रसोंका सञ्चार करते हैं और उन्हें पुष्टकर प्राणियोंको आरोग्य प्रदान करते हैं। उन पुष्ट औषधियोंका सेवन प्राणी करते हैं, जिससे शरीर नीरोग होता है।

(६) प्रकृतिका छठा रूप आकाश है, जिसे **'श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्'** कहकर कालिदासने शिवकी छठी मूर्ति बताया है। इस आकाशमें अनन्त ब्रह्माण्ड और अनेक गङ्गाएँ समाहित हैं। इसका सर्वाधिक विशाल रूप है। यह समस्त जीव-जगत्को श्रवणशक्ति प्रदान करता है।

(७) प्रकृतिका सप्तम रूप पृथ्वी है, जिसे कालिदासने **'यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति'** अर्थात् जिसे समस्त बीजोंको उत्पन्न करनेवाली कहकर स्मृत किया है। पृथ्वी अन्नादि समस्त बीजोंकी जननी है। अन्नादिसे प्राणियोंकी भूख शान्त होती है और शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। अतः पृथ्वी अपनेसे उत्पन्न अन्न, वनस्पति आदिसे प्राणियोंको आरोग्य प्रदान करती है।

(८) प्रकृतिका अष्टम रूप वायु है, जिसे कालिदासने **'यया प्राणिनः प्राणवन्तः'** अर्थात् जिसके द्वारा प्राणी प्राणवाले होते हैं—कहकर शिवकी अष्टमूर्तिके रूपमें स्मृत किया है। वायु सतत बहता है। इसीसे समस्त प्राणी जीवित हैं। यह अन्तरिक्ष-मार्गपर चलता हुआ क्षणभरके लिये भी नहीं रुकता। यदि यह क्षणभरके लिये भी कहीं रुक जाय तो प्राणियोंका जीवन समाप्त हो जायगा। प्राणियोंमें श्वास-स्पन्दन ही तो जीवन है और वह वायुसे सञ्चालित होता है। अतः वायु हमारे प्राणोंकी रक्षा करता है।

यह अष्टरूपा प्रकृति तो निरन्तर हमारे कल्याणमें लगी रही है, किंतु आज सारा वातावरण, समस्त परिवेश, अन्न, जल, वायु—सभी कुछ दूषित होता जा रहा है तो फिर रोग बढ़ें, महामारी फैले, प्राकृतिक प्रकोप बढ़ें तो इसमें आश्चर्य कैसा, आजके दूषित समयमें सर्वथा आरोग्य रह पाना बड़ा कठिन हो गया है। प्रकृतिके साथ की जा रही छेड़छाड़को यदि हमने नहीं रोका तो वह दिन दूर नहीं, जब हम सबका सर्वनाश सुनिश्चित होगा।

पहले हमारे समस्त कर्म यज्ञद्वारा प्रकृतिके इन अष्टरूपोंमेंसे अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदिकी आराधना और उपासनाकी दृष्टिसे होते थे। यज्ञ हवन-होमादिमें निक्षिप्त घृतादि हव्य-सामग्रीसे उत्पन्न सुगन्धित धूमोंसे समस्त पर्यावरणसहित वातावरण शुद्ध तथा सुगन्धित होता रहता था, किंतु आज हमारे कर्म उद्योग तथा व्यापारकी दृष्टिसे हो रहे हैं, जिसके कारण धुआँ उगलते वाहनों और घातक विस्फोटकोंके जहरीले धुएँसे न केवल नगरोंकी अपितु ग्रामीण क्षेत्रोंका वायु भी इतना कलुषित तथा प्रदूषित हो चुका है कि उसे इन फेफड़ोंमें भरना खतरेसे खाली नहीं

है। यह सब हो रहा है और हम सब ऐसा करते रहे तो प्रकृति अर्थात् शिवके इन अष्टरूपोंको विकृत (रुद्र)-रूप धारण करना ही होगा, जिससे विभिन्न घातक रोगोंकी उत्पत्ति अनिवार्य है।

दुस्तोयपानाद्विषमाशनाच्च दिवाशयाज्जागरणाच्च रात्रौ।
संरोधनान्मूत्रपुरीषयोश्च षड्भिः प्रकारैः प्रभवन्ति रोगाः॥

अर्थात् दूषित जलपान, विषम भोजन, दिनमें शयन, रात्रिमें जागरण, मूत्र और पुरीष (मल)-के रोकनेसे रोग उत्पन्न होते हैं। प्रथम दो कारणोंको छोड़कर शेष चार कारणोंसे जो रोग उत्पन्न होते हैं, उन्हें व्यक्ति अपने उस आचरणको छोड़कर रोगोंसे मुक्त हो सकता है और आरोग्य प्राप्त कर सकता है। प्रथम दो कारणोंमें दूषित जलको उबालकर शुद्ध किये गये जलपानसे और विषम भोजन त्याग कर सम भोजन करनेसे व्यक्ति नीरोग रह सकता है।

हमारे द्वारा की गयी अनुचित छेड़छाड़के कारण आज न तो जल ही शुद्ध रहा है और न अन्न। दूषित अन्नके खानेसे न जाने कितने विषैले तत्त्वोंको हम उदरस्थ कर शारीरिक विकृतियोंको प्राप्त कर रहे हैं।

हमारे पूर्वज प्रकृतिके इन अष्टरूपोंकी आराधना और उपासना करते थे। ऋग्वेद उपासना-सूक्तोंसे भरा पड़ा है, जिनमें उषःसूक्त, अग्निसूक्त, वरुणसूक्त, सूर्यसूक्त, हिरण्यगर्भसूक्त आदि पठनीय हैं। सूर्यके विषयमें तो सविता, पूषा, मित्र आदि सूक्तोंमें भी वर्णन प्राप्त होता है। वरुण जलके देवता हैं। वरुणसूक्तमें जलके विषयमें वर्णन मिलता है। इनके अतिरिक्त विष्णु, रुद्र, मरुत्, पर्जन्य आदिपर उपासनासूक्त मिलते हैं, इनमें वायुके विषयमें मरुत्सूक्त है। प्रकृति पूर्वजोंकी पूज्या थी, किंतु हमारे लिये भोग्या है। इसलिये हमारे समस्त कार्य जो विकास, प्रगति और उन्नतिके नामपर हो रहे हैं, वे सब प्रकृति-विरोधी हैं। प्रकृतिका विरोध विनाश और मरणको आमन्त्रित करना है।

अब भी समय है कि हम उन कार्योंसे विरत हों, जिनके करनेसे प्रकृति कलुषित और प्रदूषित हो रही है। जब प्रकृतिके अष्टरूप पूर्ववत् स्वच्छ, निर्मल और प्रसन्न होंगे तो फिर हमें कोई रोग नहीं होगा और हम नीरोग रहेंगे। अतः हम महाकवि कालिदासके शब्दोंमें प्रकृति (शिव)-के उन प्रत्यक्ष अष्टरूपों (मूर्तियों)-की स्तुति करते हैं, वे सबको रक्षा (आरोग्य) प्रदान करें—

प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।



स्वस्थ जीवनके लिये ऋतुचर्याका ज्ञान

(वैद्य श्रीअनसूयाप्रसादजी मैठानी, एम्०ए०, आयुर्वेदभास्कर वैद्याचार्य)

रोगकी चिकित्सा करनेकी अपेक्षा रोगको न होने देना ही अधिक श्रेष्ठ है और यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि चर्यात्रय अर्थात् ऋतुचर्या, दिनचर्या तथा रात्रिचर्याके सम्यक् परिपालनसे रोगका निश्चय ही प्रतिरोध होता है।

श्रेष्ठ पुरुष स्वास्थ्यको ही सदा चाहते हैं, अतः वैद्यको चाहिये कि मनुष्य जिस विधिके सेवनसे सदा स्वस्थ रहे उसी विधिका सेवन कराये, आयुर्वेदशास्त्रमें ऋतुचर्या, दिनचर्या तथा रात्रिचर्याकी जो विधि वर्णित की गयी है, उसका नियमपूर्वक आचरण करनेसे मनुष्य सदा स्वस्थ रह सकता है। ऋतुओंके लक्षणोंसे पूर्णरूपसे अवगत हो जानेके उपरान्त उनके अनुकूल आहार, विहारका सेवन करना चाहिये, अतः ऋतुचर्याके वर्णनसे पूर्व ऋतु-विभागका संक्षिप्त ज्ञान होना आवश्यक है।

प्रकृतिकृत शीतोष्णादि सम्पूर्ण कालको ऋषियोंने एक वर्षमें संवरण किया है, सूर्य एवं चन्द्रमाकी गति-विभेदसे वर्षके दो विभाग किये गये हैं, जिन्हें 'अयन' कहते हैं, वे अयन दो हैं—१-उत्तरायण और २-दक्षिणायन। उत्तरायणमें रात्रि छोटी तथा दिन बड़े होने एवं सूर्य-रश्मियोंके प्रखर होनेसे चराचरकी शक्तिका शोषण होता है, इसलिये इसे आदानकाल भी कहा गया है और दक्षिणायनमें दिन छोटे तथा रात्रि बड़ी होनेसे चन्द्रमाकी मरीचिकाएँ प्रबल होती हैं, जिनसे प्राणियोंको बल प्राप्त होकर पोषणका कार्य स्वाभाविक रूपसे स्वतः ही होता रहता है।

इन अयनोंमें प्रत्येकके तीन-तीन उपविभाग किये

गये हैं, जिन्हें 'ऋतु' कहते हैं, स्थूल रूपसे उत्तरायणमें—शिशिर, वसन्त तथा ग्रीष्म-ऋतुएँ और दक्षिणायनमें—वर्षा (प्रावृट् स्थानभेदसे), शरद् तथा हेमन्त-ऋतुएँ पड़ती हैं, इस भाँति पूरे वर्षमें छः ऋतुएँ होती हैं। आयुर्वेदशास्त्रमें दोषोंके संचय, प्रकोप तथा उपशमके लिये इन्हीं छः ऋतुओंको मानते हैं।

अब संक्षेपमें प्रत्येक ऋतुका काल, उसका सामान्य लक्षण तथा उस ऋतु-विशेषमें सेवनीय एवं त्याज्य पदार्थोंकी चर्चा करेंगे, इस क्रममें यह बतला देना आवश्यक होगा कि ऋतु-सन्धि-काल, प्रत्येक ऋतुके प्रथम तथा अन्तिम पक्षके दिनोंमें विगत-ऋतुके आहार-विहार, धीरे-धीरे त्यागकर आनेवाली ऋतुके आहार-विहार शनैः-शनैः प्रारम्भ कर देने चाहिये, क्योंकि इनमें आकस्मिक परिवर्तनसे भयंकर रोगोंकी उत्पत्तिकी आशंका रहती है, यथा—**'आसात्म्यजा हि रोगाः स्युः सहसा त्यागशीलनात्।'** दूसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि यद्यपि सभी ऋतुओंमें ऋतु-अनुकूल पृथक्-पृथक् रसोंके सेवनके लिये कहा गया है और ऋतुके अनुकूल उन रसोंका विशेष रूपसे सेवन करना भी चाहिये, फिर भी मनुष्यको चाहिये कि वह सदा सभी रसों (षड्रसों)-के सेवनका अभ्यास (अविरुद्ध भोजनके) बनाये रखे, किंतु जिस ऋतुमें जो रस-सेवनकी विधि कही गयी है, उसीके अनुकूल उन्हीं रसोंका अधिक सेवन करना चाहिये। यथा—

'नित्यं सर्वरसाभ्यासः स्वस्वाधिक्यमृतावृतौ'।

वसन्त-ऋतु (चैत्र-वैशाख)

वसन्त-ऋतुमें सभी दिशाएँ रमणीय एवं नाना प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित होती हैं, इस समय शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन मलयाचलसे प्रवाहित होता है, अपनी इस अनुपम सुषमा एवं मनोहरताके कारण ही यह 'ऋतुराज' कहलाता है।

शिशिर-ऋतुमें मधुर, स्निग्ध आहार अधिक सेवनसे और कालस्वभावसे श्लेष्मा अधिकतर संचित हो जाता है तथा वसन्त-ऋतुमें सूर्यकी रश्मियोंद्वारा तप्त होकर कफ जलस्वरूप होकर जठराग्निको नष्ट (मन्द) करके अनेक रोगोंकी उत्पत्ति करता है, अतः उसे शीघ्र जीतना चाहिये। यथा—

कफश्चितो हि शिशिरे वसन्तेऽर्कांशुतापितः।
हत्वाऽग्निं कुरुते रोगानतस्तं त्वरया जयेत्॥

(अ०हृ० सू० ऋतु० ३। १८)

इसके लिये कफ-निःसारक औषधियोंके द्वारा वमन तथा उर्ध्वांग शुद्ध करें, व्यायाम करना, उबटन लगाना, रूखे, कषैले, कटु, तिक्त, रस, ताम्बूल, कर्पूर, मधुके साथ हरीतकी चूर्ण सेवन करें, श्वेत वस्त्र धारण करें, प्रातः-सायं भ्रमण करें—**'वसन्ते भ्रमणे पथ्ये'** भ्रमणसे कफका ह्रास एवं रक्त-संचार तीव्र गतिसे होता है। सोंठका क्वाथ तथा विजयसार चन्दनादिसे बना जल पीयें, मधुमिश्रित जल तथा नागरमोथासे बना क्वाथ पीयें। यथा—

'शृंगबेराम्बु साराम्बु मध्वम्बु जलदाम्बु च।'

(अ०हृ० सू० ऋतु० ३। २३)

इस ऋतुमें मधुर, अम्ल, स्निग्ध तथा गरिष्ठ (देरसे पचनेवाले) पदार्थ, शीत द्रव्य, अरवी, कचालू, उरद, ओसमें निद्रा लेना और दधि वर्जित है। इसी प्रकार उल्लेखनीय है जहाँ तरुण दधि प्राणहर होता है, वहीं न तो भोजनके अन्तमें और न रात्रिमें दही खाना चाहिये, यथा—

'न नक्तं दधिभुञ्जीत दध्यन्तं न कदाचन 'तरुणो दधि... प्राणहराणि षट्'।

ग्रीष्म-ऋतु (ज्येष्ठ-आषाढ़)

ग्रीष्म-ऋतुमें सूर्यकी किरणें बहुत ही तीक्ष्ण होती हैं, अतः इनसे प्राणियोंका बल एवं जगत्की आर्द्रताका शोषण होता है, इसके परिणामस्वरूप कफ क्षीण हो जाता है और शरीरमें वायु संचित होकर वृद्धिको प्राप्त होता है, जिससे विविध प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं।

ग्रीष्म-ऋतुमें जौ, गेहूँ, शालिचावल, मटर, अरहर, कच्चा खीरा, तरबूजा, ककड़ी, पेठा, करेले, बथुआ, चौलाई, घीया, परवल, मधुररसयुक्त लघु, स्निग्ध, शीतल, सुपाच्य पदार्थोंका सेवन करना चाहिये, मिस्रीयुक्त दूध, खाँड़युक्त दही या मट्ठा, मिस्री, मोचरस, चोचमोच, शीतल शरबत आदि स्वास्थ्यप्रद है, शीतल जलसे धुला, केवड़े आदिसे सुगन्धित, खसकी टट्टियोंसे आच्छादित घर, सघन वृक्षोंकी

छाया, प्रातः शीतल जलसे स्नान तथा दिनमें निद्रा—इस ऋतुकी उग्रताको शान्त करते हैं, गुड़के साथ हरीतकीका सेवन करना चाहिये।

अधिक लवणयुक्त, कटु, अम्ल पदार्थ, अधिक व्यायाम, उष्णजलसे स्नान, उपवास, धूपमें पदयात्रा करना, अधिक परिश्रम, तिल-तेल, बैगन, उड़द, सरसों, राईका शाक, गरिष्ठ भोजन, भय, क्रोध, स्त्री-सहवास एवं उग्र वायु-सेवन स्वास्थ्यके लिये हानिप्रद है।

वर्षा-ऋतु (श्रावण-भाद्रपद)

वर्षा-ऋतुमें चारों ओर हरियाली एवं गगन मेघाच्छन्न रहता है, दूषित जल तथा वाष्पयुक्त वायुसे पाचन-प्रणालीपर बुरा प्रभाव पड़ता है, जिससे मन्दाग्नि हो जाती है, तुषारपूर्ण शीतल वायुसे तथा **'ग्रीष्मे संचीयते वायुः प्राविद् (वर्षा)-काले प्रकुप्यति'**-से शरीराभ्यन्तरीय वायु पृथ्वीकी दूषित वाष्पसे और जलोंके अम्लपाक होने तथा जल-वायुकी मलिनतासे पित्त तथा अग्निमान्द्य होने और पशुकीटादिके मल-मूत्रादिके संसर्गसे वर्षाका जल मलिन हो जानेसे कफ कुपित हो जाता है। इन दिनों वायु, पित्त तथा कफ आदिके पृथक्-पृथक् अथवा दो-दो या तीनों दोषोंके मिल जानेसे अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। अतः वर्षा-ऋतुमें अग्निकी भलीभाँति रक्षा करनी चाहिये। अग्निके शान्त हो जानेसे स्वास्थ्यपर बहुत ही घातक परिणाम होता है। अग्निके विकृत होनेपर पुरुष नाना प्रकारके रोगोंसे आक्रान्त होता है। इसलिये सुन्दर स्वास्थ्यके लिये जैसे त्रिस्थूणोंका सन्तुलन बनाये रखना आवश्यक है, उसी भाँति अग्निकी साम्यावस्था बनाये रखना भी अपरिहार्य है, **'समदोषः समाग्निश्च''''' स्वस्थ इत्यभिधीयते'**।

वर्षाकालमें अग्निवर्द्धक पदार्थोंका सेवन, वातनाशक तथा पाचक औषधियोंसे विरेचन लेना, मूँग आदिका जूस, पुराने यव, गेहूँ, शालिचावल, षड्रस, मस्तु (जल दहीका), काला नमक, पिप्पली, पिप्पलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ मिलाकर पीना चाहिये, गरम दुग्ध, करैला, तोरई, नीबू, अंजीर, खजूर, आम, खांड, छाछ, गुड़, परवल, सेंधा नमक मिली हरड़, कुएँ या वर्षाका जल अथवा उबला हुआ जल-सेवन करना चाहिये, अधिक वर्षाके दिनोंमें खट्टे, लवणयुक्त एवं स्निग्ध अन्नका प्रयोग करना चाहिये, शुष्कतामें मधुयुक्त सुपाच्य द्रव्य सेवन करें। सुगन्धित तेल आदि लगाकर स्नान करें, वस्त्रोंको इत्रादिसे सुगन्धित करके धारण करना चाहिये और उन्हें समय-समयपर धूपमें भी रखना चाहिये।

इस ऋतुमें नदीतटका वास, नदीका जल, जलयुक्त सत्तू, दिनमें निद्रा लेना, व्यायाम, अधिक परिश्रम, धूप, रूक्ष द्रव्योंका सेवन, स्त्री-सहवास आदि त्याज्य है। यथा—

उदमन्थं दिवास्वप्नमवश्यायं नदीजलम्॥
व्यायाममातपं चैव व्यवायं चात्र वर्जयेत्।

(च० सू० ६। ३५-३६)

शरद्-ऋतु (आश्विन-कार्तिक)

इस ऋतुमें सूर्यका वर्ण पीला और उष्ण होता है। आकाश निर्मल तथा श्वेत मेघोंसे युक्त होता है। तालाब कमलों एवं हंसोंसे युक्त होकर पृथ्वी—वरुण, सप्तपर्ण, जियापोता, कांस, विजयासारके वृक्षोंसे शोभायमान होती है, तड़ाग, सरिता आदिका जल स्वच्छ होता है, दिनमें सूर्यकी किरणोंसे तप्त एवं रातको चन्द्र-रश्मियोंसे शीत होकर, अगस्त्य ताराके उदयसे निर्विष हो जाता है जो कि न अभिष्यन्धी और न रूक्ष होकर अमृतके समान कहा गया है। यथा—

तप्त तप्तांशुकिरणैः शीतं शीतांशुरश्मिभिः।
समन्तादप्यहोरात्रमगस्त्योदयनिर्विषम् ॥
शुचि हंसोदकं नाम निर्मलं मलजिज्जलम्।
नाभिष्यन्धि न वा रूक्षं पानादिष्वमृतोपमम्॥

यह ऋतु स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, इसीलिये ऋषियोंने शतायुकी कामना करते हुए सौ शरद्-ऋतुओंके जीनेकी इच्छा व्यक्त की है। यथा— **'जीवेम शरदः शतम्'**।

बरसातमें वातविकारसे बचने-हेतु जब उष्ण खान-पान अधिक किया जाता है, तब पित्त संचित होता रहता है, वह इस ऋतुमें सूर्यकी किरणोंके तीक्ष्ण होनेसे तुरंत कुपित होकर शरीरमें पित्त-प्रकोपजन्य अनेक प्रकारकी व्याधियाँ उत्पन्न कर देता है। यथा— **'वर्षासु चीयते पित्ते शरत्काले प्रकुप्यति'** इसलिये इस ऋतुमें तिक्त द्रव्य, घृत-सेवन, विरेचन तथा रक्तमोक्षण हितकर है। मधुर तिक्त,

कषाय-रस, शीतल तथा लघु आहार, मीठा दूध, मिस्री, शक्कर, मिस्रीयुक्त हरड़ अथवा आमला-चूर्ण, यव, मूँग, शालिचावल, धनिया, सैंधव लवण, मुनक्का, परवल, कमलनाल, कमलगट्टा, नारियल, नदी अथवा तालाबका जल, कर्पूर, चन्दन आदि हितकर हैं।

शरद्-ऋतु प्रायः उष्ण पित्तकारक तथा मध्यम बल करती है, इसलिये इसमें पैत्तिक पदार्थ छोड़ देने चाहिये, पिप्पली, मिर्च, सौंफ, लहसुन, तक्र, बैगन, खिचड़ी, दही, सरसोंका तेल, मद्य आदि खट्टे, तीक्ष्ण, कटु, उष्ण पदार्थ, व्यायाम, गुड़, दिनका सोना, अति-मैथुन, रात्रि-जागरण, क्रोध करना, धूपमें चलना—इन आहार-विहारोंको छोड़ देना चाहिये, आश्विनमासकी धूप '**बालाऽर्क''''' सद्यः प्राणहरः स्मृतः**' कहा है।

हेमन्त-ऋतु (मार्गशीर्ष-पौष)

हेमन्त-ऋतुमें सूर्य तुषारसे प्रायः आच्छन्न रहता है, दिशाएँ धूल-धूसरित होती हैं तथा शीतल पवन चलता है। रात्रि अन्य ऋतुओंकी अपेक्षा दीर्घ होती हैं। इस ऋतुमें अधिक शीत वायुके कारण रुकी हुई अग्नि देहके अंदर उसके छिद्रोंसे प्रेरित होकर अपने स्थानमें संचित होकर प्रचण्ड हो जाती है, इसलिये हेमन्तमें वायु तथा अग्निनाशक विधिका उपयोग श्रेष्ठ माना गया है। यथा—'**शीतेऽनिलानलहरोः विधिरिष्यतेऽतः**'। यहाँ यह भी ध्यान देना जरूरी है कि क्षुधाके समय भोजन न मिलनेपर व्यक्तिके शरीरकी अग्नि उसके शरीरके अन्य धातुओंको पचाकर बलका नाश तो करती ही है, स्वयं भी बिना लकड़ीके अग्निकी तरह शान्त हो जाती है। यथा—

'आहारकाले सम्प्राप्ते यो न भुङ्क्ते बुभुक्षितः।
तस्य सीदति कायाग्निर्निरिन्धन इवानलः॥'

इस ऋतुमें मधुर, स्निग्ध, अम्ल तथा लवणयुक्त द्रव्य, गेहूँ, इक्षुरस तथा दुग्धसे बने पदार्थ सेवनीय हैं, सोंठके साथ हरड़का सेवन करना चाहिये।

प्रातःकालका भोजन, ताजा अन्न, गरम तथा नरम वस्त्र, विधिपूर्वक यथावश्यक धूप तथा अग्निका सेवन '**पृष्ठतोऽर्कं निषेवेत जठरेण हुताशनम्**' कठोर श्रम, तेल-मालिश तथा केशर, कस्तूरीका लेप हितकर है।

इस ऋतुमें कषैला, कटु, तिक्त, रूक्ष अन्नसे बना भोजन, हलका तथा शीतल भोजन, सत्तू, उड़द, केला, आलू, तोरई, एकाहार, निराहार, शीतल जलमें स्नान, नदीके जलका पान, दिनमें निद्रा, ठंडे स्थानोंमें विहार तथा खुले छप्परोंमें निवास त्याग दें।

शिशिर-ऋतु (माघ-फाल्गुन)

शिशिर-ऋतुके सभी लक्षण एवं चर्या प्रायः हेमन्त-ऋतुके समान ही होते हैं। इस ऋतुमें वायु तथा वर्षासे आकाश आच्छादित रहता है। शीत भी अपेक्षाकृत अधिक रहती है, कहीं-कहीं कोहरा अधिक पड़ता है। भूमि पके हुए घासोंसे पीतवर्ण हो जाती है। पवन तथा कफके विकार उत्पन्न होते हैं।

शिशिर-ऋतुमें शौच तथा स्नान आदि हेतु निर्वात स्थान एवं उष्ण जलका सेवन, समान पिप्पली मिलाकर हरीतकी सेवन करें, सुगन्धित चटनी, जिमीकन्द, पिट्ठीकी बनी पकौड़ी, बढ़िया भोजन, अदरक आदिका अचार, हींग, सैंधव लवण, घृतयुक्त स्निग्ध भोजन, खिचड़ी आदिका सेवन शिशिर-ऋतुमें हितकर होता है।

हेमन्त-ऋतुमें जो पदार्थ वर्ज्य बताये गये हैं, उन्हें इस ऋतुमें भी त्याज्य समझना चाहिये। यथा—'**सर्वं हिमोक्तं शिशिरे**'।

सबकी सेवा करे और सबपर आत्मवत् दृष्टि रखे

आचार्य वाग्भट बड़ी सुन्दर बात बताते हुए कहते हैं कि जिनके पास आजीविकाका कोई साधन नहीं है, ऐसे दीन-हीन, अनाथ, रोगसे ग्रस्त तथा दुःख-शोकसे पीडित प्राणियोंकी यथाशक्ति सेवा करे, सहायता करे, उनके दुःखोंको दूर करनेका प्रयत्न करे और कीट-पतिंगादि तथा चींटी आदि सभी प्राणियोंको अपने समान-ही देखे—

अवृत्तिव्याधिशोकार्तानानुवर्तेत शक्तितः। आत्मवत् सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकम्॥

स्वास्थ्य-रक्षाका प्रथम सूत्र—प्रातः-जागरण

(डॉ० श्रीमुरारीलालजी द्विवेदी, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

मानवका प्रकृतिके साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है। प्राकृतिक नियमोंके साथ समन्वय बनाये रखना मानवको आवश्यक है। स्वास्थ्यकी उत्तमताहेतु प्रातःकाल उठना सबसे पहला नियम है। विश्वमें जितने भी महापुरुष हुए हैं, वे सब प्रातःकाल ही उठते रहे हैं।

सूर्योदयसे पूर्व उठनेकी और करावलोकन, भूमिवन्दना*, मङ्गल-दर्शन†,मातृ-पितृ तथा गुरु-वन्दन और प्रातःस्मरणीय मङ्गल श्लोकोंके पाठ तथा शौच-स्नान आदि कार्योंसे निवृत्त होकर गायत्री आदिकी उपासना करनेकी भारतीय सनातन संस्कृतिकी सुदीर्घ परम्परा रही है। इन सभी कार्योंको नित्य-क्रियाओंका नाम दिया गया है। यदि सूर्योदयसे पूर्व उठकर ये आवश्यक कर्म न कर लिये गये तो फिर आगे उनके लिये अवकाश कहाँ? अतः प्रातः-जागरणसे अपनेको स्वस्थ रखते हुए सत्कर्मोंको अवश्य ही करना चाहिये।

सूर्योदयके पहले चार घड़ीतक (लगभग डेढ़ घंटा पूर्व) 'ब्राह्ममुहूर्त'का समय माना जाता है। उस समय पूर्व दिशामें क्षितिजमें थोड़ी-थोड़ी लालिमा दिखायी देती है तथा दो-चार नक्षत्र भी आकाशमें दिखायी देते रहते हैं, इस समयको अमृत-वेला भी कहा जाता है, यही जागरणका उचित समय है।

प्रकृतिके नियमानुसार पशु-पक्षी आदि संसारके समस्त प्राणी प्रातः ही जगकर इस अमृत-वेलाके वास्तविक आनन्दका अनुभव करते हैं। ऐसी दशामें यदि विश्वका सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानव आलस्यवश सोता हुआ प्रकृतिके इस अनमोल उपहारकी अवहेलना कर दे तो उसके लिये कितनी लज्जाकी बात है?

जो लोग सूर्योदयतक सोते रहते हैं, उनकी बुद्धि और इन्द्रियाँ मन्द पड़ जाती हैं। शरीरमें आलस्य भर जाता है तथा उनकी मुखकान्ति हीन हो जाती है। प्रातः विलम्बसे उठनेवाला मनुष्य सदा दरिद्री रहता है। देववाणीमें एक सूक्ति है—

कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं
बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं
विमुञ्चति श्रीर्यदि चक्रपाणिः॥

जिनके शरीर और वस्त्र मैले रहते हैं, दाँतोंपर मैल जमा रहता है, बहुत अधिक भोजन करते हैं, सदा कठोर वचन बोलते हैं तथा जो सूर्यके उदय और अस्तके समय सोते हैं, वे महादरिद्र होते हैं। यहाँतक कि चाहे चक्रपाणि अर्थात् लक्ष्मीपति विष्णु भगवान् ही क्यों न हों, परंतु उनको भी लक्ष्मी छोड़ देती हैं।

अतः सूर्योदयतक सोते रहनेका हानिकारक स्वभाव छोड़कर प्रातः-जागरणका अभ्यास करना चाहिये। यदि हम दृढ़ संकल्प करें तो ऐसा कौन-सा कार्य है जो पूरा न हो सके?

भगवान् मनु अपनी मानवसंहितामें लिखते हैं—

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च॥
(४।९२)

---

* शय्यासे उठकर पृथ्वीपर पैर रखनेसे पूर्व पृथ्वीमाताका अभिवादन करना चाहिये और उनपर पैर रखनेकी विवशताके लिये उनसे क्षमा माँगते हुए इस श्लोकका पाठ करना चाहिये—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

अर्थात् 'समुद्ररूपी वस्त्रोंको धारण करनेवाली, पर्वतरूपस्तनोंसे मण्डित भगवान् विष्णुकी पत्नी हे पृथ्वीदेवि! आप मेरे पादस्पर्शको क्षमा करें।'

† प्रातःकाल भूमिवन्दनाके अनन्तर गोरोचन, चन्दन, सुवर्ण, मृदंग, दर्पण तथा मणि आदि माङ्गलिक वस्तुओंका दर्शन कर गुरु, अग्नि और सूर्यादि देवोंको नमस्कार करना चाहिये—

रोचनं चन्दनं हेमं मृदङ्गं दर्पणं मणिम्। गुरुमग्निं रविं पश्येन्नमस्येत् प्रातरेव हि॥

अर्थात् ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर धर्म-अर्थका चिन्तन करे। प्रथम धर्मका चिन्तन करे यानी अपने मनमें ईश्वरका ध्यान करके यह निश्चय करे कि हमारे हाथसे दिनभर समस्त कार्य धर्मपूर्वक हों। अर्थके चिन्तनसे तात्पर्य यह है कि हम दिनभर उद्योग करके ईमानदारीके साथ धनोपार्जन करें, जिससे स्वयं सुखी रहें तथा परोपकार कर सकें। शरीरके कष्ट और उनके कारणोंका चिन्तन इसलिये करे कि जिससे स्वस्थ रहे, क्योंकि आरोग्यता ही सब धर्मोंका मूल है—

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।'

प्रातः उठते ही हाथोंके दर्शन शुभ माने गये हैं। 'आचारप्रदीप' में लिखा है—

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम्॥

अर्थात् हाथोंके अग्रभागमें लक्ष्मी, मध्यमें सरस्वती और मूलभागमें ब्रह्माजी निवास करते हैं, अतः प्रातः उठते ही हाथोंका दर्शन करे।

वास्तवमें प्रातःकाल प्रकृतिमें एक अलौकिक रमणीयता आ जाती है, उसका आनन्द हमें तभी प्राप्त हो सकता है, जब हम प्रकृतिके साथ समन्वय करें। इस प्रकार स्वास्थ्य-रक्षाका प्रथम सूत्र—प्रातः-जागरणको ध्यानमें रखकर हम नित्य सूर्योदयसे पूर्व ही उठनेका नियम बना लें और अपने जीवनके प्रत्येक क्षणका उपयोग अच्छे कार्योंमें ही करें।



निद्रा—स्वस्थ जीवनका आधार

(डॉ० श्रीबृजकुमारजी द्विवेदी एम०डी० (आयु०))

आयुर्वेदमें आरोग्यताको ही सुख कहा गया है। जब शरीरस्थ दोष (वात, पित्त और कफ) समभावमें रहते हैं तो शरीरस्थ अग्नियाँ समभावमें रहती हैं। जिससे धातुओंका निर्माण तथा पोषण भी सम्यक् रूपेण चलता रहता है और मल-निष्क्रमणकी क्रियाएँ भी यथावत् रूपसे होती रहती हैं। इसके परिणामस्वरूप इन्द्रियोंमें प्रसादत्व (यथोचित रूपसे अपना कार्य करनेमें समर्थता) एवं मनकी प्रसन्नता होती है, जिसे स्वस्थ कहा जाता है। यह सुखका उपलक्षण है।

आयुर्वेदमें तीन उपस्तम्भ बतलाये गये हैं—'त्रय उपस्तम्भा इति—आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति।' (च०सू० ११।३५)

जब इन तीनों उपस्तम्भोंका युक्तिपूर्वक सेवन किया जाता है तो स्वास्थ्यलाभ होता है। जबतक ये तीन उपस्तम्भ—आहार, निद्रा तथा ब्रह्मचर्य संस्कारित रहते हैं तबतक बल तथा वर्ण एवं उपचयद्वारा मनुष्य स्वस्थ रहता है—'एभिस्त्रिभिर्युक्तियुक्तैरुपस्तब्धमुपस्तम्भैः शरीरं बलवर्णोपचयोपचितमनुवर्तते यावदायुःसंस्कारात्।' (च०सू० ११।३५)

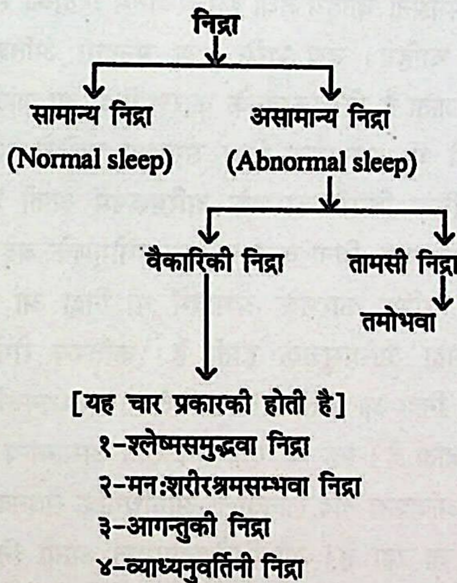
जब इन तीनों उपस्तम्भोंपर सूक्ष्म दृष्टिपात किया जाता है तो ध्यान इस तरफ आकर्षित होता है कि इन तीनोंमें आहारद्वारा शरीरका मुख्य रूपसे या प्रत्यक्षतः पोषण होता है तथा परिणामतः क्रमिक रूप (Systematic way)-में मन प्रभावित होता है। ब्रह्मचर्यके द्वारा मनमें निर्मलता और सौमनस्यता आती है तथा प्रतिलोम-क्रममें शरीरकी पुष्टि होती है। इन तीनों उपस्तम्भोंमें निद्राका स्थान अति महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि निद्राका सम्बन्ध शरीर तथा मन—इन दोनोंसे होता है—

यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः॥
(च० सू० २१।३५)

अर्थात् मन जब कार्य करते-करते थक जाता है और इन्द्रियाँ भी कार्य करनेसे थककर अपने-अपने विषयोंसे निवृत्त हो जाती हैं, तब मनुष्यको निद्रा आती है। इस प्रकार आयुर्वेदके अनुसार निद्रा वह अवस्था है, जिसमें मन और इन्द्रियाँ—ये दोनों अपने-अपने विषयोंसे मुक्त हो जाती हैं तथा शरीर विश्रामकी अवस्थामें रहता है अथवा मन और इन्द्रियोंके विषयमुक्त होनेके कारण शरीर चेष्टारहित होता है। इस निद्राको आचार्य सुश्रुतने वैष्णवी भी कहा है; क्योंकि जिस प्रकार विष्णु जगत्का धारण-पोषण करते हैं, उसी प्रकार यह निद्रा शरीरका धारण-पोषण करनेवाली होती है। यह निद्रा स्वभावतः सृष्टिके समस्त प्राणियोंको अपने वशमें करनेवाली होती है—'सा स्वभावत एव सर्वप्राणिनोऽभिस्पृशति।' (सु० शा० ४।३३)

निद्राकी उत्पत्ति तमसे होती है। प्राणियोंका जीवन-व्यापार यथोचितरूपमें चलता रहे, इसके लिये जीवनके घटकों—मन, इन्द्रिय तथा शरीरको विश्रामकी आवश्यकता होती है। विश्रामकी अवस्थाविशेषको निद्रा कहा जाता है। इस निद्राको रात्रिस्वभावप्रभवा कहा गया है; क्योंकि यह स्वभावतः रात्रिकालमें मनुष्यको अपने वशमें करती है।

आयुर्वेदमें इस रात्रिस्वभावप्रभवा निद्राके अतिरिक्त अन्य निद्राप्रकारोंका भी उल्लेख किया गया है, जो स्वाभाविक निद्रा न होकर अस्वाभाविक निद्रा होती है। अस्वाभाविक या असामान्य (Abnormal) निद्राप्रकारोंकी संख्या चरक तथा सुश्रुतने क्रमशः पाँच और दो बतलायी है। इस प्रकार आयुर्वेदके अनुसार निद्राको निम्न रूपमें प्रस्तुत किया जा सकता है—



आधुनिक भौतिक वातावरणमें (Materialistic environment) आयुर्वेदोक्त असामान्य निद्राओं (Abnormal sleep)-का सेवन सामान्य निद्रारूपमें किया जा रहा है, अतः इन निद्राओंका उल्लेख संक्षिप्त रूपमें जनसामान्यके ज्ञानार्थ आवश्यक प्रतीत होता है।

सामान्य निद्रा

आयुर्वेदमें रात्रिस्वभावप्रभवाको ही सामान्य निद्रा कहा गया है। अतः मात्र रात्रिकालमें आनेवाली स्वाभाविक निद्राको ही सामान्य निद्रा समझना चाहिये; क्योंकि आयुर्वेदमें इस तथ्यको स्पष्टरूपसे उद्घाटित किया गया है—'रात्रौ जागरणं रूक्षं स्निग्धं प्रस्वपनं दिवा' (च०सू० २१।५०)। अर्थात् रात्रिजागरण रूक्षता उत्पन्न करनेवाला है तथा दिनमें निद्रासेवनसे स्निग्धता बढ़ती है। अतः रात्रिकालमें स्वाभाविक रूपसे आनेवाली निद्राको ही सामान्य निद्रा समझना चाहिये।

इस प्रकारकी कतिपय विशिष्ट अवस्थाएँ भी होती हैं, जिनमें दिनमें सेवन की जानेवाली निद्राको भी सामान्य-निद्रा (Normal sleep) समझना चाहिये अथवा निम्न अवस्थाओंमें दिनमें भी निद्रा-सेवन किया जा सकता है—

१. जिस व्यक्तिका शरीर अति अध्ययन या अतिमात्रामें मानसिक कार्य करनेके कारण क्षीण हो गया हो।

२. जिसकी संशोधन-चिकित्सा हुई हो या जिसे वमन अथवा अतिसार हुआ हो या किसी प्रकारसे शरीरमें अप्-धातुका क्षय हुआ हो।

३. जो शारीरिक श्रम करता हो अथवा पैदल यात्रा करता हो।

४. जिसका भोजन यथोचित रूपमें पचा हो।

५. जो व्यक्ति उरःक्षत (फेफड़ेका क्षत), हिक्का, शूल (विभिन्न प्रकारकी वेदना), श्वास-रोगसे ग्रसित हो।

६. जो व्यक्ति ऊँचे स्थान या सवारी आदिसे गिर गया हो या जिसे किसी प्रकारसे चोट लग गयी हो।

७. जो पागल हो।

८. जो व्यक्ति इस प्रकारका कार्य करता हो, जिसमें रात्रिजागरण करना पड़ता हो।

९. जो व्यक्ति विभिन्न प्रकारके क्रोध, भय आदि मनोवेगोंसे युक्त हो।

—इनके अलावा वृद्ध-बालक आदिको भी दिवाशयनका निषेध नहीं है।

यदि उपर्युक्त अवस्थावाला व्यक्ति दिनमें निद्रा-सेवन करता है तो उसे भी सामान्य निद्रा (Normal sleep)-के अन्तर्गत रखा जाता है। इन अवस्थाप्राप्त व्यक्तियोंको दिवाशयन अवश्य करना चाहिये; क्योंकि जब वह व्यक्ति दिनमें निद्रा-सेवन करता है तो उसकी धातुएँ सम हो जाती हैं। शरीरमें बल अर्थात् व्याधि-क्षमत्वकी वृद्धि होती है एवं

क्षीण धातुवाले व्यक्तियोंके शरीरमें धातुओंकी पुष्टि होती है। अतः स्वास्थ्यकी कामना रखनेवाले व्यक्तिको उपर्युक्त अवस्था-विशेष होनेपर ही दिनमें निद्रा-सेवन करना चाहिये—

धातुसाम्यं तथा ह्येषां बलं चाप्युपजायते।
श्लेष्मा पुष्णाति चाङ्गानि स्थैर्यं भवति चायुषः॥

(च० सू० २१।४२)

इसके अतिरिक्त ग्रीष्म-ऋतुमें प्रत्येक व्यक्तिको दिनमें निद्रा-सेवन करना चाहिये; क्योंकि ग्रीष्म-ऋतुमें सूर्यकी प्रखर किरणें शरीरसे जलीयांशका शोषण करती हैं। परिणामतः शरीरमें रूक्षताके कारण वायुका संचय होने लगता है। जब मनुष्य दिनमें सोता है तो कफकी वृद्धि होती है, जिससे शरीरमें संचित वायुका शमन हो जाता है।

दिवानिद्रा-निषेध
(Contra Indications for day sleep)

निम्न अवस्थाप्राप्त व्यक्तियोंको दिनमें कदापि नहीं सोना चाहिये—

(क) मेदस्वी व्यक्ति—जो व्यक्ति अधिक वजनवाले या मोटे हों।

(ख) जो व्यक्ति नित्यप्रति अधिक दूध और घृतका सेवन करते हों।

(ग) जो व्यक्ति कफज प्रकृतिके हों।

(घ) जो कफज व्याधियोंसे ग्रसित हों।

(ङ) जो दूषी (जीर्ण) विषसे पीडित हों या अन्य विषसे पीडित हों।

(च) जो कण्ठगत रोगसे पीडित हों।

निद्राका काल—निद्राहेतु कतिपय विशिष्ट अवस्थाओंको छोड़कर सामान्य अवस्थामें रात्रिकाल ही उचित होता है। सामान्यतः एक वयस्क व्यक्तिको अहोरात्र (चौबीस घंटे)-के चतुर्थांश अर्थात् छः घंटे सोना चाहिये। निद्रा-सेवनहेतु रात्रिको (सूर्यास्तसे सूर्योदयतक) चार भागोंमें विभक्त करना चाहिये। इसमें प्रथम और अन्तिम चतुर्थांशमें सोना नहीं चाहिये। शेषरात्रिके आधे भाग अर्थात् दो मध्यवाले भागमें निद्राका सेवन करना चाहिये, जो लगभग छः घंटेका होता है। ग्रीष्म-ऋतुमें जितना समय अवशिष्ट हो उसे दिनमें सोकर पूरा करना चाहिये। बालकोंके लिये यह नियम नहीं है, उन्हें अत्यधिक कालतक निद्रा-सेवनकी आवश्यकता होती है। अतः उनके निद्राकालका निर्धारण उम्र तथा अवस्थाके अनुसार करना चाहिये।

असामान्य निद्रा (Abnormal sleep)

आयुर्वेदमें रातमें सेवन की जानेवाली रात्रिस्वभावप्रभवा निद्राके अतिरिक्त अन्य निद्राको असामान्य [वैकारिकी] निद्रा कहा गया है। यथा—श्लेष्मसमुद्भवा, मनःशरीरश्रमसम्भवा, आगन्तुकी, व्याध्यनुवर्तिनी तथा तमोभवा। तमोभवा या तामसिक निद्रा गम्भीर अवस्थाकी सूचक है, जो मृत्युकालमें आती है। जब मनुष्यमें संज्ञावाही स्रोत तमोगुणसे युक्त हो जाते हैं तो इस स्थितिमें कफादिसे भी स्रोत पूर्ण हो जाते हैं, जिससे मृत्युकारक निद्रा आती है। इसी प्रकार शरीरमें कफकी वृद्धि होनेसे जो निद्रा आती है, उसे असामान्य निद्रा समझना चाहिये तथा इस स्थितिमें निद्राका सेवन नहीं करना चाहिये। जब शरीर तथा मनद्वारा अतिशय कार्य किया जाता है तो थकावटके कारण निद्रा आ जाती है, इस निद्राको भी असामान्य निद्रा समझना चाहिये। आगन्तुकी निद्रा बिना किसी कारणके अरिष्टरूपमें आती है अर्थात् बिना थकावट, बिना कफ बढ़े या तमोगुणके बढ़े बिना ही किसी विशिष्ट कारणके अभावमें भी निद्रा आ जाती है। यह निद्रा अरिष्टसूचक होती है। कतिपय रोगोंसे ग्रस्त होनेपर निद्रा आ जाती है। इस निद्राको व्याध्यनुवर्तिनी निद्रा कहा जाता है। यह भी एक प्रकारकी असामान्य निद्रा है।

आजकल नींद लानेवाली औषधियोंके सेवनका प्रचलन बढ़ता जा रहा है। औषधिसेवनोपरान्त आयी निद्राको भी असामान्य निद्रा समझना चाहिये। इसके अनेक दुष्परिणाम भी सामने आते हैं। विभिन्न उपायोंद्वारा स्वाभाविक नींद लानेका प्रयत्न करना चाहिये, जिसका विस्तृत वर्णन आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें किया गया है। अतः इस सम्बन्धमें किसी विशेषज्ञ—अनुभवी वैद्यसे परामर्श करना चाहिये।

निद्राका महत्त्व

सैव युक्ता पुनर्युङ्क्ते निद्रा देहं सुखायुषा।
पुरुषं योगिनं सिद्ध्या सत्या बुद्धिरिवागता॥

(च० सू० २१।३८)

अर्थात् यदि निद्राका सेवन उचित समयपर किया

जाता है तो वह निद्रा शरीरको आयु और सुखसे युक्त करती है। जिस प्रकार सत्या बुद्धि जब योगी पुरुषके पास आ जाती है तो उसे सिद्धिसे युक्त करती है। इसी प्रकार आजीवन स्वास्थ्यहेतु निद्रा एक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण घटक है। यदि यथोचित कालमें स्वाभाविक निद्राका सेवन किया जाता है तो सुख अर्थात् स्वस्थ-दीर्घ जीवनकी प्राप्ति होती है। यहाँ सत्या बुद्धिसे निद्राकी तुलना करके यह स्पष्ट कर दिया गया है कि सम्यक् रूपसे सेवन की गयी निद्रासे केवल शारीरिक आरोग्यता ही नहीं, वरन् मानसिक आरोग्यताकी भी प्राप्ति होती है, जिससे मनुष्य द्वन्द्व-भावोंसे मुक्त होकर पूर्णरूपेण सदैव स्वस्थ रहता है।

सामान्य और असामान्य (अनुचित)-रूपमें सेवन की गयी निद्राका जीवनपर प्रभाव

आयुर्वेदका लक्ष्य सुखी तथा दीर्घ जीवनकी प्राप्ति है। जीवनमें सुख-दुःखका अनुभव निद्रापर भी निर्भर करता है। आचार्य चरकने स्वाभाविक और यथोचित रूपमें सेवन की गयी निद्रा एवं अस्वाभाविक तथा असम्यक्‌रूपेण सेवन की गयी निद्राका जीवनपर पड़नेवाले प्रभावोंका निम्न रूपमें वर्णन किया है—

निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्यं बलाबलम्।
वृषता क्लीवता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च॥
अकालेऽतिप्रसङ्गाच्च न च निद्रा निषेविता।
सुखायुषी पराकुर्यात् कालरात्रिरिवापरा॥

(च० सू० २१। ३६-३७)

इस प्रकार सम्यक् और असम्यक्‌रूपसे सेवन की गयी निद्राका प्रभाव जीवनपर निम्न रूपमें पड़ता है—

(क) सुख-दुःख—सम्यक् एवं यथोचित रूपमें सेवन की गयी निद्रा सुख प्रदान करती है। स्वाभाविक निद्रा मनुष्यके सुखी होनेकी सूचना भी देती है। इसके विपरीत अकाल या अनुचित रूपमें सेवन की हुई निद्रा अनेक प्रकारके दुःखोंका कारण बनती है। कतिपय व्यक्ति अत्यधिक निद्रा-सेवनको ही सुख मानते हैं, परंतु वास्तवमें वह दुःखोत्पादक होती है। इससे मनुष्य अनेक प्रकारके शारीरिक और मानसिक व्याधियोंसे ग्रस्त हो जाता है। यदि निद्रा यथोचित रूपमें नहीं आती है, जैसे—अल्पनिद्रा या अनिद्राकी स्थिति होती है तो इससे दुःखोत्पत्ति होती है। मानव दुःख तथा बेचैनीका अनुभव करता है। मनको विश्राम नहीं मिलनेके कारण दुःखानुभवके साथ-साथ वह अपना कार्य भी सम्यक्‌रूपेण नहीं कर पाता है।

(ख) पुष्टि-कार्श्य—पुष्टि-कार्श्यका तात्पर्य, यहाँ शरीरके पुष्ट होने तथा दुबला-पतला होनेसे है। जब उचितरूपेण निद्राका सेवन किया जाता है तो शरीरमें आहारादिका पाचन सम्यक्‌रूपसे होता है, जिससे शरीरमें रस-रक्तादिकी पुष्टि निर्बाधरूपसे निरन्तर होती रहती है परिणामतः शरीरके समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्ग पुष्ट होते हैं। असम्यक् या अनुचित रूपमें निद्रा-सेवन करनेसे शरीरस्थ धातुओंका क्षय होता है, जिससे मनुष्य कृशकाय हो जाता है अर्थात् दुबला-पतला हो जाता है। यदि अतिनिद्राका या दिनमें निद्राका सेवन किया जाता है तो शरीरस्थ मार्ग कफवृद्धिके कारण अवरुद्ध हो जाता है, जिससे धातुओंका पोषण यथोचित रूपमें नहीं हो पाता। कफवृद्धिके कारण अग्निमान्द्य हो जाता है, परिणामस्वरूप आमरूप कफकी निरन्तर वृद्धि होती रहती है। इन कारणोंसे जब धातुओंकी पुष्टि नहीं होती तो शरीरमें बलका क्षय हो जाता है। यदि रात्रिकालमें निद्राका सेवन नहीं किया जाता है तो शरीरमें रूक्षता बढ़ती है। रूक्ष शोषक होता है, अतः रूक्षता बढ़नेसे शरीरस्थ धातुओंका शोषण हो जाता है और मनुष्य कृशकाय भी हो जाता है।

(ग) बल-अबल—आयुर्वेदमें बलका दो अर्थ ग्रहण किया गया है—पहला शक्ति-ग्रहण तथा दूसरा विशिष्ट व्याधि-क्षमत्व एवं ओज-ग्रहण। सम्यक् निद्रा-सेवन करनेसे शरीर और मनमें रोगोंके प्रति लड़नेकी क्षमता बढ़ती है, जिससे मनुष्य स्वस्थ रहता है। यदि निद्राका सेवन सम्यक्‌-रूपसे नहीं किया जाता है तो शरीर तथा मनमें रोगोंके प्रति रक्षणशक्ति कम हो जाती है, परिणामतः मनुष्य सदैव शारीरिक और मानसिक व्याधियोंसे ग्रस्त रहता है।

(घ) वृषता-क्लीबता—वृषताका सामान्यतया अर्थ है वीर्यवृद्धि तथा पौरुषशक्तिकी वृद्धि और क्लीबताका अर्थ है नपुंसकता। सम्यक् निद्रा-सेवन करनेसे शरीरस्थ धातुओंकी पुष्टि होती है, जिससे शुक्रधातुकी वृद्धि होती है एवं

मनुष्यमें पौरुषशक्ति विद्यमान रहती है। सम्यक् निद्रासे मानसिक प्रसन्नता होती है, जिससे मनमें संकल्पशक्ति यथोचित रूपमें विद्यमान रहती है, जो कि सर्वोत्तम वृष्यभाव माना जाता है। इसके विपरीत अनुचित रूपमें या असम्यक्रूपेण सेवन की गयी निद्रासे धातुएँ क्षीण होती हैं, जिससे शुक्रधातुकी पुष्टि नहीं हो पाती। परिणाम यह होता है कि व्यक्तिमें शुक्र और ओजका क्षय होता है, जिससे दौर्मनस्यता होती है। दौर्मनस्यकी स्थितिको आचार्य चरकने सर्वाधिक क्लीबकारक कहा है।

(च) ज्ञान-अज्ञान—ज्ञानाज्ञान भी निद्रापर निर्भर करता है। विषय, इन्द्रिय, मन और आत्मा—इन चारोंके संयोगसे ज्ञान होता है। जब इन्द्रियाँ तथा मन—ये दोनों कार्य करते-करते थक जाते हैं तो निद्रा आती है। विश्रामके बाद वे पुनः अपने-अपने विषयोंको ग्रहण करनेमें समर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार सम्यक्रूपमें निद्रा-सेवन करनेसे ज्ञान-ग्रहणकी प्रक्रिया निर्बाधरूपमें निरन्तर चलती रहती है, परंतु जब सम्यक्रूपेण निद्रा-सेवन नहीं किया जाता है तो मन और इन्द्रियाँ—दोनों ज्ञान ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं होते। यदि अतिमात्रामें या दिवाशयन किया जाता है तो कफसे स्रोत पूर्ण हो जाता है, जिससे विषयका सम्यक् ज्ञान नहीं हो पाता। इसी प्रकार अल्पनिद्रा या अनिद्राकी स्थितिमें भी इन्द्रियादिको विश्राम नहीं मिल पाता। अतः ज्ञानग्रहण-प्रक्रिया सम्यक्रूपसे नहीं हो पाती है। यदि अनुचित रूपसे या अकाल निद्राका सेवन किया जाता है तो ऐसी निद्रा कालरात्रिकी तरह सुख तथा आयुका नाश कर देती है।

अनिद्राकी स्थितिमें कतिपय आयुर्वेदोक्त चिकित्सा-निर्देश

आजकल अल्पनिद्रा या अनिद्रा एक जटिल समस्या बन गयी है तथा जनसामान्य अंधाधुंध नींद लानेवाली औषधियोंका सेवन करता जा रहा है। भारतवर्षमें भी नींद लानेवाली औषधियोंकी खपत बढ़ती जा रही है, जो कि एक भयावह स्थितिकी सूचना देती है। अतः अनिद्राकी स्थितिमें आयुर्वेदोक्त निम्न निर्देशोंका लाभ उठाया जा सकता है—

(क) अभ्यङ्ग—शरीरपर आयुर्वेदिक औषधीय तेलकी या सामान्य तेलकी मालिश करनेसे वायुका शमन होता है, जिससे स्वाभाविक नींद आती है।

(ख) उत्सादन—शरीरपर विभिन्न औषधियोंका उबटन लगाना चाहिये।

(ग) स्नान—ऋतुके अनुसार जैसे—ग्रीष्म-ऋतुमें शीतल जलसे तथा शीत-ऋतुमें उष्ण जलसे स्नान करनेपर भी नींद आती है।

(घ) नींद लानेवाले आहार—चावलका दहीके साथ सेवन करने तथा दूध, घी आदिका सेवन करनेसे अच्छी नींद आती है।

(ङ) मनोऽनुकूल विभिन्न प्रकारके सुगन्धित प्रसाधनोंका सेवन करने तथा मनके अनुकूल शब्दोंका श्रवण करनेसे नींद आती है।

(च) संवाहन—शरीरको धीरे-धीरे दबानेसे स्वाभाविक नींद आती है।

(छ) नेत्रतर्पणसे नींद आती है।

(ज) सिर तथा मुखपर चन्दनादि सुगन्धित द्रव्योंका लेप करने (अश्वगन्धादि चूर्ण, ब्राह्मी आदि निरापद औषधियोंका सेवन इत्यादि)-से नींद आती है।

(झ) सुन्दर, स्वच्छ, पवित्र एवं आध्यात्मिक स्थल जहाँ शान्ति बनी रहती हो, ऐसे स्थानपर पवित्र आसनपर शयन करनेसे शीघ्र ही सुखपूर्वक नींद आती है। शयनसे पूर्व यथासम्भव भगवत्स्मरण करना भूलें नहीं। अच्छे विचारों, अच्छे संकल्पोंके साथ शयन कीजिये, रात्रि सुखकर होगी, प्रभात भी स्फूर्तिमय और चैतन्यतासे परिपूर्ण रहेगा।



सुखका मूल—धर्माचरण

आचार्य वाग्भट बताते हैं कि संसारका कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है, जो दुःख चाहता हो, सभी सुख चाहते हैं और उनकी चेष्टा भी सुख-प्राप्तिके निमित्त ही होती है, पर वह सुख प्राप्त होता है—धर्माचरणसे, सदाचारके अनुपालनसे। अतः कल्याणकामीको चाहिये कि वह सतत धर्माचरणमें तत्पर रहे—

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः। सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत्॥



स्वास्थ्यसूत्र

(संकलन—श्रीराजकुमारजी माखरिया)

१. नित्यप्रति सूर्योदयसे पूर्व सोकर उठें। रात्रिमें अधिक देरतक जागें नहीं।

२. प्रतिदिन नियमित रूपसे व्यायाम करें। तैरनेसे अच्छा व्यायाम हो जाता है। सप्ताहमें कम-से-कम एक बार पूरे शरीरकी मालिश करें।

३. सुबह-शाम टहलना लाभदायक है। नियमित रूपसे टहलनेसे सम्पूर्ण शरीरकी मांसपेशियाँ सक्रिय हो जाती हैं, रक्तसंचार बढ़ता है, शरीरमें चुस्ती-फुर्ती आती है, धमनियोंमें रक्तके थक्के नहीं बनते। हृदयरोग, मधुमेह और ब्लडप्रेशरमें लाभ पहुँचता है।

४. धूप, ताजी हवा, साफ-स्वच्छ पानी और सादा-सात्त्विक भोजन स्वस्थ रहनेके लिये जरूरी है।

५. नित्य योगासन-प्राणायाम करनेसे रोग नहीं होते और दीर्घायुष्यकी प्राप्ति होती है।

६. स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ मन निवास करता है, इसलिये शरीरको स्वस्थ रखें। सदाचारी, नीरोगी व्यक्ति सदा सुखी रहता है।

७. तेज रोशनी आँखोंको नुकसान पहुँचाती है।

८. स्नान करते समय पहले सिरपर जल डालना चाहिये, उसके बाद अन्य अंगोंपर। जल न तो अति शीतल हो और न बहुत गर्म। स्नानके बाद किसी मोटे तौलियेसे अच्छी तरह रगड़कर शरीर पोंछना चाहिये।

९. स्वादके लिये नहीं, स्वस्थ रहनेके लिये भोजन करना चाहिये।

१०. भोजन न करनेसे तथा अधिक भोजन करनेसे पाचकाग्नि दीप्त नहीं होती। भोजनके अयोग, हीनयोग, मिथ्यायोग और अतियोगसे भी पाचकाग्नि दीप्त नहीं होती है।

११. पानी या दूध तेजीसे न पियें। इन्हें धीरे-धीरे पियें।

१२. भोजनके बाद दाँतोंको अच्छी तरह साफ करें, अन्यथा अन्नकणोंके लगे रहनेसे उनमें सड़न पैदा होगी।

१३. हलका और जल्दी पचे, ऐसा ही भोजन करना चाहिये। सड़ी-गली या बासी चीजें खानेसे रोग होता है। खूब गरम-गरम खानेसे दाँत तथा पाचन-शक्ति दोनोंकी हानि होती है। जरूरतसे अधिक खानेसे अजीर्ण होता है और यही अनेक रोगोंकी जड़ है।

१४. प्रतिदिन चार-पाँच तुलसीकी पत्तियाँ खानेसे ज्वर आदि रोग नहीं होते।

१५. भोजनके पश्चात् दिनमें थोड़ा विश्राम तथा रातमें टहलना अच्छा रहता है।

१६. हमेशा शान्त और प्रसन्न रहें। कम बोलनेकी आदत डालें। जितना जरूरी हो उतना ही बोलें।

१७. चिन्तासे हानि होती है, लेकिन तत्त्वके चिन्तन-मननसे बुद्धिका विकास होता है।

१८. प्रतिदिन आँखोंमें अञ्जन लगानेसे आँखोंकी रोशनी बढ़ती है।

१९. रातमें एक तोला त्रिफलाको एक पाव ठंडे पानीमें भिगो दें, सुबह छानकर उससे आँखें धोयें और बचे हुए जलको पी जायँ।

२०. नित्य मुख धोनेके समय ताजे ठंडे पानीसे आँखोंमें छींटे लगायें। इससे आँखें स्वस्थ रहती हैं।

२१. हफ्ते-दस दिनके अन्तरपर कानोंमें तेलकी कुछ बूँदें डालनी चाहिये।

२२. बिस्तरके गद्दे-तकिये, चादर आदिको समय-समयपर धूपमें डालना चाहिये।

२३. सोनेके स्थानको साफ-सुथरा रखें। नींद आनेपर ही सोना चाहिये। बिस्तरपर पड़े-पड़े नींदकी राह देखना रोगको आमन्त्रित करना है। दिनमें सोनेकी आदत न डालें।

२४. मच्छरोंको दूर करनेका उपाय करें। वे रोगोंको फैलानेमें सहायक होते हैं।

२५. अगरबत्ती, कपूर अथवा चंदनका धुआँ घरमें हर रोज कुछ क्षणोंके लिये करें। इससे घरका वातावरण पवित्र होता है।

२६. श्वास सदा नाकसे और सहज ढंगसे लें। मुँहसे श्वास न लें, इससे आयु कम होती है।

२७. उत्तम विचारोंसे मानसिक सुख तथा स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

२८. अच्छा साहित्य पढ़ें। अश्लील एवं उत्तेजक

साहित्य पढ़नेसे बुद्धि भ्रष्ट होती है। दूसरोंके गुणोंको अपनायें।

२९. सुबह उठते ही आधा सेरसे एक सेरतक ठंडा पानी पीना चाहिये। यदि पानी ताँबेके बरतनमें रखा हुआ हो तो अधिक लाभप्रद होगा।

३०. कपड़छान किये नमकमें कड़ुआ तेल मिलाकर दाँत और मसूड़ोंको रगड़कर साफ करना चाहिये। इससे दाँत मजबूत होते हैं और पायरियासे भी मुक्ति मिल सकती है।

३१. धूपका सेवन अवश्य करना चाहिये। इससे शरीरको पोषकतत्त्वकी प्राप्ति होती है।

३२. मैदेकी बनी हुई और तली हुई चीजोंसे परहेज करना चाहिये।

३३. हर समय माथा और पेट ठंडा तथा पैर गरम रखना चाहिये।

३४. सप्ताहमें केवल नीबू-पानी पीकर एक दिनका उपवास करें। इससे पाचनशक्ति सशक्त होगी और स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा। यदि पूरा उपवास न कर सकें तो फल खाकर या फलका रस पीकर उपवास करें।

३५. पचाससे अधिक उम्र होनेपर दिनमें एक ही बार अन्न खायें। बाकी समय दूध और फलपर रहें।

३६. भोजनमें मौसमी फलोंका उपयोग अवश्य करें।

३७. भोजन करते समय और सोते समय किसी प्रकारकी चिन्ता, क्रोध या शोक न करें।

३८. सोनेसे पहले पैरोंको धोकर पोंछ लेने, कोई अच्छी स्वास्थ्यसम्बन्धी पुस्तक पढ़ने और अपने इष्टदेवको स्मरण करते हुए सोनेसे अच्छी नींद आती है।

३९. रात्रिका भोजन सोनेसे तीन घंटे पहले करना चाहिये। भोजनके एक घण्टा बाद फल या दूध लें।

४०. सोते समय मुँह ढककर नहीं सोयें। खिड़कियाँ खोलकर सोयें। सोनेका बिस्तर बहुत मुलायम न हो।

४१. तेल-मालिशके बाद स्नान करना आवश्यक है। तेलसे त्वचाके रोमकूप मैलसे भर जाते हैं, जो लाभके बदले हानि पहुँचाते हैं। यदि स्नान न करनेकी कोई बाध्यता हो तो गुनगुने पानीमें तौलिया भिगोकर अच्छी तरह शरीर पोंछ लें।

४२. सुबह-सुबह हरी दूबपर नंगे पाँव टहलना भी काफी लाभप्रद है। पैरपर दूबके दबावसे तथा पृथ्वीके सम्पर्कसे कई रोगोंकी चिकित्सा स्वतः हो जाती है।

४३. न तो इतना व्यायाम करना चाहिये और न तो इतनी देर टहलना चाहिये कि काफी थकावट आ जाय। टहलने और व्यायामके लिये सूर्योदयका समय ही सबसे उत्तम है।

४४. भोजनसे पहले हाथ-पैर पानीसे धोकर कुल्ला-गरारा करना स्वास्थ्यप्रद होता है।

४५. भोजनके प्रारम्भमें और अन्तमें अधिक मात्रामें जल न पियें। बीचमें दो-तीन घूँट पानी पी लेना चाहिये।

४६. गरम दूध तथा जल पीकर तुरंत ठंडा पानी पीनेसे दाँत कमजोर हो जाते हैं।

४७. शयन करते समय सिर उत्तर या पश्चिममें रखकर नहीं सोना चाहिये। धूपमें सोना हो तो सिर सूर्यकी ओर करके सोयें और धूपमें बैठना हो तो ऐसे बैठें कि पीठपर धूप पड़े।

४८. कपड़ा, बिस्तर, कंघी, ब्रश, तौलिया, जूता-चप्पल आदि वस्तुएँ परिवारके हर व्यक्तिकी अलग-अलग होनी चाहिये। दूसरेकी वस्तु उपयोगमें न लायें।

४९. दिन और रातमें कुल मिलाकर कम-से-कम तीन लीटर पानी पीना चाहिये। इससे शरीरकी अशुद्धि मूत्रके द्वारा बाहर निकल जाती है तथा रक्तचाप आदिपर नियन्त्रण रहता है।

५०. प्रौढावस्था शुरू होते ही चावल, नमक, घी, तेल, आलू और तली-भुनी चीजें खाना कम कर देना चाहिये।

५१. केला, दूध, दही और मट्ठा एक साथ नहीं खाना चाहिये।

५२. कटहलके बाद दही और मट्ठा एक साथ नहीं खाना चाहिये।

५३. शहदके साथ उष्णवीर्य पदार्थोंका सेवन न करें।

५४. दूधके साथ इन वस्तुओंका प्रयोग हानिकारक होता है—नमक, खट्टा फल, दही, तेल, मूली और तोरई।

५५. दूधके साथ इन पदार्थोंका सेवन किया जा सकता है—आँवला, मिस्री, चीनी, परवल, अदरक, सेंधा नमक।

५६. दहीके साथ किसी भी प्रकारका उष्णवीर्य पदार्थ—कटहल, दूध, तेल, केला आदि खानेसे अनेक

रोग उत्पन्न होते हैं। रातको दही खाना निषिद्ध है। शरद् और ग्रीष्म-ऋतुमें दही खानेसे पित्तका प्रकोप होता है। रक्त, पित्त और कफसम्बन्धी रोगोंमें भी दहीका सेवन नहीं करना चाहिये।

५७. दूध और खीरके साथ खिचड़ी नहीं खानी चाहिये।

५८. काँसे और पीतलके बर्तनमें घी रखनेसे विषतुल्य हो जाता है।

५९. शहद और घी समान मात्रामें सेवन करना अत्यन्त हानिकारक होता है।

६०. पढ़ना-लिखना आदि आँखोंके द्वारा होनेवाला कार्य लगातार काफी देरतक न करें। बीच-बीचमें नेत्र बंद करके उनपर उँगलियाँ फेरें और दूरकी किसी वस्तुपर नजर जमायें।

६१. गर्मीमें धूपसे आकर तत्काल स्नान न करें और न तो हाथ-पैर या मुँह ही धोयें। थोड़ा विश्राम करके, पसीना सूख जानेपर जब शरीरका तापमान सामान्य हो जाय, तभी स्नान करें।

६२. देर राततक जागना या सुबह देरतक सोते रहना आँखों और स्वास्थ्यके लिये हितकर नहीं है।

६३. अधिक वसायुक्त आहार, धूम्रपान एवं मांसाहारी भोजन हृदयके लिये नुकसानदेह होते हैं। ये रक्तमें कोलेस्ट्रॉल बढ़ाते हैं।

६४. नियमित व्यायामसे शरीरकी क्षमता बढ़ती है। शरीरमें हानिकारक तत्त्वोंकी मात्रा घटती है। नियमित योग एवं व्यायाम, कम वसायुक्त भोजन तथा नियमित दिनचर्यासे अनेक रोग स्वत: समाप्त हो जाते हैं।

६५. तम्बाकू, शराब, चरस, अफीम, गाँजा आदि जहरसे भी खतरनाक हैं। नशीले पदार्थोंके सेवनसे धन और स्वास्थ्य दोनोंसे हाथ धोना पड़ता है।

६६. नियमित समयपर प्रात: जागकर शौच जानेवाला, समयपर भोजन करने और सोनेवाला व्यक्ति स्वस्थ, सम्पन्न और बुद्धिमान् होता है।

६७. भोजन करनेके बाद लघुशंका अवश्य करनी चाहिये। इससे गुर्दे स्वस्थ रहते हैं।

६८. सही मुद्रामें चलने-बैठनेका अभ्यास करना चाहिये। चलते समय पैरको घिसटते हुए, ठोड़ीको आगे निकालकर या झटका देकर कदम नहीं रखने चाहिये। बैठते समय पीठ सीधी रखकर बैठें।

६९. धूप, वर्षा और शीतकी अतिसे शरीरको बचाना चाहिये। इन तीनोंके अति सेवनसे आयु कम हो जाती है।

७०. अत्यधिक भीड़-भाड़ तथा सीलनयुक्त स्थान स्वास्थ्यके लिये ठीक नहीं होता।

७१. प्रगाढ़ निद्रामें सोये व्यक्तिको नहीं जगाना चाहिये।

७२. सुबह उठते ही यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि आज दिनभर न तो किसीकी निन्दा करूँगा और न ही क्रोध करके किसीको भला-बुरा कहूँगा।



आरोग्य-साधन

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम०ए०, पी-एच० डी०)

हिंदू-धर्मकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें मनुष्यके सर्वाङ्गीण (शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक) विकासका लक्ष्य रखा गया है। हमारे धर्म-शास्त्रोंमें नीरोग शरीर तथा स्वास्थ्य-रक्षाद्वारा पूर्ण आयु (सौ वर्षकी दीर्घायु)-की प्राप्तिके विभिन्न उपायोंपर गम्भीर विचार किया गया है।

धर्मका स्वास्थ्य और आरोग्यसे गहरा सम्बन्ध है। स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ मन (जो पवित्र विचारों, शुभ संकल्पोंका आधार है)-का निवास होता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका प्रमुख साधन मनुष्य-शरीर ही है—*'साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।'* (रा०च०मा० ७।४३।८)

रोगरहित शरीर धर्मका आधार है। दुर्बल स्वास्थ्यवालोंकी इन्द्रियाँ भी अपेक्षाकृत अधिक चञ्चल देखी जाती हैं; अत: शरीर-शुद्धिपर हमें विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

शरीर पूर्ण स्वस्थ, नीरोग और हलका रहना चाहिये। इससे चित्त प्रसन्न रहता है, चिन्तन-शक्ति बढ़ती है तथा मन, बुद्धि और प्राण सात्त्विक रहते हैं। नीरोग और स्वस्थ

साधक दैवी सम्पत्तिका विशेष अर्जन कर सकता है। विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करनेवाले अधिकतर रोगी पाये जाते हैं तथा प्रायः आसुरी सम्पत्तिके निवास-स्थान बने रहते हैं। रोगोंके कारण मनमें भी विकार उत्पन्न होते हैं।

धर्म-प्राप्तिके निमित्त नियमपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए पूर्ण आयु (शतायु) प्राप्त करना मनुष्यमात्रका धर्म है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।

(ईशावास्योपनिषद् २)

'संसारमें मनुष्य शुभ (शास्त्रोक्त) कर्म करता हुआ ही (आलसी बनकर नहीं) सौ वर्षोंतक नीरोग जीनेकी इच्छा करे।' उत्तम स्वास्थ्य और आरोग्यके लिये हमें सक्रिय जीवन बिताना चाहिये।

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः। अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते॥ एतद्वै तत्॥ (कठ० २।२।१)

उस नित्य विज्ञानस्वरूप अजन्मा (आत्मा)-का (शरीररूप) पुर ग्यारह दरवाजोंवाला है। उस (आत्मा)-का ध्यान करनेपर मनुष्य शोक नहीं करता और वह (इस शरीरके रहते ही) मुक्त हो जाता है—विदेह हो जाता है। निश्चय ही यही वह ब्रह्म है।

जो साधक इस मनुष्य-शरीरको इस प्रकार ब्रह्मपुरके रूपमें देख (स्वास्थ्यके नियमोंका पालन)-कर शुद्ध, नीरोग और पवित्र रखता है, क्षुद्र वासनाओं, विषय-विकारोंके वशीभूत न होकर शरीर एवं मनकी भलीभाँति शुद्धि कर लेता है, वह सब प्रकारके सांसारिक शोकसे विमुक्त हो शरीरमें निवास करता हुआ ही इसके सब बन्धनोंसे छूट जाता है—जीवन्मुक्त हो जाता है।

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः······'

(मुण्डक० ३।२।४)

अर्थात् जो मनुष्य बलहीन (उत्साहहीन) होता है, शारीरिक और मानसिक अस्वास्थ्यके कारण वह प्रायः साधनके मार्गपर भलीभाँति अग्रसर नहीं हो पाता, वह इस आत्माको—समीप-से-समीप, अपने भीतर विराजमान आत्माको पानेमें निराश हुआ रहता है।

संयम—दीर्घ जीवनकी कुंजी

धर्ममें सर्वप्रथम संयमपर विशेष बल दिया गया है। इसलिये हमें चाहिये कि हम अशुभ पदार्थों, अभक्ष्य भोजन एवं दुष्ट विचारोंसे बचें, इन्द्रियोंको वशमें रखें, अतिसे बचें, खान-पान, आहार-विहारके आधिक्यसे बचें और आत्म-संयमद्वारा स्वास्थ्य एवं आरोग्यके मार्गपर बढ़ते रहें।

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ (यजुर्वेद ३६।२४)

हम सौ वर्षोंतक देखते रहें, सौ वर्षोंतक जीते रहें, सौ वर्षोंतक सुनते रहें, सौ वर्षोंतक हममें बोलनेकी शक्ति रहे तथा सौ वर्षोंतक हम कभी दीन-दशाको न प्राप्त हों। इतना ही नहीं, सौ वर्षोंसे अधिक कालतक भी हम देखें, जीवें, सुनें, बोलें एवं कभी दीन न हों।

संयमके साथ ब्रह्मचर्य-पालनपर विशेष जोर दिया गया है। ब्रह्मचर्यद्वारा शारीरिक शक्तियों, यौवन और आरोग्यकी सुरक्षा होती है। कहा गया है—

ब्रह्मचारी मिताहारः सर्वभूतहिते रतः।
गायत्र्या लक्षजप्येन सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(संवर्तस्मृति २१६)

'ब्रह्मचर्य-पालन, अल्प भोजन, सब प्राणियोंके हितमें तत्पर तथा गायत्रीका एक लाख जप करनेवाला धर्मका प्रेमी सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

वीर्य नष्ट होनेसे आरोग्य, तेजस्विता, बल और साहस आदिका ह्रास होने लगता है। ब्रह्मचर्यकी सुरक्षाके लिये धर्म-शास्त्रोंने आठ प्रकारके मैथुनसे अत्यन्त सावधान रहनेका संकेत किया है—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्॥
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः॥

(दक्षस्मृति ७।३१-३२)

मनीषी पुरुषोंने मैथुनके ये आठ अङ्ग बतलाये हैं—स्त्रीका स्मरण करना, स्त्रीके अङ्ग-प्रत्यङ्गों एवं कार्यकलापोंका वर्णन करना, स्त्रियोंके साथ हास-परिहासयुक्त क्रीडा करना, लुक-छिपकर अथवा प्रत्यक्ष रूपमें स्त्रियोंकी ओर देखना, एकान्तमें स्त्रियोंके साथ बातचीत करना, स्त्रियोंके प्रति आसक्ति रखते हुए कामक्रीडाकी इच्छा रखना, अप्राप्य स्त्रीको पानेके लिये प्रयत्न करना और प्रत्यक्ष समागममें निरत रहना।

अच्छे स्वास्थ्य, आरोग्य, दीर्घ जीवन, धर्म आदिको प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवालोंको इन आठों प्रकारके मैथुनोंसे बचना चाहिये। ये स्वास्थ्यके लिये विष-तुल्य हैं। इनमेंसे एक भी स्वास्थ्य और सौन्दर्यको चौपट करनेमें पर्याप्त है। मनको वासनासे दूर रखकर वीर्यकी रक्षा करना मनुष्यका परम कर्तव्य है। अतः रोगरहित दीर्घ जीवन तथा आध्यात्मिक अभ्युदयके लिये हमें ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये।

व्यायामका महत्त्व और आवश्यकता

धर्म-शास्त्रोंमें व्यायामको अत्यावश्यक बतलाया गया है। साधु-संन्यासी, ऋषि, साधक ही नहीं, प्रत्युत मनुष्यमात्रके लिये व्यायाम करना आवश्यक है। हमें नियमित व्यायामद्वारा रक्तशोषण करनेवाले सभी रोगोंके कीटाणुओं और बुरे विचारोंको मनसे सदा दूर रखने तथा ब्रह्मचर्य-पालनके द्वारा अपनी शारीरिक शक्तियोंको दीर्घकालतक अपने शरीरमें बनाये रखनेकी भरपूर चेष्टा करनी चाहिये।

हिंदू-धर्ममें योगका अत्यधिक महत्त्व है। योगासन योगविद्याके अङ्ग हैं। योगासन सभी व्यायाम-पद्धतियोंमें उपयोगी सिद्ध हुए हैं। अन्य व्यायामोंसे शरीरके कुछ ही भाग विकसित होते हैं, किंतु विभिन्न योगासन करनेपर शरीरका सर्वाङ्गपूर्ण व्यायाम हो जाता है। नियमित रूपसे योगासन करनेसे मानव-शरीर पुष्ट और सुन्दर बनता है, शक्ति और स्फूर्ति आती है तथा शरीरमें क्रियाशीलता बनी रहती है। योगासन मनुष्यके बाहरी और आन्तरिक स्वास्थ्यकी वृद्धि और सुरक्षामें हेतु हैं। इनसे चञ्चल मनोवृत्तियोंका निरोध होता है।

धर्म-शास्त्रोंने टहलना सबके लिये, विशेषतः वृद्धोंके लिये उपयोगी व्यायाम बतलाया है। याद रहे, प्रातःकालीन प्राणवायु सूर्योदयके पूर्वतक निर्दोष बनी रहती है। अतः धर्ममें रुचि रखनेवालोंको प्रातःकाल जल्दी उठकर, स्नान करके टहलने जाना चाहिये—प्राणवायुका सेवन करना चाहिये। इससे स्वास्थ्य और आरोग्य स्थिर रहता है।

धर्म और आहार

जैसा मनमें विचार उत्पन्न होता है, वैसा ही वाणीसे बोला जाता है और वैसा ही काम भी होता है। हमारे मनपर ही सब कुछ निर्भर है और यह मन आहार-शुद्धिपर टिका हुआ है—

'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।' (छान्दोग्य० ७। २६। २)

'आहारशुद्धिसे सत्त्वकी शुद्धि होती है, सत्त्व-शुद्धिसे निश्चल स्मृतिकी प्राप्ति होती है और निश्चल स्मृतिसे सब बन्धनोंसे मुक्ति मिलती है।' अतः मनुष्यको समझ-बूझकर अपना आहार निश्चित करना चाहिये।

धर्माचरण करनेवाले पुरुषको ऐसा सात्त्विक आहार करना चाहिये, जो मधुर, रसयुक्त और स्वादिष्ठ अन्नसे शुद्धतापूर्वक बनाया गया हो। तीखे, कसैले, बासी भोजन और मांस आदि अभक्ष्य पदार्थोंका प्रयोग घृणित है।

हमारा आहार ऐसा हो जिससे हमारी बुद्धि, अवस्था और बलमें निरन्तर वृद्धि होती रहे। दूध, फल, मेवे, कन्दमूल (गाजर-मूली), साग, भाजी, गेहूँ, चावल, जौ, ज्वार, मकई, नारियल, बादाम, किशमिश, अखरोट, नाशपाती, केला, नारंगी, अंगूर एवं दही आदि शुद्ध आहार हैं। इनसे शरीरका पोषण होता है।

हमारे आहारका केवल चौथा अंश ही हमारा पोषण करता है। निषिद्ध अभक्ष्य पदार्थ खाकर मनुष्य मानो अपने दाँतोंसे अपनी 'क़ब्र' खोदता है। तामस पदार्थों (शराब, बीड़ी, सिगरेट, चाय, कहवा, मांस, तेज मिर्च-मसाले आदि)-से सावधान रहना चाहिये।

यदि अन्नको खिलानेवाला तामसी प्रवृत्तियोंका मनुष्य है तो उसका भी दूषित प्रभाव खानेवालेपर पड़ता है।

गीतामें आहारके सम्बन्धमें इस प्रकार कहा गया है—'आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले, रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसे ही मनको प्रिय—ऐसे आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं। कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दुःख, चिन्ता तथा रोगोंको उत्पन्न करनेवाले आहार राजस पुरुषको प्रिय होते हैं। जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है, वह तामस पुरुषको प्रिय होता है।'*

---

* आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः। रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः। आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्। उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥ (१७। ८—१०)

धर्म और उपवास

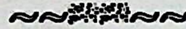
अधिक भोजन करनेसे स्वास्थ्य और दीर्घ जीवनका नाश होता है, अतः हमारे धर्मग्रन्थोंमें आन्तरिक शुद्धिकी दृष्टिसे प्रति पंद्रह दिनोंमें उपवासका विधान किया गया है। उपवाससे केवल शरीर ही शुद्ध नहीं होता, मनोवृत्तियाँ भी निर्मल बनती हैं।

विषय-वासनाकी निवृत्तिके लिये उपवास महत्त्वपूर्ण साधन है, अतः एकादशीको उपवासका विधान किया गया है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे उपवाससे ज्वर, जुकाम, हैजा, अपच, कुष्ठ, स्वप्नदोष, खाँसी, दमा, सूजन आदि शरीरकी अनेक विकृतियाँ दूर हो जाती हैं। 'कार्तिक-माहात्म्य'के अनुसार उपवाससे बढ़कर कोई तपस्या नहीं है।

सूर्योपासना

सूर्योपासना हमारे स्वास्थ्यके लिये एक अत्यन्त लाभदायक कृत्य है। सूर्यसे हमें प्रसन्नता, स्वास्थ्य, सौन्दर्य और यौवन आदिकी प्राप्ति होती है। **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** (यजुर्वेद ७। ४२)—सूर्य स्थावर-जङ्गम पदार्थोंका आत्मा है। अतः सूर्यसे हम प्रार्थना करते हैं—**'जीवेम शरदः शतम्'** (यजुर्वेद ३६। २४)—'हम सौ वर्षोंतक जीवित रहें।' सूर्यकी रश्मियाँ शक्ति और जीवन प्रदान करनेवाली हैं। सूर्य-स्नान करनेसे अनेक रोगों—टायफाइड, यक्ष्मा आदिके कीटाणु नष्ट होते हैं।

इस प्रकार मनुष्यके शरीर और अन्तःकरणको परिष्कृत कर आत्म-तत्त्व-प्राप्तिके उद्देश्यसे हिंदू-धर्ममें स्वास्थ्य-सम्बन्धी अनेक उपयोगी तत्त्वोंका विधान उपलब्ध होता है। आत्मचेतनाको विकसित करनेके लिये यथासम्भव उपर्युक्त स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमोंका पालन करना चाहिये। इनसे बाह्य और आभ्यन्तर शौचकी प्राप्ति होती है।



स्वस्थ जीवनका आधार

(डॉ० श्रीशिवनन्दनप्रसादजी)

इधर जबसे मुझे होश हुआ है, मैं तरह-तरहकी बीमारियोंके नाम सुनता आ रहा हूँ और उनके रोगी भी प्रायः दिन-प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। शारीरिक विशेषज्ञ इस अनुसंधानमें बराबर लगे हैं और नयी-नयी ओषधियोंका आविष्कार तेजीसे कर रहे हैं, पर वही पुरानी कहावत यहाँ चरितार्थ होती है कि 'मर्ज़ बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की।' अभी विशेषज्ञ अपने पहले अनुसंधानपर पूरी प्रसन्नता मना भी नहीं सके कि दूसरे रोगकी भयंकरता उनके सामने प्रकट हो गयी और फिर वे उसके अनुसंधानमें लग जाते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि विशेषज्ञ रोग-निवारणार्थ तरह-तरहकी ओषधियोंका आविष्कार एवं रोग-उत्पत्तिके कारण ढूँढ़ रहे हैं, पर मनुष्यको नीरोग बनानेमें वे प्रायः असफल ही हो रहे हैं। वे बराबर इस बातका ढिंढोरा पीटते हैं कि संसारमें तरह-तरहके विषाक्त कीटाणुओंकी उत्पत्ति ही इसके प्रधान कारण हैं और वे उन कीटाणुओंको मारनेमें ही संलग्न हैं, पर असली कीटाणुओंको ढूँढ़ने एवं उनपर अधिकार पानेकी बात सोचते ही नहीं। परिणाम यह हो रहा है कि हम दिनोंदिन विभिन्न नये रोगोंके शिकार होते जा रहे हैं। अतः यदि हम नीरोग होना चाहते हैं और आनेवाली संततिको भी प्रतिभाशाली एवं सुखी बनाना चाहते हैं तो हमें आन्तरिक कीटाणुओंका विनाश करनेकी अटल प्रतिज्ञा करनी होगी, अब आप कहेंगे कि 'आन्तरिक कीटाणु क्या हैं और उन्हें कैसे मारा जा सकता है?'

आजके वैज्ञानिक इस बातपर विश्वास रखते हैं कि रोगोत्पत्ति बाह्य कीटाणुओं, असंयम, दूषित खान-पान एवं मिश्रित खाद्य पदार्थोंके द्वारा होती है, पर यह उनका निरा भ्रम है। रोगोंकी उत्पत्तिके सहायक ये भले ही हो सकते हैं, पर मूल कारण ये नहीं हैं। रोग-उत्पत्तिके मूल कारण हैं—अन्तःकरणके कलुषित विचार एवं असत्य आचार-व्यवहार। यदि हम अपनी भावनाओंको पवित्र बनाये रखें तो रोग हमसे कोसों दूर रह सकता है। पर इतना कहनेसे आजके लोग यह माननेके लिये कदापि तैयार नहीं हैं कि ये विचार सत्य ही हैं। आजका युग भौतिक विज्ञानके पीछे दीवाना है और हर चीजको वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे देखता है तथा जबतक उसमें वैज्ञानिक तौरपर सत्यता नहीं पाता, वह हमारे विचारोंसे सहमत नहीं हो सकता।

यह तो सभी जानते हैं कि हमारे पूर्वज अधिक दूरदर्शी एवं विद्वान् थे और वे अपनी स्थिति पूर्णतः समझते

थे। हमारे पूर्वज शरीरकी बनावट एवं उसके स्नायु-संचालनसे पूर्ण परिचित थे। आजका विज्ञान कितना भी आगे बढ़ जाय, पर वे शारीरिक ज्ञान, आजके वैज्ञानिकोंको प्राप्त नहीं हो सकते, क्योंकि ये भौतिकवादी हैं। आजके प्रमुख शरीर-विज्ञानवेत्ता यह बतानेमें पूर्ण असमर्थ हैं कि कौन-सी स्नायुमें विकार आनेसे कौन-कौन-सा रोग उत्पन्न हो सकता है? पर आज भी कुछ इने-गिने आयुर्वेदाचार्य तथा हकीम हैं, जो नाडी देखकर ही शरीर-विकारके कारण एवं उपचार बता सकते हैं, किंतु हजार डिग्री-प्राप्त आधुनिक डॉक्टर पूरे शरीरकी जाँच करनेके पश्चात् भी पूर्णरूपसे रोग और उसकी उत्पत्तिके कारण नहीं बता सकते। अतः कहनेका तात्पर्य यह है कि हमारे पूर्वज शारीरिक विकारोंकी उत्पत्तिके कारण एवं उसके उपचारका पूरा अनुभव रखते थे।

हम लोगोंके यहाँ कहावत प्रचलित है— *साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप। जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदै आप॥* यह पुरानी कहावत सभी जानते हैं, पर इसकी उपयोगितापर ध्यान नहीं देते। सत्य हमारे शरीर एवं परिवारके रक्षार्थ एक अमोघ यन्त्र है। यदि हम इसका मन, वचन एवं कर्मसे पालन करें तो दैहिक, भौतिक एवं दैविक प्रकोपोंसे बच सकते हैं तथा दूसरोंको भी बचा सकते हैं। सत्य वह कवच है, जिसे धारण करनेसे दुनियाकी सारी आपदाओं एवं विपत्तियोंसे मुक्ति मिल सकती है या ऐसा कहें कि वे आपके पास आनेतकसे डरेंगी।

यदि हम सत्यके विपरीत आचरण करते हैं, अर्थात् असत्यका पालन करते हैं तो सारी विपत्तियोंका आवाहन करते हैं। असत्यद्वारा क्रोध, लोभ, द्वेष, घृणा, हिंसा आदि विकार उत्पन्न करनेवाले भाव मनमें उत्पन्न होंगे, जिससे हम दुःख ही भोगेंगे।

यह तो आप आये दिन देखते हैं कि बड़े लोग यानी धनी-मानी व्यक्ति सुखसे रहते हैं, पर उनका शरीर सुखी नहीं रहता। उन्हें तरह-तरहके रोग घेरे रहते हैं। शायद ही कोई ऐसा धनी व्यक्ति हो, जिसके घरमें कोई-न-कोई बड़ी बीमारी न हो और डॉक्टरोंके यहाँ अत्यधिक धन अपव्यय नहीं होता हो। धनहीनोंके घर भी बीमारियाँ आती हैं, पर कम, और आती भी हैं तो थोड़े समयके पश्चात् ही चली भी जाती हैं। यों तो बीमारी हमारे स्वभाव तथा कर्मके अनुसार ही उत्पन्न होती है। अमीरोंके घर बेईमानी तथा इसी तरहकी अनेक स्वार्थपरताके उदाहरण मिलते हैं, पर दीनोंके यहाँ उतनी बेईमानी न होकर अधिकांशतः सचाई और ईमानदारी ही होती है। ग़रीब अपने गाढ़े पसीनेकी कमाई खाता है और अमीर अपनी विलासिताका जीवन व्यतीत करता है। अब आप कहेंगे कि इससे रोग और उसकी उत्पत्तिका क्या सम्बन्ध है? सम्बन्ध है, विशेषतः महात्मा बुद्ध आदि हमारे पूर्वजोंने जो नियम अपने समाजके लिये बनाये हैं उनसे सिद्ध होता है कि झूठ, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध तथा असत्य आदि जितने भी मानस-विकार हैं—इनके सेवनसे ही शरीर, मन एवं बुद्धिमें विकार उत्पन्न होते हैं और उनसे बीमारियोंकी उत्पत्ति होती है। यदि आप कहेंगे कि नहीं, इससे बीमारी होनेका कोई कारण नहीं तो मैं थोड़ेमें इसका प्रमाण दे रहा हूँ।

मैं होमियोपैथीसे सम्बद्ध हूँ। मैंने अनुभव किया कि रोगकी उत्पत्ति एवं उसके उपचारके साधन भी न्यारे हैं। आप देखेंगे कि उसकी दवाओंका प्रयोग स्वस्थ शरीरपर होता है और स्वस्थ शरीरमें उस दवाके खानेके बाद जो-जो लक्षण पैदा होते हैं, यदि उसी लक्षणके अनुसार कोई रोगी आये तो उसकी दवा वही होगी, जो स्वस्थ शरीरपर दी गयी थी। यदि कोई रोगी अधिक झूठ बोलता है, क्रोध करता है, जिद्दी है, कामी है, अस्वाभाविक जीवन-निर्वाह करता है और व्यसनी है तो उसके अनुसार ही दवा दी जायगी और उससे रोगीको स्वास्थ्य-लाभ होगा।

अब इससे सिद्ध होता है कि उपर्युक्त दुर्व्यसनोंके कारण उत्पन्न रोगकी दवा वही होगी, जो स्वस्थ शरीरमें दी गयी थी तथा ऐसे ही लक्षण दिखायी दिये थे।

यदि आप यह सोचें कि इस प्रकारके दुर्व्यसनोंसे उत्पन्न दुःख केवल हमें ही भोगना पड़ेगा तो ऐसी बात भी नहीं है। आपके बाद आनेवाली संततिको भी दुःख भोगना पड़ेगा। वह कैसे?

गर्भमें संतान होनेके समय यदि उसकी माँ जिद्दी एवं क्रोधी हुई तो बच्चेको अवश्य पेटकी बीमारी होगी और इसी तरह अन्य व्यसनोंके द्वारा भी अलग-अलग रोग होते हैं। इन सबका उदाहरण देनेसे एक लम्बी कहानी बन जायगी। कभी-कभी आप देखते होंगे कि यदि कोई माँ क्रोधावस्थामें बच्चेको अपना दूध पिला देती है तो बच्चा

तत्काल बीमार हो जाता है। इससे स्पष्ट दीखता है कि हमारे स्वभाव एवं विचार ही रोगोत्पत्तिके प्रधान कारण हैं। यदि हम वास्तवमें सुखी एवं नीरोग रहना चाहते हैं तो अपने विचारों, भावों एवं मनःप्रवृत्तियोंमें विशुद्धि, सत्यता एवं कोमलता लाना सीखें। इसीके द्वारा हम सुखी एवं स्वस्थ रह सकते हैं।

बहुत-से लोगोंका यह विश्वास है कि सुखका साधन केवल धन ही है और इसलिये सब तरहसे धन-उपार्जन करनेमें ही वे अपना भला समझते हैं। फलस्वरूप उन्हें सुख तो मिलता नहीं, अपितु तरह-तरहके झमेले बढ़ जाते हैं और जीवन अशान्तिमय हो जाता है।

यदि मनुष्य किसी असाध्य रोगका शिकार हो गया है या नये-पुराने रोगोंसे पीडित है तो वह दवा आदिका प्रबन्ध तो करे ही, साथ-ही-साथ सत्य-सदाचारके पालन एवं असत्य-असदाचारके परित्यागका व्रत भी ले। आहार-व्यवहार एवं रहन-सहनमें सात्त्विकता लाये। यदि यह भी होना कठिन है तो केवल सत्य-पालन और शुद्ध मनसे ईश्वरका निरन्तर भजन तथा मनन ही करे। रोग कितना भी असाध्य हो, यदि वह सत्यरूपसे ऐसा करेगा तो उसके मनमें शान्ति आयेगी और धीरे-धीरे उसे रोगसे भी मुक्ति मिलेगी। कई बार ऐसा भी देखा गया है कि अटल विश्वास और भक्तिपूर्वक की हुई थोड़ी-सी प्रार्थनासे ही कठिन रोगसे मुक्ति हुई है और करायी गयी है। यदि माँ-बाप या कोई सम्बन्धी किसी रोगके निवारणार्थ प्रार्थना करता है और यदि प्रार्थना सत्यरूपसे की जाती है, तो वह अवश्य सुनी जाती है तथा रोगी व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है।

दूसरोंके लिये प्रार्थना करनेकी रीति हर धर्मावलम्बियोंमें है। हम लोगोंके यहाँ महामृत्युञ्जय, चण्डीपाठ और ग्रह-दोष-निवारणार्थ जप-पाठ कराये जाते हैं, जिससे लाखोंकी संख्यामें लोग लाभ उठाते हैं। लोगोंका विश्वास मन्त्रपरसे उठता जा रहा है। इसका विशेष कारण है कि जिनके द्वारा यह जप-पाठ कराया जाता है, वे ही वास्तवमें अश्रद्धालु, दम्भी और असत्यवादी होते जा रहे हैं। अतः मन्त्रका प्रभाव ही नहीं हो पाता, यदि मनुष्य स्वयं अपने तथा दूसरोंके लिये प्रार्थना करे तो उससे चिरस्थायी लाभ अवश्य होगा।

बहुधा लोग यह कहते हैं कि 'ईश्वर अन्यायी है या अमुक व्यक्तिकी प्रार्थना नहीं सुनता, अमुकके परिवारको असमय ही उठा लिया यद्यपि उसने लाखों मिन्नतें की थीं।' पर वास्तवमें उसने मिन्नतें की थीं या नहीं, उसकी प्रार्थना सत्य, सात्त्विक एवं मर्मस्पर्शी थी या नहीं, यह कोई नहीं बताता! मैं यह दावेके साथ कहता हूँ कि यदि कोई सत्य आचरण करनेवाला शुद्ध हृदयसे किसीके लिये प्रार्थना करे तो प्रार्थना अवश्य सुनी जाती है। प्रार्थनाका प्रभाव प्रार्थना करनेवालेपर ही निर्भर करता है। उसे स्वयं ज्ञात हो जाता है कि उसकी प्रार्थना सुनी गयी या नहीं—बाबर और हुमायूँकी बीमारी और स्वास्थ्य-लाभकी बात तो इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

एक बार मेरी छः वर्षकी बच्ची टायफाइडसे पीडित हुई और दो-चार दिनोंमें ही उसके मुँहसे तथा पाखानेके साथ खून आना शुरू हो गया। टायफाइडका यह बहुत बड़ा चिन्ताजनक लक्षण है। मैं निरन्तर उसके लिये प्रार्थना करता रहता था; पर हृदयमें भय बना रहता था। एक दिन खून नहीं आया, किंतु फिर भी मेरे मनमें काफ़ी भय बना हुआ था। प्रार्थना करने बैठा तो मन बहुत अशान्त था। मैंने मनमें धैर्य धरकर ईश्वरकी एकाग्रचित्तसे प्रार्थना की और प्रार्थनासे उठा तो मनमें शान्ति एवं साहसका अनुभव हुआ। कुछ देर बाद बच्चीने अधिक मात्रामें खूनका वमन किया। घरके लोग घबरा गये और पुनः डॉक्टरको बुलानेके लिये कहा; यद्यपि एक घंटे पूर्व ही डॉक्टर महोदय उसे देखकर गये थे। मैंने उन्हें बुलाया नहीं और शान्त तथा साहसभरे चित्तसे घरके लोगोंको भी सान्त्वना दी कि ईश्वर सब भला करेंगे। ईश्वरकी कृपा, उस रातके बाद बच्चीको खून आना बंद हो गया और दो-चार दिनोंमें ही वह स्वस्थ हो गयी।

इससे विश्वास होता है कि प्रार्थनाका प्रभाव अवश्य पड़ता है, किंतु उसमें विश्वास तथा एकाग्रता हो। संदेह, अविश्वास और परीक्षाके लिये की गयी प्रार्थना तो प्रार्थना ही नहीं होती। मेरा तो व्यक्तिगत विचार यही है कि हर व्यक्तिको ईश्वर-प्रार्थनासे किसी भी समय शान्ति प्राप्त हो सकती है।

हमारे पूर्वज हजारों वर्षोंतक स्वस्थ जीवन व्यतीत करते थे, जब कि हम सौ वर्ष भी नहीं जी पाते। ऐसा क्यों? इसलिये कि हमारे और उनके रहन-सहन एवं आचार-विचारमें पर्याप्त परिवर्तन हो गया है। हम सात्त्विकतासे

बहुत नीचे उतरकर तामसिक भूमिमें आ गये हैं। यदि आज भी हम पूर्ववत् आचरण करने लगें तो पुनः उतने ही समयतक जीनेका दावा कर सकते हैं।

अन्तमें हमारी ईश्वरसे प्रार्थना है कि वे हमें सत्यता एवं सात्त्विकताका जीवन प्रदान करें। साथ ही सभी पाठक बन्धुओंसे भी मेरा निवेदन है कि सभी लोग सत्यता एवं शुद्धताका पालन करें तथा ईश्वर-भजनको अपने दैनिक जीवनमें स्थान दें, जिससे केवल वे ही नहीं, उनकी आनेवाली संतति भी नीरोग और सुखी जीवन व्यतीत करनेवाली हो।



प्राणायाम तथा उससे स्वास्थ्यकी सुरक्षा

(डॉ० श्रीनरेशजी झा शास्त्रचूडामणि)

मानव-जीवनकी सुरक्षा तथा आरोग्यप्राप्तिके लिये हमारे तपःपूत ऋषि-महर्षियोंने अनेक उपाय शास्त्रोंमें निर्दिष्ट किये हैं। उनमें प्राणायामकी साधना भी एक महत्त्वपूर्ण उपाय है। यह केवल धार्मिक अनुष्ठानोंके लिये ही नहीं, अपितु शरीरकी शुद्धि तथा आरोग्य-लाभपूर्वक दीर्घ जीवनकी प्राप्तिके लिये भी है। इसकी उपयोगिता तो इसीसे सिद्ध है कि इसका विश्लेषित वर्णन उपनिषदों, पातञ्जलादि योग-ग्रन्थों, चिकित्साग्रन्थों तथा प्रायः समस्त पुराणोंमें अनेकत्र चर्चित हैं। श्रौत-स्मार्त प्रत्येक कर्मकाण्डके प्रारम्भमें प्राणायाम-विधानकी आवश्यकता होती है; क्योंकि दैनिक कृत्य—संध्या-वन्दनादि तथा विविध संस्कारों, यज्ञों आदिमें प्रथमतः प्राणायामका ही विनियोग किया जाता है।

यह तो हुआ इसका आध्यात्मिक प्रयोजन, किंतु केवल इसी प्रयोजनके लिये ही यह नहीं किया जाता, अपितु इससे शरीरकी शुद्धि तथा आरोग्यपूर्वक दीर्घ जीवनकी प्राप्ति भी होती है।

अतः इस महिमामय शरीर-रक्षक प्राणायामके विषयमें जानकारी प्राप्त करना प्रत्येक मानवका पुनीत कर्तव्य है।

प्राणायाम शब्द दो पदोंके योगसे बना है—प्राण और आयाम। इन दोनों पदोंमें दीर्घसन्धि करनेपर प्राणायाम शब्दकी निष्पत्ति होती है। यहाँ प्राण शब्दका अर्थ है—अपने शरीरसे उत्पन्न वायु और आयामका अर्थ है—निरोध (रोकना)। अर्थात् प्राणवायुको रोकना। जैसा कि कूर्म आदि पुराणोंमें कहा गया है कि—

प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम्॥[1]

अर्थात् प्राणवायुका निरोध करना ही प्राणायाम है। प्राणायाम आसनबद्ध होकर करना चाहिये। पातञ्जल-योगदर्शनमें इसका प्रामाणिक और विशिष्ट लक्षण किया गया है—

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः॥[2]

यहाँ आशय यह है कि पद्मासनादि सुस्थिर आसन[3] में स्थित होकर बाह्य वायुका आचमन—श्वास और कोष्ठगत वायुका निःसारण—प्रश्वास, इन दोनोंका गति-विच्छेद अर्थात् उभयाभाव प्राणायामकी सामान्य परिभाषा है।

यहाँ यह शंका हो सकती है कि इस लक्षणके द्वारा कुंभकमें तो दोष नहीं है, किंतु पूरक और रेचकमें आये अतिव्याप्ति दोषके निवारणार्थ स्वाभाविक श्वास-प्रश्वासरूप विशिष्टाभाव यह जोड़ना चाहिये।

यह प्राणायाम इतना व्यापक है कि धर्मसूत्रों एवं पुराणोंमें इसके विभिन्न लक्षण प्राप्त होते हैं। कहीं पाँच प्राणादि वायुओंमें प्रथमका ही आयाम—निरोध निरूपित किया गया है। यहाँ यह माना जा सकता है कि पाँचों वायुओंका प्रतिनिधित्व प्रथम वायु प्राणमें ही हो। कहीं पाँचोंमें प्राथमिक दो प्राण-अपानवायुका आयाम और कहीं पाँचों वायुओंका एक स्थानमें धारण प्राणायाम माना गया है।

---

१. कूर्म०उ० ११।३०, वायु० उत्तर० २७।२१, अग्नि० ३७२।६

२. पातञ्जलयोगदर्शन २।४९

३. पद्माख्यमासनं कृत्वा रेचकं पूरकं तथा। कुम्भकं च सुखासीनः प्राणायामं त्रिधाऽभ्यसेत्॥
(स्कन्द० माहेश्वर-खण्डमें कौमारिका खण्ड—५५।३२)

इतना ही नहीं, कहीं-कहीं तो दस प्रकारके वायुका क्रमसे अभ्यास करनेपर प्रमाणवान् प्राणायाम होता है। वहाँ भी प्रथम वायु प्राण दसोंका प्रभु होता है। इस प्रकार प्राणायामका विचार क्रमशः कूर्म, शिव और अग्निपुराणोंमें केवल प्राणके ही आयामसे निर्दिष्ट है।[१]

बौधायन धर्मसूत्र-वृत्तिमें श्वास-निरोधमात्र प्राणायाम कहा गया है।[२] इसी प्रकार शाण्डिल्योपनिषद्, स्कन्द-मार्कण्डेय-पुराणोंमें प्राण-अपान-वायुका निरोध प्राणायाम कहा गया है। जैसा कि तत्तत् स्थानोंमें प्राणायामका लक्षण इस प्रकार—

प्राणापानसमायोगः प्राणायामो भवति।[३]
प्राणापाननिरोधश्च प्राणायामः प्रकीर्तितः।[४]
प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायाम उदाहृतः।[५]

अब आइये—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान—इन पाँच वायुओंके निरोधपर विचार करें। जैसा कि विश्वामित्रकल्पमें निर्दिष्ट है—

नासिकापुटमङ्गुल्या पञ्चभिर्वायुरोधनैः।
शनैः शनैस्तु निःशब्दः प्राणायामो निबोधयेत्॥[६]

अर्थात् अंगुलीसे नासिका-पुटको बंदकर पाँच-वायु (प्राणादि)-के निरोधसे धीरे-धीरे निःशब्द होनेको प्राणायाम जानना चाहिये।

इन पाँच प्रधान वायुओंके अतिरिक्त वेदव्यासजीने शिव[७] और अग्निपुराणमें शरीर-संचालन-हेतु पाँच और नवीन वायुओंका समावेश किया है, सब मिलाकर दस वायु हो जाते हैं। उपर्युक्त पाँचोंके अतिरिक्त नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय नामक पाँच वायु शरीरमें विभिन्न कार्योंके लिये प्रवाहित होते हैं। इनमें धनञ्जय वायु शरीरमें सर्वव्यापी है। इनका क्रमसे अभ्यास करनेपर प्रमाणवान् प्राणायाम होता है। इसकी पुष्टि स्कन्दपुराणसे भी होती है। वहाँ कहा गया है कि—

चरतां सर्वतोऽसूनामेकदेशे तु धारणम्।
गुरूपदिष्टरीत्यैव प्राणायामः स उच्यते॥[८]

अर्थात् सब ओर विचरण करनेवाले प्राणादि वायुका गुरुके द्वारा उपदिष्ट रीतिसे जो एकदेशमें धारण किया जाय, वही प्राणायाम है। अतएव हठयोगप्रदीपिकाकारने कहा कि—

यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते।
मरणं तस्य निष्क्रान्तिस्ततो वायुं निरोधयेत्॥[९]

अर्थात् जबतक शरीरमें प्राणादि वायु स्थित हैं, तभीतक जीवका जीवन है। प्राणवायुके निकल जानेपर मरण सुनिश्चित है, अतः वायुका निरोध करना चाहिये।

इस सम्बन्धमें योगशास्त्रका उद्धरण देते हुए धर्म-विज्ञानमें कहा गया है कि प्राणादि वायु शरीरकी प्रधान शक्तियाँ होती हैं, वे ही संसारके रक्षक हैं, उन्हें वशमें करनेपर अन्य सब दोष स्वतः ही जीर्ण हो जाते हैं। ऐसे प्राण स्थूल और सूक्ष्म-भेदसे दो प्रकारके होते हैं। इन प्राणोंके ऊपर विजय प्राप्त करना ही प्राणायाम है।[१०]

प्राणायामकी उपयोगिता तथा उससे शारीरिक स्वास्थ्य (आरोग्य)-लाभ

शरीरकी रक्षाके लिये जिस प्रकार अन्नकी उपयोगिता है, शरीरस्थ रोगनाशके लिये जैसे औषधियोंका विनियोग होता है, उसी प्रकार शरीरस्थ बाहरी और भीतरी (बाह्याभ्यन्तर) रोगोंके समूल नाशके लिये प्राणायामका प्रयोग होता है।

जैसा कि कहा भी गया है—

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः॥
हिक्का कासश्च श्वासश्च शिरःकर्णाक्षिवेदनाः।
भवन्ति विविधा दोषाः पवनस्य व्यतिक्रमात्॥

अर्थात् समुचित प्राणायामद्वारा सभी रोगोंका नाश हो जाता है और अविधिपूर्वक प्राणायामके अभ्याससे सब रोग उत्पन्न हो सकते हैं। उनमें विशेष रूपसे हिचकी, खाँसी और श्वास (साँस)-का फूलना, सिर, कान एवं नेत्रमें वेदना आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। इस आशयकी पुष्टि बृहन्नारदीय पुराणसे भी होती है।

१. कूर्म०उ० ११।३०, शिव० वायु० उत्तर० २७।११, अग्नि० ३७२।६
२. बौधायन० द्वि०प्र० ४।६ वृत्तिमें।
३. शाण्डिल्योपनिषद् १।६ ४. स्कन्द० माहेश्वर-खण्डमें कौमारिका खण्ड ५५।२९ ५. मार्कण्डेय० ३९।१२
६. गायत्रीपञ्चाङ्ग—विश्वामित्रकल्प, श्लोक १५ ७. शिव० वायु० उत्तर० ३७।३५—४० ८. स्कन्द० वैष्णव० ३०।४०
९. हठयोगप्रदीपिका उप० २।३ १०. धर्म-विज्ञान द्वि०ख०पृ० ४६२

यथा—

शनैः शनैर्विजेतव्याः प्राणाः मत्तगजेन्द्रवत्।
अन्यथा खलु जायन्ते महारोगा भयंकराः॥

आशय यह है कि मतवाले हाथीके समान प्राणायाम करते समय प्राण (वायु)-को अभ्यासद्वारा धीरे-धीरे जीतना चाहिये, अन्यथा भयंकर महारोग होनेकी सम्भावना रहती है।

योगशास्त्रानुमोदित पद्धतिसे तथा गुरुके द्वारा उपदिष्ट परम्परासे किये गये प्राणायामोंसे सब रोग नष्ट हो जाते हैं और यदि इसके विपरीत आचरण किया जाता है तो रोग होना सुनिश्चित है।

अतः प्राणायाम करनेमें प्राचीन परम्पराका पालन आवश्यक है। प्राचीन परम्पराके पालनमें स्थान और काल आदिका ध्यान रखना आवश्यक है। जैसा कि कहा गया है—

आदौ स्थानं तथा कालं मिताऽऽहारं ततः परम्।
नाडीशुद्धिं ततः पश्चात् प्राणायामे च साधयेत्॥

अर्थात् प्राणायाम-साधनामें उपयुक्त स्थान, काल, परिमित आहार और नाडी-शुद्धि (वात-पित्त-कफकी) आवश्यक है।

रोग-नाशके अतिरिक्त मानसिक संतुलन रखनेमें भी प्राणायामका महान् उपयोग होता है। प्राणायामके निरन्तर अभ्याससे चित्तमें एकाग्रता आती है और इसके लिये पातञ्जलोक्त 'प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य' अर्थात् कोष्ठगत वायुका नासिका (नाक)-के पुटोंद्वारा विशेष प्रयत्नसे प्रच्छर्दन—वमन, विधारण—विशेषरूपसे धारण करके प्राणायाम करे। मनुस्मृति, अमृतनादोपनिषद्, स्कन्द, ब्रह्म और श्रीमद्भागवतादि मान्य ग्रन्थोंमें इस सम्बन्धमें भूयसी चर्चा की गयी है।

प्राचीन कालमें प्राणायामके बलसे ही ऋषिगण दीर्घजीवी हुआ करते थे। महर्षि अत्रिने ऋक्षकुल पर्वतपर सौ वर्षतक प्राणायामके बलसे केवल वायु-पान करते हुए एक पैरपर स्थित होकर तपस्या की थी। जैसा कि श्रीमद्भागवत तथा घेरण्ड संहितामें कहा गया है—

प्राणायामेन संयम्य मनो वर्षशतं मुनिः।
अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः॥

× × ×

प्राणायामात् खेचरत्वं प्राणायामाद्रोगनाशनम्।
प्राणायामाद्बोधयेच्छक्तिं प्राणायामान्मनोन्मनी॥
आनन्दो जायते चित्ते प्राणायामी सुखी भवेत्।

अर्थात् प्राणायामसे आकाशगमनकी शक्ति आती है, प्राणायामसे समूल रोग-नाश होता है, शक्ति बढ़ती है, मानसिक संतुलन ठीक रहता है, चित्तमें आनन्दकी प्राप्ति होती है और प्राणायामी सब प्रकारसे नीरोग रहते हुए सुखी रहता है।

इतना ही नहीं, प्राणायामके सेवनसे शरीरमें फेफड़े (फुफ्फुस)-की शक्ति बढ़ती है, रुधिरकी शुद्धि होती है। समस्त नाडी-चक्रोंमें चैतन्य आता है।

ऐसे प्राणदायक प्राणायामके सेवनसे स्वस्थ एवं नीरोग रहकर पुरुषार्थचतुष्टय—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको प्राप्तकर मानव-जीवनको सफल बनाया जा सकता है।



मानस-रोग

(पं० श्रीकृष्णगोपालजी शर्मा)

प्रभु जी रोग भयौ है भारी।
काम-वातकी उमग उठत नित, मोह-मूल दुःख झारी॥ १॥
क्रोध-पित्त कौ ताप चढ़ै तन, हो आपे ते भारी।
कफ अपार क्षण बर्ध-लोभ नित, ममता-दाद खुजारी॥ २॥
ईर्ष्या-खाज, विषाद-हर्षयुत, ग्रह (गर) गलगंड अपारी।
पर सुख जरनि, क्षयी, मन कुटिला, कुष्ठ दुष्टता भारी॥ ३॥
डमरुआ-अहं, कपट, मद, दम्भी, मान-नहरुआ चारी।
तृष्णा-उदर, बृद्धि ज्वर-मत्सर, इषना त्रिविध-तिजारी॥ ४॥
औषधि कोटि रोग नहिं नासत, पीड़हिं संतत भारी।
सदगुरु वैद्य सजीवनि दाता, शरण 'गुपाल' तुम्हारी॥ ५॥



स्वास्थ्य-रक्षामें योगासनोंका योगदान

[आरोग्य-प्राप्ति एवं स्वास्थ्य-रक्षामें योगासनोंका अभ्यास एक महत्त्वपूर्ण घटक है। यूँ तो योगका सम्बन्ध मनके स्थैर्य एवं चित्तवृत्तियोंके निरोधके माध्यमसे स्व-स्वरूपमें प्रतिष्ठित होनेसे है, तथापि इस लक्ष्यकी प्राप्तिमें आसन-सिद्धि आवश्यक सोपान है। बिना आसन-सिद्धिके मनका स्थैर्य होना भी अत्यन्त कठिन है। स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ मनकी अवस्थिति होती है और शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक स्वास्थ्यकी प्राप्तिके लिये आसनोंका अभ्यास भी अपेक्षित है। आसनोंसे जहाँ न केवल शरीर-सौष्ठव, स्फूर्ति आदि प्राप्त होती है, वहीं श्वास-प्रश्वासकी प्रक्रिया नियन्त्रित होती है, मनकी स्थिरता प्राप्त होती है, सम्यक् ध्यान लगता है, शरीरमें रक्त-संचार उचित रीतिसे होता है, शरीरकी मांसपेशियोंमें प्रसार एवं संकुचनकी प्रक्रिया तीव्र होती है, शरीरमें विद्यमान त्रिदोषों (कफ, वात, पित्त)-का संतुलन बना रहता है और रोगोंके निवारणमें सहायता मिलती है। स्वयं आचार्य चरकका कहना है कि योगासनोंके अभ्यास तथा सम्यक् व्यायामसे शरीरमें हलकापन, कार्य करनेकी शक्ति, शरीरमें स्थिरता, दुःख सहन करनेकी क्षमता, शरीरमें बढ़े हुए तथा कुपित दोषोंकी क्षीणता और शरीरकी मन्द अग्नि उद्दीप्त होती है। यथा—

लाघवं कर्मसामर्थ्यं स्थैर्यं दुःखसहिष्णुता। दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते॥

*इसी प्रकार 'हठयोगप्रदीपिका' ने आसनोंके लाभ बताते हुए कहा कि योगासनोंसे शरीर एवं मनकी स्थिरता, आरोग्य और शरीरकी लघुता प्राप्त होती है— '**स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम्।**'*

इस प्रकार योगासनों और स्वास्थ्यका घनिष्ठ सम्बन्ध है। अनेक रोगोंके निदानमें ये सहायक हैं। इसी दृष्टिसे यहाँ कुछ प्रमुख आसन चित्रोंके साथ दिये जा रहे हैं, इनकी सम्यक् प्रक्रियाका अवज्ञानकर लाभ उठाना चाहिये।— सं०]

(क) चित लेटकर करनेके आसन

१-पादाङ्गुष्ठ-नासाग्र-स्पर्शासन—पृथिवीपर समसूत्रमें पीठके बल सीधा लेट जाय। दृष्टिको नासाग्रमें जमाकर दायें पैरके अँगूठेको पकड़कर नासिकाके अग्रभागको स्पर्श करे,

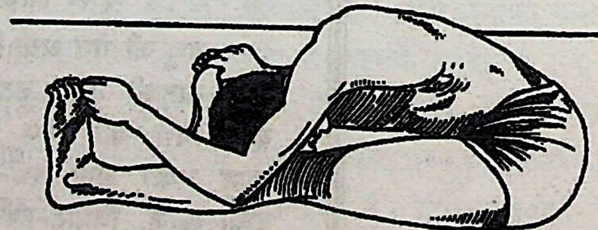


इसी प्रकार पुनः-पुनः करे, मस्तक, बायाँ पैर और नितम्ब पृथिवीपर जमे रहें। इसी प्रकार दायें पैरको फैलाकर बायें पैरके अँगूठेको नासिकाके अग्रभागसे स्पर्श करे। फिर दोनों पैरोंके अँगूठोंको दोनों हाथोंसे पकड़कर नासिकाके अग्रभागको स्पर्श करे। कई दिनके अभ्यासके पश्चात् अँगूठा नासिकाके अग्रभागको स्पर्श करने लगेगा।



फल—कमरका दर्द, घुटनेकी पीडा, कन्द-स्थानकी शुद्धि एवं उदर-सम्बन्धी सर्वरोगोंका नाश करता है। यह आसन स्त्रियोंके लिये भी लाभदायक है।

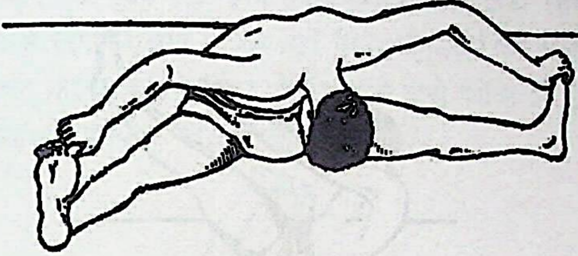
२-पश्चिमोत्तानासन—दोनों पाँवोंको लम्बा सीधा फैलावे। दोनों हाथोंकी अँगुलियोंसे दोनों पैरोंकी अँगुलियोंको खींचकर, शरीरको झुकाकर माथेको घुटनेपर टिका दे, यथाशक्ति वहींपर टिकाये रहे। प्रारम्भमें दस-बीस बार शनैः-शनैः रेचक करते हुए मस्तकको घुटनेपर ले जाय और इसी प्रकार पूरक करते हुए ऊपर उठाता चला जाय।



फल—पाचनशक्तिको बढ़ाना, कोष्ठबद्धता दूर करना, सब स्नायु और कमर तथा पेटकी नस-नाडियोंको शुद्ध एवं निर्मल करना, बढ़ते हुए पेटको पतला करना इत्यादि। इससे मन्दाग्नि, कृमि-विकार तथा वात-विकार आदि रोग दूर होते हैं। इस आसनको कम-से-कम दस मिनटतक

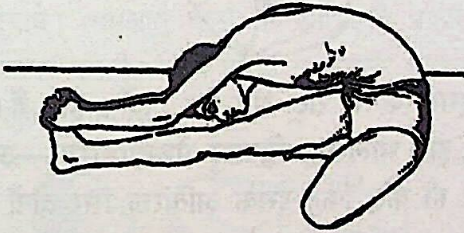
करते रहनेके पश्चात् उचित लाभ प्रतीत होगा।

३-सम्प्रसारण भू-नमनासन—(विस्तृत पाद भू-नमनासन) पैरोंको लम्बा करके यथाशक्ति चौड़ा फैलावे। तत्पश्चात् दोनों पैरोंके अँगूठेको पकड़कर सिरको भूमिमें टिका दे।



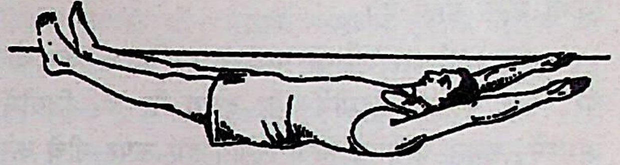
फल—इससे ऊरु और जङ्घाप्रदेश तन जाते हैं। टाँग, कमर, पीठ और पेट निर्दोष होकर वीर्य स्थिर होता है।

४-जानुशिरासन—एक पाँवको सीधा फैलाकर दूसरे पाँवकी एड़ी गुदा और अण्डकोषके बीचमें लगाकर उसके पाद-तलसे फैले हुए पाँवकी रानको दबावे। पैरकी अँगुलियोंको दोनों हाथोंसे खींचकर धीरे-धीरे आगेको झुकाकर माथेको पसारे हुए घुटनेपर लगा दे। इसी प्रकार दूसरे पाँवको फैलाकर माथेको घुटनेपर लगावे।



फल—इस आसनके सब लाभ पश्चिमोत्तानासनके समान हैं। वीर्य-रक्षा तथा कुण्डलिनी जाग्रत् करनेमें सहायक होना यह इसमें विशेषता है। इसको भी वास्तविक लाभ-प्राप्तिके लिये कम-से-कम दस मिनट करना चाहिये।

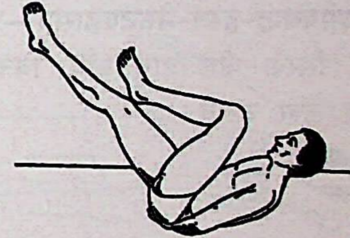
५-हृदयस्तम्भासन—चित लेटकर दोनों हाथोंको सिरकी ओर तथा दोनों पैरोंको आगेकी ओर फैलावे। फिर पूरक करके जालन्धर-बन्धके साथ दोनों हाथों और दोनों पैरोंको छः-सात इंचकी ऊँचाईतक धीरे-धीरे उठावे और वहींपर यथाशक्ति ठहरावे। जब श्वास निकालना चाहे, तब पैरों और हाथोंको जमीनपर रखकर धीरे-धीरे रेचक करे।



फल—छाती, हृदय एवं फेफड़ेका मजबूत और शक्तिशाली होना और पेटके सब प्रकारके रोगोंका दूर होना।

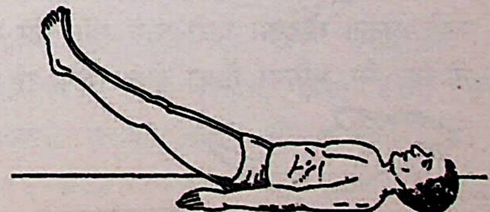
६-उत्तानपादासन—चित लेटकर शरीरके सम्पूर्ण स्नायु ढीले कर दे, पूरक करके धीरे-धीरे दोनों पैरोंको (अँगुलियोंको ऊपरकी ओर खूब ताने हुए) ऊपर उठावे, जितनी देर आरामसे रख सके रखकर पुनः धीरे-धीरे भूमिपर ले जाय और श्वासको धीरे-धीरे रेचक कर दे। प्रथम बार तीस डिग्रीतक, दूसरी बार पैंतालीस डिग्रीतक, तीसरी बार साठ डिग्रीतक पैरोंको उठावे। इस आसनके नौ भेद किये गये हैं—

(क) द्विपाद-चक्रासन—हाथोंके पंजे नितम्बके नीचे रख, चित लेट, एक पैर घुटनेमें मोड़कर घुटनेको पेटके पास लाकर तथा दूसरा पैर किंचित् ऊपर उठाकर बिलकुल सीधा रखे और इस प्रकार पैर चलावे जैसे साइकिलपर बैठकर चलाते हैं।



इससे नितम्ब, कमर, पेट और टाँगें निर्दोष होकर वीर्य शुद्ध, पुष्ट और स्थिर रहता है।

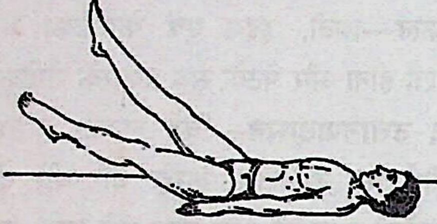
(ख) उत्थित-द्विपादासन—चित लेटकर दोनों पैर ४५ डिग्रीतक ऊपर उठाकर जमीनसे बिना लगाये धीरे-धीरे ऊपर-नीचे करे।



इससे पेटके स्नायु मजबूत होते हैं और मलत्याग-

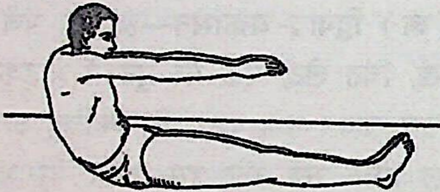
क्रिया ठीक होती है।

(ग) उत्थित-एकैक-पादासन—चित लेटकर, दोनों पैर (एक पैर २० डिग्रीमें और दूसरा पैर ४५ डिग्रीमें) अधरमें रखकर जमीनसे बिना लगाये हुए ऊपर-नीचे करे।



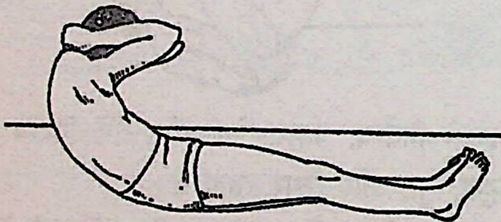
इससे कमरके स्नायु मजबूत होते हैं, मलोत्सर्ग-क्रिया ठीक होती है, वीर्य शुद्ध और स्थिर होता है।

(घ) उत्थित-हस्त-मेरुदण्डासन—हाथ-पैर एक रेखामें सीधे फैलाकर चित लेटे। दोनों हाथ उठाकर पैरोंकी ओर ले जाय। इस प्रकार पुनः-पुनः पीठके बल लेटकर पुनः-पुनः उठे।



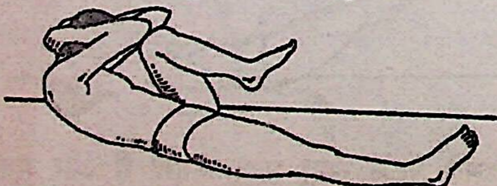
इससे कमर, छाती, रीढ़ और पेट निर्दोष होते हैं।

(ङ) शीर्षबद्ध-हस्त-मेरुदण्डासन—पूर्ववत् पीठके बल लेटकर, सिरके पीछे हाथ बाँधे, बिना पैर उठाये कमरसे शरीर ऊपर उठावे।



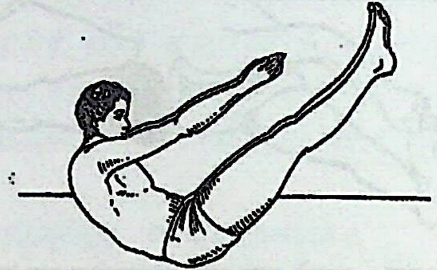
इससे पेट, छाती, गर्दन, पीठ और रीढ़के दोष दूर होते हैं।

(च) जानु-स्पृष्ट-भाल-मेरुदण्डासन—उपर्युक्त आसन करके घुटना मोड़कर बारी-बारी धीरे-धीरे माथेमें लगावे, नीचेका पैर भूमिपर टिका हुआ सीधा रहे।



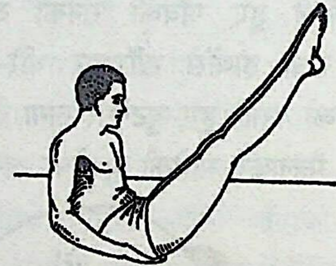
इससे यकृत् (जिगर), प्लीहा (तिल्ली), फेफड़े आदि नीरोग होकर पेट, गर्दन, कमर, रीढ़, ऊरु बलवान् और निर्विकार होते हैं।

(छ) उत्थित-हस्तपाद-मेरुदण्डासन—पूर्ववत् पीठके बल लेटकर हाथ-पैर दोनों एक साथ ऊपर उठावे और पुनः पूर्ववत् एक रेखामें ले जाये, चार-पाँच बार ऐसा करे।



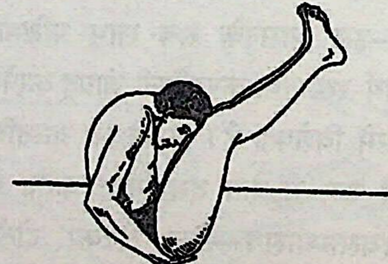
इससे पेट, छाती, कमर और ऊरु निर्दोष होते हैं।

(ज) उत्थित-पाद-मेरुदण्डासन—पैर सामनेको फैलाकर हाथोंकी कोहनियोंके बल धड़को उठावे, अनन्तर पैर ४५ डिग्रीतक ऊपर उठाकर ऊपर-नीचे करे।



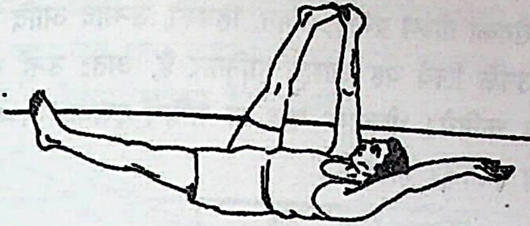
इससे कमर, रीढ़ और पेट निर्दोष होते हैं।

(झ) भालस्पृष्ट-द्विजानु-मेरुदण्डासन—ऊपर कहे अनुसार ही करे, किंतु इसके अतिरिक्त सिर दोनों घुटनोंमें लगा दे।



इससे पीठ, छाती, रीढ़, गर्दन और कमरके सब विकार दूर होते हैं।

७-हस्त-पादाङ्गुष्ठासन—चित लेटकर दोनों नासिकासे पूरक करके बायें हाथको कमरके निकट लगाये रखे, दूसरे दायें हाथसे दायें पैरकें अँगूठेको पकड़े और समूचे शरीरको जमीनपर सटाये रखे, दायाँ हाथ और पैर ऊपरकी ओर



उठाकर तना हुआ रखे। इसी प्रकार दायें हाथको दायीं ओर कमरसे लगाकर बायें हाथसे बायें पैरके अँगूठेको पकड़कर पूर्ववत् करना चाहिये। फिर दोनों हाथोंसे दोनों पैरोंके अँगूठे पकड़कर उपर्युक्त विधिसे करना चाहिये।



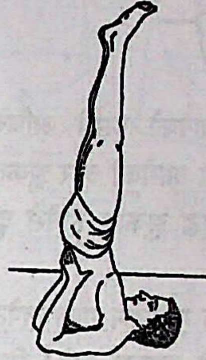
फल—सब प्रकारके पेटके रोगोंका दूर होना, हाथ-पैरोंका रक्तसंचार और बलवृद्धि।

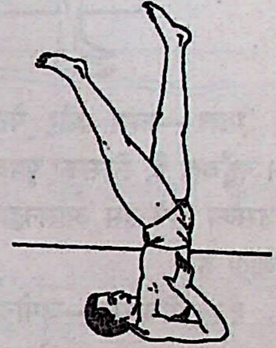
८-पवन-मुक्तासन—चित लेटकर पहले एक पाँवको सीधा फैलाकर दूसरे पाँवको घुटनेसे मोड़कर पेटपर लगाकर दोनों हाथोंसे अच्छी प्रकार दबाये। फिर इस पाँवको सीधा करके दूसरे पाँवसे भी पेटको खूब इसी प्रकार दबावे। तत्पश्चात् दोनों पाँवोंको इसी प्रकार दोनों हाथोंसे पेटपर दबावे। पूरक करके कुम्भकके साथ करनेमें अधिक लाभ होता है।



फल—उत्तानपादासनके समान ही इसके सब लाभ हैं। वायुको बाहर निकालनेमें तथा शौचशुद्धिमें विशेषरूपसे सहायक होता है, बिस्तरपर लेटकर भी किया जा सकता है, देरतक कई मिनटतक करते रहनेसे वास्तविक लाभकी प्रतीति होगी।

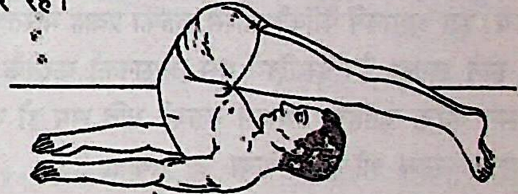
९-ऊर्ध्व-सर्वाङ्गासन—भूमिपर चित लेटकर दोनों पैरोंको तानकर, धीरे-धीरे कन्धों और सिरके सहारेसे पूर्ण शरीरको ऊपर खड़ा कर दे। आरम्भमें हाथोंके सहारेसे उठावे, कमर और पैर सीधे रहें, दोनों पैरोंके अँगूठे दोनों आँखोंके सामने रहें। मस्तक कमजोर होनेके कारण जो शीर्षासन नहीं कर सकते हैं, उनको इस आसनसे लगभग वही लाभ प्राप्त हो सकते हैं। एक पाँवको आगे और दूसरेको पीछे इत्यादि करनेसे इसके कई प्रकार हो जाते हैं। इसमें ऊर्ध्व-पद्मासन भी लगा सकते हैं।



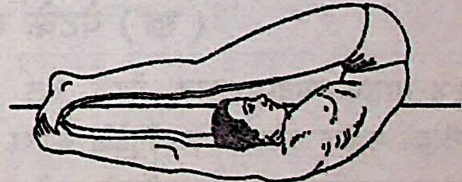


फल—रक्तशुद्धि, भूखकी वृद्धि और पेटके सब विकार दूर होते हैं। सब लाभ शीर्षासनके समान जानने चाहिये।

१०-सर्वाङ्गासन—(**हलासन**)—चित लेटकर दोनों पावोंको उठाकर, सिरके पीछे जमीनपर इस प्रकार लगावे कि पाँवके अँगूठे और अँगुलियाँ ही जमीनको स्पर्श करें, घुटनोंसहित पाँव सीधे समसूत्रमें रहें, हाथ पीछे भूमिपर रहे।



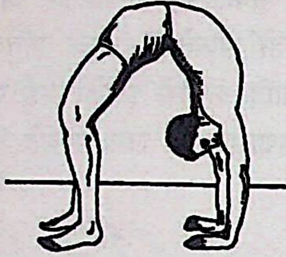
दूसरा प्रकार—दोनों हाथोंको सिरकी ओर ले जाकर पैरके अँगूठोंको पकड़कर ताने।



फल—कोष्ठबद्धता दूर होना, जठराग्निका बढ़ना, आँतोंका बलवान् होना, अजीर्ण, प्लीहा, यकृत् तथा अन्य सब प्रकारके रोगोंकी निवृत्ति और क्षुधाकी वृद्धि।

११-चक्रासन—चित लेटकर हाथों और पैरोंके पंजे भूमिपर लगाकर कमरका भाग ऊपर उठावे। हाथ-पैरोंके पंजे जितने पास-पास आ सकें, उतने लानेका यत्न करे।

यह आसन खड़ा होकर पीछेसे हाथोंको जमीनपर रखनेसे भी होता है।



फल—कमर और पेटके स्थानको इससे अधिक लाभ पहुँचता है, जिसका पृष्ठवंश सदा आगेकी ओर झुकता है, उसका दोष इस आसनद्वारा विशुद्ध झुकाव होनेसे दूर हो जाता है।

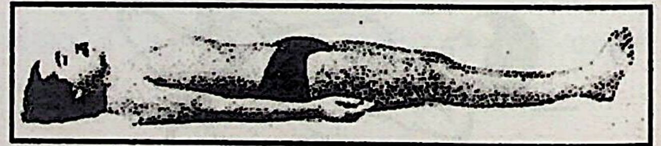
१२-शीर्षासन—जमीनपर एक मुलायम गोल लपेटा हुआ वस्त्र रखकर अपने मस्तकको उसपर रखे। फिर दोनों हाथोंके तलोंको मस्तकके पीछे लगाकर शरीरको उलटा ऊपर उठाकर सीधा खड़ा कर दे, इसे 'शीर्षासन' कहते हैं। प्रारम्भमें किसी दीवाल आदिके सहारे करते हुए अभ्यास बढ़ाना चाहिये। इसमें सिर नीचे और पैर ऊपर होता है, अतः इसे 'विपरीतकरणी मुद्रा' भी कहते हैं। कोई-कोई शीर्षासनको 'कपाली' नामसे भी पुकारते हैं। पैरसे सिरतक सारा शरीर एक लम्बी सीधी-रेखामें होना चाहिये। इस आसनमें पैरोंकी ओरसे रक्तका प्रवाह मस्तिष्ककी ओर होने लगता है। इसलिये इस आसनको करनेके बाद शवासन करना चाहिये, जिससे रक्तकी गति सम हो जाय। पद्मासनके साथ भी इसे किया जा सकता है।

जिनका मस्तिष्क निर्बल और उष्ण रहता है, नेत्र सदा लाल रहते हैं, जिन्हें उरःक्षत, क्षय, हृदयकी गतिवृद्धि, श्वासरोगका तीक्ष्ण प्रवाह, वमन, हिक्का, उन्माद आदि रोग हों, उनके लिये यह आसन हानिकर है, अतः उन्हें नहीं करना चाहिये। भोजनके बाद या रात्रिमें इसका अभ्यास करना हानिकर होता है।



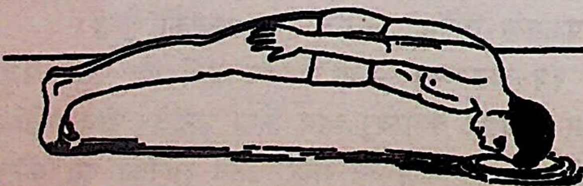
फल—इस आसनका अभ्यास करनेसे वात, पित्त और कफदोषसे उत्पन्न सब रोग, ज्वर, कास, श्वास, उदररोग, कटिवात, अर्धाङ्ग, ऊरुस्तम्भ, वृषणवृद्धि, नाडीव्रण, भगंदर, कुष्ठ, पाण्डु, कामला, प्रमेह तथा अन्त्रवृद्धि आदि रोग दूर हो जाते हैं। शारीरिक निर्बलता दूर हो जाती है और शरीर नीरोग और ऊर्जस्वी हो उठता है।

१३-शवासन (विश्रामासन)—शरीरके सब अङ्गोंको ढीला करके मुर्देके समान लेट जाय। शवके समान निश्चेष्ट लेटे रहनेसे इसे 'शवासन' कहते हैं। सब आसनोंके पश्चात् थकान दूर करने और चित्तको विश्राम देनेके लिये इस आसनको करे।



(ख) पेटके बल लेटकर करनेके आसन

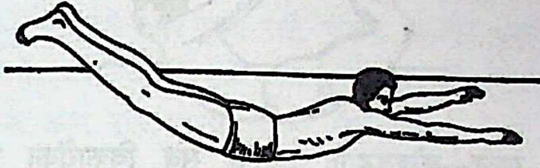
१४-मस्तक-पादाङ्गुष्ठासन—पेटके बल लेटकर, सारे शरीरको मस्तक और पैरोंके अँगूठेके बलपर उठाकर कमानके सदृश शरीरको बना दे। शरीरको उठाते हुए पूरक, ठहराते हुए कुम्भक और उतारते हुए रेचक करे।



फल—मस्तक, छाती, पैर, पेटकी आँतें तथा सम्पूर्ण शरीरकी नाडियाँ शुद्ध, नीरोग और बलवान् होती हैं। पृष्ठवंश एवं मेरुदण्डके लिये विशेष लाभ पहुँचाता है।

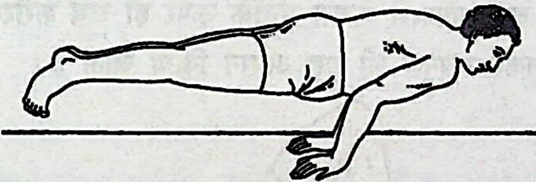
१५-नाभ्यासन—पेटके बल समसूत्रमें लेटकर दोनों हाथोंको सिरकी ओर आगे दो हाथकी दूरीपर एक-दूसरे हाथसे अच्छी तरह फैलावे, दोनों पैरोंको भी दो हाथकी दूरीपर ले जाकर फैलावे। फिर पूरक करके केवल नाभिपर समूचे शरीरको उठावे। पैरों और हाथोंको एक या डेढ़

हाथकी ऊँचाईपर ले जाय, सिर और छातीको आगेकी ओर उठाये रहे। जब श्वास बाहर निकलना चाहे, तब हाथों और पैरोंको जमीनपर रखकर रेचक करे।



फल—नाभिकी शक्तिका विकास होना, मन्दाग्नि, अजीर्णता, वायु-गोला तथा अन्य पेटके रोगोंका तथा वीर्यदोषका दूर होना।

१६-मयूरासन—दोनों हाथोंको मेज अथवा भूमिपर जमाकर, दोनों हाथोंकी कोहनियाँ नाभिस्थानके दोनों पार्श्वसे लगाकर सारे शरीरको उठाये रहे। पाँव जमीनपर लगे रहनेसे हंसासन बनता है।



फल—जठराग्निका प्रदीप्त होना, भूख लगना, वात-पित्तादि दोषोंको तथा पेटके रोगों गुल्म-कब्जादिको दूर करना और शरीरको नीरोग रखना। वस्ति तथा एनिमाके पश्चात् इसके करनेसे पानी तथा आँव जो पेटमें रह जाते हैं, वह निकल जाते हैं, मेरुदण्ड सीधा होता है।

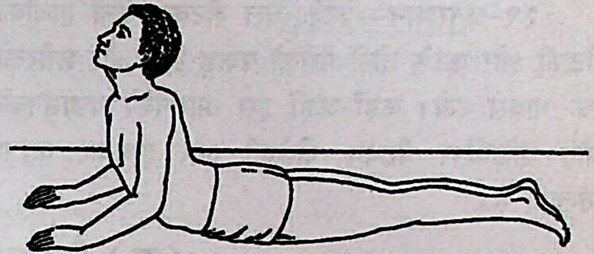
१७-भुजङ्गासन (सर्पासन)—भुजङ्गासनके निम्न तीन भेद किये गये हैं—

(क) उत्थितैकपाद-भुजङ्गासन—पेटके बल लेटकर हाथ छातीके दोनों ओरसे कोहनियोंमेंसे घुमाकर भूमिपर टिकावे, भुजङ्गके सदृश छाती ऊपरको उठाकर दृष्टि सामने रखे, एक पैर भूमिपर टिका रहे, दूसरा पैर घुटनेको बिना मोड़े जितना जा सके ऊपर उठावे। इसी प्रकार बारी-बारीसे पैरोंको नीचे-ऊपर करे।



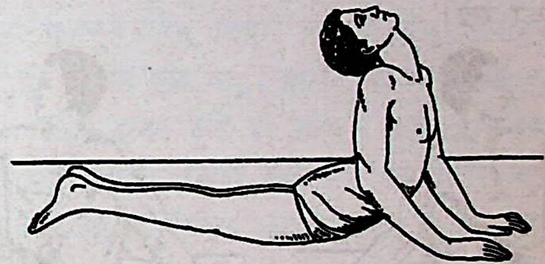
फल—इससे कटि-दोष, यकृत्, प्लीहा आदिके विकार दूर होते हैं।

(ख) भुजङ्गासन—पैरोंके पंजे उलटी ओरसे भूमिपर टिकाकर हाथोंको भी भूमिपर किञ्चित् टेढ़े रखकर धड़को कमरसे उठाकर भुजङ्गाकार बनावे।



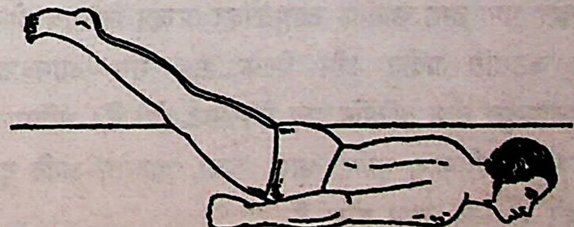
फल—पेट, छाती, कमर, ऊरु, मेरुदण्ड आदिके सब विकार दूर होते हैं।

(ग) सरलहस्त-भुजङ्गासन—हाथोंको भूमिपर सीधा रखकर पैरोंको पीछेकी ओर ले जाकर दोनों हाथोंके बीच कमर आ जाय। इस रीतिसे कमर झुकाकर छाती और गर्दनको भरसक ऊपर उठाकर सीधे आकाशकी ओर देखे। इससे पेटकी चरबी निकल जाती है।



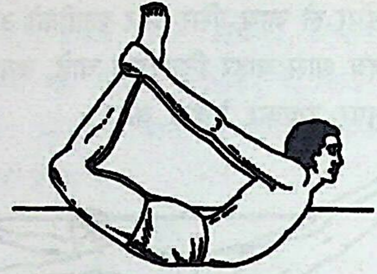
फल—पेट, कमर और गर्दनके सब विकार दूर होते हैं।

१८-शलभासन—शलभ टिड्डीको कहते हैं। पेटके बल लेटकर दोनों हाथोंकी अँगुलियोंको मुट्ठी बाँधकर कमरके पास लगावे, तत्पश्चात् धीरे-धीरे पूरक करके छाती तथा सिरको जमीनमें लगाये हुए हाथोंके बल एक पैरको यथाशक्ति एक-डेढ़ हाथकी ऊँचाईपर ले जाकर ठहराये रहे। जब श्वास निकलना चाहे, तब धीरे-धीरे पैरको जमीनपर रखकर शनैः-शनैः रेचक करे। इसी प्रकार दूसरे पैरको उठावे, फिर दोनों पैरोंको उठावे।



फल—जंघा, पेट, बाहु आदि भागोंको लाभ पहुँचाता है। पेटकी आँतें मजबूत होती हैं और सब प्रकारके उदर-विकार दूर होते हैं।

१९-धनुरासन—पेटके बल लेटकर दोनों हाथोंको पीठकी ओर करके दोनों पैरोंको पकड़ लेवे और शरीरको वक्र-भावसे रखे। कहीं-कहीं इस आसनको वज्रासनकी भाँति एड़ियोंपर बैठकर पीछेकी ओर झुककर करना बतलाया है।



फल—कोष्ठबद्धादि उदरके सब विकारोंका दूर होना, भूख तथा जठराग्निका प्रदीप्त होना।

(ग) बैठकर करनेके आसन

२०-मत्स्येन्द्रासन—इसको पाँच भागोंमें विभक्त करनेमें सुगमता होगी—

(क) बायें पाँवका पंजा दायें पाँवके मूलमें इस प्रकार रखे कि उसकी एड़ी टूँडीमें लगे, अँगुलियाँ पाल्थीके बाहर न हों।

(ख) दायाँ पाँव बायें घुटनेके पास, पंजा भूमिपर लगाकर रखे।





(ग) बायाँ हाथ दायें घुटनेके बाहरसे चित डालकर उसकी चुटकीमें दायें पाँवका अँगूठा पकड़े, उस दायें पाँवके पंजेको बाहर सटाकर रखे।

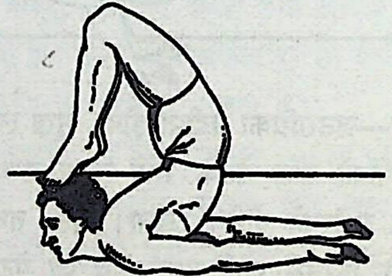
(घ) दायाँ हाथ पीठकी ओरसे फिराकर उससे बायें पैरकी जंघा पकड़ ले।

(ङ) मुख तथा छाती पीछेकी ओर फिराकर ताने तथा नासाग्रमें दृष्टि रखे। इसी प्रकार दूसरी ओरसे भी करे।

फल—पीठ, पेट, पाँव, गला, बाहु, कमर, नाभिके निचले भाग तथा छातीके स्नायुओंका अच्छा खिंचाव होता है। जठराग्नि प्रदीप्त और पेटके सब रोग—आमवात, परिणामशूल तथा आँतोंके सब रोग नष्ट होते हैं। अतिसार, ग्रहणी, रक्तविकार, कृमि, श्वास, कास, वातरोग आदि दूर होकर स्वास्थ्य-लाभ होता है।

२१-वृश्चिकासन—कोहनीसे पंजेतकका भाग भूमिपर रखकर उसके सहारे सब शरीरको सँभालकर दीवालके सहारे पाँवको ऊपर ले जाय, तत्पश्चात् पाँवको घुटनोंमें मोड़कर सिरके ऊपर रख दे।

दूसरे प्रकारसे केवल पंजोंके ऊपर ही सब शरीरको सँभालकर रखनेसे भी यह आसन किया जाता है।



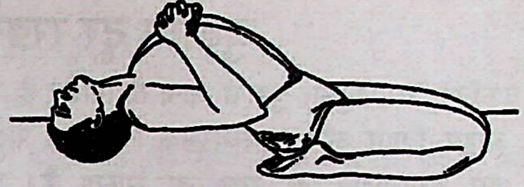
फल—हाथों और बाहोंमें बलवृद्धि, पेट तथा आँतोंका निर्दोष होना, शरीरका फुर्तीला और हल्का होना, मेरुदण्डका शुद्ध और शक्तिशाली होना, तिल्ली, यकृत् एवं पाण्डु रोग आदिका दूर होना।

२२-उष्ट्रासन—वज्रासनके समान हाथोंसे एड़ियोंको पकड़कर बैठे। पश्चात् हाथोंसे पाँवोंको पकड़े हुए नितम्बोंको उठाये, सिर पीछे पीठकी ओर झुकावे और पेट भरसक आगेकी ओर निकाले।



फल—यकृत्, प्लीहा, आमवात आदि पेटके सब रोग दूर होते हैं और कण्ठ नीरोग होता है।

२३-सुप्त वज्रासन—वज्रासन करके चित लेटे, सिरको जमीनसे लगा हुआ रखे, पीठके भागको भरसक जमीनसे ऊपर उठाये रखे और दोनों हाथोंको बाँधकर छातीके ऊपर रखे अथवा सिरके नीचे रखे।



फल—पेट, छाती, गर्दन और जंघाओंके रोगोंको दूर करता है।

मोटापा दूर करें

(डॉ० श्रीअरुणजी भारती, डी०ए०टी०, एम०डी० (ए०एम०), एम०आई०एम०एस०)

मोटापा एक प्रकारका रोग है, इसके होनेके दो मुख्य कारण हैं, एक है—आनुवंशिक अर्थात् वंशगत। जिनके माता-पिता मोटे होते हैं, उनकी संतान प्राय: मोटी होती है। दूसरा कारण है—भूखसे अधिक खाना, शारीरिक श्रम नहीं करना, आरामतलबीका जीवन बिताना। जो लोग खाना खाकर पड़े रहते हैं, उन्हें मोटापा आ जाता है। **साधारणतः मोटापाकी पहचान यह है कि जितने इंच शरीरकी ऊँचाई हो, उतने किलो० शरीरका वजन ठीक है। इससे अधिक होनेपर 'मोटा' और कम होनेपर 'पतला' कहा जायगा।**

बचपन और किशोर अवस्थामें दौड़-भाग, खेल-कूदका प्राधान्य होता है—इस कारण शरीरमें फालतू चर्बी जमा नहीं हो पाती, खर्च हो जाती है। जो उम्रके बढ़नेपर शरीरसे मेहनत नहीं करते और कार्बोहाइड्रेट तथा अधिक केलोरीवाला आहार करते हैं, उनके शरीरपर चर्बी जमा होने लगती है। पेट, कूल्हा, कमर, नितम्ब मोटे हो जाते हैं। चलने-फिरनेमें कष्ट होता है। खूनका दौरा धीमा पड़ जाता है। रक्तवाहिनी नसोंमें कोलस्ट्राल (वसा) जम जाता है। इस कारण हाई ब्लडप्रेशर और हृदयरोग हो जाते हैं। शारीरिक श्रम नहीं होनेसे क़ब्ज़ हो जाता है—अपच और डायबिटीज (मधुमेह) हो जाता है। रक्त-सञ्चार ठीक नहीं होनेसे रोग-प्रतिरोधक शक्ति घट जाती है। मोटापासे शरीर बेडौल हो जाता है। मोटापा एक घातक रोग बन जाता है। अत: मोटापा शुरू होते ही इसको दूर करनेके उपाय करने चाहिये।

मोटापा दूर करने या इससे बचनेके दो मुख्य उपाय हैं, पहला है—भोजन-सुधार और दूसरा है—प्रतिदिन शारीरिक श्रम। जिन पदार्थोंमें कार्बोहाइड्रेट अधिक हो उनका सेवन न करें। तेल, घी, डालडासे बनी चीजें न खायें। आलू, शकरकन्द और चीनीसे बनी चीजें न खायें। दिनचर्या इस प्रकार बनायें—सबेरे जल्दी उठें और एक गिलास कुनकुने गरम पानीमें क़ागज़ी नीबू निचोड़कर उसमें दो चम्मच शुद्ध मधु मिलाकर पी जायँ तथा कुछ समय टहलें। हाजत होते ही शौचके लिये चले जायँ। इसके बाद दातौन-मंजनकर टहलनेके लिये निकल जायँ। नित्य तीन-चार किलोमीटर अवश्य टहलें। जो बाहर जाना नहीं चाहते वे अपने घरकी छतपर या आँगनमें टहल सकते हैं। हल्के व्यायाम कर सकते हैं। नाश्तेमें रसदार फल लें या मक्खन निकला मट्ठा लें। दोपहरके भोजनमें जौके आटेकी एक-दो रोटी, उबली सब्जी, कच्चा सलाद और सूप लें। तीसरे पहर फलोंका रस लें। रातके भोजनमें हरी उबली सब्जी और एक-दो जौके आटेकी रोटी खायें। भोजनके तुरंत बाद पानी न पीयें। मोटापा कम करनेके लिये भोजनमें रोटी कम खायें और सब्जी, कच्चा सलाद और सूप अधिक लें। दिनमें न सोयें। मोटी महिलाओंको घरके काम यथासम्भव स्वयं करने चाहिये। इस तरह मोटापा नहीं बढ़ेगा। शरीरमें ताजगी और स्फूर्ति आयेगी। शरीर सुन्दर, स्वस्थ और कान्तिमान् बनेगा।

क्रोध, चिन्ता और शोक—ये स्वास्थ्य और सौन्दर्यका नाश करते हैं, अत: इनसे बचते रहें।

बुढ़ापा दूर रखनेवाला संजीवनी पेय

प्रकृतिके नियमानुसार बुढ़ापा आना तो निश्चित है, पर उचित आहार-विहार और स्वास्थ्यरक्षक नियमोंका पालन करके इसे यथासम्भव दूर रखा जा सकता है। इस दिशामें एक सफल सिद्ध अनुभूत प्रयोग यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

शरीरशास्त्री वैज्ञानिकोंका मानना है कि जबतक शरीरके कोषाणुओं (Cells)-का पुनर्निमाण ठीक-ठीक होता रहेगा, तबतक बुढ़ापा दूर रहेगा और शरीर युवा बना रहेगा। जब इस प्रक्रियामें विघ्न पड़ता है और कोषाणुओंके पुनर्निर्माणकी गति मन्द होने लगती है, तब शरीर बूढ़ा होने लगता है। इस वैज्ञानिक विश्लेषणसे एक निष्कर्ष यह निकला कि यदि विटामिन 'ई', विटामिन 'सी' और 'कोलीन'—ये तीन तत्त्व पर्याप्त मात्रामें प्रतिदिन शरीरको आहारके माध्यमसे मिलते रहें तो शरीरके कोषाणुओंका पुनर्निर्माण बदस्तूर ठीकसे होता रहेगा और जबतक यह प्रक्रिया ठीक-ठीक चलती रहेगी, तबतक बुढ़ापा दूर रहेगा। बुढ़ापा आयेगा जरूर, पर देरसे आयेगा।

इस निष्कर्षपर विचार करके पूनाके श्रीश्रीधर अमृत भालेरावने यह निश्चय किया कि इन तीनों तत्त्वोंको दवाओंके माध्यमसे प्राप्त करनेकी अपेक्षा प्राकृतिक ढंगसे, आहारद्वारा प्राप्त करना अधिक उत्तम और गुणकारी रहेगा। लिहाजा काफी खोजबीन और परिश्रम करके वे इस नतीजेपर पहुँचे कि विटामिन 'ई' अंकुरित गेहूँसे, विटामिन 'सी' नींबू, शहद और आँवलेसे एवं 'कोलीन' मेथीदानेसे प्राप्त किया जा सकता है। इन तीनों पदार्थोंका सेवन करनेके लिये उन्होंने यह फार्मूला बनाया—

४० ग्राम यानी ४ चम्मच [बड़े] गेहूँ और १० ग्राम मेथीदाना—दोनोंको ४-५ बार साफ पानीसे अच्छी तरह धो लें, ताकि इनपर यदि कीटनाशक दवाओंके छिड़कावका प्रभाव हो तो दूर हो जाय। धोनेके बाद आधा गिलास पानीमें डालकर चौबीस घंटेतक रखें। चौबीस घंटे बाद पानीसे निकालकर एक गीले तथा मोटे कपड़ेमें रखकर बाँध दें और चौबीस घंटेतक हवामें लटकाकर रखें। गिलासका पानी फेंकें नहीं, इस पानीमें आधा नीबू निचोड़कर दो ग्राम सोंठका चूर्ण डाल दें। इसमें २ चम्मच शहद घोलकर सुबह खाली पेट पी लें। यह पेय बहुत शक्तिवर्धक, पाचक और स्फूर्तिदायक है, इसीलिये इसका नाम श्रीभालेरावने 'संजीवनी पेय' रखा है। चौबीस घंटे पूरे होनेपर हवामें लटके कपड़ेको उतारकर खोलें और गेहूँ तथा मेथीदाना एक प्लेटमें रखकर इसपर पिसी काली मिर्च और सेंधा नमक बुरक दें। गेहूँ और मेथीदाना अंकुरित हो चुका होगा। इसे खूब चबा-चबाकर प्रातः खायें। यदि इसे मीठा करना चाहें तो काली मिर्च और नमक न डालकर गुड़ मसलकर डाल दें, शक्कर न डालें। यह मात्रा एक व्यक्तिके लिये है।

इस फार्मूलेका सेवन करनेसे ये तीनों तत्त्व तो शरीरको प्राप्त होते ही हैं, साथ ही एनजाइम्स, लाइसिन, आइसोल्यूसिन, मेथोनाइन आदि स्वास्थ्यवर्धक पौष्टिक तत्त्व भी प्राप्त होते हैं। यह फार्मूला सस्ता भी है और बनानेमें सरल भी, इसमें गजबकी शक्ति है, यह स्फूर्ति और पुष्टि देनेवाला है।

इस प्रयोगको प्रौढ़ ही नहीं वृद्ध स्त्री-पुरुष भी कर सकते हैं। यदि दाँत न हों या कमजोर हों तो वे अंकुरित अन्न चबा नहीं सकते, ऐसी स्थितिमें निम्नलिखित फार्मूलेका सेवन करना चाहिये—

प्रातःकाल एक कटोरी गेहूँ और तीन चम्मच मेथीदाना अच्छी तरह धो-साफकर चार कप पानीमें डालकर चौबीस घंटे रखें। दूसरे दिन सुबह इसका एक कप पानी लेकर नीबू तथा शहद डालकर पी लें। शेष तीन कप पानी निकालकर फ्रिजमें रख दें। यदि फ्रिज न हो तो पानी गिलासमें डालकर गिलासपर गीला कपड़ा लपेट दें और गिलास ठंडे पानीमें रख दें और ढक दें, ताकि पानी शामतक ख़राब न हो। इस पानीको शामतक एक-एक कप पीकर समाप्त कर दें। गेहूँ और मेथीदानेको फेंकें नहीं, बल्कि फिरसे ४ कप पानीमें डालकर रख दें। दूसरे दिन सुबह १ कप पानी और शेष पानी दिनभरमें पी लें। अब नया गेहूँ तथा मेथीदाना लें और सुबह पानीमें डालकर रख दें। दो दिनतक भिगोये हुए गेहूँ और मेथीदानेको सुखा लें और पिसानेके रखे गये गेहूँमें मिला दें। इस तरह बिना दाँतके भी इस नुस्खेका सेवनकर लाभ उठा सकते हैं।

[प्रेषक—श्रीविट्ठलदासजी तोष्णीवाल]

आँवला खायें—बुढ़ापा दूर भगायें

(डॉ० श्रीश्यामसुन्दरजी भारती)

आँवला सर्वश्रेष्ठ शक्तिदायक फल है। इसका दूसरा नाम अमृत-फल है। सचमुच ही इसमें अमृतके गुण हैं। यह विटामिन 'सी'का अनन्त भण्डार है। विटामिन 'सी'का अर्थ है शक्ति और स्वास्थ्यका आवश्यक तत्त्व। एक पुष्ट ताजे आँवलेमें बीस नारंगियोंके बराबर विटामिन 'सी' रहता है। इस प्रकार यह शरीरको स्वस्थ बनानेके साथ-साथ सुन्दर भी बनाता है। इससे रक्त शुद्ध होता है और शरीरमें रोग-प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है। आँवलेकी विशेषता यह है कि इसके विटामिन गरम करने या सुखानेसे भी नष्ट नहीं होते। त्रिफला-चूर्णका मुख्य घटक आँवला ही है। च्यवनप्राश इस अमृत-फलसे ही बनता है। महर्षि च्यवनने बुढ़ापा दूर भगानेके लिये अश्विनीकुमारसे उपाय पूछा था। उन्होंने च्यवन ऋषिको नित्य इस फलके सेवन करनेका निर्देश दिया था। इसीके सेवनसे च्यवन ऋषिका बुढ़ापा दूर हो गया था। इन्हींके नामपर 'च्यवनप्राश' नाम पड़ गया। ओज, बल एवं युवावस्थाको स्थिर रखने और बुढ़ापा दूर करनेका यह सर्वश्रेष्ठ आयुर्वेदिक औषध है।

आँवला सर्वरोगनाशक दिव्य अमृत-फल है। यह दाँतों-मसूढ़ोंको मजबूत बनाता है, आँखोंकी ज्योति बढ़ाता है। शरीरमें बल-वीर्यकी वृद्धि करता है। हाई ब्लडप्रेशर, हृदयरोग, कैंसर, नपुंसकता, मन्दाग्नि, स्नायुरोग, चर्मरोग, लीवर और किडनीके रोग, रक्तके रोग, पीलिया, टी०बी०, मूत्ररोग और हड्डियोंके रोगोंको दूर करनेमें इसका विशेष योगदान है।

आँवला त्रिदोषनाशक है। इसमें लवणरसको छोड़कर बाकी पाँचों रस भरे पड़े हैं। आधुनिक वैज्ञानिकोंने आँवलापर खोज की है और स्वीकार किया है कि आँवलामें पाया जानेवाला एंटी ऑक्सीडेंट इन्जाइम बुढ़ापेको रोकता है। यह खोज तो हजारों वर्ष पहले भारतके प्राचीन ऋषि-मुनियोंने कर डाली थी।

आँवला-तेल सिरके रोगों और बालोंके लिये परम हितकारी है। इसे घरमें बना लेना चाहिये। बाज़ारमें मिलनेवाले अधिकांश आँवला-तेलोंमें कृत्रिम सेंट मिला रहता है। घरमें बनाना चाहें तो तिलके तेलमें ताजे आँवलेका रस मिलाकर गरम करें। जब उसका पानी जल जाय तो उतारकर ठंडा करके बोतलमें भर लें और उपयोग करें।

आँवलेमें जितने रोग-प्रतिरोधक, रक्त-शोधक और बल-वीर्यवर्धक तत्त्व हैं, उतने संसारकी किसी वस्तु या औषधिमें नहीं हैं। इसलिये स्वास्थ्य-सुख चाहनेवालोंको अपने आहारमें आँवलेको प्रमुख स्थान देना चाहिये। लगभग बीस ग्राम च्यवनप्राश एक गिलास दूधके साथ नियमित सेवन करनेसे आप इसके चमत्कारी आशुफलप्रद गुणोंसे परिचित हो जायँगे। यह पुनर्यौवन प्रदान करनेवाला सर्वश्रेष्ठ आहार है।



पानी भी एक दवा है—इसके चमत्कार देखें

हमारे शास्त्रोंमें लिखा है—'अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम्' अर्थात् अजीर्णमें पानी दवाका काम करता है और भोजन पचनेके बाद पानी पीनेसे शरीरमें बल होता है। बहुत-से रोगोंमें यह दवाका काम करता है। ठंडे और गरम जलमें अलग-अलग औषधीय गुण हैं। कई रोगोंमें ठंडा पानी और कई रोगोंमें गरम पानी दवाका काम करता है।

जब कभी किसीको आप आगसे जलने या झुलसनेसे आक्रान्त देखें, तुरंत उसके जले-झुलसे अङ्गको ठंडे पानीमें कम-से-कम एक घंटा डुबोकर रखें—उसे परम शान्ति मिलेगी, जलन दूर होगी और घाव या फफोला नहीं होगा। यदि पूरा शरीर जल जाय तो तुरंत उसको बड़े पानीके हौजमें या तालाबमें डुबो दें। साँस लेनेके लिये नाकको पानीके बाहर रखें। यह याद रखें कि जला-झुलसा अङ्ग पानीमें लगातार एक या दो घंटे डूबा रहे। उसपर पानी नहीं छिड़कना चाहिये—इससे हानि होती है। पानीमें डुबोये

रखना ही कारगर इलाज है। यदि अस्पताल ले जानेके चक्करमें समय नष्ट करेंगे तो फफोले पड़ जायँगे, घाव सांघातिक बन जायँगे—जलन और कष्ट बढ़ जायगा। बहुतोंको ऐसा झूठा भ्रम है कि जले अङ्गको पानीमें डुबोनेसे घाव बढ़ेंगे। सच्ची बात यह है कि जले अङ्गपर पानीके छींटे देने या पानी डालनेसे घाव बढ़ जाते हैं। हम तो पीडित अङ्गको लगातार एक-दो घंटे ठंडे पानीमें डुबोये रखनेकी सिफ़ारिश करते हैं। तभी आपको ठंडे पानीका चमत्कार दिखायी देगा।

इसी तरह जब किसीको मोच आ जाय या चोट लगे तो तुरंत उस स्थानपर खूब ठंडे पानीकी पट्टी लगा दे—बर्फ भी लगा सकते हैं। इससे न तो सूजन होगी, न दर्द बढ़ेगा। गरम पानीकी पट्टी लगायेंगे या सेंक करेंगे तो सूजन आ जायगी और दर्द बढ़ जायगा। यदि चोट लगने या कटनेसे खून आ जाय तो वहाँ बर्फ या खूब ठंडे पानीकी पट्टी चढ़ा दें, आराम होगा।

गरम पानीका लाभ वातरोगों—जोड़ोंका दर्द, कमरका दर्द, घुटनेका दर्द, गठिया-कंधेकी जकड़नमें होता है। इसमें गरम पानीका या भापका सेंक दिया जाता है।

इंजेक्शन लगानेके बाद यदि उस स्थानपर सूजन आ जाय या दर्द बढ़े तो ठंडे पानीकी पट्टी या बर्फ लगायें। वहाँ गरम पानीका सेंक न करें।

यदि रातमें नींद न आती हो तो सोनेके पहले दोनों पैरोंको घुटनोंतक सहने योग्य गरम पानीसे भरी बाल्टी या टबमें पंद्रह मिनट डुबोये रखें—इसके बाद पैरोंको बाहर निकालकर पोंछ लें और सो जायँ। नींद आयेगी। यह ध्यान रखें कि जब गरम पानीमें पैर डुबायें तब सिरपर ठंडे पानीमें भिगोकर निचोड़ा हुआ तौलिया अवश्य रखें।

आपने अस्पतालों और नर्सिंग होमोंमें देखा होगा कि पतले दस्त या उल्टी-दस्तके रोगियोंको सेलाइनका पानी चढ़ाते हैं। यह सेलाइन क्या है—नमकीन पानी है। इससे रोगी ठीक हो जाता है। इसी प्रकार बच्चोंके पतले दस्त या डायरियामें जीवन-रक्षक घोल बनाकर देनेसे बच्चे ठीक हो जाते हैं। शरीरमें पानीकी कमी न होने पाये इसीलिये यह घोल दिया जाता है। पानीकी कमीसे मृत्यु हो जाती है। यही कारण है कि रोगीके शरीरमें पानी पहुँचाया जाता है—चाहे मुखसे हो या सेलाइन चढ़ाकर। ये पानीके कुछ चमत्कार हैं। (अ० भारती)



आरोग्य-प्राप्तिका सर्वोत्कृष्ट साधन—पञ्चगव्य

(शास्त्रार्थ पंचानन पं० श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री)

'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्' इस शास्त्रवचनके अनुसार पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्ति आरोग्यसम्पन्न शरीरके द्वारा ही सम्भव है और यह कितना आश्चर्यजनक तथ्य है कि विभिन्न प्रकारके रोगोंकी निवृत्तिके लिये नितान्त आवश्यक जीवन-तत्त्व (Vitamins) हम केवल पञ्चगव्य-सेवनसे अनायास ही प्राप्त कर सकते हैं। गायके उदरको जो जीवन-तत्त्वोंका अक्षय स्रोत कहा जाता है, वह कोई यूँ ही कहा गया अतिरञ्जनापूर्ण वाक्य नहीं है, अपितु व्यावहारिक अनुभवोंका यथार्थ निष्कर्ष है।

पूर्वजन्मकृत पाप ही कालान्तरमें रोग बनकर प्रकट होते हैं और उनके उपशमनके लिये औषधके साथ-साथ दान, जप, होम और देवाराधन—इन चार कार्योंको करनेका निर्देश भी भिषगाचार्योंने दिया है—

पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमसुरार्चनैः ॥

इस वचनका सार-संक्षेप इतना ही है कि रोगोंको दूर करनेके लिये दो माध्यम हैं—देवाराधन और दवा। इन दोनों ही माध्यमोंकी संसिद्धि पञ्चगव्यमें संनिहित है। यज्ञ-यागादि समस्त धार्मिक अनुष्ठान कर्ता और आचार्यद्वारा पञ्चगव्यपानके अनन्तर ही प्रारम्भ किये जाते हैं; क्योंकि हमारी अस्थियोंतकमें प्रविष्ट पाप-राशिको पञ्चगव्य उसी प्रकार विनष्ट कर डालता है, जैसे अग्नि ईंधनको। यथा—

यद्यदस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके।
प्राशनात् पञ्चगव्यस्य दहत्यग्निरिवेन्धनम्॥

इस प्रकार आध्यात्मिक संदर्भमें तो पञ्चगव्यकी लोकोत्तर महिमा है ही, शारीरिक एवं मानसिक रोगोंको निर्मूल कर डालनेमें भी वह अनुपम है। पञ्चगव्यके घटक पदार्थ अर्थात् गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, गोमूत्र एवं गोमयके रोगनिवारक गुणोंके वर्णनसे आयुर्वेदिक ग्रन्थ भरे पड़े हैं। आइये, पहले गव्य पदार्थोंके उन गुण-गणोंका संक्षिप्त सिंहावलोकन करें और देखें कि वे किन-किन रोगोंपर अचूक रामबाणकी तरह कार्य करते हैं। बादमें फिर पञ्चगव्यनिर्माणकी शास्त्रीय विधिकी चर्चा करेंगे।

गोदुग्ध—गायका दूध अत्यन्त स्वादिष्ठ, स्निग्ध, रुचिकर, बलवर्धक, मेधाजनक, नेत्रज्योतिवर्धक, तुष्टिकारक, वीर्यवर्धक, कान्तिजनक एवं हृद्य रसायनके रूपमें तो स्वीकार किया ही गया है, साथ-ही-साथ वह रक्तपित्त, अतिसार, उदावर्त, जीर्ण ज्वर, मनोव्यथा, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, अर्श, पाण्डु, क्षय, हृदयरोग, गुल्म, उदरशूल किंवा दाह-जैसे घातक रोगोंके लिये भी अव्यर्थ औषधका कार्य करता है। धारोष्ण दुग्धका सेवन सर्वरोगविनाशक माना गया है। दूधकी मलाई धातुवर्धक होनेके साथ-साथ वात एवं पित्तजनित दोषोंको तथा रक्तरोगोंको समूल विनष्ट कर डालनेकी अद्भुत सामर्थ्य रखती है। **'धारोष्णममृतोपमम्'** अथवा **'क्षीरात्परं नास्ति हि जीवनीयम्'** इत्यादि वचनोंका स्वारस्य गोदुग्धके उपर्युक्त प्रभावोंके निरूपणमें ही है।

भारतीय आयुर्वेद-विज्ञानके मनीषियोंने प्रारम्भिक कालसे ही औषध एवं खाद्यकी दृष्टिसे गायके दूधकी महत्ताको पहचान लिया था। प्राचीनतम चिकित्साग्रन्थ चरकसंहितामें गोदुग्धके निम्नाङ्कित दस गुणोंका वर्णन किया गया है—

स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम्।
गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः॥

(च०सू० २७। २१७)

अर्थात् गायके दूधमें दस गुण होते हैं—स्वादिष्ठ, शीत (ठंडा), कोमल, चिकना, गाढ़ा, सौम्य लसदार, भारी और बाह्य प्रभावको विलम्बसे ग्रहण करनेवाला तथा मनको प्रसन्न करनेवाला।

इतना ही नहीं प्रातर्दोह (सूर्योदयके समय दुहा हुआ), संगव (दोपहरके लगभग दुहा हुआ) एवं सायंदोह (सायंकालके समय दुहा हुआ) गोदुग्ध पृथक्-पृथक् रूपसे प्रभाव रखता है, इस प्रकारका विश्लेषण भावप्रकाश नामक ग्रन्थमें उपलब्ध होता है। यथा—

वृष्यं बृंहणमग्निदीपनकरं पूर्वाह्णकाले पयो
मध्याह्ने तु बलावहं कफहरं पित्तापहं दीपनम्।
बाले वृद्धिकरं क्षयेऽक्षयकरं वृद्धेषु रेतोवहं
रात्रौ पथ्यमनेकदोषशमनं चक्षुर्हितं संस्मृतम्॥

(पू०खं० ६। १४। ३९)

दूध दोपहरके पहले वीर्यवर्धक और अग्निदीपक तथा दोपहरमें बलकारक एवं कफको विनष्ट करनेवाला, पित्तको हरनेवाला और मन्दाग्निको नष्ट करनेवाला, बालपनमें वृद्धि करनेवाला एवं वृद्धावस्थामें क्षयनाशक और शुक्रवर्धक होता है। प्रतिदिन रात्रिमें सेवन करनेसे दूध अनेक दोषोंको दूर करता है। अतः दूध सदा सेवनीय है।

आधुनिक विज्ञानवेत्ताओंने भी गायके दूधमें विटामिन ए, बी, सी, डी, ई तथा अन्य शरीर-पोषक एवं दोषनिवारक तत्त्वोंका पता लगाकर **'गवां क्षीरं रसायनम्'** इस उक्तिको चरितार्थ कर दिखाया है।

गोदधि—सुश्रुतसंहितामें गायके दहीके गुण इस प्रकार वर्णित किये गये हैं—

स्निग्धं विपाके मधुरं दीपनं बलवर्धनम्॥
वातापहं पवित्रं च दधि गव्यं रुचिप्रदम्।

(सू० ४५। ६७-६८)

अर्थात् गायके दूधका दही स्निग्ध, परिणाममें मधुर, पाचनशक्तिवर्धक, बलवर्धक, वातहारक, पवित्र और रुचिकारक होता है।

यद्यपि गायका दही अनेक भयानक रोगोंको जड़-मूलसे विनष्ट कर डालनेवाला माना गया है तथापि वातजन्य अर्श, त्रिदोष, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डुरोग, उदरशूल, सूर्यावर्त (आधाशीशी) और दाह-जैसे महान् कष्टप्रद रोगोंके लिये तो यह रामबाण ही है। इतना ही नहीं मधु, मक्खन, पीपल, सोंठ, काली मिर्च, वच और सेंधा नमककी समान-समान मात्रा लेकर उतनी ही मात्रामें गायका दही सिलाकर तुरंत पिलानेसे सर्पका भी विष दूर हो जाता है।

गायकी छाछकी तो महिमा ही निराली है। कहा जाता

है कि 'तक्रं शक्रस्य दुर्लभम्' छाछ तो देवराज इन्द्रको भी दुर्लभ है। संस्कृतकी यह लोकोक्ति रूपान्तरसे छाछके लोकोत्तर गुणोंका ही तो वर्णन कर रही है। प्रमेह, मेद, संग्रहणी, अजीर्ण, भगंदर, विषम ज्वर, मलस्तम्भ, उदरकृमि, सूजन, अरुचि, पित्त-प्रकोप-जैसे भीषण रोगोंको विनष्ट करके रोगीको स्थायी स्वास्थ्य-सम्पत्ति प्रदान करनेवाला देवदुर्लभ पदार्थ गायकी छाछ ही है। सेंधा नमक और अजवाइन मिलाकर छाछ पी लेनेसे कोष्ठबद्धता चुटकियोंमें दूर हो जाती है।

हाँ, दही-सेवनके सम्बन्धमें कुछ विधि-निषेध भी हैं। उनपर भी ध्यान देना बहुत जरूरी है। किस ऋतुमें दही खाना उपयुक्त है और किसमें नहीं, इस संदर्भमें सुश्रुतसंहिताका निर्देश इस प्रकार है—

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशो दधि गर्हितम्॥
हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते।

(सू० ४५।८०-८१)

अर्थात् शरद्, ग्रीष्म और वसन्त-ऋतुओंमें दही खाना प्रायः अच्छा नहीं होता। हेमन्त, शिशिर एवं वर्षा-ऋतुमें दही खाना ठीक होता है।

गोघृत—गायके घीके गुण तो वास्तवमें असंख्य हैं। आधुनिक चिकित्सकोंकी बात तो जाने दें, जो चालीस वर्षकी आयुके बाद घी खानेके विषयमें नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, परंतु आयुर्वेदके तत्त्वज्ञ विद्वानोंने तो 'आयुर्वै घृतम्' कहते हुए घीको ही आयुका पर्याय माना है। घीके गुणोंके संदर्भमें इससे अधिक सटीक उक्ति और क्या हो सकती है?

चिकित्साशास्त्रोंमें घीके सम्बन्धमें इस प्रकार वर्णन किया गया है—

विपाके मधुरं शीतं वातपित्तविषापहम्।
चक्षुष्यमग्र्यं बल्यं च गव्यं सर्पिर्गुणोत्तरम्॥

(सु० सू० ४५।९७)

अर्थात् गायका घी गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ है। वह विपाकमें मधुर, शीतल, वात, पित्त और विषका नाश करनेवाला, आँखकी ज्योति एवं शरीरकी सामर्थ्यको बढ़ानेवाला है।

आँख, कान और नासिकाके रोगोंमें तथा खाँसी, कोढ़, मूर्च्छा, ज्वर, कृमि और वात, पित्त, कफजन्य विषके उपद्रवमें गायका घी महौषधिका कार्य करता है। गायका घी जितना पुराना हो जाता है, उतना ही वह गुणकारी होता है। दस वर्ष पुराना घी **'जीर्ण'**, सौसे एक हजार वर्षतक पुराना **'कौम्भ'** और ग्यारह सौ वर्षोंसे अधिक पुराना घी **'महाघृत'** कहलाता है।

हैजा, अग्निमन्दता, क्षय, आमव्याधि एवं कोष्ठबद्धतामें घृतका सेवन हानिकारक है। ज्वरमें अथवा ज्वरजनित दाहमें घी खानेसे नहीं, अपितु मालिश करनेसे लाभप्रद होता है।

गायके दूध, दही और घीके इन उत्तम गुणोंके कारण ही ये तीनों प्राचीन कालसे भारतीयोंके भोजनके अभिन्न अङ्ग बने हुए हैं। **'विना गोरसं को रसो भोजनानाम्'** (बिना गोरसके भोजनमें क्या रस है?) यह उक्ति ही इन तीनोंकी महिमाको आँकनेके लिये पर्याप्त है।

गोमूत्र—चरकसंहितामें गोमूत्रके विषयमें निम्नलिखित विवरण प्राप्त होता है—

गव्यं समधुरं किंचिद् दोषघ्नं कृमिकुष्ठनुत्।
कण्डूं च शमयेत् पीतं सम्यग्दोषोदरे हितम्॥

(सू० १।१०१)

अर्थात् गोमूत्र सेवन करनेसे कृमिरोग, कुष्ठरोग, खुजली और प्लीहारोग दूर हो जाते हैं। गोमूत्र कटु, तीखा, खारा, कसैला, आंशिक मधुर, पित्तवर्धक और मेदक होता है। इसके सेवनसे समाप्त हो जानेवाले रोगोंकी सूची बहुत लंबी है, तथापि साररूपमें यह समझ लें कि पाण्डु, कण्डु, अर्श, कुष्ठ, चित्री, भ्रम, त्वचारोग, मूत्ररोग, दमा, अतिसार-जैसे कठिन रोग केवल गोमूत्र-सेवनसे ही निर्मूल किये जा सकते हैं। गुर्देके रोगोंको तो यह जड़से मिटा डालता है। हमारे पूज्य पितृचरण (शास्त्रार्थमहारथी पं० श्रीमाधवाचार्य शास्त्री) जब गुर्देके असाध्य रोगसे ग्रस्त हो गये थे और किसी भी औषधिसे लाभ नहीं पहुँच पा रहा था, तब कुरुक्षेत्र-भूमिके पीयूषपाणि वैद्यराज पं० श्रीधरजीने उन्हें अपनी माँका दूध पीकर ही रहनेवाली छोटी बछियाका मूत्र इकतालीस दिनोंतक पिलाकर पूर्णतया स्वस्थ कर दिया था।

गोमय (गोबर)—रोगोंके कीटाणु और दूषित गन्धको

दूर करनेमें गोबर अद्वितीय है। प्राचीन कालमें प्रत्येक गृहस्थ न केवल घर-आँगन और रसोईमें ही गोबरसे लेप किया करता था, अपितु कोई भी माङ्गलिक कार्य प्रारम्भ करनेसे पूर्व गोबरसे भूमि-लेपन अनिवार्य माना जाता था। विधिग्रन्थोंमें पदे-पदे '**गोमयेन भूमिमुपलिप्य**' इस प्रकारके निर्देश प्राप्त होते हैं। अनेक रोगोंको दूर करनेमें भी गोबरकी उपयोगिता है। जैसे—गोबर मलकर स्नान करनेसे खुजली दूर हो जाती है तथा अत्यधिक पसीना आनेपर सूखे हुए गोबरका चूर्ण शरीरपर रगड़कर कुछ समय बाद स्नान करनेसे अधिक पसीना आना बंद हो जाता है।

गोबरकी राख भी अत्यन्त गुणकारी मानी गयी है। शीतलाका प्रकोप होनेपर निकले छाले अत्यन्त कष्टप्रद होते हैं। ऐसेमें गोबरकी राखको छानकर रोगीके नीचे बिछा देनेपर उसे आराम मिलता है। ऐसेमें यही उपाय सर्वश्रेष्ठ है। बच्चोंके पेटमें छोटे-छोटे कृमि हो जानेपर छानी हुई राख दस गुना पानीमें मिलाकर दो-दो घूँट बालकको दो-चार बार पिलानेसे पेटके कीड़े विनष्ट हो जाते हैं।

पञ्चगव्य बनानेकी विधि—लौगाक्षिस्मृति अथवा पाराशरस्मृति-प्रभृति ग्रन्थोंमें पञ्चगव्य-निर्माणका विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। वहाँ पाँचों गव्य-पदार्थोंका परिमाण अर्थात् दूध, दही, घी आदिकी कितनी-कितनी मात्रा ली जाय, इसका विवरण तो है ही, किस रंगकी गायसे कौन-सी वस्तु लेनी चाहिये, इस तथ्यका भी विज्ञानसंगत विश्लेषण किया गया है। '**आरोग्यं भास्करादिच्छेत्**'—इस शास्त्रवचनके अनुसार हम सूर्यकिरणोंसे आरोग्य प्राप्त करते हैं। परंतु विभिन्न रंगोंके माध्यमसे सूर्यकी किरणोंमें सामर्थ्यकी वृद्धि होती ही है, यह प्रत्यक्ष अनुभवगम्य है। आतशी शीशेद्वारा सूर्यतापसे अग्नि प्रज्वलित करते समय अन्य रंगोंकी अपेक्षा यदि काले रंगका वस्त्र प्रयोग किया जाय तो वह शीघ्र आग पकड़ लेता है। अन्य रंगोंके साथ भी ऐसे ही कारण हैं।

पञ्चगव्य-निर्माणमें भी गायोंके संदर्भमें जो रंगोंका विवरण दिया गया है, वह इन्हीं वैज्ञानिक कारणोंसे साभिप्राय है। अन्तमें यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि विभिन्न रंगोंकी गायें उपलब्ध न हो सकें तो पाँचों वस्तुएँ कपिला-वर्णकी यानी स्वर्ण-वर्णकी गायसे ही प्राप्त की जा सकती हैं—'**सर्वं कापिलमेव वा।**' पूर्ण विवरण इस प्रकार है—

गोमूत्रं ताम्रवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम्।
पयः काञ्चनवर्णाया नीलाया एव वै दधि॥
घृतं तु सर्ववर्णायाः सर्वं कापिलमेव वा।

(लौगाक्षिस्मृति)

अर्थात् लाल रंग (ताम्रवर्ण)-की गायका मूत्र और श्वेत गायका गोबर, काञ्चन वर्णकी गायका दूध तथा नीले रंगकी गायका दही, सर्ववर्ण (चितकबरी) रंगकी गायका घी अथवा पाँचों वस्तुएँ कपिला गायकी ही हो सकती हैं।

पाँचों द्रव्योंका अनुपात निम्न प्रकारसे है—

गोमूत्रभागस्तस्यार्धं शकृत् क्षीरस्य तत् त्रयम्।
द्वयं दध्नो घृतस्यैक एकश्च कुशवारिणः॥

अर्थात् पञ्चगव्यमें एक भाग घृत, एक भाग गोमूत्र तथा एक भाग कुशोदक, दो भाग दही, तीन भाग दूध (अन्य स्मृतियोंमें सात भागका भी उल्लेख मिलता है) और आधा भाग गोमय होना चाहिये।

विशेष प्रभावशाली बनानेके लिये वेदमन्त्रोंसे पाँचों द्रव्योंको अभिमन्त्रित भी किया जा सकता है। यथा—

गायत्र्यादाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्।
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णोति वै दधि॥
शुक्रमसि ज्योतिरसीत्याज्यं देवस्येति कुशोदकम्॥

अर्थात् '**गायत्री**' मन्त्रद्वारा गोमूत्रको, '**गन्धद्वारां०**' आदि मन्त्रद्वारा गोमयको, '**आप्यायस्व०**' मन्त्रद्वारा गोदुग्धको, '**दधिक्राव्णो०**' इत्यादि मन्त्रसे दहीको, '**शुक्रमसि०**' और '**ज्योतिरसि०**' आदि मन्त्रोंद्वारा गोघृतको तथा '**देवस्य त्वा०**' इस मन्त्रसे कुशोदकको अभिमन्त्रित करके सम्मिलित करना चाहिये।

भारतेतर देशोंमें जहाँ गलकम्बल (सास्ना)-वाली भारतीय नस्लकी गायें उपलब्ध नहीं हैं, वहाँ पञ्चगव्य बना पाना सम्भव ही नहीं होगा। अतः वहाँ धार्मिक कृत्योंमें गङ्गाजलका ही उपयोग करना चाहिये। गाय-जैसे प्रतीत होनेवाले किसी अन्य पशुके तो वैसे उपयोगका प्रश्न ही नहीं है।



सर्वरोगहर टॉनिक—पञ्चगव्य

(स्व० पं० श्रीहिमकरजी शर्मा, वैद्य आयुर्वेदभास्कर)

एलोपैथिक तीव्र औषधियाँ एक बीमारी हटाकर दूसरी पैदा करती हैं। अनेक औषधियाँ रिएक्शन करती हैं, परंतु पञ्चगव्य यानी गौके मूत्र, गोबर, दूध, दही तथा घीको एक सुनिश्चित अनुपातमें मिलाकर औषधिके रूपमें सेवन किया जाय तो लाभ-ही-लाभ होता है, कोई रिएक्शन नहीं होता। पञ्चगव्य एक सशक्त टॉनिक है। पञ्चगव्य बनानेकी विधि जान लें—छाना हुआ गोमूत्र ५ चम्मच, कपड़ेमें रखकर निचोड़ा गया गोमय-रस १ चम्मच, गोदुग्ध २ चम्मच, गो-दधि १ चम्मच, गोघृत १ चम्मच, शुद्ध मधु २ चम्मच—इन छहों वस्तुओंको चाँदी अथवा काँचकी कटोरीमें रखकर मिलायें। प्रातः मुखशुद्धिके पश्चात् थोड़ा जल पीकर पञ्चगव्य धीरे-धीरे पीना चाहिये। आदत लगानेसे यह जलपानकी तरह आपको सबल बनायेगा। जाड़ेमें पञ्चगव्यकी मात्रा बढ़ा देनेसे आपको जलपान करनेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। पञ्चगव्य आरम्भ करनेके पूर्व एक सप्ताहतक त्रिफला, गोमूत्र अथवा गर्म दूधमें घृत डालकर पेट साफ कर लें। पञ्चगव्यका सेवन अधिक लाभकारी सिद्ध होगा। गर्भवती माताओंको आप विटामिन कैप्सूल खिलाते हैं। यह कैप्सूल गर्भवतीका वजन बढ़ाता है, बच्चेको लाभ नहीं पहुँचाता। परंतु पञ्चगव्य गर्भस्थ बच्चेको पुष्ट करेगा। नॉर्मल डिलेवरी होगी। जच्चा-बच्चा दोनों स्वस्थ रहेंगे। डिलेवरीके बाद पञ्चगव्यमें घृतकी मात्रा बढ़ा दें, शरीरकी निर्बलता जल्दी हटेगी। शीतकालमें गोदुग्धमें किशमिश-खजूरको कूटकर मिला दें। पुरुषोंको शक्तिदाता तथा माताओंको पुष्टिकारक टॉनिक (विटामिन बी १२) मिलेगा।

पञ्चगव्यमें भी गोमूत्र महौषधि है। गोमूत्रमें कार्बोलिक एसिड, पोटैशियम, कैलशियम, मैग्नेशियम, फॉस्फेट, पोटाश, अमोनिया, क्रिएटिनिन, नाइट्रोजन, लैक्टोज, हार्मोन्स (पाचक रस) तथा अनेक प्राकृतिक लवण पाये जाते हैं, जो मानव-शरीरकी शुद्धि तथा पोषण करते हैं। दन्तरोगमें गोमूत्रका कुल्ला करनेसे दाँतका दर्द ठीक होना सिद्ध करता है कि उसमें कार्बोलिक एसिड समाविष्ट है। बच्चोंके सुखंडी रोगमें गोमूत्रमें विद्यमान कैलशियम हड्डियोंको सबल बनाता है। गोमूत्रका लैक्टोज बच्चों-बूढ़ोंको प्रोटीन प्रदान करता है। हृदयकी पेशियोंको टोन-अप करता है। वृद्धावस्थामें दिमागको कमजोर नहीं होने देता। महिलाओंके हिस्टीरियाजनित मानस-रोगोंको रोकता है। सिफलिस-गोनोरिया-जैसे यौन रोगोंको मिटाता है। खाली पेट आधा कप गोमूत्र पिलानेसे यौन रोग नष्ट हो जाते हैं। यदि गोमूत्रमें अमृता (गुडूची) अथवा शारिवा (अनन्तमूल)-का रस अथवा ५ ग्राम सूखा चूर्ण मिला दिया जाय तो बीमारी शीघ्र ठीक हो जाती है। मायोसिन, साइक्लिन-जैसी शक्तिशाली दवासे ठीक हुआ यौन रोग लौटकर आ सकता है, परंतु गोमूत्रसे ठीक किया गया यौन रोग कभी नहीं लौटता।

गोमूत्रका कार्बोलिक एसिड अस्थिस्थित मज्जा एवं वीर्यको परिष्कृत कर देता है। निःसंतानको संतान देता है। अनेक रोगी इसके प्रमाण हैं। एक नवयुवक यौन रोगग्रस्त युवतीके सम्पर्कमें आ गया। दोनों मेरे पास आये। मैंने गोमूत्रमें टिंचर कार्डम् (दालचीनीका तेल) मिलाकर एक वर्षतक पिलाया, दोनोंको आशातीत लाभ हुआ। गोमूत्रमें मधु मिलाकर युवतीका उपचार किया गया। इस चिकित्सासे लाभ हुआ। डिस्टिल वाटरमें गोमूत्र मिलाकर एनीमा भी लगाया गया। दोनों ठीक हो गये। कालान्तरमें नवयुवकका विवाह हुआ, उसे स्वस्थ पुत्रकी प्राप्ति हुई। मैंने इसे गोमाताका दिया हुआ आशीर्वाद समझा।

बच्चोंकी सूत्र-कृमि (थ्रेड वर्म)—आधा औंस गोमूत्रमें २ चम्मच मधु मिलाकर पिलानेसे बच्चोंके पेटकी कृमि निकल जाती है। शुद्ध मधु न मिले तो सुरक्का अथवा साफी १ चम्मच मिलाकर गोमूत्र पिलायें। एक सप्ताहमें गोमूत्र पेटकी कृमिको निकालकर बच्चेको स्वस्थ बना देगा। टॉनिकके रूपमें गोमूत्र तथा मधु पिलानेसे उसके सभी रोग नष्ट हो जायँगे। बच्चा सदा स्वस्थ रहेगा।

गैस्ट्रिक—पावरोटी, बिस्किट, पकौड़े, फास्टफूड खिलानेसे पेटदर्द, गैस, खट्टी डकार तथा अम्लपित्त-जैसे रोग बहुत प्रचलित हैं। डॉक्टर गोलियाँ तथा मिक्स्चर देते हैं, परंतु रोग स्थायी हो जाता है। पक्काशय (ड्यूडनम)-की सूजनके कारण अल्सर होनेपर ऑपरेशन होता है। यदि आरम्भमें ही गोमूत्रका सेवन कराया जाय तो पाचनतन्त्र धीरे-धीरे सबल बन जायगा और रोगमुक्ति अवश्य मिलेगी। यदि गैसपीडितको खट्टी उलटी हो तो उसे अविपत्तिकर चूर्ण मिलाकर गोमूत्रका सेवन कराना चाहिये। गोमूत्र-सार अथवा गोमूत्र-क्षार-वटी गोघृतमें मिलाकर भोजनसे पहले सेवन कराना चाहिये। गर्मीके मौसममें गोमूत्र-वटी ग्लूकोजके शरबतसे लें, जाड़ेमें मधु मिलाकर सेवन करें। पेप्टिक अल्सर हो तो आरोग्यवर्धिनी दो गोली जलसे खिलाकर आधा घंटा पश्चात् गोमूत्र पिलायें। मैंने पेटके रोगियोंको ऑपरेशनके बाद भी गोमूत्र पिलाया है। लम्बे समयतक गोमूत्रका सेवन पेटकी समस्त बीमारियोंको ठीक कर देता है।

जुकाम, सर्दी, साँस फूलना, दमा—तवेको खूब गर्म करके, फिटकरी तोड़कर गर्म तवेपर डालकर उसका जलीय अंश सुखा दें। चाकूसे खुरचकर सफेद पाउडर शीशीमें सुरक्षित रखें। इसे आयुर्वेदमें टंकण (बालसुधा) कहते हैं। आधा कप गोमूत्रमें चौथाई चम्मच बालसुधा मिलाकर खाली पेट पीनेसे पुराना जुकाम अवश्य ठीक होगा। दमाके पुराने रोगियोंको गोमूत्रमें अडूसा (वासाचूर्ण) ५ ग्राम मिलाकर पिलायें। दमाके रोगमें चावल, आलू, चीनी, उड़दकी दाल, दही, मांसाहार तथा धूम्रपान न करें। शक्ति प्रदान करनेके लिये सीतोपलादि चूर्ण, च्यवनप्राश, वासावलेह मधु मिलाकर दें, परंतु गोमूत्र भी दोनों समय पिलायें। डिप्थीरिया (डब्बा रोग)-में दो ग्राम बालसुधा मिलाकर गोमूत्र एक-एक घंटेपर पिलायें। डीप्थीरियाका इंजेक्शन तभी लगायें, जब साँस तथा भोजनकी नली सिकुड़ गयी हो। गोमूत्रमें सरसोंके तेलकी दो बूँद मिलाकर नाकमें टपकावें। बंद नाक खुल जायगी। रोगी आरामसे साँस लेने लगेगा। गोमूत्रमें गोघृत तथा शुद्ध कर्पूर मिलाकर कपड़ा तर करके सीनेपर रखें। कफ पिघलकर निकल जायगा।

वातरोग—घुटने, कुहनियों, पैरकी पिण्डलियोंमें साइटिका रोग होनेपर, मांसपेशियोंमें दर्द, सूजन होनेपर, गोमूत्रसे बढ़कर दूसरी कोई औषधि नहीं है। संधिवात, हड़फूटन, रूमेटिक फीवर तथा आर्थराइटिसमें सभी दवाइयाँ फेल हो जाती हैं। अस्सी प्रकारके वातरोगोंकी एकमात्र औषधि गोमूत्र है। आधा कप गोमूत्रमें शुद्ध शिलाजीत २ ग्राम, रास्नादि क्वाथ, रास्नादि चूर्ण, सोंठ-चूर्ण, शुद्ध गुग्गुल अथवा महायोगराज गुग्गुल दो गोली मिलाकर पिलायें। कब्ज होनेपर सप्ताहमें एक दिन गोमूत्रमें शुद्ध एरंडतेल (कैस्टर ऑयल) मिलाकर पिलायें। हाथ-पैरकी अँगुलियोंमें टेढ़ापन आ जाय तो स्वर्णयुक्त महायोगराज गुग्गुल तथा स्वर्णयुक्त चन्द्रप्रभावटीके साथ गोमूत्रका सेवन करायें। चुम्बक-चिकित्सा इस रोगमें लाभकारी है। महानारायणतेल सरसोंके तेलमें अफीम गलाकर मालिश करें। धतूर, आक अथवा एरंडके पत्तोंमें तेल चुपड़कर रातमें पट्टी बाँध दें—आराम मिलेगा।

डायबिटीज—शक्कर (चीनी)-की बीमारी अनेक बार चाय तथा कॉफी पीने एवं पेनक्रियाजकी कमजोरीसे होती है। बीमारीका पता लगते ही चावल, आलू, चीनी, गुड़, मिठाई, मांसाहार बंद कर दें। सुबह खाली पेट स्वर्णयुक्त चन्द्रप्रभावटी दो गोली चबाकर गरम जल तथा एक घंटेके बाद ताजा गोमूत्र पिलायें। संध्या-कालका नाश्ता और चाय बंद करके शिलाजीत कैप्सूल खिलाकर गोमूत्र पिलायें। मेथी-चूर्ण एक चम्मच जलके साथ दें। जामुनके हरे पत्ते पाँच, नीमके पत्ते दस तथा बेलपत्र पाँच, आमके पीले या हरे पत्ते पाँच पीसकर रस निकालें, इसी रसके साथ शिलाजीत कैप्सूलका प्रयोग करें। ब्लड-शुगर अधिक बढ़ा हुआ हो तो स्वर्ण-वसंत-कुसुमाकर दोनों समय गोमूत्रके साथ दें। डायबिटीजके कारण गुर्दे, लीवर तथा हार्ट कमजोर हो जाते हैं जिन्हें केवल गोमूत्र और शिलाजीत ही ठीक

कर सकेगा।

क़ब्ज़—टट्टी साफ नहीं होना सभी रोगोंको बढ़ाता है। गोमूत्र पेशाब तथा टट्टीका कब्ज दोनोंका खुलासा करता है। टट्टीकी क़ब्ज़में गोमूत्र दोनों समय पिलायें। शामको त्रिफलाचूर्ण गर्म पानीसे दें फिर गोमूत्र पिलायें। बच्चोंको टट्टी नहीं होनेपर गोमूत्रमें मधु मिलाकर पिलायें। गोमूत्रमें एरंडका तेल अथवा बादाम-रोगन दो चम्मच मिलाकर सेवन करानेसे दस्त साफ होगा। गायके गरम दूधमें एक चम्मच गायका शुद्ध घृत मिलाकर पिलानेसे गर्भवती महिलाओंको क़ब्ज़ नहीं रहेगा।

यकृत्-रोग—मलेरियाके कारण तिल्ली (स्प्लीन) बढ़ जाती है। शराब पीने तथा मांस खानेसे यकृत् निष्क्रिय होकर जांडिस—पीलिया और अन्तमें कामला रोग हो जाता है। खूनमें हीमोग्लोबीनकी कमीसे पेशाब पीला हो जाता है तथा आँखें पीली हो जाती हैं। इस बीमारीमें खाली पेट गोमूत्र पिलायें। पुनर्नवा (साँट—रक्त पुनर्नवा)-को पीसकर पचीस ग्राम रसमें पचास ग्राम ताजा गोमूत्र मिलाकर पिलायें। पुनर्नवाका चूर्ण पाँच ग्राम रस नहीं मिलनेपर मिलायें। भोजनके बाद पुनर्नवारिष्टि पिलायें। अधिक दुर्बलतामें पुनर्नवा मंडूर पाँच ग्राम मधुमें मिलाकर चटायें। एक घंटाके पश्चात् गोमूत्र पिलायें। गोआर पाठा (घृतकुमारी)-के पचीस ग्राम रसमें पचास ग्राम गोमूत्र मिलाकर पिलानेसे पाचनतन्त्रके सभी अवयव रोगमुक्त हो जाते हैं। दो ग्राम अजवायनका चूर्ण अथवा जायफल घिसकर गोमूत्रमें मिलाकर पिलानेसे पेटका दर्द, मरोड़, आँव, भूखकी कमी निश्चित दूर हो जायगी।

बवासीर—खूनी तथा बादी दोनों बवासीर (पाइल्स) गोमूत्र पीनेसे ठीक होते हैं। शामको खाली पेट गोमूत्रमें दो ग्राम कलमी शोरा घोलकर पिलायें। क़ब्ज़की स्थितिमें त्रिफला-चूर्ण मिलाकर गोमूत्र पिलायें। जलोदरमें दो ग्राम यवक्षार मिलाकर गोमूत्र पान करना चाहिये। अन्न खाना बंद कर दें। फलों तथा सब्जियोंका रस पिलायें। दूध भी दे सकते हैं।

खाज-खुजली—खुजली, एग्जिमा, सफेद दाग, कुष्ठ-रोगमें दोनों समय गोमूत्र पिलायें। गिलोय (अमृता, गुडूची)-के रसमें गोमूत्र मिलाकर पिलानेसे शीघ्र लाभ होता है। चावल मोगराका तेल गोमूत्रमें मिलाकर चमड़ीपर मालिश करें।

हृदयरोग—गोमूत्र पीनेसे खूनमें थक्के नहीं जमते। हाई एवं लो ब्लडप्रेशरमें गोमूत्रका लैक्टोज असर करता है। हृदयरोगमें गोमूत्र अच्छा टॉनिक है। यह सिराओं और धमनियोंमें कोलस्ट्रॉलको जमने नहीं देता। दस ग्राम अर्जुन-छालका चूर्ण गोमूत्रमें मिलाकर पिलायें। अर्जुन-छालकी चाय बनाकर पिलानेसे भी बहुत लाभ होता है। मिठासके लिये चीनीके स्थानपर किशमिश-खजूर, सेबका रस व्यवहारमें लायें।

हाथी-पाँव (फीलपाँव)—सौ ग्राम गोमूत्रमें हल्दीचूर्ण पाँच ग्राम, मधु अथवा पुराना गुड़ मिलाकर पिलायें। फाइलेरियामें अण्डकोष, हाथकी नसोंमें सूजन आ जाती है। सुबह-शाम दोनों समय नित्यानन्दरस दो-दो गोली गरम पानीसे खिलाकर आधा घंटाके बाद गोमूत्र पिलायें। क़ब्ज़में एरंडका तेल मिलाकर गोमूत्र पिलायें। चाय, कॉफी, चॉकलेट, मांसाहार तथा धूम्रपान बंद कर दें।

गुर्दा-रोग—किडनी मानवके रक्तसे अशुद्धियोंको छानकर मूत्रद्वारा शरीरका विष निकालती है। किडनी फेल होनेपर इसका प्रत्यारोपण होता है। डायलिसिस एक महँगा इलाज है। जिनका गुर्दा कमजोर हो, रातमें बार-बार पेशाब लगे, प्रोस्टेट-ग्रन्थि बढ़ गयी हो, उन्हें नियमित गोमूत्र पीना चाहिये।

गोमूत्रसे बढ़कर कोई औषधि नहीं है। बाल्यावस्थासे वृद्धावस्थातक बिना किसी रोगके गोमूत्र पीना स्वस्थ रहनेके लिये सर्वोत्तम है। गोमूत्र पीनेके पश्चात् तुरंत जल पीनेसे गला मीठा हो जाता है।

—प्रे० श्रीसुधाकरजी ठाकुर
बस स्टैंड, बी०एम०वाई भिलाई
पिन-४९००२५ (म०प्र०)



धार्मिक व्रतोंसे आरोग्यकी प्राप्ति

(डॉ० श्रीकेशव रघुनाथजी कान्हेरे एम्०ए०, पी-एच्०डी०, वैद्य विशारद)

यदि आज हम भारतीय समाजकी ओर दृष्टि डालें तो एक बात स्पष्ट-रूपसे दिखायी देती है कि हमारा समाज पाश्चात्त्य संस्कृतिसे इतना प्रभावित हो गया है—इतना ग्रस्त हो गया है कि वह अपनी-स्वयंकी पहचान ही भूल गया है। वह अपने धार्मिक व्रतोंको हेय दृष्टिसे निहारता है। यदि कोई व्यक्ति ऐसे लोगोंको इन्हें आचरणमें लानेकी सलाह देनेका प्रयास करता है तो वे उलटा प्रश्न करते हैं, कहते हैं कि 'धार्मिक व्रतोंके पीछे कोई वैज्ञानिक आधार या सिद्धान्त है क्या? इनके पालनसे कोई लाभ है क्या?' ऐसे न जाने कितने प्रश्नोंकी बौछार करके वे स्वयं तो भ्रमित रहते ही हैं, दुर्बल आस्थावालोंको डिगा भी देते हैं।

आजकलकी छोटी-छोटी बस्तियों, कस्बों, गाँवों, शहरों और बड़े-बड़े नगरोंमें निवास करनेवालोंकी ओर निगाह डालें तो परिणाम अपने-आप सामने आता है। जरा-सी छींक आने, थोड़ा-सा ज्वर होने तथा सर्दी-खाँसीसे पीडित होनेपर लोग डॉक्टरकी शरणमें जाते हैं। तुरंत मूत्र तथा रक्त आदिकी जाँच करानेकी सलाह मिलती है और रिपोर्ट देखकर चिकित्सक इलाज करते हैं। बड़े-बड़े शहरों-नगरोंमें नर्सिंग होम और विशालकाय हॉस्पिटलोंकी शृंखलाएँ फैल रही हैं। आजके युगमें कैंसर, ब्लडप्रेशर, मधुमेह, गठिया आदि रोगोंसे अधिकांश व्यक्ति पीडित हैं। कुछ रोग तो ऐसे हैं जो धनके साथ-साथ शरीरका भी नाश कर डालते हैं।

सौ-दो-सौ वर्षोंके इतिहासका ही सिंहावलोकन करें तो आजकी तुलनामें तत्कालीन भारतीय समाज अधिक स्वस्थ था, नीरोग था। आजके जैसे भयंकर रोग कोसों दूर थे। सामान्य रोगोंका आक्रमण नहीं होता था ऐसी बात नहीं, परंतु वे लोग धर्मशास्त्रके अनुसार आचरण करके स्वस्थ तथा नीरोग रहनेका प्रयास अवश्य करते थे और उन्हें सफलता भी मिलती थी।

हमारे ऋषि-मुनियोंने 'मानव किस प्रकार स्वस्थ जीवन व्यतीत करे', इसकी खोज करके वैज्ञानिक एवं आयुर्वेदके आधारपर 'धार्मिक व्रतोंका अनुपालन' करनेका उपाय प्रस्तुत किया। इन व्रतोंके पालनसे अनेक सामान्य रोगोंसे मानव मुक्ति प्राप्त करके स्वस्थ जीवनका अनुभव करते-करते मानसिक तनावसे छुटकारा पाकर भगवत्प्राप्तिका सहज-सुलभ साधन भी प्राप्त कर सकता है। ऐसा विश्वास व्यक्त किया गया है।

भारतवर्षमें नव-वर्षारम्भसे अर्थात् चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे संवत्सरपर्यन्त सभी तिथियोंमें व्रतोंका विधान है। मासव्रत, वारव्रत, तिथिव्रत, नक्षत्रव्रत आदि तो प्रसिद्ध ही हैं। सभी व्रत करने सम्भव तो नहीं हैं तथापि प्रत्येक मासमें कम-से-कम एक या दो व्रतोंका पालन अवश्य करना चाहिये।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा अर्थात् नववर्षारम्भको मुख-मार्जन स्नानादिसे निवृत्त होनेके उपरान्त सर्वप्रथम कड़वे नीमके पत्तोंका सेवन करनेका विधान है। प्रतिदिन प्रातःकाल कड़वे नीमके पत्तोंका सेवन करनेसे रक्त शुद्ध होकर अनेक चर्म-रोगोंसे मुक्ति मिलती है।

इसी दिनसे श्रीरामनवमीतक चैत्र नवरात्र-उत्सवका शुभारम्भ होता है। अनेक स्त्री-पुरुष इसमें उपवास रखकर भगवान् श्रीराम और भवानी माताकी उपासना करके दीर्घ शान्ति और सुख प्राप्त करनेकी कामना करते हैं।

वैशाखमासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिमें 'अक्षय-तृतीया' एक अत्यन्त शुभ मुहूर्त है। इस पवित्र तिथिको उपवासपूर्वक जलसे भरा हुआ मृत्तिका-कुम्भ, फल-पंखा तथा दक्षिणासहित दान करनेका विधान है। इसी तिथिसे प्रतिदिन मिट्टीके घड़ेमें भरा हुआ जल पीना प्रारम्भ करना आरोग्यदायी माना जाता है। मिट्टीके सम्पर्कसे जल शुद्ध होता है। पञ्चतत्त्वोंमेंसे ये दो तत्त्व—जल और पृथ्वी शरीरके लिये पोषक बनते हैं। सर्दीके दिनोंमें बना हुआ तथा अग्निसम्पर्कसे पका हुआ मिट्टीका घड़ा अधिक उपयोगी माना गया है। फ्रिजमें रखे हुए जलकी अपेक्षा मटकेका पानी अधिक लाभकारी है।

श्रीपुरुषसूक्तमें एक ऋचा है— 'चन्द्रमा मनसो जातः०' अर्थात् परमब्रह्म परमात्माके मनसे चन्द्रमाकी उत्पत्ति हुई है। चन्द्रमा शीतल है। कहते हैं कि चन्द्र-किरणोंसे अमृतकी वर्षा होती है। मानवकी सम्पूर्ण क्रिया मनसे ही होती है। चन्द्रमा और भगवान् श्रीगणेशका अद्वितीय सम्बन्ध है। इसी दृष्टिसे मनकी शान्ति-हेतु और बुद्धि-प्राप्ति-हेतु श्रीगणेशचतुर्थीका उपवास फलदायी होता है। प्रत्येक मासमें दो चतुर्थी आती हैं। अधिकांश लोग कृष्णपक्षकी चतुर्थीका व्रत करते हैं। दिनभर उपवास रखकर शामको भगवान् श्रीगणेशका पूजन करके चन्द्रोदयके पश्चात् चन्द्रका दर्शन कर भोजन करना उपयुक्त है। भगवान् श्रीगणेशको तिल-गुड़का नैवेद्य या मोदक अधिक प्रिय है। चन्द्रोदयके पश्चात् भोजन करनेसे अन्नमें उत्पन्न चन्द्रमाका अमृत एवं उसकी शीतलता मनको शान्ति प्रदान करती है।

धार्मिक व्रतोंमें एकादशी, प्रदोष और शिवरात्रि, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीरामनवमी आदिका बड़ा महत्त्व है। वर्षभरमें चौबीस एकादशियाँ आती हैं। इनमें विष्णुशयनी, प्रबोधिनी एकादशी तथा महाशिवरात्रि-व्रतका अपने-आपमें बड़ा महत्त्व है।

यद्यपि सालभर धार्मिक व्रतोंका अपार भण्डार है तथापि चातुर्मास-व्रतोंके पालनका आरोग्यप्राप्तिकी दृष्टिसे अनोखा एवं अद्वितीय महत्त्व माना गया है। यदि हम चातुर्मासमें धार्मिक व्रतोंका सही-सही पालन करें तो आरोग्यप्राप्तिके साथ-साथ आध्यात्मिक शान्ति भी प्राप्त कर सकेंगे।

चातुर्मासमें वात-पित्त-प्रकोपक साग-सब्जियोंका त्याग करना श्रेयस्कर होता है। साथ ही एक समय हलका भोजन करना चाहिये।

एक कहावत है—'वैद्यानां शारदी माता पिता च कुसुमाकरः।' अर्थात् चिकित्सकोंके लिये शरद्-ऋतु लाभकारी है। यह एक माताकी भाँति वैद्य लोगोंकी परवरिश करती है तो वसन्त-ऋतु एक पिताकी तरह उनका पालन-पोषण करता है। दोनों ऋतुएँ अपना प्रभाव मानवके स्वास्थ्यपर डालती हैं। अधिकांश व्यक्ति इन दो ऋतुओंके आगमनके साथ-साथ ज्वर, मलेरिया, पीलिया आदि रोगोंसे पीडित होते हैं। इन रोगोंसे बचनेका घरेलू सामान्य उपाय धार्मिक व्रतोंका पालन (आचरण)-कर अपने खान-पानपर ध्यान देते हुए ईश्वरकी आराधना करना है, इससे शरीर नीरोग तो रहता ही है, आध्यात्मिक लाभ भी प्राप्त होता है।

वर्षा-ऋतुमें अनेक सब्जियाँ सड़ती हैं, उनमें कीड़े प्रवेश करते हैं, तालाब आदिका जल दूषित हो जाता है। मच्छर, विभिन्न प्रकारके कीड़े-कीट वर्षा-ऋतु और शरद्-ऋतुमें पैदा होते हैं। इन कीड़ों-मकोड़ोंसे रोग-मुक्तिके लिये धार्मिक व्रतोंका विशेषरूपसे आयोजन होता है।

आरोग्यकी दृष्टिसे सप्ताहमें कम-से-कम एक दिन उपवास करके उस दिनसे सम्बन्धित देवताकी आराधना-पूजा-अर्चना करना पुण्यदायक है। सोमवार भगवान् शङ्करके लिये, गुरुवार भगवान् दत्तात्रेय-हेतु, शुक्रवार या मङ्गलवार माता भवानीके हेतु, शनिवार श्रीहनुमान् एवं शनिदेवकी आराधना-हेतु व्रत किया जाता है। सोमवारको शामके समय भगवान् शङ्करकी पूजा-अर्चना करके भोजन करना उपयोगी होता है। अन्य दिन—रविवार और बुधवारको मध्याह्नके पश्चात् एक समय भोजन करना चाहिये। सामान्यतः दूध, फल, साबूदाना, सिंघाड़ा, मखाना आदि सात्त्विक, सुपाच्य और हल्के पदार्थोंका सेवन करना अत्यन्त लाभकारी है। सम्भव हो तो पूर्ण रूपसे निराहार एवं निर्जल व्रत करना चाहिये। अधिकांश व्रतों-त्योहारोंमें दान करनेकी परम्परा है। दानका बड़ा महत्त्व है।

दान देना व्यक्तिके मानसिक विकासकी दृष्टिसे और सामाजिक कल्याणकी दृष्टिसे भी आवश्यक है। चातुर्मासके उपवास और नियम-धर्म इस दृष्टिसे भी उपयोगी होते हैं। उपवास और नियम-धर्मोंका पालन करनेवाले व्यक्तियोंका स्वास्थ्य तो उत्तम रहेगा ही, साथ ही उनके व्यक्तित्वका भी विकास होगा।

अतः धार्मिक व्रतोंका उचित पालन (आचरण) करनेसे शारीरिक शुद्धि होकर आध्यात्मिक शान्ति भी प्राप्त होगी। इन व्रतोंके माध्यमसे हम ईश्वरकी भी प्राप्ति कर सकते हैं।

~~~~~~
~~~~~~

औषधि-शास्त्र (भेषज-विज्ञान)-में दूधका महत्त्व

(श्रीश्रवणकुमारजी अग्रवाल)

भारतवर्षमें गायके दूधका औषधीय गुण अति प्राचीनतम कालसे जाना जाता है। चिकित्सकीय दृष्टिकोणसे दूध बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह शरीरके लिये उच्च श्रेणीका खाद्य पदार्थ है।

भोज्य पदार्थके रूपमें दूध एक महत्त्वपूर्ण आहारका विलक्षण समुच्चय है। दूध प्रोटीन, विटामिन, कार्बोहाइड्रेट्स, खनिज, वसा, इन्जाइम तथा आयरनसे युक्त होता है। दूधमें प्रोटीन और कैलशियम तत्त्वोंका प्रसार होनेसे यह (दूधिया) अद्वितीय, अपारदर्शी होता है। मानव-जातिके लिये यह सम्पूर्ण भोजन है। चिकित्सक सभी आयु-वर्गके लिये इसे पौष्टिक भोजनके रूपमें निम्न कारणोंसे सेवन करनेका सुझाव देते हैं—

१-प्रकृतिमें उपलब्ध द्रव्यों—पदार्थोंमें केवल दूधमें शुगर लैक्टोज (दुग्ध-शर्करा) निहित होता है।

२-प्राणियोंमें नाडी-मण्डल एवं बुद्धिके विकासके लिये दुग्ध-शर्करा बहुत आवश्यक है।

३-ऊर्जस्वी गतिशील शारीरिक क्रिया-कलापोंके लिये कार्बोहाइड्रेट आवश्यक होता है।

४-शरीरमें लाल रक्त-कोशिकाके संश्लेषण (समन्वय) एवं शारीरिक शक्तिके सुधारके लिये आयरन (लौह तत्त्व) आवश्यक होता है।

५-कैलशियम और फॉस्फोरस दाँतों और अस्थियोंको मजबूत रखनेमें सहायक होते हैं।

६-विटामिन 'ए' आँखकी रोशनी और त्वचाको स्वस्थ रखता है एवं कम्पन-रोगको हटाता है।

७-विटामिन 'बी' नाडी-मण्डल एवं शरीरके विकासके लिये आवश्यक है।

८-विटामिन 'सी' शारीरिक रोगोंके प्रति प्रतिरोधक शक्ति पैदा करता है।

९-विटामिन 'डी' सुखण्डी-रोगसे सुरक्षा प्रदान करता है।

दूधके नियमित उपयोगकी अनुशंसा निम्न कारणोंसे भी की जाती है—

१-रात्रिमें सोनेसे पहले एक कप दूधका सेवन रक्तके नव-निर्माणमें सहायक होता है एवं विषैले पदार्थोंको निष्क्रिय करता है।

२-प्रातःकाल हलके गरम दूधका सेवन पाचन-क्रियाको संयोजित करनेमें सहायता करता है।

३-गरम दूधमें मिस्री और काली मिर्च मिलाकर लेनेसे सर्दी-जुकाम ठीक हो जाता है।

४-दूधमें सबसे कम कोलेस्ट्रॉल (१४ मि०ग्रा०/१०० ग्रा०) होनेके कारण मधुमेहके रोगियोंको वसारहित दूध-सेवनकी सलाह दी जाती है।

५-उच्च रक्तचापसे पीडित व्यक्तिको प्रतिदिन २०० मि०ली० दूध (सिर्फ द्रव्य, पेयके रूपमें) पीनेकी सलाह दी जाती है।

६-अग्निवर्धक व्रण (Peptic Ulcer)-के रोगियोंके लिये दूध एक आदर्श आहार है। ५० मि०ली० ठंडे दूधमें एक चम्मच चनेका सत्तू दो-दो घंटेपर देनेसे अल्सरमें शीघ्र ही लाभ हो जाता है।

७-दुग्ध-सेवनसे सात्त्विक विचार, मानसिक शुद्धि एवं बौद्धिक विकास होता है।

तक्र-माहात्म्य—(योगरत्नाकरके आलोकमें)

[छाँछ या मट्ठेके गुण]

(डॉ० श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी, 'रत्नमालीय' एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

आरोग्यरक्षक खाद्य-पेय पदार्थोंमें तक्रकी उपादेयता सर्वविदित है। यह स्वादु, सुपाच्य, बल, ओज एवं स्फूर्ति बढ़ानेवाला अमृत-तुल्य पेय है। उदर-रोग या विकार-विह्वल व्यक्तियोंके लिये तो यह रामबाणके समान अमोघ औषध है। 'योगरत्नाकर' नामक प्रसिद्ध आयुर्वेदिक ग्रन्थके प्रणेता इसकी गुणावलीपर मुग्ध होकर खुले स्वरमें घोषणा करते हैं—

कैलासे यदि तक्रमस्ति गिरिशः किं नीलकण्ठोभवे-
द्वैकुण्ठे यदि कृष्णतामनुभवेदद्यापि किं केशवः।
इन्द्रो दुर्भगतां क्षयं द्विजपतिर्लम्बोदरत्वं गणः
कुष्ठित्वं च कुबेरको दहनतामग्निश्च किं विन्दति॥

अर्थात् कैलासपर यदि तक्र रहता तो क्या भगवान् शिव नीलकण्ठ ही रहते? वैकुण्ठमें यदि तक्र होता तो क्या

केशव (भगवान् विष्णु) साँवले ही रहते? देवलोकके राजा इन्द्र क्या दुर्भग (सौन्दर्यहीन) ही रहते? चन्द्रमा जैसे द्विजपतिको क्षयरोग होता? श्रीगणेशजीका उदर इतना बढ़ा होता? कुबेरको कुष्ठ रहता? और अग्निदेवके अंदर दाह रहता? कभी नहीं, अर्थात् तक्रके सेवनसे विष, विवर्णता, असौन्दर्य, क्षय, उदररोग, कुष्ठ और दाह आदि विविध रोग दूर होते हैं।

इसी प्रकार आगे वे कहते हैं—

न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः।
यथा सुराणाममृतं प्रधानं तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः॥

तक्रका सेवन करनेवाला कभी पीडित नहीं होता है अर्थात् रोगी नहीं होता है। तक्रसे दग्ध रोग फिर कभी नहीं होते हैं। जिस प्रकार देवताओंके लिये अमृत प्रधान है, उसी प्रकार पृथ्वीपर मनुष्योंके लिये तक्र प्रधान कहा गया है।

तक्रके विविध भेद और गुण—आयुर्वेदविशारदोंकी दृष्टिमें भिन्न-भिन्न लक्षणोंके आधारपर मट्ठेका वर्गीकरण—उदश्वित्, मथित, घोल और तक्रके रूपमें चार प्रकारसे किया गया है—

उदश्विन्मथितं घोलं तक्रं ज्ञेयं चतुर्विधम्।
ससरं निर्जलं घोलं मथितं सरवर्जितम्।
तक्रं पादजलं प्रोक्तमुदश्विच्चार्धवारिकम्।

योगरत्नाकरके मतसे—जिस दहीमें आधा जल देकर मथा जाय उसे 'उदश्वित्' कहते हैं। दिवोदास-प्रभृति आचार्योंके मतसे ऐसे दहीको 'तक्र' कहा जाता है।

मथित—साढ़ी निकालकर जो दही बिना जल मिलाये मथा जाय उसे 'मथित' कहते हैं।

घोल—साढ़ीसहित, बिना जलके मथे हुए दहीको 'घोल' कहते हैं।

तक्र—जिस दहीमें चतुर्थांश जल देकर मथा जाय उसे 'तक्र' कहते हैं।

वातपित्तहरं घोलं मथितं कफपित्तनुत्।
तक्रं त्रिदोषशमनमुदश्वित्कफदं स्मृतम्॥

घोल वात और पित्तका नाशक है, मथित कफ-पित्तनाशक है, तक्र त्रिदोषनाशक है और उदश्वित् कफदायक कहा गया है।

गायके तक्रका गुण—गायका तक्र दीपन, मेधावर्धक, अर्श और त्रिदोषनाशक है तथा गुल्म, अतिसार, प्लीहा, अर्श और ग्रहणी-रोगमें हितकर है—

गव्यं तु दीपनं तक्रं मेध्यमर्शस्त्रिदोषनुत्।
हितं गुल्मातिसारेषु प्लीहार्शोग्रहणी गदे॥

दोषभेदसे तक्रके गुण—(क) वात-रोगमें अम्लरसयुक्त तक्र एवं सेंधा नमक मिलाकर सेवन करना हितकर है।

(ख) पित्त-रोगमें मधुर रसयुक्त एवं चीनी मिला तक्र हितकर है।

(ग) कफके दोषमें रूक्ष एवं सोंठ-पीपर-मरिच और क्षारयुक्त तक्र हितकर है।

(घ) मूत्रकृच्छ्र-रोगमें गुड़के साथ तथा पाण्डुरोगमें इसका सेवन चित्रकके साथ हितकर है।

(ङ) हींग-जीरा और सेंधा नमक मिलाया हुआ घोल वातनाशक, अर्श और अतिसारको दूर करनेवाला है।

(च) नमक मिलाकर तक्रका सेवन करनेसे यह ग्रहणी रोगमें दीपनका कार्य करता है और बिना नमकका तक्र ग्रहणी और अर्शका विनाश करनेवाला है।

(छ) शीतकालमें, अग्निमान्द्य, कफ, वातरोग, अरुचि और स्रोतोऽवरोधमें तक्रका सेवन अमृतकी तरह गुणकारी है—

शीतकालेऽग्निमान्द्ये च कफवातामयेषु च अरुचौ स्रोतसां रोधे तक्रं स्यादमृतोपमम्।

(ज) यह क्षतरोग, उष्णकाल, दुर्बलता, मूर्च्छा-भ्रम-दाह और रक्तपित्तसे उत्पन्न रोगोंमें हानिकर है—

नैव तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले
न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपित्तजे॥

कच्चे और गर्म किये तक्रका गुण-भेद—कच्चा तक्र कोष्ठस्थित कफका नाश करता है और कण्ठस्थित कफको बढ़ाता है। पीनस, श्वास तथा कासादिक रोगोंमें गरम किया हुआ मट्ठा हितकारी होता है।

'तक्र' के निम्नांकित अष्टगुण सर्वदा स्मरणीय हैं—

क्षुद्वर्धनं नेत्ररुजापहं च प्राणप्रदं शोणितमांसदं च।
आमाभिघातं कफवातहन्तृ त्वष्टौ गुणा वै कथिता हि तक्रे॥

अर्थात् तक्र क्षुधावर्धक, नेत्ररोगनाशक, प्राणप्रद (बलकारक), रक्त और मांसवर्धक, आम दोषको दूर करनेवाला तथा कफ और वातका नाशक है।

स्वमूत्र नहीं गोमूत्र लीजिये

(श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन)

वर्तमान समयमें स्वमूत्र-चिकित्साका प्रचार किया जा रहा है। परंतु धर्मकी दृष्टिसे स्वमूत्रपान पाप है, जिसकी शुद्धि प्राजापत्य-व्रत करनेसे होती है—

विण्मूत्रस्य च शुद्ध्यर्थं प्राजापत्यं समाचरेत्।

(पाराशरस्मृति १२। ४)

विण्मूत्रभक्षणे चैव प्राजापत्यं समाचरेत्।

(संवर्तस्मृति १८९)

यदि कोई अज्ञानवश भी स्वमूत्र पान कर ले तो वह महान् अशुद्ध हो जाता है; अतः उसका पुनः द्विजाति-संस्कार करना चाहिये—

अज्ञानात्तु सुरां पीत्वा रेतो विण्मूत्रमेव वा।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति ३। २५४)

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः॥

(पाराशरस्मृति १२। २)

वास्तवमें महिमा 'गोमूत्र' की ही है। इसलिये आयुर्वेदमें गोमूत्रको ही सभी प्राणियोंके मूत्रोंसे अधिक गुणकारी बताया गया है—

सर्वेष्वपि च मूत्रेषु गोमूत्रं गुणतोऽधिकम्।
अतोऽविशेषात्कथने मूत्रं गोमूत्रमुच्यते॥

(भावप्रकाश पू०खं० १९। ६। ४)

गोमूत्रमें रोग-नाशकी विलक्षण शक्ति है। गङ्गाका निवास होनेसे गोमूत्र महान् पवित्र है, जबकि स्वमूत्र महान् अपवित्र है। इसलिये स्वमूत्रका कदापि सेवन न करके गोमूत्रका ही सेवन करना चाहिये।



चाय और स्वास्थ्य

(श्रीमदनमोहनजी शर्मा)

आज चाय हमारे देशकी सभ्यताका आवश्यक अंग बन गयी है। घर आये अतिथिका स्वागत बिना चायके अधूरा-सा लगता है। जिस चायसे अधिकांश लोगोंको इतना अधिक स्नेह है, वे सम्भवतः यह नहीं जानते कि चाय स्फूर्तिदायक तथा लाभप्रद पेय न होकर अनेक दुर्गुणोंसे युक्त है। वैज्ञानिकोंद्वारा खोज करनेपर पता चला है कि चायमें तीन प्रकारके प्रमुख विष पाये जाते हैं—

(१) थीन—चाय पीनेसे जो एक हलका-सा आनन्द प्रतीत होता है वह इसी 'थीन' नामक विषका प्रभाव है। ज्ञान-तन्तुओंके संगठनपर इसका बहुत ही विषैला प्रभाव पड़ता है।

(२) टेनिन—यह क़ब्ज़ करनेवाला एक तीव्र पदार्थ है। यह पाचन-शक्तिको बिलकुल नष्ट कर देता है। इसमें नींदको नष्ट करनेकी भी शक्ति होती है। शरीरपर इस विषका प्रभाव शराबसे मिलता-जुलता पड़ता है। इसकी वजहसे चाय पीनेके बाद प्रारम्भमें तो ताजगी अनुभव होती है, परंतु थोड़ी देरमें नशा उतर जानेपर खुश्की तथा थकान उत्पन्न होती है, जिसके कारण और अधिक चाय पीनेकी इच्छा होती है।

(३) कैफीन—यह एक महाभयंकर विष है। इसका प्रभाव शराब या तंबाकूमें पाये जानेवाले विष 'निकोटीन'-के समान होता है। यह शरीरको बहुत जल्द निर्बल करता है, शरीर खोखला हो जाता है। यह दिलकी धड़कनको बढ़ाता है और सेवनमें मात्राकी अधिकता होनेपर धड़कन एकदम बंद हो जाती है तथा व्यक्ति मौतका शिकार हो जाता है। 'कैफीन' विष ही चायका वह अंश है जिसके नशेके वशीभूत होकर व्यक्ति चायका आदी बन जाता है।

उपर्युक्त विषोंके होनेसे चायका प्रभाव अत्यधिक उत्तेजनाप्रद होता है। इनका शरीर एवं मस्तिष्कपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। आज जो हृदय तथा रक्तवाहिनियोंके रोगोंकी वृद्धि दिखायी दे रही है, उसका प्रमुख कारण चायके प्रचारमें वृद्धिका होना है। विशेषज्ञोंका मत है कि चायका नशा अंदर-ही-अंदर अपना कार्य करता है और धीरे-धीरे कुछ ही दिनोंमें शरीरको घुनकी भाँति चाट जाता है। चाय पीनेसे 'कैफीन' विषके कारण मूत्रकी मात्रामें

लगभग तीन गुनी वृद्धि हो जाती है। परंतु उसके द्वारा शरीरका दूषित मल जिसका शरीरकी शुद्धिके लिये मूत्रद्वारा निकल जाना आवश्यक है, वह शरीरके अंदर ही बना रहता है, उसके फलस्वरूप गठियाका दर्द, गुर्दों तथा हृदय-सम्बन्धी रोगोंका शिकार बनना पड़ता है। सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ० जॉन हारवेका कथन है कि 'जब चायका खूब सेवन किया जाता है तो उसके नशीले प्रभावकी अपेक्षा टेनिन एसिडके कारण पेटमें गड़बड़ी बहुत होती है। बादी, पेट फूलना, पेट-दर्द, क़ब्ज़, बदहजमी, हृदय-गतिका अनियमितरूपसे चलना और नींदका न आना आदि चाय पीनेवालोंके मुख्य लक्षण हैं।' इसके अतिरिक्त चाय पीनेसे दाँतों एवं नेत्रोंके विभिन्न रोग पैदा होने लगते हैं। चायके सेवनसे चेहरेकी कान्ति नष्ट हो जाती है। चायके व्यापारियोंने चायके प्रचारके लिये लाखों पैकेट मुफ्त बाँटकर तथा चायके सम्बन्धमें झूठी प्रशंसाके सेतु बाँधकर गरीबोंको भी चायका चस्का लगा दिया है और अब तो चाय गरीबों तथा अमीरों—दोनोंका ही आवश्यक पेय बन गया है। भोजन चाहे न मिले, पर चाय समयपर अवश्य मिलनी चाहिये। परंतु चायके अवगुणोंका अवलोकन करनेके पश्चात् इस विनाशकारी चायका सेवन अविलम्ब छोड़ देनेमें ही सबका हित है।



पौष्टिक पदार्थ (मेवों)-द्वारा अनेक व्याधियोंका इलाज

(डॉ० श्रीसुनील गजाननरावजी टोपरे, एम०डी० (शारीरक्रिया))

प्राय: देखनेमें आता है कि हमारे देशमें पौष्टिक गुणयुक्त कुछ वनस्पतिज द्रव्योंका मानव अपनी आर्थिक परिस्थितिके अनुसार सेवन करता है, लेकिन पौष्टिक द्रव्य कौन-कौनसे रोगमें उपयोगी हैं, इसका ज्ञान रहना आवश्यक है। इस दृष्टिसे कुछ वानस्पतिक द्रव्योंका विवरण यहाँ दिया जा रहा है—

(१) अखरोट

हमारे भारत देशमें हिमालयमें काश्मीरसे मणिपुरतक अखरोटके वृक्ष अधिकतासे होते हैं। वृक्षकी ऊँचाई ६० से ९० फुटतक होती है। अखरोटके फूल सफेद रंगके छोटे-छोटे गुच्छेके रूपमें लगते हैं और पत्ते ४ से ८ इंचतक लंबे, अंडाकार, नुकीले और तीन, दो कँगूरेवाले होते हैं। इसके पत्ते संकोचक और पौष्टिक होते हैं तथा धातु-परिवर्तक और शरीरकी क्रियाओंको ठीक करनेवाले माने जाते हैं।

फल—अखरोटके फल गोल और मैनफलके समान होते हैं। फलके भीतर बादामकी तरह मींगी निकलती है। अखरोट दो प्रकारका होता है—एकको अखरोट और दूसरेको रेखाफल कहते हैं। इसके पौधेकी लकड़ी बहुत ही मजबूत, अच्छी और भूरे रंगकी होती है।

छिलका एवं काढ़ा—इसका छिलका कृमिनाशक और विरेचक है। इसका काढ़ा गलग्रन्थियोंके लिये उपयोगी माना जाता है और कृमिनाशक है। गठियाकी बीमारीमें इसका फल धातु-परिवर्तक होता है। उपदंश, विसर्पिका, खुजली, कण्ठमाला इत्यादि रोगोंमें यह लाभकारी माना जाता है।

गुण-दोष एवं उपयोग—आयुर्वेदके मतानुसार अखरोट मधुर, किंचित् खट्टा, स्निग्ध, शीतल, वीर्यवर्धक, गरम, रुचिदायक, कफ-पित्तकारक, भारी, प्रिय, बलवर्धक तथा वातपित्त, क्षय, वात, हृदयरोग, रक्तवात, रुधिरदोषको दूर करनेवाला है।

१. कण्ठमाला—अखरोटके पत्तोंका क्वाथ पीने और उसीसे गाँठको धोनेसे कण्ठमाला मिट जाती है।

२. नासूर—इसकी मिली हुई गिरीको मोम और मीठे तेलके साथ गलाकर लेप करनेसे नासूर नष्ट हो जाता है।

३. नारू—इसकी खलीको पानीके साथ पीसकर गरम करके सूजनपर लेपकर, पट्टी बाँधकर तपानेसे सूजन उतर जाती है। १५ से २० दिनतक करनेसे नारू गलकर नष्ट हो जाता है।

४. कृमिरोग—इस वृक्षकी छालका क्वाथ पिलानेसे आँतोंके कीड़े मर जाते हैं।

५. अर्दित (मुँहका लकवा)—इसके तेलका मर्दन करके वादी मिटानेवाली औषधियोंके क्वाथका बफारा लेनेसे इस रोगमें बड़ा लाभ होता है।

६. शोथ (सूजन)—पावभर गोमूत्रमें १ से ४ तोलेतक अखरोटका तेल मिलाकर पान करनेसे शरीरकी सूजन उतरती है, ऐसा शास्त्रकारोंका मत है।

७. विरेचन—अखरोटकी गिरीसे जो तेल खींचा जाता है, वह एक औंससे २ औंसतक देनेसे मृदु विरेचन होता है।

(२) अंजीर

अंजीर दो प्रकारका होता है। एक बोया हुआ, जिसके फल और पत्ते बड़े होते हैं और दूसरा जंगली, जिसके फल और पत्ते इससे छोटे होते हैं। यह वृक्ष ७ से ९ फुटतक ऊँचा होता है। तोड़नेसे या चिरा देनेसे इसके हर एक अंगसे दूध निकलता है। इसके पत्ते ऊपरकी ओरसे अधिक खुरदरे होते हैं और फलका आकार प्रायः गूलरके फलके समान होता है। कच्चे फलका रंग हरा और पके हुएका रंग पीला या बैगनी और अंदरसे बहुत लाल होता है। यह फल बड़ा मीठा और स्वादिष्ठ होता है।

अंजीर अत्यन्त शीतल, तत्काल रक्तपित्तनाशक, सिर और खूनकी बीमारीमें तथा कुष्ठ और नकसीरमें लाभकारी है।

उपयोगिता—(१) रुधिरका जमाव—अंजीरकी लकड़ीकी राखको पानीके अंदर घोलकर गादके नीचे बैठ जानेके बाद उसका निथरा हुआ पानी निकालकर उसमें फिर वही राख घोल देना चाहिये, ऐसा सात बार करके राख घोल-घोलकर निथरा हुआ पानी पिलानेसे रुधिरका जमाव बिखर जाता है।

(२) श्वास—अंजीर और गोरख इमलीका चूर्ण समान भाग लेकर प्रातःकाल ६ माशेकी खुराकमें खानेसे दमेके रोगमें लाभ होता है।

(३) बवासीर—दो सूखे अंजीरको शामको पानीमें भिगोना और सबेरे उसे खा लेना चाहिये। इसी प्रकार सबेरेके भिगोये हुए अंजीर संध्याको खा लेना चाहिये। इस भाँति ६ या ९ रोजतक खानेसे खूनी बवासीरके अंदर बहुत लाभ होता है।

(४) श्वेत कुष्ठ—सफेद कोढ़के आरम्भमें ही अंजीरके पत्तोंका रस लगानेसे उसका बढ़ना बंद होकर आराम होने लगता है।

(५) गाँठ और फोड़े—सूखे या हरे अंजीरको पीसकर तथा जलमें औटाकर गुनगुना लेप करनेसे गाँठों तथा फोड़ोंकी सूजन कम हो जाती है।

(६) पौरुष शक्तिवर्धक—दो सेर सूखे अंजीर लेकर गरम पानीसे दो या तीन बार धोकर उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर लेना चहिये, फिर बादामकी मगज एक सेर लेकर ऊपरका छिलका उतारकर उसके भी बारीक टुकड़े कर लेनेके बाद एक कलईदार कड़ाहीमें अंजीर और बादामकी मगजके टुकड़े डालकर उसमें चार सेर शक्कर तथा इलायची-२.५ तोला, केशर-१ तोला, चिरौंजी-१० तोला, पिस्ते-१० तोला, सफेद मुसली-४ तोला, अभ्रक भस्म-१.५ तोला, प्रवाल भस्म-२.५ तोला, मुगलाई बेदाना-२ तोला, शीतल चीनी-१.५ तोला—इन सब चीजोंको कूट करके थोड़ी देरतक उसे अग्निपर चढ़ा दे, जब घी अच्छी तरहसे पिघल जाय और वे सभी चीजें मिल जायँ तब उसे उतारकर चीनीकी बर्नियामें भर देना चाहिये। इस औषधिको अपनी प्रकृतिके अनुसार दोनों समय खानेसे खून और त्वचाकी गर्मी, पित्तविकार, रक्तविकार, कब्जियत, बवासीर और अनेक प्रकारके वीर्य-दोष नष्ट हो जाते हैं। यह औषधि जीवन-शक्तिवर्धक और अत्यन्त पौष्टिक है।

अंजीरकी जड़ पौष्टिक है तथा श्वेत कुष्ठ और दादपर उपयोगी है। इसका फल मीठा, ज्वरनाशक, रेचक, विषनाशक, सूजनमें लाभदायक, अश्मरीको दूर करनेवाला और कमजोरी, लकवा, प्यास, यकृत् तथा तिल्लीकी बीमारी और सीनेके दर्दको दूर करता है। कच्चा अंजीर कान्तिकारी और सूखा अंजीर शीतोत्पादक है। जलके अंशकी कमीके कारण यह पहले दर्जेका गर्म है। इससे पतला खून उत्पन्न होता है। यह पसीना लानेवाला और गर्मीको शान्त करनेवाला होता है।

भूने हुए अंजीरका पुल्टिस सांघातिक फोड़े, बालतोड़ तथा मसूड़ेके ऊपरके फोड़ेपर बाँधा जाता है। सूखे हुए अंजीरका पुल्टिस दूधके साथमें पीबदार जख्म और नासूरकी दुर्गन्धिको दूर करनेके काममें लिया जाता है। बड़े सबेरे खाली पेट इसको खानेसे अन्नप्रणालीको यह आश्चर्यजनक लाभ दिखाता है। अंजीर बादाम और पिस्तेके साथ खानेसे बुद्धिवर्धक, अखरोटके साथ खानेसे उत्तेजक तथा बादामके साथ खानेसे विषको दूर करनेका काम करता है।

अंजीर पुरानी खाँसीमें लाभ पहुँचाता है; क्योंकि यह खाँसी केवल बलगमसे ही पैदा होती है। इसका दूध तीक्ष्णताके कारण रेचक है।

पथ्यरूपमें अंजीर बहुत शीघ्र पच जानेवाला और औषधिरूपमें उपयोग करनेपर किडनी एवं वस्तिसम्बन्धी पथरियोंको तथा यकृत् और प्लीहाके रोगोंको दूर करनेवाला

है। गठिया और बवासीरमें यह लाभकारी है।

(३) काजू

काजूका मूल उत्पत्तिस्थान अमेरिकाका उष्ण कटिबन्ध है। यह भारतवर्षमें भी सामुद्रिक किनारोंपर बहुतायतसे पैदा होता है। इसका वृक्ष छोटे कदका होता है। इसकी शाखाएँ मुलायम रहती हैं। इसके पत्ते खिरनी या कटहलके पत्तोंकी भाँति होते हैं। इसमें एक प्रकारका गोंद भी लगता है जो पीला या कुछ लालिमा लिये हुए रहता है। इसके फल मेवेके रूपमें सारे देशमें बिकते हैं।

यह मेवा गरम और तर होता है। यह शरीरको मोटा करता है, दिलको शक्ति देता है। वीर्यको बढ़ाता है, गुर्देको ताकत देता है और दिमागके लिये मुफीद है। अगर इसको बासी मुँह खाकर थोड़ी-सी शहद चाट ले तो दिमागकी कमजोरी मिट जाती है, सर्द और तर मिजाजवालोंके लिये यह भिलावेके समान लाभदायक है।

उपयोगिता—काजूका फल कसैला, मीठा और गरम होता है। वात, कफ, अर्बुद, जलोदर, ज्वर, व्रण, धवल-रोग और अन्य चर्मरोगोंको यह दूर करता है। यह कृमिनाशक होता है। पेचिश, बवासीर और भूखकी कमजोरीमें लाभदायक है। इसके छिलकेमें धातुपरिवर्तक गुण रहते हैं, इसकी जड़ विरेचक मानी जाती है। इसका फल रक्तातिसारको दूर करनेवाला होता है। इसके छिलके और पत्ती दाँतोंकी पीडा और मसूड़ोंकी सूजनमें सेवनीय हैं। इसका फल कोढ़ और व्रणपर लगाया जाता है। यह प्रदाहको मिटानेवाला है। इसमें कारडोल और एनाकार्डिक एसिड नामके तत्त्व पाये जाते हैं।

काजूका मगज पौष्टिक, शान्तिदायक और स्निग्ध वस्तु है। यह वमनरोगसे पीडित रोगियोंको खाद्यके रूपमें दिया जाता है। इसके साथ 'एसिड हाइड्रोसिएनिक्स' भी दिया जाता है। काजूका तेल विष-प्रतिरोधक भी होता है। यह पेट और आँतोंके ऊपर जमकर विषजनित प्रदाहसे रक्षा ही नहीं करता, बल्कि उसकी तेजीको नष्ट कर देता है। यह कई प्रकारके लेप और बाह्य प्रयोगोंके लिये उत्तम वस्तु है।

१. शरीरके मस्से—शरीरपर छोटे-छोटे काले मस्से हो जाते हैं, उनको जलानेके लिये छिलकेका तेल लगाया जाता है।

२. उपदंश—उपदंशसे पैदा हुए फोड़ों या लाल चकत्तोंको मिटानेके लिये इसका तेल सेवन करने योग्य है।

३. त्वचाकी शून्यता—कोढ़से उत्पन्न त्वचाकी शून्यता भी इस तेलके लगानेसे मिटती है।

४. बिवाई—इसके छिलकेका तेल लगानेसे पैरोंके अंदर फटी हुई बिवाई मिट जाती है।

काजूके छिलकोंका तेल बहुत दाहक और फफोला उठानेवाला होता है। इसलिये इसका प्रयोग सावधानीसे करना चाहिये।

(४) बादाम

बादामके वृक्ष भारतवर्षमें पैदा नहीं होते। यह यूरोप और तुर्कीसे यहाँ आता है। कश्मीर और पंजाबके अंदर इसकी खेती की जाती है। इसका वृक्ष मध्यम कदका होता है। इसके पत्ते कुछ भूरे और फूल सफेद होते हैं। इसकी दो जाति होती है, एक मीठी और दूसरी कड़वी। बादामका फल गरम, तेलयुक्त, पचनेमें भारी, उद्दीपक, मृदु, विरेचक, वात और पित्तको नष्ट करनेवाला और गलितकुष्ठमें लाभदायक है। इसका तेल मृदु, विरेचक, उद्दीपक, मस्तकशूलको दूर करनेवाला, पित्त और वातमें लाभदायक है। शरीरकी अन्तरंग जलनको शान्त करनेवाला और धातुपतनको रोकनेवाला होता है।

बादाम भीतरी और बाहरी दोनों प्रयोगोंमें कई प्रयोजनसे उपयोगमें आता है। सिरकेके साथ इसे पीसकर उसका प्लास्टर बनाकर स्नायुशूलको दूर करनेके लिये लगाया जाता है। इसका अञ्जन बनाकर नेत्रोंकी दृष्टिको बढ़ानेके लिये उपयोगमें लिया जाता है। बादामको पीसकर उसका द्रव बनाकर पीपरमेंटके साथ कफ और खाँसीको दूर करनेके लिये उपयोगी है। यह मूत्रल और पथरीको गलानेवाला भी माना जाता है। यह यकृत् और तिल्लीकी बाधाओंको दूर करनेके लिये भी उपयोगमें लिया जाता है। सिरके जुओंको मारनेके लिये यह लगाया जाता है। इसकी बत्ती बनाकर गर्भाशयमें रखनेसे कष्टप्रद मासिक धर्म और उससे होनेवाली वेदना दूर होती है। इसका पुल्टिस दुस्साध्य फोड़े और चर्मरोगोंके ऊपर बहुमूल्य लेपका काम देता है।

बादाम सारक, गरम, भारी, कफकारक, स्निग्ध, सुस्वाद, कसैला, शुक्रजनक, वातनाशक और उष्णवीर्य होता है। कच्चा बादाम सारक, भारी, पित्तजनक तथा कफ, वात और पित्तके कोपको नष्ट करता है। पका बादाम मधुर,

स्निग्ध, पौष्टिक, शुक्रल, कफकारक तथा रक्तपित्त और वातपित्तको नष्ट करता है। सूखा बादाम मधुर, धातुवर्धक, स्निग्ध, बलकारक होता है।

उपयोगिता—(१) मस्तिष्क, कामशक्ति और नेत्रोंकी दृष्टिको यह बलप्रदायक है। बादामका मगज ६ तोले भर मिस्रीके साथ रातको सोते समय खानेसे दिमागकी कमजोरी मिट जाती है। आँतोंकी जलनमें भी यह लाभदायक है। आमाशयमें चिकने दोषोंके इकट्ठे होनेसे जो पेचिश हो जाती है उसमें यह लाभदायक है। इसके सेवनसे नया वीर्य पैदा होता है और पुराने वीर्यकी गरमी और दोष दूर होते हैं। गुर्देके लिये एक पौष्टिक वस्तु है। बादामको भूनकर खानेसे मेदेकी सुस्ती और ढीलापन नष्ट हो जाता है।

(२) कड़वे बादामका मगज खराब स्वादवाला, सूजनके लिये लाभदायक, जलोदर, मस्तकशूल और आँखोंकी कमजोरीमें श्रेयस्कर है। यह ब्रोंकाइटीज, पुराने व्रण, गीली खुजली और पागल कुत्तेके विषपर भी उपयोगी मानी जाती है। कड़वे बादामका तेल मृदु, विरेचक, कृमिनाशक और घावको अच्छा करनेवाला होता है। यह गुदा, यकृत् और तिल्लीकी वेदनाको दूर करता है। पुरातन प्रमेह, कर्णशूल, गलेकी वेदना और चर्मरोग तथा कब्जियतको दूर करता है।

(३) इस पौधेकी जड़ धातुपरिवर्तक है और यह भीतरी एवं बाहरी दोनों प्रयोगोंके काममें आती है। बादामका रस शक्करके साथ मिलाकर कफ और खाँसीको दूर करनेके लिये दिया जाता है। बादामको अंजीरके साथ मिलाकर मृदु, विरेचक और आँतोंके दर्दको दूर करनेके लिये दिया जाता है।

(४) मीठे बादामका जला हुआ छिलका दाँतोंको मजबूत करता है। इसका तेल मीठा, मृदु, विरेचक, मस्तिष्कके लिये पौष्टिक, मूर्च्छा और यकृत्की शिकायतोंके लिये लाभदायक, सूखी खाँसीको दूर करनेवाला, गलेको साफ और कॉलिक शूलको दूर करनेवाला होता है।

(५) मीठे बादामका तेल हलका होता है और दिमागमें बहुत तरी पैदा करता है। सिरदर्दको मिटाता है। संनिपात और निमोनियामें लाभदायक है। कब्जको दूर करता है। जुलाबकी औषधियोंमें इसे मिलानेसे उनका प्रतिक्रियात्मक दोष दूर हो जाता है। इसका निरन्तर उपयोग हिस्टीरियाकी बीमारीमें बहुत लाभदायक है।

(६) गर्भवती स्त्रीको ९वाँ महीना लगते ही मीठे बादामके ताजे तेलको प्रतिदिन प्रातः १ तोलेकी मात्रामें दूधके साथ या और किसी प्रकार भी देनेसे प्रसवमें बहुत सरलता हो जाती है।

(७) यह शरीरके लिये बहुत अच्छी शक्ति है। यह नया खून पैदा करता है और पुराने खूनको शुद्ध और साफ करता है। इसका शीत निर्यास शक्करके साथ सूखी खाँसीको आराम करता है। इसको देनेसे कफके साथ आनेवाला खून बंद हो जाता है। दमा और निमोनियाके लिये भी यह लाभदायक है। यह मूत्रनलीकी सूजन और सुजाकमें भी सेवनीय है। अंजीरके साथ बादाम देनेसे कब्जियत मिट जाती है।

(८) बादामकी गोंद—मीठे बादामकी गोंद गरम, तर, काबिज और गलेके दर्द, पुरानी खाँसी तथा राजयक्ष्मामें श्रेयस्कर है। यह शरीरको मोटा करता है और कफमें खून आनेको रोकता है। पथरीमें भी इसका प्रयोग श्रेष्ठ है।

(५) पिस्ता

पिस्तेके झाड़ोंके पत्तोंपर एक प्रकारके कीड़ोंके घर बन जाते हैं, जिसको पिस्तेके फूल कहते हैं। ये एक तरफसे गुलाबी और दूसरी तरफसे पीले या सफेद होते हैं। ये कहीं अंजीरके आकारके, कहीं गोल और कहीं अंडाकृति रहते हैं। इसका फल २ सालमें एक बार आता है। पिस्तेके फलके ऊपर एक कड़ा छिलका होता है। उसको फोड़नेसे उसके अंदरसे पिस्तेका भीतरी भाग निकलता है। यह भी मेवेकी तरह खाने और मिठाइयाँ बनानेके काममें आता है।

पिस्ता भारी, स्निग्ध, वीर्यवर्धक, गरम, धातुवर्धक, रक्तको शुद्ध करनेवाला, स्वादु, बलवर्धक, पित्तकारक, कड़वा, सारक, कफनाशक तथा वात, गुल्म और त्रिदोषको दूर करता है। पिस्ते स्मरणशक्ति, हृदय, मस्तिष्क और आमाशयको शक्ति देते हैं। पागलपन, वमन, मतली, मरोड़ और यकृत्की वृद्धिमें लाभ पहुँचाते हैं। बदनको मोटा करते हैं। आमाशयको ताकत देनेके लिये पिस्तेके समान कोई दूसरा पदार्थ उत्तम नहीं है। यह गुर्देकी कमजोरीको मिटाता है। पिस्तेको चबानेसे मसूड़े मजबूत होते हैं और मुँहसे सुगन्ध आने लगती है। हैजा, प्लेगके दिनोंमें इसे शक्करके साथ खाना अच्छा रहता है। पिस्तेकी छाल और

पत्तोंके काढ़ेसे तर तथा सूखी खुजलीको धोनेपर बहुत लाभ होता है। इसके काढ़ेसे सिरके बाल मजबूत होते हैं और सिरमें जुएँ नहीं पड़ते।

पिस्तेके छिलकेकी उपयोगिता—पिस्तेके ऊपर दो छिलके होते हैं। एक सुर्ख रंगका पतला छिलका, जो पिस्तेकी मगजसे चिपका हुआ रहता है और दूसरा सफेद रंगका सख्त छिलका, जिसके अंदर पिस्तेका मगज रहता है। इनमेंसे पहला पतला छिलका समशीतोष्ण होता है। दूसरा सख्त छिलका सर्द और खुश्क होता है। पिस्तेका पतला छिलका काबिज, वमन और हिचकीको बंद करनेवाला, दाँत, मसूड़े, हृदय तथा मस्तिष्कको ताकत देनेवाला एवं तृष्णाशामक होता है। इसे खानेसे मुँहके छाले मिट जाते हैं। दूसरे छिलकेकी फक्की देनेसे अजीर्ण मिटता है और शक्करके साथ सेवन करनेसे शक्ति बढ़ती है।

फूलकी उपयोगिता—पिस्तेके फूल सर्द, खुश्क, काबिज और आनन्दवर्धक होते हैं।

तेलकी उपयोगिता—आधा-शीशीके रोगीको गरम जलका बफारा देकर अगर यह तेल नाकमें टपका दिया जाय तो आधा-शीशी मिट जाती है। यह तेल स्मरणशक्तिवर्द्धक है। खाँसीके रोगीको लाभ करता है। हृदयको ताकत देकर पागलपन, वमन और मतलीको मिटाता है। ध्यान रहे—पिस्तेके ज्यादा खानेसे पित्ती उछल आती है। अतः इन औषध द्रव्योंके सेवनकी मात्राके लिये किसी सुयोग्य अनुभवी वैद्य आदिका परामर्श लेना चाहिये।



आहार-विवेक

(डॉ० श्रीसोहनजी सुराना)

ईश्वरने जीवमात्रको आहारका विवेक दिया है, पर मनुष्यको विशेष रूपसे प्रदान किया है। बकरी आक खा लेती है, पर भैंस नहीं खायेगी। चील मांस खा लेती है, पर कबूतर नहीं खायेगा। आहारका केवल स्वास्थ्यकी दृष्टिसे ही नहीं, अनेक दृष्टिकोणोंसे विचार करना चाहिये, जैसे—भौगोलिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक। मात्र मनुष्य ही विवेकका सदुपयोग कर इनपर विचार कर सकता है।

हमें कितना खाना आवश्यक है और हमारा संतुलित भोजन कैसा होना चाहिये—इसपर विचार करें। जो लोग बुद्धिजीवी हैं, जिन्हें अधिक श्रम नहीं करना पड़ता—जैसे कार्यालयमें काम करनेवाले अथवा सेवानिवृत्त, उनको अधिक मात्रामें भोजनकी आवश्यकता नहीं है। पर आदतसे विवश होकर वे मात्राका संतुलन नहीं करते, जिससे मोटापा बढ़ता जाता है, पाचनशक्ति उचितरूपसे काम नहीं करती है और वे पेटके अनेक रोगोंसे ग्रस्त हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति साधन-भजन भी नहीं कर सकते। पर जो लोग कारखानेमें अथवा खेतों आदिमें काम करते हैं, उनके भोजनकी मात्रा अधिक होनी चाहिये। पर प्रायः विपरीत अवस्था ही देखी जाती है, इसलिये धनी लोगोंमें रोग—मोटापा विशेष पाया जाता है। हमारी पाचन-क्रियाकी क्षमता भी सीमित है, इसलिये क़ब्ज़, गैस, अपचकी बीमारी हो जाती है।

हम उचितरूपसे भोजन करना और श्वास लेना भी नहीं जानते। जो व्यक्ति उचित ढंगसे श्वास लेता है, प्राणायाम करता है, उसकी खुराक कम होती है। इसी तरह जो खूब चबा-चबाकर भोजन करता है, उसकी पाचनशक्ति ठीक रहती है। आज भोजन करनेमें तो कम, पर बेकार बातचीत करने आदिमें समय अधिक लगाते हैं। इससे अपच होना स्वाभाविक है। बहुत गरम मसालेवाला भोजन अथवा बहुत ठंडा भोजन भी आँतोंपर घाव करता है और अनेक प्रकारके रोगोंका कारण बनता है।

अनियमित भोजन स्वास्थ्यके लिये हानिकारक है। इससे पाचन-क्रियामें गड़बड़ी होती है। ठीक समयपर, ठीक स्थानपर बैठकर, चिन्तारहित होकर, शान्त वातावरणमें धीरे-धीरे चबाकर भोजन करना स्वास्थ्यवर्धक है। भोजन सात्त्विक होना चाहिये। मसालेवाली, तली हुई गरिष्ठ वस्तुएँ और अनेक प्रकारके व्यञ्जन, अधिक मिठाई, खटाई, चटपटे एवं नमकीन भोजन स्वास्थ्यके लिये हानिकारक हैं। अधिकांश बीमारियाँ अतिभोजनके कारण होती हैं।

भोजनमें स्वादको अधिक महत्त्व दिया जाता है तथा स्वादमें प्रियता और अस्वादमें अप्रियताका भाव हमने जोड़ रखा है। चीनी, नमक और चिकनाई—ये तीनों भोजनके

अनिवार्य अङ्ग बन गये हैं। बहुत चीनीका प्रयोग भी न हो। अधिक चीनीसे पेट, मोटापा और कृमि-रोग हो जाते हैं। बहुत चिकनाई लीवर, हृदय-रोग और मोटापाका कारण बनती है। अधिक नमक खानेसे हृदय-रोग, गुर्देके रोग, रक्तचाप, चर्म-रोग आदि पनपते हैं। नमक जो खनिज है, कृत्रिम है और जो नमक शाक, भाजी और फलोंमें मिलता है वह प्राकृतिक लवण है, वह लाभदायक है। शरीरकी आवश्यकताके लिये यह नमक काफी है। उच्च रक्तचाप और गुर्देकी बीमारियोंका कारण भोजनमें अधिक नमकका प्रयोग ही है। आज तो नमक नहीं हो तो स्वाद नहीं, फिर भोजन ही कैसा? भोजनमें नमकका प्रयोग कम हो तो अनेक शारीरिक बीमारियाँ कम हो जायँ। नमक छोड़ना केवल स्वास्थ्यके लिये ही नहीं, साधनाके लिये भी उपयोगी है। नमक कृत्रिम ढंगसे उत्तेजना पैदा करता है। अधिक नमकका प्रयोग साधनाके लिये विघ्न है और स्वास्थ्यके लिये भी वर्जित है। एक साथ बहुत ज्यादा वस्तुएँ खानेसे बहुत बीमारियाँ हो सकती हैं। पेटमें बहुत तरहके व्यञ्जन हानिकर हैं।

जैसे शरीरके लिये कृत्रिम नमक उपयोगी नहीं है, वैसे ही चीनी भी उपयोगी नहीं है। चीनी तो सहज ही चावल, रोटी, दूध आदिमें होती है। दूधमें चीनी होती है। जो दूधमें चीनी डालकर पीते हैं, उनको दूधके स्वादका पता नहीं लगता। बहुत चीनीके सेवनसे अधिक बीमारियाँ होती हैं तथा दाँत भी खराब हो जाते हैं।

अधिकांश लोग अनियमित आहार करते हैं—कभी कम, कभी ज्यादा। भोजन न तो अधिक मात्रामें होना चाहिये, न कम मात्रामें। अध्यशन आहारका महत्त्वपूर्ण दोष है। पहले खाया हुआ पचा नहीं और पुनः भोजन कर लेना 'अध्यशन' है। सामान्य मर्यादा तो यह है कि पाँच या कम-से-कम चार घंटा पहले फिर अन्न न लिया जाय। जल भी एक या दो घंटा पहले नहीं पीना चाहिये। प्राचीन कालमें केवल दो बार खानेकी रीति थी, पर आजकल तो चार-पाँच बार या दिनभर कुछ-न-कुछ खाते रहते हैं, यह ठीक नहीं। भोजन खड़े-खड़े, चलते-फिरते, लेटे-लेटे करना स्वास्थ्यके लिये हानिकर है।

भोजनका ऋतुओंसे भी सम्बन्ध है। ग्रीष्म-ऋतु अथवा वर्षा-ऋतुमें अग्नि मन्द रहती है, इसलिये हलका भोजन और शीतकालमें गरिष्ठ भोजन श्रेयस्कर है। इसी तरह देशके अनुसार ठंडे या गरम देशोंमें भोजनमें परिवर्तन स्वाभाविक है। शक्ति-व्ययके अनुसार ही भोजनकी मात्रा निश्चित होनी चाहिये। बार-बार चाय पीना, धूम्रपान, मसाला, पान-सोपाड़ी, तम्बाकू आदिका सेवन शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्यके लिये हानिकारक है। आहार मस्तिष्कको अत्यधिक प्रभावित करता है। मादक वस्तुओंके प्रयोगसे मस्तिष्कका नियन्त्रण ढीला पड़ जाता है। आधुनिक युगमें मदिरा भी एक प्रकारका आहार गिना जाने लगा है और इसका प्रचलन सम्पन्न और सभ्य समाजमें भी जोरोंसे बढ़ रहा है। भूखको बढ़ानेके लिये भाँग आदि भी सेवन की जाती है। मादक द्रव्योंका परिणाम भयंकर होता है—आदत खराब हो जाती है, जिसका छूटना कठिन हो जाता है। धीरे-धीरे मस्तिष्ककी कोशिकाएँ (Cells) विकृत हो जाती हैं तथा जिगर (लीवर)-की शक्तिका नाश हो जाता है और अनेक रोग—जलंधर, पीलिया आदि हो सकते हैं। जैसा आहार वैसा रसायन, जैसा रसायन वैसी मस्तिष्क-क्रिया और जैसी मस्तिष्क-क्रिया वैसा हमारा आचार, व्यवहार, विचार और स्वभाव।

आधुनिक सभ्य समाजमें मांसाहारका भी प्रचलन बढ़ता दिखायी देता है। आधुनिक शरीरशास्त्री भी अन्वेषणोंके आधारपर मांसाहारको शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यके लिये दोषपूर्ण बताते हैं। स्थूल दृष्टिसे मांसाहारमें हिंसा और अधर्मका दोष तो विद्यमान रहता ही है।

आहारका एक पहलू है निराहार। हमारे लिये खाना जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही 'नहीं खाना' भी। स्वास्थ्यके लिये उपवास भी जरूरी है। हमारे शास्त्रोंमें उपवासका महत्त्व शारीरिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे भी है। जो लोग केवल भोजन करनेका ही महत्त्व समझते हैं, उसे छोड़नेका महत्त्व नहीं समझते, वे न केवल मोटापेकी बीमारीको, अपितु अनेक अन्य बीमारियोंको भी भोगते रहते हैं। अधिक खानेवाले कमजोर देखे जाते हैं, कारण उनको अपने अधिक वजनका भार रात-दिन ढोना पड़ता है। विवेकपूर्ण-आहारसे ही शान्त, सुखी, स्वस्थ तथा आध्यात्मिक जीवन पूर्णरूपसे व्यतीत किया जा सकता है।

जीवनका प्रथम आधार—आहार

(पं० श्रीशशिनाथजी झा, वेदाचार्य)

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' धर्मका प्रथम साधन है शरीरका नीरोग रहना। चरकमें कहा गया है कि धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इस पुरुषार्थचतुष्टयकी प्राप्तिका मूल कारण शरीरका आरोग्य रहना है। पर इस आरोग्यके अपहरणकर्ता हैं रोग, जो श्रेयस्का और जीवनका भी विनाश करते हैं—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्॥
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च।
(चरक० सू० १। १५-१६)

कहनेका तात्पर्य यह है कि स्वस्थ शरीरके द्वारा ही मनुष्य सभी प्रकारके धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कार्योंका सम्पादन कर सकता है। शरीरके अस्वस्थ रहनेपर मनुष्य यदि मनसे कुछ सोचता भी है तो वह कुछ कर नहीं सकता। अतएव शास्त्रकारोंने स्वास्थ्यकी रक्षाके प्रयोजनको निर्दिष्ट करते हुए कहा है—

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्॥

अर्थात् अन्यान्य कामोंको छोड़कर सर्वप्रथम शरीरकी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि शरीरका अभाव होनेपर सब कुछका अभाव हो जाता है।

वात, पित्त तथा कफ—इन तीनोंको दोष कहा जाता है, जिस पुरुषके शरीरमें ये त्रिदोष सम-अवस्थामें हों, अग्नि (जठराग्नि) सम हो अर्थात् पाचनक्रिया ठीक हो, रसादि धातुओंका ठीक-ठीक निर्माण हो रहा हो, मल-मूत्रादिका विसर्जन उचितरूपसे हो रहा हो और इन सबके फलस्वरूप आत्मा, इन्द्रिय एवं मन यदि प्रसन्नताका अनुभव कर रहे हों तो उसे स्वस्थ कहते हैं यानी स्वस्थ व्यक्तिका यही लक्षण है—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥
(सुश्रुत सू० १५। ४१)

मनुष्य-शरीरके तीन आधार-स्तम्भ हैं—'त्रय उपस्तम्भा इति—आहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति' (चरक सू० ११। ३५) १-आहार, २-स्वप्न (उचित सोना) और ३-ब्रह्मचर्य। प्रथम आधार—आहारकी शुद्धि शरीरकी रक्षामें विशेष अपेक्षित है। यही कारण है कि हमारे यहाँ त्रिकालज्ञ परम ज्ञान-विज्ञानविशारद ऋषि-मुनियों, संत-महात्माओंने खान-पानकी, आचार-विचारकी शुद्धिपर विशेष ध्यान दिया; क्योंकि इससे धर्माचरणका प्रधान सम्बन्ध तो है ही, स्वास्थ्यका भी गहरा सम्बन्ध है।

विश्ववन्द्य वेदका निर्देश है कि मनुष्योंको प्रातः एवं सायं दो बार भोजन करना चाहिये। इसके बीचमें भोजन नहीं करना चाहिये। यह भोजनकी विधि अग्निहोत्रके समान ही है। मल-मूत्र त्याग करनेके बाद, इन्द्रियोंके निर्मल तथा शरीरके हलके रहनेपर, ठीकसे डकार आने एवं मनके प्रसन्न रहनेपर, वायुका संक्रमण ठीकसे होनेपर, भूख लगनेके बाद, भोजनके प्रति रुचि उत्पन्न होनेपर, आमाशयके ढीले पड़ जानेपर भोजन करना चाहिये; क्योंकि यही भोजनका उचित अवसर है[१]—

सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिबोधितम्।
नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः॥
विसृष्टे विण्मूत्रे विशदकरणे देहे च सुलघौ
विशुद्धे चोद्गारे हृदि सुविमले वाते च सरति।
तथान्नश्रद्धायां क्षुदुपगमने कुक्षौ च शिथिले
प्रदेयस्त्वाहारो भवति भिषजां कालः स तु मतः॥

भोजन करनेसे पहले हाथ-मुँह और पैर अवश्य धोने चाहिये—'आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत', क्योंकि कहा गया है कि 'आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात्' अर्थात् गीले पैर जो भोजन करता है, वह दीर्घायु होता है।

भोजन कब करना चाहिये, इसपर निर्देश है कि—

१-इसी बातको आचार्य वाग्भटने इन शब्दोंमें कहा है—

प्रसृष्टे विण्मूत्रे हृदि सुविमले दोषे स्वपथगे विशुद्धे चोद्गारे क्षुदुपगमने वातेऽनुसरति।
तथाऽग्नावुद्रिक्ते विशदकरणे देहे च सुलघौ प्रयुञ्जीताहारं विधिनियमितं कालः स हि मतः॥
(अष्टाङ्गहृदय सू० ८। ५५)

यामध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लङ्घयेत्।
यामध्ये रसोत्पत्तिर्यामयुग्माद्बलक्षयः॥

याम कहते हैं प्रहरको, यह तीन घंटेका होता है। सूर्योदयसे तीन घंटेतक भोजन न करे, दो याम यानी छः घंटेसे अधिक विलम्ब भी न करे। दो यामोंके बीचमें भोजन करनेसे अन्नरसका परिपाक भलीभाँति होता है। दो याम बिताकर भोजन करनेपर पूर्वसंचित बलका क्षय होता है। अतः सदैव समयपर ही भोजन करना चाहिये।

भोजनके समय क्या करना चाहिये, इस विषयमें बताया गया है—

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्।
दृष्ट्वा हृष्येत् प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः॥
पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति।
अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्॥

अर्थात् भोजनका सदैव आदर करे, प्रत्युत प्रशंसा करता हुआ उसे ग्रहण करे। भोजनकी निन्दा कभी न करे, उसे देखकर आनन्दित हो, भाँति-भाँतिसे उसका गुणगान करे। क्योंकि इस प्रकार ग्रहण किया गया भोजन प्रतिदिन बल एवं पराक्रमको देता है। बिना प्रशंसाके किये गये अन्नका भोजन करना तो दोनोंकी क्षति करता है।

भोजनकी मात्रा कितनी हो उसे बताते हुए कहा गया है—

मात्राशी सर्वकालं स्यान्मात्रा ह्यग्नेः प्रवर्धिका।
मात्रा द्रव्याण्यपेक्षन्ते गुरूण्यपि लघून्यपि॥
गुरूणामर्धमौचित्यं लघूनां नातितृप्तता।
मात्राप्रमाणं निर्दिष्टं सुखं यावद् विजीर्यति॥

नित्य मात्राके अनुसार किया गया आहार जठराग्निको प्रदीप्त करता है। मात्राका निर्धारण गुरु एवं लघु द्रव्योंके आधारपर होता है। तदनुसार गुरु पदार्थ (तेल तथा घीमें तले हुए पदार्थ, दूध, मलाई, रबड़ी आदि)-का सेवन भूखकी मात्रासे आधा ही करना उचित है और लघु (सुपाच्य) पदार्थोंका तृप्तिपर्यन्त करना चाहिये, किंतु तृप्तिसे अधिक नहीं। जितनी मात्रामें भोजन सुखपूर्वक पच जाय, उतनी मात्रामें भोजन करना उचित है।

जो अजितेन्द्रिय पुरुष स्वाद आदिके लोभसे बिना प्रमाणके अज्ञानी पशुओंकी भाँति भोजन करते हैं, वे रोगसमूहकी जड़—अजीर्ण रोगसे पीडित होते हैं।

भोजन करनेके नियम भिषगाचार्योंने जिस प्रकार बताये हैं उसे आहार-विधि कहा है—उष्ण, स्निग्ध, नियत मात्रामें, भोजनके पच जानेपर, वीर्याविरुद्ध अर्थात् जो आहार परस्परमें विरुद्ध वीर्यवाले न हों, अपने मनके अनुकूल स्थानपर, अनुकूल सामग्रियोंके सहित आहारको न अधिक जल्दी, न अधिक देरसे, न बोलते हुए, न हँसते हुए, अपने अगल-बगल चारों ओर भलीभाँति परीक्षणकर, आहारद्रव्यमें मन लगा करके भोजन करना चाहिये[१]।

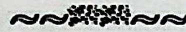
दूसरेकी जूठी कोई चीज खाना या खिलाना सर्वथा हानिकारक है। जूठी चीजोंके सेवनसे विचारोंमें विकृति आती है, बुद्धि दुर्बल हो जाती है और शरीरमें बहुविध रोग उत्पन्न होते हैं। उदाहरणार्थ—डॉक्टर किसी संक्रामक रोगके रोगीकी नब्ज़ देखकर अथवा उसका उपचार कर सावधानीसे हाथ धोता है; क्योंकि कीटाणुओंका भय रहता है। जब छूने मात्रसे कीटाणुओंका संक्रमण होता है, तब थूक लगे जूठे पदार्थोंके भोजनमें कीटाणुओंका भय नहीं है, यह मानना ही मन्दमतिता है। आजकल एक-दूसरेकी जूठन शौकसे खायी जाती है। 'बफे पार्टी या सिस्टम' (Buffet party or system) तो पशुभोजनकी भाँति सबके जूठन खाने-खिलानेकी ही दूषित भोजनप्रणाली है। इससे शारीरिक-मानसिक रोग बढ़ते हैं और अन्ततः पतन होता है।

बिना नहाये-धोये गंदे विचारोंवाले सर्वहारा मनुष्यके अथवा कामी, क्रोधी तथा वैरभाव रखनेवाले एवं अस्वस्थ व्यक्तिके हाथका बनाया हुआ भोजन नहीं करना चाहिये। यदि किया गया तो उससे मनमें अपवित्रता, गंदगी, काम-क्रोधादि कुत्सित विचार अथवा शत्रुता उत्पन्न होगी। अच्छी तरह नहाये-धोये शुद्ध शरीरवाले, सात्त्विक भोजी, सुसंस्कृत

१-इसीके विषयमें चरककी उक्ति है—
उष्णं स्निग्धं मात्रावज्जीर्णे वीर्याविरुद्धमिष्टे देशे इष्टसर्वोपकरणं नातिद्रुतं नातिविलम्बितमजल्पन्नहसंस्तन्मना भुञ्जीत, आत्मानमभिसमीक्ष्य सम्यक्॥ (चरक विमान० १। २४)

भाववाले संयमी स्वस्थ सुहृद् व्यक्तिके हाथका बनाया भोजन हमें करना चाहिये। भोजन बनानेवाले मनुष्यके स्वस्थ या अस्वस्थ शारीरिक और मानसिक विचार तथा विकारका प्रभाव भोजनपर पड़ता है तथा उन पदार्थोंका भोजन करनेवाले व्यक्तिपर भी तदनुसार ही असर होता है।

भोजनमें हिंसाजनित मांस, लहसुन-प्याज आदि तामसी पदार्थों तथा पापाचारसे प्राप्त भोजनके सेवनसे भोजन करनेवालोंके सद्विचार और सद्व्यवहार नष्ट होते हैं। इससे उनमें पापमें पुण्यबुद्धि हो जाती है। फलतः मनुष्य पाप-पथिक बनकर सर्वनाशकी दिशामें पदारूढ हो जाता है; परिणाम होता है उसका नाश, क्योंकि **'बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।'** अतः विधिपूर्वक भोजन करनेसे पहले भक्तिभावसे भगवान्‌को भोग लगाना चाहिये। ऐसा करनेसे वह प्रसाद बन जायगा, उसकी आत्मा प्रसन्न हो जायगी— **'प्रसादस्तु प्रसन्नात्मा'**। उस प्रसादके पानेसे पानेवालेको प्रसन्नता मिलेगी, शान्ति मिलेगी, सच्ची आरोग्यता प्राप्त होगी और हमारा सात्त्विक बना शरीर एवं मन स्वतः ही भगवन्मार्गका पथिक बन जायगा।



आहार एवं पथ्यापथ्य

(श्रीरामहर्ष सिंह प्रोफेसर एवं अध्यक्ष कायचिकित्सा विभाग, आयुर्वेद संकाय, काशी हिन्दू वि० विद्यालय, वाराणसी)

आयुर्वेदीय साहित्यमें शरीर एवं व्याधि दोनोंको आहारसम्भव माना गया है— **'आहारसम्भवं वस्तु रोगाश्चाहारसम्भवाः'** (च०सू० २८।४५)। शरीरके उचित पोषण एवं रोगनिवारणार्थ सम्यक् आहार-विहारका होना आवश्यक है। आहारद्वारा शरीर-पोषणकी प्रक्रिया अग्निपर निर्भर है। आहार-ग्रहणके उपरान्त उसका पाचन, शोषण एवं चयापचय आदि सभी क्रियाएँ अग्नि-व्यापारके अन्तर्गत आती हैं। अतएव अग्निका सम होना आवश्यक है। हितकर आहारको 'पथ्य' एवं अहितकर आहारको 'अपथ्य' कहा गया है। यद्यपि पथ्य और अपथ्यकी मौलिक अवधारणा अत्यन्त विस्तृत है तथापि इसका प्रसंग-मात्र आहारसम्बन्धी न होकर औषधि, आहार एवं विहार इस त्रिवर्गसामान्यसे सम्बन्धित है।

वैद्यजीवनमें लोलिम्बराजने पथ्यको औषधिसे भी अधिक महत्त्व दिया है।[१] वस्तुतः आयुर्वेदीय पथ्यविज्ञानका एक विशेष सिद्धान्त है। आचार्य चरकके अनुसार पथके लिये जो अनपेत हो वही पथ्य है। इसके अतिरिक्त जो मनको प्रिय लगे वह पथ्य है और इसके विपरीतको अपथ्य कहते हैं।[२] पथका अर्थ है शरीर-मार्ग या स्रोतस् तथा अनपेतका अर्थ है अनपकारक (अपकार न करनेवाला) अर्थात् उपकार करनेवाला। चक्रपाणि[३] उक्त कथनपर टीका करते हुए कहते हैं कि शरीरके बाह्य दोष (मलादि), धातुओं आदिके निवर्तक मार्ग या स्रोतस्‌को पथ शब्दसे ग्रहण किया जाता है, जिससे कृत्स्न शरीर अर्थात् सर्वशरीरको ही ग्रहण किया जाता है। जो पथके लिये हितकारी हो वह पथ्य है। इस प्रकार शरीरके अनुपघाती (उपकारकारक) भाववाले आहारादि जो मनको प्रिय हों, वे पथ्य कहे जाते हैं तथा इसके विपरीत भाववाले आहारादि अपथ्य।

आचार्य चरकने आगे पथ्य और अपथ्यके संदर्भमें **'नियतं तन्न लक्षयेत्'**[४] कहा है। तात्पर्य यह है कि पथ्य और अपथ्यका उक्त लक्षण नियत या प्रत्यात्म नहीं है; क्योंकि कोई भी भाव सर्वदा पथ्य या अपथ्य नहीं होता प्रत्युत पथ्य अथवा अपथ्य होना कई घटकोंपर निर्भर करता है। इन घटकोंके प्रभावसे पथ्य आहार अपथ्य हो सकता है तथा अपथ्य आहार पथ्य।

१- पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः। पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः॥ (वैद्यजीवन, प्रथम १०)

२- पथ्यं पथोऽनपेतं यद्यच्चोक्तं मनसः प्रियम्। यच्चाप्रियमपथ्यं च नियतं तन्न लक्षयेत्॥ (च०सू० २५।४६)

३- पथः शरीरमार्गात् स्रोतोरुपादनपेतम्, अपेतमपकारकम्, अनपेतमनपकारकमित्यर्थः, पथग्रहणेन पथो बाह्यदोषा धातवश्च तथा पथो निवर्तका धातवो गृह्यन्ते, तेन कृत्स्नमेव शरीरं गृहीतं भवति। ततश्च शरीरानुपघाति पथ्यमिति भवति; मनसो हितमिति प्रियार्थः। एतेन मनः शरीरानुपघाति पथ्यमिति पथ्यलक्षणमनपवादं स्यात्॥ (चक्रपाणि च०सू० २५।४४ पर)

४- नियतं निश्चितमिदमप्रियमेव सर्वदेहमपथ्यमेवेत्येवरूपं किञ्चिन्नास्तीत्यर्थः। कुतो नास्तीत्याह—मात्रेत्यादि। (चक्रपाणि, च०सू० २५।४४ पर),

पथ्य या अपथ्यका नियमन करनेवाले प्रधान घटक निम्नलिखित हैं[१]—

१-मात्रा (Measure)

२-काल (Time)

३-क्रिया (Mode of preparation)

४-भूमि (देश, आतुर) (Habitat)

५-देह (Constitution)

६-दोष (Morbid humours)

पथ्य अथवा अपथ्यका निर्धारण करनेके लिये उक्त तथ्योंपर विचार करना आवश्यक है। बिना विचार किये ही किसी भी वस्तुको हम निश्चित रूपसे पथ्य अथवा अपथ्य नहीं कह सकते। यद्यपि किंचित् द्रव्य स्वभावतः अपथ्य होते हैं तथापि स्वभावतः अपथ्य पदार्थोंके अतिरिक्त अन्य औषधि-अन्न-विहारादि भावोंका उक्त मात्रा-कालादिका विचारकर प्रयोग करनेसे सिद्धिकी प्राप्ति होती है।[२]

स्वास्थ्यके लिये उपयुक्त आहार आवश्यक है। शरीर और आहार—ये दोनों ही पाञ्चभौतिक हैं। आहारके माध्यमसे ही शरीरके अवयवोंकी सम्पुष्टि होती है। पथ्याहार ही शारीरिक विकासका कारण बनता है, जबकि अपथ्याहार व्याधिका कारण बनता है। दोष-धातु-मल एवं स्रोतस् ही शरीरके मूल हैं। पथ्य विशेषरूपसे शरीरके दोष एवं धातुओंको सम्पुष्ट करता हुआ उन्हें सम बनाये रखता है। अपथ्यकी इसके विपरीत स्थिति होती है।

आहारके संदर्भमें यह विशेष विचारणीय तथ्य है कि सर्वविधसम्पन्न आहारका पूर्ण लाभ तबतक नहीं लिया जा सकता, जबतक मानस क्रियाओंका उचित व्यवहार न हो; क्योंकि कुछ ऐसे निश्चित मानसिक भाव यथा—दु:ख, भय, क्रोध, चिन्ता आदि हैं जिनका आहार एवं पथ्य तथा अपथ्यपर प्रभाव पड़ता ही है। यदि पथ्य उचित मात्रामें ही लिया गया हो तो भी ये मानसिक भाव (Psychological factors) आमदोष उत्पन्न करते हैं। यही आमदोष अतिशीघ्र कुपित होकर विषूचिका, अलसक (अजीर्ण रोगका एक भेद), विलम्बिका, अतिसार, ग्रहणी आदि रोगोंको उत्पन्न करता है। कभी-कभी आमदोष जब धीरे-धीरे प्रकुपित होता है तो आमवात, ज्वर आदि दीर्घगामी विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। वस्तुतः आमदोष शरीरमें कहीं भी विकृति उत्पन्न कर सकता है—जब यह सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाता है और कहीं भी संचित होकर स्वयंके लक्षणोंसे युक्त होकर उस अवयव-विशेषमें व्याधि-स्वरूप व्यक्त हो जाता है।

जैसा कि श्रीलोलिम्बराजने कहा है—पथ्य औषधिसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है, किंतु पथ्य ही सब कुछ नहीं है। वस्तुतः पूर्णरूपसे हितकर आहारसेवी भी अस्वस्थ देखे जाते हैं। यद्यपि आहारके अतिरिक्त रोगोंके अन्य कारण भी हैं। यथा—असात्म्येन्द्रियार्थ-संयोग, प्रज्ञापराध एवं काल-परिणाम आदि। इसलिये हितकर आहारसेवी भी उक्त कारणोंसे अस्वस्थ हो जाते हैं। अपथ्य-सेवनकी स्थितिमें व्यक्ति स्वस्थ कैसे रहता है, इसके लिये आचार्यने तीन हेतु बताये हैं—१-अतुल्यता, २-दोष और ३-शरीर।[३] अपथ्य-सेवन करनेवालोंमें किन्हीं कारणोंवश अपथ्य-सेवन शीघ्र प्रभावी नहीं होता। सभी अपथ्य समान रूपसे दोषकारक नहीं होते तथा सभी दोष भी समान बलवाले नहीं होते। इसी प्रकार सभी शरीर भी रोगका सहन करनेमें समानरूपसे समर्थ नहीं होते।

कोई अपथ्य देश, काल, संयोग, वीर्य एवं मात्रा आदि भावोंके प्रभावसे और अधिक अपथ्य हो जाता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि यदि अपथ्य आहारके समान ही उक्त देश, काल आदि भाव भी समान हों तो उस अपथ्याहारका दोषकर परिणाम अधिक शीघ्र एवं तीव्र होगा। इसके विपरीत यदि वे समान गुणवाले न हों तो अपथ्यका प्रभाव कम हो जाता है।

दोष-बल एवं शरीर-बलकी भिन्नताके कारण अपथ्य सर्वत्र समान रूपसे प्रभावी नहीं होता तथा इन्हीं कारणोंसे रोग भी मृदु, दारुण, सद्यः उत्पन्न तथा चिरकारी होता है।

'पथ्य और अपथ्य'के प्रकरणमें मात्राका विशेष महत्त्व है। आचार्योंने आहार-औषधि आदिके मात्रापरक

१- मात्राकालक्रियाभूमिदेहदोषगुणान्तरम्। प्राप्य तत्तद्धि दृश्यन्ते ते ते भावास्तथा तथा॥ (च०सू० २५।४७)

२- तस्मात् स्वभावो निर्दिष्टस्तथा मात्रादिराश्रयः। तदपेक्ष्योभयं कर्म प्रयोज्यं सिद्धिमिच्छता॥ (च०सू० २५।४८)

३- अहिताहारोपयोगिनां पुनः कारणतो न सद्यो दोषवान् भवत्यपचारः, न हि सर्वाण्यपथ्यानि तुल्यदोषाणि, न च सर्वे दोषास्तुल्यबलाः, न च सर्वाणि शरीराणि व्याधिक्षमत्वे समर्थानि भवन्ति, तदेव ह्यपथ्यं देशकालसंयोगवीर्यप्रमाणातियोगाद्भूयस्तरमपथ्यं सम्पद्यते॥ (च०सू० २८।७)

प्रभावोंसे इस विषयको स्पष्ट किया है। पिप्पली कटु और गुरु है, यह न अधिक स्निग्ध है न अधिक उष्ण प्रत्युत विपाकमें मधुर है। यदि पिप्पलीकी सममात्रा अल्पसमयतक प्रयुक्त की जाय तो अत्यन्त हितकर होती है। इसे 'आपातभद्रा' कहा गया है, परंतु अधिक मात्रामें प्रयुक्त होनेपर यह दोष-संचय करती है, गुरु एवं क्लेदकारी होनेसे कफोत्क्लेश करती है तथा अल्प स्निग्ध होनेसे वात-शमन करनेमें असमर्थ रहती है। इसलिये इसका निरन्तर प्रयोग नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार क्षार उष्ण-तीक्ष्ण-लघु तथा प्रथमतः क्लेदकारक तदनन्तर शोषक होता है। यह पाचन, दाह एवं भेदनहेतु प्रयुक्त होता है। इसके अतिप्रयोगसे केश, दृष्टि एवं पुंस्त्वका नाश होने लगता है। अतः क्षारका अधिक प्रयोग नहीं करना चाहिये। लवण भी उष्ण, तीक्ष्ण, नातिगुरु, नातिस्निग्ध, क्लेदक एवं स्रंसक होता है। लवणका अल्पकालमें अल्पमात्रामें प्रयोग हितकर होता है, परंतु अतियोगसे दोष-संचय होता है। इसलिये पिप्पली तथा क्षार और लवण एवं इसी प्रकारके अन्य द्रव्योंको अल्पकालतक अल्पमात्रामें ही प्रयोग करना चाहिये। यदि इनका निरन्तर प्रयोग किया गया हो और ये सात्म्य हो गये हों तो इनका क्रमसे परिवर्जन करना चाहिये।

आहार एवं पथ्य तथा अपथ्यके संदर्भमें यह सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि प्रत्येक व्यक्तिको स्वयमेव निश्चित करना चाहिये कि उसके लिये उपयुक्त आहार क्या है; क्योंकि आहारका पथ्य अथवा अपथ्य होना एक तो व्यक्तिकी प्रकृतिपर निर्भर करता है, दूसरा देश, काल, मात्रा आदिपर निर्भर करता है। आहार यदि जीवनीय तत्त्वोंसे भरपूर तथा उचित मात्रामें किया जाय तो शरीरमें 'व्याधिक्षमत्व' बढ़ता है। व्यक्तिको स्वाभाविक भोजन ग्रहण करते हुए अनावश्यक स्वादलोलुपतासे बचना चाहिये। सभी परिस्थितियोंमें आहार सरल, सुपाच्य एवं नियत मात्रामें होना चाहिये। जिनकी पाचनशक्ति दुर्बल हो, उन्हें कम प्रोटीनवाले आहार लेने चाहिये। भोजन ग्रहण करनेके आधे घंटे बाद जल लेना चाहिये। भोजनके समय यह ध्यान रखना चाहिये कि भोजन आवश्यकतासे थोड़ा कम किया जाय। आयुर्वेदीय साहित्यमें इसका स्पष्ट निर्देश है। पूर्वाचार्योंने कहा है कि भोजन करते समय आमाशयमें लभ्य स्थानके संदर्भमें दो चौथाई ठोस आहार, एक चौथाई द्रव पदार्थ तथा एक चौथाई वायव्य पदार्थसे भरना चाहिये अर्थात् एक चौथाई भाग खाली रखना चाहिये, ताकि पाचनमें सुविधा रहे।[1] आहार सुपाच्य एवं रुचिपूर्ण हो इसके लिये आवश्यक है कि एक ही प्रकारका आहार अधिक मात्रामें न लिया जाय। आहार सर्वविध सम्पन्न एवं सभी रसोंसे युक्त होना चाहिये, जिससे शरीरको आवश्यक सभी तत्त्वोंकी पूर्ति होती रहे। इसीलिये आयुर्वेदमें 'सर्वरसाभ्यास' को आहारविज्ञानका एक प्रमुख सिद्धान्त माना गया है।

आहारविज्ञानमें मात्र आहारके भौतिक घटकोंका महत्त्व नहीं है, अपितु आहारकी संयोजना, विविध प्रकारके आहार-द्रव्योंका सम्मिलन, आहारपाक या संस्कार, आहारकी मात्रा एवं आहार-ग्रहणविधि तथा मानसिकता सभी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

अष्ट आहार-विधि विशेषायतन

ऊपर आहारकी पथ्यता तथा अपथ्यताको प्रभावित करनेवाले मात्रा, क्रिया, कालादि भावोंका उल्लेख किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त आचार्य चरकने आहार-ग्रहणकी आठ विधियाँ बतायी हैं।[2] ये सभी आपसमें एक-दूसरेके सहयोगी हैं तथा आहार पथ्य है अथवा अपथ्य, इसका निर्धारण करते हैं। ये आठ भाव शुभाशुभ फलदायक हैं। इनके नाम इस प्रकार है—

१-प्रकृति (Natural quality)
२-करण (संस्कार) (Preparations)
३-संयोग (Combinations)
४-राशि (Quantum)
५-देश (Habitat and climate)
६-काल (Time factor and disease state if any)
७-उपयोग-संस्था (Rules of use)
८-उपयोक्ता (user)

स्वाभाविक गुणयुक्त द्रव्योंमें जो संस्कार किया जाता है, उसे 'करण' कहते हैं। किसी भी द्रव्यमें अतिरिक्त गुणोंका आधान ही संस्कार है— 'संस्कारो हि गुणान्तराधानम्'—

१- द्वौ भागौ पूरयेदन्नैस्तोयेनैकं प्रपूरयेत्। वायोः संचरणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्॥ (ज्योत्स्ना टीका, ह०प्र०प्र०उ० ५८)
२- खल्विमान्यष्टावाहारविधिविशेषायतनानि भवन्ति। तद्यथा— प्रकृतिकरणसंयोगराशिदेशकालोपयोगसंस्थोपयोक्त्रष्टमानि भवन्ति। (च०वि० १। २५)

(च०वि० १।२७ की व्याख्या) यही पाकविद्याका प्रमुख उद्देश्य है।

द्रव्योंमें अतिरिक्त गुणोंका आधान जल एवं उष्माके संयोगसे शुद्धीकरण, मन्थन, स्थान-देश-काल आदिका परिवर्तन, भण्डारण अथवा भावना निवेशद्वारा करते हैं। अष्ट आहारविधि-विशेषायतनोंमें उपयोग-संस्थाका विशेष महत्त्व है। आचार्य चरकने आहार-ग्रहणके संदर्भमें दस प्रकारके नियमोंका निर्देश किया है[1]—

१-उष्ण भोजन ग्रहण करना चाहिये।

२-स्निग्ध आहार ग्रहण करना चाहिये।

३-मात्रावत् (नियत मात्रामें) आहार लेना चाहिये।

४- भोजनके पूर्ण रूपसे पच जानेपर ही भोजन करना चाहिये।

५- वीर्यविरुद्ध आहार नहीं लेना चाहिये।

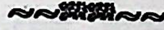
६- इष्ट देशमें एवं इष्ट उपकरणों (सामग्रियों)-में ही आहार ग्रहण करना चाहिये।

७- द्रुतगतिसे भोजन नहीं करना चाहिये।

८- अधिक विलम्बतक भोजन नहीं करना चाहिये।

९- बोलते हुए नहीं अर्थात् शान्तिपूर्वक तथा बिना हँसते हुए आहार ग्रहण करना चाहिये।

१०- अपने आत्माका सम्यक् विचार कर तथा आहार-द्रव्यमें मन लगाकर और स्वयंकी समीक्षा करते हुए भोजन ग्रहण करना चाहिये।



शाकाहारसे स्वास्थ्यकी सुरक्षा

(श्रीरामनिवासजी लखोटिया)

शाकाहार एक जीवन-प्रणाली है, जिसका भारतीय संस्कृतिसे बहुत गहरा सम्बन्ध है। इसीलिये आध्यात्मिक, नैतिक, आर्थिक, अहिंसा, प्रकृति, योग एवं पर्यावरणकी दृष्टिसे यह निर्विवाद है कि शाकाहार उत्तम आहार है। परंतु सबसे बड़ी बात जो पाश्चात्त्य देशोंके लोगोंको शाकाहारकी ओर आकर्षित कर रही है, वह है शाकाहारसे स्वास्थ्यकी सुरक्षा। प्रस्तुत लेखमें वैज्ञानिक आँकड़ोंके आधारपर और विश्व-प्रसिद्ध स्वास्थ्य-विशेषज्ञोंकी रायके अनुसार यह प्रमाणित करनेका प्रयास किया जा रहा है कि स्वास्थ्यकी सुरक्षा मांसाहारकी तुलनामें शाकाहारसे अधिक है।

शाकाहारमें पर्याप्त प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट एवं कैलोरी— कई बार कुछ मांसाहारी और विशेषकर विद्यार्थी-वर्ग एवं डॉक्टर-वर्ग बीमार व्यक्तियोंको अधिक प्रोटीन उपलब्ध करानेकी दृष्टिसे उनको अंडा या मांस खानेकी सलाह देते हैं, ताकि उन्हें पर्याप्त प्रोटीन मिले। यह बात तो सही है कि स्वास्थ्यके लिये प्रोटीन भोजनका आवश्यक तत्त्व है, परंतु हमें यह देखना चाहिये कि क्या शाकाहारसे पर्याप्त प्रोटीन मिल सकता है? निम्न तालिकाके देखनेसे यह प्रमाणित हो जाता है कि प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और कैलोरीकी दृष्टिसे शाकाहार स्वास्थ्यकी सुरक्षा करनेमें ज्यादा लाभदायक सिद्ध होता है। भारत सरकारकी स्वास्थ्य-बुलेटिन संख्या २३ के द्वारा कुछ खाद्यान्नोंमें तुलनात्मक अध्ययनद्वारा प्रोटीन, ऊर्जा और कैलोरीकी दृष्टिसे विभिन्न खाद्योंकी तुलना की गयी है। कुछ खाद्यान्नोंका तुलनात्मक चार्ट नीचे दिया जा रहा है—

तुलनात्मक चार्ट (प्रति १०० ग्राम)

नाम पदार्थ	प्रोटीन	कार्बोहाइड्रेट	कैलोरी
शाकाहार खाद्य			
मूँग	२४.०	५६.६	३३४
सोयाबीन	४३.२	२०.९	४३२
मूँगफली	३१.५	१९.३	५४९
स्प्रेटा दूध पाउडर	३८.३	५१.०	३५७
मांसाहार खाद्य			
अंडा	१३.३	०	१७३
मछली	२२.६	०	९१
बकरेका मांस	१८.५	०	१९४

—इस तालिकासे स्पष्ट हो जाता है कि प्रोटीन, कैलोरी और कार्बोहाइड्रेटकी दृष्टिसे शाकाहार उत्तम आहार है। बल्कि अंडे, मछली तथा मांसमें कार्बोहाइड्रेट अर्थात् ऊर्जा, जो शरीरके लिये अत्यन्त आवश्यक है, बिलकुल

१- उष्णं स्निग्धं मात्रावज्जीर्णे वीर्याविरुद्धमिष्टे देशे इष्टसर्वोपकरणं नातिद्रुतं नातिविलम्बितमजल्पन्नहसंस्तन्मना भुञ्जीतात्मानमभिसमीक्ष्य सम्यक्॥ (च०वि० १।२४)

नहीं होता।

फिर अतिरिक्त कार्बोहाइड्रेटकी दृष्टिसे उत्तम फल शाकाहारियोंको प्राप्त हो सकते हैं, जैसे आम, केला, अंगूर, सेब आदि। इसी प्रकार विभिन्न दाल, गेहूँ, चावल, आलू आदिमें पर्याप्त कार्बोहाइड्रेट उपलब्ध है। यही नहीं, विभिन्न प्रकारके विटामिन और खनिज पदार्थ भी पर्याप्त मात्रामें फलों, सब्जियों और खाद्यान्नोंमें मिलते हैं।

अंडा भी स्वास्थ्यवर्धक नहीं—आजकल प्राय: यह सुननेमें आ रहा है कि बच्चोंको अंडे आदिके सेवनसे अधिक स्वस्थ बनाया जा सकता है। यह एक भ्रान्ति है, जिसका निराकरण सन् १९८५ ई० के नोबल पुरस्कार-विजेता डॉ० माइकल एस० ब्राउन तथा डॉ० जोसेफ एल० गोल्डस्टीन नामक दो अमेरिकन डॉक्टरोंने किया, जब उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि हृदयके रोगके कारण ही अधिकांश मौतें होती हैं। उनके अनुसार कॉलस्टेरोल नामक तत्त्वको रक्तमें जमनेसे रोकना बहुत आवश्यक है और कॉलस्टेरोल अंडोंमें सबसे अधिक मात्रामें अर्थात् १०० ग्राम अंडेमें लगभग ५०० मि०ग्रा० पाया जाता है। यह वनस्पतियों एवं फलोंमें शून्य-सा होता है, परंतु मांस, अंडों और जानवरोंसे प्राप्त वसामें प्रचुर मात्रामें होता है। अब यह भी सिद्ध हो गया है कि अंडा सुपाच्य नहीं है। बल्कि अंडेके छिलकेपर लगभग १५,००० सूक्ष्म छिद्रोंके द्वारा कई जीवाणु उसमें प्रवेश कर जाते हैं, जो उसे खराब कर देते हैं। इस प्रकार अब वैज्ञानिकोंने यह प्रमाणित कर दिया है कि जो व्यक्ति मांस या अंडे खाते हैं, उनके शरीरमें 'रिस्पटरों' की संख्यामें कमी हो जाती है, जिससे रक्तके अंदर कॉलस्टेरोलकी मात्रा अधिक हो जाती है, इससे हृदय-रोग आरम्भ हो जाता है। गुर्देके रोग एवं पथरी-जैसी बीमारियोंको बढ़ावा मिलता है। यही कारण है कि 'इंटरनेशनल वेजिटेरियन यूनियन' एवं शाकाहारी संस्थाओंद्वारा शाकाहारको विदेशोंमें बहुत सम्मानकी दृष्टिसे देखा जा रहा है। सन् १९८५ ई० में मात्र ६० लाख अमेरिकन शाकाहारी थे, परंतु एक नवीनतम सर्वेक्षणके अनुसार अमेरिकाके दो-तिहाई घरोंमें अब शाकाहार आकर्षक हो गया है।

शाकाहार पौष्टिक आहार है—कई बार मांसाहारके पक्षमें यह तर्क दिया जाता है कि बच्चोंको अधिक शक्तिशाली बनानेकी दृष्टिसे उन्हें मांसाहार कराया जाना चाहिये, परंतु यह बात सही नहीं। उपरि निर्दिष्ट तालिकासे यह बात सिद्ध हो जाती है कि प्रोटीन, कैलोरी और कार्बोहाइड्रेट आदिकी दृष्टिसे स्वास्थ्यके लिये शाकाहार ही पौष्टिक आहार है। इसके अतिरिक्त यदि हम शाकाहारी जानवरोंके उदाहरण देखें तो पायेंगे कि विशुद्ध शाकाहारी जानवर मांसाहारी जानवरोंकी तुलनामें अधिक शक्तिशाली हैं, जैसे-घोड़ा, गेंडा तथा हाथी।

खिलाड़ियोंके लिये अच्छा स्वास्थ्य शाकाहारसे सम्भव—क्रिकेटके विश्वविख्यात बहुत-से खिलाड़ी पूर्णतया शाकाहारी हैं। विश्वके कई प्रख्यात खिलाड़ी और पहलवान शाकाहारी रहे हैं, जैसे—गुरु हनुमान् तथा गामा। मास्टर चन्दगीराम, जो पूर्णतया शाकाहारी हैं, वे भी अपने समयके बहुत ही प्रख्यात पहलवान रहे हैं। ओलम्पिकमें विश्व-रिकार्ड कायम करनेवाले स्टेनप्राईस और दूर पैदल चलनेमें विशेष योग्यता रखनेवाले स्वीटगौन तथा लम्बी दौड़में बीस विश्व-रिकार्ड बनानेवाले नूरमी—ये सब शाकाहारी हैं। इंग्लिश चैनल नहरको तैरकर द्रुतगतिसे पार करनेवाले रिकार्ड-होल्डर बिलपिकिंग और चार सौ मीटर एवं पंद्रह सौ मीटरकी दौड़में विश्व-रिकार्ड रखनेवाले मुरेरोज भी पूर्णतया शाकाहारी हैं। अन्ताराष्ट्रिय बाडी-बिल्डिंग चैम्पियन एण्ड्रूज शिलिंग तथा पिरको वर्नोट भी शाकाहारी हैं। इतना ही नहीं, कराटेके क्षेत्रमें आठ राष्ट्रीय कराटे जीतनेवाले 'एबेल' शाकाहारी हैं। टेनिसके श्रीकमलेश मेहता और विश्वविख्यात विजयमर्चेन्ट एवं वीनु मांकड शाकाहारी रहे हैं।

रोगोंकी रोकथाममें शाकाहार अधिक लाभकारी—मांसाहारकी अपेक्षा शाकाहार विभिन्न रोगोंकी रोकथाममें अधिक सहायक सिद्ध हुआ है। विश्व-स्वास्थ्य-संघने ऐसी एक सौ साठ बीमारियोंके नाम अपने समाचार-पत्रमें घोषित किये हैं, जो मांसाहारसे ही फैलती हैं। इन बीमारियोंमें मिरगी प्रमुख है। यह बीमारी मस्तिष्कमें टीनिया सोलिठम नामक कीड़ेसे उत्पन्न होती है। यह कीड़ा सूअरका मांस खानेसे उत्पन्न होता है। मानवपर सैकड़ों प्रयोगोंसे यह सिद्ध हो चुका है कि पशुओंवाली चिकनाईसे रक्तमें 'कोलेस्ट्राल' की मात्रा बढ़ जाती है और वनस्पतिकी चिकनाई उसे कम करती है। इस बातके लिये प्रचुर प्रमाण यह है कि 'आर्टिरियोस्कलेरोसिस' तथा 'कोरोनरी' हृदय-रोगोंमें कोलेस्ट्राल बड़ा कारण है। लॉस एंजिल्स (अमेरिका)- के डॉ० मारिसनका कथन है

कि कोलेस्ट्रालसे अन्य कितने ही मानव-रोग उत्पन्न होते हैं, यथा—पथरी (शरीर-विज्ञान)-से सम्बन्धित प्रयोगशालाके डॉक्टर मूरने यह प्रदर्शित किया है कि मांसाहारसे हृदयका क्रिया-कलाप बढ़ जाता है। 'न्यूयार्क लाइफ इंश्योरेंस कार्पोरेशन' के डॉक्टर हंटर आर्थर इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि मांस खानेसे रक्तचाप बढ़ता है। मांसाहार शरीरमें विषाक्त पदार्थोंको प्रवेश कराता है। जब पशु मारा जाता है, उस समय त्यागने योग्य द्रव्य उसके शरीरमें रह जाते हैं, जिसके कारण मांसाहारमें उत्तेजनाका तत्त्व होता है। इन त्याज्य-पदार्थोंकी मात्रा मृत पशुमें उसके जीवित अवस्था तथा उसके वधकी अपेक्षा अधिक होती है। इसी प्रकार रक्तचाप, आर्टरीकी कठोरता और गुर्देके रोगोंसे पीड़ित व्यक्तियोंके लिये भी मांसाहार हानिकारक है।

स्वास्थ्यके प्रेमियोंके लिये स्वयंके स्वास्थ्य-हेतु यह आवश्यक है कि वे अंडे और अन्य मांस आदि अभक्ष्य वस्तुका सेवन निश्चित रूपसे कभी न करें।



गेहूँके पौधेमें रोगनाशक ईश्वरप्रदत्त अपूर्व गुण

(श्रीचिन्तामणिजी पाण्डेय, सा०भू, ए०एम०टी०आई०)

गेहूँका प्रयोग हम सभी लोग बारहों मास भोजनमें करते रहते हैं, पर उसमें क्या गुण है, इसपर लोगोंने बहुत कम विचार किया है। मोटे तौरसे हम लोग इतना ही जानते हैं कि यह एक उत्तम शक्तिदायक खाद्य-पदार्थ है। कुछ वैद्योंने यह भी पता लगाया है कि मुख्य शक्ति गेहूँके चोकरमें है, जिसे प्राय: लोग आटा छान लेनेके बाद फेंक देते हैं अथवा जानवरोंको खानेके लिये दे देते हैं; स्वयं नहीं खाते। हानिकारक महीन आटा या मैदा खाना पसंद करते हैं और लाभदायक चोकरसहित मोटा आटा खाना नहीं पसंद करते। फल यह होता है कि शक्तिवर्धक वस्तु न खाकर गेहूँके अंदरका शक्तिरहित गूदा (मैदा) खाते रहनेसे हम लोग जीवनभर अनेक प्रकारकी बीमारियोंसे पीडित रहा करते हैं। प्राकृतिक चिकित्सक लोग प्राय: चोकरसहित आटा खानेपर जोर देते हैं, जिससे पेटकी तमाम बीमारियाँ अच्छी हो जाती हैं। लोग यह जानते हैं कि २४ घंटे भिगोकर सबेरे गेहूँका नाश्ता करनेसे अथवा चोकरका हलुआ खानेसे शक्ति आती है। फिर भी लोग झंझटसे बचनेके लिये डॉक्टरी दवाईके फेरमें अधिक रहते हैं; जिसके सेवनसे नयी-नयी बीमारियाँ दिनोंदिन बढ़ती जा रही हैं, फिर भी लोग चेतते नहीं। स्त्रियाँ तो विशेषकर दवाकी भक्तिनी हो गयी हैं। घरमें रोज काममें आनेवाली और भी अनेक चीजें हैं, जिनके उचित प्रयोगसे अनेक साधारण बीमारियाँ अच्छी हो सकती हैं, जिन्हें कि हमारी बूढ़ी-बाढ़ी माताएँ अधिक जानती थीं, पर आजकलकी नयी स्त्रियाँ उनके बनानेकी झंझटसे बचनेके लिये बनी-बनायी दवाइयोंका प्रयोग ही ज्यादा पसंद करती हैं, फिर चाहे उनसे दिन-दिन स्वास्थ्य गिरता ही क्यों न जाय।

इसी उपर्युक्त गेहूँके सम्बन्धमें आज हम 'कल्याण' के पाठकोंको एक महत्त्वकी बात बताना चाहते हैं—

अमेरिकाकी एक महिला डॉक्टरने गेहूँकी शक्तिके सम्बन्धमें बहुत अनुसंधान तथा अनेकानेक प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया है कि अनेकों असाध्य रोगियोंपर गेहूँके छोटे-छोटे पौधोंका रस (Wheat Grass Juice) देकर उनके कठिन-से-कठिन रोग अच्छे किये जा सकते हैं। वे कहती हैं कि 'संसारमें ऐसा कोई रोग नहीं है, जो इस रसके सेवनसे अच्छा न हो सके।' कैंसरके बड़े-बड़े भयंकर रोगी उन्होंने अच्छे किये हैं, जिन्हें डॉक्टरोंने असाध्य समझकर जवाब दे दिया था और वे मरणप्राय-अवस्थामें अस्पतालसे निकाल दिये गये थे। ऐसी हितकर चीज यह अद्भुत Wheat Grass Juice साबित हुई है। अनेकानेक भगंदर, बवासीर, मधुमेह, गठियाबाई, पीलियाज्वर, दमा, खाँसी आदिके पुराने-से-पुराने असाध्य रोगी उन्होंने इस साधारण-से रससे अच्छे किये हैं। बुढ़ापेकी कमजोरी दूर करनेमें तो यह रामबाण ही है। अमेरिकाके अनेकों बड़े-बड़े डॉक्टरोंने इस बातका समर्थन किया है और अब बम्बई और गुजरात प्रान्तमें भी अनेक लोग इसका प्रयोग करके लाभ उठा रहे हैं। भयंकर फोड़ों और घावोंपर इसकी लुगदी बाँधनेसे जल्दी लाभ होता है।

इसके रसको लोग Green Blood की उपमा देते हैं, कहते हैं कि यह रस मनुष्यके रक्तसे ४० फीसदी मेल खाता है। ऐसी अद्भुत चीज आजतक कहीं देखने-सुननेमें नहीं आयी थी। इसके तैयार करनेकी विधि बहुत ही सरल है। प्रत्येक मनुष्य अपने घरमें इसे आसानीसे तैयार कर सकता है। कहीं इसे मोल लेने जाना नहीं पड़ता; न यह

कहीं पेटेंट दवाके रूपमें बिकती है। यह तो रोज ताजी बनाकर ताजी ही सेवन करनी पड़ती है।

इस रसके बनानेकी विधि इस प्रकार है—

आप १०—१२ चीड़के टूटे-फूटे बक्सोंमें अथवा मिट्टीके गमलोंमें अच्छी मिट्टी भरकर उनमें बारी-बारीसे कुछ उत्तम गेहूँके दाने बो दीजिये और छायामें अथवा कमरे या बरामदेमें रखकर यदा-कदा थोड़ा-थोड़ा पानी डालते जाइये, धूप न लगे तो अच्छा है। तीन-चार दिन बाद पेड़ उग आयेंगे और आठ-दस दिनके बाद बीता-डेढ़ बीता (७-८ इंच)-के हो जायँगे, तब आप उनमेंसे पहले दिनके बोये हुए ३०-४० पेड़ जड़सहित उखाड़कर जड़को काटकर फेंक दीजिये और बचे हुए डंठल तथा पत्तियोंको (जिसे Wheat Grass कहते हैं) धोकर साफ सिलपर थोड़े पानीके साथ पीसकर आधे गिलासके लगभग रस छानकर तैयार कर लीजिये और रोगीको तत्काल वह ताजा रस रोज सबेरे पिला दीजिये। इसी प्रकार शामको भी ताजा रस तैयार करके पिलाइये—बस आप देखेंगे कि भयंकर-से-भयंकर रोग आठ-दस या पंद्रह-बीस दिन बाद भागने लगेंगे और दो-तीन महीनेमें वह मरणप्राय प्राणी एकदम रोगमुक्त होकर पहलेके समान हट्टा-कट्टा स्वस्थ मनुष्य हो जायगा। रस छाननेमें जो फुजला निकले, उसे भी आप नमक वगैरह डालकर भोजनके साथ खा लें तो बहुत अच्छा है। रस निकालनेके झंझटसे बचना चाहें तो आप उन पौधोंको चाकूसे महीन-महीन काटकर भोजनके साथ सलादकी तरह भी सेवन कर सकते हैं, परंतु उसके साथ कोई भी फल न मिलाये जायँ। साग-सब्जी मिलाकर खूब शौकसे खाइये, आप देखियेगा कि इस ईश्वरप्रदत्त अमृतके सामने डॉक्टर-वैद्योंकी दवाइयाँ सब बेकार हो जायँगी; ऐसा उस महिला डॉक्टरका दावा है।

गेहूँके पौधे ७-८ इंचसे ज्यादा बड़े न होने पायें, तभी उन्हें काममें लाया जाय। इसी कारण १०-१२ गमले या चीड़के बक्स रखकर बारी-बारीसे (प्रायः प्रतिदिन दो-एक गमलोंमें) आपको गेहूँके दाने बोने पड़ेंगे। जैसे-जैसे गमले खाली होते जायँ, वैसे-वैसे उनमें गेहूँ बोते चले जाइये। इस प्रकार यह गेहूँ घरमें प्रायः बारहों मास उगाया जा सकता है।

उक्त महिला डॉक्टरने अपनी प्रयोगशालामें हजारों असाध्य रोगियोंपर इस Wheat Grass Juice का प्रयोग किया है और वे कहती हैं कि उनमेंसे किसी एकके विषयमें भी असफलता नहीं हुई।

रस निकालकर ज्यादा देर नहीं रखना चाहिये। ताजा ही सेवन कर लेना चाहिये। घंटा-दो-घंटा रख छोड़नेसे उसकी शक्ति घट जाती है और तीन-चार घंटे बाद तो वह बिलकुल शक्तिहीन हो जाता है। डंठल और पत्ते इतनी जल्दी खराब नहीं होते। वे एक-दो दिन हिफाजतसे रखे जायँ तो विशेष हानि नहीं पहुँचती।

इसके साथ-साथ आप एक काम और कर सकते हैं, वह यह कि आप आधा कप गेहूँ लेकर धो लीजिये और किसी पात्रमें डालकर उसमें दो कप पानी भर दीजिये, बारह घंटे बाद वह पानी निकालकर आप प्रातः-सायं पी लिया कीजिये। वह आपके रोगको निर्मूल करनेमें और अधिक सहायता करेगा। बचे हुए गेहूँ आप नमक-मिर्च डालकर वैसे भी खा सकते हैं अथवा पीसकर हलुआ बनाकर सेवन कर सकते हैं या सुखाकर आटा पिसवा सकते हैं—सब प्रकार लाभ-ही-लाभ है। ऐसा उपयोगी है यह रोज काममें आनेवाला गेहूँ।

मालूम होता है हमारे ऋषि-मुनि लोग इस क्रियाको पूर्णरूपसे जानते थे। उन्होंने स्वास्थ्यकी रक्षा करनेवाले पदार्थोंको नित्यके पूजा-विधानमें रख दिया था, जिसमें लोग उन्हें भूल न जायँ और नित्य उनका प्रयोग अवश्य करें। जैसे तुलसीदल, बेलपत्र, चन्दन, गङ्गाजल, गोमूत्र, तिल, मधु, धूप-दीप, रुद्राक्ष आदि-आदि। इसी प्रकार अनुष्ठानोंमें जौका प्रयोग और जौ बोकर उसके पौधे उगाना ही पूजाका एक विधान रखा था, जो प्रथा आजतक किसी-न-किसी रूपमें चली आ रही है। गेहूँ और जौमें बहुत अन्तर नहीं है। बहुत सम्भव है, जौके छोटे-छोटे पौधोंमें जीवनीशक्ति अधिक हो। सम्भव है, इसीसे पूजामें जौको ही प्रधानता दी गयी है, परंतु हम लोग इन स्वास्थ्यवर्धक चीजोंको केवल पूजाकी सामग्री समझकर उनका नाममात्रका प्रयोग करते हैं—स्वास्थ्यके विचारसे यथार्थ मात्रामें उनका सेवन करना हम भूल ही गये हैं।

ऐसा है यह गेहूँके पौधोंमें भरा हुआ ईश्वरप्रदत्त अमृत! समर्थ पाठकोंको चाहिये कि वे इस अमृत-रसका सेवन कर स्वयं सुखी हों और लाभ मालूम हो तो परोपकारके विचारसे इसका यथाशक्ति प्रचार करके अन्य लोगोंका कल्याण करें और स्वयं महान् पुण्यके भागी हों।

गेहूँके चोकरका औषधीय गुण

(श्री जे० एन० सोमानी)

गेहूँका चोकर क़ब्ज़ दूर करनेमें अद्वितीय प्राकृतिक औषध है। क़ब्ज़ दूर करनेके साथ-साथ इसका सेवन करनेसे निम्नलिखित लाभ भी प्राप्त होते हैं, जैसे—

१-यह मलको सूखने नहीं देता।

२-आँतोंमें जाकर उत्तेजना पैदा नहीं करता, अपितु गुदगुदी पैदा करता है जो कि प्राकृतिक नियम है। आप पशुओंका मल निकलते देखिये तब मालूम पड़ेगा कि वे मल निकालते समय कैसा व्यवहार करते हैं। आँतोंमें गुदगुदाहट पैदा होनेसे शरीरकी स्थिति ऐसी ही होती है।

३-इससे मल पतला नहीं अपितु मुलायम तथा बँधा हुआ आता है। आँतोंमें मरोड़ पैदा नहीं होती। मल बिना जोर लगाये आसानीसे निकल जाता है। जोर लगाकर मल निकालनेसे नाडी कमजोर हो जाती है तथा शक्ति न रहना, वायु भरना, बवासीर, काँच निकलना इत्यादि रोग होनेका डर रहता है।

४-यह देखनेमें खुरदरा (Rough) है, परंतु चबाते समय मुँहकी लारसे मुलायम हो जाता है। चूँकि यह मुँहकी लारको काफी मात्रामें समेट लेता है, अत: भोजनके पचनेमें सहायता करता है।

५-चोकर हर दृष्टिसे अच्छा है। भोजनमेंसे गुणकारी चोकरको निकालकर हम शरीरके साथ अन्याय करते हैं। चोकर निकाले हुए आटेकी रोटियाँ स्वास्थ्यके लिये हानिकारक हैं, वे सुपाच्य नहीं हैं।

६-चोकरसे शरीर पवित्र रहता है। यह पेटके अंदरका मल झाड़-बुहार कर पेटको साफ कर देता है। पेट साफ रहनेसे कोई बीमारी नहीं होती।

७-भोजनमें चोकरको प्रधानता दें। इसको आटेमें मिलाइये। सब्जी, दूध, दही, सलाद, शहदमें मिलाकर खाइये। गुड़में मिलाकर लड्डू बनाइये। इस प्रकार भोजनका आनन्द लें।

८-यह कैंसरसे दूर रखता है तथा आँतोंकी सुरक्षा करता है, आमाशयके घावको ठीक करता है। क्षयरोग भी दूर करता है, हृदय-रोगसे बचाता है, कोलेस्ट्रोलसे रक्षा करता है। चोकरसे स्नान करनेपर चर्म-रोग अच्छा होता है।

९-आपको स्वस्थ रहना है तो चोकर जरूर खाइये।

१०-चोकर खानेवालोंको एपेंडीसाइटिस नहीं होती, आँतोंकी बीमारी नहीं होती। अर्श (Piles), भगंदर, बृहदान्त्र एवं मलाशयका कैंसर नहीं होता।

११-मोटापा घटानेके लिये चोकर निरापद औषधि है; क्योंकि भोजनमें कमी करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, रोगी आसानीसे पतला हो जाता है।

१२-चोकर मधुमेह निवारणमें मदद करता है।

१३-चोकरका बिस्किट, चोकर-आलूकी रोटी, हलवा बनाकर आनन्दके साथ खाया जा सकता है।

१४-चोकरको गाजरके हलवेमें भी स्थान दें। यह मिस्सी रोटीको और भी स्वादिष्ठ बनाता है। चोकरदार बूँदीका रायता स्वादके साथ खाया जा सकता है।

१५-इडली, डोसा, कचौड़ी बनाते समय चोकरको न भूलें। सरसोंका शाक चोकरके साथ बनाइये।

१६-चोकर साफ-सुथरा, मोटा, स्वादिष्ठ ताजे आटासे निकाला हुआ एवं जर्म्स (Germs)-से मुक्त होना चाहिये।

१७-छोटी मिलका सफाईसे बना चोकर मोटा एवं अच्छा होता है।

१८-चोकर खानेवालोंका दिल-दिमाग स्वस्थ रहता है; क्योंकि चोकरसे पेट साफ हो जाता है। याद रखें क़ब्ज़ ही अधिकतर रोगोंकी जड़ है।

१९-चोकर क्षारधर्मी होनेके कारण रक्तमें रोगोंसे लड़नेकी ताकत बढ़ाता है।

२०-सभी प्रकारके अन्नके रेशोंमें गेहूँके चोकरको आदर्श स्थान मिला है अर्थात् गेहूँका चोकर आदर्श रेशा है।

२१-चोकरमें प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, केलोरीज, रेशा, कैलशियम, सोडियम, आक्जेलिक एसिड, पोटेशियम, ताँबा, सल्फर, क्लोरीन, जिंक, थियामिन, विटामिन ए, रिवोफ्लोविन, निकोटिनिक एसिड, पायरिडोक्सिन, फोलिक एसिड, प्रेटाथेनिक एसिड एवं विटामिन K पाया जाता है।



समस्त रोगोंकी अमृत दवा—त्रिफला

(डॉ० श्रीराजीवजी प्रचण्डिया, एम्०ए० (संस्कृत), बी०एस्-सी०, एल्-एल्०बी०, पी-एच्०डी०)

आजकल मनुष्य प्रकृतिसे जितना दूर होता जा रहा है, उतना ही वह विभिन्न रोगोंसे घिरता जा रहा है। वर्तमानकी अपेक्षा पहलेके लोग ज्यादा स्वस्थ तथा सुखी होते थे, क्योंकि वे अथक परिश्रम करते, शुद्ध आहार ग्रहण करते तथा स्वच्छ रहते थे। उनका जीवन सादगीसे अनुप्राणित था। इसलिये वे स्वस्थ एवं दीर्घजीवी थे, किंतु आजके मनुष्य-जीवनमें इनका अभाव दीख रहा है।

स्वस्थ तथा दीर्घ आयुतक जीनेके लिये एक बहुश्रुत पदार्थ है—त्रिफला। यदि कोई व्यक्ति त्रिफलाका नियमित रूपसे निर्दिष्ट नियमोंके आधारपर निरन्तर बारह वर्षोंतक सेवन करता रहे तो उसका जीवन सभी तरहके रोगोंसे मुक्त रहेगा। ओज उसके जीवनमें प्रतिबिम्बित हो उठेगा। वह स्वस्थ तो रहेगा ही, दीर्घ जीवन भी प्राप्त करेगा। विभिन्न औषधियोंसे वह सर्वदाके लिये अपना पिण्ड छुड़ा लेगा, क्योंकि त्रिफला रोगोंकी एक अमृत दवा है। इसका कोई 'वाई इफेक्ट्स' नहीं पड़ता।

त्रिफलामें तीन पदार्थ हैं—१-आँवला, २-बहेड़ा और ३-पीली हरड़। इन तीनोंका सम्मिश्रण त्रिफला कहलाता है। आँवला, बहेड़ा और पीली हरड़से भला कौन अपरिचित है? ये तीनों पदार्थ सहजमें ही मिल जाते हैं। इन्हें प्राप्तकर घरपर ही त्रिफलाका निर्माण किया जा सकता है। त्रिफला बनानेकी विधि इस प्रकार है—

त्रिफलाके लिये इन तीनों पदार्थोंके सम्मिश्रणका एक निश्चित अनुपात है। यह इस प्रकार है—पीली हरड़का चूर्ण एक भाग, बहेड़ेके चूर्णका दो भाग और आँवलेके चूर्णका तीन भाग। इन तीनों फलोंकी गुठली निकालकर खरल आदिमें कूट-पीसकर चूर्णका मिश्रण तैयार कर लें। यह मिश्रण काँचकी बोतलमें कार्क लगाकर रख दें, ताकि बरसाती हवा इसमें न पहुँच सके। चार माहकी अवधि बीत जानेपर बना हुआ चूर्ण काममें नहीं लेना चाहिये, क्योंकि यह उतना उपयोगी नहीं रह पाता है जितना होना चाहिये।

त्रिफलाके सेवनकी विधिका भी हमें ज्ञान होना चाहिये। त्रिफला बारह वर्षतक नित्य और नियमित रूपसे विधिवत् प्रातः बिना कुछ खाये-पिये ताजे पानीके साथ एक बार लेना चाहिये। उसके बाद एक घंटेतक कुछ खाना-पीना नहीं चाहिये। कितनी मात्रामें यह लिया जाय, इसका भी विधान है। जितनी उम्र हो उतनी ही रत्ती लेनी चाहिये। परंतु एक बात ध्यान रहे कि इस त्रिफलाके सेवनसे एक या दो पतले दस्त होंगे, किंतु इससे घबड़ाना नहीं चाहिये।

यदि यह त्रिफला प्रत्येक ऋतुमें निम्न वस्तुओंके साथ मिलाकर लिया जाय तो इसकी उपयोगिता और भी अधिक बढ़ जाती है, क्योंकि प्रत्येक ऋतुका अपना-अपना स्वभाव होता है। वर्षभरमें दो-दो माहकी छः ऋतुएँ होती हैं। त्रिफलाके साथ कौन-सी ऋतु या माहमें कौन-सा, कितनी मात्रामें पदार्थ लिया जाय, वह इस प्रकार है—

१-श्रावण और भाद्रपद यानी अगस्त और सितम्बरमें त्रिफलाको सेंधा नमकके साथ लेना चाहिये। जितना त्रिफलाका सेवन करे, सेंधा नमक उससे छठा हिस्सा ले।

२-आश्विन और कार्तिक यानी अक्टूबर तथा नवम्बरमें त्रिफलाको शक्कर या चीनीके साथ त्रिफलाकी खुराकसे छठा भाग मिलाकर सेवन करना चाहिये।

३-मार्गशीर्ष और पौष यानी दिसम्बर तथा जनवरीमें त्रिफलाको सोंठके चूर्णके साथ लेना चाहिये। सोंठका चूर्ण त्रिफलाकी मात्रासे छठा भाग हो।

४-माघ तथा फाल्गुन यानी फरवरी और मार्चमें त्रिफलाको लैण्डी पीपलके चूर्णके साथ सेवन करना चाहिये। यह चूर्ण त्रिफलाकी मात्राके छठे भागसे कम हो।

५-चैत्र और वैशाख यानी अप्रैल तथा मईमें त्रिफलाका सेवन त्रिफलाके छठे भाग जितना शहद मिलाकर करना चाहिये।

६-ज्येष्ठ तथा आषाढ़ यानी जून और जुलाईमें त्रिफलाको गुड़के साथ लेना चाहिये। त्रिफलाकी मात्रासे छठा भाग गुड़ होना चाहिये।

जो व्यक्ति इस क्रम और विधिसे त्रिफलाका सेवन करता है, उसे निश्चित रूपसे बहुविध लाभ होता है। उसका

एक प्रकारसे काया-कल्प हो जाता है। पहले वर्षमें यह तनकी सुस्ती, आलस्य आदिको दूर करता है। दूसरे वर्षमें व्यक्ति सब प्रकारके रोगोंसे मुक्ति पा लेता है अर्थात् सारे रोग मिट जाते हैं। तीसरे वर्षमें नेत्र-ज्योति बढ़ने लगती है। चौथे वर्षमें शरीरमें सुन्दरता आने लगती है। शरीर कान्ति तथा ओजसे ओतप्रोत रहता है। पाँचवें वर्षमें बुद्धिका विशेष विकास होने लगता है। छठे वर्षमें शरीर बलशाली होने लगता है। सातवें वर्षमें केशराशि यानी बाल काले होने लगते हैं। आठवें वर्षमें शरीरकी वृद्धता तरुणाईमें बदलने लगती है। नवें वर्षमें व्यक्तिकी नेत्र-ज्योति विशेष शक्ति-सम्पन्न हो जाती है। दसवें वर्षमें व्यक्तिके कण्ठपर शारदा विराजने लगती हैं। ग्यारहवें और बारहवें वर्षमें व्यक्तिको वाक्-सिद्धिकी प्राप्ति हो जाती है।

इस प्रकार बारह वर्षतक निरन्तर उपर्युक्त विधिसे त्रिफलाका सेवन करनेके उपरान्त व्यक्ति व्यक्ति न रहकर परम साधक बन जाता है; क्योंकि उसकी समस्त मनोवृत्तियाँ स्वस्थ तथा सात्त्विक हो जाती हैं।



'हरीतकीं भुंक्ष्व राजन्!'

[हरड़के स्वास्थ्यवर्धक गुण]

(श्रीप्रकाशचन्द्रजी शास्त्री, एम०ए०, साहित्यरत्न)

हरड़ या हर्र एक ऐसा स्वयंसिद्ध रसायन है, जिसके अनुपानभेदसे सेवन करनेपर रोग नहीं होते। विशुद्ध नीरोग गौके मूत्रको मिट्टीके पात्रमें छानकर उसमें छोटी हरड़ प्रायः सौ ग्राम या दो सौ ग्राम डाल दे। चौबीस घंटेके बाद उसे निकालकर एक सप्ताह छायामें सुखाये। इसके बाद गोघृतमें मन्दाग्निसे उसे भूनकर काला नमक मिला दे, तदनन्तर चौड़ी शीशीमें रख ले। नित्य दोपहरमें भोजनके बाद तथा रात्रिमें सोते समय एक-एक हरड़ जलके साथ चबा लिया करे, इससे जीवनमें कभी उदरविकार—मलावरोध होगा ही नहीं; क्योंकि **'सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः'** अर्थात् सभी रोगोंकी जड़ कुपित हुआ मल ही है ऐसा कहा गया है। हारीतसंहिता जो कि आयुर्वेदका प्राचीन तथा प्रामाणिक ग्रन्थ है, उसमें हारीत मुनिने शिष्यभावसे महामुनि अगस्त्यसे आरोग्यसम्बन्धी जो प्रश्न किये, उनमें सर्वाधिक गुण हरड़के बताये हैं। हरड़को शिवास्वरूप (माता पार्वती) कहा है। वैद्यशिरोमणि लोलिम्बराजने अपने वैद्यजीवन ग्रन्थमें श्वास-कासकी औषधिमें हरड़को 'शिवा' नामसे सम्बोधित किया है। यथा—

घनविश्वशिवा गुडजा गुटिका
त्रिदिनं वदनाम्बुजमध्यधृता।
हरति श्वशनं कसनं ललने
ललनेव हिमं हृदयोपगता॥

अर्थात् लोलिम्बराज अपनी प्रियतमा धर्मपत्नीसे कहते हैं कि प्रिये! घन—मोथा, विश्व—सोंठ और शिवा—हरड़—इनको सम मात्रामें लेकर फिर उसके बराबर पुराना गुड़ मिलाकर गोली बना तीन दिन नित्य उसे चूसे तो रोगीके श्वास-कास ऐसे भाग जायँ जैसे वराङ्गनाके साहचर्यसे शीत पलायन कर जाता है। तदनुसार एक वैद्यने एक राजाको ऋतुके अनुरूप हरड़के सेवनकी विधि बतलाते हुए आशीर्वाद दिया, कहा कि—हे राजन्! आप ऋतुके अनुरूप हरड़का सेवन इस प्रकार करें, यथा—

ग्रीष्मे तुल्यगुडां सुसैंधवयुतां मेघाऽवनद्धेऽम्बरे
तुल्या शर्करया शरद्यमलया शुंठ्या तुषारागमे।
पिप्पल्या शिशिरे वसन्तसमये क्षौद्रेण संयोजितम्
राजन् प्राप्य हरीतकीमिव रुजो नश्यन्तु ते शत्रवः॥

अर्थात् हे राजन्! जैसे ऋतुके अनुरूप—ग्रीष्म-ऋतुमें हरीतकीके बराबर गुड़के साथ और वर्षामें सेंधा नमकके साथ, शरद्-कालमें आँवलाके चूर्णके साथ, हेमन्तकालमें सोंठके साथ, शिशिरमें छोटी पीपलके साथ तथा वसन्तमें शहदके साथ हरड़का सेवन करनेसे रोगोंका नाश हो जाता है, उसी प्रकार आपके शत्रु नष्ट हो जायँ।

हारीतसंहितामें हरड़की महिमा इस प्रकार बतायी गयी है—

उन्मीलनी बुद्धिबलेन्द्रियाणां
निर्मूलिनी पित्तकफानिलानाम्।
विस्रंसिनी मूत्रशकृन्मलानां
हरीतकी स्यात् सह भोजनेन॥

अर्थात् छोटी हरड़ भूनकर थोड़ा सेंधा या काला नमक मिलाकर चूर्ण बना ले, उसमेंसे थोड़ा-सा भोजनके साथ ले लिया करे तो वह हरड़ बुद्धि, बल एवं इन्द्रियोंमें कार्य करनेकी क्षमता उत्पन्न करती है और वात, पित्त, कफ—इन त्रिदोषोंका मूलतः शमन करती है तथा मल-मूत्र, पसीना आदि दुर्गन्धित मलोंको संशोधित करके बाहर निकालती है।

इसी प्रकार हरीतकीके माहात्म्यमें एक प्रसंग और देखें—कोई सुयोग्य वैद्य राजाको उपदेश देता है कि—

हरीतकीं भुंक्ष्व राजन् मातेव हितकारिणी।
कदाचित् कुपिता माता नोदरस्था हरीतकी॥

अर्थात् हे राजन्! आप अनेक कटुक कुटज कषाय आदि औषधि न खाकर केवल हरड़का ही नित्य सेवन करें, यह माता (शिवा)-के समान हितकारिणी है। माता कभी किसी कारणवश कुपित हो भी सकती है, परंतु उदरमें स्थित हरड़ कभी कुपित न होगी। हरड़ प्रत्येक स्थितिमें मनुष्यके अनेक रोग नष्ट करती है। महामुनि अगस्त्य तथा शिष्यभावको प्राप्त मुनिवर हारीतके हरड़-गुणात्मक इस प्रसंगसे मानवमात्रको आयु-आरोग्य एवं ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेके लिये प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये।



शहद—कितना गुणकारी!

(श्रीदरवानसिंहजी नेगी)

शहद आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धतिका महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इसके बिना आयुर्वेदिक औषधोपचार अधूरा माना गया है। प्रकृतिमें जो विविध पुष्प-रस भरा पड़ा है, मधुमक्खी फूलोंसे विभिन्न प्रक्रियाओंसे उसे प्रशोधनकर शहदके रूपमें तैयार करती है।

शुद्ध शहदकी पहचान—शहद आदिकालसे ही मधुर द्रव्यका प्रतिनिधि रहा है। इसके प्रयोगसे ही इसकी उपयोगिता एवं औषधीय गुणोंकी जानकारी होती है। शहदमें कई तत्त्व विद्यमान हैं। इसमें ग्लूकोज तथा फ्रक्टोज पर्याप्त मात्रामें होता है। शुद्ध शहद पानीमें अपने-आप नहीं घुलता, जब कि चीनी थोड़ी ही देरमें स्वतः ही घुल जाती है। यह शहदकी सामान्य पहचान है। जो शहद जितना गाढ़ा होगा, उसमें नमीकी जितनी कमी होगी, शुद्धताकी दृष्टिसे वह उतना ही अच्छा माना जाता है। शहद ठंडमें जम जाता है और गर्मीसे स्वतः ही पिघलने लगता है।

शहदकी ऋतुविशेष, वनस्पति या पुष्पविशेषके रूपमें भी पहचान की जाती है। हिमालयका कार्तिक-मधु औषधिगुणोंसे भरपूर है। इस ऋतुका शहद जमनेपर सफेद, दानेदार तथा सुगन्धित होता है। इसको खानेसे गलेमें हल्की मिर्च-जैसा स्वाद लगता है, यह कम मिलता है। फाल्गुन-चैत्रमें तैयार होनेवाला सरसोंके फूलोंका शहद भी इसीके समान होता है। वैशाख और ज्येष्ठमासका शहद लाल रंगका होता है, जो कम जमता है। यह सुगन्धित होता है। आषाढ़ महीनेका शहद भी ज्यादातर लाल रंगका होता है। कहीं-कहीं स्वादमें कड़वा होता है। इस शहदका अधिक प्रयोग करनेसे यह शरीरमें गर्मी दिखाता है। कई बार इससे पेचिश भी लग जाती है।

शहदके औषधीय गुण—शहदकी अपनी तासीर गर्म होती है। खासकर जिस समय शहद छत्तेसे निकालते हैं, उस समय इसका प्रभाव गर्म होता है। धीरे-धीरे इसका प्रभाव सामान्य होता जाता है। शहदका विशेष गुण यह भी है कि गरम पानीमें लेनेसे गरम तथा शीतल पानीमें मिलाकर उपयोग करनेसे ठंडा होता है। प्रातः और सायं गरम पानीमें मिलाकर शहद पीनेसे शरीरकी चर्बी कम होती है। आँखोंमें एक बूँद प्रतिदिन डालनेसे आँखकी ज्योति बढ़ती है तथा आँखकी प्रतिरोधक क्षमतामें वृद्धि होती है। गर्मियोंमें शहदकी शिकंजी, जिसमें एक बड़े गिलासमें दो चम्मच शहद और एक-दो बूँद नीबूका रस मिलाकर पीनेसे शरीरको तत्काल ऊर्जा मिलती है और इससे पेशाब भी खुलकर होता है।

अदरक या तुलसीके रसको चम्मचमें गर्मकर उसमें शहद मिलाकर उपयोग करनेपर यह योग खाँसी-जुकाममें रामबाण प्रमाणित होता है। केवल शहद खानेसे भी फायदा होता है। शहद मुँहमें रखते ही तत्काल घुलकर शरीरमें सीधे ऊर्जा देता है। जितना जल्दी शहद पचता है, उतना जल्दी अन्य कोई पदार्थ नहीं पचता। अनुपानके रूपमें शहदका सेवन करनेसे औषधकी शक्ति बढ़ जाती है।

शहद कटे, फोड़े-फुंसियोंपर एंटीसैप्टिक रोग-निरोधकका काम करता है। चेचकके दाग शहद और नीबूके रससे हलके किये जा सकते हैं। इन्हें मिलाकर दागपर लगाया जाता है, जिससे चेहरेकी कान्ति लौट आती है। नवजात शिशुको जन्मके तत्काल बाद शहद चटानेसे बच्चा नीरोगी होता है। केवल शहद नित्य सेवन करनेसे दिल एवं दिमागको शक्ति देता है तथा दीर्घ जीवन प्रदान करता है। इसीलिये शहदको एक अर्थमें 'अमृत' कहा जाता है। ज्यादा पुराना शहद अपना स्वाद, गुण एवं रंग खो देता है। इसलिये ताजे शहदका प्रयोग ही अधिक करना चाहिये। शहद बनानेवाली विभिन्न जातिकी मधुमक्खियाँ, सारंग, एपिस मैलिफेरा भी हैं। गुणकारी तथा सुस्वादु शहद अपनी देशी मक्खी ही बनाती है। शहदका सेवन विशेषकर बच्चों और बूढ़ोंको अधिक करना चाहिये।



दैनिक जीवनमें तुलसीका उपयोग और आरोग्य-विधान

(कुमारी सुमन सैनी)

तुलसी एक बहुश्रुत, उपयोगी वनस्पति है। भारतीय धर्म-संस्कृतिमें तुलसी अति पवित्र और महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक हिन्दूके घर-आँगनमें तुलसी-क्यारेका होना घरकी शोभा, घरके संस्कार, पवित्रता तथा धार्मिकताका अनिवार्य प्रतीक है। मात्र भारतमें ही नहीं, वरन् विश्वके कई अन्य देशोंमें भी तुलसीको पूजनीय तथा शुभ माना गया है। ग्रीसमें इस्टर्न चर्च नामक सम्प्रदायमें भी तुलसीकी पूजा होती थी और सेंट बेजिल-जयन्तीके दिन 'नूतन वर्ष भाग्यशाली हो'—इस भावनासे देवलमें चढ़ायी गयी तुलसीके प्रसादको स्त्रियाँ घरमें ले जाती थीं। समस्त वृक्षों-वनस्पतियोंमें सर्वाधिक धार्मिक, आध्यात्मिक, आरोग्यलक्ष्मी एवं शोभाकी दृष्टिसे तुलसीको मानव-जीवनमें महत्त्वपूर्ण, पवित्र तथा श्रद्धेय स्थान मिला है। यह भगवान् नारायणको अति प्रिय है। वृन्दा, विष्णुप्रिया, माधवी आदि भी इसके नाम हैं। धार्मिक आध्यात्मिक महत्ता तो इसकी है ही, आरोग्य प्रदान करनेमें भी इसका विशेष स्थान है। इसीलिये यह 'आरोग्यलक्ष्मी' भी कहलाती है।

प्रदूषित वायुके शुद्धिकरणमें तुलसीका विलक्षण योगदान है। यदि तुलसीवनके साथ प्राकृतिक चिकित्साकी कुछ पद्धतियाँ जोड़ दी जायँ तो प्राणघातक और दुःसाध्य रोगोंको भी निर्मूल करनेमें सफलता मिल सकती है।

तुलसी शारीरिक व्याधियोंको तो दूर करती ही है, साथ ही मनुष्यके आन्तरिक भावों और विचारोंपर भी कल्याणकारी प्रभाव डालती है। तुलसीके पौधेमें मच्छरोंको दूर भगानेका गुण है और इसकी पत्तियाँ खानेसे मलेरियाके दूषित तत्त्वोंका मूलतः नाश होता है। तुलसी और काली मिर्चका काढ़ा बनाकर पीनेके सरल प्रयोगसे ज्वर दूर किया जा सकता है।

निसर्गोपचारकोंका कहना है कि तुलसीकी पत्तियोंको दही या छाछके साथ सेवन करनेसे वजन कम होता है, शरीरकी चरबी कम होती है, अतः शरीर सुडौल बनता है। साथ ही थकान मिटती है। दिनभर स्फूर्ति बनी रहती है और रक्तकणोंमें वृद्धि होती है।

ब्लडप्रेशरके नियमन, पाचनतन्त्रके नियमन तथा रक्तकणोंकी वृद्धिके अतिरिक्त मानसिक रोगोंमें भी तुलसीके प्रयोगसे असाधारण सफल परिणाम प्राप्त हुए हैं।

अथर्ववेदमें आता है; यदि त्वचा, मांस तथा अस्थिमें महारोग प्रविष्ट हो गया हो तो उसे श्यामा तुलसी नष्ट कर देती है। तुलसीके दो भेद होते हैं—१-हरे पत्तेवाली और २-श्याम (काले) पत्तेवाली। श्यामा तुलसी सौन्दर्यवर्धक है। इसके सेवनसे त्वचाके सभी रोग नष्ट हो जाते हैं और त्वचा पुनः मूल स्वरूप धारण कर लेती है। तुलसी त्वचाके लिये अद्भुत रूपसे गुणकारी है।

तुलसी हिचकी, खाँसी, विषदोष, श्वास और पार्श्वशूलको

तथा वात, कफ और मुँहकी दुर्गन्धको नष्ट करती है।

स्कन्दपुराण एवं पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें आता है कि जिस घरमें तुलसीका पौधा होता है, वह घर तीर्थके समान है। वहाँ व्याधिरूपी यमदूत प्रवेश ही नहीं कर सकते।

तुलसी किडनीकी कार्यशक्तिमें वृद्धि करती है। तुलसीके रसमें शहद मिलाकर देनेसे एक केसमें किडनीकी पथरी छः माहके निरन्तर उपचारसे बाहर निकल गयी थी।

इण्ट्राटेकिप्पल कैंसरसे पीडित एक रोगीपर ऑपरेशन तथा अन्य अनेक उपचार करनेके बाद अन्तमें आशा छोड़कर डॉक्टरोंने घोषित किया कि रोगीका यकृत् खराब हो रहा है। यक्ष्मामें भी वृद्धि हो रही है। अब यह रोग लाइलाज है। उसी समय एक वैद्यने उक्त विधानके विरुद्ध चुनौती दी। रोगीको पाँच सप्ताहतक केवल तुलसीका सेवन कराया, फलस्वरूप वह इतना स्वस्थ हो गया कि एक मीलतक पैदल चल सकता था।

हृदयरोगसे पीडित कई रोगियोंके हाई ब्लडप्रेशर तुलसीके उपचारसे सामान्य हुए हैं। हृदयकी दुर्बलता कम हो गयी है और रक्तमें चर्बीकी वृद्धि रुकी है। जिन्हें ऊँचाईवाले स्थानोंपर जानेकी मनाही थी, ऐसे अनेक रोगी तुलसीके नियमित सेवनके बाद आनन्दपूर्वक ऊँचाईवाले स्थानोंपर जानेमें समर्थ हुए हैं।

एक लड़का बचपनसे ही मन्द बुद्धिका था। सोलह वर्षोंतक उसके अनेक उपचार हुए, किंतु उसकी बौद्धिक मन्दता दूर नहीं हुई। तुलसीके नियमित सेवनसे दो ही महीनोंके भीतर उसमें बुद्धिमत्ताके लक्षण दिखायी पड़े, समय बीतनेपर वह कुछ और अधिक बुद्धिशाली हो गया।

बच्चोंको तुलसीपत्र देनेके साथ सूर्य-नमस्कार करवाने और सूर्यको अर्घ्य दिलवानेके प्रयोगसे बुद्धिमें विलक्षणता आती है।

सफेद दाग और कुष्ठके अनेक रोगियोंको तुलसीके उपचारसे अद्भुत लाभ हुआ है।

प्रतिदिन प्रातःकाल खाली पेट पानीके साथ तुलसीकी पाँच-सात पत्तियोंका सेवन करनेसे बल, तेज और स्मरणशक्ति बढ़ती है। तुलसीके काढ़ेमें थोड़ी शक्कर मिलाकर पीनेसे स्फूर्ति आती है और थकावट दूर हो जाती है। जठराग्नि प्रदीप्त रहती है। इसके रसमें नमक मिलाकर उसकी बूँदें नाकमें डालनेसे मूर्च्छा दूर होती है, हिचकियाँ भी शान्त हो जाती हैं।

तुलसी ब्लड-कॉलेस्ट्रोलको बहुत तेजीके साथ सामान्य बना देती है। तुलसीके नित्य सेवनसे एसिडिटी दूर होती है। पेचिश, कोलाइटिस आदि मिट जाते हैं।

स्नायुका दर्द, जुकाम, सर्दी, मेदवृद्धि, सिरदर्द आदिमें तुलसी गुणकारी है। इसका रस, अदरकका रस एवं शहद समभागमें मिश्रित करके बच्चोंको चटानेसे उनके कुछ रोगों—विशेषकर सर्दी, दस्त, उलटी और कफमें लाभ होता है। हृदयरोग और उसकी आनुषङ्गिक निर्बलता तथा बीमारीमें तुलसीके उपयोगसे आश्चर्यजनक सुधार होता है।

वजन बढ़ाना या घटाना हो तो तुलसीका सेवन करे, इससे शरीर स्वस्थ और सुडौल बनता है। मन्दाग्नि, क़ब्ज़ियत, गैस आदि रोगोंके लिये तुलसी रामबाण औषधि सिद्ध हुई है।

तुलसीकी क्यारीके पास प्राणायाम करनेसे सौन्दर्य, स्वास्थ्य और तेजकी अत्युत्तम वृद्धि होती है।

तुलसीकी सूखी पत्तियोंको पीसकर उसके चूर्णको पाउडरकी तरह चेहरेपर रगड़नेसे चेहरेकी कान्ति बढ़ती है और चेहरा सुन्दर दिखता है।

मुँहासोंके लिये भी तुलसी अत्यन्त उपयोगी है। ताँबेके बरतनमें नीबूके रसको चौबीस घंटेतक रख छोड़िये। फिर उसमें इतनी ही मात्रामें काली तुलसीका रस तथा काली कसौंड़ी (कसौंजी)-का रस मिलाइये। इस मिश्रणको धूपमें सुखाकर गाढ़ा कीजिये। इस लेपको चेहरेपर लगानेसे धीरे-धीरे चेहरा स्वच्छ, चमकदार, सुन्दर, तेजस्वी बनेगा तथा कान्ति बढ़ेगी।

काली मिर्च, तुलसी और गुड़का काढ़ा बनाकर उसमें नीबूका रस मिलाकर दिनमें दो-दो या तीन-तीन घंटेके अन्तरसे गर्म-गर्म पियें। फिर कम्बल ओढ़कर सो जायँ। यह काढ़ा मलेरियाको दूर करता है।

श्लेष्मक ज्वर (इन्फ्लूएन्जा)-के रोगीको तुलसीका बीस ग्राम रस, अदरकका चालीस ग्राम रस तथा शहद मिलाकर दें।

तुलसीकी जड़ कमरमें बाँधनेसे गर्भवती स्त्रियोंको लाभ होता है। प्रसव-वेदना कम होती है और प्रसूति भी सरलतासे हो जाती है।

तुलसीकी पत्तियोंका रस बीस ग्राम चावलके माँड़के साथ सेवन करनेसे तथा दूध-भात या घी-भातका पथ्य लेनेसे प्रदररोग दूर होता है।

तुलसीकी पत्तियोंको नीबूके रसमें पीसकर लगानेसे दाद-खाज मिट जाती है।

तुलसीका पाउडर तथा सूखे आँवलोंका पाउडर पानीमें भिगोकर रख दीजिये, प्रातःकाल छानकर उस पानीसे सिर धोनेसे सफेद बाल काले हो जाते हैं तथा बालोंका झड़ना रुक जाता है।

तुलसी और अदरकका रस शहदके साथ लेनेसे उलटीमें लाभ होता है।

पेटमें दर्द होनेपर तुलसीकी ताजी पत्तियोंका दस ग्राम रस पियें।

इस तरह आरोग्य-दान करनेमें तुलसी बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। हमें चाहिये कि जगह-जगह तुलसीके पौधे लगाकर तथा तुलसीके बीज डालकर तुलसीका वृन्दावन बनायें, वातावरणको शुद्ध, पवित्र कर स्वस्थ करें तथा स्वस्थ रहें।



पुष्पोंका चिकित्सकीय उपयोग

(डॉ० श्रीकमलप्रकाशजी अग्रवाल

पुष्प, जहाँ अपने दर्शनसे मनको आह्लादित एवं प्रफुल्लित करते हैं, वहीं वे अपनी सुगन्धिसे सम्पूर्ण परिवेशको आप्यायित कर सुवासित भी कर देते हैं। अपने आराध्यके चरणोंमें प्रेमी भक्तकी पुष्पाञ्जलि प्रेमास्पदका सहसा प्राकट्य करा देती है। पुष्पोंकी अनन्त महिमा है। पुष्पके सभी अवयव उपयोगी होते हैं। इनके यथाविधि उपयोगसे अनेक रोगोंका शमन किया जा सकता है।

फूलोंके रससे तैयार किया गया लेप बाह्य रूपसे त्वचापर लगानेसे उसकी सुगन्धि हृदय तथा नासिकात्तक अपना प्रभाव दिखाकर मनको आनन्दित कर देती है। सबसे अच्छी बात यह है कि पुष्प-चिकित्साके कोई दुष्प्रभाव नहीं होते।

फूलोंको शरीरपर धारण करनेसे शरीरकी शोभा, कान्ति, सौन्दर्य और श्रीकी वृद्धि होती है। उनकी सुगन्धि रोगनाशक भी है। फूलके सुगन्धित परमाणु वातावरणमें घुलकर नासिकाकी झिल्लीमें पहुँचकर अपनी सुगन्धिका अहसास कराते हैं और मस्तिष्कके अलग-अलग हिस्सोंपर अपना प्रभाव दिखाकर मधुर उत्तेजना-सा अनुभव कराते हैं। पुष्पकी सुगन्धिका मस्तिष्क, हृदय, आँख, कान तथा पाचनक्रिया आदिपर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। ये थकानको तुरंत दूर करते हैं। इनकी सुगन्धिसे की गयी उपचारप्रणालीको 'एरोमा थरेपी' कहा जाता है। यहाँ कुछ पुष्पोंके संक्षेपमें औषधीय प्रयोग दिये जा रहे हैं, सम्यक् जानकारी प्राप्त करके उनसे लाभ उठाया जा सकता है—

कमल—कमल और लक्ष्मीका सम्बन्ध अविभाज्य है। कमल सृष्टिकी वृद्धिका द्योतक है। इसके परागसे मधुमक्खी शहद तो बनाती है ही, इनके फूलोंसे तैयार किये गये गुलकन्दका उपयोग प्रत्येक प्रकारके रोगोंमें तथा क़ब्ज़के निवारण-हेतु किया जाता है। कमलके फूलके अंदर हरे रंगके दाने-से निकलते हैं, जिन्हें भूनकर मखाने बनाये जाते हैं, परंतु उनको कच्चा छीलकर खानेसे ओज एवं बलकी वृद्धि होती है। इसका गुण शीत है। इसका सबसे अधिक प्रयोग अञ्जनकी भाँति नेत्रोंमें ज्योति बढ़ानेके लिये शहदमें मिलाकर किया जाता है। पंखुड़ियोंको पीसकर उबटनमें मिलाकर चेहरेपर मलनेसे चेहरेकी सुन्दरता बढ़ती है।

केवड़ा—इसकी गन्ध कस्तूरी-जैसी मोहक होती है। इसके पुष्प दुर्गन्धनाशक तथा उन्मादक हैं। केवड़ेका तेल

उत्तेजक श्वासविकारमें लाभकारी है। इसका इत्र सिरदर्द और गठियामें उपयोगी है। इसकी मंजरीका उपयोग पानीमें उबालकर कुष्ठ, चेचक, खुजली तथा हृदयरोगोंमें स्नान करके किया जा सकता है। इसका अर्क पानीमें डालकर पीनेसे सिरदर्द तथा थकान दूर होती है। बुखारमें एक बूँद देनेसे पसीना बाहर आता है। इसका इत्र दो बूँद कानमें डालनेसे कानका दर्द ठीक हो जाता है।

गुलाब—गुलाबका पुष्प सौन्दर्य, स्नेह एवं प्रेमका प्रतीक है। इसका गुलकंद रेचक है, जो पेट और आँतोंकी गर्मी शान्त करके हृदयको प्रसन्नता प्रदान करता है। गुलाबजलसे आँखें धोनेसे आँखोंकी लाली तथा सूजन कम होती है। गुलाबका इत्र उत्तेजक होता है तथा इसका तेल मस्तिष्कको ठंडा रखता है। गुलाबके अर्कका भी मधुर भोज्य पदार्थोंमें प्रयोग किया जाता है। गर्मीमें इसका प्रयोग शीतवर्धक होता है।

चम्पा—चम्पाके फूलोंको पीसकर कुष्ठरोगके घावमें लगाया जा सकता है। इसका अर्क रक्त-कृमिको नष्ट करता है। इसके फूलोंको सुखाकर बनाया गया चूर्ण खुजलीमें उपयोगी है। यह ज्वरहर, उत्सर्जक, नेत्रज्योतिवर्धक तथा पुरुषोंको शक्ति एवं उत्तेजना प्रदान करता है।

सौंफ (शतपुष्पा)—सौंफ अत्यन्त गुणकारी है। सौंफके पुष्पोंको पानीमें डालकर उबाल ले, साथमें एक बड़ी इलायची तथा कुछ पुदीनाके पत्ते भी डाल दे। अच्छा यह रहे कि मिट्टीके बरतनमें उबाले पानीको ठंडा करके दाँत निकलनेवाले बच्चे या छोटे बच्चे जो गर्मीसे पीडित हों, उन्हें एक-एक चम्मच कई बार दे। इससे उनके पेटकी पीडा शान्त होगी तथा दाँत भी ठीक प्रकारसे निकलेंगे।

गेंदा—मलेरियाके मच्छरोंका प्रकोप दूर करनेके लिये यदि गेंदेकी खेती गंदे नालों और घरके आस-पास की जाय तो इसकी गन्धसे मच्छर दूर भाग जाते हैं। लीवरके रोगीके लीवरकी सूजन, पथरी एवं चर्मरोगोंमें इसका प्रयोग किया जा सकता है।

बेला—यह अत्यधिक सुगन्धयुक्त पुष्प है। यह गर्मीमें अधिकतासे फूलनेवाला पौधा है। बेलेके हार या पुष्पोंको अपने पास रखनेसे पसीनेमें गन्ध नहीं आती। इसकी सुगन्ध प्रदाहनाशक है। इसकी कलियोंको चबानेसे स्त्रियोंके मासिक धर्मका अवरोध दूर हो जाता है।

रात-रानी—इसकी गन्ध इतनी तीव्र होती है कि यह दूर-दूरतकके स्थानोंको मुग्ध कर देती है। इसका पुष्प प्रायः सायंकालसे लेकर अर्धरात्रिके कुछ पूर्वतक सुगन्ध अधिक देता है। परंतु इसके बाद धीरे-धीरे क्षीण होने लगता है। इसकी गन्धसे मच्छर नहीं आते। इसकी गन्ध मादक और निद्रादायक है।

सूरजमुखी—इसमें विटामिन ए तथा डी होता है। यह सूर्यका प्रकाश न मिलनेके कारण होनेवाले रोगोंको रोकता है। इसका तेल हृदयरोगोंमें कोलेस्ट्रॉलको कम करता है।

चमेली—चर्मरोगों, पायरिया, दन्तशूल, घाव, नेत्ररोगों और फोड़े-फुंसियोंमें चमेलीका तेल बनाकर उपयोग किया जाता है। यह शरीरमें रक्तसंचारकी मात्रा बढ़ाकर उसे स्फूर्ति प्रदान करता है। इसके पत्ते चबानेसे मुँहके छाले तुरंत दूर हो जाते हैं। मानसिक प्रसन्नता देनेमें चमेलीका अद्भुत योगदान है।

केसर—यह मनको प्रसन्न करता तथा चेहरेको कान्तिमान् बनाता है। यह शक्तिवर्धक, वमनको रोकनेवाला तथा वात, पित्त एवं कफ (त्रिदोषों)-का नाशक है। तन्त्रिकाओंमें व्याप्त उद्विग्नता एवं तनावको केसर शान्त रखता है। इसलिये इसे प्रकृति-प्रदत्त 'ट्रैंकुलाइजर' भी कहा जाता है। दूध या पानके साथ इसका सेवन करनेसे यह अत्यन्त ओज, बल, शक्ति एवं स्फूर्तिको बढ़ाता है।

अशोक—यह मदन-वृक्ष भी कहलाता है। इसके फूल, छाल तथा पत्तियाँ स्त्रियोंके अनेक रोगोंमें औषधिके रूपमें उपयोगी हैं। इसकी छालका आसव सेवन कराकर स्त्रियोंकी अधिकांश बीमारियोंको ठीक किया जा सकता है।

ढाक (पलाश)—ढाकको अप्रतिम सौन्दर्यका प्रतीक माना जाता है; क्योंकि इसके गुच्छेदार फूल बहुत दूरसे ही आकर्षित करते हैं। इसी आकर्षणके कारण इसे वनकी ज्योति भी कहते हैं। इसका चूर्ण पेटके किसी भी प्रकारके कृमिका नाश करनेमें सहायक है। इसके पुष्पोंको पानीके साथ पीसकर लुगदी बनाकर पेड़ूपर रखनेसे पथरीके कारण दर्द होनेपर या मूत्र न उतरनेपर लाभ होता है।

गुड़हल (जवा)—गुड़हलके पुष्पका सम्बन्ध गर्भाशयसे है। ऋतुकालके बाद यदि फूलको घीमें भूनकर स्त्रियाँ

सेवन करें तो 'गर्भ' स्थिर होता है। गुड़हलके फूल चबानेसे मुँहके छाले दूर हो जाते हैं। इसके फूलोंको पीसकर बालोंमें लेप करनेसे बालोंका गंजापन मिटता है। यह उन्मादको दूर करनेवाला एकमात्र पुष्प है। गुड़हल शीतवर्धक, वाजीकारक तथा रक्तशोधक है। इसे सूजाकके रोगमें गुलकन्द या शर्बत बनाकर दिया जा सकता है। इसका शर्बत हृदयको फूलकी भाँति प्रफुल्लित करनेवाला तथा रुचिकर होता है।

शंखपुष्पी (विष्णुकान्ता)—शंखपुष्पी गर्मियोंमें अधिक खिलता है। यह घासकी तरह होता है। इसके फूल-पत्ते तथा डंठल तीनोंको उखाड़कर पीसकर पानीमें मिलाकर छान लेने तथा इसमें शहद या मिस्री मिलाकर पीनेसे पूरे दिन मस्तिष्कमें ताजगी रहती है। सुस्ती नहीं आती। इसका सेवन विद्यार्थियोंको अवश्य करना चाहिये।

बबूल (कीकर)—बबूलके फूलोंको पीसकर सिरमें लगानेसे सिरदर्द गायब हो जाता है। इसका लेप दाद और एग्जिमापर करनेसे चर्मरोग दूर होता है। इसके अर्कके सेवनसे रक्तविकार दूर हो जाता है। यह खाँसी और श्वासके रोगमें लाभकारी है। इसके कुल्ले दन्तक्षयको रोकते हैं।

नीम—इसके फूलोंको पीसकर लुगदी बनाकर फोड़े-फुंसीपर लगानेसे जलन तथा गर्मी दूर होती है। शरीरपर मलकर स्नान करनेसे दाद दूर होता है। यदि फूलोंको पीसकर पानीमें घोलकर छान ले और इसमें शहद मिलाकर पीये तो वजन कम होता है तथा रक्त साफ होता है। यह संक्रामक रोगोंसे रक्षा करनेवाला है। नीम हर प्रकारसे उपयोगी है, इसे घरका वैद्य कहा जाता है।

लौंग—यह आमाशय और आँतोंमें रहनेवाले उन सूक्ष्म कीटाणुओंको नष्ट करती है, जिनके कारण मनुष्यका पेट फूलता है। यह रक्तके श्वेत कणोंमें वृद्धि करके शरीरकी रोगप्रतिरोधक शक्तिमें वृद्धि करती है। शरीर तथा मुँहके दुर्गन्धका नाश करती है। शरीरके किसी भी हिस्सेपर इसे घिसकर लगानेसे दर्दनाशक औषधिका काम करती है। दाढ़ या दन्तशूलमें मुँहमें डालकर चूसनेसे लाभ होता है। इसका धूम्रसेवन शरीरमें उत्पन्न अनावश्यक तत्त्वोंको पसीनेद्वारा बाहर निकाल देता है।

जूही—जूहीके फूलोंका चूर्ण या गुलकन्द अम्लपित्तको नष्ट करके पेटके अल्सर तथा छालेको दूर करता है। इसके सांनिध्यमें निरन्तर रहनेसे क्षयरोग नहीं होता।

माधवी—चर्मरोगोंके निवारणके लिये इसके चूर्णका लेप किया जाता है। गठिया-रोगमें प्रातःकाल फूलोंको चबानेसे आराम मिलता है। इसके फूल श्वासरोगको भी दूर करते हैं।

हरसिंगार (पारिजात)—यह गठिया-रोगोंका नाशक है। इसका लेप चेहरेकी कान्तिको बढ़ाता है। इसकी मधुर सुगन्ध मनको प्रफुल्लित कर देती है।

आक—इसका फूल कफनाशक है, यह प्रदाहकारक भी है। यदि पीलिया-रोगमें पानमें रखकर एक या दो कली तीन दिनतक दी जाय तो काफी हदतक आराम होता है।

कदम्ब—यह मदन-वृक्ष भी कहलाता है। गौओंकी बीमारीमें फूल एवं पत्तोंवाली इसकी टहनी लेकर गोशालामें लगा देनेसे बीमारी दूर होती है। वर्षा-ऋतुमें पल्लवित होनेवाला यह गोपीप्रिय वृक्ष है।

कचनार—इसकी कली शरद्-ऋतुमें प्रस्फुटित होती है। इसकी कलियाँ बार-बार मल-त्यागकी प्रवृत्तिको रोकती हैं। कचनारकी छाल एवं फूलको जलके साथ मिलाकर तैयार की गयी पुलटिस जले घाव एवं फोड़ेके उपचारमें उपयोगी है।

शिरीष—यह तेज सुगन्धवाला जंगली वृक्ष है। इसकी सुगन्ध जब तेज हवाके साथ आती है तो मानव झूम-सा जाता है। खुजलीमें इसके फूल पीसकर लगाने चाहिये, इसके फूलोंके काढ़ेसे नेत्र धोनेपर किसी भी प्रकारके नेत्र-विकारोंमें लाभ होगा।

नागकेशर—यह खुजलीनाशक है और लौंग-जैसा लम्बा तथा डंठीमें लगा रहता है। इसके फूलोंका चूर्ण बनाकर मक्खनके साथ या दहीके साथ खानेसे रक्तार्शमें लाभ होता है। इसका चूर्ण गर्भधारणमें भी सहायक है।

मौलसिरी (बकुल)—इसके फूलोंको तेलमें मिलाकर इत्र बनता है। मौलसिरीके फूलोंका चूर्ण बनाकर त्वचापर लेप करनेसे त्वचा अधिक कोमल हो जाती है। इसके फूलोंका

शर्बत स्त्रियोंके बाँझपनको दूर करनेमें समर्थ है।

अमलतास—ग्रीष्म-ऋतुमें फूलनेवाला गहरे पीले रंगके गुच्छेदार पुष्पोंका यह पेड़ दूरसे देखनेमें ही आँखोंको प्रिय लगता है। इसके फूलोंका गुलकन्द बनाकर खानेसे क़ब्ज़ दूर होता है। परंतु अधिक मात्रामें सेवन करनेसे यह दस्तावर होता है, जी मिचलाता है एवं पेटमें ऐंठन उत्पन्न करता है।

अनार—शरीरमें पित्ती होनेपर अनारके फूलोंका रस मिस्री मिलाकर पीना चाहिये। मुँहके छालोंमें फूल रखकर चूसना चाहिये। आँख आनेपर कलीका रस आँखमें डालना चाहिये।

फूलोंके पौधोंकी भीतरी कोशिकाओंमें विशेष प्रकारके प्रद्रवी झिल्लियोंके आवरणवाले कण होते हैं। इन्हें लवक (प्लास्टिड्स) कहते हैं। ये कण जबतक फूलोंका रंग समाप्त न हो जाय, तबतक जीवित रहते हैं। ये लवक दो प्रकारके होते हैं—१-वर्णिक लवक और २-हरित लवक। इनमें रंगीन लवकोंको 'वर्णी लवक' कहते हैं। वर्णी लवक ही फूल-पौधोंको विभिन्न रंग प्रदान करते हैं। वर्णी लवकका आकार निश्चित नहीं होता, बल्कि लवक अलग-अलग पौधोंमें अलग-अलग रचनावाले होते हैं। पौधोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण लवक है हरित लवक (क्लोरोप्लास्ट)। हरित लवक पौधोंमें हरा रंग ही नहीं देता, बल्कि पौधोंमें भोजनका निर्माण भी करता है। हरित लवक कार्बनडाइ-ऑक्साइड, गैस, जल और सूर्यके प्रकाशकी उपस्थितिमें ग्लूकोज-जैसे कार्बोहाइड्रेट पदार्थका निर्माण करता है।

पुष्प सूर्यके प्रकाशमें सूर्यकी किरणोंसे सम्पर्क स्थापित करके अपनी रंगीन किरणें हमारी आँखोंतक पहुँचाते हैं, जिससे शरीरको ऋणात्मक, धनात्मक तथा कुछ न्यूट्रल प्रकाशकी किरणें मिलती हैं जो शरीरके अंदर पहुँचकर विभिन्न प्रकारके रोगोंको रोकनेमें सहायता प्रदान करती हैं। इस प्रकार हम 'कलर थैरेपी' द्वारा भी चिकित्साके लाभ ले सकते हैं।



आरोग्यका खजाना—नीम

(डॉ० श्रीबनवारीलालजी यादव)

नीम एक बहुत उपयोगी वृक्ष है। इसकी जड़से लेकर फूल-पत्ती और फलतक सभी अवयव औषधीय गुणोंसे भरे-पूरे हैं। भारतवर्षके गरीब लोगोंके लिये यह कल्पवृक्ष है। आइये, हम इसके गुणोंको देखकर उनसे लाभ उठायें।

जड़—नीमकी जड़को पानीमें उबालकर पीनेसे बुखार दूर होता है।

छाल—नीमकी बाहरी छाल पानीमें घिसकर फोड़े-फुंसियोंपर लगानेसे वे बहुत जल्दी ठीक होते हैं। बाहरी छालको जलाकर उसकी राखमें तुलसीके पत्तोंका रस मिलाकर लगानेसे दाद तथा अन्य चर्मरोग ठीक हो जाते हैं। छालका काढ़ा बनाकर प्रतिदिन उससे स्नान करनेसे सूखी खुजलीमें लाभ होता है।

छायामें सूखी छालकी राख बनाकर, कपड़छान करके उसमें दो गुना पीसा हुआ सेंधा नमक मिला लें। रोज इस चूर्णसे मंजन करनेसे पायरियामें लाभ होता है, मुँहकी बदबू, मसूढ़ों तथा दाँतोंका दर्द दूर होता है। छालका काढ़ा दोनों समय पीनेसे पुराना ज्वर भी ठीक हो जाता है।

दातौन—प्रतिदिन नीमकी दातौन करनेसे मुँहकी बदबू दूर होती है। दाँत और मसूढ़े मजबूत होते हैं। पायरिया, मसूढ़ोंसे खून आना तथा मसूढ़ोंकी सूजनके उपचारके लिये इसकी दातौन बहुत उपयोगी है।

पत्तियाँ—चैत्रमासमें नीमकी कोमल नयी कोंपलोंको दस-पंद्रह दिनतक नित्य प्रातःकाल चबाकर खानेसे रक्त शुद्ध होता है, फोड़ा-फुंसी नहीं निकलते और मलेरिया ज्वर नहीं आता है।

दिनमें सूर्य-किरणोंकी उपस्थितिमें नीमकी पत्तियाँ ऑक्सीजन छोड़कर हवा शुद्ध करती हैं। इसलिये गर्मियोंमें नीमके पेड़की छायामें सोनेसे शीतलता मिलती है तथा शरीर नीरोग रहता है।

नीमकी पत्तियोंके चूर्णमें एक ग्राम अजवायन तथा गुड़ मिलाकर कुछ दिनतक निरन्तर पीनेसे पेटके कीड़े नष्ट हो जाते हैं। गाय, भैंसके बच्चोंके पेटमें कीड़े होनेपर नीमकी पत्तियोंको पीसकर छाछ तथा नमकमें मिलाकर चार-पाँच दिन देनेसे कीड़े मरकर बाहर निकल जाते हैं

और पेट साफ हो जाता है।

पत्तियाँ पानीमें उबालकर घाव धोनेसे घाव ठीक होता है। उसके जीवाणु मरते हैं, दुर्गन्ध कम हो जाती है तथा सूजन नहीं रहती। पत्तियोंके उबले पानीसे स्नान करनेसे त्वचाकी बीमारियाँ दूर होती हैं। नीमकी पत्तियोंको पीसकर फोड़े-फुंसीपर लगानेसे आराम मिलता है।

नीमकी पत्तियोंका रस दो चम्मच, दो चम्मच शहदमें मिलाकर (प्रातःकाल) लेनेसे पीलिया-रोगमें लाभ होता है। एक छोटा चम्मच नीमकी पत्तियोंका रस लेकर उसमें मिस्री मिलाकर पीनेसे पेचिशमें लाभ होता है। प्रमेहमें एक कप पानीमें दो-तीन ग्राम पत्तियोंको उबालकर काढ़ा बनाकर पीनेसे लाभ होता है। चेचक और खसराके रोगियोंको शीघ्र स्वस्थ करनेके लिये नीमके पत्तोंसे हवा की जाती है।

पत्तियोंके अन्य उपयोग—नीमकी पत्तियोंको संचित अनाजमें मिलाकर रखनेसे उसमें घुन, ईली तथा खपरा आदि कीड़े नहीं लगते। गर्म और सिल्कके कपड़ों, गर्म रेशमी कालीन, कम्बल, पुस्तक आदिको कसारी (कीड़ा)-से बचानेके लिये इनमें नीमकी पत्तियाँ रखनी चाहिये। नीमकी सूखी पत्तियोंके धुएँसे मच्छर भाग जाते हैं।

नीमकी पत्तीकी खाद पेड़-पौधोंको पोषक-तत्त्व प्रदान करती है तथा जमीनमें उपस्थित दीमकको भी समाप्त करती है। फसलको नुकसान पहुँचानेवाले अन्य कीटोंको भी यह मारती है।

फूल—नीमके फूल तथा निबोरियाँ खानेसे पेटके रोग नहीं होते। फूलोंको जलाकर काजलके रूपमें उपयोगमें लाया जाता है।

निबोरियाँ—निबोरी नीमका फल होता है। इससे तेल निकाला जाता है। यह भी कई प्रकारके रोगाणुओंको मार डालनेमें सक्षम है। आगसे जले घावपर इसका तेल लगानेसे घाव बहुत शीघ्र भर जाता है। इस तेलसे नीमका साबुन बनाया जाता है। यह साबुन चर्मरोग, घाव तथा फोड़े-फुंसियोंके लिये बहुत लाभकारी है। तेल निकालनेके बाद बची हुई खलीका पौधोंके लिये खादके रूपमें उपयोग किया जाता है। यह पौधोंको बढ़िया खुराक प्रदान करता है। दीमक और फसलको नुकसान पहुँचानेवाले अन्य कीटोंको भी यह मार डालता है। यह फफूँदको भी नष्ट करता है।

नीमका मद या रस—कभी-कभी किसी पुराने नीमके वृक्षके तनेसे नीमकी गन्ध लिये एक तरल पदार्थ निकलता है, जिसे मद कहते हैं। रूईकी बत्ती बनाकर उसे मदमें भिगोकर छायामें कई दिनोंतक सुखाया जाता है। सूखनेके बाद एक दीपकमें सरसोंका तेल लेकर, इस बत्तीको दीपकमें रखकर दीपक जलाया जाता है। इसके ऊपर दूसरी मिट्टीकी सिराही थोड़ी टेढ़ी-उलटी रखकर बत्तीकी लौसे निकलनेवाले कार्बन (धुएँ)-को इस सिराहीमें जमने दिया जाता है। बादमें इसे उलटी रखी सिराहीसे खुरचकर किसी डिब्बीमें रख लिया जाता है। यह काजल नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंकी ज्योति सही रहती है। यह बहुत उपयोगी काजल है।

तना—नीमकी लकड़ीमें दीमक तथा घुन नहीं लगता, इसलिये इसके किवाड़ आदि लगवानेसे दरवाजे, खिड़कियोंमें दीमक लगनेका खतरा नहीं रहता।

सींक—नाक, कान छिदवानेके तीन-चार सप्ताह बाद आभूषण पहननेसे पहले नीमकी सींक पहननेसे जख्म जल्दी ठीक होता है और जीवाणु नहीं पड़ते।

~~~~~

स्वास्थ्य-रक्षामें अड़ूसा और अर्जुनका योगदान

(वैद्य श्रीराजेशजी जेतली)

अड़ूसा, जिसे वासाके नामसे भी जाना जाता है, भारतके लगभग हर क्षेत्रमें पाया जाता है। आचार्य सुश्रुतने वासाको क्षय तथा कासनाशक माना है। उन्होंने बताया है कि 'शोथ-क्षयमें इसके पञ्चाङ्ग तथा पुष्पोंके काढ़ेसे सिद्ध किया घृत—शहदमें मिलाकर (दुगुनी मात्रामें) सेवन करनेसे यह प्रबल वेगयुक्त कास तथा श्वासको तुरंत नष्ट करता है।'

आचार्य चरक भी कहते हैं—'खाँसीके साथ कफ तथा रक्त हो तो वासा अकेली ही समर्थ औषधि है।'

आधुनिक वैज्ञानिक डॉ॰ चोपड़ाने अपना मत व्यक्त
~~~~~

करते हुए कहा है—इसके ताजे सुखाये गये पत्तियोंके चूर्णको देनेपर श्वास-नलीके शोथ (एक्यूट ब्रोंक्राइटिस)-से ग्रस्त रोगियोंको तुरंत आराम मिला है। वे रोग-मुक्त हो गये तथा उनकी जीवनी-शक्तिमें अत्यधिक वृद्धि पायी गयी।

इसके कुछ उपयोग इस तरहसे हैं—

१-खाँसीके लिये अड़ूसाके पत्तोंका रस १० ग्राम, शहद (५ ग्राम)-के साथ मिलाकर प्रातः-सायं सेवन करना चाहिये। ताजे पत्र न मिलनेकी स्थितिमें छायामें सुखाये गये फूलोंका चूर्ण मधुके साथ देना चाहिये।

२-बच्चोंकी काली खाँसी जिसे कुकुर-खाँसी भी कहते हैं, वासाकी जड़का काढ़ा डेढ़-दो चम्मच दिनमें दोसे तीन बारतक दिया जाय तो निश्चित ही लाभ होता है।

३-वासाका मूल लेकर उसका शर्बत बनाकर विधिपूर्वक उसे प्रयोगमें लाया जाय तो पुरानी-से-पुरानी खाँसी और क्षय-रोगतक नष्ट हो जाते हैं।

४-अड़ूसाके फूलोंको दुगुनी मात्रामें मिस्री मिलाकर मिट्टी या काँचके पात्रमें रखनेपर गुलकन्द तैयार होता है और इसके १० ग्राम मात्रातक नित्य सेवनसे कास-श्वास, पीनस (पुराना जुकाम), रक्त-पित्त, राजयक्ष्माके रोगियोंको अवश्य ही लाभ पहुँचता है।

५-यह ज्वरनाशक तथा रक्तशोधक भी है। इसके अतिरिक्त यह रक्तस्राव रोकनेवाला है।

इसका प्रयोग सारे शरीरमें धातु-निर्माण-क्रियाको बढ़ानेके लिये कमजोरीके बाद टॉनिकके रूपमें भी होता है।

अर्जुन

नदी, नालोंके किनारे होनेके कारण इसे धवल, ककुभ तथा नदीसर्ज भी कहा जाता है।

आधुनिक प्रयोगोंसे वैज्ञानिकोंने यह सिद्ध कर दिया है कि अर्जुन हृदय-रोगोंके लिये श्रेष्ठ औषधि है। अर्जुन जातिके कम-से-कम पंद्रह प्रकार हमारे देशमें पाये जाते हैं। इसी कारण पहचान जरूरी है कि कौन-सी औषधि हृदय-रक्त वाही-संस्थानपर कार्य करती है।

प्राचीन आयुर्वेद-शास्त्रियोंमें वाग्भट ऐसे वैद्य हैं, जिन्होंने पहली बार इस औषधिके हृदय-रोगमें उपयोगी होनेकी विवेचना की। इसके बाद वैद्य चक्रदत्त तथा वैद्य भावमिश्रने भी कहा कि घी, दूध तथा गुड़ आदिके साथ जो अर्जुनकी त्वचाका चूर्ण नियमित रूपसे लेता है, उसे हृदयरोग, जीर्ण ज्वर, रक्त-पित्त कभी नहीं सताते और वह चिरजीवी होता है।

अनेकों निघण्टुओंमें अर्जुन-सिद्ध घृतको हृदयरोगोंकी, चाहे वे किसी भी प्रकारके हों, अचूक दवा माना है। निघण्टुरत्नाकरके अनुसार अर्जुन बलकारक है तथा अपने लवण-खनिजोंके कारण हृदयकी मांसपेशियोंको सशक्त बनाता है।

हमने इसे अपने औषधालयमें बहुत उपयोग किया है तथा शत-प्रतिशत रोगियोंको लाभ मिला है।

१-हृदयमें शिथिलता आनेपर या शोथ होनेपर अर्जुनकी छाल तथा गुड़को दूधमें मिलाकर औटाकर पिलाना चाहिये।

२-हृदयाघात, हृदय-शूलमें अर्जुनकी छालसे सिद्ध दूध अथवा ३ से ६ ग्राम छाल घी या गुड़के शर्बतके साथ देते हैं।

३-अर्जुन-घृत बनानेके लिये आधा किलो अर्जुनकी छाल जौकुट करके ४ किलो जलमें पकाया जाता है। चौथाई जल शेष रहनेपर अर्जुन कल्क ५० ग्राम तथा गायका घी एक पाव मिलाकर पाक करते हैं। ध्यान रहे, जल उड़ जाने एवं घृत शेष रहनेपर यह सिद्ध घृत बन जाता है। यह घी हृदयके समस्त रोगोंमें हितकारी है। इसकी मात्रा ६ से ११ ग्रामतक दी जाती है।

४-महिलाओंमें होनेवाले श्वेत प्रदर तथा पेशाबकी जलनको रोकना भी इसके विशेष गुणोंमें है।

५-छातीमें जलन, जीर्ण खाँसी आदिको रोकनेमें यह सक्षम है।

६-हड्डी टूटनेपर इसकी छालका स्वरस दूधके साथ देते हैं। सूजन तथा दर्दको कम करनेकी शक्ति भी इसमें निहित है।

वनौषधि-परिचय—ब्राह्मी

(श्रीधीरजकुमारजी खरया)

ब्राह्मीके सोमवल्लभी, महौषधि, स्वायम्भुवी, सुरश्रेष्ठा, सरस्वती, सोम्यलता, दिव्या, शारदा तथा सोमवल्ली आदि कई नाम हैं। यह सामान्यतया गीली एवं तर जमीनमें पैदा होती है। ब्राह्मी वनस्पति वैसे तो सारे भारतवर्षमें जलाशयोंके किनारेपर पैदा होती है; पर हरिद्वारसे लेकर बदरीनारायणके मार्गपर बहुत बड़ी तादादमें पायी जाती है। ब्राह्मीके पौधेका रस कड़वा होता है।

ब्राह्मीके गुण-दोष एवं प्रभाव

आयुर्वेदके मतानुसार ब्राह्मी शीतल, सारक, हलकी, कसैली, मधुर, स्वादुपाकी, आयुवर्धक, स्वरको उत्तम करनेवाली, स्मरणशक्ति बढ़ानेवाली तथा कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह, रुधिर-विकार, खाँसी, विष, सूजन और ज्वर हरनेवाली है। इसके अतिरिक्त यह कण्ठशोधक, हृदयके लिये हितकारी, वात, रक्त-पित्त एवं अरुचिको भी दूर करनेवाली है।

ब्राह्मी और मस्तिष्क-सम्बन्धी रोग

ब्राह्मीकी मुख्य क्रिया मस्तिष्क और मज्जा-तन्तुओंके ऊपर होती है। यह मस्तिष्कको शक्ति देती है और उसके लिये एक पौष्टिक वस्तुका काम करती है। इस गुणके कारण ब्राह्मी मस्तिष्क और मज्जा-तन्तुओंके रोगोंमें विशेष रूपसे दी जाती है। उन्माद और अपस्मारके रोगोंमें भी यही बात होती है। इसलिये इनमें भी ब्राह्मीका प्रयोग होता है। सिर्फ नवीन एवं जोरदार रोगोंमें ब्राह्मी नहीं देनी चाहिये; क्योंकि इसके अंदर कुछ उत्तेजित करनेका धर्म रहता है और तीव्र रोगोंमें उत्तेजक औषधि देनेसे रोग बढ़ जाता है। इसलिये नवीन और तीव्र उन्मादमें तीव्र रेचक वस्तु देकर उसके पश्चात् खुरासानी अजवायनके समान कोई शामक वस्तु देनी चाहिये। उन्माद और अपस्मारके पुराने होनेपर उसमें एक ओर मस्तिष्कको पुष्ट करनेवाली औषधियोंकी जरूरत होती है और दूसरी ओर कुछ उत्तेजक औषधिको देनेकी आवश्यकता होती है। इसलिये ऐसे रोगोंमें ब्राह्मी देनेसे अच्छा लाभ होता है।

ब्राह्मीके अंदर कुछ क़ब्ज़ियत पैदा करनेका दोष भी रहता है। इसलिये इसके साथ कुछ हलकी मृदु विरेचक औषध देना उपयोगी होता है। प्राचीन ग्रन्थोंमें इसके साथ शंखपुष्पी देनेका विधान दिया गया है।

ब्राह्मीके अंदर एक प्रकारका उड़नशील तेल रहता है। वही इसके गुणोंका आधार है। आँचकी गर्मीसे यह तेल उड़ जाता है। इसलिये ब्राह्मीको धूपमें नहीं सुखाना चाहिये। इसका प्रयोग विशेष रूपसे बिना आँचपर तपाये करना चाहिये।



ब्रह्मवृक्ष—पलाशका स्वास्थ्यमें योगदान

(डॉ० सुश्रीलेखा वी० चित्ते, कायचिकित्सा-विभाग, जामनगर)

वेदोंमें पलाशको ब्रह्मवृक्ष कहकर उसे बहुत महत्त्व दिया गया है और मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंका पलाशके प्रति कितना आदरभाव था, उसका किञ्चित् भाव निम्न मन्त्रद्वारा प्राप्त होता है—

ब्रह्मवृक्ष पलाशस्त्वं श्रद्धां मेधां च देहि मे।
वृक्षाधिपो नमस्तेऽस्तु त्वं चात्र सन्निधो भव॥

अर्थात् हे पलाशरूपी ब्रह्मवृक्ष! आप समस्त वृक्षोंके राजा हैं, आप मुझे श्रद्धा और मेधा प्रदान करें। आपको मेरा नमस्कार है। मैं इस वृक्षमें आपका आह्वान करता हूँ, इसमें आप संनिहित हो जायँ।

पलाश एक औषधीय वृक्ष है। किंशुक, ब्रह्मवृक्ष, याज्ञिक, सुपर्ण, त्रिपर्ण, रक्तपुष्प, क्षारश्रेष्ठ, बीजस्नेह, कृमिघ्न, वक्रपुष्प, ढाक आदि इसके अनेक नाम हैं। इस वृक्षके पत्र बड़े प्रशस्त, मनोहर एवं सुन्दर होते हैं अतः इसका नाम पलाश पड़ा। रक्त पलाश तथा श्वेत पलाश आदि इसके कई भेद हैं। इसके छाल, क्षार, बीज, काण्ड, पत्र, पुष्प तथा निर्यास आदिका उपयोग होता है।

चरकसंहिताके अनुसार पलाशके अड़तीस प्रयोग

बताये गये हैं, जिनमें छालके अठारह, क्षारके बारह, बीजके छः, पुष्प और काण्डके पत्रके दो। इसी प्रकार सुश्रुतसंहितामें पलाशके छियालीस योग बताये गये हैं।

उपर्युक्त योगोंद्वारा प्रमेह, कुष्ठ, श्वित्र, शोथ, उदररोग, अर्श, ग्रहणी, हिक्का, कास, अतिसार तथा नेत्ररोग आदिका उपचार किया जाता है।

यहाँ पलाशके कुछ उपयोगी प्रयोग दिये जा रहे हैं—

(१) छोटे बच्चोंके पेटमें कृमि हों तो ऐसे बच्चोंको प्रथम एक तोलासे तीन तोलेतक गुड़ खानेको दिया जाता है। साथ ही ऊपरसे आधा तोलासे एक तोलातक पलाशमूल-अर्क पीनेको देना चाहिये। ऐसा तीन दिनतक करे और रातको एक तोलासे ढाई तोला शीत-गरम पानीके साथ दिया जाय।

पलाशके बीजोंका क्वाथ पीनेपर भी कृमियोंका नाश होता है।

(२) दन्त-शूल हो, दाँतोंसे खून आये एवं कमजोर दाँत हिलते हों तो दन्तवेष्ट (मसूढ़ों)-पर पलाश-अर्ककी कुछ बूँदें लगानेसे लाभ होता है।

(३) छोटे बच्चोंको कुकुर-खाँसीमें हलदीके साथ अर्क देनेपर लाभ होता है।

(४) कर्णपीपमें तीन-चार बूँद डालनेसे आराम मिलता है।

(५) स्नायु-रोग, श्लीपद (Filaria) एवं कालरा-जैसी व्याधिमें भी इसका प्रयोग किया जाता है।

(६) बालकोंको दाँत आनेकी वेदनासे बचानेके लिये इसके मूल अर्कका प्रयोग हलकेसे लगाकर किया जाता है, जिससे पतले दस्तका उपद्रव भी नहीं होता।

(७) स्त्रियोंके प्रदररोगोंमें इसका अर्क दससे बीस बूँद सुबह और शाम चावलके पानीके साथ देनेसे लाभ होता है।

(८) पलाश गर्भस्राव तथा गर्भपातमें बहुत उपयोगी है। आयुर्वेदके प्राचीन ग्रन्थोंमें पलाशपत्रका उपयोग बहुत जगहपर गर्भरक्षणके लिये वर्णित है। इसका अर्क भी बहुत लाभप्रद है।

(९) पलाशका उपयोग श्रेष्ठ रसायनके रूपमें अति लाभप्रद है।



बेल (बिल्व)-की महत्ता एवं स्वास्थ्य-रक्षामें उसका उपयोग

(वैद्य पं० श्रीगोपालजी द्विवेदी)

बिल्ववृक्ष प्रायः धार्मिक स्थानों विशेषकर भगवान् शङ्करके उपासना-स्थलोंपर लगानेकी भारतमें एक प्राचीन परम्परा है। यह वृक्ष अधिक बड़ा न होकर मध्यम आकारवाला होता है। शाखाओंपर तीक्ष्ण काँटे होते हैं। पत्ते तीन-तीन या कभी-कभी पाँच-पाँचके गुच्छोंमें लगते हैं। बेलका फूल सफेद तथा सुगन्धपूर्ण होता है। फल प्रायः गोलाकार कड़े आवरणवाला, स्वादिष्ठ, मधुर और हृदयको प्रिय लगनेवाली सुगन्ध लिये होता है। गूदेमें सैकड़ों बीज गोंदमें लिपटे हुए रहते हैं। वसन्त-ऋतुके अन्तमें पुराने पत्ते गिरकर नये आने लगते हैं। ग्रीष्ममें तो यह वृक्ष हरे-हरे पत्तों एवं फलोंसे भर उठता है। देशके सभी प्रान्तोंमें मिलनेवाला यह बेल कोई अपरिचित वस्तु नहीं है। बेलके सम्बन्धमें धार्मिक महत्त्वोंको निम्न अंशसे ज्ञात करें—

श्रीशिवपुराणके अन्तर्गत बिल्व-माहात्म्यका वर्णन इस प्रकारसे किया गया है—

बिल्वमूले महादेवं लिङ्गरूपिणमव्ययम्।
यः पूजयति पुण्यात्मा स शिवं प्राप्नुयाद् ध्रुवम्॥
बिल्वमूले जलैर्यस्तु मूर्धानमभिषिञ्चति।
स सर्वतीर्थस्नातः स्यात्स एव भुवि पावनः॥

(श्रीशिवपुराण, श्लोक १३-१४)

अर्थात् बिल्वके मूलमें लिङ्गरूपी अविनाशी महादेवका पूजन जो पुण्यात्मा पुरुष करता है, उसे निश्चय ही कल्याणकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य शिवजीके ऊपर बिल्वमूलमें जल चढ़ाता है, उसे सब तीर्थोंमें स्नानका फल मिलकर पवित्रता प्राप्त होती है।

एतस्य बिल्वमूलस्याथालवालमनुत्तमम्।
जलाकुलं महादेवो दृष्ट्वा तुष्टो भवत्यलम्॥

(श्लोक १५)

अर्थात् इस बिल्वमूलके सब ओर जलसे परिपूर्ण आलबालको देखकर भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो जाते हैं।

इतना ही नहीं—

पूजयेद् बिल्वमूलं यो गन्धपुष्पादिभिर्नरः।
शिवलोकमवाप्नोति संततिर्वर्धते सुखम्॥
बिल्वमूले दीपमालां यः कल्पयति सादरम्।
स तत्त्वज्ञानसम्पन्नो महेशान्तर्गतो भवेत्॥
बिल्वशाखां समादाय हस्तेन नवपल्लवम्।
गृहीत्वा पूजयेद् बिल्वं स च पापैः प्रमुच्यते॥
बिल्वमूले शिवरतं भोजयेद्यस्तु भक्तितः।
एकं वा कोटिगुणितं तस्य पुण्यं प्रजायते॥
बिल्वमूले क्षीरयुक्तमन्नमाज्येन संयुतम्।
यो दद्याच्छिवभक्ताय स दरिद्रो न जायते॥

(शिवपुराण-बिल्वमाहात्म्य, श्लोक १६—२०)

उपर्युक्त पंक्तियोंका सामान्य भावार्थ इस प्रकारसे है—'जो भक्त बिल्वमूलमें गन्ध-पुष्पादिके द्वारा पूजन करते हैं, उन्हें शिवलोककी प्राप्ति होती है तथा संतान और सुख बढ़ता है। जो शिवभक्त बिल्वमूलमें आदरपूर्वक दीपमालाकी कल्पना करते हैं, वे तत्त्वज्ञानसे परिपूर्ण हो शिवजीके अन्तर्गत होते हैं और जो बिल्वकी शाखाको लेकर उससे नवीन पत्र ग्रहणकर पूजन करते हैं, वे सभी प्रकारके पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं। जो शिवभक्तको बिल्वमूलमें भक्तिपूर्वक भोजन कराता है, उसे एक व्यक्तिको भोजन करानेमें ही करोड़ोंको भोजन करानेका फल मिलता है। जो मनुष्य बिल्वमूलमें दूधसे युक्त घृत और अन्न रखकर शिवभक्तको देता है, वह कभी दरिद्र नहीं हो पाता।'

शिवपुराणमें ही आगे लिङ्गपूजा-विधानके अन्तर्गत पुनः बिल्वकी चर्चा आयी है। यथा—

पूजयेत् परया भक्त्या शंकरं भक्तवत्सलम्।
सर्वाभावे बिल्वपत्रमर्पणीयं शिवाय वै॥
बिल्वपत्रार्पणेनैव सर्वपूजा प्रसिध्यति।
ततः सुगन्धचूर्णं वै वासितं तैलमुत्तमम्॥

अर्थात् भक्तवत्सल भगवान् शिवजीका परम भक्तिपूर्वक पूजन करे। पूजनमें यदि अन्य कोई वस्तु उपलब्ध न हो तो बिल्वपत्र ही समर्पित करे। बिल्वपत्रके समर्पणसे ही सब पूजन सिद्ध हो जाता है। फिर सुगन्धित चूर्णद्वारा सुवासित किया हुआ तेल प्रसन्नतापूर्वक शिवजीको समर्पण करे।

ऋषियोंने कहा—'हे व्यासशिष्य सूतजी! अब आप बताइये कि किस-किस पुष्पके द्वारा पूजन करनेसे शिवजी क्या-क्या फल देते हैं?' सूतजीने कहा—'ऋषियो! क्रमपूर्वक वर्णन करता हूँ—तुम सुनो! यह विधि महर्षि नारदने पूछी थी तथा उत्तरमें प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उनके प्रति इस प्रकार कहा था—'कमल, बेलपत्र, शतपत्र या शङ्खपुष्पीसे शिवकी पूजा करे तो लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है।' इससे सम्बन्धित एक सुभाषितको पढ़ें—

पीतोऽगस्त्येन तातश्चरणतलहतो वल्लभो येन रोषाद्
गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजानिमित्तम्।
तस्मात् खिन्ना सदाहं द्विजकुलनिलयं नाथ नित्यं त्यजामि
आदि।

यजुर्वेदी शिवार्चन-पद्धतिके अन्तर्गत बेलकी इस प्रकार चर्चा की गयी है—

त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रिधायुधम्।
त्रिजन्मपापसंहारं बिल्वपत्रं शिवार्पणम्॥
अमृतोद्भवं श्रीवृक्षं शंकरस्य सदा प्रियम्।
तत्ते शम्भो प्रयच्छामि बिल्वपत्रं सुरेश्वर॥
त्रिशाखैर्बिल्वपत्रैश्च अच्छिद्रैः कोमलैः शुभैः।
तव पूजां करिष्यामि अर्चये परमेश्वर॥
गृहाण बिल्वपत्राणि सुपुष्पाणि महेश्वर।
सुगन्धीनि भवानीश शिव त्वं कुसुमप्रिय॥

यह तो रही धार्मिक महत्ता। अब इनके स्वास्थ्योपयोगी गुणोंको देखना चाहिये। स्वास्थ्योपयोगी गुणधर्म—

१—दस्तकी प्रारम्भिक अवस्थामें बेलगिरी, सोंठ, मोचरस, धायके फूल जलसे धोकर सुखाये। प्रत्येक १-१ तोला, धनिया २० तोले, सौंफ ४० तोले। सर्वप्रथम सोंठ, बेलगिरि और मोचरसके छोटे-छोटे टुकड़े कर हलकी अग्निपर सेंक दे। गन्ध आते ही उतार लेना चाहिये। सभीको मिलाकर चूर्ण बना दे तथा कपड़ेसे उसे छानकर

सुरक्षित रख दे। एकसे तीन ग्रामकी मात्रामें मट्ठे या शर्बतके साथ दिनमें तीन बार रोगीको दे। इससे शीघ्र ही लाभ मिलेगा।

२—पीलिया, सूजन तथा कब्ज आदिमें बेलकी पत्तीका रस थोड़ी काली मिर्च मिलाकर चूर्ण बना लेवे और दिनमें तीन बार प्रयोग करे।

३—पके बेलका गूदा, इमली और मिस्त्री भली प्रकार जलमें मसल-छानकर शर्बत तैयार कर ले। प्रातःकालमें इसके सेवनसे शारीरिक दाह, अतिसार, मूत्रका पीलापन, मिचलाहट, स्फूर्तिका अभाव आदि दोष शान्त हो जाता है।

४—घाव कैसा भी हो, बिल्वपत्रको जलमें पकाकर उस जलसे धोनेके बाद ताजे पत्ते पीसकर बाँध दीजिये। यह पीडा एवं पूय दोनोंका शमन करके घावको शीघ्र सुखानेमें सहायक होता है।

५—हृदयकी अधिक घबराहट, निद्रा एवं मानसिक तनावपर वृक्षके भीतरकी छाल १० तोले मोटी-मोटी कूटकर आधा सेर गायके दूधमें डालिये और इच्छानुसार मीठा मिलाकर प्रातः तथा सायं कुछ समयतक नियमित प्रयोग कीजिये। वायुकारक पदार्थोंके सेवनसे वञ्चित रहनेसे अवश्य लाभ मिलेगा।

६—(क) श्वेतप्रदर और रक्तप्रदर महिलाओंमें पायी जानेवाली एक प्रकारकी व्याधि है, उससे बचनेके लिये इच्छानुसार गायके दूधके साथ बेलके ताजे पत्तेको पीसकर थोड़ा जीरा मिलाकर दिनमें दो बार सेवन करनेसे लाभ मिलता है।

(ख) नेत्रोंका दुखना, लालिमा, अधिक कीचड़ आनेमें पत्तोंको पीसकर पुल्टिस बाँधना हितकारी होता है। बच्चोंके होनेवाले पीले दस्तोंमें एक चायकी चम्मच बिल्वपत्र-रस देनेसे शीघ्र लाभ मिलता है।

७—बेलका मुरब्बा अतिसार, आमातिसार और खून-मिले दस्तोंपर प्रभावशाली क्रिया दिखलाता है। आँतोंके घावोंको अच्छा करनेमें मुरब्बा बड़ा ही लाभकारी होता है। ताजे फलका गूदा, कबाबचीनीका चूर्ण एकमें मिलाकर ताजे दूधके साथ पिलानेसे पुराने उपदंशमें लाभ होता है।

८—रक्तविकारोंमें बेलका गूदा आधा पाव बराबर शक्कर मिलाकर अठन्नीभरकी मात्राके नित्य प्रयोग करनेसे लाभ होता है।

९—बेलके कोमल पत्तोंको किसी नीरोगी गायके मूत्रमें पीस ले। पीसी वस्तुसे चार गुना तिलका तेल और तेलसे चार गुना बकरीका दूध सभीको मिलाकर हलकी-हलकी अग्निपर जलीय अंश उड़नेतक पकाये। इसके बाद नीचे उतार ले, शीतल हो जानेपर सुरक्षित रख दे। यह तेल कानके अनेक रोगोंपर प्रभावकारी है। बहरापन, सायँ-सायँकी आवाज आना आदिमें अपना गुण दिखलाता है। इसे दिनमें दो-तीन बार छोड़े।

इन रोगोंके अलावा आयुर्वेदीय औषध-निर्माण करनेवाली फार्मेसियाँ और चिकित्सा-जगत्के पण्डितोंने प्रचुरतासे बिल्वको अपनी विभिन्न ओषधियोंमें स्थान देकर इसकी उपयोगिताको और भी बढ़ा दिया है। आयुर्वेदिक चिकित्सक अत्यन्त श्रद्धाके साथ इसके विभिन्न अङ्गोंका उपयोग रुग्ण लोगोंपर करते हैं। भारतमें अनेक वृक्षोंके पूजन-सम्मानादिकी प्राचीन परम्परा है; क्योंकि इनके अंदर गम्भीर कल्याणकारी वैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है। बादीपुर (नेपाल)-में प्रति दस वर्षके बाद एक अनोखा समारोह होता है, जिसमें कन्याओंके सामूहिक विवाह बिल्वफलसे सम्पन्न करानेकी प्रथा प्राचीन कालसे चली आ रही है। नेपालियोंकी यह मान्यता है कि कुमारी कन्याओंका पवित्र बेलसे विवाह करा देनेपर वे वैधव्य-दुःखसे आजीवन बची रहती हैं।

इस प्रकार बेल वस्तुतः मानवमात्रके लिये एक कल्याणकारी प्राकृतिक वरदान है।



वातवृण्मूत्रजृम्भाश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः । व्याहन्यमानैरुदितैरुदावर्तो निरुच्यते॥

वायु, मल, मूत्र, जृम्भा, अश्रु, छींक, उद्गार, वमन, इन्द्रिय (शुक्र), इनके उपस्थित वेगोंको रोकनेसे उदावर्त्त उत्पन्न होता है। (श्रोत्रवागादिसत्त्वं च शुक्रं चेन्द्रियमुख्यते)



सहजन एक अमूल्य औषधि

(डॉ० श्रीविजयकुमारजी पाठक, बी०ए०एम०एस०)

सहजन सम्पूर्ण भारतमें पाया जानेवाला एक वृक्ष-विशेष है। इसकी फली सब्जीके रूपमें प्रयुक्त होती है। इसे शोभांजन, शिग्रु, कृष्णबीज, सजिना, साजना, सुरजना, सुलजना, सेजना, सैजना, सरगनो, सरगवो, सेक्टो, शेवगा, मुआ, मरुगाई, बड़ा डिसिंग, मूँगा चेझाड़, सरागू, मुरंगाई, विद्रधिनाशन, स्त्रीचितहारी तथा इंडियन हार्स रैडिशके नामसे जाना जाता है।

आयुर्वेदके अनुसार इसका रस मधुर-कटु तथा गुण पाचक, अनुलोमक, शुक्रवर्धक, रुचिकारक, वातघ्न, नेत्रशोधक, कृमिघ्न, मेदघ्न, शोथहर, वेदनाशामक, गण्डमाला, व्रण तथा विद्रधिनाशक है।

वैसे तो इसके सभी अङ्ग उपयोगमें लिये जाते हैं, परंतु विशेषरूपसे इसकी नरम फली उदर एवं वात-रोगोंमें, पत्ती नेत्ररोग एवं रतौंधीमें, फूल उदरशूल, निर्बलता, कफवात आदिके रोगोंमें तथा मूल और छाल अन्तर्विद्रधि, गृध्रसी, दमा, सूजन, पथरी, जलोदर, यकृत्, तिल्ली (प्लीहा), शोथ, गठिया, अर्धांगवात आदिमें प्रयुक्त किये जाते हैं।

सहजनके दो विशिष्ट अनुभूत प्रयोग

१-सहजनकी छालका स्वरस (ताजा रस) आधा छटाक (३० मि०ली०), शहद आधा चम्मच, मकरध्वज ¼ रत्ती—इन सभीको मिलाकर सायं-प्रातः खाली पेट लेनेसे अनेक वातज तथा कफज रोग एवं विद्रधि नष्ट होती है। इसका प्रयोग कम-से-कम पंद्रह दिनतक करना चाहिये।

यदि कैंसरपर इसका प्रयोग किया जाय तो लाभकी सम्भावना हो सकती है।

२-सहजनके जड़की अन्तश्छाल आधा पाव (१०० ग्राम)-को आधा सेर जलमें एक या दो घंटे डालकर अच्छी तरह मसलकर आँचपर रख दे। आठवाँ भाग शेष बचनेपर अच्छी तरह मसलकर छान ले। उसमें अजवाइन ४ रत्ती, सोंठ ४ रत्ती, हींग १ रत्ती डालकर शीतल होनेपर पीये।

इससे गृध्रसी मात्र तीन दिनोंमें तथा गठिया वात, पक्षाघात, अर्धाङ्गवात एवं अन्य वातज रोग पंद्रह दिनोंमें नष्ट हो सकते हैं।

इसका सेवन दोनों समय (प्रातः-सायं) खाली पेट करना चाहिये।

उपर्युक्त दोनों प्रयोगोंमें पथ्य तथा अपथ्य वातरोगके अनुसार करना चाहिये।



स्वास्थ्योपयोगी मेथी

(श्रीहरीरामजी सैनी)

आहारमें हरी सब्जियोंका विशेष महत्त्व है। आधुनिक विज्ञानके मतानुसार हरे पत्तोंवाली सब्जियोंमें क्लोरोफिल नामक तत्त्व रहता है, जो कीटाणुओंका नाशक है। दाँत एवं मसूढ़ोंमें सड़न उत्पन्न करनेवाले जन्तुओंको यह 'क्लोरोफिल' नष्ट करता है। इसके अलावा इनमें प्रोटीन तत्त्व भी पाया जाता है। हरी सब्जियोंमें लौह तत्त्व भी काफी मात्रामें पाया जाता है, जो पाण्डुरोग (रक्ताल्पता) तथा शारीरिक कमजोरीको नष्ट करता है। हरी सब्जियोंमें स्थित क्षार रक्तकी अम्लताको घटाकर उसका नियमन करता है।

हरी सब्जियोंमें मेथीकी भाजीका प्रयोग भारतके प्रायः सभी भागोंमें बहुलतासे होता है। इसे सुखाकर भी उपयोगमें लिया जाता है। इसके अलावा मेथी-दानोंका प्रयोग बघारके रूपमें तथा कई औषधियोंके रूपमें किया जाता है।

वैसे तो मेथी प्रायः हर समय उगायी जा सकती है, फिर भी मार्गशीर्षसे फाल्गुन महीनेतक ज्यादा उगायी जाती है। कोमल पत्तेवाली मेथी कड़वी कम होती है।

मेथीकी भाजी तीखी, कड़वी, रूक्ष, गरम, पित्तवर्धक, अग्निदीपक (भूखवर्धक), पचनेमें हलकी, मलावरोधको

दूर करनेवाली, हृदयके लिये हितकर एवं बलप्रद होती है। सूखी मेथीके बीजोंकी अपेक्षा मेथीकी भाजी कुछ ठंडी, पाचनकर्त्री, वायुकी गति ठीक रखनेवाली तथा प्रसूता स्त्रियों, वायुदोषके रोगियों एवं कफके रोगियोंके लिये अत्यन्त हितकारी है। यह बुखार, अरुचि, उलटी, खाँसी, वातरोग (गाउट), वायु, कफ, बवासीर, कृमि तथा क्षयका नाश करनेवाली है। मेथी पौष्टिक एवं रक्तको शुद्ध करनेवाली है। यह शूल, वायुगोला, सन्धिवात, कमरके दर्द, पूरे शरीरके दर्द, मधुप्रमेह एवं निम्न रक्तचापको मिटानेवाली है। मेथी माताका दूध बढ़ाती है। आमदोषको मिटाती है एवं शरीरको स्वस्थ बनाती है।

औषधिप्रयोग

(१) कब्जियत—कफदोषसे उत्पन्न कब्जियतमें मेथीकी रेशेवाली सब्जी रोज खानेसे लाभ होता है।

(२) बवासीर—प्रतिदिन मेथीकी सब्जीका सेवन करनेसे वायु, कफ एवं बवासीरमें लाभ होता है।

(३) बहुमूत्रता—जिसे एकाध घंटेमें बार-बार मूत्रत्यागके लिये जाना पड़ता हो अर्थात् बहुमूत्रताका रोग हो, उसे मेथीकी भाजीके १०० मिलीलीटर रसमें डेढ़ ग्राम कत्था तथा तीन ग्राम मिस्री मिलाकर प्रतिदिन सेवन करना चाहिये। इससे लाभ होता है।

(४) मधुप्रमेह—प्रतिदिन सुबह मेथीकी भाजीका १०० मिलीलीटर रस पी जाय। शक्करकी मात्रा ज्यादा हो तो सुबह-शाम दो बार रस पीये। साथ ही भोजनमें रोटी-चावल एवं चिकनी (घी-तेलयुक्त) तथा मीठी चीजोंको छोड़ दे, शीघ्र लाभ होता है।

(५) निम्न रक्तचाप—जिन्हें निम्न रक्तचापकी तकलीफ हो, उन्हें मेथीकी भाजीमें अदरक, गरम मसाला इत्यादि डालकर सेवन करना लाभप्रद है।

(६) कृमि—बच्चोंके पेटमें कृमि हो जानेपर उन्हें भाजीका १-२ चम्मच रस रोज पिलानेसे लाभ होता है।

(७) वायुका दर्द—रोज हरी अथवा सूखी मेथीका सेवन करनेसे शरीरके ८० प्रकारके वायु-रोगोंमें लाभ होता है।

(८) आँव होनेपर—मेथीकी भाजीके ५० मि.ली. रसमें ६ ग्राम मिस्री डालकर पीनेसे लाभ होता है। ५ ग्राम मेथीका पाउडर १०० ग्राम दहीके साथ सेवन करनेसे भी लाभ होता है। दही खट्टा नहीं होना चाहिये।

(९) वायुके कारण होनेवाले हाथ-पैरके दर्दमें—मेथीके बीजोंको घीमें सेंककर उसका चूर्ण बनाये एवं उसके लड्डू बनाकर प्रतिदिन एक लड्डूका सेवन करनेसे लाभ होता है।

(१०) गर्मीमें लू लगनेपर—मेथीकी सूखी भाजीको ठंडे पानीमें भिगोये। अच्छी तरह भीग जानेपर मसलकर छान ले एवं उस पानीमें शहद मिलाकर एक बार पिलाये, लूमें लाभ होता है।

मेथीपाक

शीत-ऋतुमें विभिन्न रोगोंसे बचनेके लिये एवं शरीरकी पुष्टिके लिये मेथीपाकका प्रयोग किया जाता है।

विधि—मेथी एवं सोंठ ३२५-३२५ ग्रामकी मात्रामें लेकर दोनोंका कपड़छान चूर्ण कर ले। सवा पाँच लीटर दूधमें ३२५ ग्राम घी डाले। उसमें यह चूर्ण मिला दे। यह सब एकरस होकर जबतक गाढ़ा न हो जाय, तबतक उसे पकाये। उसके पश्चात् उसमें ढाई किलो शक्कर डालकर फिरसे धीमी आँचपर पकाये।

अच्छी तरह पाक तैयार हो जानेपर नीचे उतार ले, फिर उसमें लैंडीपीपर, सोंठ, पीपरामूल, चित्रक, अजवायन, जीरा, धनिया, कलौंजी, सौंफ, जायफल, दालचीनी, तेजपत्र एवं नागरमोथा—ये सभी ४०-४० ग्राम एवं काली मिर्चका ६० ग्राम चूर्ण डालकर मिला दे। शक्तिके अनुसार सुबह खाये।

यह पाक आमवात, अन्य वातरोग, विषमज्वर, पाण्डुरोग, पीलिया, उन्माद, अपस्मार (मिरगी), प्रमेह, वातरक्त, अम्लपित्त, शिरोरोग, नासिकारोग, नेत्ररोग, प्रदररोग आदि सभीमें लाभदायक है। यह शरीरके लिये पुष्टिकारक, बलकारक एवं वीर्यवर्धक भी है।

पुनर्नवा

पुनर्नवा, साटी या विषखपराके नामसे विख्यात यह वनस्पति वर्षा-ऋतुमें बहुतायतसे पायी जाती है। शरीरकी आन्तरिक एवं बाह्य सूजनको दूर करनेके लिये यह अत्यन्त उपयोगी है।

यह तीन प्रकारकी होती है—सफेद, लाल एवं काली। काली पुनर्नवा प्रायः देखनेमें नहीं आती। पुनर्नवाकी सब्जी शोथ (सूजन)-नाशक, मूत्रल तथा स्वास्थ्यवर्द्धक है।

पुनर्नवा कड़वी, उष्ण, तीखी, कसैली, रुच्य, अग्निदीपक, रूक्ष, मधुर, खारी, सारक, मूत्रल एवं हृदयके लिये लाभदायक है। यह पाण्डुरोग, विषदोष एवं शूलका भी नाश करती है।

पुनर्नवा—औषधीय प्रयोग

(१) नेत्रोंकी फूली—पुनर्नवाकी जड़को घीमें घिसकर नेत्रमें लगानेसे लाभ होता है।

(२) नेत्रोंकी खुजली (अक्षिकण्डू)—पुनर्नवाकी जड़को शहद अथवा दूधमें घिसकर आँजनेसे लाभ होता है।

(३) नेत्रोंसे पानी गिरना (अक्षिस्राव)—पुनर्नवाकी जड़को शहदमें घिसकर आँखोंमें लगाना लाभदायक है।

(४) रतौंधी—पुनर्नवाकी जड़को कांजीमें घिसकर आँखोंमें आँजना लाभकारी है।

(५) खूनी बवासीर—पुनर्नवाकी जड़को हल्दीके काढ़ेमें देनेसे लाभ होता है।

(६) पीलिया (Jaundice)—पुनर्नवाके पञ्चाङ्गको शहद एवं मिस्रीके साथ ले अथवा उसका रस या काढ़ा पिये।

(७) मस्तक-रोग एवं ज्वर-रोग—पुनर्नवाके पञ्चाङ्गका २ ग्राम चूर्ण, १० ग्राम घी एवं २० ग्राम शहदमें प्रातः-सायं खानेसे लाभ होता है।

(८) जलोदर—पुनर्नवाकी जड़के चूर्णको शहदके साथ खानेसे लाभ होता है।

(९) सूजन—पुनर्नवाकी जड़का काढ़ा पीने एवं सूजनपर लेप करनेसे लाभ होता है।

(१०) पथरी—पुनर्नवाको दूधमें उबालकर सुबह-शाम पीना चाहिये।

(११) विष—(क) चूहेका विष—सफेद पुनर्नवा-मूलका २-२ ग्राम चूर्ण आधे ग्राम शहदके साथ दिनमें दो बार लेनेसे लाभ होता है।

(ख) पागल कुत्तेका विष—सफेद पुनर्नवाके मूलका रस २५ से ५० ग्राम, २० ग्राम घीमें मिलाकर रोज पिये।

(१२) विद्रधि (फोड़ा)—पुनर्नवाके मूलका काढ़ा पीनेसे कच्चा फोड़ा भी मिट जाता है।

(१३) अनिद्रा—पुनर्नवाके मूलका क्वाथ १०० मिलीलीटर दिनमें दो बार पीनेसे निद्रा अच्छी आती है।

(१४) संधिवात—पुनर्नवाके पत्तोंकी भाजी, सोंठ डालकर खानेसे लाभ होता है।

(१५) विलम्बित प्रसव—मूढगर्भ—थोड़ा तिलका तेल मिलाकर पुनर्नवाके मूलका रस, जननेन्द्रियमें लगानेसे रुका हुआ बच्चा तुरंत बाहर आ जाता है।

(१६) गैस—पुनर्नवाके मूलका चूर्ण २ ग्राम, हींग आधा ग्राम तथा काला नमक एक ग्राम गरम पानीसे ले।

(१७) मूत्रावरोध—पुनर्नवाका ४० मिलीलीटर रस अथवा उतना ही काढ़ा पिये। पेडूपर पुनर्नवाके पत्ते बफाकर बाँधे, १ ग्राम पुनर्नवाक्षार गरम पानीके साथ पीनेसे तुरंत फायदा होता है।

(१८) खूनी बवासीर—पुनर्नवाके मूलको पीसकर फीकी छाछ (२०० मिलीलीटर) या बकरीके दूध (२०० मिलीलीटर)-के साथ पिये।

(१९) वृषण-शोथ—पुनर्नवाका मूल दूधमें घिसकर लेप करनेसे वृषणकी सूजन मिटती है।

(२०) हृदयरोग—हृदयरोगके कारण सूजन हो जाय तो पुनर्नवाके मूलका १० ग्राम चूर्ण और अर्जुनके छालका १० ग्राम चूर्ण २०० मिलीलीटर पानीमें काढ़ा बनाकर सुबह-शाम पीना चाहिये।

(२१) श्वास (दमा)—भोंरगमूल चूर्ण १० ग्राम और पुनर्नवाचूर्ण १० ग्रामको २०० मिलीलीटर पानीमें उबालकर काढ़ा बनाये। जब ५० मिलीलीटर बचे तब उसमें आधा ग्राम शृंगभस्म डालकर सुबह-शाम पिये।

(२२) रसायनप्रयोग—हमेशा स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिये रोज सुबह पुनर्नवाके मूलका या पत्तेका दो चम्मच (१० मिलीलीटर) रस पिये। (ह० सैनी)

सोयाबीन

सोयाबीन एक ऐसा पुष्टिकारक अन्न है, जिसमें प्रोटीन, वसा, श्वेतसार, खनिज, लवण, लौह, विटामिन बी आदि पोषक तत्त्व प्रचुरमात्रामें विद्यमान होते हैं। इसमें मिलनेवाला प्रोटीन किसी भी आमिष-निरामिष पदार्थोंमें पाये जानेवाले प्रोटीनसे उन्नत किस्मका होता है। यह प्रोटीन उच्च कोटिका होनेके साथ ही ३५—४० % तक पाया जाता है। यह बालक, वृद्ध तथा रोगी सभीके लिये हितकर है। इससे क़ब्ज़ और गैसके रोग नहीं होते तथा बालकोंका शारीरिक विकास होता है। इसमें कोलेस्ट्रॉलकी मात्रा भी कम होती है। इसके नियमित प्रयोगसे बल-वीर्यकी वृद्धि होती है। शाकाहारियोंको तो प्रकृतिके इस अनमोल भेंटका अवश्य प्रयोग करना ही चाहिये। इसमें अति गुणकारी तत्त्वोंकी अपेक्षा इसका मूल्य भी काफी सस्ता है। इसके दैनिक उपयोगकी निम्नलिखित विधियाँ हैं—

(१) सोयाबीनका आटा—पानीमें लगभग १० घंटे भिगो दे। फिर सुखाकर चक्कीमें इसका आटा पिसवा ले। इसकी अत्यन्त स्वादिष्ठ रोटी बनती है। स्वादमें गेहूँके आटेसे कुछ अलग होती है। इसके आटेसे अनेक व्यञ्जन तैयार होते हैं। गेहूँके आटेमें मिलाकर इससे रोटी, पराठा, हलुआ आदि बनाते हैं। इसके आटेको अधिक दिनतक नहीं रखा जा सकता।

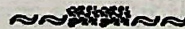
(२) सोयाबीनका दूध-दही—सोयाबीनको लगभग दस घंटे पानीमें भिगो दे। फिर इसे बारीक पीसकर समुचित मात्रामें पानी मिलाये ताकि यह दूध-जैसा हो जाय। इसका स्वाद ठीक करनेके लिये पीसते समय इसमें दो-तीन छोटी इलायची मिला दे तथा दूधको आधे घंटेतक उबाले। गुणकारी और पौष्टिक दूध तैयार हो गया। इस दूधमें जामन डालकर दही भी जमाया जा सकता है।

(३) सोयाबीनका तेल—सरसों तथा मूँगफलीकी तरह सोयाबीनका भी तेल निकाला जाता है। पौष्टिक होनेके साथ ही अन्य खाद्य तेलोंसे अधिक सस्ता होता है। वनस्पति या सरसोंके तेलके स्थानपर इसका प्रयोग कर सकते हैं। इसका तेल सिरमें लगानेसे बाल काले होते हैं। सोयाबीनके तेलमें कुछ बूँद नीबूका रस मिलाकर लगानेसे मुहाँसे ठीक हो जाते हैं।

(४) सोयाबीनकी बड़ी—सोयाबीनका तेल निकालनेके बाद इसका जो छिलका बचता है, उससे निर्मित बड़ी पौष्टिक होती है। सब्जी, दाल आदिमें डालकर इसको उपयोगमें लाते हैं।

(५) सोयाबीनकी चटनी—भिगोये हुए सोयाबीनमें अनुपातसे नमक-मिर्च इत्यादि डालकर पीस ले। स्वादिष्ठ चटनीके रूपमें इसका प्रयोग कर सकते हैं।

(६) सोयाबीनकी खली—पशुओंको इसकी खली खिलानेसे दूधकी मात्रा बढ़ जाती है। बच्चोंके लिये यह दूध बहुत गुणकारी होता है।



दैनिक जीवनमें उपयोगी—'पुदीना'

(श्रीप्रबलकुमारजी सैनी)

पुदीना एक सुगन्धित एवं उपयोगी औषधि है। आयुर्वेदके मतानुसार यह स्वादिष्ठ, रुचिकर, पचनेमें हलका, तीक्ष्ण, तीखा, कड़वा, पाचनकर्ता और उल्टी मिटानेवाला, हृदयको उत्तेजित करनेवाला, विकृत कफको बाहर लानेवाला तथा गर्भाशय-संकोचक एवं चित्तको प्रसन्न करनेवाला, जख्मोंको भरनेवाला और कृमि, ज्वर, विष, अरुचि, मन्दाग्नि, अफरा, दस्त, खाँसी, श्वास, निम्न रक्तचाप, मूत्राल्पता, त्वचाके दोष, हैजा, अजीर्ण, सर्दी-जुकाम आदिको मिटानेवाला है।

पुदीनामें विटामिन 'ए' प्रचुर मात्रामें पाया जाता है। इसमें रोगप्रतिकारक शक्ति उत्पन्न करनेकी अद्भुत सामर्थ्य है एवं पाचक रसोंको उत्पन्न करनेकी भी क्षमता है। पुदीनामें अजवायनके सभी गुण पाये जाते हैं।

पुदीनाके बीजसे निकलनेवाला तेल स्थानिक ऐनेस्थेटिक,

पीडानाशक एवं जन्तुनाशक होता है। इसके तेलकी सुगन्धसे मच्छर भाग जाते हैं।

विशेष—पुदीनाका ताजा रस लेनेकी मात्रा है पाँचसे बीस ग्राम तथा इसके पत्तोंके चूर्णको लेनेकी मात्रा तीनसे छः ग्राम, काढ़ा लेनेकी मात्रा दससे चालीस ग्राम और अर्क लेनेकी मात्रा दससे चालीस ग्राम तथा बीजका तेल लेनेकी मात्रा आधी बूँदसे तीन बूँद है।

औषधिके रूपमें प्रयोग

(१) मलेरिया—पुदीना एवं तुलसीके पत्तोंका काढ़ा बनाकर सुबह-शाम लेनेसे अथवा पुदीना एवं अदरकका रस एक-एक चम्मच सुबह-शाम लेनेसे लाभ होता है।

(२) वायु एवं कृमि—पुदीनाके दो चम्मच रसमें एक चुटकी काला नमक डालकर पीनेसे गैस तथा वायु एवं पेटके कृमि नष्ट हो जाते हैं।

(३) पुराना सर्दी-जुकाम एवं न्यूमोनिया—पुदीनाके रसकी दो-तीन बूँदें नाकमें डालने एवं पुदीना तथा अदरकके एक-एक चम्मच रसमें शहद मिलाकर दिनमें दो बार पीनेसे लाभ होता है।

(४) अनार्तव—अल्पार्तव—मासिक धर्म न आनेपर या कम आनेपर अथवा वायु एवं कफदोषके कारण बंद हो जानेपर पुदीनाके काढ़ेमें गुड़ एवं चुटकीभर हींग डालकर पीनेसे लाभ होता है। इससे कमरकी पीडामें भी आराम होता है।

(५) आँतका दर्द—अपच, अजीर्ण, अरुचि, मन्दाग्नि, वायु आदि रोगोंमें पुदीनाके रसमें शहद डालकर ले अथवा पुदीनाका अर्क ले।

(६) दाद—पुदीनाके रसमें नीबू मिलाकर लगानेसे दाद मिट जाती है।

(७) उल्टी-दस्त, हैजा—पुदीनाके रसमें नीबूका रस, अदरकका रस एवं शहद मिलाकर पिलाने अथवा अर्क देनेसे ठीक हो जाता है।

(८) बिच्छूका दंश—पुदीनाका रस दंशवाले स्थानपर लगाये एवं उसके रसमें मिस्त्री मिलाकर पिलाये। यह प्रयोग तमाम जहरीले जन्तुओंके दंशके उपचारमें काम आ सकता है।

(९) हिस्टीरिया—रोज पुदीनाका रस निकालकर उसे थोड़ा गर्म करके सुबह-शाम नियमित रूपसे देनेपर लाभ होता है।

(१०) मुख-दुर्गन्ध—पुदीनाके रसमें पानी मिलाकर अथवा पुदीनाके काढ़ेका घूँट मुँहमें भरकर रखे, फिर उगल दे। इससे मुख-दुर्गन्धका नाश होता है।

~~~

अत्यन्त गुणकारी है—मूली

(श्रीमती कमला शर्मा)

आजके युगमें मनुष्य अस्पतालों तथा अंग्रेजी दवाइयोंकी दुनियामें इतना खो गया है कि उसे अपने आसपास बहुतायतमें उपलब्ध होनेवाली उन शाक-सब्जियोंकी ओर ध्यान देनेका समय ही नहीं मिलता, जो बिना किसी हानिके हमारी अनेक बीमारियोंको निर्मूल करनेमें सक्षम हैं। प्रकृति हमारे लिये शीत-ऋतुमें इस प्रकारकी शाक-सब्जियाँ उदारतापूर्वक उत्पन्न करती है। इन्हींमें एक विशेष उपयोगी वस्तु है मूली।

मूलीमें प्रोटीन, कैलशियम, गन्धक, आयोडीन तथा लौहतत्त्व पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध होते हैं। इसमें सोडियम, फास्फोरस, क्लोरीन तथा मैग्नीशियम भी हैं। मूली विटामिन 'ए' का खजाना है। विटामिन 'बी' और 'सी' भी इसमें प्राप्त होते हैं। हम जिसे मूलीके रूपमें जानते हैं, वह धरतीके नीचे पौधेकी जड़ होती है। धरतीके ऊपर रहनेवाले पत्ते मूलीसे भी अधिक पोषक तत्त्वोंसे भरपूर होते हैं। सामान्यतः हम मूलीको खाकर उसके पत्तोंको फेंक देते हैं, यह गलत है, ऐसा नहीं करना चाहिये। मूलीके साथ ही उसके पत्तोंका भी सेवन करना चाहिये। मूलीके पौधेमें आनेवाली फलियाँ—मोगर भी समान-रूपसे उपयोगी और स्वास्थ्यवर्धक हैं। सामान्यतः लोग मोटी मूली पसंद करते हैं। कारण उसका अधिक स्वादिष्ठ होना है। परंतु स्वास्थ्य तथा उपचारकी दृष्टिसे छोटी-पतली और चरपरी
~~~

मूली ही उपयोगी है। ऐसी मूली त्रिदोष (वात, पित्त और कफ)-नाशक है। इसके विपरीत मोटी और पक्की मूली त्रिदोषकारक मानी गयी है।

उपयोगिताकी दृष्टिसे मूली बेजोड़ है। अनेक छोटी-बड़ी व्याधियाँ मूलीसे ठीक की जा सकती हैं। मूलीका रंग सफेद है, परंतु यह शरीरको लालिमा प्रदान करती है। भोजनके साथ या भोजनके बाद मूली खाना विशेषरूपसे लाभदायक है। मूली और इसके पत्ते भोजनको ठीक प्रकारसे पचानेमें सहायता करते हैं। वैसे तो मूलीके पराठे, रायता, तरकारी, अचार तथा भुजिया-जैसे अनेक स्वादिष्ठ व्यञ्जन बनते हैं। परंतु सबसे अधिक लाभदायक है कच्ची मूली। भोजनके साथ प्रतिदिन एक मूली खा लेनेसे व्यक्ति अनेक बीमारियोंसे मुक्त रह सकता है।

मूली शरीरसे विषैली गैस (कार्बनडाइ आक्साइड)-को निकालकर जीवनदायी ऑक्सीजन प्रदान करती है। मूली हमारे दाँतोंको मजबूत करती है तथा हड्डियोंको शक्ति प्रदान करती है। इसके सेवनसे व्यक्तिकी थकान मिटती है और अच्छी नींद आती है। मूलीसे पेटके कीड़े नष्ट होते हैं तथा यह पेटके घावको ठीक करती है। यह उच्च रक्तचापको नियन्त्रित करती तथा बवासीर और हृदयरोगको शान्त करती है। इसका ताजा रस पीनेसे मूत्रसम्बन्धी रोगोंमें राहत मिलती है। पीलिया रोगमें भी मूली लाभ पहुँचाती है। अफरेमें मूलीके पत्तोंका रस विशेषरूपसे उपयोगी होता है।

मनुष्यका मोटापा अनेक बीमारियोंकी जड़ है। इससे बचनेके लिये मूली बहुत लाभदायक है। इसके रसमें थोड़ा नमक और नीबूका रस मिलाकर नियमित पीनेसे मोटापा कम होता है और शरीर सुडौल बन जाता है। पानीमें मूलीका रस मिलाकर सिर धोनेसे जुएँ नष्ट हो जाते हैं। विटामिन 'ए' पर्याप्त मात्रामें होनेसे मूलीका रस नेत्रकी ज्योति बढ़ानेमें भी सहायक होता है। मूलीका नियमित सेवन पौरुषमें वृद्धि करता है, गर्भपातकी आशंकाको समाप्त करता है और शरीरके जोड़ोंकी जकड़नको दूर करता है।

मूली सौन्दर्यवर्धक भी है। इसके प्रतिदिन सेवनसे रंग निखरता है, खुश्की दूर होती है, रक्त शुद्ध होता है और चेहरेकी झाइयाँ, कील तथा मुँहासे आदि साफ होते हैं। नीबूके रसमें मूलीका रस मिलाकर चेहरेपर लगानेसे चेहरेका सौन्दर्य निखरता है। सर्दी-जुकाम तथा कफ-खाँसीमें भी मूली फायदा पहुँचाती है। इन रोगोंमें मूलीके बीजका चूर्ण विशेष लाभदायक होता है। मूलीके बीजोंको उसके पत्तोंके रसके साथ पीसकर यदि लेप किया जाय तो अनेक चर्मरोगोंसे मुक्ति मिल सकती है। मूलीके रसमें तिल्लीका तेल मिलाकर और उसे हलका गर्म करके कानमें डालनेसे कर्णनाद, कानका दर्द तथा कानकी खुजली ठीक होती है। मूलीके पत्ते चबानेसे हिचकी बंद हो जाती है। मूलीके सेवनसे अन्य अनेक रोगोंमें भी लाभ मिलता है। जैसे—

१-मूली और इसके पत्ते तथा जिमीकंदके कुछ टुकड़े एक सप्ताहतक काँजीमें डाले रखने तथा उसके बाद उसके सेवनसे बढ़ी हुई तिल्ली ठीक होती है और बवासीरका रोग नष्ट हो जाता है। हल्दीके साथ मूली खानेसे भी बवासीरमें लाभ होता है।

२-मूलीके पत्तोंके चार तोले रसमें तीन माशा अजमोदका चूर्ण और चार रत्ती जोखार मिलाकर दिनमें दो बार नियमित एक सप्ताहतक लेनेपर गुर्देकी पथरी गल जाती है।

३-एक कप मूलीके रसमें एक चम्मच अदरकका और एक चम्मच नीबूका रस मिलाकर नियमित सेवन करनेसे भूख बढ़ती है और पेटसम्बन्धी सभी रोग नष्ट होते हैं।

४-मूलीके रसमें समान मात्रामें अनारका रस मिलाकर पीनेसे रक्तमें होमोग्लोबिन बढ़ता है और रक्ताल्पताका रोग दूर हो जाता है।

५-सूखी मूलीका काढ़ा बनाकर उसमें जीरा और नमक डालकर पीनेसे खाँसी और दमामें राहत मिलती है।



गाजर

गाजरको उसके प्राकृतिक रूपमें ही अर्थात् कच्चा खानेसे ज्यादा लाभ होता है। उसके भीतरका पीला भाग नहीं खाना चाहिये; क्योंकि वह अत्यधिक गरम होता है। अतः पित्तदोष, वीर्यदोष एवं छातीमें दाह उत्पन्न करता है।

गाजर स्वादमें मधुर, कसैली, कड़वी, तीक्ष्ण, स्निग्ध, उष्णवीर्य, गरम, दस्तको बाँधनेवाली, मूत्रल, हृदयके लिये हितकर, रक्तको शुद्ध बनानेवाली, कफ निकालनेवाली, वातदोषनाशक, पुष्टिवर्धक तथा दिमाग एवं नस-नाडियोंके लिये बलप्रद है। यह अफारा, बवासीर, पेटके रोगों, सूजन, खाँसी, पथरी, मूत्रदाह, मूत्राल्पता तथा दुर्बलताका नाश करनेवाली है।

गाजरके बीज गरम होते हैं, अतः गर्भवती महिलाओंको उनका उपयोग नहीं करना चाहिये। बीज पचनेमें भारी होते हैं। कैलशियम एवं केरोटीनकी प्रचुर मात्रा होनेके कारण छोटे बच्चोंके लिये यह एक उत्तम आहार है। गाजरमें आँतोंके हानिकारक जन्तुओंको नष्ट करनेका अद्भुत गुण है। इसमें विटामिन 'ए' भी काफी मात्रामें पाया जाता है। अतः यह नेत्ररोगमें भी लाभदायक है।

गाजर रक्त शुद्ध करनेवाली है। १०-१५ दिन केवल गाजरके रसपर रहनेसे रक्तविकार, गाँठ, सूजन एवं पाण्डुरोग-जैसे त्वचाके रोगोंमें लाभ होता है। इसमें लौहतत्त्व भी प्रचुरतामें पाया जाता है। खूब चबा-चबाकर खानेसे दाँत मजबूत, स्वच्छ एवं चमकीले होते हैं तथा मसूढ़े मजबूत होते हैं।

विशेष—गाजरके भीतरका पीला भाग खानेसे, ज्यादा गाजर खानेके बाद ३० मिनटके अंदर पानी पीनेसे खाँसी आने लगती है। अत्यधिक गाजर खानेसे पेटमें दर्द होता है। ऐसे समयमें थोड़ा गुड़ खायें। पित्तप्रकृतिके लोगोंको गाजरका सावधानीपूर्वक उपयोग करना चाहिये।

औषधिप्रयोग

दिमागी कमजोरी—गाजरके रसका नित्य सेवन करनेसे दिमागी कमजोरी दूर होती है।

दस्त—गाजरका सूप दस्त होनेपर लाभदायक होता है।

सूजन—इसके रोगीको सब आहार त्यागकर केवल गाजरका रस अथवा उबली हुई गाजरपर रहनेसे लाभ होता है।

मासिक न दिखनेपर या कष्टार्तव—मासिक कम आनेपर या समयसे न आनेपर गाजरके ५ ग्राम बीजोंका २० ग्राम गुड़के साथ काढ़ा बनाकर लेनेसे लाभ होता है।

पुराने घाव—गाजरको उबालकर उसकी पुल्टिस बनाकर घावपर लगानेसे लाभ होता है।

खाज—गाजरको कद्दूकस करके अथवा बारीक पीसकर उसमें थोड़ा नमक मिला ले और गर्म करके खाजपर रोज बाँधनेसे लाभ होता है।

आधासीसी—गाजरके पत्तोंपर दोनों ओर शुद्ध घी लगाकर उन्हें गर्म करे। फिर उनका रस निकालकर २-३ बूँदें कान एवं नाकमें डाले। इससे आधासीसीका दर्द मिटता है।

श्वास-हिचकी—गाजरके रसकी ४-५ बूँदें दोनों नथुनोंमें डालनेसे लाभ होता है।

नेत्ररोग—दृष्टिमन्दता, रतौंधी, पढ़ते समय आँखोंमें तकलीफ होना आदि रोगोंमें कच्ची गाजर या उसके रसका सेवन लाभप्रद है। यह प्रयोग चश्मेका नंबर घटा सकता है।

पाचनसम्बन्धी गड़बड़ी—अरुचि, मन्दाग्नि, अपच आदि रोगोंमें गाजरके रसमें नमक, धनिया, जीरा, काली मिर्च, नीबूका रस डालकर पीये अथवा गाजरका सूप बनाकर पीनेसे लाभ होता है।

पेशाबकी तकलीफ—गाजरका रस पीनेसे पेशाब आता है। रक्तशर्करा भी कम होती है। गाजरका हलवा खानेसे पेशाबमें कैलशियम, फास्फोरसका आना बंद हो जाता है।

नकसीर फूटना—ताजे गाजरका रस अथवा उसकी लुगदी सिरपर एवं ललाटपर लगानेसे लाभ होता है।

जलनेपर—जलनेसे होनेवाले दाहमें प्रभावित अङ्गपर बार-बार गाजरका रस लगानेसे लाभ होता है।

हृदयरोग—हृदयकी कमजोरी अथवा धड़कनें बढ़

जानेपर लाल गाजरको भून ले या उबाल ले। फिर उसे रातभरके लिये खुले आकाशमें रख दे, सुबह उसमें मिस्री तथा केवड़े या गुलाबका अर्क मिलाकर रोगीको देनेसे अथवा २-३ बार कच्ची गाजरका रस पिलानेसे लाभ होता है।

प्रसवपीडा—यदि प्रसवके समय स्त्रीको अत्यन्त कष्ट हो रहा हो तो गाजरके बीजोंके काढ़ेमें एक वर्षका पुराना गुड़ डालकर गरम-गरम पिलानेसे प्रसव जल्दी होता है।

(ह० सैनी)

सीताफल

अगस्तसे नवम्बरके आसपास आनेवाला सीताफल एक स्वादिष्ठ फल है।

आयुर्वेदके मतानुसार सीताफल शीतल, पित्तशामक, पौष्टिक, तृप्तिकर्ता, मांस एवं रक्तवर्धक, उल्टी बंद करनेवाला, बलवर्धक, वातदोषशामक और हृदयके लिये हितकर है।

आधुनिक विज्ञानके मतानुसार सीताफलमें कैलशियम, लौहतत्त्व, फास्फोरस, विटामिन, थायमिन, रिवोफ्लोवीन एवं विटामिन सी इत्यादि अच्छे प्रमाणमें होते हैं।

जिन लोगोंकी प्रकृति गर्म अर्थात् पित्तप्रधान है, उनके लिये सीताफल अमृतके समान गुणकारी है।

जिन लोगोंका हृदय कमजोर हो, हृदयका स्पन्दन खूब ज्यादा हो, घबराहट होती हो, उच्च रक्तचाप हो, ऐसे रोगियोंके लिये भी सीताफलका नियमित सेवन हृदयको मजबूत एवं क्रियाशील बनाता है।

जिन्हें खूब भूख लगती हो, आहार लेनेके उपरान्त भी भूख शान्त न होती हो—ऐसे 'भस्मक' रोगमें भी सीताफलका सेवन लाभदायक है।

विशेष—सीताफल गुणमें अत्यधिक ठंडा होनेके कारण ज्यादा खानेसे सर्दी होती है, ठंड लगकर बुखार आने लगता है, अतः जिनकी कफ-सर्दीकी तासीर हो, ऐसे व्यक्ति सीताफलका सेवन न करें। जिनकी पाचनशक्ति मंद हो, उन्हें सीताफलका सेवन बहुत सोच-समझकर सावधानीसे करना चाहिये, अन्यथा लाभके बदले हानि होती है।

(ह० सैनी)

प्रकृतिका दिव्य फल अंगूर

अंगूर सभी फलोंमें स्वादिष्ठ एवं उत्तम फल है। पकनेपर यह अति सुमधुर और गुणकारी हो जाता है। इसमें सर्वोत्तम प्रकारका ग्लूकोज एवं फ्रक्टोज होता है, जिससे रस पेटमें पहुँचते ही शीघ्रतासे सुपाच्य हो शरीरमें ऊर्जा तथा ताप प्रदान करके शक्तिकी वृद्धि करता है।

अंगूर बल-वीर्यवर्धक, आँखोंके लिये हितकारी और वात-पित्तकी वृद्धिको दूर करता है तथा खून भी बढ़ाता है। सभी तरहके ज्वरमें लाभकारी है।

अंगूरमें शर्करा २५ प्रतिशत होती है। लोहा पर्याप्त मात्रामें होता है, जो खूनमें हिमोग्लोबिन बढ़ा देता है। खूनकी कमीवाले रोगियोंके लिये यह वरदानस्वरूप है। यह प्रबल कीटाणुनाशक है। इससे आँतें तथा लीवर और किडनी (गुर्दे) अच्छी तरह काम करते हैं, क़ब्ज़ दूर होता है, मूत्र-मार्गकी बाधाएँ दूर होती हैं।

अंगूरमें पर्याप्त विटामिन 'ए' और 'सी' है। बच्चों, बूढ़ों और दुर्बल लोगोंके लिये बल देनेवाला यह अनुपम आहार है। इसमें पोटैशियम बहुत होता है, जो किडनीके रोग, हाई ब्लडप्रेशर तथा चर्मरोगमें लाभकारी होता है। भारत ही नहीं, दुनियाके अनेक देशोंमें अंगूर रोगोंको दूर करनेका माध्यम माना जाता है।

अंगूर रोगियोंके लिये उत्तम पथ्य है। कैंसर, टी०बी०, गैस्ट्रिकके घाव, बच्चोंका सूखा रोग, एपेंडिसाइटिस, जोड़ोंका दर्द, गठिया तथा हृदयके रोगियोंके लिये यह शक्तिदायक पथ्य है।

अंगूरके सेवनसे शरीरमें ताकत आती है। यह हर प्रकारकी कमजोरी दूर करके शरीरको सुन्दर और स्वस्थ बनाता है। अंगूर प्रबल क्षारीय आहार है, शरीरसे विषैले पदार्थोंको बाहर निकालता है, शरीरमें खून बढ़ाता है और उसे साफ भी करता है। टाइफॉइड बुखार हो या कोई वायरसजन्य बुखार—सभीमें अंगूर शरीरमें नयी शक्ति देनेके लिये पथ्यके रूपमें दिया जाता है।

कई लाइलाज बीमारियोंमें अंगूरका रस-कल्प अमृतके समान काम करता है। लंबी बीमारीके बाद शरीरमें आयी कमजोरीको दूर करनेमें यह रामबाण सिद्ध हुआ है। कई आँतोंके कैंसर-रोगी अंगूर-कल्पसे स्वस्थ हुए हैं।

कच्चा अंगूर खट्टा होता है, उसे नहीं खाना चाहिये। जब भी अंगूर खाये मीठे पके अंगूर खाये। खानेके पहले अंगूरको भलीभाँति पानीसे धो ले, क्योंकि अंगूरकी खेती करनेवाले उनपर कीटनाशक दवाओंका छिड़काव करते हैं तथा उनपर मच्छर और मक्खियाँ भी बैठती हैं।

पके अंगूर सुखानेसे किशमिश बनती है, जिसे संस्कृतमें द्राक्षा कहते हैं। आयुर्वेदिक दवाएँ—द्राक्षासव, द्राक्षारिष्ट, द्राक्षावलेह आदि इसीसे बनते हैं।

अंगूरका रस छोटे बच्चोंको ५० सी०सी० से अधिक नहीं देना चाहिये—अधिक देनेसे दस्त आने लगते हैं। वयस्क १०० सी०सी० से २०० सी०सी० तक ले सकते हैं। शरीरमें शक्ति-संचारके लिये अंगूरका रस अद्वितीय है।

(अ० भारती)

फलोंकी रानी नारंगी

आम फलोंका राजा है तो फलोंकी रानी बननेके सभी गुण नारंगीमें हैं, इसी कारण नारंगीको फलोंकी रानी कहा जाता है।

आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें नारंगीका उल्लेख मिलता है—'नारङ्गो मधुराम्लः स्याद्रोचनो वातनाशनः' (निघंटु, मिश्रप्र० ६। ६३)। सुश्रुतसंहितामें लिखा है—

अम्लं समधुरं हृद्यं विशदं भक्तिरोचनम्।
वातघ्नं दुर्जरं प्रोक्तं नारङ्गस्य फलं गुरु॥

(सु०सं०सूत्र० ४६। १६१)

अर्थात् नारंगी अम्ल, मधुर, हृदयके लिये प्रिय, विशद, भोजनमें रुचिकर, वातनाशक, दुर्जर तथा गुरुपाकी (देरमें पचनेवाला) होता है।

नारंगीकी विशेषता यह है कि इसमें विद्यमान फ्रक्टोज, डेक्स्ट्रोज, खनिज एवं विटामिन—ये शरीरमें पहुँचते ही ऊर्जा देना शुरू कर देते हैं। इसका रस देरसे पचता है।

नारंगीमें प्रचुर मात्रामें विटामिन 'सी' है। पोटैशियम एवं लोहा उच्चमानका है। नारंगी-सेवनसे हृदय, स्नायु-संस्थान तथा मस्तिष्कमें नयी शक्ति आ जाती है। बच्चे-बूढ़े, रोगी और दुबले-पतले लोग अपनी निर्बलता दूर करनेके लिये इसके सेवनसे लाभ उठा सकते हैं। तेज बुखारमें इसके सेवनसे तापमान कम हो जाता है। इसका साइट्रिक एसिड मूत्ररोगों और किडनी-रोगोंको दूर करता है। इससे मूत्र साफ आता है। किडनी-रोगसे बचनेके लिये नारंगीका सेवन करना चाहिये।

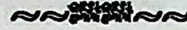
छोटे बच्चोंको स्वस्थ और सुपुष्ट बनानेके लिये दूधमें चौथाई भाग मीठी नारंगीका रस मिलाकर पिलाना चाहिये। यह उनके लिये एक आदर्श टॉनिक है। इससे बच्चोंमें नयी ऊर्जा, नयी शक्ति और नया उत्साह आ जाता है। दाँत निकलते समय बच्चोंको उलटी होती है तथा हरे-पीले दस्त होते हैं। इनमें नारंगी-रस देनेसे उनकी बेचैनी दूर होती है तथा पाचनशक्ति बढ़ जाती है। दाँतों और मसूढ़ोंके रोग भी इसके सेवनसे दूर होते हैं।

शरीरसे दुर्बल, गर्भवती महिलाओं, क़ब्ज़, बवासीर, बेरी-बेरी, अपच, पेटमें गैस, जोड़ोंका दर्द, गठिया, ब्लडप्रेशर, चर्मरोग, यकृत्-रोगसे ग्रस्त रोगियोंके लिये नारंगीका रस परम लाभकारी है। जिन्हें दूध नहीं पचता या जो केवल दूधपर निर्भर हैं, उन्हें नारंगीका रस अवश्य सेवन करना चाहिये। दूधमें विटामिन 'बी कम्पलेक्स' नहीं के बराबर है। अतः इसकी पूर्ति नारंगीके सेवनसे

हो जाती है।

मुँहासे, कील और झाँई तथा चेहरेके साँवलेपनको दूर करनेके लिये नारंगीके सुखाये छिलकोंका महीन चूर्ण गुलाब-जल या कच्चे दूधमें मिलाकर पीसकर आधा घंटातक लेप लगाये, इससे कुछ दिनोमें चेहरा साफ, सुन्दर और कान्तिमान् हो जायगा।

नारंगी सर्वरोगनाशक और शरीरके लिये परम हितकारी फल है। खट्टी नारंगीका सेवन बच्चों-बूढ़ों, गर्भवती महिलाओं, अम्लपित्त एवं पेटमें अल्सरवालोंके लिये निषिद्ध है। (अ० भारती)



स्वास्थ्य-रक्षामें अमरूद (जामफल, अमृतफल)-का उपयोग

अमरूद या जामफल एक सस्ता और गुणकारी फल है, जो प्रायः सारे भारतमें पाया जाता है। संस्कृतमें इसे 'अमृतफल' भी कहा जाता है।

आयुर्वेदके मतानुसार पका हुआ अमरूद स्वादमें खट्टा-मीठा, कसैला, गुणमें ठंडा, पचनेमें भारी, कफ तथा वीर्यवर्धक, रुचिकारक, पित्तदोषनाशक, वातदोषनाशक एवं हृदयके लिये हितकर है। अमरूद पागलपन, भ्रम, मूर्च्छा, कृमि, तृषा, शोष, श्रम, विषम ज्वर (मलेरिया) तथा जलनाशक है। यह शक्तिदायक, सत्त्वगुणी एवं बुद्धिवर्धक है। भोजनके एक-दो घंटेके बाद इसे खानेसे क़ब्ज़, अफरा आदिकी शिकायतें दूर होती हैं। सुबह खाली पेट अमरूद खाना भी लाभदायक है।

विशेष—अधिक अमरूद खानेसे वायु, दस्त एवं ज्वरकी उत्पत्ति होती है तथा मन्दाग्नि एवं सर्दी भी हो जाती है। जिनकी पाचनशक्ति कमजोर हो, उन्हें अमरूद कम खाना चाहिये।

अमरूद खाते समय इस बातका पूरा ध्यान रखना चाहिये कि इसके बीज ठीकसे चबाये बिना पेटमें न जायँ। जामफल (अमरूद)-को या तो खूब अच्छी तरह चबाकर निगले या फिर इसके बीज अलग करके केवल गूदा ही खाये। इसका साबूत बीज आन्त्रपुच्छ (अपेंडिक्स)-में चला जाय तो फिर बाहर नहीं निकल पाता, जिससे प्रायः 'अपेंडिसाइटिस' होनेकी सम्भावना होती है।

खानेके लिये पके हुए जामफलका ही प्रयोग करे। कच्चे जामफलका उपयोग सब्जीके रूपमें किया जा सकता है। दूध एवं जामफल खानेके बीच दो-तीन घंटोंका अन्तर अवश्य रखे।

अमरूद (जामफल)-का औषध-रूपमें प्रयोग

(१) सर्दी-जुकाम—जुकाम होनेपर एक जामफलका गूदा बिना बीजके खाकर एक गिलास पानी पी ले। दिनमें ऐसा दो-तीन बार करे। पानी पीते समय नाकसे साँस न ले और न छोड़े। नाक बंद करके पानी पिये और मुँहसे ही-साँस बाहर फेंके। इससे नाक बहने लगेगा। नाक बहना शुरू होते ही जामफल खाना बंद कर दे। एक-दो दिनमें जुकाम खूब झड़ जाय तब रातको सोते समय पचास ग्राम गुड़ खाकर बिना पानी पिये सिर्फ कुल्ला करके सो जाय। जुकाम ठीक हो जायगा।

(२) खाँसी—एक पूरा जामफल आगकी गरम राखमें दबाकर सेंक ले। दो-तीन दिनतक—प्रतिदिन इस प्रकार एक जामफल खानेसे कफ ढीला होकर निकल जाता है और खाँसीमें आराम हो जाता है। जामफलके पत्ते पानीसे धोकर साफ कर ले और फिर पानीमें उबाले। जब उबलने लगे, तब उसमें दूध और शक्कर डाल दे, फिर उसे छान ले। इसको पीनेसे खाँसीमें आराम मिलता है। इसके बीजोंको 'बहीदाना' कहते हैं। इन बीजोंको सुखाकर पीस ले और थोड़ी मात्रामें शहदके साथ सुबह-शाम चाटे। इससे खाँसी ठीक हो जायगी। इस दौरान तेल एवं खटाईका सेवन न करे।

(३) सूखी खाँसी—इसमें पके हुए जामफलको खूब चबा-चबाकर खानेसे लाभ होता है।

(४) क़ब्ज़—पर्याप्त मात्रामें जामफल खानेसे मल सूखा और कठोर नहीं हो पाता और सरलतापूर्वक शौच हो जानेसे क़ब्ज़ नहीं रहता। जामफल काटनेके बाद उसपर सोंठ, काली मिर्च और सेंधा नमक भुरभुरा ले। फिर इसे

खानेसे स्वाद बढ़ता है और पेटका अफरा, गैस तथा अपच दूर होता है। इसे सुबह निराहार (खाली पेट) खाना चाहिये या भोजनके साथ खाना चाहिये।

(५) मुखके रोग—इसके कोमल हरे ताजे पत्ते चबानेसे मुँहके छाले नरम पड़ते हैं। मसूढ़े तथा दाँत मजबूत होते हैं, मुँहकी दुर्गन्धका नाश होता है। पत्ते चबानेके बाद इसका रस थोड़ी देर मुँहमें रखकर इधर-उधर घुमाते रहें, फिर थूक दें। पत्तोंको उबालकर इसके पानीसे कुल्ला और गरारा करनेपर दाँतका दर्द दूर होता है एवं मसूढ़ोंकी सूजन तथा पीडा नष्ट होती है।

(६) शिशु-सम्बन्धी रोग—जामफलके पत्तोंको पीसकर उनकी लुगदी बनाकर बच्चोंकी गुदाके मुखपर रखकर बाँधनेसे उनका गुदभ्रंश यानी काँच निकलनेका रोग ठीक होता है। बच्चोंको पतले दस्त बार-बार लगते हों तो इसके कोमल तथा ताजे पत्तों एवं जड़की छालको उबालकर काढ़ा बना ले और दो-दो चम्मच सुबह-शाम पिलाये। इससे पुराना अतिसार भी ठीक हो जाता है। इसके पत्तोंका काढ़ा बनाकर पिलानेसे उल्टी तथा दस्त होना बंद हो जाता है।

(७) सूर्यावर्त—सुबह सूर्योदयसे सिरदर्द शुरू हो, दोपहरमें तीव्र पीडा हो एवं सूर्यास्त हो तब सिरदर्द मिट जाय—इस रोगको सूर्यावर्त कहते हैं। इस रोगमें रोज सुबह पके हुए जामफल खाने एवं कच्चे जामफलको पत्थरपर पानीके साथ घिसकर ललाटपर लेप करनेसे लाभ होता है।

(८) दाह—जलन—पके हुए जामफलपर मिस्री भुरभुराकर रोज सुबह एवं दोपहरमें खानेसे जलन कम होती है। यह प्रयोग वायु अथवा पित्तदोषसे उत्पन्न शारीरिक दुर्बलतामें भी लाभदायक है।

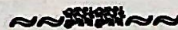
(९) पागलपन एवं मानसिक उत्तेजना—मानसिक उत्तेजना, अतिक्रोध, पागलपन अथवा अति विषय-वासनाके रोगमें भिगोये हुए तीन-चार पके जामफल सुबह खाली पेट खाना लाभदायक है। दोपहरके समय भी भोजनके एक घंटे बाद जामफल खाये। इससे मस्तिष्ककी उत्तेजनाका शमन होता है एवं मानसिक शान्ति मिलती है।

(१०) स्वप्नदोष—क़ब्ज़ियत अथवा शरीरकी गर्मीके कारण होनेवाले स्वप्नदोषमें सुबह और दोपहर जामफलका सेवन करना लाभप्रद है।

(११) खूनी दस्त (रक्तातिसार)—जामफलके मुरब्बाका, पके हुए या कच्चे जामफलकी सब्जीका सेवन खूनी दस्तमें लाभप्रद होता है।

(१२) मलेरिया ज्वर—तीसरे अथवा चौथे दिन आनेवाले विषम ज्वर (मलेरिया)-में प्रतिदिन नियमसे सीमित मात्रामें जामफलका सेवन लाभदायक है।

(प्र० सैनी)



अमृतबीज—चन्द्रशूर

(श्रीमती सीमा राव)

चन्द्रशूर—यह चंसुर, हालो, हालिम आदि नामोंसे किरानावालोंके यहाँ मिलता है। यह हरितक्यादि वर्गका लाल-नारंगी रंगका बीज है।

माताओंके दूध बढ़ानेके लिये—दूधमें चन्द्रशूरकी खीर बनाकर सेवन करनेसे दूधकी वृद्धि होती है, कमरदर्द दूर होकर बल आ जाता है, वातपीडा दूर होती है।

आम अतिसार—चन्द्रशूरका लुआब बनाकर देनेसे अर्थात् इसे पानीमें भिगोकर पिलानेसे आम अतिसार और पेचिशमें अच्छा लाभ होता है।

कटिवात और गृध्रसी—चन्द्रशूरको पानी या दूधमें उबालकर रोज सुबह पिलानेसे कमरमें, कूल्होंमें वायुसे जो वेदना हो जाती है, उसमें लाभ होता है। यह जीर्ण आमवातमें भी लाभ करता है।

क़ब्ज़—चन्द्रशूरको आठ गुने पानीमें भिगो दे, दो-तीन घंटे पानीमें भीग जानेपर मसलकर छानकर प्रातः और सायं रात्रिमें पीनेसे मलावरोध दूर हो जाता है।

धातुपुष्टि—शतावर २५ ग्राम, सौंफ २५ ग्राम, चन्द्रशूर २५ ग्राम। चन्द्रशूरको तवे पर भून लेवे तथा तीनोंको कूट

पीसकर इसमें ७५ ग्राम मिस्त्री या शक्कर मिलाकर शीशीमें रख देवे, प्रातः-सायं १-१ चायके चम्मच बराबर दूध या पानी जो उपलब्ध हो उसके साथ लेवे।

मूत्रका गंदलापन—चन्द्रशूरको उबलते पानीमें डालकर ढककर रख देवे, १५-२० मिनटके बाद छानकर शक्कर डालकर पी जाय। इसके कुछ दिनके प्रयोगसे लाभ होगा।

उदररोग—अजवायन, सौंफ, चन्द्रशूर, पोदीना, सोंठ, काली मिर्च, सफेद जीरा, धनिया, वायविडंग, छोटी हरड़, काला नमक, सेंधा नमक, नौसादर, खपरियोंवाला—इन सब चीजोंको समभागमें ले। छोटी हर्रको घीमें भून ले तथा नौसादरको पीसकर तवेमें भून लेवे, फिर सब चीजोंको कूट-पीसकर चूर्ण बना ले। इसे एक ग्रामसे तीन ग्रामतक दिनमें तीन-चार बार सेवन करे। इससे पेटके दर्द, अरुचि, कृमिरोग, यकृत्, तिल्ली, वमन, अनिद्रा, सायटिका आदिमें लाभ होता है।

चोट-मोच—चन्द्रशूर, लाजवन्ती-बीज और पिसी हुई सोंठ बराबर मात्रामें लेकर एक कटोरीमें डालकर उसमें जरूरतके अनुसार पानी डालकर फेटे। यह रबर-सरीखी हो जायगी। इसे रोटीके माफिक फैलाकर मोचकी जगह चिपका दे तथा ऊपरसे कपड़ेकी पट्टी बाँध दे। प्रतिदिन नया लेप बनाकर लगानेसे अति शीघ्र कष्ट मिट जाता है। अगर यह अपने-आप न छूटे तो उसे पानी द्वारा गलाकर निकाल ले तथा दूसरी लगा दे।



त्रपुस (खीरा)—एक उत्तम मूत्रप्रवर्तक फलशाक

(वैद्य श्रीमोहनलालजी जायसवाल, एम० डी० (आयु०) एम० आर० ए० व्ही०, रा० आयु० सं०, जयपुर)

फल एवं शाक—ये दोनों शरीरमें खनिज, लवण तथा विटामिनकी सम्पूर्तिके लिये उत्तम आहारीय स्रोत हैं। प्राचीन कालमें अरण्यप्रधान-संस्कृति होनेके कारण लोकजीवनमें कन्द और मूल यों ही अपने मूलस्वरूपमें सेवन किये जाते थे, किंतु कालान्तरमें सांस्कृतिक परिवर्तन एवं नगरीय विकासके साथ-साथ उनसे विविध शाक एवं व्यंजन बनने लगे। आजकल अनेक फल भी शाकरूपमें व्यवहृत होते हैं। ऐसे ही फलोंकी श्रेणीमें त्रपुस (खीरा) आता है, जो हमारे जीवनमें नित्य उपयोगी फलके साथ-साथ आहारमें शाक एवं सलादके रूपमें सेवन किया जाता है।

आयुर्वेदीय महर्षियोंने ऐसे आहारोपयोगी फल शाकके पोषक गुणोंके साथ ही इसकी विशिष्ट कार्मुकता शरीरके मूत्र-संवहनतन्त्रपर देखी, जिसके कारण इसके गुण-कर्म एवं प्रयोगको अपनी संहिताओंमें उचित स्थान प्रदान किया।

फलशाकोंमें जैसे कूष्माण्ड (पेठा)-का मानस-विकारोंमें विशेष लाभप्रद एवं कार्मुक है, उसी प्रकार त्रपुस अपने विशिष्ट मूत्रल-कर्मके कारण मूत्रसम्बन्धी विकारोंमें हितावह एवं प्रभावी है।

त्रपुसके पर्याय—कण्टकीलता, सुधावास, कटु, छर्दिपर्णी, मूत्रफला, पित्तक, हस्तिपर्णिनी—ये त्रपुस (खीरे)-के प्रमुख नाम हैं, जो इनके स्वरूप एवं गुण-कर्मका बोध कराते हैं। इसका लैटिन (Cucumis sativus) नाम है, जो कोशातकी कुल (Cucurbitaceal family)-में परिगणित है।

रासायनिक संगठनकी दृष्टिसे खीरेमें आर्द्रता ९६.४, प्रोटीन ०.४, वसा ०.१, कार्बोहाइड्रेट २.८, खनिज द्रव्य ०.३, कैलशियम ०.०१ तथा फास्फोरस ०.०३%, लौह १.५ मिग्रा० प्रति १०० ग्राम तथा विटामिन बी१ तथा सी होते हैं। इसके बीजोंमें प्रोटीन ४२ तथा वसा ४२.५% होता है। इससे एक हलके पीत वर्णका तेल निकलता है।

चरकसंहिताके सूत्रस्थान प्रथमाध्याय (८०)-में फलिनी शीर्षकके अन्तर्गत 'त्रपुस' का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त **'मुखप्रियं च रूक्षं च मूत्रलं त्रपुसं त्वति'** (च०सू० २७। १११) सूत्रद्वारा महर्षि चरकने इस शाकीय फलको अतिमूत्रल निर्दिशित किया है।

चरकमें मूत्रकृच्छ्राश्मरी चिकित्सामें दो-तीन स्थलोंपर इसका उल्लेख है (च०चि० २६। ५८, ६२, ७१)। बस्तिशूलहर बस्तिमें त्रपुसका उल्लेख एवं उपयोग है।

आचार्य सुश्रुतने—**'बालं सुनीलं त्रपुसं तेषां पित्तहरं स्मृतम्'**। अर्थात् बाल (कोमल) खीरेको विशेषरूपसे गुणकारी एवं पित्तहर बताया है, जबकि पक्वावस्थामें

किंचित् अम्लरसयुक्त होनेसे पित्तकारक एवं मूत्रप्रवर्तक उतना नहीं होता जितना कि बाल कोमल खीरा। इसलिये लोकव्यवहारमें बाल खीराके उत्तम मूत्रल एवं पित्तशामक गुणोंके कारण इसे 'बालमखीरा' नामसे पुकारा गया है।

धन्वन्तरि एवं मदनपाल निघण्टुकारने भी खीरेको— 'त्रपुसं छर्दिहृत् प्रोक्तं मूत्रबस्तिविशोधनम्' तथा 'त्रपुसं मूत्रलं शीतं रूक्षं पित्ताश्मकृच्छ्रनुत्।'—कहा है।

इन निर्दिष्ट सूत्रोंके द्वारा खीरेमें विशिष्ट मूत्रोत्पादक (Diuretics) एवं मूत्रबस्तिविशोधक (Urinary tract disinfactant and anti urolithiasis) कर्मको उद्घाटित किया है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है कि शाकीय फल खीरा एक महत्त्वपूर्ण निरापद उपयोगी वानस्पतिक द्रव्य है, इसका वर्णन संक्षेपमें इस प्रकार है—

(क) मूत्रवहसंस्थानके प्रमुख विकारोंमें उपयोगी है। जैसे मूत्रकृच्छ्र (Retension of urine—मूत्रावरोध), मूत्राश्मरी (Urinary stone—मूत्रपथकी पथरी)।

(ख) मूत्रवह स्रोतस्की शोथजन्य विकृतियों—जैसे वृक्काणुशोथ (Nephritis), मूत्रबस्ति एवं नलिकाशोथ (Urinary bladder & berethra inflammation)-में उपयोगी है।

(ग) मूत्ररक्तता, मूत्रविषमयता, मूत्राघात एवं मूत्रदाहमें लाभकारी।

(घ) पौरुषग्रन्थिशोथ और वृद्धिजन्य अवस्थामें लाभप्रद है।

मूत्रवहसंस्थानके इन विकारोंके अतिरिक्त खीरा उदरविकार, आध्मान, आटोप, विबन्ध, पाण्डु (रक्ताल्पता), कामला (पीलिया), यकृत्-विकार, विविध पैत्तिक विकार, हृद्रोग, शोथ एवं नेत्रदाहमें भी उत्तम पथ्य एवं औषधरूपमें व्यवहार करने योग्य है।

इन सब अवस्थाओंमें इसके बाल (कोमल) फल (अपक्वावस्था)-का ही उपयोग सर्वदा फलप्रद एवं हितकारक है।

स्वास्थ्य-रक्षामें विभिन्न फलों एवं कन्द-मूलकोंका उपयोग

(श्रीरामानन्दजी जायसवाल)

१. केला (कदलीफल)—केला एक सुपरिचित उपयोगी फल है। अपक्व केला मधुर, शीतल, ग्राही, भारी, स्निग्ध, कफ-पित्त-रक्तविकार, दाह, क्षत एवं वायुनाशक है। पका हुआ केला शीतल, मधुर, विपाक-मधुर, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, रुचिकारक, मांसको बढ़ानेवाला, क्षुधापूर्तिकारक, प्रमेह, नेत्ररोग, तृषा, रक्तपित्त, उदररोग, हृदयशूल, प्रदररोग एवं गर्मीके रोगका नाशक है।

भोजनके पहले केला नहीं खाना चाहिये। पका केला एक अच्छा भोजन है। केलेकी जड़, स्वरस, बीज, पत्ते, फूल सभी भागोंमें विभिन्न कठिन रोगों—मूत्रविकार, प्रदर तथा अतिसाररोगोंमें आश्चर्यजनक लाभ होता है।

२. सेब—सेबका फल वात-पित्तनाशक, पौष्टिक, कफकारक, गुरु, पाक तथा रसमें मधुर, शीतल, रुचिकारक एवं वीर्यवर्द्धक होता है। यह मूत्राशय तथा वृक्कोंकी शुद्धि करता है। सेबके सेवनसे नाडियों एवं मस्तिष्कको शक्ति मिलनेके कारण यह स्मरणशक्तिकी दुर्बलता, उन्माद, बेहोशी तथा चिड़चिड़ापनमें गुणकारी है। यकृत्-विकार एवं अश्मरीमें गुणकारी पाया गया है। सेबको कच्चा खानेसे जीर्ण तथा असाध्य रोगोंमें विशेष लाभ होता है। सेबका छिलका रेचक होता है, अतः ग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका प्रभृति उदर-व्याधियोंमें छिलके रहित फलके सेवनसे लाभ होता है। वायुके अनुलोमन एवं कब्जमें छिलका न उतारे, दस्त आदिमें सेबका मुरब्बा गुणकारी है। सेबमें विटामिन 'सी' अधिक मात्रामें होता है।

३. आम—आम प्रसिद्ध फल है। कच्चा आम कषाय, अम्ल, वात, एवं पित्तवर्धक और पका आम मधुर, स्निग्ध, बल तथा सुखदायक, गुरु, वातनाशक, शीतल, कषाय, अग्नि, कफ और वीर्यवर्धक होता है। आमकी-मंजरी (बौर) शीतल, रुचिकारक, ग्राही, वातकारक, अतिसार, कफ, पित्त, प्रदर-दुष्टि और रुधिरनाशक है।

पालमें पकाकर भी आम खाया जाता है, परंतु इसमें जीवनशक्तिकी न्यूनता होती है। आमका रस दूधके साथ

पीनेसे शक्तिजनक तथा वीर्यवर्द्धक होता है। चूसकर प्रयोग किये जानेवाले आमको रसालकी संज्ञा दी जाती है। कलमी आम अत्यन्त पित्तकारक होता है। आमके अति सेवनसे मन्दाग्नि, विषम ज्वर, रक्तदोष, मलबद्धता, नेत्ररोग उत्पन्न हो सकते हैं। अतः अधिक आम नहीं खाना चाहिये। यह दोष खट्टे या अपक्व आममें देखे गये हैं। पक्व (पके) आममें विटामिन ए तथा सी अधिक मात्रामें होते हैं।

४. जामुन—जामुन सामान्य फल है, किंतु रोगोंमें अति लाभकारी है। जामुन कई प्रकारकी होती है। (बड़ी) जामुन स्वादिष्ठ, विष्टम्भी, रुचिकारक, गुरु और छोटी जामुन ग्राही, रूक्ष, पित्त एवं कफ, दोष तथा रक्तविकार एवं दाहनाशक है।

जामुनकी गुठली, छाल, मींगी, पत्ते तथा सिरकेका मधुमेह, दस्त, हिचकी, उदरशूल, फुंसियाँ, कृमि, कास, श्वास, मुखकी जड़ता, योनिदोष, मुखदोष, अरुचि—इन रोगोंमें प्रयोग उत्तम तथा लाभकारी है। जामुनकी मींगीका चूर्ण मधुमेहके लिये वरदानस्वरूप है।

५. अनार—अनार (दाडिम) मधुर, कषाय तथा अम्ल-रसयुक्त होता है। सामान्य रूपसे अनार मलरोधक, वातनाशक, ग्राही, अग्निको उत्पन्न करनेवाला, स्निग्ध, हृदयके लिये पौष्टिक है, हृदयरोग, कण्ठरोग एवं मुखदुर्गन्धनाशक है।

इसमें विटामिन बी और सी पाया जाता है। स्नायुशूल, शीत तथा रात्रिमें अनार नहीं खाना चाहिये। अनारका रस आन्त्र, यकृत्, आमाशय तथा कण्ठरोगोंमें लाभकारी है। ज्वर, दस्त, टाइफॉइडमें पथ्यरूपमें देना लाभदायक है।

६. शहतूत—कच्चा शहतूत गुरु, रेचक, अम्ल, उष्ण, रक्त, पित्तकारक होता है। परंतु पका हुआ स्वादिष्ठ, गुरु, शीतल, रक्त-शोधक, मलरोधक, पित्त-वातनाशक कहा गया है। शहतूत वर्ण-भेदमेंसे कई प्रकारके होते हैं—काले, लाल, सफेद तथा हरे। शहतूतके पत्ते रेशमके कीड़ेको खिलाये जाते हैं। चारपाईपर शहतूतके पत्ते बिछाये जायँ तो खटमल भाग जाते हैं। शहतूतका अम्लपित्त, रक्तपित्त, मलगन्धमें प्रायः प्रयोग किया जाता है।

७. पपीता—पपीता मधुर, शीतल तथा पाचक होता है। यह सुपाच्य तथा मूत्रविकारमें लाभप्रद होता है। पपीतेके दूधको रासायनिक विधिद्वारा सुखाकर 'पपेन' प्राप्त किया जाता है।

८. नीबू—नीबूकी लगभग दस-ग्यारह प्रजातियाँ होती हैं। सामान्यतया नीबू अम्लरसयुक्त, वातनाशक, दीपक, पाचक और लघु होता है। मीठा नीबू भारी, तृषा एवं वमन, वात-पित्तनाशक और बलदायक होता है।

बिजौरा नीबू कास, श्वास, अरुचि, रक्तपित्त तथा तृषानाशक है।

चकोतरा नीबू स्वादिष्ठ, रुचिकारक, शीतल, भारी तथा रक्तपित्त, क्षय, श्वास, कास, हिचकी एवं भ्रम-नाशक है।

जम्बीरी नीबू उष्ण, गुरु, अम्ल तथा वात-कफ-दोष, मलबन्ध, शूल, खाँसी, वमन, तृषा, आमसम्बन्धी दोष, मुखकी विरसता, हृदयकी पीडा, अग्निकी मन्दता और कृमिनाशक है।

नीबू अनेक रोगोंमें सेवन कराया जाता है। नीबूके बीज, फूल, जड़ आदि भी विभिन्न गुणोंसे युक्त होते हैं।

९. फालसा—अपक्व फालसा कसैला, खट्टा, पित्तकारक एवं लघु होता है। पका हुआ फालसा मधुर, रुचिकारक, शीतल, तृप्तिकारक, पुष्टिजनक, हृदयके लिये हितकारक, किंचित् विष्टम्भकारक, विपाकी तथा तृष्णा, पित्त, दाह, रक्तविकार, क्षय, ज्वर, वात, रक्तपित्त, उपदंश, शूल, श्वास, मूत्राशयव्याधि, प्रमेह, अरुचि, मूढगर्भ, हृद्रोग आदिमें लाभ करता है।

मुँह, नाक, गलेसे खून आना, तथा मासिक धर्ममें अधिक खून निकलनेकी अवस्थामें फालसेका अर्ध चन्द्रायण कल्प करके अधिक मात्रासे कम मात्रामें दिया जाता है। क्षयमें एक मासमें दो कल्प करा देने चाहिये। इस विधिके समय दूध या जलके अतिरिक्त और कुछ नहीं देना चाहिये। इसके अतिरिक्त फालसेका रस, गुठली तथा छाल विभिन्न रोगोंमें योग बनाकर उत्तम लाभार्थ प्रयोग किये जाते हैं।

१०. सूरण—यह कषाय, कटुरसयुक्त, अग्निदीपक, रूक्ष, खुजली करनेवाला, कफ एवं अर्शनाशक है। जिमीकन्द अर्शके रोगियोंके लिये पथ्य है। कन्द-शाकोंमें सूरणको श्रेष्ठ माना जाता है। यह दद्रु, कुष्ठ तथा रक्तपित्तके रोगियोंके लिये हितकारी नहीं है।

आयुर्वेदके अद्भुत प्रयोग

(पं० श्रीमदनमोहनजी व्यास)

गोमूत्र

(१) जलोदरके रोगीके लिये गोमूत्र तथा पञ्चगव्यका सेवन लाभदायक होता है।

(२) गोमूत्रको जितनी बार छानकर पीये उतनी ही बार दस्त लगेगा, यह इसकी विशेषता है।

(३) चर्म-रोगके रोगीको गोमूत्रसे स्नान करना चाहिये।

(४) गोमूत्रसे स्नानके बाद साबुन लगाकर स्नान करना रोगको बढ़ावा देना है।

(५) गोमूत्र पीनेसे जठराग्नि दीप्त होती है।

(६) लगातार ढ़ाई तोला गोमूत्र पीनेसे पथरी भी कट जाती है, किंतु यह प्रयोग कुछ दिन करना चाहिये।

(७) गोमूत्र पीनेवालेको सायंकाल गायका धारोष्ण दुग्ध मिस्त्री मिलाकर पीना चाहिये।

(८) प्रातःकाल गोमूत्रसे आँखें धोनेसे दृष्टि तेज होती है तथा धीरे-धीरे चश्मा उतर जाता है।

(९) गोमूत्रसे आँखें धोनेवालेको चाहिये कि आँखोंपर साबुन न लगने दे तथा प्रतिदिन दिनमें दो-तीन बार गायका घी आँख और नाकमें लगाता रहे।

गोदुग्ध

(१) गायका धारोष्ण दुग्ध मिस्त्री मिलाकर पीनेसे मेधा-शक्ति बढ़ती है।

(२) गायके दूधमें घी मिलाकर पीनेसे शरीर पुष्ट होता है।

(३) गायका दूध शक्तिवर्धक है।

(४) गायका धारोष्ण दुग्ध पीनेवालेकी आयु बढ़ती है।

(५) आयु बढ़ानेके लिये धारोष्ण दुग्ध पीनेवालेको नमक कम मात्रामें सेवन करना चाहिये।

(६) रक्त-विकारवाले रोगीके लिये गायका दूध श्रेयस्कर होता है।

(७) प्रातः धारोष्ण दुग्धपानसे मनुष्य नीरोग रहता है।

अजवायन

रक्तचापवाले रोगीको अपने लिये बननेवाली रोटीमें अजवायन डलवाकर सेवन करना चाहिये। इससे मन्द हुई उसकी जठराग्नि दीप्त हो जायगी और रक्तचापकी गति दुःखदायी नहीं होगी।

(१) रक्तचापके रोगीको भोजन चबा-चबाकर करना करना चाहिये।

(२) भोजन करनेमें कभी भी जल्दी नहीं करनी चाहिये।

(३) खट्टे-मीठे, तीक्ष्ण तथा विदाही अन्नका परित्याग करना चाहिये।

(४) मिर्च और खटाई रोगको बढ़ानेवाली है।

(५) भोजन सादा और सात्त्विक होना चाहिये।

(६) भोजन भूखसे कुछ कम करनेसे भी आयु-वृद्धि होती है।

(७) आलू, अरबी और मैदाकी तली हुई चीजें जैसे कचौड़ी, पकौड़ी आदि नहीं खानी चाहिये।

(८) देरसे हजम होनेवाले अन्नसे बचना चाहिये।

(९) भारी वजन कभी नहीं उठाना चाहिये।

(१०) तेजीसे कभी नहीं चलना चाहिये।

(११) सीढ़ियोंपर चढ़ना-उतरना कम-से-कम होना चाहिये।

(१२) दिमागपर ज्यादा दबाव पड़े, ऐसी बातें नहीं सुननी चाहिये।

अदरक

(१) जिसे भोजन हजम न होता हो, उसे चाहिये कि भोजन करनेसे पहले चार-पाँच टुकड़े अदरकमें नमक तथा नीबूका रस मिलाकर ले और उसके बाद भोजन करे।

(२) अदरकके टुकड़े चूसनेसे खाँसी मिट जाती है।

(३) अदरकको शाक-दालमें डालकर खानेसे पेट स्वच्छ रहता है।

(४) श्वासके रोगीको सदा अदरकका रस तथा शहद मिलाकर गुनगुना करके चाटते रहना चाहिये।

(५) केवल अदरकका रस-सेवन भी निमोनियातकमें लाभदायक होता है।

(६) अदरक अलग-अलग ऋतुओंमें अलग-अलग

वस्तुओंके साथ सेवन करनेसे लाभ मिलता है, जैसे वर्षा-ऋतुमें अदरकके टुकड़ोंको नमक लगाकर खानेसे अग्नि मन्द नहीं होती।

हरड़

हरीतकी सदा पथ्या मातेव हितकारिणी।
कदाचित् कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी॥

हरीतकी (हरड़) सदा ही पथ्यस्वरूपा है, माताके समान हित करनेवाली है। माता कभी कोप भी कर सकती है, किंतु सेवन की गयी हरीतकी कभी भी कुपित नहीं होती, सदा हित ही करती है।

(१) नमकके साथ हरड़ खानेसे रोगीका उदर सदा शुद्ध रहता है। हरड़के चूर्णमें नमक $\frac{१}{४}$ भाग ही मिलाना चाहिये। ज्यादा नमक मिलानेपर दस्तावर हो जायगा।

(२) घीके साथ हरड़का चूर्ण चाटनेसे हृदयरोग नहीं होता।

(३) प्रतिदिन प्रातः शहदके साथ हरड़का चूर्ण चाटनेपर शक्ति बढ़ती है।

(४) सोते समय शक्कर और हरड़का चूर्ण मिलाकर दूधके साथ लेनेसे पेट साफ रहता है।

(५) हरड़के चूर्णको मक्खन-मिस्रीके साथ चाटनेसे मेधा-शक्ति बढ़ती है तथा स्मरण-शक्ति श्रेष्ठ होती है।

(६) जवाहरड़को गोमूत्रमें भिगोकर नमक लगाकर मिट्टीके तवेपर धीरे-धीरे दो-तीन घंटेतक मध्यम आँचपर सेकनेसे हरड़ हलकी हो जायगी। ठंडी होनेपर डिब्बेमें भरकर रख ले तथा दिनमें तीन बार एक-एक हरड़को चूसते रहनेसे श्वासरोग तथा खाँसी मिटती है।

(७) जिसकी आँखें कमजोर हों, उसे चाहिये कि प्रतिदिन बड़ी हरड़ घृतके साथ चाटे और ऊपरसे मिस्री-युक्त गायका दूध पीये। इससे आँखोंकी ज्योति ठीक होती है तथा मेधा-शक्ति बढ़ती है।

(८) पञ्चगव्यके साथ हरड़का चूर्ण सेवन करनेवाला दीर्घायु होता है।



दैनिक जीवनके उपयोगमें आनेवाली महत्त्वपूर्ण औषधियाँ, उनके घटक तथा बनानेकी विधि

(१)

(डॉ० श्रीमहेशनारायणजी गुप्ता, बी० एस्-सी०, बी० ए० एम० एस्०)

(१) त्रिफला-चूर्ण—

घटक—हरड़, बहेड़ा, आँवला—प्रत्येक १-१ भाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण करके सुरक्षित रख ले।

मात्रा और अनुपान—३-६ ग्राम गरम जल, दूधके साथ।

गुण और उपयोग—यह चूर्ण उत्तम रसायन एवं मृदु विरेचक है। इस चूर्णका प्रयोग करनेसे प्रमेहरोग, शोथ, पाण्डुरोग नष्ट होते हैं। यह चूर्ण अग्निप्रदीपक, कफ, पित्त, कुष्ठ और वलीपलित नाशक है। इस चूर्णको रातमें गरम जल या दूधके साथ सेवन करनेसे प्रातः दस्त खुलकर होता है।

(२) हिंग्वष्टक चूर्ण—

घटक—सोंठ, मिर्च, पीपल, अजवायन, सेंधा नमक, सफेद जीरा, काला जीरा प्रत्येक १००-१०० ग्राम, हींग (घीमें भुनी हुई) १२ ग्राम लेकर महीन चूर्ण कर ले।

मात्रा और अनुपान—३ ग्राम गरम जल या घीके साथ।

गुण और उपयोग—इस चूर्णको भोजनके समय प्रथम ग्रासमें घृतमें मिलाकर खानेसे अग्नि प्रदीप्त होती है। पेटमें गैस बनना, खट्टी डकारें आना, भूख न लगना, अजीर्ण आदिकी यह उत्तम दवा है।

(३) सितोपलादि चूर्ण—

घटक—मिस्री या चीनी १६० ग्राम, वंशलोचन ८० ग्राम, पिप्पली ४० ग्राम, छोटी इलायची २० ग्राम, दालचीनी १० ग्राम—सबको कूट-छानकर चूर्ण बना ले।

मात्रा और अनुपान—१ से ३ ग्राम प्रातः-सायं मधुके साथ या मधु-घीके साथ।

गुण और उपयोग—सभी प्रकारके कास, श्वास, क्षय, राजयक्ष्मा, मुँहसे खून गिरना, साथ-साथ थोड़ा ज्वर

रहना, जुकाम आदिमें इस चूर्णसे बहुत लाभ होता है।

(४) मरीच्यादि चूर्ण—

घटक—काली मिर्चका महीन चूर्ण तथा बराबर मात्रामें चीनी या मिस्री पीसकर मिलाकर रख ले।

मात्रा और अनुपान—१ से २ ग्राम, सुबह-शाम मधुसे।

गुण और उपयोग—इस चूर्णके सेवनसे खाँसी और श्वासरोग दूर होते हैं। जब खाँसी या श्वासका दौरा मालूम पड़े, सूखा चूर्ण ही मुखमें डालनेसे श्वासका दौरा रुक जाता है। इसके सेवनसे आवाज भी साफ और मधुर होती है।

(५) वासावलेह—

घटक—वासा (अडूसा)-का काढ़ा ८०० ग्राम, चीनी ४०० ग्राम, पिप्पली-चूर्ण १०० ग्राम, गोघृत १०० ग्राम, शहद ४०० ग्राम।

विधि—सर्वप्रथम अडूसेकी जड़ ८०० ग्रामको छोटे टुकड़े कर साढ़े तीन लीटर पानीमें पकाये। जब पानी पकते-पकते चौथाई रह जाय तो छानकर काढ़ा अलग कर इसमें चीनी मिलाकर चाशनी तैयार करे। जब चाशनी तैयार हो जाय तो पिप्पली-चूर्ण और घृत मिलाकर उतार ले। जब अवलेह ठंडा हो जाय तो शहद मिलाकर शीशीमें रख ले।

मात्रा—६ ग्रामसे १२ ग्राम सुबह-शाम।

गुण और उपयोग—यह सब तरहकी खाँसी, श्वास, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा आदि रोगोंको दूर करता है। पुरानी खाँसीकी यह अचूक दवा है।

(६) कल्याणावलेह—

घटक—हल्दी, बच, कूठ, पीपल, सोंठ, जीरा, अजमोद, मुलेठी, सेंधा नमक प्रत्येक १-१ भाग लेकर महीन चूर्ण करके सुरक्षित रख ले।

मात्रा और अनुपान—२-४ ग्राम सुबह-शाम गायके घीके साथ।

गुण और उपयोग—इसका पथ्यपूर्वक २१ दिनतक सेवन करनेसे मनुष्य श्रुतिधर (सुनकर ही बातोंका स्मरण रखनेवाला) और कोयलके समान स्वरवाला हो जाता है। आवाज साफ हो जाती है।

(७) गुलकन्द—

घटक—गुलाबकी पंखुड़ियाँ १ भाग, चीनी २ भाग।

विधि—कलईदार बरतनमें थोड़ी-थोड़ी पंखुड़ियाँ और चीनी मिलाकर हाथसे मसलकर फिर चीनी मिट्टीके बरतनमें रख देवे। कुछ दिन रखा रहनेपर गुलकन्द तैयार हो जाता है। बरतनका मुँह बंदकर एक माहके लिये रख दे।

मात्रा और अनुपान—१-२ तोला जल या दूधसे।

गुण और उपयोग—इसका प्रयोग करनेसे दाह, पित्तदोष, जलन, गर्मीसे छुटकारा मिलता है। मस्तिष्कको शीतलता देता है। गर्मीके कारण घमौरियोंमें लाभ पहुँचाता है।

(८) शिलाजित्वादि वटी—

घटक—त्रिवंग-भस्म ३० ग्राम, नीमकी पत्ती तथा गुड़मारकी पत्तीका चूर्ण १००-१०० ग्राम, शिलाजीत १५० ग्राम।

विधि—प्रथम शिलाजीतमें त्रिवंग-भस्म मिलाये, पीछे अन्य चूर्ण मिलाकर आधा-आधा ग्रामकी गोली बना ले।

मात्रा और अनुपान—२-२ गोली दिनमें तीन बार।

गुण और उपयोग—मूत्रकी अधिकता, इक्षुमेह, मधुमेह (शुगर)-में इसके प्रयोगसे अच्छा लाभ होता है।

(२)

(डॉ० श्रीशरदचन्द्रजी त्रिवेदी, ए० एम० ओ०)

(१) लवण-भास्कर चूर्ण

आवश्यक घटक द्रव्य—सैंधव नमक, काला नमक, धनिया, पिप्पली, पिप्पलीमूल, कालाजीरा, तेजपात, नागकेशर, तालीसपत्र और अम्लवेत सभी द्रव्य २०-२० ग्राम लेवे। समुद्र नमक ३० ग्राम, सौंचर नमक ५० ग्राम, काली मिर्च, जीरा और सोंठ १०-१० ग्राम, अनार दाना ५० ग्राम, दालचीनी, बड़ी इलायची ६-६ ग्राम।

उक्त सभी द्रव्य निर्दिष्ट मात्रामें लेकर आतप शुष्क कर लेवे एवं इमामदस्ते (कुट्टकयन्त्र)-में कूटकर चूर्णको कपड़छान करके शुष्क काँचके जारमें सुरक्षित रूपसे रख दे।

मात्रा और अनुपान—एक ग्रामसे ३ ग्राम, प्रातः-

सायं भोजनके बाद शीतल जल या मट्ठाके साथ लेवे।

गुण और उपयोग—इसके सेवनसे मन्दाग्नि, अजीर्ण, वात-कफज गुल्म, तिल्ली (प्लीहा), उदररोग, क्षय, अर्श, ग्रहणी, कुष्ठ, विबंध, शूल, आमविकार आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

इसके सेवनसे क़ब्ज़ (कोष्ठबद्धता) दूर होती है, पेट-रोग होनेकी सम्भावना नहीं होती है। मन्दाग्नि दूर होकर क्षुधावृद्धि होती है। संग्रहणी रोगकी यह उत्कृष्ट दवा है। वात-पित्त-कफ—इनमेंसे कोई भी दोष प्रधान होनेके कारण मन्दाग्नि या संग्रहणी हो तो इसके सेवनसे दूर हो जाती है।

(२) ब्राह्मीघृत

आवश्यक घटक द्रव्य—मूल और पत्रसहित ताजी ब्राह्मीको पानीसे धोकर, कूट करके निकाला हुआ स्वरस या क्वाथ ३ किलो ७१० ग्राम, मूर्च्छित गोघृत ६४० ग्राम, वचा, शंखपुष्पी एवं कूठ—तीनोंका मिला हुआ कल्क ८० ग्राम लेवे।

सर्वप्रथम गायका घृत लेकर उसे मन्दाग्निपर गर्म करके फेनरहित होनेपर, उसमें त्रिफला-चूर्ण, हल्दी और नागरमोथाका चूर्ण ३० ग्राम लेकर बिजौरा नीबूके रसमें पीसकर, कल्क बना कर डाले और घृतके समान ६४० ग्राम जल डालकर पकावे। इससे घृत स्वच्छ, आमदोषरहित और वीर्यवान् हो जाता है। जब सम्यक् पाक हो जाय घृत-मात्र शेष रह जाय, तब ब्राह्मी स्वरस एवं वचा, शंखपुष्पी तथा कूठका कल्क डालकर उस मूर्च्छित घृतमें ब्राह्मी स्वरसके साथ पाक-क्रिया प्रारम्भ करे। जब घृतमात्र शेष रह जाय तो उसे छानकर शुष्क पात्रमें सुरक्षित रख लेवे।

मात्रा एवं अनुपान—६ ग्रामसे १० ग्रामतक बराबर मिस्रीके साथ देवे ऊपरसे धारोष्ण दुग्ध पीवे।

गुण एवं उपयोग—इसके सेवनसे अपस्मार, उन्माद, बोलनेकी कमजोरी (हकलाना, तुतलाना, मिनमिनाना आदि), बुद्धिकी निर्बलता, मनोदोष, स्मरणशक्तिकी कमी, स्वरभंग (गला बैठना), दिमागकी कमजोरी, वातरक्त (Gout) तथा कुष्ठरोग दूर होते हैं।

इस घृतके एक सप्ताहतक सेवन करनेसे स्वर मधुर और सुरीला हो जाता है। दो सप्ताहके सेवनसे मुख कान्तिमान् हो जाता है। यदि नियमपूर्वक एक माहतक इसका सेवन किया जाय तो मनुष्यकी स्मरणशक्ति बहुत बढ़ जाती है।

(३) चन्द्रप्रभावटी

आवश्यक घटक द्रव्य—वचा, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय, देवदारु, हल्दी, अतीस, दारुहल्दी, पिप्पलीमूल, चित्रक मूल-छाल, धनिया, बडी हरड़, बहेड़ा, आँवला, चव्य, वायविडंग, गजपीपल, छोटी पीपल, सोंठ, कपूरकचरी, काली मिर्च, स्वर्णमाक्षिक भस्म, सज्जीक्षार, यवक्षार, सैंधव नमक, सौंचर नमक, सांभर लवण, छोटी इलायचीके बीज, कबाबचीनी, गोखरू और श्वेत चन्दन प्रत्येक ३-३ ग्राम, निशोथ, दन्तीमूल, तेजपात, दालचीनी, बड़ी इलायची, बंशलोचन प्रत्येक १०-१० ग्राम, लौहभस्म २० ग्राम, मिस्री ४० ग्राम, शुद्ध शिलाजीत और शुद्ध-गुग्गुल ८०-८० ग्राम लेवे।

सर्वप्रथम गुग्गुलको साफ करके लोहेके इमामदस्तेमें कूटे। जब गुग्गुल नरम हो जाय, तब उसमें शिलाजीत और अन्य द्रव्योंका कपड़छान किया चूर्ण तथा भस्म मिलावे। तीन दिन गिलोयके स्वरसमें मर्दन करे एवं २५० मि०ग्रा०की गोलियोंका निर्माण कर रख लेवे।

मात्रा और अनुपान—एकसे दो गोली, रोगानुसार ४ गोलीतक सुबह, शाम धारोष्ण दुग्ध, गुडूचीक्वाथ, दारुहल्दीका रस, बिल्वपत्र-रस, गोखरूक्वाथ या केवल मधु (शहद)-से देवे।

गुण और उपयोग—यह वटी मूत्रवह संस्थानके लिये स्त्री एवं पुरुष दोनोंके लिये उत्तम औषध है। मूत्रवह संस्थानके रोगोंमें यथा—बहुमूत्र, अल्पमूत्र, मूत्रकृच्छ्रता, सूजाक, आतशक, वीर्यदोष, श्वेत प्रदर, गर्भाशयजन्यविकार, मूत्राघात, अण्डवृद्धि, अश्मरी, अर्श, भगन्दर, शुक्राणु या अण्डाणु- विकार, प्रमेह, कष्टार्त्तव, मासिकधर्मका अनियमित होना, अत्यधिक रजःस्राव, शीघ्रपतन आदि व्याधियोंमें श्रेष्ठ लाभदायक एवं अनुभूत है। इसके सेवनसे मनुष्यके चेहरेकी कान्ति चन्द्रमाके समान हो जाती है, अतः इसका नाम 'चन्द्रप्रभावटी' है।

(४) ब्राह्म रसायन

आवश्यक घटक द्रव्य—(१) क्वाथ द्रव्य— शालपर्णी, पृश्निपर्णी, गोखरू, बड़ी कटेली, छोटी कटेली, बेल-छाल, अरणी, सोनापाठा-छाल, गम्भारी-छाल, पाढल-छाल, पुनर्नवा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, खरेंटी पञ्चाङ्ग, एरण्डमूल, जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, शतावर, नरकुल (शर), गन्नेकी जड़, कुश, कास, धानकी जड़ प्रत्येक १००-१०० ग्राम लेवे। हरीतकी (हरड़) १४ किलो ५०० ग्राम एवं आँवला ४३ किलो ५०० ग्राम लेवे। इन सभी शुष्क द्रव्योंको एक बड़े कड़ाहीमें १२० किलो ५०० ग्राम पानीमें डालकर क्वाथ बनाये। जब क्वाथ १२ किलो २५० ग्राम शेष रह जाय, तब उसे भाष्ट्रीसे उतारकर अलग पात्रमें सुरक्षित रख लेवे। क्वाथ बनाते समय हरीतकी एवं आँवलेको कपड़ेकी पोटली बनाकर कड़ाहीमें डालना चाहिये, जिससे वे स्विन्न होते रहें तथा शेष शुष्क द्रव्योंको यवकुट्ट करके कड़ाहीमें डालना चाहिये, जिससे उनका पूरा सत्त्व क्वाथमें आ जाय।

(२) प्रक्षेप द्रव्य—मण्डूकपर्णी (ब्राह्मी), पीपल, शंखपुष्पी, नागरमोथा, वायविडंग, सफेद चन्दन, अगर, मुलहठी, हल्दी, वचा, नागकेशर, छोटी इलायचीके बीज, दालचीनी—प्रत्येक २००-२०० ग्राम लेवे। चीनी ५८ किलोग्राम, तिलका तेल ७ किलो ५०० ग्राम, गोघृत ११ किलो २०० ग्राम एवं मधु (शहद) ९ किलो ३०० ग्राम लेवे (मधुके अभावमें), चीनी या मिस्री इतनी ही मात्रामें ले।

विधि—सर्वप्रथम उपर्युक्त विधिसे क्वाथका निर्माण करे एवं तैयार क्वाथको छानकर एक पात्रमें सुरक्षित रख लेवे। फिर क्वाथसे निकाली पोटली जिसमें आँवला एवं हरीतकी डाले हुए थे, उसे खोलकर आँवला एवं हरीतकी बाहर निकाले एवं इन दोनोंकी गुठली निकाल ले। क्वाथमें उबालनेके कारण गुठली आरामसे निकल जाती है। अब इन आँवला एवं हरीतकीको काजू पीसनेवाले चक्कीमें पीसकर पीठी तैयार कर लेवे तथा इस पीठीको तिल-तेल एवं गोघृतमें बादामके रंगकी तरह सेंक ले। जब अच्छी तरहसे सिक जाय, तब इसे एक पात्रमें निकालकर सुरक्षित रख लेवे। अब पूर्वोक्त शेष क्वाथमें चीनी मिलाकर चाशनीका निर्माण कर लेवे। जब चासनी तैयार हो जाय, तब उसमें हरीतकी एवं आँवलाकी घृतमें सिकी हुई पीठी डालकर पुनः पाक करे। जब कुछ गाढ़ा हो जाय, तब इस अवलेहको भाष्ट्रीसे नीचे उतार ले। अब पूर्वोक्त प्रक्षेप द्रव्योंका कपड़छान किया हुआ चूर्ण इस अवलेहमें धीरे-धीरे मिलावे। जब सम्यक् प्रकारसे प्रक्षेप द्रव्य मिल जायँ एवं अवलेह शीतल हो जाय, तब इसमें शहद मिलाकर घृतलिप्त डिब्बोंमें सुरक्षित स्थानपर रख देवे।

परीक्षण—अवलेहका निर्माण सम्यक् हुआ या नहीं, इसके परीक्षणके लिये तैयार अवलेहको करछी या कूँचेसे उठानेपर वह तार-सा बाँधकर उठता है। थोड़ा ठंडाकर जलमें डालनेपर पेंदेमें बैठ जाता है। अँगुलीसे दबानेपर अँगुलियोंकी रेखाके निशान बन जाते हैं। जिस द्रव्यका अवलेह बना हुआ हो उसकी सुगन्ध आने लग जाती है।

मात्रा एवं अनुपान—१० से १५ ग्राम गो-दुग्धके साथ सेवन करना चाहिये।

गुण और उपयोग—इसके सेवनसे शरीरकी दुर्बलता और दिमागकी कमजोरी दूर होकर आयु, बल, कान्ति तथा स्मरणशक्तिकी वृद्धि होती है और नियमित सेवनसे श्वास, कास, क्षय, कोष्ठबद्धता दूर होती है। शरीरमें रोग-प्रतिरोधक शक्तिका विकास होता है। यह चरकोक्त ब्राह्म रसायन है। प्राचीन समयमें ऋषि-मुनि इन्हीं रसायनोंका उपयोग वर्षभर करते थे, जिससे वे नीरोगी, मेधावी, शतायु हुआ करते थे। यह रसायन सभी रोगोंको दूर करनेवाला एवं जीवनीय शक्तिको बढ़ानेवाला है। अधिकांशतः आजकल व्यक्ति जिह्वा-स्वादके कारण रसायनोंसे दूर होता जा रहा है। अतः जिह्वाका स्वाद त्याग करके इन रसायनोंके स्वादको अपनाना चाहिये।

(५) च्यवनप्राश

आवश्यक घटक द्रव्य—बेलकी छाल, अरणी, अरलू, गम्भारी, पाटला, मुद्गपर्णी, माशपर्णी, पिप्पली, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, गोखरू, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, काकड़ासिंगी, भुईआँवला, मुनक्का, जीवन्ती, पुष्कर मूल, अगर, गिलोय, बड़ी हरड़, बला, ऋद्धी-वृद्धी (दोनोंके अभावमें वाराहीकन्द), जीवक-ऋषभक (दोनोंके अभावमें विदारीकन्द), कचूर, नागरमोथा, पुनर्नवा, मेदा-महामेदा (दोनोंके अभावमें शतावरी), छोटी इलायची, कमल, सफेद चन्दन, विदारीकन्द, अडूसेकी जड़, काकोली-

क्षीरकाकोली (दोनोंके अभावमें असगन्ध) तथा काकनासा। प्रत्येक द्रव्यका यवकुट्ट चूर्ण ५०-५० ग्राम लेवे।

सम्यक् परिपक्व रस, गुण, वीर्य, विपाकसे युक्त आँवले गिनकर ५०० ले तथा १५ किलोग्राम जल एक कलईदार बरतनमें डालकर उसमें उक्त द्रव्योंका यवकुट्ट चूर्ण डालकर पाक आरम्भ करे। आँवलोंको एक पोटलीमें बाँधकर उसी बरतनमें उबालनेके लिये डाल देवे। जब चौथाई पानी रह जाय, तब पात्रको भाष्ट्रीपरसे उतारकर क्वाथको छानकर अलग दूसरे पात्रमें रख लेवे एवं पोटलीमेंसे आँवले निकालकर उनकी गुठली निकाल ले। अब गुठली निकले आँवलोंको काजू पीसनेकी चक्कीमें डालकर पिष्टी (गुद्दा) बिना रेशावाली बना लेवे या मोटे कपड़े अथवा बोरेके टाटपर रगड़-रगड़कर बिना रेशा वाला गूदा तैयार कर लेवे।

जब गूदा तैयार हो जाय तब २५० ग्राम गोघृत एवं २५० ग्राम तिल-तेलमें इसका पाक करे। मन्द-मन्द अग्निपर तबतक भूनता रहे, जबतक पानीका अंश जल न जाय। पानीका अंश जल जानेपर स्नेह पात्रमें दीखने लगता है। सम्यक् पाक होनेपर पात्रको नीचे उतार लेवे। अब जो पूर्वोक्त क्वाथ तैयार किया था, उसमें ३ किलो ५०० ग्राम चीनी या मिस्री मिलाकर चासनी तैयार करे। चासनी बतासेकी बनाये। जब चासनी बन जाय तो उसमें भुने हुए आँवलेकी पिष्टी मिलावे एवं थोड़ा-सा पाक कर लेवे।

तदुपरान्त पात्रको नीचे उतारकर वंशलोचन २०० ग्राम, पिप्पली १०० ग्राम, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, छोटी इलायची और लौंग सभी द्रव्योंका चूर्ण अलग-अलग १०-१० ग्राम लेकर उस अवलेहमें मिलावे। अवलेह जब ठंडा हो जाय तब ३०० ग्राम शहद मिलाकर सुरक्षित रख लेवे।

मात्रा और अनुपात—चरकसंहिताका यह योग है, उसमें इसकी मात्रा '**योपरुन्ध्यान्न भोजनम्**' बतायी गयी है अर्थात् भोजन करते समय अग्नि मन्द न हो, उतना व्यक्ति खा सकता है। परंतु १० से २० ग्राम प्रातः-सायं गायके दूधके साथ सेवन करना श्रेष्ठ रहता है।

गुण और उपयोग—च्यवन ऋषि इसे खाकर वृद्धावस्थामें जवान हो गये थे, इसलिये इसका नाम 'च्यवनप्राश' पड़ा। एक व्यक्तिको वर्षभरमें ७ किलोग्राम च्यवनप्राश खानेसे वह रसायन एवं वाजीकरणका कार्य करता है। वृद्धावस्थाको दूर करता है। शरीरमें होनेवाले रोगोंसे लड़नेमें क्षमता पैदा करता है। यह श्वसन-संस्थानकी श्रेष्ठ औषधि है।

इसका सेवन श्वास, कास, राजयक्ष्मा (टी० बी०) वीर्यविकार, स्वप्नदोष, वात, पित्तरोग, शुक्ररोग, मूत्ररोग, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, बवासीर, शारीरिक दुर्बलता आदिको दूरकर शरीरमें स्फूर्ति, कान्ति एवं ओजकी वृद्धि करता है। इसमें प्रधान द्रव्य आँवला होनेसे यह शरीरमें विटामिन-सीकी कमीसे होनेवाले रोगोंको दूर करता है, रक्तका वर्ण प्रसादन करता है, अम्लपित्तको दूर करता है और पाचन एवं रक्तसंवहनकी क्रिया सुचारु करके मलोंका निर्हरण सम्यक् बनाता है।



दैनिक जीवनमें प्रयोज्य कुछ वस्तुओंके गुण एवं उनसे लाभ

१. शतावर—शतावर मधुर एवं तिक्त, गुरु एवं स्निग्ध, शीत, रसायन और मेधा, अग्नि तथा पुष्टिको बढ़ानेवाली, नेत्रके लिये हितकारी, गुल्म एवं अतिसारका नाश करनेवाली, बलकारक और वात, पित्त, रक्तविकार तथा शोथकी नाशक है। बड़ी शतावर बुद्धिवर्द्धक, हृदयको शक्ति देनेवाली, अर्श, ग्रहणीरोग तथा नेत्ररोगकी नाशक है। दुग्धवर्धक होनेसे प्रसूतके समय अवश्य सेवनीय है।

२. शिलाजीत—शिलाजीत कटु, तिक्त, उष्ण, पाकमें कटु, योगवाही है और कफविकार, मेदोविकार, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, क्षय, श्वास, वातार्श, पाण्डुरोग, अपस्मार, उन्माद, शोथ, कुष्ठ, उदररोग एवं कृमिको नष्ट करता है। सुवर्णमयी शिलाओंसे उत्पन्न शिलाजीत अड़हुलके फूल-जैसा लाल, रसमें मधुर, कटु, तिक्त, शीत एवं पाकमें कटु होता है। रजतमयी शिलाओंका शिलाजीत श्वेत, कटु, पाकमें कटु, नीला, तीक्ष्ण एवं उष्ण होता है और लोहमयी शिलाओंका शिलाजीत गिद्धके पंखके सदृश वर्णवाला, काला, तिक्त, लवणरसयुक्त, पाकमें कटु एवं शीत होता है, यह सबसे उत्तम माना गया है। शिलाजीत एक उत्तम रसायन है। जो बल, वीर्य, प्रमेह तथा सप्तधातुको पुष्ट करनेवाला तथा शक्तिवर्द्धक है।

३. धनिया—धनिया रसमें कसैला, तिक्त तथा कुछ कटु, पाकमें मधुर, वीर्यमें उष्ण, गुणमें स्निग्ध तथा लघु है। प्रभावमें मूत्रप्रवर्तक, अग्निदीपक, पाचन, ज्वरनाशक, रुचिकारक, ग्राही, त्रिदोषशामक तथा तृषा, दाह, श्वास, कास, कृशता एवं कृमिका नाशक है। ये सब गुणधर्म धनियाके सूखे बीजोंके हैं। परंतु हरी धनियाके बीज एवं पत्र मधुर एवं विशेषरूपसे पित्तनाशक हैं। विशेषतया इसे पित्तविकार-दाह, अन्तर्दाह आदिकी शान्तिके लिये प्रयुक्त किया जाता है।

४. अजवायन—अजवायन रसमें कटु तथा तिक्त, पाकमें कटु, वीर्यमें उष्ण, गुणमें तीक्ष्ण तथा लघु है। प्रभावमें दीपक, पाचन, रुचिकारक, पित्तनाशक, शुक्रनाशक, शूलनाशक तथा वात-विकार, कफ-विकार, उदररोग, आनाह, गुल्म, प्लीहा-विकार और कृमिका नाशक है।

५. चिरायता—चिरायता रसमें तिक्त, वीर्यमें शीत, गुणमें रूक्ष एवं लघु, प्रभावमें रेचक है तथा संनिपातज्वर, श्वास, कफविकार, पित्तविकार, दाह, कास, शोथ, तृषा, रक्तविकार, कुष्ठ, ज्वर, व्रण तथा कृमिरोगका नाशक है। यह जीर्णज्वर, विषमज्वरमें क्वाथ (काढ़ा)-के रूपमें दिया जाता है।

६. सौंफ—रसमें कटु, वीर्यमें उष्ण, गुणमें लघु एवं तीक्ष्ण है। प्रभावमें पित्तवर्द्धक, अग्निदीपक तथा ज्वर, वातविकार, कफविकार, व्रण, उदरशूल और नेत्ररोगनाशक है। यह विशेष रूपसे गर्भाशयशूल, मन्दाग्नि, कृमि, कास, छर्दि, कफविकार तथा वातविकारकी नाशक है और हृदयके लिये हितकारी एवं पुरीषको बाँधनेवाली है। सौंफ मीठी होती है। पाचक, रूक्ष एवं उष्ण है। सौंफ आमातिसार, प्रवाहिका, पेचिशकी श्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध औषधि है।

७. ईसबगोल—आँव, दस्त, पेचिश, मरोड़, आमातिसार, खूनके दस्त तथा पुराने आमांशके कारण पेटमें वायुका प्रकोप और गैस होनेपर इससे तत्काल फायदा होता है। ५ से १० ग्रामतक जलके साथ लेनी चाहिये। आमातिसारमें खोयेकी मिठाईके साथ देनेसे ऐंठन, मरोड़ बंद होकर अतिसार खत्म हो जाता है।

८. लौंग (Cloves)—लौंग रसमें कटु तथा तिक्त, गुणमें लघु, वीर्यमें शीत, प्रभावमें नेत्रके लिये हित, दीपक, पाचक, रुचिकर एवं कफ, पित्त, रक्तविकार, तृषा, छर्दि, आध्मान, शूल, श्वास, कास, हिक्का (हिचकी) तथा क्षयका नाश करती है। इसका तेल दाँतदर्दमें और दन्तमंजनोंमें प्रयोग किया जाता है।

९. इलायची—इलायची दो प्रकारकी होती है। बड़ी इलायची और छोटी इलायची। छोटी इलायची रसमें चरपरी, गुणमें लघु, वीर्यमें शीत, प्रभावमें कफ, श्वास, कास, बवासीर, पेशाबकी जलनको ठीक करती है तथा वातरोगकी नाशक है। बड़ी इलायची, मुख रोग, शिरोरोग तथा श्वास, कास और कण्डूनाशक एवं अग्निवर्द्धक होती है। शीतोपलादि चूर्ण तथा इलायचीका चूर्ण मधुके साथ चाटनेसे कमरदर्द तथा सूखे रोगमें लाभ होता है।

१०. दालचीनी—दालचीनी मीठी तिक्त एवं सुगन्धित होती है। यह वात, पित्तनाशक, शुक्रवर्द्धक, कान्तिकारक तथा मुखशोथ एवं तृषानाशक है। इसका प्रयोग दाल, शाक तथा औषधियोंमें किया जाता है।

११. भाँगरा—भाँगरा गुणमें कटु, तीक्ष्ण, उष्ण एवं रूक्ष है। कफ, वात, कृमि, श्वास, कास, शोथ, आमदोष, पाण्डुरोग, कुष्ठ, नेत्ररोग तथा शिरोवेदनाका नाशक है। केश तथा त्वचाके लिये हितकारक है। भाँगरासे भृंगराजतेल बनता है। पाण्डुरोग, कण्डू, आमवातमें इसका क्वाथ बनाकर दिया जाता है। मण्डूरभस्ममें भाँगरेके रसकी भावना देकर भस्म तैयार करते हैं। भाँगरेको पीसकर व्रणपर बाँधनेसे घाव बहुत जल्दी भर जाता है।

१२. कुश (डाभ)—यह त्रिदोषनाशक, मधुर, कषाय और शीत होता है। मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, तृषा, वस्तिपीडा, वृक्कशूल, प्रदर, रक्तविकारका नाशक है। कुशकी जड़ चावलके धोवनके साथ पीनेसे श्वेतप्रदरसे मुक्ति हो जाती है।

१३. गोखरू—गोखरू रसमें मधुर, वीर्यमें शीत, प्रभावमें बलवर्द्धक, दीपन, शुक्रवर्द्धक और पुष्टिकारक होता है। यह अश्मरी, प्रमेह, श्वास, कास, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, हृद्रोग तथा वायुका नाशक है। गोखरू वीर्यवर्द्धक तथा गोखरूका चूर्ण पौष्टिक होता है।

१४. कण्टकारी—कण्टकारी रसमें कटु एवं तिक्त है। गुणमें लघु एवं रूक्ष, वीर्यमें उष्ण और प्रभावमें सर, दीपन तथा पाचन है। यह कास, श्वास, ज्वर, कफ, वात, पीनस, पार्श्वशूल और हृद्रोगकी नाशक है। इसके फल रस एवं पाकमें कटु, तिक्त, पित्तवर्द्धक और अग्निदीपक हैं। कफ, वात, कण्डू, कास, मेदोदोष, कृमि तथा

ज्वरनाशक हैं। लक्ष्मणा भी ऐसी ही है, परंतु विशेषतया वह वन्ध्यादोषनाशक है।

१५. कपूर—कपूर रसमें मधुर एवं तिक्त, गुणमें लघु, वीर्यमें शीत, प्रभावमें वृष्य, नेत्रके लिये हित, सुगन्धित और कफ, पित्त, विषदाह, तृषा, विरसता, मेदोदोष तथा शरीरकी दुर्गन्धका नाशक है।

१६. चन्दन—चन्दन दो प्रकारका होता है। श्वेत चन्दन तथा रक्त चन्दन। यह प्रभावमें आह्लादजनक तथा श्रम, शोष, विष, कफ, तृषा, पित्त, रक्तविकार तथा दाहका नाशक है। इसके सारसे तेल प्राप्त किया जाता है।

१७. गूमा (द्रोणपुष्पी)—गूमा मधुर एवं कटु, गुरु एवं रूक्ष, उष्ण, वात, पित्तकारक, तीक्ष्ण, कुछ लवणरसवाली, तथा पाकमें मधुर है। यह मलभेदक, आम, कफ, कामला, शोथ, तमक, श्वास तथा कृमिका नाशक है। इसका काढ़ा शीत ज्वर, श्वास तथा मलावरोधमें दिया जाता है।

१८. अशोक—अशोक शीतल, तिक्त, कषाय, ग्राही और कान्तिकारक है। यह वातादि दोष, अपची, तृष्णा, दाह, कृमि एवं शोष (सूखा), विष एवं रक्तविकारका नाशक है। इसकी छाल अशोकारिष्ट बनानेके लिये और (काढ़ा) रक्तप्रदर तथा श्वेतप्रदर एवं रजोवरोधके लिये दिया जाता है।

१९. परवल (पटोल) Sespadula—पटोलका फल, पाचक, हृदयके लिये हित, शक्तिवर्द्धक, लघु, अग्निदीपक, स्निग्ध एवं उष्ण है। यह कास, रक्तविकार, ज्वर, त्रिदोष एवं कृमियोंको नष्ट करता है। परवलकी जड़ सुखपूर्वक विरेचन करती है। नाल एवं लता कफनाशक है। पत्र पित्तशामक और फल त्रिदोष-विकारनाशक हैं। तिक्त रसवाले परवलका नाम पटोलिका है। वह परवलके समान गुणवाला है। इसकी सब्जी तथा जड़, पत्रका काढ़ा ज्वर तथा विरेचनके लिये दिया जाता है। परवलके फलका रस ज्वरके उतरनेके बाद दिया जाता है।

२०. कसीस (Forus Sulphate)—कसीस उष्ण, तिक्त एवं कषाय है। यह केशोंके लिये हित और वात, कफविकार, नेत्रकी खुजली, विषविकार, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी (पथरी) एवं श्वेत कुष्ठका नाशक है। कसीस लौहभस्मके स्थानपर प्रयुक्त किया जाता है। दाँतों एवं मसूढ़ोंके रोगोंमें मंजन, श्वेत कुष्ठ और चर्मरोगोंमें लेपके रूपमें प्रयोग किया जाता है। रक्तवर्द्धक होनेसे रजोरोधनाशक योगोंमें खिलाया जाता है।

२१. फिटकरी (Alum)—फिटकरी कषाय (अत्यन्त कसैली) एवं उष्ण है। वात, पित्त, कफ, व्रण, सफेद कुष्ठ, विसर्पकी नाशक है। फिटकरीको तवेपर फुलाकर पीस लिया जाता है। फिटकरी तथा शृंगभस्म शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे शीतज्वर एवं पार्श्वशूलमें लाभदायक है। गुदभ्रंशमें इसके घोलसे प्रक्षालन (धोना) करना चाहिये।

२२. मकोय—त्रिदोषनाशक, स्निग्ध, उष्ण, स्वरभेदका नाशक, शुक्रवर्द्धक, तिक्त तथा कटु, रसायन है और नेत्ररोग, शोथ तथा कुष्ठ, बवासीर, ज्वर, प्रमेह, हिक्का, छर्दि एवं हृद्रोगका नाशक है। मकोयका अर्क कामला, पाण्डु और शोथमें दिया जाता है। यह रक्तवर्द्धक, शोथनाशक है। शोथमें मकोयके रसका शोथस्थानपर मालिश किया जाता है। (रा० जायसवाल)



कुछ उपयोगी फल एवं शाकपदार्थ

अनन्नास (Pineapple)

अनन्नासके रसमें स्थित क्लोरीन मूत्रपिण्डको सौम्य उत्तेजन देता है और शरीरके भीतरी विषोंको बाहर निकाल देता है। पका हुआ अनन्नास मूत्रल, कृमिघ्न एवं पित्तशामक है। यह रुचिकर, पाचक और वायुहर है, पचनेमें भारी, हृदयके लिये हितकर और पेटकी तकलीफों, पीलिया एवं पाण्डुरोगमें गुणकारी है। अनन्नास भूखे पेट नहीं खाना चाहिये। अनन्नासका बाहरी छिलका और भीतरी गर्भ निकालकर, शेष भागके टुकड़े करके, उसका रस निकालकर पीना चाहिये। गर्भवती महिलाओंको कच्चा अनन्नास नहीं खाना चाहिये एवं पके हुए अनन्नासका भी अधिक उपयोग नहीं करना चाहिये। अनन्नासका ताजा रस कण्ठपर शान्तिप्रद प्रभाव डालता है एवं गलेके रोगोंसे रक्षा करता है। डिफ्थेरियामें और गले तथा मुँहके जीवाणुजन्य रोगोंमें यह बड़ा ही प्रभावशाली सिद्ध होता है।

अंजीर (Fig)

छोटे बच्चों और गर्भवती महिलाओंको अंजीर विशेष रूपसे खाने चाहिये। इससे उन्हें शक्ति प्राप्त होती है। ताजे

अंजीर अधिक पौष्टिक होते हैं। ये क़ब्ज़को दूर करते हैं। ताजे अंजीरके रसमें स्थित लौह तत्त्व सुपाच्य होनेके कारण शरीरमें पूर्णतः आत्मसात् हो जाता है। अंजीर ठंडे, मधुर और गरिष्ठ होते हैं तथा पित्तविकार, रक्तविकार और वायुका नाश करनेवाले होते हैं। इन्हें दूधके साथ लेनेसे क़ब्ज़में लाभ होता है। ताजे अंजीरका रस मूत्रल है। अतः इससे मूत्रसम्बन्धी शिकायतें दूर हो जाती हैं। यह यकृत्, जठर और आँतोंको कार्यक्षम रखता है। क़ब्ज़ थकान और कमजोरी दूर करता है। कफ और सूखी खाँसीमें विशेष लाभ पहुँचाता है।

अदरक (Ginger)

संस्कृतमें अदरकको विश्वौषध नाम दिया गया है। अदरक वातघ्न, दीपक, पाचक, सारक, चक्षुष्य, कण्ठ्य और पौष्टिक है। भेदक गुणोंके कारण यह कृमिका नाश करता है और उन्हें मलद्वारसे बाहर निकाल देता है। अदरक आँतोंके लिये एक उत्तम टॉनिक है। अदरकका रस निरापद एवं प्रति-प्रभावोंसे रहित है।

भोजनके समयसे आधा घंटा पूर्व यदि किंचित् सेंधा नमक और कुछ नीबूकी बूँदें मिलाकर तीन-चार चम्मच अदरकका रस पिया जाय तो भूख खुलती है। इसके रससे पेटमें पाचकरसोंका योग्य प्रमाणमें स्राव होता है। इससे पाचन भलीभाँति होता है और गैस उत्पन्न नहीं होती। यह जुकाम-सर्दीको समूल नष्ट कर देता है, हृदयके विकारोंको दूर करता है और सभी प्रकारके उदर-रोगोंको शान्त कर देता है। अदरकका रस सूजन, मूत्रविकार, पीलिया, अर्श, दमा, खाँसी, जलोदर आदि रोगोंमें भी लाभदायक होता है।

आयुर्वेद-विशेषज्ञोंका मत है कि अदरकके नियमित सेवनसे जीभ एवं गलेका कैंसर नहीं होता।

कालिंदक (तरबूज) (Watermelon)

ग्रीष्मकी भीषण धूपमें कालिंदकके रससे श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। यह शीतल, मूत्रल, बलकर, मधुर, तृप्तिकर, पुष्टिकर एवं पित्तहर है। कालिंदकका रस पेटकी तकलीफोंमें आरामदेह है और पेटकी जलनको शान्त करता है। कालिंदकमें मूत्रल-गुण होनेके कारण वह मूत्रपिण्ड एवं मूत्राशयके रोगोंमें लाभप्रद है। इसका उपयोग विशेषतः तन-मनको शान्ति एवं ठंडक देनेके लिये होता है। इसके रससे शरीरमें चलनेवाली नवसर्जनकी क्रियाको गति मिलती है। इसका रस पीनेसे वजन कम होता है।

करेला (Hairy-Mordica, Bitter-Gourd)

खाली पेट एक गिलास करेलेका रस पीनेसे पीलियाके रोगमें अचूक लाभ होता है। करेला कड़वा, अग्निदीपक, लघु, उष्ण, भेदक, शीतवीर्य एवं पथ्य होता है। करेला अरुचि, कफ, वायु, रक्तदोष, बुखार, कृमि, पित्त, पाण्डु और कोढ़को दूर करनेमें सहायक है।

कद्दूकसपर करेलेको घिसकर निकाला हुआ रस खाली पेट पीनेसे अच्छा लाभ होता है। सागके रूपमें खानेसे भी करेले स्वास्थ्यप्रद हैं। करेलेका रस रक्तशोधक है। इसके सेवनसे भूख खुलती है, क़ब्ज़ दूर होती है, आँतोंमें स्थित अनिष्टकर जीवाणु नष्ट हो जाते हैं, साथ ही अर्शमें भी आराम मिलता है। मूत्रल होनेसे करेला मूत्रपिण्डकी जलनमें लाभकारी है तथा पथरीको भी निःशेष कर देता है। मधुप्रमेहमें करेला अत्यन्त गुणकारी है। सन्धिवात और पीलियाके रोगियोंको खाली पेट एक गिलास करेलेका रस देनेसे लाभ होता है।

खरबूजा (Melon)

जीर्ण खाजमें खरबूजेका रस अत्यन्त लाभप्रद है। खरबूजा शीतल एवं मूत्रल है। यह तृषाको शान्त करता है। तेज धूपमें इसकी शीतलता अतिशय शान्ति प्रदान करती है। इसमें विटामिन-सी पाया जाता है।

खरबूजेका अधिकांश हिस्सा पानीसे बना हुआ है और इसमें रेशेकी मात्रा नहींके बराबर है। इसलिये रसरूपमें या मूलरूपमें अर्थात् दोनों प्रकारसे इसका सेवन किया जा सकता है। अत्यन्त शीतल होनेके कारण, इसके सेवनसे पेटकी जलन शान्त होती है। इसमें रहनेवाले क्षार शरीरकी अम्लताको दूर करते हैं। इसमें क़ब्ज़ दूर करने, कैंसर, दिलकी बीमारी, मोतियाबिन्द, हाई-ब्लडप्रेशर आदि रोगोंको दूर करनेका गुण भी पाया जाता है।

मुर्शिदाबाद (बंगाल)-के एक सिविल सर्जन डॉ०

शिर्कोरके मतानुसार खरबूजेका रस शक्तिवर्धक और मूत्रल है और मूत्रपिण्डके रोगोंमें लाभदायक है। जीर्ण खाजमें भी इस फलके उपयोगसे अच्छा लाभ होता है।

जामुन (Jambul)

यकृत्के रोगोंमें जामुनका रस बहुत लाभ करता है। आयुर्वेदमें जामुनको दीपक, पित्तहर, दाहनाशक, मूत्रल, वर्ण्य एवं ग्राही बताया गया है। जामुनको तिल्ली और यकृत्के रोगोंके लिये अमोघ ओषधि माना गया है। यह यकृत्को कार्यक्षम बनाता है, पेटकी पीडा दूर करता है। जामुनका रस हृदयके लिये हितकर है, पाण्डुरोगमें लाभ करता है और मूत्रपिण्डके दाहमें आराम देता है। प्रमेह एवं मधुप्रमेहके इलाजके लिये जामुनका रस उत्तम ओषधि है। यह अपच, दस्त, पेचिश, संग्रहणी, पथरी, रक्तपित्त और रक्तदोषको दूर करता है।

टमाटर (Tomatoes)

मधुप्रमेहके रोगियों और वजन कम करनेकी इच्छावाले लोगोंके लिये टमाटर उत्तम आहार है। आयुर्वेदके मतानुसार टमाटर लघु, स्निग्ध, उष्ण, दीपक-पाचक, सारक, कफनाशक तथा वायुहर है। टमाटरका रस जठर और आँतोंको स्वच्छ करता है तथा मूत्रपिण्डके रोगोंमें भी उपयोगी है। टमाटर, अनपच, वायु और क़ब्ज़को दूर करता है तथा यकृत्के रोगोंमें आराम देता है। टमाटरमें स्थित लौह तत्त्व अत्यन्त सुपाच्य होनेसे शरीरमें पूर्णतः आत्मसात् हो जाता है। यह पाण्डुरोगमें गुणकारी है। टमाटरका सूप ज्वरमें भी लिया जा सकता है।

नारियल (Coconut)

हैजेमें हरे नारियलका पानी अनिवार्य है। हरे नारियलका पानी शीतल, आह्लादक, पोषक, मूत्रल, मूत्रका रंग सुधारनेवाला और तृषाशामक है। जब नारियल कच्चा हो और उसके भीतर गर्भ (मलाई)-का निर्माण न हुआ हो तब उसका पानी कम मीठा, कुछ खट्टा या कसैला-सा होता है, किंतु भीतरी गर्भका बनना आरम्भ होनेके बाद उसका पानी एकदम मीठा हो जाता है। नारियलके पानीकी शर्कराका शरीरमें तुरंत ही शोषण हो जाता है। नारियलका पानी जीवाणुमुक्त होनेसे अत्यन्त सुरक्षित है। कोमल और हरे नारियलके पानीमें उपर्युक्त तत्त्व और प्रजीवक होते हैं। ज्यों-ज्यों यह पककर पीला होने लगता है त्यों-त्यों इसके तत्त्वोंका ह्रास होता जाता है। इसलिये कोमल नारियलका ही पानी पीना चाहिये। नारियलके ताजे पानीका उपयोग तुरंत कर लेना चाहिये। नारियलके पानीमें प्रजीवक-सीकी कमी है, किंतु नीबूका रस मिलाकर इस कमीको दूर किया जा सकता है।

नारियल मूत्रल होनेसे मूत्रसम्बन्धी तकलीफों और पथरीमें बहुत ही प्रभावकारी होता है। यह हैजेमें भी बहुत उपयोगी है। हैजेमें दस्त और उलटीके कारण शरीरमें जलकी अल्पता तथा क्षारोंकी कमी आ जाती है, फलस्वरूप जीवनके लिये खतरा खड़ा हो सकता है। ऐसी स्थितिमें नारियलके पानीसे शरीरको आवश्यक जल और क्षार उपलब्ध हो जाते हैं।

मौसम्बी (Sweet lemon)

मौसम्बीका रस पीनेसे जीवन-शक्ति और रोगोंके प्रतिकारकी शक्ति बढ़ती है। मौसम्बी मधुर, स्वादिष्ठ, शीतल, तर्पक, तृषाहर, ताजगी देनेवाली, गुरु, वृष्य, पुष्टिकारक, धातुवर्धक एवं ग्राही है। यह वात, पित्त, कफ, वमन, रक्तरोग और अरुचिमें गुणकारी है। मौसम्बीमें क्षारतत्त्व है जो रक्तकी अम्लताको कम करता है। जब ज्वर आदिमें अन्य आहार न लिया जा सकता हो तब शक्ति बनाये रखनेके लिये तथा शरीरको पोषण देनेके लिये मौसम्बीका रस बहुत गुणकारी है। इसके रससे पेटकी अम्लता कम होती है, भूख लगती है और पाचनसम्बन्धी तकलीफें दूर होती हैं।

कच्ची हल्दी (Turmeric)

हल्दीमें यकृत्को उत्तेजित करके बलिष्ठ बनानेकी शक्ति तथा रक्तको शुद्ध करनेका गुण होता है। आयुर्वेदके मतानुसार हल्दी कटु, तिक्त, उष्ण, दीपन, कृमिघ्न, शोधन, कफघ्न, शोथघ्न, वायुनाशक, रूक्ष, व्रणशोधक एवं कान्तिवर्द्धक है। यह सर्दी, वायु, रक्तदोष, कुष्ठ, प्रमेह, कण्डु, व्रण, त्वग्दोष, सूजन, पाण्डुरोग, पीनस, अरुचि आदिमें उपयोगी है।

हल्दीके ताजे रसका सेवन करनेसे अथवा गर्म दूधमें हल्दीका चूर्ण डालकर पीनेसे सर्दी-जुकाम, खाँसी और दर्दमें निश्चित लाभ होता है।

हरी धनिया (Corlander)

हरी धनिया सुगन्धित, रुचिप्रद, पाचक, शीतल और पित्तनाशक होती है। हरे धनियेको बारीक काटकर दाल, साग तथा अन्य पदार्थोंमें डालनेसे पदार्थ सुगन्धित तथा रुचिकर बनते हैं। चटनी बनाकर भी इसका उपयोग किया जाता है। परंतु इसका रस पीनेसे विशेष लाभ होता है। हरे धनियेमें प्रजीवक-ए होनेसे यह पेट एवं आँखोंके लिये विशेष लाभप्रद है।

चौलाई (Amaranth)

चौलाई मधुर, शीतल, रुचिकर, अग्निदीपक, मूत्रल होती है। इसमें विपुल लौह तत्त्व उपस्थित रहते हैं। कच्चे रसको पीनेसे इसका पूरा-पूरा लाभ मिलता है।

पालक (Spinach)

पालक कुछ तीखा, मधुर, पथ्य एवं शीतल होता है। यह रक्तपित्त, कफ, श्वास तथा विषदोषका नाश करता है। इसका रस मूत्रल होता है।

(प्रेषक—श्रीगोवर्धनदासजी नोपानी 'सत्यम्')



माता एवं शिशुके स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये जाननेयोग्य आवश्यक बातें

(श्रीमती ज्योति दुबे)

(क) गर्भावस्थामें स्वस्थ कैसे रहें?

नारीके जीवनका महत्त्वपूर्ण समय गर्भावस्थाका होता है। गर्भिणी स्त्री अनेक जटिलताओंका सामना करके प्रसवके समय भारी वेदना सहकर शिशुको जन्म देती है। गर्भावस्थाके समय कुछ आवश्यक बातें ध्यानमें रखकर वह स्वस्थ रह सकती है तथा स्वस्थ शिशुको जन्म दे सकती है। गर्भिणीके स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातोंका ज्ञान स्वयं गर्भिणीको तथा उसके पारिवारिक जनोंको जानना अति आवश्यक है।

गर्भावस्थाके सामान्य लक्षण—(१) माहवारीका रुक जाना, (२) उलटियाँ आना, (३) स्तनमें परिवर्तन, (४) खट्टी चीजें, चाक-मिट्टी खानेकी इच्छा होना तथा (५) बार-बार पेशाब होना।

मासिक धर्मसे प्रसूतिका अनुमान—प्रसवका अनुमानित दिन केवल अनुमानित ही होता है। यह आवश्यक नहीं कि ठीक इसी दिन प्रसव हो, यह समय कुछ आगे-पीछे हो सकता है। साधारणतः मासिक धर्म होनेके बाद प्रसूतिका समय २७० से २९० दिनके अंदर होता है, उसे जाननेके लिये निम्नरीतिसे दिनोंकी संख्या जोड़ दी जाय तो प्रसूति-समयकी कल्पना की जा सकती है—

महीना	महीनेके सामनेके दिन जोड़े जायँ		महीना	महीनेके सामनेके दिन जोड़े जायँ	
जनवरी	अक्टूबर	७ दिन	जुलाई	अप्रैल	६ दिन
फरवरी	नवम्बर	७ दिन	अगस्त	मई	७ दिन
मार्च	दिसम्बर	५ दिन	सितम्बर	जून	७ दिन
अप्रैल	जनवरी	४ दिन	अक्टूबर	जुलाई	७ दिन
मई	फरवरी	४ दिन	नवम्बर	अगस्त	७ दिन
जून	मार्च	७ दिन	दिसम्बर	सितम्बर	६ दिन

उदाहरण—यदि दस जनवरीको मासिक धर्म हुआ है तो उसमें ७ मिलानेसे १७ अक्टूबरको प्रसूति होनेका समय समझना चाहिये।

गर्भावस्थामें तनावसे बचे—गर्भवती महिला यदि किसी प्रकार मानसिक तनावमें रहती है तो इसका सीधा असर गर्भस्थ शिशुपर पड़ता है। इसलिये गर्भावस्थामें स्त्रियोंको प्रसन्न रहना चाहिये, ताकि बच्चा स्वस्थ हो। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक लेनी स्वातिने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वर्ल्ड ऑफ दी अनबोर्न'-में लिखा है कि 'मनुष्यकी जिंदगीका सबसे महत्त्वपूर्ण समय इसके जन्मसे पहलेका होता है।' गर्भमें शिशु सचेतन प्राणी होता है तथा उसका अवचेतन मस्तिष्क उस अवधिकी स्मृतियोंको भलीभाँति संजोये रहता है। माताके संवेगोंको वह जल्दी ही अपने

अंदर समेट लेता है। गर्भवतीको अपने शिशुके भविष्यके लिये प्रसन्न एवं आशावादी रहना चाहिये।

गर्भवती स्त्रियोंका आहार—गर्भावस्थामें शिशु अपने पोषणके लिये माँपर निर्भर रहता है। इस दौरान माँको सामान्यकी अपेक्षा ३०० कैलोरीसे अधिक ऊर्जाका सेवन करना पड़ता है। अत: उसे विशेष ऊर्जा, शक्ति तथा पोषक तत्त्वोंकी आवश्यकता पड़ती है। इस सम्बन्धमें यहाँ एक तालिका दी जा रही है—

पोषक तत्त्व	खाद्य पदार्थ	उपयोग
कैलशियम	दूध, दूधसे बने पदार्थ, अखरोट, बादाम, पिस्ता आदि।	भ्रूणकी हड्डियों एवं दाँतोंके विकासके लिये जरूरी तत्त्व।
आयरन	सूखे फल, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, ताजे फल आदि।	भ्रूणमें रक्त-कोशिकाओंके निर्माणके लिये बहुत आवश्यक।
विटामिन्स	ताजे फल, हरी सब्जियाँ, अंकुरित अनाज, सलाद आदि।	स्वस्थ प्लेसेन्टा (नाल) तथा आयरनके शोषणके लिये।
फॉलिक एसिड	हरी पत्तेदार सब्जियाँ, अनाज आदि।	बच्चेके स्नायु-तन्त्रके विकासके लिये।
जिंक	अनाज, दालें इत्यादि।	बच्चेके ऊतकोंके विकासके लिये।

कैलशियम, फास्फोरस तथा विटामिन 'डी' प्राप्त करनेके लिये गर्भिणीको चाहिये कि वह सिरपर तौलिया रखकर प्रतिदिन थोड़ी देरतक धूप लेती रहे। यूरोपके डॉ० एफ० जे० ब्राउनने अपनी पुस्तक 'डाइट इन प्रेगनेन्सी'-में लिखा है कि माताके शरीरमें मात्र कैलशियमकी कमी होनेके कारण बच्चोंको सूखा रोग हो जाता है तथा उनके दाँत जीवन-भर खराब रहते हैं। इसलिये गर्भवती महिलाके आहारका विशेष ध्यान रखना चाहिये।

गर्भधारणके बाद प्रथम माहसे नवम माहतकका खान-पान—'चरकसंहिता'के अनुसार गर्भवती स्त्रीको गर्भके नौ महीनेके दौरान ऐसे खान-पानका सेवन करना चाहिये जो कि उसके स्वास्थ्यके अनुकूल हो। अगर गलत खान-पानकी वजहसे माँको कोई तकलीफ होती है तो उसका बुरा असर गर्भमें पल रहे शिशुके स्वास्थ्यपर भी पड़ना निश्चित है।

गर्भधारणके बाद—

प्रथम माह—पहले महीनेके दौरान गर्भवतीको सुबह-शाम मिस्री-मिला दूध पीना चाहिये। सुबह नाश्तेमें एक चम्मच मक्खन, एक चम्मच पिसी मिस्री और दो-तीन काली मिर्च मिलाकर चाट ले। उसके बाद नारियलकी सफेद गिरीके दो-तीन टुकड़े खूब चबा-चबाकर खा ले और अन्तमें पाँच-दस ग्राम सौंफ खूब चबा-चबाकर खाये।

द्वितीय माह—दूसरा महीना शुरू होनेपर रोजाना दस ग्राम शतावरका बारीक पाउडर और पिसी मिस्रीको दूधमें डालकर उबाले। जब दूध थोड़ा गर्म रहे तो इसे घूँट-घूँट करके पी ले। पूरे माह सुबह और रातमें सोनेसे पहले इसका सेवन करे।

तृतीय माह—तीसरा महीना शुरू होनेपर सुबह-शाम एक गिलास ठंडे किये गये दूधमें एक चम्मच शुद्ध घी और तीन चम्मच शहद घोलकर पीये। इसके अलावा गर्भवतीको तीसरे महीनेसे ही सोमघृतका सेवन शुरू कर देना चाहिये और आठवें महीनेतक जारी रखना चाहिये।

चतुर्थ माह—चौथे महीनेमें दूधके साथ मक्खनका सेवन करे।

पञ्चम माह—पाँचवें महीनेमें सुबह-शाम दूधके साथ एक चम्मच शुद्ध घीका सेवन करे।

षष्ठ माह—छठे महीनेमें भी शतावरका चूर्ण और पिसी मिस्री डालकर दूध उबाले, थोड़ा ठंडा करके पीये।

सप्तम माह—सातवें महीनेमें भी छठे महीनेकी तरह ही दूध पीये, साथ ही सोमघृतका सेवन बराबर करती रहे।

अष्टम माह—आठवें महीनेमें भी दूध, घी, सोमघृतका सेवन जारी रखना चाहिये। साथ ही शामको हलका भोजन करे। इस महीनेमें गर्भवतीको अक्सर क़ब्ज़ या गैसकी शिकायत रहने लगती है, इसलिये तरल पदार्थ ज्यादा ले।

यदि क़ब्ज़ फिर भी रहे तो रातमें दूधके साथ एक-दो चम्मच ईसबगोल ले।

नवम माह—नवें महीनेमें खान-पानका सेवन आठवें महीनेकी तरह ही रखे। बस इस महीनेमें सोमघृतका सेवन बिलकुल बंद कर दे।

गर्भावस्थामें करने योग्य कार्य—

(१) गर्भावस्थाके दौरान गर्भवतीको अपना मन सदैव प्रसन्न रखना चाहिये।

(२) गर्भवतीको अच्छे साहित्यका अवलोकन तथा महापुरुषोंके जीवन-चरित्रके ऊँचे आदर्शोंका चिन्तन-मनन करना चाहिये।

(३) गर्भकालके दौरान सदा ढीले वस्त्र पहनना चाहिये। कसे वस्त्रोंसे बच्चेके विकलांग होनेकी सम्भावना बढ़ जाती है।

(४) गर्भवती महिलाकी दिनचर्या नियमित होनी चाहिये तथा घरेलू कार्योंको करते रहना चाहिये।

(५) ज्यादा समय खाली पेट नहीं रहना चाहिये। नियमित समयपर थोड़ी-थोड़ी मात्रामें भोजन ग्रहण करे।

(६) यदि गर्भवती महिला स्वयंको अस्वस्थ महसूस करती है तो थोड़ी मात्रामें किसी मीठी चीजका सेवन कर ले।

(७) तैलीय खाद्य पदार्थोंका सेवन न करे।

(८) गर्भावस्थाके दौरान संयम रखे, सहवास न करे।

(९) कोई भी दवा लेनेसे पूर्व चिकित्सककी सलाह ले।

(१०) गर्भवतीके स्तनोंमें कोई दोष हो तो इसका उपचार यथाशीघ्र करना चाहिये।

व्यायाम—गर्भावस्थाके दौरान अधिक थकान पैदा करनेवाले व्यायाम, मेहनतके काम, उछलना-कूदना एकदम बंद कर देना चाहिये। सुबह-शाम खुली हवामें टहलना चाहिये।

गर्भवतीका डॉक्टरी परीक्षण—गर्भधारणका पता चलनेपर गर्भवती महिलाको तुरंत स्त्री-रोग-विशेषज्ञको दिखाना चाहिये। गर्भवतीको प्रसव होनेतक लगातार बार-बार जाँच करानी चाहिये। जिसमें शुरूके छः-सात महीनोंमें महीनेमें एक बार तथा सातवें, आठवें और नवें महीनेमें दस-पंद्रह दिनमें एक बार जाँच करानी चाहिये। इन दिनोंमें ब्लडप्रेशर, खून-पेशाब आदिकी जाँच समय-समयपर वह कराती रहे। गर्भवतीको अपना वजन हर माह जाँच कराना चाहिये। गर्भकालमें आठसे दस किलो वजन बढ़ता है। यदि वजन अधिक होने लगे तो मीठा एवं चिकनाई युक्त आहार कम कर देना चाहिये।

इन नियमित जाँचोंके दौरान चौथे-पाँचवें महीनेमें पहला और पाँचवें-छठे महीनेमें दूसरा (एक माहके अन्तरसे) टिटनस/वैक्सीनका टीका अवश्य लगवा लेना चाहिये।

इस तरह शुद्ध सात्त्विक जीवन बितानेवाली माताएँ स्वस्थ-सुन्दर और श्रेष्ठ बच्चेको जन्म दे सकती हैं।

(ख) नवप्रसूताके लिये स्वास्थ्यरक्षक नुस्खे

सामान्यतः देखा जाता है कि महिलाएँ प्रसवके बाद अपना पूरा ध्यान शिशुकी तरफ लगा देती हैं। अपनी शारीरिक देखभालकी ओर उनका ध्यान नहीं रहता है, जिससे वे कमजोर और शिथिल हो जाती हैं। इस समय नवप्रसूताको उचित खान-पान तथा घरेलू उपचारसे स्वस्थ एवं सुन्दर बनाया जा सकता है।

प्रसवके समय गर्भवती स्त्रीको गर्म दूधमें ६-७ खारक (छुहारा) तथा केसर डालकर पिलाये। इससे प्रसव आसानीसे, कम कष्टमें होगा। इसके बाद ३ ग्राम हीराबोलका चूर्ण और १० ग्राम गुड़का मिश्रण बनाये, इसकी समान वजनकी छः गोली बना ले। प्रसवके पश्चात् दो गोली प्रतिदिन तीन दिनतक सेवन कराये। इससे गर्भाशयकी शुद्धि होती है।

पीनेका पानी—प्रसवके बाद प्रसूताको चालीस दिनोंतक ठंडे पानीका सेवन नहीं करना चाहिये। ठंडे पानीका किसी भी रूपमें उपयोग नहीं करना चाहिये। प्रसवके बाद पहले हफ्तेसे निम्नलिखित विधिसे पानीका सेवन करना चाहिये—

पानी पाँच लीटर, पाँच-छः गाँठ सोंठ, पाँच-सात लौंग तथा पचास ग्राम अजवाइन डालकर उबाल ले। ठंडा होनेपर, छानकर किसी बरतनमें भरकर रख दे। पहले आठ दिन इसी पानीका सेवन करना चाहिये। इसके बाद एक महीने सिर्फ गर्म पानी ठंडा करके पीये। इसके बाद ताजा पानी शुरू कर दे।

यदि हो सके तो प्रसूताको १० दिनतक तो अन्नका सेवन नहीं करना चाहिये। हरीरा और गर्म दूध देना चाहिये।

मेवेका हलुवा भी दे सकते हैं। ग्यारहवें दिनसे अन्नका सेवन शुरू करे।

हरीरा बनानेके लिये सामग्री—दो सौ ग्राम अजवाइन, सौ ग्राम सोंठ, दस ग्राम पीपल, दस ग्राम पीपलामूल, सौ ग्राम बादाम, दो सौ ग्राम छुहाड़ा, दो सौ ग्राम गोंद तथा आवश्यकतानुसार शुद्ध घी एवं गुड़ ले।

हरीरा बनानेकी विधि—अजवाइन, सोंठ, पीपल तथा पीपलामूलको कूटकर अलग रख ले। बादाम, खारक (छुहारा) तथा मेवा काटकर रख ले। समस्त सामग्रीको दस भागोंमें करके पुड़िया बना ले। एक पुड़िया प्रतिदिन उपयोगमें लाये।

सर्वप्रथम कड़ाहीमें घी डालकर बीस ग्राम गोंद तले, इसके पश्चात् पहली चारों चीजोंकी एक-एक पुड़िया डालकर भूने, उसमें अंदाजसे गुड़ डालकर चलाये। अब दो कप पानी डाले। थोड़ा गाढ़ा होनेपर पिसी गोंद और मेवा डालकर आँचसे नीचे उतारे। हरीरा गर्म दूधके साथ सेवन करे।

भोजन—भोजनमें हरी सब्जी, मूँगकी दाल और चपाती देना चाहिये। पाँच गाँठ सोंठ तथा बीस लौंग पीसकर शीशीमें रख ले, भोजन करते समय दाल-सब्जीमें यह चूर्ण डाल दे। सुबह-शाम लड्डू खिलाकर गर्म दूध पिलाना चाहिये। हरीरा या लड्डू खानेके एक घंटेतक पानीका सेवन नहीं करना चाहिये। खाना खानेके बाद भुनी हींगका सेवन करना चाहिये।

लड्डू बनानेकी विधि—सामग्री—सोंठ सौ ग्राम, पीपलामूल बीस ग्राम, पीपल बीस ग्राम, जावित्री पाँच ग्राम, जायफल एक, सफेद मूसली पचास ग्राम, असगन्धा बीस ग्राम, मिस्री बीस ग्राम, गोखरू बीस ग्राम, शतावर बीस ग्राम, विदारी कन्द बीस ग्राम, काली मूसली बीस ग्राम, सम्हालूके बीज बीस ग्राम, सुपारीके फूल बीस ग्राम, चिकनी सुपारी पचास ग्राम, केसर पाँच ग्राम।

आवश्यक मेवा—बादाम २५० ग्राम, खारक (छुहारा) ५०० ग्राम, पिस्ता १०० ग्राम, चिरौंजी २५० ग्राम, गोंद २५० ग्राम, खोपरा (गरीगोला) ५०० ग्राम, गुड़ २ किलो, घी १५० ग्राम।

विधि—पहले घीमें गोंद तले। फिर सब दवाइयोंका चूर्ण बनाकर घीमें भूने। फिर सभी मेवा बारीक काटकर भूने। अब गुड़ कूटकर घी-मेवा-दवाइयाँ मिलाकर लड्डू बना ले।

पान—पान इस प्रकार बनाये—एक पानमें थोड़ा सूखा कत्था, हलका चूना लगाये। जायफल दो-तीन टुकड़े, सुपारी दो-तीन टुकड़े, थोड़ी-सी जायपत्री एवं एक लौंग रखे। यह पान प्रसूताको खिलाये।

दशमूल काढ़ा—इसे सुबह-शाम दो बार सेवन करे। यह बहुत लाभकारी है।

मालिश—प्रसूताके लिये चालीस दिनतक मालिश आवश्यक है। मालिश सरसोंके तेल या पेनकिल ऑयलसे करे।

मंजन—प्रसवके बाद प्रसूताको एक चम्मच सरसोंका तेल और एक चम्मच सेंधा नमक मिलाकर मंजन करना चाहिये। इससे मसूढ़े स्वस्थ और मजबूत होते हैं।

पेट बड़ा न हो—प्रसवके बाद अधिकांश स्त्रियोंका पेट बड़ा हो जाता है, इससे बचनेके लिये प्रसवके बाद एक माहतक पेटपर कपड़ा या बाजारमें बेल्ट मिलता है—उसे बाँधना चाहिये।

व्यायाम—प्रसवके चालीस दिन बाद हलका तथा थोड़ा व्यायाम करे। धीरे-धीरे व्यायामका समय बढ़ाया जा सकता है।

प्रसवके बाद यदि वजन बढ़ रहा हो तो भूखे मत रहे, संतुलित एवं पौष्टिक भोजन ले।

उपर्युक्त उपायोंको सावधानीपूर्वक अपनाकर गर्भिणी स्त्रियाँ स्वस्थ और सुन्दर रह सकती हैं।

(ग) शिशुकी देखभाल

शिशु मानव-जातिका साररूपी धन है। यह राष्ट्रकी सर्वोत्कृष्ट सम्पत्ति है। इसके लालन-पालनमें बहुत सतर्क रहनेकी जरूरत है। आजके बच्चे कलके कर्णधार हैं। इन्हींपर देश, समाज, जातिकी उन्नति निर्भर है। अतः इनकी प्रसन्नता, स्वास्थ्य, शिक्षा एवं विचारधारा आदिका विशेष ध्यान रखना चाहिये।

जब बच्चा माँके गर्भमें रहता है तब उसके शरीरका पालन-पोषण माँके आहारसे होता है। इसलिये जो गर्भवती स्त्री पौष्टिक आहार लेती है, वह स्वस्थ, सुडौल और नीरोग शिशुको जन्म देती है। जन्मके बाद शिशु स्वस्थ, नीरोग बना रहे और शिशुका समुचित विकास हो सके—इसके लिये

माताको प्रसवके बाद कम-से-कम छः मासतक अपने खान-पान और आहारका विशेष ध्यान रखना चाहिये। पौष्टिक आहार और दूधका सेवन करना चाहिये तथा शिशुको भी पोषक आहार देनेका पूरा ध्यान रखना चाहिये।

शिशु-स्वास्थ्यका संरक्षक—स्तनपान—शिशुका आहार माँके दूधसे शुरू होता है। प्रकृतिद्वारा माँको दिया गया अमूल्य उपहार दूध है, जिसे माँ अपने शिशुको देती है। माँके दूधमें शिशुके लिये आवश्यक पोषक तत्त्व उपलब्ध रहते हैं। यह दूध हलका एवं सुपाच्य होता है। माँके दूधसे बढ़कर संसारमें बच्चेके लिये अन्य कोई खाद्य-पदार्थ नहीं है। माँके दूधकी प्रशंसामें आयुर्वेदने कहा है—

पयोऽमृतरसं पीत्वा कुमारस्ते शुभानने।
दीर्घमायुरवाप्नोतु देवा प्राश्यामृतं तथा॥

अर्थात् हे शुभानने! जिस प्रकार देवता अमृतका सेवन करके दीर्घायु हुए, उसी प्रकार तुम्हारा अमृत समान दूध पीकर तुम्हारा बालक दीर्घायु हो।

प्रसवके बाद माताके स्तनोंसे गाढ़ा पीला दूध जिसमें कोलेस्ट्रम होता है, निकलता है। इसे शिशुको अवश्य पिलाना चाहिये। इससे शिशुकी रोग-निरोधक क्षमता बढ़ेगी और शिशु स्वस्थ रहेगा।

शिशुको कितनी बार और कितना दूध पिलाना चाहिये—कुछ माताओंकी आदत होती है कि जब-जब बच्चा रोता है, तब-तब दूध पिलाती हैं, परंतु यह तरीका गलत है। बच्चेके रोनेके कई कारण हो सकते हैं, उन कारणोंको दूर करनेका ध्यान रखना चाहिये। यहाँ स्वास्थ्य-विभागकी सिफारिशके मुताबिक 'इण्डियन रेडक्रास सोसाइटी' द्वारा प्रकाशित 'चाइल्ड वेलफेयर' नामक पुस्तिकामें दी गयी तालिकाकी नकल दी जाती है। अगर इस तालिकाके अनुसार बच्चोंको दूध पिलाया जाय तो उनके स्वास्थ्यके लिये बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा। यह नियम चाहे बच्चोंको स्तनसे दूध पिलाया जाये या बोतलसे—दोनोंमें लागू होगा—

बच्चेकी उम्र	दिनमें	रातमें	२४ घंटेमें	एक बारमें
	कितनी देर बाद दूध पिलाना चाहिये	कितनी बार दूध पिलाना चाहिये	कुल कितनी बार दूध पिलाना चाहिये	कितना दूध पिलाना चाहिये
पहले चार दिनमें	प्रति २ घंटेपर	२ बार	६ से १० बार	१ से २ औंसतक
५, ६ और ७वें दिन	प्रति २ घंटेपर	२ बार	१० बार	१ से २ औंसतक
दूसरे सप्ताहमें	प्रति २ घंटेपर	२ बार	८ बार	२ से २½ औंसतक
तीसरे सप्ताहमें	प्रति २ घंटेपर	२ बार	८ बार	२½ से ३ औंसतक
चौथेसे ८वें सप्ताहमें	प्रति २½ घंटेपर	१ बार	७ बार	३ से ४ औंसतक
तीसरे महीनेमें	प्रति २½ घंटेपर	१ बार	७ बार	४ से ५ औंसतक
चौथे महीनेमें	प्रति ३ घंटेपर	१ बार	६ बार	५ से ५½ औंसतक
पाँचवे महीनेमें	प्रति ३ घंटेपर	१ बार	६ बार	५½ से ६ औंसतक
छः से दस महीनेमें	प्रति ३ घंटेपर	—	५ बार	६ से ८ औंसतक

बच्चोंको कब और कैसे दूध छुड़ाना चाहिये—१० या १२ महीनेके बाद बच्चोंको दूध पिलाना धीरे-धीरे बंद कर देना चाहिये। माँका दूध बंद कर देनेके बाद भी बच्चेका मुख्य आहार दूध ही होना चाहिये। पाँच माह पूरे होनेके बाद ही शिशुको माँके दूधके साथ-साथ ही अन्य खाद्य-पेय पदार्थ उचित मात्रामें युक्तिके साथ खिलाना-पिलाना शुरू कर देना चाहिये। दूध-भात, दूधमें पकायी हुई सूजी भी दी जा सकती है। माँका दूध बंद करनेपर कम-से-कम तीन पाव दूध हर रोज पिलाना चाहिये। इसके अलावा पानी और फलोंका रस पिलाना भी जरूरी है।

किन हालतोंमें माताको दूध नहीं पिलाना चाहिये—

१-जिन स्त्रियोंको क्षय, कैंसर, कुष्ठ आदि भयंकर रोग हों, उन्हें अपने बच्चोंको दूध नहीं पिलाना चाहिये।

२-गर्भवती स्त्रियोंद्वारा दूध पिलाना, स्त्रीके स्वास्थ्य और गर्भस्थ बालकके स्वास्थ्यकी दृष्टिसे मना है।

३-यदि स्तनमें किसी खास कारणसे दर्द हो या उसमें खास तरहका नाजुकपन मालूम हो तो तब भी दूध पिलाना

मना है।

बोतलसे दूध पिलाना—यदि माता किसी कारणसे बच्चेको स्तनका दूध पिलानेमें असमर्थ है या उसको दूध नहीं होता है तो गायका दूध पिलाया जा सकता है। पहली सावधानी तो यह रखनी चाहिये कि बोतलसे न पिलाकर कटोरी चम्मचसे पिलाये। बोतलकी सफाई ठीकसे नहीं हो पाती है तो बच्चोंको इन्फेक्शन होनेकी पूरी सम्भावना रहती है। बहुत जरूरी समझे तो ही बोतलसे दूध पिलाये।

नौसे बारह महीनोंके बाद बच्चोंको दिये जानेवाला भोजन और उसका तरीका—जब बच्चा नौ-दस महीनेका हो जाये तो उसको एक या दो बार सूजी, चावल या दालकी बनी पतली चीजें, दूधमें भिगोई हुई रोटी, पके केले तथा खिचड़ी आदि दिया जा सकता है। इन सबके साथ उसे दूध भी देना चाहिये। समय-समयपर थोड़ा-थोड़ा पानी देना चाहिये। सब्जियोंका सूप भी बहुत लाभकारी होता है।

बच्चेके लिये नींदकी आवश्यकता—स्वस्थ बच्चेके लिये नींदकी आवश्यकता उसकी उम्र, पर्यावरण एवं वैयक्तिक भिन्नताके सन्दर्भमें निम्नलिखित कोष्ठकके अनुसार होती है—

महीनोंमें	स्वास्थ्य प्रतिशत	नींदकी आवश्यकता २४ घंटोंमें कितना
एक महीना	१०० प्रतिशत	२२ घंटे
दो महीना	१०० प्रतिशत	२१.५ घंटे
तीन महीना	१०० प्रतिशत	२१ घंटे
चार महीना	१०० प्रतिशत	२० घंटे
पाँच-छः महीना	१०० प्रतिशत	१९ घंटे
सात-बारह महीना	१०० प्रतिशत	१८ घंटे
एक-दो वर्ष	१०० प्रतिशत	१६ घंटे

यदि बच्चेका स्वास्थ्य सौ प्रतिशतसे कम हो तो उसकी नींदमें कमी आयेगी। इसके लिये कोई निश्चित प्रमाण नहीं है।

शिशुके शयन-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बातें—

१-शिशुके सोनेका स्थान शान्त, स्वच्छ और वायु-प्रवेशक हो।

२-उसे अपने ही पलंगपर सुलाना चाहिये।

३-बच्चोंका बिछौना नरम, सुखदायक होना चाहिये।

४-शिशुकी आँखोंपर प्रकाशकी किरणें नहीं पड़नी चाहिये।

५-शिशुओंको कोई वस्तु मुँहमें रखकर नहीं सोने देना चाहिये।

६-शिशुको मुँह ढककर नहीं सुलाना चाहिये। एकदम औंधा या एकदम सीधा नहीं सुलाना चाहिये।

७-सोते हुए बालकोंको सहसा नहीं जगाना चाहिये।

बच्चेके शारीरिक विकासका सीमा-चिह्न—

'हाल्ट' नामक विद्वान्‌द्वारा प्रदत्त स्वस्थ बच्चोंका वजन तथा ऊँचाई आयुके अनुसार निम्न तालिकासे जाना जा सकता है—

आयु	वजन (पौंडमें)	ऊँचाई (इंचमें)
जन्मके समय	६	२०
१ वर्ष	२१	२९
२ वर्ष	२८	३३
३ वर्ष	३३	३७
४ वर्ष	३७	४०
५ वर्ष	४१	४१
६ वर्ष	४५	४४
७ वर्ष	४९	४६
८ वर्ष	५५	४८
९ वर्ष	६१	५०
१० वर्ष	६७	५२
११ वर्ष	७३	५४
१२ वर्ष	७९	५६

शिशु-विकासके लक्षण—

१-तीन मासकी आयुमें बच्चा अपनी गरदनको सीधा रखनेकी क्रिया सीखता है।

२-छः महीनेकी उम्रमें या उससे एकाध महीने आगे-पीछे वह बैठना सीखता है।

३-नौ महीनेकी उम्रमें खड़ा होना सीखता है तथा पैरोंके बल घिसटने लगता है।

४- दस-बारह माहकी उम्रमें वह सहारा लेकर चलना सीखता है।

५-एक वर्ष या इससे एक-दो महीने अधिकको अवस्थामें वह स्वतन्त्र रूपमें चलना सीखता है तथा छोटे-छोटे शब्द जैसे—मा, पा, टा, दाका उच्चारण कर सकता है।

६-सवा वर्षका बालक सरलतासे दौड़ सकता है और

छोटे-छोटे सरल शब्दोंका उच्चारण कर सकता है।

७-दो वर्षकी अवस्थामें उसे कुछ बोलना आना ही चाहिये।

८-तीन वर्षमें, बालक पूर्ण बोलना, जो कि मनुष्यका सर्वश्रेष्ठ गुण है, सीख लेता है।

९-पाँच वर्षके बाद, बच्चे विद्यारम्भ करने योग्य हो जाते हैं। ये पाँच वर्ष ही शिशु-जीवनकाल कहलाते हैं।

दाँत निकलनेका समय—बच्चोंमें करीब आठ माससे लेकर चौदह मासतक दाँत निकलना अच्छा माना जाता है। अधिकांशतः नीचेके दाँत ऊपरके दाँतके पहले निकलते हैं। दूधके दाँत ढाई वर्षतक निकलते हैं—

एक वर्षके बच्चे—लगभग छः दाँत।

डेढ़ वर्षके बच्चे—लगभग बारह दाँत।

दो वर्षके बच्चे—लगभग अठारह दाँत।

ढाई वर्षके बच्चे—लगभग बीस दाँत।

चारसे छः वर्षमें बच्चोंके दूधके दाँत धीरे-धीरे टूटने लगते हैं और नये दाँत आने लगते हैं। छठे वर्षमें प्रायः २८ दाँत होते हैं। युवावस्थामें बत्तीस दाँत होते हैं। महर्षि कश्यपने दाँतोंकी संख्या बत्तीस बतायी है, किंतु बत्तीसकी संख्या सर्वत्र निश्चित नहीं है।

बच्चोंको रोगप्रतिकारक टीके कब और कैसे दें?—बच्चोंको रोग-प्रतिरोधात्मक टीके सही समयपर डॉक्टरकी सलाह लेकर लगवाने चाहिये। यदि बच्चा ज्वर, दस्त, उलटी, एलर्जी, सर्दी आदिसे पीडित है तो टीके न लगवायें। टीके लगवाकर बच्चोंको कई जानलेवा बीमारियोंसे बचाया जा सकता है।

वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन (WHO) के द्वारा रोग-प्रतिकारकताके लिये सूचित समय-पत्रक—

१-जन्मके समय—बी०सी०जी० और पोलियो-विरोधी टीकेका पहला डोज बच्चेको दे।

२-बच्चेकी डेढ़ माहकी उम्रमें—त्रिगुणी टीकेका पहला डाज और पोलियो-विरोधी टीकेका दूसरा डोज दे।

३-बच्चेकी ढाई माहकी उम्रमें—त्रिगुणी टीकेका दूसरा डोज और पोलियो-विरोधी टीकेका तीसरा डोज दे।

४-बच्चेकी साढ़े तीन माहकी उम्रमें—त्रिगुणी टीकेका तीसरा डोज तथा पोलियो-विरोधी टीकेका चौथा डोज दे।

त्रिगुणी टीकेको ट्रिपल एण्टिजन या टेक्निकल भाषामें डी०पी०टी० (डिफ्थेरिया, परट्युसीस—कुकुर खाँसी और टिटनस) कहा जाता है। इसके अलावा विभिन्न प्रकारके टीके बच्चोंको लगवाये जाते हैं जो निम्न हैं—

द्विगुणी टीके—बच्चोंको त्रिगुणी टीकेके डोज पूरे होनेके बाद डेढ़, तीन, पाँच और चौदह वर्षकी उम्रमें दिये जानेवाले बूस्टर डोजमेंसे पाँच और चौदह वर्षमें त्रिगुणीके स्थानपर द्विगुणी टीके लगाये जाते हैं।

बाल-लकवाके टीके—तीन महीनेकी उम्रके बच्चोंको चारसे छः सप्ताहके अन्तरपर तीनसे पाँच डोज पिलाने चाहिये।

खसराके टीके—नौ महीनेसे दो वर्षकी उम्रके बीच यह टीका लगाया जाता है। यह टीका एक ही बार लगता है।

एम० एम० आर० टीके—खसरा (मिजलन) गलसुआ (मम्प्स)-जैसे रोगोंके लिये बच्चोंको यह टीका नौ महीनेसे दो वर्षकी उम्रतक दिया जाता है।

टाइफाइडका टीका—जन्मके बाद पाँच वर्ष तकके बच्चोंको टाइफाइडके टीके लगवाये जा सकते हैं।

संक्रामक पीलियाके टीके—पीलिया एक संक्रामक रोग है। यह बीमारी फैल रही हो तो इसके संक्रमणसे बचनेके लिये 'हिपेटाइटिस-बी' नामक टीके दिये जाते हैं। एक-एक महीनेके अन्तरपर ऐसे तीन इंजेक्शन लेने चाहिये।

उपर्युक्त टीके सही समयपर बच्चोंको लगवाना आवश्यक है। टीका देनेके बाद बच्चेको छःसे दस घंटेमें हलका बुखार या दाने उभर सकते हैं। ऐसी स्थितिमें चिन्ताकी कोई बात नहीं है, एक-दो दिनमें स्थिति स्वतः ठीक हो जाती है। बालकोंके शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्यपर उनके माता-पिता, देश, राष्ट्रकी समस्त उन्नति निर्भर है। श्रेष्ठ संतानको जन्म देना और बालकोंको निर्बल या सबल रखना प्रायः माताके ऊपर निर्भर है। इसलिये सबसे पहले माता-पिता बननेके पूर्व ही शिशु-सम्बन्धी सब प्रकारका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये और उनका पालन-पोषण उचित तरीकेसे करना चाहिये।



रोग-निवारणके अनुभूत सिद्ध प्रयोग तथा सत्य घटनाएँ

[संसारमें सुखी बननेके लिये सबसे पहली आवश्यकता है कि शरीरको नीरोगी रखा जाय। शरीरको स्वस्थ रखनेकी एक प्रक्रिया है, जिससे प्राणी बिना औषधिके भी पूर्ण स्वस्थ रह सकता है, कारण शरीरकी प्रकृति स्वस्थ रहनेकी ही है, परंतु इसके बावजूद भी जीवनकी जटिलताओं, अनियमितताओं एवं ऋतु, जलवायु आदिके परिवर्तनके कारण कभी-कभी व्यक्ति सामान्यतः अस्वस्थ भी हो जाते हैं। प्राचीन कालसे ही कुछ ऐसे अनुभूत प्रयोग और घरेलू ओषधियाँ हैं, जिनका प्रयोग घरोंमें दादी माँ तथा सामान्यजन करके शीघ्र स्वस्थ करा देते हैं, इसके लिये डॉक्टर-वैद्यके पास नहीं जाना पड़ता। ये सिद्ध प्रयोग अत्यन्त कारगर होते हैं, जिनका कोई साईड इफैक्ट भी नहीं होता, व्यक्ति अत्यन्त सरलतासे रोगमुक्त भी हो जाता है। इस प्रकारकी उपयोगी सामग्री अनुभवी महानुभावोंने कृपापूर्वक भेजी है, जिसे हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं, इसके साथ ही स्वास्थ्यसे सम्बन्धित कुछ चमत्कारिक घटनाएँ भी प्राप्त हैं, उन्हें भी आगे दिया जा रहा है— सं०]

विभिन्न रोगोंके अनुभूत प्रयोग

सर्वसाधारणके लिये, वह चाहे ग्रामीण क्षेत्रका हो या शहरी क्षेत्रका, अमीर हो या गरीब सभीके लिये निरापद-रूपसे प्रयोग किये जा सकनेवाले तथा आसानीसे अल्प मूल्यमें घरेलू साधनोंसे तैयार हो जानेवाले कुछ उपयोगी प्रयोग यहाँ प्रस्तुत हैं। ये प्रयोग कई बारके अनुभूत हैं। पाठकगण इन्हें प्रयोग कर लाभ उठा सकते हैं—

(१) आधाशीशी—टंकण (फुलासुहागा) ३ ग्रामकी मात्रा, घी-शक्करके साथ प्रातः ५ बजे एक खुराक चटाये। इस प्रकार ३ दिनतक नित्य प्रातः एक बार चटानेसे पूर्ण आराम हो जायगा।

(२) कानका दर्द—बिना फोड़े-फुंसीके यदि कान दर्द करता है तो उसके लिये ऑक (ऑकड़ा)-के पके पानके एक तरफ थोड़ा-सा घी लगाकर गरम कर शरीरके तापमानानुसार उसका रस कानमें डालनेसे कानका दर्द तत्काल ठीक हो जाता है।

(३) दाँतमें पानी लगना—पानी पीते समय दाँतमें टीस होने लगती है, जिससे कभी-कभी पानी पीना भी कठिन हो जाता है, उसके लिये पलास (खॉकरा)-की कोमल टहनीकी दातौन करनेसे तथा उस दाँतके पास रस पहुँचानेसे एक-दो बारके प्रयोगसे लाभ हो जाता है।

(४) रक्तप्रदर—साधारण रक्तप्रदरमें पुराने कम्बलकी ऊनकी भस्म ३-४ रत्तीकी मात्रामें दिनमें ३ बार शहदके साथ चाटनेसे एक ही दिनमें लाभ हो जाता है।

(५) रक्तार्श—(क) नीमकी सूखी १०-१२ निबोली (फल)-की गिरीको पीसकर, गोली बनाकर दूधके साथ लगभग ५-७ दिनतक दिनमें एक बार प्रयोग करनेसे लाभ हो जाता है। हलका सुपाच्य भोजन करे।

(ख) ५० ग्राम ताजे दहीके साथ ३ ग्राम रसोत-चूर्ण मिलाकर ३ से ५ दिनतक खानेसे रक्तार्शमें हमेशाके लिये लाभ हो जाता है। प्रयोग प्रातः भोजनके पूर्व दिनमें एक बार करे। सुपाच्य भोजन करे।

(६) यकृत्-रोग (लीवर)—नागफनी थूहरका कच्चा गूदा लगभग १ तोलाकी मात्रा (१० ग्राम) ३ से ५ दिनतक प्रातः नित्य खिलानेसे बच्चोंका बढ़ा हुआ लीवर ७-८ दिनमें ठीक हो जाता है। खटाई एवं गरिष्ठ पदार्थ न दे।

(७) आँवके दस्त—ठंडे-फीके दूधमें लगभग आधा नीबूका रस डालकर पीनेसे आँवके दस्त एक-दो बारके प्रयोगमें बंद हो जाते हैं। मीठा पदार्थ खानेको न दे।

(८) दाँतका दर्द—काले मरवेके पत्ते चबानेसे दाँत-दाढ़का दर्द दूर हो जाता है।

(९) मुँहके छाले—(अ) चमेलीके पत्ते चबानेसे मुँहके छाले ठीक हो जाते हैं।

(ब) बकरीके दूधकी सीड़ मुँहमें लगानेसे मुँहके छाले मिट जाते हैं।

(१०) शक्ति-वृद्धि—सफेद प्याजका* रस लगभग ६ ग्राममें समान भाग शहद मिलाकर नित्य सबेरे २१ दिनतक चाटनेसे वीर्यकी वृद्धि होती है। संयमसे रहे।

(११) रक्तशुद्धि एवं वीर्यपुष्टि—तुलसीके बीज १ ग्राम पीसकर सादे या कत्था-चूना लगे पानके साथ नित्य सुबह-शाम खाली पेट खानेसे वीर्य पुष्ट एवं रक्त शुद्ध होता है।

(१२) पेशाबकी रुकावट—पलासके फूल (टेसू) गीले या सूखे पानीके साथ थोड़ा-सा कलमी शोरा मिलाकर, पीसकर नाभिके नीचे पेडूपर लगानेसे ५-१० मिनटमें पेशाब खुलकर आने लगता है।

(१३) मलेरिया ज्वर—इसके आनेके एक घंटे पूर्व ही पीपलके पेड़की टहनीसे दातून करे, चाहे तो रस एक-दो बार निगल ले। परमात्माकी कृपासे ज्वर नहीं आयेगा।

(१४) अकतरा—एक दिन छोड़कर आनेवाला ज्वर—अपामार्ग (चिरचिरा)-की ताजा जड़ लाकर सफेद धागेसे एक भुजापर बाँधनेसे ज्वर नहीं आयेगा।

(१५) स्तन्य वृद्धि—कभी-कभी प्रसूता स्त्रीके स्तनमें दूधकी कमी हो जाती है या आते-आते रुक जाता है। उसके लिये सफेद जीरा, सौंफ एवं मिस्री—तीनोंको समान भागमें पीसकर रख ले। इसे एक चम्मचकी मात्रामें दूधके साथ दिनमें दो या तीन बार लेनेसे स्तनमें दूध खूब बढ़ता है।

(१६) जले स्थानपर—(क) जले स्थानपर ग्वारपाठे (घृतकुमारी)-का गूदा लगानेसे जलन शान्त होती है तथा फफोले (छाले) भी नहीं उठते हैं।

(ख) जले स्थानपर आलू काटकर लगानेसे भी आराम होता है।

(१७) मूत्र-सम्बन्धी विकार—पेशाबमें जलन हो, बूँद-बूँद पेशाब लगातार आता हो, हाथ-पैरोंके तलवोंमें जलन होती हो या चर्मरोग हो, सभीकी एक दवा है—देशी गीली मेंहदीके साफ पत्ते लाकर पत्थरपर पीसकर रस निचोड़े। यह रस अवस्थानुसार १०-१२ ग्रामकी मात्रामें ताजा दूधमें मिलाकर प्रातः ३-५ या ७ दिन पीनेसे लाभ हो जाता है। रोगकी अवस्थाके अनुसार १५ दिन बाद फिर दिया जा सकता है।

(१८) वातरोग (जोड़ोंका दर्द)—अरंडीका तेल (केस्टर आयल)-में लहसुनकी कली धीमी आँचपर जलाकर तेल तैयार कर ले। ठंडा करके छानकर शीशीमें भर ले। आवश्यकता होनेपर जोड़ोंके दर्दमें मालिस करनेसे दर्दमें लाभ होता है।

(१९) उपदंश (सुजाक)—कच्ची फिटकरीको पीस, समान भाग गुड़में बेर-बराबर गोली बनाकर ताजा छाछके साथ प्रातः खाली पेट दिनमें एक बार लगभग २१ दिनतक प्रयोग करनेसे उपदंशमें शर्तिया लाभ होता है। गोलीके साथ ही छाछ दे, फिर दिनभर छाछ न दे। हलका भोजन करे, तेल, मसालेवाली चीजें, मिर्च आदि न ले, गरम पदार्थ (चाय आदि) न ले।

(२०) दद्रु (दाद)—सत्यानाशीकी जड़ (पीले फूलवाली कंटकारी) प्रातः पानीके साथ घिसकर लगानेसे दद्रु नष्ट हो जाते हैं।

गर्भवती आरोग्य कैसे रहे?

शास्त्रों एवं पुराणोंके अनुसार गर्भवती महिलाओंको अपने स्वस्थ जीवनके लिये एवं होनेवाली संतानकी पुष्टता, स्वस्थता, सुन्दरता, संस्कारवान् एवं दीर्घायु-हेतु गर्भावस्थामें निम्नाङ्कित बातोंपर ध्यान देना चाहिये—

(१) गर्भवतीको हमेशा शोक, दुःख, रंज एवं क्रोधसे दूर रहकर प्रसन्नचित्त रहना चाहिये।

(२) मनमें कभी कलुषित विचार न आने दे, न किसीकी निन्दा करे, न सुने। किसीके साथ ईर्ष्यालु व्यवहार भी न करे।

(३) किसी वस्तुको चोरी-चोरी खानेकी चेष्टा न करे। न किसी वस्तुको चुरानेका भाव मनमें लाये। हमेशा सात्त्विक, धार्मिक एवं परोपकारी भाव रखे।

---

* सात्त्विक आहारकी दृष्टिसे प्याज और लहसुन खानेका शास्त्रोंमें निषेध है, परंतु अनुभूत ओषधियोंमें इनके प्रयोगकी चर्चा कई जगह आती है। जिन्हें इनके प्रयोगसे परहेज नहीं है, उनके लिये औषधरूपमें निर्दिष्ट है।

क्योंकि इनका प्रभाव गर्भस्थ शिशुपर पड़ता है। जैसे विचार या भाव गर्भवतीके रहेंगे, वैसी ही गर्भकी प्रकृति निर्मित होगी।

(४) सड़े-गले, गंदे पदार्थ एवं रातका बचा बासी भोजन न खाये। शुद्ध सात्त्विक एवं भूखसे कम भोजन करे।

(५) भाँग, मदिरा, धूम्रपान एवं अन्य नशीले पदार्थका सेवन न करे।

(६) अश्लील गंदा साहित्य न पढ़े, न अश्लील चलचित्र (सिनेमा) आदि ही देखे। अपने शयन-कक्षमें भद्दे-गंदे चित्र न लगाये, न उनका अवलोकन करे। भगवान्‌के, संत-महापुरुषोंके तथा वीरसपूतोंके सुन्दर चित्र लगाये।

(७) दिनमें अधिक न सोये। रातमें अधिक देरतक जागरण न करे।

(८) हमेशा शरीरको शुद्ध, स्वस्थ बनाये रखनेका प्रयास करे। गंदी हवा एवं अशुद्ध वातावरणसे दूर रहे।

(९) सहवाससे सर्वथा दूर रहे। इससे गर्भपात होनेका डर रहता है अथवा शिशु अल्पायु या विकृत अङ्गवाला हो सकता है, संयम-नियमसे रहे।

(१०) अधिक जोरसे हँसना, जोरसे चिल्लाना, अधिक बोलना, बार-बार चिढ़ना, हमेशा क्रोधयुक्त चेहरा बनाये रखना एवं अपशब्दोंका बार-बार प्रयोग करना गर्भवतीके लिये वर्जित है।

(११) अधिक रोना, शोक करना, अधिक चिंता करना भी उचित नहीं है, इसका गर्भस्थके स्वास्थ्यपर प्रभाव पड़ता है।

(१२) गर्भवती महिलाको कोयलेसे या नाखूनसे पृथ्वीपर नहीं लिखना चाहिये, न कोई आकृति बनानी चाहिये।

(१३) गर्भावस्थामें महिलाओंको बार-बार सीढ़ियाँ चढ़ना-उतरना नहीं चाहिये, न भारी वजन उठाना चाहिये तथा हाथी, घोड़ा और ऊँटकी सवारी करना भी वर्जित है।

(१४) गर्भवती महिलाको नावमें बैठकर नदी पार करना या जलाशयकी सैर करना मना है। न अकेलेमें किसी पेड़के नीचे सोना चाहिये।

(१५) कटु, तीखे, कसैले, अधिक गर्म या अधिक चटपटे मसालेदार पदार्थ नहीं खाने चाहिये।

(१६) गर्भवतीको पपीता नहीं खाना चाहिये, इससे गर्भक्षय होनेका भय रहता है।

(१७) गर्भवतीको बाल खुले रखना, सबेरे देरतक सोते रहना एवं कुक्कुटकी तरह बैठना वर्जित है।

(१८) देरतक आगके पास बैठना या अधिक ठंडे स्थानपर बैठकर कार्य करना, झाड़ू, सूप, ऊखल, हड्डी, राख या कंडेपर बैठना मना है।

(१९) गर्भवती महिलाको हमेशा उत्तम सुसंस्कृत साहित्यका अध्ययन करना, माङ्गलिक गीत एवं ईश्वर-भजन करना चाहिये।

(२०) गर्भवतीके लिये अधिक उपवास करना, गरिष्ठ भोजन करना, अवशिष्ट पदार्थका सेवन करना वर्जित है।

इस प्रकार गर्भवती महिलाके द्वारा किये गये क्रिया-कलाप, खान-पान, बोल-चाल, श्रवण-मनन आदिका गर्भपर गहरा प्रभाव पड़ता है। यहाँ महाभारतकी एक कहानी याद आती है कि वीर अभिमन्यु जब माताके गर्भमें था, तब उसने अपने पिता अर्जुनके द्वारा चक्रव्यूह तोड़नेकी कथा सुनी थी, पर व्यूहसे निकलनेकी कथाके समय माताको नींद आ जानेसे पिताने आगेकी कहानी सुनानी बंद कर दी थी। इसलिये उसने चक्रव्यूह तोड़ना तो सीख लिया था, पर निकलना नहीं सीख पाया। यही कारण है कि वह व्यूहमें मारा गया। अतः गर्भावस्थाके समय महिलाओंको बहुत सावधान रहकर जीवन-यापन करना चाहिये। 'गर्भवती माताका व्यवहार ही बच्चेका व्यवहार निर्मित करता है।'

[वैद्य श्रीमोहनलालजी गुप्त, आयुर्वेदरत्न
द्वारा—मेसर्स उज्ज्वल किराना स्टोर्स
सुठालिया (जि० राजगढ़) (व्यावरा) (म० प्र०)]

विभिन्न रोगोंके घरेलू उपचार

शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये पथ्य-अपथ्यका पालन आवश्यक है। सैकड़ों दवाएँ खाकर भी बिना पथ्यसेवनके स्वास्थ्यलाभ नहीं उपलब्ध किया जा सकता। आयुर्वेदने अस्वस्थताको मनुष्यके गलत आहार-विहारका ही परिणाम माना है।

गलत आहार-विहारसे हर घरमें कोई-न-कोई प्राणी बीमारीसे ग्रस्त होता ही रहता है। यहाँ जनकल्याणकी भावनासे कुछ घरेलू उपचार-हेतु परीक्षित नुस्खे प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इनसे यथासम्भव लाभ उठाया जा सकता है—

नुस्खे एवं उनकी विधि निम्न प्रकार प्रस्तुत है—

(१) दाद, खाज, खुजलीका उपचार—मूलीके बीज पानीमें महीन पीसकर, आगपर खूब गरम करके दाद, खाज, खुजलीके स्थानपर लगाने चाहिये। प्रथम दिवस तो मूलीके बीज लगानेसे खूब जलन होगी और कष्ट भी होगा, परंतु ध्यान रहे कि दवा जितनी जोरोंसे लगेगी उतना अधिक लाभ होगा। द्वितीय दिवस भी यही प्रयोग करे। प्रथम दिवसकी अपेक्षा द्वितीय दिवस दवा लगानेसे कम कष्ट होगा। इसी प्रकार यह उपचार ३-४ दिन करे, इससे दाद, खाज, खुजली दूर हो जाती है।

(२) नहरुआका उपचार—नहरुआ रोगको स्नायुक, नारु, गिनीवर्गवाला, स्नायुरोग आदि नामोंसे भी जाना जाता है। नहरुआ एक प्रकारका कृमि (कीड़ा) है। इसके बारीक-बारीक अण्डे दूषित जलमें रहते हैं। इस जलको पीनेसे शरीरमें दोषोंकी उत्पत्ति हो जाती है। शरीरके जिस भागमें यह कीट त्वचाको भेदकर निकलनेका प्रयास करता है, उस स्थानपर सूजन उत्पन्न होकर एक श्वेत तन्तु बाहर निकल आता है। उसी समय यह ज्ञात होता है कि यह नहरुआ है।

यह कीड़ा धीरे-धीरे चमड़ीके बाहर निकलता है। इसे धीरे-धीरे निकालनेका ही प्रयास करना चाहिये। इस तन्तुके बीचमें टूट जानेसे यह बहुत पीडादायी हो जाता है, अर्थात् शरीरके अंदरका तन्तुभाग फिर दूसरे स्थानपर फोड़ा उत्पन्न करके निकलनेका प्रयास करता है। इससे महान् कष्ट होता है। यह बगैर टूटे पूरा बाहर निकल आता है तो सूजन शान्त होकर रोग भी ठीक हो जाता है। इसके उपचारहेतु निम्न दो प्रयोग प्रस्तुत हैं—

(अ) नहरुआके फूट निकलनेपर एक धतूरेके पत्तेपर थोड़ा गुड़, अफीम और रीठा—पानीमें पीसकर लुगदी बनाकर रखे तथा उक्त पत्ता नहरुआ निकलनेके स्थानपर बाँध दे। तीन दिनतक बँधा रहने दे। अन्दर-ही-अन्दर नहरुआ नष्ट हो जायगा।

(ब) सफेद कलईके चूने (जो पानमें खाया जाता है)-के बड़े-बड़े साफ टुकड़े और शुद्ध तिलका तेल (जितने तेलमें जितने टुकड़े पीसे जा सकें) दोनोंको खरलमें डालकर महीन पीस ले, जिससे वह मलहम-जैसा बन जाय। दवा जितनी अत्यधिक घोंटी जायगी, उतनी ही लाभदायक होगी।

दवा लगानेकी विधि—अकरुआ (आँकड़ा)-का एक पीला पत्ता लेकर उसपर उक्त थोड़ी-सी मलहम लगाकर, जहाँ नहरुआका मुँह हो, वहाँ भी दवा लगाकर उस पत्तेको रखकर ऊपरसे आकके १०-१२ हरे पत्ते रखकर मजबूतीसे पट्टी बाँध दे। तीन दिन बाद पट्टी खोल ले। यदि पूर्ण आराम न हो तो पुनः इसी प्रकार मलहम लगाकर पट्टी बाँधे और तीसरे दिन खोले। नहरुआपर पानी नहीं लगने दे। ईश्वरकी कृपासे लाभ हो जायगा।

(३) खूनी बवासीर (रक्तार्श)-का उपचार—रसौंत एक तोला और कलमी सोरा एक तोला दोनोंको पानीमें महीन पीसकर आठ-आठ आनेभरकी गोलियाँ बना ले। एक गोली सुबह तथा एक गोली शामके समय ठंडे जलके साथ खिला दे। यह दो दिवसकी दवा है। इससे खून बंद हो जायगा। यदि आराम न हो तो इसी प्रकार दो दिन और दवा ले। तेल, खटाई, गुड़, लाल मिर्चका सेवन न करे।

(४) हैजाका उपचार—खस (सींक या ताजी जड़) तीन माशा, तुलसी-पत्ते (ताजे पत्ते) १० नग, काली मिर्च ७ नग (यह एक खुराक है)—ये तीनों चीजें लेकर ताजे पानीमें पीसकर कपड़छान करके रोगीको पानी पिला दे। स्वादहेतु थोड़ी शक्कर व नमक भी मिलायी जा सकती है।

(५) दमा (श्वासरोग)-का उपचार—खानेका नमक डेढ़ तोला लेकर सुनारकी सोना गलानेकी कुठालीमें पकवा

लिया जाय। पकनेपर उसका स्वरूप भस्म-जैसा हो जायगा। उस नमकको बारीक पीस ले। रात्रिमें भोजनके उपरान्त दो मुनक्का (दाख) लेकर उसके बीज निकालकर डेढ़-डेढ़ रत्ती नमक उसमें भर ले और गोली-जैसा बना ले। फिर धीरे-धीरे चूसकर दोनों गोलियाँ खा ले। इसके बाद ४ घंटेतक पानी नहीं पिये। इसी तरह एक सप्ताहतक उपचार करते रहनेसे अवश्य लाभ होगा।

(६) आँव (आमातिसार)-का उपचार—(अ) एक तोला सौंफ लेकर उसमेंसे आधा तोला सौंफ तवेपर सेंक ले। कुछ लाल पड़नेपर उतार ले। उसमें शेष बची कच्ची सौंफ मिलाकर महीन पीसकर चार पुड़िया बराबर मात्रामें बना ले। चारों पुड़िया दिनमें चार बार खाना है। एक पुड़िया सौंफ मुँहमें रखकर चूसते रहे। जब रस पूर्ण चूस लिया जाय तो बाकी हिस्सा भी गटक ले और ऊपरसे पानी पी ले। इस चूर्णमें एक तोला शक्कर अवश्य मिला ले। इसी प्रकार २-३ दिवस उपचार करे। कैसे भी आँवके दस्त हों या साधारण दस्त हों, आराम होगा। यह उपचार गर्मीसे होनेवाले दस्तोंमें कारगर सिद्ध होता है।

(ब) अगर आँव (पेचिश)-के दस्तके साथ खून भी आता हो तो सूखे आँवलेके चूर्णमें शहद मिलाकर चाटे। ऊपरसे बकरीका दूध, शक्कर मिलाकर पीये। यह उपचार दिनमें तीन बार करे। प्रतिदिवस एक सप्ताहतक करते रहे। आराम अवश्य होगा। परीक्षित प्रयोग है।

(७) आँवलेसे महौषधि बनाये—हरे आँवलोंका गूदा निकालकर महीन कूटे, फिर उसके रसको कपड़ेसे छानकर १० किलोग्रामतक एकत्रित करे। इस रसको लोहेकी कड़ाहीमें अग्निपर इतना पकावे कि हलुएके समान गाढ़ा हो जाय, फिर उसमें दो किलो घी डालकर इतना भूने कि लाल हो जाय। फिर अलगसे पाँच किलो दूध औंटाकर उसमें इच्छानुसार शक्कर व बादाम-गिरी (बारीक टुकड़े) डालकर इनको आँवलेके रसमें मिलाकर अग्निपर पुनः रखकर इतना भूने कि गाढ़ा होकर लड्डू बनाया जा सके। बस यह महौषधि तैयार है।

सर्दियोंमें प्रतिदिन प्रातःकाल एक तोला गरम दूधके साथ और गर्मियोंमें शीतल दूधके साथ इन लड्डुओंका सेवन करे। इसके उपयोगसे सफेद बाल काले हो जाते हैं। कमजोर शरीर पुष्ट होता है। वीर्य-सम्बन्धी सभी रोग नष्ट होकर मनुष्यका शरीर बलिष्ठ हो जाता है।

(८) शीघ्र-प्रसूति (सुप्रसव)-का उपाय—आजके वैज्ञानिक युगमें बच्चोंका जन्म अधिकांशरूपमें माताके पेटमें चीरा लगाकर कराया जाना देखा, सुना जा रहा है। यह माताके आहार-विहारका ही परिणाम है। आजकी माताएँ न तो चक्की पीसना ही पसंद करती हैं और न टहलनेका शौक रखती हैं। उन्हें तो आराम करना, मनचाहा खाना-पीना आदि कार्य ही रुचिकर लगते हैं। फलस्वरूप परिणाम प्रसवके समय सामने आ ही जाता है। अच्छी एवं सुलभ प्रसूतिके लिये विद्वान् मनीषियोंने अनेक सुझाव सुझाये हैं। उनमेंसे कुछ उपाय जो सहज एवं सरल हैं, माताओंके कल्याण-भावनार्थ प्रस्तुत हैं—

यदि प्रसव होनेमें ज्यादा विलम्ब हो तो, केलेकी जड़ माताके गलेमें बाँध दे। यदि बच्चा गर्भमें ही मर गया हो तो आधा या पौन तोला गायका गोबर गर्म पानीमें घोलकर पिला देनेसे मरा हुआ बच्चा बाहर निकल आता है।

हाथमें चुम्बकपत्थर रखनेपर गर्भिणीको प्रसवपीड़ा नहीं होती। सवा तोले अमलतासके छिलकोंको पानीमें औंटाकर और शक्कर मिलाकर पिलानेसे भी प्रसवपीड़ा कम हो जाती है।

मनुष्यके बाल जलाकर उसमें गुलाब-जल मिलाकर गर्भिणीके तलवोंमें मलनेसे बड़ा लाभ होता है।

तिल और सरसोंके तेलको गरम कर गर्भिणीके पार्श्व, पीठ, पसली आदि अङ्गोंपर धीरे-धीरे मलनेसे भी प्रसव शीघ्र होता है। फूल न आये हों, ऐसी इमलीके छोटे वृक्षकी जड़को प्रसूतिके सिरके सामनेके बालोंमें बाँध देनी चाहिये। ऐसा करनेसे बिना तकलीफके सहज प्रसव हो जाता है। परंतु प्रसव होनेके तुरंत बाद उन बालोंको कैंचीसे काट देना चाहिये। यह प्रयोग परीक्षित है।

(९) नवजात शिशुका आहार—नवजात शिशुका प्रारम्भिक आहार माताका दूध है। प्रकृतिने बच्चोंके लिये दूधका विधान किया है। सभी जानवर शेर, चीता, भेड़िया आदि हिंसक पशु अपने बच्चोंको अपना ही दूध पिलाते हैं। लेकिन मनुष्यजातिमें इस प्राकृतिक विधानका उल्लंघन होते देखा जा रहा है। सामान्यतः माताएँ अपने बच्चोंको

अपना दूध पिलाकर, वे अपना बोझ धायपर छोड़कर निश्चिन्त हो जाती हैं। यह कृत्य अप्राकृतिक होकर हानिप्रद है। अपना दूध न पिलानेसे प्रसूता स्त्रीका स्वास्थ्य खराब हो जाता है, यह सही नहीं है। हाँ, यह बात निस्संकोच स्वीकार की जा सकती है कि यदि वह माता कमजोर हो, अस्वस्थ हो या उसका दूध बच्चेके पालनके लिये पर्याप्त न हो तो ऐसे बच्चोंको कोई अन्य दूध (जो पच जाता हो, जैसे गाय-बकरीका) पिलाना चाहिये। गायका दूध पानी मिलाकर, उबालकर थोड़ा गरम (कुनकुना) पिलाना चाहिये।

जो माताएँ स्वयंका दूध न पिलाना चाहती हों तो उन माताओंसे प्रार्थना है कि प्रसवके एक सप्ताहतक वे अपना दूध बच्चेको अवश्य पिलावें। जिस समय बच्चा पैदा होता है, उसकी आँतोंमें काला-काला मल एकत्रित रहता है। उस मलको निकालना आवश्यक होता है। तुरंत प्रसूता माताका दूध बच्चेको रेचक (जुलाबके माफिक) होता है। उस दूधके पीनेसे नवजात शिशुका मल साफ हो जाता है। जो माताएँ इसपर भी दूध नहीं पिलाती हैं और बच्चेका मल साफ करनेके लिये रेंड़ी (अरंडी)-का तेल पिलाती हैं। ऐसी अवस्थामें बच्चेको विरेचन (जुलाब) देना कितना नुकसानदेह है—यह उनके लिये विचारणीय है। अतः ऐसी माताओंको कम-से-कम एक सप्ताहतक तो बच्चेको अपना दूध अवश्य ही पिलाना चाहिये।

जो माताएँ अपने बच्चोंको पर्याप्त समयतक दूध पिलाती हैं, उनके अद्भुत गुण निम्नवत् हैं—

१. माताका दूध बच्चेके लिये अमृततुल्य है।

२. जो माता अपने बच्चेको दूध न पिलाकर अपने सौन्दर्यको स्थिर रखना चाहती है, उसे संसारमें माताके पदका अधिकारी नहीं समझना चाहिये।

३. क्रोध करके बच्चेको दूध पिलानेसे बच्चेपर जहरीला प्रभाव पड़ता है। अतः क्रोधकी दशामें बच्चेको दूध नहीं पिलाना चाहिये। क्रोध शान्त होनेपर दूध पिलावे। दूध हमेशा प्रसन्नचित्त होकर पिलाना चाहिये, जिससे बच्चा हृष्ट-पुष्ट रहता है।

४. यदि माताका दूध बच्चेके लिये पर्याप्त नहीं है तो दूध बढ़ानेका उपाय करना चाहिये।

५. जिस माताको दूध कम होता है, उसे शाली-चावल, साठी-चावल, गेहूँ, लौकी, नारियल, सिंघाड़ा, शतावरी, विदारीकन्द, लहसुन आदि पदार्थ प्रसन्नचित्त होकर सेवन करना चाहिये। कलम चावल, जिसे काश्मीरमें महातंदुल कहते हैं, इसका सेवन दूध बढ़ानेके लिये उत्तम होता है। कलम चावल दूधमें पीसकर सेवन करना चाहिये। जहाँ कलम चावल उपलब्ध न हो वहाँ शतावरी या विदारीकंदको दूधमें पीसकर पीना चाहिये। इससे दूध बढ़ जाता है। माताके आहारमें छिलकेवाली दालकी मात्रा बढ़ा देनेसे भी दूध प्रायः बढ़ जाया करता है।

आधुनिक माताओंसे विनम्र प्रार्थना है कि अपने दिखावटी सौन्दर्यके लिये अपने हृदयके टुकड़े (मासूम बच्चे)-को अपने अमृतरूपी दूधसे वञ्चित नहीं करें। सौन्दर्य तो समय आनेपर नष्ट ही हो जाता है, फिर उसपर गर्व कैसा?

अतः अपने मातृत्वके अधिकारसे वञ्चित न रहें और दूध न पिलानेकी स्थितिमें स्तनोंमें होनेवाले कैंसर आदि भयंकर रोगोंसे बचें।

(१०) आँवलाद्वारा स्वास्थ्य-रक्षा—आँवला प्रमेह, ज्वर, वमन, प्यास (तृषा), रक्तविकार, पित्तविकार, अरुचि और अजीर्ण आदिपर प्रयोग किया जाता है।

आँवलेके गुण संक्षेपमें प्रस्तुत हैं—

१. रसायन चूर्ण—आँवला, गिलोयसत्व और गोखरू—इन्हें समान मात्रामें लेकर चूर्ण बना ले। इस चूर्णको तीन माशेकी मात्रामें शक्करके साथ खानेसे पित्त और दाह (जलन) जाती रहती है।

२. आँवला (ताना)-का रस आँखमें टपकानेसे जाला दूर हो जाता है।

३. मेंहदी और सूखा आँवला बारीक पीसकर पानीमें गूँथकर सिरपर लगानेसे बाल काले हो जाते हैं।

४. धनिया-बीज और आँवला रातको पानीमें भिगोकर, प्रातःकाल छानकर वह पानी पीनेसे पेशाबकी जलन दूर हो जाती है।

[श्रीनवलसिंहजी सिसौदिया, 'शिवसदन'
राघौगढ़, (गुना) (म०प्र०)]



आकस्मिक चिकित्सा

[कभी-कभी अनायास ऐसी आकस्मिक घटनाएँ हो जाती हैं, जो व्यक्तिको क्षणभरमें मृत्युके कगारपर पहुँचा देती हैं। उस समय तत्काल आवश्यक उपचारकी आवश्यकता पड़ती है, जिससे वह व्यक्ति मृत्युके मुखसे निकलकर स्थायी उपचारके योग्य बन सके, यहाँ इसी प्रकारकी आकस्मिक चिकित्साका विवरण प्रस्तुत है— सं०]

पानीमें डूबना

पानीमें डूब जाना एक सामान्य दुर्घटना है। पानीमें डूबा व्यक्ति बचनेके लिये हाथ-पैर फेंकता है, छटपटाता है जिससे नाक और मुँहके द्वारा पेटमें पानी भर जाता है। पानी भर जानेसे श्वास रुक जाती है और बेहोशी आ जानेके कारण मृत्यु हो जाती है।

प्राथमिक उपचार—(१) डूबे व्यक्तिको सुरक्षित ढंगसे पानीसे बाहर निकालकर उसके पेटके अंदर भरा हुआ पानी निकालनेका प्रयास करना चाहिये। नाकमें कीचड़ आदि लगा हो तो कपड़ेसे साफ कर दें। दाँतोंके बीच कोई कड़ी वस्तु फँसा दें ताकि दाँतपर दाँत बैठकर मुँह बंद न हो जाय। रोगीको पेटके बल लिटाकर उसके कमरके नीचे दोनों हाथ डालकर बार-बार ऊपर उठावें। इससे फेफड़ोंमें जमा पानी बाहर निकल आवेगा। डूबे व्यक्तिको पेटके बल अपने सिरपर रखकर एक ही स्थानपर गोलाईमें घूमनेसे भी पेटमें गया पानी निकल आयेगा।

(२) देखें कि श्वास ठीकसे चल रही है कि नहीं। नाडीकी गति है कि नहीं, हृदय धड़क रहा है कि नहीं। श्वास रुक-रुककर चल रही हो तो सुँघनी आदि कोई ऐसी वस्तु सुँघायें कि छींक आ जाय। चूनेमें नौसादर मिलाकर सुँघा सकते हैं। छींक आनेसे श्वास ठीकसे चलने लगेगा। सीनेको बार-बार दबायें एवं छोड़ें। पेटके बल उलटा लिटाकर पेटके नीचे गोल तकिया रख दें। पीठको लगातार दबायें तथा छोड़ें। इससे फेफड़ेकी हवा बाहर निकलेगी, छोड़नेपर हवा भीतर जायगी। यदि इससे भी पूरी तरहसे श्वास न चले तो मुँह-में-मुँह लगाकर कृत्रिमं श्वसन देकर श्वास चलानेका प्रयास करें। पानीमें डूबे व्यक्तिका यह उपचार तभी सार्थक होता है जबकि डूबे व्यक्तिको बाहर निकालनेपर उसका शरीर गर्म हो और हाथ-पैर शिथिल न पड़ गये हों। सफलताके चिह्न न दिखायी पड़नेपर तत्काल निकटके चिकित्सालयमें रोगीको पहुँचाना चाहिये।

आगसे जलना

प्रायः लोग चूल्हा, स्टोव या गैस जलाते समय अग्निकी चपेटमें आ जाते हैं। असावधानीवश कपड़ेको अग्नि पकड़ लेती है। कोई जलकर आत्महत्याकी चेष्टा करते हैं। कभी-कभी मकान आदिके जल जानेपर लोग आगकी चपेटमें आ जाते हैं। यह एक संकटकालीन अवस्था होती है। जले व्यक्तिकी प्राणरक्षा करनेके लिये प्राथमिक उपचार क्या करना चाहिये, इसकी जानकारी अच्छी तरहसे होनी चाहिये—

(१) आगकी लपेटमें आ जानेपर दौड़ना-भागना नहीं चाहिये। आगसे सुरक्षित स्थानपर लेटकर इधर-उधर लुढ़कना चाहिये। इससे आग जल्दी बुझ जाती है। जलते हुए कपड़ोंको बड़ी सावधानीसे ब्लेड या चाकूसे काटकर अलग कर देना चाहिये।

(२) जलते हुए व्यक्तिपर मिट्टी, कम्बल आदि डालकर आग बुझानेका प्रयास करना चाहिये। कम्बलसे इस प्रकार ढक दें कि हवा बंद हो जाय। इससे आग तुरंत बुझ जायगी। कम्बल आदि डालकर आग बुझानेसे घावकी गहराई बढ़ जाती है और त्वचा काफी अन्दरतक झुलस जाती है। पानी डालकर बुझानेसे फफोले पड़ जाते हैं, पर घाव गहरे नहीं होते। यथाशीघ्र जो भी साधन उपलब्ध हो, उससे आग बुझाना चाहिये।

(३) जले हुए स्थानपर नारियलका तेल लगाना चाहिये। यदि गरम घी-तेल आदि गिरनेसे फफोले पड़ गये हों तो यह उपचार पर्याप्त है।

(४) यदि शरीरका अधिक भाग झुलस गया हो तो चिकित्सालयमें रोगीको ले जाना चाहिये। शरीरका अधिक भाग जल गया हो तो व्यक्तिके बचनेकी सम्भावना कम होती है।

(५) जले हुए स्थानको हलके-हलके रूईसे साफ करके नारियल या जैतूनका तेल आदि लगाना चाहिये। संक्रमण आदिसे बचानेके लिये जीवाणुनाशक घोल—जैसे सोडा-बाई-कार्बके घोलसे धोना उचित है। मलहम लगानेसे घाव देरीसे भरते हैं।

(६) खुले घावमें रूई चिपक जाती है। चिपकनेपर उसे छुड़ानेकी चेष्टा न करें, क्योंकि ऐसा करनेसे घाव बढ़ जायगा।

(७) घावको सदैव ढककर रखें जिससे मच्छर-मक्खी आदिके बैठनेसे संक्रमण न हो।

(८) फफोलोंको फोड़ें नहीं। इसपर तीसी या नारियलका तेल या मक्खन लगायें। भूलकर भी मिट्टीका तेल, पेट्रोल या स्प्रिट न लगायें।

(९) यदि छोटा बच्चा गलतीसे आगसे झुलस जाय तो जले हुए हिस्सेको पानीमें तबतक डुबाये रखें जबतक जलन शान्त न हो जाय। असली शहदका लेप करनेसे भी जलन शान्त हो जाती है।

(१०) रोगीको मुलायम आरामदायक बिस्तरपर लिटायें तथा पर्याप्त मात्रामें जल पिलाते रहें। पौष्टिक आहार दें तथा मानसिक रूपसे सान्त्वना देते रहें कि वह जल्द ठीक हो जायगा। शरीरमें जलका संतुलन बना रहे, इसके लिये ग्लूकोज चढ़ानेकी आवश्यकता पड़ सकती है। चिकित्सकका परामर्श लेना भी आवश्यक है।

धनुष्टंकार (टिटनस)

धनुष्टंकार (Tetanus)-में शरीर ऐंठकर धनुषके समान टेढ़ा हो जाता है, रह-रहकर आक्षेप आते हैं, मांसपेशियोंमें संकुचन और अकड़न आ जाती है। रोगका आक्रमण हो जानेपर दो दिनसे दस दिनके अंदर रोगीका जीवन समाप्त हो सकता है। बहुत कम रोगी ही इस जानलेवा संक्रमणसे बच पाते हैं। टिटनस हो जानेपर बचाव मुश्किल हो जाता है, इसलिये पहले ही सुरक्षात्मक उपाय करना चाहिये।

कारण—'क्लास्ट्रीडियम टिटेनी' नामक बैक्टीरियाके संक्रमणसे यह रोग होता है। ये जीवाणु जानवरों और उसके मलमें, धूलमें तथा गंदे स्थानोंमें निवास करते हैं और उबालनेपर भी नष्ट नहीं होते। जंग लगे लोहे आदिसे चोट लगनेपर, गोबरवाले स्थानपर या रास्ते आदिमें चोट लगनेपर इसका संक्रमण होनेकी सम्भावना रहती है। ये जीवाणु घाव या हलके चोटके स्थानसे भी शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं।

लक्षण—(१) रोग धीरे-धीरे शरीरपर अधिकार जमाता है। जबड़े भिंच जाते हैं, गरदन अकड़ जाती है, मुँह खोलनेमें कठिनाई होती है।

(२) कोई वस्तु खाने-पीने, निगलनेमें कष्ट होता है।

(३) पीठमें अकड़न, वह पीछेकी ओर धनुषाकार मुड़ जाती है, ऐंठनका दौरा पड़ने लगता है। पेट बहुत कड़ा पड़ जाता है।

(४) चेतना रहती है, बेहोशी नहीं आती।

(५) भौंह और मुँहका सिरा बाहरकी ओर खिंच जाता है, जिससे चेहरा विद्रूप-सा लगता है।

(६) दौरोंके पड़नेका क्रम चालू हो जाता है। रोगकी तीव्रावस्थामें दो दौरोंके बीचका समय कम होता जाता है। पेशियोंमें कड़ापन आ जाता है।

(७) रोगीको छूने, हिलाने-डुलानेसे या शोरगुलसे आक्षेपका दौरा पड़ जाता है।

(८) आँखें ऊपर चढ़ जाती हैं। हालत बिगड़नेपर दौरे जल्दी-जल्दी पड़ने लग जाते हैं।

(९) निमोनियासे, अत्यधिक ज्वरसे या हृदयाघातसे ४-५ दिनोंमें मृत्यु हो सकती है।

धनुष्टंकारके लक्षण मस्तिष्क-ज्वर और रेबीजके लक्षणसे भी मिलते-जुलते हैं।

उपचार—(१) कहीं भी चोट-चपेट लग जानेपर घावको हाइड्रोजन पराक्साइड या डेटॉल आदिसे धो देना चाहिये और तुरन्त टिटनसका इंजेक्शन लगवा लेना चाहिये।

(२) शीतल, शान्त, अन्धेरे कमरेमें रोगीको रखना चाहिये। समय नष्ट न करके, योग्य चिकित्सककी देखरेखमें यथाशीघ्र उपचार प्रारम्भ कर देना चाहिये।

सिरपर आघात

सिरका आघात सांघातिक होता है। प्राय: दुर्घटना आदिमें या लड़ाई-झगड़ेमें सिरमें चोट लग जाती है। सिरपर लाठी, डण्डा, घूँसा आदिके आघातसे बेहोशी आ जाती है। चोट लगनेसे मस्तिष्कका कार्य अस्त-व्यस्त हो जाता है।

उपचार—(१) रोगीको पूर्ण विश्राम देना चाहिये।

(२) बेहोशीकी अवस्थामें मुँहपर पानीका छींटा देकर होशमें लानेका प्रयास करें।

(३) चोटको धोकर हलकी पट्टी बाँध देनी चाहिये।

(४) एक गिलास गरम दूधमें एक बड़ी चम्मच पिसी हल्दी डालकर पिलायें। इससे दर्दमें कमी होगी।

(५) गम्भीर स्थितिमें यथाशीघ्र चिकित्सालय पहुँचानेकी व्यवस्था करें। एक्स-रे करके हड्डीके टूटनेका पता चलनेपर तत्सम्बन्धी उपचार करना आवश्यक होता है। आन्तरिक रक्तस्रावको रोकने तथा भीतर रक्तके थक्के न जमने देनेके लिये एक विशेष प्रकारका इंजेक्शन तुरंत देते हैं। आवश्यकताके अनुसार उपचार अपेक्षित होता है।

आँख, कान, नाक आदिमें कोई वस्तु चले जाना

अकसर हमारे कान, नाक, आँख व गलेमें किसी अवांछित वस्तुका जब प्रवेश हो जाता है तो हम परेशान हो उठते हैं। अगर ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय तो इन उपायोंपर अमल किया जा सकता है—

कानमें किसी वस्तुका प्रवेश—अगर कानमें कोई कीड़ा-मकोड़ा प्रवेश कर गया हो तो—(क) कानमें टॉर्चकी रोशनी दिखायें, कीड़ा-मकोड़ा रोशनीसे आकृष्ट होकर बाहर निकल आयेगा। (ख) कानमें दो-तीन बूँद गुनगुना जल ड्रापरसे डालें। (ग) कानमें गिलसरीन, सरसों या जैतूनका तेल या स्प्रिटकी कुछ बूँदें डालें।

यदि यह उपाय कारगर न हो, कोई वस्तु फँस गयी हो तो—(क) वस्तुको निकालनेका प्रयास करें। (ख) यदि वस्तु फिर भी न निकले तो चिकित्सकको दिखायें। हाइड्रोजन पराक्साइड आदि कानके अंदर न डालें। इससे कानके पर्देको हानि पहुँचती है।

आँखमें किसी वस्तुका प्रवेश—(क) आँखमें कोई वस्तु पड़ जानेपर बुरी तरह मलें नहीं। पलकको ऊपर उठाकर रूमालके कोनेसे या साफ रूईकी बत्ती बनाकर या ब्लाटिंग पेपर (सोख्ता)-के टुकड़ेसे निकालें। (ख) ऊपरी पलकको थोड़ा ऊपर उठाकर नीचेकी पलकको बालसहित ऊपरी पलकके नीचेकर धीरे-धीरे हाथसे मलें। (ग) आँखपर पानीकी धार या पानीका छींटा डालें। (घ) आँखमें एक-दो बूँद गुलाबजल या जैतूनका तेल डालें। (ङ) यदि चूना पड़ गया हो तो पानीका छींटा दें या सिरकेका घोल डालें।

नाकमें किसी वस्तुका प्रवेश—(क) नाकके जिस छिद्रमें वस्तु अटकी हो उसके बगलवाले छिद्रको बंद करके झटकेसे श्वास बाहरकी ओर निकालें ताकि भीतरकी हवाके दबावसे वस्तु बाहर निकल आये। (ख) नौसादर या तंबाकू सुँघाकर छींक लानेका प्रयास करें। (ग) सख्तीसे फँसी वस्तुको छोटी चिमटीसे निकालनेका प्रयास करें।

गलेमें किसी वस्तुका फँसना—(क) सिर आगेकी ओर नीचे झुकाकर गर्दनपर पीछेकी ओरसे थपकी दें। (ख) मुँहको खोलकर अपनी दोनों उँगलियोंसे वस्तुको निकालनेका प्रयास करें। (ग) यदि खाद्य पदार्थका छोटा टुकड़ा अटक गया हो तो मुँहमें रोटीका पूरा कौर लेकर झटकेसे निगलवायें। (घ) यदि कोई नुकीली वस्तु अटक गयी हो तो रोगीको केला या खीर आदि खिलायें। इससे अटकी वस्तु पेटमें चली जायगी। अटकी वस्तु न निकले तो चिकित्सकको दिखायें।

डिप्थीरिया

डिप्थीरिया बच्चोंके गलेके अग्रभागमें तथा श्वासनलिकामें होनेवाली एक गम्भीर संक्रामक व्याधि है, समय रहते उपचार न करनेपर खतरनाक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यह एक वर्षसे पाँच वर्षतकके बच्चोंको विशेषकर होता है। इसका संक्रमण दूसरे बच्चेको भी होनेकी सम्भावना रहती है। रोगीके गलेकी संक्रमित झिल्लीमें अनेक जीवाणु होते हैं। ये जीवाणु खाँसने, छींकने और थूकनेपर दूसरोंतक पहुँचते हैं।

लक्षण—(१) गलेपर लालिमायुक्त हलका बुखार, बेचैनी एवं उलटी होती है।

(२) गलेके टान्सिलमें शोथके साथ ही तालुमूलमें श्लेष्मा-जैसी पतली झिल्ली बन जाती है। इसके कारण पानी पीने या निगलनेमें कष्ट होता है। शीघ्र ही यह झिल्ली फैलने लगती है, जिससे श्वास लेनेमें कष्ट होता है।

(३) ज्वर बढ़नेके साथ ही खाँसी आने लगती है।

(४) अत्यधिक दुर्बलताके साथ तीव्र बेचैनी, नाकसे मवाद-जैसा स्राव निकलता है।

(५) रक्तचाप कम हो जाता है, रोगी प्रलाप करने लगता है, प्यास अधिक लगती है।

(६) गला फूल जाता है, कानमें दर्द होने लगता है। रोगका फैलाव नाकतक हो जाता है।

(७) अन्तिम स्थितिमें रोगका प्रसार गले, नाक और स्वरयन्त्रतक हो जाता है। शरीर नीला पड़ जाता है। रोगीके बचनेकी सम्भावना कम हो जाती है।

उपचार—रोग बड़ी तेजीसे अपनी चरमावस्थामें पहुँच जाता है। इसलिये प्रारम्भिक लक्षणोंका पता चलते ही बिना विलम्ब किये योग्य चिकित्सकको दिखाना चाहिये। देर करनेपर अनेक प्रकारके उपद्रव, जैसे—निमोनिया, श्वासावरोध, हृदयनिपात, पक्षाघात आदि भी हो सकते हैं।

शीशा निगलना

प्राय: बच्चोंको कोई वस्तु मुँहमें डाल लेनेकी आदत होती है। मुँहमें डालनेपर कभी-कभी अचानक वह वस्तु पेटके अन्दर चली जाती है। निगली हुई यह वस्तु काँचके बड़े या छोटे टुकड़ेके रूपमें, लोहेकी नुकीली कील या ऐसी ही कोई भी हानिप्रद वस्तु हो सकती है। कभी-कभी काँचका पिसा चूरा खा लेनेकी घटना हो जाती है। काँच पेटमें जाकर आमाशय तथा आँतोंकी दीवारोंको काट देता है जिससे गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

चिकित्सा—(१) शीशा आदि नुकीली वस्तु या शीशेका चूरा निगले जानेकी स्थितिमें ब्रेडके बीचमें मक्खन और रूईकी तह बिछाकर खिला दें। यह रूई पेटमें जाकर शीशेके टुकड़ेके चारों ओर जाकर लिपट जायगी, जिससे आँतोंके कटनेका डर कम हो जायगा।

(२) रोगीको पका केला, खिचड़ी, दलिया, साबूदाना, आलू आदि अधिक-से-अधिक खिलायें। रेड़ीका तेल पिलायें या मैगसल्फ पानीमें घोलकर पिलायें। मलके साथ काँच बाहर आ जायगा।

(३) घी हलका गरम करके पिलायें। जुलाब आदि देकर वह हरसम्भव उपाय करें जिससे वमन या दस्त हो जाय।

चोट, रक्तस्राव एवं हड्डी टूटना

हमारे शरीरमें रक्तका सञ्चालन करनेवाली नसोंका जाल-सा बिछा हुआ है। ये नसें तीन प्रकारकी हैं—धमनी, शिरा और महीन केशिकाएँ। धमनीका कार्य पूरे शरीरमें शुद्ध रक्तकी आपूर्ति करना तथा शिराका कार्य शरीरसे अशुद्ध रक्त इकट्ठा करके हृदयमें वापस शुद्ध होनेहेतु भेजना है। केशिकाएँ बारीक धागे-जैसी होती हैं। ये शिरा और धमनीसे सम्बद्ध होती हैं और त्वचातक इनका प्रसार होता है। चोट लग जानेपर धमनीका रक्त शरीरके बाहर उछल-उछलकर निकलता है। इसका रंग सुर्ख चमकीला लाल होता है। शिराका रक्त गहरे रंगका होता है और समान-रूपसे बाहर निकलता है। केशिकाओंका रक्त नन्हीं-नन्हीं बूँदोंके रूपमें धीरे-धीरे निकलता है।

(१) दुर्घटनामें चोट लगनेपर यदि धमनीका रक्त निकल रहा हो तो घायल अङ्गको ऊपर करके रखना चाहिये। यदि शिरासे रक्तप्रवाह हो रहा हो तो उस अङ्गको नीचे करके रखें। इससे रक्तस्राव जल्दी बंद होगा।

(२) घावको ठंडे पानीसे धोकर उसपर बर्फ रखें और ठंडे पानीमें भीगे कपड़ेकी पट्टी बाँधें। इससे रक्तस्राव जल्दी बंद होगा।

(३) चोटके समीप ऊपरकी ओरसे दबाव रखनेपर भी रक्तकी कम मात्रा निकलेगी। पट्टी बँधनेतक चोटको दबाकर रक्तका बहना बंद करनेका प्रयास करें।

(४) सामान्य केशिकाओंसे रक्तस्राव हो रहा हो तो अंगुलीसे कुछ देरतक दबाकर रखें और डेटॉल या जीवाणुनाशक घोलसे साफ करके उसपर फिटकरी रखकर हलकी पट्टी बाँध दें। सामान्य चोटपर फिटकरी छिड़ककर पट्टी बाँध देनेसे रक्तस्राव रुक जाता है।

(५) यदि नाकसे रक्तस्राव हो रहा हो तो स्वच्छ हवादार स्थानमें रोगीको बैठा दें। सिरको पीछेकी ओर लटकाकर रखें। हाथोंको ऊपरकी ओर कर दें। गले और वक्ष:स्थलके कपड़ोंको ढीला कर दें। नाक और गर्दनपर बर्फका ठंडा पानी रखें। मुँहको खुला रखकर श्वास लें और पैरोंको गर्म पानीमें रख दें। इससे नासिकाका रक्तस्राव शीघ्र

रुक जायगा।

प्राय: दुर्घटनाओंमें अत्यधिक चोट लग जानेसे रक्तस्राव अधिक होनेके साथ ही कभी-कभी हड्डी भी टूट जाया करती है। टूटी हड्डीके संदर्भमें कोशिश यह करनी चाहिये कि बिना छेड़छाड़ किये यथास्थितिमें घायलको शीघ्र चिकित्सालय पहुँचायें। हिलने-डुलनेसे अधिक हानि पहुँच सकती है। कभी-कभी टूटी हड्डी मांसको फाड़कर बाहर निकल आती है। ऐसी स्थितिमें अत्यन्त सावधानी रखनेकी जरूरत पड़ती है। हड्डी टूटनेकी पहचान यह है कि टूटे स्थानमें दर्द होता है, वह अङ्ग बेकाबू हो जाता है, टेढ़ा, लंबा या छोटा हो सकता है। भीतरी रक्तस्राव एवं मांसपेशियोंके सिकुड़नेसे सूजन आ जाती है। हड्डी टूटनेपर एक्स-रे करके सही स्थितिका आकलनकर प्लास्टर आदि करना पड़ता है। हड्डी टूटनेकी स्थितिमें प्राथमिक उपचार इस प्रकार करने चाहिये—

(१) यदि जाँघ, पैर या हाथकी हड्डी टूटी हो तो बिना हिलाये-डुलाये टूटे अङ्गपर स्केल या लकड़ीकी खपच्ची दोनों ओर रखकर बाँध दें और निकटवर्ती चिकित्सालय ले जानेकी व्यवस्था करें। रक्त निकल रहा हो तो उसे रोकनेका प्रयास करना चाहिये।

(२) हड्डीका सिरा टूटकर बाहर निकल गया हो तो ऐसी स्थितिमें बिना हिलाये-डुलाये रखें और चिकित्सकको बुलायें।

(३) सिरकी हड्डी टूट गयी हो तो सिर ऊँचा करके लिटा दें, घाव पोंछकर हलकी पट्टी बाँध दें। सीने और गर्दनके वस्त्र ढीले कर दें। उसे शान्त और गर्म रखनेका प्रयास करें तथा रोगीको सान्त्वना दें।

(४) यदि रीढ़ या कमरकी हड्डी टूटी हो तो पड़ा ही रहने दें, चिकित्सकको बुलायें, अन्यथा अधिक गम्भीर हानि पहुँच सकती है।

विषाक्तता

कभी-कभी जाने-अनजानेमें विषपान कर लेनेसे जीवन खतरेमें पड़ जाता है। दैनिक जीवनमें ऐसे अनेक अवसर आते हैं कि कोई-न-कोई व्यक्ति विषसे ग्रस्त हो जाता है। ऐसे अवसरपर तत्काल चिकित्सा न करके समय नष्ट करनेसे पूरे शरीरमें जहर फैल जाता है। यदि विष रससे संयुक्त होकर हृदयतक पहुँच जाय तो मृत्यु हो जाती है। विभिन्न प्रकारके विषों जैसे—सर्प-बिच्छूका दंश, कीटनाशक औषधियोंका भक्षण, मिट्टीका तेल, तारपीनका तेल, कुचला, अफीम, धतूरा, गाँजा, भाँग, मदिरा आदिमेंसे कुछ तो ऐसे हैं कि तत्काल उनका प्राथमिक उपचार निम्न प्रकारसे करना चाहिये—

(१) अधिक मात्रामें नमकका घोल पिलाकर उलटी करायें। उलटी न आनेपर साबुनका पानी पिलायें और मुँहके अंदर गलेमें दोनों अँगुली डालकर उलटी करायें। अधिक मात्रामें घी पिलानेसे भी उलटी-दस्त हो सकते हैं जिससे विष बाहर निकल जायगा और उसका प्रभाव कम होगा।

(२) रेडीका तेल या जैतूनका तेल या मैगसल्फ पिलाकर रोगीको दस्त करानेका प्रयास करें। मिट्टी, तारपीनका तेल या पेट्रोल आदिकी स्थितिमें वमन न कराकर विरेचन कराना चाहिये।

(३) यदि रोगी होशमें हो तो उसे आश्वस्त करें कि वह शीघ्र ही स्वस्थ हो जायेगा।

(४) श्वास लेनेमें तकलीफ हो तो ऑक्सीजन सुँघायें।

(५) आस-पासके स्थानका निरीक्षण करें कि कोई विषैला पदार्थ या इसी प्रकारकी कोई शीशी आदि तो नहीं है। विषके प्रकारका निश्चय करके उपाय करें।

(६) यदि नींद आ रही हो तो सोनेसे रोकनेका उपाय करें। नींदमें जहर तेजीसे फैलता है।

विष—उनकी पहचान तथा प्राथमिक उपचार

(१) संखिया

संखिया एक घातक विष है। औषधि बनानेमें भी इसका प्रयोग करते हैं। भ्रमवश इसे खा लेनेसे विषम स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

लक्षण—(१) गलेमें खराश तथा जलनका अनुभव।

(२) अधिक कमजोरीके साथ बेहोशी।

(३) सिर तथा पेटमें दर्द, उलटी, मुँह सूखना, बेचैनी, दस्त लगना, त्वचा ठंडी होना, कँपकँपी।

(४) नाडीकी गति धीमी होना।

(५) रोगीकी मृत्यु ४ से ४८ घंटेके मध्य हो सकती है।

प्राथमिक उपचार—(१) वमन करानेके लिये एक लीटर पानीमें ४-५ चम्मच नमक मिलाकर पिलायें।

(२) रेड़ीका तेल पिलायें, जिससे दस्तके जरिये

विषाक्त पदार्थ निकल जायगा।

(३) ठंडे हवादार कमरेमें रोगीको रखें, हाथ-पैर गरम रखें, शरीरमें ऐंठन हो तो सरसोंके तेलकी मालिश करें।

(२) धतूरा

यह एक सर्वसुलभ पौधा है। इसके बीज और पत्तियाँ विषाक्त होते हैं। इससे औषधि भी बनायी जाती है। धतूरेके बीजको खा लेनेसे शरीरपर उसके विषका प्रभाव पड़ने लगता है।

लक्षण—(१) वमन होने लगता है।

(२) नाडी कमजोर हो जाती है।

(३) गला और मुँह सूखने लगता है, पेटमें जलन होती है, सिरमें चक्कर आता है और पैर लड़खड़ाने लगते हैं।

(४) नींद आने लगती है, रोगी प्रलाप करता है।

(५) बिस्तरसे उठकर भागनेकी चेष्टा करता है।

(६) कपड़ेमेंसे उसके धागोंको निकालनेका भ्रामक प्रयास करता है।

(७) बोलनेमें असमर्थता तथा चेहरा और नेत्र लाल हो जाते हैं।

प्राथमिक उपचार—(१) सिरपर ठंडा पानी डालें।

(२) नमकका घोल पिलाकर, उलटी कराकर विषाक्त पदार्थ बाहर निकालें।

(३) रेड़ीका तेल या मैगसल्फ पिलाकर दस्त करायें।

श्वास लेनेमें कष्ट होनेपर ऑक्सीजन दें। क्लोरोफॉर्म सुँघानेसे प्रलाप करना बंद हो जाता है। मुँहपर ठंडे पानीका छींटा मारनेसे आराम मिलता है। गरम दूध पीनेको दें।

(३) अफीम

अफीम भी एक घातक मादक द्रव्य है। इसे नशेके रूपमें कुछ लोग सेवन करते हैं। इससे मार्फीन भी बनती है जिसका प्रभाव अधिक घातक होता है। इसकी सामान्यसे अधिक मात्रा शरीरके अंदर चली जानेपर जीवन संकटमें पड़ जाता है।

लक्षण—(१) तेज जम्हाई आती है।

(२) आँखकी पुतली छोटी पड़ जाती है।

(३) शरीरमें पसीना, श्वाससे अफीमकी बदबू आती है। श्वास धीरे-धीरे परंतु गहरी चलती है।

(४) नाडीकेन्द्रोंमें उत्तेजनासे चेहरा लाल हो जाता है।

(५) नाडीकी गति तेज हो जाती है।

प्राथमिक उपचार—(१) नमकका घोल पिलाकर मुँहमें अँगुली डालकर उलटी करायें।

(२) मैगसल्फको पानीमें घोलकर पिलायें। एनीमा देकर विष बाहर निकाल देना चाहिये।

(३) सोने न दें। सिरपर पानी छिड़कते रहें और थपथपाते रहें। नींद आनेपर किसी भी प्रकारसे न सोने देनेका प्रयास करें। गरम चाय थोड़ी-थोड़ी देरपर देते रहें।

(४) आवश्यकता पड़नेपर श्वास चालू रखनेका प्रयास कृत्रिम श्वसन या ऑक्सीजन देकर करना चाहिये।

(५) मूत्रावरोध होनेपर कृत्रिम उपायोंसे कैथेटर लगाकर मूत्र करायें।

(६) हींगको पानीमें घोलकर पिलानेसे अधिकतर नशा उतर जाता है।

(७) रीठेका पानी पिलानेसे अफीमका नशा तत्काल उतर जाता है।

(८) पोटैशियम परमैगनेटके हल्के घोल (१:१०००)-से आमाशयका प्रक्षालन करना चाहिये। इससे अफीम आक्सीकृत होकर अहानिकर हो जाती है।

(४) कुचला

यह एक घातक विष है, जो स्वादमें बहुत कड़वा होता है। इसे मात्र १ ग्राम खा लेनेपर १० से १५ मिनटमें इसके विषके लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं और चिकित्सा न होनेपर एकसे पाँच घंटेमें यह विष जीवन-लीला समाप्त कर देता है।

लक्षण—(१) सुषुम्णाके प्रभावित होनेसे मांसपेशियोंमें ऐंठन और आक्षेप होने लगते हैं।

(२) मुँहका स्वाद कड़वा हो जाता है।

(३) शीघ्र ही दौरा पड़ना शुरू हो जाता है, रंग नीला पड़ जाता है, आँखें धँस जाती हैं, पुतलियाँ फैल जाती हैं।

(४) मुँह रक्तिम झागसे भर जाता है, शरीर कभी-कभी आगे या दायीं-बायीं ओर मुड़ जाता है।

(५) हाथ-पैर कड़े पड़ जानेसे मुड़ नहीं पाते, शरीर पसीनेसे तर होकर ठंडा पड़ने लगता है।

(६) नाडीकी गति धीमी या तेज हो जाती है।

(७) प्यास अधिक लगती है, पर दौरेके भयसे रोगी पानी नहीं पीता।

(८) अन्तमें दम घुटकर मृत्यु हो जाती है या हार्ट-अटैक हो जाता है।

प्राथमिक उपचार—(१) पौटेशियम परमैगनेट पानीमें घोलकर जितना हो सके तुरंत पिलायें।

(२) नमकका घोल अधिक मात्रामें पिलाकर वमन कराकर पेट साफ करें अथवा वमन न होनेपर ट्यूबसे पानी पेटके अंदर डालकर आमाशय धोनेकी शीघ्र व्यवस्था करें।

(३) आक्षेप रोकनेके लिये क्लोरोफॉर्म सुँघाना चाहिये।

(४) श्वास रुकने लगे तो कृत्रिम विधिसे श्वसन करायें। यथासम्भव प्राथमिक उपचार करके तुरंत चिकित्सकको दिखाना चाहिये। (क्रमशः)



नीरोग रहनेहेतु घरेलू नुस्खे

यहाँपर अनुभवके आधारपर, शरीरको नीरोग रखनेहेतु कतिपय परीक्षित घरेलू नुस्खोंका उल्लेख किया जा रहा है। इनका प्रयोग लाभदायक है—

१. कानदर्द—प्याज पीसकर उसका रस कपड़ेसे छान लें। फिर उसे गरम करके चार बूँद कानमें डालनेसे कानका दर्द समाप्त हो जाता है।

२. दाँतदर्द—हल्दी एवं सेंधा नमक महीन पीसकर, उसे शुद्ध सरसोंके तेलमें मिलाकर सुबह-शाम मंजन करनेसे दाँतोंका दर्द बंद हो जाता है।

३. दाँतोंके सुराख—कपूरको महीन पीसकर दाँतोंपर उँगलीसे लगावें और उसे मलें। सुराखोंको भली प्रकार साफ कर लें। फिर सुराखोंके नीचे कपूरको कुछ समयतक दबाकर रखनेसे दाँतोंका दर्द निश्चित रूपसे समाप्त हो जाता है।

४. बच्चोंके पेटके कीड़े—छोटे बच्चोंके पेटमें कीड़े हों तो सुबह एवं शामको प्याजका रस गरम करके, एक तोला पिलानेसे कीड़े अवश्य मर जाते हैं। धतूरके पत्तोंका रस निकालकर उसे गरम करके गुदापर लगानेसे चुन्ने (लघु कृमि)-से आराम हो जाता है।

५. गिल्टीका दर्द—प्याज पीसकर उसे गरम कर लें। फिर उसमें गो-मूत्र मिलाकर छोटी-सी टिकरी बना लें। उसे कपड़ेके सहारे गिल्टीपर बाँधनेसे गिल्टीका दर्द एवं गिल्टी समाप्त हो जाती है।

६. पेटके केंचुए एवं कीड़े—एक बड़ा चम्मच सेमके पत्तोंका रस एवं शहद समभाग मिलाकर प्रातः, मध्याह्न एवं सायंको पीनेसे पेटके केंचुए तथा कीड़े चार-पाँच दिनमें मरकर बाहर निकल जाते हैं।

७. छोटे बच्चों (शिशुओं)-का वमन—पके हुए अनारके फलका रस कुनकुना गरम करके प्रातः, मध्याह्न एवं सायंको एक-एक चम्मच पिलानेसे शिशु-वमन अवश्य बंद हो जाता है।

८. सरलतापूर्वक प्रसवके लिये—हींग भूनकर चूर्ण बना लें, चार माशा शुद्ध गो-घृतमें मिलाकर खिलानेसे सरलतापूर्वक प्रसव होनेमें सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त एक तोला राईके चूर्णमें भुनी हुई हींगका चूर्ण मिलाकर गरम जलके साथ सेवन करनेसे मूढगर्भ (गर्भमें मरा हुआ बच्चा) आसानीसे बाहर आ जाता है।

९. क़ब्ज़ दूर करनेहेतु—एक बड़े साइजका नीबू काटकर रात्रिभर ओसमें पड़ा रहने दें। फिर प्रातःकाल एक गिलास चीनीके शरबतमें उस नीबूको निचोड़कर तथा शरबतमें नाममात्रका काला नमक डालकर पीनेसे क़ब्ज़ निश्चित रूपसे दूर हो जाता है।

१०. आगसे जल जानेपर—कच्चे आलूको पीसकर रस निकाल लें, फिर जले हुए स्थानपर उस रसको लगानेसे आराम हो जाता है। इसके अतिरिक्त इमलीकी छाल जलाकर उसका महीन चूर्ण बना लें, उस चूर्णको गो-घृतमें मिलाकर जले हुए स्थानपर लगानेसे आराम हो जाता है।

११. कानकी फुंसी—लहसुनको सरसोंके तेलमें पकाकर, उस तेलको सुबह, दोपहर और शामको कानमें दो-दो बूँद डालनेसे कानके अंदरकी फुंसी बह जाती है अथवा बैठ जाती है, दर्द समाप्त हो जाता है।

१२. कुकुर-खाँसी—फिटकरीको तवेपर भून लें और

उसे महीन पीस लें। तत्पश्चात् तीन रत्ती फिटकरीके चूर्णमें समभाग चीनी मिलाकर सुबह, दोपहर और शामको सेवन करनेसे कुकुर-खाँसी ठीक हो जाती है।

१३. पेशाबकी कड़क तथा जलन—ताजे करैलेको महीन-महीन काट लें। पुनः उसे हाथोंसे भली प्रकार मल दें। करैलेका पानी स्टील या शीशेके पात्रमें इकट्ठा करें। वही पानी पचास ग्रामकी खुराक बनाकर तीन बार (सुबह, दोपहर और शाम) पीनेसे पेशाबकी कड़क एवं जलन ठीक हो जाती है।

१४. फोड़े—नीमकी मुलायम पत्तियोंको पीसकर गो-घृतमें उसे पकाकर (कुछ गरम रूपमें) फोड़ेपर हलके कपड़ेके सहारे बाँधनेसे भयंकर एवं पुराने तथा असाध्य फोड़े भी ठीक हो जाते हैं।

१५. सिरदर्द—सोंठको बहुत महीन पीसकर बकरीके शुद्ध दूधमें मिलाकर नाकसे बार-बार खींचनेसे सभी प्रकारके सिरदर्दमें आराम होता है।

१६. पेशाबमें चीनी (शक्कर)—जामुनकी गुठली सुखाकर महीन पीस डालें और उसे महीन कपड़ेसे छान लें। अठन्नीभर प्रतिदिन तीन बार (सुबह, दोपहर और शाम) ताजे जलके साथ लेनेसे पेशाबके साथ चीनी आनी बंद हो जाती है। इसके अतिरिक्त ताजे करेलेका रस दो तोला नित्य पीनेसे भी उक्त रोगमें लाभ होता है।

१७. सर्प काटनेपर—नीमका बीज, काली मिर्च एवं लाल रंगवाला सेंधा नमक सम (बराबर)-मात्रामें पीसकर एक तोलाभर लेकर शुद्ध गो-घृतके साथ लेनेसे सर्पका विष निश्चित रूपसे उतर जाता है।

सर्प काटनेकी पहचान—यदि सर्पके काटनेकी आशंका हो तो उसकी पहचानहेतु काटे हुए स्थानपर नीबूका रस लगा दें। यदि वह स्थान काला (साँवला) पड़ जाय तो यह समझ लें कि सर्पने काटा है, अन्यथा समझें कि सर्पने नहीं काटा है।

१८. बिच्छूके काटने (डंक मारने)-पर—शुद्ध शहदके साथ लाल मिर्च पीसकर डंकवाले स्थानपर लगानेसे बिच्छूका विष उतर जाता है।

१९. मस्तिष्कको कमजोरी—मेंहदीका बीज अठन्नीभर पीसकर शुद्ध शहदके साथ प्रतिदिन तीन बार (सुबह, दोपहर और शाम) सेवन करनेसे मस्तिष्कको कमजोरी दूर हो जाती है और स्मरणशक्ति ठीक होती है तथा इससे सिरदर्दमें भी आराम होता है।

२०. अधकपारीका दर्द—तीन रत्ती कपूर तथा मलयागिरि चन्दनको गुलाबजलके साथ घिसकर (गुलाबजलकी मात्रा कुछ अधिक रहे) नाकके द्वारा खींचनेसे अधकपारीका दर्द अवश्य समाप्त हो जाता है।

२१. खूनी दस्त—दो तोला जामुनकी गुठलीको ताजे पानीके साथ पीस-छानकर, चार-पाँच दिन सुबह एक गिलास पीनेसे खूनी दस्त बंद हो जाता है। इसमें चीनी या कोई अन्य पदार्थ नहीं मिलाना चाहिये।

२२. जुकाम—एक पाव गायका दूध गर्म करके उसमें बारह दाना काली मिर्च एवं एक तोला मिस्री—इन दोनोंको पीसकर दूधमें मिलाकर सोते समय रातको पी लें। पाँच दिनमें जुकाम बिलकुल ठीक हो जायगा अथवा एक तोला मिस्री एवं आठ दाना काली मिर्च ताजे पानीके साथ पीसकर गरम करके चायकी तरह पीयें और पाँच दिनतक स्नान न करें।

२३. मन्दाग्नि—अदरकके छोटे-छोटे टुकड़े करके नीबूके रसमें डालकर और नाममात्रका सेंधा नमक मिलाकर शीशेके बरतनमें रख दें। पाँच-सात टुकड़े नित्य भोजनके साथ सेवन करें। मन्दाग्नि दूर हो जायगी।

२४. प्रसूतके लिये—एक छटाँक नये कुशाकी जड़, चावलके धुले हुए एक गिलास पानीमें पीसकर कपड़ेसे छान लें। इस जलको सुबह, दोपहर एवं शामको पिलानेसे अवश्य लाभ हो जाता है।

२५. उदर-विकार—अजवाइन, काली मिर्च एवं सेंधा नमक—इन तीनोंको एकमें ही मिलाकर चूर्ण बना लें। ये तीनों बराबर मात्रामें होने चाहिये। उक्त चूर्णको प्रतिदिन नियमित रूपसे रातको सोते समय गरम जलके साथ सेवन करनेसे (मात्रा अठन्नीभर) सभी प्रकारके उदर-रोग दूर हो जाते हैं।

[श्रीशिवनाथजी दुबे, ए-१/३३ शीशमहल कॉलोनी, कमच्छा, वाराणसी-२२१०१० (उ० प्र०)]

अनुभूत चिकित्स्य प्रयोग

१. गठिया-रोगकी सफल चिकित्सा—फरवरी सन् १९९९ ई० में एक राष्ट्रीय स्तरकी वैज्ञानिक गोष्ठीमें हमलोग बकेवर (इटावा)-में सम्मिलित थे। त्रिदिवसीय इस गोष्ठीमें हमारे गुरुजी गठियासे काफी परेशान रहे; वहाँ उपस्थित भारतीय कृषि अनुसन्धान-संस्थान, नयी दिल्लीके प्रथम भू-दृश्य विज्ञानी डॉ० मिश्रजीने जब जाना कि ये गठियाके पुराने मरीज हैं, इन्हें उठने-बैठनेमें भी परेशानी होती है, तब उन्होंने एक प्राकृतिक कल्चरकी जानकारी दी और कहा कि इससे तैयार औषधिका प्रयोग करके आप रोगमुक्त हो सकते हैं, तब गुरुजीकी इच्छा जानकर मैं दिल्ली गया और उक्त कल्चर ले आया, जिससे डॉ० मिश्रजी स्वयं गठियासे मुक्त हुए और फिर कई लोगोंको निजात दिलायी; जनहितमें उक्त कल्चरकी जानकारी दी जा रही है—

जापानके खारसोगी राज्यके वैज्ञानिकोंद्वारा निर्दिष्ट इस चायके प्रयोगसे २०-३० साल पुराने गठियाके रोगी भी ठीक हो रहे हैं। यह पूर्व सोवियत गणराज्य, जापान आदिमें बहुप्रचलित है। इसे मन्चूरियन चाय/खारसोगी चाय या रसन टी भी कहते हैं। इसको तैयार करनेके लिये २.५ लीटर शुद्ध जलमें ३५० ग्राम चीनीके साथ १-२ चम्मच चायकी पत्तीको उबालकर साफ कपड़ेसे छानकर चौड़े मुँहके काँचकी बोतलमें गुनगुना होनेतक ठंडा करके, इसमें कल्चरकी २० ग्राम मात्रा मिला देते हैं। गर्मियोंमें ७ दिनोंमें और जाड़ोंमें १५ दिनोंमें कल्चरका किण्वीरण हो जाता है और वह जम जाता है जिसे अलग करके साफ काँचके बरतनमें पानीमें डुबोकर रख देते हैं। यह मदर कल्चर दूसरी चाय बनानेके काम आयेगा। किण्वित कल्चरको छानकर सुबह-शाम खाली पेट एक कप पीते हैं। इसका स्वाद सेबके रसकी तरह या एपिल साइडरकी तरहका होता है।

सुबह-शाम एक-एक प्याला तीन माहतक पीनेसे असाध्य गठिया रोग भी ठीक हो जाता है। सर्वप्रथम यह पेटकी गंदगी तथा स्थायीरूपसे गैसोंको बाहर निकाल देता है, शुरूमें पेटमें कुछ हलचल होनेपर भी घबराना नहीं चाहिये। इसके पीनेसे पेशाबकी मात्रा भी बढ़ जाती है। २१ दिनोंके बाद यह जोड़ोंमें एकत्र यूरिक-एसिडको बाहर निकालकर हड्डियोंके बीच जो चिकना एवं तरल पदार्थ होता है, उसमें वृद्धि करके जोड़ोंके संचालनमें सहायक होता है। रोगीको यथासाध्य चिकने पदार्थ, चावल, दहीका प्रयोग कम करना चाहिये। यह मन्चूरियन चायका कल्चर डॉ० रामलखन मिश्र प्रथम वैज्ञानिक भू-दृश्य अनुभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा परिसर, नयी दिल्लीके पास निःशुल्क उपलब्ध है।

२. खूनी बवासीर—कई लोगोंने आजमाया है। प्रातःकाल शौचके पूर्व शुद्ध जल पी लें, फिर शौच जायँ और शौचके बाद गुदा धुलनेके बाद तुरंत शुद्ध मृत्तिकाका गुदामें लेपन करें, १-२ मिनट बाद गुदा धो लें, कुछ ही दिनोंमें खूनी बवासीरसे मुक्ति मिल जायगी। प्रयुक्त मिट्टी सूर्यतापी, शुष्क एवं शुद्ध स्थानकी हो।

३. रक्त-प्रदर—कँटीली चौलाईकी जड़, रसौत, सोंठ, भारंगी तथा पिप्पली (पीपर)-को समभागसे चूर्ण बनाकर शीशीमें भर दें। इसकी तीन-तीन ग्राम मात्रा शहदसे चाटकर ऊपरसे चावलका पानी पीनेसे मात्र तीन-चार दिनोंमें ही लाभ मिलेगा।

४. उदरशूल—अजवायन और सेंधा नमककी सममात्राका चूर्ण ८—१० ग्राम लेकर गरम जलसे लें, बहुत जल्दी उदरशूल समाप्त हो जायगा।

५. खाँसी—आजमाये गये प्रत्येक खाँसीके रोगीको इससे अवश्य लाभ हुआ। सीतोपलादि आयुर्वेदका प्रसिद्ध चूर्ण है। घरपर भी बनाया जा सकता है। इसके लिये दालचीनी-एक भाग, छोटी इलायची-दो भाग, छोटी पीपर-चार भाग, वंशलोचन-आठ भाग और मिस्री-सोलह भाग लें। सारी औषधियोंका महीन चूर्ण बनाकर शीशेके जारमें भर लें। चूर्ण बनाते समय यह ध्यान दें कि वंशलोचन खूब महीन पिस जाय और मिस्री अन्तमें पीसकर मिलायें, सारी औषधियोंका चूर्ण खूब महीन हो। रात्रिमें सोते समय और प्रातः खाली पेट शहदके साथ एक चम्मच चूर्ण चाटकर सोयें। यदि जल पीना है तो रात्रिमें गरम जलका ही प्रयोग करें। दो-तीन दिनोंमें ही खाँसीसे छुटकारा मिल जायगा।

[डॉ० श्रीदिनेशचन्द्रजी उपाध्याय, ग्राम-सेंठा, पो० दयलापुर (कसानगंज) (जि० बस्ती) (उ०प्र०) पिन-२७२१३१]



हृदय-रोगमें घीया, तुलसी और पोदीनेका रामबाण प्रयोग

(श्री के०सी० सुदर्शनजी*, सरसंघसंचालक—आर०एस०एस०)

हृदय-रोग आज तेजीसे फैलता जा रहा है। खान-पानकी स्वच्छन्दता, भौतिकवादकी होड़में तरह-तरहके मांसाहारी एवं गरिष्ठ खाद्य पदार्थोंके प्रति आकर्षण, शारीरिक श्रमकी शून्यता, मानसिक तनाव आदि हृदय-रोगकी वृद्धिके कारण हैं।

हृदयकी शिराएँ जब अवरुद्ध हो जाती हैं तो हृदयाघातकी सम्भावना बन जाती है। अधिक चिकनाईयुक्त, वसायुक्त भोजन खूनमें थक्के जमाता है तथा उसीका कुपरिणाम शिराएँ अवरुद्ध होनेके रूपमें सामने आता है।

आधुनिक विज्ञानने हृदयरोगके निदानके लिये बाईपास सर्जरी, पेसमेकर-जैसी अनेक अत्यन्त खर्चीली सुविधाएँ ईजाद की हैं, किंतु इनका उपयोग साधारण रोगी नहीं कर सकता है और यह भी तथ्य सामने आये हैं कि ऑपरेशन करानेवालेको जीवनभर अनेक अन्य बीमारियोंका सामना भी करना पड़ता है।

घीया (लौकी) हृदयरोगमें रामबाण औषधि सिद्ध हुआ है। अनेक हृदयरोगियोंने इसका उपयोग किया और रोगसे छुटकारा पाया है। हृदयरोगियोंके लिये इस अनुभूत प्रयोगकी विधि इस प्रकार है—

घीयाको छिलकेसहित धोकर घीयाकशमें कश लें। कशी हुई घीयाको सिलबट्टेपर पीस लें। ग्राइंडरमें डालकर भी उसका रस निकाला जा सकता है।

घीयाको पीसते समय पोदीनाके ५-६ पत्ते तथा तुलसीके ८ पत्ते उसमें डाल दें। फिर पीसे हुए घीयाको कपड़छान करके उसका रस निकाल लें। उस रसकी मात्रा १२५—१५० ग्राम होनी चाहिये। इसमें इतना ही स्वच्छ जल मिलायें। अब यह २५० से ३०० ग्राम रस हो जायगा। इस रसमें चार काली मिर्चका चूर्ण तथा एक ग्राम सेंधा नमक मिला लें। अब इस रसको भोजन करनेके आधा या पौन घंटेके पश्चात् सुबह-दोपहर एवं रात्रिमें तीन बार लें। प्रारम्भमें ३-४ दिनतक रसकी मात्रा कम भी ली जा सकती है। रस हर बार ताजा लेना चाहिये। प्रारम्भमें यदि पेटमें कुछ गड़गड़ाहट महसूस हो तो चिन्तित न हों। घीयाका यह रस पेटमें पल रहे विकारोंको भी दूर कर देता है। तीन बार औषधि लेनेमें कठिनाई हो तो आधा-आधा किलो घीया इसी प्रकार सुबह-शाम लिया जा सकता है।

घीया पहले पाँच दिनतक लगातार लेना होगा, फिर २५ दिनका अंतराल देकर, पाँच दिनतक लगातार लें। इसे कम-से-कम तीन महीनेतक लेना होगा। उपचारके दौरान कोई भी खट्टी वस्तु न लें। न तो खट्टे फल, न टमाटर, न नीबू। इसके साथ एक गोली एकोस्प्रिन की १५० मि.ग्रा. सुबह-शामको तथा एम्पोलिनकी गोली लें।

इस प्रयोगके सम्बन्धमें यदि किसीको विस्तारसे जानकारी लेनी हो तो मुम्बईके डॉ० मनुभाई कोठारीसे सम्पर्क किया जा सकता है। उनका पता है—

१४ बी० स्वामी विवेकानन्द मार्ग, मुम्बई-४०००५४ फोन—(०२२) ६१२८१०७।

हृदयरोगियोंको मांस, मदिरा, धूम्रपान आदिका पूरी तरह त्याग करना आवश्यक है। चार-पाँच किलोमीटर टहलना भी जरूरी है।

एक और रामबाण नुस्खा

यदि हृदय गड़बड़ करने लगे तो एक अन्य उपचार यह है—

एक चम्मच पानका रस, एक चम्मच लहसुनका रस, एक चम्मच अदरकका रस, एक चम्मच शहद—इन चारों रसोंको एक साथ मिला लें और पी जायँ। इसमें पानी मिलानेकी आवश्यकता नहीं है। इसे दिनमें एक बार सुबह और एक बार शामको पियें। तनाव तथा चिन्तासे मुक्त होकर इसका प्रयोग करें। हृदयमें कोई और कठिनाई हो तो जो दवा लेते रहे हैं उसे ले लें। यह नुस्खा २१ दिनका है। आगे चलकर इस दवाको यदि प्रतिदिन सबेरे एक समय लेते रहेंगे तो हृदयरोग कभी नहीं होगा।

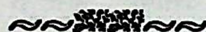
* राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके सरसंघसंचालक श्रीकुरुपल्ली सीतारम्मैया सुदर्शनजीका प्राकृतिक चिकित्सामें अगाध विश्वास है। उन्होंने अपनी तथा अपने अनेक निकटके मित्रोंकी अनुभूतियोंके बाद हृदयरोगके अनेक रामबाण नुस्खे रोगियोंको सुझाये। इन नुस्खोंकी जानकारी कल्याणके पाठकोंके लिये यहाँ प्रस्तुत की जा रही है (श्रीशिवकुमारजी गोयल)।

एक रामबाण लेप

मैं यहाँ हृदयरोगकी एक और रामबाण औषधि बताता हूँ। गुजरातके प्रसिद्ध नेता श्रीचिमन भाई पटेलकी पत्नी तथा पूर्व केन्द्रीय मन्त्री श्रीमती उर्मिला बेन एक बार हृदयरोगसे ग्रस्त हो गयीं। उन्हें बाईपास सर्जरी करानेका सुझाव दिया गया। उन्होंने नीचे बताया गया उपाय किया तथा बाईपास सर्जरीसे वे बच गयीं।

एक तोला काली साबूत उड़द रातको गरम पानीमें भिगो दें। सबेरे पानीसे उड़दके दाने निकाल लें तथा उड़दको छिलकेसमेत सिलबट्टेपर पीस लें।

उड़दकी इस पिट्ठीको एक तोला शुद्ध गुग्गुलके चूर्णमें मिला लें। इस योगको खल-बट्टेमें डालकर एक तोला अरंडीका तेल और गोदुग्धसे बना एक तोला मक्खन डालकर उसे ढंगसे मिला लें। काफी देरतक इसे खल-बट्टेमें रगड़ते रहें। स्नान करनेके बाद शरीरको पोंछकर इस लेपको छातीसे पेटके पासतक मल लें। चार घंटेके लिये लेट जायँ। उठ-बैठ भी सकते हैं। जब लेप सूख जाय तो स्नान कर लें। यह प्रयोग प्रतिदिन सुबह पाँच दिनतक करना चाहिये। एक महीनेके अंतरालके बाद फिर पाँच दिनतक करें। हृदयरोगसे पूरी तरह मुक्ति मिल जायगी।



बाल-रोगोंके नुस्खे

ज्वर—यदि बालकोंको ज्वर हो, दस्त आता हो, खाँसी आती हो, साँस फूल रही हो तथा उलटी होती हो तो नागरमोथा, पीपल, अतीस और काकड़ासिंगी—इन चारोंको कूट-पीस और छानकर शहद (मधु)-में मिलाकर बालकोंको चटाना चाहिये।

दस्त—सोंठ, अतीस, नागरमोथा, सुगन्धबाला और इन्द्र जौ—इन सबका काढ़ा बनाकर सुबह बच्चोंको पिलाना चाहिये।

हिचकी—कुटकीके चूर्णको शहदमें मिलाकर बच्चोंको चटानेसे उनकी हिचकियाँ दूर होती हैं।

खाँसी—धनिया और मिस्त्रीको पीसकर चावलके धोवनके साथ पिलानेसे बच्चोंकी खाँसी दूर होती है।

उलटी—सोना गेरूको महीन पीसकर, शहदमें मिलाकर बच्चोंको चटानेसे उलटी, खाँसी दूर होती है।

बालकोंका रोना और डरना—त्रिफला चूर्ण और पीपल (छोटी पीपल)-के चूर्णको मिलाकर शहदमें मिलायें और बच्चोंको चटायें। इससे रोना, डरना बंद हो जायगा।

बच्चे अगर मिट्टी खा लिये हों—पका केला शहदमें मिलाकर खिलाना चाहिये।

पेटमें कीड़े—प्याजका रस पिलानेसे पेटके कीड़े नष्ट होते हैं।

[श्रीमैथिलीप्रपन्नजी ब्रह्मचारी, श्रीदुर्गाशक्तिपीठ, शक्तिपुरम्, कुकरपल्ली (हैदराबाद) पिन—४०००६२ (आन्ध्रप्रदेश)]



एपेन्डीसाईटिस (आन्त्रपुच्छ)-पर सफल प्रयोग

एपेन्डीसाईटिसका डॉक्टर लोग ऑपरेशन करानेकी सलाह देते हैं, पर अब इसकी आवश्यकता नहीं। इस अनुभूत उपचारको अपनाइये, यह परीक्षित नुस्खा है। जिन्होंने इसको अपनाया है, पूर्ण लाभ उठाया है। मैंने कई रोगियोंपर इसका प्रयोग करके शर्त-प्रतिशत सफलता पायी है। जंगलकी एक बूटी 'बनतुलसा' है। उसको पीसकर लुगदी बनाकर किसी लोहेकी करछुल आदिपर उसको गरम करके, (भूनकर नहीं) उसपर थोड़ा-सा नमक छिड़क दें और दर्दके स्थानपर उस लुगदीकी टिकियाको रखकर ४८ घंटेमें तीन बार बदल कर बाँधें। इस बीच रोगीको आराम करना चाहिये। इस ४८ घंटेके उपचारके बाद रोग सदैवके लिये जाता रहेगा।

[—विष्णुकुमार जिन्दल,
फ्लैट नं० ३, कटोरी मिल मार्केट,
पो०—मोहननगर २०१००७ (गाजियाबाद)]



नीमसे वातरोगसे मुक्ति

मैं लक्ष्मी-नारायणमन्दिरमें पुजारी हूँ। मैं कुछ समय पूर्व वातरोगसे बहुत पीडित था। मेरे दायें कूल्हेसे दायें पंजेतक चमक और दर्द रहता था। छः माह इलाज कराया पर कोई लाभ नहीं हुआ। असहनीय दर्दके मारे मैं न बैठ पाता था, न खड़ा रह पाता था और न लेट ही पाता था। भगवान् श्रीहरिकी कृपासे मन्दिरमें एक बुजुर्ग आते रहे, आयु लगभग ९० वर्ष रही होगी। उन बुजुर्गने मुझसे कहा कि 'पुजारीजी! दवाओंसे वातरोगमें कम आराम मिलता है। अगर आप हमारी बात मानें तो आप नीमकी नयी पत्ती (जो आषाढ़से आश्विन मासतक आती हैं) डेढ़ तोला सुबह खाली पेट चबाकर खायें और रातको सोते समय ५० ग्राम गुड़ और १ तोला शुद्ध घीका सेवन करें। पानी तुरंत न पियें तो आपको पंद्रह दिनमें वातरोगसे आराम मिल जायगा।' मैं तो सब ओरसे निराश हो ही चुका था। अतः मैंने उन बुजुर्ग सज्जनकी बात मानना ही उचित समझा। संयोगसे उस समय आषाढ़का महीना था। नीममें नयी पत्तियाँ निकल रही थीं। मैंने नित्य खाली पेट नीमकी डेढ़ तोला पत्ती खाना शुरू किया और रात्रिमें सोते समय ५० ग्राम गुड़ एवं १ तोला शुद्ध घी खाने लगा। श्रीहरिकी कृपासे कुछ ही दिनोंमें वातरोगसे मुझे मुक्ति मिल गयी। आशा है कि कल्याणके पाठक इस नुस्खेका अवश्य प्रयोगकर लाभ उठायेंगे।

[पं० श्रीवीरेन्द्रकुमारजी दुबे, पुजारी श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर, अशोक होटल चौराहा रेलवे स्टेशन रोड, सिविल लाइन्स, झाँसी-२८४००१ (उ०प्र०)]



मिरगी एवं अनिद्रा रोगके अनुभूत प्रयोग

(१) मिरगी रोगनाशक सफल सिद्ध अवलेह और घृत

मिरगी बड़ा ही भयंकर रोग है। मिरगी क्यों और कितने प्रकारकी होती है? हम इस विस्तारमें न पड़कर केवल इतना ही निवेदन कर रहे हैं कि चिकित्सा-विज्ञान (मेडिकल साइंस)-में सर्वोच्चताका दम्भ करनेवाले अमेरिका, जर्मनी, जापान, फ्रांस, इंग्लैण्ड आदि देशोंमें भी मिरगीका कोई इलाज नहीं है। किंतु हमारा भारत महान् तो हजारों सालसे जगद्गुरु रहा है। आयुर्वेदमें इस रोगका परीक्षित इलाज मौजूद है। ऐसे ही सफल सिद्ध मिरगी-नाशक दो प्रयोग—सिद्ध अवलेह और घृत हम यहाँ लोक-कल्याणार्थ पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत कर रहे हैं।

इन प्रयोगोंके सेवन तथा पथ्यों और परहेजोंका एक वर्षतक पालन करनेसे कठिन-से-कठिन और पुरानी-से-पुरानी मिरगी सदाके लिये नष्ट हो जाती है। पथ्यके बिना औषधि-सेवन व्यर्थ है।

(क) सिद्ध अवलेह

घटक द्रव्य (Ingredients)—गम्भारी फल गूदेसहित, हल्दी ठोस गाँठदार, सिंघाड़ेकी सूखी एवं ठोस (घुनरहित) गिरी अर्थात् सूखे सिंघाड़े, असली ब्राह्मी बूटी, शंखपुष्पी (शंखा होली), बड़ी जातिके बेर-वृक्षके छायामें सुखाये पत्ते, अनारदाना मीठा, भारंगीका पञ्चाङ्ग, वच मीठी, खरैंटी, लाल-कमलका पञ्चाङ्ग (फूल, पत्ते, कमलगट्टे, जड़ और नाल), तालीस पत्र, नीम और कचनारकी अन्तरछाल, गिलोयछाया, शुष्क कुटकी, नागकेशर, निशोथ, मुलहठी, पिंडखजूर गुठली निकाला हुआ, सोंठ, असली काला अगर, जायफल, मालकांगनी, त्रिफला, असगन्ध, अम्लवेत, इमलीके बीज, दारुहल्दी, मूसली-सिम्बल, नेत्रबाला, नागरमोथा, विधायरा, शतावर असली पीले रंगकी, काली मिर्च, इन्द्रायणकी जड़, रास्नाके पत्ते, अतीस (ठोस घुनरहित), मरोड़फली, कौंचके छिलके-रहित बीज, मेंहदीके ताजे पत्ते छायामें सुखाये हुए, पीली बड़ी हरड़का छिलका, मुनक्का बीज निकाले हुए, मजीठ, बथुआके छायामें सुखाये पत्ते, हरी इलायचीके बीज, दालचीनी असली, पत्रज, कूटमीठा, तगर, लाल एवं सफेद चन्दनका बुरादा असली, असली वंशलोचन नीली झाईंवाला—ये सभी द्रव्य ४०-४० ग्राम असली और नये ले लीजिये। सभी द्रव्योंको खूब घोट-पीसकर इसका कपड़छान बारीक चूर्ण मैदाके समान बना लें। अब गोमाताका असली घी, यह न मिले तो बादाम-रोगन इतना ले लें कि इस चूर्णमें मसल-मसलकर मिलानेसे कम या अधिक न हो। अब चौड़े मुँहकी चीनीकी बर्नीमें अच्छी तरहसे बादाम-रोगन (बादामका तेल) मिलाया हुआ उक्त चूर्ण डाल दें तथा

इसी चूर्णके बराबर पिसी हुई मिस्री और मिस्रीके बराबर ही असली शहद उक्त चूर्णपर ऊपरसे डालकर किसी साफ बड़ी कलछीसे कम-से-कम एक घंटेतक सबको धीरे-धीरे घोट लीजिये। ताकि सभी द्रव्य अच्छी तरह एक-जान हो जायँ, बस घोर अपस्मार (मिरगी)-नाशक अमोघ एवं स्वादिष्ट अवलेह सेवनके लिये तैयार है।

सेवन-विधि—इस अवलेहको सेवन करनेसे पहले दो दिनतक निम्नलिखित विधिके अनुसार पेटकी सफाई करें। गुलकन्द चार चम्मच, त्रिफला-चूर्ण एक चम्मच और सत ईसबगोल आधी चम्मच—सबको मिलाकर केवल रातको सोनेसे पहले खा लें और एक गिलास दूधमें 'सीरप शंखपुष्पी' ५ चम्मच ऊपर से पी लें। सुबह एक-दो दस्त साफ होंगे और चित्त प्रसन्न होगा। ऐसा लगातार दो या तीन दिनतक करें। उदर-शुद्धि हो जायगी। चौथे दिनसे उक्त अवलेह एक चम्मच सुबह खाली पेट खिलाकर एक गिलास मीठा ठण्डा किया हुआ गोमाताका दूध रोगीको पिलायें। इसी प्रकार दूसरी खुराक शामको ५ बजे गोमाताके दूधसे पिलायें। इससे ८-१० सालकी मिरगी दो माहतक सेवन करानेसे एवं २०-२५ सालकी पुरानी और हठी तथा किसी भी टाइपकी मिरगी निरन्तर १०० दिनोंतक सेवन करानेसे सदाके लिये विदा हो जाती है। सैकड़ों असाध्य मिरगी रोगियोंपर अनुभूत है। मिरगीके अतिरिक्त यह अवलेह घोर उन्माद (पागलपन), योषोपस्मार (हिस्टीरिया)-पर भी रामबाण है।

(ख) मिरगीनाशक सिद्ध घृत

उपर्युक्त नुस्खेकी ही सभी दवाएँ लेकर उन सबको श्लक्ष्ण (दरदरा) कूट-पीसकर इसी मिश्रणमें गन्नेकी जड़, सफेद दूब, काँस और कुशकी जड़ें ४०-४० ग्राम लेकर उन्हें भी दरदरा (मोटा-मोटा) कूटकर १६ गुने पानीमें डालकर खूब उबाल लें। जब पानी चार गुना शेष रह जाय तो आगसे उतारकर ढककर रख दें। ठंडा होनेपर मसलकर सूती कपड़ेमें छान लें। फिर इसमें समभाग अजा दुग्ध (यानी चार सेर काली बकरीका दूध) और चार सेर गोमाताका शुद्ध घृत मिलाकर और मंद आँचपर रखकर तबतक पकायें, जबतक कि सारा पानी जलकर सिर्फ घी शेष न बच जाय। अब इसे ठंडा करके चीनी मिट्टीकी बर्नीमें रख लें। सफल सिद्ध घृत तैयार है।

नोटः—इस घृतको बनानेसे पहले इसमें मिस्री, शहद, बादाम-रोगन न मिलायें।

सेवन-विधि—पूर्वोक्त रीतिसे दो-तीन दिनोंतक हलका जुलाब देकर पेटकी सफाई करा दें और एक-एक चम्मच सुबह-शाम यह घृत खाकर ऊपरसे एक-एक गिलास कुनकुना दूध पिलाया करें। ६० दिनोंमें घोर अपस्मार (मिरगी)-रोग सदाके लिये चला जायगा।

अपनी सुविधाके अनुसार इनमेंसे कोई-सी भी एक दवा बनाकर सेवन करायें। इस घृतसे पागलपन और स्त्रियोंका हिस्टीरिया भी समूल नष्ट होता है।

विशेष—अवलेह या घृतके सेवनकालमें सप्ताहमें एक दिन दवा बंद रखकर उस रातको पूर्वोक्त जुलाब अवश्य दें। दिनमें दो समय दवा खिलायें और रातको जुलाब दे दें। अगले दिन दवा न दें। दूसरे दिनसे पुनः दवा खिलाना शुरू करें, इससे विशेष और स्थायी लाभ होता है।

परहेज—तले पदार्थ, तेल, गुड़, सभी खटाइयाँ, मट्ठा, दही, चावल, आलू, अर्वी, बैगन, ब्रेड, बिस्किट, टोस्ट, फूलगोभी, मटर, चनेका बेसन, उड़द, मसूर, मांस, मदिरा, मछली, मादक-द्रव्यादिका एक सालतक कदापि सेवन न करें। मांस-मदिरादि मादक-द्रव्योंका जीवनभर कदापि सेवन न करें। मेवा और मैदेसे बने पदार्थ न खायँ।

पथ्य—मूँग और अरहरकी दालें, पालक, बथुआ, चौलाई, मेथीकी भाजी, मेथी-दानेका साग, पत्ता गोभी, परवल, टिण्डा, लौकी, तुरई, गिलकी, गेहूँकी रोटी, दलिया, दूध, घी, शक्कर, मीठे सेब, चीकू, पपीता, पेठेकी मिठाई आदिका सेवन करें। पथ्यके बिना औषधि-सेवन व्यर्थ है। औषध-सेवनकालमें ब्रह्मचर्यपालन अवश्य करें।

(२) अनिद्रा—बनाम विकृत मानस-जीवन

आजकी मानसिकतामें जीनेवाला व्यक्ति अप्राकृतिक कृत्रिम दिनचर्याका अवलम्बन लेकर मानसिक अशान्ति, चिन्ता, तनाव आदिके शिकंजेमें पूर्णतया जकड़ चुका है। इस भौतिकवादी युगमें वह न जाने कितने प्रदूषणोंसे बुरी तरह आक्रान्त है।

ऐसी अशान्तिमें गहरी सुखद निद्रा कहाँ? किंतु आयुर्वेदमें इस अनिद्रा-रोगका भी नितान्त हानिरहित इलाज है—सर्पगंधा घनवटी २ गोली, दिमागदोषहरी २ गोली, खमीरा गावजबान अम्बरी जवाहरवाला एक चम्मच, सीरप शंखपुष्पी ४ चम्मच—यह सब एक मात्रा है। केवल रातको सोते समय पहले उक्त खमीरा खाइये। फिर एक कप दूधमें ४ चम्मच सीरप शंखपुष्पी घोल लें। फिर उक्त चारों गोलियोंको उस एक कप दूधसे निगल लें। रोगन लबूब सबा—यह यूनानी दवाओंसे निर्मित एक केश तेल है। इसे

केवल रातको सोते समय ही सिरके बीचमें चुपड़कर १५ मिनटतक हलके-हलके मलें। तीसरे दिनसे गहरी सुखद नींद आने लगती है। २०-२५ दिनोंतक कर लें। स्थायी लाभ हो जायगा। इसके बाद इन दवाओंका उपयोग छोड़ दें। इसकी आदत नहीं पड़ती। केवल रातको ही उपयोग करें। दिनमें न करें अन्यथा दिनभर ऊँघते रहेंगे।

[प्रेषक—वैद्य ठाकुर श्रीबनवीर सिंह 'चातक' पो० लाड़कुई, जिला-सीहोर (म० प्र०) पिन—४६६३३१]

मधुमेह-निवारण—चार अनुभूत योग

मधुमेह (डायबिटीज)-का रोग वर्तमानमें बहुत तीव्रगतिसे बढ़ रहा है। शारीरिक श्रमका अभाव तथा खान-पानमें असंतुलन इस रोगका सामान्य कारण है। शारीरिक व मानसिक श्रमका संतुलन बने रहनेपर मधुमेह नहीं सताता। भूख-प्यास बढ़ जाना, मूत्र अधिक तथा बार-बार होना, थकान बने रहना, त्वचा खुश्क एवं खुरदरी होना, चर्म-विकार—खुजली, फोड़ा-फुंसी होना, घावोंका शीघ्र न भरना, दृष्टिशक्तिकी क्षीणता, स्मृतिह्रास, मानसिक थकान, बालोंका झड़ना, लीवर खराब हो जाना आदि इसके लक्षण हैं। मधुमेहमें क्लोम ग्रंथि (पैन्क्रीयाज)-रस (Insulin)-का श्राव कम हो जाता है, कभी-कभी यह अत्यन्त कम हो जाता है। इसके कारण पक्षाघात, हृदय-विकार, रक्तचाप, अदीठ (कारबंकल) आदि तथा पुरुषत्व-क्षीणताका लक्षण देखनेको मिलता है, इससे मधुमेहके रोगीका मनोबल गिरा रहता है। ऐसेमें मूत्र-शर्करा एवं रक्त-शर्कराका परीक्षण करा लेना चाहिये। रक्त-शर्करा (Blood Sugar Fasting) ८०—१२० mg. नार्मलरेंज तथा पी० पी० १६० तक नार्मल माना जाता है। जाँचसे यदि शर्कराकी मात्रा नार्मलसे अधिक हो तो नीचे लिखा हुआ औषधोपचार करना लाभप्रद होगा—

योग १—गुड़मारकी पत्ती ३० ग्राम, नीमकी पत्ती ३० ग्राम, तुलसीकी पत्ती ३० ग्राम, सदाबहारकी पत्ती फूल ३० ग्राम, बेलकी पत्ती ३० ग्राम, जामुनकी गिरी ५० ग्राम, तजकलमी असली २० ग्राम, वंशलोचन असली २० ग्राम, जायफल १० ग्राम, जावित्री १० ग्राम, इलायची छोटी १० ग्राम, रूमी मस्तगी असली १० ग्राम, बिनौलाकी गिरी २० ग्राम, काली मिर्च ३० ग्राम, तेजपत्र असली ३० ग्राम, करेला-बीज २० ग्राम, मामज्जक (नाय) ३० ग्राम—इन सभीको सुखा लें और बारीक चूर्ण बनाकर रख लें।

मात्रा—इस चूर्णको ३ ग्राम प्रातः-सायं पानीसे लें। यदि गोली बनाना हो तो बबूलके गोंदके पानीसे ३ ग्रामकी बना लें। १ गोली सुबह-शाम पानीके साथ लें।

योग २—अमृता (गिलोय), तुख्महयात (पनीरडोडे), असली चिरायता कड़वा, देशी बबूलकी छाल, गूलरकी पत्ती, गोरखमुंडी, अर्जुनके पत्ते—सभीको समान भागमें लेकर अधकुटा करके आठ गुने जलमें २४ घंटे भिगो दें। फिर काढ़ा बनावें, चौथाई पानी शेष रहनेपर छानकर पुनः पकावें, गाढ़ा हो जानेपर थोड़ी-सी पिसी हुई हलदीका चूर्ण मिलाकर १ ग्रामकी गोली बना लें।

मात्रा—२ गोली प्रातः-सायं मेथीके पानीसे लें। १० ग्राम मेथी रातको आधा कप पानीमें भिगो दें, सुबह इसी पानीसे लें, शामको भी ऐसे ही लें।

योग ३—असली शिलाजीत २० ग्राम, त्रिबंगभस्म १० ग्राम, बंगभस्म १० ग्राम, लोहभस्म १० ग्राम, स्वर्णमाक्षिकभस्म १० ग्राम, मकरध्वज या रससिन्दूर १० ग्राम, अफीम ३ ग्राम, कपूर ३ ग्राम, असली सोनेका वर्क बड़ा १० अदद, असली चाँदीका वर्क ६० अदद—सभीको खरलमें डालकर अदरकके रसकी ७ भावना दें तथा धतूरेके पत्तोंके रसकी ७ भावना दें [रसमें भिगोकर ८ घंटेतक रख दें, यही भावना है]। भलीभाँति घोटकर २४० गोली बनाकर सुखाकर रख लें।

मात्रा—२ गोली प्रातः तथा २ गोली रातको चीनीरहित दूधके साथ लें।

योग ४—नीमकी पत्ती, गूलरकी पत्ती, सदाबहारकी पत्ती, सँभालूकी पत्ती, लाल मिर्च—सबकी चटनी पीस ले। इसमें तीन बूँद अमृतबिन्दुकी मिला दे तथा इसे अदीठव्रण (कारबंकल)-पर लगावे। यह लेप कारबंकलका विष नष्ट करता है। शोधन एवं रोपण है। शुद्ध होनेपर पञ्चगुण तैलका फाया लगाना चाहिये। अंदरसे मधुमेहनाशक प्रयोग चलाते रहना चाहिये।

(अमृतबिन्दु, पिपरमेंट, सत अजवाइन, कपूरको बराबर लेकर शीशीमें रखें तरल होगा।)

आसन-व्यायाम—मधुमेहके रोगीको प्रातः-भ्रमण बहुत लाभकारी है। ५-७ किलोमीटर घूमना अति उत्तम है। भस्त्रिकासन-हलासन एवं सर्वाङ्गासन सीखकर करना चाहिये। भस्त्रिकासन (लोहारकी धौंकनीके समान श्वास-प्रश्वास) करनेसे लाभ यह होता है कि इससे इन्सुलिन

(Insulin)-का निर्माण होता है।

पथ्यापथ्य—मधुमेहमें जौ-चना-गेहूँकी रोटी, पुराना चावल, मूँग-मसूर-चना-अरहरकी दाल, पत्तियोंकी सब्जी, परवल, बैगन-करेला आदि लाभदायक है। कंद शाक, मीठे फल, चीनी-चाय-कफकारक चीजें हानिप्रद हैं। स्थूल रोगियोंको मोटापा कम करना चाहिये, भार कम करना चाहिये।

जो लोग किसी अन्य पैथीकी दवा ले रहे हों, वे उसे धीरे-धीरे कम करें, लाभ पूरा होनेपर अन्य दवा छोड़ दें। औषधि रोगमुक्त होनेतक चलानी चाहिये। उसके बाद सामान्य उपचार जारी रखना चाहिये। शास्त्रीय योगोंका अनुभवी वैद्योंके परामर्शके अनुसार ही प्रयोग करना चाहिये।

[वैद्य श्रीलक्ष्मीनारायणजी शुक्ल, आयुर्वेदालङ्कार
१२, शिवपुरी कालोनी, पिकनिक स्पाट रोड,
फरीदीनगर, लखनऊ (उ० प्र०)]



मधुमेह और उपचार

मधुमेहके रोगियोंको एक तो गोलियोंपर या इन्शुलिनपर निर्भर रहना पड़ता है। गोलियोंका असर सिर्फ कुछ दिनोंतक दिखायी देता है। जैसे-जैसे आयु बढ़ती है, ऐलोपैथीकी गोलियाँ काम नहीं करतीं, परिणामतः रक्त-शर्कराका प्रमाण बढ़ना, आँखें कमजोर होना, हृदय-विकार होना, किडनीका कमजोर होना या काम करना बंद हो जाता है। मधुमेहियोंके लिये शरीरमें इन्शुलिन बनना बंद हो जाता है। इसलिये बाहरसे स्वयं, डॉक्टरकी सलाहसे इन्शुलिन लेना यानी पूर्णतया स्वस्थ रहना आवश्यक हो जाता है।

इन्शुलिन तथा गोलियोंपरसे निर्भरता कम करने तथा पूर्णतया स्वस्थ रहनेके लिये नीचे दिया हुआ उपाय अवश्य करें। इससे ऐलोपैथीकी दवाइयोंसे होनेवाले विपरीत-परिणामोंसे बच सकते हैं तथा आयुमें भी वृद्धि होती है।

अगर आप इन्शुलिन या डाओलिल, ग्लासिफेज या तत्सम गोलियाँ लेते हों तो उनको पूर्णतया बंद करनेके बाद तुरंत रक्त-शर्कराकी जाँच करायें, खाना खानेके पहले तथा डेढ़ घंटे बाद उसका रेकॉर्ड रखें।

बाजारसे अच्छी खुशबूवाला तेजपान (तमालपत्र) २५० ग्राम लाकर उसको बार-बार पीसकर जितनी बारीक हो सके उतनी गेहूँके आटे-जैसी पाउडर बना लें। उसे एक बंद डिब्बेमें रखें।

रातको सोनेसे पहले एक चम्मच पाउडर एक काँचके गिलासमें डालकर उसके ऊपर तीन चौथाई गिलास पानी धीरे-धीरे डालें तथा उसको ढक दें। सबेरे उठकर कुल्ला करनेके तुरंत बाद उस गिलासमेंसे ऊपर जमा हुआ जेली-जैसा पदार्थ चम्मचसे निकालकर बचा हुआ पानी बारीक कपड़ेसे छानकर वह पानी पी लें, उसके उपरान्त आधा-एक घंटा कुछ न लें।

दिनके खानेमें दो रोटी, सब्जी, सलाद, दाल, अंकुरित चना, मटरकी थोड़ी मात्रामें हरी सब्जी एवं थोड़ा-सा चावल ले सकते हैं।

शामको ५ बजे थोड़ा-सा नाश्ता, जिसमें एक गेहूँकी रोटी ले लें।

रातके खानेमें डेढ़ रोटी, दाल, सब्जी, थोड़ा चावल सेवन करें।

सोते समय आधे चायके चम्मचसे भी कम हलदी-पाउडर एक कप गरम पानीमें डालकर पी लेवें, उसके उपरान्त ठंडा पानी या दूध न लें।

जैसे आपको सुविधा हो, सुबह या शामको कम-से-कम २० से ४० मिनटतक खुली हवामें योगासन-व्यायाम करें।

हर तीन महीनेमें या जब कभी ऐसा लगे कि आपकी रक्त-शर्करा कम हो गयी है तो पैथालॉजीमें जाकर जाँच करा लें।

मेरा यह अनुभव है कि मेरी रक्त-शर्करा जहाँ २७५ से ३०० तक रहती थी एवं मुझे दो बार २०-२२ युनिट इन्शुलिन लेना पड़ता था, वहाँ अब ८-८ युनिट इन्शुलिन लेना पड़ता है एवं रक्त-शर्करा १३२ से १४० यानी सामान्य है। मेरी उम्र ५३ साल है तथा मैं यह उपाय ५ सालोंसे कर रही हूँ।

उपर्युक्त उपाय मैंने एम्०डी० इन्डोक्रायनॉलॉजिस्टकी सलाहसे शुरू किया जो कि डायबिटीजके एवं मोटापा कम करनेवाले एक अच्छे सलाहकार हैं। उन्होंने बताया है कि ४-४ युनिट यानी बहुत ही कम मात्रामें इन्शुलिन चालू रखनेसे उत्साह बना रहता है।

[श्रीमती मीना पत्की, वन्दना अपार्ट्स,
रामदास पेठ, नागपुर—४४००१० (महा०)]



सफेद दागका नुस्ख़ा

शरीरमें अचानक ही विभिन्न स्थानोंपर धीरे-धीरे सफेद चिह्न निकलते-निकलते पूरी तरहसे फैलने लगते हैं। यदि प्रारम्भमें ही उपयुक्त उपचार नहीं किया जाता है तो यह रोग शरीरके समस्त चर्मको श्वेत चिह्नोंके रूपमें परिवर्तित कर देता है। यह बहुत बुरा रोग है और जड़ पकड़नेपर इसे नियन्त्रित करना कठिन हो जाता है। इसका उपचार सरल नहीं है, बल्कि दीर्घगामी है।

रोगके कारण—(क) सामान्य रूपसे जब शरीरमें मेलिननकी कमी हो जाती है तो चमड़ी सफेद होने लगती है। (ख) सदा क़ब्ज़ रहने, पेचिश, संग्रहणी, हृदय निर्बल, अतड़ियाँ खराब होनेपर सफेद दाग हो जाते हैं। (ग) दिमागपर अधिक बोझ पड़नेपर भी यह रोग हो जाता है। (घ) मांसाहारियोंको यह अधिक हो सकता है।

उपचार—यह रोग अत्यन्त पेचीदा और दुष्प्रवृत्तिका है, परंतु साध्य है। नियमित रूपसे खान-पानमें पूरा नियन्त्रण रखनेसे, चिह्नोंपर दवाओंका प्रयोग करनेसे धीरे-धीरे श्वेत चिह्न समाप्त हो जाते हैं।

१. खान-पानपर नियन्त्रण—(१) भोजन, साग-सब्जी, दालों और फलों आदिके सेवन करनेमें सभी प्रकारके नमकका परित्याग करना परम आवश्यक है, तभी दवाओंका उपयोग सार्थक एवं प्रभावी हो सकेगा। नमकका प्रयोग या नमकमिश्रित पदार्थों एवं द्रव्यों—रसोंका परित्याग करना अति आवश्यक है, (२) केला (हरा), करेला, लौकी, तोरई, सेम, सोयाबीन, पालक, मेथी, चौलाई, टमाटर, गाजर, परवल, मूली, शलजम, चुकन्दर आदिको बिना नमकके प्रयोग करें, (३) दालोंमें केवल चनेकी दाल नमकरहित प्रयोग करें, (४) गाजर, पालक, मौसमी, करेलाका रस नमकरहित अधिकतर पीयें। बथुएका रस प्रतिदिन पीना भी लाभकारी है, (५) चनेकी रोटी (नमकरहित) देशी घी और बूरेके साथ खायें तथा (६) भुने हुए, उबले हुए चने नमकरहित प्रयोग करें।

२. खानेकी औषधि—अनारके पत्तोंको छायामें सुखाकर बारीक करके पीस लें और प्रातः १० ग्राम तथा रातको सोते समय १० ग्राम प्रतिदिन ताजे पानी या गायके दूधके साथ सेवन करें। **अथवा**—बावचीके बीज भिगोकर नियमित रूपसे प्रातः-रातको इसके पानीका सेवन करें और बीज घिसकर दागोंपर लेप करें। **अथवा**—माणिक्य भस्म आधा रत्ती नियमित रूपसे प्रातः तथा सायं शहदके साथ प्रयोग करें। **अथवा**—पिगमेन्टकी दो-दो गोलियाँ प्रातः, दोपहर तथा सायंकालमें सेवनीय हैं।

३. दागोंपर लगानेकी औषधि—दो तोला बावचीके भिगोये हुए बीजोंको पीसकर प्रातः-सायं अर्थात् दो बार प्रतिदिन प्रयोग करें। **अथवा**—बथुएका रस एक गिलास और आधा गिलास तिलका तेल कड़ाहीमें गर्म करें और बथुएका रस जलनेपर तेलको शीशीमें रखें और प्रतिदिन प्रातः-सायं दागोंपर लगायें। **अथवा**—बावचीके तेल—रोगन प्रातः-सायं सफेद दागोंपर लगायें। **अथवा**—उड़दकी दालको पानीमें पीसकर या लहसुनके रसमें हरड़ घिसकर सफेद दागोंपर प्रातः-सायं लगायें। **अथवा**—हल्दी १५० ग्राम, स्प्रिट ६०० ग्राम मिलाकर धूपमें रखकर दिनमें तीन बार चिह्नोंपर लगायें। **अथवा**—तुलसीके पौधेको जड़सहित उखाड़कर पानीसे साफकर सिलपर बारीक पीस लें और इसे आधा किलो तिलके तेलमें मिलाकर कड़ाहीमें डालकर धीमी आगपर गर्म करें। जब पक जाय, तब छानकर किसी बरतनमें रखें और दिनमें तीन बार दागोंपर लेप करे। **अथवा**—बेहयाके पौधेको उखाड़नेपर निकले हुए दूधका लेप नियमित रूपसे दिनमें दो बार करें। अनार तथा नीमके पत्ते पीसकर प्रातः-सायं दागोंपर लेप करें।

विशेष—खान-पानमें चीनी, गुड़, दूध, दही, अचार, तेल, डालडा, मट्ठा, रायता, अवलेह, पाक आदिका प्रयोग भी वर्जित है।

[श्रीराजपालसिंहजी सिसौदिया,
रिटा० वित्त एवं लेखाधिकारी ४/३९ केलानगर,
सिविल लाइन्स, अलीगढ़, (उ० प्र०) पिन-२०२००१]



पायरिया

पायरिया-रोगसे ग्रस्त होनेपर दाँत ढीले होकर हिलने लग जाते हैं। मसूढ़ोंसे मवाद और रक्त निकलने लगता है। दाँतोंपर कड़ी पपड़ियाँ जम जाती हैं। मुँहसे दुर्गन्ध आने लगती है। उचित चिकित्सा न करनेपर दाँत कमजोर होकर गिर पड़ते हैं।

पायरियाका प्रारम्भ दाँतोंकी ठीक देखभाल न करने, अनियमित ढंगसे जब-तब कुछ-न-कुछ खाते रहनेके कारण तथा भोजनके ठीकसे न पचनेके कारण होता है। लीवरकी खराबीके कारण रक्तमें अम्लता बढ़ जाती है। दूषित अम्लीय रक्तके कारण दाँत पायरियासे प्रभावित हो जाते हैं। मांसादि तथा अन्य गरिष्ठ भोज्य-पदार्थोंका सेवन, पान, गुटका, तम्बाकू आदि पदार्थोंका अत्यधिक मात्रामें सेवन, नाकके बजाय मुँहसे श्वास लेनेका अभ्यास, भोजनको ठीकसे चबाकर न खाना, अजीर्ण, क़ब्ज़ आदि पायरिया होनेके प्रमुख कारण हैं।

चिकित्सा

(१) दाँतोंकी प्रतिदिन नियमित रूपसे अच्छी तरह सफाई करनी चाहिये। भोजन करनेके बाद मध्यमा अँगुलीसे अच्छे मंजनद्वारा दाँतोंको साफ करे। नीम या बबूलका दातौन खूब चबाकर उससे ब्रश बनाकर दाँत साफ करने चाहिये।

(२) सरसोंके तेलमें नमक मिलाकर अँगुलीसे दाँतोंको इस प्रकार मलें कि मसूढ़ोंकी अच्छी तरह मालिश हो जाय।

(३) शौच या लघुशंकाके समय दाँतोंको अच्छी तरह भींचकर बैठें। ऐसा करनेसे दाँत सदैव स्वस्थ रहते हैं।

(४) रातको सोते समय १० ग्राम त्रिफला चूर्ण जलके साथ तथा दिनमें दो बार अविपत्तिकर चूर्णका सेवन करें।

(५) जामुनकी छालके काढ़ेसे दिनमें कई बार कुल्ले करें।

(६) नीमका तेल मसूढ़ोंपर अँगुलीसे लगाकर कुछ मिनट रहने दें, फिर पानीसे दाँत साफ कर लें।

(७) फिटकरीको भूनकर पीस लें। इसका मंजन पायरियामें लाभप्रद है। फिटकरीके पानीका कुल्ला करें।

(८) भोजनके बाद दाँतोंमें फँसे रह गये अन्नके कणको नीम आदिकी दन्तखोदनीके द्वारा निकाल लें।

(९) सुबह-शाम पानीमें नीबूका रस निचोड़कर पियें।

(१०) पालक, गाजर और गेहूँके जवारेका रस नित्यप्रति पियें। यह अपने-आपमें स्वत: औषधिका कार्य करता है।

(११) जटामांसी-१० ग्राम, नीला थोथा-१० ग्राम, काली मिर्च-५ ग्राम, लौंग-२ ग्राम, अजवायन-२ ग्राम, अदरक सूखी-५ ग्राम, कपूर-१ ग्राम, सेंधा नमक-५ ग्राम तथा गेरू-१० ग्राम—इन वस्तुओंका समान मात्रामें महीन चूर्ण बनाकर रख लें। इससे दिनमें तीन बार अँगुलीसे रगड़-रगड़कर देरतक अच्छी तरहसे मंजन करें। यह मंजन पायरियाकी अनुभूत औषधि है।

(१२) अजीर्ण और क़ब्ज़ न हो—यह ध्यान रखते हुए हल्का सुपाच्य भोजन लें। रातको सोते समय हर्रे खाकर गरम दूध पीयें। सुबह २ ग्राम सूखे आँवलेका चूर्ण पानीके साथ लें। मिर्च-मसाला, चाय-कॉफीका प्रयोग न करें।



तीन नुस्खे

खाँसीकी दवा

अडूसा (सेहरुवा)-के फूल सौ ग्राम, एक किलो पानीमें गरम करके उबाले। जब दो सौ ग्राम पानी शेष रह जाय, तब ठंढा करके प्रात:-सायं शहदके साथ सेवन करे।

बवासीरकी दवा

घमिराको पीसकर साफ कपड़ेमें पोटली बनाकर, असली घीको तवेमें डालकर पोटलीको तवेमें गरम करके बवासीरको सेंके, भगवत्कृपासे आराम अवश्य मिलेगा, भोजनमें दूध-दलिया लेवे।

रतौंधी

पीपरको घिसकर गोमयके रसके साथ आँखमें लगानेसे रतौंधी दूर हो जाती है।

[श्रीसुधीरकुमारजी]



दो अनुभूत योग

१. गृध्रसीहर चूर्ण

सुरंजानशीरी तीन तोला, नागौरी अश्वगन्ध तीन तोला, सोंठ एक तोला, सौंफ तीन तोला, काला जीरा एक तोला, सनाय एक तोला, पोदीना शुष्क एक तोला, काली मिर्च छ:माशा, रूमीमस्तगी असली एक तोला।

निर्माणविधि—सर्वप्रथम रूमीमस्तगी कूटकर अलग रख लें। फिर सभी वस्तुओंको कूटकर मिला दें और कपड़छान कर लें।

छः माशा चूर्ण प्रातः, मध्याह्न तथा सायं दूधसे सेवन करायें।

गृध्रसीको निर्मूल करनेमें अद्वितीय है। वैसे समस्त वातविकारोंमें यह औषधि प्रयोग की जा सकती है। यह एक सफल योग है। लाभ शीघ्र ही हो जायगा, पर यह दवा एक मण्डल (चालीस दिन)-तक सेवन करायें।

२. छाजनका काल

चना दो छटाँक, काली मिर्च, बावची छः-छः माशे, तवकिया हरताल छः माशा, स्वर्णक्षीरी बीज दो छटाँक।

निर्माणविधि—पातालयन्त्रसे सभीका तेल निकालकर सुरक्षित रखें। किसी मिट्टीके पात्रमें (जो कोरा न हो) सभी द्रव्य भरकर पेंदीमें एक छिद्र बनाकर पृथ्वीमें थोड़ा-सा गड्ढा खोदकर रख दे। उसके नीचे एक प्याली रख दे, जिससे तेल चूता रहे। पात्रका मुख बंद रहे। ऊपरसे आग सुलगा दे। यह क्रिया निर्वात-स्थानमें शामको करे। प्रातः गाढ़ा-गाढ़ा तेल प्यालीमें जमा हो जायगा। उसीको प्रयोगमें लावें।

प्रयोगविधि—रोगीके आक्रान्त-स्थानपर चूनेके पानीमें पीसकर मेहँदीपत्र शामको लगा दें। प्रातः उसे दूर करके इस तेलको लगायें, नित्य यही क्रम करें। शीघ्र ही छाजन नष्ट हो जाता है। कण्डू, पामा, एग्जिमा, छाजन आदि जो विभिन्न प्रकारसे कथित हैं, ये चर्मरोग नष्ट हो जाते हैं और शरीर स्वच्छ-सुन्दर बन जाता है। रोग नष्ट होनेपर भी पंद्रह दिन दवा लगाते रहें। मेहँदीपत्र लगानेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

[वैद्य श्रीरामसनेहीजी अवस्थी शास्त्री, धर्मार्थ धन्वन्तरि-चिकित्सालय रामनगर, शाहाबाद, जिला—हरदोई (उ० प्र०)]

स्मरण-शक्तिकी दुर्बलता

स्मृति-शक्ति मस्तिष्कको एक प्रमुख शक्ति है। देखने-सुननेसे जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसे सुरक्षित रखना और फिर समयपर प्रकट करना स्मृतिका कार्य है। ग्रहण करनेकी इस शक्तिको 'मेधा' कहते हैं।

जो आहार हम ग्रहण करते हैं वह पचकर रस बनता है। रससे रक्त, मांस, मज्जा, हड्डी एवं वीर्यका निर्माण होता है। इन धातुओंमें वीर्यकी मात्रा अत्यल्प होती है। यही वीर्य शक्तिरूप होनेपर ओज कहलाता है। इस ओजसे ही शरीर तेजवान् बनता है। ओज मस्तिष्कको पुष्ट करनेके साथ ही स्मरण-शक्तिको भी ठीक रखता है।

वीर्यका धारण ब्रह्मचर्यसे होता है। ब्रह्मचर्यके अभावमें वीर्य और ओजका क्षय होता है। ओजके क्षयसे स्मरण-शक्ति कमजोर पड़ जाती है। इसलिये तीव्र स्मरण-शक्तिके लिये प्रथम आवश्यकता है नियम-संयमपूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करना। ब्रह्मचर्यके लिये मनकी एकाग्रता एक महत्त्वपूर्ण उपादान है। चित्तकी चञ्चलता एकाग्रतामें बाधक है। तनावपूर्ण दिनचर्या—राग-द्वेष, प्रतिस्पर्द्धा आदिके कारण चित्त उद्विग्न रहता है। दैनिक जीवनके तनावका मस्तिष्कपर बहुत प्रभाव पड़ता है। मस्तिष्कके थक जानेपर स्मरण-शक्ति शनैः-शनैः कमजोर पड़ने लग जाती है। प्रखर स्मृतिके लिये आवश्यक है स्वस्थ शरीरमें स्वस्थ मन। जिस प्रकारसे एक स्थानपर एकत्रित की हुई संकेन्द्रित सूर्यकी किरणें किसी वस्तुको जलातक सकती हैं और बिखरी हुई सूर्यकिरणोंमें यह शक्ति नहीं होती, उसी प्रकार मन है। एकाग्र मनमें अपार शक्ति निहित होती है।

उम्रके बढ़नेसे भी मस्तिष्कपर प्रभाव पड़ने लगता

है, स्मरण-शक्ति भी कम होने लगती है। पर मूल बात यही है कि उम्र बढ़नेपर शरीरमें रस, रक्त, वीर्य एवं ओजका समुचित मात्रामें निर्माण नहीं हो पाता। शनैः-शनैः कम होता जाता है, जिससे मस्तिष्क और तत्सम्बन्धी क्रियाकलाप भी क्षीण होने लगते हैं। अधिक उम्रमें रक्तचाप-वृद्धि तथा धमनी-स्रोतोंके रोधको रोकनेके उपायसे स्मृति ठीक रहती है। स्मरण-शक्ति बढ़ानेके लिये सामान्य रूपसे निम्नलिखित उपाय करने चाहिये—

(१) प्रातःकाल योगासन, प्राणायाम, ध्यान आदि नियमित रूपसे करें। योगासनमें सर्वाङ्गासन, शीर्षासन, धनुरासन, मत्स्यासन, पश्चिमोत्तानासन, मयूरासन तथा हलासनका अभ्यास करें।

(२) किसी शान्त स्थानमें पद्मासन लगाकर बैठ जाय, चित्तको स्थिर करते हुए प्राणायाम करे। तत्पश्चात् आँखें बंद करके श्वास-प्रश्वासपर ध्यान लगाये। आँखें खोलें और कुछ सेकंडतक नाककी नोकको ध्यानसे देखें। पुनः आँखें बंदकर श्वास-प्रश्वासपर ध्यान लगायें। थोड़ी देर बाद पुनः नाककी नोकको कुछ सेकंडतक एकटक देखें और आँखें खोलकर दोनों भौहोंके बीचमें ध्यान केन्द्रित करें। यह क्रिया बार-बार दुहरायें।

(३) संतुलित आहारका सेवन करें। भोजनमें पर्याप्त मात्रामें प्रोटीन, विटामिन, खनिज लवण, वसा आदि होने चाहिये। मौसमी फल, साग-सब्जी, चोकरयुक्त आटेकी बनी रोटीसे शरीरकी रोगप्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है।

(४) श्वास-प्रश्वास धीमा, गहरा और लयबद्ध होना चाहिये। इनसे फेफड़ोंके द्वारा समुचित मात्रामें रक्तको ऑक्सीजन प्राप्त होता है।

(५) अपने विचारोंको सकारात्मक बनायें। सकारात्मक विचार जीवनको आशावादी बनाते हैं। इससे तनावसे मुक्ति मिलेगी।

(६) यथोचित विश्राम करें। अत्यधिक व्यस्ततापूर्ण दिनचर्याके बाद मस्तिष्कको आराम देना आवश्यक है।

(७) गरिष्ठ एवं गरम पदार्थोंका सेवन न करें। शोक, क्रोध, भय तथा चिन्ता आदि तथा अत्यधिक मानसिक चिन्तन न करें।

आयुर्वेदिक योग

(१) दिनमें दो बार ब्राह्मी रसायन दो-दो चम्मच दूधके साथ लें।

(२) अश्वगन्धा चूर्ण १० ग्राम प्रतिदिन दूधके साथ लें। यह मस्तिष्कके लिये बलकारक है।

(३) रात्रिको सोते समय त्रिफला चूर्ण १० ग्राम पानीके साथ लें।

(४) ब्राह्मी, शंखपुष्पी, जटामांसी, आँवला, गिलोयका समान मात्रामें चूर्ण तैयार करके लगभग ५ ग्राम प्रतिदिन दो बार गर्म दूधके साथ लें।

(५) विद्यार्थियोंको घी-दूध आदि पौष्टिक पदार्थ अधिक मात्रामें लेने चाहिये तथा अनुशासित ढंगसे नियम-संयमपूर्वक रहना चाहिये। ब्राह्मीवटी २ गोली तथा सारस्वतारिष्ट २ चम्मच भोजनके बाद दिनमें दो बार तथा प्रातः एक आँवलेका मुरब्बा विद्यार्थियोंके लिये अति लाभप्रद है।

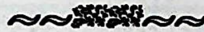
(६) मस्तिष्कके पोषणके लिये ग्लूकोज, दूध-घी, बादाम, अखरोट आदि उपयोगी हैं।

(७) ब्राह्मीघृतका नियमित सेवन करें। ब्राह्मीघृत बनानेके लिये ब्राह्मीकी पत्तीका रस ४ किलो, देशी घी १ किलो, हल्दी, कूट, हर्रे, त्रिवृत्त, चमेलीका फूल प्रत्येक ५० ग्राम, वच, सैन्धव, खाँड़ प्रत्येक १५ ग्राम लें। घी और ब्राह्मीकी पत्तीके रसके अतिरिक्त सबका कपड़छान चूर्ण करें। घीको आगपर चढ़ाकर गर्म करें, उसमें ब्राह्मीकी पत्तीका रस और चूर्ण डालकर उबालें। जब केवल घी शेष रह जाय तो उतार लें, यह 'ब्राह्मी घृत' है।

बवासीरका अचूक इलाज—त्रिफला चूर्ण

मेरी उम्रके ४३ वर्ष पार कर जानेके बाद बवासीरकी बीमारीने उग्ररूप धारण कर लिया। सभी तरहकी दवाएँ और काफी इलाज कराया, पर कोई लाभ न पहुँचा। नौबत ऑपरेशनतक आ गयी। तब अकस्मात् मुझे याद आया कि पू० पिताजी कहते थे कि 'त्रिफला चूर्ण पेटकी बीमारीके लिये अमृत स्वरूप है।' पेट (शौच)-की समस्याएँ जब गम्भीररूप धारण करती हैं तभी बवासीरकी बीमारी होती है, ऐसा सभी जानकारोंका कहना है। अतएव माँ दुर्गा भवानीका स्मरण करते हुए बाजारसे 'त्रिफला चूर्ण'की एक शीशी ले आया और रात्रिमें सोते वक्त तीन चम्मच चूर्ण पानीके साथ ले लिया। दूसरे दिन बड़ी राहत महसूस हुई। इस प्रकार नवम्बर सन् १९९८ ई० से लेकर मई सन् १९९९ ई० तक एक भी दिनका नागा न करते हुए लगातार त्रिफला चूर्णका सेवन किया। जिससे बवासीरकी तकलीफ जाती रही। ऐसा लगने लगा कि आँखोंकी रोशनी भी कुछ बढ़ गयी है क्योंकि महीन टाईपका अखबार भी मैं बिना चश्मेकी सहायतासे अब पढ़ सकता हूँ। इसके अलावा उड़दकी दाल, चनेकी दाल और बैंगनके खानेपर भी तकलीफ महसूस नहीं होती। लगभग प्रतिमाह २४० ग्राम त्रिफला चूर्ण नियमित सेवनके लिये आवश्यक है। इसके बाद आवश्यकतानुसार अब मैं कभी-कभार 'त्रिफला चूर्ण'का सेवन करता हूँ। अतएव उपर्युक्त बीमारीसे अस्वस्थ भाई-बहनें 'त्रिफला चूर्ण'का सेवन कर स्वास्थ्य-लाभ करें, यही उनसे प्रार्थना है।

[श्री एच० सी० अवस्थी, द्वारा-मे० गंगानगर मेडिकल स्टोर्स, मु० पो०-दुसरबीड (जि०-बुल्डाणा) पिन-४४३३०८ (महा०)]



खूनी एवं बादी बवासीरका अचूक नुस्खा

इस नुस्ख़ेसे सैकड़ों मरीजोंको लाभ हुआ है। यह नुस्ख़ा मुझे एक महापुरुषने दिया था। उन्होंने मुझसे यह विश्वास लिया था कि मैं इस इलाजका प्रयोग मुफ्त करूँगा एवं किसीसे किसी भी प्रकारका कोई मूल्य नहीं लूँगा।

नुस्ख़ा—उपचार-हेतु सामग्री—रसवत, बसौंठा, कुल्फा (लोणक)-का बीज।

उपर्युक्त सामग्री बराबर-बराबर (वजनमें) लेकर बारीक-से-बारीक कपड़ेसे छान (कपड़छान)-कर मूलीके पानीके साथ चने बराबर गोलियाँ बना लें, परंतु इन गोलियोंको धूपमें न सुखाकर छायामें सुखायें।

प्रात: मरीजको ३-४ गोलियाँ खाली पेट गायके दूधकी दहीकी लस्सीके साथ रोज दें। निश्चय ही आराम आयेगा।

परहेज—बवासीरके रोगी लाल मिर्च और गुड़का सेवन बिलकुल न करें।

[श्रीजगदीशचन्द्रजी भाटिया, ३८९ आवास-विकास, देहली रोड, ज्वालापुर, हरद्वार—२४९४०७ (उ० प्र०)]



लू लगना

गर्मीके दिनोंमें सूर्यके तीव्र ताप एवं गर्म हवाके झोंकोसे प्राय: लू लग जाया करती है। अति परिश्रम, खाली पेट, नंगे सिर धूपमें चलनेसे, थकान, क़ब्ज़ियत, दुर्बलता आदिके कारण लूके चपेटमें आ जानेकी सम्भावना अधिक रहती है। सिर खुला रखनेसे गर्मी तथा धूपका प्रभाव मस्तिष्कपर शीघ्र होता है और तत्काल ही पूरा शरीर प्रभावित हो जाता है। गर्मीके दिनोंमें पसीनेद्वारा निकाले गये जलकी पूर्ति निरन्तर होती रहनी चाहिये। यदि किन्हीं कारणवश ऐसा नहीं हो पाता है तो लू लगनेका खतरा बढ़ जाता है। शरीरमें उष्णताकी मात्रा अधिक हो जानेपर स्वेद-ग्रन्थियाँ कार्य करना बंद कर देती हैं। जिसके कारण उष्माका निष्कासन बंद हो जाता है और शरीरका तापमान बढ़ जाता है तथा शरीर तापमानको नियन्त्रित करनेकी क्षमता खो देता है। त्वचा गरम होकर सूख जाती है। शरीरमें पानीकी कमी हो जाती है। नाडी कभी तेज तथा कभी धीमी होने लगती है। शरीरका तापक्रम बढ़ते-बढ़ते १०६° फॉ० तक पहुँच जानेपर

जीवन खतरेमें पड़ सकता है।

चिकित्सा

चिकित्सकके आनेसे पहले निम्न तात्कालिक उपचार करने चाहिये—

(१) रोगीको ठंढे, हवादार और स्वच्छ स्थानपर रखना चाहिये तथा वस्त्रोंको ढीला कर दें। बेहोशी दूर करनेवाले उपचार करनेके साथ ही शरीरका तापक्रम कम करनेका प्रयास करना चाहिये।

(२) सिर, हाथ-पैर तथा पेट आदिको बार-बार ठंढे पानीसे धोते रहें। उनपर बर्फके टुकड़ोंको रखें। मोटे तौलियेको बर्फके पानीमें भिगोकर शरीरको पोंछते रहें। यह काम तबतक करते रहना चाहिये, जबतक शरीरका तापक्रम सामान्यावस्थामें न आ जाय।

(३) वमन, दस्त, प्यास आदिकी स्थितिमें पुदीनेका अर्क, अर्ककपूर, अमृतधारा आदि पानीमें मिलाकर थोड़ी-थोड़ी देरपर चम्मचसे देते रहना चाहिये।

(४) बेहोशीकी स्थितिमें सीने और गलेपर तारपीनके तेलकी मालिश करनी चाहिये। गरम पानीमें कपड़ा भिगोकर गलेपर लपेट दें तथा सूखा कपड़ा बाँध दें, होश आ जायगा।

(५) कच्चे आमको पानीमें उबालकर उसका पना बना लें। इसमें सेंधा नमक, भुना जीरा, पुदीना तथा मिस्री आदि मिलाकर पिलायें। गरमीके दिनोंमें स्वस्थ व्यक्तिको भी इसे पीना चाहिये। यह लूकी प्रसिद्ध औषध है।

गर्मीमें तरबूज और खरबूज खाना चाहिये। बाहर निकलनेसे पहले अच्छी तरह पानी पी लें। अधिक प्रोटीनयुक्त भोजन नहीं करना चाहिये। लूसे ठीक हो जानेपर भी कुछ दिनोंतक सावधानी रखें। धूपमें न निकलें और खाली पेट न रहें।



परीक्षित नुस्खे

(१) लम्बे अरसेसे चले आ रहे पेटदर्दकी दवा—पुष्य-नक्षत्रमें रविवारको प्रातः हिंगोटा वृक्षके पश्चिमकी ओर खड़ा होकर [वृक्षपर अपनी छाया न पड़े] उसकी जड़का बकला—छाल खोदकर ले आये और उसे सुखाकर महीन चूर्ण करके पुराने गुड़में समान मात्रामें मिला ले। दो-दो रत्ती [देशी चना-मटरके समान]-की गोली बनाकर प्रातः खाली पेट एक गोली जलके साथ रोगीको तीन दिनतक दे। रोग सदैवके लिये ठीक हो जायगा। यह पूर्ण परीक्षित प्रयोग है।

(२) आगसे जलनेपर—कच्ची रहर*को महीन पीसकर कपड़छान चूर्णकर कांसेकी थालीमें सरसोंके तेलमें गूँथकर मलहमकी तरह (कल्क) बना ले। उसे इक्कीस बार पानीसे धोकर मिट्टीके बरतनमें रख ले। सुबह-शाम अग्निसे जले स्थानपर लगावे। लाभ होगा। यह पूर्ण परीक्षित प्रयोग है।

(३) रूसी, चर्मरोग, खौढ़, डैन्ड्रफ, कॉनर्स, घट्टे (सारे शरीरमें), सिरमें सफेद खौंढ़ा, चकत्ते तथा सिरमें खौढ़ा-सा होकर बाल गिरने लगते हैं, खुजलाहट होती है। इस रोगकी दवा—बच्चोंको २५० ग्राम गायका घी एवं २५० ग्राम शहद पृथक्-पृथक् रखे। प्रातःकाल खाली पेट एक चम्मच घी तथा एक चम्मच शहद मिलाकर प्रतिदिन खिलाये तथा प्रतिदिन स्नान-हेतु एक बाल्टी पानीमें चना-बराबर पोटासियम परमैगनेट (कुओं आदिमें डाली जानेवाली लाल दवा) डालकर नहलाये तथा 'महामरीच्यादि तेल'को लगाये। बड़े व्यक्तियोंके लिये पाँच सौ ग्राम गायका घी और पाँच सौ ग्राम शहद पृथक्-पृथक् रखे। प्रतिदिन प्रातः खाली पेट दो चम्मच घी और दो चम्मच शहद मिलाकर खिलाये तथा उक्त पोटाश डालकर प्रतिदिन नहलाये और जैतूनका तेल तथा नारियलका तेल समान मात्रामें लेकर शरीरपर लगाये। खाना खानेके बाद और सोते समय कैश्यौर गुग्गुल बारह ग्रामकी एक-एक गोली या दो-दो गोली ठंढे पानीसे ले।

परहेज—नमक, लाल मिर्च, बैंगन, आलू, उड़दकी दाल तथा कैरीका अचार नहीं खायें। यह पूर्ण परीक्षित प्रयोग है। नियमित रूपसे सेवन करनेपर लाभ होता है।

[वैद्य श्रीरामसेवकजी भाल, सन्तोष कुटीर, बामौर (मनपुरा) (जिला-शिवपुरी) (म०प्र०) पिन—४७३६७०]



* यह पंसारीकी दूकानपर मिलती है। गोंदकी तरह सफेद रंगकी होती है, यह ढोलकोंमें भी मढ़ी जाती है।

घरेलू दवाएँ

(१) रूसी—सिरमें रूसी (डेण्ड्रफ) हो जाती है तो प्रायः अनेक उपचारोंसे ठीक नहीं हो पाती। बालोंपर श्वेत अथवा मटमैले रंगके अत्यन्त तनु (ब्लेडकी धार-जैसे) सूक्ष्म पत्रक चिपके रहते हैं अथवा कंघीसे झड़ते रहते हैं। अनेकों उपचारोंसे यह रोग जड़से नहीं मिटता है। ऐसे रोगियोंपर निम्न चिकित्साविधि अपनायी गयी—

(क) प्रथम किसी भी प्रकारके साबुनका प्रयोग सिर, चेहरे तथा गर्दनपर बंद कर दे।

(ख) १०-१५ दिन सिरको रीठेके पानी या सत शिकाकाईसे धोना चाहिये।

(ग) इसके बाद दहीके मथितसे सिरके बालोंमें भलीभाँति अभ्यङ्ग कराया जाय। यह क्रिया १०० दिनतक करे। न हो सके तो ९० दिनतक अवश्य करे।

(घ) मस्तक, चेहरे और गर्दनको स्नानसे पूर्व ग्लिसरीन तथा गुलाबजल समभाग लेकर चुपड़कर ५ मिनट बाद धोना चाहिये। उसके बाद दहीके मथितसे सिरका अभ्यङ्ग करे। इस विधिके प्रयोग करनेसे परिणाम अच्छा आया है।

(२) कुकुरखाँसी—कुकुरखाँसीमें केलेके पत्तोंकी राख बनाकर शरद्-ऋतुमें शहदके साथ तथा ग्रीष्म-ऋतुमें नमक मिलाकर चटावे। शीघ्र लाभ होगा।

(३) पथरी—पथरीमें पपीतेकी जड़ ६ माशा, १ छटाँक जलके साथ पीसकर, छानकर प्रातः २१ दिन पीनेसे पथरी गलकर निकल जाती है।

(४) सुखंडीरोग—बच्चोंके सुखंडीरोगपर निम्न औषधका प्रयोग करें—स्वर्णमालिनी वसन्त १/८ रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, जहरमोहरा पिष्टी १ रत्ती, वंशलोचन १ रत्ती, इलायची बीज-चूर्ण १/२ रत्ती। सुबह-शाम दोनों समय एक-एक खुराक शहदके साथ चटावे।

भोजनके बाद अरविन्दासव या कहरवासखी सायरण बराबर पानीके साथ पिलावे, (१-१ तोला) लाल तेल या शंखपुष्पी तेलकी मालिश करे। गरम जलसे नहलाये। यह सुखंडीरोगपर परीक्षित योग है।

(५) सूखारोग—बाल-सूखारोग होनेपर—

(क) काली गौका मूत्र लेकर फिल्टर करे और एक बोतलमें डाल दे। १ तोला असली काश्मीरी केसर लेकर उसमें हलकर देवे। प्रातः-सायं १ तोला बच्चेको प्रयोग कराये।

(ख) वंशलोचन, अतीस मीठा, पीपल बड़ी, छोटी इलायचीके दाने, नागरमोथा, रूमी मस्तगी १-१ तोला, मिबि ६ माशा—सब औषधियोंका चूर्ण करके शीशीमें भर ले। २ रत्तीकी मात्रामें मधुसे दिनमें तीन बार दे, गौका दूध पीनेके लिये दे।

गुण—सूखारोग, अतिसार, वमन, अफारा, पेटकी ऐंठन, मरोड़ आदि समस्त बाल-रोग दूर करता है।

(६) त्रिफला कल्प—हरड़, बहेड़ा, आँवला समभाग चूर्ण त्रिफला है—

त्रिफला चूर्ण ३ ग्राममें १ ग्राम तिल-तेल तथा ६ ग्राम मधु मिलाकर सुबह खाली पेट एवं रातको सोते समय ले, इससे पेट और धातुके समस्त रोग दूर हो जाते हैं।

कायाकल्पके लिये उपर्युक्त प्रयोगको १ वर्षतक निरन्तर धैर्यपूर्वक करना चाहिये। इसके सेवनसे उदररोग, चर्मरोग, कास-श्वास, पुरानी क़ब्ज़ आदिका नाश होकर शरीर शक्तिशाली एवं कान्तिमान् होता है।

(७) दमेपर अनुभूत प्रयोग—लोग कहते हैं कि दमा दमके साथ जाता है, परंतु नीचे लिखा दमेका नुस्खा एक सफल परीक्षित प्रयोग है—

मादरका फूल १ तोला, छोटी पीपर $\frac{१}{२}$ तोला, कटेरी पुष्प एक तोला, मुलहठी सत्त्व १ तोला।

उपर्युक्त चारों द्रव्योंको बारीक पीसकर धूपमें सुखा लें, तत्पश्चात् उचित मात्रामें शहदके साथ घोटकर गोलियाँ बना लें।

दौरेके समय दो गोली गुनगुने पानीके साथ निगल ले। कुछ ही क्षणोंमें दौरा शान्त हो जायगा।

दमेके मरीजको खट्टा, तीखा एवं कड़वा पदार्थ नहीं खाना चाहिये।

(८) ततैयाका विष—ततैयाके काटनेपर पीले कागजको पानीमें भिगोकर लगावे या नौसादर तथा चूना मिलाकर मल दे।

(९) मकड़ीविष—मकड़ीके विषपर नीबूके रसमें चूना पीसकर लगा दे।

(१०) प्रसवकष्ट—भैंसके गोबरका रस २ तोला लेकर, भैंसके पावभर दूधमें मिलाकर पिलानेसे प्रसवकष्ट तथा मूढगर्भमें सत्वर लाभ होता है।

(११) मस्सेपर—मुखमण्डल, हाथ-पैर आदि स्थानोंपर मस्से (मांसाकुर) हो जानेपर चूना तथा सफेद सज्जी बराबर मात्रामें मिलाकर साबुनके पानीमें गलाकर मस्सेके ऊपर नित्य रखे। २-३ दिनमें ही मस्से कटकर गिर जायँगे, किंतु उस स्थानपर हलका काला दाग पड़ सकता है।

(१२) टान्सिल बढ़ जानेपर, गलेमें दर्द होनेपर—गर्म पानीमें फिटकरी, नमक डालकर गरारे करनेसे शीघ्र लाभ होता है।

(१३) खाँसी—अडूसेके पत्तेका रस १-१ तोला प्रातः-सायं सेवनसे शीघ्र लाभ होता है।

(१४) कर्णपाक—हल्दी तथा भूनी फिटकरी समभागमें लेकर महीन पीसकर डालनेसे शीघ्र लाभ होता है।

(१५) जलके विशेष सम्पर्कसे हाथ-पैरोंकी अँगुलियाँ गलनेपर—मेहँदीपत्र १ तोला और हल्दी ६ माशा दोनोंको पीसकर दिनमें दो बार लगानेसे ३ दिनमें पूर्ण लाभ हो जाता है।

[श्रीप्रयागनारायणजी तिवारी, ओऽम् चिकित्सालय, आर० के० रोड, सिरपुर कागजनगर, पिन-५०४२९६ (ए० पी०)]



अठारह नुस्खे

(१) चेहरेके मस्सोंके लिये काली मिर्च और फिटकरी बराबर-बराबर पीसकर चेहरेपर लेप करे तथा सींकसे मस्सोंपर लगावें।

(२) बच्चोंके पसली चलनेमें सरसोंका तेल गरम करके नमक मिलाकर ठंढा होनेपर पसलीमें मालिश करें।

(३) आधा सिरदर्दमें सोंठ पीसकर देशी घीमें भूने तथा कपड़ेमें बाँधकर सूँघें।

(४) कोमल अमरूदकी पत्ती चबानेसे मुँहके छालोंमें लाभ होता है, साथ ही चनेके सत्तूको पानीमें घोलकर पीयें।

(५) बालतोड़में दूधको फिटकरीसे फाड़कर कपड़ेमें रखकर बालतोड़पर बाँधें।

(६) सरसोंके तेलमें नमक मिलाकर मंजन करनेसे दाँतोंमें चमक तथा पायरियामें भी लाभ होता है। मुँहकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है।

(७) बच्चोंकी पसली एवं खाँसीमें लौंग भून-पीसकर शहदसे देनेपर लाभ होता है।

(८) कटी चोटपर तत्काल पेशाब कर देनेसे घाव पकनेकी सम्भावना समाप्त हो जाती है।

(९) कानके रोगोंमें सफेद स्प्रिट डालें।

(१०) दाँतके दर्दमें कपूरका टुकड़ा दबाएँ, लाभ होगा।

(११) नकसीर फूटनेपर बायें छेदसे खून बह रहा हो तो दायीं भुजाको तथा दायेंसे खून बह रहा हो तो बायीं भुजाको कसकर बाँधें, खून बंद हो जायगा। जब भुजा दर्द करने लगे तो बन्धन खोल दें।

(१२) दादपर नीबूका रस बीस दिनतक लगानेसे दाद गायब हो जायगी।

(१३) पैरकी बिवाईमें गरम पानीमें नमक मिलाकर पैर धोयें तथा सरसोंका तेल गरम करके उसमें मोमको गरम करके मलहम बनाकर सोते समय लगावें।

(१४) जुओंको समाप्त करनेके लिये सर धोनेके बाद अन्तमें नीबूका रस मिले पानीसे सिर धोयें, जुएँ सब मर जायँगे।

(१५) उलटीमें प्याजका अर्क दें।

(१६) सुबह बासी मुँह लहसुनके प्रयोगसे पेटके रोग, दाँत और जोड़ोंके दर्दमें लाभ होता है।

(१७) मेथीके प्रयोगसे मधुमेहमें कमी आती है।

(१८) भुनी तथा कच्ची बराबर-बराबर अजवायन पीसकर शामको फंकी मारे, पानी न पिये, खाँसीमें लाभ होगा।

[डॉ० श्री जे० बी० सिंह, आयुर्वेदरत्न
५०६, राजरूपपुर, इलाहाबाद (उ० प्र०)]



आधासीसी (माइग्रेन)-की अनुभूत सफल चिकित्सा

माइग्रेन वर्तमान समयका तेजीसे बढ़ता हुआ एक दुःखदायी रोग है। आयुर्वेदीय ग्रन्थोंके अनुसार रूखा भोजन करनेसे, भोजन-पर-भोजन करनेपर, बर्फ-दही आदि शीतल चीजोंका ज्यादा सेवन करनेसे, मल-मूत्रके वेगको रोकनेसे, बहुत चलनेसे, ज्यादा कसरत करनेपर और अति सहवाससे इस रोगकी उत्पत्ति होती है। इन कारणोंके साथ-साथ मेरे अनुभवसे पानी कम पीनेसे, बस आदिकी कष्टदायक यात्रासे, समयपर भोजन न करनेपर या कच्ची नींदसे जागनेपर, वंशानुक्रमसे एवं महिलाओंमें माहवारीकी गड़बड़ीसे भी यह रोग होता है। शारीरिक मेहनत और मजदूरी, खेती करनेवाले लोगोंमें यह रोग कम होता है। लिखा-पढ़ीका अधिक कार्य करनेवाले और बुद्धिजीवियोंको भी यह रोग हो सकता है।

आधासीसीमें वायु प्रधान है। कभी-कभी कफ भी मिला होता है। २५ प्रतिशत मामलोंमें इस रोगका कारण त्रिदोषज भी होता है। दोषोंकी जानकारीसे इसकी सफल चिकित्सा की जा सकती है। इस रोगका एक विशेष लक्षण है कि यदि उल्टी हो जाय या आधा-एक घंटा नींद आ जाय तो रोग तत्काल शान्त हो जाता है। एलोपैथिक चिकित्सा-पद्धतिमें इस रोगमें दर्दको केवल महसूस नहीं होने देनेका उपाय है, पर रोग जड़से नष्ट नहीं हो पाता।

सबसे पहले रोगीसे इस सम्बन्धमें पूरी जानकारी लेनी चाहिये। जिस कारणसे माइग्रेन उत्पन्न हो, उसे दूर करना जरूरी है। बहुतसे लोगोंको दोपहरके भोजनमें देरी होनेसे या बहुत जल्दी कर लेनेपर इस प्रकारकी शिकायत हो जाती है। कुछ महिलाओंको भीड़-भरी बसोंमें यात्रा करनेपर इस रोगका दौरा पड़ता है। अतः प्रथम मूल कारण दूर करना जरूरी है।

उपचारमें सर्वप्रथम रोगीको चाहे स्त्री हो या पुरुष पेट साफ करनेकी हलकी दवा देनी चाहिये। जिस दिन पेट साफकी दवा दी जाय उस दिन दोपहर एवं रात्रिके भोजनमें केवल मूँगकी खिचड़ी गायके घीके साथ एवं कढ़ी मीठे दहीकी लेनी चाहिये। खिचड़ीमें १० से २० ग्रामतक इच्छानुसार घी लिया जा सकता है। फिर उस दिन रातको सोते वक्त मधुकादि चूर्ण या स्वादिष्ठ विरेचन चूर्णको ५ ग्रामकी मात्रामें ५ ग्राम ईसबगोल सतके साथ देना चाहिये। दो-एक दस्त हो सकते हैं। कोई डरकी, चिन्ताकी बात नहीं। इस चूर्णको दो गिलास गरम पानीसे ही लेना चाहिये, दूध या ठण्डे पानीसे क़ब्ज़की दवा लेना ठीक नहीं। इससे दस्त साफ नहीं लगते। इसका वास्तविक अनुपान गरम पानी है। उपर्युक्त चूर्णमें मुख्य द्रव्य मुलहठी २ तोला, सनाय १ तोला, सौंफ ६ माशा, शुद्ध आँवलासार गंधक ६ माशा और मिस्री ६ तोला है। इनको महीन पीस लेना चाहिये।

जब दो या तीन साफ दस्त हो जाय तो अगले दिनसे दवा शुरू करनी चाहिये। दस्तवाले दिन भी भोजन खिचड़ी-कढ़ीका ही करे। थोड़ा-थोड़ा निवाया पानी धीरे-धीरे कई बार पीना चाहिये। दवा केवल पथ्यादि क्वाथ है। पथ्यादि क्वाथ दो तरहके हैं। एक यकृत्-प्लीहाके लिये दूसरा शिरो रोग-हेतु। यहाँ दूसरा लेना है। बाजारमें बना-बनाया भी उपलब्ध रहता है।

इसका नुस्खा इस प्रकार है—हरड़ + बहेड़ा+आमला+चिरायता+हल्दी+नीमकी छाल+गिलोय—इन सब औषधियोंको बराबर-बराबर मात्रामें लेकर मोटा-मोटा कूट ले। नीमकी छाल और गिलोय अगर ताजा मिल जाय तो काढ़ा ज्यादा तेज और गुणकारी बनता है। १५ ग्राम या सवा तोला तैयार उपर्युक्त चूर्णको २०० ग्राम पानीमें उबालना चाहिये। ५० ग्राम पानी शेष रहनेपर मसलकर छान लें। छाननेके बाद इस काढ़ेमें १० ग्राम गुड़ या चीनी या ५ ग्राम काला नमक मिला ले। काढ़ा बनाते समय बरतनको ढके नहीं। इस काढ़ेको प्रातः जल्दी खाली पेट और रातको सोते वक्त लेना चाहिये। काढ़ा लेनेके बाद ३० मिनट आराम करे। यदि काढ़ा लेते ही उल्टी हो जाय तो बहुत अच्छा है। उसी क्षण सिरदर्द ठीक हो जायगा। वैसे इसे गुग्गुलके साथ लेना चाहिये, पर शुद्ध गुग्गुल हर जगह नहीं मिलता। अतः इसके स्थानपर ३ गोली योगराज गुग्गुलकी दी जा सकती है। पथ्यादि क्वाथ शिरो रोगके साथ-साथ कनपटीका दर्द, सूर्यावर्त (सूरज बढ़नेके साथ-साथ जोर पकड़नेवाला दर्द), दन्तशूल, नेत्ररोग एवं नेत्रशूल तथा कान-सम्बन्धी रोगोंमें भी लाभ करता है। साधारण और नया सिरदर्द केवल एक सप्ताह या दस दिन दवा लेनेसे ठीक हो जाता है। पुराने

रोगमें बीस दिनतक या ज्यादा दिनोंतक पथ्यादि क्वाथ लेना चाहिये। इस क्वाथके सभी घटक शरीरके लिये उपयोगी और रसायन हैं। आजसे लगभग ३०-३५ वर्षपूर्व बम्बईके सुप्रसिद्ध वैद्य पं० शिवशर्माने मात्र इसी क्वाथसे हंगरीकी एक अभिनेत्रीका इलाज किया था।

यदि रोगी सूर्यावर्तसे पीडित हो (इसमें सूर्य उगनेके साथ सिरमें दर्द बढ़ता है और दोपहरको बहुत तीव्र होकर अपराह्न या शामतक शान्त होता है) तो उसे सुबह जल्दी जगाकर (३-४ बजे) २ से ४ रत्तीतक कपर्दक भस्म (पीली कौड़ी भस्म) एक ग्रास गुड़के हलवे या पेड़ेके साथ देनी चाहिये। इस भस्मको अकेले नहीं चाटना चाहिये, जीभ फट जाती है।

यदि सिरदर्दके साथ-साथ रोगीको जुकामकी शिकायत हो, पुराना क्षयरोग हो तो सितोपलादि चूर्णके साथ गोदन्ती भस्म और गिलोय सत्त्व च्यवनप्राश या शहदसे सुबह-शाम चाटना चाहिये। भोजनके बाद द्राक्षारिष्ट तथा अश्वगन्धारिष्ट थोड़ा पानी मिलाकर पीवें। इससे माइग्रेनका दौरा विलम्बसे पड़ता है या हल्का हो जाता है। पथ्यादि क्वाथ भी चालू रखें।

महिलाओंमें सिरदर्दकी शिकायतमें प्रायः माहवारीकी गड़बड़ रहती है। महीना साफ नहीं आता। इसमें रज:प्रवर्तनी वटी सर्वोत्तम है। महीना आनेकी तिथिसे पाँच दिन पूर्व १-१ या २-२ वटी गर्म जलसे लें। कभी-कभी ल्यूकोरियाके कारण भी माइग्रेन आ सकता है। अशोकारिष्ट आदि औषधियोंसे पहले ल्यूकोरिया (प्रदर)-का इलाज करे या दवाके साथ ही ल्यूकोरियाकी दवा भी दे। माइग्रेनके सम्बन्धमें अन्तिम बात यह है कि अगर आँखोंकी कमजोरीके कारण या खराबीसे इसका सम्बन्ध हो तो नेत्र-चिकित्सा करवानी चाहिये।

[वैद्य पं० श्रीपरमानन्दजी शर्मा 'नन्द', एम्०ए०, आयुर्वेदरत्न, ज्योतिर्विद् एवं वास्तुशास्त्री, हनुमान गेट, लाडनूं (नागौर) (राज०) पिन-३४१३०६]

उपयोगी घरेलू उपचार

१-अफारा (Flatulence)—३ ग्राम अजवायन, १ ग्राम काला नमक, $\frac{1}{2}$ ग्राम सेंधा नमक मिलाकर गरम पानीसे दें, तुरंत आराम मिलता है। इसे आवश्यकतानुसार लगातार प्रयोग भी किया जा सकता है।

२-सर्दी, जुकाम, खाँसी—अदरक-रस २ मिली०, तुलसीरस १ मिली०, शहद ५ मिली० मिलाकर प्रत्येक ५ घंटेपर लें, ऊपरसे गुनगुना पानी लें। २४-४८ घंटेमें सर्दी-जुकाम ठीक हो जाता है अथवा देशी घी १० ग्राम, अदरक-रस २ मिली०, २ $\frac{1}{2}$ नग काली मिर्च, गुड़ ५ ग्राम पकाकर खाली पेट सुबह लगातार तीन दिनोंतक लें। अन्य किसी दवाकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

३-दाँत-दर्द—आकका दूध और शहद बराबर मात्रामें मिलाकर रूईके फाहेमें लगाकर दाँतपर रखें, कैसा भी दर्द हो गायब हो जाता है।

४-दस्त—दालचीनी तथा कत्था बराबर मात्रामें (कुल १ $\frac{1}{2}$ ग्राम) पीस लें, फिर १० ग्राम धानका लावा (खील) पीसकर सबको पानीमें घोल लें। चीनी तथा नमक अन्दाजसे मिलायें। दस्त शर्तिया बंद हो जायगा।

५-अनिद्रा— $\frac{1}{2}$ लीटर भैंसके दूधके साथ ५ ग्राम अश्वगन्धाका चूर्ण नियमित रूपसे लें। अनिद्राकी अचूक दवा है।

६-बच्चोंके दाँत निकलते समय होनेवाली उल्टी, हरे-पीले दस्त, दाँतकी तकलीफ सबको दूर करनेके लिये, तवेपर सुहागाका खील बनायें, फिर बारीक पीसकर शहद मिलाकर दाँत निकलनेवाले मसूड़ेपर लेप करें। बच्चा अंदर चाट जायगा तथा उसकी तकलीफ दूर हो जायगी।

७-मासिक न आनेपर १० ग्राम मँगरैला (कलौंजी)-का पाउडर सुबह पानीसे लें। गर्भिणी इसका प्रयोग न करें। किसी-किसीको इससे पेटमें दर्द होता है तो थोड़ी मात्रामें हींगका प्रयोग करें।

८-ज्वरमें चिरायताका काढ़ा पिलायें, कैसा भी ज्वर हो, उतर जाता है।

९-प्रवाहिका या रक्तातिसारमें दो-चार जपापुष्प पीसकर मिस्त्रीके साथ चावलके पानीमें घोलकर दें। बहुत फायदा होता है।

[श्रीमती प्रतिमा द्विवेदी
ग्राम-पो०-बेलहरी (जि०—बक्सर) बिहार]

गठिया

उम्र बढ़नेके साथ ही शरीरके ऊतक कमजोर पड़ने लगते हैं। शरीरके विभिन्न जोड़ घिसने लगते हैं। ऐसी स्थितिमें जोड़ोंमें दर्द रहने लगता है, भोजनके प्रति अरुचि होती है, प्यास अधिक लगती है, हाथ-पैर, जाँघ, एड़ी तथा कमर आदिके जोड़ोंमें दर्द होने लगता है, घुटनोंमें शोथ (सूजन) भी हो जाता है। रोग बढ़ जानेपर चलते-फिरते समय भयंकर कष्ट होता है। बढ़ती उम्रके कारण जो गठिया होता है उसे आस्टियो आर्थराइटिस कहते हैं, जोड़ोंमें सूजन या प्रदाहके कारण उत्पन्न गठियाको रियूमेटायड आर्थराइटिस कहते हैं। जोड़ोंमें यूरिक अम्लके जमा हो जानेके कारण उत्पन्न गठियाको गाउटी आर्थराइटिस कहते हैं। हीमोफीलियामें रक्तस्रावसे जोड़ोंमें खूनके थक्के जम जानेके कारण उत्पन्न गठियाको एक्यूट (गम्भीर) आर्थराइटिस कहते हैं। क्षयरोग और आमवातमें भी हड्डीके जोड़ प्रभावित होते हैं।

कन्धोंमें जकड़न—कन्धोंको घेरनेवाली मांसपेशियोंमें सूजन आ जाती है। कन्धे स्वाभाविक रूपसे हिल-डुल नहीं पाते। हाइड्रोकार्टिसोनका इंजेक्शन तथा अल्ट्रासॉनिक किरणोंसे सेंकनेपर दर्दमें लाभ पहुँचता है।

आस्टियो आर्थराइटिस—लगभग ५०-५५ वर्षके बाद यह शुरू होता है। घुटने, कन्धे और रीढ़की हड्डीमें दर्द होता है। जोड़ोंका कार्टिलेज घिसनेके बाद हड्डी घिसनी शुरू हो जाती है, किनारे धारदार हो जाते हैं। जोड़ हिलने-डुलनेपर चटखनेकी आवाज होती है। धीरे-धीरे दर्द बढ़ता जाता है। जोड़ोंकी गति कम होती जाती है। ध्यान रखना चाहिये कि ऐसी स्थितिमें खूब चलें, हलका-सा व्यायाम करें और औषधिका सेवन नियमपूर्वक करते रहें। ठीक हो जानेके बाद भी कभी पुनः दर्द शुरू हो सकता है। उठने-बैठने, चलने-फिरनेमें कष्ट होने लगता है। घुटने पूर्णतः क्षतिग्रस्त होनेपर औषधिकी अपेक्षा शल्यक्रिया आवश्यक हो जाती है।

रियूमेटायड आर्थराइटिस—यह रोग लगभग ४० वर्ष-से अधिक उम्रकी महिलाओंमें विशेषकर पाया जाता है। घुटने, टखने और हाथके जोड़ विशेष रूपसे प्रभावित होते हैं। रोगीको निरन्तर कुछ-न-कुछ करते रहना चाहिये। इसके साथ ही आरामकी भी आवश्यकता होती है। कार्टिसोनके इंजेक्शनसे लाभ प्रतीत होता है। असाध्यावस्थामें शल्यक्रिया अपेक्षित होती है।

रीढ़की हड्डीकी गठिया—रोगी आगेकी ओर झुक जाता है। रीढ़की हड्डीके अतिरिक्त कूल्हे और कन्धे भी प्रभावित हो जाते हैं। यह रोग विशेष रूपसे पुरुषोंको होता है।

गाउट—घुटनेके जोड़के कार्टिलेजमें यूरिक अम्लके दाने जमा हो जानेके कारण यह अपङ्ग कर देनेवाला रोग होता है। चिकित्सामें यूरिक अम्लके दाने न जमा होने पायें इसका उपाय करते हैं। इसके लिये रक्तमें यूरिक अम्लकी मात्रा कम करनेका प्रयास करते हैं। मादक पदार्थ तथा मांसाहार इस रोगकी उत्पत्तिमें प्रमुख रूपसे सहायक हैं। इन्हें तुरंत बंद कर देना चाहिये। शाकाहार और तनावरहित दिनचर्या होनी चाहिये।

जोड़ोंकी टी०बी०—यह रोग कुपोषणसे होता है। रोगका आक्रमण जोड़ोंपर होता है। फेफड़ोंका क्षयरोग भी हड्डियोंके जोड़तक पहुँच जाता है। इसके भी लक्षण गठियासे मिलते-जुलते हैं। क्षयकी दीर्घकालीन चिकित्सासे इसका उपचार किया जाता है।

चिकित्सा—(१) प्रातः एकपुटिया लहसुन आधा किलो० दूधमें डालकर उबालें। दूधके आधा पाव रह जानेपर उसे छानकर पी लें। दूसरे दिन दो एकपुटिया लहसुन, तीसरे दिन तीन एकपुटिया लहसुन इसी प्रकार ग्यारहवें दिन ग्यारह एकपुटिया लहसुन दूधमें उबालकर उसे छानकर दूध पी जायँ। बारहवें दिनसे लहसुनकी संख्या एक-एक करके कम करते जायँ।

(२) पुनर्नवाकी जड़ १० ग्रामको १०० ग्राम पानीमें उबालें और २५ ग्राम शेष रहनेपर छानकर पी लें।

(३) योगराज गुग्गुल सुबह-शाम दो-दो गोली गरम पानीसे लें।

(४) अश्वगन्ध, चोपचीनी, पीपलामूल, सोंठ—इसका समान मात्रामें चूर्ण सुबह-शाम दूधके साथ पीयें।

(५) जोड़ोंपर सेंक करके रेड़ीके पत्तोंपर घी लगाकर बाँधें।

(६) रातको सोते समय १० ग्राम मेथीका दाना निगलकर पानी पी लें।

(७) दर्दके स्थानपर नारायण तेलकी मालिश करें।

पथ्य—गेहूँ, बाजरेकी रोटी, मेथी, चौलाई, करैला, टिंडा, सेब, पपीता, अंगूर, खजूर, लहसुन इत्यादि वस्तुओंका सेवन हितकर है।

अपथ्य—चावल, आलू, गोभी, मूली, सेम, चना, उड़दकी दाल, केला, सन्तरा, नीबू, अमरूद, टमाटर, दही तथा समस्त वायुकारक पदार्थ, दिवाशयन, अधिक परिश्रम इत्यादि रोगको बढ़ाते हैं।

अमृतधाराके विविध प्रयोग

—अमृतधारा कई बीमारियोंमें दी जाती है, जैसे बदहजमी, हैजा और सिर-दर्द।

—थोड़े-से पानीमें तीन-चार बूँद अमृतधाराकी डालकर पिलानेसे बदहजमी, पेट-दर्द, दस्त, उलटी ठीक हो जाती है। चक्कर आने भी ठीक हो जाते हैं।

—एक चम्मच प्याजके रसमें दो बूँद अमृतधारा डालकर पीनेसे हैजामें फायदा होता है।

—अमृतधाराकी दो बूँद ललाट और कानके आस-पास मसलनेसे सिर-दर्दमें फायदा होता है।

—मीठे तेलमें अमृतधारा मिलाकर छातीपर मालिश करनेसे छातीका दर्द ठीक हो जाता है।

—सूँघनेपर साँस खुलकर आता है तथा जुकाम ठीक हो जाता है।

—थोड़े-से-पानीमें एक-दो बूँद अमृतधारा डालकर छालोंपर लगानेसे फायदा होता है।

—दाँत-दर्दमें अमृतधाराका फाया रखकर दबाये रखनेसे राहत मिलती है।

—चार-पाँच बूँद अमृतधारा ठंडे पानीमें डालकर सुबह-शाम कुछ दिन पीनेसे श्वास, खाँसी, दमा और क्षय-रोगमें फायदा होता है।

—आँवलेके मुरब्बेमें तीन-चार बूँद अमृतधारा डालकर खिलानेसे दिलके रोगमें राहत मिलती है।

—बताशेमें दो बूँद अमृतधारा डालकर खानेसे पेटके दर्दमें आराम मिलता है।

—भोजनके बाद दोनों वक्त ठंडे पानीमें दो-तीन बूँद अमृतधारा डालकर पीनेसे मंदाग्नि, अजीर्ण, बादी, बदहजमी एवं गैस ठीक हो जाती है।

—दस ग्राम गायके मक्खन और पाँच ग्राम शहदमें तीन बूँद अमृतधारा मिलाकर प्रतिदिन खानेसे शरीरकी कमजोरीमें फायदा होता है।

—अमृतधाराकी एक-दो बूँद जीभमें रखकर, मुँह बंद करके सूँघनेसे चार मिनटमें ही हिचकीमें फायदा होता है।

—दस ग्राम नीमके तेलमें पाँच बूँद अमृतधारा मिलाकर मालिश करनेसे, हर तरहकी खुजलीमें फायदा होता है।

—ततैया, बिच्छू, भँवरा या मधुमक्खीके काटनेकी जगहपर अमृतधारा मसलनेसे दर्दमें राहत मिलती है।

—दस ग्राम वैसलीनमें चार बूँद अमृतधारा मिलाकर, शरीरके हर तरहके दर्दपर मालिश करनेसे दर्दमें फायदा होता है। फटी बिवाई और फटे होंठोंपर लगानेसे दर्द ठीक हो जाता है तथा फटी चमड़ी जुड़ जाती है।

[प्रे० श्रीओमप्रकाशजी धानुका]

दर्दहर लाल तेल

आजकल घुटनों, पिंडली, कमर, पीठ एवं पसली आदिमें दर्द होना आम बात हो गयी है। इसकी चिकित्साहेतु सस्ता, सरल, अचूक और अनुभूत घरेलू उपाय जनकल्याणार्थ प्रस्तुत है।

दर्दहर तेलका अनुभूत नुस्खा—सरसोंका तेल २५० ग्राम, तारपीनका तेल १०० ग्राम, लहसुनकी कलियाँ ५० ग्राम, रतनजोत २० ग्राम, पुदीनासत्त्व (आसमान तारा) १० ग्राम, अजवायनका सत्त्व १० ग्राम, कपूर देशी १० ग्राम।

तेलनिर्माण-विधि—सर्वप्रथम एक साफ बोतल लेकर उसमें पुदीनासत्त्व डाल दें। अजवायनसत्त्व और कपूरको पीसकर पुदीनासत्त्वकी बोतलमें डालकर ढक्कन लगाकर हिला दें। थोड़ी देर बाद तीनों वस्तुएँ मिलकर द्रवरूप हो जायँगी। इसे 'अमृतधारा' कहते हैं।

सरसोंका तेल किसी पतीली या कड़ाहीमें डालकर, गरम करके नीचे उतार लें। लहसुनकी कलियाँ छीलकर छोटे-छोटे टुकड़ोंमें काट लें। सरसोंका तेल ठंडा हो जानेपर उसमें लहसुनकी कलियाँ डालकर तेलको फिरसे तीव्र और मंदी आँच करते हुए गरम करें। तेलको इतना पकायें कि लहसुनकी कलियाँ जलकर काली हो जायँ। तेलके बरतनको चूल्हेपरसे नीचे रखें और उसी गरम तेलमें रतनजोत डाल दें, इससे तेलका रंग लाल हो जायगा। (रतनजोत एक वृक्षकी छाल होता है।)

तेलके ठंडा होनेपर कपड़ेसे छानकर किसी बोतलमें भर लें। अब इस पकाये हुए तेलमें अमृतधारा और तारपीनका तेल मिलाकर अच्छी तरह हिला दें। बस, मालिशके लिये दर्दहर लाल तेल तैयार है।

[श्रीरणजीतसिंहजी शाह, शिक्षक
१३, नया मोहल्ला, बुरहानपुर (म० प्र०) पिन-४५०३३१]

गोमूत्रका रोगोंपर घरेलू प्रयोग*

गायके मूत्रमें कार्बोलिक एसिड होता है, जो कीटाणुनाशक है। अतः यह शुद्धि और स्वच्छताको बढ़ाता है। प्राचीन ग्रन्थोंने गोमूत्रको अति पवित्र कहा है। आधुनिक दृष्टिसे गोमूत्रमें नाइट्रोजन, फॉस्फेट, यूरिया, यूरिक एसिड, पोटैशियम और सोडियम होता है। जिन महीनोंमें गाय दूध देती है, उनमें उसके मूत्रमें लेक्टोज रहता है, जो हृदय और मस्तिष्कके विकारोंमें बहुत हितकारी है। इसमें स्वर्णक्षार भी मौजूद रहता है, जो रसायन है।

जो गाय गोमूत्र-सेवनके लिये रखी जाती है वह नीरोगी और युवा होनी चाहिये। जंगली क्षेत्रों और चट्टानों, जहाँ गायोंके चरनेके लिये प्राकृतिक वनस्पति खाद्य-रूपमें मिल सके वहाँकी गायोंका मूत्र अधिक अच्छा है। गोमूत्रको स्वच्छ वस्त्रसे छानकर सुबहमें खाली पेट पीना चाहिये। गोमूत्र पीनेके एक घंटेतक कुछ खाना नहीं चाहिये। स्तन-पान करनेवाले बच्चोंको गोमूत्र देते समय उसकी माताको भी गोमूत्र देना चाहिये। मासिक धर्मके दौरान स्त्रियाँ यदि गोमूत्र-सेवन करें तो शान्ति और शक्ति मिलती है। सामान्यतः युवा व्यक्ति एक छटाँकसे एक पावकी मात्रामें गोमूत्र-सेवन कर सकते हैं।

गोमूत्रका उपयोग विभिन्न रोगोंमें कैसे किया जा सकता है उसे यहाँ संक्षेपमें दिया जा रहा है—

१-क़ब्ज़के रोगीको उदरकी शुद्धिके लिये गोमूत्र कई बार कपड़ेसे खूब छानकर पीना चाहिये।

२-गोमूत्रमें हरड़का चूर्ण भिगोकर धीमी आँचसे गरम करना चाहिये। जलीय भाग जल जानेपर इसका चूर्ण उपयोगमें लिया जाता है। गोमूत्रका सीधा सेवन जो नहीं कर सकता है उसे इस हरड़का सेवन करनेसे गोमूत्रका लाभ मिल सकता है।

३-जीर्ण ज्वर, पाण्डु, सूजन आदिमें किराततिक्त (चिरायता)-के पानीमें गोमूत्र मिलाकर, सात दिनतक सुबह और शाम पीना चाहिये।

४-खाँसी, दमा, जुकाम आदि विकारोंमें गोमूत्र सीधा ही प्रयोगमें लानेसे तुरंत ही कफ निकलकर विकार-शमन होता है।

५-पाण्डु-रोगमें हर रोज सुबह खाली पेट ताजा और स्वच्छ गोमूत्र कपड़ेसे छानकर नियमित पीनेसे एक माहमें अवश्य लाभ होता है।

६-बच्चोंको खोखली होनेपर गोमूत्रको छानकर उसमें हलदीका चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिये।

७-उदरके किसी भी रोगमें गोमूत्र-पानसे लाभ होता है।

८-जलोदरमें रोगीको केवल गो-दुग्ध सेवन करना चाहिये और साथ-साथ गोमूत्रमें शहद मिलाकर नियमित पीना चाहिये।

९-चरकके मतानुसार लोहेके बारीक चूर्णको गोमूत्रमें भिगोकर और उसे खूब छानकर दूधके साथ उसका सेवन करे तो पाण्डुरोगमें जल्दी लाभ होता है। सेवनसे पहले उसे खूब छानना जरूरी है।

१०-शरीरकी सूजनमें केवल दूध पीकर साथमें गोमूत्रका सेवन करना चाहिये।

११-गोमूत्रमें नमक और शक्कर समान भागमें मिलाकर सेवन करनेसे उदर-रोगका शमन होता है।

१२-गोमूत्रमें सैंधव नमक और राईका चूर्ण मिलाकर पीनेसे उदर-रोग मिटता है।

१३-आँखोंकी जलन, क़ब्ज़, शरीरमें सुस्ती और अरुचिमें गोमूत्रमें शक्कर मिलाकर लेना चाहिये।

१४-खाज, फुंसी तथा विचर्चिकामें गोमूत्रमें आँबा-हलदीका चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये।

१५-प्रसूतिके बाद सुवा रोगमें स्त्रीको गोमूत्र पिलानेसे अच्छा लाभ होता है।

१६-चर्म-रोगोंमें हरताल, बाकुची तथा मालकँगनीको गोमूत्रमें मिलाकर सोगठी बनाकर इसे दूषित त्वचापर लगाना चाहिये।

१७-सफेद कुष्ठमें बावचीके बीजको गोमूत्रमें अच्छी तरह पीसकर लेप करना चाहिये।

१८-कानमें वेदना आदि विकारोंमें गोमूत्रको गरम करके इसकी बूँद डालनी चाहिये।

१९-शरीरमें खुजली होनेपर गोमूत्रकी मालिश करनी चाहिये और स्नान करना चाहिये।

२०-कृष्णजीरकको गोमूत्रमें पीसकर इसका शरीरपर

* राजवैद्य श्रीरेवाशंकरजी शर्मा, आयुर्वेदाचार्य, 'कामधेनु-चिकित्सक', रटलाई (झालावाड) राजस्थान—३२६०२४

मालिश और गोमूत्र-स्नानसे चर्म-रोग मिटते हैं।

२१-ईंटको खूब तपाकर गोमूत्रमें इसे बुझाने तथा इसके बाद उसे कपड़ेमें लपेटकर यकृत् और प्लीहा (तिल्ली)-की सूजनपर सेंक करनेसे लाभ होता है।

२२-कृमि-रोगमें डीकामालीका चूर्ण गोमूत्रके साथ देना चाहिये।

२३-सुवर्ण, लौह, वत्सनाभ, कुचला आदिका शोधन करनेके लिये और भस्म बनानेके लिये औषधनिर्माणमें गोमूत्रका उपयोग होता है। गोमूत्र विषैले द्रव्योंका विषप्रभाव नष्ट करता है। शिलाजीतकी शुद्धि भी गोमूत्रसे होती है।

२४-चर्मरोगोंमें उपयोगी महामरिच्यादि तेल और पञ्चगव्य घृत बनानेमें गोमूत्र उपयोगमें लाया जाता है।

२५-हाथीपाँव (फाइलेरिया)-रोग गोमूत्र सुबहमें खाली पेट लेनेसे मिट जाता है।

२६-गोमूत्रका क्षार उदर-वेदनामें, मूत्ररोधमें तथा वायुका अनुलोमन करनेमें दिया जाता है।

२७-गोमूत्र सिरमें लगाकर उसे अच्छी तरह मलकर थोड़ी देरतक रखना चाहिये। सूखनेके बाद धोनेसे बाल सुन्दर होते हैं।

२८-कामला रोगमें गोमूत्र अतीव उपयोगी है।

२९-गोमूत्रमें पुराना गुड़ और हलदीका चूर्ण मिलाकर पीनेसे दाद, कुष्ठरोग और हाथीपाँव ठीक होते हैं।

३०-गोमूत्रके साथ एरंड तेल एक मासतक पीनेसे संधिवात और अन्य वातविकार नष्ट होते हैं।

३१-बच्चोंको उदर-वेदना तथा पेट फूलनेपर एक चम्मच गोमूत्रमें थोड़ा नमक मिलाकर पिलाना चाहिये।

३२-बच्चोंको सूखा रोग होनेपर एक मासतक सुबह और शाम गोमूत्रमें केशर मिलाकर पिलाना चाहिये।

३३-शरीरमें खाज-खुजली हो तो गोमूत्रमें नीमके पत्ते पीसकर लगाना चाहिये।

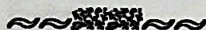
३४-गोमूत्रके नियमित सेवनसे शरीरमें स्फूर्ति रहती है, भूख बढ़ती है और रक्तका दबाव स्वाभाविक होने लगता है।

३५-क्षयरोगीके क्षय-जन्तुका नाश गोबर और गोमूत्रकी गंधसे होता है। अत: क्षयके रोगीको गौशालामें रखना चाहिये और इसकी खाटको गोमूत्रसे बार-बार धोना चाहिये।

३६-दाद (Ring-Worm) पर धतूरेके पत्ते गोमूत्रमें पीसकर गोमूत्रमें ही उबाले। गाढ़ा होनेपर लगावे।

३७-टाइफॉइड या किसी भी दवाईके खानेसे सिर या किसी स्थानके बाल उड़ जाते हैं तो गोमूत्रमें तंबाकूको पीसकर डाल दे। दस दिनके बाद पेस्ट-जैसा बन जानेपर अच्छी तरह रगड़कर बाल-झड़े स्थानपर लगाये तो बाल फिर आ जाते हैं। सिरमें भी लगा सकते हैं।

[प्रेषक—श्रीमनमोहनजी मुण्डेल]



दन्तमंजनका नुस्खा

एक दन्तमंजनका नुस्खा 'कल्याण'से ज्यों-का-त्यों इसलिये लिख रहा हूँ कि आरोग्य-अङ्कमें स्थान पाकर यह लोगोंके लिये बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा।

नुस्खा—पीपरमेंट ५ ग्राम, तूतिया १० ग्राम, काली मिर्च और अखरोटके वृक्षकी छाल २५-२५ ग्राम, पठानी लोध, सोंठ, तुम्बल, अकरकरा प्रत्येक १००-१०० ग्राम, संगजराहट-चूर्ण ६०० ग्राम, लौंगका तेल ५० मि०ली० और सेकरिन टेबलेट २००।

विधि—तूतिया (नीला थोथा)-को धीमी आँचपर भूनकर, पीसकर, चूर्णकर अलग रखें। तूतिया चूर्णमें सेकरिन टेबलेट्स मिलाकर पीस लें। फिर खरलमें कपूर डाल दें और इसमें थोड़ा-थोड़ा लौंगका तेल डालते हुए घुटाई करें, तेल और कपूर उछलकर बिखरने न पावे। पीपरमेंट भी कपूरके साथ डाल लेनी चाहिये। जब कपूर, पीपरमेंट और लौंगका तेल घुटकर एक हो जाय तब इसमें काष्ठौषधियोंके कपड़छान चूर्णको अच्छी तरह मिला देना चाहिये। फिर इसमें तूतिया तथा सेकरिन टेबलेट्सका पाउडर (चूर्ण) भी मिला दें तथा संगजराहटका चूर्ण अच्छी तरहसे मिला देना चाहिये। इस प्रकार मंजन तैयार हो गया है। इसे साफ, मजबूत कार्कवाली शीशी या डिब्बेमें रखना चाहिये। मंजन (दायें हाथकी) मध्यमा (बीचवाली) उँगलीसे ही करना चाहिये। पहली तर्जनीसे कदापि नहीं। आवश्यक सावधानी बरतते हुए इस मंजनका प्रयोग निश्चय ही लाभदायक है।

[श्रीसुभाषचन्द्रजी शर्मा,
ग्राम-बरेली खुर्द, पो०-मूसेपुर
जिला-रेवाड़ी (हरियाणा) पिन-१२३४०१]



गुणकारी नीबूके विविध प्रयोग

पथरी—एक गिलास पानीमें एक नीबू निचोड़कर सेंधा नमक मिलाकर सुबह-शाम दो बार नित्य एक महीना पीनेसे पथरी पिघलकर निकल जाती है।

पथरीका दर्द—अँगूरके साठ पत्तोंपर आधा नीबू निचोड़कर पीसकर चटनी बना लें। इसे दो चम्मच हर दो घंटेमें तीन बार खानेसे पथरीसे होनेवाला दर्द दूर हो जायगा।

नाख़ून—नाख़ूनोंपर नित्य नीबू रगड़ें, रस सूख जानेके बाद पानीसे धोयें। इससे नाख़ूनोंके रोग ठीक हो जाते हैं।

बाल गिरना, रूसी (डेनड्रफ)—(१) एक नीबूके रसमें तीन चम्मच चीनी, दो चम्मच पानी मिलाकर, घोलकर बालोंकी जड़ोंमें लगाकर एक घंटे बाद अच्छे-से सिर धोनेसे रूसी दूर हो जाती है। बाल गिरना बंद हो जाता है।

(२) सिरमें नीबूकी रसभरी फाँक रगड़कर स्नान करनेसे बाल गिरने बंद होते हैं।

गंजापन—(१) नीबूके बीजोंपर नीबू निचोड़कर एवं पीसकर बाल उड़ी हुई जगह (गंज)-पर लेप करें। चार-पाँच महीने लगातार लगानेपर बाल उग आते हैं।

(२) तीन चम्मच चनेके बेसनमें एक नीबूका रस, थोड़ा पानी डालकर गाढ़ा घोल बनाकर गंजपर लेप करें तथा सूखनेपर धोयें, फिर समान मात्रामें नारियलका तेल, नीबूका रस मिलाकर सिरमें लगायें। बाल आ जायेंगे।

सिरमें फुंसियाँ, खुजली, त्वचा सूखी और कठोर हो तो बालोंमें दही लगाकर दस मिनट बाद सिर धोयें। बाल सूख जानेपर समान मात्रामें नीबूका रस और सरसोंका तेल मिलाकर लगायें। यह प्रयोग लम्बे समयतक करें।

जुएँ—(१) समान मात्रामें नीबूका रस और अदरकका रस मिलाकर बालोंकी जड़ोंमें लगानेसे जूँ मर जाती हैं। यह रस लगाकर एक घंटे बाद सिर धोयें। सिर धोनेके बाद नीबूका रस और सरसोंका तेल समान मात्रामें मिलाकर नित्य बालोंमें लगायें।

बाल काले करना—एक नीबूका रस, दो चम्मच पानी, चार चम्मच पिसा हुआ आँवला मिला लें। यदि पेस्ट नहीं बने तो पानी और मिला लें। इसे एक घंटा भीगने दें। फिर सिरपर लेप करें। एक घंटे बाद सिर धोयें। साबुन, शैम्पू धोते समय नहीं लगायें। धोते समय पानी आँखोंमें नहीं जाय, इसका ध्यान रखें। यह प्रयोग हर चौथे दिन करें। कुछ महीनोंमें बाल काले हो जायेंगे।

हृदयकी धड़कन—नीबू ज्ञान-तन्तुओंकी उत्तेजनाको शान्त करता है। इससे हृदयकी अधिक धड़कन सामान्य हो जाती है। उच्च-रक्तचापके रोगियोंकी रक्त-वाहिनियोंको यह शक्ति देता है।

कमर-दर्द—चौथाई कप पानीमें आधा चम्मच लहसुनका रस और एक नीबूका रस मिलाकर दो बार नित्य पीयें। यह पेय कमर-दर्दमें लाभदायक है।

आमवात, गठिया, जोड़ोंके दर्द—में नित्य प्रातः एक गिलास पानीमें एक नीबू निचोड़कर पीयें। नीबूकी फाँक दर्दवाली जगहपर रगड़कर फिर स्नान करें।

गला दर्द, गला बैठना, गलेमें ललाई—होनेपर एक गिलास गरम पानीमें नमक और आधा नीबू निचोड़कर सुबह-शाम गरारे करें।

नेत्र-ज्योतिवर्धक—एक गिलास पानीमें एक नीबू निचोड़कर प्रातः भूखे पेट हमेशा पीते रहें। नेत्रज्योति ठीक बनी रहेगी। इससे पेट साफ रहता है, शरीर स्वस्थ रहता है। नीरोग रहनेका यह प्राथमिक उपचार है।

अपच (Dyspepsia)—यदि भोजन नहीं पचता हो, खट्टी डकारें आती हों—

(१) पपीतेपर नीबू, काली मिर्च डालकर सात दिनोंतक प्रातः खायें।

(२) भोजनके साथ मूलीपर नमक, नीबू डालकर नित्य खायें।

(३) नीबूपर काला नमक, काली मिर्च डालकर तीन बार नित्य चूसें। अपच व पेटके सामान्य रोग ठीक हो जायेंगे। भूख अच्छी लगेगी।

(४) खानेसे पहले नीबूपर सेंधा नमक डालकर चूसें।

भूख—भोजन करनेके आधा घंटा पहले एक गिलास

पानीमें नीबू निचोड़कर पीनेसे भूख अच्छी लगती है।

मुँहकी दुर्गन्ध—एक गिलास पानीमें एक नीबू निचोड़कर दो चम्मच गुलाबजल डालकर भोजनके बाद इस पानीसे तीन कुल्ले करके बचा हुआ सारा पानी पी जायँ। मुँहसे दुर्गन्ध नहीं आयेगी।

कड़वा स्वाद—(१) रोगी प्राय: कहते हैं कि मुँहका स्वाद कड़वा रहता है, स्वाद खराब रहता है, जिससे खाना अच्छा नहीं लगता। नीबूकी फाँकपर काली मिर्च, काला नमक डालकर तवेपर सेंककर चूसनेसे मुँहमें कड़वेपनका स्वाद अच्छा हो जानेसे भोजनके प्रति रुचि बढ़ती है।

गैस—(१) एक चम्मच नीबूका रस, एक चम्मच पिसी हुई अजवाइन, आधा कप गरम पानीमें मिलाकर सुबह-शाम पीयें।

(२) एक गिलास पानीमें एक नीबू निचोड़कर चौथाई चम्मच मीठा सोडा मिलाकर नित्य पीयें।

(३) आधा गिलास गरम पानीमें आधा नीबू निचोड़कर जरा-सी पिसी हुई काली मिर्चकी फक्की सुबह-शाम लें।

(४) सोंठ एक चम्मच, साबूत अजवाइन ५० ग्राम नीबूके रसमें भिगोकर छायामें सुखायें। जब भी खाना खायें, खानेके बाद इसकी एक चम्मच चबायें।

(५) नीबू काटकर इसकी फाँकोंमें नमक, काली मिर्च भरकर गरम करके चूसनेसे गैसमें लाभ होगा।

छाले (स्टोमेटाइटिस)—(१) एक गिलास गरम पानीमें आधा नीबू निचोड़कर चार बार नित्य कुल्ले करें।

(२) नित्य नीबू एवं पानीमें स्वादके लिये चीनी या नमक डालकर प्रात: भूखे पेट पीयें। रातको सोते समय एक गिलास गरम दूधमें एक चम्मच घी डालकर पीयें। लम्बे समय—दो महीनेतक प्रयोग करनेसे भविष्यमें छाले होने बंद हो जाते हैं।

हिचकी—(१) नीबूके पेड़से हरी पत्तियाँ तोड़कर चबाकर रस चूसें। हिचकी बंद हो जाती है।

(२) तेज गरम पानीमें नीबू निचोड़कर घूँट-घूँट पीनेसे हिचकी बंद हो जाती है।

(३) नीबू, सोंठ, काली मिर्च, अदरक—सब अल्पमात्रामें लेकर चटनी बनाकर चाटें।

(४) नीबूमें नमक भरकर चार बार चूसें।

(५) काला नमक, शहद और नीबूका रस मिलाकर चाटें। इन प्रयोगोंसे हिचकी बंद हो जाती है।

अम्लता (एसिडिटी)—(१) खाना खानेके बाद एक कप पानीमें आधा नीबू, जरा-सा खानेका सोडा मिलाकर प्रतिदिन दो बार पीयें।

(२) दोपहरमें भोजनसे आधा घंटा पहले नीबूकी मीठी शिकंजी दो महीनेतक पीयें। खानेके बाद न पीयें।

खट्टी डकारें—यदि खट्टी डकारें आती हों तो गरम पानीमें नीबू निचोड़कर पीयें।

पेट-दर्द—(१) पचास ग्राम पोदीनेकी चटनी पतले कपड़ेमें डालकर निचोड़कर, रस निकालकर इसमें आधा नीबू निचोड़ें। दो चम्मच शहद और चार चम्मच पानी मिलाकर पीनेसे पेटका तेज दर्द शीघ्र बंद हो जाता है।

(२) आधा कप पानी, दस पिसी हुई काली मिर्च, एक चम्मच अदरकका रस, आधे नीबूका रस—सब मिलाकर पीनेसे पेट-दर्द ठीक हो जाता है। स्वादके लिये चीनी या शहद चाहें तो मिला लें।

(३) एक नीबू, काला नमक, काली मिर्च, चौथाई, चम्मच सोंठ, आधा गिलास पानीमें मिलाकर पीनेसे पेट-दर्द ठीक हो जाता है।

(४) अजवाइन, सेंधा नमकको नीबूके रसमें भिगोकर सुखा लें। पेट-दर्दमें एक चम्मच चबाकर पानी पीयें। इस प्रकार हर एक घंटेमें जबतक दर्द रहे, लें। पेटपर सेंक करें।

(५) कीड़ोंके कारण पेट-दर्द हो, पेटमें कीड़े हों तो सात दिन दो बार नित्य नीबूकी एक फाँकमें पिसा हुआ जीरा, काली मिर्च, काला नमक भरकर चूसें।

(६) मूलीपर नमक, नीबू, काली मिर्च डालकर खानेसे अपचका पेट-दर्द ठीक हो जाता है।

(७) किसी उत्सव आदिमें अधिक खाना खानेसे अपच, गैससे पेट-दर्द हो तो एक कप तेज गरम पानीमें भुना हुआ जीरा, पिसी हुई अजवाइन, नीबू और चीनी सब स्वादके अनुसार मिलाकर चार बार नित्य पीयें।

(८) आधा कप मूलीके रसमें आधा नीबू निचोड़कर नित्य दो बार पीनेसे खाना ख़ानेके बाद होनेवाला पेट-दर्द ठीक हो जाता है।

(९) चीनी, जीरा, नमक, काली मिर्च, एक कप गरम पानी नीबू मिलाकर तीन बार नित्य पीयें।

(१०) बार-बार नीबूका पानी पीते रहनेसे पेट-दर्द, वायु-गोलेका दर्द ठीक हो जाता है।

यकृत्—नीबू, पानी एवं दस काली मिर्च मिलाकर नित्य पीते रहें। यकृत्-सम्बन्धी रोग ठीक हो जायँगे।

क़ब्ज़—(१) गरम पानी और नीबू प्रातः भूखे पेट पीयें। एक गिलास हलके गरम पानीमें एक नीबू निचोड़कर एनिमा लगायें। पेट साफ हो जायगा। कृमि भी निकल जायँगे।

(२) एक गिलास गरम पानीमें एक नीबू, दो चम्मच एरण्डीका तेल (कैस्टर ऑयल) मिलाकर रातको पीयें।

(३) एक चम्मच मोटी सौंफ तथा पाँच काली मिर्च चबायें, फिर एक गिलास गरम पानी, एक नीबू और काला नमक मिलाकर रातको नित्य पीयें।

(४) प्रातः भूखे पेट अमरूदपर नमक, काली मिर्च, नीबू डालकर प्रतिदिन खायें।

(५) प्रातः भूखे पेट नीबू-पानी तथा रातको सोते समय नीबूकी शिकंजी पीनेसे क़ब्ज़ दूर होता है। लम्बे समयतक पीते रहें। पुराना क़ब्ज़ भी दूर हो जायेगा।

उलटी—(१) आधा कप पानीमें पंद्रह बूँद नीबूका रस, भुना एवं पिसा हुआ जीरा, पिसी हुई एक छोटी इलायची मिलाकर हर आधे घंटेमें पीयें। उलटी होना बंद हो जायगी।

(२) नीबूके छिलके सुखाकर, जलाकर राख बना लें। चौथाई चम्मच राख, आधा चम्मच शहदमें मिलाकर चाटनेसे उलटी बंद हो जाती है।

(३) दो छोटी इलायची पीसकर नीबूकी फाँकमें भरकर चूसनेसे उलटी बंद हो जाती है।

(४) चौथाई कप पानीमें आधा नीबू निचोड़कर मिला लें। इसकी एक चम्मच हर पंद्रह मिनटमें पीयें। उलटी बंद हो जायगी।

(५) सेंधा नमक और हरे धनियेपर आधा नीबू निचोड़कर चटनी बना लें। जबतक उलटी हो, बार-बार आधा चम्मच चाटते रहें।

(६) नीबूकी एक फाँकमें मिस्री भरकर चूसें।

(७) जी मिचलाते ही, उलटीकी इच्छा होते ही नीबूकी फाँकमें काला नमक, काली मिर्च भरकर चूसें। उलटी नहीं होगी।

(८) यात्रामें उलटी हो तो नीबू चूसते रहें।

(९) शिशु दूध पीनेके बाद उलटी करते हों तो दूध पिलानेके कुछ देर बाद तीन बूँद नीबूका रस एक चम्मच पानीमें मिलाकर पिलायें।

गर्भावस्थाकी उलटी (मॉरनिंग सिकनेश)—(१) १०० ग्राम कच्चा जीरा, तीस ग्राम सेंधा नमक पीसकर नीबूके रसमें तर कर लें, ये रसमें डूबे रहें। इनको ऐसे ही रहने दें। प्रतिदिन एक बार स्टीलकी चम्मचसे हिला दें। सूख जानेपर आधा चम्मच प्रतिदिन तीन बार चबायें। गर्भावस्थामें होनेवाली उलटियाँ बंद हो जायेंगी।

(२) ठंडे पानीमें नीबू निचोड़कर पीनेसे गर्भावस्थाकी उलटीमें लाभ होता है।

नाभि टलना—नीबू काटकर बीज निकाल दें। इसमें भुना हुआ सुहागा (यह पंसारीके यहाँ मिलता है) एक चम्मच भरकर हलका-सा गरम करके चूसें, टली हुई नाभि अपने स्थानपर आ जायगी।

दस्त—(१) एक कप ठंडे पानीमें चौथाई नीबू निचोड़कर स्वादके अनुसार नमक, चीनी मिलाकर दो-दो घंटेमें पीनेसे दस्त बंद हो जाते हैं।

(२) दस्त थोड़ा-थोड़ा, बार-बार हो तो एक चम्मच प्याजका रस, आधा नीबूका रस चौथाई कप ठंडे पानीमें मिलाकर हर तीन घंटेमें पिलायें।

एमोबायसिस (आमातिसार)—में नित्य दिनमें तीन बार नीबूका पानी पीनेसे लाभ होता है। लगातार लेते रहनेसे आँतें साफ होकर आँव आना बंद हो जाता है।

हैजा—नीबू हैजेसे भी बचाता है। जब हैजा फैल रहा हो, किसीको हैजा हो गया हो तो सम्पर्कमें आनेवाले लोग नीबूका अधिकाधिक सेवन करें। नीबू चूसें, नीबूका अचार

खायें। भोजनके बाद नीबूका पानी पीयें। हैजासे बचाव होगा। हैजेके कीटाणु खट्टी चीजोंके सेवनसे नष्ट हो जाते हैं। हैजा होनेपर चार चम्मच गुलाबजल, थोड़ा-सा नीबू और मिस्री मिलाकर हर दो घंटेमें पिलायें। हैजेमें लाभ होगा।

बवासीर (पाइल्स)—में रक्त आता हो तो नीबूकी फाँकमें सेंधा नमक भरकर चूसनेसे रक्तस्राव बंद हो जाता है।

पीलिया (जॉन्डिस)—(१) पत्तोंसहित मूलीका रस एक कपमें स्वादानुसार चीनी और नीबूका रस मिलाकर प्रातः भूखे पेट तथा रातको सोते समय दो बार प्रतिदिन पीनेसे पीलियामें लाभ होता है।

(२) प्याजके टुकड़े नीबूके रसमें डाल दें। स्वादानुसार नमक, काली मिर्च डाल दें। नित्य दो बार थोड़ा-थोड़ा यह प्याज खानेसे पीलियामें लाभ होता है।

गर्भस्राव (एबॉर्शन)—नमकीन शिकंजी (नीबू, नमक और पानी)-में विटामिन 'ई' होता है। विटामिन 'ई' स्त्रीको गर्भधारणमें सहायता करता है। गर्भकी रक्षा करता है, गर्भस्राव रोकता है। सुबह-शाम नमकीन शिकंजी पीनेसे विटामिन 'ई' की पूर्ति हो जाती है। जिनको गर्भस्राव होता हो, वे नमकीन शिकंजी पीयें तथा रातको सोते समय पावोंके नीचे तकिया रखें।

मोटापा—सुबह-शाम नीबूका पानी पीनेसे मोटापा घटता है।

उच्च रक्तचाप—से बचनेके लिये प्रातः नीबूका पानी सदा पीते रहें।

हृदय-रोग और उच्च रक्तचापके रोगी नित्य तीन बार नीबूका पानी पीते रहें। आशातीत लाभ होगा।

ज्वर—ज्वरमें प्यास अधिक लगती है, मुँह सूखता है, व्याकुलता बढ़ती है। लार बनानेवाली ग्रन्थियाँ लार बनाना बंद कर देती हैं। जिससे मुँह सूखने लगता है। अतः पानीमें नीबू, नमक, काली मिर्च डालकर पीयें। नीबूमें नमक, काली मिर्च भरकर भी चूस सकते हैं।

मलेरिया—में नीबू किसी भी रूपमें अधिकाधिक सेवन करनेसे लाभ होता है। चायमें दूधके स्थानपर नीबू डालकर पीनेसे मलेरियामें लाभ होता है। भोजन करते समय हरी मिर्चपर नीबू निचोड़कर खायें। मलेरिया आनेसे पहले नीबूमें नमक भरकर चूसें या नीबूकी शिकंजी पीयें।

फिटकरी भुनी हुई, काली मिर्च, सेंधा नमक—तीनों समान मात्रामें लेकर पीस लें। नीबूकी एक फाँकपर यह चूर्ण चौथाई चम्मच भरकर गरम करके ज्वर आनेके एक घंटे पहले आधा-आधा घंटेके अन्तरसे चूसें। मलेरिया-बुखार नहीं आयेगा। दो-तीन दिन यह प्रयोग करें।

जुकाम—(१) यदि जुकाम बार-बार लगता है तो रातको सोते समय पगतलियोंपर सरसोंके तेलकी मालिश करें। एक गिलास तेज गरम पानीमें एक नीबू निचोड़कर एक महीने पीयें।

(२) जब जुकाम लग गयी हो तो एक साबूत नीबूको धोकर, एक गिलास पानीमें उबाल लें। नीबू उबलनेपर उसे निकालकर काट लें और इसी गरम पानीको एक गिलासमें भरकर वही नीबू निचोड़ें। इसमें एक चम्मच अदरकका रस, दो चम्मच शहद मिलाकर पीयें। जुकाम ठीक हो जायगा।

(३) दो चम्मच दाना-मेथी एक गिलास पानीमें उबालें। उबलते हुए आधा पानी शेष रहनेपर पानी छानकर इसमें आधा नीबू निचोड़कर गरमागरम ही पीयें। उबली हुई मेथी भी खायें। ज्वर, फ्लू, सर्दी, श्वास, विवर-प्रदाह (साइनोसाइटिस)-में लाभ होगा। यह पेय दो बार नित्य, जबतक जुकाम ठीक नहीं हो जाय, पीते रहें।

दमा (अस्थमा)—एक कप तेज गरम पानी, आधे नीबूका रस, एक चम्मच अदरकका रस, दो चम्मच शहद—सब मिलाकर नित्य सुबह-शाम पीते रहें। दमा, हृदय-रोग, उच्च रक्तचाप (हाई ब्लडप्रेशर)-में लाभ होगा।

खाँसी—(१) आधे नीबूका रस और दो चम्मच शहद मिलाकर चाटनेसे तेज खाँसी, श्वास, जुकाममें लाभ होता है।

(२) नीबूमें चीनी, काला नमक, काली मिर्च भरकर

गरम करके चूसनेसे लाभ होता है। खाँसीका तेज दौरा ठीक हो जाता है।

(३) पोदीनेके ३० पत्ते, आठ काली मिर्च पिसी हुई, एक गिलास पानी स्वादके अनुसार नमक मिलाकर उबालें। उबलते हुए आधा पानी शेष रहनेपर छानकर उसमें आधा नीबू निचोड़कर सुबह-शाम दो बार पीयें। खाँसी तथा ज्वर (फीवर)-में लाभ होगा।

(४) एक नीबूको पानीमें उबालकर एक कपमें निचोड़कर दो चम्मच शहद डालकर मिला लें। इस प्रकार तैयार करके ऐसी दो मात्रा सुबह-शाम लें, खाँसीमें लाभ होगा। सीनेमें जमा हुआ बलगम पिघलकर बाहर आ जाता है।

अनिद्रा—सोते समय नीबू, शहद, पानीका एक गिलास पीनेसे नींद गहरी आती है।

सिर-दर्द—(१) नीबूके छिलके पीसकर सिरपर लेप करनेसे सिर-दर्दमें लाभ होता है।

(२) अदरकका रस आधा चम्मच, नीबूका रस आधा चम्मच, सेंधा नमक चौथाई चम्मच मिलाकर हलका-सा गरम करके इसे सूँघें। इससे छींकें आकर कफ, पानी निकलता है और सिर-दर्द ठीक हो जाता है। यह सर्दी लगनेसे हुआ सिर-दर्द, आधे सिरका दर्द (विवर-प्रदाह—साइनोसाइटिस)-में अधिक लाभकारी है।

(३) जिस ओर सिर-दर्द हो उसके विपरीत नथुनेमें (अर्थात् बायीं ओर सिर-दर्द हो तो दायें नथुनेमें) तीन बूँद नीबूका रस डालनेसे आधे सिरका दर्द (हेमीक्रेनिया) जो सूर्यके साथ घटता-बढ़ता है तथा साथ ही अन्य सिर-दर्द भी ठीक हो जाते हैं।

(४) नीबूकी फाँक गरम करके सिर-दर्दपर रगड़ें, एक बार रगड़नेके पंद्रह मिनट बाद पुनः रगड़ें। इस तरह लगाते रहनेसे सिर-दर्द शीघ्र ठीक हो जाता है। नीबूका रस रगड़नेके बाद सिरको हवा नहीं लगने दें। सिर ढक लें। नीबूके प्रयोगसे गरमीके कारण होनेवाला सिर-दर्द शीघ्र ठीक होता है।

पानीके रोग—गंदा पानी पीनेसे यकृत्, टॉइफाइड, दस्त, पेटके रोग हो जाते हैं। यदि शुद्ध पानी नहीं मिले, नदी, तालाबका इकट्ठा किया हुआ पानी हो तो पानीमें नीबू निचोड़कर पीयें। पानीमें नीबू निचोड़कर पीनेसे पानीके रोग, गंदगी आदिसे होनेवाले रोगोंसे बचाव होता है। नीबूके छिलकोंको रगड़नेसे बदबू दूर हो जाती है।

सूखी त्वचा (ड्राई स्किन)—(१) आधा कप दहीमें एक चम्मच पिसी हुई मुलतानी मिट्टी, आधा नीबू निचोड़कर मिलाकर चेहरे, हाथ, पैरोंपर मलकर लेप कर दें और आधे घंटे बाद धोयें। त्वचाका सूखापन दूर हो जायगा।

(२) सूखी त्वचापर हलदी और नीबूका रस मिलाकर पेस्ट बना लें तथा त्वचापर लेप करके आधे घंटे बाद धोयें। त्वचाका सूखापन दूर हो जायगा।

तैलीय त्वचा (ऑयली स्किन)—चौथाई कप खीरेके रसमें चार चम्मच बेसन, चार चम्मच दही, आधा नीबू निचोड़कर अच्छी तरह मिलाकर चेहरे तथा हाथ-पैरोंपर मलकर लेपकी तरह लगाकर आधे घंटे बाद धोकर साफ कर दें।

खुजली—नहानेसे पहले नीबूकी फाँकमें पिसी हुई फिटकरी भरकर खुजलीवाली जगहपर रगड़ें। दस मिनट बाद स्नान करें। खुजलीमें लाभ होगा।

नाखूनोंके पासकी त्वचा—पकती हो तो नीबूके हरे पत्ते और नमक पीसकर लगायें। पंद्रह दिन लगानेपर आप देखेंगे कि नाखूनोंकी त्वचा पकनी बंद हो गयी है।

रक्तवर्धक—(१) एक गिलास पानीमें एक नीबू निचोड़कर इसमें २५ ग्राम किशमिश डाल दें। इसे रातको खुले स्थानपर रख दें। प्रातः भीगी हुई किशमिश खाते जायँ और यह पानी पीते जायँ। इस प्रकार नीबू-पानीमें भिगी हुई किशमिश खानेसे रक्त बढ़ेगा। रक्तकी कमीके रोगोंमें लाभ होगा।

(२) मूली काटकर अदरकके टुकड़े और नीबू डालकर खायें। इससे रक्तकी कमी दूर होती है।

मुँहासे (पिम्पल्स, एक्नीज)—(१) तिलपर नीबू निचोड़कर चटनीकी तरह पीसकर चेहरेपर मलकर लेप

कर दें। दो घंटे बाद धोयें। चेहरेकी त्वचा मुलायम होकर मुँहासे ठीक हो जायँगे।

(२) दालचीनी पीसकर पाउडर बना लें। चौथाई चम्मच पाउडरमें कुछ बूँद नीबूके रसको डालकर पेस्ट बनाकर चेहरेपर लगायें। एक घंटेके बाद धोयें। मुँहासे ठीक हो जायँगे।

(३) नीबू निचोड़नेके बाद जो छिलका बचता है, उसे इकट्ठा करके सुखा लें। सूखनेपर पीस लें। इसकी दो चम्मचमें एक चम्मच बेसन मिलाकर पानी डालकर पेस्ट बनाकर चेहरेपर मलें। आधे घंटे बाद चेहरा धोयें। मुँहासे, झाइयाँ, धब्बे ठीक हो जायँगे।

(४) नहानेसे पहले चेहरेपर नीबूकी फाँक रगड़कर जब रस सूख जाय तब नहायें। इसके बाद भी बार-बार हर घंटे चेहरेपर नीबूका रस लगाते रहें।

शरीर-सौन्दर्यवर्धक—(१) चार चम्मच आटा जौ या चनेका, आठ चम्मच दूध, आधा चम्मच हलदी और दो नीबूका रस—सबको मिलाकर हाथ, मुँह, शरीरपर मलें। सूखनेपर रगड़कर बिना साबुन लगाये स्नान करें। इससे शरीर मुलायम एवं सुन्दर होगा।

(२) हलदी और मसूरकी दाल समान मात्रामें एक कप, इसमें एक नीबूका रस और पानी डालकर रातको भिगो दें। प्रातः पीसकर चेहरे, हाथ एवं गलेपर मलकर पंद्रह मिनट बाद स्नान करें। शरीरमें रूप-लावण्य झलकने-निखरने लगेगा।

(३) हरे मटरके दानोंपर नीबू निचोड़कर, थोड़ा-सा पानी डालते हुए पीस लें। इसे चेहरे एवं हाथोंपर मलकर आधे घंटे बाद धोयें। जहाँ भी लगायेंगे, वह स्थान सुन्दर लगेगा।

(४) आधा कप गाजरके रसमें आधा चम्मच शहद, चौथाई भाग नीबूका रस मिलाकर चेहरे तथा त्वचाके दाग-धब्बोंपर लगाकर आधे घंटे बाद धोयें। त्वचा कान्तिमय हो जायगी।

(५) चार चम्मच खीरेका रस, आधा नीबू, चौथाई चम्मच हलदी मिलाकर चेहरे, गर्दन, हाथों एवं बाँहोंपर लगायें। आधे घंटे बाद धोयें। इससे शरीरका श्याम रंग साफ होकर गोरापन आ जाता है। यह प्रयोग एक महीना करें।

(६) समान मात्रामें नीबूका रस और कच्चा दूध तथा चनेका बेसन मिलाकर चेहरे, गर्दन तथा त्वचापर जहाँ सुन्दरता बढ़ानी हो, नित्य लगाते रहें। सूखनेपर रगड़-रगड़कर धोयें। रंग गोरा होगा। रूप-रंग निखरेगा, सुन्दरता बढ़ेगी।

(७) दूधमें चार चम्मच चनेकी दाल रातको भिगो दें। प्रातः दाल पीस लें। इसमें चौथाई नीबूका रस, चौथाई चम्मच हलदी मिलाकर चेहरेपर लगाकर आधे घंटे बाद या सूखनेपर धोयें। यह प्रयोग एक महीनातक, तीन दिनमें एक बार करें। चेहरा आकर्षक बन जायगा।

(८) नीबू और नारंगीके छिलके सुखाकर, मिलाकर पीस लें। चार चम्मच दूधमें इसका पेस्ट बनाकर चेहरेपर मलें। पंद्रह मिनट बाद धोयें। त्वचा सुन्दर हो जायगी।

(९) रातको सोते समय चेहरेपर नीबू रगड़कर सोयें। प्रातः धोयें। चेहरेके धब्बे साफ हो जायँगे।

(१०) हलदीपर नीबू निचोड़कर पीस लें तथा चेहरेपर लगाकर एक घंटे बाद धोनेसे चेहरेके काले दाग, झाइयाँ दूर हो जाती हैं।

(११) नीबू निचोड़ी हुई फाँकसे होठोंको रगड़ें। होठोंका कालापन दूर हो जायगा।

नकसीर (एपिसटेक्सिस)—(१) नीबूके रसकी चार बूँद, जिस नथुनेसे रक्त आ रहा हो, उसमें डालनेसे तुरंत रक्त आना बंद हो जाता है।

(२) मूलीपर नीबू निचोड़कर नित्य खाते रहनेसे बार-बार नकसीर आना बंद हो जाता है।

(३) आँवला, अंगूर, गन्ना, नीबूमेंसे किसी एकके रसकी चार बूँद नाकमें डालनेसे नकसीर आना बंद हो जाता है।

(४) पानीमें मिस्री घोलकर तीन बूँद नाकमें डालनेसे नाकसे रक्त आना बंद हो जाता है।

दाँतोंकी मजबूती—शौचालयमें जबतक मल-त्याग

करें, दाँत भींचकर रखें, दाँत मजबूत रहेंगे हिलेंगे नहीं। प्रातः भूखे पेट फीका नीबू चूसें। नीबू चूसनेके एक घंटे बादतक कुछ भी न खायें। दाँत मजबूत रहेंगे और दाँत-दर्दमें भी लाभ होगा।

दाँतों, मसूढ़ोंसे रक्तस्राव—हो तो नीबूकी फाँक निचोड़कर आधा रस निकालकर, इस फाँकसे दाँत और मसूढ़े रगड़ें। मसूढ़ोंसे रक्तस्राव बंद हो जायेगा। मसूढ़े ढीले पड़ गये हों तो नीबूकी मीठी शिकंजी दो बार, एक महीना पीयें।

दाँतोंकी सफाई एवं दाँतोंका पीलापन—(१) नीबूकी आधी निचोड़ी फाँकपर चार बूँद सरसोंका तेल, जरा-सा नमक डालकर दाँतोंको रगड़े। दाँतोंका पीलापन दूर होकर दाँत साफ हो जायँगे।

(२) नीबूके छिलके सुखाकर पीस लें। इसमें थोड़ा-सा खानेका सोडा और नमक मिलाकर मंजन करें। दाँत चमकने लगेंगे, साफ रहेंगे। दाँतोंके सामान्य रोग ठीक हो जायँगे।

(३) नीबूके रसमें ब्रश डुबोकर मंजन करनेसे दाँत चमकने लगते हैं। दाँतोंको नीबूके रससे रगड़े।

धूम्रपान—नीबू चूसें। नीबू पानी पीयें। जीभपर बार-बार नीबूके रसकी पाँच बूँद डालें और स्वाद खट्टा बनाये रखें। धूम्रपान, बीड़ी, सिगरेट, जर्दा एवं तम्बाकू खानेकी आदत छूट जायेगी।

लू (सनस्ट्रॉक)—प्रतिदिन प्याज खायें, नीबूकी नमकीन शिकंजी पीयें। लूसे बचाव होगा।

पाँवोंमें पसीना—गर्म पानीके दो गिलासमें एक नीबूका रस मिलाकर पगतलियोंका सेंक करें, फिर इसी पानीसे पगतलियाँ धोयें।

चक्कर आना—प्रातः नीबूकी मीठी शिकंजी पीनेसे उठते-बैठते समय आनेवाले चक्कर ठीक हो जाते हैं।

शक्तिवर्धक—तीन छुहारे (गुठली निकालकर) टुकड़े कर लें। एक गिलास पानीमें ये छुहारे, १५ किशमिश, एक नीबूका रस डालकर रातको खुलेमें छतपर रख दें। प्रातः मंजन करके पानी पी जायँ तथा छुहारे, किशमिश खा जायँ। लगातार चार महीनेतक करें। चेहरा चमकने लगेगा।

तिल्ली (स्पिलिन)—तिल्ली बढ़नेपर पेट बढ़ जाता है, तेज चलनेपर साँस फूलती है, मलेरिया हो जाता है। दो चम्मच प्याजके रसमें आधा नीबू निचोड़कर, दो चम्मच पानी मिलाकर सुबह-शाम पीयें। नीबूका अचार भी खिलायें।

हकलाना, तुतलाना—गर्म पानीमें नीबू निचोड़कर सुबह-शाम कुल्ले करें। दस पिसी हुई काली मिर्च, एक चम्मच शुद्ध देशी घीमें मिलाकर प्रतिदिन दो बार चाटें।

[डॉ० श्रीगणेशनारायणजी चौहान, एम्० ए०, होमियोविशारद, वक्षरोग विशेषज्ञ, ७-ड-१९, जवाहरनगर, जयपुर-३०२००४]



तुलसीसे आरोग्य प्राप्त करें

तुलसी भारतमें प्रायः सर्वत्र पायी जानेवाली औषधि है। यही सभी हिन्दुओंकी पूज्या भी है। इसी कारण घर-घरमें इसका पौधा लगाया जाता है और पूजा भी की जाती है। इसको हिन्दीमें तुलसी गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, तमिलनाडु और अरबमें भी तुलसीके नामसे जाना जाता है। वैसे इसे हरिप्रिया, माधवी और वृन्दाके नामसे भी जाना जाता है। इसकी ६० जातियाँ होती हैं। प्रायः चार प्रकारकी तुलसी मुख्य है—

(१) रामा तुलसी, (२) श्यामा तुलसी, (३) वन तुलसी (कठेरक) और (४) मार बबर्द। हमारे यहाँ प्रायः यही जातियाँ प्राप्त होती हैं।

रासायनिक गुण—इसमें एक उड़नशील तेल पाया जाता है। जिसका औषधीय उपयोग होता है। कुछ समय रखा रहनेपर यह स्फिटिककी तरह जम जाता है। इसे तुलसी कपूर भी कहते हैं। इसमें कीनोल तथा एल्केलाइड भी पाये जाते हैं। एस्कार्बिक एसिड और केरोटिन भी पाया जाता है।

ओषधीय गुण—रस—कटु, तिक्त; गुण—लघु, रूक्ष; वीर्य—उष्ण; विपाक—कटु; प्रभाव—कृमिघ्न, शूलघ्न, भूतघ्न; कर्म—कफ, वात-शामक।

मलेरिया उपचारमें इसका गिलोय नीमके साथ उपयोग किया जाता है।

जहाँ तुलसीके पौधे होते हैं, वहाँ मलेरियाके कीटाणु नहीं आते। पद्मपुराण, चरक संहिता, हारीत संहिता, योगरत्नाकर, सुश्रुत संहिता आदि ग्रन्थोंमें इसके गुणोंका वर्णन मिलता है।

धार्मिक महत्त्व—भगवान् शालग्राम साक्षात् नारायण-स्वरूप हैं और तुलसीके बिना उनकी कोई पूजा सम्पन्न नहीं होती। नैवेद्य आदिके अर्पणके समय मन्त्रोच्चारण और घण्टानादके साथ तुलसीदल-समर्पण भी उपासनाका मुख्य अंग माना जाता है।

मृत्युके समय तुलसीदलयुक्त जल मरणासन्न व्यक्तिके मुखमें डाला जाता है, जिससे मरणासन्न व्यक्तिको सद्गति प्राप्त होती है।

दाह-संस्कारके समय तुलसीके काष्ठका उपयोग किया जाता है। इससे करोड़ों पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। तुलसीके काष्ठकी माला सिद्ध माला कहलाती है, इसी प्रकार तुलसी-मञ्जरीका भी विशेष महत्त्व है।

तुलसीका पूजन वैसे तो वर्षभर किया जाता है, पर विशेष तौरपर कार्तिकमें तुलसी-विवाहकी परम्परा है। तुलसीके समीप किया गया अनुष्ठान बहुत ही फलदायक होता है।

औषधीय उपयोग

(१) ज्वर—तुलसीदल और काली मिर्चका काढ़ा पीनेसे ज्वरका शमन होता है।

(२) वातश्लेष्मिक ज्वर—तुलसीपत्र स्वरस ६ ग्राम, निर्गुणपत्र स्वरस ६ ग्राम, पीपर चूर्ण १ ग्राम मिलाकर पीनेसे ज्वर ठीक हो जाता है।

(३) आंत्रिक ज्वर—तुलसीदल १०, जावित्री १ ग्राम शहदके साथ मिलाकर खिलाना चाहिये २१ दिनोंतक। आंत्रिक ज्वरमें लाभ होता है।

(४) खाँसी—तुलसीके पत्ते और अडूसाके पत्ते मिलाकर बराबर मात्रामें सेवन करनेसे खाँसीमें लाभ होता है।

(५) कर्णशूल—तुलसी पत्र स्वरस कानमें डालनेसे कर्णशूल शान्त होता है।

सरसोंके तेलमें तुलसी पत्र औटावे। जब पत्तियाँ जल जायँ तो छानकर रख लें।

(६) नासारोग (नाक)—नाकके अन्दर पिण्डिकामें तुलसी-पत्र बाटकर सूँघनेसे आराम होता है।

(७) नेत्र रोग—तुलसीपत्र स्वरसमें मधु मिलाकर आँखमें लगानेसे आँखमें लाभ होगा।

(८) केश रोग—तुलसीपत्र स्वरस, भृंगराज पत्र स्वरस और आँवला बारीक पीसकर मिलाकर लगानेसे बाल झड़ना बंद हो जाता है, बाल काले होते हैं।

(९) वीर्यसम्बन्धी रोग—तुलसीकी जड़को पीसकर पानमें रखकर खानेसे वीर्य पुष्ट होता है, स्तम्भन शक्ति बढ़ती है।

[अ] तुलसी-बीज या जड़का चूर्ण पुराने गुड़के साथ मिलाकर ३ माशा प्रतिदिन दूधके साथ सेवन करनेसे पौरुष शक्तिमें वृद्धि होती है।

[ब] तुलसी-बीजका चूर्ण पानीके साथ खानेसे स्वप्नदोष ठीक हो जाता है।

(१०) मूत्ररोग—एक पाव पानी, एक पाव दूध मिलाकर उसमें २ तोला तुलसीपत्र स्वरस मिलाकर पीनेसे मूत्रदाह ठीक होता है।

(११) पूयमेह—तुलसीपत्र स्वरसमें मधु मिलाकर सेवन करना लाभदायक होता है।

(१२) उदररोग—तुलसी मंजरी और काला नमक मिलाकर खानेसे अजीर्ण रोगमें लाभ होता है।

[अ] तुलसी पचाङ्गका काढ़ा पीनेसे दाँतोंमें आराम होता है।

[ब] तुलसी एक चम्मच, अदरक स्वरस एक चम्मच मिलाकर खानेसे पेट-दर्दमें आराम होता है।

[स] तुलसी दल २१, बायविडंगके साथ पीसकर सुबह-शाम पानीके साथ खानेसे पेटके कृमि मर जाते हैं।

(१३) आमवात—तुलसी पत्र स्वरसमें अजवायन मिलाकर खाना चाहिये।

(१४) वातरक्त—कुछ समयतक नियमित तुलसीदल-सेवनसे लाभ होता है।

(१५) वात रोग—तुलसीपत्र, कालीमिर्च-चूर्ण घृतके साथ सेवन करना चाहिये।

(१६) रक्त-विकार—तुलसी और गिलोय ३-३ ग्रामका क्वाथ बनाकर मिस्री मिलाकर सेवन करे।

(१७) मुख-दुर्गन्ध—भोजनके बाद ५ तुलसी दल खानेसे मुखसे बास नहीं आती।

(१८) मुख पाक—तुलसीदल और चमेलीके पत्तोंको खानेसे मुख पाकमें लाभ होता है।

(१९) रक्त प्रदर—तुलसी-बीजका चूर्ण अशोक पत्र स्वरसके साथ सेवन करना चाहिये।

(२०) कामला—तुलसीपत्र ५ ग्राम, पुनर्नवामूल ५ ग्राम मिलाकर पीना लाभदायक होता है।

(२१) विषरोग—तुलसीपत्रको गोघृतमें मिलाकर पिलानेसे हर प्रकारका जहर उतर जाता है।

[अ] सर्पविष—मार बबर्द तुलसीके बीज २ ग्राम खाना चाहिये और बाटकर लगाना चाहिये। बेहोश होनेपर रस नाकमें डालें।

[ब] वृश्चिक दंश—तुलसीपत्र स्वरस चौगुने जलमें बाटकर ५-५ मिनटपर पिलाते जायँ।

(२२) शिरःशूल—तुलसी दल ११, काली मिर्च ११ मिलाकर खानेसे सिरदर्द ठीक होता है। इसीका नस्य लेनेसे आधासीसीमें लाभ होता है।

(२३) मूषक दंश—तुलसी स्वरस अफीम मिलाकर लगानेसे लाभ होगा।

(२४) मधुमक्खी—तुलसीपत्र स्वरस, सेंधा नमक और घृत मिलाकर लगानेसे सूजन भी नहीं आती, दर्दमें भी आराम होता है।

(२५) दद्रू—दाद होनेपर तुलसीपत्र स्वरस और नीबूका रस मिलाकर लगानेसे दाद ठीक हो जाता है।

(२६) खाज-खुजली—खाज-खुजलीमें नीमपत्र एवं तुलसीपत्र मिलाकर खाये भी और लगाये भी।

(२७) सफेद दाग—गंगाजलके साथ तुलसीपत्रको मिलाकर लगाना चाहिये। सफेद दाग ठीक होते हैं।

(२८) बाल-तोड़—बालतोड़ होनेपर तुलसीपत्र, पीपल-पत्ती मिलाकर लगानेसे आराम होता है।

(२९) घाव—तुलसीपत्र स्वरस और फिटकरी बारीक पीसकर घावपर छिड़कनेसे घाव जल्द भरता है।

(३०) कुष्ठ—कुष्ठमें भी तुलसीपत्र स्वरस लगाने एवं खानेसे तथा सोंठ और तुलसी जड़को पानीके साथ सेवन करनेसे आराम होता है।

(३१) अग्निदग्ध—अग्निदग्ध होनेपर तुलसीपत्र स्वरस नारियलतेल मिलाकर लगानेसे लाभ होता है।

(३२) मुँहासे—तुलसी स्वरस, नीबू स्वरस बराबर मात्रामें मिलाकर लगानेसे मुँहासे मिट जाते हैं।

(३३) अर्श—तुलसीपत्र स्वरसको मस्सोंपर लगानेसे वे मुरझा जाते हैं।

(३४) मानसरोग—अपस्मारमें तुलसीपत्र स्वरस या तुलसीदलको बाटकर शरीरमें लेप करे।

[अ] भूतज्वर—तुलसीपत्र स्वरसमें त्रिकूट मिलाकर सूँघनेसे लाभ होता है।

स्वानुभूतं योग—दो योग सर्वसाधारण जनताके हितार्थ लिखे जा रहे हैं। ये योग वैद्योंसे प्राप्त किये गये हैं—स्व-अनुभूत हैं।

भूतोन्माद—जब आदमी भूतोन्मादसे पीडित होकर जोर-जोरसे चिल्ला रहा हो, तब तुलसीपत्र जलमें डालकर सात परिक्रमा करके जल छिड़कते जायँ। अन्तमें तुलसीपत्र खिला दे लाभ होगा। आदेश दे कि वह अच्छा हो गया है।

पशु-चिकित्सा (गाय, भैंसके कीड़ा पड़नेपर)—जब किसी गाय या भैंसको व्याधि हो गयी हो और कीड़ा हो गया हो तो नीला कपड़ा लेकर रविवारके दिन या बुधवारके दिन मार बबर्द तुलसीकी शाखा लेकर उसे मोड़कर कपड़ेमें बाँध ले और उसको सींगमें बाँध दे। तीन दिनमें कीड़े मर जायँगे और सात दिन बाद घाव भी सूख जायगा तब दवाईको सींगसे हटा ले और एक नारियल भगवान् शंकरके नामसे फोड़ दे। इससे लाभ प्राप्त होगा।

[वैद्य श्रीराकेश सिंहजी बक्सी
मु० बावली, पो०—बेदू (नरसिंहपुर) (म० प्र०)]



आरोग्यशास्त्रके प्रवर्तक भगवान् धन्वन्तरि

भगवान् धन्वन्तरिकी हम जीवोंपर महान् कृपा है। उनका विग्रह ही कृपामय है। न केवल सांसारिक प्राणियोंपर ही आपका अनुग्रह है, अपितु देवता भी आपके ही आश्रयसे असुरोंकी विभीषिकासे मुक्त होकर स्वस्थ, निर्भीक एवं आनन्दित हो सके थे। बात उस समयकी है, जब देवगणोंसे महर्षि दुर्वासाजीका अपराध बन पड़ा था और इसके परिणामस्वरूप न केवल देवता अपितु त्रिलोकी श्रीहीन हो गया था। दैवीसम्पत्‌के विलुप्त हो जानेसे सर्वत्र आसुरी साम्राज्य स्थापित हो चुका था। दुःखी हो देवता, ब्रह्माजीको साथ लेकर भगवान् नारायणकी शरणमें पहुँचे और नारायणने उन्हें असुरोंको साथ लेकर समुद्र-मन्थनका परामर्श दिया और बताया कि इस मन्थनसे अमृतका कलश लेकर स्वयं मैं धन्वन्तरि नामसे प्रकट होऊँगा और फिर उसी अमृतके बलपर आप लोग सदाके लिये अमर हो जायँगे। नारायणकी ऐसी अमृतमयी वाणी सुनकर सभीको बड़ा ही आनन्द हुआ।

फिर क्या था, देवताओंके समझानेपर अज्ञानी असुर भी अमृतके लोभसे समुद्र-मन्थनके लिये राजी हो गये और फिर समुद्रका मन्थन प्रारम्भ हुआ। बिना नारायणके सहयोगके समुद्र-मन्थन हो भी कैसे सकता था? अतः स्वयं नारायणने कूर्मरूप धारण कर मन्दराचल पर्वतको नीचेसे पकड़ रखा था और दूसरे रूपसे वे ऊपरसे उसे दबाये हुए भी थे, साथ ही वे देवता-असुरका रूप बनाकर दोनों दलोंमें पहुँचकर समुद्र मथने लगे। नारायणका सम्बल पाकर समुद्रसे चौदह रत्नोंका प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें भगवान् धन्वन्तरि अमृतका कलश लेकर प्रादुर्भूत हुए।

वेदव्यासजी श्रीमद्भागवतमें यह बताते हैं कि उस समय समुद्रके मध्यसे जो दिव्य पुरुष प्रकट हुए, वे बड़े ही सुन्दर तथा मनोज्ञ थे। उन्होंने शरीरपर पीताम्बर धारण कर रखा था। सभी अङ्ग अनेक प्रकारके दिव्य आभूषणों तथा अलङ्करणोंसे अलंकृत थे। उन्होंने कानोंमें मणियोंके दिव्यकुण्डल पहिने हुए थे। उनकी तरुण अवस्था थी तथा उनका सौन्दर्य अनुपम था। शरीरका रंग बड़ा ही सुन्दर साँवला-साँवला था। चिकने और घुँघराले बाल लहराते हुए उनकी छबि बड़ी अनोखी थी।[1] उन्होंने अमृतसे पूर्ण कलश धारण कर रखा था। वे साक्षात् भगवान् विष्णुके अंशांश अवतार थे और वे आयुर्वेदके प्रवर्तक तथा यज्ञभोक्ता धन्वन्तरिके नामसे सुप्रसिद्ध हुए—

अमृतापूर्णकलशं बिभ्रद् वलयभूषितः।
स वै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसम्भवः॥
धन्वन्तरिरिति ख्यात आयुर्वेदद‍ृगिज्यभाक्।[2]

(श्रीमद्भा० ८।८।३४-३५)

महर्षि वाल्मीकिने उन्हें 'आयुर्वेदमय' कहा है (वाल्मी० बाल० ४५।३१)। जिस समय वे समुद्रसे प्रकट हुए उस समय भगवान् विष्णुके नामोंका जप कर रहे थे और प्राणियोंके आरोग्यका चिन्तन कर रहे थे। उनकी बड़ी दिव्य आभा छिटक रही थी, वे नारायणके अंशसे ही अवतरित थे। उस समय भगवान् विष्णुने 'अप्' (जल)-से उत्पन्न होनेके कारण उनका 'अब्ज' यह नाम रखा और अनेक वर प्रदान करते हुए उनसे कहा—वत्स! तुम्हारा आविर्भाव तीनों लोकोंका कल्याण करनेके लिये हुआ है। इस समय असुरोंने तीनों लोकोंमें त्राहि-त्राहि मचा रखी है। वे इतने प्रभावशाली हो गये हैं कि उन्होंने देवताओंको भी भयभीत कर रखा है, बिना अमृतके वे कैसे स्वस्थ रह सकते हैं, अतः अमृतरूप अमोघ औषध-प्राप्तिके लिये ही तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है। वह पूर्ण हो चुका है। इस समय तुम अब अमरावतीमें प्रतिष्ठित होओ। दूसरे जन्ममें तुम लोकमें अति प्रसिद्धि प्राप्त करोगे, वहाँ गर्भावस्थामें ही तुम्हें

---

१. श्रीमद्भागवत ८।८।३१—३३

२. इसी बातको अन्यत्र इस प्रकार कहा गया है—

(क) ततो धन्वन्तरिर्विष्णुरायुर्वेदप्रवर्तकः। बिभ्रत् कमण्डलुं पूर्णममृतेन समुत्थितः॥ (अग्नि० ३।११)

(ख) ततो धन्वन्तरिर्देवः श्वेताम्बरधरस्स्वयम्। बिभ्रत्कमण्डलुं पूर्णममृतस्य समुत्थितः॥ (विष्णुपु० १।९।९८)

(ग) धन्वन्तरिस्ततो देवो वपुष्मानुदतिष्ठत। श्वेतं कमण्डलुं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति॥ (महा०आदि० १८।३८)

अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त हो जायँगी। तुम उसी शरीरसे देवत्व प्राप्त कर लोगे और ब्राह्मण लोग चरु, मन्त्र, व्रत एवं जपनीय मन्त्रोंद्वारा तुम्हारा यजन करेंगे। तुम आयुर्वेदको प्रवर्तित कर उसे आठ अङ्गों[1]में विभाजित कर आरोग्यके अवदानसे जीवमात्रका कल्याण करोगे—

द्वितीयायां तु सम्भूत्यां लोके ख्यातिं गमिष्यसि।
अणिमादिश्च ते सिद्धिर्गर्भस्थस्य भविष्यति॥
तेनैव त्वं शरीरेण देवत्वं प्राप्स्यसे प्रभो।
चरुमन्त्रैर्व्रतैर्जाप्यैर्यक्ष्यन्ति त्वां द्विजातयः॥
अष्टधा त्वं पुनश्चैवमायुर्वेदं विधास्यसि।

(हरिवंश० हरि० २९। १८—२०)

धन्वन्तरिको ऐसा वरदान देकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये (इमं तस्मै वरं दत्त्वा विष्णुरन्तर्दधे पुनः।) और भगवान् धन्वन्तरि देवलोकमें अत्यन्त महिमाको प्राप्त हुए।

इस प्रकार विष्णुके अंशसे अवतरित होकर भगवान् धन्वन्तरिने अमृतरूपी औषधका सृजनकर देवताओंको भी सब प्रकारसे सदाके लिये अजर-अमर और नीरोग बना दिया। देवताओंका 'अजराः' (वृद्धावस्थासे रहित) 'अमराः' (मृत्युरहित) तथा 'निरामयाः' (सब प्रकारकी आधि-व्याधि और रोग-शोकसे मुक्त) आदि नाम सार्थक हो गये और भगवान् धन्वन्तरि आयुर्वेदके प्रवर्तक तथा आरोग्यके देवतारूपमें प्रतिष्ठित हो गये।

इधर धीरे-धीरे समय परिवर्तित हुआ। दूसरा द्वापर युग आ गया। काशीमें एक महान् धर्मात्मा राजा हुए, उनका नाम था धन्व। सभी सुख होनेपर भी वे पुत्र न होनेसे दुःखी रहते थे। उन्होंने मन-ही-मन चिन्तन किया कि मैं उस देवताकी आराधना करूँ, जो मुझे पुत्र प्रदान कर सके। तब उन्हें नारायणके अवतार भगवान् धन्वन्तरि (अब्जदेव)-का स्मरण हो आया। वे उनकी दयालुताको अच्छी तरह समझते थे।

फिर क्या था, काशिराज धन्व तपस्या-आराधनामें संलग्न हो गये। सच्ची आराधना अवश्य फलवती होती है। प्रसन्न हो भगवान् धन्वन्तरिने उन्हें दर्शन दिया। दर्शन पाकर राजा धन्व कृतार्थ हो गये। भगवान्‌ने कहा—राजन्! मैं तुम्हारी भक्तिसे बहुत प्रसन्न हूँ, वर माँगो। राजा धन्वने कहा—'प्रभो! आप तो अन्तर्यामी हैं, फिर भी मेरी इच्छा है कि आप पुत्ररूपमें मेरे यहाँ अवतीर्ण हों और इसी नाम-रूपमें आपकी प्रसिद्धि भी हो।'

भगवान् तो ऐसा चाहते ही थे; क्योंकि उस समय प्रजा रोगोंसे आक्रान्त हो गयी थी, सब प्राणिजगत् बड़ा दुःखी था, अपनी प्रजाका कष्ट भगवान्‌से कैसे देखा जाता? अतः वे बोले—'राजन्! ऐसा ही होगा।' वर देकर वे अन्तर्धान हो गये। राजा धन्वकी तो प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही।

कुछ समय पश्चात् भगवान् विष्णुके अवतार भगवान् धन्वन्तरि ही काशिराज धन्वके यहाँ पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए और उनका नाम भी धन्वन्तरि ही पड़ा। वे भी नारायणके ही परम्परा-प्राप्त अवतार थे, उनमें सब प्रकारके रोगोंको दूर करनेकी शक्ति प्रतिष्ठित थी—

तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा।
काशिराजो महाराज सर्वरोगप्रणाशनः॥

(हरिवंश० हरि० २९। २६)

इस बातको स्वयं धन्वन्तरिजीने भी कहा है कि देवताओंकी वृद्धावस्था, रोग तथा मृत्युको दूर करनेवाला आदिदेव धन्वन्तरि मैं ही हूँ। आयुर्वेदके अन्य अङ्गोंसहित शल्यतन्त्रका उपदेश करनेके लिये फिरसे इस पृथ्वीपर आया हूँ—

अहं हि धन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजामृत्युहरोऽमराणाम्।
शल्याङ्गमङ्गैरपरैरुपेतं प्राप्तोऽस्मि गां भूय इहोपदेष्टुम्॥

(सुश्रुतसं० सू० १। २१)

यद्यपि काशिराज धन्वन्तरि आयुर्वेदशास्त्रके ज्ञानसे सब प्रकारसे सम्पन्न थे, तथापि मर्यादा है कि गुरुमुखसे ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, अतः उन्होंने महर्षि भरद्वाजजीसे सम्पूर्ण आयुर्वेदशास्त्र और चिकित्सा-कर्मका ज्ञान प्राप्तकर आयुर्वेदको शल्य, शालाक्य आदि आठ भागोंमें विभक्त किया और अनेक शिष्य-प्रशिष्योंको आयुर्वेदकी शिक्षा प्रदान की—

आयुर्वेदं भरद्वाजात् प्राप्येह भिषजां क्रियाम्।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत्॥

(हरिवंश० हरि० २९। २७)

कृपावतार धन्वन्तरिकी अनन्त महिमा हैं। उन्होंने आरोग्यशास्त्रका प्रवर्तन कर जीवोंका महान् कल्याण

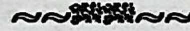
---

१. आयुर्वेदके आठ अङ्ग इस प्रकार हैं—शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतन्त्र, रसायनतन्त्र और वाजीकरणतन्त्र। (सुश्रुतसं० सूत्र १। ७)

किया। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि श्रद्धा-भक्तिपूर्वक इनके स्मरणमात्र करनेसे सब प्रकारके रोग, शोक, आधि-व्याधि दूर हो जाते हैं—'स्मृतमात्रार्तिनाशनः' (श्रीमद्भा० ९।१७।४)। भागवत आदिमें इन्हें दीर्घतमाका पुत्र कहा गया है। शल्यशास्त्रके प्रमुख ग्रन्थ सुश्रुतसंहितामें यह निर्देश है कि काशिराज धन्वन्तरिसे ही महर्षि सुश्रुतने सम्पूर्ण आयुर्वेद ग्रहण किया। वहाँ धन्वन्तरिको दिवोदास धन्वन्तरि कहा गया है (सुश्रुतसं०सूत्र० १।३—५)। इस प्रकार भगवान् नारायण पहले अब्ज धन्वन्तरिके रूपमें और पुनः काशिराज धन्वन्तरिके रूपमें अवतरित हुए। उनके समुद्रसे अवतरणकी तिथि कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी 'धन्वन्तरि-जयन्ती' के रूपमें प्रतिष्ठित है। आरोग्यके अधिष्ठातृ देवताके रूपमें इस तिथिको इनका विशेष पूजन-आराधन आदि बड़े समारोहसे किया जाता है और इनसे आरोग्यके अवदान तथा उनकी कृपाप्राप्तिकी प्रार्थना की जाती है।

दक्षिण भारतमें विशेषरूपसे केरल आदिमें तो भगवान् धन्वन्तरिके अनेक मन्दिर और विग्रह प्रतिष्ठित हैं। भक्तोंने अनेक स्वरूपोंमें उनका ध्यान किया है, जिनमें मुख्यरूपसे चतुर्भुज भगवान् नारायणके रूपमें उनकी आराधना विशेषरूपसे होती है। ऐसे वे कृपालु भगवान् धन्वन्तरि सदा हमारी रक्षा करते रहें—

'धन्वन्तरिः स भगवानवतात् सदा नः।'



महर्षि कश्यप और उनका ग्रन्थ—काश्यपसंहिता

(आचार्य डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र)

महर्षि मरीचिके अपत्य कश्यपद्वारा प्रोक्त आयुर्वेदके एक प्राचीन ग्रन्थका नाम काश्यपसंहिता है, जिसे **'वृद्धजीवकीय तन्त्र'** भी कहते हैं। इस संहिताके आदि-प्रवर्तक स्वयम्भू ब्रह्मा हैं, जिन्होंने इसका सर्वप्रथम उपदेश दक्षप्रजापतिको किया था। दक्षने इसका ज्ञान अश्विनीकुमारोंको दिया, जिनसे इस संहिताका ज्ञान प्राप्त करके इन्द्रने कश्यप, वसिष्ठ, अत्रि और भृगु—इन ऋषियोंके लिये इसके विषयोंका रहस्यके साथ प्रतिपादन किया। कश्यपसे उनके पुत्रों और शिष्योंमें क्रमशः इस आयुर्वेदसंहिताकी परम्परा आगे चलती रही।[१]

काश्यपसंहिता (वृद्धजीवकीय तन्त्र)-में समस्त आयुर्वेदीय विषयोंका प्रश्नोत्तररूपमें निरूपण किया गया है। शिष्योंके प्रश्नोंका उत्तर महर्षि कश्यपजी विस्तारसे देते हैं। शंका-समाधानकी शैलीमें दुःखात्मक रोग, उनके निदान, रोगोंका परिहार और रोग-परिहारके साधन—औषध—इन चारों विषयोंका भलीभाँति इसमें प्रतिपादन किया गया है।

चरकसंहिताके आरम्भमें बतलाया गया है—

'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्॥'

मानवके पुरुषार्थ-चतुष्टयकी सिद्धिमें स्वस्थ शरीर ही मुख्य साधन है। शारीरिक और मानसिक रोगोंसे सर्वथा मुक्त शरीर ही स्वस्थ कहलाता है। अतः नीरोग रहने या आरोग्य प्राप्त करनेके लिये उपर्युक्त रोग, निदान, परिहार और साधन—इन चारोंका सम्यक् प्रतिपादन मुख्यतः आयुर्वेदशास्त्रमें किया जाता है।

काश्यपसंहिता—चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, भेड़संहिता, भारद्वाजसंहिता आदि सभी आयुर्वेदीय संहिता ग्रन्थोंमें प्राचीन है।

महर्षि कश्यपद्वारा प्रोक्त इस विशाल आयुर्वेद-विज्ञानका कालक्रमसे प्रचार-प्रसार जब कम होने लगा तो ऋचीक मुनिके पञ्चवर्षीय पुत्र जीवकने इस विशाल काश्यपसंहिताको संक्षिप्त करके हरद्वारके कनखलमें समवेत विद्वानोंके समक्ष प्रस्तुत किया। उपस्थित विद्वानोंने उसे बालभाषित समझकर अस्वीकार कर दिया। तब बालक जीवकने वहीं उनके सामने गङ्गाकी धारामें डुबकी लगायी। कुछ देरके बाद गङ्गाकी धारासे जीवक अतिवृद्धके रूपमें निकले। उन्हें वृद्धरूपमें देख, चकित विद्वानोंने उन्हें वृद्धजीवक नामसे अभिहित किया और उनके द्वारा प्रतिपादित उस आयुर्वेदतन्त्रको 'वृद्धजीवकीय तन्त्र' के रूपमें मान्यता दी। अतएव इस काश्यपसंहिताका नाम

१. काश्यपसंहिता

'वृद्धजीवकीय तन्त्र' भी हो गया।[1]

वृद्धजीवकका समय बुद्ध और महावीरसे पूर्व माना जाता है। इसलिये बुद्धकालीन बिम्बसारकी भुजिष्याके गर्भसे उत्पन्न जीवक वैद्यसे वृद्धजीवक सर्वथा भिन्न हैं। जीवक वैद्य शल्य-क्रियामें अत्यन्त निष्णात थे और वृद्धजीवक कौमार-भृत्यके प्रधान आचार्य माने जाते हैं।

काल-क्रमसे यह 'वृद्धजीवकीय तन्त्र' अनायास नामक यक्षको प्राप्त हुआ। उस समय उत्तराखण्डमें यक्षोंका आधिपत्य था, जो तत्कालीन इतिहाससे सिद्ध होता है। अनायास यक्षने अपने समाजमें इस तन्त्रका प्रचार-प्रसार करते हुए इसे सुरक्षित रखा। कुछ दिनोंके बाद वत्सगोत्रीय भार्गववंशीय वृद्धजीवकके ही वंशमें उत्पन्न शिव और कश्यपके भक्त परम तपस्वी वात्स्यने वेद-वेदाङ्गोंका अध्ययन कर अनायास यक्षके प्रसादसे वृद्धजीवकीय तन्त्रको प्राप्त किया। उसे पुनः सुसंस्कृत कर धर्म, कीर्ति तथा मानवके कल्याणार्थ आठ अङ्गोंमें विभक्त किया। यथा—१-कौमारभृत्य[2], २-शल्यक्रिया-प्रधान शल्य, ३-उत्तमाङ्ग-शल्यक्रिया-प्रधान शालाक्य, ४-बल-वीर्याभिवृद्धिप्रधान वाजीकरण, ५-वयःस्थापनादिदीर्घ प्रयोग-प्रधान रसायन, ६-शारीरिक मानसिक चिकित्सा-प्रधान काय-चिकित्सा, ७-सर्प-वृश्चिकादि विष-प्रशमन-प्रधान अगदतन्त्र और ८-भूतग्रहादि दैविक दुःख प्रशमन-प्रधान भूतविद्या। इन्हींसे आयुर्वेद 'अष्टाङ्ग आयुर्वेद' कहलाता है।[3]

पुनः इन विषयोंको प्रतिपादनके अनुसार आठ स्थानोंमें विभक्त किया गया। इनमें सूत्रस्थानमें ३०, निदानस्थानमें ८, विमानस्थानमें ८, शारीरस्थानमें ८, इन्द्रियस्थानमें १२, चिकित्सास्थानमें ३०, सिद्धिस्थानमें १२ और कल्पस्थानमें १२ तथा खिलभागमें ८० अध्याय हैं। इस तरह आयुर्वेद-विज्ञान-विशारद आचार्य वात्स्यने कुल मिलाकर २०० अध्यायोंमें काश्यपसंहिता या वृद्धजीवकीय तन्त्रको सुसंस्कृतकर इस आयुर्विज्ञानका प्रसार किया था।

इसमें कौमारभृत्यका विशेष प्रतिपादन होनेके कारण तथा महर्षि कश्यपको कौमारभृत्यका प्रधान उपदेष्टा माननेके कारण इस काश्यपसंहिताको 'कौमारभृत्यसंहिता' या 'कौमारभृत्यतन्त्र' भी कहते हैं।[4]

इसका आधार मुख्यतः अथर्ववेदमें निर्दिष्ट आयुर्वेदीय तत्त्व है।

साङ्गोपाङ्ग आयुर्वेदका प्रतिपादक काश्यपसंहितारूप वृद्धजीवकीय तन्त्र चिकित्साशास्त्रका एक अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ है।



१. ततो हितार्थं लोकानां कश्यपेन महर्षिणा। पितामहनियोगाच्च दृष्ट्वा च ज्ञानचक्षुषा॥
तपसा निर्मितं तन्त्रमृषयः प्रतिपेदिरे। जीवको निर्गततमा ऋचीकतनयः शुचिः॥
जगृहेऽग्रे महातन्त्रं सञ्चिक्षेप पुनः स तत्। नाभ्यनन्दन्त तत् सर्वे मुनयो बालभाषितम्॥
ततः समक्षं सर्वेषामृषीणां जीवकः शुचिः। गङ्गाह्रदे कनखले निमग्नः पञ्चवार्षिकः॥
बलीपलितविग्रस्त उन्ममज्ज मुहूर्तकात्। ततस्तदद्भुतं दृष्ट्वा मुनयो विस्मयं गताः॥
वृद्धजीवक इत्येव नाम चक्रुः शिशोरपि। प्रत्यगृह्णन्त तन्त्रं च भिषक्श्रेष्ठं च चक्रिरे॥ (का०सं० भूमिका)

२. कौमारभृत्यं नाम कुमार भरणं धात्री क्षीरदोषसंशोधनार्थं दुष्टस्तन्यग्रहसमुत्थानां च व्याधीनामुपशमनार्थम्।
आचार्य सुश्रुत नवजात शिशुके पोषणमें मातृ-स्तन्य या धात्री-स्तन्यके दोषोंका संशोधन तथा दूषित स्तन्यपानसे शिशुमें होनेवाले रोगोंका प्रशमन मुख्यतः जिसमें बतलाया जाता है, उसे 'कौमारभृत्य' कहते हैं।

३. ततः कलियुगे तन्त्रं नष्टमेतद् यदृच्छया। अनायासेन यक्षेण धारितं लोकभूतये॥
वृद्धजीवकवंश्येन ततो वात्स्येन धीमता। अनायासं प्रसाद्याथ लब्धं तन्त्रमिदं महत्॥
ऋग्यजुः सामवेदांस्त्रीनधीत्याङ्गानि सर्वशः। शिवकश्यपयक्षांश्च प्रसाद्य तपसा धिया॥
संस्कृतं तत् पुनस्तन्त्रं वृद्धजीवकनिर्मितम्। धर्मकीर्तिसुखार्थाय प्रजानामभिवृद्धये॥
स्थानेष्वष्टसु शाखायां यद्यन्नोक्तं प्रयोजनम्। तत्तद् भूयः प्रवक्ष्यामि खिलेषु निखिलेन ते॥ (काश्यपसंहिता)

४. यहाँ विवेचित यह काश्यपीय संहिता या वृद्धजीवकीय तन्त्र नेपालके राजकीय पुस्तकालयमें उपलब्ध तालपत्रात्मक पाण्डुलिपिपर आधृत है। उमा-महेश्वर-संवादरूप काश्यपसंहिता तथा अगदतन्त्रविषयक काश्यपसंहितासे यह भिन्न है।

आरोग्यमनीषी—आचार्य चरक और उनके उपदेश

आचार्य चरक और आयुर्वेद—इन दोनोंका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एकका श्रवण होनेपर दूसरेका स्वतः स्मरण हो आता है। शाश्वत एवं नित्य आयुर्वेद जो परम्पराक्रमसे ब्रह्मा, दक्षप्रजापति, अश्विनीकुमार, इन्द्र, भारद्वाज आदितक पहुँचा फिर वही आयुर्वेद पुनर्वसु, आत्रेय, अग्निवेशसे प्रवर्तित हो आचार्य चरकके पास आया तथा महर्षि चरकाचार्यका वह कल्याणकारी उपदेश 'चरकसंहिता' के नामसे विख्यात हो गया। यद्यपि चरकसंहिताके साथ महर्षि आत्रेय, महामेधा अग्निवेश तथा दृढबलका नाम जुड़ा है, किंतु आचार्य चरक विशेषरूपसे प्रतिष्ठित हो गये और चरकसंहिता आचार्य चरककी कृतिके रूपमें सदाके लिये स्थिर हो गयी। स्वयं चरकसंहितामें यह उल्लेख है कि जब आयुर्वेदीय संहिताओंका प्रणयन हुआ तो उन्हें देखकर तथा परमर्षियोंकी परदुःखकातरता और सर्वहितैषी लोककल्याणकारक भावको देखकर स्वर्गलोकमें देवता भी आनन्दित होकर साधु-साधु ऐसा कहने लगे। केवल इसलिये कि इन ऋषियोंने समस्त रोग-शोकोंको दूर करनेके जो उपाय प्रकाशित किये हैं, उनसे प्राणिजगत्को कष्टोंसे छुटकारा मिल जायगा। ये संहिताकार ऋषि कोई सामान्य मानव नहीं थे, अपितु ये ऋतम्भरा प्रज्ञा, सिद्धि, स्मृति, मेधा, धृति, कीर्ति, क्षमा, दयालुता तथा ज्ञानके अधिष्ठातृ देवसे सम्पन्न थे।[1] इतना ही नहीं, इनमें प्रतिपादित आयुर्वेदके सिद्धान्त न केवल इस लोक अपितु परलोकके लिये भी हितकारी हैं—**'लोकयोरुभयोर्हितम्'** (चरक सू० १।४३)। इस दृष्टिसे आचार्य चरकद्वारा निर्दिष्ट बातें न केवल शरीर-स्वास्थ्यसे सम्बद्ध हैं, अपितु इसमें आत्मकल्याण तथा चराचर जगत्के आत्यन्तिक सुखकी प्राप्ति और आत्यन्तिक दुःखकी निवृत्तिके उपायोंको दर्शाया गया है। आचार्य चरक बताते हैं कि तमोगुण एवं रजोगुणकी निवृत्ति हो जाने और शुद्ध सत्त्वभावकी प्रतिष्ठा हो जानेपर विशुद्ध ज्ञानकी स्थितिमें सत्या बुद्धिका प्रादुर्भाव होता है, जिससे अज्ञानरूप मोहकी निवृत्ति हो जाती है और फिर प्रकृति-पुरुषका विवेक हो जानेपर परमपदकी प्राप्ति हो जाती है—

रजस्तमोभ्यां युक्तस्य संयोगोऽयमनन्तवान्।
ताभ्यां निराकृताभ्यां तु सत्त्ववृद्ध्या निवर्तते॥

(चरक० शारी० १।३६)

आचार्य चरक न केवल आयुर्वेदके मर्मज्ञ थे, अपितु वे सभी शास्त्रोंके अवज्ञाता थे। उनका दर्शन, विचार, सांख्यदर्शनका प्रतिनिधित्व करता है। आचार्य चरकने मुख्य उपदेश देते हुए बताया है कि सभी दुःखोंका, रोगोंका मुख्य कारण है—उपधा, उपधाका दूसरा नाम है तृष्णा। यही उपधा दुःखरूप और दुःखके आश्रयभूत शरीरकी उत्पत्तिका मूल हेतु है। अतः उपधा न रहनेपर दुःखका समूल नाश हो जाता है—

उपधा हि परो हेतुर्दुःखदुःखाश्रयप्रदः।
त्यागः सर्वोपधानां च सर्वदुःखव्यपोहकः॥

(चरक० शारी० १।९५)

इतना ही नहीं आचार्य चरक बतलाते हैं कि यह देह वेदनाओंका अधिष्ठान—आश्रय है। योग और मोक्षमें सभी वेदनाओंका नाश हो जाता है। मोक्षमें आत्यन्तिक वेदनाओंका नाश हो जाता है और योग मोक्षको दिलानेवाला होता है—

योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम्।
मोक्षे निवृत्तिर्निःशेषा योगो मोक्षप्रवर्तकः॥

(चरक० शारी० १।१३७)

मनसे जब रज एवं तमका अभाव होता है और बलवान् कर्मोंका क्षय हो जाता है तब कर्मसंयोग अर्थात् कर्मजन्य बन्धनोंसे वियोग हो जाता है, उसे अपुनर्भव अर्थात् मोक्ष कहते हैं, जिसके हो जानेपर पुनः जन्म नहीं मिलता और परमपदकी प्राप्ति हो जाती है (**अतः परं ब्रह्मभूतो०।**)—

मोक्षो रजस्तमोऽभावाद् बलवत्कर्मसंक्षयात्।
वियोगः सर्वसंयोगैरपुनर्भव उच्यते॥

(चरक० शारी० १।१४२)

आचार्य चरक बताते हैं कि निवृत्ति-मार्गको अपवर्ग कहते हैं, वह अपवर्ग सर्वश्रेष्ठ और अत्यन्त शान्त, अविनाशी एवं ब्रह्मस्वरूप है, उसे मोक्ष कहते हैं। उस मोक्षके मार्गका अवलम्बन करना चाहिये; क्योंकि कारणसे उत्पन्न होनेवाले उत्पत्तिधर्मा पदार्थ दुःखदायी, तत्त्वहीन और अनित्य हैं, सभी प्रकारके प्रवृत्तिमार्गका नाम दुःख है तथा सर्वसंन्यास (सभी पदार्थोंके त्याग)-में ही यथार्थ सुख है, यह मोक्षका मार्ग है—**'सर्वप्रवृत्तिषु दुःखसंज्ञा, सर्वसंन्यासे सुखमित्यभिनिवेशः; एष मार्गोऽपवर्गाय, अतोऽन्यथा बध्यते।'**

(चरक० शारी० ५।९)

१. च०सू० १।३९-४०

आचार्य चरकने जहाँ मोक्षप्राप्तिकी बात लिखी है, वहीं शरीरके आरोग्यको भी महान् सुखकी संज्ञा दी है और कहा है कि आरोग्यप्राप्तिसे मनुष्योंमें बल, आयु और महान् सुखकी प्राप्ति होती है। साथ ही वह मनोवाञ्छित फलोंको भी प्राप्त करता है। इस प्रकार आरोग्यसम्पन्न पुरुषको शुभ लक्षण कहा जाता है—

आरोग्याद्बलमायुश्च सुखं च लभते महत्।
इष्टांश्चाप्यपरान् भावान् पुरुषः शुभलक्षणः॥

(चरक० इन्द्रि० १२।८८)

ऐसा कहा जाता है कि आचार्य चरक न केवल संहिताग्रन्थोंके प्रणयनमें संलग्न रहते थे, अपितु वे घूम-घूमकर इधर-से-उधर विचरणकर जहाँ भी रोगी हों; वहाँ पहुँचकर उनकी चिकित्सा किया करते थे और इसी कल्याणकारी विचरणक्रियासे उनका 'चरक' यह नाम प्रसिद्ध हो गया। कुछ लोग इन्हें भगवान् शेषनागका अवतार बताते हैं। जो भी हो, आचार्य चरकने लोगोंका बड़ा ही उपकार किया है। उनकी कृति 'चरकसंहिता' चिकित्साजगत्का अत्यन्त प्रामाणिक, प्रौढ़ और महान् सैद्धान्तिक ग्रन्थ है। यह सूत्र, निदान, विमान, शारीर, इन्द्रिय, चिकित्सा, कल्प तथा सिद्धि—इन आठ स्थानोंमें विभक्त है। स्थानोंके अन्तर्गत अध्याय हैं। इसपर संस्कृत आदि भाषाओंमें अनेक टीका-भाष्य हो चुके हैं। इसका स्वस्थवृत्त प्रकरण बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। जिसके अध्ययनसे पूरी जीवनशैली, आहारचर्या, ऋतुचर्या, दिनचर्या, रात्रिचर्या आदिका सम्यक् परिज्ञान हो जाता है और तदनुसार व्यक्ति अनुसरण करे तो वह सदा नीरोग रह सकता है। चरकसंहिताके उपदेश बड़े ही मार्मिक, कण्ठ करने योग्य तथा शिक्षाप्रद हैं। यहाँ केवल एक उपदेश दिया जा रहा है, जिसका भाव यह है कि व्यक्तिको यह समझना चाहिये कि वह स्वयंको प्राप्त होनेवाले सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलताका कर्ता अपने-आप ही है, कोई दूसरा नहीं है। यदि वह असत्कर्म करेगा तो फल होगा दुःख और यदि सत्कर्म करेगा तो फल होगा सुख। अतः ऐसा ठीक-ठीक समझकर उसे कल्याणकारी मार्गका—सन्मार्गका ही अवलम्बन लेना चाहिये। इस मार्गमें दृढ़तासे स्थिर रहे,किसी प्रकारसे भयभीत होने अथवा विचलित होनेकी आवश्यकता नहीं है। आचार्यके मूल वचन इस प्रकार हैं—

आत्मानमेव मन्येत कर्तारं सुखदुःखयोः।
तस्माच्छ्रेयस्करं मार्गं प्रतिपद्येत नो त्रसेत्॥

(चरक० निदान० ७।२२)

आचार्य 'सुश्रुत' एवं उनकी अद्भुत 'शल्य-चिकित्सा'

(श्रीदत्तपादजी भिषगाचार्य)

आचार्य सुश्रुत प्राचीन कालके एक उच्चकोटिके आयुर्वेदाचार्य एवं शल्यतन्त्रनिष्णात शल्य-चिकित्सक थे।

सुश्रुतसंहितामें उल्लेख है कि सुश्रुत महर्षि विश्वामित्रके पुत्र थे और इन्होंने धन्वन्तरिजीसे शल्य-शास्त्रकी शिक्षा ग्रहण की थी—

धन्वन्तरिर्धर्मभृतां वरिष्ठो वाग्विशारदः।
विश्वामित्रसुतं शिष्यमृषिं सुश्रुतमन्वशात्॥[1]

(सुश्रुत० चि० २।३)

दूसरी एक परम्पराके अनुसार सुश्रुत महर्षि शालिहोत्रके सुपुत्र थे। काश्यपसंहिताकी प्रस्तावनामें हेमाद्रिकृत लक्षण-प्रकाशके अश्व-प्रकरणमें एक वचन इस प्रकार आया है—

शालिहोत्रमृषिश्रेष्ठं सुश्रुतः परिपृच्छति।
एवं पृष्टस्तु पुत्रेण शालिहोत्रोऽभ्यभाषत॥

अर्थात् शालिहोत्र नामक श्रेष्ठ ऋषिसे सुश्रुत प्रश्न करते हैं, इस प्रकार पुत्रके प्रश्न करनेसे पिता शालिहोत्र पुत्र सुश्रुतसे कहते हैं।

आचार्य सुश्रुत शल्य-शास्त्रके विशेषज्ञ थे। उन्होंने वह विद्या दिवोदास धन्वन्तरिसे प्राप्त की थी। साक्षात् धन्वन्तरिका ही अवतार होनेसे लोग दिवोदासको धन्वन्तरि ही कहते हैं। पृथ्वीपर वे ही सर्वप्रथम इस शल्यतन्त्रको लाये थे। एक बार बहुतसे जिज्ञासु शिष्यभावसे धन्वन्तरिजीके पास गये और करबद्ध प्रार्थना की कि 'आप हमें 'शल्यतन्त्र' का ज्ञान प्रदान कीजिये।' धन्वन्तरिने कहा—'तुम लोगोंके प्रतिनिधिरूपमें सुश्रुतको ही मैं 'शल्यतन्त्र' सिखाऊँगा। इस प्रकार सुश्रुतने गुरु धन्वन्तरिसे शल्यतन्त्रका ज्ञान प्राप्त किया। बादमें सुश्रुतने 'सुश्रुतसंहिता' नामक एक बृहद् ग्रन्थ

१. विश्वामित्रसुतः श्रीमान् सुश्रुतः परिपृच्छति। (सुश्रु० उत्तर० ६६।४)

लिखा, जो पाँच स्थानों—(१) सूत्रस्थान, (२) निदानस्थान, (३) शारीरस्थान, (४) चिकित्सास्थान और (५) कल्पस्थानमें विभक्त है तथा अन्तमें उत्तरतन्त्र है। इस संहितामें शस्त्रकर्मकी ही प्रधानता है—'**अस्मिंस्तु शास्त्रे शस्त्रकर्मप्राधान्यात्०**' (सुश्रु० सू० ५।४)।

मन एवं शरीरको पीडित करनेवाली वस्तुको 'शल्य' कहा जाता है और इस शल्यको निकालनेवाले साधन यन्त्र कहलाते हैं—'**तत्र मनःशरीराबाधकराणि शल्यानि, तेषामाहरणोपायो यन्त्राणि**'। (सुश्रुत सू० ७।४) आचार्य सुश्रुतने अपने ग्रन्थमें सौसे भी अधिक (यन्त्रशतमेकोत्तरम्) शल्य-शस्त्रोंका वर्णन किया है। जैसे—

(१) शस्त्रोंकी मूठ एवं जोड़ मजबूत होने चाहिये। (२) वे चमकीले और अति तीक्ष्ण रहने चाहिये। (३) शस्त्रोंको अति स्वच्छ एवं व्यवस्थित रखना चाहिये—कोमल वस्त्रमें लपेटकर अच्छी संदूकमें अच्छी तरहसे रखना चाहिये। (४) अस्थि मिलाने (जोड़ने)-के लिये बाँसकी पट्टियाँ इस्तेमाल करनी चाहिये। (५) अस्थियाँ बाहर खींचनेके लिये एवं भीतर बैठानेके लिये बाहरसे मालिश करना आदि विभिन्न क्रियाएँ अस्थिरोगोंके विषयमें अति आवश्यक हैं। (६) व्रणोंके अनेक प्रकार होते हैं और उनकी उपचार-पद्धति भी भिन्न-भिन्न होती है। (७) मस्तक और चेहरेपर घाव (जख्म) होनेपर वहाँ सूईसे टाँके लगाने चाहिये। (८) यदि घावमें लोहा या लोहखण्ड, लोहकण घुस गये हों तो वहाँपर लोहचुम्बक (Magnet)-का उपयोग करना चाहिये। (९) सूजे हुए भागपर लेप (उबटन, मरहम) और पथ्यका प्रयोग करना चाहिये। पोटिस (पुलटिस) बाँधना, सेंक करना, शिराका वेध करना चाहिये। ग्रन्थि-छेदन करके निकालना चाहिये। (१०) जलोदर और वृषणवृद्धिपर शलाकासे छेद करना चाहिये। (११) मूतखडा (ब्लेजर-स्टोन)-को निकालनेके लिये शस्त्रक्रिया करनी चाहिये।

आचार्य सुश्रुत त्वचारोपण-तन्त्रमें भी अति निष्णात थे। आँखोंके 'मोतीबिंदु' (कटेरेक) निकालनेकी सरल कलाके वे विशेषज्ञ थे। यदि मातृ-गर्भसे शिशु योग्य मार्गसे न आता हो, तो मातृ-गर्भस्थ शिशुको निर्विघ्न बाहर निकालनेके विविध प्रकार सुश्रुत अच्छी तरह जानते थे। इसका विवरण सुश्रुतसंहितामें लिखा है।

इस शल्य-चिकित्सा-ग्रन्थ सुश्रुतसंहिताका अध्ययन करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि धन्वन्तरि काशिराज दिवोदास शल्यप्रधान-चिकित्साके जनक हैं और सुश्रुतसंहिता शल्य-चिकित्साका आदि ग्रन्थ है।

आजकल ऑपरेशन (Surgical-Action)-के लिये जिन-जिन यन्त्रोंका उपयोग होता है, उनमेंसे अधिकांशका विवरण 'सुश्रुतसंहिता' में है।

शल्य-चिकित्साका उल्लेख आयुर्वेदसे भी पहलेके अथर्ववेदमें हुआ है, इसीलिये आयुर्वेदको अथर्ववेदका उपवेद कहा जाता है।

लोककल्याणार्थ प्राचीन भारतीय आयुर्वेद एवं शल्य-चिकित्सा-शास्त्र विश्वको बड़े पुरस्कार-रूपमें प्राप्त है। आधुनिक जगत् इनका सफल उपयोग करके रोगी जीवोंको नीरोग बना सके तो कितना अच्छा होगा।

आयुर्वेद तथा शल्य-चिकित्साशास्त्रके आचार्यगणोंका जगत्पर महान् उपकार है, उनके नाम-स्मरणसे भी विशेष फलकी प्राप्ति होती है—(१) ब्रह्मा, (२) दक्षप्रजापति, (३) भगवान् भास्कर, (४) अश्विनीकुमार, (५) देवराज इन्द्र, (६) महर्षि कश्यप, (७) महर्षि अत्रि, (८) महर्षि भृगु, (९) महर्षि अंगिरा, (१०) महर्षि वसिष्ठ, (११) महर्षि अगस्त्य, (१२) महर्षि पुलस्त्य, (१३) ऋषि वामदेव, (१४) ऋषि असित, (१५) ऋषि गौतम, (१६) ऋषि भरद्वाज, (१७) आचार्य धन्वन्तरि, (१८) आचार्य पुनर्वसु-आत्रेय, (१९) आचार्य अग्निवेश, (२०) आचार्य भेल, (२१) आचार्य जतूकर्ण, (२२) आचार्य पराशर, (२३) आचार्य हारीत, (२४) आचार्य क्षारपाणि, (२५) आचार्य निमि, (२६) आचार्य भद्र शौनक, (२७) आचार्य कांकायन, (२८) आचार्य गार्ग्य, (२९) आचार्य गालव, (३०) आचार्य सात्यकि, (३१) आचार्य औपधेनव, (३२) आचार्य सौरभ्र, (३३) आचार्य पौष्कलावत, (३४) आचार्य करवीर्य, (३५) आचार्य गोपुररक्षित, (३६) आचार्य वैतरण, (३७) आचार्य भोज, (३८) आचार्य भालुकी, (३९) आचार्य दारुक, (४०) आचार्य कौमारभृत्य, (४१) आचार्य जीवक, (४२) आचार्य काश्यप, (४३) आचार्य उशना, (४४) आचार्य बृहस्पति, (४५) आचार्य पतञ्जलि, (४६) आचार्य सिद्ध-नागार्जुन आदि।

—इन आचार्योंको कोटिशः प्रणाम है।

आचार्य वाग्भट और अष्टाङ्गहृदय

आयुर्वेदके प्राचीन आचार्योंमें तीन आचार्योंकी गणना सर्वोपरि है—चरक, सुश्रुत एवं वाग्भट। इन तीनोंके तीन ग्रन्थ बृहत्त्रयीके नामसे आयुर्वेद जगत्में विश्रुत हैं और विशेष बात यह है कि तीनों ग्रन्थ इतने विख्यात हैं कि रचनाकारके नामसे उनका बोध हो जाता है। आचार्य चरकको चरकसंहिता, आचार्य सुश्रुतकी सुश्रुतसंहिता और वाग्भट मात्र कहनेसे 'अष्टाङ्गहृदय' का स्मरण हो आता है। आचार्य वाग्भटका ग्रन्थ अष्टाङ्गहृदय अथवा वाग्भट नामसे प्रसिद्ध है। आचार्य वाग्भटके पिताका नाम सिंहगुप्त था, जो वैद्यपति कहलाते हैं। कतिपय विद्वानोंका परामर्श है कि इनका जन्म सिन्धु देशमें हुआ था और इनके गुरु अवलोकितेश्वर थे तथा इनका समय लगभग छठी शतीके आसपासका है।

आचार्य वाग्भटका मुख्य ग्रन्थ अष्टाङ्गहृदय है। जैसा कि इसके नामसे ही स्पष्ट है कि इसमें आयुर्वेदके काय, शल्य, शालाक्य आदि आठों अङ्गोंका विवेचन हुआ है। इसकी व्युत्पत्तिमें स्वयं आचार्यका कहना है—

'हृदयमिव हृदयमेतत्सर्वायुर्वेदवाङ्मयपयोधेः।'

(अष्टा० उत्त० ४०। ८९)

इसका भाव यह है कि यह ग्रन्थ समुद्ररूपी आयुर्वेदके हृदयके समान है। जैसे शरीरमें हृदयकी प्रधानता है, उसी प्रकार आयुर्वेदवाङ्मयमें यह अष्टाङ्गहृदय 'हृदय' के समान है।

यह उक्ति अत्यन्त सत्य प्रतीत होती है। अपनी विशेषताओंके कारण यह ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है तथा इसका प्रचार भी बहुत हुआ है। पूरा ग्रन्थ सूत्रस्थान, शारीरस्थान, निदानस्थान, चिकित्सास्थान, कल्पस्थान तथा उत्तरस्थान आदिमें विभक्त है। इसपर जितनी टीकाएँ हुई हैं, उतनी सम्भवतः वैद्यकशास्त्रके किसी अन्य ग्रन्थपर नहीं हैं। अनेक भाषाओंमें इसके अनुवाद हैं। यह ग्रन्थ आयुर्वेदका सारसमुच्चय है।

आचार्य वाग्भटका कहना है कि इस ग्रन्थमें कोई कपोलकल्पित बात नहीं कही गयी है। पूर्वाचार्यों, विशेषतः चरक, सुश्रुत आदिके अभिमतोंका अनुसरण हुआ है, अतः मन्त्रवत् इसका प्रयोग करना चाहिये—

'मन्त्रवत्सम्प्रयोक्तव्यं न मीमांस्यं कथञ्चन॥'

(अष्टा० उत्तर० ४०। ८१)

इतना ही नहीं आचार्य वाग्भट बड़े विश्वाससे कहते हैं कि इस ग्रन्थके पठन, मनन एवं प्रयोग करनेसे निश्चय ही दीर्घ-जीवन, आरोग्य, धर्म, अर्थ, सुख और यशकी प्राप्ति होती है—

दीर्घं जीवितमारोग्यं धर्ममर्थं सुखं यशः।
पाठावबोधानुष्ठानैरधिगच्छत्यतो ध्रुवम्॥

(अष्टा० उत्त० ४०। ८२)

~~~~

माधवनिदानके प्रणेता आचार्य माधव

'निदाने माधवः श्रेष्ठः' अर्थात् रोगका निदान—निश्चय करनेमें आचार्य माधवविरचित 'माधवनिदान' ग्रन्थ श्रेष्ठ है—यह उक्ति आयुर्वेदजगत्में अतिप्रसिद्ध है। आयुर्वेद-शास्त्रके तीन मुख्य सूत्र हैं—प्रथम है हेतुज्ञान, द्वितीय है लिङ्गज्ञान और तृतीय है औषधज्ञान। सामान्यतया हेतुज्ञानसे तात्पर्य है कि किस कारणसे रोग उत्पन्न हुआ है? लिङ्गज्ञानका अर्थ है कि अमुक रोगकी पहचान क्या है, रोगके क्या लक्षण हैं तथा औषधज्ञानका अभिप्राय है कि अमुक रोगमें अमुक औषध प्रयोक्तव्य है। इन तीनोंमें लिङ्गज्ञानका महत्त्व सर्वाधिक है; क्योंकि रोगके स्वरूपज्ञानके पश्चात् ही हेतु तथा औषधकी समीक्षा होती है। ठीक प्रकारसे रोगका ज्ञान हो जानेपर ही उपचार तथा चिकित्सा सफल हो सकती है। इसीलिये कहा भी गया है कि **'रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्'** अर्थात् पहले रोगकी परीक्षा करे, उसे पहचाने, तदनन्तर औषध आदिकी व्यवस्था करे।

इसी आवश्यकताका अनुभव करते हुए आचार्य माधव या माधवकरने चरक, सुश्रुत तथा महामति वाग्भट आदि पूर्वाचार्योंके अनुभव तथा स्वमतिके अवदानसे सुगमतापूर्वक रोगोंका ज्ञान करानेके लिये (**'सुखं विज्ञातुमातङ्कम्'** माधवनिदान १। ३) एक विशिष्ट ग्रन्थका प्रणयन किया और उसका 'रोगविनिश्चय' यह नाम रखा—**'निबध्यते रोगविनिश्चयोऽयम्'** (माधवनिदान १। २)। परंतु लोकमें यह ग्रन्थ 'माधवनिदान' के नामसे प्रसिद्ध है। इसपर मधुकोश आदि प्रसिद्ध टीकाएँ हैं। आचार्य माधवने रोगज्ञानके पाँच साधन बताये हैं—निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय तथा सम्प्राप्ति।

आचार्य माधवके पिताका नाम 'इन्दुकर' था—**'श्रीमाधवेन्दुकरात्मजेन'**। इतिहासक्रममें इनका समय आचार्य
~~~~

वाग्भटके अनन्तर अर्थात् लगभग छठीं शतीके बादका है। आचार्य माधवने अपने ग्रन्थ 'माधवनिदान'में सब रोगोंमें 'ज्वर' प्रधान है, यह बताते हुए सर्वप्रथम ज्वररोगका ही वर्णन किया है और उसे दक्षप्रजापतिद्वारा किये गये अपमानसे कुपित रुद्रके निःश्वाससे उत्पन्न बताया है तथा उसके प्रधान आठ भेद—(१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज, (४) वातपित्तज, (५) वातकफज, (६) पित्तकफज, (७) त्रिदोषज तथा (८) आगन्तुज—बताये हैं—

दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिःश्वाससम्भवः ।
ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वन्द्वसङ्घातागन्तुजः स्मृतः॥
(मा०नि०ज्वर० १)

तदनन्तर अतिसार, ग्रहणी, अर्श, अग्निमान्द्य, क्रिमि, पाण्डु, कामला, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, कास, हिक्का, स्वरभेद, अरोचक, छर्दि, मूर्च्छा, भ्रम, तन्द्रा, दाह, उन्माद, अपस्मार, वातव्याधि, आमवात, शूलपरिणाम, उदावर्त, आनाह, गुल्म, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, उदर, शोथ, गलगण्ड, श्लीपद, विद्रधि, व्रण, भगन्दर, कुष्ठ, अम्लपित्त, विसर्प, मुखनासिकादि रोग, शिरोरोग, मूढगर्भ, सूतिकारोग, बालरोग तथा विषरोग आदि अनेक रोगोंकी मीमांसा की है। यह माधवनिदान ग्रन्थ अत्यन्त सुगम होनेसे वैद्यजगत्में बहुत लोकप्रिय है।



आचार्य भावमिश्र और भावप्रकाश

आयुर्वेदकी आचार्य-परम्परामें भिषग्भूषण श्रीभावमिश्रका नाम विशेष स्थान रखता है। इनकी विश्रुत कृति 'भावप्रकाश'-के नामसे प्रसिद्ध है। इनके पिताका नाम श्रीलटकन मिश्र था। आचार्य भावमिश्रका समय १६वीं सदीके आसपासका है। 'भावप्रकाश' ग्रन्थ आयुर्वेदकी लघुत्रयीमें परिगणित है। आचार्य भावमिश्रने अपने पूर्वाचार्योंके ग्रन्थोंसे सार-सार भाग ग्रहणकर अत्यन्त सरल भाषामें इस ग्रन्थका निर्माण किया और ग्रन्थके प्रारम्भमें ही यह बता दिया कि यह शरीर धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इस पुरुषार्थचतुष्टयकी प्रासिका मूल है और जब यह निरामय (रोगरहित) रहेगा, तभी कुछ प्राप्त कर सकता है, इसलिये शरीरको स्वस्थ बनाये रखना मुख्य कर्तव्य है—

धर्मार्थकाममोक्षाणां मूलमुक्तं कलेवरम्।
तच्च सर्वार्थसंसिद्ध्यै भवेद्यदि निरामयम्॥
(भा०प्र०पू० १। ४३)

यदि शरीरमें रोग विद्यमान हैं तो फिर प्राणियोंका कल्याण कैसे हो सकता है? '**सन्ति यदि ते क्षेमं कुतः प्राणिनाम्**' (भा०प्र०पू० १। ४५)। आचार्यने युक्तिव्यपाश्रय-चिकित्सामें दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, आहार-विहार तथा सदाचारके परिपालनको अत्यन्त हितकर बताया है।

आचार्यने व्याधियोंके मुख्यरूपसे दो भेद किये हैं—(१) कर्मज, (२) दोषज। कर्मज व्याधियाँ वे हैं, जो प्रबल प्राक्तन दुष्कर्मके परिणामस्वरूप फलित होती हैं और भोग अथवा प्रायश्चित्तसे उनका विनाश होता है। इसके विपरीत जो दोषज व्याधियाँ हैं, वे मिथ्या आहार-विहार करनेसे कुपित हुए वात, पित्त एवं कफसे होती हैं।[1]



नाडीशास्त्रज्ञ आचार्य शार्ङ्गधर

नाडीज्ञानद्वारा रोग-परीक्षण आयुर्वेदशास्त्रकी एक विलक्षण विधा है। कुशल वैद्योंद्वारा नाडीमें सूत (कच्चे तागे)-के एक सिरेको बाँधकर दूसरे सिरेको पकड़कर नाडी गतिका ज्ञान करके रोग एवं रोगीके सम्बन्धमें सब कुछ सत्य-सत्य बता देनेकी घटनाएँ अति प्रसिद्ध हैं। नाडीज्ञान एवं स्पर्श-ज्ञानका प्रचलन बहुत प्राचीन है। नाडीशास्त्रके प्राचीन आचार्योंमें महर्षि कणाद आदिका नाम आता है। उसी परम्परा क्रममें आचार्य शार्ङ्गधर भी हैं जो नाडीशास्त्रज्ञ कहे गये हैं। शार्ङ्गधरके नामसे दो ग्रन्थ अति प्रसिद्ध हैं—(१) शार्ङ्गधरसंहिता और (२) शार्ङ्गधरपद्धति। आयुर्वेदकी लघुत्रयीमें भावप्रकाश, माधवनिदानके साथ ही शार्ङ्गधरके ग्रन्थोंका भी समावेश है।

आचार्य शार्ङ्गधर न केवल चिकित्साशास्त्रके मर्मज्ञ थे, अपितु कवित्व शक्तिसे सम्पन्न तथा विविध शास्त्रोंके ज्ञाता थे। शार्ङ्गधरके पितामहका नाम राघवदेव तथा पिताका नाम दामोदर था। शार्ङ्गधरका समय १३ वीं-१४ वीं सदीके आसपास बताया जाता है।



१. (क) यत् प्राक्तनं दुष्कर्मप्रबलं केवलभोगनाश्यम्, प्रायश्चित्तनाश्यं वा। (ख) मिथ्याऽऽहारविहारप्रकुपितवातपित्तकफजाः। (भा०प्र०पू० ६। १-२)

आयुर्वेदका इतिहास पुरुष—जीवक कौमारभृत्य

(श्रीमाँगीलालजी मिश्र)

बात पुरानी लगभग पचीस-सौ वर्ष पूर्वकी है। मगध उस समयके विख्यात सोलह जनपदों (प्रदेशों)-में एक था। मागधोंकी राजधानी थी राजगृह, वर्तमान कालकी राजगिरि। यह स्थान बिहारमें तिलैया स्टेशनसे सोलह मील दूर है। उस समय मगधके सम्राट् बिंबिसार थे और बोधिसत्त्व प्राप्त करके गौतम सिद्धार्थ अपना धर्मचक्र प्रवर्तन करते हुए विचरण कर रहे थे।

तत्कालीन परम्पराके अनुसार राजगृहमें जनपद-कल्याणी (प्रधान गणिका)-के पदपर सालवती नामकी रूपसी थी। वह अपूर्व सुन्दरी होनेके साथ-साथ नृत्य, गीत और वाद्य-वादनमें भी अद्वितीय थी। सालवती गर्भवती हो गयी। उसने इस प्रसंगको गोपनीय रखा। अस्वस्थका बहाना बनाकर लोगोंसे मिलना बंद कर दिया। यथासमय उसने एक पुत्रको जन्म दिया और दासीके द्वारा उस नवजात शिशुको फेंकवा दिया।

संयोगकी बात कि उस समय उस रास्तेसे होकर राजकुमार अभय गुजरे। उन्होंने वहाँ पड़े सुन्दर शिशुको देखा। दयावश वे उसे उठा लाये। उनके यहाँ पालन-पोषण प्राप्तकर वह बच्चा बढ़ने लगा। राजकुमारने उसका नाम रखा 'जीवक'। **'उत्सृष्टोऽपि जीवति'** अर्थात् छोड़ दिये जानेपर भी जो जीवित रहता है—इस व्युत्पत्तिके अनुसार उसका 'जीवक' यह नाम प्रसिद्ध हो गया। उसका पालन-पोषण राजकुमारने किया था, इसलिये जीवकका उपनाम 'कौमारभृत्य' हो गया।

उस समय गान्धारोंकी राजधानी तक्षशिला कला-कौशलकी तरह विद्याके क्षेत्रमें भी उन्नत थी। दूर-दूरके प्रदेशोंसे ब्राह्मण-कुमार वेदाभ्यासके लिये, क्षत्रियकुमार धनुर्विद्या एवं राज्य-शासन सीखनेके लिये और तरुण वैश्य शिल्पकला या अन्य व्यवसाय सीखनेके लिये तक्षशिला आते थे। जीवक कौमारभृत्यने आयुर्वेदका अध्ययन यहीं रहकर किया। अध्ययनकी समाप्तिपर जीवकके आचार्यने उसकी परीक्षा ली कि तक्षशिलाके पाँच-पाँच मील चारों ओर घूमकर देखो और जो वनस्पति अनुपयोगी हो, उसे ले आओ। पर जीवकको ऐसी कोई वनस्पति नहीं मिली जो अनुपयोगी हो। आचार्यने प्रसन्न मनसे शिष्यको विदा किया।

जीवक जब मगध लौट रहा था तो मार्गमें साकेत (अयोध्या)-में ठहरा। वहाँके विख्यात एक श्रेष्ठीकी पत्नी वर्षोंसे बीमार पड़ी थी और उसकी शिरोवेदना असाध्य हो गयी थी। जीवकको पता चला तो वह उपचार करने गया। जीवकने श्रेष्ठि-पत्नीको देखा और एक घृत तैयार किया। श्रेष्ठि-पत्नीको नासिकाद्वारा वह घृत पिलाया गया। तीन दिनमें ही उसे आराम हो गया। श्रेष्ठीने प्रसन्न होकर उसे सोलह हजार कार्षापण, रथ, दास और दासी भेंटमें दिये। जीवककी यह प्रथम चिकित्सा थी।

आगे चलकर जीवकने नितान्त असाध्य रोगोंके इलाज किये। जीवकने जिनका उपचार किया, उनमें मगध-सम्राट् बिंबिसार, अवन्तीके नरेश चण्ड प्रद्योत और भगवान् गौतम बुद्धका नाम भी उल्लेखनीय है।

सम्राट् बिंबिसारको भगंदर रोग हो गया था। रक्तस्रावके कारण राजाके अन्तर्वासक खराब हो जाते। अन्तःपुरमें रानियाँ परिहास करतीं। एक तो असाध्य रोग और उसपर परिहासका अपमान। बिंबिसार हर प्रकारसे दुःखी हो गये, तनसे भी और मनसे भी। राजकुमार अभयने जीवकको चिकित्साके लिये कहा। जीवकद्वारा निर्मित औषधके एक ही लेपसे सम्राट्ने रोगसे मुक्ति पा ली। प्रसन्न होकर उसे मगधका राजवैद्य नियुक्त कर दिया और प्रभूत अचल सम्पत्ति देकर सम्मानित किया।

राजगृहका नगरश्रेष्ठी काफी लंबे समयसे बीमार था। सुयोग्य चिकित्सकोंके उपचार भी उसे नीरोग न कर सके। किसी वैद्यने कहा—श्रेष्ठी पाँच दिन जियेंगे तो किसीने कहा सात दिन।

सम्राट् बिंबिसारने अपने नगरश्रेष्ठीकी चिकित्साके लिये युवक राजवैद्य जीवकसे कहा। जीवकने श्रेष्ठीका परीक्षण किया और पूछा—कहो श्रेष्ठिन्! यदि आपको स्वास्थ्यलाभ हो जाय तो हमारा पारिश्रमिक क्या देंगे? दुखी और निराश श्रेष्ठीने अपने जीवनके बदले अपनी समस्त सम्पत्ति राजवैद्यको बतौर पारिश्रमिक देनेका वचन दिया।

जीवकने तब पूछा—'श्रेष्ठिन्! क्या तुम सात मासतक एक करवट लेटे रह सकोगे? श्रेष्ठीने 'हाँ' भरी। फिर सात मासतक दूसरी करवट? श्रेष्ठीने फिर 'हाँ' भरी। फिर सात मासतक चित्त पड़े रह सकते हो? श्रेष्ठीने जब फिर इसे भी स्वीकारा तो जीवकने उसे खाटपर चित्त लिटाकर बाँध दिया और खोपड़ी चीरकर दो कीड़े निकाल करके सामने रख दिये। फिर मस्तिष्कको साफ करके पुनः सी दिया और दवा लगाकर पट्टी कर दी।

श्रेष्ठीको दोनों कीड़े दिखाकर राजवैद्य बोला—'जिस वैद्यने कहा था—केवल पाँच दिन और जिओगे, वह ठीक

था; क्योंकि उसे केवल बड़े कीड़ेका ही ज्ञान हो पाया था और जिसने सात दिनकी आयु शेष बतायी थी, वह भी ठीक था, क्योंकि उसे छोटे कीड़ेका ही ज्ञान हो पाया था।'

सात माहके स्थानपर सात दिनके हिसाबसे केवल इक्कीस दिनमें ही नगरश्रेष्ठी नीरोग हो गया। वायदेके अनुसार जब उसने राजवैद्यको अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति देनी चाही तो जीवकने केवल एक लाख मुद्राएँ ही लीं।

जीवककी शल्यक्रियाका एक अभूतपूर्व उदाहरण और मिलता है। वाराणसीके श्रेष्ठिपुत्रके पेटमें—आँतोंमें गाँठें पड़ गयीं। बहुत उपचार कराया पर आराम न हुआ। जीवकने उसे देखा। पेटको चीरकर आँतें बाहर निकालीं, गाँठोंको काटकर फेंक दिया और आँतोंको यथावत् रखकर सी दिया। श्रेष्ठिपुत्र स्वस्थ हो गया।

इस प्रकार कौमारभृत्य जीवकका यश मगधके बाहर सभी जनपदोंमें फैलने लगा। बौद्धग्रन्थ-महावग्ग (भाग ८)-के अनुसार अवन्तीका राजा चंड प्रद्योत बीमार हो गया तो उसके निमन्त्रणसे मगधदेशका प्रसिद्ध वैद्य जीवक कौमारभृत्य उसे स्वास्थ्य प्रदान करनेके लिये उज्जैन गया। प्रद्योतके अत्यन्त क्रूर स्वभावके कारण उसके नामके साथ 'चंड' विशेषण लगाया जाता था और यह बात जीवकको अच्छी तरह मालूम थी। राजाको दवा देनेसे पहले वह जंगलमें जाकर दवाएँ लानेके बहाने भद्दवती नामकी एक हथिनीपर बैठकर वहाँसे भाग गया। इधर दवा लेते ही प्रद्योतको भयानक कै होने लगी। इससे उसे बहुत क्रोध आया और उसने जीवकको पकड़ लानेकी आज्ञा दी। परंतु जीवक वहाँसे निकल चुका था। उसका पीछा करनेके लिये राजाने अपने काक नामक दासको भेजा। काकने कौशाम्बीतक दौड़-धूप करके जीवकको पकड़ लिया। तब जीवकने उसे एक औषधियुक्त आँवला खानेको दिया, जिससे काककी बड़ी दुर्गति हुई और फिर जीवक भद्दवतीपर बैठकर सकुशल राजगृह पहुँच गया। इधर प्रद्योत बिलकुल स्वस्थ हो गया। दास काक भी चंगा होकर उज्जैन पहुँच गया। बीमारी दूर हो जाने तथा पहलेकी तरह स्वास्थ्य-प्राप्तिसे प्रद्योत जीवकसे बहुत प्रसन्न हुआ और उसे देनेके लिये प्रद्योतने— सिवेयक नामक बहुमूल्य वस्त्रोंका जोड़ा राजगृह भेजा।

चिकित्साके अपने अद्भुत गुणके कारण सम्राट् बिंबिसारके बाद उसके पुत्र अजातशत्रुपर भी जीवकका प्रभाव यथावत् बना रहा। जीवकके परामर्शसे ही अजातशत्रु भगवान् बुद्धके प्रति सद्भाव बनाकर उनके दर्शनार्थ गया था। यह प्रसंग 'दीघनिकाय'के सामन्नफल सुत्तमें इस प्रकार है—

भगवान् बुद्ध राजगृहमें जीवक कौमारभृत्यके आम्रवनमें बड़े भिक्षुसंघके साथ रहते थे। उस समय कार्तिक पूर्णिमाकी रातमें अजातशत्रु अपने अमात्योंके साथ प्रासादके ऊपरी कक्षपर बैठा था। वह बोला—'कितनी सुन्दर रात है यह। क्या यहाँ कोई ऐसा श्रमण या ब्राह्मण है, जो अपने उपदेशोंसे हमारे चित्तको प्रसन्न करेगा। उस समय पूरण कस्सप, मक्खलि गोसाल, अजित केसकंबल, पकुध कच्चायन, संजय वेलट्ठपुत्त और निगण्ठ नाथपुत्त—ये प्रसिद्ध श्रमण अपने-अपने संघोंके साथ राजगृहके आस-पास रहते थे। अजातशत्रुके अमात्योंने क्रमशः उनकी स्तुति करके उनसे मिलने जानेके लिये राजाको राजी करनेका प्रयत्न किया, पर अजातशत्रु कुछ उत्तर न देकर चुप रह गया।

उस समय जीवक कौमारभृत्य वहाँ था। उससे अजातशत्रु बोला—'तुम चुप क्यों हो?' इसपर जीवक बोला—'बुद्ध भगवान् हमारे आम्रवनमें बड़े भिक्षुसंघके साथ रहते हैं। आज महाराज उनसे भेंट करें। इससे आपका चित्त प्रसन्न रहेगा।'

अजातशत्रुने वाहन सिद्ध करनेके लिये जीवकको आज्ञा दी। उसके अनुसार जब जीवकने सारी तैयारी की, तब अजातशत्रु राजा अपने हाथीपर बैठकर और अन्तःपुरकी स्त्रियोंको विभिन्न हथिनियोंपर बिठाकर बड़े दलबलके साथ बुद्धके दर्शनोंके लिये निकला।

'बिनयपिटक'के महावग्गमें ऐसा उल्लेख आता है कि भगवान् बुद्ध कुछ बीमार थे और जीवक कौमारभृत्यने उन्हें विरेचक दवाओंसे स्वस्थ कर दिया।

ये कुछ ऐसे प्रसंग हैं, जो जीवकके असाधारण व्यक्तित्वपर प्रकाश डालते हैं। जीवकको अपने जीवनमें अनेक इतिहास पुरुषोंका उपचार करनेका अवसर मिला—यह उसके अद्वितीय गुण और अप्रतिम योग्यताके प्रमाण हैं।

एक अनाथ जीवन लेकर ऐतिहासिक व्यक्तित्व बन जानेवाले जीवक-जैसे उदाहरण इतिहासमें अत्यल्प हैं।

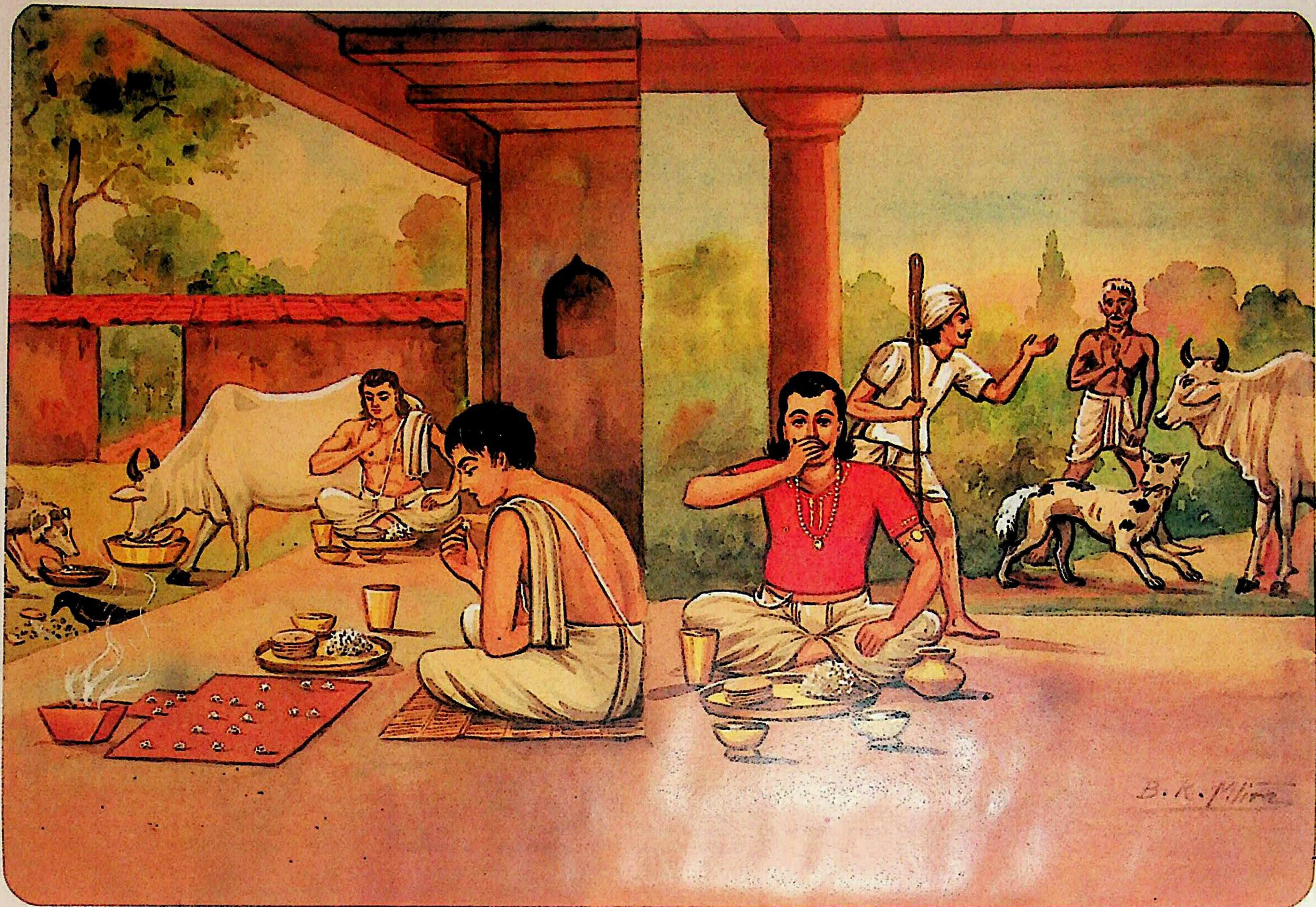
आचार्य जीवकविरचित कोई संहिता-ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता, परंतु अपने अद्भुत चिकित्सा-कौशलसे उन्होंने अगणित मानवोंको जीवन प्रदान किया। महावग्ग नामक बौद्धग्रन्थ तथा जातक कथाओंमें उनके चिकित्सकीय जीवनका जो विलक्षण वृत्तान्त प्राप्त होता है, उससे इनके अद्भुत व्यक्तित्व, औषधिज्ञान, चिकित्साकौशल, शल्यदक्षता, मेधाविता, उदारता तथा धर्मप्रवणता आदि विशिष्ट गुणोंका किञ्चित् परिज्ञान होता है। वृद्धजीवकतन्त्र (काश्यपसंहिता)-के प्रणेता आचार्य वृद्धजीवक प्रस्तुत शल्यतन्त्रज्ञ जीवकसे भिन्न हैं।

आयुर्वेदके उपदेष्टा आचार्य

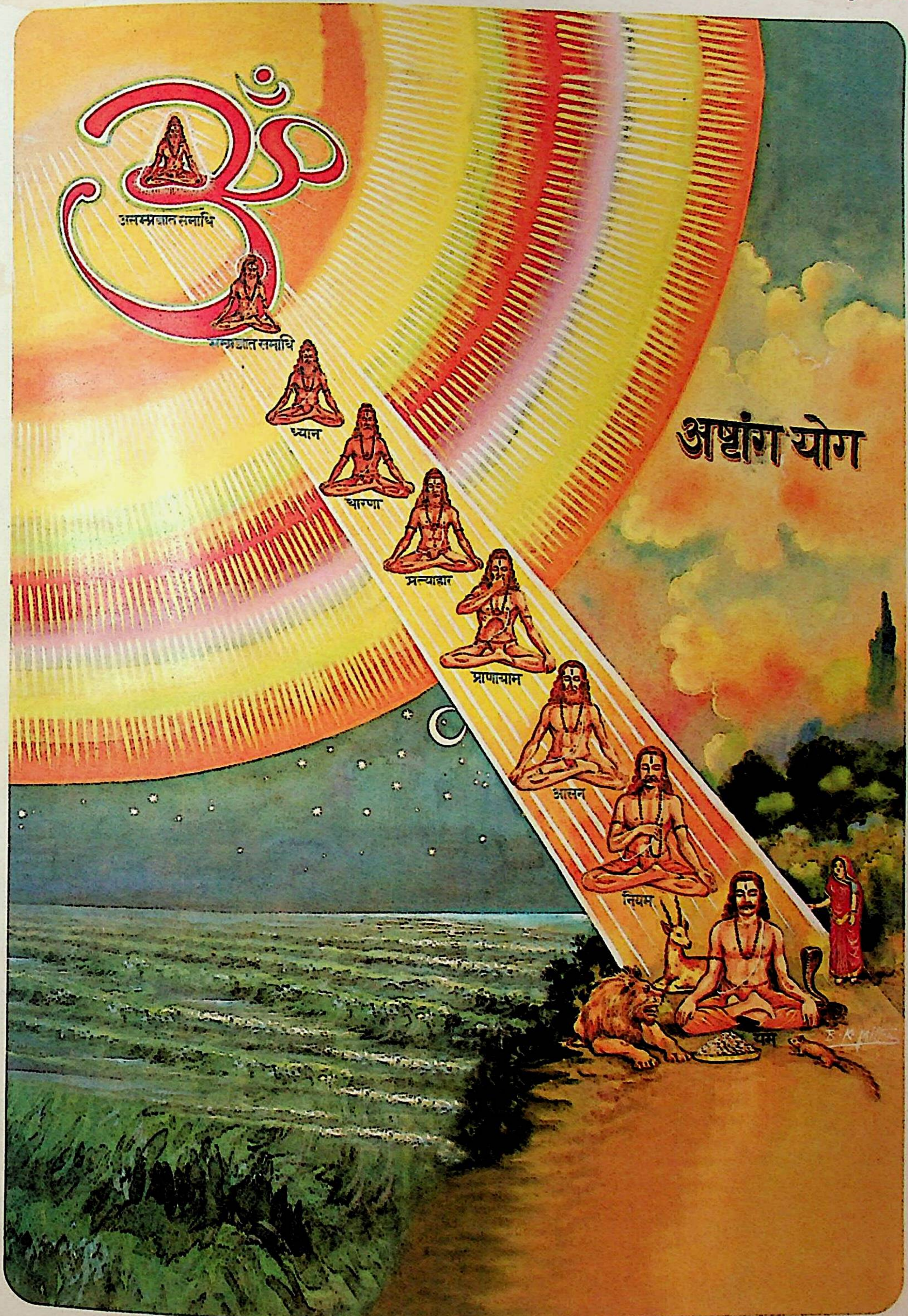


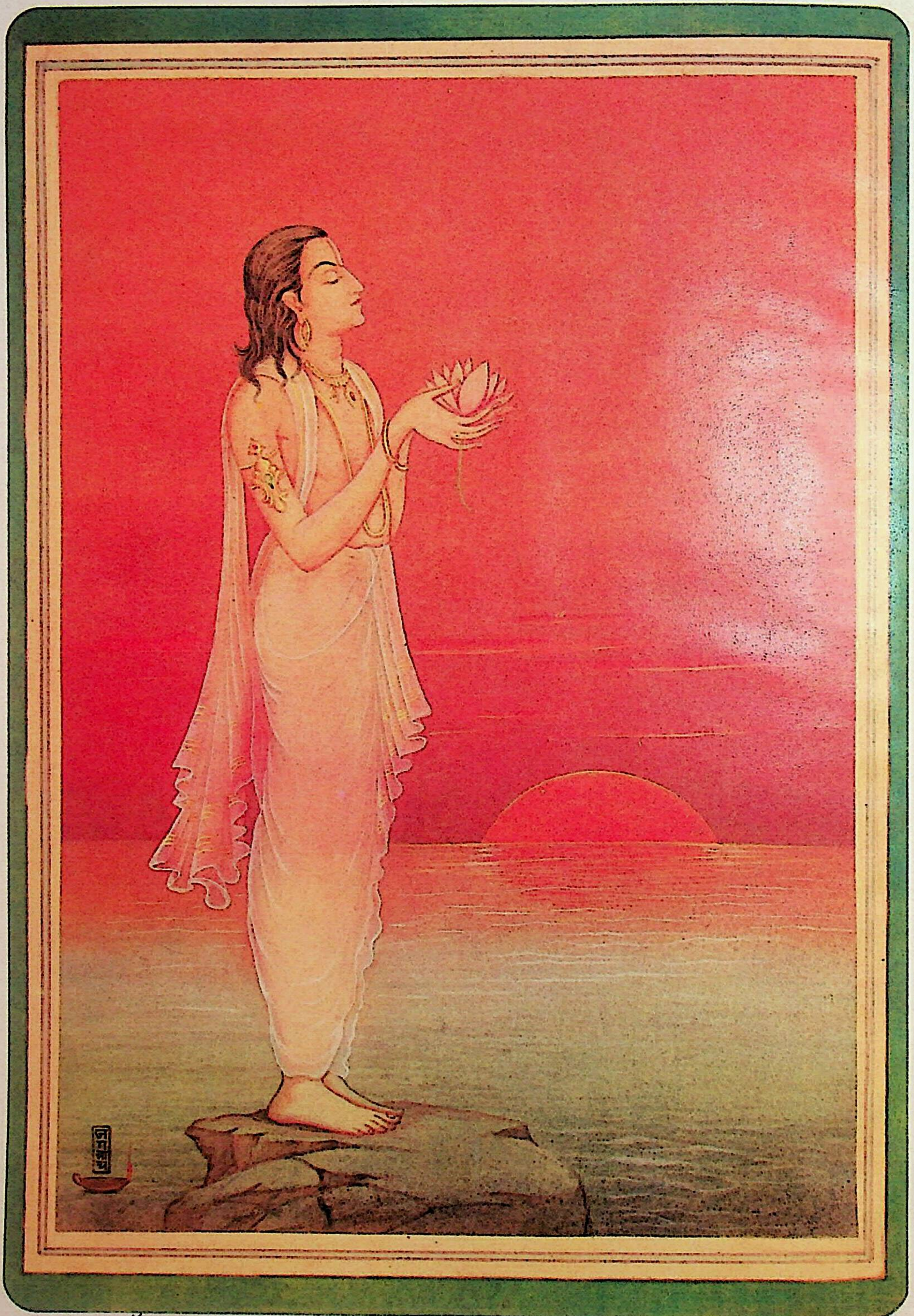
महर्षि चरक

महर्षि सुश्रुत



सात्त्विक आहार–निषिद्ध आहार


ॐ
असम्प्रज्ञात समाधि
सम्प्रज्ञात समाधि
ध्यान
धारणा
प्रत्याहार
प्राणायाम
आसन
नियम
यम
अष्टांग योग



सूर्योपासनासे आरोग्यकी प्राप्ति

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



कल्याण

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

वर्ष ७५ | गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०५७, श्रीकृष्ण-सं० ५२२६, फरवरी २००१ई० | संख्या २
पूर्ण संख्या ८९१

भगवान् सविताको नमस्कार

जयति किरणमाली भासुरः सप्तसप्तिसकलभुवनधामा प्राग्दिगन्ताट्टहासः।
भवति विगतपापं कीर्तनादेव यस्य प्रचुरकलुषदोषैर्ग्रस्तमङ्गं नराणाम्॥
प्राग्दिग्वधूतिलक भासुरकर्णपूर मन्दाकिनीदयितनाथ जगत्प्रदीप।
हेमाद्रितापन नभस्तलहाररत्न सन्ध्याङ्गनावदनराग नमो नमस्ते॥

किरणोंकी मालासे मण्डित, अत्यन्त प्रकाशमान एवं सात घोड़ोंके रथपर चलनेवाले उन भगवान् सूर्यकी जय हो, जिनका तेज समस्त भुवनोंमें व्याप्त है, जो पूर्व दिशाके अट्टहासकी-सी छवि धारण करते हैं तथा जिनके नामोंका कीर्तन करनेमात्रसे प्रचुर पाप-तापमय दोषोंसे ग्रस्त हुए मनुष्योंके अङ्ग निष्पाप हो जाते हैं। हे वधूरूपिणी प्राची दिशाके भाल-तिलक! देदीप्यमान कर्णपूर धारण करनेवाले मन्दाकिनीके प्रियतम नाथ! सुमेरु पर्वतको प्रकाशित करनेवाले! आकाशके महान् हाररत्न! अङ्गनारूपी सन्ध्याके मुखको रञ्जित करनेवाले! जगत्प्रदीप! आपको बारम्बार नमस्कार है।



विविध रोगोंकी चिकित्सा

[वर्तमान समयमें रोगोंकी संख्या बढ़ती जा रही है, पर कुछ ऐसे रोग हैं जिनके शिकार अधिकतर लोग हो जा रहे हैं, यदि प्रारम्भसे ही कुछ सावधानी बरती जाय और तत्काल उनकी चिकित्सा कर ली जाय तो वे रोग पनपते नहीं और ठीक भी हो जाते हैं। इस दृष्टिसे यहाँ विविध रोगोंकी सामान्य चिकित्सा प्रस्तुत की जा रही है, जो जानकार लोगोंद्वारा प्रेषित की गयी है—सं०]

व्याधि और उनकी ऐकात्मिक चिकित्सा

(डॉ० श्रीबाचलविष्णुदासजी दत्तात्रय, आयुर्वेदतज्ञ)

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय सर्वामयविनाशाय धन्वन्तरये अमृतकलशहस्ताय त्रैलोक्यनाथमहाविष्णवे॥

जागतिक आरोग्य-संघटनाद्वारा यह मान्य किया गया है कि 'स्वास्थ्य' केवल पार्थिव शरीरपर निर्भर न होकर उसमें शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा सामाजिक समत्वकी प्राप्ति एवं निरामय-अवस्था होना—यह पूर्ण स्वास्थ्य है। भारतीय चिकित्सापद्धति (योग, आयुर्वेद तथा प्राकृतिक चिकित्सा)-के अनुसार शरीरमें आध्यात्मिक स्तरपर निरामयता निहित की गयी है।

प्राचीन भारतीय चिकित्सकोंके मतानुसार शरीर तीन प्रकारका होता है—

१. स्थूल शरीर—जिसे हम पार्थिव शरीर कहते हैं।

२. सूक्ष्म शरीर—इसमें प्राण, मन तथा बुद्धिका समावेश होता है।

३. कारण शरीर—इसमें आत्माका समावेश होता है।

महर्षि पतञ्जलिने ये तीनों शरीर पञ्चकोशमें सम्मिलित किये हैं—

१. अन्नमय कोश—पार्थिव शरीर— Physical body।

२. प्राणमय कोश—प्राण शरीर— Etheric body।

३. मनोमय कोश—मानसिक शरीर— Mental body।

४. विज्ञानमय कोश—बुद्धि शरीर— Intellectual body।

५. आनन्दमय कोश—स्वानन्द आत्मा— casual body।

अन्नमय कोशमें पार्थिव शरीर यानी स्थूल शरीर आता है, जिसमें वाणी, पाणि-पाद, उपस्थ और गुदा—ये कर्मेन्द्रिय रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र आदि सप्त धातुएँ और कान, आँख, त्वचा, वाणी (रसना) और नाक आदि पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ आती हैं। इसके साथ ही पाचनसंस्थान, अस्थिसंस्थान, रुधिरसंस्थान, मज्जासंस्थान, श्वसनसंस्थान और उत्सर्जकसंस्थान—इनका भी समावेश होता है।

प्राणमय कोशमें स्थूलप्राण, सूक्ष्मप्राण तथा प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान—ये पञ्चप्राण और उनके देवदत्त, धनञ्जय, नाग, कूर्म, कृकल—ये उपप्राण आते हैं। जिनके द्वारा सम्पूर्ण शरीरका व्यापार चलता है। साँस लेनेसे पूरक, साँस रोकनेसे कुम्भक और साँस छोड़नेसे रेचक होता है।

मनोमय कोशमें मनके व्यापार संकल्प, विकल्प, विचार, मनोव्यापार आदिका समावेश होता है।

विज्ञानमय कोशमें बुद्धितत्त्व (Intellegence) कार्य करता है। अच्छे-बुरे विचारके अनुसार बुद्धि कार्य करनेकी आज्ञा देती है।

आनन्दमय कोश यह अपनी स्वानन्द निरामय अवस्था है। स्वानन्दस्वरूप है, आदि-अन्तरहित है, सुखका सागर है और चित्तका साक्षी है। यही मोक्षावस्था है और इसकी प्राप्ति योगका उद्देश्य है।

जब उपर्युक्त पञ्च कोशोंमें, स्थूल, सूक्ष्म पञ्चमहाभूतोंमें, पञ्चज्ञानेन्द्रिय-पञ्चकर्मेन्द्रियोंमें विकृति पैदा हो जाती है तो व्याधिका आविर्भाव होता है।

सामान्यतः व्याधि दो प्रकारकी है—

१. आधिज व्याधि तथा २. अनाधिज व्याधि।

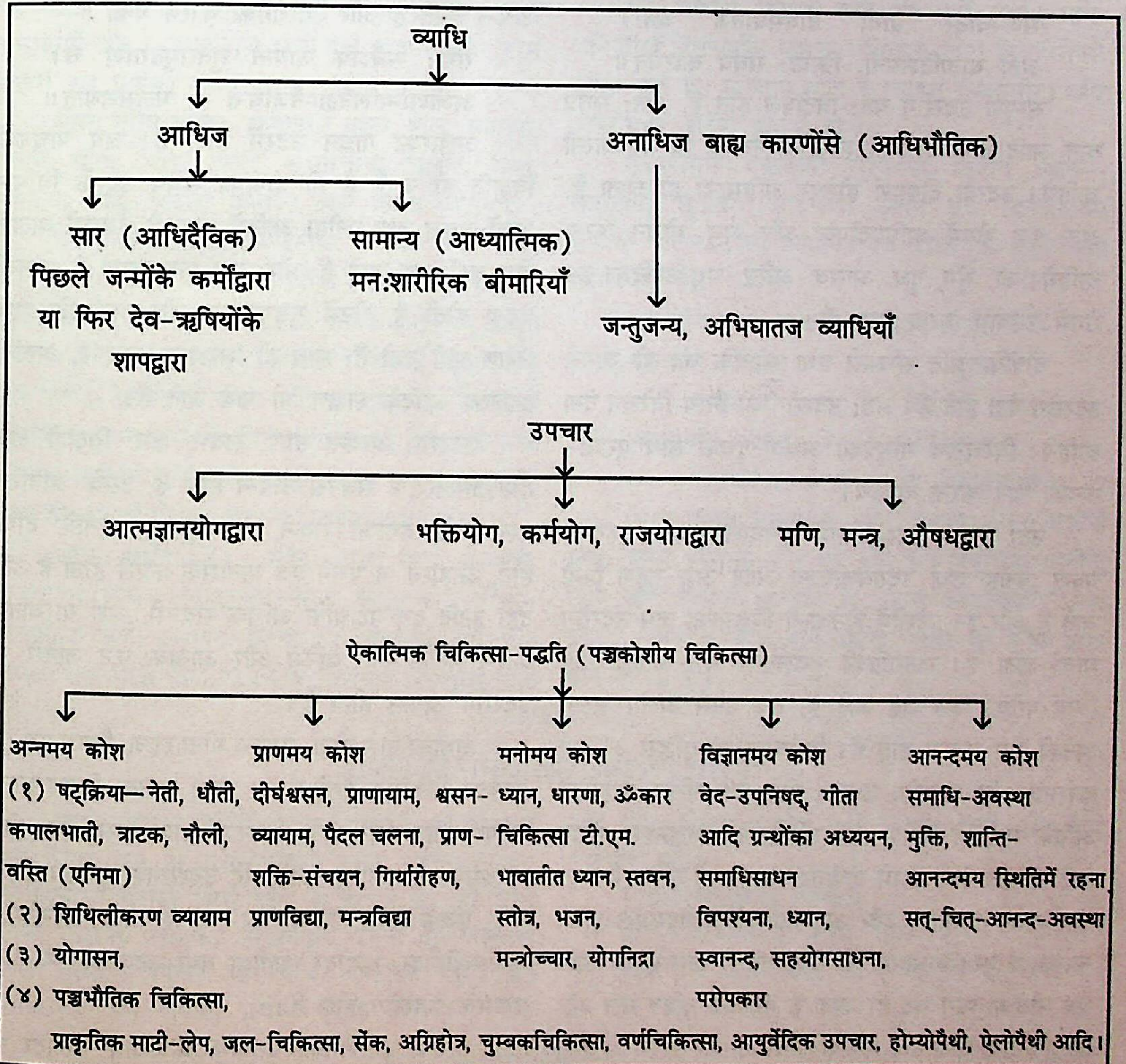
[१] आधिज व्याधि—इसके सार और सामान्य—ये दो प्रकार होते हैं।

सार व्याधि पिछले जन्मोंके कारण आनुवंशिक या गुरु, देव तथा पितरोंके शापके कारण उत्पन्न होती है। इसे

हम आधिदैविक व्याधि कहते हैं।

सामान्य व्याधिमें सर्वसाधारण व्याधियाँ हैं, जैसे—उच्च रक्तचाप, मधुमेह, दमा (साँसकी बीमारी), संधिवात, अल्सर-जैसी बीमारियाँ, जो मनका स्वर बिगड़ जानेसे होती हैं। इन्हें हम मनःशारीरिक बीमारियाँ (Psycaosomatic Disorder) कहते हैं। ये आध्यात्मिक व्याधियाँ भी कहलाती हैं। मनके स्वरपर चञ्चलत्व यानी विकृतिनिर्माण होनेपर उसका प्रभाव प्राणकोशपर होता है। फलतः उनके व्यापार अनियमित होते हैं और उसके परिणामस्वरूप व्याधि यानी शारीरिक बीमारियाँ भी पैदा होती हैं।

[२] अनाधिज व्याधि—जो बाह्य कारणोंसे यानी पञ्चमहाभूतोंके प्रकोपके कारण होती है। यानी जलना, डूबना, गिर जाना, गड़ जाना या अपघातजन्य (अभिघातज) व्याधियाँ और जीव-जन्तुके कारण उत्पन्न होनेवाली बीमारियाँ जैसे—कॉलरा, गैस्ट्रो, संग्रहणी और सभी प्रकारके ज्वर आदि बाह्य कारणोंसे होते हैं, इन्हें हम आधिभौतिक व्याधियाँ कहते हैं। इनका उपचार भी ऐकात्मिक चिकित्सापद्धतिद्वारा कर सकते हैं। यहाँ व्याधियोंके विविध स्वरूपों और उपचारको विभिन्न तालिकाओंके द्वारा दर्शाया गया है—



आजकलके विज्ञानयुगमें मानव भौतिक वस्तुओंके पीछे भाग रहा है, वह मानता है कि ये वस्तुएँ (टी.वी., फ्रीज, कम्प्यूटर, वाशिंग मशीन आदि-आदि) आनन्द दे सकती हैं। उन्हें जुटानेके लिये वह अधिक सम्पत्ति कमाना चाहता है। उसके लिये वह भले-बुरे मार्ग अपनाता है और उसके कारण स्पर्धा, त्रास, तनाव, ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर, काम, क्रोध-जैसे विकारोंका शिकार बन जाता है। साथ ही उच्च रक्तचाप, दमा, पेटका अल्सर, संधिवात, मधुमेह-जैसी मनःशारीरिक बीमारियोंका शिकार हो जाता है। सुख- आनन्द क्या है यह वह नहीं जानता, फलतः दुःख भोगता है। इस ऐकात्मिक पञ्चकोशीय चिकित्साको अपनाया जाय तो स्वस्थ आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्‌दुःखभाग्भवेत्॥



उदर-रोगके कारण, लक्षण एवं आयुर्वेदीय चिकित्सा

(डॉ० श्री एस०पी० पाण्डेय, एम्०डी०, आयुर्वेदरत्न)

सर्वमेवोदरं प्रायो दोषसंघातजं यतः।
अतो वातादिशमनीः क्रियाः सर्वत्र कारयेत्॥

सम्पूर्ण उदररोग यतः त्रिदोषज होते हैं, अतः सर्वत्र वात आदि तीनों दोषोंको शान्त करनेवाली क्रियाएँ करनी चाहिये। उदरके दोषपूर्ण होनेपर अग्निमान्द्य हो जाता है, अतः इस रोगमें अग्निप्रदीपक और लघु भोजन करना चाहिये। जौ, मूँग, दूध, आसव, अरिष्ट, मधु आदिका इस रोगमें उपयोग करना उत्तम है।

दोषोंके अति संचयसे तथा स्रोतोंके बंद हो जानेसे उदररोग पैदा होते हैं। अतः उदररोगीको नित्य विरेचन देना चाहिये। विरेचनार्थ गोमूत्रका अथवा दूधके साथ एरण्ड-तेलका पान करना चाहिये।

उदर शब्दसे उदर-प्रदेशमें रहनेवाले क्षुद्रान्त्र, बृहदन्त्र, यकृत्, प्लीहा तथा उदरावर्णीकला आदि अङ्ग ग्रहण किये जाते हैं और इन प्रदेशोंमें होनेवाली विकृतिका नाम उदररोग माना जाता है। जठराग्निकी दुर्बलतासे मल-वातादि दोष (मूत्र-पुरीष) जब बढ़ जाते हैं, तब उनसे अलग-अलग अनेकों रोग उत्पन्न होते हैं। विशेषकर मलवृद्धिसे अग्निकी दुर्बलता और उदररोग उत्पन्न होते हैं। मलिन आहारोंसे अग्निके मन्द हो जानेपर जब उचितरूपसे आहारोंका पाचन नहीं हो पाता तब उदरमें दोषोंका संचय होने लगता है। यह दोष-संचय प्राणवायु और अपानवायुको विशेषरूपसे दूषित कर ऊर्ध्व तथा अधोमार्गोंको रोक देता है, उससे जब ऊपर एवं नीचेका मार्ग बंद हो जाता है तब वह दूषित मल और वातादि दोष त्वचा तथा मांसके बीचमें आकर उदरमें आध्मान उत्पन्न करते हैं और उदररोगका कारण बनते हैं—

रोगाः सर्वेऽपि जायन्ते सुतरामुदराणि च।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसंचयात्॥

आहारका पाचन उदरमें होता है। जब पाचनकी विकृति हो जाती है तो दोषोंका संचय उदरके विभिन्न अङ्गों यकृत् तथा प्लीहा आदिमें होता है, जिससे वातादि दोष वहीं रुक जाते हैं और उदर फूल जाता है, हलकी वेदना होती है, पेटमें गुड़गुड़ाहट और अजीर्णके सभी लक्षण पाये जाते हैं; साथ ही शिरःशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, आलस्य आदिके लक्षण भी पाये जाते हैं।

उदररोग अत्यन्त उष्ण, लवण, क्षार, विदाही अन्न तथा अम्लरसके सेवनसे उत्पन्न होता है, इसके अतिरिक्त मल-मूत्रके वेगोंको रोकने, मल-मूत्रवह स्रोतोंके दूषित होने, आहारके न पचने एवं मानसिक कष्टसे होता है और दही आदि द्रव पदार्थोंके अधिक सेवनसे, अर्श या वातके कारण मलके रुक जानेसे और आन्त्रके फट जानेसे भी उदररोग उत्पन्न होता है।

क्षुधाका नाश होना, मुखका मीठा रहना, स्निग्ध एवं गुरु अन्नका अत्यधिक देरसे पचना, खाये अन्नका विदाह होना, पैरोंपर थोड़ा सूजन होना, निरन्तर बलका ह्रास होना, थोड़े परिश्रमपर श्वासका फूलना आदि उदररोगके पूर्वरूप हैं।

पृथक् दोषसे तीन वातोदर तथा श्लेष्मोदर, सन्निपातसे एक प्लीहोदर, बद्धोदर, क्षतोदर तथा उदकोदर—ये आठ प्रकारके उदररोग होते हैं।

प्रत्येक उदररोगकी अन्तिम अवस्थामें जलोदर हो

जाता है और यह उदररोगकी असाध्य अवस्था है। अतः उदररोगके प्रारम्भमें उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। बलवान् व्यक्तिके उदररोगमें जलका संचय न हुआ और उदररोग नूतन हुआ हो तो यत्नपूर्वक चिकित्सा करनेपर वह साध्य होता है। प्रायः सभी उदररोग उत्पन्न होते ही कृच्छ्रसाध्य होते हैं। उदररोगसे पीडित रोगियोंको नित्य विरेचन-औषधि देकर विशोधन करना चाहिये। विरेचन देनेसे संचित दोष बाहर निकल जाते हैं। स्रोतोंका मुख खुल जाता है, जिससे रोग शान्त हो जाते हैं। वातजन्य उदररोगमें स्नेहसे युक्त विरेचनका ही प्रयोग करना चाहिये।

उदररोगके शमनके लिये पीपर, सोंठ, दन्तीका मूल, चित्रकका मूल तथा विडङ्ग—इन पाँचों द्रव्योंका चूर्ण समभागमें और हरड़का चूर्ण इससे दूनी मात्रामें लेकर गरम जलसे इस चूर्णका सेवन करना चाहिये।

मांस, गरिष्ठ भोजन, चावलका आटा, तिल, व्यायाम, दिनमें सोना, घोड़ा आदि सवारियोंपर चलना, उष्ण, नमकीन, खट्टे, विदाही अन्नका त्याग करना चाहिये।

उदररोगकी चिकित्सामें अनेक योगोंका वर्णन आया है। यदि उदररोगसे पीडित रोगियोंके शरीरमें कफ वायु या पित्तसे आवृत्त हो जाय अथवा पित्त कफके द्वारा वायु आवृत्त हो जाय और रोगी बलवान् हो तो उदररोगनाशक औषधियोंके साथ एरण्ड-तेलका पान करना अति लाभदायक है। उदररोगमें दोषोंके अनुबन्धसे रक्षाके लिये तथा बलकी स्थिरताके लिये औषधि-प्रयोगके द्वारा शरीरके क्षीण तथा सम्पूर्ण धातुओंके क्षीण हो जानेपर गोदुग्ध अत्यन्त हितकारी होता है।

औषध-प्रयोग—(१) सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, अजवायन, सैन्धव लवण, श्वेत जीरक, काला जीरा, हींग—प्रत्येकका चूर्ण समभाग मिश्रितकर भोजनसे पूर्व तीन ग्रामकी एक मात्रा घीके साथ सेवन करनेसे अग्निवृद्धि होती है तथा वातरोग नष्ट होते हैं।

(२) अग्नितुण्डी वटी प्रातः-सायं दो-दो गोली जलसे भोजनके बाद।

(३) कुमार्यासव—चार-चार चम्मच बराबर जल मिलाकर भोजनके बाद लम्बे समयतक सेवन करना चाहिये।

(४) मट्ठेका प्रयोग—जीरा [भूनकर], काला नमक, काली मिर्चके साथ।

(५) आरोग्यवर्धिनी—दो-दो गोली तीन बार जलसे।

(६) अश्विनीनारायण चूर्ण—एक चम्मच सोते समय जलसे लेना चाहिये। यह समस्त उदररोगोंके लिये रामबाण औषधि है। इसका अद्भुत लाभ देखनेको मिला है।

यह मलको कुपित होने ही नहीं देता। प्रायः अनियमित दिनचर्याके कारण अधिकतर लोग विबन्धरोगसे ग्रसित होते हैं। परिणाम होता है वातार्श (बवासीर) और उदररोगका यहींसे प्रारम्भ होना।

उदररोगमें यकृत्‌की सुरक्षापर विशेष ध्यान—संतुलित, सुपाच्य आहारका सेवन एवं दिनचर्याका सम्यक् पालन उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घायुके लिये अति आवश्यक है।

अश्विनीनारायण चूर्णकी प्रशंसामें लिखा है—

नारायणं भजत रे पवनेन युक्ता
नारायणं भजत रे जठरेण युक्ताः।
नारायणं भजत रे भवभीतियुक्ता
नारायणात् परतरं न हि किंचिदस्ति॥

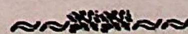
भिन्न-भिन्न अनुपानके साथ इसका सेवन करनेसे प्रायः सभी प्रकारके रोग दूर होते हैं। मधुमेहके रोगीके लिये यह अत्यन्त लाभप्रद है। अन्य औषधियोंके साथ इसका सेवन करनेसे औषधियोंका लाभ भी शीघ्र प्राप्त होने लगता है।



दन्त-दर्द-निवारक अनुभूत प्रयोग

खड़ी सोंठको पानीमें शिला (पत्थर)-पर घिसकर लेप तैयार कर ले एवं लेपको गरम करके (सहन करने योग्य गरम) जिस दाँत या दाढ़में दर्द हो उसी तरफ गालपर लगाकर सूखनेतक रहने दे। तत्काल लाभ होगा। लेपको चार-पाँच घण्टेतक रहने दे। ध्यान रहे इस लेपका प्रयोग मुँहके अंदरकी तरफ नहीं करे। लेपका प्रयोग पूर्ण लाभके लिये तीन दिन लगातार करे।

[श्रीरामगोपालजी रुणवाल
द्वारा—अभिनव एजेन्सीज, एफ-१६,
बाबा दीप काम्प्लेक्स, ७। १ महारानी रोड, इन्दौर—७ (म० प्र०)]



मधुमेह—कारण और निवारण

(डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

प्रदर और प्रमेह आजके स्त्री-पुरुष-समाजमें व्याप्त वे रोगविशेष हैं, जिनसे सम्भव है कोई विरला ही अपरिचित हो। आयुर्वेदमें परिगणित बीस प्रकारके प्रमेहोंमें 'मधुमेह' सर्वाधिक भयंकर रोग है। वर्तमान युगका आरामतलबी वर्ग विशेषत: मिथ्याहार-विहारके कारण इस रोगसे ग्रस्त है। यह रोग दीर्घकालतक मानवको पीडित करता है और समुचित चिकित्सा न होनेपर मनुष्यको घुला-घुलाकर मारता है। माधवनिदानमें इस रोगकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें लिखा है—

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि
ग्राम्यौदकानूपरसाः पयांसि।
नवान्नपानं गुडवैकृतं च
प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम्॥

(प्रमेहनिदान १)

अर्थात् सानन्द बैठे रहने, कोमल शैय्यापर सोने, अधिक मात्रामें दूध-दही खाने, ग्राम्य (छाग, मेष आदि), औदक (मत्स्यादि) एवं सजल तथा भूमिजात (वराह-कच्छप आदि) जीवोंका मांस खाने तथा नया चावल, चीनी, मिस्त्री आदि मधुर पदार्थ और कफकारी वस्तुओंके सेवनसे 'प्रमेहरोग' होता है।

मधुमेहकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें माधवनिदानमें बताया गया है* कि समयपर उपचार न करनेसे सभी प्रमेह मधुमेहमें परिणत होकर असाध्य कोटिमें पहुँच जाते हैं। मधुमेहमें रोगी मधुके समान मूत्र त्याग करता है। यह दो प्रकारसे होता है, एक धातुक्षयसे प्रकुपित वायुसे और दूसरा पित्त या कफसे आवृत वायुके द्वारा उत्पन्न होता है। आवृत वायुसे मधुमेहमें आवरक दोष और वायुके लक्षण भी प्रकट हो जाते हैं तथा अकस्मात् ये लक्षण कभी कम और कभी अधिक होते हैं। इस प्रकार क्रमशः रोग कृच्छ्रसाध्य हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि धातुक्षयसे वायु कुपित होकर मधुमेह Diabetes Mellitus उत्पन्न कर देता है अथवा पित्त और कफ जब वायुका मार्ग रोक देते हैं, तब रुद्धगति वायु ही मधुमेहका जनक बन जाता है। विशेषत: पित्त और कफद्वारा जब वायुके स्रोत रुद्ध हो जाते हैं, तब जो मधुमेह उत्पन्न होता है, उसीमें वायुके लक्षण लक्षित होते हैं और तब बिना किसी कारणके ह्रास अथवा वृद्धि पाकर रोग कष्टसाध्य हो जाता है। प्राय: सभी मेह समयपर चिकित्सा न करनेपर मधुमेहरूपमें परिणत हो जाते हैं। अत: सभी मेहोंको मधुमेह कहा जा सकता है।

चरक-संहितामें इसकी सम्प्राप्तिके सम्बन्धमें बताया गया है† कि कफकारक वस्तुओंके सेवन करनेसे बढ़ा हुआ कफ, मेद, मांस और वस्ति (मूत्राशय)-में रहनेवाले शारीरिक क्लेदको दूषितकर प्रमेहको उत्पन्न करता है। उष्ण द्रव्योंके सेवनसे बढ़ा हुआ पित्त, मेद, मांस और शारीरिक क्लेदको विकृत कर पित्तज प्रमेह उत्पन्न करता है। कफ और पित्तदोष जब वातकी अपेक्षा क्षीण (न्यून) रहते हैं तो बढ़ा हुआ वात धातुओं (वसा, मज्जा, ओस और लसिका)-को मूत्राशयमें खींचकर ले जाता है, तब वातज प्रमेहको उत्पन्न करता है।

---

* सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः। मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि॥
मधुमेहे मधुसमं जायते स किल द्विधा। क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथवा॥
आवृतो दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन्। क्षणात्क्षीणः क्षणात्पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम्॥
मधुरं यच्च मेहेपु प्रायो मध्विव मेहति। सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः॥

(प्रमेहनिदान, २३—२६)

† मेदश्च मांसं च शरीरजं च क्लेदं कफो बस्तिगतं प्रदूष्य।
करोति मेहान् समुदीर्णमुष्णैस्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि॥
क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य बस्तौ धातून् प्रमेहाननिलः करोति।
दोषो हि बस्तिं समुपेत्य मूत्रं संदूष्य मेहाञ्जनयेद्यथास्वम्॥

(चिकित्सास्थान ६।५-६)

इस रोगमें सर्वप्रथम हेतुओंका त्याग आवश्यक है। इसके साथ ही चिन्ता, शोक, भय आदिसे मुक्त रहना भी आवश्यक है। आयुर्वेदानुसार ऋतुचर्याका पालन, शीत, आतप आदिसे बचाव, औषध-सेवनकी अपेक्षा पथ्यपर विशेष ध्यान देना—इस रोगके रोगीके लिये अत्यावश्यक है; क्योंकि लोलिम्बराजने कहा है—

पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः॥

अर्थात् रोगपीडित व्यक्तिको पथ्यपूर्वक रहनेपर औषध-सेवनसे क्या प्रयोजन और पथ्यपूर्वक नहीं रहनेपर औषध-सेवनसे क्या प्रयोजन?

मधुमेह है क्या? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि पुराने मेहरोगकी विशेषावस्था ही मधुमेह है। मधुमेह होनेसे पूर्व इसके रोगीका मेहके किसी भेदसे ग्रस्त रहना आवश्यक है। लालामेह, शुक्रमेह, मण्डमेह, उदकमेह, इक्षुमेह आदि बीस प्रकारके मेह ही पुराने होकर मधुमेहरूपमें परिणत होते हैं।

मधुमेहका प्रधान लक्षण है—बहुमूत्रता। इसके रोगीके मूत्रके साथ शरीरगत शर्करा भी निःसृत होती है। अतः ऐसे मूत्रपर मक्खी बैठती है, चींटी लगती है और मूत्रोत्सर्ग स्थलपर धब्बा भी पड़ता है।

दोषोंके प्रकुपित होनेपर यकृत्की विकृतिसे यह रोग उत्पन्न होता है। जठराग्नि विषम होकर पाचनक्रियाको विकृत कर देती है। परिणामस्वरूप शर्करा पाचनक्रियामें भली प्रकार उपयुक्त न होकर अस्वाभाविकरूपसे संचित होने लगती है और परिणाम यह होता है कि शर्करा रक्तमें अधिक परिमाणमें जा मिलती है। वृक्क भी रक्तशुद्धिके समय मूत्रमार्गद्वारा उसे निष्कासित करते हैं और इस प्रकार मधुमेहका श्रीगणेश तनुक्षरणार्थ हो जाता है।

मधुमेहके उत्पादक कारण निम्नलिखित हैं—

१. प्रमेह हो जानेपर उसकी यथासमय ठीक-ठीक चिकित्सा न होनेपर।

२. अधिक मधुर पदार्थ तथा चावल-सेवन करनेपर।

३. अनियमित तथा अत्यधिक स्त्री-प्रसंगसे।

४. परिश्रम अथवा सहवासके तत्काल पश्चात् शीतल जल पीनेसे।

५. अप्राकृत मैथुनसे।

६. अश्लील चित्र, साहित्य आदि देखने-पढ़नेसे। समष्टिरूपमें इस रोगमें अधिक बैठना, दिनमें सोना, नये धान्य, दही, मद्य, सिरका, तेल, क्षार, घी, गुड़, इमली, गन्नेका रस, आनूप-देशके प्राणियोंका मांस, विरुद्ध भोजन, दूषित जलका सेवन भूलकर नहीं करना चाहिये। साथ ही मूत्रवेगको रोकना, धूम्रपान, स्वेदन, रक्तनिर्वहण आदिसे भी बचना चाहिये।

यह रोग वस्तुतः छद्म शत्रुवत् होता है। अतः इसके प्रति पूर्ण जागरूक रहना आवश्यक है; क्योंकि यह रोग धीरे-धीरे उत्पन्न होता है और बहुत समयतक अपने-आपको प्रकट नहीं करता, परिणामतः रोगीका ध्यान बहुत समयतक इसकी ओर नहीं जा पाता; क्योंकि इस कालमें इससे आक्रान्त व्यक्तिको सामान्य-सी दुर्बलता मात्र अनुभूत होती है, जिसे रोगी सामान्य समझकर टालता जाता है, पर यह प्रमाद महँगा पड़ जाता है। जैसे ही निम्न लक्षण पूरे या अधूरे दृष्टिगोचर हों चिकित्सकसे परामर्श करना चाहिये—रात्रिमें कई बार मूत्र आना, मूत्र मधुवत् चिपचिपा होना, मूत्र मीठा तथा पीला होना, शिरोवेदना, विष्टम्भ, क्षुधाधिक्य, रूक्षता, पिपासाधिक्य आदि। मधुमेहके रोगीको बैठनेसे लेटना और सोना अधिक रुचिकर लगता है।

मूत्रमें शर्कराकी अधिकतासे दृष्टिमान्द्य, अदीठ, पीठका फोड़ा (Corbuncle) आदि हो सकते हैं, अतः शीघ्र ही ध्यान देना चाहिये जिससे रोग जीर्ण न होने पाये।

मधुमेहके रोगीको कच्चे टमाटर, तीनों प्रकारकी गोभी (गाँठ, फूल, पत्ता), पत्तीकी भाजी (चौलाई आदि) कच्ची सेमकी फली (Tender field beans)-का सेवन नियमित रूपसे करना चाहिये। तले हुए पदार्थ, आलू, पके टमाटर, भिण्डी, गाजर, चुकन्दर, काशीफल (Red pumpkin,)- कच्चा केला तथा अरहरकी दालका सेवन सर्वथा त्याग देना चाहिये। चनेका निस्सार (whole Bengal Gram extract)- का सेवन भी इस रोगमें लाभप्रद है। इस रोगके उपशमनार्थ निम्न प्रयोग भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं—

१. वसन्तकुसुमाकर १½ रत्ती, शुद्ध अहिफेन (Opium) (अफीम) ⅙ रत्तीकी छः मात्रा बना ले तथा एक-एक मात्रा प्रातः-सायं मधु या मक्खनसे ले तथा विजयसार एक तोला काँचके गिलासमें भिगोकर बारह घंटे बाद दोनों

समय (प्रात:कालका भिगोया हुआ सायंकाल, सायंकालका भिगोया प्रात:काल) छानकर पीये।

२. शिलाजीत एक तोला, वंगभस्म छः माशे, गुड़मारचूर्ण दो तोले, जामुनकी गुठली दो तोले, बिल्वपत्र स्वरस तथा करेलेके रसमें घोंटकर आधी-आधी रत्तीकी गोली बनाये, प्रातः, मध्याह्न, सायं एक-एक गोली बिल्वरस या गोदुग्धसे ले।

३. वसन्तकुसुमाकर तीन रत्ती, त्रिबंग भस्म तीन रत्ती, शिलाजीत एक माशा, गुड़मारचूर्ण तीन माशा एकत्र कर गोली बनाये तथा तीन बार नीमके क्वाथ या गोदुग्धसे ले।

४. गुड़मारचूर्ण दस तोला, जामुनकी गुठली पाँच तोला, सोंठ पाँच तोला, घृतकुमारीके रसमें घोंटकर चार-चार रत्तीकी गोली बनाकर मधुसे तीन बार लेवे।

५. खिरैंटी, गूलर, बबूल, आँवलेके पत्ते सब बराबर लेकर चूर्ण करे—छः माशे प्रातः धारोष्ण गोदुग्धसे ले तथा जौकी रोटी, मूँगकी दाल २१ दिन सेवन करे।

६. गुड़मार सत्व एक तोला, वैक्रान्तभस्म एक तोला, गिलोय सत्व दो तोले, पाषाणभेद तीन तोले—चूर्णकर दो-दो रत्ती दोनों समय मधुसे लेना चाहिये।

७-मेहँदी, ब्राह्मी, गुलाबके फूल दो-दो तोला, कमीला छः माशे, शिलाजीत एक तोला-चूर्ण बना १½ माशा गर्म गोदुग्धसे सेवन करे, सब प्रमेहोंके लिये अचूक योग है।

८. वंगभस्म, नागभस्म, लौहभस्म तीनों एक-एक रत्ती मक्खन या मलाईसे लेना चाहिये।

९. सप्तरंगी एक तोला, गुड़मार दो तोला, जामुनगिरी एक तोला, सोंठ छः माशा, शिलाजीत दो तोला। पहले काष्ठौषधियोंका चूर्णकर फिर शिलाजीत मिलायें, तदनन्तर बेलफलके स्वरसके साथ घोंटकर चनेके बराबर गोली बना ले। दो-दो गोली प्रातः-सायं शीतल जलसे लेवे।

१०. सोंठ, काली मिर्च, बहेड़ेका वक्कल, सूखा आँवला, हल्दी, वंशलोचन, रूमी मस्तगी, सालम मिस्री, छोटी इलायचीके दाने, सत्वगिलोय, सत्व शिलाजीत—प्रत्येक ६-६ तोला, त्रिफला १५ छटाँक, गोघृत १ छटाँक, पहले सब औषधियोंको कूट ले, फिर त्रिफला कूटकर सायंकाल जलमें भिगो दे। प्रातः चूल्हेपर रख १० किलो जलमें डालकर पकाये और आधा रहनेपर उतार ले। फिर गिलोय-सत्व मिलाकर आगपर रखे और उसमें घी डाल दे। पकनेपर उतारकर छान ले तथा चूर्ण मिलाकर बेरके बराबर गोली बना ले। दोनों समय एक-एक गोली दूध या जलसे ले। सभी प्रकारके प्रमेह और प्रदरमें लाभप्रद है।

इसके अतिरिक्त वसन्तकुसुमाकर-रस, सोमनाथ-रस, बृहत् सोमनाथ-रस, नागभस्म, यशदभस्म, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, हेमनाथ, स्वर्णवंग, जम्ब्वासव, लोध्रासव आदि शास्त्रीय औषधियोंका प्रयोग भी चिकित्सकके परामर्शानुसार किया जा सकता है। यदि और कुछ न कर सके तो बिल्व, पीपल, जामुन तथा श्यामा तुलसीके पत्ते समान मात्रामें लेकर, अलग-अलग सुखा, चूर्णकर एक साथ मिला ले और ठंडे जलसे एक-एक चम्मच यह चूर्ण दोनों समय ले अथवा बिल्वपत्र स्वरस तथा करेला स्वरस एक-एक तोला पीनेसे लाभ होता है।



निरन्तर बढ़ती व्याधि मधुमेह—परहेज एवं उपचार

(डॉ० श्रीताराचन्द्रजी शर्मा)

भारतमें ही नहीं वरन् समूचे संसारमें इस समय बड़ी तेजीसे एक व्याधि बढ़ रही है जिसका नाम है—मधुमेह (Diabetes)। कुछ समय पूर्व इसे खाये-पीये बड़े लोगोंकी बीमारी, अमीरीकी निशानी और सम्पन्नता, बड़प्पन तथा वी०आई०पी० लोगोंमें पनपनेका प्रतीक माना जाता था, किंतु आजकल यह गरीबोंमें भी समानरूपसे फैलती हुई फैशनकी तरह आम बात होती जा रही है। अखिल भारतीय चिकित्सा-विज्ञानद्वारा झुग्गी झोंपड़ी-क्षेत्रमें सम्पन्न कराये सर्वेक्षणके आँकड़ोंके अनुसार सात प्रतिशत आदमी मधुमेहसे ग्रस्त हैं। देशमें इस समय ढाई करोड़से अधिक लोग इस बीमारीकी चपेटमें हैं। विश्व-स्वास्थ्य-संगठन (WHO)-के अनुसार आगामी दो दशकोंमें यह संख्या दो गुनी हो जायगी। ये आँकड़े चौंकानेवाले हैं। भारतीय चिकित्सा-विज्ञानके कई एक डॉक्टरोंके अनुसार डायबिटीजके नियन्त्रित करनेके सारे उपाय बेकार हो चुके हैं। डायबिटिक सेल्फ-केयर फाउण्डेशनका कहना है कि एक ओर तो

लोगोंकी खान-पानकी आदतोंमें बदलाव आ रहा है और दूसरी ओर रोजगार ऐसा हो चला है कि शारीरिक श्रम कम करना पड़ता है, जिससे डायबिटीजके मामलोंमें तेजीसे वृद्धि होनेसे बड़ी संख्यामें गरीब इंसुलिनके अभावमें मौतके मुँहमें जा रहे हैं तथा डायबिटीजको लेकर हालात बेकाबू हो रहे हैं। स्वास्थ्य-विशेषज्ञ इस बीमारीको 'डायबिटीज बम' के नामसे सम्बोधित कर चेताने लगे हैं। 'नेशनल मेडिकल एजूकेशन रिसर्च फोरम' के मतानुसार जागरूकताका अभाव और साक्षरताकी कमीके कारण यह समस्या और जटिल हो गयी है, क्योंकि इस बीमारीसे ग्रस्त अनेकों लोग इसके बारेमें जानते भी नहीं। अतः इस व्याधिको गम्भीरतासे लेते हुए जनमानसमें इसके प्रति जागरूकता फैलानी चाहिये, इस हेतु मधुमेहके कारण, लक्षण एवं उपचार-पद्धतिको प्रचारित-प्रसारित करना वाञ्छनीय है।

वर्तमान कालमें प्रगतिशीलता तथा आधुनिकताके नामपर प्रदूषित, अनुचित तथा अप्राकृतिक विधिके आहार-व्यवहार, खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, तनाव-लगावकी मनोवृत्तिके फलस्वरूप भी मनुष्यमें मधुमेहकी व्याधि तेजीसे बढ़ रही है। इस बीमारीकी चपेटमें हर उस व्यक्तिके आनेकी सम्भावना रहती है, जो श्रमजीवी—परिश्रमी नहीं, आरामकी जिन्दगी जीता, खाता-पीता तथा मोटा-ताजा है। विकसित देशोंमें यह आम धारणा है कि ४० वर्षकी आयु होते-होते यदि पेटमें अल्सर नहीं हुआ तो क्या खाक खाया-पिया? यदि हृदयरोग या उच्च रक्तचाप नहीं हुआ तो जिन्दगीमें क्या झकमारी? इसी प्रकार डाइबिटीज बड़े आदमी होनेकी निशानी रही, क्योंकि कोई बिरला ही सौभाग्यशाली होगा जो किसी भी क्षेत्रमें बड़ा आदमी हो और उसे यह रोग न हो। यदि अत्यधिक प्यास तथा भूख, ज्यादा पेशाब आना, थकावट, अचानक वजन कम होना, जख्मका देरीसे भरना, गम्भीर हिचकी आना, पैरोंमें भड़कन-झनझनाहट रहना, अनिद्रासे तनाव, तलुओंकी जलन, चिड़चिड़ापन, नेत्रज्योति कम होना, सिर भारी रहना आदिके लक्षण हैं तो आप डायबिटिक हो सकते हैं। डायबिटीजसे कई प्रकारकी आन्तरिक विकृतियाँ गम्भीर समस्यायें यथा—किडनी (गुर्दा)-का खराब होना, अंधापन, हृदयघात (Heart Attack), गेस्टोपेरेसिस आदि रोगोंकी सम्भावना बढ़ जाती है। अपनी प्रारम्भिक विकृतिके साथ यदि मधुमेहकी व्याधि एक बार हो जाती है तो उम्रभर खामोशीसे साथ रहती है।

व्यापक रूपसे व्याप्त मधुमेहकी बीमारीके मामलेमें सर्वाधिक ध्यान देनेवाली बात यह है कि इसको नियन्त्रित या नष्ट करनेमें पथ्य-अपथ्यका पालन करना औषधि-सेवनकी अपेक्षा अधिक हितकर है। बिना पथ्य-अपथ्यके पालन किये केवल औषधिके सेवनसे इस बीमारीमें 'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की' की कहावत चरितार्थ होती है। सत्यतः मधुमेह ऐसा रोग है, जिसके लिये अनियमित आहार-विहार ही उत्तरदायी है। जिसमें समय रहते सुधार न करने तथा लापरवाही जारी रहनेपर यह रोग असाध्य स्थितिमें पहुँच जाता है और फिर मृत्युपर्यन्त पीछा नहीं छोड़ता। अस्तु,

इसके नियन्त्रणका सबसे सरल-सुरक्षित मार्ग है नियन्त्रित उचित आहार-विहार। नवीन शोधोंसे भी सिद्ध हो चुका है कि जिनके शरीरमें इन्सुलिनका बनना बिलकुल बंद नहीं हुआ है, उनका उपचार आहार-विहारके नियमनसे सम्भव है। मधुमेह संक्रमण (Infection)-से होनेवाला संक्रामक रोग नहीं है, परंतु वंशानुगत प्रभावसे हो सकता है। फलतः जिनके माता-पिता, दादा-दादी या नाना-नानीको यह रोग रहा हो, उन्हें बचपनसे ही आहार-विहारके मामलेमें अधिक सावधानी बरतनी चाहिये और इस रोगके प्रारम्भिक लक्षण पता चलते ही तत्काल आहार-विहारमें उचित सुधार कर लेना चाहिये ताकि दवा खाने, इलाज करानेकी नौबत न आये। इस रोगमें एक बार दवा विशेषकर इन्सुलिन लेनेके चक्करमें फँसनेपर जीवनपर्यन्त इस चक्रसे निकल नहीं पाते। अतः इस चक्करमें पड़नेसे बचने-हेतु नियन्त्रित-संतुलित आहार लेना परमावश्यक है।

ध्यान रखने योग्य बातें—मधुमेहके लक्षण मालूम होते ही मूत्र (Urine) तथा रक्त (Blood)-की जाँच कराये जिससे पता चल सके कि यदि मूत्रमें शर्करा (Sugar) आ रही है तो रक्त-शर्करा सामान्यसे अधिक तो नहीं है। प्रातः खाली पेट रक्तमें शर्कराकी मात्रा ८० से १२० mg. (प्रति १०० सी० सी० रक्त)-के मध्य होनेपर सामान्यतः मनुष्य स्वस्थ होता है। १२० से अधिक तथा १४० से कम होनेपर मधुमेहकी प्रारम्भिक अवस्था होती है। परंतु यह मात्रा १४० से अधिक होनेपर समझ ले कि मधुमेहसे ग्रस्त हैं और इसने जड़ जमा ली है। भोजन करनेके दो घंटेके बाद की

गयी जाँचमें रक्त-शर्करा १२० mg. से कम होनेपर मनुष्य स्वस्थ, १४० mg. या इससे कम होनेपर मधुमेहकी प्रारम्भिक अवस्था, किंतु यह १४० mg. से अधिक पायी जानेपर इस रोगसे ग्रस्त माना जायगा। रोगकी वस्तुस्थिति जानने-हेतु ४० वर्षसे अधिक आयुवाले स्त्री-पुरुषों, विशेषकर मोटे नर-नारियोंको २-३ माहके अन्तर्गत एक बार स्वमूत्र और रक्तकी जाँच कराते रहना चाहिये, क्योंकि यह रोग धीरे-धीरे पनपता है और उग्र अवस्था धारण करनेसे पहले इसका स्पष्ट रूपसे पता नहीं चलता। अतएव पेशाब तथा रक्तमें सामान्य मात्रासे अधिक मात्रामें शर्करा पायी जानेपर आहारमें तुरंत उचित सुधार कर नियन्त्रित-संतुलित आहार लेना प्रारम्भ करके आवश्यक परहेजका भी दृढ़तासे पालन करना चाहिये।

मधुमेह-रोगमें संतुलित आहार और सख्त परहेज करनेका महत्त्व तथा लाभ औषधि-सेवनसे भी अधिक है, क्योंकि उचित आहार लेने तथा परहेजका सही पालन करनेपर बिना दवाका सेवन किये भी यह रोग नियन्त्रणमें रहता है यानी एक तरहसे रोग रहता ही नहीं। इसके विपरीत असंतुलित आहारका सेवन तथा बदपरहेजी करनेपर यह रोग नहीं जा पाता। इस सम्बन्धमें आयुर्वेदका यह श्लोक द्रष्टव्य है—

विनाऽपि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते।
न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि॥

अर्थात् सैकड़ों दवाएँ खानेपर भी पथ्यविहीन व्यक्तिका रोग नष्ट नहीं होता। मन वशमें होने, संतुलित आहार करने, उचित विहार बरतने तथा व्यायाम या योगासनका अभ्यास होनेपर मधुमेहरोगसे ग्रस्त तथा त्रस्त होनेका प्रश्न ही नहीं उठेगा।

दिनचर्या एवं पथ्य-अपथ्य—मधुमेहका रोगी प्रातः भ्रमणोपरान्त घरमें जमा हुआ दही स्वेच्छानुसार थोड़ा-सा जल, जीरा तथा नमक मिलाकर पीये। दहीके अलावा चाय-दूध कुछ न ले। इसके साथ मेथी दानेका पानी, जाम्बुलिन, मूँग-मोठ आदिका प्रयोग करे, इसके ३-४ घंटे बाद ही भोजन करे। भोजनमें जौ-चनेके आटेकी रोटी, हरी शाक-सब्जी, सलाद और छाछ-मट्ठाका सेवन करे। भोजन करते हुए छाछको घूँट-घूँट करके पीते रहे। भोजनके पश्चात् फल लेवे। जौ-चनेकी रोटी स्वादिष्ट, शक्तिवर्द्धक एवं स्फूर्तिदायक होनेके साथ-साथ वजन घटानेमें भी सहायक होती है। सायंकालका भोजन यथासम्भव ७ बजेतक कर ले। भोजन फुरसतके अनुसार नहीं, बल्कि ठीक निश्चित समयपर ही करे। प्रतिदिन निश्चित समयपर भोजन करनेसे रक्त-शर्कराकी मात्रा सामान्य अवस्थामें बनी रहनेमें सहायक होती है।

मधुमेहका रोगी भोजनमें मीठे पदार्थ चीनी-शक्कर, मीठे फल, मीठी चाय, मीठे पेय, मीठा दूध, चावल, आलू, सकरकंद, तले-चिकने पदार्थ, घी, मक्खन, सूखे मेवे, गरिष्ठ पदार्थ आदिका सेवन बंद कर दे। मीठा करने-हेतु चीनीके स्थानपर सेकरीनकी गोलीका प्रयोग कर सकते हैं। आहारमें बसा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेटयुक्त पदार्थों, उदाहरणार्थ दूध, घी, तेल, सूखे मेवे, फल, अनाज, दाल आदिका भी कम मात्रामें प्रयोग करे। मांसाहार और शराबका प्रयोग कतई न करे। रेशायुक्त खाद्य पदार्थों जैसे हरी शाक-सब्जी, सलाद, आटेका चोकर, मौसमी फल, अंकुरित अन्न, समूची दाल आदिका सेवन अधिक मात्रामें करे। इस रोगसे ग्रस्त व्यक्ति केवल उचित संतुलित आहारका ही नहीं वरन् उचित विहार, रहन-सहनको नियमित तथा नियन्त्रित करनेका भी ध्यान रखे और तदनुसार अपनी दिनचर्यामें वाञ्छित सुधार करे। दिनचर्यामें वायुसेवन-हेतु सूर्योदयसे पूर्व भ्रमणके लिये जाना, तेल-मालिश, योगासन, व्यायाम करना, दिनमें चल-फिरकर रहना हितकारी होता है। योगासनोंमें सूर्य नमस्कार, भुजङ्गासन, शलभासन, योगमुद्रा, धनुरासन, सर्वाङ्गासनादि और अन्तमें शवासन करे। योगासन-व्यायामका अभ्यास अधिक मात्रामें न करके अपनी शारीरिक क्षमताके अनुसार ही करे।

मधुमेहके लक्षण और स्वमूत्र तथा रक्तमें शर्करा होनेपर व्यक्तिको चाहिये कि वह चिन्तित एवं भयभीत न हो, बल्कि चिन्ताजनक तथा भयकारक इस समस्याका उचित समाधान सोचकर इसे नष्ट करनेका प्रयत्न करे। जो आहार-विहारकी गलतियाँ करते रहते हैं, वे जीवनपर्यन्त रोगसे ग्रस्त हो अपनी करनीका फल भोगते रहते हैं और जिन पदार्थोंको खानेमें अति की थी, उन्हींको खानेके लिये तरसा करते हैं तथा साथ ही बोनसके रूपमें अन्य बीमारियाँ भी उनके पल्ले पड़ जाती हैं, जिन्हें उन्हें भोगना ही पड़ता है। अतः रोगीको पथ्यका पालन और अपथ्यका त्याग करना अपेक्षित है।

घरेलू उपचार एवं चिकित्सा— उचित आहार-विहारका

ध्यान रखते हुए मधुमेहसे ग्रस्त व्यक्ति निम्नाङ्कित घरेलू उपचारोंमेंसे किसीका प्रयोग कर इस रोगपर नियन्त्रण कर सकता है—

(१) मेथीदाना ५०० ग्राम धो-साफकर १२ घंटेतक पानीमें भिगोकर बीज फूलनेपर इन्हें पानीसे निकाल करके सुखा ले और कूट-पीसकर महीन चूर्ण कर ले। इस चूर्णको सुबह-शाम एक-एक चम्मच पानीके साथ सेवन करनेसे मधुमेहके रोगीको लाभ होता है।

(२) आधा चम्मच पिसी हल्दी और एक चम्मच आँवलाका चूर्ण सुबह-शाम पानीके साथ लेनेसे रक्त शर्करा सामान्य मात्रामें बनी रहती है, क्योंकि इसके सेवनसे अग्न्याशयको बल मिलता है, जिससे इन्सुलिन नामक हार्मोन उचित मात्रामें बनता रहता है। यदि स्वस्थ व्यक्ति इसका सेवन करे तो वह इस व्याधिसे बचा रह सकता है।

(३) ढाक (पलाश)-के फूलोंका रस आधा-आधा चम्मच सुबह-शाम पीना मधुमेहसे ग्रस्त रोगीके लिये लाभप्रद रहता है।

(४) बेलके ताजे हरे पत्तोंका रस दो-दो चम्मच सुबह-शाम पीना मधुमेहके रोगमें बहुत गुणकारी और उत्तम है।

(५) गुड़मार ८० ग्राम, बिनोलेकी मींगी ४० ग्राम, बेलके सूखे पत्ते ६० ग्राम, जामुनकी गुठली ४० ग्राम और नीमकी सूखी पत्तियाँ २० ग्रामको कूट-पीसकर मिलाकर चूर्ण बना ले और उसका सुबह-शाम आधा-आधा चम्मच प्रयोग करे। इससे अग्न्याशय और यकृत्‌को बल मिलनेसे उनके विकार नष्ट होते हैं और मूत्र तथा रक्तकी शर्करा नियन्त्रित हो सामान्य मात्रामें रहती है।

(६) आयुर्वेदिक औषधि वसन्तकुसुमाकर रस अथवा अम्बरयुक्त शिलाजत्वादि वटी और प्रमेहगज केसरीवटी—इन दोनोंकी एक-एक गोली सुबह-शाम दूधके साथ ले। आयुर्वेदिक औषधियोंसे तैयार मिश्रणका प्रयोग मधुमेहके रोगमें विशेष लाभकारी रहता है।

(७) मिट्टीके बरतनमें रातको ५० ग्राम मेथीदाना पानीमें भिगोये और सुबह मसल-छानकर इस पानीको पीये। इसी प्रकार सुबहका भिगोया मेथीदाना शामको मसल-छानकर पिये। सुबह नाश्तेमें रातको पानीमें भिगोयी हुई मूँग और मोंठ इच्छानुसार ले और उसे खूब चबा-चबाकर खाये। इस भीगी मूँग-मोंठको सुबह तवेपर थोड़ा तेल, नमक तथा जीरा डालकर सेंक ले। इनके साथ 'जाम्बुलिन' की दो गोलियाँ मेथी-पानीके साथ निगलना विशेषरूपसे हितकारी होता है।

(८) मधुमेहमें सुबह-शाम भोजनके बाद आधे कप पानीके साथ जामुनकी गुठली और करेलेका चूर्ण ५-५ ग्राम फाँक लेना तथा दिनमें एक बार १५-२० बेलपत्र खूब चबा-चबाकर महीन करके खाना सफल घरेलू इलाज है।

(९) मधुमेहकी चिकित्सा-हेतु अंग्रेजी दवाइयोंके अतिरिक्त अनेक गुणकारी आयुर्वेदिक औषधियाँ हैं, जो रक्तगत शर्कराको सफलतापूर्वक नियन्त्रित करती हैं। कुछ प्रमुख योग हैं—मधुमेहारिचूर्ण, मधुहारी चूर्ण, मधुनाश, मधुदोषान्तक, डेबिक्स टेबलेट, मधुरीन, पिल्स तथा पाउडर, मधुमेहदमन चूर्ण आदि।

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञानने मधुमेहग्रस्त रोगियोंपर अनेकानेक सुदीर्घ शोधानुसन्धान किये हैं, जिससे असाध्य मधुमेहके लिये अनेक अचूक, असरदार विशिष्ट औषधियाँ विकसित हुई हैं तथा आहार-सम्बन्धी मान्यताएँ प्रभावित हुई हैं। निःसंदेह उत्तम गुणवाली औषधियाँ मूत्र तथा रक्तकी शर्कराको नियन्त्रितकर इन्सुलिनके प्राकृतिक स्रावको सक्रिय करके शरीरमें इन्सुलिनकी कमी एवं वृद्धि दोनोंको सन्तुलित रखकर प्राणघातक दुष्परिणामोंसे रोगीकी रक्षा करनेमें बेहतरीन परिणाम प्रदान करती हैं। इन औषधियोंमें गुड़मार, करेला-बीज, नीम, आंवे हल्दी, गिलोय, जामुन गुठली, गूलर-फल, शिलाजीत, बिल्वपत्र आदिकी मिश्रित जड़ी-बूटियाँ तथा त्रिवंगभस्मादि हैं, जो मधुमेहमें पेंक्रियाजको सक्रिय करने और इन्सुलिन प्रदायको नियन्त्रित करनेमें गुणकारी तथा लाभकारी रहती हैं।

संक्षेपमें मधुमेहकी हर स्थितिमें आहार-नियन्त्रण, निदान-परिवर्जन, दिनचर्या-नियमनसे लाभान्वित होते हुए आप सम्पूर्ण जीवन निर्विघ्न जी सकते हैं। मधुमेहका रोगी किसी भी दृष्टिसे शारीरिक या मानसिक रूपसे अपंग नहीं होता है, बल्कि संयमित, नियमित एवं अनुशासित दिनचर्यासे वह जीवनके किसी भी लक्ष्यको प्राप्त करनेमें सक्षम है। प्रत्येक रोगीके लिये आहार-मात्रा, विहार-प्रक्रिया, दिनचर्या भिन्न-भिन्न हो सकती है। किंतु कुछ सामान्य बातें हैं, जिन्हें समझकर स्वविवेकसे उपयोगी आहार-विहार तय करके आप मधुमेहसे मुक्त रह सकते हैं।

विबन्ध या कोष्ठबद्धता

(वैद्य श्रीजगदीशप्रसादजी खन्ना)

मेरे एक अध्यापक जो वियनामें पढ़ते थे, उन्होंने बताया कि उस देशके निवासी जो मेरे सहपाठी थे, वे शौचके लिये सप्ताहमें केवल एक बार जाते थे। वे लोग मेरे साथ रातमें शयन करते थे, परंतु मेरे प्रातःकाल उठनेके घंटोंबाद उठकर भी मुझसे पहले कक्षामें पहुँच जाते थे और मुझे प्रायः विलम्ब हो जाता था; क्योंकि प्रातःकालके शौचाचारादिमें समय लग जाता था। नित्य शौच जानेपर भी मैं उन लोगों-जितना स्वस्थ भी नहीं था। यह सही है कि वियना और वाराणसीकी भौगोलिक स्थिति एक-सी नहीं है और वहाँके निवासियोंके आहार-विहार यहाँसे भिन्न हैं, परंतु क़ब्ज़के सम्बन्धमें यह भी एक विचारणीय तथ्य है। उस देशकी परम्परा ही तदनुरूप है और उसी परम्पराके अनुसार वहाँके निवासियोंमें ऐसी मानसिकता है कि सप्ताहमें केवल एक बार शौच जाना ही सर्वोत्तम स्वास्थ्यका लक्षण है। वे इसी शौचविधिमें प्रसन्नचित्त हैं, स्वस्थ हैं और कुशलपूर्वक अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

भारतमें लोगोंकी मानसिकता भिन्न है। वे नित्य दो बार या तीन बार शौच जाना ही उचित मानते हैं और यदि उनका मलत्याग नियमितरूपसे सम्पन्न नहीं होता है तो वे रेचक दवाका सेवन करते हैं।

इस सम्बन्धमें जनमानसकी यह धारणा है कि यदि नित्य नियमितरूपसे दो या तीन बार मलका त्याग न होगा तो उन्हें अनेक कष्ट होंगे, भोजनमें अरुचि होगी, शरीर सुस्त रहेगा, पेट भारी रहेगा आदि-आदि। कभी-कभी तो मनुष्यमें यह विचार भी उठने लगता है कि नियमित शौच न होनेके कारण ही उन्हें अमुक रोग सता रहा है और शौच हो जानेसे उनका रोग ठीक हो जायगा, यद्यपि यह बात कुछ अंशमें ठीक है। परंतु आयुर्वेदमें एक सूत्र है कि—

मलायत्तं बलं पुंसां बलायत्तं हि जीवनम्।

अर्थात् मलके आश्रित शरीरका बल है और बलके आधारपर जीवन स्थित है। यदि मल (पुरीष, मूत्र, स्वेद)-का क्षय होगा तो जीवन (जीवित रहनेका)-का क्षय होगा। इन मुख्य तीन मलोंके धारणसे शरीर शक्तिशाली होता है और यदि इनके धारणकी शक्तिका नाश होगा तो जीवनका भी सद्यः नाश हो जायगा। यथा विषूचिका—हैजा (CHOLERA)-में सद्यः मृत्युका होना मलक्षय ही कारण है।

आयुर्वेदमें दूसरा सूत्र है कि—

मलाभावाद् बलाभावो बलाभावादसुक्षयः।

अर्थात् मलके क्षयसे बलका क्षय होगा और बलके क्षयसे प्राणका अन्त होगा।

कारण—क़ब्ज़का कारण पित्तकी विकृति है। पित्तकी उत्पत्तिकी मात्रा अल्प होनेसे भोजनका पाचन नहीं होता और भोजनके न पचनेपर भोजनमें आमत्व उत्पन्न होता है। आमयुक्त भोजनका उत्तम विश्लेषण नहीं होता और अविश्लेषित भोजन आँतोंमें चिपकता है, ग्रहणीकी शक्तिको क्षीण करता है, आँतोंकी सामान्य गतिके अवरुद्ध हो जानेसे विबन्ध उत्पन्न होता है।

पित्तकी मात्रामें अल्पताका कारण शरीरमें आलस्य या अरामतलबी है। आप जितना शारीरिक परिश्रम करेंगे, उसी अनुपातसे पित्तकी उत्पत्ति होगी। इस हेतु परिश्रम ऐसा होना चाहिये, जिसमें भरपूर पसीना आये और श्वास-प्रश्वास तेज हो। ऐसी क्रियासे रक्तकण (R.B.C) टूटते हैं और यकृत्में छनकर पित्तको बनाते हैं। यकृत् (Lever)-में पित्तकी मात्रा अधिक होनेपर यह स्वाभाविकरूपसे यकृत्से बाहर आकर भोजनको उत्तम प्रकारसे पचाता है। साबुनके रूपमें बना यह उत्तम पदार्थ आँतोंको इस तरह निर्मल कर देता है जैसे साबुन कपड़ेको साफ करता है। अतः आँतोंके लिये पित्त ही उत्तम साबुन है। बचपनमें परिश्रमकी क्रिया अधिक होती है, अतः बचपनमें क़ब्ज़ कम होता है। यौवनावस्थामें परिश्रम कुछ शिथिल पड़ता है तो क़ब्ज़ ज्यादा होता है और वृद्धावस्थामें परिश्रम अत्यन्त शिथिल होता है अतः क़ब्ज़ बहुत अधिक होता है। जो व्यक्ति इस तथ्यको समझकर सामर्थ्यानुसार परिश्रम करते रहते हैं उनका जीवन सुखी रहता है।

परिश्रमके अतिरिक्त खट्टे भोज्य पदार्थ, सेंधा नमक और मिरचा, काली मिर्च यदि भोजनके साथ लिया जाय तो परिश्रमके गुणमें सोनेमें सुगन्ध-जैसा लाभदायक होता है। कटु, अम्ल और लवणको आग्रेय कहा गया है।

क़ब्ज़के अन्य कारणोंमें कई रोग भी हैं। ज्वरकी अवस्थामें पाचनक्रियाका ह्रास होता है, अतः आँतोंमें स्थित भोजन सूख कर क़ब्ज़ पैदा करता है। पित्ताशय और पित्तवाहिनी शोथ (Holits, Holangitis), पाण्डु (Analmia), कामला (Jaundice) आदि यकृत्‌के रोगोंमें उग्र प्रकारका विबन्ध होता है। आन्त्रकृमि (Worms) और रक्तचापवृद्धि (High blood presure) आदिमें भी क़ब्ज़ होता है।

पाचनसंस्थानमें मुखसे प्रारम्भ कर क्रमशः पेट, ग्रहणी, छोटी आँत, बड़ी आँत, मलाशय या गुदा आदिमें विकृतिके कारण उन अङ्गोंके स्रावमें ह्रास होता है तो भी क़ब्ज़ उत्पन्न होता है।

क़ब्ज़के लक्षण—यदि एक दिन-रात बीतनेपर मलत्यागका वेग न हो तो उसे क़ब्ज़ कहा जा सकता है। इसके साथ अन्नमें अरुचि, उदरमें भारीपन, बार-बार अपानवायुका निकलना, मूत्रत्यागका बार-बार वेग होना इत्यादि क़ब्ज़के लक्षण हैं। क़ब्ज़के कारण मनमें मलिनता रहती है। साहस तथा उत्साह नहीं होता। आलस्य होता है।

निवारण—(१) सर्वप्रथम पाचनसंस्थानके प्रत्येक अङ्गपर ध्यान देना चाहिये। मुखमें दाँत स्वस्थ हैं और भोजनकी चर्वणक्रिया सामान्य है या नहीं। भोजनके उचित चर्वणसे भोजनमें लालास्रावका पर्याप्त मिश्रण होता है तो क़ब्ज़ नहीं होता। पर्याप्त चर्वण करनेसे भोजनमें लालास्रावकी क्षारीयता भोजनको जलीय घोलमें परिणत कर देती है और भोजन फलके रसके समान स्वादिष्ठ तथा सुपाच्य हो जाता है। क़ब्ज़ दूर करनेके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है। पुनः आमाशयपर ध्यान देना चाहिये। भोजन आमाशयमें पाँच या छः घंटेमें पचता है। इस अवधिमें प्यास लगनेपर शुद्ध पेय जलको उबालकर गुनगुना पीना चाहिये। इसके अतिरिक्त छः घंटेतक कोई भी वस्तु कदापि नहीं खानी चाहिये। पान, चाय आदि भी क़ब्ज़ पैदा करते हैं। उदाहरणार्थ—आपने एक पात्रमें दाल पकानेको दालमें जल मिलाकर आगपर रखा। दाल पकनेमें लगभग दो घंटे समय लगते हैं, परंतु यदि पकती हुई उस दालके पात्रमें हर १५ मिनटपर बार-बार थोड़ी-थोड़ी दाल डालते जायँगे तो पहलेकी दालके साथ मिलकर बार-बार डाली गयी दाल पहली दालको न पकने देगी और न आप पकेगी। पाक भ्रष्ट हो जायगा। उसी प्रकार पेट भी एक पात्र है,' उसमें एक बार पकनेको रखे भोजनमें पाँच या छः घंटेके बीच जलके अतिरिक्त अन्य कुछ भी डालनेसे क़ब्ज़ होगा। आमत्व उत्पन्न होगा और पाक बिगड़ जायगा। अस्तु भोजन खूब चबा-चबाकर करना चाहिये और भोजनके बाद थोड़ी देर विश्राम करना चाहिये। लगभग छः घंटेतक उबले जलके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं लेना चाहिये। भोजनके पच जानेपर सामान्यतः सात या आठ घंटे बाद दूसरी बार भोजन करना चाहिये। भोजनके उपरान्त दिनमें शयन करना अनुचित है। इससे जुकाम-नजला होनेका डर रहता है। भोजनके बाद दिनमें आरामसे टहलते-घूमते अपना कार्य करनेवालेकी आयु लम्बी और रोगरहित होती है। रात्रिभोजन करनेके बाद प्रायः दो-तीन घण्टेतक शयन नहीं करना चाहिये। इस बीच टहलना-घूमना सर्वोत्तम है अथवा अपनी रुचिके अनुसार सद्ग्रन्थोंका अध्ययन करना चाहिये। रात्रिमें शयनकाल छः या सात घंटे होना चाहिये और प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व आसमानमें उषःकिरणोंके फैलते समय घरसे बाहर शुद्ध वायुवाले खुले मैदानमें टहलना चाहिये। ऐसी मान्यता है कि प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होकर सूर्योदयसे पूर्व एक घंटातक अपनी शक्तिके अनुसार तेजीसे खुली हवामें उत्तम पवित्र स्थान यथा—नदीतट, उत्तम राजमार्ग या विस्तृत उपवन आदिमें टहलनेसे विबन्ध दूर होता है।

२. क़ब्ज़में लाभके लिये उषःपान करना चाहिये। व्यक्तिकी अपनी प्रकृतिके अनुसार अनुकूल पड़े तो यह भी क़ब्ज़को दूर करता है। ताम्रपात्रमें रखा हुआ रात्रिका जल उषःकालमें इच्छानुसार शयनसे उठते ही शौचादिसे पूर्व लेनेकी विधि है।

३. विबन्धका एक बड़ा कारण अजीर्ण है। अतः खूब जोरकी भूख लगनेपर ही भोजन करना चाहिये और तृप्तिसे पूर्व ही भोजन समाप्त करना चाहिये।

४. रात्रिमें शयनके पूर्व उबला हुआ गरम पानी पीनेसे विबन्ध दूर होता है।

५. तेलरहित सूखे मेवे तथा किशमिश, मुनक्का, अंजीर, खजूर, छुहारा आदिका सेवन विबन्धनाशक है।

६. ताजे तुरंत तोड़कर मिलनेवाले सभी ऋतुफल आम, जामुन, अमरूद, सेब, अनार, सन्तरा, पपीता, मौसम्मी, नीबू, आँवला, केला, चीकू, शरीफा तथा बेल आदि फलोंको खानेसे क़ब्ज़ नष्ट होता है। हफ्तोंतक तोड़कर रखे फल उचित लाभ प्रदान नहीं करते।

७. ऋतुओंमें मिलनेवाली साग-सब्जियोंका प्रयोग करनेसे भी पाचन उत्तम होता है और क़ब्ज़ समाप्त हो जाता है।

८. कई घंटोंतक बैठकर लगातार कार्य करनेसे भी विबन्ध होता है, अतः एक घण्टा काम करनेके पश्चात् पाँच मिनटतक टहलना, घूमना और मन बहलानेसे मानसिक शक्ति बढ़ती है, क़ब्ज़ नहीं होता और अर्श, बवासीर (Piles) नहीं होते।

९. योगासन तथा प्राणायाम विबन्ध नाश करनेमें आश्चर्यजनक लाभ करते हैं। आसनोंमें सर्पासन, धनुरासन, ताडासन, पद्मासन, बद्धपद्मासन, चक्रासन, सर्वाङ्गासन आदि उत्तम हैं। उत्तम स्थानपर बैठकर लम्बी गहरी श्वास अंदर लेने और बाहर निकालनेसे भी लाभ होता है।

१०. तनावकी स्थिति (Stress)-में किया हुआ भोजन अजीर्ण पैदा करता है और पोषणके विपरीत कुपोषण, विषाक्तता उत्पन्न करता है। कहा भी है कि—

ईर्ष्याभयक्रोधपरीक्षितेन
लुब्धेन शुग्दैन्यनिपीडितेन।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानं
अन्नं न सम्यक्परिपाकमेति॥

अर्थात् ईर्ष्या, भय, क्रोध, लोभ, शोक, दैन्य, प्रद्वेष आदि मानसिक तनावकी स्थितिमें किया भोजनका सम्यक् परिपाक (पाचन) नहीं होता।

११. अन्तमें विबन्धकी दवाका प्रश्न होता है। आयुर्वेदशास्त्रमें क़ब्ज़के लिये शताधिक औषधियाँ हैं और इनके निर्माणका आधार वनस्पतियोंके दूध, जड़, छाल, पत्ते, फूल और फल हैं। प्राचीन कालमें इन द्रव्योंका कषाय (काढ़ा या जोशाँदा) प्रातःकाल लिया जाता था। आधारभूत इन छः द्रव्योंमें लवणरसको छोड़कर बाकी पाँचों रसों—मधुर, अम्ल, कटु, तिक्त, कषायका ग्रहण किया गया है। रोग और रोगीकी प्रकृतिके अनुसार इनके चार भेद किये गये हैं। सबसे मृदु प्रभाव और लाभ देनेवाले श्रेणीके द्रव्योंको अनुलोमन द्रव्य कहते हैं, इनमें उदाहरणस्वरूप हरीतकी (हरड़ या हर्रे छोटी या बड़ी)-की गणना है। तदुपरान्त द्रव्य क्रमशः तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम कहलाते हैं। यथा तीव्र द्रव्यमें अमलतास फलका गूदा, तीव्रतरमें कुटकी और तीव्रतम (Brisk purge) -में त्रिवृत (निशोथ) है। उदाहरणके लिये ऊपर प्रत्येक वर्गके एक-एक द्रव्य ही लिखे गये हैं, परंतु इन वर्गोंमेंसे प्रत्येक वर्गके द्रव्योंमें प्रायः दूध, जड़, छाल, पत्ते, फूल और फल हैं। अतः रोग और रोगीकी प्रकृतिके अनुसार किसी अनुभवी विद्वान् वैद्यसे परामर्श करके उनके निरीक्षण और निर्देशनमें क़ब्ज़ नष्ट करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। प्राचीन महर्षियोंके मतसे यावत् जड़ी-बूटियोंमें दस्तावर गुण रहते हैं, परंतु चिकित्सक अपनी बुद्धि और युक्तिके अनुसार प्राप्य द्रव्यका प्रयोग कर क़ब्ज़को नष्ट कर देता है।

क़ब्ज़की उत्पत्तिका मुख्य कारण उदरमें रूक्षता (खुश्की) है और दस्तावर दवाके देनेसे प्रायः रूक्षता बढ़ती है अस्तु, दस्तावर दवा देनेके पहले उदरको चिकना करना उचित है। आयुर्वेदके मतानुसार पुरुषको स्नेहसारवान् और उसके प्राणोंको स्नेहभूयिष्ठ कहा गया है, अतः पुरुषके सारे रोग स्नेहके द्वारा अच्छे किये जा सकते हैं, यथा—

'स्नेहसारोऽयं पुरुषः प्राणाश्च स्नेहभूयिष्ठाः स्नेहसाध्याश्च भवन्ति।' (सु०चि० ३१।३)

इस दृष्टिसे क़ब्ज़के रोगीको एक-दो या तीन दिनतक नित्य रात्रिमें एक (टेबल स्पून) चम्मच उत्तम एरण्डका तेल (रेड़ीका तेल) थोड़े गरम दूधमें मिलाकर शयनके पूर्व लेकर शयन करना चाहिये। रात्रिमें जब जोरकी नींद आने लगे तब पीकर सोना चाहिये और कोष्ठ शुद्ध होनेपर विरेचनका प्रयोग करना चाहिये।

एक उत्तम योग—बैतरा सोंठ, छोटी पिप्पली, हल्दी, वायविडंग, वच, छोटी हरड़ प्रत्येकका समभाग लेकर चूर्ण बना ले। चूर्णका १/६ भाग नमक और सभी छः द्रव्योंके समान उत्तम गुड़ मिलाकर गोली बनावे और एक आँवलाकी मात्रामें शयनसे पूर्व नित्य रात्रिमें तीन दिन, पाँच दिन या सात दिनतक लेना चाहिये। दिनमें उत्तम यवसे निर्मित खाद्यका भोजन (एक बार) करना चाहिये। (च०चि० १)

अथवा हरे आँवले और मूँगके साथ जल और अल्पस्नेहसे पकाये हुए बिना नमकवाले भात (चावल)-को घृत मिलाकर दिनमें एक बार भोजन करना चाहिये। (सु० चि० २७)

अन्य योग—वर्तमान समयमें अगणित दस्तावर दवाइयोंका प्रचार किया जा रहा है, परंतु बिना समझे, प्रचारके आधारपर इनका प्रयोग हानिकर पाया जा रहा है। अस्तु, किसी भी दस्तावर दवाका प्रयोग प्रचारके आधारपर कदापि नहीं करना चाहिये, प्रत्युत किसी विद्वान् एवं अनुभवी चिकित्सकके परामर्शके अनुसार करना चाहिये। कुछ निरापद द्रव्योंमें ईसबगोलकी भूसी, चैती गुलाबकी पत्ती, अमलतास वृक्षके फूल, आँवलेका मधुर पाक, घृतकुमारीका गूदा, घीमें तली छोटी हर्रे, रेड़ीके तेलमें तली छोटी हरड़े, मुनक्का, गरम पानी आदि हैं। महर्षि सुश्रुतकी निम्न उक्ति अक्षरशः सत्य प्रतीत होती है—

दीप्तान्तराग्निः परिशुद्धकोष्ठः
प्रत्यग्रधातुर्बलवर्णयुक्तः ।
दृढेन्द्रियो मन्दजरः शतायुः
स्नेहोपसेवी पुरुषो भवेत्तु॥
(सु०चि० ३१।५६)

अर्थात् स्नेहद्रव्योंका नित्य सेवन करनेवाले पुरुषकी जठराग्नि प्रबल रहती है, कोष्ठ शुद्ध रहता है, रसादि धातु, बल, वर्ण सदा नूतन रहते हैं, इन्द्रियाँ दृढ़ रहती हैं, बुढ़ापा देरमें आता है और आयु सौ सालकी होती है।



रोगोंसे मुक्तिका उपाय—विपश्यना

(डॉ० श्रीप्रेमनारायणजी सोमानी भू०पू० निदेशक चिकित्सा विज्ञान संस्थान काशी हि०वि० विद्यालय, वाराणसी)

शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये तो हम शारीरिक व्यायाम करते हैं, परंतु मनको स्वस्थ रखनेके लिये कुछ नहीं करते। हमारा मन जब प्रदुष्ट होता है तो मनोरोग उत्पन्न होते हैं। मनको सर्वविध स्वस्थ और मनोविकारोंसे स्थायी रूपसे विरत रखनेकी कुंजी है—**'विपश्यना'**, जिसकी जड़ें तो भारतकी हैं, पर यह विद्या विदेशोंमें पल्लवित एवं पुष्पित होती रही है।

'विपश्यना' ध्यान आध्यात्मिक साधनाकी एक विधि है, जो मनुष्यके आचरणको सुधारकर उसको स्वस्थ जीवन जीनेकी कला सिखाती है। प्राचीन युगमें ऋषि-मुनियोंने आध्यात्मिक स्वास्थ्यकी दृष्टिसे जिस सात्त्विक जीवनपर बल दिया, वह सब कुछ विपश्यनासे सहज सुलभ है। नयी पीढ़ीमें कुछ मिथ्या धारणा बन गयी है कि ऐसी आध्यात्मिकताकी ओर केवल वे बूढ़े व्यक्ति अग्रसर होते हैं, जिन्हें समय बिताना कठिन होता है। जवानीमें ये सब बातें निरर्थक लगती हैं। अभी तो मनोरंजन, कमाई और समाजमें स्थापित होनेके दिन हैं। मृत्यु परम सत्य होते हुए भी बड़ी दूर दिखायी देती है। कोई मरना नहीं चाहता, उसके विषयमें सोचना भी नहीं चाहता। उसके विषयमें न सोचनेके तरह-तरहके उपाय खोजता है, ताकि उसे भूला रहा जा सके। फिर जब व्याधियाँ—बीमारियाँ शरीरपर दस्तक देने लगती हैं और सारी चिकित्सा-पद्धतियाँ उसे दूर करनेमें नाकामयाब रहती हैं। मृत्यु साक्षात् सिरपर खड़ी दिखायी देती है, तब जीनेकी लालसा और बढ़ती है। तब वह रहस्यमयी आध्यात्मिक शक्तियों और क्रियाओंकी खोज करता है। शायद उससे कोई राहत मिले—दवाइयोंसे छुटकारा मिले।

प्रश्न उठता है कि आध्यात्मिक साधना क्या रोगोंको ठीक करनेमें मदद करती है? प्राकृतिक चिकित्साकी मान्यता है कि ईर्ष्या-द्वेषके बाहुल्यसे तनाव बढ़ता है और मनुष्यमें बुढ़ापेके लक्षण कम उम्रमें ही आ जाते हैं। क्रोध तनावका कारण है और कुण्ठाका सम्बन्ध 'हार्ट-अटैक' एवं ब्लडप्रेशर या पेप्टिक अल्सर (गैस्टिक)-जैसी बीमारियोंसे है। ब्लडप्रेशर कालान्तरमें फालिजका कारण बनता है। भय

एवं क्रोध पाचन-क्रियाको खराब करते हैं और संग्रहणीके जनक हैं। अशान्ति और व्याकुलता मधुमेहको बढ़ाती हैं और उसके कारण भी हो सकते हैं। तनाव, बेचैनी, अशान्ति, भय, उदासी और अनिद्रा तो सर्वमान्य मनके रोग हैं ही तथा इन्हें दूर करनेके लिये मनुष्य नशेका सहारा लेने लगता है एवं उसे उससे भी बड़ा रोग नशेका लग जाता है। नशेकी लत चाहे पानमें ज़रदेकी हो, चाहे पान-मसाले, गुटका, खैनी या गुलकी हो, चाहे सिगरेट, बीड़ीकी हो, चाहे भाँग, शराब या अफीमके सेवनकी हो सब तलबपर निर्भर है और तलब शरीरमें होनेवाली संवेदनापर निर्भर करती है। नयी पीढ़ीमें अब पेथेडीन, हिरोइन, मेंड्रेक्स, कोकीन आदि नशेकी लत पड़ती जा रही है। किसी-किसीका तो इनके बगैर जीना दूभर होता दिखायी देता है। तलब हुई कि नशेकी ओर बढ़े और डूबते ही गये। इतनी भिन्न दिखनेवाली सारी बीमारियोंकी जड़ मनके विकार हैं, जिन्हें निर्मूल करनेमें कोई आध्यात्मिक साधना ही मदद कर सकती है। 'विपश्यना' साधनासे हम विकारसे विमुक्त हो सकते हैं और अन्ततः रोगमुक्त भी। यही इसका वैज्ञानिक पहलू है। आधुनिक वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धतिका भी मानना है कि मानसिक विकारों—जिनमें तनाव, दब्बू व्यक्तित्व, दूसरेपर निर्भरता, हीनताकी भावना, अहंकार, क्षमतासे अधिक महत्त्वाकांक्षा, ईर्ष्या आदि प्रमुख हैं—से अनेक रोग हो सकते हैं, जिन्हें मनोजन्य शारीरिक (साइकोसोमैटिक) रोग कहा जाता है। इसमें प्रमुख हैं—

१-उदर-रोग—गैस, पेटमें जलन, अलसर आदि।

२-फेफड़ेके रोग—दमा।

३-हृदय-रोग—रक्तचाप, हार्ट-अटैक, एन्जाइना।

४-मस्तिष्क-रोग—सिरदर्द, अर्धकपारी, शरीरमें जगह-जगह दर्द।

५-चर्म-रोग—एक्ज़िमा, न्योरोडरपेटाइटिस, सोराइसिस आदि।

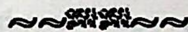
मनके विकार ही इन रोगोंके कारण हैं एवं वे ही इनका संवर्धन करते हैं। जब-जब इन रोगियोंके मन शान्त एवं विकाररहित होते हैं तो यह रोग घटने लगते हैं। मानसिक रोग जैसे—तनाव, उदासी, चिन्ता, अवसाद, अनिद्रा, हिस्टीरिया आदि तो मनके विकारोंसे उत्पन्न होनेवाले रोग ही हैं।

'विपश्यना' इन भिन्न दिखनेवाले रोगोंको मनमें निर्मलता लाकर ठीक करती है। 'विपश्यना' में पहले साँस और मन एकाग्र करना बताया जाता है। हम जानते हैं कि मन और साँसका गहरा सम्बन्ध है। भय, क्रोध आदि विकार जागनेपर साँस तेज चलने लगती है और इनके समाप्त होनेपर फिर अपनी सरल, साधारण धीमी गतिपर वापस आ जाती है। साँसमें जब मन केन्द्रित हो जाता है तो उसी क्षण मन विकाररहित होता है। शनैः-शनैः विकार-विहीन रहनेका समय बढ़ता जाता है और इसका प्रभाव सारे शरीरपर पड़ता है। देखा गया है कि हार्ट-अटैकके रोगी यदि साँसपर ध्यान केन्द्रित करें तो उनकी धमनियोंमें जमी चर्बी कम होने लगती है और अवरोध धीरे-धीरे समाप्त होने लगता है। कम दवाओंपर ही या वगैर ऑपरेशन कराये ऐसा रोगी बिना किसी तकलीफके रह सकता है। डॉक्टर डीन आर्निशने जो आजकल अमेरिकी राष्ट्रपतिके चिकित्सक हैं, इसपर काफी सफल आजमाइश की है और आज सारे संसारमें उनके नामसे हृदयरोगका प्रोग्राम चल रहा है। साँसको देखनेको (आनापानसति) उपचारसे जोड़नेसे उन्हें इतनी ख्याति मिली कि सारे संसारमें आज हार्ट-अटैककी चिकित्सामें 'डीन आर्निश प्रोग्राम' की चर्चा है।

साँसमें एकाग्रता हमारे बाह्यचित्त (Concious mind)-को शुद्ध करती है। इसके बावजूद विकारोंकी जड़ें नहीं निकल पातीं। इनकी जड़ें हमारे अन्तश्चित्त (Unconscious mind)-में हैं जो शरीरमें होनेवाली रासायनिक, विद्युतीय एवं चुम्बकीय क्रियाओंको बराबर जानती रहती हैं और अंधी प्रतिक्रिया करती हैं। समय और परिस्थितियाँ आनेपर विकार फिर सिर उठाने लगते हैं। यही हमारा स्वभाव होता है। यह अंधी प्रतिक्रया ही हमारे सारे विकारोंकी जड़ है। हम शरीरपर होनेवाली इन भिन्न जैव रासायनिक क्रियाओंको संवेदनाके माध्यमसे जानते हैं। संवेदना सदैव होती रहती है। जब भी चित्त एकाग्र होकर शरीरके किसी भागसे सम्पर्क करता है—अनुभव करता है तो संवेदनाएँ महसूस होने लगती हैं। यदि हम संवेदनाओंके प्रति सजग नहीं हैं तो अंधेरेमें ही हैं। सुखद संवेदना हो तो उसे कायम रखने अथवा बढ़ानेकी प्रतिक्रिया और यदि दुःखद संवेदना हो तो उसे तुरंत दूर करनेकी प्रतिक्रिया और यदि असुखद-अदुःखद संवेदना हो तो उससे ऊबकर उसे दूर करनेके

लिये द्वेषकी और किसी सुखद संवेदनाको प्राप्त करनेके लिये रागकी प्रतिक्रिया करते हैं। जब हम यह प्रज्ञा (बुद्धि)-पूर्वक जानने लगें, तो भोक्ता-भावकी जगह साक्षी-भाव जाग्रत् होगा। भोक्ता-भाव अपने-आप चला जायगा। यह देखा गया है कि जब साक्षी-भाव आ रहा है तो शरीरकी कोशिकाओंमें, आसवोंमें भी परिवर्तन होता है। इसी प्रक्रियासे विकारोंकी जड़ें निकलने लगती हैं और हमें मनोजन्य शारीरिक एवं मानसिक रोगोंसे छुटकारा मिलने लगता है। नशेके शिकार व्यक्तियोंमें देखा गया है कि वे नशेका सेवन इसलिये करते हैं कि शरीरमें एक प्रकारकी संवेदनाकी चाह होती है। यही 'तलब' या आवश्यकता कहलाती है। यह तलब नशेके प्रभावसे शरीरकी कोशिकाओंमें पैदा हुए द्रव्य रसायनसे होती है, जो संवेदनाके रूपमें शरीरपर प्रकट होती है। यदि 'तलब' को साक्षी-भावसे देखें और कोई प्रतिक्रिया न करें तो नशेकी आदत ही छूट जाती है। 'विपश्यना' का प्रयोग पश्चिमी आस्ट्रेलियामें क्रेयन हाउसमें नशेसे छुटकारेके लिये बड़ी सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इसके सारे सलाहकार वे भूतपूर्व नशेकी आदतवाले हैं जो विपश्यनाद्वारा नशेकी आदत छोड़ चुके हैं और अब ये नशा करनेवालोंके सम्मुख स्वयं आदर्श प्रस्तुत करते हुए उनकी आदत छुड़ानेमें उनकी मदद करते हैं।

'विपश्यना' द्वारा मन निर्मल और शान्त होता है तो मनमें सकारात्मक प्रतिक्रिया ही जागती है और ये प्रवृत्तियाँ असाध्य रोगोंके प्रति साक्षी-भाव जगाती हैं, जिससे रोगोंसे होनेवाली पीडा कम होती है। रोगोंको बर्दाश्त करनेकी क्षमता बढ़ती है और चेहरेपर शान्ति एवं मुस्कुराहट ही रहती है। रोगोंपर विजय तो इस साधनाका ब्याज ही है, असल तो भव-चक्रसे मुक्ति है। हम जिस किसी भी मानसिकतासे इसकी ओर बढ़ें, लाभ-ही-लाभ है।



विपश्यना-पद्धति

ध्यान चेतनाकी वह अवस्था है, जिसमें विचारोंका सामञ्जस्य स्थापित होकर समस्त अनुभूतियाँ एक ही अनुभूतिमें विलीन हो जाती हैं। ध्यानकी चरमावस्थामें सभी भेद समाप्त हो जाते हैं। संकुचित सीमित आत्मा परमात्मामें कुछ समयके लिये विलीन हो जाता है। ध्यानकी जितनी आवश्यकता आध्यात्मिक जीवनमें है उतनी ही लौकिक जीवनमें भी। शक्तिका प्रयोग अच्छी या बुरी किसी भी दिशामें किया जा सकता है। इसीलिये ध्यानको अध्यात्मके साथ जोड़ना अधिक सार्थक है।

यह मन विचारोंके विशद जालमें अनवरत उलझा रहता है। यहाँतक कि सोते समय स्वप्नमें भी मन विचारोंके जंजालमें भटकता रहता है। मनकी शक्ति निरर्थक विचारोंसे क्षीण होती है। अच्छे विचारोंसे मनकी शक्ति बढ़ती है तथा सुख और शान्तिकी अनुभूति बढ़ती है। आशा, निराशा, उत्तेजना, हर्ष-शोक, मोह, लोभ, राग-द्वेषके विचार सदैव चलते रहते हैं। मनकी ये सब वृत्तियाँ क्लेशकारक हैं। मनकी इन क्लेशकारक वृत्तियोंको ध्यानके द्वारा नियन्त्रित किया जा सकता है। ध्यानके अभ्याससे हम अपनी संकुचित परिधियोंसे ऊपर उठ सकते हैं, ध्यानके अभ्याससे मनकी दुर्बलता दूर हो जाती है। परमात्मशक्तिका ध्यान शक्तिके अनन्त स्रोतकी ओर तो अग्रसर करता ही है, प्रबल मानसिक एकाग्रता भी प्राप्त होती है जिससे अनेक कठिन कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं। मनके निरर्थक क्रियाकलापोंको नियन्त्रित करके नष्ट कर देना चाहिये। तामसिक, राजसिक वृत्तियोंका नियमन हो जानेपर सात्त्विक वृत्तियाँ दृढ़ होंगी। सभी व्यक्तियोंका मानसिक स्तर एक-सा नहीं होता। मानसिक स्तर तथा साधनामें लगनके अनुसार सफलता प्राप्त होती है।

ध्यानकी विविध पद्धतियोंमेंसे एक विपश्यना-पद्धति भी है। इसका मुख्य भाव है—सतत जागरूक रहकर मनकी गतिविधियोंका अवलोकन करना। अप्रमादसे अभ्यास करते रहनेपर धीरे-धीरे साधककी अन्तर्दृष्टि खुल जाती है। अपार शान्ति प्राप्त होती है। यह सद्यः फलदायक है। इसका अभ्यास करके निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है। मनकी शुद्धिके लिये, दुःखों—कष्टोंसे छुटकारा पानेके लिये, मनकी चञ्चलताका नियमन करके मोक्षप्राप्तिकी अनूठी पद्धति है—विपश्यना-भावनाका सतत अभ्यास।

ध्यानकी विधि

श्वास लेते समय उदरके उठने तथा गिरनेके रूपमें गति होती है। प्रारम्भमें इन गतियोंपर ध्यान देनेका अभ्यास करना चाहिये। अपना ध्यान श्वास-प्रश्वासपर ले जाय। श्वास लेनेसे

पेट ऊपरकी ओर उठता है और छोड़ते समय नीचे बैठता है। यदि आरम्भमें उठने और गिरनेकी प्रक्रियाका ठीक-ठीक यथावत् आभास न मिल सके तो पेटपर एक हाथ या दोनों हाथ रखनेसे यह क्रिया स्पष्ट हो जायगी कि श्वास लेनेसे पेट उठता है और श्वास छोड़ देनेसे पेट गिरता है। अब पेटके उठने और गिरनेपर ध्यानको केन्द्रित करे। साधकके लिये ध्यानमें स्मृति, समाधि और ज्ञानको उद्बुद्ध करनेके लिये यह अत्यन्त सरल और परम सहायक क्रिया है। जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जायगा, श्वास-प्रश्वासके आने-जाने अथवा पेटके उठने-गिरनेका अभ्यास सहज हो जायगा।

विपश्यनाका अभ्यास जैसे-जैसे बढ़ता जायगा वैसे-वैसे मनके प्रत्येक भावोंको आप ठीक-ठीक पकड़ सकेंगे। आरम्भमें जबकि स्मृति और समाधि अभी अपरिपक्व है, मनके प्रत्येक भाव तत्काल-ही-तत्काल पकड़ पाना कठिन प्रतीत होगा। आरम्भमें तो समझमें नहीं आयेगा कि इन्द्रियद्वारोंपर सजग और सावधान रहकर, अप्रमत्त रहकर भावोंको कैसे पकड़ा जाय, परंतु श्वास-प्रश्वासके आने-जानेकी क्रिया तो स्वयमेव निरन्तर चल ही रही है, उसे खोजनेके लिये कहीं बाहर भटकना नहीं है। अतएव सुस्थिर चित्तसे श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेकी प्रक्रियापर ध्यान रखे और खूब गहराईसे—ध्यानसे देखता रहे। हाँ, आने-जाने या उठने-गिरनेपर ध्यान तो रहे, परंतु इन शब्दोंको मुखसे उच्चारण करनेकी आवश्यकता नहीं है। श्वास-प्रश्वासकी या पेटके उठने और गिरनेकी क्रियाको अधिक जाग्रत् या बलवती बनानेके लिये जोर-जोरसे श्वास लेनेकी जरा भी आवश्यकता नहीं है। जोर-जोरसे जल्दी-जल्दी श्वास लेनेपर तुरन्त थकावट आ जायगी। इसलिये आवश्यक है कि साधक सहज रूपमें ही श्वास-प्रश्वासकी छन्दमय गति या पेटके उठने और गिरनेपर ध्यान रखे।

इस प्रकार जब श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर अपना ध्यान जमाये हुए हैं, यह सर्वथा स्वाभाविक ही है कि मन सङ्कल्प, संस्कार, इच्छाएँ, विचार, कल्पनाओंकी भीड़ लगा दे। इन मानसिक क्रियाओंकी अवहेलना नहीं की जा सकती। वे जैसे ही आयें तुरन्त उसी क्षण उन्हें अवलोकित कर लेना चाहिये, मन-ही-मन उन्हें देख लेना चाहिये। बस, देखनेमात्रसे वे ढह या गल जायँगी, बशर्ते कि उनमें उलझे नहीं। सतत जागरूकता और सावधानी ही इस साधनाका प्राण है। मनपर ज्यों ही ध्यान दिया जाता है, प्रायः यह लुप्त हो जाता है।

यदि आप भावनामें बैठे हुए हैं और श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान लगाये हुए हैं, उसी समय कोई 'कल्पना' आयी, तत्काल मन-ही-मन 'कल्पना आयी, कल्पना आयी' देखें, कोई 'विचार' आया तो मन-ही-मन 'विचार आया, विचार आया' ध्यान करें, यदि 'चिन्तन' आया तो मन-ही-मन ध्यान करें, 'चिन्तन आया, चिन्तन आया', कोई इच्छा जगी तो मन-ही-मन ध्यान करें, 'इच्छा जगी, इच्छा जगी', किसी प्रश्नकी गुत्थी समझमें आते ही 'समझमें आयी, समझमें आयी', मन-ही-मन अवलोकन करें, उनमें उलझें नहीं। मैं विचार कर रहा हूँ, मैं कल्पना कर रहा हूँ, मैं इच्छा कर रहा हूँ—ऐसा नहीं। उसमें अपने 'मैं' को मत सानिये। मेरी कल्पना, मेरा विचार, मेरी इच्छा, मेरी समझ—ऐसा भी नहीं। 'मैं' और 'मेरा' इस प्रक्रियामें उलझें नहीं, फँसे नहीं। तटस्थ होकर आनेवाले विचार, कल्पना, इच्छा, सङ्कल्पको देखते रहें और मन-ही-मन उनके आनेका ध्यान करते रहें। ध्यान करते ही वे या तो ढहकर या गलकर स्वयमेव गायब हो जायँगे और आप अपने साधन-पथपर निश्चिन्त निरापद बेखटके बढ़ते जायँगे। चिन्तनमें धैर्यकी बहुत आवश्यकता पड़ती है। यदि कोई धैर्यपूर्वक अनुभूतियोंको सहन नहीं कर सकता और बार-बार अपनी मुद्राको बदलता रहता है तो समाधि-प्राप्तिकी आशा नहीं की जा सकती।

चूँकि एक ही आसनसे देरतक ध्यानमें बैठना होता है, यह सम्भव है कि शरीरमें थकानका या अङ्गोंमें 'जकड़नका अनुभव हो। ऐसी अवस्थामें जहाँ थकानका बोध हो रहा है वहाँ ध्यान ले जाकर 'थका, थका' या जकड़न, जकड़न' का ध्यान करे—स्वाभाविक रूपमें न तो बहुत धीरे-धीरे, न झटकेमें। ऐसा करते ही थकान या जकड़नका भाव स्वयं ही धीरे-धीरे गायब हो जायगा। ऐसा भी हो सकता है कि वह थकान या जकड़न बढ़ जाय। ऐसी अवस्थामें साधक चाहने लगता है कि आसन बदल दिया जाय और तब उसे मन-ही-मन अवलोकन करना चाहिये 'चाह रहा हूँ, चाह रहा हूँ' और तब अपना आसन धीरे-धीरे साथ ही प्रत्येक स्थितिका क्रमशः अवलोकन करते हुए शनैः-शनैः बदलना चाहिये। धीरे-धीरे प्रत्येक स्थितिकी बारीक-से-बारीक बातका अवलोकन करना चाहिये। जब अपना आसन बदलकर सुस्थिर बैठना हो तो पुनः श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान जमा दें। यदि शरीरमें कहीं गर्मीका बोध हो रहा हो तो उस स्थानपर 'गरम, गरम' का ध्यान करते ही गर्मी समाप्त

हो जायगी। यदि शरीरके किसी भागमें खुजली उठ रही है तो उस स्थानविशेषपर मनको टिकाकर 'खुजला रहा हूँ, खुजला रहा हूँ' का ध्यान करे, न तो बहुत धीरे-धीरे, न बहुत जल्दी-जल्दी। यदि वैसा करते खुजली अपने-आप मिट जाय तो पुनः श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर अपना ध्यान टिका दें। यदि ऐसा अनुभव हो कि खुजली जा नहीं रही है बल्कि बढ़ती ही जा रही है और असह्य हो रही है तथा वह उसे खुजलाना ही चाहता है तो उसे अपनी इस इच्छाका अवलोकन करे—'चाहता हूँ, चाहता हूँ' और बहुत धीरे-धीरे अपना हाथ उठाकर उस स्थानको खुजला ले। परंतु प्रत्येक स्थितिका सावधानीके साथ ध्यान करते हुए ही हाथ हटा लें। फिर श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान केन्द्रित कर लें।

भावनाके समय यदि शरीरके किसी भागमें दर्दका अनुभव हो रहा हो तो मनको उस स्थानविशेषमें टिकाकर 'दर्द हो रहा है, दर्द हो रहा है, 'पीडा हो रही है, पीडा हो रही है', 'कष्ट हो रहा है, कष्ट हो रहा है', का अवलोकन करे। इसी प्रकार यदि थकानका अनुभव हो रहा है तो 'थका, थका' सिरमें चक्कर आ रहा है तो 'चक्कर आ रहा है, चक्कर आ रहा है।' ऐसा करते ही यह प्रतीत होगा कि दर्द, पीडा या थकान अथवा सिरका चक्कर सब गायब हो गया। ऐसा भी हो सकता है कि दर्द बढ़ जाय तो धैर्यके साथ उसे अवलोकन करते रहें, घबराये नहीं। यदि थोड़ी देर अपनी भावनाको बनाये रहें तो दर्द अवश्य मिट जायगा। परंतु फिर भी यदि दर्द नहीं जा रहा है और असह्य हो रहा है तो वहाँसे ध्यान हटाकर श्वास-प्रश्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर जमा दे।

कभी-कभी समाधिमें थोड़ी प्रगति होनेके बाद यह अनुभव होता है कि असह्य पीडा होने लगी है या ऐसा लगता है जैसे दम घुट रहा हो, या कोई छूरी चुभो रहा है या सूई चुभो रहा है या शरीरपर छोटे-छोटे कई कीड़े घूम रहे हैं। कभी-कभी जोरकी खुजलाहट होगी, घोर सर्दी या भयंकर गर्मीका बोध होगा। जैसे ही अपना ध्यान-बंद कर दें, ये अनुभव भी अपने-आप ही समाप्त हो जायँगे। परंतु फिर जैसे ही ध्यान करनेपर ऐसे बोध फिर आ जुटेंगे। सच तो यह है कि ये कष्ट-बोध न तो कुछ महत्त्वपूर्ण होते हैं और न कोई बीमारी ही है। ये तो शरीरमें पहलेसे ही विद्यमान रहते हैं। चूँकि हम कई और भी महत्त्वपूर्ण कार्योंमें संलग्न होते हैं, ये छोटे-छोटे दोष छिपे पड़े रहते हैं। ध्यानके समय ये जाग उठते हैं; क्योंकि मनकी शक्ति प्रबल हो जाती है। यदि अपने ध्यानमें संलग्न रहें तो साधक निश्चय ही इन अप्रिय बोधोंपर विजयी होगा और तब फिर ये अपना प्रभाव नहीं डाल पायँगे।

ध्यान जैसे-जैसे प्रगाढ़ होता जायगा तो कभी-कभी गुदगुदीका अनुभव होगा या रीढ़के भीतरसे अथवा सारे शरीरमें एक शीतल धाराके प्रवाहका अनुभव करेगा। यह और कुछ नहीं प्रप्रीतिका प्रवाह है, जो ध्यानकी सफल प्रगतिमें होता ही है। ध्यानमें बैठनेपर हल्की आवाजसे भी चमत्कृत हो जायगा। इसका कारण यह है कि अब स्पर्शानुभूतिका विशेष अनुभव होगा। यदि ध्यानमें शरीरकी स्थिति बदलनेकी इच्छा हो तो बदलनेकी प्रत्येक अवस्थाको मन-ही-मन देखते जायँ और धीरे-धीरे सारी प्रक्रियाके एक-एक गतिविधिका अवलोकन करता हुआ शरीरके अङ्गोंको सुविधानुसार यथारुचि बदल ले। यह बहुत ही धीरे-धीरे होना चाहिये ताकि ध्यानमें उस कारण किसी प्रकारका विघ्न या विक्षेप न आये।

यदि नींद आने लगे तो 'नींद आ रही है, नींद आ रही है'। यदि आँखें झँपकने लगे तो 'झँपक रही हैं, झँपक रही है', ध्यान करे। अपने ध्यानमें एकाग्रता सिद्ध कर लेनेपर महसूस होगा कि नींद या आँखें झँपकनेकी स्थितिका ध्यान करते ही नींद या झँपकी अपने-आप समाप्त हो जायगी और तुरंत एक विचित्र ताजगीका अनुभव होगा। फिर तुरंत श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर अपना ध्यान केन्द्रित कर लें। यदि नींद या झँपकीपर विजय नहीं प्राप्त हो पाये तो भी उसे अपने ध्यानको चालू रखना चाहिये, जबतक कि नींद न आ जाय।

नींदमें किसी प्रकारका चिन्तन या ध्यान सम्भव नहीं है। जागते ही जागनेके प्रथम क्षणसे स्मृतिका अभ्यास शुरू कर दे—'जाग रहा हूँ, जाग रहा हूँ'। आरम्भमें स्मृतिका अभ्यास करना कठिन होगा—जिस क्षण उसे याद आ जाय तभीसे शुरू कर दे। उदाहरणके लिये जिस क्षण चिन्तनका ध्यान आये, 'चिन्तन कर रहा हूँ, चिन्तन कर रहा हूँ' और फिर वह श्वास आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान टिका दे। आरम्भमें कई बातें छूट जायँगी, परंतु इससे विचलित नहीं होना चाहिये। अपने उद्देश्यकी सिद्धिमें, अभ्यासमें पूर्णतः तत्पर रहना चाहिये। जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जायगा, छूट कम होती जायगी और आगे

बढ़नेपर अधिक विस्तारमें ध्यान करते रहें।

एक व्यक्ति ज्यों ही कोई ध्वनि सुनता है तो मुड़कर उस दिशामें देखता है जहाँसे ध्वनि आ रही है। यह धीर व्यक्तिके समान व्यवहार नहीं है। एक बहरा व्यक्ति शान्त ढंगसे व्यवहार करता है। वह किसी बातचीतपर ध्यान नहीं देता; क्योंकि वह उन्हें सुनता नहीं। इसी तरह किसी भी अनावश्यक बातचीतपर ध्यान नहीं देना चाहिये, न तो किसी बातचीतको जानबूझकर मन लगाकर सुनना चाहिये। यह ध्यान रखना चाहिये कि एकाग्रचित्त होकर चिन्तन करना ही एकमात्र कर्तव्य है। देखी-सुनी जानेवाली दूसरी वस्तुओंसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। उनपर ध्यान नहीं देना चाहिये। जब कोई दृश्य दीख जाय तो उसे तुच्छ समझकर टाल जाना चाहिये।

ध्यानमें प्रगति

एक दिन और एक रात इस अभ्यासको कर लेनेके अनन्तर यह अनुभव होगा कि ध्यान विशेष प्रगाढ़ और सघन होता जा रहा है तथा श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान आसानीसे केन्द्रित रह सकता है। यदि बैठनेकी स्थितिमें है तो पेटके उठने-गिरने और अपने बैठनेका भी मन-ही-मन ध्यान करते रहें—उठा, गिरा, बैठा, उठा, गिरा, बैठा। यदि वह लेटे हुए है तो मन-ही-मन ध्यान करे—उठा, गिरा, सोया, उठा, गिरा, सोया। यदि वह इन तीन बिन्दुओंपर एक साथ मनको एकाग्र करनेमें कठिनाईका अनुभव करे तो श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ही ध्यान टिकाये।

जब अपने शरीरकी किसी क्रियापर ध्यान लगाये हुए हैं तो सुनने या देखनेकी क्रियामें संलग्न नहीं होना है। श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर जब ध्यान है और उसी समय कहीं कोई दृश्य देखनेकी ओर दृष्टि चली गयी तो तुरंत ध्यान करना चाहिये 'देख रहा हूँ, देख रहा हूँ' और फिर उसे श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान टिका देना चाहिये। यदि कोई व्यक्ति दृष्टिपथमें आ जाय तो 'देख रहा हूँ, देख रहा हूँ', का दो-तीन बार ध्यान कर ले, फिर श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान टिका ले। यदि कोई ध्वनि या शब्द सुनायी दे तो 'सुन रहा हूँ, सुन रहा हूँ', का दो-तीन बार ध्यान कर ले और तब श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान टिका ले। यदि जोरकी ध्वनि जैसे—कुत्तेके भौंकने, जोर-जोरसे बोलने, जोर-जोरसे गानेकी ध्वनि सुनता है तो 'सुन रहा हूँ, सुन रहा हूँ', दो या तीन बार ध्यान कर ले और तब अपने ध्यानको श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर जमा ले। यदि उन शब्दोंको सुननेमें लग जायँगे तो सम्भव है कि उन-उन वस्तुओंमें उलझ जायँ और तब फिर श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान न जम सके। इसी प्रकार मनको क्षुब्ध करनेवाले विकार जन्मते और बढ़ते हैं। यदि ऐसे विचार आवें तो तुरंत दो-तीन बार ध्यान करे—विचार कर रहा हूँ, विचार कर रहा हूँ और फिर श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान टिकाये।

इस प्रशिक्षणमें कुछ समय लगा चुकनेपर मनमें ऐसा भाव उठ सकता है कि यथेष्ट उन्नति नहीं हो रही है और सुस्तीका भाव आ सकता है। ऐसे समय 'सुस्ती, सुस्ती' की भावना करे। इतना ही नहीं, स्मृति, समाधि और ज्ञानमें पर्याप्त उन्नति उपलब्ध करनेके पूर्व मनमें इस ध्यानप्रक्रियाकी सच्चाईके बारेमें भी संदेह उठ सकता है। ऐसी स्थितिमें मन-ही-मन भावना करें—'संदेहमय, संदेहमय', कभी-कभी उत्तम परिणामकी आशा-अपेक्षा भी होगी। ऐसे समय 'आशा कर रहा हूँ, आशा कर रहा हूँ' की भावना करे। कभी-कभी साधनाकी सफलतापर हर्ष और प्रसन्नताका अनुभव होगा, ऐसे अवसरपर 'प्रसन्न, प्रसन्न' की भावना करें। अपने मनकी प्रत्येक अवस्थाको सावधानीके साथ देखते रहें और एक-एकका ध्यान करते रहें। फिर श्वासके आने-जाने या पेटके उठने-गिरनेपर ध्यान टिका लें। प्रातः जागनेसे रातके सोनेके समयतक साधनाका समय है। इस प्रकार जबतक जागता रहे पूर्णतः सावधान और प्रमादरहित रहे। इसमें किसी प्रकारकी शिथिलता न आने पाये। साधनाके परिपक्व हो जानेपर स्वयं अनुभव होगा कि उसे अब नींदकी जरूरत नहीं है और रात-दिन लगातार साधना चलती रहेगी, अविच्छिन्न और अखण्डभावसे।

इस प्रकार रातों-दिन साधनामें लगा रहे तो ध्यान इतना जाग्रत्, प्रखर और प्रगाढ़ हो जायगा कि विपश्यना ज्ञानकी परम और चरम अवस्थाकी भी उपलब्धि हो जायगी। —श्रीअक्षयबरजी पाण्डेय

संधिवात—कारण और निवारण

(वैद्य पं० श्रीलक्ष्मीनारायणजी पारिक)

यद्यपि संधिवात एक सामान्य व्याधि समझी जाती है, परंतु इस व्याधिसे पीडित व्यक्ति ही जान सकता है कि यह व्याधि कितनी कष्टदायक है। इसके 'निदान' आदिके विषयमें संक्षिप्त विचार किया जाता है—

संधिवातके निदान—आयुर्वेदने संधिवातको वातव्याधिमें परिगणित किया है। संधिवातमें वायुका प्रकोप विशेष रूपसे होता है। प्रायः आहार-विहारके अनुचित सेवनसे यह रोग होता है। ठंडे, बासी पदार्थका अधिक सेवन, घी-तेल आदि स्निग्ध खाद्य पदार्थोंका अल्प-सेवन, रूक्ष और लघु आहारका अधिक प्रयोग, लगातार लंघन (उपवास) करना, पञ्चकर्मका अनुचित प्रयोग, अधिक रात्रि-जागरण, अति मैथुन, अधिक कूदना तथा तैरना, चलना, व्यायाम आदि चेष्टाएँ उचितरूपसे न करना, चोट लगना इत्यादि संधिवातके कारण बनते हैं। साथ ही मल-मूत्रादि तथा अधारणीय वेगोंका धारण करना, दिवास्वप्न, चिन्ता, शोक, रस-रक्त आदि धातुका क्षय होना आदि संधिवात रोगके मुख्य कारण हैं। इस रोगका सम्बन्ध उपदंश और सुजाक आदिसे भी है।

संधिवातकी सम्प्राप्ति—(१) आयुर्वेदमें बताया गया है कि अनुचित आहार-विहार आदि उपर्युक्त कारणोंसे वायु प्रकुपित होकर शरीरकी सभी संधियोंमें पहुँच कर वहाँके श्लेषक कफकी मात्राको घटा देती है, जिससे संधिवात-व्याधिके लक्षण मिलते हैं।

(२) आधुनिक विज्ञान (Modern Science)-में संधिवातकी विकृति-सम्प्राप्ति (Pathogenesis) इस प्रकार है—

संधियोंमें सायजोवियम नामक स्तरकला होती है, जो एक द्रवका स्राव करती है। यह स्राव संधियोंका स्नेहन करती है। किसी आघात, संक्रमण, प्रतिक्रिया आदिसे उत्तेजित होकर प्रतिक्रियामें सायजोवियम द्रव्य अतिरिक्त द्रवका उत्पादन करता है जो कि शोथकी ओर अग्रसर होता है। कभी-कभी विषाणु या जीवाणु भी संधियोंको प्रभावित करते हैं।

संधिवातके लक्षण—संधिवातसे पीडित आतुर शरीरकी संधियोंको स्पर्श करनेसे और आकुंचन तथा प्रसारण करानेसे वायुकी आवाज आती है। इसमें संधिशोथका लक्षण पाया जाता है। इस संधिशूलमें चलनेमें कठिनाई तथा अल्पकर्मण्यता, आकुंचन तथा प्रसारण-कर्मके करनेमें वेदना आदि होनेके लक्षण मिल सकते हैं।

संधिवातके रोगीको सर्वप्रथम जुलाब देकर उसकी कोष्ठ-शुद्धि कर देनी चाहिये।

जुलाबके घटक द्रव्य—१५ ग्राम सोंठ तथा जौकुटी बारह घंटे मिट्टीके कुंडेमें २५० ग्राम पानीमें भिगायी हुई बराबर दूधके साथ (समभाग) मिलाकर उबाले। इसमें गुलाबके फूल ३-४ और सनायकी ५-१० पत्ती उबालकर शेष दूधमात्र रहनेसे कपड़ेसे छानकर रख ले तथा ३० से ४० ग्राम एरंडका तेल और शक्कर मिलाकर गुनगुना पिला दे।

इस जुलाबसे कोष्ठकी शुद्धि एवं आँवकी शुद्धि हो जाती है। इसके उपरान्त भी विबन्ध रहे तो निम्नलिखित घटक दे—

हरड़ तत्त्वक २० ग्राम, सनाय-पत्ती २० ग्राम, रेवंद चीनी ५ ग्राम, सोंठ १० ग्राम, काली मिर्च ५ ग्राम, सौवर्चल ५ ग्राम और सेंधा नमक १० ग्राम। इन सबको कूट-पीसकर चूर्ण बना ले। रात्रिमें सोते समय ३ से ५ ग्राम उष्णोदक (गरम पानी)-से ले। रोगीको क़ब्ज़ कतई न रहने दे।

उपदंश एवं फिरंगजनित संधिवातके रोगियोंके लिये

व्याधिहरण—१ रत्ती, अश्वगन्धा नागोरी—१$\frac{१}{२}$ ग्राम, चोप चिन्यादि चूर्ण १$\frac{१}{२}$ ग्राम, शुद्ध कुचला $\frac{१}{२}$ रत्ती।

ऐसी एक मात्रा प्रातः-सायं (दो मात्राएँ) शहदके साथ चटायें एवं ऊपरसे २५० ग्राम गरम दूधमें १५ ग्राम ब्राह्मी-घृत मिलाकर पिलाये।

भोजन करनेके बाद दोनों समय महारास्नादि काढ़ा

१५ मि०ली०, दशमूल—१५ मि०ली० एवं बालारिष्ट १५ मि०ली० और कटेली-पञ्चाङ्ग-अर्क १५ मि०ली०/६० मि०ली० पानीके साथ और १ ग्राम त्रियोदशांश गुग्गुल मिलाकर पिलाये।

संधियोंपर सूजन तथा ललाई अधिक रहनेपर निम्न लेप करे—

शतपुष्पादि लेप—सुवादाना, देवदारु, अर्कदुग्ध, कूठ, हींग और सेंधा नमक समभाग लेकर चूर्ण बनाकर जलमें घोलकर लेप करनेसे संधिवातजन्य शोथ तीन दिनमें घटकर लाभ मिलने लगता है।

अथवा

काली मिट्टी (कुम्हारके घड़ा बनानेकी चिकनी मिट्टी)-२०० ग्राम, पुराना गुड़-५० ग्राम, मेथीदाना-५० ग्राम, आम्बा हल्दी-५० ग्राम—अच्छी तरहसे भिगोकर, पीसकर, मसलकर, हल्के हाथ धीरे-धीरे लेप करे। थोड़ा लेप सूखनेपर गर्म और ठंडी पट्टीका सेंक करे। बृहत् सैन्धवादि तेलकी मालिश करे।

द्वितीय योग—(१) शुद्ध कुचला—२ तोला (२० ग्राम), (२) जायफल—३ तोला (३० ग्राम), (३) काली मिर्च—३ तोला (३० ग्राम), आँवला—१ तोला, हरड़—१ तोला, बहेड़ा १ तोला—इन सबको अच्छी तरहसे बारीक कूट-पीसकर घृतकुमारीके रसमें ३ दिनतक घोंटकर १-१ रत्तीकी गोली बना ले। सुबह-शाम १-३ गोलीतक सुषम (शीत-गरम) जलसे दे।

चोपचीनी पाक—१-२ तोला प्रातः-सायं दूधके साथ सेवन करना चाहिये।

भोजन करनेके बाद महारास्नादि १० ग्राम, बलारिष्ट १०, दशमूल-काढ़ा १० ग्राम—तीनों ३० ग्राम और ३० ग्राम उष्ण (गरम) जल मिलाकर कटेली-अर्क (पञ्चाङ्ग) २० ग्राम मिलाकर एक-एक ग्राम त्रियोदशा प्रयोगके साथ दे।

शतपुष्पादि-लेप (बृहद्-निघण्टुरत्नाकर)—सुवादाना, देवदारु, अर्कदुग्ध, कूठ, हींग और सेंधा नमक समभाग लेकर चूर्ण बनाकर जलमें घोंटकर लेप करनेसे संधिवातजन्य शोथ तीन दिनमें घटकर लाभ मिलने लगता है और साथमें बृहत् सैन्धवादि तेलकी अच्छी तरहसे मालिश करे। यह प्रयोग अति सरल एवं सुलभ है।

सन्धिवातारिगुटिका—हीरा बोल, शुद्ध हिंगुल और शुद्ध गुग्गुल तथा इसमें अश्वगन्ध-सत्त्व और महारास्नादि-सत् समभाग लेकर दूधमें घोटकर ५० मिग्रा० की गोली बनाकर २-२ गोली दिनमें तीन बार गर्म जलके साथ सेवन करनेसे संधिवातमें लाभ होता है।

उच्च रक्तचाप (हाई ब्लडप्रेशर)-का आयुर्वेदिक उपचार

(स्व० कविराज वैद्य श्रीगोपीनाथजी व्यास)

आयुर्वेद-चिकित्सा-प्रणालीमें 'उच्च रक्तचाप' नामका कोई रोग नहीं है—यह मानना सर्वथा भूल है। इसका वर्णन आयुर्वेदशास्त्रोंमें वातरोगोंके अन्तर्गत आता है। इसका आयुर्वेदिक नाम 'शिरागत वात' है। रक्तवाहिनियों तथा धमनियोंपर रक्तका अधिक दबाव पड़ना और उनका कठोर हो जाना ही 'शिरागत वात' है। शिरा और कोशिकाओंकी दीवारोंपर भी रक्तके अधिक दबावके कारण उच्च रक्तचाप होता है। यह दो प्रकारका होता है—

१. उच्च रक्तचाप या शिरागत वात।

२. न्यून रक्तचाप (लो ब्लडप्रेशर)।

यहाँपर केवल 'उच्च रक्तचाप' पर ही विचार किया जा रहा है।

सम्प्राप्ति—मनुष्यका हृदय लगभग सात तोला रक्त एक बारके संकोचनके समय धमनीमें फेंकता है। इससे पहले भी धमनीमें रक्त पूर्णरूपसे भरा रहता है। धमनीमें अतिरिक्त रक्तके फेंके जानेसे धमनियोंमें दबाव पड़ता है और उनकी दीवारें फैल जाती हैं। यह धमनियोंकी संकुचनशीलताके कारण सम्भव हो सकता है। इस ओर विशेष ध्यान केवल आयुर्वेदमें ही दिया गया है।

दूसरा परिणाम रक्तके कारण धमनियोंमें एक लहर पैदा होती है, जो प्रारम्भमें प्रबल होती है और धीरे-धीरे कोशिकाओंमें पहुँचनेसे पहले अदृश्य हो जाती है। धमनी

जितनी कठोर होगी, लहर उतनी ही तीव्र गतिसे चलेगी। जितनी संकुचनशीलता होगी, उतनी ही धीमी गतिसे चलेगी।

उच्च रक्तचापके लक्षण

१. रोगीके सिरमें, विशेषकर सिरके पीछेकी ओर कनपटियों अर्थात् कानके पीछेके भागमें दर्द होता है। यह सिरदर्द कभी कम अथवा कभी अधिक होता है।

२. रोगीको सुबह और शामको चक्कर आने लगता है।

३. हृदयकी गति (चाल) अधिक हो जाती है। हृदयप्रदेशपर दर्द भी महसूस होता है। यह कभी भी हो सकता है।

४. रोगीका कार्य करनेमें मन नहीं लगता है। वह स्वभावसे चिड़चिड़ा हो जाता है। थोड़ा-सा कार्य करनेपर भी उसे थकान आ जाती है।

५. रोगीकी स्मरणशक्ति धीरे-धीरे कम होने लगती है।

६. रोगीको निद्रा कम आती है और आती भी है तो टूट-टूट कर आती है।

७. मन्दाग्नि हो जाती है अर्थात् भूख कम लगने लगती है और खानेमें अरुचि होने लगती है।

८. पेशाबकी मात्रा कम होने लगती है। जाँच करवानेपर पता चलता है कि पेशाबमें शक्कर अलब्यूमन अथवा चुरिक एसिड बढ़ गया है।

९. उच्च रक्तचाप होनेपर नाक और शरीरके अन्य अङ्गोंसे 'रक्तस्राव' होने लगता है।

१०. मल आदिका अनियमित त्याग और उसमें बदबू अधिक आती है।

आयुर्वेदकी दृष्टिसे उच्च रक्तचापके कारण

१. इसका मूल कारण शरीरमें 'वात' की अधिकता है। इससे धमनियाँ कठोर हो जाती हैं।

२. यह मनुष्यके अनियमित दिनचर्याके कारण हो सकता है। जैसे—समयपर न उठना, समयपर मल-त्याग न करना, व्यायाम न करना, शाकाहारी भोजन न करना, समयपर विश्राम न करना, अनावश्यक परिश्रम करना और समयपर न सोना।

३. स्त्रियोंमें मासिक धर्म बंद होनेके समय अनियमितताका होना।

४. अधिक शोक, मानसिक क्षोभ, चिन्ता एवं क्रोध होनेसे भी रक्तचाप बढ़ सकता है।

उच्च रक्तचाप रोगका निर्णय

आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धतिके अनुसार इस रोगविज्ञान-हेतु शक्षिणी नाडीके विषयमें विशेष ज्ञान होना अनिवार्य है। इसमें निम्नलिखित तीन बातोंका समावेश है—

१. नाडी-स्पन्दनकी संख्याका माप।

२. स्पन्दनकी तालबद्धताका ज्ञान।

३. नाडीकी संकोचनक्षमता।

आज तो प्रायः अधिकांश परिवारोंमें स्त्री एवं पुरुषोंमें उच्च रक्तचाप-रोग देखा जाता है। यदि यह शरीरमें एक बार प्रवेश कर जाता है तो इससे स्थायी रूपसे पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है। इसलिये एलोपैथी चिकित्सा-पद्धतिमें यह असाध्य रोगोंकी श्रेणीमें आता है और इसका इलाज रक्तचाप बढ़ जानेपर केवल लक्षणोंको दूर करनेकी ओर ही होता है, जैसे अनिद्राको दूर करना आदि।

इसके मूल कारण (१) धमनियोंकी कठोरताको दूर करना और उनमें पुनः संकुचनशीलता लाना (२) हृदयकी गति एवं स्पन्दनकी तालमें एक-बद्धता लाना—यह केवल आयुर्वेदद्वारा ही सम्भव हो पाया है।

इसके विकारोंका उल्लेख महर्षि चरकने सूत्रस्थान अध्याय २० में ८० प्रकारका किया है। (अशीतिर्वातविकाराः २०।१०) इनमेंसे कुछ एलोपैथिक 'हाई ब्लडप्रेशर' के लक्षणोंके समान है। जैसे हृदयकी धड़कन, दाँतोंका टूटना, कर्णनाद, कनपटीमें भेदनके समान पीडा, अल्पश्रममें थकान आ जाना, कम्पन, नींदका न आना आदि।

यदि आयुर्वेदिक स्वस्थवृत्तका अनुपालन हो तो रोगीको अधिक लाभ औषधिके बिना ही हो सकता है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा

आयुर्वेद-चिकित्साके अनुसार 'वात', 'कफ' और 'पित्त' का सम होना ही स्वस्थ शरीरका लक्षण बताया गया है। सदा स्वस्थ एवं नीरोग रहनेके लिये आयुर्वेदिक 'स्वस्थवृत्त' के निम्न नियमोंका पालन करना आवश्यक है—

१. कायिक, वाचिक एवं मानसिक रूपसे ब्रह्मचर्यका पालन करे।

२. शारीरिक और मानसिक कार्य उतना ही करे, जिससे अधिक श्रम न पड़े।

३. नित्य प्रातः वन अथवा घने पेड़ोंवाले स्थानपर घूमने जाय। जहाँ प्रकाश एवं स्वच्छ हवाका अच्छा प्रबन्ध हो, ऐसे स्थानोंका सेवन करे।

४. नित्य तिलके तेलका अभ्यङ्ग करके कुनकुने पानीसे स्नान करे।

५. रात्रिमें सूर्यास्तसे पहले भोजन करे और निश्चित समयपर सोये।

६. सत्साहित्य पढ़ने-लिखनेकी थोड़ी-थोड़ी आदत अवश्य रखनी चाहिये। मस्तिष्कको थकान न आये, ऐसा मानसिक कार्य करे।

७. प्रातः शौचशुद्धि हो जानेकी ओर विशेष ध्यान रखे।

जड़ी-बूटियों अथवा अन्य आयुर्वेदिक क्रियाओंद्वारा निर्मित औषधियोंका प्रयोग

१. धमनियोंकी कठोरता दूर करनेके लिये सर्वप्रथम वैद्य इस रोगमें वनस्पति 'सर्पगन्धा' अर्थात् 'सरपिना' गोलियों या इसके अन्य कम्पाउण्डोंका उपयोग करते हैं।

सरपिना उष्ण प्रकृति होनेसे पित्त प्रकृतिवाले व्यक्ति जो उच्च रक्तचापके रोगी होते हैं, इसका प्रयोग करनेपर तुरंत घबराहट तथा बेचैनीका अनुभव करते हैं और इस प्रकारकी औषधिका पुनः सेवन करनेसे इन्कार करते हैं।

महर्षि चरकने संकुचनशीलता पैदा करनेके लिये 'चरकजा'का उपदेश दिया है। उन्होंने बताया है कि सूखी हुई लकड़ी भी जब 'स्नेहन' और 'स्वेदन' द्वारा मनके अनुसार मोड़ी जा सकती है तो फिर जीवित मनुष्यको तो 'स्नेहन' और 'स्वेदन' द्वारा इच्छानुसार परिवर्तित क्यों नहीं किया जा सकता है। इससे रोगीको स्थायी लाभ अवश्य मिलता है।

प्रथम रोगीको बाह्य एवं आभ्यन्तर 'स्नेहन' कराये। 'स्नेहन' के लिये 'सुरेन्द्र-तेल', 'बला-तेल' का उपयोग करे। यदि उक्त तेलका आभ्यन्तर उपयोग न किया जा सके तो 'बादामका तेल' दूधमें मिलाकर दे। पित्तका अनुबन्ध होनेपर शास्त्रानुसार घृतका उपयोग कराये।

'स्नेहन' के पश्चात् रोगीको 'स्वेदन' कराना चाहिये। शिराओंकी कठोरता दूर करनेके लिये 'मृदु स्वेदन' जरूर देना चाहिये। इसके लिये गरम जलका 'नाडी स्वेदन' अथवा अवगाहन स्वेद देनेसे ही काम चल जायगा।

उच्च रक्तचापकी औषधि

१. **बृहद् वातचिन्तामणि रस**—इसमें मिलाये हुए द्रव्योंमें—

(क) 'स्वर्णभस्म'— यह मधुर, स्निग्ध और बृहद् गुणयुक्त होनेसे वातका शमन और रक्तप्रसादन कर सेन्द्रिय विषका शमन करता है। स्निग्ध और शीतल गुणसे जीव रक्तवाहिनी शिराओंकी कठोरता कम करता है। रसायन होनेसे वृद्धावस्थाकी वातबाहुल्यको नियमित करता है।

(ख) रौप्य भस्म—(चाँदीकी भस्म) यह अम्लरस, शीतल, स्निग्ध और मधुर विपाकवाला होनेसे शिराओंके कोनेके कफ-अंशको बढ़ायेगा, इससे कठोरता कम होगी। यह शरीरके सेन्द्रिय विषको निकालकर आकुञ्चन, प्रसादन आदि गुणोंकी वृद्धि करेगा। शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंके रोगोंकी दुर्बलता दूर होगी और हृदय शक्तिशाली बनेगा।

(ग) लौहभस्म—यह हृदय-व्यथाजन्य रोग नष्ट करता है। लौहभस्मके सेवनसे शरीर शुद्ध होकर रक्ताणु बलवान् बनते हैं। रसायन होनेसे यह वृद्धावस्थाजन्य प्रवृद्ध वातका नियमन करता है। यह व्याधिको दूर करके शरीरको नीरोग बनाता है।

(घ) अभ्रक भस्म—यह स्निग्ध तथा शीतल होनेसे वायुका शमन करता है। मधुर-रसात्मक होनेसे वातका शमन करता है तथा जीवरक्तवाहिनी शिराओंमें मृदुता लाता है।

(ङ) रससिन्दूर—यह हृदयके लिये पौष्टिक, वातनाशक और विषनाशक होनेसे उच्च रक्तचापमें हितकर है।

(च) घी-क्वार—उदरस्थ अङ्गोंको व्यवस्थित कर दूषित अंशको शरीरसे बाहर करनेके कारण पक्वाशयको स्वस्थ बनाता है।

इस प्रकार 'बृहद् वातचिन्तामणि रस' उच्च रक्तचाप-रोगमें एक उपयुक्त औषधि है।

२. **योगेन्द्र रस**—योगेन्द्र रसमें स्वर्णका प्रमाण अपेक्षा या अधिक होनेसे सेन्द्रिय विषका नाश कर रक्तका प्रसादन करता है। रक्तका बलकारक होनेसे हृदयकी संकोचन एवं

प्रसारण-प्रक्रियाकों नियमित करता है। जिससे रक्तचापकी वृद्धि कम हो जाती है। यह अप्रत्यक्षरूपसे पाचनसंस्थान और मूत्रसंस्थानपर भी अपना असर करता है। इस रसायनके सेवनसे 'अजीर्ण वातविकार', 'निद्रानाश' आदि रोग भी दूर हो जाते हैं।

३. भृङ्गराजासव—इसमें पहला मूल द्रव्य भृङ्गराज है दूसरा द्रव्य हरड़ है, जो अधिक मात्रामें है। हरड़की वजहसे प्रथम प्रत्यक्ष क्रिया पक्काशयपर होती है। यह पक्काशयको धीरे-धीरे स्वच्छ करके बद्धकोष्ठताको दूर करता है। इससे वातदोषका निर्माण कम होता है, जो कि रक्तचापकी वृद्धिका मूल है। अतः अप्रत्यक्षरूपसे यह रक्तचांपवृद्धिके लिये उपयोगी है।

अर्जुन-त्वक्—यह रक्तशोधक और विषनाशक होनेसे सेन्द्रिय विषको दूरकर रक्तको शुद्ध करता है। रक्तचापवृद्धिकी प्रारम्भिक अवस्थामें श्वास, दाह, तृष्णा आदि लक्षण हों, तब इसका प्रयोग करना चाहिये।

चन्द्रभागा—(सर्पगन्धा) यह वात और कफको दूर करती है। उष्ण होनेसे वायुका अनुलोमन करती है तथा रक्तचापवृद्धिको कम करती है और निद्रा लाती है।

जटामासी—इसके कड़वी, कसैली एवं शीतल होनेके कारण रक्तचापवृद्धि रोगके साथ मधुमेह रोग हो तो धमासा, शङ्खपुष्पीके साथ उपयोग करनेसे शक्कर कम हो जाती है। यह मस्तिष्ककी पीडा और दिलकी धड़कनको दूर करती है।

शङ्खपुष्पी—यह सारक और उष्ण होनेसे वायुका अनुलोमन करती है। यह शिराओंकी कठोरता दूर करके रोगको दूर करती है। रसायन होनेसे वृद्धावस्थाजन्य बढ़े हुए वायुका नियमन कर रोगको दूर करती है। मेध्या होनेसे मस्तिष्कको शक्ति देगी और निद्रा आने लगेगी।

धमासा-जवासा—शीतल होनेसे यह रक्त शोधक एवं रक्तरोधक है। रक्तशोधक होनेसे शुद्ध रक्तद्वारा हृदयको शक्ति मिलती है तथा हृदयका कार्य नियमित होने लगता है। यह कषाय रस एवं लेखन गुणोंसे शिराओंकी कठोरताको कम करता है।

रोगकी विशेष अवस्थामें

१. यदि सिरदर्द अधिक हो तो कपर्दी भस्म तथा अकीक भस्म आँवलेके मुरब्बेके साथ देवें। रात्रिमें बृहद् वातचिन्तामणि रस और सर्पगन्धा चूर्ण मिलाकर दूधके साथ दे।

२. अनिद्रा हो तो सुबह-शाम सर्पगन्धा चूर्ण और बृहद् वातचिन्तामणि रस मिलाकर दूधके साथ दें। रक्त-दबाव कम करनेके लिये 'सर्पगन्धा' एलोपैथिक चिकित्सक भी प्रचुर मात्रामें उपयोगमें लाते हैं। सर्पगन्धा स्वयं उष्णवीर्य है। अतः पित्तप्रकृतिवालेको प्रवाल पिष्टी या सिता मिलाकर देनेसे अच्छा लाभ होता है। नारायण तेलकी अथवा कद्दूके तेलकी सिरपर मालिश करनेसे भी लाभ होता है।

रक्तचापकी अत्यन्त बढ़ी हुई अवस्थामें पक्षाघात रोग होनेकी सम्भावना रहती है। इसलिये 'उच्च रक्तचापवृद्धि'-को पक्षाघातका सचेतक मान लेना चाहिये। पक्षाघात होनेसे पूर्व उच्च रक्तचापवृद्धिमें शिराओंका कठोर होना आवश्यक है।

'रक्तचापवृद्धि' के और 'शिरावगत वातरोग' के लक्षणमें कोई अन्तर नहीं है। अनुभवी वैद्योंसे परामर्श कर रोगीको लाभ लेना चाहिये।

कोई भी औषधि कम मात्रामें लेना रोगीके लिये कोई भी लाभ न देगी। इससे उन औषधियोंकी उपयोगिता नहीं है यह मान लेना एक भ्रम है। औषधियोंका प्रभाव शीघ्र हो, इसके लिये मात्रासे अधिक औषधि नहीं लेनी चाहिये। अधिक लेनेसे हानि हो सकती है, इसलिये प्रत्येक आयुर्वेदिक औषधिको अनुभवी शिक्षित वैद्यके मार्गदर्शनमें ही लेना चाहिये। (प्रे०—वैद्य श्रीपवनजी व्यास)



आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्। आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः॥

धर्म,अर्थ तथा विविध सुखोंका साधनभूत—दीर्घजीवन चाहनेवालेको आरोग्यशास्त्रके (आहार-विहार एवं आचार-विचार-सम्बन्धी) उपदेशोंका विशेष आदर (तदनुरूप आचरण) करना चाहिये।



दमा (श्वास)-रोग—आहार-विहार तथा ध्यान

(डॉ० श्रीजानकीशरणजी अग्रवाल, एम्०डी० (आयु०))

दमा (श्वास) एक बहुत कष्टदायक रोग है। यह मनुष्यको शारीरिक तथा मानसिक रूपसे अपङ्ग बना देता है। ऐसी मान्यता है कि दमारोग मृत्युके साथ ही जाता है, परंतु रोगी अगर अपने स्वास्थ्यके प्रति सजग है, विवेकपूर्ण आहार-विहार करता है तो इस रोगसे होनेवाले शारीरिक और मानसिक कष्ट नगण्य हो जाते हैं और वह एक स्फूर्तिदायक एवं आनन्ददायक जीवन व्यतीत कर सकता है। कुछ छोटी-छोटी ध्यान देनेवाली बातें नीचे दी जा रही हैं; जो अनुभूत हैं—

सुबह उठकर शौच जानेसे पूर्व एक-डेढ़ किलो पानी अवश्य पीयें। पानी अगर ताँबे अथवा चाँदीके पात्रमें रातभर रखा हो तो और अच्छा है। शौच-मंजन आदि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर कटिस्नान लें अथवा घुटनोंके नीचे दोनों टाँगोंको पानीसे ५ मिनटतक तर (गीला) करके रखें। इसके लिये पानीकी टोंटीके नीचे क्रमशः घुटनोंको रखकर घुटने और पिण्डलियोंको पानीसे तर करते रहें। अगर खड़े होनेमें परेशानी हो तो स्टूलपर बैठकर पानीके पाइपसे आरामसे तर कर सकते हैं। इसके बाद बिना पानी पोछे उठ जाय, जो भी धोती आदि कपड़ा पहन रखा हो, उससे अच्छी प्रकार ढक दें, जाड़ा हो तो ऊपरतक मोज़ा पहन लें, जिससे पिण्डलियोंमें रक्तसंचार बढ़े। सीने (फेफड़ों)-से रक्तसंचार होकर पैरोंकी तरफ दौड़ता है, जिससे श्वास लेनेमें आसानी होती है। कटिस्नानके लिये एक प्लास्टिककी बड़ी चिलमची लेकर उसे आधासे अधिक जलसे भर ले और उसमें थोड़े वस्त्रसहित बैठ जायँ। यह ध्यान रखें कि टब इतना बड़ा हो कि पानी नाभितक आ जाय। पैरोंको टबसे बाहर रखें। अच्छा हो पैर गीले न हों। दाहिने हाथसे नाभिसे नीचे पेटको मलते रहें। यह क्रिया पहले १ मिनटसे शुरू करके धीरे-धीरे ३ मिनटतक बढ़ा ले जायँ। इससे अधिक समयतक बैठनेसे नुकसान हो सकता है। इस क्रियाका भी वही महत्त्व है जो घुटने, पिंडली-पादस्नानका है। कटिस्नान क़ब्ज़, पेचिश, पेटके रोग, गद्द बढ़ना, गर्भाशय, प्रजननसम्बन्धित रोग, मूत्राशयके रोग दूर करनेमें सहायक होता है। कटिस्नान सप्ताहमें ३ बारसे अधिक न करें। एक दिनमें एक ही उपाय करें, कटिस्नान अथवा घुटना, पाद-स्नान अथवा १-१ दिन अदल-बदलकर कर सकते हैं। घुटना, पादस्नान, टाँगों, घुटनोंके दर्दमें भी बहुत लाभदायक है।

जो लोग चाय-दूध आदिके अभ्यस्त हैं, जलक्रियाके बाद ले सकते हैं, साथ ही जो नियमित दवाइयाँ हैं, वे भी इस समय १-२ बिस्कुटके साथ ले सकते हैं।

ध्यानका श्वास और हृदयरोगमें मुख्य स्थान है। जिस पद्धतिसे ध्यान जानते हों, अवश्य करें। ध्यानके लिये सुखासनपर पलथी लगाकर बैठ जायँ। जो घुटने आदिके दर्दके कारण पलथी न लगा सकें, कुर्सीका इस्तेमाल कर सकते हैं। पहले दीर्घश्वास लें, दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिना नासाद्वार बंद करके १० बार दीर्घ श्वास लें और निकालें। फिर छोटी तथा दूसरी अनामिका अंगुलीसे बायाँ नासाद्वार बंदकर दायें नासाद्वारसे १० बार दीर्घ श्वास लें और बाहर निकालें। फिर दायाँ नासाद्वार बंद कर बाँयें नासाद्वारसे दीर्घश्वास लें, बायाँ नासाद्वार बंदकर दायें नासाद्वारसे श्वास बाहर निकालें तथा दायें नासाद्वारसे श्वास अंदर भरकर दायाँ नासाद्वार अँगूठेसे बंदकर बाँये नासाद्वारसे श्वास बाहर निकालें। यह प्रक्रिया दस-दस बार दोहरायें। दिनमें जब भी समय मिले श्वास-निःश्वासकी यह प्रक्रिया दोहराते रहें। प्राणायामकी छोटी-सी क्रियाके बाद अपने आने-जानेवाले श्वासपर ध्यान केन्द्रित करें। अंदर जानेवाला श्वास ओठके ऊपरी भागको छूकर जा रहा है और बाहर आनेवाला श्वास भी नासिकाके नीचेवाले छोरको छूता हुआ बाहर निकल रहा है। श्वासके स्पर्शकी अनुभूतिपर ही ध्यान केन्द्रित करें। इसे आनापान-विधि कहते हैं। ध्यान निरन्तर अभ्याससे होता है। शुरू-शुरूमें तो जब आप ध्यानपर बैठेंगे तो मन बहुत विचलित होगा तथा आपको आसनसे उठा देगा। अतः ध्यान लगे न लगे, आपको आसनपर जमकर बैठना है। शुरूमें १५ मिनटकी अवधिसे लेकर बढ़ाकर धीरे-धीरे एक घंटा ले जायँ। भगवान् बुद्धद्वारा बतायी गयी विपश्यना नामक ध्यान-पद्धति इसमें बहुत कारगर सिद्ध हुई है।

ध्यानके बाद घूमना भी श्वासरोगमें बहुत हितकर है। सुबह-शाम शरीरके बलके अनुसार नियमित घूमना आवश्यक है। इससे ताजा हवा मिलनेसे चमत्कारिक लाभ मिलता है तथा आत्मविश्वास बढ़ता है, जो कि इस रोगमें बहुत जरूरी है।

घूमनेके बाद स्नानसे पूर्व नाश्ता करें। नाश्ता जितना हलका करेंगे, श्वास उतना ही ठीक रहेगा। सबसे अच्छा

मौसमी फलोंका नाश्ता, आम, पपीता, सेब, केला, संतरा, नाशपाती, अमरूद जो भी मीठा फल हो, नाश्तेमें लें। कभी-कभी अंकुरित मूँगकी दाल, चने आदि ले सकते हैं। अगर जरूरत समझें तो दूध भी ले सकते हैं, इससे शरीरको ताकत मिलती है। श्वासके रोगियोंको यह डर रहता है कि दूध बलगम बनाता है, जब कि दूध सुपाच्य है। शरीरमें बलकी वृद्धि करता है और रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है। अतः सुबह-शाम एक-एक पाव दूध अवश्य पीयें। डायबिटीजके मरीज नाश्तेमें खीरा, टमाटर, दही, अंकुरित मेथी अथवा मूँग ले सकते हैं।

सूखे मेवे—बादाम, काजू, किशमिश, मुनक्का, सफेद मिर्च भी श्वासरोगमें बहुत अच्छा लाभ करते हैं। ५ मुनक्का, ५ बादाम, २ सफेद मिर्चकी गोली बनाकर रख ले और सुबह-शाम मुँहमें रखकर चूसें। मुनक्काको धोकर सुखा लें। उसमेंसे बीज निकालकर सिलपर पीस लें। बादाम तथा सफेद मिर्च मिक्सीमें पीसकर पाउडर बना लें। फिर मुनक्का और बादाम, मिर्चके पाउडरको एक साथ मिला लें। ५ मुनक्का, ५ बादाम तथा २ सफेद मिर्चके हिसाबसे आकारकी गोली बना लें। सुबह-शाम चूसें, इससे क़ब्ज़ियत दूर होती है। पाचन बढ़ता है, बलगम निकलता है और बलकी वृद्धि होती है।

दोपहरको तथा शामको रोटी, हरी सब्जियाँ लें। दालोंका प्रयोग कम करें। मूँग-मसूर हलकी होती हैं। अरहर, उर्द, राजमा, सोयाबीन, चना आदिकी दालोंसे परहेज करना चाहिये। चावल सप्ताहमें एक बार ले सकते हैं। खटाई, मिर्च, तेल, वैजिटेबल ऑयल, तली हुई वस्तुएँ, मैदेसे बने पदार्थ, पेटमें तेजाब बनानेवाले खाद्य पदार्थ, बर्फ अथवा फ्रीजकी अति ठंडी वस्तुओंका सेवन न करें। जो भी खायें, सतर्कतापूर्वक ध्यान रखें। जो चीज शरीरको नुकसान दे, जिह्वाके स्वादवश पुनः न खायें। अगर शरीर कृश है तो शुद्ध घीसे बना भोजन इस्तेमाल करें। डालडा, रिफाइन्ड इसमें नुकसान देते हैं।

अपराह्णमें फल ले सकते हैं। अनार बहुत फायदेमन्द है, बलगम निकालता है तथा अन्य फलोंकी तरह शक्ति और ताजगी देता है। खीरा और फलोंके अधिक सेवनसे यह फायदा है कि ये शरीरमें तेजाबकी मात्रा नहीं बढ़ने देते। श्वासके हर रोगीमें ऑक्सीजनकी कमी तथा कार्बन डाइ ऑक्साइडकी मात्रा बढ़ जाती है। फल क्षारीय होनेकी वजहसे शरीरमें क्षार और अम्लके संतुलनको बनाये रखने तथा शरीरसे हानिकारक पदार्थोंको बाहर निकालनेमें बहुत सहायक होते हैं। रात्रिमें सोते समय दूध ले सकते हैं। रात्रिका भोजन जल्दी करें तथा जल्दी सोनेकी कोशिश करें। श्वासवालेको दिनमें सोना वर्जित है।

पानीका खूब सेवन करें। ५-६ लीटर पानी रोज पियें। गर्मियोंमें सादा तथा जाड़ोंमें गरम पानी पियें। यही सावधानी स्नानमें बरतें। अगर मौसम बदलनेसे बरसात अथवा जाड़ोंमें ठंडे पानीसे शरीरमें कँपकपी आये तो स्नानमें गरम पानीका इस्तेमाल करें। गरम पानीसे शरीरमें रक्तका संचार बढ़ता है, जिससे पसीना आता है और यह साँसमें सहायक होता है। स्नान अपने शरीरकी शक्तिके अनुसार करें। शरीरमें थकान तथा श्वासकी गति न बढ़ने पाये। चाहे तो किसीकी सहायता ले सकते हैं।

अगर पेटमें क़ब्ज़ रहता है तो त्रिफला, मुनक्का अथवा सूखे अंजीरके सेवनसे पेटको साफ रखें। श्वासवाले रोगीको यूरोपियन लेटरीनका इस्तेमाल करनेमें सुविधा रहती है।

अंग्रेजी, आयुर्वेदिक, यूनानी अथवा होम्योपैथिक कोई भी दवाई अपने चिकित्सककी सलाहसे लें। जिन्हें अधिक श्वास रहता है, उन्हें नेबुलाइजरके प्रयोगसे बहुत फ़ायदा होता है। नेबुलाइजर तथा पम्पके इस्तेमालसे खानेवाली दवाइयोंके गलत असरसे बचा जा सकता है। शरीरमें कोई भी हरकत करनेसे पूर्व यह सुनिश्चित कर लें कि इससे श्वास तो नहीं फूलेगा। अगर ऐसा है—जैसे मलत्याग और स्नान आदिके लिये जानेसे पूर्व पम्पका अवश्य इस्तेमाल करें ताकि श्वासकष्ट अधिक न हो।

शक्तिके अनुसार हलका व्यायाम और प्राणायाम किसी भी अच्छे जानकारकी निगरानीमें करें। कपालभाति, ब्रह्मदक्षिका (गर्मीमें शीतली), नाडीशोधन, प्राणायाम तथा कोणासन, योगमुद्रा और मत्स्यासन बहुत सहायक होते हैं।

अगर वजन अधिक है तो अपने कदके अनुसार वजनको संतुलित आहार-विहारसे कम करें। नाक, कान, गलेके विशेषज्ञसे परामर्श तथा छातीका एक्स-रे, खूनकी जाँच डॉक्टरकी सलाहसे अवश्य करायें। रेकी-चिकित्सा भी इसमें काफी लाभप्रद सिद्ध हुई है।

हृदयरोग

हमारे शरीरमें स्थित मुट्ठीके आकारका हृदय एक मिनटमें ७० बार धड़कता है और एक घंटेमें ३०० लीटर रक्त शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें प्रसारित करता है। हृदयका मुख्य कार्य रक्तको शुद्ध करके शरीरके प्रत्येक हिस्सेमें रक्तकी आपूर्ति करना है। जब रक्तप्रवाहमें रुकावट आती है तो हृदयको अपना कार्य करनेमें कठिनाई होती है। रक्तप्रवाहमें अवरोध आनेके कारण कुछ मांसपेशियाँ क्षतिग्रस्त हो जाती हैं, जिससे तीव्र वेदना होती है और अन्य लक्षण उत्पन्न होते हैं। स्वयं हृदयको दो छोटी-छोटी धमनियोंसे थोड़ा-सा रक्त मिलता है। यदि इन धमनियोंमें कोई रुकावट पैदा हो गयी तो खतरनाक स्थिति हो जाती है। यह रुकावट रक्तवाहिनी नलिकाओंकी दीवारोंके सिकुड़कर मोटा पड़ जाने, रक्तके थक्के बननेके कारण होता है। इस विकृतिके कारण कई प्रकारके हृदयरोग उत्पन्न हो जाते हैं—(१) हृदयाघात, (२) हृदयशूल, (३) हृदयदौर्बल्य, (४) रक्तभारवृद्धि, (५) हृदयकपाटी रोग (६) हृदय-अन्तःशोथ (७) हृदय-अवरोध आदि। गलत खान-पान, शारीरिक परिश्रम न करना, धूम्रपान, मादक द्रव्योंका सेवन, मानसिक तनाव, मोटापा, औषधियोंका धुआँधार सेवन आदि हमारे शरीरको रुग्ण बना देते हैं। काम, क्रोध, चिन्ता, भय, शोक, मोह, लोभ आदि मानसिक आवेगके समय मस्तिष्कको अत्यधिक रक्तकी आवश्यकता पड़ती है। अधिक मात्रामें गरिष्ठ भोजनसे आमाशय और आँतें कमजोर पड़ जाती हैं। क्षमतासे अधिक कार्य करनेके कारण हृदयपर प्रतिकूल असर पड़ता है। हृदयका दौरा पड़ते ही हर व्यक्ति आशंकित हो जाता है। रोगी ठीक होगा या नहीं, यदि ठीक होगा तो इसके लिये क्या करना चाहिये? दौरा पड़नेके प्रथम घंटेमें जो उपचार हो जाता है, वही जीवन बचा सकता है। इसलिये है कि हृदयरोगके बारेमें आवश्यक जानकारी रखी जाय—

सुरक्षात्मक उपाय

(१) प्रातः उठकर ताँबेके बरतनमें रखा पानी पियें, भोजनके बीचमें बार-बार पानी न पियें, भोजनके आधे घंटे बाद यथेच्छ पानी पीना चाहिये। प्रतिदिन कम-से-कम तीन लीटर पानी पीनेसे शरीरके दूषित तत्त्व पसीने एवं मूत्रके द्वारा बाहर निकल जाते हैं।

(२) संतुलित भोजन करें। धूम्रपान, मांसाहार तथा गरिष्ठ भोजनका पूर्णतया त्याग कर दें। शाकाहारी, पौष्टिक, सुपाच्य, वसारहित और ताजा बना हुआ भोजन शरीरके लिये हितकर है।

(३) निश्चित समयपर दिनमें तीन बार उतनी ही मात्रामें भोजन करें, जितना आवश्यक हो। अधिक भोजन करनेसे गैस बनती है, पाचनतन्त्रको अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है और शरीरको इससे लाभ कुछ नहीं होता। रातका भोजन सोनेसे लगभग दो घंटा पहले करें।

(४) प्रौढावस्था आनेके बाद वसायुक्त पदार्थ—घी, दूध, दही, तेल, मक्खन आदिका प्रयोग कम-से-कम करें। सोयाबीन, मूँगफली और सूर्यमुखीका तेल उपयोगमें लाना चाहिये।

(५) हरी सब्जी—पालक, मेथी, बथुआ, धनिया तथा मूली, लौकी, पपीता, परवल, गाजर, टमाटर, संतरा, बंदगोभी, अदरक, खीरा आदि स्वास्थ्यके लिये उत्तम हैं। इनका कच्चे रूपमें सलाद बनाकर अथवा रस निकालकर सेवन कर सकते हैं। गेहूँके पौधेका रस हृदयरोगमें बहुत गुणकारी है। रेशेदार आहारसे हृदयरोगको काफी कम किया जा सकता है।

(६) चाय, कॉफी, धूम्रपान, शराब एवं अन्य मादक द्रव्योंको विषतुल्य समझें। इनके सेवनसे हृदयरोगके साथ ही अन्य रोग भी हो जाते हैं।

(७) नमकका प्रयोग कम-से-कम करें। पापड़, चटनी, अचार, नमकीन आदिसे परहेज करें, क्योंकि इनमें भी नमककी मात्रा अधिक होती है। दालका प्रयोग भी कम करें, यह वायुकारक होती है। मूँग और चनेकी दाल छिलकेसहित प्रयोग कर सकते हैं। यदि ये अंकुरित हों तो और अच्छा है।

(८) ताजे हरे आँवलेका अधिक-से-अधिक सेवन करें। इसकी चटनी भोजनके साथ लें। प्रातः दो आँवलेका रस शहद मिलाकर खाली पेट लें। प्रातः सूखे आँवलेका

चूर्ण लेना भी उत्तम है।

(९) मलाई उतारे दूधके बने मट्ठेमें अजवाइन और काला नमक डालकर नियमित रूपसे सेवन करें।

(१०) हृदयरोगमें एक अत्यन्त गुणकारी आयुर्वेदिक योग निम्न प्रकारसे है। इसे नियमित रूपसे लेना चाहिये—

(क) प्रातः ११ एकपुटिया लहसुन २५० ग्राम दूधमें उबालें। एक छटाँक दूध बच रहे तो छान लें और लहसुन खाकर दूध पी लें।

(ख) दोपहरके भोजनके बाद दो चम्मच अर्जुनारिष्ट समान जलसे लें तथा अर्जुनके छालका चूर्ण ५ ग्राम शहदके साथ लें।

(ग) हर्रेका चूर्ण २ चम्मच रातको सोते समय लें।

(११) सप्ताहमें एक दिनका पूर्ण उपवास रखें। इस दिन केवल फलोंका रस या नीबूका पानी लें।

(१२) हृदयरोगसे बचनेके लिये सूर्यनमस्कार तथा योगासन, ध्यान और प्राणायाम बहुत उपयोगी है। प्रतिदिन कुछ समय इसमें लगानेसे सदैव स्वस्थ रहा जा सकता है। जलनेति एवं सूत्रनेतिके साथ ही वज्रासन, पवनमुक्तासन, शलभासन, मयूरासन, सर्वाङ्गासन और शवासन नियमित रूपसे करना चाहिये।

(१३) अत्यधिक गरमी एवं ठंडकसे शरीरको बचायें। सामर्थ्यसे अधिक इतना परिश्रम न करें कि दम फूलने लग जाय, शरीरको जितना सह्य हो उतना ही श्रम करें। कुछ-न-कुछ शारीरिक व्यायाम अवश्य करना चाहिये। प्रातः क्षमताके अनुसार तेज कदमसे टहलें। दो-तीन मीलतकका प्रातःभ्रमण स्वास्थ्यके लिये अनुकूल है।

(१४) किसी भी प्रकारके मानसिक तनाव, पारिवारिक कलह और दोहरी जीवनशैलीसे बचनेका हर सम्भव प्रयास करें। यह हृदयरोगके प्रमुख कारणोंमेंसे एक है।

(१५) अधिक साहसी एवं सहनशील न बनें। थकावट होनेपर या दर्द होनेपर आराम करें। यदि घर वापस आते समय दर्द उठ जाय या अत्यधिक थकावट महसूस हो तो बैठकर आराम करनेमें न हिचकें। समय-समयपर स्वास्थ्य-परीक्षण कराते रहें। नियमित दिनचर्या रखें।

(१६) रात्रिको शयन करते समय दिनभरकी हर समस्यासे अपना ध्यान हटा लें। यह निश्चय कर लें कि इस समय मुझे और कुछ न तो करना है और न सोचना ही है। अपना ध्यान श्वास-प्रश्वासकी प्रक्रियापर लगायें। कुछ मिनट बाद पैरोंपर ध्यान ले जाकर सोचें कि पैर निस्पन्द हो रहे हैं, जैसे कि शरीरसे उनका सम्बन्ध है ही नहीं। पुनः श्वास-प्रश्वासपर ध्यान ले जायँ। फिर इसी प्रकार हाथोंका चिन्तन करें। क्रमशः प्रत्येक अङ्गका चिन्तन करनेके कुछ देर बाद लगेगा कि श्वास-प्रश्वासके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। ध्यान श्वास-प्रश्वासपर केन्द्रित हो जायगा। श्वास-प्रश्वासकी गति स्वाभाविक और सूक्ष्म होती चली जायगी, मन शान्त हो जायगा और अच्छी नींद आयेगी।

(१७)यह सिद्धान्त बना लें कि जो भी करेंगे, शरीरके स्वास्थ्य-हितमें करेंगे। स्वास्थ्य-हितके विरुद्ध कुछ भी न करेंगे।

दौरा पड़नेके लक्षण

जब रक्तप्रवाहमें किसी प्रकारकी रुकावट आती है तो हृदयको अपना कार्य करनेमें कठिनाई होती है और हृदय तत्काल निम्न लक्षण उत्पन्न करके चेतावनी देता है—

(१) अचानक सीनेमें तेज असहनीय दर्द उठता है। दर्दका स्थान सीनेके बीच पसलीके जोड़पर और बायीं ओर होता है, जो अन्य हिस्सोंमें फैल जाता है।

(२) ऐसा लगता है कि किसीने सीनेपर पत्थर रख दिया हो या मजबूत रस्सीसे सीनेको चारों तरफसे कोई बुरी तरह लपेट रहा हो। कभी-कभी लगता है कि सीनेमें कोई नुकीली वस्तु चुभा दी गयी हो, कोई अंदरके अवयवोंको खींचकर काट रहा हो।

(३) बेहद घबराहट और बेचैनी होती है। श्वास लेनेमें कष्ट होने लगता है। श्वास रुकती-सी मालूम होती है।

(४) लेटने, बैठने, आराम करनेसे दर्दमें कमी नहीं होती।

(५) कभी-कभी सीनेमें दर्द न होकर चक्कर, पसीना, उलटीके साथ अत्यन्त थकावट महसूस होती है।

दौरा पड़नेपर क्या करें

(१) रोगीको भूमिपर पीठके बल इस प्रकार चित लिटा दें कि सिर और कंधे कुछ ऊँचाईपर रहें। हिलने-डुलनेसे रोकें। सिरको दायीं या बायीं ओर घुमाकर रखें।

(२) यथाशीघ्र चिकित्सकको बुलाने और निकटवर्ती चिकित्सालयमें रोगीको ले जानेकी व्यवस्थाके लिये किसी अन्य जिम्मेदार व्यक्तिको निर्देशित करें और स्वयं तत्परतापूर्वक प्राथमिक उपचारमें लग जायँ।

(३) देखें कि श्वासनली खुली है या नहीं। एक हाथसे ठोड़ीको ऊपर उठाकर दूसरे हाथसे सिरको नीचे दबायें। ऐसा करनेसे श्वासनली खुल जाती है और जीभ सीधी हो जाती है। यदि सीधी न हो तो अंगुलीसे जीभ सीधी कर दें।

(४) यदि यह आशंका हो कि श्वास नहीं चल रही है तो मुँहके पास कान सटाकर सुनें, देखें कि सीना ऊपर-नीचे हो रहा है या नहीं। यदि श्वास न चल रही हो तो कृत्रिम श्वास इस प्रकारसे दें—मुँहके भीतर देखें कि जीभ पीछे जाकर अवरोध तो नहीं उत्पन्न कर रही है। यदि ऐसा है तो जीभ सीधा कर दें। रोगीके मुँहपर हलका कपड़ा रख दें। अपने मुँहको रोगीके मुँहसे हांथके सहारे सटा दें और मुँहमें श्वास भरकर जोरसे फूँकें। पुनः श्वास खींचकर भीतर फूँकें। अपने मुँहके पास हाथ लगाये रखें और एक हाथसे नाक बंद कर दें, जिससे पूरी हवा फेफड़ेके अंदर जाय। इस प्रक्रियामें सीना नीचे-ऊपर उठता प्रतीत होगा। जबतक श्वास अच्छी तरह चालू न हो जाय, तबतक इसे करते रहें।

(५) इसके बाद तुरंत सीनेसे कान सटाकर देखें कि दिल धड़क रहा है अथवा नहीं। यदि नहीं, तो दायीं ओर घुटनेके बल बैठ जायँ। दोनों पसलीके जोड़के पास नीचे बीचोबीच सीनेपर बायीं हथेली रखकर उसके ऊपर दायीं हथेली रखें। झुककर रोगीके ऊपर इस प्रकार आ जायँ कि कंधा ठीक सीनेके ऊपर हो। दोनों हथेलियोंको कम-से-कम एक इंच नीचेतक शीघ्रतापूर्वक दबायें और छोड़ दें। हाथ वहींपर रखें। पुनः सीनेको दबायें और छोड़ दें। यही क्रिया तत्परतापूर्वक बार-बार करते रहें। यह क्रिया एक मिनटमें लगभग १८-२० बारकी गतिसे होनी चाहिये। यह ध्यान रखें कि दबाव अगल-बगलकी पसलीपर न होकर बीचमें पसलीके जोड़पर हो। १५-२० दबावके बाद मुँह-से-मुँह लगाकर श्वास दें। यह क्रम तबतक जारी रखें जबतक कि ठीकसे श्वास न चलने लगे और दिल धड़कने न लग जाय। यदि दिलकी धड़कन और श्वास-प्रश्वास बंद मालूम पड़े तो एक व्यक्तिको मुँह-से-मुँह लगाकर कृत्रिम श्वास देनेपर लगा दें और स्वयं सीनेपर दबाव देकर धड़कन चालू करनेका प्रयास करें।

(६) हृदयका गम्भीर दौरा पड़नेपर कुछ ही मिनटोंमें प्राणान्त हो सकता है। प्रारम्भिक ४-५ मिनट अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। अतः यह ध्यान रखें कि एक-एक क्षण कीमती है। दौरेकी आशंका होते ही किसी अन्य व्यक्तिकी मदद लेकर चिकित्सकको बुलानेका उपक्रम और चिकित्सालय ले जानेकी व्यवस्था तुरंत की जानी चाहिये। साथ ही उपयुक्त प्राथमिक उपचार भी तत्परतासे करते रहना चाहिये। किसी प्रकारकी प्रतीक्षा करके या अन्य बातोंमें समय नष्ट नहीं करना चाहिये।

(७) चिकित्सककी सलाह लेकर इस रोगसे सम्बन्धित कुछ औषधियाँ सदैव पासमें रखनी चाहिये, ताकि आवश्यकता पड़नेपर तत्काल लिया जा सके। हृदयके दौरेके बाद लंबे समयतक पूर्ण विश्रामकी आवश्यकता पड़ती है। यदि जीवित रहना है तो शेष जीवन दिनचर्यामें आमूल परिवर्तन करके अत्यन्त सावधानी तथा संयमसे बिताना चाहिये।

चिकित्सालयमें ले जानेपर रोगीको इंजेक्शन देकर खूनके बन रहे थक्कोंको घुलाकर रक्तके प्रवाहको सामान्य बनानेकी कोशिश करते हैं। इससे हृदयकी पेशियाँ कम-से-कम क्षतिग्रस्त होती हैं। रोगीको तत्काल गहन चिकित्साकी आवश्यकता होती है, जिसमें ई०सी०जी०, रक्तचाप, श्वसनक्रिया और रक्तमें ऑक्सीजनकी मात्रा आदिकी जाँच प्रमुख है। आवश्यकतानुसार हृदयका ऑपरेशन भी करना पड़ सकता है।

प्रारम्भके कुछ घंटे जीवनके लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं। तत्परतापूर्वक किये गये प्राथमिक उपचारपर यह निर्भर रहता है कि कितनी कम या अधिक क्षति हुई और रोगीका जीवन बच सकता है या नहीं!

पक्षाघातकी अनुभूत चिकित्सा

(डॉ० श्रीसत्यपालजी गोयल एम्०ए०, पी-एच्०डी०, आयुर्वेदरत्न)

पक्षाघातका प्रकार—पक्षाघात शरीरके किसी भी अङ्गमें हो सकता है। आँखका पक्षाघात, अंगुलियोंका पक्षाघात, जीभका पक्षाघात, सीधे हाथ एवं पैरका पक्षाघात, वामभागका पक्षाघात, निम्नाङ्ग (अर्द्धाङ्ग)-का पक्षाघात (इसमें कमरसे नीचेका अङ्ग रह जाता है)। पक्षाघातमें शरीरके अङ्ग मुड़ जाते हैं। अनेक बार मुड़ते नहीं हैं, परंतु उनकी क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है। अङ्गोंमें रक्तका सञ्चार तो रहता है, परंतु इसकी गति बहुत ही क्षीण रहती है। प्राय: रोगी पराश्रित हो जाता है, वह अपनेको अपाहिज तथा दूसरोंकी दयाका पात्र समझने लगता है। प्रत्येक रोगीको यह समझ लेना चाहिये कि यह रोग सर्वथा असाध्य नहीं है। किसी कुशल चिकित्सकके निर्देशनमें यह निन्यानबे प्रतिशत ठीक भी हो जाता है।

रोग-उत्पत्तिका कारण—कुछ ऐसे प्रधान कारण हैं जो पक्षाघातको जन्म देते हैं। यदि सामान्य रूपसे इन कारणोंसे सावधानी बरती जाय तो पक्षाघातके रोगसे बचा जा सकता है—

१-विद्युत्-करंट लगनेसे अनेक बार मृत्यु न होकर कोई अङ्गविशेष झटका लगनेसे निष्क्रिय हो जाता है। प्रत्येक शरीरधारी मनुष्यके शरीरमें बारह वोल्टकी विद्युत् प्रवाहित होती रहती है। यदि इससे दुगुनी या तिगुनी विद्युत् शरीरमें प्रवाहित हो जाय तो पक्षाघात-रोगका होना सम्भव है। अति प्रसन्नता या विषादकी स्थितिमें हृदयद्वारा रक्तका प्रवाह अधिक गतिसे होने लगता है, जिससे शरीरके किसी अङ्गविशेषमें विद्युत्‌का घर्षण बढ़ जाता है तथा वह अङ्ग पक्षाघात-रोगसे ग्रस्त हो जाता है। अतएव अति प्रसन्नता या विषादके अवसरोंपर अधिक भावुक नहीं होना चाहिये। यथासम्भव समभावसे विचरण करना चाहिये और अधिक संग्रह-परिग्रह तथा सम्बन्धोंमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिये, इससे शरीर एवं मन स्वस्थ रहता है।

२-किसी दुर्घटना या मार-पीटके कारण अङ्गविशेषमें गहरी चोट लग जानेसे भी उस अङ्गकी क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है। अतएव ऐसी स्थितिमें उस अङ्गकी चिकित्सा तुरंत करानी चाहिये। लम्बी उपेक्षा पक्षाघातको स्थायित्व दे सकती है।

३-अधिक शीत या ठंड लग जानेसे भी अङ्गोंमें संज्ञाशून्यता आ जाती है। प्राय: जो पुरुष ठंडमें खुले आकाशके नीचे शून्यसे भी कम सेल्सियस तापमानपर काम करते हैं और उनके शरीरकी उष्णता आयुके प्रमाणसे कम होती है तथा जो महिलाएँ ठंडमें कार्य करती हैं, उनको भी पक्षाघात होनेकी सम्भावना अधिक रहती है।

४-जो मनुष्य प्राय: तनावग्रस्त रहते हैं, उनको भी पक्षाघात-रोग होनेकी सम्भावना रहती है।

५-यौन-असंतुष्टि भी पक्षाघातका कारण बनती है।

६-जिन मनुष्योंके भोजनमें वात-शामक वस्तुएँ जैसे हींग तथा लहसुनका अभाव रहता है, उनको भी यह रोग सम्भावित है। हमारे धर्मग्रन्थोंमें तामसी पदार्थ होनेसे लहसुनका आन्तरिक प्रयोग वर्जित है। अतएव लहसुनका उपयोग न करके शुद्ध हींगका उपयोग किया जा सकता है। व्यक्ति यदि पचास मिलीग्राम भुनी हुई हींगको सेंधा नमकके साथ प्रतिदिन खाली पेट खाय तो उसे जीवनमें पक्षाघात होनेकी सम्भावना नहीं रहती है। हींग वातका नाश करनेमें पूर्ण सक्षम है।

७-जो मनुष्य वात-उत्पादक वस्तुओंका अधिक सेवन करते हैं, उनको पक्षाघातकी सम्भावना अधिक रहती है।

पक्षाघात-चिकित्सा—संसारमें रोग-निदानकी अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं, जैसे—आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक, मन्त्र-तन्त्र-यन्त्रचिकित्सा, सिद्धयोग, एलोपैथिक, योगासन, एक्यूप्रेशर, यूराईन थैरेपी, होलीहीलिंग, ध्यानयोग, सूर्य-ऊर्जा-जलचिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा, चुम्बक-चिकित्सा आदि। यह अनुभवमें आया है कि आयुर्वेदिक तथा होम्योपैथी एवं मन्त्रचिकित्सासे पक्षाघात रोगको अधिकतम ठीक किया जा सकता है।

चिकित्सक तथा औषधिमें विश्वास—मनकी एकाग्रता तथा विश्वास रोगके निदानमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यदि आपके मनमें चिकित्सक तथा औषधिके प्रति उत्तम भाव नहीं है तो कोई भी औषधि रोगको ठीक नहीं कर सकती। रोगीका आत्मविश्वास, भगवत्कृपा तथा औषधिका गुण-प्रभाव और चिकित्सक एवं परिजनोंका सद्व्यवहार रोगीको शीघ्र स्वस्थ करनेमें चमत्कारी प्रभाव रखते हैं।

(क) आयुर्वेदिक चिकित्सा—एक किलो सरसोंका शुद्ध तेल, सौ ग्राम लहसुनकी मींगी (गरी या गूदा), पचीस ग्राम अजवाइन तथा दस लौंग लें। साफ कड़ाहीमें इन्हें डालकर तबतक उबालें जबतक लहसुनकी मींगी जलकर काली—एकदम काली न हो जाय। इस तेलकी मालिश रात्रिमें करें। जिस अङ्गपर पक्षाघातका प्रभाव है उस अङ्गके साथ-साथ उसके विपरीत अङ्गपर भी मालिश करें अर्थात् सीधे हाथकी ओर रोग हो तो उलटे हाथकी ओर भी मालिश करें। नब्बे दिनतक मालिश करनेसे रोगका शमन हो जायगा। साथ ही निम्न योगका भी प्रयोग करें—

स्वस्थ गाय (सींगवाली)-का गोबर एक किलो तथा दो सौ पचास ग्राम गोमूत्र—ये दोनों ही ताजा तथा भूमिपर गिरे हुए न हों। गोमूत्र तथा गोबरको ठीकसे मिलाकर रोगग्रस्त अङ्गपर हर सुबह मालिश करें।

(ख) होम्योपैथिक औषधियाँ—किसी भी प्रकारका पक्षाघात हो, होम्योपैथीकी निम्न औषधियाँ लगभग आठ दिनतक तीन-तीन घंटेके अन्तरसे प्रतिदिन दें। उसके पश्चात् सोलह दिनतक छः-छः घंटेके अन्तरसे दें, तत्पश्चात् प्रति सोमवार केवल नं० १ और नं० २ औषधि ही दें—

१-इलैप्स कोरानिलस दो सौ शक्ति, २-कोनियम दो सौ शक्ति, ३-कास्टिकम दो सौ शक्ति, ४-जेलेसियम सेम्पर दो सौ शक्ति, ५-यदि सीधे कंधेसे बाँहतक दर्द हो तो बेलोडोना दो सौ शक्ति केवल दो-तीन बार।

औषधि देते समय या लेते समय रोगी इस मन्त्रका उच्चारण करे—

औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः॥

गङ्गाजल समस्त प्रकारके विषाक्त कीटाणुओं और प्रतिकूल वातादिका शमन करनेमें समर्थ है तथा भगवान् ही एकमात्र जगत्के वैद्य और गुरु हैं। अतः उनका निरन्तर नाम-स्मरण होना ही चाहिये।

(ग) मन्त्र-चिकित्सा—मन्त्र-चिकित्सामें मुख्य रूपसे भगवन्नामजप, मन्त्रजप तथा अनुष्ठान आदिकी प्रधानता रहती है। मृत्युञ्जय-मन्त्रके प्रभावसे बड़े-बड़े अरिष्ट सहज ही दूर हो जाते हैं। भगवान्के नाममें अनन्त शक्ति संनिहित है। दिल्ली-स्थित कई बड़े अस्पतालोंमें निम्न मन्त्रका सफलतम परीक्षण किया गया है तथा अनेकों रोगी इससे लाभ प्राप्त कर रहे हैं—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

अर्थात् भगवान् कृष्णके '**ॐ अच्युताय नमः**', '**ॐ अनन्ताय नमः**' तथा '**ॐ गोविन्दाय नमः**' इस नामरूपी औषधिका उच्चारण (जप) करनेसे समस्त रोगोंका नाश हो जाता है—यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ।

पक्षाघातके रोगीको उपर्युक्त जो तीनों उपाय बताये गये हैं, उन सबका यथाविधि नित्य प्रयोग करना चाहिये। रोगीको निराश नहीं होना चाहिये। उसे यह धारणा रखनी चाहिये कि मेरा स्वास्थ्य सुधर रहा है, मैं चलने-फिरने तथा काम करनेमें समर्थ हूँ। भगवान्की मुझपर पूर्ण कृपा है, मेरा पूर्वकृत पाप-कर्मका फल क्षीण हो रहा है। अपने सहयोगी परिजनोंका उपकार मानना चाहिये, क्रोध नहीं करना चाहिये तथा परिजनोंको भी रोगीको भारस्वरूप न मानकर उसकी सेवा करनी चाहिये। संसारमें कोई रोग ऐसा नहीं है जो प्रारब्ध-कर्मके क्षय होनेपर ठीक न हो। ध्यान रहे—रोगीको मलावरोध न हो, उसके लिये उसे होम्योपैथीकी कोलिन्सोनिया दो सौ शक्तिकी एक खुराक रात्रिको प्रत्येक चौथे दिन दे।

'आरोग्यमायुरर्थो वा नासद्भिः प्राप्यते नृभिः'

सदाचारसे रहित मनुष्य आरोग्य, आयु और सम्पत्ति प्राप्त नहीं कर सकते।

अर्श या बवासीर

यह एक अत्यन्त कष्टप्रद रोग है—'अरिवत् प्राणान् शृणाति हिनस्तीत्यर्थः।' जिन्दगीको दूभर कर देनेवाले इस रोगसे ग्रसित व्यक्तिके कष्टका वर्णन करना कठिन कार्य है। मलद्वारके अंदर तीन वलि (आवर्त) होते हैं। इनकी शिराएँ जो श्लेष्मकलाके भीतर रहती हैं, प्रक्षुभित हो जानेसे यह रोग होता है। पतली शिराओंका एक जाल मलाशयको भीतर चारों ओरसे घेरे रहता है। इन्हीं शिराओंमें रक्तका संचय होकर फूलनेसे यह मस्सेका रूप ले लेता है। मलाशयके दीवारकी शिराएँ लंबाईमें फैली रहती हैं। क़ब्ज़से पीडित व्यक्ति शौच जाते वक्त शीघ्रताके लिये जब नीचेकी ओर अत्यधिक जोर लगाते हैं तो इन शिराओंमें खून उतर आता है। बार-बार यह प्रक्रिया जारी रहनेपर उतरा हुआ रक्त वापस नहीं जा पाता। इस प्रकार दूषित रक्तके संचय होनेसे मांसांकुर या मस्से उत्पन्न हो जाते हैं। मलद्वारकी तीनों वलियों (आवर्तों)-में ये मस्से हो सकते हैं। अन्तिम वलीमें होनेवाले मस्से बाहरकी ओर दो-तीन संख्यामें या गुच्छेके रूपमें बाहर निकल आते हैं जो कि शौच जाते समय अत्यन्त कष्ट प्रदान करते हैं। ऊपरके पहले आवर्तको प्रवाहिकी कहते हैं। इसका कार्य मल और वायुको बाहर निकालना होता है। मध्यके आवर्तको सर्जनी कहते हैं। इसका कार्य भी मल और वायुको पूर्णतः बाहर निकाल देना है। तीसरे आवर्तका कार्य गुदाको संकुचित करके पूर्वावस्थामें लाना होता है। इन्हीं तीन आवर्तोंमें अर्श पैदा होता है। भीतरी मस्सेमें उतना दर्द नहीं होता, पर शौचके समय कष्ट होता है और रक्त निकलता है।

आयुर्वेदके अनुसार बवासीरके छः भेद होते हैं—(१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज, (४) सन्निपातज, (५) रक्तज और (६) सहज। सामान्यतः बवासीरके दो भेद माने गये हैं—बादी और खूनी।

लक्षण—बवासीरके मस्सोंके प्रक्षुभित हो जानेपर शौचके समय भीषण कष्ट होता है। यहाँतक कि बैठनेमें भी दर्द होता है। शौचके समय खूनी बवासीरसे काफी मात्रामें रक्त निकलता है। कभी-कभी तो शौचके समय १००-२०० ग्राम रक्त निकल जाता है। अधिक चलनेसे मस्सेमें रगड़ होनेसे रक्तस्राव होने लगता है। रोगकी तीव्रावस्थामें किसी भी समय रक्तस्राव हो सकता है। मस्सोंमें सूजन और जलन लगातार होती रहती है। बादी बवासीरमें रक्त नहीं निकलता, पर सूजनके कारण शौचके समय तथा वायु निकलनेमें, चलने-फिरने और बैठनेमें भी बहुत कष्ट होता है।

कारण—अनियमित रहन-सहन, कड़वा-कसैला, नमकीन, खट्टा, चाय-कॉफी, मिर्च-मसालासे युक्त बासी एवं गरिष्ठ भोजन, मद्यपान, अजीर्ण तथा क़ब्ज़ बने रहना, शौचके समय खूब जोर लगाना, काफी देरतक एक ही स्थानपर बैठे रहनेका कार्य करना, दिवाशयन, वात-पित्त-कफका प्रकुपित होना इत्यादि बवासीर होनेके प्रमुख कारण हैं। चरकने गर्भपात, गर्भावस्था तथा विषमप्रसूतिको भी अर्शका कारण माना है; क्योंकि इनसे भी गुदाकी शिराओंमें दबाव पड़ता है—'**स्त्रीणामामगर्भभ्रंशाद् गर्भोत्पीडनाद् विषमप्रसूतिभिश्च।**' अधिक ठंडे स्थानपर देरतक बैठे रहनेसे भी गुदाकी शिराओंके संकुचित हो जानेसे अर्श उत्पन्न हो जाता है। मद्यका अत्यधिक सेवन पित्तज अर्शकी उत्पत्ति करता है।

रोगकी साध्यता—जो बवासीर अन्तिम बाहरी आवर्तमें होती है और १ वर्षसे अधिक समयकी नहीं होती, उसकी चिकित्सा साध्य है। दूसरे आवर्तमें उत्पन्न मांसांकुर कष्टसाध्य होता है। जो बवासीर बहुत समयकी हो, वात-पित्त एवं कफ तीनों दोषोंके प्रकुपित होनेसे हो, गुदाके भीतरकी पहली सबसे भीतरके आवर्तमें उत्पन्न हो, वह प्रायः असाध्य होती है—

बाह्यतः सुखसाध्यः स्यान्मध्ये कष्टेन सिद्ध्यति।
असाध्योऽन्तर्वली जातो.................................॥

(हारीत)

अर्शकी उचित चिकित्सा नहीं करनेसे, निरन्तर अहितकर आहार-विहार करते रहनेसे मलाशयमें शोथ हो जाता है तथा फोड़ा, भगन्दर आदि महाकष्टकारी असाध्य रोग हो जाते हैं। अतः प्रारम्भमें ही इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

चिकित्सा—बवासीरकी चिकित्सामें यह ध्यान रखना चाहिये कि किसी भी प्रकारसे क़ब्ज़ न रहे। क़ब्ज़के लिये निम्न योग लेना चाहिये—

(अ) प्रातः सूखे आँवलेका चूर्ण २ ग्राम।

(ब) दोपहरको ईसबगोलकी भूसी १० ग्रामकी मात्रामें नीबू-पानीके साथ।

(स) रातको सोते समय १० ग्राम त्रिफलाचूर्ण दूधके साथ लें। इसके अतिरिक्त दो हर्रे भी पानीके साथ निगल सकते हैं।

होमियोपैथी—होमियोपैथीके अनुसार अर्शकी सद्यः-लाभकारी एक अनुभूत चिकित्सा इस प्रकार है—

(अ) प्रातः सल्फर-३० शक्तिकी ५-६ गोलियाँ खाली

पेट लें।

(ब) एस्क्यूलस मूल अर्क ४ बूँद आधा छटाँक पानीमें डालकर प्रत्येक चार घंटेपर लें। यदि रक्तस्राव भी होता है तो हेमामेलिस मूल अर्क ४ बूँद आधा छटाँक पानीमें डालकर प्रत्येक चार घंटेपर लें।

(स) रातको सोते समय नक्सवोमिका-२०० शक्ति एक खुराक लें। ध्यान रहे कि औषधियाँ लेनेके आधे घंटे पहले या बादमें कुछ भी न खाये-पियें।

होमियोपैथी-औषधि खाली पेट लेनी चाहिये। होमियोपैथी-औषधियाँ लक्षणके अनुसार दी जाती हैं। एक ही रोगमें भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके लिये लक्षणके अनुसार भिन्न औषधि चयन की जाती है। किसी एक रोगके लिये एक ही दवा नहीं होती। उक्त औषधिसे अनेक रोगियोंको सद्यःलाभ हुआ है। जो व्यक्ति अनेक औषधि करके निराश हो चुके हैं और ऑपरेशनके अतिरिक्त कोई मार्ग न बचा हो, उन्हें अवश्य इस अनुभूत औषधिका परीक्षण करना चाहिये।

आयुर्वेदिक योग—(१) (क) भोजनके बाद दो चम्मच अभयारिष्ट समान जलसे लें।

(ख) काले तिलका चूर्ण तथा भिलावेका चूर्ण समान मात्रामें लेकर मट्ठेके साथ दो-तीन बार पियें।

(ग) बेलका मुरब्बा या कच्चे बेलको भूनकर खायें।

(घ) सूरनका भरता लाभप्रद है।

(ङ) कोष्ठशुद्धिके लिये एरण्डका तेल पीना चाहिये। दर्द तथा जलनके स्थानपर भाँग अथवा अफीम बाँधनी चाहिये।

(च) गायके दूधके मट्ठेमें लवणभास्करचूर्ण मिलाकर प्रातः और दोपहरमें पियें। मट्ठेका अधिकाधिक सेवन करें।

(२) करेलेके रसमें मिस्री मिलाकर पीनेसे बवासीरमें लाभ पहुँचता है।

(३) रसौत ७ ग्राम, मुनक्का बीजसहित १४ ग्राम और कतीरा ७ ग्राम—इनको कूट-पीसकर महीन चूर्ण बनायें। छोटी बेरके बराबर इसकी गोलियाँ बनाकर प्रतिदिन सुबह-शाम सेवन करें।

(४) कमलकी केशर, शहद, ताजा मक्खन, नागकेशर और चीनी एकमें मिलाकर खायें। यह रक्तार्शमें हितकर है।

(५) लाल चन्दन, चिरायता, धमासा और सोंठ समान मात्रामें लेकर काढ़ा बनाकर पियें।

(६) (क) चन्द्रप्रभावटी सुबह-शाम एक-एक गोली दूधके साथ लें।

(ख) कुमार्यासव दो चम्मच तथा दशमूलारिष्ट दो चम्मच मिलाकर समान जलसे भोजनके बाद दिनमें दो बार लें।

क्षारसूत्र-चिकित्सा—इस पद्धतिमें क्षारसूत्रद्वारा मस्सोंको बाँध देते हैं। सूत्रमें लगे क्षार अपने औषधीय गुणोंसे मस्सोंको काट देते हैं। मस्सोंमें अपामार्गक्षार, उदुम्बरक्षार, स्नूहीक्षार नियमित रूपसे लगानेपर मस्से सूखकर बाहर निकल जाते हैं। बड़े मस्सोंके लिये क्षारसूत्रका प्रयोग करते हैं। मजबूत धागेपर हलदी, क्षार एवं स्नूहीके दूधकी क्रमशः २१ परतें चढ़ाकर सुखानेके बाद क्षारसूत्र तैयार होता है। क्षारसूत्रसे मस्सेको कसकर बाँध देते हैं। जिससे बँधे स्थानपर मस्सा कटता जाता है और घाव भी स्वतः ठीक होता जाता है। प्रत्येक सप्ताह क्षारसूत्र बदल दिया जाता है। क्षारसूत्र लगवानेके घंटे-दो-घंटे बाद सामान्य रूपसे कार्य किया जा सकता है। इस समय अर्शोघ्नी वटी, शोभांजन वटी लें तथा मस्सोंपर जात्यादि तेल लगाना चाहिये। हृदयरोग, मधुमेह, मोटापा, अल्सर और टी०बी०के रोगीको क्षारसूत्र नहीं लगाना चाहिये। पहले इन रोगोंकी चिकित्सा करनी चाहिये।

एलोपैथी—एलोपैथी चिकित्सा-पद्धतिमें क़ब्ज़के लिये विरेचक औषधियोंको देते हैं। शौचमें कष्ट दूर करनेके लिये कुछ मलहम आदिका प्रयोग करते हैं। रोगकी तीव्रावस्थामें मस्सोंका ऑपरेशन कर देनेपर आरोग्य हो जाता है। पथ्य-परहेज़ इसमें भी पर्याप्त मात्रामें अपेक्षित हैं। एलोपैथीमें इसका कोई स्थायी उपचार नहीं है। यह ध्यान रखना चाहिये कि एक बार स्वस्थ होनेके बाद अपने रहन-सहन और खान-पानको ठीक रखें, अन्यथा इस कष्टदायी रोगसे पुनः ग्रस्त होनेकी सम्भावना रहती है।

पथ्य—नेनुआ, तुरई, लौकी, मूली, खीरा, पपीता (कच्चा एवं पका), भिंडी, पुराना चावल, मूँगकी दाल, कुलथीकी दाल, बथुआ, करेला, टमाटर, सूरन, मिस्री, किशमिश, इलायची, मट्ठा, गोमूत्र, चोकरयुक्त आटेकी रोटी अर्शरोगमें हितकर है।

अपथ्य—खट्टा, मिर्च-मसाला, बासी एवं गरिष्ठ भोजन, पिट्ठी, उड़द, तले-भुने पदार्थ, कोहड़ा, बैगन, अरवी, बंडा, आलू, मल-मूत्र और अपानवायुके वेगोंको रोकना, दिवाशयन, अत्यधिक चलना-फिरना और परिश्रमसाध्य कार्य करना।

शिरावेध—एक दृष्टि

(डॉ० श्रीसुरेश्वरजी द्विवेदी एम्०ए०, पी-एच्०डी०, बी०ए० एम्०एस्०)

प्राचीन कालमें आयुर्वेद अत्यन्त उन्नत अवस्थामें था। सम्पूर्ण जीवधारी इसकी छत्रछायामें सुखपूर्वक रहते हुए अपने जीवनयापनमें अनुरक्त थे। समय-समयपर ऋषियोंने मानवका कल्याण करते हुए आयुर्वेदका बहुमुखी विकास किया; क्योंकि रोग रोगी व्यक्तिको दुर्बल करते हुए असमयमें ही उसके शारीरिक चेष्टाओंका नाश कर देता है तथा शरीरको कष्ट देते हुए इन्द्रियोंकी शक्तिका ह्रास कर पुरुषार्थ-चतुष्टयकी प्राप्तिमें बाधा उत्पन्न करके प्राणोंका हरण कर लेता है। अतः जीवोंके कष्टनिवारणार्थ जैसे आधुनिक चिकित्सा-पद्धति एक-एक रोगों तथा अङ्गोंके आधारपर अलग-अलग विभागोंमें विभक्त है, उसी प्रकार प्राचीन समयमें भी आयुर्वेद अपनी विकास-परम्परा एवं चिकित्सा-सौकर्यकी दृष्टिसे आठ अङ्गों—(१) शल्य, (२) शालाक्य, (३) काय, (४) भूतविद्या, (५) कौमारभृत्य, (६) अगदतन्त्र, (७) रसायनतन्त्र तथा (८) बाजीकरणतन्त्र—में विभक्त था।

महर्षि सुश्रुतकृत 'सुश्रुतसंहिता', आयुर्वेदीय चिकित्सकोंका हृदय है। जो वर्तमानमें हम लोगोंके सामने अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करती है। भारतीय महर्षि-परम्पराओंमें महर्षि सुश्रुत प्रधान चिकित्सक एवं शल्यकर्ता (प्लास्टिक सर्जन) माने जाते हैं। उन्होंने अपने गहन आयुर्वेदिक ज्ञानद्वारा वाराणसी ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण बृहत्तर भारतको गौरवान्वित किया था। आधुनिक युगमें विकसित चिकित्सापद्धति होनेके बावजूद सुश्रुतसंहिताकी चिकित्सापद्धति अत्यन्त सशक्त एवं अद्भुत है।

आयुर्वेदका मुख्य उद्देश्य

आयुर्वेदका मुख्य उद्देश्य है 'स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च॥' स्वस्थ व्यक्तिके स्वास्थ्यकी रक्षा करना तथा रोगीको रोगोंसे मुक्त करना आदि। इसी शृंखलाका प्रधान अङ्ग शिरावेध है। सुश्रुतसंहिताके शारीरस्थानके आठवें अध्यायमें शिरावेधका विस्तृत वर्णन है, जैसे—

अथातः शिराव्यधविधि शारीरं व्याख्यास्यामः॥ यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः॥

शिराका वेध या वेधन शिरावेध कहा जाता है। रक्तज एवं वातादि दोषोंसे रक्तके दूषित होनेपर रोगकी शान्ति-हेतु शिरावेध आवश्यक है। रोगोंके सम्बन्धमें देखा गया है कि जीर्ण ज्वर आदिमें अनेक चिकित्साओंके असफल होनेपर शिरावेधसे पूर्ण लाभ मिला। वातादिद्वारा रक्तके विकृत होनेपर शारीरिक एवं मानसिक रोग भी हो जाते हैं। अतः उन्माद, अपस्मार, मद, मोह, मूर्च्छा, हृदयके जकड़न आदि अनेक रोगोंमें उनकी शान्ति-हेतु शिरावेध आवश्यक है। शिरा सम्पूर्ण शरीरका रक्त संवहन करती है, अतः शिराओंमें वेधन करनेपर रोग शान्त हो जाता है। कुष्ठरोगके प्रारम्भमें यदि बार-बार रक्त-विस्रावण कर दिया जाय तो कुष्ठ शान्त हो जाता है, शिरावेधसे अनेक लाभ देखा गया है। स्वस्थ व्यक्तिको भी कभी-कभी शिरावेध कराते रहना चाहिये, उससे चर्म-रोग, ग्रन्थि-विकार तथा रक्तज रोग नहीं होते। रक्तज रोगोंके सम्बन्धमें कहा गया है—

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैरुपक्रान्ताश्च ये गदाः।
सम्यक् साध्या न सिध्यन्ति रक्तजान् तान् विभावयेत्॥

शीत, उष्ण, स्निग्ध एवं रूक्ष आदि औषधियोंसे चिकित्सा करनेपर सामान्य रोग भी जो ठीक नहीं होते, उन्हें रक्तज रोग समझ कर शिरावेधका स्मरण कर लेना चाहिये। गुल्म, प्लीहा आदि रोगोंमें वैद्य अपने अभ्यासके अनुसार रक्त-मोक्षण करे।

कुछ समय पूर्व एक चिकित्साशिविरमें अनेक रोगियोंकी शिरावेध-चिकित्साके आशातीत परिणाम सामने आये। सियाटिकाके अधिकाधिक रोगी तत्काल चलने-फिरने तथा आराम अनुभव करने लगे।

शिरावेधके समयके विषयमें इस प्रकारका वर्णन मिलता है—वर्षा-ऋतुमें जब आकाशमें बादल न हों, हेमन्तमें मध्याह्नमें, उष्णमें प्रातः या सायंका विधान है। अधिक दोष होनेपर थोड़ा-थोड़ा करके कई बार रक्त-मोक्षण करना चाहिये। मांसल स्थानोंमें यवके बराबर तथा अन्यत्र आधा यव वेध करना चाहिये। वेध होनेपर वायुसे दूषित रक्त कालापन एवं लाल तथा पित्तसे दूषित नीलापन या पीला,

कफसे दूषित हल्का सफेद एवं लाल तथा त्रिदोषमें गोमूत्र या क्वाथके रंगका निकलता है। शिरावेध शल्यतन्त्रमें आधी चिकित्सा है, जैसे—कायमें वस्ति-चिकित्सा।

अकुशल वैद्यद्वारा अधिक रक्त-विस्रावणसे कुप्रभाव

शिरःशूल—शिरोरोग, आँखके रोग एवं अन्धापन, तिमिर, धातुक्षय, आक्षेप, लकवा, अर्दित (मुखका लकवा), एक अङ्गमें वैषम्य, तृष्णा, दाह, हिचकी, कास, श्वास, पाण्डु आदि रोगोंमें अकुशल वैद्यकी चिकित्साद्वारा कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती है।

रक्त-विस्रावणसे अन्य लाभ

रक्ताधिक्ये रक्तमोक्षः पादे वह्नौ ललाटके।
कर्तव्यो रक्तरोगेषु कुष्ठिनां च विशेषतः॥

यदि रक्ताधिक्य या रक्तभार हो तो रोगीके बलाबल तथा रोगको देखकर पैर-हाथ या ललाटकी वेध्य शिराओंमें मर्मस्थानको बचाते हुए शिरावेध करे। रक्तमोक्षणसे रक्ताधिक्यमें बढ़ा हुआ रक्तदाब (ब्लडप्रेशर) घटता है तथा उसका विष भी (टाक्सिन्स) बहुत कुछ कम हो जाता है।

सुश्रुतके अनुसार रोग-स्थान एवं शिरावेध

पैरमें जलन (पाद-दाह), पाद-हर्ष, चिप, विसर्प, वातरक्त, एग्जिमा (विचर्चिका) तथा बेवाई (पाददारी)—इन रोगोंमें क्षिप्र मर्मसे दो अंगुली ऊपर शिरावेध करे। क्षिप्र मर्म दोनों हाथ तथा दोनों पैर, चौथी अंगुली एवं अँगूठेके मध्य कुछ अंदर होता है। श्लीपदरोग (फीलपाँव)-में अँगूठे एवं गुल्फके ऊपर शिरावेध करे। क्रोष्टुशीर्ष खंज, पंगुल तथा वात-वेदनामें पैरमें गुल्फके चार अंगुल ऊपर शिरावेध करे। अपचीमें इन्द्र-वस्ति मर्मके दो अंगुल नीचे, गृध्रसी (सियाटिका)-में जानु-सन्धिके चार अंगुल ऊपर या नीचे, गलगण्डमें ऊरु-मूलकी शिराका वेध करे। जबकि गलगण्ड-रोग (घेघा) गलेमें होता है, पर शिरावेध घुटनेके नीचे जंघामें करनेका विधान है। शिरा सर्वाङ्गशोधिनी होती है—ऐसा महर्षि सुश्रुतका कथन है। इस तरह दोनों हाथ तथा दोनों पैरोंमें शिरावेध समझना चाहिये। प्लीहारोगमें बायीं बाँहके बीच कूर्पर-सन्धिके समीप या पहली (कनिष्ठिका) और दूसरी (अनामिका)-के मध्य शिरावेध करे। इसी प्रकार यकृत् आदि उदर-रोग तथा कास-श्वासमें दक्षिण बाहुमें, विश्वाची रोगमें सियाटिकाके समान शिरावेध करे। परिवर्तिका, उपदंश, शूक और शुक्रके रोगोंमें मेहन (शिश्न)-के मध्यमें, मूत्रवृद्धिमें वृषणोंके बगलमें तथा उदकोदरमें नाभिके नीचे सीवनीके बायीं तरफ शिरावेध करे। विद्रधि और पार्श्वशूलमें वाम कक्षा तथा स्तनके बीच, बाहुशोष और अवबाहुक रोगमें कंधेके मध्यमें शिरावेध करनेका कई आचार्योंका मत है। तृतीयक ज्वरमें त्रिक-संधिके मध्यकी शिराका, चतुर्थक ज्वरमें पार्श्वमें स्कन्धसंधिके नीचे, अपस्मार (मृगी)-में हनुसंधिके मध्यमें, उन्मादमें शंख तथा केशान्त, संधिगत, वक्षःस्थल, अपाङ्ग और ललाटमें रहनेवाली मर्मरहित वेध्यशिराओंका वेध करे। जिह्वा और दन्तके रोगोंमें जीभके नीचे रहनेवाली शिराओंका, तालुके रोगोंमें तालुमें, कर्णपीड़ा और कानके रोगोंमें कानोंके ऊपर, चारों तरफ गन्धका ग्रहण न होनेपर और नाकके रोगोंमें नाकके अग्रभागमें शिरावेध करे। तिमिररोग, अक्षि-पाक आदि रोगोंमें नाकके समीप ललाटकी या अपाङ्गकी शिराओंका वेध करे। शिरारोग, अधिमन्थ आदि रोगोंमें इन्हीं शिराओंमें वेध करे।

शिरावेधके अधिकारी

अजानता गृहीते तु शस्त्रे कायनिपातिते।
भवन्ति व्यापदश्चैता बहवश्चाप्युपद्रवाः॥
(सुश्रुत० शारी० ८। २१)

शल्य-कर्ममें अज्ञ व्यक्ति—जिसे शल्यशास्त्रका पूर्ण ज्ञान नहीं है तथा जिसने विधिपूर्वक सुश्रुतसंहिताका शारीर-स्थान गुरुमुखसे पढ़ा नहीं है, वह यदि रोगीके शरीरपर शस्त्र चलाये तो पूर्वोक्त बहुत-से रोग उत्पन्न होते हैं तथा रोगीके शरीरको अत्यन्त कष्ट होता है और मृत्यु भी हो सकती है। अतः शिरावेधके ज्ञान-हेतु गुरु-सांनिध्यमें शिरावेध-कर्मका अभ्यास करना आवश्यक है। प्राचीन यूनानी चिकित्सा-पद्धतिमें भी शिरावेधका संक्षिप्त वर्णन प्राप्त होता है, यह रक्तविस्रावण-चिकित्सा अत्यन्त प्राचीन है।

भावरोगका संक्षिप्त विवेचन

(आयुर्वेदचक्रवर्ती श्रीताराशंकरजी वैद्य)

एक अमेरिकनने लिखा है कि 'यदि भावरोग समूल नष्ट न हो सका तो उत्तम स्वास्थ्यकी क्या उपयोगिता है? यह जन्म और मृत्युका रोग है तथा समस्त बीमारियोंकी जड़ है।'

प्रश्न मार्मिक है। इसपर संक्षेपमें यहाँ विचार किया जा रहा है।

भव-(ईश या शक्तिमान्)-के भावको 'भाव' कहते हैं और उसके पर्यायवाची शब्द ये हैं—सत्ता, स्वभाव, अभिप्राय, चेष्टा, आत्मा, जन्म, क्रिया, लीला, पदार्थ, बुध, जन्तु और विभूति एवं रति आदि।[१]

उपर्युक्त सभी शब्दोंके पृथक्-पृथक् अर्थ हैं। मूल भाव शब्द विद्वान् या ज्ञानवान्के अर्थमें प्रयुक्त है। तात्पर्य है कि शक्ति, सत्ता, विभूति और ज्ञान (भाव)-के रोगको 'भावरोग' कहते हैं। यहाँ गीताका आधार लेकर आयुर्वेददृष्ट्या उसका संक्षिप्त वर्णन उपस्थित है।

निदान

भावरोगके मुख्य कारण ये हैं—

अहंकार—किसीकी परिस्थितिपर विचार न करना, सभी कामोंका कर्ता अपनेको समझना, अधिकार जमाना, कठोर एवं क्रोधयुक्त वचन बोलना आदि कार्य अहंकारके कारण पुरुष करता है।[२]

नास्तिक्य—'परलोक है', 'ईश्वर एवं गुरुजन श्रेष्ठ हैं' ऐसा न समझनेसे समर्पण-बुद्धि समाप्त हो जाती है। परिणामतः उच्छृङ्खलता आ जाती है, जो सर्वपातकोंकी मूल है।[३]

प्रज्ञापराध—अहंकारी मात्र अपनेको ही श्रेय देता है। असफलताका दोष अन्योंपर मढ़ता है। तब उसका अहंकार बढ़ने लगता है। दूसरी ओर कटुता भी बढ़ती है। तथाकथित कर्ताकी बुद्धि मारी जाती है। बुद्धिका अपराध (प्रज्ञापराध) इसीको कहा गया है। इसके तीन भेद हैं—धी-विभ्रंश (बुद्धिनाश), धृति-विभ्रंश (धैर्यनाश) और स्मृति-विभ्रंश।[४]

ध्यान रहे कि अहंकार, नास्तिक्य एवं प्रज्ञापराधका परस्पर अविच्छिन्न सम्बन्ध है। ये परस्पर जनक और पूरक हैं। प्रज्ञापराधके तीनों भेदोंकी भी यही स्थिति है। प्रज्ञापराधी अपनेको सर्वथा सर्वश्रेष्ठ समझता है। वह बड़ा दुराग्रही भी होता है।

प्रज्ञापराधके कारणोंके निम्नलिखित कारण भी आते हैं—

दुस्साहस एवं नारियोंका अतिसेवन, ठीक समयको खो देना, कर्मोंका मिथ्यारम्भ, सदाचारका लोप, पूज्योंका अपमान, जान-बूझकर अहितकर कार्य करना, अनवसर और अदेशमें गमन, पतितोंसे मित्रता, सद्वृत्तका पालन न करना एवं दूसरोंको मना करना, ईर्ष्या-मान-भय-क्रोध-लोभ-मोह-मद-भ्रम और इनसे उत्पन्न मानसिक-शारीरिक कठिन कर्म करना।

सम्प्राप्ति

उपर्युक्त कारणों एवं विषयोंका ज्ञानेन्द्रियों और मनसे स्पर्श होता है। ये स्पर्श सभी दुःखोंके प्रवर्तक होते हैं। सुख-दुःखसे इच्छा-द्वेषात्मिका तृष्णा उत्पन्न होती है, जो सुखों एवं दुःखोंका कारण भी कही गयी है।[५]

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
सङ्गात् सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥

(गीता २।६२-६३)

अर्थात्—उपर्युक्त कारणों एवं विषयोंकी ओर बराबर ध्यान रहनेसे उनमें संग या लगाव उत्पन्न होता है। संगसे कामना या तृष्णा होती है। कामनापूर्ति न होनेपर क्रोध होता है। क्रोधसे सम्मोह और सम्मोहसे स्मृतिविभ्रम हो जाता है।

१- 'अमरकोश', प्रथम काण्ड, नाट्यवर्ग (रामाश्रमी)। २- गीता एवं चरक। ३- चरक सू०अ० ११।१५।
४- चरक शारीर० अ० १। ५- चरक शारीर अ० १।१३३-१३४

परिणामतः वह अपनेको, अपने कुल, जाति, समाज, देश और मान-मर्यादा आदिको भूल जाता है, तत्त्वज्ञानकी याद समाप्त हो जाती है, उसे अतत्त्वाभिनिवेश (महागद-चरक चि०अ० १०) हो जाता है। स्मृतिभ्रंशसे बुद्धिका नाश हो जाता है और अन्ततः प्रणाश—अच्छी तरह नाशकारी भावरोग हो जाता है।

सामान्य लक्षण

भावरोगी अपनेको बड़ा शक्तिशाली मानता है। आसुरी सम्पत्तिके लक्षण एवं चरक-शारीर-स्थान अध्याय एकमें प्रज्ञापराधके लक्षण भावरोगके सामान्य लक्षण हैं। भावरोगीकी एक विशेषता यह है कि वह देखनेमें स्वस्थ होगा, परंतु स्वयं बेचैन रहेगा और समाजको भी बेचैन किये रहेगा। दुराग्रही और दृढ़-निश्चयी होता है। अल्पश्रमसे फल भरपूर चाहता है। अन्ततः लक्ष्यसिद्धि या प्रतिकारके लिये अवाञ्छनीय कर्म करता है। कर्मका विपाक होने या अतिशय होनेपर फँस जाता है, तब प्रणाशको प्राप्त होता है। भावरोगी समझता है कि दूसरे न कुछ जानते हैं और न कुछ कर सकते हैं।

चिकित्सा

भावरोगके चिकित्सककी प्रज्ञाका प्रतिष्ठित होना आवश्यक है। सच्चे अर्थमें संन्यासी भावरोगकी उत्तम चिकित्सा कर सकते हैं; पर उनका मिलना कठिन है। यथासम्भव आप्त-शिष्ट चिकित्सकोंको भावरोगकी चिकित्सामें लगाना चाहिये। आप्त रजोगुण एवं तमोगुणरहित होता है, सर्वदा सत्य और संदेहरहित वाक्य बोलता है। भावरोगकी चिकित्सा सत्त्वविजय (मनपर विजय)-प्रधान होती है। सरल चिकित्सा-सूत्र और साधन ये हैं—

(१) निदान-परिवर्जन, (२) विचार-परिवर्जन, (३) विचार-विरेचन, (४) समर्पण, (५) परिणाम-ज्ञापन और (६) युक्त्याश्रयण।

याद रखें, कोई भी चिकित्सा (दण्ड-व्यवस्थाके अतिरिक्त) होनेपर भावरोगीको यह अनुभव न हो कि उसके भावरोगकी चिकित्सा हो रही है। यह कार्य बड़े कौशलसे होना चाहिये।

(१) निदान-परिवर्जन—भावरोगकी सूक्ष्मताको जानकर मनोवैज्ञानिक ढंगसे उसे कारणोंसे विरत करना चाहिये। स्थान-परिवर्तन अच्छा काम करता है। रोगीका अनादर, अवहेलना और अति आदर नहीं होना चाहिये। रोगीके संरक्षकका अकस्मात् अपंग या मानसरोगी हो जाना अथवा मर जाना स्वतः निदान-परिवर्जन कर देता है। परनारी-सेवनकी भावना, अपनी बहू-बेटीसे हुई तथा कथित व्यभिचार (बलात्कार नहीं)-के समाचारसे नष्ट हो जाती है। कतिपय आकण्ठलिप्त कामाचारी (मैनियाक) शरीर-रचनादोषसे ग्रस्त होते हैं। उनपर इसी दृष्टिसे विचार होना चाहिये।

(२) विचार-परिवर्जन—तमोगुणको रजोगुण, रजोगुण-को सत्त्वगुण एवं तमोगुण तथा रजोगुण दोनोंको सत्त्वगुणसे जीतना चाहिये। यहाँ गुणसे तात्पर्य गुणोत्पन्न विचारसे है। मेरा हित किसमें है? इस प्रश्नके उत्तरमें विचार करना आवश्यक है। तमोगुणके अन्धकारसे रजोगुणमें आनेपर रोगीको मानसिक झटका लगता है कि मैं क्या हूँ? तब सत्त्वगुणात्मक विचार-परिवर्जन होता है।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

और,

परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

—का अनुकरण करता है।

(३) विचार-विरेचन—परिवर्तित विचार पुनः उभड़कर भावरोग उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिये उनका विरेचन प्रायश्चित्त, दण्ड और विशेष सत्त्वगुणके उद्रेकसे करना चाहिये। अहितकर या भावरोगोत्पादक विचारोंके स्थानपर संन्यास (काम्य कर्मोंका त्याग) और स्वास्थ्यकर विचार काम करने लगते हैं। प्रायश्चित्तमें पछतावा एवं धार्मिक अनुष्ठान, दण्डमें शासकीय सामाजिक-आर्थिक दण्ड आदि परिगणित होते हैं। किस प्रकारसे विचार-विरेचन होगा—यह परिस्थितियोंपर निर्भर है।

(४) समर्पण—विवेकपूर्वक किसी देव, व्यक्ति, समष्टि और उद्देश्य (संकल्प)-के प्रति समर्पित भावना तथा उसका चिन्तन भावरोगको नष्ट करता है। याद रखें, समर्पणका परिणाम भावरोग-नाश तो है ही, पर इससे आत्मोदय और आत्मनाश दोनों हो सकता है। सब कुछ समर्पणके क्रम, प्रकार और परिस्थितिपर निर्भर है। याद रखें, यहाँ आस्तिकता या जी-हुजूरी होती है। भारतने बहुत सोच-समझकर आस्तिकताको पुण्य और नास्तिकताको पातक माना है।

(५) परिणाम-ज्ञापन—'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'के अनुसार कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता

है। यह भावना रोगीके हृदयमें आ जाय तो भावरोग दूर हो जाता है। परिणाम-ज्ञापनका प्रभाव उसके क्रम, प्रकार, कालपर निर्भर करता है। त्रुटि होनेसे रोग तो बढ़ता ही है, चिकित्सा और चिकित्सकके प्रति उपेक्षा और क्रोध उत्पन्न हो जाता है। इसलिये परिणाम-ज्ञापनमें शीघ्रता नहीं होनी चाहिये। रोगीके पुत्र या पत्नी आदिपर घटित अप्रिय घटनाओंका कारण उसके कर्मोंपर नम्रतापूर्वक थोपनेसे लाभ होता है। भारतमें रावण और दुर्योधन तथा विदेशोंमें हिटलर, मुसोलिनी, नेपोलियन आदि प्रसिद्ध उदाहरण रखने योग्य हैं। बड़े-से-बड़े डाकूका अन्त दुःखद होता है। भावरोगीके कर्मोंका परिणाम उसे और उसके प्रिय परिवारको अवश्य भुगतना पड़ेगा—यह विवेकपूर्वक ज्ञापित कर देना चाहिये।

(६) **युक्त्याश्रयण**—ऊपर भावरोगकी दैवबल व्यपाश्रय एवं सत्वावजय-चिकित्सा बतायी गयी है। अब आयुर्वेददृष्ट्या युक्ति-व्यपाश्रय-चिकित्सा वर्णित होगी। यह ध्यान रहे कि भावरोग मूलतः मानस-व्याधि है। उसमें ज्ञान-विज्ञान-धैर्य-स्मृति-समाधिसे सत्वावजय-चिकित्सा प्रभावकारी होगी। यह भी ध्यातव्य है कि कामसे वायु कुपित होता है। कफसे लोभ होता है और क्रोधसे पित्त कुपित होता है, तब खून खौलने लगता है। दिमाग गरम हो जाता है। आँखें लाल हो जाती हैं। काम और भयमें मांसपेशियोंके संकोचसे रोमाञ्च होता है। कुल मिलाकर मानस-दोषसे शारीरिक दोष एवं दृश्य प्रभावित होते हैं। अतः युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा भी करें। अतत्त्वाभिनिवेश और अपस्मारमें कही गयी चिकित्सा वमन-विरेचनको छोड़कर भावरोगमें लाभदायी होती है। यथासम्भव सौम्य और बुद्धिवर्धक प्रयोग करना चाहिये।

ओषधियाँ—पञ्चगव्य या महापञ्चगव्यघृतमेंसे किसी एकको ५ ग्रामसे लेकर १० ग्रामकी मात्रातक प्रातः ८ बजे और अपराह्न ४ बजे ब्राह्मीस्वरस २० ग्राम या शंखपुष्पी स्वरस २० ग्रामके अनुपानसे देनेसे लाभ होता है। केवल मीठा बच या मीठा कूटका चूर्ण १ ग्रामकी मात्रासे प्रातः-सायं उपर्युक्त अनुपानोंसे प्रयोग करनेसे भी लाभ होता है।

उत्तम कपूर बरास (अभावमें देशी ढोंकावाला कपूर) लोभ-काम-क्रोध (कफ, वात, पित्त)-में लाभदायी है। १२५ मि० ग्रा०से लेकर २५० मि०ग्रा० तककी मात्रा दिन-रातमें एक बार या दो बार पर्याप्त है। चीनी या पेड़ाके भीतर अथवा कैप्स्यूलमें डालकर सादा जल या उपर्युक्त किसी स्वरस १० ग्रामसे लेना चाहिये। ऊपरसे एक घण्टातक दूध नहीं पीना चाहिये। तीन दिनसे अधिक लगातार प्रयोग करनेसे नपुंसकता होगी, जो छोड़ देनेसे ठीक हो जायगी।

पथ्य—सादा सात्त्विक आहार, गोदुग्ध, घी, दही, छेना मधुर पदार्थ विशेष हितकारी हैं। सौम्य, नमकीन पदार्थ, दाल-भात, रोटी-तरकारी आदि भी पथ्य हैं। सद्वृत्तका अनुपालन, राग-द्वेषरहित विचार पथ्य है।

अपथ्य—राजस और तामस आहार, उष्ण, कटु, तीक्ष्ण, चरपरा, बासी, अपवित्र आहार, मांस-मदिरा अपथ्य हैं। एकान्तमें विपरीत लिंगी अपथ्य हैं। बुरे और अपराधी प्रवृत्तिके लोगोंसे बचना चाहिये।

साध्यासाध्य—नम्रता, आस्तिकता, समर्पण-भावना आदि लक्षणोंका उदय और चिकित्सा-सुलक्षण साध्य लक्षण हैं। इनके विपरीत और चिकित्साका उलटा परिणाम क्रूरता आदि दुर्गुणोंमें वृद्धि, मद्य, आमिषमें अधिक प्रवृत्ति असाध्य लक्षण हैं।

आरोग्य-लक्षण

सत्त्वलक्षणसंयोगो भक्तिर्वैद्यद्विजातिषु।
साध्यत्वं न च निर्वेदस्तदारोग्यस्य लक्षणम्॥[1]

और भी—

आरोग्याद् बलमायुश्च सुखं च लभते महत्।
इष्टांश्चाप्यपरान् भावान् पुरुषः शुभलक्षणः॥[2]

याद रखें कि निर्वेदका तात्पर्य अनुत्साह और आत्मामें अनवज्ञासे है। भावरोगसे बचने और निकलनेके ये उपाय सम-सामयिक युगमें नितान्त आवश्यक हैं। मनुष्यका कल्याण भावरोगसे निर्मुक्त होकर वास्तविक स्वास्थ्यसे ही सम्भव है।



१- चरक० इन्द्रियस्थान १२।८७; २-चरक० इन्द्रियस्थान १२।८८।

'एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि'

(श्रीश्यामनारायणजी शास्त्री सा०र०, रामायणी)

जिस प्रकार स्थूल शरीरमें अनेक प्रकारके रोग होते हैं, उसी प्रकार सूक्ष्म शरीरमें भी अनेक प्रकारके रोग होते हैं। श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें श्रीगरुड़जी श्रीकाकभुशुण्डिजीसे कहते हैं—

मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई॥

इसपर श्रीभुशुण्डिजी कहते हैं—

सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा॥

मानसरोगोंका परिचय देते हुए सर्वप्रथम समस्त मानसरोगोंका मूल मोहको सिद्ध करते हुए वे कहते हैं—

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।

अर्थात् समस्त व्याधियोंका मूल—आदि कारण मोह ही है और इसीसे सभी व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। वास्तवमें अविवेकताका मूल कारण देहाभिमान—अज्ञान ही है। शोक अज्ञानसे होता है। शरीरादिमें अहंबुद्धि मात्र अज्ञानसे ही होती है—

'यदा नाहं तदा मोक्षो यदाऽहं बन्धनं तदा'।

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥

जन्म-मरण-रूप संसार हर्ष, शोक, भय, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा आदि सभी मिथ्या अहंकार-भावके कारण ही होते हैं।

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥

सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।

जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ॥

जिस प्रकार स्थूल शरीर वात, पित्त तथा कफके आधारपर आधारित है, उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर भी कामरूपी वात, क्रोधरूपी पित्त तथा लोभरूपी कफके आधारपर स्थित है। इन्हीं तीनोंकी प्रधानतासे ही स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरकी समस्त व्यवस्था चलती है। इनकी समस्त क्रियाओं एवं व्यवस्थाओंका वर्णन मानसमें काकभुशुण्डिजीने गरुड़जीके सम्मुख किया है। इनका क्रमशः परिचय दिया जा रहा है। सर्वप्रथम समस्त व्याधियोंका मूल मोहका वर्णन किया गया है तथा मोहसे अनेक प्रकारके उत्पन्न होनेवाले शूलोंका भी स्पष्टीकरण हुआ है। यथा—

तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥

जिस प्रकार आयुर्वेदमें रोगोंका मूल कारण कुपित मलको बताया गया है—'**सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः।**'

वैसे ही व्याधियों एवं मनोविकारोंका मूलहेतु मोह बताया गया है—

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।

मोह अविवेकको कहते हैं, जिससे प्राणी अपने यथार्थ स्वरूपको भूलकर इस शरीरको ही आत्मा मानता है। अविवेकताका मूल कारण देहाभिमान ही है। देहाभिमानसे ही अज्ञान उत्पन्न होता है। जन्म, मृत्यु, जरा आदि अवस्थाएँ अज्ञानसे ही होती हैं। इसी कारण मोहको समस्त व्याधियोंका मूल कहा गया है।

दैहिक (बाह्य) रोग एवं उनके नाम—वात, पित्त, कफ, संनिपात, दाद-खुजली, क्षय, कुष्ठ, डमरुआ (गाँठका रोग), नहरुआ (नसोंका रोग), जलोदर, तिजारी, वातज्वर, शीतज्वर आदि।

एक साथ ही दैहिक तथा मानसिक रोगोंका लक्षण एवं प्रभाव—कामको वातरोग, लोभको कफरोग तथा क्रोधको पित्तरोग कहा गया है—

काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥

कामकी उपमा वातसे दी गयी है—यह कफ और पित्तको जहाँ ले जाता है, वहीं जाकर मेघकी भाँति वर्षा करता है। आयुर्वेदमें यही वर्णन किया गया है—

पित्तः पंगुः कफः पंगुः पंगवो मलधातवः।

वायुना यत्र नीयन्ते तत्र वर्षन्ति मेघवत्॥

काम-बात—कामका एक अर्थ है काम। इसे स्मर, मनसिज, मनोज आदि नामोंसे जाना जाता है। दूसरा अर्थ है कामना। इस लोकमें इसकी प्रसिद्धि अभिलाषा, मनोरथ, इच्छा, आशा आदि नामोंसे है।

प्रथम कामका अर्थ है स्मर। इसकी जगत्‌में बड़ी महिमा है। इसके बिना सृष्टिका कार्य ही नहीं चल सकता। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें स्वयं कहा—

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥

शास्त्रीय परम्परानुसार इसका निर्वाह करनेसे लोक-परलोक दोनों ही बनते हैं। अमर्यादित रूपसे इसकी सर्वत्र निन्दा भी की गयी है।

काम (कामना)-का दूसरा अर्थ—विषयी प्राणीको रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श-सम्बन्धी नाना-प्रकारके मनोरथोंका होते रहना। उनकी पूर्ति आजतक संसारमें किसीको सर्वांशमें नहीं हो पायी। फिर भी प्रायः सभीको अहर्निश मनोरथ-चाहना सभी प्रकारसे होती चली आ रही है। गीताके द्वितीय अध्यायमें इसकी विशद व्याख्या की गयी है। विषयोंका चिन्तन करते-करते विषयोंमें आसक्ति हो जाती है। उससे उस विषय-प्राप्तिकी कामना, कामना न सिद्ध होनेपर क्रोध, क्रोधसे कर्तव्याकर्तव्यके विवेकका अभाव, उससे सत्कर्तव्य करनेकी स्मृतिका नाश, पश्चात् इन्द्रिय-विजयका विवेक नष्ट होनेसे आत्मज्ञान प्राप्त करानेवाली दृढ़ बुद्धिका नाश और अन्तमें बुद्धिनाश होनेपर विषयी संसार-सागरमें ही डूब जाता है।

वासना जिसके जीवनमें होती है, उसे दुःख देती है। एककी पूर्तिसे ही दूसरीका जन्म होता है। विषयी प्राणी सोचता है हमने भोगोंको भोग लिया। वास्तवमें बात उलटी ही होती है। विषयोंने विषयी प्राणीको भोग लिया—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।

परम प्रतापी चक्रवर्ती नरेन्द्र महाराज ययातिने अपने जीवनका अनुभव गम्भीर रूपसे इस प्रकार वर्णन किया है—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

अर्थात् विषयोंके उपभोगसे कामनाओंकी शान्ति नहीं होती, अपितु जलती हुई अग्निमें घी डालनेकी भाँति उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। गोस्वामी तुलसीदास भी इसी बातको कहते हैं—

बुझै कि काम अगिनि तुलसी कहुँ, बिषय-भोग बहु घी ते।

इसकी शान्तिका एकमात्र उपाय है संतोष—

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥

'कफ लोभ अपारा'-जैसे स्थूल शरीरमें कफका पार नहीं, वैसे ही मानसिक शरीरमें लोभका भी पार नहीं। विषय-प्राप्तिकी प्यासको ही तृष्णा कहते हैं। यह प्यास कभी भी मिटती नहीं। जितनी भी मिलती जाय उत्तरोत्तर उतनी ही बढ़ती जाती है। समस्त अङ्ग ही वृद्धावस्थामें शिथिल हो जाते हैं, किंतु तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है—

जीर्यन्ते जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येत तृष्णैका तरुणायते॥
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।

वास्तवमें सर्वगुणसम्पन्न होनेपर भी थोड़ेसे भी लोभके कारण प्राणीकी शोभा उसी प्रकार शिथिल हो जाती है, जैसे सुन्दर शरीरमें श्वेत कुष्ठ हो जाय—

स्वल्पोऽपि तान् हन्ति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम्।

गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥

'क्रोध पित्त नित छाती जारा'—मानसिक शरीरमें क्रोधको पित्त कहा गया है। क्रोध अग्नि है। यह जिस शरीरमें रहता है, सर्वप्रथम उसीको जलाता है। फिर जिस-जिसका स्पर्श करता है वह भी बिना जले नहीं रह सकता। गर्म लोहेकी छड़से प्रहार करनेपर प्रथम अपना हाथ जलेगा फिर स्पर्श जिसका होगा उससे वह भी जलेगा ही। क्रोधरूपी पित्तरोग सदा छातीको जलाता रहता है। क्रोधको शान्तिसे ही जीता जा सकता है।

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥

जैसे दैहिक रोग कफ, वात और पित्त—तीनों प्रधान हैं, वैसे ही मानसिक शरीरमें कामरूपी वात, कफरूपी लोभ और पित्तरूपी क्रोध—ये तीनों प्रधान हैं। वैसे तो ये अकेले भी मानस-शरीरको पर्याप्त हानि पहुँचानेमें समर्थ हैं और यदि तीनों एक साथ हो जायँ तो अत्यन्त दुःख देनेवाला संनिपात रोग उत्पन्न कर देते हैं। जैसे त्रिदोषजन्य संनिपातमें प्राणी विमोहको प्राप्तकर अज्ञानी हो जाता है और रोम-रोममें सहस्रों सूई चुभानेके समान कष्ट होता है, वैसे ही काम, लोभ तथा क्रोधसे उत्पन्न व्यामोहमें प्राणीकी वाणी भी अव्यवस्थित—अविचारपूर्वक निकलती है।

सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भएसि कालबस खल मनुजादा॥

'ममता दादु कंडु इरषाई'—अर्थात् ममतारूपी दाद और ईर्ष्यारूपी खुजली—ये दोनों मानस-रोग हैं। ममतारूपी दाद जो खुजलानेमें हर्ष और बादमें दर्द होता है। शरीरसे उत्पन्न बाल-बच्चों तथा सम्बन्धियोंमें तथा इस जगत्के प्रति ममता होती है।

ममता केहि कर जस न नसावा॥

ईर्ष्या खुजली रोग है। जैसे छोटी-छोटी फुंसियाँ खुजलीमें होती हैं और उनके खुजलानेमें सुख बादमें दाह होता है, वैसे ही ममता और ईर्ष्यामें अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिमें सुख और अप्राप्तिमें दाह होता है। इसी प्रकारसे हर्ष-विषाद अनेक प्रकारके ग्रह भी हैं।

'पर सुख देखि जरनि सोइ छई'—पराये सुखको देखकर जलना यह क्षयी रोग है। यह रोग खलोंकी गणनामें आता है—

खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी॥

संसारमें किसीकी उन्नति देखकर खलोंके हृदयमें सदा जलन होती रहती है, वह जाती नहीं। ऐसे ही क्षयी रोग भी शीघ्रतासे जाता नहीं, असाध्य होता है। खल किसीके भी सुखको देखकर सदा जलते रहते हैं।

'कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई'—दुष्टता—मनकी कुटिलता यह कुष्ठरोग है। कुष्ठरोग सब रोगोंकी अपेक्षा सब प्रकारसे घृणित माना जाता है। इससे शरीर बिगड़ जाता है, शरीरसे दुर्गन्ध आती है। कोई कुष्ठीको अपने पास बैठने नहीं देता। इसी प्रकार कुटिल व्यक्ति भी समाजमें निन्दित हो जाता है। उससे सम्पर्क कोई भी नहीं करना चाहता। उसके संसर्गसे दूसरे भी कुटिलता सीख जाते हैं, इसलिये कुटिलताको कुष्ठरोग कहा गया। यह भी परम कष्टसाध्य रोग है।

'अहंकार अति दुखद डमरुआ'—अहंकार ही अत्यन्त दुःख देनेवाला डमरुआ (गलगण्ड) रोग है। गलेमें बँधा हुआ शोथ जो गलेकी सीमासे आगे बढ़कर गलेमें लटकता है। उसे ही गलगंड (घेघा)-रोग कहते हैं। गलगंडके रोगीको गलेमें सूई चुभनेकी-सी असह्य पीडा होती है। रोग बढ़ जानेसे श्वास लेनेमें भी कष्ट होता है। गला ऊँचा-ऊँचा करके परम अभिमानीकी भाँति विवश होकर चलना पड़ता है। इसीलिये गोस्वामीजी कहते हैं—

संसृत मूल सूलप्रद नाना । सकल सोक दायक अभिमाना॥

इसके हो जानेसे अहंभाव-सा दिखायी देता है।

'दंभ कपट मद मान नेहरुआ'—दम्भ, कपट, मद, तथा मान—ये सब नहरुआ रोग हैं। ये स्नायुज रोग हैं। नहरुआरोग रोगीके अस्थिगत होकर वेदना करते हुए सूत्राकार कीटके रूपमें पाँवसे निकलते हैं। दम्भ, कपट, मद तथा मान आदि मनोमय कोशमें रहकर प्राणीको महान् कष्ट देते हैं। इसी कारण भगवान् भी कहते हैं—

मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

'तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी'—विषय-प्राप्तिकी कामनाको तृष्णा—प्यास कहते हैं। यह प्यास कभी मिटती नहीं, दिनों-दिन बढ़ती ही जाती है। शरीरके अन्य अवयव घटते जाते हैं केवल उदर ही बढ़ता जाता है। इसे ही उदर-वृद्धि (जलोदर)-रोग कहा जाता है। आहार-विहारके अव्यवस्थित हो जानेसे मेदा बढ़ जाता है। पेट भी फूलकर ढोलकके समान हो जाता है। अन्तर-कोषसे सम्बद्ध होनेके कारण बड़ी वेदना होती है। इसी प्रकार तृष्णाद्वारा वृद्धि उत्तरोत्तर होनेसे प्राणीको सब प्रकारसे महान् कष्ट झेलना पड़ता है। उसका मूल कारण जलोदर (उदर-वृद्धि) तृष्णा ही है। सुन्दरदासजीने इसका विशद वर्णन इस प्रकार किया है—

जो दस बीस पचास भये सत, होइ हजार तु लाख मँगैगी।
कोटि अरब्ब खरब्ब असंख्य, पृथ्वीपति होन की चाह जगैगी॥
स्वर्ग पताल को राज करौ, तृस्ना अधिकी अति आग लगैगी।
सुंदर एक सँतोष बिना सठ, तेरी तो भूख कबौं न भगैगी॥

'त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी'—सुत, वित्त और लोकमान्यता यही त्रिविध एषणा कही जाती है। इन तीनोंसे ही सारा संसार ग्रसित हैं। इन्हीं तीनों एषणाओंको तरुण तिजारीसे उपमा दी गयी है। क्योंकि तरुण तिजारीरोग बड़े वेगसे जाड़ा देकर आता है। इसी प्रकार त्रिविध एषणाओंमें भी रह-रहकर बड़ी जडता उत्पन्न हो जाती है और अति कठिनतासे छूट पाती है। यह परम कष्टसाध्य रोग है।

'जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका'—मत्सर तथा अविवेक दोनों ज्वर हैं। देह, इन्द्रिय एवं मनको परम ताप पहुँचानेवाले सभी रोगोंके शिरोमणि और बलवान् रोग ज्वर हैं। प्रथम जो शंकरके कोपसे उत्पन्न हुआ माहेश्वर-ज्वर—आम-ज्वर (मलेरिया) उसके आठ भेद हैं। उसके पश्चात् श्रीकृष्णभगवान्‌के कोपसे जो उत्पन्न हुआ वह विषम-ज्वर, वैष्णव-ज्वर (टाइफॉइड) शीतज्वरके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

जिस प्रकार स्थूल शरीरमें आम-ज्वर एवं विषम-ज्वर होता है, उसी प्रकार सूक्ष्म शरीरमें अविवेक एवं मात्सर्यरूपी ज्वर हैं। दोनों ही देहेन्द्रिय-मनस्तापी हैं। इसी

कारण दोनों आम तथा विषम-ज्वरसे उपमित किये गये हैं।

मानस-रोगमें राग, द्वेष, हर्ष, विषाद, सुख, दुःख, संयोग, वियोग, भय, प्रीति, ईर्ष्या, ग्लानि, मत्सर, अविवेक आदि सब मानस-रोग हैं और—

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि॥

एक व्याधिके हो जानेपर रक्षा होनी कठिन हो जाती है, फिर यहाँ तो एक-एक असाध्य अनेकों व्याधियाँ हैं और सभी सबको हैं, फिर जीव किस प्रकारसे इन रोगोंसे छुटकारा पाये—इस प्रकार समझाते हुए रोगोपचारके विषयमें कहते हैं—

नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान॥

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान—ये नियम हैं। श्रुति-स्मृति-सदाचारानुकूल आचरण ही आचार है, स्वधर्मानुष्ठान तप है, समदर्शित्व ज्ञान है, देवताओंके प्रीत्यर्थ द्रव्य-दान यज्ञ है, मन्त्रका बार-बार पाठ जप है, अपना स्वत्व हटाकर दूसरोंके स्वत्वका स्थापन करना दान है, इनका पालन करना धर्म है। ये सभी मानस-रोगोंकी औषधि हैं।

पथ्यापथ्य-विचार—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ, कपट-पाखंडादि समस्त विषयोंसे शास्त्रके अनुशासनके अनुसार ज्ञानके सेवन तथा बचावका उपाय ही करना पथ्यापथ्य है। मानस-रोगके लिये ये विषय ही कुपथ्य हैं। ये मुनियोंके हृदयमें भी थोड़ा-सा अवसर पाकर क्षोभ उत्पन्न कर देते हैं, फिर सामान्य जनोंकी तो बात ही क्या?

बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे॥

उत्तम वैद्य—*'सदगुर बैद बचन बिस्वासा'*—जिस प्रकार वैद्य रोगीकी नाडी देखकर रोगको पहचानकर रोगीकी अवस्था और व्यवस्थाके अनुसार औषधिका विधान करता है, उसी प्रकार मानसरोगोंको पहचानकर उपचार करनेवाले सद्गुरु देव ही हैं। वे स्वयं ही अपने शिष्यरूपी रोगीके मानसिक रोगोंका तारतम्य सम्यक् प्रकारसे समझ कर 'भवरोगवैद्यम्' के नाते—

अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू॥

अमृतमयी संजीवनी मूलका सुन्दर चूर्ण देते हैं जिससे—

दैहिक, दैविक, भौतिक ताप—त्रितापका सपरिवार नाश करके रोगीको अनुपानपूर्वक स्वस्थ करते हैं। किंतु रोगीको भी यह ध्यान रखना परमावश्यक होगा कि वह सद्गुरु वैद्यके बताये वचनपर—

संजम यह न बिषय कै आसा।

संयमका पूर्ण पालन कर सके। जिस भाँति रोगीको कुपथ्यसे बचना आवश्यक है, उसी भाँति साधकको भी विषयकी आशाका परम परित्याग सब प्रकारसे परमावश्यक है।

उत्तम संजीवनी बूटी तथा अनुपान—

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥

भगवान्‌की भक्ति ही संजीवनी बूटी है और अति सुन्दर श्रद्धा ही अनुपान है। इस सुव्यवस्थाके द्वारा ही रोग नष्ट हो सकते हैं, अन्यथा करोड़ों यत्नोंसे भी नहीं होंगे।

जिस प्रकार असाध्य रोगोंकी शान्ति संजीवनी बूटीसे ही हो पाती है, उसी प्रकार मानसरोगोंको निर्मूल करनेमें भगवदाराधन ही परमावश्यक है। यह वेद-पुराणरूपी परम पावन पर्वतसे ही प्राप्त हो पाती है। वैद्यरूपी सद्गुरु ही इसे जानते हैं कि किस साधक (रोगी)-को इस बूटीका कितनी मात्रामें और किस अनुपानके साथ दिया जाय।

उत्तमोत्तम संजीवनी बूटीका प्रभाव एवं प्रमाण—यह उत्तम संजीवनी बूटी भगवान्‌की भक्तिके अन्तर्गत—*'मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा'*के रूपमें ही है।

निरामयं रामरसायनं पिब,
श्रीरामनामामृतमन्त्रबीजसंजीवनी चेन्मनसि प्रविष्टा।
हालाहलं वा प्रलयानलं वा मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतो भीः॥

इस राम-नामरूपी संजीवनीका पान करके ही शङ्कर-भगवान्‌ने हालाहल विषका पान कर लिया और निर्भयरूपसे उसे भी महत्त्व दिया—

हालाहलं विषं घोरं संजग्राहामृतोपमम्।

प्रभाव क्या था—

नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥

भक्त प्रह्लाद, भक्तिमती मीरा, तुलसी, कबीर आदिके जीवनका सर्वस्व-सार-स्वरूप यही था। विशेष क्या भगवान् धन्वन्तरि जब समुद्र-मन्थनसे प्रकट हुए और समस्त ऋषि-देवताओंको औषधि, रोग-निदान, उपचारादिका सब वर्णन करनेके पश्चात् एक ही महौषधि समस्त ही रोगोंपर समान और सफल रूपमें कार्य करनेवाली कौन है?

इसपर कहा—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी भी यही कहते हैं—

जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।

स्वस्थताके लक्षण—

जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई॥

जिस प्रकार स्थूल शरीरमें उत्तम स्वस्थताका लक्षण निरोगी होकर भूखका लगना है, उसी प्रकार मानस-शरीरकी स्वस्थताका भी लक्षण रोग-निवृत्त हो जानेपर तीव्र भूख लगना है। यहाँ तीव्र भूख क्या है? सुमतिरूपी क्षुधा। संजीवनी-भक्तिसे कुमतिका नाश होकर हृदयमें विराग-बल बढ़ता है, तब सुमतिरूपी भूख तीव्रतासे बढ़ती है। परिणामतः सांसारिक प्रपञ्चोंसे विराग और भगवच्चरणानुराग दोनों ही एक साथ बढ़ते हैं और फिर साधक कृतकृत्य हो जाता है सुमति भूख प्राप्तकर। क्योंकि—

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।

यही रोग-विनिर्मुक्त मनका वास्तविक लक्षण है।

रोग-विनिर्मुक्त-स्नान—

बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई॥

साधक (रोगी) विशुद्ध ज्ञान-जलसे जब स्नान करता है तभी श्रीरामभक्ति उसके हृदयमें छा जाती है। प्राणी जब पूर्ण स्वस्थ हो जाता है तो गर्म-जलसे स्नान करता है। साधककी आरोग्यताका लक्षण प्रबल वैराग्य है। सुमतिरूपी भूख लगी, उसका सेवन निरन्तर करते हुए, आशा-तृष्णाका त्याग करते हुए, प्रबल वैराग्य बढ़ाते हुए, विमल ज्ञान-जलसे स्नान करते हुए, श्रीरामभक्तिसे हृदय सराबोर करते हुए, भगवत्प्राप्ति करके जीवन कृतकृत्य हो जाता है—

तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिरानें नेमु॥

आगे फिर—

निरामयं रामरसायनं पिब।

-की कोटिमें धन्य होकर लक्ष्य-सिद्धि कर लेना है।



भगवन्नाम-स्मरणसे रोग-निवारण

(डॉ० श्रीभीष्मदत्तजी शर्मा)

आजकल मानव-जीवनमें दिन-प्रतिदिन रोगोंका प्रकोप बढ़ता जा रहा है। नयी-नयी औषधियाँ भी आविष्कृत हो रही हैं और साथ-ही-साथ रोग भी बढ़ते ही जा रहे हैं। नये-नये रोग उत्पन्न होकर लोगोंको संत्रस्त कर रहे हैं। कैंसरकी समुचित चिकित्सा अभी भी जहाँ सम्भव नहीं हो पायी कि एड्स-जैसा भयंकर रोग संसारमें फैलता दिखायी दे रहा है। उच्च-निम्न रक्तचाप, हार्ट-अटैक, मधुमेह और पक्षाघात आदि न जाने कितने प्रकारके रोग आज मानव-जातिको पीड़ित किये हुए हैं। प्रतिदिन विश्वमें हजारों लोग इन भयंकर रोगोंसे मृत्युका ग्रास बन रहे हैं, परंतु चिकित्सा-विज्ञान आजतक इनके निवारणकी समुचित व्यवस्था नहीं कर पाया है। कारण स्पष्ट है कि आज संसारमें नास्तिकताका प्रभाव बढ़ता जा रहा है और ईश्वर, धर्म एवं शास्त्रसे विश्वास उठता जा रहा है। सनातन धर्ममें भगवन्नाम-स्मरणको सब प्रकारके रोगोंके निवारणका सरलतम तथा श्रेष्ठतम उपाय बताया गया है। यह वचन इस सम्बन्धमें उल्लेखनीय है—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

अर्थात् औषधिके रूपमें अच्युत, अनन्त तथा गोविन्द—इन नामोंका उच्चारण करनेसे सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, यह मैं सत्य कहता हूँ, सत्य कहता हूँ।

नाम-जप

पुरीपीठके ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्री स्वामी निरंजनदेवतीर्थजी महाराज तथा इसी पीठके वर्तमान जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्री स्वामी निश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराजके अनुसार उक्त श्लोकमें भगवान्‌के तीन नामों—अच्युत, अनन्त और गोविन्दका उल्लेख है। इन तीन नामोंका स्मरण (जप) इस प्रकार करना चाहिये—अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः। इन नाम-मन्त्रोंका जप उठते-बैठते, सोते-जागते, चलते-फिरते सभी अवस्थामें करते रहनेसे सभी प्रकारके रोगोंसे तथा शारीरिक एवं मानसिक कष्टोंसे मनुष्यको मुक्ति मिल जाती है। इतना ही नहीं, इनका जप करते रहनेसे अनेक लौकिक कार्योंमें

भी सफलता मिलती है। भगवान् धन्वन्तरिके आदेशसे भगवान्‌के इन तीनों नाम-मन्त्रोंके जपसे सब प्रकारकी सफलता प्राप्त होती है और अकाल मृत्यु भी टल जाती है। यह अमोघ मन्त्र है। आबाल, वृद्ध, नर-नारी सभीको आधि-व्याधिसे मुक्त रहनेके लिये इन नाम-मन्त्रोंका यथाशक्ति जप करते रहना चाहिये।

कर्मसिद्धान्त

भगवन्नाम-स्मरणसे रोग-निवृत्ति होनेके रहस्यको जाननेके लिये हमें शास्त्र-प्रतिपादित कर्मसिद्धान्तको समझना आवश्यक है। शास्त्रोंकी यह मान्यता है कि पूर्व जन्मके शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार ही हमें जीवनमें सुख-दुःख, रोग-शोक तथा दारिद्र्य आदि प्राप्त होते हैं। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने इसीलिये कहा है—

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥

अर्थात् ईश्वरने संसारमें कर्मकी प्रधानता रखी है। अतः जो व्यक्ति जैसा (शुभाशुभ) कर्म करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। शुभ कर्मका शुभ फल और अशुभ कर्मका अशुभ फल होता है। हमारे शरीरमें जो भी रोग होते हैं, उनका कारण हमारे पूर्व जन्ममें अथवा इस जन्ममें किये हुए पापकर्म ही होते हैं। भगवन्नाम-स्मरण करनेसे पाप नष्ट होने लगते हैं और उसीके फलस्वरूप पापजन्य रोग भी निवृत्त होने लगते हैं। इसीलिये शास्त्रोंमें नित्यप्रति नियमितरूपसे भगवन्नाम-स्मरण करते रहनेको कहा गया है। वस्तुतः हरिनामके स्मरण करने अथवा जप करनेमें पाप-क्षयकी अपार शक्ति है। यही कारण है कि संत लोग सदा हरिनाम-स्मरण करते रहते हैं।

भगवच्छरणागति

श्रीमद्भगवद्गीता आदि शास्त्रोंमें भगवच्छरणागतिका बार-बार उपदेश भी इसीलिये दिया गया है कि जिससे व्यक्तिद्वारा जाने-अनजाने किये हुए पापकर्मोंका क्षय होता रहे और व्यक्ति निष्पाप बना रहे, उसे रोग आदि पीड़ित न कर सकें। गीतामें भगवान् कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(१८।६६)

अर्थात् समस्त कर्तव्य कर्मोंका त्याग करके तुम मुझ एक परमात्माकी शरणमें आ जाओ। मैं तुम्हें सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तुम शोक मत करो। भगवन्नाम-स्मरणका भी यही फल है। इसीलिये सभी शास्त्रोंमें विभिन्न देवी-देवताओंके स्तोत्रोंका पाठ करनेका फल पाप-मुक्ति बताया गया है। 'श्रीदुर्गासप्तशती' (१२।२१-२२)-में माँ भगवती दुर्गा स्वयं अपने मुखारविन्दसे कहती हैं कि 'उत्तम सामग्रियोंद्वारा पूजन करनेसे, ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे, होम करनेसे, प्रतिदिन अभिषेक करनेसे, नाना प्रकारके अन्य भोगोंका अर्पण करनेसे तथा दान देने आदिसे एक वर्षतक जो मेरी आराधना की जाती है, उससे मुझे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी प्रसन्नता मेरे इस उत्तम चरित्रका एक बार श्रवण करनेमात्रसे हो जाती है। श्रवण किया हुआ यह माहात्म्य पापोंका हरण करता है और आरोग्य प्रदान करता है'—

विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम्।
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या॥
प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते।
श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति॥

'श्रीराम जय राम जय जय राम'

—इस मन्त्रका जप एवं स्मरण करनेसे मनुष्यको सब प्रकारकी सुख-शान्ति प्राप्त होती है। उसके पापोंका क्षय होता है और उसे रोगनिवृत्तिका सुख प्राप्त होता है। एक बार ज्योतिष्पीठके ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य अनन्तश्री स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराजने लेखकको बताया था कि यह अमोघ मन्त्र है। इसका जप करते रहनेसे व्यक्तिको रोगादि पीड़ित नहीं कर पाते हैं। अतः कल्याणकामीको सदैव इस मन्त्रको जपते रहना चाहिये। 'श्रीरामरक्षास्तोत्र'-में लिखा है—

रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन्।
नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥
भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम्।
तर्जनं यमदूतानां रामरामेति गर्जनम्॥

वस्तुतः 'रामनाम'में पाप-हरण करनेकी असीम शक्ति है। जिस प्रकार अग्नि स्पर्श होते ही जला देती है, उसी प्रकार रामनाम-स्मरण करते ही पापोंका क्षय होने लगता है और साथ ही पापजन्य रोग भी शान्त होने लगते हैं। महर्षि वाल्मीकि तो अपने जीवनके पूर्वार्धमें सप्तर्षियोंके उपदेश करनेपर भी 'राम' शब्दका उच्चारण नहीं कर पाये

थे और उन्होंने 'राम' शब्दके स्थानपर 'मरा-मरा' जपा, उसीसे वे विशुद्ध-चित्त हो अलौकिक शक्तियोंसे सम्पन्न हो गये, व्याधियोंसे मुक्त हो गये तथा रामायण महाकाव्यके रचयिता हुए। गोस्वामी तुलसीदासजी 'रामचरितमानस' में लिखते हैं—

उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

नासै रोग

'हरि' शब्दका सामान्य अर्थ है हरण करनेवाला अर्थात् जो मनुष्योंके पापोंका, दुःखोंका तथा कष्टोंका हरण करता है, वह हरि है। इसी कारण जब-जब भक्तोंपर संकट आये, तब-तब भगवान् हरिने उनका निवारण किया। भगवान् हनुमान् रुद्रावतार हैं। कल्याण करनेके कारण ही उन्हें शिव-शङ्कर कहा जाता है। उन्होंने हनुमान्के रूपमें अवतार लेकर भगवान् श्रीरामकी लीलाओंमें महत्त्वपूर्ण भूमिकाका निर्वाह किया। 'श्रीहनुमानचालीसा' की यह पंक्ति सदैव जपने एवं स्मरण करने योग्य है—

नासै रोग हरै सब पीरा। जपत निरंतर हनुमत बीरा॥

अर्थात् जो भक्त वीर हनुमान्के नामका निरन्तर जप करते रहते हैं, उनके रोगोंका तो नाश होता ही है, साथ ही सब पीडा भी दूर हो जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि यदि हम श्रद्धापूर्वक भक्तिके साथ शास्त्रोक्त रीतिसे भगवान्के पावन नामका स्मरण करते हैं तो निश्चय ही पाप दग्ध हो जाते हैं और रोगोंकी निवृत्ति हो जाती है तथा भगवत्कृपाका अनुभव भी हो जाता है।



रामनाम—सब रोगोंका अचूक इलाज

(महात्मा गाँधी)

प्राकृतिक उपचारके इलाजोंमें सबसे समर्थ इलाज रामनाम है, इसमें अचम्भेकी कोई बात नहीं। एक मशहूर वैद्यने अभी उस दिन मुझसे कहा था—'मैंने अपनी सारी ज़िंदगी मेरे पास आनेवाले बीमारोंको तरह-तरहकी दवाकी पुड़िया देनेमें बितायी है, लेकिन जब आपने शरीरके रोगोंको मिटानेके लिये रामनामकी दवा बतायी, तब मुझे याद पड़ा कि चरक और वाग्भट-जैसे हमारे पुराने धन्वन्तरियोंके वचनोंसे भी आपकी बातको पुष्टि मिलती है।' आध्यात्मिक रोगोंको (आधियोंको) मिटानेके लिये रामनामके जपका इलाज बहुत पुराने जमानेसे हमारे यहाँ होता आया है। लेकिन चूँकि बड़ी चीजमें छोटी चीज भी समा जाती है, इसलिये मेरा यह दावा है कि हमारे शरीरकी बीमारियोंको दूर करनेके लिये भी रामनामका जप सब इलाजोंका इलाज है। प्राकृतिक उपचारक अपने बीमारसे यह नहीं कहेगा कि 'तुम मुझे बुलाओ तो मैं तुम्हारी सारी बीमारी दूर कर दूँ।' वह तो बीमारको सिर्फ यह बतायेगा कि प्राणिमात्रमें रहनेवाला और सब बीमारियोंको मिटानेवाला तत्त्व कौन-सा है? किस तरह उस तत्त्वको जाग्रत् किया जा सकता है और कैसे उसको अपने जीवनकी प्रेरक शक्ति बनाकर उसकी मददसे अपनी बीमारियोंको दूर किया जा सकता है? अगर हिन्दुस्तान इस तत्त्वकी ताकतको समझ जाय, तो आज हमारा जो देश बीमारियों और कमजोर तबीयतवालोंका घर बन बैठा है, वह तन्दुरुस्त और ताकतवर शरीरवाले लोगोंका देश बन जाय।

रामनामकी शक्तिकी अपनी कुछ मर्यादा है और उसके कारगर होनेके लिये कुछ शर्तोंका पूरा होना जरूरी है। रामनाम कोई जंतर-मंतर या जादू-टोना नहीं। जो लोग खा-खाकर खूब मोटे हो गये हैं और जो अपने मोटापेकी और उसके साथ बढ़नेवाली बादीकी आफतसे बच जानेके बाद फिर तरह-तरहके पकवानोंका मजा चखनेके लिये इलाजकी तलाशमें रहते हैं, उनके लिये रामनाम किसी कामका नहीं। रामनामका उपयोग तो अच्छे कामके लिये होता है। बुरे कामके लिये हो सकता होता, तो चोर और डाकू सबसे बड़े भक्त बन जाते। रामनाम उनके लिये है, जो दिलके साफ हैं और जो दिलकी सफाई करके हमेशा साफ-पाक रहना चाहते हैं। भोग-विलासकी शक्ति या सुविधा पानेके लिये रामनाम कभी साधन नहीं बन सकता। बादीका इलाज प्रार्थना नहीं, उपवास है। उपवासका काम पूरा होनेपर ही प्रार्थनाका काम शुरू होता है, गोकि यह सच है कि प्रार्थनासे उपवासका काम आसान और हलका

बन जाता है। इसी तरह एक तरफसे आप अपने शरीरमें दवाकी बोतलें उड़ेला करें और दूसरी तरफ मुँहसे रामनाम लिया करें, तो वह बेमतलब मजाक ही होगा। जो डॉक्टर बीमारकी बुराइयोंको बनाये रखनेमें या उन्हें सहेजनेमें अपनी होशियारीका उपयोग करता है, वह खुद गिरता है और अपने बीमारको भी नीचे गिराता है। अपने शरीरको अपने सिरजनहारकी पूजाके लिये मिला हुआ एक साधन समझनेके बदले उसीकी पूजा करने और उसको किसी भी तरह बनाये रखनेके लिये पानीकी तरह पैसा बहानेसे बढ़कर बुरी गति और क्या हो सकती है? इसके खिलाफ रामनाम रोगको मिटानेके साथ-ही-साथ आदमीको भी शुद्ध बनाता है और इस तरह उसको ऊँचा उठाता है। यही रामनामका उपयोग है और यही उसकी मर्यादा।

[प्रेषक—श्रीशिवकुमार गोयल]



मानस-रोग एवं उनके उपचार

('मानस-मराल' डॉ० श्रीजगेशनारायणजी शर्मा)

श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें मानस-रोगोंका वर्णन पूज्यपाद् गोस्वामीजीने विस्तारके साथ किया है। संशयग्रस्त गरुडजी रामकथा-श्रवणके पश्चात् कृतार्थताका अनुभव करते हैं। पुनः भुशुण्डिजी महाराजके चरणोंमें प्रणामकर सात प्रश्न निवेदित करते हैं—

प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा। सब ते दुर्लभ कवन सरीरा॥
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी। सोउ संछेपहिं कहहु बिचारी॥
संत असंत मरम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु॥
कवन पुन्य श्रुति बिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कराला॥
मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बग्य कृपा अधिकाई॥
(७।१२१।३—७)

मानस-रोग श्रीगरुडजी द्वारा पूछे गये प्रश्नोंमें अन्तिम और सातवाँ प्रश्न है। अन्य प्रश्नोंका उत्तर भुशुण्डिजीने संक्षेपमें दिया है, लेकिन मानस-रोगोंका उत्तर विस्तारके साथ दिया है—

सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा॥
मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना॥
(७।१२१।२८—३२)

गरुडजीके इन सात प्रश्नोंको सुनकर मनमें कौतूहल होता है कि इतनी मधुर अमृततुल्य रामकथा-श्रवणके उपरान्त भी उनकी जिज्ञासा पूर्णरूपसे शान्त नहीं हुई तथा उन्होंने भुशुण्डिजीके समक्ष सात प्रश्न रख दिये—*'सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी।'*

होना तो यह चाहिये था कि रामकथाकी समाप्ति मधुर-रससे होती—'मधुरेण समापयेत्' पर वैसा न होकर मानस-रोगोंके उपचारसे गोस्वामीजी समापन करते हैं, क्योंकि प्रश्नकर्ता गरुडजी स्वयं मानस-रोगसे ग्रस्त हैं। गरुडजी ज्ञानी हैं, भक्त हैं और भगवान्‌के नित्य पार्षद हैं। जब वे मोह-मायासे ग्रस्त हो सकते हैं तो सामान्य मनुष्यकी क्या बिसात है—

ग्यानी भगत सिरोमनि त्रिभुवनपति कर जान।
ताहि मोह माया नर पावँर करहिं गुमान॥
(७।६२ (क))

महाकविने रामकथाका समापन मानस-रोगोंकी चर्चासे की, इसके पीछे उनका गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है। रामकथा केवल मनोरंजन और श्रवण-सुखद ही नहीं है, अपितु समस्त भवरोगोंकी दुर्लभ औषधि भी है—

बिषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा। श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा॥

लेकिन इससे ऊपर उठकर वे घोषणा करते हैं—

बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥
× × ×
त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन॥
(१।३५।६—१०)

रामकथा श्रवण-सुखद और मनको अतिरंजित करनेवाली तो है ही, लेकिन यह विमल कथा मंगलकरनी और

कलिमलहरनी भी है—

मंगल करनि कलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की॥

(१।१० (छं०))

ऐसे तो मानसिक रोगोंकी लम्बी सूची गोस्वामीजीने प्रस्तुत की है लेकिन उनकी दृष्टिमें तीन रोग अति प्रबल है—

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥

(३।३८ (क))

तीनों रोगोंकी व्याख्या करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं—

काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥

(७।१२१।३०-३१)

यों तो मानसिक रोगोंकी संख्या अपार है लेकिन उनमें तीन ही प्रधान हैं। भगवान्ने गीतामें इनको रजोगुणसे उत्पन्न होनेवाला कहा है—

'काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।'

(गीता ३।३७)

गोस्वामीजीने कामको वातरोग, लोभको कफजनित रोग तथा क्रोधको पित्तजनित रोग कहा है। शरीरकी संरचनामें वात, कफ और पित्तका महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये सम अवस्थामें रहते हैं तो शरीर स्वस्थ रहता है, लेकिन इनके विषम होते ही शरीर रोगोंका डेरा बन जाता है।

मानसिक रोगोंकी भी यही दशा है। काम, क्रोध और लोभ यदि मर्यादामें रहें तो जीवात्माको कोई खतरा नहीं। लेकिन जब तीनों कुपित होकर विषम हो जाते हैं तो सन्निपातका होना अनिवार्य है—

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई॥

एक ही रोग मृत्युके लिये पर्याप्त है, फिर ये अनन्त व्याधियाँ भला जीवको कहाँ शान्तिसे रहने देंगी? मानस-रोगोंसे ग्रस्त पुरुष भला समाधिको कैसे प्राप्त करेगा—

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि॥

(७।१२१ (क))

समाधिकी बात तो बहुत दूर है, मानसिक रोगी कभी सामान्य सुख-शान्तिका अनुभव भी नहीं कर सकता है। वह त्रितापोंकी ज्वालामें निरन्तर जलता ही रहता है।

मानसिक रोगीकी एक विलक्षण विशेषता यह है कि वह स्वयंको रोगी नहीं मानकर सामनेवालोंको रोगी मानता है। अतः जबतक रोगीको अपने रोगका ज्ञान नहीं होगा तबतक वह उसका उपचार भी नहीं करायेगा।

रोगका ज्ञान होनेपर वह निदानके लिये तत्पर होता है लेकिन ये रोग इतने प्रबल हैं कि क्षीण तो हो जाते हैं लेकिन समूल नष्ट नहीं होते—

जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी॥

(७।१२२।३)

बल्कि कुपथ्यका जल पाकर पुनः अंकुरित हो जाते हैं—

बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे॥

(७।१२२।४)

मानसिक रोगोंसे सारा संसार ही ग्रस्त है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि सभीके हृदयमें कुण्डली मारे बैठे हैं। इनका विस्फोट कब हो जायगा इसका अनुमान लगाना भी मुश्किल है। जब बड़े-बड़े मुनियोंके मनको ये मथित कर देते हैं तो फिर बेचारे सामान्य मानवकी क्या बात है?

वेदशास्त्रोंमें मानसिक रोगोंसे मुक्त होनेके अनेक उपाय बतलाये गये हैं, अनेक औषधियोंका वर्णन है लेकिन ये जटिल रोग जाते नहीं—

नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान॥

(७।१२१ (ख))

मानस-रोगोंसे मुक्तिके दो सुगम उपाय हैं—

(१) भगवान्की कृपा तथा

(२) सद्गुरुद्वारा बतलाये गये उपायोंका दृढ़तापूर्वक पालन करना।

राम कृपाँ नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संयोगा॥
सदगुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा॥
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥

(७।१२२।५—८)

ईश्वरकी कृपा भी मिल गयी, सद्गुरुके वचनोंपर विश्वास भी हो गया, किंतु अभी औषधि तो मिली ही नहीं। मात्र रोगके ज्ञान होने और निदान होनेसे रोग नष्ट नहीं होते। उसके लिये औषधि अनिवार्य है। मानस-रोगोंकी एकमात्र औषधि भगवान्‌की भक्ति है—

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥
(७।१२२।७-८)

रोग नष्ट हुआ कि नहीं इसकी पहचान क्या है? तो जब संसारका आकर्षण छूट जाय और हृदयमें वैराग्यका बल बढ़ जाय तब समझना चाहिये कि रोगी मानस-रोगोंसे मुक्त हो गया—

जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई।
(७।१२२।९)

लेकिन मात्र वाणीका वैराग्य नहीं, श्मशान घाटका वैराग्य नहीं अथवा क्षणिक वैराग्य नहीं, बल्कि जब हृदयमें प्रबल वैराग्य हो जाय, तब मानना चाहिये कि हम रोगमुक्त हो गये। किंतु यह प्रभुकृपाके बिना सम्भव नहीं।



भवरोगसे मुक्तिका उपाय—तत्त्वज्ञान

(आचार्य डॉ० श्रीउमाकान्तजी 'कपिध्वज')

स्वरूपकी विस्मृति होनेके कारण वासनाके वशीभूत हुआ जीव भीषण असाध्य रोगोंका क्रीडास्थल बना हुआ है। सद्वैद्यके अभावमें वह दैहिक, दैविक एवं भौतिक रोगोंसे मुक्ति नहीं पाता। स्वयंके अविचारसे वह दुःखी है। आचार्य शंकरके शब्दोंमें 'बिना विचार किये जिस-किसी साधनको पकड़ लेनेका फल मुक्तिसे वञ्चित रहना और अनर्थकी प्राप्ति है।[१] अतएव वास्तविक सुखकी प्राप्ति-हेतु उत्तम साधनकी खोज करनी चाहिये और वह साधन है 'तत्त्वज्ञान'।[२] योगवासिष्ठमें वसिष्ठजी पथभ्रष्ट जीवका मार्गदर्शन करते हुए तत्त्वज्ञानको ही उत्तम साधन बताते हुए कहते हैं—'तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छा सबके लिये अत्यन्त आवश्यक है, जिससे फिर कभी जन्म-मरण आदि दुःखोंकी प्राप्ति न हो।'[३] क्योंकि वासनाका क्षय, परमात्माका यथार्थ ज्ञान और मनोनाश—इन तीनोंका एक साथ दीर्घकालतक प्रयत्नपूर्वक अभ्यास किया जाय तो ये परमपदरूप फल देते हैं।[४]

श्रीवसिष्ठजी दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि 'अध्यात्म-विद्याकी प्राप्ति, साधुसंगति, वासनाका सर्वथा परित्याग और प्राण-स्पन्दनका निरोध—ये युक्तियाँ चित्तरूपी संसारपर विजय पाने एवं सुखी होनेके लिये निश्चित दृढ़ उपाय है।'[५] जिस पुरुषकी बुद्धि संसारवासनावश देह और इन्द्रियके द्वारा भोगने योग्य अयोग्य वस्तु—विषयभोगमें आसक्त होती है तथा जिसके मनमें कभी मोक्षकी आकांक्षा नहीं जाग्रत् होती, वह मन्दबुद्धि मनुष्य मनुष्य नहीं प्रत्युत कुजा अथवा कीड़ा है।[६] अतः सत्पुरुषोंके साथ शास्त्र-चिन्तन करनेसे जिसका देहाभिमान नष्ट हो गया है, उसे तत्त्वका बोध हो जानेसे सर्वव्यापक आत्माका स्वरूप विदित हो जाता है। वह समझ जाता है कि भवरोगसे छुटकारा पानेके

१. अविचार्य यत्किञ्चित् प्रतिपद्यमानो निःश्रेयसात् प्रतिहन्येतानर्थं चेयात्। (शारीरकभाष्य १।२।२)

२. तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो जानेसे जाग्रत्-कालमें जो राग और वासनासे रहित सुषुप्ति-अवस्था प्राप्त होती है, उसे तत्त्वज्ञ पुरुष 'स्वभाव' कहते हैं तथा उसमें परिनिष्ठित हो जाना 'मुक्ति' कहलाती है। ऐसी निष्ठा प्राप्त हो जानेपर तत्त्वज्ञानी (ब्रह्मज्ञानी)-को कर्ता, कर्म और करणसे हीन द्रष्टा, दृश्य और दर्शनसे शून्य तथा बाह्य और आभ्यन्तर-विषयोंसे रहित ब्रह्म जगत्-रूपसे स्थित जान पड़ता है अर्थात् जगत् ब्रह्म-स्वरूप ही प्रतीत होता है। इस कारण उसके समस्त भवरोग नष्ट हो जाते हैं।

३. योगवाशिष्ठ नि०उ० २१।१०

४. वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशा महामते। समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फलदा मुने॥ (योगवा०उप० ९२।१७)

५. योगवा० उ० ९२।३५-३६

६. योगवा० नि०प्र०उ० ९५।२६ (क्योंकि वह भोगरूपी गंदी चीजको पसंद करता है, मनुष्य तो वही है जो मोक्षके लिये प्रयत्नशील है।

लिये आत्मज्ञान (तत्त्वज्ञान) ही यथेष्ट औषधि है; क्योंकि आत्माके ज्ञानसे भव-बन्धन नष्ट हो जाते हैं[१] और विज्ञ पुरुष परम विद्यारूपी नौकासे भयजनक—प्रखर वेगवाहिनी सांसारिक दुर्वासना-निचयादिरूप नदियोंको पार कर लेता है।[२] आत्मज्ञानी शोक-सागरसे पार हो जाता है।[३] उस परमात्माको जानकर ही मृत्युका उल्लंघन किया जा सकता है, मुक्ति-प्राप्तिका अन्य मार्ग नहीं है।[४] क्योंकि निर्मल आत्मस्वरूपका ज्ञान प्राप्त हो जानेपर जो लौकिक दुःख और सुखसे रहित अक्षय परमानन्दरूपता होती है वही मोक्ष है। परमानन्दरूपता शरीरके रहने या न रहनेपर भी समानरूपसे उपलब्ध होती है।

वास्तवमें सृष्टि नामसे कुछ भी नहीं है, शास्त्रोंमें जो कुछ सृष्टिका वर्णन आया है वह अद्वैत-तत्त्वको बोधगम्य करानेके लिये ही है।[५] जिस नाम-रूपात्मक विचित्र संसारको हम देखते हैं, वह परमात्माका विलासस्वरूप है। विष्णुपुराण (२। १६। ३३) एवं श्रीमद्भागवत (११। २। ४१)-में भी इसीकी पुष्टि की गयी है। उस चैतन्यस्वरूप परमात्माने अपनेको अनेक रूपोंमें देखनेकी इच्छा की इसीसे जगत्की उत्पत्ति हुई।[६]

जिस प्रकार समुद्रमें जलराशिका स्फुरण होनेपर ही उसमें भँवर उठते हैं, उसी प्रकार विशुद्ध चिदाकाशका अपने सत्य-संकल्पके अनुसार जो स्फुरण है, वही जगत् है।

प्रभुके संकल्पसे ही इस जगत्का निर्माण हुआ है[७] तथा संकल्प-शून्यतासे ही इसे नष्ट किया जा सकता है। परमात्म-चैतन्यमें, समुद्रमें जलराशिकी भाँति वस्तुतः चिदात्मक जगद्भावोंका जो अकस्मात् भान होता है उसे मनीषी संकल्प कहते हैं। अहम्-भावना (आत्माको देह मान लेना) ही कल्पना है तथा आत्माको आकाशके समान अपरिमित, अनन्त और व्यापक जानकर परमात्माके वास्तविक स्वरूपका निरन्तर चिन्तन करना तत्त्वज्ञ पुरुषोंके मतमें कल्पना या संकल्पका त्याग कहलाता है।

श्रीमद्भागवतमें नारदजीने धर्मराजको बताया है कि 'संकल्पोंके परित्यागसे कामको, कामनाओंके त्यागसे क्रोधको, संसारी लोग जिसे 'अर्थ' कहते हैं उसे अनर्थ समझकर लोभको और तत्त्वके विचारसे भयको जीत लेना चाहिये।'[८] संकल्पके क्षय हो जानेपर जब चित्त गलित हो जाता है तब संसारकी भ्रान्तिभावना नष्ट हो जाती है।[९] अर्थात् देह, इन्द्रिय और प्राणोंके साथ जो आत्मभ्रान्ति है, जिससे जगत् सत्य प्रतीत होता है वह नष्ट हो जाती है।

भगवान् शंकराचार्यजी महाराज मनको ही सारे अनर्थोंकी जड़ मानते हुए कहते हैं—'जगत्को किसने जीता? जिसने मनको जीता।'[१०] तभी तो कहा गया है कि हाथोंसे हाथोंको मसलकर और दाँतोंसे दाँतोंको पीसकर अङ्गोंके पराक्रमद्वारा मनको जीतना चाहिये। मनको जीतकर ही संसारपर विजय प्राप्त की जा सकती है।[११] क्योंकि मन ही बन्धन और मोक्षका हेतु है।[१२] अतः मनसे ही मनका पाशरूप बन्धन काटकर संसारसे आत्माको तारा जा सकता है और किसीके द्वारा वह तारा नहीं जा सकता।[१३]

१. ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः। (श्वेता० १। ११)
२. ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि। (श्वेता० २। ८)
३. 'तरति शोकमात्मवित्' (छान्दोग्य ७। २। ३)
४. 'तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः' (अथर्ववेद १०। ८। ४४, ऋक्० १। १६७। २२)
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। (यजुर्वेद ३१। १८)
५. 'अद्वैततत्त्वबोधाय सृष्टिः सर्वत्र कथ्यते' (अनुभूतिप्रकाश ९। ४५) छान्दोग्योपनिषद् (६। ८। ४)
६. 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति' (छान्दोग्य० ६। २। ३) 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' (ब्रह्मसूत्र २। १। ३३)
७. 'संकल्पमात्रकलनेन जगत्समग्रम्' (वराहोप० २। ४५)
८. असंकल्पाज्जयेत् कामं क्रोधं कामविवर्जनात्। अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात्॥ (श्रीमद्भा० ७। १५। २२)
९. संकल्पसंक्षयवशाद्गलिते तु चित्ते, संसारमोहमिहिका गलिता भवन्ति। (योगवा०उत्पत्ति०महो० ५। ५३)
१०. 'जितं जगत् केन मनो हि येन'। (प्रश्नोत्तरी ११)
११. हस्तं हस्तेन सम्पीड्य दन्तैर्दन्तान् विचूर्ण्य च। अङ्गान्यङ्गैः समाक्रम्य जयेदादौ स्वकं मनः॥ (मुक्तिकोप० २। ४२)
१२. मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः। बन्धनं विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मनः॥ (त्रिपुरातापिन्यु० ५। ३)
१३. मनसैव मनश्छित्त्वा पाशं परमबन्धनम्। भवादुत्तारयात्मानं नासावन्येन तार्यते॥ (महोप० ४। १०७)

'दृश्य-प्रपञ्च है ही नहीं'—इस भावनासे चित्त जब सर्वथा क्षीण हो जाता है, तब उस समान-स्वरूप चैतन्यकी सबमें समान-भावसे व्यापक स्वतःसिद्ध सत्ता ही सत्ता- सामान्य-अवस्था होती है। ब्रह्ममें मन स्वाभाविक ही रहता है, पर जैसे तरङ्गमें तरङ्ग-बुद्धि करनेसे वह तरङ्ग-भावमें प्रतीत होती है और तरङ्गमें जल-बुद्धि करनेसे उसमें सामान्य जल-बुद्धि होती है; ऐसा पुरुष जल और तरङ्गके भेदसे विमुक्त निर्विकल्प कहा जाता है; वैसे ही मनकी मन-भावना करनेसे वह मन-रूपमें परिणत हो संसारके निर्माण और दुःखका कारण होता है, पर मनकी ब्रह्म-भावना करनेसे वह सर्वत्र ब्रह्म-दर्शनकी क्षमता प्रदान करता है और ऐसा पुरुष निर्विकल्प हो जाता है।

सब भूतोंमें एक ही आत्मा है। वह ज्ञानीको एक रूपमें तथा अज्ञानीको जलमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमाकी भाँति अनेक रूपोंमें दिखायी देता है। इस प्रकार एक ही आत्मा अस्ति-भाति-प्रियरूप सच्चिदानन्दके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वही पिण्डोपाधिसे रहित होनेसे आत्मा तथा ब्रह्माण्डोपाधिसे रहित होनेसे 'ब्रह्म' शब्दसे व्यवहृत है। जिस प्रकार घटाकाश और महाकाशमें घटकी उपाधि ही रुकावट है और उपाधिके नष्ट होनेपर घटाकाश तथा महाकाशकी एकता हो जाती है, उसी प्रकार सर्वात्मभावकी जागृति होनेपर सब कुछ ब्रह्म ही हो जाता है। इससे साधकको सदा, सर्वत्र, सब नाम-रूपोंमें भगवद्दर्शन या आत्मदर्शन होने लगते हैं।

सम्प्रति, तरल होनेके कारण जिस प्रकार जल ही अपनेमें आवर्त-रूपसे प्रतीत होता है, उसी प्रकार चित्तरूप होनेके कारण आत्मा ही जगत्-सा प्रतीत होता है। जगत् इससे भिन्न कुछ भी नहीं है। समस्त एषणाओंकी शान्ति हो जानेपर विशुद्ध चित्-पुरुषकी जो स्थिति है, उसीको सत्य आत्म-तत्त्व कहा गया है और उसीको निर्मल चैतन्य कहते हैं। विशुद्ध तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जानेपर इस सम्पूर्ण विश्वका अपने-आपमें और अपने-आपका सारे विश्वमें अनुभव करना सुलभ हो जाता है तथा भव-रोगोंसे सुगमतापूर्वक छुटकारा प्राप्त हो जाता है।



रोग-निवारणके अनुभूत सिद्ध प्रयोग एवं सत्य घटनाएँ

अनुभूत प्रयोग

(१) जुकाम

जुकामसे बार-बार आक्रान्त होनेकी व्याधि असंख्यों नर-नारियोंमें पायी जाती है। इसका कारण है आहार-विहारका प्रदूषण, भोजनमें अम्ल और मधुर रसोंका अतिसेवन। खट्टे, नमकीन, चटपटे, गुड़, बूरा, अन्यान्य मिठाइयाँ एवं फास्ट फूड्सके अतिसेवनसे रस धातु दूषित हो जाती है अथवा इसकी अतिशय वृद्धि हो जाती है। उपद्रवस्वरूप स्नोफीलिया, रेस्पिरेटिरी, एलर्जी एवं ब्रांकियल अस्थमा-यक्ष्मामें परिणत होती है। पाश्चात्त्य चिकित्सा-पद्धति एलोपैथीमें इससे स्थायी रूपसे छुटकारा पानेके लिये अबतक कोई चिकित्सा नहीं है। यहाँ एक आयुर्वेदिक सिद्ध-योग दिया जा रहा है, जिससे रोगियोंको लाभ मिलेगा—

रसमाणिक्य २० ग्राम, महालक्ष्मीविलास ५ ग्राम, अभ्रकभस्म सहस्रपुटित २ ग्राम, लघु बसन्तमालती ५ ग्राम, बृहत् शृंगाराभ्ररस १० ग्राम, प्रवालपिष्टि १० ग्राम, तालीसादि चूर्ण ५० ग्राम, पुष्करमूल चूर्ण ५० ग्राम।

इन समस्त औषधियोंको एक घंटा खरलकर चालीस पुड़िया बना लें। १-१ पुड़िया सुबह-शाम मधुसे लें। दशमूलारिष्ट और द्राक्षारिष्ट २-२ चम्मच दूना जल मिलाकर खानेके बाद लें। अगस्त्य हरीतकी १ चम्मच रातको १० गिलास उष्ण जलसे लेनेके बाद आधा किलो० गोदुग्ध पीवें। दुग्धमें २ बड़ी पीपर उबालकर पीवें। पित्त प्रकृति हो तथा उष्णता अधिक प्रतीत हो तो एक छोटी पीपर उबालकर पीवें। आवश्यकतानुसार २ से ४ मासतक इनके सेवनसे जीवनभरके लिये जुकामसे निवृत्ति हो जाती है।

(२) रक्तचापकी वृद्धि

यदि आप उच्च रक्तचापके जीर्ण रोगी हैं एवं नियमित रूपसे एलोपैथी दवाएँ लेनी पड़ती हैं तो साथमें निम्न प्रयोग भी करें। स्थायी रूपमें उच्च रक्तचापसे मुक्ति पा लेंगे—

जटामांसी ३०० ग्राम लेकर उसमें ३० हिस्से करें। रातको १० ग्राम जटामांसी १०० ग्राम पानीमें भिगो दें। प्रातः मसलकर छान लें और २ चम्मच मधु मिलाकर पीवें। पथ्यापथ्यका ध्यान रखते हुए साठ दिनके सेवनद्वारा रोगसे पूर्ण छुटकारा मिल जायगा।

(३) पेटके रोगोंके लिये दो योग

(क) वर्तमान युगमें पेटके रोगोंकी बहुतायत है। इनमें जीर्ण-प्रवाहिका (क्रानिक एमीबिक डिसेन्ट्री)-के रोगियोंकी संख्या तो विश्वमें करोड़ोंमें है। इस व्याधिके

निवारणार्थ एक सिद्ध प्रयोग दिया जा रहा है—

सत ईसबगोल ३ ग्राम, जीरा सफेद १ ग्राम, इलायची खुर्द आधा ग्राम, इन्द्र जौ कड़वी २ रत्ती, कुड़ासक १ ग्राम सुबह-शाम पानीसे लें। पेटमें वायु अधिक हो तो ४-४ रत्ती मस्तंगी मिला दें।

(ख) पेटकी गैस—कलईका बढ़िया सूखा चूना लेकर ग्वारपाठेके रसमें घोंटकर २-२ रत्तीकी गोली बनाकर छायामें सुखा लें। २-२ गोली दिनमें २ या ३ बार लें। साधारण दिखनेवाला यह प्रयोग गुणमें अद्वितीय है।

(४) शय्या-मूत्र

अनेक लोगोंको और प्रायः बच्चोंको शय्या-मूत्रकी आदत पड़ जाती है। रातको उड़दकी खड़ी दाल एक मुट्ठी पानीमें भिगोकर रख दें। सुबह पानी निकालकर थोड़ी शक्कर डाल दें। इसे चबा-चबाकर खायें। इससे एक महीनेमें रोगसे छुटकारा मिल जायगा।

(५) पेशाब रुकनेपर

गर्मीके तीव्र आघातसे मूत्रावरोध हो जाता है। इसके लिये—शीशमकी पत्ती ५० ग्राम, सांभर नमक १० ग्राम दोनोंको पीसकर पेडूपर लेप करनेसे १०-२० मिनटमें पेशाब हो जायगा।

[वैद्य श्रीशिवकुमारजी शर्मा आचार्य पी-एच्०डी०, नाड़ी एवं जटिल रोग विशेषज्ञ श्रीपीताम्बरा बगलामुखी शक्ति अनुष्ठान पीठ एवं आयुर्वेद सिद्ध चिकित्सा आश्रम, एत्मादपुर—२८३२०२ (आगरा)]

~~~~

घटनाएँ

(१)

गोमाताकी कृपासे मैं असाध्य रोगोंसे मुक्त हुआ

(श्रीसोहनलालजी बगड़िया)

कई वर्ष पुरानी बात है। ग्रह-दशा या किसी पूर्वजन्मके संस्कारके कारण मैं शारीरिक तथा मानसिक दृष्टिसे बीमारियोंके चंगुलमें फँसता चला गया, जिसके कारण अहर्निश अशान्त एवं अव्यवस्थित-चित्त रहा करता और साथ ही मेरी चिन्ता भी बढ़ती जा रही थी। चौबीसों घंटेकी इस चिन्ताने मेरे शरीरको जर्जर करके रख दिया था। भोजनके बाद सोनेका प्रयास करता, किंतु स्वप्नोंसे घिर जाता।

पूरा शरीर रोगोंका घर बन गया था। प्रायः घुटनोंमें दर्द रहने लगा। रात-दिन सिरमें पीडा रहती। पाचनशक्ति नष्टप्राय हो चुकी थी। स्मरणशक्ति भी लुप्त हो रही थी। मानसिक संतुलन बिगड़ जानेसे हर समय क्रोधका आवेश रहता, जिससे मैं अधिकाधिक चिड़चिड़ा हुआ जा रहा था। चिन्ता और चिड़चिड़ेपनसे शरीरका रंग बिलकुल काला पड़ गया था। शरीरमें खुजली होने लगी थी और पूरा शरीर अस्थिमात्रका ढाँचा बन गया था।

मैंने शरीरके अनेक अवयवोंकी डॉक्टरी जाँच करायी, किंतु कोई भी बीमारी पकड़में नहीं आयी। आयुर्वेदिक, एलोपैथिक तथा होम्योपैथिक तीनों प्रकारकी दवाएँ लीं, किंतु रोगका निवारण सम्भव नहीं हो सका। गणेशपुरी (महाराष्ट्र) जाकर गन्धकके पानीसे कई दिनोंतक स्नान किया, लेकिन चर्मरोगपर भी नियन्त्रण नहीं पाया जा सका।

जीवनसे निराश होकर मैंने 'हारेको हरिनाम' का सहारा लिया और तीर्थयात्राके लिये निकल पड़ा। द्वारका एवं रामेश्वरकी तीर्थयात्राके बाद बदरीनाथ, केदारनाथ, गङ्गोत्री आदिकी यात्रा करता हुआ ऋषिकेश पहुँचा। वहाँ एक ऐसे सज्जनसे भेंट हुई, जिन्होंने आश्वासनपूर्वक बड़ी ही दृढ़ताके साथ कहा—'आप गोमूत्रका प्रयोग करें, समस्त व्याधियोंसे पूरी तरह मुक्त हो जायँगे।' उन्होंने मुझे बताया कि एक कप चायके बराबर गोमूत्रका सेवन किया जाय। उसे कपड़ेकी आठ तह करके छान लेना चाहिये और धीरे-धीरे अभ्याससे इसे बढ़ाकर पाव-डेढ़ पावतक लिया जा सकता है। कुछ गोमूत्रको धूपमें रखकर अगले दिन उसे शरीरपर मालिश करनेसे विविध रोगोंसे छुटकारा मिल सकता है।

मैंने पहले दिन एक कप गोमूत्र-पान किया तो मुझे उलटी हो गयी। मैंने दृढ़ संकल्प लेकर दूसरे दिन फिर पान किया तो वह पेटमें जाकर पच गया। सूर्यकी किरणोंके सामने रखे गोमूत्रसे पूरे शरीरमें मालिश भी प्रारम्भ कर दी। इस मालिशसे शरीरकी कड़ी चमड़ी नरम होने लगी।

गोमूत्रने कुछ ही दिनोंमें अपना चमत्कार दिखाना शुरू कर दिया। शरीरसे कफ निकलना शुरू हो गया। खाँसते-खाँसते मेरा बुरा हाल हो जाता था। गोमूत्रके सेवनसे खाँसी भी कम होती गयी। मैंने पारिवारिक चिकित्सकसे जाँच करायी तो उन्होंने बताया कि आपके स्वास्थ्यमें काफी बदलाव है तथा रोगोंपर तेजीसे नियन्त्रण हो रहा है। किंतु उन्होंने कुछ दिन गोमूत्र-सेवन रोक देनेका सुझाव दिया। मैं दुविधामें पड़ गया कि क्या करूँ? ऐसी स्थितिमें मैंने 'आखिर अन्तिम राम-सहारा' इस संतवाणीका सहारा लिया। मुझे उसी समय एक संतद्वारा गोमाताके दुग्ध तथा
~~~~

गोमूत्रके महत्त्वपर दिये प्रवचनकी कुछ पंक्तियोंने निरन्तर गोमूत्र-सेवन करते रहनेको प्रेरित किया। उसी प्रेरणाके वशीभूत होकर मैं प्रतिदिन गोमूत्र, गोदुग्ध तथा गायके दही-मट्ठा आदिका प्रयोग करने लगा। एक वर्षके इस निरन्तर प्रयोगसे मेरा शरीर समस्त रोगोंसे पूरी तरह मुक्त तो हो ही गया— मानसिक तनाव, क्रोध तथा अन्य मानसिक व्याधियोंसे भी गोमाताने मुझे मुक्ति दिला दी।

मैंने यह भी अनुभव किया कि देशी भारतीय गायका मूत्र विशेष गुणकारी होता है। बच्चोंकी घुट्टीमें यदि गोमूत्रकी कुछ बूँदें मिलाकर पिलायें तो बच्चा अनेक रोगों—विशेषकर पेटके विकारसे मुक्ति पा लेता है। लगातार गोमूत्रका सेवन करनेसे रक्तका दबाव स्वाभाविक हो जाता है। गोमूत्र पेटके समस्त विकारों, लीवरकी खराबीको दूर करके शरीरमें स्फूर्ति पैदा करता है।

गोमूत्र सबेरे खाली पेट सेवन करें तथा उसके बाद एक घंटेतक कुछ न लें। [प्रेषक—श्रीधर्मेन्द्रजी गोयल]

(२)

मन्त्र-जापसे रोग-मुक्ति

इस घोर जडवादी युगमें अनेक शिक्षित व्यक्ति मन्त्र, उपासना एवं ईश्वर-भक्तिके चमत्कारोंपर विश्वास नहीं करते। इन्हें केवल पाखण्ड और अन्धविश्वासमात्र समझते हैं; पर विश्वमें कई बार ऐसी घटनाएँ घटती हैं, जिनके रहस्यको खोजना विज्ञानके सामर्थ्यके भी बाहर होता है।

घटना पुरानी है। उन दिनों मैं अमरसर (जिला जयपुर, राजस्थान)-में विज्ञानके प्राध्यापक-पदपर कार्य कर रहा था। मेरे पड़ोसमें एक सज्जन रहते थे। आयु होगी साठ वर्षके लगभग। पेंशन पाते थे। इससे पूर्व राजकीय सेवामें थे। प्रकृतिसे सरल, सात्त्विक एवं आस्तिक।

एक दिन अकस्मात् वातव्याधि (Rheumatism)-ने उनपर आक्रमण किया। आक्रमण भयानक था। उनकी दक्षिण भुजा आक्रान्त हो गयी। उन्होंने समझा एक-दो दिनमें दर्द कम हो जायगा, पर रोग बढ़ता ही गया। डॉक्टरों-वैद्योंका इलाज भी चला, पर विशेष लाभ न हुआ। कई तरहकी होम्योपैथिक तथा आयुर्वेदिक दवाइयाँ दी गयीं, पर लाभ किंचिन्मात्र ही हो पाया। दिनमें कुछ आराम मिलता था, पर रात्रिमें फिर दर्द बढ़ने लगता। रोग धीरे-धीरे सारे शरीरमें फैल गया।

एक दिन सायंकालको मैं उनके पास ही बैठा था। उन्हें सान्त्वना दे रहा था।

वे कहने लगे—'रोग तो बढ़ता ही जा रहा है। मैं जीवित भी रह सकूँगा या नहीं; कह नहीं सकता। ईश्वरने न जाने, मुझे पूर्वजन्मके किन पापोंका दण्ड दिया है!'

मैंने आश्वासन देते हुए कहा—'घबराइये नहीं। ईश्वर सब ठीक करेगा। ईश्वर दीनबन्धु है, करुणानिधान है। विश्वास रखिये, ईश्वरकी कृपासे आप कुछ दिनोंमें पूर्णरूपसे स्वस्थ हो जायँगे। डॉक्टर-वैद्योंका इलाज तो आप करा चुके, अब डॉक्टरोंके भी डॉक्टरका इलाज कराइये।'

उन्होंने पूछा—'वह कौन है?'

मैंने कहा—'वह है परमपिता परमेश्वर। कल मैं आपको 'कल्याण' का 'मानसाङ्क' दूँगा। उसका आप स्वाध्याय कीजिये और एक मन्त्रका स्वयं जप करिये और कराइये। मन्त्र यह है'—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥

(रा०च०मा० ७। २१। १)

दूसरे दिन मैं उन्हें 'मानसाङ्क' दे आया। वे उसका नित्य स्वाध्याय करने लगे और उपर्युक्त मन्त्रका जाप भी।

ईश्वरका चमत्कार देखिये—'उन्हें आरोग्य-लाभ होने लगा, हाथ-पैरोंका दर्द कम होने लगा और पंद्रह दिनोंमें ही वे उठने-बैठने तथा चलने-फिरने योग्य हो गये।

कितना भयंकर और दुःसाध्य रोग मानसके स्वाध्याय एवं मन्त्र-जापसे दूर हो गया। ईश्वरकी लीला अपरम्पार है।

आज वे पूर्णरूपसे स्वस्थ हैं। अब नियमित रूपसे रामायणका पाठ करते हैं। अपने आरोग्य-लाभकी मूल ओषधि वे इसी मन्त्रको मानते हैं। इसके अतिरिक्त एक दोहेके जापसे भी उन्हें काफी लाभ हुआ है। वह है—

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर॥

विपत्तिके समय इस मन्त्रके जापसे काफी लाभ होता है।

दृढ़ विश्वास, श्रद्धा, सच्ची प्रीति तथा आस्तिक भावना धारण करनेसे ईश्वर अवश्य ही भक्तोंके कष्टोंका निवारण करते हैं।

यह छोटी-सी पर महत्त्वपूर्ण घटना नास्तिकों तथा भौतिकवादियोंको भी आस्तिकताकी ओर प्रेरित करती है। धन्य ईश्वरकी महिमा!

(—प्रो० श्याममनोहर व्यास, एम्०एस्-सी०)



नम्र निवेदन और क्षमा-प्रार्थना

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

'अच्युत, अनन्त, गोविन्द आदि भगवन्नाम-स्मरणरूपी औषधिसे सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं, यह बात मैं सत्य कहता हूँ, सत्य कहता हूँ।' 'चरकसंहिता' की टीकामें आचार्य चक्रपाणिदत्तने अधिकारपूर्वक यह उद्घोष किया है।

यदि गम्भीरतासे विचार किया जाय तो शरीरमें जितनी व्याधियाँ हैं, वे सब स्वयंके पापोंके कारण ही उत्पन्न होती हैं। 'जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते'। अपने शास्त्र कहते हैं कि भगवन्नाम-स्मरणसे सर्वविध पापोंका शमन होता है। अतः उपर्युक्त कथनमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

वास्तवमें मनुष्यलोकमें जन्म लेकर चतुर्विध पुरुषार्थको प्राप्त करना ही मानव-जीवनकी उपलब्धि है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंके मिल जानेपर कुछ शेष नहीं बचता, जिसे प्राप्त करनेका प्रयत्न किया जाय। संसारमें जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होना ही मोक्ष है, जो मनुष्यका अन्तिम लक्ष्य है। सामान्यतः मानव सुख-शान्ति और समृद्धिकी भी इच्छा करता है, पर यह सब स्वस्थ जीवनमें ही सम्भव है, इसीलिये कहा गया है—

'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्'।

जबतक शारीरिक स्वास्थ्य बना हुआ है, तबतक व्यक्ति धर्म (कर्तव्य)-का आचरण करनेमें समर्थ है। जब शरीर अस्वस्थ हो जायगा तो दूसरोंके द्वारा प्रेरित करनेपर भी कोई कर्म करनेका उत्साह नहीं रहेगा—

यावत्स्वास्थ्यं शरीरस्य तावद्धर्मं समाचरेत्।
अस्वस्थश्चोदितोऽप्यन्यैर्न किंचित् कर्तुमुत्सहेत्॥
(शिवपुराण)

अतः शरीरको स्वस्थ रखना मनुष्यका धर्म है।

भगवत्कृपासे इस वर्ष 'कल्याण'का विशेषाङ्क 'आरोग्याङ्क' पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत किया जा रहा है।

आजकल मनुष्यके जीवनमें इतनी जटिलताएँ आ गयी हैं कि वह निरन्तर आधि-व्याधिसे ग्रस्त रहता है। आधुनिक औषधियाँ भी नये-नये रोगोंका सृजन करनेमें संलग्न है। वर्तमान समयमें जीवन-यापनकी गतिमें जितनी तीव्रता आयी है, उतनी ही तीव्रता लोगोंके द्वारा अपने दैनिक जीवनमें औषधि-प्रयोगकी भी हुई है। अन्न, जल और वायुकी तरह औषधि-सेवन भी जीवनकी अनिवार्यता बनती जा रही है। सामान्यतः कितने ही लोग तो आज ऐसी स्थितिमें पहुँच गये हैं कि औषधिके बिना जी ही नहीं सकते हैं। यह विवशता या बुराई उसी पाश्चात्त्य संस्कृति और सभ्यताकी देन है, जिसने अन्य बुराइयोंको भारतीय जनजीवनमें प्रविष्ट करा दिया। पाश्चात्त्य देशोंमें तथाकथित सुसंस्कृत और सभ्य समाजकी स्थिति यह है कि बिना औषधिके न तो उन लोगोंका खाना हजम होता है और न नींदकी गोली लिये बिना उन्हें सुखकी नींद आती है। अपना पेट साफ करने या निर्बाध शौचके लिये भी नियमित रूपसे 'टेबलेट' लेना उनकी विवशता है। रक्तचाप, मधुमेह तथा अन्य कई प्रकारकी शारीरिक बीमारियोंसे बचनेके लिये उन्हें नियमित रूपसे विभिन्न प्रकारकी गोलियों तथा औषधियोंका आश्रय लेना पड़ता है। आज यह सब पाश्चात्त्य सभ्यताकी नियति बन गयी है और इसी नियतिने भारतीय जनजीवनमें भी प्रवेशकर लोगोंको तथाकथित सुसंस्कृत और सभ्य बनाना प्रारम्भ कर दिया है। इसीका यह परिणाम है कि भारतीय जनजीवनमें भी कृत्रिमताका प्रवेश होता जा रहा है और प्रकृतिसे उसका नाता टूटता जा रहा है।

पूर्वके दिनोंमें भारतीय जनजीवन, उसका रहन-सहन, आहार-विहार आदिकी ओर यदि दृष्टिपात किया जाय तो ऐसा लगता है कि उन दिनों हम प्रकृतिके अधिक निकट थे, प्रकृतिकी सुरम्य गोदमें हमारा जीवन-यापन होता था। प्राकृतिक परिवेशसे सम्बन्धित हमारा आहार-विहार था और वही हमारी स्वास्थ्य-रक्षाका सुदृढ़ आधार था। बिना औषधि-सेवनके व्यक्ति स्वस्थ और सुखी जीवन व्यतीत करते थे। औषधिका प्रयोग केवल बीमार होनेकी स्थितिमें आवश्यक होता था, परंतु धीरे-धीरे स्थितिमें बदलाव आया और अब तो स्थिति पूरी बदल गयी है।

वास्तवमें मनुष्य स्वस्थ रहते हुए कष्टरहित जीवन व्यतीत करना चाहता है। अस्वस्थ या रोगी होना कोई नहीं चाहता। स्वस्थ रहनेके लिये वह यथासम्भव प्रयत्न भी करता है, परंतु इसके बावजूद भी कितने लोग रोगमुक्त नहीं हो पाते तथा कष्टसे मुक्ति भी नहीं मिलती। बीमारी मनुष्यके दुःख या कष्टका ऐसा कारण है, जो उसके शरीर, मन और मस्तिष्कको प्रत्यक्ष रूपसे प्रभावित करती है। शरीर, मन या

मस्तिष्कका स्वस्थ होना, विकारग्रस्त होना अथवा रोगी होना प्रकृतिके विपरीत अप्राकृत अवस्थाका द्योतक है। मनुष्यके शरीरमें बीमारी या रोग उत्पन्न होना शरीरकी प्रकृतिके असंतुलनका परिणाम है अर्थात् शरीरमें रोग तब उत्पन्न होता है, जब शरीर या मनकी प्रकृतिका संतुलन बिगड़ जाता है।

आयुर्वेद जो 'जीवन-विज्ञानशास्त्र और चिकित्साशास्त्र है' के अनुसार मनुष्यके स्वस्थ रहनेकी परिभाषा अत्यन्त व्यापक है। मनुष्यके स्वस्थ रहनेके लिये केवल शरीरका रोगमुक्त होना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु शरीरमें ऐसी स्थिति होना भी आवश्यक है कि उसका मन और मस्तिष्क भी किसी विकारसे पीडित या प्रभावित न हो। जिसके वात, पित्त, कफ—ये तीन दोष सम हों, जिसकी जठराग्नि (पाचन-क्रिया) सम हो, जिसकी धातुओं—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र—की क्रिया सम हो, जिसकी आत्मा, दसों इन्द्रियाँ तथा मन प्रसन्न (निर्मल-अविकारी) हो, वह स्वस्थ कहलाता है—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

(सुश्रुत)

यहाँपर स्वस्थ पुरुषकी जो परिभाषा बतलायी गयी है, वह अपने-आपमें पूर्ण सार्थक और सर्वथा व्यावहारिक है। आयुर्वेदके अनुसार शरीरकी सभी प्रकारकी स्थितिमें दोष, धातु और मल ही मूल कारण हैं। जब ये तीनों सम अवस्थामें होते हैं तो शरीरका संतुलन बना रहता है और शरीरमें कोई रोग या विकार उत्पन्न नहीं हो पाता।

इस प्रकार आयुर्वेदके अनुसार स्वस्थ व्यक्तिके लिये दोषोंकी साम्यावस्था अत्यन्त आवश्यक है।

परंतु वास्तविकता यह है कि वर्तमान समयमें मनुष्यके जीवनमें जटिलताएँ इतनी अधिक हो गयी हैं, वह भौतिक सुख-सुविधाओंको जुटानेकी चाहमें इतना व्यस्त है कि अपने स्वास्थ्यकी सुरक्षाके लिये उसके पास समय नहीं है। परिणामस्वरूप मानसिक तनाव तथा विभिन्न शारीरिक रोगोंसे ग्रस्त होनेके कारण उसका उद्विग्न होना भी स्वाभाविक है।

अपने शास्त्रोंमें ऐसी प्रक्रिया उपलब्ध है, जिसे अपनाकर व्यक्ति नीरोग और पूर्ण स्वस्थ रह सकता है। शरीर और मनसे स्वस्थ रहना साधनाका प्रथम सोपान है। भवरोगसे निवृत्त होनेकी दवा भी हमारे ऋषि-महर्षि-महात्माओंने बतायी है, जिसके अनुसार मनुष्य स्वयंका कल्याण कर सकता है।

इन सब दृष्टियोंको ध्यानमें रखकर यह 'आरोग्याङ्क' आपकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ऋषि-महर्षियोंद्वारा प्रतिपादित विभिन्न भारतीय चिकित्सा-पद्धतियोंका निरूपण, आयुतत्त्व-मीमांसा, आहार-विहार, रहन-सहन, स्वाभाविक और संयमित जीवनका स्वरूप, शास्त्रोंद्वारा प्रतिपादित यम-नियम, आचार-विचार एवं यौगिक क्रियाओंका अनुपालन, प्राचीन विधाओंसे लेकर अर्वाचीन चिकित्सा-पद्धतियों तथा उनके हानि-लाभका विवेचन, नीरोग रहनेके घरेलू नुसख़े तथा अनुभूत प्रयोग, विभिन्न भारतीय चिकित्सा-पद्धतियोंके महानुभावोंका चरित्रावलोकन तथा भगवान् धन्वन्तरिद्वारा प्रवर्तित आयुर्वेदशास्त्र, इसके साथ ही प्रकृतिके कुछ सरल एवं स्वाभाविक नियमों तथा स्वस्थ जीवनके मूलभूत सिद्धान्तोंको सरल और सुगम रूपमें प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है, जिससे सर्वसाधारण चिकित्साके क्षेत्रमें नवजागृति और सत्प्रेरणा प्राप्त करते हुए विभिन्न व्याधियोंसे मुक्त होकर स्वस्थ जीवनके वास्तविक स्वरूपसे परिचित हो सके तथा अपने परम उद्देश्यकी प्राप्तिमें भी सफल हो सके।

इस वर्ष 'आरोग्याङ्क' के लिये लेखक महानुभावोंने उत्साहपूर्वक जो सहयोग प्रदान किया है, वह अत्यधिक सराहनीय है। यद्यपि हमने लेखक महानुभावोंसे विषयवस्तुसे सम्बन्धित विशिष्ट सामग्री भेजनेका अनुरोध किया था, हमें इस बातकी प्रसन्नता है कि इस बार आरोग्यसे सम्बन्धित कुछ विशिष्ट सामग्री भी प्राप्त हुई। इसके साथ ही लेखक महानुभावोंने स्वास्थ्यसे सम्बन्धित अपने अनुभूत प्रयोग तथा नीरोग रहनेकी विभिन्न सामग्रियाँ भेजनेका कष्ट किया। हम उपयोगी इन सभी सामग्रियोंको 'विशेषाङ्क' में सँजोना चाहते थे, परंतु 'विशेषाङ्क' की पृष्ठ-संख्याकी परिधि सीमित होनेके कारण आयी हुई सम्पूर्ण सामग्रीको 'विशेषाङ्क' में समाहित कर पाना सम्भव नहीं हो सका।

यहाँतक कि संकोचपूर्वक 'विशेषाङ्क' के लिये स्वीकृत की गयी सामग्रीमेंसे छपाईके अन्तिम समयमें पृष्ठ-संख्या अधिक हो जानेके कारण 'कल्याण' के लगभग एक सौ पचास पृष्ठकी सामग्री कम करनी पड़ गयी। इस प्रकार 'आरोग्याङ्क' की सम्पूर्ण सामग्री 'विशेषाङ्क' में समाहित कर पाना सम्भव न हो सका। यद्यपि सामग्रीकी अधिकताके कारण इस अङ्कके साथ दो मासके 'परिशिष्टाङ्क' भी निकाले

जा रहे हैं, जिसमें फरवरी मासका एक 'परिशिष्टाङ्क' तो साथ ही समायोजित है तथा मार्च मासका दूसरा 'परिशिष्टाङ्क' भी अलगसे साथ ही प्रेषित किया जा रहा है।

सामग्रीकी अधिकता तथा स्थानाभावके कारण माननीय विद्वान् लेखकोंके 'विशेषाङ्क'के लिये भेजे हुए कुछ महत्त्वपूर्ण स्वीकृत लेख नहीं दिये जा सके, जिसके लिये हमें अत्यधिक खेदका अनुभव हो रहा है। यद्यपि इसमें कुछ सामग्री आगेके साधारण अङ्कोंमें देनेका प्रयत्न अवश्य करेंगे, परंतु विशेष कारणोंसे कुछ लेख प्रकाशित न हो सकें तो विद्वान् लेखक हमारी विवशताको ध्यानमें रखकर हमें अवश्य क्षमा करनेकी कृपा करेंगे।

हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यों, परम सम्मान्य पवित्रहृदय संत-महात्माओं तथा चिकित्सा-जगत्के विशेषज्ञों-का सादर वन्दन करते हैं, जिन्होंने 'विशेषाङ्क' की पूर्णतामें किंचित् भी योगदान किया है। स्वास्थ्य-सम्बन्धी विचारोंके प्रचार-प्रसारमें वे ही निमित्त हैं। उनके सद्भावपूर्ण तथा उच्च विचारयुक्त भावनाओंसे 'कल्याण'को सदा सच्चा स्रोत प्राप्त होता रहता है। हम अपने विभागके तथा प्रेसके अपने उन सभी सम्मान्य साथी-सहयोगियोंको भी प्रणाम करते हैं, जिनके स्नेहपूर्ण सहयोगसे यह पवित्र कार्य सम्पन्न हो सका। हम त्रुटियों एवं व्यवहार-दोषके लिये क्षमाप्रार्थी हैं।

'आरोग्याङ्क' के सम्पादनमें जिन संतों एवं विद्वान् लेखकोंसे सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है, उन्हें हम अपने मानस-पटलसे विस्मृत नहीं कर सकते। सर्वप्रथम मैं वाराणसीके समादरणीय पं० श्रीलालबिहारीजी शास्त्रीके प्रति हृदयसे आभार व्यक्त करता हूँ, जो आयुर्वेदके एक सफल चिकित्सकके रूपमें हमें प्राप्त हैं तथा जिन्होंने 'विशेषाङ्क' के लिये कुछ विशिष्ट सामग्री तैयारकर निष्कामभावसे अपनी सेवाएँ परमात्मप्रभुके श्रीचरणोंमें अर्पित कीं। इसके साथ ही सम्पादन-जगत्के उदीयमान सम्पादक श्रीशिवकुमारजी गोयलके प्रति भी हम आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने अपने पूज्य पिताजी श्रीरामशरणदासजी, पिलखुआके संग्रहालयसे आरोग्यसे सम्बन्धित अनेक दुर्लभ सामग्रियाँ हमें उपलब्ध करानेका कष्ट किया। इसके साथ ही हम अपने परम मित्र श्रीदीनानाथजी झुनझुनवालाके प्रति विशेष आभारी हैं, जिनकी प्रेरणासे प्रारम्भिक रूपमें इस 'विशेषाङ्क'के प्रकाशनके अंकुर उत्पन्न हुए तथा जिनके सहयोगसे चिकित्सा-जगत्के विशिष्ट महानुभावोंके लेख भी हमें प्राप्त हो सके। इस अङ्कके सम्पादनमें अपने विभागके वयोवृद्ध विद्वान् पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा एवं अन्य महानुभावोंने अत्यधिक हार्दिक सहयोग प्रदान किया है। इसके सम्पादन, संशोधन एवं चित्र-निर्माण आदिमें जिन-जिन लोगोंसे हमें सहयोग मिला है, वे सभी हमारे अपने हैं, उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते।

वास्तवमें 'कल्याण'का कार्य भगवान्का कार्य है। अपना कार्य भगवान् स्वयं करते हैं, हम तो निमित्तमात्र हैं। हमें आशा है कि इस 'विशेषाङ्क'के पठन-पाठनसे हमारे सहृदय पाठकोंको नीरोग होनेकी प्रेरणा प्राप्त होगी तथा स्वस्थ रहनेके लिये वे जीवनमें सावधानी बरतेंगे।

शरीरको स्वस्थ एवं नीरोग रखनेके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्यका आहार-विहार सम्यक् हो। जो मनुष्य अपने आचरणकी शुद्धता और हिताहार-विहारके सेवनकी ओर विशेष ध्यान देता है वह निश्चय ही सुखी और नीरोगी जीवनका उपयोग करता है— **'स भवत्यरोगः'** (चरक)।

विभिन्न रोगोंसे शरीरकी रक्षा करनेके लिये तथा चिरकालतक शरीरको स्वस्थ, नीरोग एवं आयुष्मान् बनानेके लिये महर्षि चरकने जहाँ शरीरके लिये आहार-विहार-सम्बन्धी नियन्त्रणका निर्देश किया है, वहाँ मनोव्यापारको भी स्वास्थ्यके लिये उत्तरदायी बताते हुए उसकी चञ्चलवृत्तिका भी निग्रह करनेका निर्देश दिया है। बुद्धिकी निर्मलता और वाणीकी शुचिता-प्रियताकी भी शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य-रक्षाके लिये नितान्त आवश्यकता है। अतः इनका नियमपूर्वक अनुशीलन करनेवाला व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ कहलानेका अधिकारी है। जो व्यक्ति नियमपूर्वक स्वास्थ्य-सम्बन्धी आचरणका पालन करता है, मानसिक रूपसे प्रसन्न और चिन्तामुक्त रहता हुआ वचन और कर्मसे संयमित रहता है, उसे कभी रोगाक्रमण नहीं होता, जिससे वह सदैव पूर्ण स्वस्थ बना रहता है।

अन्तमें हम परमात्मप्रभुके श्रीचरणोंमें प्रणिपात करते हुए सम्पूर्ण चराचर जगत्के कल्याणकी कामना करते हैं—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

—राधेश्याम खेमका
सम्पादक

॥ श्रीहरिः ॥

गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तकोंका सूचीपत्र

(जनवरी २००१)

कोड मूल्य डाकखर्च

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता-तत्त्व-विवेचनी—
(टीकाकार-श्रीजयदयालजी गोयन्दका)
गीताविषयक २५१५ प्रश्न और उनके उत्तर-रूपमें विवेचनात्मक हिन्दी टीका, सचित्र, सजिल्द आकर्षक

1 बहुरंगे आवरणके साथ बृहदाकार ८०.०० ■ १५.००
2 ,, ,, ग्रन्थाकार ६०.०० ■ ९.००
3 ,, ,, साधारण संस्करण ४०.०० ■ ८.००
1118 ,, ,, बंगला ६५.०० ■ १०.००
800 ,, ,, तमिल ६५.०० ■ १०.००
1100 ,, ,, उड़िया ७०.०० ■ १०.००
1112 ,, ,, कन्नड़ ७०.०० ■ १०.००
457 ,, ,, अँग्रेजी अनुवाद ५०.०० ■ ८.००
1172 ,, ,, तेलगू ७०.०० ■ १०.००

गीता-साधक-संजीवनी—(टीकाकार—स्वामी श्रीरामसुखदासजी) गीताके मर्मको समझने-हेतु व्याख्यात्मक शैली एवं सरल, सुबोध भाषामें हिन्दी टीका, सचित्र, सजिल्द

5 बृहदाकार १३०.०० ■ २२.००
6 ,, ग्रन्थाकार परिशिष्टसहित ८५.०० ■ १२.००
7 ,, ,, मराठी अनुवाद ७०.०० ■ १०.००
467 ,, ,, गुजराती अनुवाद ९०.०० ■ १०.००
1080 ,, ,, अँग्रेजी अनुवाद I ३५.०० ■ ५.००
1081 ,, ,, अँग्रेजी अनुवाद II ३५.०० ■ ५.००
763 ,, ,, बँगला ८५.०० ■ १०.००
1121 ,, ,, उड़िया ९०.०० ■ १०.००

साधक-संजीवनी-परिशिष्ट—

1014 ,, ,, ग्रन्थाकार (एक जिल्दमें) २५.०० ■ ६.००
[949 ,, ,, पुस्तकाकार (१ से ६ अध्याय)
788 ,, ,, ,, (७ से १२ अध्याय)
896 ,, ,, ,, (१३ से १८ अध्याय)

गीता-दर्पण—(स्वामी रामसुखदासजीद्वारा) गीताके तत्त्वोंपर प्रकाश, लेख, गीता-व्याकरण और छन्द-सम्बन्धी गूढ़ विवेचन

8 सचित्र, सजिल्द ३०.०० ■ ५.००
504 गीता-दर्पण—(मराठी अनुवाद) सजिल्द २५.०० ■ ५.००
556 ,, ,, (बँगला अनुवाद) सजिल्द ३०.०० ■ ५.००
468 ,, ,, (गुजराती अनुवाद) ,, ३०.०० ■ ५.००
784 ज्ञानेश्वरी गूढ़ार्थ-दीपिका—(मराठी) १००.०० ■ १०.००
748 ,, मूल गुटका (मराठी) २५.०० ■ ४.००
859 ,, मूल मझला (मराठी) ३५.०० ■ ४.००
10 गीता-शांकर-भाष्य— ५०.०० ■ ६.००
581 गीता-रामानुज-भाष्य— ३५.०० ■ ४.००
11 गीता-चिन्तन—(श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके गीताविषयक लेखों, विचारों, पत्रों आदिका संग्रह) ३०.०० ■ ३.००

गीता—मूल, पदच्छेद, अन्वय, भाषा-टीका, टिप्पणी प्रधान और सूक्ष्म विषय एवं 'त्यागसे भगवत्प्राप्ति'

17 लेखसहित, सचित्र, सजिल्द १८.०० ■ ४.००
12 (गुजराती) २०.००, 13 (बँगला) १५.००,
14 (मराठी) २५.००, 726 (कन्नड़) २५.००,
772 (तेलगू) २०.००, 823 (तमिल) २०.००
16 गीता—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्य, सजिल्द, मोटे अक्षरोंमें २०.०० ■ ३.००
15 गीता—(मराठी अनुवाद) २५.०० ■ ४.००
18 ,, भाषा-टीका, टिप्पणी प्रधान विषय, मोटा टाइप १२.०० ■ २.००
1157 (उड़िया) १०.००
502 ,, सजिल्द १८.०० ■ ३.००
771 (तेलगू) १२.००,
815 गीता श्लोकार्थसहित (उड़िया) १५.००,
718 गीता तात्पर्यके साथ (कन्नड़) १५.००,
743 (तमिल) १५.००
19 गीता—केवल भाषा ७.०० ■ २.००
663 ,, —(तेलगू) ५.००, 795 (तमिल) ५.००
750 ,, भाषा पाकेट साइज (हिन्दी) ३.०० ■ १.००
20 ,, —भाषा-टीका पाकेट साइज (हिन्दी) ५.०० ■ १.००
633 ,, —भाषा-टीका पाकेट साइज सजिल्द ८.०० ■ २.००
455 (अँग्रेजी) ५.००, 534 (अँग्रेजी) सजिल्द ७.००,
1257 (मराठी) ६.००, 496 (बँगला) ६.००, 714 (असमिया) ५.००,
1008 (उड़िया) ६.०० 936 (गुजराती) ६.००
1034 (गुजराती) सजिल्द ८.००, 1031 (तेलगू) ५.००
21 श्रीपञ्चरत्नगीता—गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष (मोटे अक्षरोंमें) १५.०० ■ २.००
22 गीता—मूल, मोटे अक्षरोंवाली ६.०० ■ २.००
23 गीता—मूल, विष्णुसहस्रनामसहित ३.०० ■ १.००
661 (कन्नड़) ४.००, 662 (तेलगू) ३.००,
793 (तमिल) ५.००, 739 (मलयालम) ४.००, 541 (उड़िया) ३.००
488 नित्यस्तुतिः—गीता मूल, विष्णुसहस्रनामसहित ५.०० ■ १.००
700 गीता—छोटी साइज मूल १.०० ■ १.००
1036 ,, ,, लघु आकार (उड़िया) १.०० ■ १.००
24 गीता—मूल (माचिस आकार) २.०० ■ १.००
957 ,, (बंगला) २.०० ■ १.००
566 गीता—ताबीजी एक पन्नेमें सम्पूर्ण गीता (१०० प्रति एक साथ) २५.०० ■ ३.००
288 गीताके कुछ श्लोकोंपर विवेचन—२.०० ▲ १.००
289 गीता-निबन्धावली— २.५० ▲ १.००
297 गीतोक्त संन्यास या सांख्ययोगका स्वरूप—.७५ ▲ १.००
388 गीतामाधुर्य-सरल प्रश्नोत्तर-शैलीमें (हिन्दी) ६.०० ▲ २.००
389 (तमिल) ८.००, 391 (मराठी) ६.००,
392 (गुजराती) ६.००, 393 (उर्दू) ८.००,
395 (बँगला) ५.००, 624 (असमिया) ५.००,
754 (उड़िया) ५.००, 487 (अँग्रेजी) ५.०० 679 (संस्कृत) ६.००
470 गीता-रोमन गीता मूल, श्लोक एवं अँग्रेजी अनुवाद (सजि०) १०.०० ■ २.००
1223 ,, ,, ,, (अजि०) १०.०० ■ २.००
1242 पाण्डव गीता एवं हंस गीता (श्लोकार्थसहित) ३.०० ■ १.००
874 गीता दैनन्दिनी (२००१)—डीलक्स संस्करण ४०.०० ■ ५.००
503 ,, ,, (२००१)—पुस्तकाकार-प्लास्टिक कवर ३०.०० ■ ४.००
615 गीता दैनन्दिनी पाकेट साइज प्लास्टिक कवर १५.०० ■ २.००
506 ,, ,, पाकेट साइज (विशिष्ट) १८.०० ■ २.००
464 गीता-ज्ञान-प्रवेशिका—स्वामी रामसुखदास १२.०० ■ २.००
508 गीता सुधा तरंगिनी—गीताका पद्यानुवाद ४.०० ■ १.००

रामायण

श्रीरामचरितमानस—बृहदाकार, मोटा टाइप, सजिल्द

80 आकर्षक आवरण, २२०.०० ■ १९.००
1095 ,, ग्रन्थाकार (विशेष संस्करण) १७०.०० ■ १२.००
81 ,, ,, मोटा टाइप, सजिल्द आकर्षक आवरण १२०.०० ■ १०.००
697 ,, ,, साधारण १००.०० ■ १०.००
82 ,, ,, मझला साइज, सजिल्द ६०.०० ■ ५.००
456 ,, ,, अँग्रेजी अनुवादसहित ७०.०० ■ ९.००
786 ,, ,, मझला ,, ,, ५०.०० ■ ६.००
83 ,, ,, मूलपाठ, मोटे अक्षरोंमें, सजिल्द ६५.०० ■ ६.००
1218 (उड़िया) ७०.००
84 ,, ,, मूल, मझला साइज ३५.०० ■ ४.००
85 ,, ,, मूल, गुटका २५.०० ■ २.००
790 श्रीरामचरितमानस—केवल भाषा ६०.०० ■ ७.००
954 ,, ,, ग्रन्थाकार बंगला १२०.०० ■ १०.००
799 ,, ,, गुजराती ग्रन्थाकार १२०.०० ■ १०.००
785 ,, ,, गुजराती मझला साइज ५५.०० ■ ५.००
878 ,, ,, गुजराती मूल मझला २५.०० ■ ४.००
879 ,, ,, मूल गुटका २५.०० ■ ३.००

[श्रीरामचरितमानस—अलग-अलग काण्ड (सटीक)]

94 ,, ,, बालकाण्ड १५.०० ■ २.००
95 ,, ,, अयोध्याकाण्ड १५.०० ■ २.००
98 ,, ,, सुन्दरकाण्ड ४.०० ■ १.००
832 ,, ,, (कन्नड़), 753 (तेलगु) ४.०० ■ १.००
101 ,, ,, लंकाकाण्ड ८.०० ■ २.००
102 ,, ,, उत्तरकाण्ड ६.०० ■ २.००
141 अरण्य, किष्किन्धा एवं सुन्दरकाण्ड ७.०० ■ २.००
830 सुन्दरकाण्ड मूल मोटा (रंगीन) १२.०० ■ ३.००
99 ,, ,, सुन्दरकाण्ड-मूल, गुटका ३.०० ■ १.००
100 ,, ,, सुन्दरकाण्ड-मूल, मोटा टाइप ५.०० ■ १.००
948 ,, ,, (गुजराती) ५.००, 1204 (उड़िया) ५.००
858 ,, ,, सुन्दरकाण्ड-मूल, लघुआकार २.०० ■ १.००
1199 ,, ,, (गुजराती) २.००
86 मानसपीयूष—(श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक, टीकाकार—श्रीअञ्जनीनन्दनशरण (सातों खण्ड)
1192 मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका (खण्ड-१) ९०.०० ■ ६.००
1193 मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका (खण्ड-२) १००.०० ■ ६.००
{75 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—सटीक,
76 दो खण्डोंमें सेट १८०.०० ■ १६.००
77 ,, ,, केवल भाषा १२०.०० ■ १०.००
583 ,, ,, (मूलमात्रम्) ८०.०० ■ १०.००
78 ,, ,, सुन्दरकाण्ड, मूलमात्रम् १५.०० ■ ३.००
{452 ,, ,, (अँग्रेजी अनुवादसहित
453 ,, ,, दो खण्डोंमें सेट) २२०.०० ■ १९.००

■ पुस्तकें डाकसे मँगवानेपर ५% पैकिंग खर्च, अंकित डाकखर्च तथा १४ रु० प्रति पैकेट रजिस्ट्रीखर्च अतिरिक्त देय है।
■ पुस्तकोंके मूल्योंमें परिवर्तन होनेपर पुस्तकपर छपा मूल्य ही देय होगा।
■ जिन पुस्तकोंका मूल्य अंकित नहीं है वे अभी उपलब्ध नहीं हैं। बादमें मिल सकती हैं।
■ पूरी जानकारीहेतु सूचीपत्र मुफ्त मँगायें। विदेशोंमें निर्यातके लिये मूल्यका अलग सूचीपत्र उपलब्ध है।

कोड		मूल्य	डाकखर्च
1002	सं० वाल्मीकीय रामायणांक—	६५.०० ■	८.००
74	अध्यात्मरामायण—सटीक, सजिल्द	५०.०० ■	५.००
845	,, ,, —(तेलगू)	६०.०० ■	७.००
223	मूल रामायण—	१.०० ■	१.००
935	सं० रामायण—(गुजराती)	२.०० ■	१.००
460	रामाश्वमेध—	१०.०० ■	२.००
401	मानसमें नामवन्दना—	६.०० ▲	२.००
103	मानसरहस्य—	२४.०० ■	४.००
104	मानस-शंका-समाधान—	९.०० ■	२.००

अन्य तुलसीकृत साहित्य

कोड		मूल्य	डाकखर्च
105	विनयपत्रिका—सरल भावार्थसहित	२०.०० ■	३.००
106	गीतावली— ,, ,, ,,	१७.०० ■	३.००
107	दोहावली— ,, ,, ,,	९.०० ■	२.००
108	कवितावली— ,, ,, ,,	९.०० ■	२.००
109	रामाज्ञाप्रश्न— ,, ,, ,,	६.०० ■	२.००
110	श्रीकृष्णगीतावली— ,, ,, ,,	४.०० ■	१.००
111	जानकीमङ्गल— ,, ,, ,,	३.०० ■	१.००
112	हनुमानबाहुक— ,, ,, ,,	२.०० ■	१.००
113	पार्वतीमङ्गल— ,, ,, ,,	२.०० ■	१.००
114	वैराग्य-संदीपनी एवं बरवै रामायण—	२.०० ■	१.००

सूर-साहित्य

कोड		मूल्य	डाकखर्च
555	श्रीकृष्ण-माधुरी—	१२.०० ■	३.००
61	सूर-विनय-पत्रिका—	१५.०० ■	३.००
62	श्रीकृष्ण-बाल-माधुरी—	१३.०० ■	३.००
735	सूर-रामचरितावली—	११.०० ■	३.००
547	विरह-पदावली—	१०.०० ■	३.००
864	अनुराग-पदावली—	१२.०० ■	३.००

पुराण, उपनिषद् आदि

कोड		मूल्य	डाकखर्च
28	श्रीमद्भागवत-सुधासागर—सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका भाषानुवाद, सचित्र, सजिल्द	१२०.०० ■	१०.००
25	श्रीशुकसुधासागर—बृहदाकार, बड़े टाइपोंमें ,,	२५०.०० ■	२०.००
1190	श्रीशुकसुधासागर—सचित्र मोटा टाइप		
1191	दो खण्डोंमें सेट	२५०.०० ■	२०.००
26	श्रीमद्भागवत-महापुराण—सटीक—		
27	दो खण्डोंमें सेट	२००.०० ■	१८.००
564,565	,, ,, ,, अँग्रेजी सेट	१५०.०० ■	१६.००
29	,, ,, ,, मूल मोटा टाइप	८०.०० ■	८.००
124	,, ,, ,, मूल मझला	५०.०० ■	६.००
1092	भागवतस्तुति-संग्रह—	५५.०० ■	६.००
30	श्रीप्रेम-सुधासागर—श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्धका भाषानुवाद, सचित्र, सजिल्द	३०.०० ■	५.००
31	भागवत एकादश स्कन्ध—सचित्र, सजिल्द	१६.०० ■	३.००
	महाभारत—हिन्दी टीका-सहित, सजिल्द, सचित्र		
728	[छः खण्डोंमें]सेट	७२०.०० ■	६२.००
38	महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण— हिन्दी टीका	१२०.०० ■	११.००
637	जैमिनीय अश्वमेध पर्व—	५०.०० ■	७.००
	संक्षिप्त महाभारत—केवल भाषा, सचित्र,		
39,511	सजिल्द सेट (दो खण्डोंमें)	१८०.०० ■	१७.००
44	संक्षिप्त पद्मपुराण—सचित्र, सजिल्द	१००.०० ■	१०.००
789	सं० शिवपुराण—मोटा टाइप	१००.०० ■	१०.००
1133	सं० देवीभागवत—मोटा टाइप	१२०.०० ■	१०.००
48	श्रीविष्णुपुराण—सानुवाद, सचित्र, सजिल्द	६०.०० ■	६.००
1183	नारदपुराण—	१००.०० ■	१०.००
279	संक्षिप्त स्कन्दपुराण—सचित्र, सजिल्द	१००.०० ■	११.००
631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण—	७५.०० ■	८.००
517	गर्गसंहिता—भगवान् कृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन—सचित्र, सजिल्द	७०.०० ■	७.००
47	पातञ्जलयोग-प्रदीप—	८०.०० ■	७.००
135	पातञ्जलयोगदर्शन—	९.०० ■	२.००
582	छान्दोग्योपनिषद्—सानुवाद शांकरभाष्य	५०.०० ■	४.००
577	बृहदारण्यकोपनिषद्— ,, ,,	७०.०० ■	५.००
66	ईशादि नौ उपनिषद्—अन्वय-हिन्दी व्याख्या	४०.०० ■	३.००
67	ईशावास्योपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य	३.०० ■	१.००

कोड		मूल्य	डाकखर्च
846	ईशावास्योपनिषद्—सानुवाद, (तेलगू)	३.०० ■	१.००
68	केनोपनिषद्— ,, ,,	९.०० ■	२.००
578	कठोपनिषद्— ,, ,,	१०.०० ■	२.००
69	माण्डूक्योपनिषद्— ,, ,,	१५.०० ■	२.००
513	मुण्डकोपनिषद्—सानुवाद शांकरभाष्य	६.०० ■	२.००
70	प्रश्नोपनिषद्— सानुवाद शांकरभाष्य	७.०० ■	२.००
71	तैत्तिरीयोपनिषद्—सानुवाद शांकरभाष्य	१५.०० ■	३.००
72	ऐतरेयोपनिषद्— ,, ,,	५.०० ■	१.००
73	श्वेताश्वतरोपनिषद्— ,, ,,	१६.०० ■	२.००
65	वेदान्त-दर्शन—हिन्दी व्याख्या-सहित, सजिल्द	३५.०० ■	४.००
639	श्रीनारायणीयम्—सानुवाद	२५.०० ■	४.००
908	,, ,, मूलम् (तेलगू)	१०.०० ■	३.००
201	मनुस्मृति दूसरा अध्याय सानुवाद—		

भक्त-चरित्र

कोड		मूल्य	डाकखर्च
40	भक्तचरिताङ्क—सचित्र, सजिल्द	८०.०० ■	९.००
51	श्रीतुकाराम-चरित—जीवनी और उपदेश	२२.०० ■	४.००
121	एकनाथ-चरित्र—	१२.०० ■	२.००
53	भागवतरत्न प्रह्लाद—	१५.०० ■	२.००
123	चैतन्य-चरितावली—सम्पूर्ण एक साथ	८०.०० ■	८.००
751	देवर्षि नारद—	८.०० ■	२.००
167	भक्त भारती—		
168	भक्त नरसिंह मेहता—	७.०० ■	२.००
613	,, ,, (गुजराती)	७.०० ■	२.००
169	भक्त बालक—गोविन्द—मोहन आदिकी गाथा	३.०० ■	१.००
685	,, ,, (तेलगू)	४.०० ■	१.००
721	,, ,, (कन्नड़)	४.०० ■	१.००
170	भक्त नारी—मीरा, शबरी आदिकी गाथा	४.०० ■	१.००
171	भक्त पञ्चरत्न—रघुनाथ-दामोदर आदिकी	६.०० ■	२.००
682	भक्त पञ्चरत्न—(तेलगू)	५.०० ■	१.००
172	आदर्श भक्त—शिवि, रन्तिदेव आदिकी गाथा	५.०० ■	१.००
	687(तेलगू) ५.००, 840 (कन्नड़) ५.००, 1076 (गुजराती) ६.००		
173	भक्त सप्तरत्न—दामा, रघु आदिकी भक्तगाथा	५.०० ■	१.००
	1082 (गुजराती) ५.००,		
174	भक्त चन्द्रिका—सखू, विट्ठल आदि छः भक्तगाथा	४.०० ■	१.००
892	भक्तचन्द्रिका—(गुजराती) ४.००, 951(कन्नड़) ५.०० 917 (तेलगू) ५.००		
	1073 (मराठी) ४.००, 1173 (उड़िया) ५.००		
175	भक्त-कुसुम-जगन्नाथ आदि छः भक्तगाथा	४.०० ■	१.००
176	प्रेमी भक्त—बिल्वमंगल, जयदेव आदि	५.०० ■	१.००
	1087 (गुजराती) ५.००		
177	प्राचीन भक्त—मार्कण्डेय, उत्तङ्क आदि	८.०० ■	२.००
178	भक्त सरोज—गङ्गाधरदास, श्रीधर आदि	६.०० ■	२.००
179	भक्त सुमन—नामदेव, राँका-बाँका आदि	६.०० ■	२.००
	1143 (गुजराती) ७.००		
180	भक्त सौरभ—व्यासदास, प्रयागदास आदि	६.०० ■	२.००
181	भक्त सुधाकर—रामचन्द्र, लाखा आदिकी भक्तगाथा	५.०० ■	१.००
875	,, ,, (गुजराती)	६.०० ■	२.००
182	भक्त महिलारत्न—रानी रत्नावती, हरदेवी आदि	६.०० ■	२.००
	1084 (गुजराती) ६.००		
183	भक्त दिवाकर—सुव्रत, वैश्वानर आदि आठ भक्तगाथा	५.०० ■	१.००
184	भक्त रत्नाकर—माधवदास, विमलतीर्थ आदि चौदह भक्तगाथा	५.०० ■	१.००
185	भक्तराज हनुमान्—हनुमान्‌जीका जीवनचरित	४.०० ■	१.००
	854 (उड़िया) ४.००, 608 (तमिल) ६.००, 767 (तेलगू) ५.००, 835(कन्नड़) ४.००, 806 (गुजराती) ३.००		
186	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र—	३.०० ■	१.००
	1200 (उड़िया) ३.००		
187	प्रेमी भक्त उद्धव—	२.५० ■	१.००
	642 (तमिल) ५.००, 686 (तेलगू) ३.००, 890 (गुजराती) ३.००, 1202 (उड़िया) ३.००		
188	महात्मा विदुर—	३.०० ■	१.००
	947 (गुजराती) ३.००, 741 (तमिल) ३.०० 1201 (उड़िया) ३.००		

कोड		मूल्य	डाकखर्च
136	विदुरनीति—	८.०० ■	२.००
138	भीष्मपितामह—	८.०० ■	२.००
691	भीष्मपितामह—(तेलगू)	९.०० ■	२.००
189	भक्तराज ध्रुव—	३.०० ■	१.००
688	,, ,, (तेलगू)	२.०० ■	१.००

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

कोड		मूल्य	डाकखर्च
683	तत्त्वचिन्तामणि—(सभी खण्ड एक साथ) ग्रन्थाकार	७०.०० ■	१०.००
814	साधन-कल्पतरु—	५०.०० ■	८.००
527	प्रेमयोगका तत्त्व—(हिन्दी)	९.०० ■	२.००
521	प्रेमयोगका तत्त्व—(अँग्रेजी अनुवाद)	६.०० ▲	२.००
242	महत्त्वपूर्ण शिक्षा—	१२.०० ■	२.००
760	,, ,, (तेलगू)	३.०० ▲	१.००
528	ज्ञानयोगका तत्त्व—(हिन्दी)	८.०० ▲	२.००
520	,, ,, (अँग्रेजी अनुवाद)	८.०० ▲	२.००
266	कर्मयोगका तत्त्व—(भाग-१)	६.०० ▲	२.००
267	,, ,, (भाग-२)	७.०० ▲	२.००
303	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय—(भक्तियोगका तत्त्व भाग १)	६.०० ▲	२.००
298	भगवान्‌के स्वभावका रहस्य—(भक्तियोगका तत्त्व भाग २)	६.०० ▲	२.००
243	परम साधन—भाग-१	६.०० ▲	२.००
244	,, ,, -भाग-२	५.०० ▲	२.००
245	आत्मोद्धारके साधन—भाग-१	७.०० ▲	२.००
335	अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति—(आत्मोद्धारके साधन भाग-२)	६.०० ▲	२.००
877	,, ,, (गुजराती)	७.०० ▲	२.००
579	अमूल्य समयका सदुपयोग—	६.०० ▲	२.००
666	(तेलगू) ५.००, 932 (गुजराती) ६.००		
246	मनुष्यका परम कर्तव्य—भाग-१	७.०० ▲	२.००
247	,, ,, भाग-२	७.०० ▲	२.००
611	इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति—	६.०० ▲	२.००
	1052 (गुजराती) ६.००		
588	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति—	६.०० ▲	२.००
	1007 (तमिल) ८.००		
1015	भगवत्प्रेमकी प्राप्तिमें भावकी प्रधानता—	५.०० ▲	१.००
248	कल्याणप्राप्तिके उपाय—(त०चि०म०भा०१)	९.०० ■	१.००
275	,, ,, (बँगला)	८.०० ▲	१.००
249	शीघ्र कल्याणके सोपान—भाग-२, खण्ड-१	८.०० ▲	२.००
	1164 (गुजराती) ८.००		
250	ईश्वर और संसार—भाग-२,(खण्ड-२)	८.०० ▲	२.००
519	अमूल्य शिक्षा—भाग-३,(खण्ड-१)	६.०० ▲	२.००
253	धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि—त० चि० भाग-३, (खण्ड-२)	६.०० ▲	२.००
251	अमूल्य वचन-तत्त्वचिन्तामणि भाग-४, (खण्ड-१)	८.०० ▲	२.००
252	भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा—,,(खण्ड-२)	७.०० ▲	२.००
254	व्यवहारमें परमार्थकी कला-त०चि०भाग-५, (खण्ड-१)	७.०० ▲	२.००
	1144 (गुजराती) ८.००		
255	श्रद्धा-विश्वास और प्रेम-,, भाग-५,(खण्ड-२)	८.०० ▲	२.००
	1146 (गुजराती) ८.००		
258	तत्त्वचिन्तामणि— ,,भाग-६, (खण्ड-१)	५.०० ▲	१.००
257	परमानन्दकी खेती—,,भाग-६, (खण्ड-२)	७.०० ▲	२.००
260	समता अमृत और विषमता विष-भाग-७, (खण्ड-१)	६.०० ▲	२.००
259	भक्ति-भक्त-भगवान्- भाग-७, (खण्ड-२)	७.०० ▲	२.००
256	आत्मोद्धारके सरल उपाय—	६.०० ▲	२.००
261	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान—	३.०० ▲	१.००
839	(कन्नड़) २.००, 689 (तेलगू) ३.००, 643 (तमिल) ३.००, 889 (गुजराती) २.००		
262	रामायणके कुछ आदर्श पात्र—	६.०० ▲	२.००
	768 (तेलगू) ५.००, 833 (कन्नड़) ६.००, 933 (गुजराती) ५.००, 1205 (उड़िया) ६.००		
263	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र—	४.०० ▲	१.००
766	(तेलगू) ५.००, 720 (कन्नड़) ६.००, 894 (गुजराती) ४.००		

कोड मूल्य डाकखर्च

264 मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग-१ ७.०० ▲ २.००
265 „ „ „ भाग-२ ५.०० ▲ १.००
268 परमशान्तिका मार्ग— भाग-१ ६.०० ▲ २.००
269 „ „ भाग-२ ६.०० ▲ २.००
543 परमार्थ-सूत्रसंग्रह— ६.०० ▲ २.००
769 साधननवनीत— ५.०० ▲ १.००
1061 (गुजराती) ७.००
945 „ „ (कन्नड़) ७.०० ▲ २.००
599 हमारा आश्चर्य— ५.०० ▲ १.००
681 रहस्यमय प्रवचन— ६.०० ▲ २.००
1021 अध्यात्मिक प्रवचन— ६.०० ▲ २.००
1022 निष्काम श्रद्धा और प्रेम— ५.०० ▲ १.००
292 नवधा भक्ति— ४.०० ▲ १.००
273 नल-दमयन्ती— ३.०० ▲ १.००
645 (तमिल) ५.००, 836 (कन्नड़) २.००, 1059 (गुजराती) ३.००
1203 (उड़िया) ३.००, 916 (तेलुगु) ४.००
274 महत्त्वपूर्ण चेतावनी— ३.०० ▲ १.००
276 परमार्थ-पत्रावली—बँगला, प्रथम भाग ४.०० ▲ १.००
277 उद्धार कैसे हो?—५१ पत्रोंका संग्रह ४.०० ▲ १.००
931 (गुजराती) ४.००
278 सच्ची सलाह—८० पत्रोंका संग्रह ६.०० ▲ २.००
280 साधनोपयोगी पत्र—७२ पत्रोंका संग्रह ६.०० ▲ २.००
281 शिक्षाप्रद पत्र—७० पत्रोंका संग्रह ७.०० ▲ २.००
282 पारमार्थिक पत्र—९१ पत्रोंका संग्रह ६.०० ▲ २.००
284 अध्यात्मविषयक पत्र—५४ पत्रोंका संग्रह ४.०० ▲ १.००
283 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ— ५.०० ▲ १.००
480 „ „ (अँग्रेजी) ४.०० ▲ १.००
716 „ „ (कन्नड़) ५.०० ▲ १.००
1077 (गुजराती) ५.००
680 उपदेशप्रद कहानियाँ— ६.०० ▲ २.००
818 उपदेशप्रद कहानियाँ—(गुजराती) ६.०० ▲ २.००
891 प्रेममें विलक्षण एकता— ६.०० ▲ २.००
958 मेरा अनुभव— ६.०० ▲ २.००
1120 सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें— ६.०० ▲ २.००
1283 सत्संगकी मार्मिक बातें— ६.०० ▲ २.००
1150 साधनकी आवश्यकता— ६.०० ▲ २.००
320 वास्तविक त्याग— ४.०० ▲ १.००
285 आदर्श भ्रातृप्रेम— ३.०० ▲ १.००
1187 (उड़िया) ४.००
286 बालशिक्षा— ३.०० ▲ १.००
690 (तेलगू) ३.००, 719 (कन्नड़) २.००,
1079 (उड़िया) ३.००, 1045 (गुजराती) ३.००
287 बालकोंके कर्तव्य— ३.०० ▲ १.००
1163 (उड़िया) ३.००
272 स्त्रियोंके लिये कर्तव्य शिक्षा— ६.०० ▲ २.००
834 „ „ „ (कन्नड़) ६.०० ▲ २.००
1046 (गुजराती) ६.००
290 आदर्श नारी सुशीला— २.०० ▲ १.००
312 (बँगला) २.००, 665 (तेलगू) ३.००, 644 (तमिल), ३.००
1174 (उड़िया) २.००, 1047 (गुजराती) २.००
291 आदर्श देवियाँ— ३.०० ▲ १.००
1221 (उड़िया) ३.००
300 नारीधर्म— २.०० ▲ १.००
293 सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय— १.०० ▲ १.००
1050 (गुजराती) १.००
294 संत-महिमा— १.०० ▲ १.००
1048 (गुजराती) १.००, 1038 (उड़िया) १.००
295 सत्संगकी कुछ सार बातें—(हिन्दी) १.५० ▲ १.००
296 (बँगला) ०.५०, 466 (तमिल) १.००,
678 (तेलगू) १.००, 844 (गुजराती) १.००,
1040 (उड़िया) १.००
301 भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म- १.०० ▲ १.००
310 सावित्री और सत्यवान्—(हिन्दी) २.०० ▲ १.००
893 (गुजराती) २.००, 609 (तमिल) २.००,
664 (तेलगू) २.००, 1220 (उड़िया) २.००

कोड मूल्य डाकखर्च

717 सावित्री-सत्यवान् और
आदर्श नारी सुशीला—(कन्नड़) ३.०० ▲ १.००
299 श्रीप्रेमभक्ति प्रकाश—
ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप २.०० ▲ १.००
907 श्रीप्रेमभक्ति प्रकाशिका—(तेलुगु) १.०० ▲ १.००
304 गीता पढ़नेके लाभ और त्यागसे भगवत्प्राप्ति—
गजलगीतासहित— १.०० ▲ १.००
1060 (गुजराती) १.००
703 गीता पढ़नेके लाभ—
और त्यागसे भगवत्प्राप्ति (असमिया) १.०० ▲ १.००
536 गीता पढ़नेसे लाभ, सत्यकी—
शरणसे मुक्ति—(तमिल) ३.०० ▲ १.००
305 गीताका तात्त्विक विवेचन एवं प्रभाव २.०० ▲ १.००
309 भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय—
(कल्याणप्राप्तिकी कई युक्तियाँ) २.०० ▲ १.००
1078 (उड़िया) ३.००
311 परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य —१.०० ▲ १.००
306 धर्म क्या है? भगवान् क्या हैं?—२.०० ▲ १.००
1206 (गुजराती) १.००
307 भगवान्की दया १.०० ▲ १.००
1051 (गुजराती) १.००
1039 भगवान्की दया एवं भगवत्कृपा (उड़िया) १.०० ▲ १.००
725 भगवान्की दया एवं भगवान्का
हेतुरहित सौहार्द—(कन्नड़) २.०० ▲ १.००
316 ईश्वर-साक्षात्कारके लिये नाम-जप सर्वोपरि
साधन है, सत्यकी शरणसे मुक्ति १.०० ▲ १.००
722 सत्यकी शरणसे मुक्ति और
गीता पढ़नेके लाभ—(कन्नड़) २.०० ▲ १.००
314 व्यापार-सुधारकी आवश्यकता और
हमारा कर्तव्य— १.०० ▲ १.००
1055 (गुजराती) १.००, 1170 (मराठी) १.००
623 धर्मके नामपर पाप— १.०० ▲ १.००
315 चेतावनी और सामयिक चेतावनी— १.०० ▲ १.००
1056 (गुजराती) १.००
318 ईश्वर दयालु और न्यायकारी है—
अवतारका सिद्धान्त— १.०० ▲ १.००
1053 (गुजराती) १.००
270 भगवान्का हेतुरहित सौहार्द एवं
महात्मा किसे कहते हैं ?— १.०० ▲ १.००
673 भगवान्का हेतुरहित सौहार्द—(तेलगू) १.०० ▲ १.००
271 भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो?— १.०० ▲ १.००
302 ध्यान और मानसिक पूजा— १.०० ▲ १.००
1127 (गुजराती) १.००
326 प्रेमका सच्चा स्वरूप और
शोकनाशके उपाय— १.०० ▲ १.००
1054 (गुजराती) १.००
324 श्रीमद्भगवद्गीताका प्रभाव—
328 संध्या-गायत्रीका महत्त्व, चतुःश्लोकी
भागवत एवं गजलगीतासहित— १.०० ▲ १.००

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

820 भगवच्चर्चा—(ग्रन्थाकार) ६५.०० ■ ८.००
050 पदरत्नाकर— ३५.०० ■ ५.००
049 श्रीराधा-माधव-चिन्तन— ५०.०० ■ ६.००
058 अमृत-कण— १६.०० ■ ३.००
332 ईश्वरकी सत्ता और महत्ता— १५.०० ■ २.००
333 सुख-शान्तिका मार्ग— १५.०० ■ २.००
343 मधुर— ११.०० ■ २.००
056 मानव-जीवनका लक्ष्य— ९.०० ■ २.००
331 सुखी बननेके उपाय— ९.०० ■ २.००
334 व्यवहार और परमार्थ— १०.०० ■ २.००
514 दुःखमें भगवत्कृपा— ९.०० ■ २.००
386 सत्संग-सुधा— ९.०० ■ २.००
342 संतवाणी-ढाई हजार अनमोल बोल १५.०० ■ २.००

कोड मूल्य डाकखर्च

850 संतवाणी-ढाई हजार अनमोल बोल(तमिल)(भाग१) ६.०० ▲ २.००
952 „ („)(भाग२) ६.०० ▲ २.००
953 „ („)(भाग३) ६.०० ▲ २.००
347 तुलसीदल— १०.०० ■ २.००
339 सत्संगके बिखरे मोती— ९.०० ■ २.००
349 भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति—१२.०० ■ ३.००
350 साधकोंका सहारा— १५.०० ■ ३.००
351 भगवच्चर्चा—भाग-५ १५.०० ■ ३.००
352 पूर्ण समर्पण— १५.०० ■ ३.००
353 लोक-परलोक-सुधार—(भाग-१) ८.०० ▲ २.००
354 आनन्दका स्वरूप—
(लोक-परलोक-सुधार भाग-२) ८.५० ■ २.००
355 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर—२९२ (भाग-३) १०.०० ■ ३.००
356 शान्ति कैसे मिले ?—
(लोक-परलोक-सुधार भाग-४) १२.०० ■ ३.००
357 दुःख क्यों होते हैं ?—(भाग-५) १०.०० ■ ३.००
348 नैवेद्य— १०.०० ■ २.००
337 दाम्पत्य-जीवनका आदर्श— ७.०० ▲ २.००
905 दाम्पत्य-जीवनका आदर्श—(तेलुगु) ८.०० ▲ २.००
1128 (गुजराती) ७.००
336 नारीशिक्षा— ८.०० ▲ २.००
1062 (गुजराती) ८.००
340 श्रीरामचिन्तन— ८.०० ▲ २.००
338 श्रीभगवन्नाम-चिन्तन— ८.०० ▲ २.००
345 भवरोगकी रामबाण दवा— ८.०० ▲ २.००
346 सुखी बनो— ७.०० ▲ २.००
341 प्रेमदर्शन— ८.०० ▲ २.००
358 कल्याण-कुंज—(क० कुं० भाग-१) ७.०० ▲ २.००
359 भगवान्की पूजाके पुष्प („ भाग-२) ७.०० ▲ २.००
360 भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं(„ भाग-३) ७.०० ▲ २.००
361 मानव-कल्याणके साधन—(„ भाग-४) १०.०० ■ २.००
362 दिव्य सुखकी सरिता—(„ भाग-५) ५.०० ▲ १.००
1067 (गुजराती) ६.००
363 सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ-(„ भाग-६) ५.०० ▲ १.००
364 परमार्थकी मन्दाकिनी-(„ भाग-७) ५.०० ▲ १.००
366 मानव-धर्म— ६.०० ▲ १.००
367 दैनिक कल्याण-सूत्र— ४.०० ▲ १.००
368 प्रार्थना—इक्कीस प्रार्थनाओंका संग्रह २.५० ▲ १.००
865 „ (उड़िया) ३.०० ▲ १.००
777 प्रार्थना-पीयूष— २.०० ▲ १.००
369 गोपीप्रेम— ३.०० ▲ १.००
370 श्रीभगवन्नाम- ३.०० ▲ १.००
1186 (उड़िया) ३.००
373 कल्याणकारी आचरण— १.०० ▲ १.००
374 साधन-पथ—सचित्र ४.०० ▲ १.००
1126 (गुजराती) ४.००
375 वर्तमान शिक्षा— २.०० ▲ १.००
376 स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी— ३.०० ▲ १.००
377 मनको वश करनेके कुछ उपाय— १.०० ▲ १.००
1058 (गुजराती) १.००
378 आनन्दकी लहरें— १.०० ▲ १.००
848 „ „ (बँगला) १.५० ▲ १.००
1011 „ „ (उड़िया) १.०० ▲ १.००
1049 (गुजराती) १.००
379 गोवध भारतका कलंक एवं
गायका माहात्म्य— ३.०० ▲ १.००
380 ब्रह्मचर्य— २.०० ▲ १.००
1041 ब्रह्मचर्य एवं मनको वश
करनेके उपाय—(उड़िया) १.०० ▲ १.००
381 दीनदुखियोंके प्रति कर्तव्य— १.०० ▲ १.००
382 सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन २.०० ▲ १.००
344 उपनिषदोंके चौदह रत्न— ५.०० ▲ १.००
371 राधा-माधव-रससुधा (षोडशगीत) सटीक १.५० ▲ १.००
384 विवाहमें दहेज— १.०० ▲ १.००
809 दिव्य संदेश एवं मनुष्य सर्वप्रिय और
जीवन कैसे बनें— १.०० ▲ १.००

कोड		मूल्य		डाकखर्च
	परम श्रद्धेय स्वामी रामसुखदासजीके कल्याणकारी साहित्य			
465	साधन-सुधा-सिन्धु—	७०.००	■	१०.००
400	कल्याण-पथ—	६.००	▲	२.००
401	मानसमें नाम-वन्दना—	६.००	▲	२.००
605	जित देखूँ तित तू—	५.००	▲	२.००
406	भगवत्प्राप्ति सहज है—	५.००	▲	२.००
535	सुन्दर समाजका निर्माण—	६.००	▲	२.००
1175	प्रश्नोत्तर मणिमाला—	६.००	▲	२.००
1247	मेरे तो गिरधर गोपाल—	४.००	▲	१.००
403	जीवनका कर्तव्य—	६.००	▲	२.००
436	कल्याणकारी प्रवचन—(हिन्दी)	५.००	▲	१.००
404	(गुजराती) ७.००, 816 (बंगला) ३.००, 1139 (उड़िया) ५.००			
405	नित्ययोगकी प्राप्ति—	५.००	▲	१.००
1093	आदर्श कहानियाँ—	६.००	▲	२.००
	1208 (उड़िया) ६.००			
407	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता—	५.००	▲	१.००
593	„ „ „ (कन्नड़) ५.००,881 (मराठी) ४.००			
408	भगवान्‌से अपनापन—	४.००	▲	१.००
	1066 (गुजराती) ४.००, 1138 (उड़िया) ४.००			
861	सत्संग-मुक्ताहार—	३.००	▲	१.००
1003	„ „ (उड़िया)	३.००	▲	१.००
1151	(गुजराती) ३.००			
860	मुक्तिमें सबका अधिकार—	१.००	▲	१.००
409	वास्तविक सुख—	५.००	▲	१.००
411	साधन और साध्य—	४.००	▲	१.००
	880 (मराठी) ३.००, 956 (बंगला) २.००			
412	तात्त्विक प्रवचन—(हिन्दी)	३.००	▲	१.००
1004	(उड़िया) ४.००, 955 (बंगला) ३.००, 413 (गुजराती) ४.००			
414	तत्त्वज्ञान कैसे हो ?—	४.००	▲	१.००
410	जीवनोपयोगी प्रवचन—	५.००	▲	१.००
822	अमृत-बिन्दु—	५.००	▲	१.००
940	„ „ (गुजराती)	४.००	▲	१.००
	1102 (बंगला) ५.००			
821	किसान और गाय—	१.००	▲	१.००
416	जीवनका सत्य—	४.००	▲	१.००
942	„ „ (गुजराती)	४.००	▲	१.००
417	भगवन्नाम—	३.००	▲	१.००
898	„ (मराठी)	३.००	▲	१.००
418	साधकोंके प्रति—	३.००	▲	१.००
419	सत्संगकी विलक्षणता—	३.००	▲	१.००
	1063 (गुजराती) ३.००			
545	जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग—	३.००	▲	१.००
	1064 (गुजराती) ३.००			
420	मातृशक्तिका घोर अपमान—	२.००	▲	१.००
	805 (तमिल) २.००, 849 (बंगला) १.००			
	882 मराठी २.००, 939 (गुजराती) २.००			
421	जिन खोजा तिन पाइयाँ—	४.००	▲	१.००
422	कर्मरहस्य— (हिन्दी)	३.००	▲	१.००
	423(तमिल) ३.००, 325 (कन्नड़) २.५०, 817 (उड़िया) ३.००			
424	वासुदेवः सर्वम्—	३.००	▲	१.००
425	अच्छे बनो—	३.००	▲	१.००
426	सत्संगका प्रसाद—	३.००	▲	१.००
946	„ „ (गुजराती)	३.००	▲	१.००
1019	सत्यकी खोज—	४.००	▲	१.००
1035	सत्यकी स्वीकृतिसे कल्याण—	१.००	▲	१.००
1182	परम विश्रामकी प्राप्ति—	१.००	▲	१.००
1176	शिखा (चोटी) धारणकी आवश्यकता और हम कहाँ जा रहे हैं? विचार करें	१.५०	▲	१.००
1255	कल्याणके तीन सुगम मार्ग—	१.५०	▲	१.००
431	स्वाधीन कैसे बनें ?—	१.५०	▲	१.००
702	यह विकास है या विनाश जरा सोचिये	१.००	▲	१.००
589	भगवान् और उनकी भक्ति—	४.००	▲	१.००
617	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३.००	▲	१.००
	625(बँगला) ३.००, 758 (तेलगू)३.००, 796 (उड़िया) ३.००,			
	831 (कन्नड़) २.००, 941 (गुजराती) २.००			

कोड		मूल्य		डाकखर्च
427	गृहस्थमें कैसे रहें ?— (हिन्दी)	५.००	▲	१.००
	428 (बँगला) ३.००, 429 (मराठी) ६.००,			
	128 (कन्नड़) ४.००, 430(उड़िया)४.००,			
	472 (अँग्रेजी) ३.००, 553(तमिल)६.००,			
	733 (तेलगू) ४.००, 943 (गुजराती) ५.००			
432	एकै साधे सब सधै—	४.००	▲	१.००
1088	(गुजराती) ३.००, 655 (तमिल) ४.००, 761 (तेलगू) ४.००			
433	सहज साधना—	३.००	▲	१.००
	1165 (गुजराती) ३.००, 903 (बंगला) २.००			
434	शरणागति—(हिन्दी)	३.००	▲	१.००
568	(तमिल)३.००, 757 (उड़िया)३.००, 759 (तेलगू)३.००			
435	आवश्यक शिक्षा— (सन्तानका कर्तव्य एवं आहार-शुद्धि)	३.००	▲	१.००
	1177 (गुजराती) २.००			
1012	पञ्चामृत—	१.००	■	१.००
1037	हे मेरे नाथ मैं आपको भूलूँ नहीं—	१.००	■	१.००
1072	क्या गुरु बिना मुक्ति नही ?—	३.००	▲	१.००
	1141 (गुजराती) ३.००, 1130 (उड़िया) ३.००			
730	संकल्पपत्र—	२.००	▲	१.००
515	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन—	१.००	▲	१.००
	938 (गुजराती) १.००, 606 (तमिल) २.००			
770	अमरताकी ओर—	४.००	▲	१.००
	1145 (गुजराती) ४.००			
438	दुर्गतिसे बचो— (हिन्दी)	१.५०	▲	१.००
449	„ „ (बँगला) (गुरुतत्त्व-सहित) २.००, 900 (मराठी)			
439	महापापसे बचो —(हिन्दी)	१.००	▲	१.००
	451 (बँगला) १.००, 731 (तेलगू) १.००,			
549	(उर्दू)१.२५, 597 (कन्नड़)१.००, 1148 (गुजराती) १.००			
591	महापापसे बचो, संतानका कर्तव्य—(तमिल)	३.००	▲	१.००
440	सच्चा गुरु कौन ?—	१.००	▲	१.००
798	गुरुतत्त्व—(उड़िया)	१.००	▲	१.००
732	नित्य-स्तुति, आदित्यहृदयस्तोत्र—(तेलगू)	१.००	■	१.००
736	„ „ „ (कन्नड़)	१.००	■	१.००
781	अलौकिक प्रेम—	१.५०	▲	१.००
1153	(गुजराती) १.००			
444	नित्य-स्तुति और प्रार्थना—	१.५०	▲	१.००
729	सार-संग्रह एवं सत्संगके अमृत-कण—	१.५०	▲	१.००
	1178 (गुजराती) १.००			
445	हम ईश्वरको क्यों मानें ?—(हिन्दी)	१.००	▲	१.००
450	(बँगला)१.००, 554 (नेपाली)			
745	भगवत्तत्त्व—	१.००	▲	१.००
632	सब जग ईश्वररूप है—	४.००	▲	१.००
447	मूर्तिपूजा-नाम-जपकी महिमा—	१.००	▲	१.००
852	„ उड़िया १.००, 469 (बँगला) १.००, 569 (तमिल) १.००			
	734 (तेलगू) २.००, 901 (मराठी)			
723	नाम-जपकी महिमा, आहार शुद्धि (कन्नड़)	२.००	▲	१.००
	671 (तेलुगु) १.००, 550 (तमिल) १.००			
	नित्यपाठ साधन-भजन-हेतु			
592	नित्यकर्म-पूजा-प्रकाश—	३०.००	■	३.००
610	व्रतपरिचय—	२०,००	■	३.००
1162	एकादशी-व्रतका माहात्म्य-मोटा टाइप—	१०.००	■	२.००
1136	वैशाख-कार्तिक-माघमास माहात्म्य—	१८.००	■	२.००
052	स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद	१८.००	■	२.००
	914 (तेलगू) १७.००			
117	दुर्गासप्तशती-मूल, मोटा टाइप	१२.००	■	२.००
876	„ „ मूल गुटका	६.००	■	२.००
909	„ „ मूल (तेलगू)	१०.००	■	२.००
843	„ „ मूल (कन्नड़)	६.००	■	२.००
118	„ „ सानुवाद	१५.००	■	२.००
489	दुर्गासप्तशती—सजिल्द	२०.००	■	२.००
866	„ „ केवल हिन्दी	१०.००	■	२.००
1161	दुर्गासप्तशती—केवल भाषा मोटा टाइप	३०.००	■	२.००
819	श्रीविष्णुसहस्रनाम-शांकरभाष्य —	१२.००	■	२.००
206	विष्णुसहस्रनाम—सटीक	३.००	■	१.००

कोड		मूल्य		डाकखर्च
	226 मूलपाठ १.५०, 740 (मलयालम)१.००,			
	670 (तेलगू) १.५०, 737 (कन्नड़) २.००,			
	794 (तमिल) २.००, 937 (गुजराती) १.००			
509	सूक्ति-सुधाकर—सूक्ति-संग्रह	१०.००	■	३.००
207	रामस्तवराज—(सटीक)	२.००	■	१.००
211	आदित्य-हृदयस्तोत्रम्—हिन्दी-अँग्रेजी-अनुवाद-सहित	१.५०	■	१.००
	1070 (उड़िया) १.००			
224	श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र-भक्त विल्वमंगलरचित	२.००	■	१.००
674	„ „ (तेलगू)	२.००	■	१.००
1154	„ „ (ओड़िया)	२.००	■	१.००
231	रामरक्षास्तोत्रम्—	१.००	■	१.००
912	„ „ सटीक (तेलुगु)	१.००	■	१.००
675	संक्षिप्त रामायणम् और रामरक्षास्तोत्रम्—(तेलगू)	२.००	■	१.००
715	महामन्त्रराजस्तोत्रम्—	२.५०	■	१.००
704	श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्—	२.००	■	१.००
705	श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम्—	२.००	■	१.००
706	श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम्—	२.००	■	१.००
707	श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम्—	२.००	■	१.००
708	श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्रम्—	२.००	■	१.००
709	श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम्—	२.००	■	१.००
710	श्रीगङ्गासहस्रनामस्तोत्रम्—	२.००	■	१.००
711	श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम्—	२.००	■	१.००
712	श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम्—	२.००	■	१.००
713	श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम्—	२.००	■	१.००
810	श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम्—	२.००	■	१.००
495	दत्तात्रेय-वज्रकवच—सानुवाद	२.००	■	१.००
229	श्रीनारायणकवच एवं अमोघ शिवकवच—	३.००	■	१.००
	1069 (उड़िया) १.००			
563	शिवमहिम्नस्तोत्र—	२.००	■	१.००
054	भजन-संग्रह—पाँचों भाग एक साथ	२२.००	■	४.००
063	पद-पद्माकर—		■	
140	श्रीरामकृष्णलीला—भजनावली-३२८ भजनसंग्रह	१२.००	■	२.००
142	चेतावनी-पद-संग्रह—(दोनों भाग)	१३.००	■	२.००
144	भजनामृत—६७ भजनोंका संग्रह	६.००	■	२.००
153	आरती-संग्रह—१०२ आरतियोंका संग्रह	४.००	■	१.००
807	सचित्र आरतियाँ—	८.००	■	२.००
385	नारद-भक्ति-सूत्र—सानुवाद	१.००	▲	१.००
330	„ „ „ (बँगला)	२.००	▲	१.००
499	„ „ „ (तमिल)	१.००	▲	१.००
208	सीतारामभजन—	३.००	■	१.००
221	हरेरामभजन—दो माला (गुटका)	२.००	■	१.००
222	हरेरामभजन—१४ माला	१०.००	■	२.००
576	विनयपत्रिकाके पैंतीस पद—	२.००	■	१.००
225	गजेन्द्रमोक्ष—सानुवाद, हिन्दी पद्य, भाषानुवाद	१.००	■	१.००
677	„ सानुवाद, (तेलगू)	१.००	■	१.००
	1068 (उड़िया) १.००			
699	गङ्गालहरी—	१.००	■	१.००
232	श्रीरामगीता—	२.००	■	१.००
383	भगवान् कृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी प्राप्तिके लिये—	१.००	▲	१.००
1094	हनुमानचालीसा—हिन्दी भावार्थसहित	३.००	■	१.००
227	हनुमानचालीसा—(पाकेट साइज)	१.००	■	१.००
695	„ „ „ (छोटी साइज)	१.००	■	१.००
	1198 (गुजराती) १.००			
600	(तमिल) २.००, 626 (बँगला) १.००,			
	676 (तेलगू) १.००, 828(गुजराती) १.५०,			
	738 (कन्नड़) १.००, 856 (उड़िया)१.००			
228	शिवचालीसा—	१.५०	■	१.००
1185	शिवचालीसा—लघु आकार	१.००	■	१.००
851	दुर्गाचालीसा, विन्ध्येश्वरीचालीसा—	१.५०	■	१.००
1033	दुर्गाचालीसा—लघु	१.००	■	१.००
203	अपरोक्षानुभूति—	२.००	■	१.००

कोड		मूल्य		डाकखर्च
139	नित्यकर्म-प्रयोग—	६.००	■	२.००
524	ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री—	२.००	■	१.००
210	सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण,			
	बलिवैश्वदेवविधि—मन्त्रानुवादसहित	३.००	■	१.००
236	साधकदैनन्दिनी—	२.००	■	१.००
614	सन्ध्या—	१.००	■	१.००
	बालोपयोगी पाठ्यपुस्तकें			
573	बालक-अङ्क —(कल्याण-वर्ष २७)	८०.००	■	१०.००
461	हिन्दी-बालपोथी—भाग-१	२.००	■	१.००
212	„ „ भाग-२	२.००	■	१.००
684	„ „ भाग-३	२.००	■	१.००
764	„ „ भाग-४	४.००	■	१.००
765	„ „ भाग-५	४.००	■	१.००
125	„ „ रंगीन-भाग-१.	३.००	■	१.००
216	बालककी दिनचर्या—	२.००	■	१.००
214	बालकके गुण—	३.००	■	१.००
217	बालकोंके सीख—	२.००	■	१.००
219	बालकके आचरण—	२.००	■	१.००
218	बाल-अमृत-वचन—	२.००	■	१.००
696	बाल-प्रश्नोत्तरी—	२.००	■	१.००
215	आओ बच्चों तुम्हें बतायें—	२.००	■	१.००
213	बालकोंकी बोल-चाल—	२.००	■	१.००
145	बालकोंकी बातें—	६.००	■	२.००
146	बड़ोंके जीवनसे शिक्षा—	६.००	■	२.००
150	पिताकी सीख—	७.००	■	२.००
197	संस्कृतिमाला-भाग-१			
516	आदर्श चरितावली—	३.००	■	१.००
396	आदर्श ऋषि-मुनि—	३.००	■	१.००
397	आदर्श देशभक्त—	४.००	■	१.००
398	आदर्श सम्राट्—	३.००	■	१.००
399	आदर्श संत—	३.००	■	१.००
402	आदर्श सुधारक—	३.००	■	१.००
897	लघुसिद्धान्तकौमुदी—	१०.००	■	३.००
148	वीर बालक—	५.००	■	१.००
149	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक—	५.००	■	१.००
152	सच्चे-ईमानदार बालक—	४.००	■	१.००
155	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ—	४.००	■	१.००
156	वीर बालिकाएँ—	३.००	■	१.००
727	स्वास्थ,सम्मान और सुख—	२.००	■	१.००
209	रामायणमध्यमा-परीक्षा-पाठ्य पुस्तक—	०.७५	■	१.००
	सर्वोपयोगी प्रकाशन			
698	मार्क्सवाद और रामराज्य—			
	स्वामी करपात्रीजी-	५०.००	■	५.००
202	मनोबोध—	५.००	■	१.००
746	श्रमण नारद—	२.००	■	१.००
747	समहाव्रत—	२.००	■	१.००
542	ईश्वर—	२.००	■	१.००
196	मननमाला—			
57	मानसिक दक्षता—(मनोवैज्ञानिक विश्लेषण)	१५.००	■	३.००
59	जीवनमें नया प्रकाश—			
	(ले० रामचरण महेन्द्र)	१२.००	■	२.००
60	आशाकी नयी किरणें—	१४.००	■	२.००
132	स्वर्णपथ—	१०.००	■	२.००
55	महकते जीवनफूल—	१८.००	■	३.००
64	प्रेमयोग—	१३.००	■	३.००
774	गीताप्रेस-परिचय—	४.००	■	१.००
387	प्रेम-सत्संग-सुधामाला—	१०.००	■	२.००
668	प्रश्नोत्तरी—	१.००	■	१.००
501	उद्धव-सन्देश—	१३.००	■	२.००
191	भगवान् कृष्ण—	३.५०	■	१.००
601	(तमिल) ५.००, 641 (तेलगू) ५.००, 895 (गुजराती) ३.००			
193	भगवान् राम—	३.००	■	१.००
	1085 (गुजराती) ४.००			
195	भगवान्पर विश्वास—	४.००	■	१.००
120	आनन्दमय जीवन—	१०.००	■	२.००
130	तत्त्वविचार—	९.००	■	२.००
133	विवेक-चूड़ामणि—	९.००	■	२.००

कोड		मूल्य		डाकखर्च
701	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका—	२.००	▲	१.००
	826 (उड़िया) २.००, 762 (बँगला) २.००, 742 (तमिल) २.५०, 752 (तेलगू) २.००, 802 (मराठी) २.००, 783 (अंग्रेजी) २.००, 804 (गुजराती) २.००, 838 (कन्नड़) २.००			
131	सुखी जीवन—	७.००	■	२.००
122	एक लोटा पानी—	१०.००	■	२.००
888	परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ—	१०.००	■	२.००
1217	भवनभास्कर—	१०.००	■	२.००
134	सती द्रौपदी—	७.००	■	२.००
137	उपयोगी कहानियाँ—	७.००	■	२.००
	919 (तेलगू) ६.००, 127(तमिल) ७.००, 724 (कन्नड़) ५.००, 934 (गुजराती) ६.००			
157	सती सुकला—	३.००	■	१.००
147	चोखी कहानियाँ—	४.००	■	१.००
692	(तेलगू) ४.००, 646 (तमिल) ५.००,			
159	आदर्श उपकार-(पढ़ो, समझो और करो)	६.००	■	२.००
160	कलेजेके अक्षर— „ „	७.००	■	२.००
161	हृदयकी आदर्श विशालता— „ „	८.००	■	२.००
162	उपकारका बदला— „ „	७.००	■	२.००
163	आदर्श मानव-हृदय— „ „	६.००	■	२.००
164	भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा— „	७.००	■	२.००
165	मानवताका पुजारी— „ „	८.००	■	२.००
827	तेईस चुलबुली कहानियाँ—„ „	८.००	■	२.००
166	परोपकार और सच्चाईका फल—„ „	७.००	■	२.००
510	असीम नीचता और असीम साधुता—	६.००	■	२.००
129	एक महात्माका प्रसाद—	१५.००	■	२.००
151	सत्संगमाला एवं ज्ञानमणिमाला—	७.००	■	२.००
	चित्रकथा			
190	बाल-चित्रमय श्रीकृष्णलीला—	८.००	■	२.००
1114	श्रीकृष्णलीला—			
	(राजस्थानी शैली १८ वीं शताब्दी)	१००.००	■	४.००
867	भगवान् सूर्य—	४०.००	■	४.००
1156	एकादश रुद्र (शिव)—	५०.००	■	४.००
1032	बालचित्र-रामायण-पुस्तकाकार—	३.००	■	१.००
869	कन्हैया— (धारावाहिक)—	१०.००	■	२.००
1096	„ (बंगला)	८.००	■	२.००
647	„ (तमिल)(धारावाहिक)	७.००	■	२.००
870	गोपाल— (हिन्दी) „	८.००	■	२.००
1097	„ (बंगला)	८.००	■	२.००
649	„ (तमिल) „	७.००	■	२.००
871	मोहन — (हिन्दी) „	८.००	■	२.००
1098	„ (बंगला)	८.००	■	२.००
650	„ (तमिल) „	७.००	■	२.००
1225	„ (गुजराती) „	१०.००	■	२.००
872	श्रीकृष्ण—(हिन्दी) „	८.००	■	२.००
1123	„ (बंगला)	८.००	■	२.००
648	„ (तमिल) „	७.००	■	२.००
1018	नवग्रह—चित्र एवं परिचय	८.००	■	२.००
1016	रामलला—	१५.००	■	२.००
1116	राजाराम—पत्रिका „	१५.००	■	२.००
862	मुझे बचाओ, मेरा क्या कसूर?—	१५.००	■	२.००
1017	श्रीराम—नवीन संस्करण—	१५.००	■	२.००
829	अष्टविनायक—	८.००	■	२.००
857	अष्टविनायक—(मराठी)	६.००	■	२.००
1214	मानस-स्तुति-संग्रह—	१०.००	■	२.००
204	ॐ नमः शिवाय—			
	(द्वादश ज्योतिर्लिंगोंकी कथा)	१५.००	■	२.००
1075	„ (बंगला)	१५.००	■	२.००
787	जय हनुमान—	१५.००	■	२.००
887	जय हनुमान—(तेलुगु) १५.००, 1009 (उड़िया) १५.००			
779	दशावतार—	८.००	■	२.००
205	नवदुर्गा—	८.००	■	२.००
	825(असमिया) ५.००; 808 (अंग्रेजी) ८.००, 863 (उड़िया) ८.०० 1043 (बंगला) ८.००			
537	बाल-चित्रमय बुद्धलीला—	५.००	■	२.००
194	बाल-चित्रमय चैतन्यलीला—	३.००	■	२.००

कोड		मूल्य		डाकखर्च
693	श्रीकृष्णरेखा-चित्रावली—	६.००	■	२.००
656	गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ	६.००	■	२.००
651	गोसेवाके चमत्कार	८.००	■	२.००
365	गोसेवाके चमत्कार (तमिल)	८.००	■	२.००
	रंगीन चित्र-प्रकाशन			
237	जय श्रीराम—भगवान् रामकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण	१५.००	■	
546	जय श्रीकृष्ण—भगवान् कृष्णकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण	१५.००	■	
1001	जगज्जननी श्रीराधा—	५.००	■	
1020	श्रीराधा-कृष्ण—युगल छवि	५.००	■	
491	हनुमान्‌जी—(भक्तराज हनुमान्)	८.००	■	
492	भगवान् विष्णु—	८.००	■	
560	लड्डू गोपाल—(भगवान् श्रीकृष्णका बालस्वरूप)	८.००	■	
548	मुरलीमनोहर—(भगवान् मुरलीमनोहर)	८.००	■	
776	सीताराम—युगल छवि	५.००	■	
1290	नटराज शिव—	८.००	■	
630	सर्वदेवमयी गौ—	८.००	■	
531	श्रीबाँकेबिहारी—	८.००	■	
812	नवदुर्गा—(माँ दुर्गाके नौ स्वरूपोंका चित्रण)	५.००	■	
437	कल्याण-चित्रावली—	८.००	■	२.००
	'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क			
1184	कृष्णाङ्क— (कल्याण ६)			
749	ईश्वराङ्क— („ ७)	९०.००	■	८.००
635	शिवाङ्क— („ ८)	८०.००	■	१०.००
41	शक्ति-अङ्क— („ ९)	१००.००	■	१०.००
616	योगाङ्क— („ १०)		■	८.००
627	संत-अङ्क— („ १२)	१००.००	■	१०.००
604	साधनाङ्क— („ १५)		■	८.००
1104	भागवताङ्क— („ १६)	१३०.००	■	१०.००
1002	सं० वाल्मीकीय रामायणाङ्क-(„१८)	६५.००	■	८.००
44	संक्षिप्त पद्मपुराण—(„ १९)	१००.००	■	१०.००
43	नारी-अङ्क— („ २२)	७०.००	■	८.००
659	उपनिषद्-अङ्क— („ २३)	१००.००	■	१०.००
518	हिन्दू-संस्कृति-अङ्क—(„ २४)	१००.००	■	१०.००
279	सं० स्कन्दपुराण— („ २५)	१००.००	■	११.००
40	भक्त-चरिताङ्क— („ २६)	८०.००	■	९.००
573	बालक-अङ्क— („२७)	८०.००	■	१०.००
1183	नारदपुराण— („२८)	१००.००	■	१०.००
667	संतवाणी-अङ्क— („ २९)		■	१०.००
587	सत्कथा-अङ्क— („ ३०)	७५.००	■	८.००
636	तीर्थाङ्क— („ ३१)	८५.००	■	१०.००
660	भक्ति-अङ्क— („ ३२)	८०.००	■	९.००
1133	सं० देवीभागवत—मोटा टाइप(, ३४)	१२०.००	■	१०.००
574	संक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्क- („ ३५)	९०.००	■	७.००
789	सं० शिवपुराण—(बड़ा टाइप)(„३६)	१००.००	■	१०.००
631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क—(„ ३७)	७५.००	■	८.००
1135	भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क—	८५.००	■	८.००
572	परलोक-पुनर्जन्माङ्क— („४३)	७०.००	■	८.००
517	गर्ग-संहिता—[भगवान् श्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन](„४४ एवं ४५)	७०.००	■	७.००
1113	नरसिंहपुराणम्— („ ४५)	५०.००	■	६.००
657	श्रीगणेश-अङ्क— („ ४८)	६५.००	■	६.००
42	हनुमान-अङ्क— („ ४९)	७०.००	■	६.००
791	सूर्याङ्क— („ ५३)	६०.००	■	५.००
584	सं० भविष्यपुराणाङ्क—(„६६)	६०.००	■	६.००
586	शिवोपासनाङ्क— („ ६७)	६०.००	■	६.००
628	रामभक्ति-अङ्क— („ ६८)	६५.००	■	६.००
653	गोसेवा-अङ्क— („ ६९)	७०.००	■	८.००
1132	धर्मशास्त्राङ्क— („ ७०)		■	६.००
1131	कूर्मपुराणाङ्क — („ ७१)		■	६.००
448	भगवल्लील-अङ्क— („ ७२)	६५.००	■	६.००
1044	वेदकथाङ्क— („ ७३)	७५.००	■	८.००
1189	सं० गरुड़ पुराणाङ्क—(„ ७४)	८०.००	■	८.००
	कल्याण एवं कल्याण-कल्पतरुके मासिक अङ्क			
1241	कल्याण-मासिक अङ्क—(दिसम्बर)	६.००	■	२.००
602	Kalyana-Kalpataru (Monthly Issues)		■	

कोड		मूल्य		डाकखर्च
	अन्य भारतीय भाषाओंके प्रकाशन			
	संस्कृत			
679	गीतामाधुर्य—	६.००	▲	२.००
	बँगला			
763	साधक-संजीवनी—(पूरा सेट)	८५.००	■	१०.००
1118	गीतातत्त्व-विवेचनी	६५.००	■	१०.००
556	गीता-दर्पण—	३०.००	■	५.००
013	गीता-पदच्छेद—	१५.००	■	४.००
957	गीता-ताबीजी—	२.००	■	१.००
954	श्रीरामचरितमानस—ग्रन्थाकार	१२०.००	■	१०.००
626	हनुमानचालीसा—	१.००	■	१.००
1043	नवदुर्गा—	८.००	■	२.००
1075	ॐ नमः शिवाय—	१५.००	■	२.००
1103	मूल रामायण एवं रामरक्षास्तोत्र—	२.००	■	१.००
1096	कन्हैया—	८.००	■	२.००
1097	गोपाल—	८.००	■	२.००
1098	मोहन—	८.००	■	२.००
1123	श्रीकृष्ण—	८.००	■	२.००
848	आनन्दकी लहरें—	१.५०	▲	१.००
849	मातृशक्तिका घोर अपमान—	१.००	▲	१.००
496	गीता भाषा टीका—(पाकेट साइज)	६.००	■	२.००
275	कल्याण-प्राप्तिके उपाय—	८.००	▲	२.००
395	गीतामाधुर्य—	५.००	▲	१.००
816	कल्याणकारी प्रवचन—	३.००	▲	१.००
428	गृहस्थमें कैसे रहें ?—	३.००	▲	१.००
276	परमार्थ-पत्रावली—भाग-१	४.००	▲	१.००
903	सहज साधना—	२.००	▲	१.००
449	दुर्गतिसे बचो गुरुतत्त्व—	२.००	▲	१.००
450	हम ईश्वरको क्यों मानें ?—	१.००	▲	१.००
312	आदर्श नारी सुशीला—	२.००	▲	१.००
955	तात्त्विक प्रवचन—	३.००	▲	१.००
956	साधन और साध्य—	२.००	▲	१.००
330	नारद एवं शांडिल्य-भक्ति-सूत्र—	२.००	▲	१.००
625	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम—	३.००	▲	१.००
1102	अमृत-बिन्दु—	५.००	▲	१.००
1115	तत्त्वज्ञान कैसे हो?—	४.००	▲	१.००
1122	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ?—	३.००	▲	१.००
451	महापापसे बचो—	१.००	▲	१.००
762	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका—	२.००	▲	१.००
469	मूर्तिपूजा—	१.००	▲	१.००
1140	भगवान्‌के दर्शन प्रत्यक्ष हो सकते हैं—	१.००	▲	१.००
296	सत्संगकी सार बातें—	०.५०	▲	१.००
443	संतानका कर्तव्य—	१.००	▲	१.००
	मराठी			
784	ज्ञानेश्वरी गूढार्थ-दीपिका—	१२०.००	■	१०.००
859	ज्ञानेश्वरी—मूल मझला	३५.००	■	४.००
748	ज्ञानेश्वरी—मूल गुटका	२५.००	■	४.००
853	एकनाथी भागवत—मूल	९०.००	■	८.००
7	साधक-संजीवनी टीका—	७०.००	■	१०.००
1071	श्रीनामदेवांची गाथा—	५०.००	■	४.००
855	हरीपाठ—	२.००	■	१.००
504	गीता-दर्पण—	२५.००	■	५.००
14	गीता-पदच्छेद—	२५.००	■	४.००
15	गीता माहात्म्यसहित—	२५.००	■	४.००
1257	गीता श्लोकार्थसहित (पाकेट साइज)	६.००	■	२.००
1073	भक्त चन्द्रिका—	४.००	■	१.००
857	अष्टविनायक—	६.००	■	२.००
391	गीतामाधुर्य—	६.००	▲	२.००
429	गृहस्थमें कैसे रहें ?—	६.००	▲	२.००
883	मूर्तिपूजा—	१.००	▲	१.००
880	साधन और साध्य—	३.००	▲	१.००
802	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२.००	▲	१.००
884	सन्तानका कर्तव्य—	१.००	▲	१.००
885	तात्त्विक प्रवचन—	३.००	▲	१.००
901	नाम-जपकी महिमा—		▲	१.००
900	दुर्गतिसे बचो—		▲	१.००
902	आहार-शुद्धि—		▲	१.००
1170	हमारा कर्तव्य—	१.००	▲	१.००
881	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता—	४.००	▲	१.००
898	भगवन्नाम—	३.००	▲	१.००
882	मातृशक्तिका घोर अपमान—	२.००	▲	१.००
899	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम—	३.००	▲	१.००
	गुजराती			
467	साधक-संजीवनी—	९०.००	■	१०.००
468	गीता-दर्पण—	३०.००	■	५.००
12	गीता-पदच्छेद—	२०.००	■	४.००
1085	भगवान् राम—	४.००	■	१.००
936	गीता छोटी—सटीक	६.००	■	२.००
1034	गीता छोटी—सजिल्द	८.००	■	२.००
799	श्रीरामचरितमानस—ग्रन्थाकार	१२०.००	■	१०.००
785	„ „ मझला साइज	५५.००	■	५.००
878	„ „ मूल मझला	२५.००	■	४.००
879	„ „ मूल गुटका	२५.००	■	३.००
948	सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	५.००	■	१.००
1199	सुन्दरकाण्ड—मूल लघु आकार	२.००	■	१.००
1225	मोहन—(धारावाहिक चित्रकथा)	१०.००	■	२.००
895	भगवान् श्रीकृष्ण—	३.००	■	१.००
613	भक्त नरसिंह मेहता—	७.००	■	२.००
934	उपयोगी कहानियाँ—	६.००	■	२.००
1076	आदर्श भक्त—	६.००	■	२.००
1082	भक्त सप्तरत्न—	५.००	■	१.००
1084	भक्त महिलारत्न—	६.००	■	२.००
875	भक्त सुधाकर—	६.००	■	२.००
892	भक्त चन्द्रिका—	४.००	■	२.००
1143	भक्त सुमन—	७.००	■	२.००
1087	प्रेमी भक्त—	५.००	■	१.००
890	प्रेमी भक्त उद्धव—	३.००	■	१.००
947	महात्मा विदुर—	३.००	■	१.००
937	विष्णुसहस्रनाम—	१.००	■	१.००
935	संक्षिप्त रामायण-(वाल्मीकीय रामायण-अन्तर्गत)	२.००	■	१.००
1077	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ—	५.००	▲	१.००
1164	शीघ्र कल्याणके सोपान—	८.००	▲	२.००
1146	श्रद्धा, विश्वास और प्रेम—	८.००	▲	२.००
1144	व्यवहारमें परमार्थकी कला—	८.००	▲	२.००
1046	स्त्रियोंके लिये कर्त्तव्य-शिक्षा—	६.००	▲	२.००
1062	नारीशिक्षा—	८.००	▲	२.००
1128	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श—	७.००	▲	२.००
1052	इसी जन्ममें भगवत्प्राप्ति—	६.००	▲	२.००
1061	साधननवनीत—	७.००	▲	२.००
1047	आदर्श नारी सुशीला—	२.००	▲	१.००
1059	नल-दमयन्ती—	३.००	▲	१.००
1045	बालशिक्षा—	३.००	▲	१.००
1049	आनन्दकी लहरें—	१.००	▲	१.००
1067	दिव्य सुखकी सरिता—	६.००	▲	२.००
1126	साधन-पथ—	४.००	▲	१.००
1058	मनको वश करनेके उपाय एवं कल्याणकारी आचरण—	१.००	▲	१.००
1054	प्रेमका सच्चा स्वरूप और सत्यकी शरणसे मुक्ति—	१.००	▲	१.००
933	रामायणके आदर्श पात्र—	५.००	▲	१.००
931	उद्धार कैसे हो?—	४.००	▲	१.००
946	सत्संगका प्रसाद—	३.००	▲	१.००
1063	सत्संगकी विलक्षणता—	३.००	▲	१.००
1064	जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग—	३.००	▲	१.००
1165	सहज साधना—	३.००	▲	१.००
942	जीवनका सत्य—	४.००	▲	१.००
1145	अमरताकी ओर—	४.००	▲	१.००
1151	सत्संगमुक्ताहार—	३.००	▲	१.००
940	अमृत-बिन्दु—	४.००	▲	१.००
1066	भगवान्‌से अपनापन—	४.००	▲	१.००
893	सती सावित्री—	२.००	▲	१.००
894	महाभारतके आदर्श पात्र—	४.००	▲	१.००
941	देशकी वर्तमान दशा तथा परिणाम—	२.००	▲	१.००
943	गृहस्थमें कैसे रहें ?—	५.००	▲	१.००
1177	आवश्यक शिक्षा—	२.००	▲	१.००
1088	एकै साधे सब सधै—	३.००	▲	१.००
932	अमूल्य समयका सदुपयोग—	६.००	▲	२.००
938	सर्वोच्चपदप्राप्तिके साधन—	१.००	▲	१.००
939	मातृ-शक्तिका घोर अपमान—	२.००	▲	१.००
1050	सच्चा सुख	१.००	▲	१.००
1206	धर्म क्या है? भगवान् क्या हैं?—	१.००	▲	१.००
1051	भगवान्‌की दया—	१.००	▲	१.००
1060	त्यागसे भगवत्प्राप्ति और गीता पढ़नेके लाभ—	१.००	▲	१.००
806	रामभक्त हनुमान्—	३.००	■	१.००
828	हनुमानचालीसा—	१.५०	■	१.००
1198	हनुमानचालीसा—लघु आकार	१.००	■	१.००
392	गीतामाधुर्य—	६.००	▲	२.००
404	कल्याणकारी प्रवचन—	७.००	▲	२.००
1141	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?—	३.००	▲	१.००
1086	कल्याणकारी प्रवचन—भाग-२	४.००	▲	१.००
889	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान—	२.००	▲	१.००
877	अनन्य भक्तिसे भगवत्प्राप्ति—	७.००	▲	२.००
818	उपदेशप्रद कहानियाँ—	६.००	▲	२.००
413	तात्त्विक प्रवचन—	४.००	▲	१.००
844	सत्संगकी कुछ सार बातें—	१.००	▲	१.००
1056	चेतावनी एवं सामयिक चेतावनी—	१.००	▲	१.००
1053	अवतारका सिद्धान्त और ईश्वर दयालु एवं न्यायकारी—	१.००	▲	१.००
1055	हमारा कर्त्तव्य एवं व्यापार-सुधारकी आवश्यकता—	१.००	▲	१.००
1127	ध्यान और मानसिक पूजा—	१.००	▲	१.००
804	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका—	२.००	▲	१.००
1048	संत-महिमा—	१.००	▲	१.००
1148	महापापसे बचो—	१.००	▲	१.००
1178	सार-संग्रह, सत्संगके अमृत-कण—	१.००	▲	१.००
1153	अलौकिक प्रेम—	१.००	▲	१.००
	तमिल			
800	गीता-तत्त्व-विवेचनी—	६५.००	■	१०.००
823	गीता-पदच्छेद—	२०.००	■	४.००
743	गीतामूलम्—	१५.००	■	२.००
795	गीता भाषा—	५.००	■	१.००
794	विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्—	२.००	■	१.००
793	गीता मूल-विष्णुसहस्रनाम—	५.००	■	१.००
389	गीतामाधुर्य—	८.००	▲	२.००
127	उपयोगी कहानियाँ—	७.००	■	२.००
646	चोखी कहानियाँ—	५.००	■	१.००
600	हनुमानचालीसा—	२.००	■	१.००
601	भगवान् श्रीकृष्ण—	५.००	■	१.००
608	भक्तराज हनुमान्—	६.००	■	२.००
642	प्रेमी भक्त उद्धव—	५.००	■	१.००
1246	भक्तचरित्रम्—	६.००	■	२.००
365	गोसेवाके चमत्कार—	८.००	■	२.००
647	कन्हैया—(धारावाहिक चित्रकथा)	७.००	■	२.००
648	श्रीकृष्ण—(„ „)	७.००	■	२.००
649	गोपाल—(„ „)	७.००	■	२.००
650	मोहन—(„ „)	७.००	■	२.००
850	संतवाणी—(भाग १)	६.००	▲	२.००
952	„ („ २)	६.००	▲	२.००
953	„ („ ३)	६.००	▲	२.००
741	महात्मा विदुर—	३.००	■	१.००
1042	पञ्चामृत—	२.००	■	१.००
742	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका—	२.५०	▲	१.००
553	गृहस्थमें कैसे रहें ?—	६.००	▲	२.००
536	गीता पढ़नेके लाभ, सत्यकी शरणसे मुक्ति—	३.००	▲	१.००
591	महापापसे बचो, संतानका कर्तव्य—	३.००	▲	१.००
466	सत्संगकी सार बातें—	१.००	▲	१.००
423	कर्मरहस्य—	३.००	▲	१.००

कोड		मूल्य	डाकखर्च
568	शरणागति—	३.०० ▲	१.००
569	मूर्तिपूजा—	१.०० ▲	१.००
551	आहारशुद्धि—	१.०० ▲	१.००
645	नल-दमयन्ती—	५.०० ▲	१.००
644	आदर्श नारी सुशीला—	३.०० ▲	१.००
643	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान—	३.०० ▲	१.००
550	नाम-जपकी महिमा—	१.०० ▲	१.००
499	नारद-भक्ति-सूत्र—	१.०० ▲	१.००
606	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन—	२.०० ▲	१.००
609	सावित्री और सत्यवान्—	२.०० ▲	१.००
805	मातृशक्तिका घोर अपमान—	२.०० ▲	१.००
607	सबका कल्याण कैसे हो ?—	२.०० ▲	१.००
792	आवश्यक चेतावनी—	२.०० ▲	१.००
655	एकै साधे सब सधै—	४.०० ▲	१.००
1007	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति—	८.०० ▲	३.००
	कन्नड़		
1112	गीता-तत्त्व-विवेचनी—	७०.०० ■	१०.००
726	गीता पदच्छेद—	२५.०० ■	४.००
718	गीता तात्पर्यके साथ—	१५.०० ■	३.००
661	गीता मूल—(विष्णुसहस्रनामसहित)	४.०० ■	१.००
736	नित्यस्तुति, आदित्य-हृदयस्तोत्रम्—	१.०० ■	१.००
738	हनुमत्-स्तोत्रावली—	१.०० ■	१.००
737	विष्णुसहस्रनाम एवं सहस्रनामावली—	२.०० ■	१.००
721	भक्त बालक—	४.०० ■	१.००
951	भक्त चन्द्रिका—	५.०० ■	१.००
716	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ—	५.०० ■	१.००
724	उपयोगी कहानियाँ—	५.०० ■	१.००
832	श्रीरामचरितमानस—सुन्दरकाण्ड (सटीक)	■	
835	श्रीरामभक्त हनुमान्—	४.०० ■	१.००
837	विष्णुसहस्रनाम—सटीक	३.०० ■	१.००
840	आदर्श भक्त—	५.०० ■	१.००
841	भक्त सप्तरत्न—	५.०० ■	१.००
842	ललितासहस्रनामस्तोत्र—	४.०० ■	१.००
843	दुर्गासप्तशती—मूल	६.०० ■	२.००
390	गीतामाधुर्य—		
128	गृहस्थमें कैसे रहें ?—		
720	महाभारतके आदर्श पात्र—	६.०० ▲	२.००
945	साधननवनीत	७.०० ▲	२.००
717	सावित्री-सत्यवान् और आदर्श नारी सुशीला	३.०० ▲	१.००
723	नाम-जपकी महिमा और आहारशुद्धि—	२.०० ▲	१.००
725	भगवान्‌की दया एवं भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द—	२.०० ▲	१.००
722	सत्यकी शरणसे मुक्ति गीता पढ़नेके लाभ —	२.०० ▲	१.००
325	कर्मरहस्य—		
593	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता—		
597	महापापसे बचो—		
598	वास्तविक सुख—		
719	बालशिक्षा—	२.०० ▲	१.००
831	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम —	२.०० ▲	१.००
833	रामायणके कुछ आदर्श पात्र—	६.०० ▲	२.००
834	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा—	६.०० ▲	२.००
836	नल-दमयन्ती—	१.०० ▲	१.००
838	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका—	२.०० ▲	१.००
839	भगवान के रहनेके पाँच स्थान—	२.०० ▲	१.००
	असमिया		
714	गीता भाषा टीका—पाकेट साइज	५.०० ■	१.००
1222	श्रीमद्भागवत-महात्म्य—	६.०० ■	२.००
825	नवदुर्गा—	५.०० ■	२.००
624	गीतामाधुर्य—	५.०० ▲	१.००
703	गीता पढ़नेके लाभ—	१.०० ▲	१.००
	उड़िया		
1100	गीता-तत्त्व-विवेचनी—ग्रन्थाकार	७०.०० ■	१०.००
1121	गीता-साधक-संजीवनी—	९०.०० ■	१०.००
1218	रामचरितमानस—मूल मोटा टाइप	७०.०० ■	५.००
1157	गीता—सटीक मोटे अक्षर (अजि०)	१०.०० ■	२.००

कोड		मूल्य	डाकखर्च
815	गीता श्लोकार्थसहित—(सजि०)	१५.०० ■	२.००
541	गीता मूल विष्णुसहस्रनामसहित—	३.०० ■	१.००
1008	गीता—पाकेट साइज	६.०० ■	२.००
1009	जय हनुमान्—	१५.०० ■	२.००
863	नवदुर्गा—	८.०० ■	२.००
854	भक्तराज हनुमान्—	४.०० ■	१.००
1173	भक्त चन्द्रिका—	५.०० ■	१.००
856	हनुमानचालीसा—	१.०० ■	१.००
754	गीतामाधुर्य—	५.०० ▲	१.००
1003	सत्संगमुक्ताहार—	३.०० ▲	१.००
1004	तात्त्विक प्रवचन—	४.०० ▲	१.००
1208	आदर्श कहानियाँ—	६.०० ▲	२.००
1139	कल्याणकारी प्रवचन—	५.०० ▲	१.००
1138	भगवान्‌से अपनापन—	४.०० ▲	१.००
798	गुरुतत्त्व—	१.०० ▲	१.००
797	सन्तानका कर्तव्य-सच्चा आश्रय—	१.०० ▲	१.००
817	कर्मरहस्य—	३.०० ▲	१.००
1010	अष्टविनायक—		
1036	गीता—मूल लघु आकार	१.०० ■	१.००
1070	आदित्यहृदयस्तोत्र—	१.०० ■	१.००
1068	गजेन्द्रमोक्ष—	१.०० ■	१.००
1069	नारायणकवच	१.०० ■	१.००
1078	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय—	३.०० ▲	१.००
1079	बालशिक्षा—	३.०० ▲	१.००
1163	बालकोंके कर्तव्य—	३.०० ▲	१.००
1187	आदर्श भ्रातृप्रेम—	४.०० ▲	१.००
1174	आदर्श नारी सुशीला—	२.०० ▲	१.००
1220	सावित्री और सत्यवान्—	२.०० ▲	१.००
1221	आदर्श देवियाँ—	३.०० ▲	१.००
1038	संत-महिमा—	१.०० ▲	१.००
1089	धर्म क्या है ? भगवान् क्या हैं ?—	२.०० ▲	१.००
1039	भगवान्‌की दया एवं भगवत्कृपा—	१.०० ▲	१.००
1090	प्रेमका सच्चा स्वरूप—(पाकेट साइज)	१.०० ▲	१.००
1091	हमारा कर्तव्य—	१.०० ▲	१.००
1040	सत्संगकी कुछ सार बातें—	१.०० ▲	१.००
1041	ब्रह्मचर्य एवं मनको वश करनेके कुछ उपाय—	१.०० ▲	१.००
1011	आनन्दकी लहरें—	१.०० ▲	१.००
826	गर्भपात उचित या अनुचित—	२.०० ▲	१.००
757	शरणागति—	३.०० ▲	१.००
1186	श्रीभगवन्नाम—	३.०० ▲	१.००
430	गृहस्थमें कैसे रहें ?—	४.०० ▲	१.००
1005	मातृशक्तिका घोर अपमान—	२.०० ▲	१.००
852	मूर्तिपूजा-नामजपकी महिमा	१.०० ▲	१.००
865	प्रार्थना—	३.०० ▲	१.००
796	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम—	३.०० ▲	१.००
1130	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं—	३.०० ▲	१.००
1154	गोविन्ददामोदरस्तोत्र—	२.०० ■	१.००
1200	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र—	३.०० ■	१.००
1201	महात्मा विदुर—	३.०० ■	१.००
1202	प्रेमी भक्त उद्धव—	३.०० ■	१.००
1203	नल-दमयन्ती	३.०० ■	१.००
1204	सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	५.०० ■	१.००
1205	रामायणके कुछ आदर्श पात्र—	६.०० ▲	२.००
	नेपाली		
394	गीतामाधुर्य—		
554	हम ईश्वरको क्यों मानें ?—		
	उर्दू		
393	गीतामाधुर्य—	८.०० ▲	२.००
549	महापापसे बचो—		
590	मनकी खटपट कैसे मिटे?—	०.८० ▲	१.००
	तेलगू		
1172	गीता-तत्त्व-विवेचनी—	७०.०० ■	१०.००
1031	गीत— छोटी पाकेट साईज	५.०० ■	१.००
845	अध्यात्मरामायण—	६०.०० ■	७.००
908	नारायणीयम्— मूलम्		

कोड		मूल्य	डाकखर्च
909	दुर्गासप्तशती—मूलम्	१०.०० ■	२.००
910	विवेकचूडामणि—		
846	ईशावास्योपनिषद्—	३.०० ■	१.००
771	गीता तात्पर्यसहित—	१२.०० ■	२.००
772	गीता पदच्छेद अन्वयसहित—	२०.०० ■	३.००
692	चोखी कहानियाँ—	४.०० ■	१.००
682	भक्तपञ्चरत्न—	५.०० ■	१.००
686	प्रेमी भक्त उद्धव—	३.०० ■	१.००
687	आदर्श भक्त—	५.०० ■	१.००
767	भक्तराज हनुमान्—	५.०० ■	१.००
917	भक्त चन्द्रिका—	५.०० ■	१.००
685	भक्त बालक—	४.०० ■	१.००
918	भक्त सप्तरत्न—	५.०० ■	१.००
929	महाभक्तलू प्रेमी भक्त—	६.०० ■	१.००
670	विष्णुसहस्रनाम—मूल	१.५० ■	१.००
1025	स्तोत्रकदम्बम्—	२.०० ■	१.००
914	स्तोत्ररत्नावली—	१७.०० ■	२.००
1029	भजन-संकीर्तनावली—	१०.०० ■	२.००
688	भक्तराज ध्रुव—	२.०० ■	१.००
753	सुन्दरकाण्ड—सटीक	४.०० ■	१.००
691	श्रीभीष्मपितामह—	९.०० ■	२.००
732	नित्यस्तुति, आदित्यहृदयस्तोत्रम्—	१.०० ■	१.००
904	प्रेमदर्शन (नारदभक्तिसूत्रम्)—		
887	जय हनुमान् पत्रिका—	१५.०० ■	२.००
912	रामरक्षास्तोत्र—सटीक	१.०० ■	१.००
905	आदर्श दाम्पत्य-जीवनम्—	८.०० ▲	२.००
906	भगन्तुडे आत्मेयुणु—	२.०० ▲	१.००
676	हनुमानचालीसा—	१.०० ■	१.००
641	भगवान् श्रीकृष्ण—	५.०० ■	१.००
662	गीता मूल—(विष्णुसहस्रनामसहित)	३.०० ■	१.००
663	गीता भाषा—	५.०० ■	१.००
674	गोविन्ददामोदरस्तोत्र—	२.०० ■	१.००
675	सं० रामायणम्, रामरक्षास्तोत्रम्—	२.०० ■	१.००
677	गजेन्द्रमोक्षम्—	१.०० ■	१.००
801	ललितासहस्रनाम—	२.०० ■	१.००
919	मंचि कथलु (उपयोगी कहानियाँ)	६.०० ■	२.००
920	परमार्थ-पत्रावली—	४.०० ▲	१.००
913	भगवत्प्राप्ति सर्वोत्कृष्ट साधनमु नाम-स्मरणमे—	१.०० ▲	१.००
766	महाभारतके आदर्श पात्र—	५.०० ▲	१.००
760	महत्त्वपूर्ण शिक्षा—	३.०० ▲	१.००
768	रामायणके आदर्श पात्र—	५.०० ▲	१.००
733	गृहस्थमें कैसे रहें ?—	४.०० ▲	१.००
761	एकै साधे सब सधै—	४.०० ▲	१.००
759	शरणागति एवं मुकुन्दमाला—	३.०० ▲	१.००
752	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका—	२.०० ▲	१.००
734	आहारशुद्धि, मूर्ति-पूजा—	२.०० ▲	१.००
664	सावित्री-सत्यवान्—	२.०० ▲	१.००
665	आदर्श नारी सुशीला—	३.०० ▲	१.००
666	अमूल्य समयका सदुपयोग—	५.०० ▲	१.००
672	सत्यकी शरणसे मुक्ति—	१.०० ▲	१.००
671	नामजपकी महिमा—	१.०० ▲	१.००
678	सत्संगकी कुछ सार बातें—	१.०० ▲	१.००
731	महापापसे बचो—	१.०० ▲	१.००
758	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम—	३.०० ▲	१.००
916	नल-दमयन्ती—	४.०० ▲	१.००
689	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान—	३.०० ▲	१.००
690	बालशिक्षा	३.०० ▲	१.००
907	प्रेमभक्ति-प्रकाशिका—	१.०० ▲	१.००
673	भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द—	१.०० ▲	१.००
926	सन्तानका कर्तव्य—	१.०० ▲	१.००
	मलयालम		
739	गीता विष्णुसहस्रनाम—मूल	४.०० ■	१.००
740	विष्णुसहस्रनाम—मूल	१.०० ■	१.००

कुछ महत्त्वपूर्ण नवीन प्रकाशन

कोड	मूल्य
हिन्दी	
1090 श्रीशुकसुधासागर—सचित्र मोटा टाइप	
1091 (दो खंडोंमें सेट)	२५०.००
1247 मेरे तो गिरधर गोपाल —	४.००
830 सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा (रंगीन)	१२.००
437 कल्याण-चित्रावली—	८.००
1255 कल्याणके तीन सुगम मार्ग—	१.५०
1290 नटराज शिव—(चित्र)	८.००
1283 सत्संगकी मार्मिक बातें—	६.००
1242 पाण्डव गीता एवं हंस गीता—	३.००
1217 भवन-भास्कर—	१०.००
1214 मानस-स्तुति-संग्रह	१०.००
1192 मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका—(खण्ड-१)	९०.००
1193 मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका—(खण्ड-२)	१००.००
उड़िया	
1218 श्रीरामचरितमानस —मूल मोटा टाइप	७०.००
1221 आदर्श देवियाँ—	३.००
1220 सावित्री-सत्यवान्—	२.००
गुजराती	
1144 व्यवहारमें परमार्थकी कला—	८.००
1151 सत्संगमुक्ताहार—	३.००
1153 अलौकिक प्रेम—	१.००
1206 धर्म क्या है? भगवान् क्या हैं?	१.००
1225 मोहन—(धारावाहिक चित्रकथा)	१०.००
असमिया	
1222 श्रीमद्भागवत माहात्म्य—	६.००
मराठी	
1257 गीताश्लोकार्थसहित—(पाकेट साइज)	६.००

Our English Publications

कोड		मूल्य		डाकखर्च
457	Shrimad Bhagavadgita—Tattva-Vivechani (By Jayadayal Goyandka) Detailed Commentary	50.00	■	8.00
1080	Shrimad Bhagavadgita—Sadhak-Sanjivani (By Swami Ramsukhdas) (English Commentary) Medium Part I	35.00	■	5.00
1081	„ „ „ Medium Part II	35.00	■	5.00
455	Bhagavadgita—(With Sanskrit Text and English Translation) Pocket size	5.00	■	1.00
534	„ „ Bound	7.00	■	2.00
470	Bhagavadgita—Roman Gita (With Sanskrit Text and English Translation) (Bound)			
1223	„ „ „ (Unbound)	10.00	■	2.00
808	NavaDurga—(Story with the Picture)	8.00	■	2.00
452, 453	Shrimad Valmiki Ramayana—(With Sanskrit Text and English Translation) Set of 2 volumes	220.00	■	19.00
456	Shri Ramacharitamanas—(With Hindi Text and English Translation)	70.00	■	9.00
786	„ „ „ Medium	50.00	■	6.00
564, 565	Shrimad Bhagvat (With Sanskrit Text and English Translation) Set	150.00	■	16.00
783	Abortion Right or Wrong you Decide—	2.00	▲	1.00
824	Songs From Bhartrihari—	2.00	■	1.00
494	The Immanence of God — (By MadanMohan Malaviya)	2.00	■	1.00
	By Jayadayal Goyandka			
477	Gems of Truth—[Vol. I]	5.00	▲	1.00
478	„ [Vol. II]	6.00	▲	2.00
479	Sure Steps to God-Realization—	8.00	▲	2.00
481	Way to Divine & Bliss—	4.00	▲	1.00
482	What is Dharma? What is God?—	1.00	▲	1.00
480	Instructive Eleven Stories—	4.00	▲	1.00
694	Dialogue with the Lord During Meditation—	2.00	▲	1.00
1125	Five Divine Abodes—	2.00	▲	1.00
520	Secret of Jnana Yoga—	8.00	▲	2.00
521	„ „ Prem Yoga—	6.00	▲	2.00
522	„ „ Karma Yoga—	9.00	▲	2.00
523	„ „ Bhakti Yoga—	8.00	▲	2.00
658	Secrets of Gita—	4.00	▲	1.00
1013	Gems of Satsang—	1.00	▲	1.00
	By Hanuman Prasad Poddar			
484	Look Beyond the Veil—	6.00	▲	2.00
622	How to Attain Eternal Happiness ?—	8.00	▲	2.00
483	Turn to God—	7.00	▲	2.00
485	Path to Divinity—	7.00	▲	2.00
847	Gopis Love for Sri Krishna—	4.00	▲	1.00
620	The Divine Name and its Practice—	2.50	▲	1.00
486	Wavelets of Bliss & the Divine Message—	1.50	▲	1.00
	By Swami Ramsukhdas			
498	In Search of Supreme Abode—			
619	Ease in God-Realization—	4.00	▲	1.00
471	Benedictory Discourses—	5.00	▲	1.00
473	Art of Living—	3.00	▲	1.00
487	Gita Madhurya (English)—	5.00	▲	1.00
1101	The Drops of Nectar (Amrita Bindu)—	4.00	▲	1.00
472	How to Lead A Household Life—	3.00	▲	1.00
570	Let us Know the Truth—	3.00	▲	1.00
638	Sahaj Sadhna—	2.00	▲	1.00
634	God is Everything—	3.00	▲	1.00
621	Invaluable Advice—	2.00	▲	1.00
474	Be Good—			
497	Truthfulness of Life—	2.00	▲	1.00
669	The Divine Name—	2.00	▲	1.00
476	How to be Self-Reliant—	1.00	▲	1.00
552	Way to Attain the Supreme Bliss—	1.00	▲	1.00
562	Ancient Idealism for Modernday Living—	1.00	▲	1.00

Subscribe our English Monthly

"KALYANA-KALPATARU"

"HINDU SANSKRITI NUMBER"

(Vol. 46, N0.1 Oct. 2000) ANNUAL SUBSCRIPTION Rs. 80

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित

'कल्याण'-वर्ष ७५ (सन् २००१ ई०)-का विशेषाङ्क

आरोग्य-अङ्क

वार्षिक शुल्क—अजिल्द रु० १२०, सजिल्द रु० १३५

दसवर्षीय शुल्क—अजिल्द रु० १०००, सजिल्द रु० ११५०

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय-गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

॥ श्रीहरिः॥

'कल्याण' का उद्देश्य और इसके नियम

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जन-जनको कल्याणके पथपर अग्रसरित करनेका प्रयत्न करना इसका एकमात्र उद्देश्य है।

नियम—भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याण-मार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख 'कल्याण' में प्रकाशित नहीं किये जाते। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने-न-छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

२-'कल्याण' का वार्षिक शुल्क डाक-व्ययसहित नेपाल-भूटान तथा भारतवर्षमें रु० १२० (सजिल्द विशेषाङ्कका रु० १३५) और विदेशके लिये सजिल्द अङ्कका हवाई डाकसे (Air mail) US $25 (रु० ११५०) तथा समुद्री डाकसे (Sea mail) US $13 (रु० ६००) है। समुद्री डाकसे पार्सल पहुँचनेमें बहुत समय लग सकता है, अतः हवाई डाकसे ही अङ्क मँगवाना चाहिये।

३-'कल्याण' का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरतक रहता है, ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं। वर्षके मध्यमें बननेवाले ग्राहकको जनवरीसे ही अङ्क दिये जाते हैं। एक वर्षसे कमके ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं।

४-ग्राहकोंको वार्षिक शुल्क मनीआर्डर अथवा बैंकड्राफ्टद्वारा ही भेजना चाहिये। वी०पी०पी० से 'कल्याण' मँगानेमें ग्राहकोंको वी०पी०पी० डाकशुल्कके रूपमें १० रु० अधिक देना पड़ता है एवं 'कल्याण' भेजनेमें विलम्ब भी हो जाता है।

५-'कल्याण' के मासिक अङ्क सामान्यतया ग्राहकोंको सम्बन्धित मासके प्रथम पक्षके अन्ततक मिल जाने चाहिये। अङ्क कई बार जाँच करके भेजा जाता है। यदि कोई अङ्क समयसे न मिले तो डाकघरसे पूछताछ करनेके उपरान्त हमें सूचित करें।

६-पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम ३० दिनोंके पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। पत्रोंमें 'ग्राहक-संख्या', पुराना और नया—पूरा पता स्पष्ट एवं सुवाच्य अक्षरोंमें लिखना चाहिये। यदि कुछ महीनोंके लिये ही पता बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पता बदलनेकी सूचना समयसे न मिलनेपर दूसरी प्रति भेजनेमें कठिनाई हो सकती है। यदि आपके पतेमें कोई महत्त्वपूर्ण भूल हो या आपका 'कल्याण' के प्रेषण-सम्बन्धी कोई अनियमितता/सुझाव हो तो अपनी 'ग्राहक-संख्या' लिखकर हमें सूचित करें।

७-जनवरीका विशेषाङ्क ही वर्षका प्रथम अङ्क होता है। वर्षपर्यन्त मासिक अङ्क ग्राहकोंको उसी शुल्क-राशिमें भेजे जाते हैं। किसी अनिवार्य कारणवश यदि 'कल्याण' का प्रकाशन बंद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हों, उतनेमें ही संतोष करना चाहिये।

आवश्यक सूचनाएँ

१-ग्राहकोंको पत्राचारके समय अपना नाम-पता सुस्पष्ट लिखनेके साथ-साथ पिन-कोड-नम्बर एवं अपनी 'ग्राहक-संख्या' अवश्य लिखनी चाहिये। पत्रमें अपनी आवश्यकता और उद्देश्यका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।

२-एक ही विषयके लिये यदि दोबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रका संदर्भ—दिनाङ्क तथा पत्र-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

३-'कल्याण' में व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें प्रकाशित नहीं किये जाते।

४-कोई भी विक्रेता-बन्धु विशेषाङ्ककी कम-से-कम २५ प्रतियाँ हमारे कार्यालयसे एक साथ मँगाकर इसके प्रचार-प्रसारमें सहयोगी बन सकते हैं। ऐसा करनेपर १० रुपये प्रति विशेषाङ्ककी दरसे उन्हें प्रोत्साहन-राशि (कमीशन) दिया जायगा। जनवरी मासका विशेषाङ्क एवं फरवरी मासका साधारण अङ्क ट्रांसपोर्ट अथवा रेल-पार्सलसे भेजा जायगा एवं आगेके मासिक अङ्क (मार्चसे दिसम्बरतक) डाकद्वारा भेजनेकी व्यवस्था है। रकम भेजते समय अपने निकटस्थ स्टेशनका नाम लिखना चाहिये।

'कल्याण' के दसवर्षीय ग्राहक

दसवर्षीय सदस्यता-शुल्क १००० रुपये, सजिल्द विशेषाङ्कके लिये ११५० रुपये, विदेश (Foreign)-के लिये सजिल्दका हवाई डाकसे (Air mail) US $200 (रु० ९५००) समुद्री डाकसे (Sea mail) US$110 (रु० ५१००) है। फर्म, प्रतिष्ठान आदि भी ग्राहक बन सकते हैं। यदि 'कल्याण' का प्रकाशन चलता रहा तो दस वर्षोंतक ग्राहकोंको अङ्क जाते रहेंगे। डाक-व्यय आदिमें अप्रत्याशित वृद्धि होनेपर अवधिके बीचमें भी सदस्यता शुल्कमें वृद्धि की जा सकती है।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)



रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७
प्र० ति० १-१-२००१

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०—१३
LICENCE NO.-3 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

उपधा (तृष्णा)-के त्यागसे पूर्ण आरोग्यताकी प्राप्ति

उपधा हि परो हेतुर्दुःखदुःखाश्रयप्रदः। त्यागः सर्वोपधानां च सर्वदुःखव्यपोहकः॥
कोषकारो यथा ह्यंशूनुपादत्ते वधप्रदान्। उपादत्ते तथाऽर्थेभ्यस्तृष्णामज्ञः सदाऽऽतुरः॥
यस्त्वग्निकल्पानर्थाञ् ज्ञो ज्ञात्वा तेभ्यो निवर्तते। अनारम्भादसंयोगात्तं दुःखं नोपतिष्ठते॥
धीधृतिस्मृतिविभ्रंशः संप्राप्तिः कालकर्मणाम्। असात्म्यार्थागमश्चेति ज्ञातव्या दुःखहेतवः॥
योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्तनम्। मोक्षे निवृत्तिर्निःशेषा योगो मोक्षप्रवर्तकः॥
मोक्षो रजस्तमोऽभावात् बलवत्कर्मसंक्षयात्। वियोगः सर्वसंयोगैरपुनर्भव उच्यते॥
तस्मिंश्चरमसंन्यासे समूलाः सर्ववेदनाः। ससंज्ञाज्ञानविज्ञाना निवृत्तिं यान्त्यशेषतः॥
अतः परं ब्रह्मभूतो भूतात्मा नोपलभ्यते। निःसृतः सर्वभावेभ्यश्चिह्नं यस्य न विद्यते।
ज्ञानं ब्रह्मविदां चात्र नाज्ञस्तज्ज्ञातुमर्हति॥ (चरकसंहिता)

उपधा अर्थात् तृष्णा ही दुःख (रोग) और दुःखके आश्रयभूत शरीरकी उत्पत्तिमें मूल कारण है। सभी प्रकारकी उपधाओंका त्याग करना सम्पूर्ण दुःखोंका नाशक है। जिस प्रकार कोषकार (रेशम पैदा करनेवाला कीट) वधप्रद अंशुओं (रेशों)-को स्वयं उत्पन्न करता है। उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष अर्थों (विषय-भोगों)-के द्वारा स्वयं तृष्णाको उत्पन्न करता है और सदा रोगी (दुःखभागी) बना रहता है। जो ज्ञानी पुरुष हैं, वे उन विषयोंको अग्निसदृश दुःखदायी जानकर उनसे निवृत्त हो जाते हैं और पुनः रज-तमके अभाव होनेके कारण किसी कार्यका आरम्भ नहीं करते। कार्योंके आरम्भके अभावसे और इसके कारण ही शरीरका संयोग न होनेसे आत्मा दुःखको नहीं प्राप्त होती। बुद्धि, धृति (धारणा-शक्ति) तथा स्मृति (स्मरण-शक्ति)-का भ्रंश हो जाना (उचित रूपसे कार्य न करना), काल और कर्मकी सम्प्राप्ति, असात्म्य अर्थों (प्रतिकूल पदार्थों)-का आगम (संयोग होना)—ये तीन दुःखरूपी वेदनाके कारण हैं (एक समयोग ही सुखका कारण है, वह अत्यन्त दुर्लभ है—'**समयोगः सुदुर्लभः**')। योग और मोक्षमें सभी वेदनाओंका नाश हो जाता है। मोक्षमें आत्यन्तिक वेदनाओंका नाश होता है। योग, मोक्षको दिलानेवाला होता है। मनसे जब रज एवं तमका अभाव होता है और बलवान् कर्मोंका क्षय हो जाता है, तब कर्म-संयोग अर्थात् कर्मजन्य बन्धनोंसे वियोग हो जाता है, उसे अपुनर्भव अर्थात् मोक्ष कहते हैं, जिसके हो जानेपर पुनः जन्म नहीं होता। जब आत्मा सभी वस्तुओंका अतिक्रमण कर लेती है और वह उस चरम संन्यास-अवस्था (अर्थात् त्यागावस्था)-में संज्ञा (नाम मात्रका निर्विकल्पक ज्ञान), ज्ञान (सविकल्पक ज्ञान) और विज्ञान (शास्त्रका ज्ञान)-से शून्य हो जाती है तो उस अवस्थामें मूलके साथ सभी प्रकारकी भूत, भविष्य एवं वर्तमान वेदनाएँ अशेष (सम्पूर्ण) रूपसे नष्ट हो जाती हैं। इसके बाद जीवात्मा ब्रह्मभूत अर्थात् ब्रह्मस्वरूप हो जाता है, तब भूतात्माका ज्ञान प्रत्यक्ष, अनुमान, आप्तोपदेश प्रमाणोंसे नहीं होता; क्योंकि जब जीवात्मा ब्रह्मस्वरूप हो जाता है, तब सभी भावों (बुद्धि, अहंकार आदि अष्ट प्रकृति और षोडश विकारों)-से निःसृत (अर्थात् रहित) हो जाता है। ऐसी दशामें उस जीवात्माका कुछ चिह्न (लक्षण) नहीं रहता है। ब्रह्मको जाननेवाले ज्ञानीको ही ब्रह्मके विषयमें ज्ञान होता है। जो अज्ञानी हैं, वे ब्रह्मतत्त्वको जाननेमें समर्थ नहीं होते।



रजि० समाचारपत्र-रजि० नं० २३०८/५७
प० ति० १-१-२००१

पंजीकृत संख्या—जी० आर०—११
LICENCE NO.-3 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

मिलनेका पता
'कल्याण' कार्यालय,
पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ० प्र०)